वङ्गदेशान्त पाति भूपाल राय धनपतसिंह-बाहादुर का आगम संग्रह उत्तराध्ययन ४१मा भाग सम्पूर्णतामगमत्

और इसग्रथमे चरमचक्षु के योगसे भुलचूक होय सो पण्डितजन कृपा करके उपयोग पूर्व्वक स्वाध्याय करना।

सवेगी श्रीमुनि बुटेरायजी तच्चरणरेणु दासानुदास भगवानविजय साधुना संसोधितम्। १ ३०(१।१)१०

सम्वत् १९३६ का वैशाख सुदि सप्तमी दिने सम्पूर्ण हुआ ॥

कलकत्ता ७१ न करणओयालिस ष्ट्रीट राजकीय यन्त्रे

श्रीश्रीशचन्द्र भट्टाचार्य के द्वारा मुद्रित हुआ।

श्रीजिन कुशलसूरिभ्यो सद्गुरुभ्यो नम ॥ श्रीगौडी पार्श्वे शिताशिवततिर्भवतु भव्हती ज्ञानभाज सुरवरमहिता सिद्धिसौधस्थसिद्धा पञ्चाचार प्रवीणा प्रगुणगणधरा पाठका आगमानां ॥ लोके लोकेशवन्द्या सकलयतिवरा' साधुधर्माभिलीना । पञ्चाप्येते सदास्मा' विदधतु कुशल विघ्नाश विधाय ॥१॥ श्रीवीर धीरसिन्धुद्रुकविमलगुण मन्मथारिप्रजात श्रीपार्श्व विघ्नवल्लीघनदलनविधौ विस्फुरत् कान्तिधार । सानन्द चेन्द्रभूत्याहृतवचनरस दत्तद्ग्वर्णबोध सदेह भूरिभत्या त्रिभुवनमहित वाङ्मन काययोगै ॥२॥ उत्तराध्ययनसूत्रवृत्तय, सन्ति यद्यपि जगत्यनेकश' मुग्धबालसदनबोधदीपिका दीपिकामिव तनोम्यह पुन ॥३॥ प्राप्तवाग्विभवो गिरा गिर श्रीगुरोय विशदप्रभावत' सन्ति लक्ष्मुरुपदस्तु वल्लभ सज्जना मयि भवन्तु सादरा ॥४॥ युग्म षैयमे स्तावगभता चतुर्दशगतो सता श्रीपुण्डरीकमुख्याणां या दिपथागदुत्तरा ॥५॥ सूत्र सयोगा विप्पमुक्कस्स अनगारस्सभिक्खुणो विणय पाउ करि

संजोगा विप्प मुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो । विणय पाउ करिस्सामि आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥ आणा निद्दे स करे

श्री जिनाय नम' । उत्तराध्ययननो शब्दार्थ लिखीये छे श्री महावीर देवने वारे श्री आचाराग भणीने पछे उत्तरायन भणता श्रीशय्य भवाचार्य्य पछी दशवैकालिक भण्या पछी श्रीउत्तराध्ययनकहीयेइ तथा उत्तर कहता प्रधान अध्ययन ते भणी उत्तराध्ययन कहीये एहने विषे छत्तीस अध्ययन छे तथा प्रथम विनय अध्ययन कह्यो तेह्या भणी गुरु कहे छे जे जिननो धर्म ते विनय मूल छे विनय थी मोक्ष हुइ उक्त च मूलाओ खधप्पभवो दुमस्स इत्यादि अथवा विणओ सा सत्वे मूल विणओ निव्वाण साहगो विणयाओ विप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कओतवो विणयाओ नाण नाणाओदसण चरणे हि तो मुक्खो मुक्खे सुक्ख अणावाह १ इत्यादिक कारणे प्रथम विनयनो स्वरूप कहे छे ॥१॥ स० सयोग बे प्रकारे पूर्वसयोग माता पितादिक पश्चात् सयोग श्वसुरादिक तथा बाह्यपरिग्रह– खेत १ वथ२ हिरण३ सुवन्न४ धन५ धान६ दुपद७ चोपद८ कुवीधातु९ बीजोअभ्यतर परिग्रहे मिथ्याल १

उ०टीका अ०१ २

स्वामि आणुपुव्वि सुणिहमे १ व्याख्या श्रीसुधर्म्मा स्वामी जंबू स्वामिनं वक्ति जंबु स्वामिनमुद्दिश्य अन्यानपि शिष्यान् वदति भो शिष्याः अहं आनुपूर्व्या अनुक्रमेण भिक्षोर्भिक्षया मधुकरवृत्त्याहारं गृहीत्वा शरीर धारकस्य साधो र्विनयं प्रादुःकरिष्यामि प्रगटी करिष्यामि मे मम विनयं प्रगटी करिष्यतो यूयं महाक्य शृणुत यतो जिनशासनस्य मूलं विनयधर्मएव उक्तं च श्रीदशवैकालिके विणयाओणाणं नाणाओदंसणमित्यादि कथं भूतस्य भिक्षोः संयोगात् बाह्याभ्यन्तरभेदेन विविधात् विप्रमुक्तस्य विशेषेण रहितस्य तत्र बाह्यसंयोगो धनधान्यपुत्रमित्रकलत्रादि अचित्तं सचित्तादिरूपः अभ्यन्तरसंयोगो मिथ्यात्ववेदत्रिकहास्यादि षट्क क्रोधादि चतुष्करूपः एवंविध द्विविधसंयोगात् विरतस्य पुनः कीदृशस्य भिक्षोः अनगारस्य न विद्यते अगारं गृहं यस्य स अनगारः अगृहः तस्य नियत वास रहितस्य १ सूत्रं ॥ आणाणिद्देस करे गुरूण मुववाय कारए इंगियागारसंपन्ने सेविणी एत्ति वुच्चई १ व्याख्या स शिष्यो विनीत इत्युच्यते स इति कः यः शिष्यः आज्ञायास्तीर्थ कर प्रणीतसिद्धान्तवाण्याः निर्देशः उत्सर्ग अपवाद कथनंतस्य कारको भवति अथवा आज्ञायाः गुरुवाक्यस्य निर्देशः प्रामाण्यं आज्ञा निर्देशस्तं करोतीति आज्ञानिर्देशकरः पुनर्यः शिष्यो गुरूणां समीपेपातः स्थितिस्तत्कारक उपपातकारकः गुरूणां

सूत्र

आणा निद्दे स करे गुरूण मणुववाय कारए। इंगिया गार संपन्ने सेविणीएत्ति वुच्चई ॥२॥

भाषा

क्रोध२ मान३ माया४ लोभ५ हास्य६ रति७ अरति८ भय९ शोक१० दुगंछा११ स्त्रीवेद१२ पुरुषवेद १३ नपुंसकवेद१४ विषयकषायादितेहथी विवध प्रकारे ज्ञानादि भावनाइं करी प्र० परिसहसहिवे करि सु० मूंकाणा छे अ० घररहित हुवे अणगार भि० निरवद्य भिक्षाइ प्रवर्त्ते एहवासाधुनो वि० विनय पा० प्रगट क० करिस्यूं श्री सुधर्म्म स्वामी ये जंबु प्रते कह्यो अ० अनुक्रमे सु० सांभलि मे मुझने कहि ते थकी१ आ० गुरुनी आज्ञानो० प्रमाणनो क० करणहारहुइ गु० गुरुनि दृष्टि अने वचन तेहने विषे सु० रहिया एहवा कार्यनो क० करणहार एतले गुरु समीपेइ सूक्ष्म अंगभमुहादिकनो

उ टीका अ १ २

दृग्गोचरे तिष्ठतीत्यर्थः पुनर्यं शिष्य इङ्गिताकारसम्पन्नोभवति गुरूणा इङ्गित मानसिक चेष्टित जानाति पुनर्गुरूणा आकार बाह्य शरीर चेष्टितश्च जानाति इङ्गित निपुणमतिगम्य प्रवृत्ति निवृत्ति ज्ञापक इषत् भ्रूशिर कम्पनादिक आकार स्थूलमतिगम्यश्चलनादि सूचको दिशावलोकनादि यदुक्त अवलोकन दिशाना विजृम्भण शाटकस्य सम्बरण आसन शिथिलोकरण प्रस्थितलिङ्गानि चैतानि १ तस्मात् यः शिष्यो गुरो रिङ्गिताकारौ सम्यक प्रकर्षेण जानातोति इङ्गिताकारसम्पन्न एताद्दश शिष्यो विनयवान् उच्यते २ अथ अविनीतस्य लक्षणमाह आणाणिद्दे सकरे गुरूणमणुववाय कारए पडिणोए असबुद्धे अविणोएत्ति वुच्चई २ व्याख्या स शिष्योऽविनोत इत्युच्यते य आज्ञाया स्तीथ करवाक्यस्य गुरोर्वाक्यस्य च अनिर्देशकर अप्रमाण कर्त्ता आज्ञाविराधक पुनर्योगुरूणा अनुपपातकारको भवति गुरूणा दृगविषये स्थिति न करोति आदेश भयात् दूरतिष्ठतीत्यर्थं पुनर्यं शिष्य गुरूणा प्रत्यनीक गुरूणा छलान्वेषी पुनर्यं असबुद्ध तत्वस्य अवेत्ता एताद्दश लक्षणोऽविनीतो भवति २ अत्र कूलवालुकस्य दृष्टान्त ॥ यथा एकस्य आचार्यस्य चुल्लकोऽविनीतः त आचार्यं शिक्षार्थे वाचा ताडयति स चल्लकोरोप वहति अन्यदा आचार्यस्तेन चुल्लकेन सम सिद्ध शैल वन्दितु गत तत

सूत्र

पडिणीए असबुद्धे अविणीएत्ति वुच्चइ ॥२॥ जहा सुणी पूइ कन्नी निकसिज्जइ सव्वसो । एव दुस्सील पडिणीए मुहरी

भाषा

भा० अवलोकनादिकनो चेष्टा नो स० जाणपणा सहित हुइ सु० एहवो हुइ ते विनित वु कहिये छे २ हिवे अवनितनो स्वरूप कहिये छे आ० गुरुनि आग्यानो अ० प्रमाण नो क० करणारनो गु गुरु थको दूर बेसवो करे एहवो हुइ ते म० गुरुना कार्यनो क० अणकरणहार प० गुरुनो प्रत्यनीक वेरो सरिखो अ तत्वनो अजाण अ एहवो हुइ ते अयनित वु० कहोये छे२ हिवे तोजो गाथाइ कूलवालनो दृष्टान्त कहे छे एक आचा र्यने एक अयनोत चेलो छे गुरुनो कह्यो न करे गुरु तेहने शोख दोये पिण चेलो नमाने अने मन माहि रीसधरे एकवार चेला सहित आचार्य विहार

तिहा थी अणाव्यो तिहा कूकडे आगुलो करडो तेणे कोणोक एहवुं नाम दीधो ससार माहिं माता पिता उपरान्त कुण उपगारी हुसी यतः चन्द्रचन्दन कर्पूर गौस्तनो शकरादय एतेषा सार मुद्ररत्य जम्मना जनितं मन अनुक्रमे मोटो थयो एहवे इन्द्र महाराज आपणे साहमीनो प्रशंसा करी जे भरतखेत्र माहि सम्यक्तधारी राजा श्रेणिक छे श्रेणिक सारिखा श्रावक थोडा हुसी तेहनेचायक समतासुद्ध छे तेहने देवता पिण चलावी न सके एहवुं वचन साभली अणसद्दहता देवताइं साधुनो रूप करो खांधाने विषे जाल धरो राजा श्रेणिक आगलि थई नीकल्यो राजाना सेवक कहे स्वामीश्री साधुने वांदो राजा इं साधु जाणो वांदोने कहे किहांपधारोछो देव साधु कहे माछ लानो मांस लेवा जांवांछा राजा कहे आपणे घरे सर्व मीलसी अरे महाराजा ताहरे दीधे केतलो एक पूरीपडस्ये चत्रीजती थया छे तेहने मदरा वोना नसरे तु केतलाने देसी आज वेलानीकल्या ताहरी नीजर चढ्या वलतो श्रेणिक कहे छे एहवो वचन मबोलो तुमे तुमारो वात करो निःकलङ्की सकलङ्क न हुवे तुंतारा कर्मनु दोष राजानो मन लीगार चुको नजाणी साधवोनी रूपवेश यौवनरूप नीरखने पूरे मासे ने हाट हाट गुल अजमो सूंठ पीपला मूल मांगती देखी राजाना सुभट कहे जे साधु पूर्वे वांदी पवित्र थया हिवे साधवी वांदो तिवारे राजा ये साधवोने वंदणा करो राजा कहे हे पुत्री आपणे घरे पधारो गरभनो विवाह करस्यु हाट हाट२ कांभमो तिवारे साधवो बोलो केतलानो नीरवाह करसी चन्दनवाला मृगावतो प्रमुख स्युं कन्दर्प जीत्यो छे ते माहरो कूलदीपराये कल्यो एक निर्गुणी सर्वने सरीखा करे पिण सोवरण स्यामता नहो १ तुमारा कर्मनो दोष राजा लिगार धर्म थो चूको नहो साधुसाधवो ऊपरो समभाव निंदा पिण न कीधी देवता मनमे खुसी थयो प्रत्यक्ष रूप करो रायनो प्रशसा करे हे महाराज तुं धन्य जे कहे माहरे सर्व छे त्यारे देवता राजाने बे माटीना गोला देईस्वर्ग पहुता एक गोली सुनन्दाने दीधी ते मांहि कुंडल युगल नोकल्या तिवारे देवता कहण लागो एमर्वरूपमे करता साधु साधवी तोनीकलङ्क छे मोक्षना साधक छे

पोतानी पापनिंदो गोला२ राजाने देइ स्वर्गे पहुतो एक गोलो चेलणाने दीधो ते माहिसु आमला प्रमाण मोतीनो हार अढारे सरो नीकल्यो एहवे
समे श्रेणक अतेउर सहित भगवंतने वंदना करो पाछा वलता चेलणाइ शीतकाले एक साधु ध्यान करतो देखी आपणे घरे आवी राते स्व आवासे
सुता एहवो वचन कह्यो किम करता हुसो ते वचन सुणी श्रेणिकनामनमे संदेह उपनो ए अंतेउर खोटी एहवो वीचार करी अभय कुमारने
जाल वानो आदेश देई राजा भगवंत पासे गयो भगवंत बोल्या चेडानी सातेपुत्री सती छे एवचन सुणी उतावलसुपाछा वल्या वलतानगरमे धूम्र देखी
अभयकुमारने कह्यो जारे भंडा एवचन अभयकुमार सुणि पिताने कह्यो तुमारो वचन थो हु सुख थी कहु तु जा तिवारे तु दीक्षा लीजे एवचन
तुमारा मुख थी नीकल्यो छे तिवारे पोतानो आज्ञाई अभयकुमार दीक्षा लीधी हिवे कोणीक दुरदंत हुवो लघु भाई हल्लने१ विहल्ल२ वीजीमाता१
कालिप्रमुख कोणिक सव ने कह्यो राजा श्रेणकने काठ पिंजरे घाली राजा ११ भागे वहि वल्यो छत्रचामर पोताने अने सिंचाणकहाथी अने हारहल्ल
विहल्लने श्रेणिक आप्योहतो ते हिज राजा श्रेणिकने नित्य नाडो५ मरावे अने भात पाणीनारोध राणी चेलणा दोपहरा कलसीयो१ पाणीनो ले
जाय चोटो मदिराये खरडो ते धोइ पावे अने उडदनो रोटी करी ले जायते आहार करे आपणाकर्मोदिवा भोगवे राणी कहे ओ पुत्र जीवाडीग्रोसुख
देव्यो राजा कहे काई गहिलो थइ भावो पदार्थ किहा रहे एकदा प्रस्तावे कोणिक जीमवा बेठो छे पासे पूत्र बेठो छे तिणे थाली माहि जीमता
लघ नीतकरो पिण कोणके सकानाणोमाने कहे मोरे पुत्र किसोवालहो छे जेमेलिगाररीस नहीकरी तिवारे समो जाणी चेलणा बोली पुत्र मातापिताने
वल्लभ हुइ पिण पुत्रनेहनाणे तोवारे पूर्वलो वात चेलणा कोणिक आपरा पुत्र आगे कही ताहरी चोटी आगुलीनो लोही ते सारे ताहरे पिताने उदरमे
गयो छे एतलो मात्र न जाणे पिण कुल जाणे तु तो पोतानो भक्ति रूडो करे छे ए भक्त घणादिन कहावस्ये एहवो वचन साभली वैर गयो स्नेह

प्रगव्यो तुरत उठी लोहार तेडावी तिवारे आगल थो उपरांतोइ बात कहे श्रेणकने मारवा भणी घण लेइ आवे छे बोजीवार आवतो संभली राजा श्रे खिजे तालपुट नामा विषतालजेदोयो त्यारे तुरत मरण पांम्यो कोणीक आवी बोलावे पिण बोले नही यतः प्रोतिद्दृष्टि विना सुखं धन विना गेह च भार्या विना विप्रा वेद विना यती गुणविना राजा च सैन्य विना शूरः शस्त्र विना स्त्रियः पति विना पूजा विना देवता एतत्सर्व न शोभते किमपरं देह जीव विना १ मनस्यूं अत्यंत दुख उपनो रोइवालागो घर मांहि रह्यो सुहावे नहीं रायने वियोगे चम्पामूको पृष्टचम्पावसावी तिहां रही सकल साधवा लागो एकदा प्रस्तावे पद्मावती राणी कोणिकने कहिवा लागी तुंहि राज्यनो धणी पिणहारने हाथी राज्यनो सारतो भाई भोगवे छे अने तुमे तेहने चाकरी करो राजा कहे भाई छे राणी कहे हाथीमांगोतिवारे जाणस्यूं जे एकहो छे सेवक तिवारे तेहने कह्यो तुं कांई जाणे तो पिण इम स्त्रीये कानभभेरीया हारहाथी मांगवानो मनकराव्यो कोणिके भाई पासे हारने हाथीमांग्या तिवारे भाई कहिवा लागो हारने हाथी किम दिवरा विवे तुमे राज्य भाग्य आपोतो हारहाथी आपीये इम माहोमांहि चड भडा मांणसे सभा मांहि थी उठाड्या कोणिके कह्यो जे देश माहि रह्यो तो हार हाथी मोकल देज्यो एहवुं सांभलो कोणिकने भय करो आपणे अंतेउर लेइ नाना पासे विशाला नगरीये पहुता प्रभाते खबर थई जेनासगया कोणक कहे एहवो कुण छे जेम्हारा वैरीने राखे एहवे खबर थई जे चेडा राजा कन्हे विसालाये गया तिणवेला कोणीक राजा कालिकुमार आदिदेई १० भाई ३३ हजार घोडा ३३ हजार हाथी ३३ हजार रथ ३३ कोडि पायक सहित आवी विशाला नगरी वीटी तिवारे चेडो माहाराजा १८ राजा ५७ सहस्र घोडा ५७ हजार हाथी ५७ सहस्र रथ ५७ कोडि पायकसहित साम्हो आव्यो पिणचेडे महाराजने एहवी प्रतिज्ञादिहाडे २ एकबांणमूके तिण बाणे करी जे अवे मरो सेनानी हुइ तेहने जोवे १० दिहाडे कोणिकना कालि आदइदेई दसे बधव विणास्या तेहवे कोणीक चमरेन्द्र आराध्यो इन्द्र

देह रचा कौधो चमरेन्द्र इम महाशिलाकण्टक रथ मुसलरणने विषे दीधा महायुद्ध हुआ एक कोडि असी लाख पडा वली सौहते गाथाइ पिण इम
कहेछे कोणिकय चेडरयो रण सिकणवेलरुख मणुयाण चमरेण निग्गहया वीयदिणे सक्कवलसीया१ एग सहस्स सुरो विठदिठ्ठो मणुमहा विदेहमि दस
सहस्स मच्छ नोय सेसाओ नरयतिरिएसु २ एहवो युद्ध थयो तो पिण विशाला नगरी कोणिक ले न सक्यो श्रीमुनिसुव्रतस्वामीना स्तुभनो महिमा करने
तिवारे कोणिक उचाटवान थयो घणेकाले भवितव्यना वस थको आकाशवाणी थई यत समणे जइ कुलवालुए मागहियगणिय गमिस्सए राया असोग
चदए विसाला नगरि गहिस्सए जो कुलवालुओ साधु मागधिका गणिका साथ रमे तो अशोकचद कोणिक राजा विशाला लेशे एहवी आकाशवाणी
साभली कुलवालुनो खबर करावी नदी तटे रह्यो जाणी मागधिका गणिका तेडावोने कह्यो अहो गणिका कुलवालुओ साधु इहा आणीये जीइए
वेश्याये कह्यो हा महाराज आणइम कहो थोडो कोलो झालोकपटो श्रावकणि थइ रथ बेसीनेगइ तिहा जे वादीकुलवालुमते ते गणिका कहिवा लागी
अम्हे श्राविका जात्राये नीकल्याछा जिहां देव हुइ गुरु हुइ तीहा वांदी वहिरावी जीमुछु तुमने इहा साभल्या ते भणी अम्हे आया छिये तुम्हे अनुग्रहे
मया करी सुझतो भातपाणी वहिरो एहवो कह्यो घणे आग्रहे नेपाला मिश्रीत मोदक दीधो तेणे साधे लीधा साधुने अतीसार हुवो घणो कष्ट पड्यो
तिणे वेश्याये धोवा पखालवा रूपवेयावच करी लाजलोपावी ओषधे करी साजो कोधो तिवारे कहिवा लागी अहोवेश्या तु काइक माग वेश्याये कह्यो
मुझ साथे आवो राजा कोणिक कने तिहा थको सेझवाला माहि घाली वेश्याए कुलवालुओ कोणिक कने ल्याइ कोणिके बोलाव्यो अहो कूलवालु
आजिम विशालानगरी लेवराये तिमकरोतिवारे तिहाथको कूलवालुओ विशालानगरी माहिजइ निमत्तीयानो वेसकरीभमतेथके जो थो जे नगरकोम
नहो भाजतो ध्यान वले जाण्यो ए मुनि सुव्रत स्वामी स्तुभनो महिमाइ नगरी नथी भाजती तेहवे नगर लोके निमत्तीयो देखो पूछो अहो निमत्तिया

उत्तर तु आचार्यस्य वधाय तेन दृष्टिस्थितेन क्षुल्लकेन शिलामुक्ता आयान्ती आचार्येण दृष्ट्वा स्वपादौ प्रसारितौ अन्यथा स आचार्यो मृतो भविष्यत्
प्राचार्येण शापोऽस्मै क्षुल्लकाय दत्तः हे दुरात्मन् त्वं स्त्रीतो विनश्यसि अथ स क्षुल्लक आचार्योय मिथ्यावादी भवतु इति विचिन्त्य पृथग् भूतस्तापसा
श्रमे गत्वा तिष्ठन्ति तत्र सन्ननदीकूले आतापनां कुरुते मार्गसमीपे सार्थं विलोकयति यदि शुद्ध प्राप्नोति तदा आहारं गृह्णाति नोचेत्तदा तपः
करोति तस्य आतापना प्रभावेण नदी अन्यत्र व्यूढाततोलोकैरस्य कूलवालक इति नामकृतं इतश्च श्रेणिकं पुत्र कोणिको राजा स्वपत्नी पद्मावती प्रेरितः
स्वभ्रात हल्ल विहल्ल पार्श्वे जनक श्रेणिकार्पित दिव्य कुण्डल अष्टादश सरिक हार सेचनक हस्त्यादिक वस्तुमार्गितवान् तौच सर्वंलात्वा मातामह
चेटक महाराज पार्श्वे वैशालिनगर्यां गतौ कोणिकेन मातामहचेटक महाराज पार्श्वात्सर्वं वस्तु सहितौ तौ भ्रातरौ मार्गितौ शरणागत वज्र
पञ्जरविरुदं वहतातेन न प्रेषितौ ततो रुष्टः कोणिकः समाराधित शक्र चमर प्रभावेण स्वजीवितं रचन् अमोघबाणमपि चेटक महाराजं संग्रामे
निर्जित्य विशालि नगरीं मध्ये विशवान् सज्जित वप्राश्रितां वैशालिं नगरीं स कोणिको रोधयतिस्म नगरी मध्यस्थित श्रीमुनि सुव्रतस्वामिस्तूप प्रभावात्
तां नगरीं ग्रहीतु न शक्नोति ततो बहुना कालेन देव तयैवमाकाशे भणितं। समणे जइ कूलवालए मागहिं अ गणिअं रमिस्सए रायायअसोगचन्दए

भाँषा

नगरीनो दुख कद भांजसो तेकहिवा लागो जिवारे ए स्तम्भ उपाडीनाखस्यो तिवारे कटक पाछो भाजसो एहवो लोकाने कह्यो कोणिकनाकटकने
सङ्केत किधो अमुंकडी वेलाई एक मुकाम पाछो देज्यो इम कही नगरलोक पासे स्तंभखणाववा मांड्यो जेहवे लोके पायानो इंटकाढिवा मांडी तेहवे
सङ्केत वधकटक पाछो गयो तिवारे लोकामे चमत्कार उपनो सर्व स्तंभखणनारयो कोणिक पाछो दलवादल लेइ विशालालीवी कोणिकनी प्रतिज्ञा पूरी
हुइ हार देवताइ सहर लीधो हाथी खाहिमाहि मुओ कुलवालुओ मरि दुरगति गयो एदृष्टांत जाणी गुरुनो अविनीतपणोन करणो१ इति कुलवालुवा

वैसालि नगरि गहिस्सए १ कोणिकेन मागाणीं श्रुत्वा स कूलवालक श्रमणो विलोक्य मानस्तत्र स्थितोऽस्ति राजगृहादाकारिता मागधिका गणिका तस्या सर्व कथित तयापि प्रतिपन्न त कूलवालक श्रमणमहमत्रानेष्यामीति कपट श्राविकाजाता सार्थेन तत्रागता त वन्दित्वा भणति स्थाने स्थाने चैत्यानि साधूंश्च वन्दित्वाऽहं भोजन कुर्वेयूयमत्र श्रुता ततो वन्दनार्थं मागता अनुग्रह कुरुत प्रासुकमेषणीय भक्त गृह्णीत इति श्रुत्वा कूलवालुक श्रमण स्तस्या उत्तारकेगत तया च नेपाल गोटकचूर्ण संयोजिता मोदकादत्ता तद्भक्षणानन्तर तस्य अतीसारोजात तया औषधप्रयोगेण निवर्त्तित प्रश्रा लनोद्वर्त्तनादिभिस्तया तस्य चित्त भेदित स कूलवालक श्रमणस्तस्या मायत्तोऽभूत् तयापि स्ववशीभूत स कोणिक समीपमानीत कोणिकेनोक्त भो कूल वालक श्रमण यथेय वैशालि नगरी गृह्यते तथा क्रियता तेनापि तद्वच प्रतिपद्य नैमित्तिकवेषेण वैशालि नगर्यभ्यन्तरे गत्वा मुनि सुव्रतस्वामि स्तूप प्रभावो नगरीरक्षको ज्ञात नैमित्तिकोय नगरी लोके पृष्ट कदा नगरीरोधोऽप गमिष्यति स प्राह यदा एन स्तूप यूय अपनयत तदा नगरी रोधापगमो भवतीति श्रुत्वा तैर्लोकै स्तवाक्षत कूलवालक श्रमणेन बहिर्गत्वा सञ्जित कोणिकस्तेन तदैवस्तूप प्रभाव रहिता सा नगरी भग्ना एव पतित कूलवाक श्रमण अविनीतत्वात् कूलवालक कथा २॥ अथा विनितस्य दोष पूव दृष्टान्तमाह॥ जहा सुणी पूइकणी णिक्कसिज्जइ सव्वसो एव दुस्सिल पडिणीए मुहरी निक्कसिज्जइ ४ व्याख्या एव अमुना प्रकारेण अनेन दृष्टान्तेन दु शील दुष्टाचार प्रत्यनीका गुरुणा द्वेषी पुनर्मुखरोवा चाल एतादृश कुशिष्यो दुर्विनीतो नि काश्यते गणात सङ्घाटकात वाह्य क्रियते अथवा मुहरीमुख अरियस्य स मुखारिरसम्बन्धभाषी प्राकृतत्वात् मुहरीतिशब्द कोन दृष्टान्तेन नि काश्यते यथा पूतिकर्णी सटितकर्णी शुनी कुर्कटी सर्वत सर्वस्थानकात् गृहादित सर्व नि काश्यते अत्र शुनीनिर्देशोऽ धिक निन्दासूचक सटित कर्णीति विशेषणेन सर्वाङ्ग कृमि कुलाकुल सूचित कृत्वनेन दुर्विनीतत्वन्त्याज्य ४ अथ पुनस्तदेव दृढयति कणकुण्डगत्व

उ० टीका
अ० १
१२

दूत्ताण विठ्ठ भुञ्जइ सूयरे एव सोलञ्च दूत्ताण दुस्सीले रमईमिए ५ व्याख्या एव अमुना प्रकारेण अनेन दृष्टान्तेन मिए इति मृगो मूर्खोऽविवेकी शीलं सम्यगाचारत्यक्ता दुःशीले दुष्टाचारे रमते अत शील शब्दो विनयाचार सूचकः केन दृष्टान्तेन तदाह यथा शूकरः कणकुण्डक तण्डुलभक्ष्य भृतं भाजनत्यक्ता विष्ठां भुक्ते तथा शीलत्यक्ता मूर्खः कुशील शादत्ते दुःशीलस्य विष्टोपमामूर्खस्य शूकरोपमा तण्डुलभृतभाजनस्य शीलस्योपमासूत्र सुणिआ भाव साणस्स सूयरस्स नरस्सय विणए ठविज्ज अप्पाण इच्छन्तोहियमप्पणो ६ व्याख्या आत्मनो हित इच्छन् पुरुषः आत्मानं विनये स्थापयेत् किं कृत्वा शुनः कुर्करस्य पुनः शूकरस्य नरस्य अभावं अशुभं भाव दृष्टान्तं निन्द्यं उपमानं सुणिय इति श्रुत्वा पूर्वं गाथायां शुनी पूति कर्णीति रतोलिङ

सूत्र

निक्कसिज्जई ॥४॥ कण कुड़गं चइत्ताणं विठ्ठं भुंजइ सूयरे। एवं सीलं चइत्ताणं दुस्सीले रमई मिए ॥५॥ सुणिया भावं साणस्स सूयरस्स नरस्सय। विणए ठविज्ज अप्पाणं इच्छंतो हिय मप्पणो ॥६॥ तम्हा विणय मेसिज्जा सीलं पडि

भाषा

उपरि दृष्टांत पूरो हुवोऽथाग्रे सूत्रमाह १ ज० जिमस० कूतरी पू० कुह्या कानंनी एतले रुधिर लोही वहे एहवी कुतरी खि० ते कुतरी काढिये स० सर्वस्थानक थको एतले जिहां जाय तिहां काढीये ए० एणी परे दु० भूंडा आचारनो धणी प० प्रत्यनीक वैरी सारिखो छे मु० मसवड़भाषि एहवा यव नीत पणो णि०काढीये गच्छादिक थकी४ क०कणतदुलतेहनो कु०कुणसडो कुचो च०छांडीने वि०विष्टासं भोगवे सु०सूकर ए०एणी परे अवनीतसील भलो आचारच० छांडीने दु० भूंडा आचारने विषे प्रवर्त्ते मि० पशुमृगसरिखो ते अवनीत ५ सु० सांभलीने भा० दृष्टान्त सा० श्वाननो सू० सूयरनो अनेन० अविनित मनुष्यनो दृष्टान्त सांभलीने वि० विनयने विषे ठ० स्थापे पोताना आत्माने इ० वांछतो थको हित म० आपणा आत्माने ६ अविनय

निदेश छत इदानी शुन इति लिङ्गव्यत्यय प्राकृतत्वात् सूत्र तम्हा विषयमे सिज्जासील पडिलभेज्जए बुद्ध पुत्तेनियागठीननिक्कसिज्जइ कण्हुइ ७ व्याख्या तस्मात् कारणात् बुद्ध पुत्र बुद्धाना आचार्याणां पुत्र इव पुत्रो बुद्धपुत्र आचार्याणां शिष्य पुनर्निर्योगी मोचस्त अर्थयतीति नियोगार्थी एतादृश साधुविनयं दर्पयेत् विनय कुर्यात् विनयात्शील सम्यगाचार प्रतिसभेत स विनयवान् शीलवान् कण्हुइ इति कस्मादपि स्थानात् न नि कास्यते सर्वत्राप्याद्रियते अथ परमार्थ विनयवान् सर्वत्र सादरो भवति ८ सूत्र निसन्ते सिया मुहरी बुद्धाण अन्तिए सया अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जाणि रट्ठाणिउ वज्जए व्याख्या अथ विनय परिपाटि दर्शयति नितरां अतिशयेन शान्तो निशान्त क्रोधरहित साधु सिया शब्देन स्यात् भवेत् स्वधुना धमावताभाव्य पुन सुमिथ्योऽसुखरी अवाचाल स्यात् पुनर्बुद्धाना आचार्याणा ज्ञात तत्वाना अन्तिके समीपे अर्थयुक्तानि हेयो पादेय सूच कानि सिद्धान्तवाक्यानि शिक्षेत तु पुनर्निरर्थकानि नि प्रयोजनानि धर्मरहितानि स्त्रीलक्षणसूचकानि वोकवात्स्यायनादीनि वर्जयेत् ८ सूत्र अणुसासिओ

सूत्र

लभेज्जयो । बुद्ध पुत्त नियागठी ननिक्कसिज्जइ कण्हुइ ॥७॥ निसन्ते सिया मुहरी बुद्धाण अन्तिए सया । अट्ठ जुत्ताणि सिक्खेज्जा निरट्ठाणिउ वज्जए ॥८॥ अणुसासिउ न कुप्पेज्जा खन्ति सेवेज्ज पण्डिए खुड्डेहि सहससग्गि हास कीडच

भाषा

ना दोष देखाद्या त० तेभणी वि० विनय करे सी० भलो आचार पामे ज० जे विनय थको बु० आचार्यने पु० पुत्रनी परिनि० मोक्षार्थी जे विनीत शिष्य तेहने न० काढीये क० किहां गच्छादिक थको ७ नि० निरंतर उपसमवन्त अभ्यन्तर कषाय पातला बाह्य प्रसान्त आकार सि० हुइ अ० असुखरीवाचालपणा रहित बु० आचार्यने समीपे विनित शिष्य स० सदाइ अ० जे पदार्थ छांडिवा जाणीवा आदरिवा योग्य तेहनो जाणपणु तेणे करी

वितोत साधुगुंरुणां अयतो न निह्नवोत क्वतस्य दु क्वतस्य अपल पन गोपन न विधेय क्वत कार्यं क्वत एव भापेत अक्वत कार्यं क्वत न भापेत अथ परमार्थं गुरुणा पुरत सुशिष्येणसत्यवादिना भाव्य ११ सूत्र मागलिय सेवकस वयणमिच्छेपुणो पणोका वद्दुमाइन्ने पावगपरिवज्जए १२ व्याख्या अथ विनीता विनोतयोर्दृष्टान्तमाह विनोत साधु आकोर्णद्रव सुविनीताश्व इव गुरो वचन शिक्षारूपशरयोग्यस्य कार्यस्य प्रवृत्तिसूचक करणायोग्यस्य कार्यस्यनिवृत्तिसूचकशब्दमाइच्छेत् पन पुनर्न किन्तु एकवारप्रापितसन्सर्वस्वकाय गुरोश्चित्तज्ञजानीतेति क्वत्वाद्रवकासवाजनक इष्टाइवयथा गलिताश्वो दुर्विनीत तुरग अश्ववारप्रेरणाजनक नदृष्छेत् तथा विनीतो वचनतर्ज्जन इच्छेत् तथा सुविनीतशिष्य आचार्यस्य आकार इङ्गित ज्ञात्वापापानुष्ठान वर्जयेत् इत्यर्थ. १२ सूत्रमणासवा थूलवया कुसोला मिउ पि चडपकरन्ति सोसा चित्ताणु आलहुदक्खो ववेया पसाय एतेहु दुरासयपि १३ व्याख्या अथ पुनर्विनीता विनीतयोरा धारमाह पूर्वार्द्धेन दुर्विनीत शिष्या शा आचार वदति एताहृशा शिष्या मृदुमपि आचार्य सरलमपि गुरुचण्ड कोप सहित कुर्वन्ति एताहृशा

सूत्र

कस वयणं मिच्छेपुणो पुणो कस व दट्ठु, माइन्ने पावग परिवज्जए ॥१२॥ अणासवा थूलवया कुसीला मिउपि
चड पकरंति सीसा। चित्ताणुया लहु दुक्खो ववेया पसायए तेहु दुरासयपि ॥१३॥ नापुट्ठो वागरे किंचि पुट्ठोवा

भाषा

त० तिवारे पछि ज० धर्म ध्यावे ए० एकाती रागद्वेष रहित १० आ० कदाचित च० कोधने वसे अ० भूठो क० बोलीने न० नगोपवे गुरु आगलथा० केवारे पिण लाज भयादि कारणे क० कोधाने कोधो भा० कहीये अ० अणकोधाने इम कहे नो० में न कोधो ११ मा० रखे ग० गलियार अविनित अ० घोडानी परे क० ताजणा रूप व० वचन आदेश मि० वाछे पु० वारवार क० ताजणो द० देखिने मा० जातवत घोडो जिम असवारनो मनहोइ

तिम चाले जिम जातवंत घोडो असवारने भावे चाले तिम विनित शीष गुरुनी अंगचेष्टा जाणिने गुरुने भावे विचरे प० अगुष्ठानप० सर्वथा वर्जे छे प्र०
गुरुना वचन प्रणकरणहार थ० अनिपुण भाषि भूंडा आचारनो धणी मि० क्रोध रहित जे गुरु होइ तेहने पिण च० क्रोधी प० करेसी० कुशिष्य चि०
गुरुने चित्ते वर्ते ल० शीघ्र द० विलम्ब रहित कार्यनो कर्णहार एणे गुणे करि सहित प० प्रशांत करे ते विनीत शिष्य हु० वलीदु० अती क्रोधी गुरुने
पिण१२ अथ चन्द्ररुद्राचार्यनी कथा कहीये छे उजेणी नगरीये चण्डरुद्राचार्य चोमासे रह्या प्रतिहीरोसालु थोडे बोल्यो घणी रीस चढावे वडे महात्माने
उपाश्रयढुकडे राख्या जेसइ इम भेला रहो तोरखे गुरुने रोसचढे रोसे जीवनाकारज विणसे जे भणी सिद्धांत माहि कह्युं छे यतः कोविसंकि अभयं
अहिसा माणी अरिकिहियमप्पमाओ मायाभयं सरण तुसच लोहो दुह किहियमाणुतुठी १ तेहवे अवसर ते नगरमांहि किणहीक व्यवहारीयानो
पुत्र नवपरणीतसाला सहितछे वीजाइ मित्र सहित नगरमध्ये क्रीडा करतां आव्या एहवे अवसरे जे वनमांहि जती रह्याछे तिहां कुमार क्रीडा करता
आव्या तिहां जति घणा बेठादीठा तिहां ते आवो बेठा तेहवे मित्रसाले सगले ही हसी कह्यो ए तुम पासे दीक्षा ल्ये छे एहने दिक्षा द्यो तेहवे तेणे
साधे कह्यो अम्हे न जाणा गुरु जाणे तो तुमे अमने गुरु दिखाडो तिवारे शिष्य गुरु देखाड्या तिहां कजा गुरु बेठाछे तिहां आव्या हासो माहो माहि
करतां गुरुवांद्यातिहांसालोहस्यो भगवान दीक्षा लेछे हासामिसवार एतले गुरुने रोस उपनो ततकाल पकडी पग विचे माथो चांपी श्लेषानी रोपे
लोच कीधो अने जाण्यो रखे एहवे साली मित्र प्रमुख हुता ते विषाद पाम्या जाण्या हसता अमे कह्यो अने गुरे रीस वसे साचो कीधो अने जाण्यो
रखे अमने पिणमूंडीनाखे भयभीत थईने नाठा तेहने नव दीक्षित सुशिष्ये कह्यो भगवंत तुमने इहां रहिवानो लाभ नही माहरासगा तुमने दुहवणा
अवहोलणा करसो ते भणी आपणो अनेथिजइ तेहवेगुरे रीसनावस थको कर्कश वचन कह्यो रे पापिष्ट रे दुरात्मा किणे कह्यो तुं दीक्षा लीजे एहवे

कोदृशा अनाश्रवा गुरुवचने अस्थिता आश्रवो वचनेस्थित इति हैम न आश्रवा अनाश्रवा पुनर्यें स्थूलवचस स्थूल अनिपुण वचो येषान्ते स्थल वचस अविचार्यभाषिण अथोत्तरार्द्धेन विनीतस्याचार वदति चित्तानुगा आचार्यं चित्तानुगामिन पुनर्लघु शीघ्र दक्ष चातुर्यन्तेन उपपेता लघु दाक्ष्योपपेता त्वरित चातुर्यं सहिता एतादृशा शिषा दुराशय क्रूरमपिसक्रोध अपि गुरु प्रसादयेयु प्रसन्न कुर्यु १३ अत्र चंड रुद्राचार्यकथा यथा उज्ज यिन्यां चण्डरुद्रसूरि समायात सरोषण प्रकृति साधुभ्य पृथक एकान्तस्थाने आसनश्चक्रे माभूत्कोपोत्पत्ति रितिचित्ते विचारयति इतश्च इभ्यसुत

भाषा

सुशिष्य खमा करी वलो चरण कमलेमस्तगलगावीने वीनवे तेहवे गुरु कहे रे दुष्ट रात्रि गये छु देखु नही सुझने हवि किम चलाई तिवारे सुशिष्य बोल्योमाहरे खधे वैसो गुरुने स्कन्धवैसारी विहार कीधो रात्रि अधारी शीष्यने मार्गचालता पग उचानिचा पडे तिवारे गुरु शिष्यने मस्तकी दंड प्रहार करे तिवारे शीषे आपणे मन आपणो दोष देखे छु पापी मे गरढा गुरुने कष्ट माहि पाड्या एहवो दोष संपूर्ण आपणो देखता खमा करता भावना भावता पगर मिच्छामि दुक्कड देता एकाग्रचित्ते गुरु उपरि धर्म मोह धरता कर्मनो क्षय कीधो केवल ज्ञान उपनो ज्ञान थको सर्व मार्ग देखावा माड्यो तिवारे गजगति चालवा लागो तिवारे गुरु कहिवा लागा सही मारसारकेहवो निरतो चाले छे एहवी गति जाणी गुरे शिष्यने पूछो अहो शिष्य तु वाट देखे छे हा भगवान् हु सर्वदेखु छु सूक्ष्मवादरनी पिण विगत जाणीये छे तेहवे गुरे पूछो काई अतिशय शिष्य कहे तुम प्रसादे गुरु कहे प्रति पातोके अप्रतिपाती शीषा कहे अ प्रतिपाति एहवे साभली गुरे चितव्यो एके वलो छे हमे पापी रोषना वस थको केवलीनो अशातना कोधी तिवारे खाधा थी उतरी पगे लागी खमावता गुरुने केवल ज्ञान उपनो एहवा सुशिष्य जोइये आपणोने गुरुनो कार्य साधे इति चन्द्ररुद्राचार्य कथा अथोदयमी गाथा उपरि जाणवी अथाग्रे सूत्रमाह ना० अणपूछो या० नबोले कि० थोडोइ सु० पूछो पिण जि० भूठो व० न बोले को० क्रोधने फल लगाडे

कोपि नवपरिणीतः सुहृत्परिवृतस्तत्रागत्य साधून् वन्दते केचित्तन्मित्रैर्हास्येन प्रोक्तं अमु प्रव्राजयत साधुभिर्वरमित्यभिधाय गुरुर्दर्शितः तेपि गुरु समीपे गताः तथैव तैरुक्तं गुरुभिर्भूति मानयेति प्रोक्ते तेन नवपरिणीतेन हास्या देव स्वयंभूति रानीता गुरुभिर्बलादेव गृहीत्वा तल्लोचः कृतः सुहृदः खिन्नास्तदानष्टाः तस्य तु कृतलोचस्यलघु कर्म तयाऽतः परं मम प्रव्रज्यै वास्तु इति परिणामः सम्पन्नः ततस्तेनोक्तं कीलिः सत्यं भूतोऽथ अन्यत्र गम्यते गुरुराह अहो शिष्य साम्प्रतं रात्रिर्जाता अह रात्रौ न पश्यामि तेनस्वस्कन्धे गुरुरारोपितः उच्च नीच प्रदेशे मार्गे वहता तेन गुरोः खेद उत्पादितः खिन्नेन तेन गुरुणाऽस्य शिरसि दण्डप्रहारा दत्ताः असौ मनसि एव विचारयति अहो महात्माऽयं मये दृशी मवस्थां प्रापितः इति सम्यग्भावयतः तस्य केवल ज्ञानमुत्पन्नं केवल ज्ञानबलेन समप्रदेश एव वहन् गुरुभिरेष उक्तः मारिः सार इति कोदृशः समी वहन्नसि तेनोक्तं युष्मत् प्रसादात्सं समं वहन गुरुभिरुक्तं किं अरे ज्ञान समुत्पन्नं तव तेनोक्तं ज्ञानमेव गुरुभिरुक्तं प्रतिपाति अप्रतिपाति तेनोक्तं अप्रतिपाति गुरु वलुहा मया केवली आशा तितः इत्युक्त्वा तच्छिरसि दण्डप्रहाराद्गत रुधिरप्रवाहं पश्यतः पुनस्तत्क्षामणं कुर्वतः केवल ज्ञानमापुरिति विनीत शिष्यैरीदृशैर्भाव्यं इति चण्डरुद्राचा र्यस्य कथा नापुट्ठो वागरे किंचि पुट्ठो वा नालियं वए कोहं असच्चं कुव्विज्जा धारिज्जा पियमप्पियं १४ सुविनीत शिष्यः अपृष्टः सन् किञ्चित् व्याग्टणीयात् न किञ्चित् अपृष्टो वदेत् अथवा अपृष्टोऽल्प पृष्टोऽप्रष्टः सन् विनीतः किमपि न व्याग्टणी यात् अपृष्ट अल्पमपि न ब्रूयादितिभावः अथ वा पृष्टः सन् अलीकं न वदेत् पुनः क्रोधं असत्यं कुर्यात् गुरुभिर्निर्भर्त्सितः कदाचित्तः क्रोधः स्यात्तदापि क्रोधं विफलं कुर्यात् अप्रियमपि गुरुवचनं प्रियमिव आत्मनोहित मिव स्व मनसिधारयेत् १४ अथ क्रोधस्य असत्यकरणे उदाहरणं॥ यथा कस्यचित् कुल पुत्रस्य भ्राता वैरिणाव्यापादितः अन्यदा कुलपुत्रो जनन्या भणितः पुत्रत्वद् भ्रातृघातुकं वैरिणं घातय ततः स वैरी तेन कुलपुत्रेण गोघ्नं निजबलात् जीवग्राहं गृहीत्वा जननी समीपे आनीत भणतिच अरे भ्रातृघातक

उ टीका अ० १ १८

अनेन खड्गं नत्वामहृदुक्तं हन्मि तेनापि उद्गमित प्रचण्ड दृष्टा भयभीतेन भणित यत्र शरणागता न हन्यते एतच्च श्रुत्वा कुलपुत्रेण जननी मुखमवलोकित जनन्या च सत्वमपलभ्य उत्पन्न करुणया भणित हे पुत्र शरणागता नहन्यन्ते यत सरणागयाण विस्स भियाण पणयाण वसण पत्ताण रोगी अजुङ्गमाण सप्पुरिसानेव पहरन्ति१ तेन कुलपुत्रेण भणित कथ रोष सफलो करोमि जनन्या उक्त वत्स सर्वत्र न रोष सफलो क्रियते जननी वचनात् स तेन मुक्त तयोश्चरणेषु पतित्वाक्षामयित्वा चापराध स गत एव क्रोधमसत्य कुर्यात् इति कुलपुत्रस्य कथा धारिज्जा पियमप्पिय एतत्पद कथा यथा वीतभयपत्तने एकदा महद् शिवमुत्पन्न त्रयो मान्त्रिकास्तत्रायाता राज्ञ पुरस्तै कथित वय अशिव उपशमयिष्याम राज्ञा भणित। कीदृ प्रका रेण तेषां मध्ये एकेनोक्त मन्त्रसिद्ध ममैक भूतमस्ति तदत्यन्त रूपवद्गोपुर रथ्यादिषु भ्रमत्‌य पश्यति स म्रियते यस्तत् दृष्ट्वाऽधोमुख स्यात स सर्वरोगै मुच्यते राज्ञा भणित अल अनेन अति रोषणेन भूतेन अथ द्वितीये मान्त्रिकेणोक्त मम भूत महाकाय लम्बोदर विस्तीर्ण कुक्षि पञ्चशीर्ष एकपाद विकृतरूप महाट्टहास कुर्वन् दृष्टा योहसति तस्य शिर सप्तधा स्फुटति यस्तु तद्गत भूप पुष्प स्तुत्यादिभि पूजयति स सर्वरोगैर्मुच्यते राज्ञोक्त अनेनापि भूतेन सृत अथ तृतीयेन मान्त्रिकेणोक्त ममाप्येव विध भूतमस्ति पर प्रिया प्रियकारिणश्चन दर्शना देवरोगेभ्यो मोचयति राज्ञोक्त एव भवतु तथा तन्नगराशिव उपशान्त ततो तृपादिजनै स तृतीय मान्त्रिक एव साधुरपि पूजानिन्दा प्रिया प्रिय सहेत उक्तञ्च लाभालाभे सुखेदु खे जीविते मरणे तथा स्तुतिनिन्दा विधाने च साधव समचेतस १स्तुतिनिन्दादौ न रागद्वेषवान् साधुभवतीति इति त्रयोमान्त्रिकाणा कथाअप्पाचे वदमे अप्पो अप्पाहु खलुदुद्दमो अप्पादन्तो

सूत्र

नालिय वए। कोह असच्च कुव्वेज्जा धारेज्जा पियमप्पिय॥१४॥ अप्पाचेव दमेयव्वो अप्पाहु खलु दुद्दमो। अप्पादंतो

भाषा

नहीं एतले क्रोधने असत्य करे नि फल करे धा खमे पि० इष्ट अनिष्ट गुरुनी वचन साभलीने १४ कोह असच्च कु ए पद उपरि रागद्वेष अण करवे कुल

सुही होइ अस्सिं लोए परत्थय १५ आत्माए वद्दमितव्यः वशीकर्त्तव्यः हुइति निश्चयेन खलु यस्मात्कारणात् आत्मा दुर्दमो वर्त्तते आत्मान दमन् जीवः सुखी भवति अस्मिन् लोके च पुनः परत्र परभवे च सुखी भवति १५ आत्मा दमने दृष्टान्तः यथा एकस्यां पल्ल्यां द्वौ भ्रातरौ तस्करनाय कौस्तः सार्थं न सह गच्छतां साधूनां वर्षाऋतुः प्राप्तः नच तत्र कोपि साधु भक्तोस्ति तेन साधवस्तस्करनायकयोः समीपेगताः साधु दर्शनेन तौ चौरनाय कौ आनन्दितौ तान् प्रणम्य कथयतः किं प्रयोजनं भवतां साधुभिर्भणित अस्माकं वर्षा सुविहर्तुं न कल्पते ततो वर्षावास प्रायोग्य मुपाश्रयं प्रार्थयामः ताभ्यां च सहर्षं साधुना सुपाश्रयोदत्तः तत्र विश्वस्तास्तिष्टन्ति साधवः चौरनायकाभ्यां भणितं अस्माकं गृहेषु सम्पूर्णं भक्तादि गृहीतव्यं साधुभिर्भणितं न कल्पते एकस्मिन् गृहे पिण्ड ग्रहणं साधुनां ततः सर्वेषु उचितगृहेषु विहरिष्यामः उपाश्रय दाने नैव भवतां महापुण्य सम्बन्धोजातः उक्तञ्च जोदेइ उवस्सयं मुनि वराण तव नियय जोग जुत्ताणं तेणं दिन्नावत्थन्नपाण सयणासणविगप्पा १ तव सञ्जम सज्झाओ नानाभासो जणो वयारीय जीसाहूण मवगाह कारी सिज्झाय रीतस्स २ पावइ सुर नररिद्धीस कुलप्पत्तीय भोगसामिद्धी नित्थरइभवमगारी सिज्जादाणेण साहूणं ३ इदं साधुवचः श्रुत्वा तौ अत्यन्त परितुष्टौ तेषां साधुना सुपद्रवं रचतः विश्रामणादि भक्तिञ्च कुरुतः सुखेन साधुनां वर्षाकालोऽतिक्रान्तः गच्छद्भिः साधुभिस्तयोश्चौरनायक योरन्य व्रत ग्रहणाऽसमर्थ योर्निशाभोजन नियमदत्तः तयो रेव सुपदिष्टं मालिति महीयलं जामिणी सुरयणी अरा समन्तेणन्ते वित्थलन्ति अफुडं राईए भूञ्ज माणाउ १ गेहं पवीलि आउ हणन्ति वमणञ्च मत्थिया कुणइ जूआजलोयरन्तह कोलि अउ कुठरोगञ्च२ वालो सरस्स भङ्गं कंटोलगइगलं भिदारुञ्च ताल मिविन्धइ अली वञ्जण मज्झंमि भुञ्जंतो ३ जीवाण कुन्थुमाईण घायणं भायणधो अणाईस इमा इरयणि भोयण दोसे कोसाहि उसरइ ४ अतोऽस्मिन् दृढव्रतेदृढ प्रयत्नैर्भवितव्यमिति भणित्वागताः साधवः तावपि चौरनायकौ सपरिवारौ कियन्मार्गमनुगम्य निवृत्तौ मुनि सेवया कृतार्थत्वं मन्यमानौ

पुत्र दृष्टांत जाणयो विचहोक गामें एक कुल पुत्र छे तेहनो भाई वैरीये विणास्यो तिवारे तेमा वेटाने कहे हे पुत्र ताहारा भाईना विणासणवालाने तु विणास ते मातानो वचन लेइ तिणे लड्डे वेटे आपणे वल करी भाईनो मारणहार जीवतोपकडि माता आगलि कह्यो मोरबध वाधी खड्ग काढी बोल्यो भ्रात घातक तुझने मारुं तिवारे वैरी भयभीत थके कहे जिहा शरणागत आयाने किम हणिये तिम आहण एहवो वैरीनो वचन साभलीने वेटे माताने कह्यो माता महासतुरनो धणियाणी आपणा वेटाने कहे हे पुत्र आपणे सरणागत आवीने न हणीये जे भणी शास्त्रमे कहे छे यत सरणागताण विस भियाण पणयाण विसपयत्ताण रोगीय जगमाणसपुरिसाने वपहरंति १ सतपुरुषते एतेलाने परापर न करे एहवो वचन साभली वेटे कह्यो हे मात उपनो कोप कोम सफल करुं तिवारे मा कह्यो हे पुत्र सगले रोस सफल न करवो तिवार पछी तेणे आपणा भाइनो मारणहार वैरीने सन्मान देइ जो माडो घरे मूक्यो तिम वीजे जीवे रोस उपनो हुतो उपसमावे यत उवसमेणहणकोह उपने क्रोध समाइ अरस विफल करे इम कुलपुत्र दृष्टान्त १ धारिज्जाविय जमप्पियए उपरिकया लोडीये छे रूडो वात यहीये माठी छडीये यथा वीत भय पाटणे अग्निवलगो उपने हुते उदायन राजा कने चिय मत्रवादी आव्या राजायेतेशेलाव्या तुम्हे कुणछो तुम्हे स्यकरो छो तेहवे कह्यो अमे मत्रवादी छा मत्रवले भूत एक दिन आवे नगर माहिन मे अशीव मृगी नगर माहि समावे तिवारे पूछे ते भूत तुमारा केहवा छे तिवारे ते माहि पहिलो मंत्रवादी कहे हे राजा माहरो भूत अतिशी रूपवत सोध छे पिण ते भूतने उचो हृष्ट साम्हो जोवे ते मनुष्य मरे तेजे भूत देखी नीचो जोवे तेहनो रोग जावे निरामय थावे एहवो वचन मत्रवादीनो सांभली राजाइ विसर्ज्यो इणरो अमारे खपनथी राजाइ बीजो मत्रवादी भूत बोलाव्यो ते कहिवा लागो माहरो भूत अतशो कुरूप छे पिण तेहने देखीने न हसे मने मनुष्य ते भूतने स्तवे तेनोरोग हुई अने जे निदेते मरे राजाने पोण विसरज्यो राजे त्रीजो मत्रवादी बोलाव्यो ते कहे हे राजन् माहरो भूत कुरूप छे

तिष्ठत: अन्यदा ताभ्या घाटोगताभ्या बहु गोमहिषमानीत अन्तरालमार्गे तत्परिवार पुरुषै: कैश्चिन्महिषो व्यापादितस्तद्भोजनाय सपरिवारी तौ तत्रस्थितोकेचित्परिवारपुरुषामद्यानयनार्थं ग्राममध्येगता: महिषव्यापादकै: परस्परमितिविमृष्टं मांसार्द्धे विषं प्रक्षिप्यमध्येगतेभ्योदीयर्ततदा बहुगोमाहिषं भागे प्रागच्छति आत्मना इति विमृश्यते स्तथैवकृतं भवितव्यतावशेन ग्राम मध्येगतैरपि तथैव सञ्चिन्त्य मद्यार्द्धे विषं प्रक्षिप्तं तत्रागता: परस्परमिलिता: कूटचित्ता: सर्वेपितो चौरनायकौतुनि: कूटोस्त: तावता सूर्योस्तं गत: तौ चौरनायकौ रात्रिभोजन नियमभङ्गभयेन न भुक्तौ अन्ये परस्पर दत्त विषसंयुक्त मद्यमास भक्षणेन मृता: कुगतिं गता: तो भ्रातरो इहलोके परलोके च सुखीनो जातौ रात्रिभोजनव्रत ग्रहणेन जिह्वेन्द्रिय दमनात् इति चौरनायक दृष्टान्त: वरंमे अप्पादन्तो संजमेण तवेणय माहिं परेहि दम्मन्तो बन्धणेहि वहेहिय १६ अथ किञ्चितयन् आत्मानं दमयेदित्याह संजमेन च पुन स्तपसा मया आत्मादान्त: वशोकृतो वरं भव्य: अत्रात्मा शब्देन देह: आत्मन आधार भूतत्वात् दांत: असंयम मार्गान्निषिद्धो भव्य: संयमेन सप्तदशविधेन

सुही होइ अस्सिंलोए परत्थय ॥१५॥ वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेणय। माहं परेहिं दम्मंतो बंधणेहिं

पिण जे रूडो पाडुइदृष्टि साहमुजोवे ते स्तवना करे तथा निन्दा न करे तोही तत्काल रोग थी मुकाई समाधि थाई एहवो वचन राजा सांभली मंत्रवा दीज परितुष्टमान हुवो राजाइ ते मान्यो तेणे नगर मांहि थी रोग दूर कीधो सर्वलोकने प्रेमवंत हुवो तो जे साधु होइ ते चौजा भूतनी परे स्तुति अने निंदा सांभली राग द्वेष न करे ते पूज्य थाइ तिम साधु पिणवेस रूप थी रहित अंगविभूषा नहीं पिण सर्वजनने कर्मादि कदर्थ थी मूकावे पोते पोण सुख पामे अपरने पिण सुखकारी सार पदार्थ संग्रह करवो जिम भूतनी परे इति मंत्रवादी दृष्टान्त सम्पूर्णम्। अ० इंद्रीनो इंद्रीरूपपोतानो आत्मा मन द० दमवो अ० आत्म हु० हुवे निश्चे दु० दोहिलो ते भणी आज दमवो अ० आत्माने द० दम्यो थको सु० सुखी थावे अ० इहलोकने विषे प० पर

लोकने विषे १५ ब० प्रधान भलु मे० मुझने अ० आपणो आत्माने द० दम्यो स० संयमसतरे भेदे करी त तपस्या बारे भेदे करी दमवो आत्माने म० रखे पाड्यो भूंडो अ० हु प० अनेरे द० दम्यो थको ब० रासडी प्रमुख बांधणे करी लाकडीयादिकने वधे करीने गाथा १५ १६ मीउ पर कथा लिखिये जिम उपदेस मालामांहि छे तिमज जिम चोर हुंते आपणा कर्मना वस थको जिणे रसना इंद्रीये सुखीया हुआ ते दृष्टांत कहे छे एक पहाडना गालिमा छिवे भाइ चोर पल्लीपती तिहा रहे ते सदा चोरि करे नगर गाम मारे तिहा विहार करता वरसालाने धुरे साधु आव्या तिहा कोइ साधुनो भक्त श्रावक न थी ते भणी महात्मा चोर पल्लीपतिने मिल्या महात्माने दर्शन पल्लिपति हरख्या प्रणाम करी चोरे पूछ्यों हे भगवन् तमे अमृ लगी किणकारण आव्या तमारे दर्शने घणो पुण्य थाय जे अमारी भाग्य दशा पूज्य वाद्या तिवारे महात्मा बोल्या जे वरसाने यतीनेहींडवु नकल्पे ते भणी वरसाला योग्य वसती रहिवाने थोतो रहीये जोगवहीये तप करीये संयमनिरवाहि तेभणी आला आपो घणो हर्ष पाम्या वली कहे पूज्य आपणे घरे भात पाणी लेज्यो तुमारे लीधे अमने घणो लाभ थासी साधु कहे एकण घरे आहार लीधो न कल्पे ते भणीला भाला भजाणी जसी अने तुमे उपाश्रय दीधो तिहने घरे आहार लेवो शय्यातर घरनो आहार न लेवो उपाश्रय दीधो तेह थी तुमने मोटो लाभ उपनो जिम सिद्धांते कह्य छे यत॰ जोदेइसुणि वराण उवस्सय तस्सवइफल होइ तवसंयमसज्झाए पावेइ सुर नररिद्धय १ एहवा ऋषिना वचन पल्लीपतिवे भाइ हर्षपाम्या रातिदिवस साधुनो सेवा करे एहवा ऋषीश्वर तपनियम करता क्षमादि गुणवहता वर्षाकाल वीतो तिवारे साधुव्रतलेवाने विषे पल्लीपति बेभाइने हितोपदेश दीधो जेरात्रि भोजन न करियो एहवो नियम देवा माड्यो तेणे दाक्षिण्यता लाज थी नान कह्यो नियम लीधो जतिये रात्रिभोजन नादेखता दोष, देखाड्या लिहु लोके प्रतिबोध कहे यत ;मेधापिपिलिकाहंति यूका कुर्याज्जलोदरं कुरुते मक्षिकावांत कुष्ठरोगश्च कोलिकः १ कण्टको दारुखण्डश्च वितनो तिगलव्यथा व्यजना

तन्निपतित श्लविध्यति वृथीक २ गतिस्स विगले वालेखर भञ्जाय जायते इत्यादयो दृष्टिदोषा सर्वेषां निशभोजने २ रात्रि जीमता जेहना पेट मांकोडी
जायती बुद्धिजायें जो बोरनो कांटी अथ वावी जोइ दारुषंड कांटी जीमणमाहे आवेतो गले वृथा करे व्यंजन सालणा माहे वीछुनीलोरी आवे तो
तालुओ वीधे वालकेश जीमणमाहे आवेतो स्वरभंग थाई इम अनेक रात्रि भोजन नास गला दोठा दोषजाणवा अने जो रात्रि भोजन करे तो
अवस्य राध्यो जोइये तिहां अंधारे अनेक जीवांनो विनाश हुवे एह भणी धर्मयतने सर्वथा रात्रि भोजन न करवो वलो शास्त्रमे कह्यो छे यत: उलुक
काक मार्जार गृध्रसंवरशूकरा अहिवृश्चिकगोधाश्च जायते रात्रिभोजनात् १ इम शास्त्रोक्त प्रकारे रात्रिना घणा दोष कहिने वेभाईयाने नियमने विषे
दृढचित्तकीना रात्रिभोजनानो नियमलीधो साधु वीहार करी चाल्या जतीनी सेवा करी आपणपुभलु मानता छे एहवे एक वारतो चोर धाडे गया
हुता गांम भाजो गाई भे सढोर घणा आण्या ते पाछा आवता विचाले महिष विणासवा मांड्यो तेहनो मांसीय केइलेवा लागा केतला एकपुरुष तिहां
रह्या केतला एकमद्य लेवाने ग्राम माहि गया हिवे मांसने केलवणहारे एहवोचिंतव्यो अर्धमांसमाहे विषघातो ग्राम मांहिला जांणणहारने दोजे एतो
मरे आपणे भागे घणाढोर आवे ते दुष्टबुद्धितिम भवितव्यताना वशि थी गांव मांहिले जावणहारे लोभ थी एवी पापबुद्धिकीवी आपण अर्धमद्य मांहि
विषघातीये आपणे नेढो रव हुत आवे एहवो वीमासोवीष घाल्यो जेहवे चोर सगला एकठा मील्या एहवे सूर्य आथम्यो तिवारे ते वेभाई चोरे नायक
गुरुनी दोधी आखडी रात्रि भोजन नोनेम सभारी भांजवाना भय थी अलगो जइवेठातेन जोम्या जे जीम्या ते विषना प्रयोग थी सार्थसर्वमरण पाम्या
ते सगला कुगति पहुता तेवे भाइने गुरुनी दोधी आखडी उपरि अतिही भाव उपनो गुरु कने नियम लोधो ते जीवता रह्या कुसले घरे आव्या सुखो
थया जीव चोरे रसेंद्री दमी ते सुखीया थया तिम पोतानी इंद्रीदम्या सुखी थाई इति चोर कथा: ॥१॥ वरं मे अप्पादंतोए उपर सिवानकहाथीनीकथा

लिखोयेछे जोम हायोइ पोतानिद्रद्रोइ जोतो तिम जोतोये एक भटवो माहे हाथोयानो यूथ रहेछे ते यूथनो धणी महाविप थो नान्हा जन्म जातहाथी
याने मारे हथिणोने उगारे मनमाहे चितवे रखेए मोटा थाये मुझने मारे माहरा यूथनाथथइ वैसे एहवा भय थी नान्हा२ कालभविणसे यत सव्व
गोवगविगसणाश्रो अगडण विगडणीउय कासोर जतीसोड पुत्ताय पोयाकणयकेउ१ कनककेतुराजा आपणा बेटाना सर्व अगोपगच्छे दावी अनेक
प्रकारनी वेदना कोधी नाक कान छेदावो पगहायनो आंगुलो छेदी राजलक्षणा भणो बेटाने वध्या हुता माहरो राज्य लेसी इणे अभिप्राय जिमतेणे
राजाइ राज्य वांछतो जातमात्र विगत कोधा तिम तेणे हायोइ आपणा बालकने विणसे एहवे एकदा कोई हथणोइ गर्भधणो त्यारे तिणे
हथणोइ जाण्यो माहरे गर्भने जन्महायोनो होस्ये एवडु हाथो विणासस्ये तेभणो कोणहोक उपाये हथणो गर्भराखवा भणी पग दूखनो मीसकरो
हलुवे२ यूथ थो पाछलो हाडे किणरे एक दोने मावो मोले किवारे वेदोहाडे मिले इम करो तिण हथणोये हाथोयो जन्मो तेहवे तोण हथणोयेताप
साश्रमनिर्जन जाणोगुप्तथानक वसजालमाहे हाथीयोजन्मो तेहवे तिण हथणोये तापसाश्रमनिर्जनजाणो तोमहाथो पिण सुख भरी हमनो मूले
पांणोनामे तेभणो तेतापसासोचानिक नाम दोधो तेवय प्राप्ते सवलहायो थयो केतले काले तेणे हायो पिताने यूथसहित दोठो मायने पूछो मायेसकल
हत्तात कह्यो ते समाचारपुछो मनमांहिरोस धरो सिचानके आपसे पिताने हणिनेयूथनोधणोथयो सर्वहथणोयाने आणमनावोपिणमनमांहिरोस राख्यु
जेवलो एणे आयमे हथणो फेरप्रसवसो तापसराखस्ये तो मुझने मारस्ये एहवोविचारो तापसाश्रमविणास स्यू केतलाएकराख्या वैर कारोथइमोठानीपरे
ठामने विणासे ते तापस महादूखोया थया फलफूल लेइन सके तिवारे जाण्या ए कुपावे माइ करे ते भणी फल लेइ राजा श्रेणिक पासे आव्या राजा
ने कह्यो हे राजा न सर्वलक्षणोपि सिचानकनामे हाथो ते आणीनेस्तंभे वधो जोम अमेसुखे रहीये राजाये आणीयारतंभे वाध्यो तिवारे तेतापसहसिवा

लागा किमवयरकरस्यो हे हस्ती राजा ताहरो वल किहां गयो ते गवीतनो फलपाम्यो एवचनसाभली कांवीने रोस चढ्यो आलान भांजसांकलतोटता पसाने पूठे धायो तापसना आश्रम विणास्या सगलाइ तापस हत प्रहत कीधा वली राजा श्रेणिक तिमज पकडावाना उपाय कग्या पिणहाथी वसिनावे तेणे प्रस्तावे तेणे राज्यनो गोत्रआदेवो तेणे आवो हाथो समझाव्यु पछो हस्ती राजा गजगतिनाथालणहार सर्वलक्षण सपूर्ण सांभलो रायने म्युं माहा करेछे पूर्व भवयंभारो चपा एहवे नामे नगर वसु नामे विप्र ते महाधनवंत नित्य सहस्र भोजन करे अने वरस प्रतियाग करावे तेहवे जालवनाएकार राख्यो जे उगरता भात पाणी लेजे अने महीने रूपोयोद्रमते धरती समारे ब्राह्मण जोमे तिहांख्वानमंजार आवता वारे पिण ते धनदेव श्रावक छे तेणे कह्यो पात्र दान दीधे इस लाभे छे वसु कहे ब्राह्मण ते पात्र धनदेव कहे पात्र ते साध वसु न माने तो धनदेव साधूने आपणे घरे तेडो भातपांणी पड लाभ्या तेहना पुण्य थी मरो धनदतनो जीव श्रेणिकने घरे नंदा राणीनो पुत्र नन्दखेण थयो ते दानफल भोगवेछे सुपात्रनो फल थोडोइ अनन्त गुण थया अने तेहने वसु घणो हो दीधो पिण अज्ञानमा वस थो मिचानकछा यो थयो ते सम्बन्ध सांभलो जातोस्मरण उपनो आपदासे भलो विवेक उपनो आपणपे जिहां रायनो हस्तिशाला छे तिहां आवोउभो रह्यो प्रभाति सभे राजायें हाथो आव्यो सांभलीने वधाव्यो अनेक महलोक करी पाट हस्ती थाप्यो एकदा प्रस्तावे हार विहल कोणिकने विरोधेंनासो सिचानिक लेई यिशालाइं गया वेडे महाराये राख्या कोणिके विशाला जोटी मनुष्य कोडी मरण पामि पिण विशालाइं लेवाइं नही नित्य सिंचानकके चढो रातो वाट दीये कोणिकना कटक मधी म पडे अने १३ सहस्र हाथी सणा मद गलित थाये कोणिक राजा अनेक उपाय कर्या पिण हाथी वसिनावे जे कुडे लेठे मर्ये प्राण करो जाये तिवारे ते उपाय सर्वेनिकम थाये कोणिकनो कटक दहिनी परे विलीयो तिवारे कोणिके कह्यो जे कोई हाथोने तेहने मारे तेहने लक्ष सुवर्ण आपु तिवारे एकमनसुभटवा भणी एकामइं करिष्यु इम

भात्मा पञ्चेन्द्रियरूप साधुमार्गे नेतव्य यथा दुर्विनीतो भश्वो हयभोवा उन्मार्गात् भाजनके न तीव्र काष्ठेन मार्गे नीयते तथा यमात्मा पौत्वर्थ पुनर्मनसि एव चिन्तयेत् मइपरै भन्यलोकैर्बन्धनै भङ्कुशादिभि पुनर्वधैर्मकुट्य कुशचपेटा भाजनकादिभिर्दमितो मा भवेय यदा भन्ये मम ताडना तर्जनादिभिर्दमन करिष्यन्ति तदा मम श्रेयो नास्ति यदुक्त सइकलेवर खेदम चिन्तयन् स्ववशताहि पुनस्तव दुर्लभा बहुतरच सहि षसि जोवरे परवशेन च तत्र गुणोस्तिते इत्यादि चिन्तया भात्मा दमीकर्त्तव्य १६ भत्र सिञ्चानक दृष्टान्त एकस्या भटव्या महत्तरं गजयूथ वसति यूथाधिपतिजात कलभक विनाशयति भन्यदा तत्र एका करिणी स्वगर्भिणी जाता एवं चिन्तयति यदा कथमपि गजबालको जायते तदा भनेन विनाश्यते तत सा करिणी यूथादपसरति यावता यूथाधिपतिना यूथ मवलोक्यते तावता द्वितीये तृतीये दिवसे सा यूथमध्ये गत्वा मिलति एवं कुर्वत्या तयाऽन्यदा कल्याणमपद दृष्टं सा तत्र भागता शुभ स्थाने प्रसूता गजकलभोजात स गज कुमारै सह भारामान् सिञ्चति तत स्तापसैस्तस्य सेचनक इति नाम कृत स वय स्थो जात भमन्ता यूथाधिपति दृष्टानवोदित बल समारितवान् स्वयं यूथाधिपतिर्जात तापसा भम मपि समूल विनाशितवान् मन्मातेवाऽन्या करिणी भन्य प्रच्छन्न मातिष्ठतु इतिविचारितवाय ततस्ते कष्टा भटमय पुष्प फलपूर्ण हस्ता श्रेणिक राज्ञ पार्श्वगता कथितवन्ते सर्व लक्षण सम्पूर्णोहस्ती सेचनक नामा वने तिष्ठति तत श्रेणिकेन स्वय तद्वने गत्वा महता बलेन गृहीत्वा भानीय स भालानस्तम्भे बद्ध कतिपयै स्तत्रागत्येतिनिर्भर्त्सित गजराजकतं शौण्डीर्यं गत प्राप्त त्वयाऽस्मद विनय फल इति श्रुत्वा स गज प्रकाम रुष्ट स्तम्भं भक्त्वा तेषा पृष्ठौ धावित ते सञ्जहत प्रहता जाता प्रासोटया भग्ना पुनरपि तेषामाज्ञया पुन श्रेणिक तद्गज ग्रहणाय गत पूर्व भवसङ्गत देवेन गजस्योक्त वत्सपरेभ्यो दमनात् स्वय दमन वरमिति तद्वच श्रुत्वा स्वयमागत्यालानस्तम्भमाश्रित यथाहि यस्य स्वय दमनाद्गुणो जात तथा

ऽन्येषा मपीति पडिणीयञ्च बुद्दाण वाया अदुव कम्मुणा आवी वा जइ वा रहस्से नेव कुज्जा कयाइवि १७ अथ पुनर्विनय शिक्षामाह ॥ च पुनर्बुद्दानां आचार्याणां प्रत्यनीकं प्रतुभावं वाचा वचनेन क्षत्वा न कुर्यात् त्वं किं जानासि इत्यादि रूपेण निर्भर्त्सनां न कुर्यात् अथवा कर्मणा क्रियया संस्तारको लङ्घनेन चरणादिना सङ्घट्टेन अविनयं न कर्यात् तदपि आवी इति लोकसमक्षं यदिवारहस्यं एकान्ते कदापि सुशिष्यो गुरुभिः सह

सूत्र

वट्टेहिय ॥१६॥ पडिणीयंच बुद्धाणं वाया अदुव कम्मुणा । आवीवा जइवा रहस्से नेवकुज्जा कयाइवि ॥१७॥ न

भाषा

कहि बीडो लीधो हाथीने अरथे अनेक पास मांड्या कण्टकगर्त्ता विषमिश्र फलवाणी त्रिणकोधा पिण ते सर्व विफल नित्य हल्लविहल्ल उपद्रव कटक माहि करे तिवारे तेणेपुरुषेंप्रच्छन्न खाई खणावी ते मांहि अग्निभरि ऊपरि सिचत्रणपाथर्या तिणे करी कोई न जाणे एकंदिननाल यंत्र राख्या एक दिशि सिह राख्या एक दिसि मनुष्य हुसीयार रहे एहवे सबलबल हुई हल्लविहल्ल दोनु भाई सिचानक चढी पूर्ववैर कटकमाहे आव्या तेणे समे हाथी पूरवदिसी कधी जाणीपगन उपाडे तिवारे अंकुस हाथी ठेले पिण हाथी न चाले तिवारे हल्ल कहे अहो हाथी सिचानक अमने इण वेला तूपिण छे हर्यो छे तो कुण भलो थासी एहवो सांभलि हाथी चिंतव्यो ए अज्ञान थका न जाणे तिवारे वचन संभार्या अप्पाचेवदमेअव्वो आपणो आत्मा दमीजे परने दमीये स्यू थाई अभीमाननावसथी हल्लविहल्ल भाईने उतारी पोते अग्नि माहे झंप्यो मरीने देवगति पामि हल्लविहल्ले अतिदुःख कीधो वयरागे महावीरस्वामी पासे दीक्षा लीधी सुख पाम्या इम आपणो आत्मा दम्या गरज सरे इति सिचानक कथा संपूर्णम् ॥१॥ प०प्रत्यनीक पणो वैरीपणो बु० गुरुनो वा० वचने करी गुरुने शिष्य इम कहे ते मुझने विपरीत अर्थ कह्यो अ० अथवा गुरुनो संथारादिक चांपे ते कार्ये करी प्रत्यनीक पणो हुइ प्रगट लोक देखता ज० जो वा० अथवा र० एकान्ते गुरुनो विपरीत पणो ने० नरके क० कठिन वचने करीने सीखामणदेतापिण १७ न० गुरुने समीपे समीपंक्तिन बेसे

उ०टीका अ १ २८

गत्‌भाव न कुर्यादित्यर्थं अथोरपि गुणायाज्ञा दीयाबाध्य गुरोरपि इति कुमति निरासार्थं कदापि नैव शब्दस्य ग्रहण १७ न पक्खओ नपुरओनेव किञ्चाण पिट्ठओ न जुञ्जे ऊरुणाऊरु सयणेनोपरिस्सुणे १८ यथा सनस्य विधिमाह। विनीत साधु प्रयतो न निषिदेत् पत्ति स० भाविशात् गुरुणा सहस मानत्व स्यात् तस्माद्गुरोर्बाहुनासह बाहु कृत्वा न तिष्टेत् पुनर्गुरूणां पुरतोऽग्रतोपि न निषीदेत् वन्दना कुर्वत पुरुषस्य गुरूणां मुखावलोकन न स्यात् क्षयाना आचार्याणा पृष्टतोपि न स्यातव्य गुरुशिष्ययो उभयोरपि मुखादर्शनेन तथा विध रसवलाभाव स्यात् न च पुनर्गुरूणां ऊरुणा ऊरुयासह ऊरुजङ्घां युञ्जीत् सघट्टयेत् अत्यासन्नात् अविनय स्यात् पुन शिष्यो गुरूणां वचन शयनेशय्याया शयान सन् आसोनोवान प्रति शृणुयात् गुरुभिरुक्ते सति शय्याया स्थिते नैव शिष्ये च एव कुर्म इति न मन्तव्य किन्तु गुरुणा समीपे आगत्य वचन श्रोतव्य इत्यर्थ १८ नेव पल्हत्थिय कुज्जा पक्खपिण्डव संजये पाए पसारिए वावि नचिट्ठे गुरुणन्तिए १९ पुनरासन विधिमाह शिष्य गुरो समीपे पर्यस्तिकानैव कुर्यात् जङ्घो परिपादमोचन न विधतीत च पुन पक्खपिण्ड जानु जङ्घोपरि वस्त्र वेष्टनात्मिका योगपट्टाश्रयिका अथवा बाहुद्वये नैवकाय बधात्मिका गुरुणा पार्श्वेन कुर्यात् वा शब्द पुनरर्थे पुनर्गुरुणा अन्तिके

सूत्र

पवक्खओ न पुरओ नेव किञ्चाण पिट्ठओ। न जु जे ऊरुणा ऊरु सयणे नो पडिस्सुणे ॥१८॥ नेव पल्हत्थिय कुज्जा पक्खपिण्डव संजए। पाए पसारिए वावि न चिट्ठे गुरुणन्तिए ॥१९॥ आयरिएहि वाहित्तो तुसिणीओ न कयाइवि।

भाषा

प० गुरुने आगलिन बैसे ने० निषेधार्थं कि० आचार्यने पि० पूठे न बैसे न० सघट्टो नकरे ऊ० पोतानो साथले करि ऊ० गुरुसाथलने स० सथारादिकने विषे बैठो थको गुरुने उत्तर न दिये १८ ने० ने गुरुने समीपे वस्त्रमी पालठीवालोने कु० न बैसे प० बाहुनो पालठीवालीने पिण नबैसे सयतीद साधु

सम्मुखं या पादौ प्रसार्य न तिष्ठेत् २० आयरिएहिं वा हितो तुसिणोओ न कया इवि पसायपेहोनियागट्ठी उव चिट्ठे गुरुं सया २० पुनः सुशिष्यः आचार्यैर्गुरुभि र्व्याहृत आहूतः सन् तुष्णीको न भवेत् अत कदापि अब्दोग्लानाद्यवस्थायां अपि गुरुभि रामंत्रितः अन्नौ सत्यां मौनं कृत्वाश्रुतमश्रुत न कुर्यादित्यर्थः कथं भूतः सुशिष्यः प्रसादप्रेक्षो प्रसादं गुरुणां स्नेहं प्रेक्षेत् शीलं यस्यसः प्रसाद प्रेक्षीयतः अन्येषु शिष्येषु सत्सु गुरवो मां शब्दयन्ति ततो मम महद्भाग्यमिति मनसि चिन्तयति पुनः कथ भूतः सुशिष्यः नियागट्ठी मोक्षार्थी विनतस्य मोक्षकारणत्वात् सुशिष्यः अनेन विधिनागुरुं सदा उपतिष्ठेत् सेवेत २० पुन र्विनयशिक्षां वदति आलवन्ते लवन्ते वा न निसीइज्ज कयाइवि चइऊण आसणं धीरो जओ जुत्तं पडिस्सुणे २१ धीरो बुद्धि मान् यती यत्नवान् सन् शिष्यो यद्विधेयं कार्यं गुरुभि रुपदिष्टं तत्कार्यं प्रतिशृणुयात् अङ्गी कुर्यात् पूर्वं गुरौ आलपति सति ईषत् वदति सति अथवा गुरौ लपति सति वारं २ कथयति सति सुशिष्यो न निषीदेत् गुरुणा कार्ये उक्ते सति आसनं स्वस्थानन्तत्काधीरोधैर्यवान् यत्नेन एकाग्रचित्तेन यत् गुरुणा कार्यं उक्तं भवेत् तत्कार्यं अङ्गी कुर्यात् इत्यर्थः २१ आसणगओ न पुच्छेज्जा नेवसिज्जा गओ कया आगम्मुक्कुडुओ सन्तो पुच्छिज्जा पञ्जली उडो २२ आसने गतः स्वस्थाने स्थित एव सुशिष्यो गुरुं प्रति सूत्रार्थादिकं न पृच्छेत् तथा पुनः शिज्जाङ्गतो रोगाद्युपद्रवं विना कदापि शयानः

सूत्र

पसाय पेही नियागट्ठी उवचिट्ठे गुरुं सया ॥२०॥ आलवंते लवंतेवा ननिसिज्ज कयाइवि। चइऊण आसणं धीरो

भाषा

प० पगलाबा पसारिने विणम बेसेवा० अथवा न० इमनरहे गुरुने १९ समीपे आ० गुरुने एकने वा० बोलव्यो थको तु० मण बोल्यो न० रहे क० कदाचित् रोगावस्थाइ पणि प० प्रसाद कीधो मुझ ऊपरें पे० उ० इम जाणी नि० मोक्षार्थी थको इम रहे गु० गुरुने समीपे स० सदा कालने २० आ० गुरुने एकवार बोलायो अथवा ल० वारंवार बोलाव्यो थको न० बेसी रहे क० कदाचित् व्याख्याना दिव्याकुल थयो च० मुकीने आ० आसण धी० बुद्धि

उ॰टीका
अ १
२१

सूत्रादिक न पृच्छेत् तर्हि किं कुर्यादित्याह गुरो समीपं आगत्य उत्कुटको मुक्तासन आरणत पाद पुञ्छनादिस्थ सन् शय्यो वा प्राञ्जलिर्बद्धाञ्जलि सूत्रार्थादिकं पृच्छेत् २२ एवं विणय जुत्तस्स सुत्तं अत्थच तदुभय पुच्छमाणस्सी सस्स वा गरिज्जाजहासुय २३ आचार्य एवं अमुना प्रकारेण विनययुक्तस्य शिष्यस्य सूत्र अर्थंच तत् उभय सूत्राथ पृच्छमानस्य उभय पूर्वोक्त सूत्रार्थं व्याकुर्यात् वदेत् विनयवत शिष्यस्याधे यथा कृत गुरु पर म्परातो यथाश्रुत सूत्राथ गुरु कथयेत् इत्यर्थं २३ मुसं परिहरे भिक्खू नयउ हारिणि वए भासादोस परिहरे मायच वज्जए सया २४ भिक्खु

सूत्र

जभो जुत्त पडिस्सुणे ॥२१॥ आसणगओ नपुच्छेज्जा नेवसेज्जागओ कयाइवि। आगम्मु क्कडुओ सतो पुच्छेज्जा पजली उडो ॥२२॥ एव विणय जुत्तस्स सुत्त अत्थं च तदुभय। पुच्छमाणस्स सीसस्स वागरेज्ज जहा सुय ॥२३॥ मुस परिहरे भिक्खू नय ओहारिणि वए। भासा दोस परिहरे मायच वज्जए सया ॥२४॥ नलवेज्ज पुट्ठो सावज्ज

भाषा

यंत ज जे कोइ गुरु आदेश दीये ते आदर पर थको प॰ करे २१ आ॰ पोताने आसण बेठो न॰ न पूछे गुरुने सूत्रादिक कांई एवा ने॰ सथारे बेठो न पूछे कदाचित् बहु श्रुतिपणो आ॰ गुरुनेड़ समीपे आवीने उ॰ उकडु थयो छे पु॰ पूछे सूत्रादिक प॰ बेहाथ जोडीने २२ ए॰एणी परे वि॰ विनयवंत शिष्यने सु॰ सूत्र अने अ॰ अर्थ त तेबिन्हे पु॰ सूत्रार्थं पूछता थका सि॰ विनीतशिष्यने वा॰ सूत्रार्थ कहे ज॰ जिम गुरु समीपे सांभल्यो हु तो तिमज २३ वली विनीत शिष्यने वचन विनय कहे छे मु॰ मृषा प॰ वर्जे भि॰ साधु न॰ निश्चे करी भाषा वा॰ न बोले भा॰ भाषाना दो॰ दोष प॰ परिहरे मा॰ माया पं शब्द थको क्रोधादिक व॰ वर्जे स॰ सदाई २४ न॰ वोले पु॰ पूछ्यो थको सा॰ सावद्य न॰ निरर्थक प्रयोजन विना न बोले पर नो मर्म न

उ०टीका अ०१ ३२

साधुर्मृषा भाषां परिहरेत् च पुन: ओहारिणिं अवधारिणीं निश्चयात्मिकां एवं एवेति रूपां भाषां न ब्रुवीत भाषादोषं सावद्यानुमोदनादिकं परिहरेत् च पुनर्मायां वर्जयेत् एकस्या मायायाग्रहणेन अन्येषामपि क्रोधमान लोभादीनां ग्रहण सर्वान् कषायान् परिवर्जयेत् कषायाणां वर्जनात् मृषा भाषाया: वर्जनं स्यादेव कारणाभावे कार्याभाव: २४ नलवेज्ज पुट्ठो सावज्जं न निरट्ठं न मम्मयं अप्पणट्ठा परट्ठा वा उभयस्सन्तरेण वा २५ पुन: साधु पृष्ट: सन् सावद्यं स पापवचन नलपेत् न भाषेत निरर्थकं वचनञ्च न आलपेत् न च मर्मकं मर्मरूपं साधुर्न ब्रूयात् म्रियतेऽनेनेति मर्म लोक राजविरुद्धादिकं अथवा मर्मणि गच्छतीति मर्मगं यस्मिन् कर्मणि प्रकटीभूते सति मनुष्यस्य मरणमेवस्यात् तदपिवाक्यं आत्मार्थं वाऽथ वा परार्थं वाऽथवा उभयार्थं अथवा अन्तरेण प्रयोजनं विनापि च न वदेत् इत्यर्थ: २५ स्वगत दोषत्यागं उक्त्वा उपाधि कृतदोषत्यागमाह समरेसु अगारेसु सन्धीसुय महापहे एगीए गत्थिए सिद्धिंनेव चिट्ठे न संलवे २६ एतेषु स्थानेषु एक: एकाकी सन् साधुरेकाकिन्या स्त्रिया सार्धं न तिष्ठेत् न च एकाकी साधुरेकया कामिन्या सहसं लपेत् तानि कानि स्थानानि समरेषु गर्दभकुटीरेषु लोहकारशालासु वा तथाऽगारेषु शून्यगृहेषु तथा सन्धिषु गृहद्वया न्तरालेषु तथा महापथेषु राजमार्गेषु अत्र एकस्याग्रहण अत्यन्त दुष्टत्व प्रतिपादनार्थं २६ जं मे बुद्धाणुसासन्ति सीएण फरुसेण वा ममलाभुत्तिपेहाए पयओत पडिस्सुणे २७ अथ गुरुभि: शिक्षार्थं शिष्यमाण: शिष्य: किं कुर्यादित्याह बुद्धा गुरव: यत् मे ममसीतेन सीतलवचनेन वाऽथवा परुषेण

सूत्र

ननिरट्ठं नमम्मयं । अप्पणट्ठा परट्ठावा उभयस्संतरेणवा ॥२५॥ समरेसु अगारेसु संधीसुय महापहे । एगोएगि

भाषा

बोले अ० आपणा आत्मा अर्थे वा० अथवा प० पर आत्माने अर्थे उ० अर्थ विना निरर्थक अने परनो मर्म न बोले २५ स० लोहार प्रमुखनी शालाने विषे अ० सूना घरने विषे सं० वेघर विषे जे आंतरं हुइ ते संधि हुवे म० राजमार्गने विषे ए० एकलो साधु ए० एकला स्त्रीसंघाते ने० न

उ०टीका अ०१ ३३

कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षां प्रयच्छन्ति तत् ममलाभुक्ति ममलाभाय अप्राप्तवस्तु प्राप्तये भविष्यति इति प्रेक्षया इति बुद्ध्वा प्रयत प्रयत्नवान् सन् शिष्यो गुरुवचन प्रतिशृणुयात् अङ्गी कुर्यात् न च गुरूणां कठोरवाक्यात् क्रोध कुर्यात् २७ अणुसासणमोवाय दुक्कडस्साय चोयण हियन्त मन्नइपन्नो वेस होइ असाहुणो २८ पवक्ति प्रज्ञावान् प्राज्ञ शिष्य उपाये मृदुपरुषणादी भव औपाय गुरुशिक्षावाक्य तथा च पुन दुःकृतस्य प्रेरण वा किमिद दुष्ट कर्मकृत इत्यादिरूप तद्वचन हित इहलोक परलोक सुखद मनुते असाहुणोऽसाधो कुशिष्यस्य तत् गुरूणा परुषवाक्य द्वेष द्वेषोत्पादक भवति २८ इममेवार्थं पुनर्दृढो करोति। हिय विगय भया बुद्धाफरुसपि अणुसासण वेसत होइ मूढाण खतिसोहि कर पय २८ विगतभया सप्तभय रहिता बुद्धा ज्ञाततत्त्वा एतादृशा शिष्या आचार्यं कृत अनुशासन परुष अपि कठोरमपि हित मन्वते मूढाना मूर्खाणा कुशिष्याणा चान्ति क्षमाकर शोधि

सूत्र

त्थिए संचि नेव चिट्ठे न सलवे ॥२६॥ अमे बुद्धाणु सासति सीएण फरु सेणवा। ममलाभोत्ति पेहाए पयओत्त पडिस्सुणे ॥२७॥ अणुसासण मोवाय दुक्कडस्साय चोयण। हिय त मन्नई पन्नोवेसहोइ असाहुणो ॥२८॥ हियविगय

भाषा

रहे जभो न० बोले नही २६ ज जेम० मुझने गुरु अ० ज्ञानादि आचार सीखवे सी० सकोमल वचने करी वा अथवा क० कठिन वचने करी शीख दीये छे म० माहरे लाभने अर्थे दोइ छे पे० एहवो बुद्धि करो प० आदर पर थको प० गुरुनी शीख प्रमाण करे २७ अ० गुरुनी सीखमी० सुकुमाल कठिन भाषाये उपाये करो दु० भूंडो काइक आचर्या पछी चो० तेहने सीखनी देवी चो० प्रेरवो हि० हितकारी त० तगुरुनी सीख म माने प० प्रज्ञा वत वे० द्वेष हो० थाइ अ० साधु अविनीत मूर्खने सीख देता २८ हि हितकारी माने विजे साधु सात भय रहित हुइ बु० तत्वना जाण हुइ फ०

५

कार आत्मशुद्धे कृत्यादक पुनः पदं ज्ञानादिस्थान एतादृश गुरूणा शिक्षावचनं हेयं हेयंतिक भवति २८ आसणे उवचिट्ठेज्जा अणुच्चे अकुए थिरे अप्पु
ट्ठाई निरुट्ठाई निसीएज्ज अप्पकुक्कुए ३० सुशिष्यः एतादृशे आसने उपतिष्टेत् कोदृशे आसने तदाह अनुच्चे द्रव्येण भावेन अनुच्चे गुरोरासनात् हीने
पुनः अकुचे चोत्कारादि शब्दरहिते तादृशस्य आसनस्य अप्रागङ्गत्वात् पुनः स्थिरे आसने समपादे तिष्ठेत् अत्र स साधुरीदृशे आसने कीदृशः सन् तिष्टे
त्तदाह अल्पोत्थायी कार्ये सत्यपि अल्प मुत्तिष्ठतीत्येव शीलोऽल्पोत्थायी मुहुर्मुहु रासनान्न उत्तिष्ठेत् पुनः कोदृशो निरुत्थायी निमित्त विनानोत्तिष्ठेत्
स्थिर तिष्ठेत् इत्यर्थः पुनः पुनरुत्थान शीलस्य साधुत्वं न भवेत् पुन स साधुकीदृशो भवेत् अल्प कुक्कुचो भवेत् हस्तापादशिरः प्रमुख शरीरावयवान्
अधुन्वानो निश्चलस्तिष्ठेत् इत्यर्थः ३० चरणे विनयरूपामेषणामाह कालेण निक्खमे भिक्खू कालेणय पडिक्कमे अकालञ्च विवज्जित्ता काले कालं समा

भया बुद्धा फरुसंपि अणुसासणं। वेसंतं होइ मूढाणं खंति सोहि करं पयं ॥२८॥ आसणे उवचिट्ठेज्जा अणुच्चे
अकुए थिरे। अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई निसीएज्ज अप्पकुक्कुए ॥३०॥ कालेण निक्खमे भिक्खू कालेणय पडिक्कमे। अकालंच •

कठिन पिण अ० सीख देतां हितकारी माने वे० द्वेष कारणी त० तेसीज हो० थाय मू० मूर्खने खं० क्षमा सो० शोधि कारी प० पदं ज्ञानादि गुरुनो स्थानक २८ आ० प्र० पाट प्रमुख आसणने विषे से अ० गुरुना आसण थ० शब्द करता ते थि० निश्चल आसणने विषे बेसे अ० प्रयोजने पिण थोडो उठे नि० प्रयोजन विना न उठे न बेसे अ० अणहलावतो वको थाय ३० निपे विनित शिष्यने एषणासमिति कहे छे का० कालवेलाइ भिक्षाने अर्थे नि० जाइ गोचरी भि० साधु का० कालवेलाइ करीप० गोचरी थी पाछो आवे तो ओपरिमोद उपाश्रय पाछे व पुनः वलि प० अकालव० वर्जीने

उ टीका अ १ २५

यरे २१ काने प्रस्तावे भिनु साधुर्निक्रमेत् भिचाय निगच्छेत् च पुन काने एव प्रतिक्रमेत् आहार ग्टहीला स्वस्थानाय पश्चाद्रा गच्छेत् अकाल अप्रस्ताव विशेषेण वर्जयिला क्रियाया असमयस्त्यक्ला काले क्रिया योग्य प्रस्तावे एव काल तत्समय योग्य क्रियासमूह समाचरेत् कुर्यात् ३२ परिवाडीए न चिट्ठेज्जा भिक्खू इत्तेसणचरे पडिरूवेणएसित्ता मियकालेण भक्खए ३१ भिनु साधु परिपाव्या ग्टहस्थ ग्टहे जीमन वारादी भोजनस्थित पुरुषाणा पङ्क्ती न तिष्ठेत् तत्र भिची अप्रीतिग्रहादि दोष सम्भवात् पुनर्भिनु साधु दत्ते दाने ग्टहस्थेन दीयमाने आहारदाने एषणाश्चरेत् आहारदोष विलोकन कुर्यात् न तु जिह्वालोल्येन स दोषाहार ग्टह्णीयात् तत् शुद्ध आहार प्रतिरूपेण सुविहित प्राचीन मुनीनां रूपेण यथा पूर्वाचार्यैस्थविरकल्पै साधुभि पात्रे आहार निर्दोष ग्टहीत तथा ग्टहीला तदपि आहार मित स्तोक स्व कुक्षि पूर्त्तिमात्र ग्टहीतव्य अमितभोजने बहुदोष सम्भवात् एव विधिनाहार आनीय कालेन नमस्कारपूर्वक प्रत्याख्यान पारण समयेन सिद्धान्तोक्त विधिना भक्षयेत आहार कुर्यात् इत्यर्थं ३२ पुनर्ग्टहस्य ग्टहे

सूत्र

विवज्जेत्ता काले काल समायरे ॥३१॥ परिवाडिए न चिट्ठेज्जा भिक्खू दत्तं सणचरे। पडिरूवेण एसित्ता मिय का लेण भक्खए ॥३२॥ नाइदूर मणासन्ने नन्नेसि चक्खुफासओ। एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा लंघित्ता त नइक्कमे ॥३३॥ नाइ

भाषा

का० क्रियाने अवसरे का० जे अनुष्ठान जेथिवे ताइ करिवो छे स० समाचारे ३१ प० जीमवा पात बैठी हुइ तिहाऊभो न रहे ते भिचुने अर्थे भि साधु प० दातारनो दोष ए० निर्दोष आहार लेवानो एषणाने विषे च विचरे प० साधने वेसे म भिचागवेषिने मि० मात्राइ का० प्रस्तावे सिद्धा न्तोक्तविध जिम छे तिम भ० जिमे ३२ ना भिचाचर ऊभो होइ तिहा अतिदूर ऊभान रहे अतिढू कडो ऊभो न रहे न भिखारीनो तथा ग्टहस्थ

ग्राहारग्रहण विधिमाह नाइ दूरमणा सन्ने नन्ने सिचक्खु फासत्रो एगो चिट्ठिज्ज भत्तट्ठा लङ्घित्तातं न इक्कमे ३३ साधुर्ग्टहस्य ग्टहेनअति दूरन्तिष्ठेत् पूर्वं समागत अपर भिक्षूणां निर्गमननिरोधसम्भवात् आहार दूषणस्य अदर्शनाच्च पुनस्तथा अनासन्नस्तिष्ठेत् आसन्ने न तिष्ठेत् अपर भिक्षूणां अप्रीति सम्भवात् पुनरन्येषां भिक्षुका पेक्षया ग्टहस्थानां चक्षुःस्पर्शतः चक्षुः स्पर्शेन तिष्ठेत् यथा अन्ये भिक्षव' ग्टहस्थस्य चक्षुः स्पर्शे तिष्ठन्ति तथा न तिष्ठेत् इत्यर्थः कथं तिष्ठेत् तदाह एकान्त प्रदेशे यथा ग्टहस्थः एवं न जानाति अयं साधुरन्यभिक्षुनिर्गमन इच्छति एवं एकः पुरा आगत भिक्षुको परि द्वेष रहितो भक्तार्थं आहारार्थं साधुः पूर्वमागतं भिक्षु लङ्घयित्वा न अतिक्रमेत् उल्लंघ्यन प्रविशेत् इत्यर्थः ३३ नाइ उच्चेव नीए वा नासन्ने नाइ दूरओ फासुयं परकडं पिण्डं पडिगाहेज्ज सञ्जए ३४ पुनराहारग्रहण विधिमाह अति उच्चैः स्थाने मालादौ आहारं न ग्टह्णीयात् आहारस्य आहारदातुर्वा पतन सम्भवात् च पुन नीचैः स्थाने मालादौ आहार न ग्टह्णीयात् तत्र च एषणाया असम्भवात् दायकस्य कष्टादिसम्भवाद्वा अथवाऽति उच्चैःसरसाहारलब्धैः अहं लब्धिमान् इत्यभिमान रहितः आहारे लब्धेः अह दीनोस्मि मह्य कोपि न ददातीति दीन बुद्धिरहितः इति भाव उच्चत्व नीचत्व रहितः न आसन्नो न अतिनिकटवर्त्ती यथायोग्यस्थानेस्थितः प्रासुकं निर्दूषणं नवकोटिविशुद्ध परकृतं ग्टहस्थेन आत्मार्थं कृत पिण्डं आहारं संयतो जितेन्द्रियः साधुः प्रतिग्टह्णीयात् ३४ अप्पपाणप्प बीयंमि पडिच्छिन्नंमि संवुडे समयं सञ्जए भुञ्जे जयं अप्परिसाडियं ३५ अथा हारकरण

सूत्र

उच्चेव नीएवा नासन्ने नाइदूरओ। फासुयं परकडं पिंडं पडिगाहेज्ज संजए ॥३४॥ अप्पपाणप्पवीयंमि पडिछन्नंमि

भाषा

नी च० दृष्टगोचरे उभो न रहे ए० रागद्वेष रहित हुइ चि० उभो रहे भ० अन्नपाणी प्रमुखने अर्थे लं० भिक्षारीने उलंघीने न० प्रवेश न करे ३३ ना० दातारथी उंचो रहोने तथा नीचो उभो रहोने भिक्षा नल्ये ना० ढूकडो उभो रहोने भिक्षा न ल्ये अतिदूर उभो रहोने भिक्षा न ल्ये का० जिव रहित

उ०टीका अ १ ३७

स्थानमाह सयत साधुरेताद्दशे स्थाने समक साधुभि समञ्जय यतमान सनुसुरसुर चव२ कस२ कुरड कुरडादि शब्द अकुर्वाण अपरिसाटित सित्थु पातने न रहित आहार भुञ्जीत कोद्दशे स्थाने अल्पप्राणे अन्या अविद्यमाना प्राणायत्र तत् अल्पप्राण तस्मिन् द्वीन्द्रियादिजीवरहिते अवस्थित आग न्तुक प्राण रहिते पुन कोद्दशे स्थाने अल्पबोजे बोजग्रहणोपलक्षणेन सर्वे केन्द्रियरहिते पुन कोद्दशे प्रतिच्छन्ने सम्पातिमसत्व जीवरक्षार्थं सहते पार्श्वत जटकुट्यादिना छादिते अन्यथारकादि दीनयाचकादीना याचने दानाभावे निन्दाया उत्पत्ते प्रद्वेष सम्भवात् दाने सति पुण्यबन्धसद्भावात् तस्माद्विरवद्यस्थाने आहार कुर्यात् ३५ अथा हारकारणप्रस्तावे वाकयतनमाह सुकडत्ति सुपक्कित्ति सुच्छिन्ने सुहडे मडे सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति सावज्ज वज्जए मुणो ३६ मुनिरेताद्दश सावद्य सपाप वचन वर्जयेत् न ब्रुवीत एताद्दश कोद्दश तदाह सुकृत इद अन्नादि पुन सुपक्व घृतपूरादि सुच्छिन्न मिद शाकादि सुहृत कारिल्लकादिस्थ कटकाल सम्यक घृत अथवा वटकादिना मगदसीरकाकसारादीना घृत सुष्टु घृत तथा पुनर्म्रत सुष्ठा दिके सुष्टुहृत मृत एतत् आहार सम्यग निष्ठां प्राप्त सरसत्व प्राप्त पुन रिद्द आहार सुलष्ट अखण्डोज्वलतण्डुल घृरित मुद्गादिनि पन्न मेतत् प्रधान भोजन इत्यादिक वचन वर्जयेत् निरवद्य तु भाषेत यथा क्रमात् सुकृत धर्मध्यानादि सुपक्व वचनविज्ञानादि सुष्टुच्छिन्न स्नेहपाशादि सुष्टुहृत

सूत्र

सवुडे समय सजए भुजे जय अप्परि साडिय ॥३५॥ सुकडेत्ति सुपक्कत्ति सुच्छिन्ने सुहडे मडे। सुनिट्ठिए सुलट्ठेत्ति

भाषा

अचित्त प परने अयनोपायी हुवे पि० आहारने अथे प० ग्रहण करे स० सयतीण ३४ वे इन्द्रीयादिक जीव रहित प० बीजरहित एहवा स्थानकने विषे प० ऊपर ढाक्यो हुइ स० बिहु पासे कवाडादिके करी ढाक्या हुवे स० आपणा आचार सरीषा आचारवत बीजा साधु सहित स० सजती जीमे ज० जयणाइ अ० अणनांपतो जीमे ३५ भलो कोधोए अन्नादिक सु० ए भलापकायाए घेवरादि सु० भलो छेद्याशाक पत्रादिक सु० भलो हग्यो क्षपणनो धन

मिथ्यात्वादि सुष्टुमतं पण्डितमरणेन सुनिष्ठितं साध्वाचारे सुलब्धं व्रतग्रहण इत्यादि निरवद्यं वचनं ब्रूयादित्यर्थः ३६ रमए पण्डिए सासं हयं भद्दं व वाहए वालं समइ सासन्तो गलियस्सं व वाहए ३७ अत्र गुरुरिति कर्तृपदं अनुक्तं अपि गृहीतव्यं गुरुः पण्डितान् विनीतशिष्यान् शासत् शिष्यां ददत् पाठयन् रमते रतिमान् स्यात् प्रसन्नो भवेदित्यर्थः कइव वाहक इव अश्ववारः भद्रं सुशिक्षितं हयं वाहयन् खेलयन् रमते हर्षितो भवेत् वालं मूर्खं शिष्यं शासत् आचार्यः श्राम्यति श्रमं प्राप्नोति क कइव गल्यश्वं दुर्विनीत तुरगं वाहक इव अश्ववार इव यथाऽश्ववारो दुर्विनीत तुरगं वाहयन् खेदं प्राप्नोति तथा कुशिष्यं पाठयन् गुरुर्दुःखितो भवेत् इत्यर्थः ३७ खुड्डुयामेचवेडामे अक्कोसाय वहायमे कल्लाण मणुसासन्तो पावदिट्ठित्ति मन्नई ३८ दुर्विनीत शिष्यः कल्याणं इहलोकहितं अनुशासतं शिक्षयन्तं आचार्यं पापदृष्टि रस्येति पापदृष्टिः अयमाचार्यः पापदृष्टि रस्ति पापकारी वर्त्तते मे मह्यं खुड्डकान् टक्करान् ददाति मे मह्यंचपेटान् ददाति मे मह्यं आक्रोशान् दुर्वचनानि श्रावयति पुनर्मेमह्यं वधान् कं बादिघातान् ददाति अपर

सूत्र

सावज्जं वज्जए मुणी ॥३६॥ रमए पंडिए सासं हयं भद्दं ववाहए। वालं समइ मासंतो गलियस्संव वाहए ॥३७॥

भाषा

म० भली मूयो चाडीओ सु० भलानीपना मोदकादिक सु० स्वादसु० भलाणा भनिक मोदक अखंड सा० सावद्य एहवो भाषा वा० वर्जे मु० साधुं ३६ हिवे निरवद्य भाषा बोले बोजे प्रकारे अर्थ कहे छे सु० भलो पाको ब्रह्मचर्यएणे पाल्यो सु नि० भलो छेह छेद्यो सु ह० भलो हणुं अलगो कीधो आपणो आत्मापणे स्वजन थो मडे० भले मंडित मरणेए मूओसुनि० भलो पाल्यो इणे साधुनो आचारसु ल० भलो साधुनी समाचारीएणे आराधि एहवो भाषा साधु बोले सा० सावद्य भाषा व० वर्जे मु० साधु ३६ र० रतिमाने साता माने प० गुरु सा० शीखामण देता विनित शिष्यने ह० विनीत घोडानो परे वा० शिखाणहारनी परे गुरु शीख दीये तिवारे अवनीत जेहवो जाणे ते कहे छे व० मूर्खने स० खेद पामे सा० सीख देता ग० गलियार अश्वना

टीका अ १ ३८

समोहित किमपि न दृश्यते आचार्यं पाप केवल मह्य टक्करादीन एव ददाति इति मन्यते न तु हितकारक आचार्यं मनुते ३८ अथ पुनर्विनीत दुर्विनीतयोर्वर्णनमाह पुत्तोमे भायनाइत्ति साहुकल्लाण मन्नइ पावदिट्ठीउ अप्पाण सासदासित्ति मन्नई ३८ साधु सुशिष्य कल्याण हितकारक गुरु गुरु वचन वा कल्याणकारक मनुते अयमभिप्राय यदा सशिष्य प्रति आचार्यो गुरु अनुशास्ति तदा सुशिष्यो मनसि एव जानाति आचार्योमे मम पुत्रस्य इव भ्रातुरिव ज्ञाते स्वजनस्य स्वस्य इव अनुशास्ति स्वकीयस्य बुद्ध्याभे मह्य पाठयति पापदृष्टि कुशिष्य गुरुणा शास्यमान आत्मान दासमिव मनुते अयं मा दास मिव तर्जयति इति मनसि दु खितो भवति आचार्यं निन्दति इत्यर्थ ३९ न कोवए आयरिय अप्पाण पिनकोवए बुद्धोवघाई

सूत्र

खड्डुयामे चवेडामे अक्कोसाय वहाय मे । कल्लाण मणुसासतो पाव दिट्ठित्ति मन्नई ।३८। पुत्तो मे भायनाइत्ति साहु कल्लाण मन्नई । पावदिट्ठीउ अप्पाण सास दासत्ति मन्नई ।३९। न कोवए आयरिय अप्पाणपिनकोवए । बुद्धो वघाई

भाषा

खा० खोखामणइारनो परे ३७ टाकरमारे छे गुरु मे० मुझने च० पेटामारे छे मे मुझने अ गालि दीये छे मुझने व० दडादिके करी वधे छे मे मुझने जिम कोटवाल चदोवान ने मारे तिम मारे क हितकारी शीख देता पा० ए गुरु कोटवाल सरिखो पापदृष्टि छे ३८ पु० पुत्रनी परे मे० मुझने भा० भाइनी परे ना० नानोलानो परे गुरु मुझने हित करे सा० साधु विनित शिष्य हुइ ते क० हितकारी म० माने सीख पा० पापदृष्टी अविनीत अ आत्मा हुइ ते सा० सीखदेता दा० दासनो परे करी माने जिम दासने शीखदये तिमए गुरुने सीख दीये एहवो म० माने ३९ जिम गुरु न कोपे तिम कहे छे न० न कोपवे आ० आचार्यने गुरुने अ० आपणी आत्माने पिण म० नकोपे बु० गुरुनी घातनो करणहार न० न हुवे न० न हुवे तो ता०

उ०टीका अ०१ ४०

न सिया न सिया तोत्तग वेसए ४० विनीत शिष्यः आचार्यं न कोपयेत् तथाऽपर अपि न कोपयेत् तथा आत्मान अपि न कोपयेत् पुनः शिष्यो बुद्धोपघाती आचार्यस्योपघातकारी न स्यात् युग प्रधानाचार्योपघाति कुशिष्यवन्न स्यात् तद्दृष्टान्तः कोप्याचार्योऽष्टविध गणि सम्पत् समन्वितो बहुश्रुतः

सूत्र

आयरियं कुवियं नच्चापत्तिएण पसायए। विज्झवेज्ज पंजलि उडो वएज्ज न नसिया निसिया तोत्त गवेसए ।४०।

भाषा

गुरुनी छिद्र ग० गवेषिये ४० बुद्धोव० कदापि रीस उपजे हुते घातन करिवो जिम यूग प्रधानाचार्य नुं घात कुशिष्येनीपजाव्यो ते किम कुणएक आचार्य बहु श्रुतमहाग्यांत प्रकृतिना धणी केतले काले गुरुनेवडपण आव्या जंघावलिखीणथया ते हुंते एकण थानि रह्या जे भणी सिद्धान्तमे इम कह्यो छे यतः जिय कोहमाण माया जियलोभं कु हस हे जोधिरा वुढावासे विढ्िया खवेति चिरसंचयं कम्मं १ क्रोध मांन माया लोभ अने भूख तीखा जेणे जीतो छे जे धीर सत्ववंत छे ते शरीरने असमर्थपणी एकेठामे चो मासे रह्या हुता चिरकालनो पापखपावि तथा पञ्चसमियाति गुत्ता उज्जत्ता संजमतवचरणे वाससयंपि वसता मुणिणा आराहगाभणिया पंचसमति करिसमिता त्रिहुं गुप्ते करी गुप्ता तप संयमने विषे उद्यमवंत छे जोवनीरक्षानो कर्णहार वारैभेदे तप अने चर्णसतरी कर्णसत्तरी अने माहाव्रत तथा पडिलेहणा प्रमार्जनादि साधु क्रियाने विषे एततानि उद्यमवंत एहवाजे साधु होई तेपरसनासत रहितो तेने आराधिक कहिया तीर्थंकरदेवनी आज्ञाए चालता तेरहे लिगार दोष नही गुरुप्रतियावक आविकह्यो भगवन् हे हुजाविहार करवे असम ह्यातुमे पिण खेत्रि रहो चारित्र आराधी तेगुरु तिहां रहिवे थके तेहवो गुरुनो विनय वेया वच्चकरता केतले दीवसे गये हुते शिष्यसीभा उपार्जी तेहनी प्रससागुरु श्रावकन्हे कहे एहवे एक शिष्य गुरुने कहे अम्हे स्यूं वलो वेयावच्चकारो न जाणूं एणी परसे अमे वेयावच्चकरिस्यूं सर्व साधु कहे वेया वच्चदुःकरछे एहाथोनो पाखर हाथो हो उपाडे तेहोज शिष्य थोवे यावत्र थाइ अपर शिष्य अभिमान वसे कहे अम्हे करिस्यु जसनो वांछाइ पिणजस ते सरज्युं लाभे ते केतले

उ०टीका
अ०१
४१

प्रकृत्यापि शान्त धीषणद्वावन क्वापि यामे स्थित तत्र कुशिष्या सतत वैयावृत्यविधिविधानात् भग्नपरिणामैर्गुरुमारणार्थं सदोपधादिचिन्ता कारकाणामपि श्रावकाणा पुर इति प्रवदन्ति गुरवो अनसन चिकीर्षंत् किं मध्यो पथादिक न गृह्णन्ति इत्युक्त्वा अन्तप्रान्त माहार आनीय गुरवे प्रयच्छन्ति वदन्ति नित्याऽभ्यायित्वे नामना गृहस्था अतिविशिष्ट न किञ्चिद्यच्छन्ति तत श्राद्धै सलेखनास्वरूप गुरव पृष्टा शिष्याणा कूटम प्रीति च ज्ञात्वा तत्से पाऽनशनस्ते विति एव आचार्योपघातो न स्यादि तिभाव । पुन तोत्रगवेषकोपि न स्यात् यथा दुर्विनीततुरग प्राजन क गवेषको भवेत् तथा सुशिष्यो द्रव्यतो भावतश्च तीव्रस्य प्राजनकस्य गवेषको न भवेत् द्रव्यतोत्र चपेटादि भावतोत्र अयथाकारिवचन श्रेयु ४० पायादिर्वं कुशिष्य नया पत्तिएण पसायए विज्झवेज्ज पञ्जलिउडो वइज्जन पुणोत्ति य ४१ सुशिष्य आचार्यं गुरु पत्तिएण प्रीति समुत्पादकेन वचनेन प्रसादयेत् प्रसन्न कुर्यात् किं कृत्वा कुपित ज्ञात्वा गुरु सक्रोधं ज्ञात्वा विनीत शिष्य प्राञ्जलिपुट सन् प्रकृष आचार्यं विध्यापयेत् शान्त कुर्यात् प्रकृषस्य

भाषा

काले सर्व शिष्यवीमाशे अनशन रह्या ते अभिमानी सोप्य विनयविशेषक्ष गोचरी पाणी अडले मानी संथारादिक वारर मागता ममउभय्यो होये दुष्ट बुद्धि चिंतवी गुरुनो आउखो किमही पूरो थास्ये मरतो दोसे नही हुतो वडा कलेशमां आवी पड्यो गुरु कदी मरस्ये एहवी चिंतवता हुता तेथि ग्रामे श्रावक विस्मासि षोषधादिकनो तुम्नाक रै छे इम कहि निरसि भातपाणी सुगुरुकने आवे निर्से असनादिक देखोने कहे आगामको भगवन् श्रावक ते पत्र पाणी ओषध नथी पहिराये लेवहार न थाके पिषदेणहार तो थाके अने जिहां एक स्थानक धणादि न वहिरता श्रावकने वालहा हु लागे एवच न शिष्ये गुरुने कह्या शिवे एहवा पे विश्वासो साध श्रावकने घर थी भात पाणी लेतां तेन कस्ये ते किम तिवारे श्रावके चिंतव्यो चालो गुरु समीपे जी पृछे हे भगवन् तुमारो कुण संमय जे अणशो तुम करो जीन धम दोपे छे लोकाने प्रतिवोध द्यो को ते तमने सहान्तीभनो कारणे शिष्य भात पाणी न

गुरो रग्रे सुशिष्येण एवं वक्तव्यं हे स्वामिन् पुनरे एव न कुर्यां समा पराधोऽयंचन्तव्यः ४१ धम्मज्जियञ्च ववहारं बुद्धेहायरियं सया समायरन्तो ववहारं गरह नाभिगच्छई ४२ साधुस्तं व्यवहारं साध्वाचारं आचरन् गर्हां न अभि गच्छति व्यवह्रयते अङ्गीक्रियते धर्मार्थिभि रिति व्यवहार स्तं व्यवहार अङ्गीकुर्वन् मुनि निंदां न प्राप्नोति तं क व्यवहारं यो व्यवहारः सदा सर्वदा बुद्धे र्ज्ञाततत्त्वैराचरितः पुनर्यश्च व्यवहारो धर्मार्जितः धर्मेण साधुधर्मेण उत्पादितः कथंभूत व्यवहारं विशेषेण अपहरति पापं इति व्यपहार स्तं व्यपहारं अनेन प्राणातिपाताद्या अवनिवा रकः साध्वाऽचारो दर्शितः ४२ मणोगयं वक्कगयं जाणित्ता यरियस्सतं परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए ४३ सुशिष्यः आचार्यस्य मनोगतं

सूत्र

पुणोत्तिय ।४१। धम्मज्जियंच ववहारं बुद्धेहायरियं सया । तमायरं तो ववहारं गरह नाभिगच्छई ।४२ मणोगयं वक्क

भाषा

वहिरे तेस्यो कारण छे एह वचन सांभली गुरे चिंतव्यो श्रावकनो वांक कांई नथी सदा दिने तेह वीज भाव छे ए सर्व कुशिष्यनी वाता श्रावक भाग्य वंत महाभक्तिवंत पिण कुशिष्यने अप्रतीति उपजस्ये लोक निन्दा करसी तो हिवे सुरवीर थई अणसण लीजे गुरुशिष्यने उघाड्यो न कह्यो गुरु अणसण साधी मुक्त पहु'ता जीम तिणे कुशिष्ये गुरुनो घातकीधो तीम वीजे शिष्यने न करिवो शिष्यमरीने दूरगति पामी कुपात्र शिष्यविषे जाणवो इति चौण जंघावलदृष्टान्त संपूर्ण हुवो ॥१॥ अ० आचार्यांने कु० कोप्या न० जाणीने प० प्रतीत उपजे तेह वे वचने करी प० प्रशांत करे वि० कोपाग्नि उपशमा वे प० वे हाथ जोडीने व० इम कहे न० वलीए अपराध हु'नहीं करु'तुम्हेखमो ४१ ध० दशविधि यतीधर्म्म चमादिके करी ज्जि० उपार्ज्यो व्यापारयतीने जे अवश्यमेव करवो पडिलेहणादि बु० तत्त्वना जाण तेणे जे आ० आचार आचर्यो स० सदा त० ते आचार थको व० आचार पाप कर्म्मनो टालणहार ग० अविनित पणानी निंदानी० न पामे ४२ मनोगत भाव तथा वचन थी गुरुनो अभिप्राय जा० जाणिने आ० आचार्य गुरुनो तं० ते कार्य प० प्रमाण

उ टीका अ०१ ४२

मनसि स्थित काय पुनर्वाक्य गत काय पूर्व जाला पश्चात् तत्काय वाचा परिग्टह्य अङ्गीकृत्य अह एतत्काय करोमीत्युक्त्वा कर्मणा क्रियया तत्कार्य मुत्पादयेत् गुरोर्मनसि स्थित गुरूक्त गुरुणा क्रियमाण काय सुशिष्येण त्वरित विधेय मित्यर्थ ४३ वित्तो अचोइए निच्च खिप्प हवइ सुचोइए जहोवइट्ठ सुकय किच्चाइ कुव्वइ सया ४४ वित्तो विनयादिगुणेन प्रसिद्धो विनीत शिष्योऽनोदितोऽप्रेरितोपि सर्वेषु कार्येषु नित्य प्रवर्त्तते कदा चित् स्वय काय कुर्वाण आचार्येण प्रेरित स तदा क्षिप्र भवति शीघ्रकार्यकर्त्ता भवति कार्य कुर्वन् आचार्यप्रेरित शिष्य एव न ब्रूयात् अह तु काय करो म्येव किं भवद्भिर्ययैव प्रलप्यते यथोपदिष्ट सुकृत काय सदा कुर्वीत एक काय वा अथवा कृत्यानि बहूनि कार्याणि कुर्वीत गुर्वादेशेषु आलस्य न विधेय प्रसन्नतया तदेव काय त्वरित विधेयमित्यर्थ ४४ नच्चा नमइ मेहावी लोएकित्तीय जायए हवइ किच्चाणसरण भूयाण जगइ जहा ४५ मेधावी बुद्धिमान्

सूत्र

गय जाणित्ताय रियस्सउ । त परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए ।४३। वित्तो अचोइए निच्च खिप्प हवइ सुचोइए जहोवइट्ठ सुकय किच्चाइ कुव्वइसया ।४४॥ नच्चा नमइ मेहावी लोएकित्ती सेजायए । हवइ किच्चाण सरण भ

भाषा

करीने वा० वचने करी कहे ए काय हु करिस्य क० कायाइ नीपजावे करीने उ० ते कार्य सपूर्णकरे ४३ विनीत शिष्य अ० अणप्रेर्यो नि० सदाइ कार्य करवाने विषे प्रवर्त्ते खि० विलव रहित कार्यनो करणहार ह० हुइ सु० रूडो परे गुरुनी शिखवते थके ज० जिम गुरुने कार्य कह्यो हुइ तिम करे सु० कार्य कीधा पछी गुरु प्रसंसा करे एकार्य रूडो कीधो कि०एहवा गुरुना कार्य कु०करे स० सदाइ ४४ ए अध्ययनमाहि विनीतने जे गुण कह्या ते न० जाणीने न० विनयवत हुइ मे० बुद्धिवत लो० लोक माहिकीर्त्ति स० तेहनो जा० उपजे ह० हुइ कि० रूडा अनुष्ठान करिवाने स० आधार भूत

साधु नमति विनय करोति किं ज्ञात्वा इति विनयशिचां ज्ञात्वा तस्य नम्रस्य लोके कीर्त्तिर्जायते पुनः स विनयवान् साधुः क्लत्याना उचितकार्याणां सरण भवति आश्रयो भवति केषां का यथा भूतानां तरूणां जगती पृथ्वी यथा आश्रयभूता तथा सर्वेषां साधुकार्याणां विनयो साधुराश्रयो भवतीत्यर्थः ४५ पुज्जा जस्स पसीयति संवुडा पुव्वसथया पसन्ना लाभइस्सति विउलं अट्ठियं सुयं ४६ पूज्याः आचार्याः गुरवः यस्य शिष्यस्य प्रसीदन्ति प्रसन्ना भवन्ति ते गुरवः प्रसन्नाः सन्तस्त शिष्यं प्रति विपुलं अर्थितं विस्तीर्णं वाञ्छितं श्रुतं श्रुतज्ञानं लाभयिष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति कथंभूताः पूज्याः संवुडाः सम्यग्ज्ञाततत्त्वाः पुनः कथंभूताः पूर्वसंस्तुताः पूर्वं सम्यकप्रकारेण स्तुताः पठनकालात् पूर्वमेव संस्तुता विनयेन परिचिताः रजिताः तत्कालविनयस्य छतिप्रतिक्रियारूपत्वेन तथाविधं प्रसादाऽजनकत्वात् तेन सर्वदा संस्तुताः अथवा कथभूतं श्रुतं आर्थिकं अर्थो मोक्षः प्रयोजनं अस्येति आर्थिकं अर्थान्मोक्षोत्पादकं श्रुतधर्मं प्राप

सूत्र याणं जगईजहा ।४५। पुज्जा जस्स पसीयंति संवुद्धा पुव्वसंथुया । पसन्ना लाभइस्संति विउलं अट्ठियं सुयं ।४६। स पुज्जसत्थेसुविणीय संसए मणोरुइ चिट्ठइ कम्मसंपया । तवो समायारिं समाहि संवुडे महज्जुई पंचवयाइं पालि

भाषा छे भू० जीवने ग० प्रथवी ज० जिम आधार भूत ४५ पु० आचार्यादिक जे विनीत शिष्यने स० तत्त्वना जाणते गुरुने पु० वायणा शिष्य लेसे तेह थी पहिला स० विनय करी सेव्या छे प० प्रसन्न थका गुरुला० पमाडे दिइं वि० विस्तीर्ण घणु अ० मोक्ष पामवानो हेतु सु० श्रुतज्ञान ते पमाडे दीजे४६ स० विनीत शिष्य पु० श्लाघनीक शास्त्रवंत सु० रूडो परे टाल्या छे स० सदेह जेणे म० गुरुना मनना जिम रुचि हुइ तिम चि० प्रवर्त्ते क० क्रिया दश विध समाचारी तेणे करी सं० त० तपनी स० आचरवो स० समाधि तेणे करीने सं० रूध्या आश्रव जेणे ते साधु म० मोटी तपनीद्युति तिणे करी सहित

उ०टीका
प १
४५

यिथन्ति ४६ स पुज्यशास्त्रे सुविनीतसंशय मयोवह चिट्ठइ कम्मसपया तवो समायारि समाहि संवुडे महज्जुइ पंचवयाणि पालिया ४७ स सुशिष्य आचा यैर्थो नथयुतधर्मे मनोरुचि स्थिरति मनसो रुचिर्निर्मलस्य यस्य स मनरुचिनिर्मलचित्त अथवा मनसो गुरोश्चित्तस्य रुचिर्यस्य स मनोरुचि गुरुचित्तस्य वृत्तियुत इत्यर्थ पुन कीदृश सुशिष्य कर्मसंपदा दशधा समाचारीकरणसंपदा उपलक्षित पुन कीदृश पूज्यशास्त्र पूज्य सर्वजनश्लाघ्य शास्त्र यस्य स पूज्यशास्त्र गुरुमुखात् अधीत शास्त्र विनयपूर्वक अधीत च पूज्य शास्त्र भवत्येव यदुक्त न हि भवति निर्विगोपकमनुपासित गुरुकुलस्य विज्ञान प्रकटित पश्चिमभाग पश्यत नृत्य मयूरस्य१ पुन कीदृश सुशिष्य सुविनीतसंशय सुतरा अतिशयेन विनीतो दूरीकृत संशयो यस्य स सुविनीतसंशय अपगतसंशय नष्टदेहस्य इत्यर्थ पुन कीदृश स तप समाचारी समाधिसंवृत तपस समाचारी तप समाचारी तप समाचरण समाधिश्चित्तस्य स्वास्थ्य स्थिरत्वतप्र समा चारी च समाधिश्च तप समाचारी समाधी ताभ्या संवृतो निरुद्धाश्रव पुन कीदृश सुशिष्य महाद्युति महती द्युतिर्यस्य स महाद्युति महातपास्तेजो लेश्या पुलाक लब्ध्यादिमहितो भवति तादृश सन् पंचमहाव्रतानि पालयित्वा कीदृशो भवति तदाह ४७ सदेवगंधव्वमणुस्सपूइए चइत्तु देह मलपंकपुव्वय सिद्धे या हवइ सासए देवे वा अप्परए महड्डिएत्तिबेमि ४८ स पूर्वोक्तलक्षणसहितो मुनिर्विनीतशिष्य देवैर्ज्योतिष्कल्पवासिभिर्गन्धर्वैर्देवगायनैस्तथा मनुष्यै पूजितो भवति ततश्च आयु क्षये देह त्यक्त्वा सिद्धो भवति कथंभूत सिद्ध शाश्वतो जन्ममरणरहित कथंभूत देह मलपंकपूर्वक मनुष्यशरीर हि औदारिक

मूल

या ।४७। सदेव गंधव्व मणुस्स पूइए चइत्तु देह मलपंकपुव्वय । सिद्धेवा हवइ सासए देवेवा अप्परए महड्डिएत्ति

भाषा

वइ प० पंचमहाव्रत पालीने स० ते विनीत शिष्य ४७ दे० वैमानिक ज्योतिषि ग० भुवनपति व्यन्तरए ४ जातना देवाने म० मनुष्यपणे पू० पूज्यो प०मू० छोने देहशरिर म०लोहीत शुक्र पु० लोहिश्रने शुक्रनो पहलो आहार करीने जीव शरीरनो पाडू ते भणीएवे थी जे शरीर उपनो ते मू किनिद

परा: यान् श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् साधुर्यैं द्वाविंशतिपरीषहैः स्पृष्टः सन् न विहन्येत तदा श्रीसुधर्मास्वामी जम्बू स्वामिन प्रति वदति इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेण भगवया महावीरेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा हे जम्बू इमे वक्ष्यमाणा हृदि वर्त्तमानत्वात् प्रत्यक्षाः ये त्वया सोढास्ते द्वाविंशति परीषहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता यान् परीषहान् श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् साधुः परीषहैः स्पृष्टः सन् न विहन्येत तंजहा तद्यथा तेषां परीषहाणां नामान्युच्यन्ते दिगंछा परीसहे १ पिवासा परीसहे २ सीय परीसहे ३ उसिण परीसहे ४ दंसमसय प० ५ अचेल

सूत्र

भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहंनिज्जा। इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया। जेभिक्खू सोच्चानच्चाजिच्चा अभिभूयभिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहंनिज्जा। दिगिंछा परिसहे १ पिवासा परीसहे २ सीय परीसहे ३ उसिण परीसहे ४ दंस मसग परीसहे ५ अचेल परीसहे ६ अरइ परीसहे ७ इत्थी परीसहे ८ चरिया परीसहे ९ निसीहिया

भाषा

भगवंत ज्ञानवंत म० महावीर देवे का० काश्यप गोत्रीय प० प्रकर्षें केवलग्यान करी स्वयंमेव साक्षात जाण्यो जे० जे साधु परिसहगुरु समीपे सो० सांभलीने न० जाणीने परिचित करीने अ० ते परिसहाने जीपीने भि० गोचरीने विषे प० हिंडता फिरता पु० परिसहे फरस्यो तिवारे नो० सयमने विषे तं०तेवावी सपरीसह कहे छे दि०भूख प० सर्वप्रकारे सहे ते भूखनोपरीसह १ पि०तृषानोपरि सह २ सी०शीतनोपरीसह सहे सर्वप्रकारे सहे३ उ०

प० ५ अरइ प० ७ इत्थी प० ८ चरिया प० ९ निसीहिया प० १० सिज्जा प० ११ अक्कोस प० १२ वह प० १३ जायणा प० १४ अलाभ प १५ रोग प० १६ तणफास प १७ जल प० १८ सक्कार पुरक्कारप० १९ पन्ना प० २० अनाण प० २१ दसण प० २२ नामानि सुगमान्येव नवरं अय विशेष दिगंछा शब्देन देशीय भाषया बभोच्यते सा एव षट्कायमर्दनपातकभयेन आहारपाकादिनिवर्त्तनेन शुद्धाहाराऽलाभेन वा परिसमन्तात्सह्यते इति परीषह दिगंछा परोषह एवं अपरेष्वपि व्युत्पत्ति कार्या परीषहाना नामान्युक्त्वा स्वरूपेणवक्तु काम सम्बन्धार्थमाह गाथा परीसहाण पविभत्ती कासवेण पवेइया

सूत्र

परीसहे १० सिज्जा परीसहे ११ अक्कोस परीसहे १२ वह परीसहे १३ जायणा परीसहे १४ अलाभ परी सहे १५ रोग परीसहे १६ तणफास परीसहे १७ जल्ल परीसहे १८ सक्कार पुरक्कार परीसहे १९ पन्ना परीसहे २०

भाषा

तापनो परिसह सर्वप्रकारे सहे ४ द० डासमसादिकनो कोधी पीडाने सर्वप्रकारे सहे ५ अ० श्रोढवानो मानोपेतवस्त्र तथा अल्प वस्त्रनो धरवोते परिसह ६ अ० संयमने विषे अधीरपणो छांडीवोते अरति परीसह ७ इ० स्त्रीनो अणवाञ्छवीते परीसह ८ च० ग्रामादिकने विषे रहवोते चर्यापरिसह ९ नि० मायें वैशी रहणोते निसीहा परिसह १० सि० उपाश्रे समेभावे रहिवोते शिय्या परीसह ११ अ० अशुभ वचन सांभलीने क्षमाकरीवीते अक्रोध परीसह १२ व० बधता घातकरता क्षमा करवो ते वधपरीसह १३ जा सिद्धान्तोक्त विधेइ याचनालाजवी नही ते याचना परीसह १४ रो० रोगने सावद्य वैद्यपडी गणु नकरावे ते रोग प० ६ अ० मागी वस्तुनी अप्राप्तिखेदन करिवोते अलाभ परीसह १६ त० तृणादिकनेफरसे अधिक वस्त्र न राखेते तृणाना फरसनो प० १७ ज० मेलनोपरीसह १८ स० वस्त्रादिकने आमन्त्रवे १९ पु० उठी वेठीथावे करी इत्यादि न करेइ २ प० प्रना थी उत्कर्ष पणुन करे ते प्रज्ञाप० २०

तम्भे उदा हरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेहमे १ हे शिष्याः परीषहाणां प्रविभक्तिः पृथक् २ विभागः प्रविभक्तिः काश्यपेन काश्यपगोत्रीयेण श्रीमहावीरदेवेन प्रवेदिता विद्यमाने प्रकर्षेण ज्ञाता इत्यर्थः तां परीषहाणां प्रविभक्तिं अहं आनुपूर्व्या अनुक्रमेण मे भवतां उदाहरिष्यामि मे मम कथयिष्यतः तां परीषह प्रविभक्तिं यूय शृणुत१ अत्र सर्वेषु परीषहेषु पूर्वं क्षुधायानिर्देशः सर्वेष परीषहेषु क्षुधाया दुःसहत्वात् यदुक्तं खुहासमावेयणा नत्थि दिगिञ्छा परिगए देहे तवस्सो भिक्खूथामवं न छिन्दे न छिन्दावए न पए न पयावए २ कालोपव्वगसङ्कासे किसे धमणिसन्तए मायन्ने असणपाणस्स अदोणमणसोचरे ३ द्वाभ्यां गाथाभ्यां क्षुधापरीषहजयं वदति तपस्वी साधुर्दिगञ्छा क्षुधा तया परिगतेव्याप्ते देहे सति न छिन्द्यात् तरूणां फलादिकं स्वयं न त्रोटयेत् न च अपरेण छेदयेत् न च स्वय अन्नादिकं शाकादिकं न पचेत् न च परेण पाचयेत् नवकोटि शुद्धिबाधां नकुर्यात् कथम्भूतं तपस्वी थामवान् मनोबलयुक्तः पुनः कीदृशः

सूत्र

अन्नाण परीसहे २१ दंसण परीसहे २२ परीसहाणं पविभत्ती कासवेणं पवेइया तंभे उदाहरिस्सामि आणुपुव्विं सुणे हमे ॥१॥ दिगिंछा परिगए देहे तवस्सी भिक्खु थामवं णछिंदे णछिंदावए न पए नपयावए ॥२॥ काली पव्वंगसंकासे

भाषा

अ०तलने अजाणपणं करो विखवादनकरेते प०२१ द०सम्यक्त्व थो न डोलेत द०२२ प०परोसह वा वीसनोस्वरूप क०प्रकर्ष जू वा२स्वरूपपणे का०काश्यप गोत्रोइ प०परिसहो प्ररूप्योछे त०तेभे० तुम्हे प्रते नु०कहिस्यु सुधर्मास्वामो जम्बूप्रते कह्यो अ०अनुक्रमे वा वीस परीसहो सु०सांभली मे०मुझने कहता १ दि०भूख ए०व्यापेथके दे०सरिरने विषे सगला परिसहमाहि भूखनोपरीसह महितां दोहिलो जाणवो त०तपवत भि० साधुथ० संयमने विषे बलवंत छे न० फलादिक नछेदे स्वयमेव न०अनेरा पासि न छेदावे फलादिकान०अन्नादिक पचे नहि न०अनेरापासि पचावे महो२ का०कागलीनी प०जांघ अनेसाथ

कालोपवाङ्गसङ्काश कालोकाकजङ्घा तस्या पर्वाणि मध्ये तनूनि भवन्ति अन्ते स्थूलानि भवन्ति तदा काराणि बाहुजङ्घाद्यङ्गानि भवन्ति यस्य तपस्विन जानुकूर्परादयोऽवयवा काकजङ्घाग्रन्थयस्ते इयथ कालोपर्वसङ्काशाग इतिपाठो युज्यते कालोपर्वाङ्गसङ्काश इति पाठस्तु आर्षत्वात् प्राकृतत्वात्सङ्काश शब्दस्य परनिपात अङ्गशब्दस्य पूर्वनिपात पुन कथम्भूत तपस्वी कृश पुन कथम्भूत तपस्वी धमनीसन्तत धमनीभिर्नाडीभि सन्ततो व्याप्त यस्य शरीर नसाभिर्व्याप्त दृश्यते इत्यर्थ पुन कीदृश स्तपस्वी अशनपानस्य मात्रज्ञ मात्र अन्नपानेन स्वस्यो दरपूर्त्तिंप्रमाण जानाति यावता आहारेण स्वकीयोदरपूर्त्तिंस्यात् तावत्प्रमाण मेवा हार ग्रहीयात् नतु य स्तपस्वी रसादिलौल्या दधिक ग्रहातीत्यर्थ इति मात्रज्ञ पुनर्यस्तपस्वी अदीन मनो

सूत्र किसे धमणि सतए । मायन्ने असण पाणस्स अदीण मणसो चरे ॥३॥ तओ पुठो पिवासाए दोग छी लज्ज सजए ।

भाषा लनि सचिठौचण प्रमुखसते सरोखो कि साधुनो दुबलो गात्र हुइ ध न साजाले व्याप्त एहवो दूबलो होइ तो पिणमा आहारनो प अन्नादिमात्रा नो जाणक पा० पाणीना अ०अशणाव्ये आकुलपणा रहित २ चित दीन नकरे एहवो थको संयममार्गने विषे चाले हिवे भूख परिसह उपरि दृष्ट तलिखीये छे उजेणो नगरीइ हस्तिमित्र श्रेष्ठि वसे एकदा तेहने भार्याना मरण थो वैराग्य उपनो तिवारे हस्तिमित्र पुत्रसहित साधु कन्हे दीक्षा लीधी निरतो चारसयमपाले एक वार साधु साथे विहार करता अटवीइ पहुता तिहा हस्तिमित्रने कांटो भागो अतिही पीडा उपनी चालीवा असमर्थ थयो तेणे बीजे महात्माने कह्यो अह्ो साधो तुम्हे आघा पहुचो हु दुखेपीड्यो होडाइ नही इहाभातपाणी पचखोस तिहा साधुने खमावीपिताये अणसण कीधो चेलाने साधु तेडो आघा चाल्या ते हिवे मार्गजाता मोह भाव थी चेला पाछो बाप कन्हे आयो ते हिवे पिता सोधी शुभध्याने मरी देवता हुओ चेलो न जाणे पितामूर्छी मुग्धपणा थको पासि भमे भूखी थो पोणतिण चेने वनफलनखाधा भूख सहिते पिता देवता मोहे करी पोताना शरीर माहिपइसोशिषाने

यस्य स अदीनमनाः तपसः पारणादौ आहारस्य अप्राप्तौ अपि अदीनचित्तः सन् चरेत् संयममार्गे प्रवर्त्तेत अलब्धे तपसो वृद्धिर्लब्धे देहस्य धारणा इति बुद्धिं चित्ते दधान स्तिष्ठेत् इत्यर्थः यथा हस्तिमित्रपुत्रौ क्षुधायां उत्पन्नायां द्वौ अपि सचित्ताहारवर्जकौ जातौ तथाऽन्यै रपि साधुभिर्भाव्य मिति अथ तत्कथा: उज्जयिन्यां हस्तिमित्रश्रेष्ठी वर्त्तते तस्य हस्तिभूतनामबालकोऽस्ति अन्यदा हस्तिमित्रश्रेष्ठिनः प्रिया मृता दुःखगर्भवैराग्येन हस्तिमित्र श्रेष्ठी हस्तिभूतदारकेण समं प्रव्रजितः अन्यदा दुर्भिक्षे साधुभिः समं विहरन्नसौ हस्तिमित्रसाधुर्भोजकटक नगरमार्गेऽटव्यां कण्टकेन विद्धपादोऽग्रे विहर्तु मक्षमोऽटव्या मेव स्थितः तमक्षमं दृष्ट्वा साधुभिर्भणितं वारकेण त्वां मार्गे वहिष्यामो मा विषादं कथाः तेन भणितं मदायुः स्तोक मेवाऽस्ति अतोऽहमत्रैव भक्तं प्रत्याख्यामि यूयं यात मदर्थं मऽत्रस्थितस्यान्यस्य कस्यापि साधोर्माभूद्विनाशः इत्युक्त्वा वन्तन्त्वं क्षामयित्वा भक्तपानप्रत्याख्यानं कार यित्वा तत्रैव मुक्त्वा च अनिच्छन्तमपि क्षुल्लकं गृहीत्वा ते साधवश्चेलुः क्षुल्लकोऽर्द्ध मार्गात्तान्वि प्रतार्य पितृमोहात्तत्रायातः तावता गृहीताऽनशनः

भाषा

बोल्यो अरे पुत्र कांपडीयो भूख्यो वनफलादि आहार किम नहीं किधो हे पिताजी आ अटवी मांहि आहार किहां थी मीले अने प्राण जावेतो जावो पिण सचितफल किमवावरीये तिवारे तात कहे आवनमांहि जावो इहांना वसणहार तुमने भिक्षा देसी ते चेलो तिहां गयो ते देवताइं वनमांहि हाथ काढी भात पाणी दीधो चेलेइं आणीवा वर्यो इम देवता भात पाणी नित्य आपे केतले दिने तेणे अटवी मांहि तेहज साधु आव्या चेलाने देखी साधु पूछ्यो ताहरो पिता जीवे छे चेले कह्यो पिता अणसण लीधो छे जीवे छे साधु कहे अम्हने देखाडि ते चेलो पोताने देखाडे तेहवे ते देवता काया[मूकी] अलगो थयो साधु कहे ए मृतक छे चेलो कहे हिवडा जीवताहता साधु कहे आहार पाणी तुं किहां थी ल्यावतो तेणे सर्ववृतान्त कह्यो तिवारे मूया जाणीने ससारमांहि माया मोहवकयो छे जिम पितायें भूख सह्योतो सदगति पामी तिम चेलानापिण अध्यवसायपल

उ टीका
प०२
४२

न यतो देवीभूत् सुतको मोऽयमार्ग गत न जानामि सुतस्य तत्कलेवरस्य पार्श्व एव भ्रमति सुधार्त्तोऽपि फलादिक न गृह्णाति स देव सुतकमोहेन निजदेह मधिष्टाय ग्रवदत् वत्स गच्छ भिक्षायां सुतकेन भणित कुत्र व्रजामि तेन भणित एष धवलि कुड्येषु व्रज तन्निवासिनो जना भिक्षा दास्यन्ति तत तथेति भणित्वा पुत्रकस्तत्र गत धर्मलाभ सुचचार स देवो नरनारीरूप विधाय कर प्रसार्य दिव्यसन्नया तस्मै भक्तपानादि ददौ तावद् यावद् दुर्भिक्षे निवृत्ते भोजकटज नगरात् पयादगमिता साधवस्तेनैव मार्गेण तत्रागता जीर्ण गृह दृष्टा ज्ञातदिव्य प्रयोगास्त क्षुल्लक गृहीत्वा विजह्रु यथा ताभ्यां पितृपुत्राभ्यां क्षुत्परीषह सोढ तथा साम्प्रतिक मुनिरपि सोढव्य अथ भिक्षार्थं अटतस्तृषाया उदय स्यात् तदा तत्परीषहोऽपि सोढव्य इम मेवार्थ गाथा द्वयेनाह तभो पुट्ठो पिवासाए दुगुञ्छी लज्जसञ्जए सीओदगं न सेवेज्जा वियडस्सेसणं चरे ४ छिन्नावाएसु पन्थेसु आउरेसु पिवासिए परिसुक्कमुहे दीणे त तितिक्खे परिसह ५ ग्रामनगरादौ भिक्षार्थं भ्रमन् दुर्गञ्छी अनाचारात् भीत एतादृशो लज्जसयत लज्जायां स सम्यक यतते यत्नं कुरुते इति लज्जासयतो लज्जावान् साधु नंहि निर्लज्जो धर्माऽर्ह तस्मात् लज्ज सयतस्तपस्वी तत क्षुधापरीषहानन्तर एव पिपासया

मूल

सी उदग न सेवेज्जा वियडसो सया चरे ॥४॥ छिन्नावाएसु पथेसु आउरेसु पिवासिए। परिसुक्क मुहादीणे त

भाषा

टाणा नहो प्राणजाता पिण सचित आहार न लीधो पने मननो इच्छा पिण न कीधी ते भणी तिणि चेलेर भूखसहीते चेलाने महात्मा साथे लेगया चेलाने समझाव्यो जे ताहरो पिता परलोक गइ तो जिम पिताइ चेले भूख परीसहसह्यो तिम बीजा चारित्रीयाने सहिवो भूख व्याप्या सचित्त आहार न लेवो इति प्रथम परीसह दृष्टांतसंपूर्ण थयो ॥१॥ त० भूखनो परिसह जा० पु० फरस्यो पियो पि० तृषाइ दु० अनाचारनो वर्जणहार लज्जायें करो स० साधु मो० सचित पाणीनो न भोगवे वि० अचित पाणीनो स० एषणा इच्छाने प्रवर्त्ते ४ जिहा कोइ मनुष्य आवतो नथी प० पथने विषे आ०

अत्यंत व्याकुल थको शरीर सु० अति तृषावत प० थूक रहित सूकाणो मु० मुख जेहनो ते साधु दीनपणा रहित हुइ तं० ते तृषानो ति० खमे प० परी सह ५ अथ तृषा परीसहें दृष्टांत' उजेणी नगरीये धनमित्र वांणीयो वसे साधु उपदेश सांभली वैराग वस्ये धनमित्र पुत्र सहित दिक्षा लीधी एकदा घणा साधां साथि विहार करतां मध्याह्न समे चेलाने भतीहो तृष जपनी तेहवे चालतां वाटे नदी आवी देखी पिताइ मोह थकि चेलाने कह्यो वच्छ पांणी पोवो पछे आलोयण लेजे एहवे कह्ये हुं ते चेलो लेवा न वांछे तिहां थको तिण पिताइं चिन्तव्यो एचेलो माहरो लाज करे छे ते भणी पितासाधु आगले थई आगे गयो तेहवे नदी माहि आवी त्रिसे थके पाणीनो पसली भरी चिंतव्यो जे पाणी पीउं तेहवे उत्तमपणा थको हीज विचार जपनोमेतो पांच महाव्रत उचरीया छे मरणश्रे य पिण व्रतविराधयो नही तेहवे उत्तमपणा थकोतृषाक्रान्तचारित्रीयोसिद्धान्तवचनजाणीमनमेचिंतव्यो एसचीतपांणी किम पिवाइ यत: एगस्स उदगबिंदु मि जे जीवा जिणवरेहिं पणत्ता ते पारेवयमित्ता जंबूदीवेनमायंति १ जत्य जलं तत्य वणं जत्यवणं तत्यनिच्छओ अग्गी ते जवाजसहगया तसा यथा वरानेव२ हतूणपरप्पाणे अप्पाणं जेकुणंतिसप्पाणंअप्पाणदिवसाणंकएयनासेइ अप्पाणं२ इमआलोचीपाणीपाछोमूक्यो इमनिश्चलचित्तशुभध्यान धरतो तृषा परीसहसहितो काल करी चेलोदेवतायथयो साधुनो दया निमित्तइ तेदेव आवी ठूकडा२ गोकुलविकुर्व्या जे भणी साधु सुखी थाइ तिवारे पछी आगलि जातां साधुने आपणो स्वरूपजणावा भणी तेणे देवताइ एक महात्मानो कांबलो छे हलो गोकुले राख्यो भाषे राजइ जेहवे महात्मा वस्त्र लेवा पाछा वल्या तिणे ठामे आवेतो तिहा अटवि देखी पिण गोकुलादिकाई दीठो नहीं कणगादिक पिण दीठा नहीं तिवारे चिंतव्यो ए देवमाया कांबलो लेई साधु बीजे ठांमे पहुंता तिहां प्रगट देवता थई आपणो धन मित्र पिता साधु ते टाली बीजा सर्व साधु बांद्या धनमित्र बोल्यो मुझने किम न बांद्यो देवता कह्यो तुम्हे सचित्तपांणी पीवानी आज्ञा दीधी ते भणी अवंदनीक' मोह वसे मुझने डिगायो हुं तो हुं कगतिपडतो

तृषया स्पृष्ट: सनसोतोदकं अप्रासुकजलं न सेवेत न पिवेत् इत्यर्थ: विपडस्य प्रासुकजलस्य शस्त्रपरिणतस्य रसान्तरं वर्णान्तरञ्च प्राप्तस्य वस्त्रादिना शुद्धस्य एषणाय ग्रहणाय चरेत् प्रासुकपानीयं ग्रहणाय गृहस्थ गृहे व्रजेत् इत्यर्थ: ४ अथ ग्रामनगरादिभ्यो बहिर्वनाटव्यादिमार्गे व्रजन् साधुश्चेत् तृषया पीडित स्यात् तदापि तृषापरीषहं सहेत् ननु तत्र साधुना एवं ज्ञातश्च अत्र कोपि गृहस्थो दाता न दृश्यते अहं स्वयमेव जलं गृहीत्वा पिवामि तदैव मार्गवैषम्य माह छिन्नेति एतादृशेषु पथिषु मार्गेषु पूर्वोक्तः तपस्वी पिपासा परीषहं तितिक्षेत सहेत कीदृशेषु पथिषु छिन्नो गत आपातो लोकानां गमनागमनं येभ्यस्ते छिन्नापाताः तेषु कीदृश स्वयं तपस्वी आतुर: तृषया आकुलतनु: पुनः कीदृश: सुपिपासितः सुतरां अतिशयेन पिपासितः अत्यन्तं तृषितः पुनः कीदृश: परिशुष्कमुखः गतनिष्ठीवनत्वेन शुष्कतालुजिह्वोष्ठः पुनः कीदृश: एतादृशोपि अदीनः अत्रोज्जयिन्या धनमित्रकथा यथा उज्जयिन्यां धनमित्रो वणिक् धनशर्मनाम्ना स्वसुतेन समं प्रव्रजितः अन्यदा मार्गे क्षुल्लकः तृट्पीडितः नदीं दृष्ट्वा पित्राऽवादि वत्स पिब जलं पश्चात् आलोचनया दोषशुद्धिर्भाविनी इत्युक्ते क्षुल्लको नेच्छति ततः पिता साधु: स्वशङ्कानिरासार्थं शीघ्रं नदीमुत्तीर्याग्रे गतः क्षुल्लो नद्यां प्रविष्टः जलाञ्जलिमुत्क्षिप्य चिन्तितवान् कथं जलं पिबामि यतः एगंमि उदगबिन्दुंमि जे जीवा जिणवरेहिं पन्नत्ता ते पारेवयमित्ता जम्बूद्दीवे न मायन्ति १ जत्थ जलं तत्थ वणं जत्थ वणं तत्थ निच्छओ अगणी तेउवाउसहगया तसाय पच्चक्खया चेव २ हंतूण परप्पाणे अप्पाणं जे कुणन्ति सप्पाणं अप्पाणं दिवसाणं कए य नासेइ अप्पाणं ३ इति संवेगेन जलमजलितं पश्चात्तेन मुक्तं ततः तृषया मृत्वा स देवो जातः अवधिज्ञाना दृष्टगतपूर्वं भवकालेन साधूनां मनुकम्पया पथि गोकुलं कृतं तत्र तक्रादि शुद्धमिति गृहीत्वा साधव: सुखिनो जाताः अग्रे चलिताः तेन देवेन स्व स्वरूपज्ञापनार्थं एकस्य साधोर्विंटिका गोकुले स्थापिता विंटिग्रहणाय पश्चाद्यातः मुनिवचसा सर्वैरपि साधुभिर्ज्ञातं गोकुलाभावे स्वत्र दिव्यमाया ज्ञाता तत्पिण्डभोजनविषयं मिथ्या दुःकृतं

दत्त तत स्वत्रायातेन देवेन पितर मुक्ता सर्वसाधवो वन्दिताः पित्तावन्दनकारणं पृष्टः स देवः सर्वं स्ववृत्तान्त पितुर्जलपानानुमति च प्रोच्य गतो देवः स्वस्थानं एवं चुल्लकवत् तृट्परीषहः सोढव्यः अथ चुधापिपासापीडितस्य क्षशस्य शीतं अपि शरीरे लगति तदपि सोढव्यं तदपि गाथाद्वयेनाह चरन्तं विरयं लूहं सीयं फुसइ एगया नाइवेलं मुणी गच्छे सुचाणं जिणसासणं ६ न मे निवारणं अत्थि छवित्ताणं न विज्जए अहं तु अग्गिं सेवामि इइ भिक्खू न चिन्तए ७ एकदा महासीतकालादौ प्रतिमावहनादौ कायोत्सर्गे स्थितं तपस्विनं शीतं स्पृशेत् शरीरे लगेत् तदा स मुनिस्तपस्वी अति वेलं स्वाध्यायकरणप्रस्तावं अतिक्रम्य शीतभीतः सन् स्थानान्तरं न गच्छेत् किं कृत्वा जिन शासने हि जीवोऽन्यः देहश्चान्यः कीदृशं मुनिं ग्रामानुग्रामं चरन्तं विहरन्त अथवा मुक्तिनगरानुकूले साधुमार्गे विचरन्तं पुनः कीदृशं लूहं रूचं स्निग्धभोजनतैलाभ्यङ्गादित्यागेन रूचाङ्गं पुनः कीदृश विरतं अग्निप्रज्वालनात् विरतं तदा पुनः शीतपीडितो भिचुरिति न चिन्तयेत् इति न विचारयेत् इतीति किं मे मम छवित्राणं देहचर्माच्छादनं शीत निवारणं किमपि न विद्यते नास्ति तेन अहं अग्निं सेवामि इति चिन्तनं अपि न कुर्यात् तदा अग्निसेवनन्तुदूरमेव त्यक्तं अत्र भद्रबाहुशिष्याणां कथाः ७ राजगृहे नगरे चत्वारो वयस्या वणिजः श्रीभद्रबाहुगुर्वन्तिके प्रव्रज्य श्रुतमाधीत्य एकाकि त्वं प्रतिमया विहरन्त स्तत्रैव ययुः तदा हेमन्त

सूत्र तितिक्खे परीसहं ॥५॥ चरंतं विरयं लूहं सीयं फुसइ एगया। ना इवेलं मुणी गच्छे सोच्चाणं जिणसासणं ॥६॥

भाषा इम गोकुलनी संकेत जणावो देवता स्वस्थानके गयो जिम तेणेचेले तृषा सही तिम बीजे साधुने पिण सहवो इति द्वितीय परीसह दृष्टांत कथा जाणवी र विचरता ग्रामानुग्राम वि० अग्निप्रमुखनी लु० लुखो सरीर सी० एहवा साधुने सीत फू० फरसे शीतकालने विषे ता० सज्झाय प्रमुखनी वेलाइं मु० साधु ग० तादिमटे सो० सांभलीने जि० जिमनी सा० सीख अनेरो प्रते देवे६ न० नथी माहरे शीत नोवारण घरादिकने विषे छ० शरीर वस्त्रादिकपिण

उ० टीका अ० २ पृ० ७

आसीत् ते च भिक्षाभोजन मादाय तृतीयपौरुष्या व्यवर्त्तन्त पुरात् पृथक तेषामेकस्य चरमपौरुषी वैभाराद्रिगुहाद्वारे अवगाटा तत्रैव सोऽस्थात् द्वितीय पुरोद्याने तृतीयम् उद्यानसमीपे चतुर्थस्तु पुराभ्यर्णे तत्रयो वैभाराद्रिगुहास्थ स महाशीतव्यथितो रजन्या आद्ययामे मृत उद्यानस्थो द्वितीययामे मृत उद्यानासन्नस्तृतीये यामे मृत पुरासन्नस्तु पुरोष्मणाल्पशीतत्वेन चतुर्थे प्रहरे मृत सर्वेऽप्येते साधवो विपद्य दिवं जग्मु शीतपरीसह सोढव्य शीतकाला दनन्तर ग्रीष्मकालस्य गमन स्यात् तत्परीषहोऽपि सोढव्य उसिणपरियावेण परिदाहेण तज्जिए घिसु वा परितावेण सायनो परिदेवए ८ उण्हा

सूत्र न मे निवारण अत्थि छवित्ताण नविज्जई। अहतु अग्गि सेवामि इइ भिक्खू नचिंतए ॥७॥ उसिण परिया वेण

भाषा न०नथी ते भणी अ०ह तु पुन वलो अ०अग्नि से०सेवु इ०एहवो भि० साधु न०नचिंतवे७ अथ शीत परीसह उपरिदृष्टान्त राजगृहीनगरीइ च्यार वणिक वसे परस्परमित्र अत्यंत प्रीति जीव एक अने काया जुदी संसारना सुख भोगवता रहे एकदा भद्रबाहु स्वामी समो सर्या च्यारे मित्रवांदवा आव्या देशना साभली वैराग्य उपनो संसार असार जाणी भद्रबाहु पासे च्यारे मीत्रा दीक्षा लीधी सूत्र सिद्धांत भणी पारगामी हुआ एकाकी पणानी प्रतिमाइ रहिता विहार अनुक्रमे करता वली राजगृही नगरी आव्या तेहवे २ सीतकाले त्रीजी पोहरे भात पाणी वहिरवा गाममे पधार्या गवेषणा करी नगरी थी वाहीर जूजूआ आव्या अनेरा नीकल्या जीन कल्पी पवे साम्हो छायो आवेतो टले नही सूर्य आथम्या केडो तथा वस्ती हुवे तिहां रह्यो तिवारे ते पोली वारणे काउसगने रह्यो बीजा साधुने नगर वाहिर सूर्य अस्त हुवो तिहा काउसग रह्यो चोथा साधुने नगरवारणे पोलो वाहिर सूर्य अस्त हुवो तिहा काउसग रह्यो हिवे वैभार गिरगुफाने वारणे रह्यो तेहने अतिहीताढपरीसहसहता रात्रिने पहिली पोहरे कालप्राप्त हुवो वागने साधु रहणवाले विजे पोहरे कालप्राप्त हुवो ते जो नगर वाहिर तेणे त्रीजे प्रहरे सीधो अने चोथा साधु पोलवारणे तेणे चोथे प्रोहरे काल कीधो नगर परसरे सीतपरीसह

हितत्तोमेहायो सिणाणं नो विपत्थए गाय नो परिसिसिज्जा न वीइज्जाय अप्पयं ८ मेधावी स्थिरबुद्धिमान् साधुर्ग्रीष्मे उष्णकाले वा शब्दात् शरदि ऋतौ अपि सात सुखहेतुं प्रति न परिदेवेत कदा मम शरीरे शीतलत्वं स्यात् इति न प्रलापं कुर्वीत कीदृशः साधुः उष्णपरितापेन यः परिदाघस्तेन तर्जितः ग्रीष्मकाले सूर्यस्या तपेन भूमिशिलादयः परितप्ताः सन्ति तत्र साधुरातापनां कुर्वन् तप्तभूमेः शिलातो लोहकारशाला समीपत्वा द्वा परि दाघेन बहिः प्रस्वेदमलाभ्यां वह्निना वा अन्तश्च तृष्णारूपेण तर्जितोऽतिपीडितः पुनरपि उक्त मर्थमेव दृढयति मेधावी साधुरुष्णाभितप्तः स्नानं नैव प्रार्थयेत् न अभिलषेत् पुनर्गात्रं शरीरं नो परिसिञ्चेत् न च प्रस्वेदादिसद्भावे आत्मानं स्वदेहं वीजयेत् वीजनेन शरीरस्य न वातप्रक्षेपं कुर्यात् इत्यर्थः८ अत्र अरहन्नककथा यथा तगरानगर्यां अर्हन्मित्राचार्यपार्श्वे दत्तनामा वणिक् भद्राभार्यार्हन्नकपुत्रेण समं प्रव्रजितः पित्रा सर्ववैयावृत्त्यकरणेन इतस्ततः परिभ्रम्य भव्यभिक्षा भोजनसम्पादनेन स बालोऽत्यन्तं सुखी जातः उपविष्ट एव भुंक्ते कदापि भिक्षायै न भ्रमति तद्भिक्षार्थं स्वभिक्षार्थंच पितुरेव भ्रमणात् अन्यदा पितरि मृते साधुभिः प्रेरितः स बालो ग्रीष्मे मासे भिक्षार्थंगतः तापाभिभूतः प्रोत्तुङ्ग गृहच्छायाया मुपविशति पुनस्तत उत्तिष्ठति शनैः शनैर्याति एवं कुर्वन्स्त मतिसुकुमारस्तं मर्हन्नककुमारं रूपेण कन्दर्पावतारं दृष्ट्वा काचित्प्रोषित वणिक्भार्या आकार्य गृहेस्थापितवती तया सह सो विषया आसक्तोऽभूत् अथ तन्माता साध्वी पुत्रमोहेन ग्रथली भूता अरे अर्हन्नक२ इति निर्घोषयन्ती चतुष्पथादिषु भ्रमति एकदा गवाक्षस्थेन अर्हन्नकेन तादृशावस्था माता दृष्टा संजातात्यन्त संवेगः स गवाक्षादुत्तीर्य पादयो पतित्वा मातर मेवाह हे मातः सोऽहमर्हन्नक इति तद्वचः श्रवणात्

सूत्र

परिदाहेण तज्जिए । घिंसुवा परियावेणं सायं नो परिदेवए ॥८॥ उन्हाहि तत्तो मेहावी सिणाणं नोवि पत्थए ।

भाषा

मोडो लागोतेणे कारणे मोडो सीधो ए थारे मरण पांमो देवता थया पिण अग्नि न सेवो जिम ए थारे सोत परीसह सह्यो तिम बोजा ने पिण सहिवो

इतिमोत परीसह ऊपर दृष्टांत कह्यो छे उ॰तापे करी उन्हो भूमिका सीमादिक्षेप॰तापे करीनेप॰ माध्र परिलेवो घने मैलएवे घने पभ्यंतर यथा तेह थी
उपनो दाह ज्वर म॰तेवे करी पीड्यो थको चि॰उन्हामाने या॰पवना शरदऋतुनें विषे प॰तापेकरी पीडायको साता नो॰नथी छे ते कहीए सीतल वाय्युन
उ॰उन्हे तापे करी पहि॰पत्यन्त पीड्यो म॰मर्यादावत साधु सि॰स्नान नो॰न वांछे गा॰शरीर नो पाखीए न सींचे न॰ वीजणादिके करीसर्वथायरो न
गाथे ८ पाव उष्ण परीसह दृष्टांत तगरा नगर पतिहो मनोहर तिहां दत्तवाणिक तेहनी स्त्री भद्रा पुत्र परहनक ते गुरु रहे पछवे सभे परहनक
भिक्षार्थे पधार्या तेहने वांद्या मकन्न मोक्ष पाम्यो गुरु धर्मदेसना दीधी अत्यंत संसारविषय दुःखमोक्ष पाम सांभलीदत्त घने भद्रा पुत्र परहनक साथे
दृव्यनो कोडो परत्वो मोहनो परे चारित्रधर्म पादयो गुरु पासे भणे पिषदत्तने भणवो नाये पाके पडे आना किम थवे इम जाणी पुत्रने भणावे पाप
पोते गोचरी थावो कर प्रेम राखो नगरी मांं पु गहो मोठाइ पेंडा घेवर सुरको मेवामसुरा पाणी पोते पोते पति नीरस आहार करे किवारे साधु कहे
पुत्रने गोचरी पांगरावो तुमे तप छे तिवारे कहे वेया वच्छे लाभ छे पु पांगरीस एमदरवानी वात न आणी तिवारे साधु कहे आगमि दोखिलो थास्ये
इम कहे छिवड़ा मनु छे इम तेहने मरम आहारे सुखीयो कीधो वेतने कालें दत्त नामा साधु अणसण करी काल कीधो तिवारे मोहथीरोवा लागो
हे पूज्य हे पिता नो आजथी न मीली छिये मुझने कुणपुत्र कहे वोमायसे घने मगरा मधुरा आहार कुण पांगरस्ये छिवसजमनो नीर्वाह दोहिलो थास्ये
इम विलाप करतो माता आवी कहे परे पुत्र सोच न कीजे आम्हासी राखी गुरु पीण वालकने गोचरी पगराये नही तिवारे नवीन गोचरी कर्तां कहे
माता भद्रा आवी कहे परे पुत्र मोहन कीजे अणासो सामि गुरु पीणवालकने सुगमे जीयो करी रागो पिण छिये एहनो कामविणमसी साधु गोचरी
पांगरजे ते भणी नझाने नगरी मांहि गोचरी माये गया गणेश आगल थी आमे घने परहनक शरीर नो सुकमाल पने नपर सूर्यनो तापस वेन उपवा

आवी तेणे तापे करी धाणीनी परेमान तु सरिर प्रसेवे तृषादि पाम्यो हुंतो आवी सानागोखहेठलिछांहडीये वीसामी लोधो उभो रह्यो तेहवे व्यवहारी यानी स्त्री गोखमे,झांखी वोलाव्यो अहो सौभाग्य आपनो घरि पवित्र करो तुमे भिचा लो इम कहिने तेडयो मोदक लेइ आवी पीण रूप देख मोह पांमी नेत्रना कटाच लगावी हाव भाव करो काम वचन कहिवा लागी माहरे भाग्ये तुमारो आगमन थयो अने ओ धन तन मन ओ वरए शय्या सर्व तुमारी छे हु पिण तुमने वांछु छु अनाथ नाथ थाओ ते मधुर वचन सांभली चारित्र वर्ण थी तिहां रह्यो वली विचारूं छिवडातो रहीये वलीगर्ढापणे दीचा पाली से ते उष्ण पाणीनो पोड्यो तिहा रह्यो पञ्चऋतुना भोग भोगवे छे गणेग गुरु पासे आवी कहे अर्हन्नक आव्यो त्यारे कहे नथी आव्यो साधां जो यो पिण न लाधो भद्रा माताइ वात सांभली जोतां न लाधो तेणे मोह गहिलो थइ भमे मुखे अर्हन्नक२ तु किहां छे इम करती विचरे वालक कहे ए अर्हन्नक ए अर्हन्नक तिहां थी दोडे वस्त्र अचेतन पणे भमता वारमे वरसे तेणे सेरीये भद्रा नीकली हजारा वालक पूछे फीरे छे तिवारे वालकने सेरे भद्रा गहिली गलियां माहि दोठो मुख अर्हन्नक२ तु किहां छे इम करतां एहवो शब्द गोखे सांभली विलाप करती देखीने भद्राने ओलखी हिवे चिंतवा लागोसहीए माहरी माता छे मे अभागी माताने दुखणी कोधी अने मे नर्कनो आउखो उपार्ज्यो इम चिंतवी गोख थको उतरीने माताने वोलावी हु अर्हन्नक एहवो सांभली हीया वारिवापिने मन ठामि आव्यो पुत्र पादर ओढवा दोधी स्वस्थ चित्त थइ मन संतोष उपनो माताइ वेटो पुछ्यो हे पुत्र तु आज लगे किहां हुतो तिवारे तेणे अर्हन्नके आपणपे गोखेउभो स्त्री भोगवोते माताने सर्वस्व रूप कह्यो तिवारे पोछे माताइ पुत्रने कह्यो हे वच्छ चारित्र नखंडए भोग मुकोएकांते चारित्र पालो तिवारे तेणे पुत्रे कह्यो मे पापीये चारित्रनपले पिण कहो तो अण सण उचरू तेहवे मावोलो वच्छ इमकरि पिण पाप मत करि ए मातानो वचन सांभली हुते वैराग्य थके तप्त शीला उपरि पादोपगमन अणसण लेइ क्षण एक

सश्चचित्ता माता तमेवमाह वत्स भव्यकुलजातस्य तव केयमवस्था स ग्राह मातश्चारित्र पालयितुमहं न शक्नोमि साप्राह तर्हि अनशनं कुरु मातृ वचसा स तप्तशिलायां सुप्तः पादोपगमनश्चकार सम्यग उष्णपरीषह विषह्य समाधिभाग् देवत्व प्राप्तवान् एवं अन्यैरपि साधुभिरुष्ण परीषह सोढव्य ततो ग्रीष्मकालादनन्तरं वर्षाकाल समागच्छति वर्षाकाले दंशमशकादय उत्पद्यन्ते तैश्च पीडित सन तत्परीषह: सोढव्य पुट्ठोय दंस मसएहिसमरेव महामुणी नागो सङ्गामसीसे वा सूरो अभिहणे परं १० न सन्तसे न वारिज्जा मणंपि न पओसए उवेहे न हणे पाणे भुञ्जन्ते

सूत्र

गाय नो परिसिंचिज्जा नवीएज्जाय अप्पयं ॥६॥ पुट्ठोय दंस मसएहि समरेव महामुणी। नागो संगाम सीसेवा॰ सूरो अभि हणे परं ॥१०॥ नसंतसे नवारेज्जा मणं पि नपओसए। उवेह नहणे पाणे भुंजते मससोणियं ॥११॥

भाषा

माहि उष्णपरीसह सही मन सबरी जिमतायनें जोगे मांखण विघराइ तिमतनविघराणो परिणाम शुद्धथी काल करी देवताहुओ जिमतेणे अर्हन्नके पछिली चूकोति मन करतु अने जिमछे हडे कामसाध्यो मन ठाम राख्यो तिम करवी इति उष्ण परिसह उपर अर्हन्नक दृष्टान्त सपूर्णम् अथाग्रे सूत्र माह १ पु॰ फरस्यो पीड्यो द॰ डासमसे करीने स॰ तेडा सममाने आपणा आत्मा सरीषा जले खये म॰ मोटो साधुजी ना॰ जिम हाथी सग्राम या ते थके अणषीइ मिलो हुइ एह वा सग्रामनें विषे सू॰ जिम सूरहाथी अ॰ अणी दुजीपे प॰ वैरीने १ न॰ डासमसाने त्रासवे नही न नवारे अतरा यन करे चटको देता म॰ मने करीने पिण न॰ न करे द्वेष उ॰ उदासीन पणानें भावे करीन हणे नही पा जीवने भु॰ खाता थका म॰ पो तानो मास अनें लोही ११ अथ दंसममकदृष्टान्त चपानगरीइ जितशत्रु राजानो पुत्र श्रमणभद्र श्रीधर्मघोष सूरिकने प्रतिबोध पांमो दीक्षालीधी केतलें

मससोणियं ११ महामुनिर्महातपस्वी दंशमशकैर्जन्तुभिः स्पृष्टो भक्षितः सन् न सन्त्रसेत् त्रासं न प्राप्नुयात् बहुवचनग्रहणात् यूकामत्कुण सुलसुलका दयोपि गृह्यन्ते कीदृशो महामुनिः समएव समत्वेन युक्तः अत्र समरे रकारः प्राकृतत्वात् क इव संग्रामशीर्षे रणशिरसि नाग इव हस्तीव कीदृशो हस्ती शूरः यथा शूरोऽभङ्गो हस्ती युधे स्थितः परं शत्रुं हन्यात् एवं महामुनि रपि क्रोधादिकं अन्तरङ्गशत्रुं जयेत् दंशादिभि रूपद्रूयमाणः क्रोधं न

भाषा

कालें विहार करतां श्रमणभद्र ऋषी अटवोइं पुहता तिहां प्रतिमाइ रह्या जे वृच्चे भमरा घणा छे अने मधु छे ऋषि सरीरे मधु छे ऋषीश्वरने शरीरेमधु नाटी थका लागा तिवारे भमरा डांसमसादिक आवी पीडा जपजावी पिण लिगारमात्र मनथीन चाल्यो तिहां रह्यो नरकनी वेदनाना दुख जपजे चिंतवे अरे जीव सिद्धांत मांहि एहवा २ नरकना दुख कह्या छे ते संभारतो कान थी यतः नरए सुजाइ आइकक्कड कडाइं दुक्खाइं परम तिक्खाइं कोवकेइ नाउं जीवंती वास कोडिवी १ नरक मांहिजे कर्कश परमतिक्ष्ण गाढि तीव्रवेदना खेत्रादि परमाधामीनो कोधो वेदना परस्परे वेदना दुखे कुणे वर्णवोइं जो वरस नीकोड लगे बोलेतो पिण बोली न सके वली नरकना दुख कहे छे कर्कश दाह परमाधामीनो कोधी वेदना अनें आगमां हे पचवो लोहमय कंटक शूली वींधवो राईजे वडा खंडनुं करवो काग साग समली ढंकादि केचूटिवो अने शाल्मली वृक्षमांहि आकर्षवो खांडानीधार सरीखा पांनडा एहवा असिपत्रमांहिवे सारवो तिर्णे करीने गात्र छेदाइं वली तातो तरवो उकालि पावइ वैतरणी नदी मांहि भूलवें अने ते नारकोने कांई सुख नथी तिवारे ऋषीश्वर डांस मसाना परिसह सहतो विचारे इणे जीवें नारकीनि वेदना सही तथा तिर्यंचादिकनी वेदना सहीतो डांसमसा भमराने करडवे ऋषि चूकि इम चित्त विचित्त निश्चल करी सह खमा शुभ भाव नाइं कालकरिने देवलोके गया जिमश्री श्रमणभद्र ऋषीश्वरें डांस मसादिकनो परीषह सह्योतिम अन्य

कुर्यादित्यर्थं च पुनस्ते पीडितश्च न सन्त्रसेत् उद्वेगं न प्राप्नुयात् पुनस्तान् दंशादीन् न निवारयेत् तेषां वारणे हि आहारान्तरायं स्यात् मनः अपि न प्रदूषयेत् मनोपि कलुषं न कुर्यात् निवारणं तु दूरतएव त्यक्तं यदि तेषु मनसि अपिक्रोधं न कुर्यात् किन्तु तेषु दंशमशकादिषु दुष्टजीवेषु मांसशोणितपललरुधिरं भुञ्जानेषु उपेक्षेत उदासीनभावे वर्त्तेत रागद्वेषरहितो भवेत् प्राणान् तान् दंशमशकादीन् मांसरुधिरं भुञ्जानान् न हन्यात् अत्र श्रमणभद्रकथा ११ यथा चम्पाया जितशत्रुनृपस्य पुत्रः श्रमणभद्रो युवराजा श्रीधर्मघोषान्ते प्रव्रज्य एकाकित्वविहारेण विहरन् अन्यदा शरदि ऋतौ अटव्यां प्रतिमास्थितो दंशमशकैः पीड्यमानोऽपि निश्चलः स्वयमनश्नीत भुक्तनरकवेदनास्वरूपं चिन्तयन् समाधिना मृत्वा दिवङ्गत, एवं दंशमशकपरीषहः सोढव्यः अथ च दंशमशकादिभिः पीड्यमानो वस्त्राद्याकरी न स्यादतो अचेलपरीषहमाह परिजुन्नेहिं वत्थेहिं हुक्खामित्ति अचेलए अदुवा सचेलए हुक्खं इइ भिक्खू न चिन्तए १२ एगया अचेलए होइ सचेलए आवि एगया एअं धम्मं हियं नच्चा नाणी नो परिदेवए १३ भिक्षु

परिजुन्नेहिं वत्थेहिं होक्खामित्ति अचेलए। अदुवा सचेलएहोक्खं इइभिक्खू न चितए ॥१२॥ एगया अचेलए होइ सचेलएयावि एगया। एयं धम्मं हियं नच्चा नाणीनोपरिदेवए ॥१३॥ गामाणुगामरीयंतं अणगारंअकिंचणं। अरई

साधु खमवो इति दंसमसकपरीसह दृष्टान्त अथ अचेल परीसह छट्ठो कहेछे प० सर्वप्रकारे जु० जूने व० वस्त्रे करीने हु० थास्यूं अ० वस्त्ररहित एहवा दिन घणा रहितछे अ० अथ वाइ स० वस्त्र सहितइ थास्यूं मूझने जूना वस्त्र देखिने कोइक वस्त्र देस्ये इ० एहवो दीनपणो अने उत्सर्ग पणो भि० साधु न० न चितवे १२ ए० एक वार जीनकल्पीनी अवस्थाइ अ० वस्त्र रहित पिण हो० हुवे स० वस्त्ररहित हुवे ए० एकवार स्थिवरकल्पीनी

अवस्थाइं ए० एवं धर्म वस्त्र सहितपणो अने वस्त्र रहित पणो हि० हितकारी न० जाणीने ना० ज्ञानवंतो नो० न पामे खेदवस्त्र रहित शीतकाले इं दोहिलो थास्यूं दीनपणो न करे १३ अथ अचेल परीसह दृष्टांत दशार्णपुर नामे नगर सोमदेव नामे पुरोहित तेहने रूढ सोमा भार्या तेहने पुत्र आर्य रचित परदेस जइ १४ विद्या भणी पारगामी थाई आव्योराजाने मिली महा पसावापामी महोच्छव सहित आपणे घरे आवी पिताने पगेला गो माता ने प्रणाम कीधो माता प्रणाम न झाले तिवारे कारण पूछ्यो ते रूढ सोमा श्राविका छे तिणे हेत करीने कह्यो तेंए हिंसादिक शास्त्र भण्या पिण अजे तांई दृष्टिवाद धर्मशास्त्र भण्यो नहीं ते स्यूं भण्यो तिवारे माताने कहे ए विद्या कुण भणा वसी तिवारेमाता कहे ताहरो मांमो तोसलि पुत्राचार्य जेपा से जाईने भणो तिवारे हां भणी माताने प्रणाम करी चाल्यो वाटमे से लडीनव आखी अने एक आधी मिली माताने कहा व्यो मुझने से लडी साढी नव मिली छे माताइ कह्यो साढा नव पूर्व भण्यो आर्य रचित उपाश्रये पासे आव्यो पिण विचार्यो किम बोलसुं एहवे एक ढड्डर श्रावक उपाश्रये मांहि प्रवेश कर्यो तिणे रावोइ आर्य रचित श्रीतोसलीपुत्राचार्य मांमाने वांद्या पास बेठे शिष्ये कह्यो आज नगर मांहि मोटी आडंबरी आव्या गुरु कह्यो ए ताहरी भांणे जो छे गुरु बोल्या हे आर्य रचित किम आव्या ते कहे दृष्टिवाद भणवा माटे तिवारे कहे ए तो दीख्यालीइं भणाइं तेणे दीक्षा लीधी इग्यारे अंगभण्या छे पूर्व विद्या सीखवाने वज्रस्वामी पासे मो कल्यो अंतराले उज्जयनी वासो रह्यो भद्रगुप्ति सूरवांदि वज्रस्वामी पास गयो छे तेहवेवज्र स्वामो रात्रि स्वप्नो दीठो जे एके शिष्ये दुधपीधो ते विचारी प्रभाते चीतवे छे एहवे आर्यरचित आवी वंदना कीधी तिवारे पूर्वलो वात पूछी सर्व कही भणाववा मांड्यो नव पूर्व भण्या दसमो पूर्व भणतां आलस थयो गुरुने कहे केतलो एक भणवो छे गुरु कहे बिंदुमात्र भण्ये समुद्र थाके छे गुरु थाको जांणी सभा राखी आचार्य पद दीधो एहवे पाछलि थी भाई तेडवा आव्यो तेहने प्रति बोधदे दीक्षा लीधी तिहां थी विहार करी माता पिता ताइं

उ टीका
अ २
६५

साधुर्वस्त्रेषु परिजीर्णेषु मत्सु इति न चिन्तयेत् मनसि न विचारयेत् इतीति किं अहं वस्त्राभावे अचेलको निर्वस्त्रो भविष्यामि न विद्यते चेल वस्त्र यस्य स अचेलक इति दैन्य न कुर्यात् अथवा एतादृश जीर्णं स्फाटितवस्त्र मां दृष्ट्वा कश्चिद्धर्मात्मा दाता मह्य वस्त्र दास्यति तदाहं सचेलको वस्त्रसहितो भविष्यामी ति प्रमोदभाग अपि न स्यात् एतावता वस्त्रस्य अप्राप्तौ वस्त्रस्य प्राप्तौ वाविषादो वाहर्षो वा साधुना न विधेय प्राप्ताऽप्राप्तौ सहर्षे न भाव्य मित्यर्थं १२ पुन साधु रेव चिन्तयेत् एकदा जिनकल्पावस्थाया साधु रचेलक स्यात् इय मपि साधो रेवा वस्था स्थविरकल्पे पिदुर्लभ

भाषा

नेवदाविवानेदस पुर आव्या देसना दीधी वैराग्य थो रुद्रसोमा भाई फलु रक्षित प्रमुखने दीक्षा दीधी तेहवे सोमदेव पिता ते पिण पुत्रपासे रहे लाजना वस थी कमडल धोतीयो उपानह आपणो लिंग मूके नहीं एकदा गुरु बालकाने सीखव्यो बीजा साधुने वादिज्यो पिता सोम देवने मति वाद ज्यो तिणे वामका तिमज कीधी तिवारे सोम कहे तुम्हे माहरा बेटा सर्वं वाथा मुझने किम न वांदो स्यू दीक्षा न थी लीवी बालकां कह्यो दीक्षा धारो पामे छत्रादिक न हुवे एहवो वचन सुणी छत्रकमडलादि सर्वंमे छांड्या पिण एक काछि धोतीयो राखे तेहवे एक साधु अणसण कीधे कालगतहुओ तिहां आचार्य काढि पटो कडाडिवा भणी साधुने कहे अहो साधु एमृत कने कांधे करी वहे महा पुण्य तिवारे सोमदेव कह्यो हु वहो सवली गुरु बोल्या इहां घणा उपसर्ग थाये वेडालागे इम दृढ चित्ते सोम देवे मृतक लीधो आवेरो जाता बालके सकेत थी धोतीयो काढी लीधु बीजो धोतीयो साधु पहिराव्यो चेतनो भूमिज इती वोसरावि गुरु कन्हे आव्यो गुरु कह्यो ल्यावो लांबो धोतीयो सोमदेवने पहिरावो तिवारे सोमदेव कहे जे सरीर देख तो हुतो ते दीठो हिवे एहज चोलपटो पछे मानोपेत वस्त्र धारी सूधो चारीत्र पाल्यो तेणे पहिलो अचेलक परीसरीसह न सह्यो पछे सह्यो तिम बीजे सहिवो इति अचेलक परीसह दृष्टांत अथाग्रे सूत्र। वस्त्र रहित संयमने विषे अरति जयज वानो संभव ते भणी सातमो अरती परीसह कहे छे यामा

वस्त्रलेन पूर्ववस्त्रस्य जीर्णत्वात् नाशे जाते सति अपरवस्त्रप्राप्त्यभावेन निमित्तं विनापिनिर्वस्त्रः स्यात् तदा मनसि साधुना इति विचिन्तनीयं इदानीं अहं जिनकल्पावस्था भजामि जिनकल्पी तुमुनि रचेलक एव तिष्ठति पुन रेकदा स्थविरकल्पावस्थायां वस्त्रस्य धारणेन सचेलकः अपि भवेत् एवं अमुना प्रकारेण वस्त्राभावे जिनकल्पावस्थाचिन्तनेन वस्त्रसद्भावे स्थविरकल्पावस्था चिन्तनेन उभयं धर्मं ज्ञात्वा ज्ञानी साधुर्नो परिदेवेत नो विलापं कुर्वीत कीदृशं धर्मं हितं हितकारकं १२ अत्र पितृसोमदेव मातृभद्रसोमा भ्रातृफल्गुरक्षितादीनां कथाः। यथा दशपुरे नगरे सोमदेवो द्विजो स्तितस्य भार्या रुद्रसोमानाम्नी वर्त्तते तयोः पुत्रौ आर्यरक्षित फल्गुरक्षितौ स्तः आर्यरक्षितेन पितुर्विद्या पूर्णा गृहीता पश्चात् पाटलिपुरे नगरे अधिकविद्यापठनाय कस्यचि दुपाध्यायस्य पार्श्वे गतः तत्र तेन सांगोपाङ्गाश्चत्वारो वेदाः पठिताः चतुर्दशविद्यास्थानानि गृहीतानि ततो दसपुरं नगरं प्राप्तः नृपादि सकललोकैः प्रवेसोत्सवं कृत्वा पूजितश्च स्वगृहे गत्वा मातरपितरौ प्रणतः पिता अतीव हर्षवान् जातः माता तु नैव हर्षं मनाग् दर्शयति आर्यरक्षितः प्राह हे मात स्त्वं मदध्ययनेन किं न हृष्टाः सा प्राहकि मनेन जीवघातादिनिमित्तेन बहुशास्त्राऽध्ययनेन किं त्वया दृष्टि वादोऽधीतः येन मम हर्षं स्यात् तत स्तेन पृष्टं दृष्टिवादं क्वास्ति मात्रोक्तं इक्षुवाटके स्थितानां तोसलिपुत्राचार्याणां समीपेस्ति तत स्तेन भणितं मातः कल्ये तत्र यास्यामि दृष्टिवादभणनार्थं रात्रौ सुप्तः सन् वश्चितयतिदृष्टीनां वादः दृष्टिवाद इति नामाप्यऽस्य शास्त्रस्य सुन्दर मिति प्रभाते तत् भणनार्थं तत्र चलितः मार्गे प्रथमत एव दसपुरनगर प्रत्यासन्नग्रामवासी पितृमित्रं सार्द्धनवेक्षुयष्टियुतहस्तो ब्राह्मणो मिलितः कथितश्च तेन अहं मिलनार्थं आगतोस्मि ततः स्वागतं परस्पर पृष्ट पश्चादार्यरक्षितेनोक्तं अह क्वचित्कार्याय गच्छन्नस्मि इदं सार्द्धनवेक्षुयष्टिप्राभृत मातुर्हस्तेऽर्पणीयंकथनीय श्चाह पूर्वं मार्यरक्षिताय मिलितः अथ तेन तथै वकृतं ततो माता तुष्टा सती चिन्तयति मम पुत्रेण सुन्दर मङ्गलं दृष्टं सार्द्धनवपूर्वाण्यध्येष्यति

पुत्र भार्यरक्षितोऽपि शुभं शकुनं चिन्तयन् गत इक्षुवाटक तले कस्मिन् पार्श्वे स्थित्वा ढड्ढरश्रावकवन्दन विधि दृष्ट्वा उपाश्रयमध्येप्रविष्ट वन्दिता स्तोसलि
पुत्राचार्या ते पृष्ट स्वरूपं प्रयोजनञ्च सर्वं मप्युक्ता मम दृष्टिवाद मऽध्यापयतेति यदन्त त सूरय प्रोचु यद्यऽस्म दन्तिक प्रव्रज्यां गृह्णासि तदा
त्वमध्यापयाम तेनोक्त एव मप्यस्तु तत स प्रव्रजित कथयति भगवन्नत्र सकललोकव्याप्तिमस्य मम विद्याप्रक्षया स्वल्प मेव भावितेन क्वाप्यन्यत्र
गम्यते गुरुभि स्तथा कृत भणितोऽसौ सो पाङ्गानि एकादशाङ्गानि भथ पूर्वपठनार्थं तोसलिपुत्राचार्यैरसावार्यरक्षित श्रीवज्रस्वाम्यन्तिके प्रेषित पथि
गच्छन् मध्ये श्रीभद्र गुप्तसूरीणा निर्यापना कृतवान् तैरात्त समये प्रोक्त पठता त्वयावज्रस्वामिमण्डल्या न स्थेय यत स्तन्मण्डलीस्थाता तेनैव सह
म्रियते एवं तच्छिक्षां श्रुत्वा ततो गत श्रीवज्रस्वामिपार्श्वेतैश्च रात्रौ चोरभृत पात्र मागन्तु केन पिपत्त किञ्चिदून पीतमिति स्वप्नो दृष्ट तत
स्तेन पृथक् स्थण्डिलं कृत्वा अधीतानि श्रीवज्रस्वामिपार्श्वे नवपूर्वाणि वज्रस्वामी तु पृथक् मण्डली कारण ज्ञात्वा न किञ्चित्तस्यो क्तवान् दशमपूर्वा
धिकारा केचन यावत्तेन पठिता स्तावद्दशपुराच्चिरकालविरहार्दित मातृपितृप्रमुखकुटुम्ब प्रेरित फल्गुरक्षितो भ्राता तस्याकारणाय समा यात
स्तमार्यरक्षितेन तत्रैव प्रतिबोध्य प्रव्राजित एकदा भार्यरक्षित श्रीवज्रस्वामिनं पृच्छति भगवन्नत परं पूर्वपाठ कियानवशिष्टोऽस्ति वज्रस्वाम्याह
वत्स त्वया बिंदुमात्रं पठितं समुद्रोपमं दशमं पूर्व मस्ति ततोऽसौ श्रान्त परिश्राम प्राह नाऽहमत पर पूर्वं पाठ कर्तुं शक्नोमि गुरवस्तु दशम पूर्वाङ्गस्य
स्वस्मिन्नेवव्युच्छेद ज्ञात्वा मौनेन स्थिता असौ गुरून नुमाप्य स्वसांसारिक वन्दापनार्थं दशपुर नगरे प्राप्त गच्छतस्तस्य गुरुणा सूरिपद दत्त भथा
र्यरक्षित सूरिस्तत्र स्व मातृभगिनी प्रमुख सर्वसांसारिकवर्गो दीक्षां ग्राहित पिता तु प्रतिबोधितोऽपि साधुलिङ्ग न गृह्णाति स्व ज्ञातीयजनानां
लज्जां स० वहति आचार्या दीक्षाग्रहणाय तस्य बहु कथयन्ति तत कथति पृथुल वस्त्रयुगल १ यज्ञोपवीत २ कमण्डलु ३ छत्रिका ४ उपानद्ध ५

समश्चेत् दीक्षां ददासि तदालामि ततो लाभं दृष्ट्वा तादृशमेवतं गुरुः प्रव्रजितवान् ग्राहितश्चरण करणस्वाध्यायं अन्यदा चैत्यवन्दनार्थं गता आचार्या तत्र साधुशिक्षिता गृहस्थडिम्भका वदन्ति एनं छत्रिणं मुक्त्वा सर्वान् साधुन् वन्दामहे ततः स वृद्धो वक्ति मम पुत्रा न मुद्दिय एते वन्दिताः अहं कस्मान्न वन्दितः किं मया दीक्षा न गृहीता ते आहुः किं दीक्षितस्य छत्रकमण्डलादीनिस्युः ततो गुरुषु आगतेषु स वृद्धो वक्ति पुत्र मम डिम्भका अपि हसन्ति ततो न कार्यं छत्रेण एवं प्रयोगेण क्रमतो धोतिकवस्त्रं मुक्त्वा सर्वन्त्याजितः बहुशस्तथा प्रयोगकरणेपि धोतिकं न मुञ्चति अन्यदा एकः साधुर्गृहीता नशनः स्वर्गं गतः ततः आचार्यैस्तस्य धोतिकत्याजनाय साधुन् प्रत्येवमुक्तं य एनं मृतसाधुं व्युत्सृष्टं स्कन्धे न वहति तस्य महत्पुण्यं ततः स स्थविरो वक्ति पुत्रात्र किं बहुनिर्जरा आचार्याः आहुः बाढन्ततः स वक्ति अहं वहामि आचार्या वदन्ति अत्रोप सर्गाजायन्ते चेटकरूपाणि लगन्ते यदि शक्नुतेऽधिसोढुं तदा वरं यदि क्षोभो भविष्यति तदा शुभमस्माकं भविष्यति एवं स्थिरीकृत्य स तत्र नियुञ्जितः साधुसाध्वी समुदायः पृष्ठौ स्थितः या वत्तेन साधुशव स्कन्धे समारोप्य वोढुमारब्धं तावत्तस्य धोतिकं गुरुशिक्षितडिम्भकै राकर्षितं स लज्जया यावत्तत्साधुशव स्कन्धान्मुञ्चति तावदन्यै रुक्तं मा मुञ्च २ एकेन चोलपट्टको दवरकेन कृत्वा कटौ बद्धः स तु लज्जया तत्साधुशवं द्वारभूमिं यावत् उदूह्य तत्र व्युत्सृज्य पश्चादागतो वक्ति पुत्राद्य महानुपसर्गो जातः आहुराचार्याः आनीयतां धोतिकं परिधाप्यतां ततः स वक्ति अथाऽलं धोतिकेन यत् द्रष्टव्यं तत् दृष्टमेव अथ चोलपट्टएवास्तु पूर्वन्ते न अचेल परीषहो न सोढः पश्चात्सोढः ३ अथ अचेलकस्य शीतादिभिः अरतिः स्यात् अतस्तत्परीषहमाह गामाणुगामं रीयन्तं अणगारं अकिंचणं अरई अणुप्प वेसे तं तितिक्खे परीसहं २४ अरइं पिट्ठओ किच्चा विरए आयरक्खिए धम्मारामे निरारम्भे उवसन्ते मुणीचरे १५ अरतिः संयमेऽधैर्यं यदा अनगारं अनुप्रविशेत् अरति परीषहो मुनिं स्पृशेत् तदा साधु स्तं परीषहं तितिक्षेत सहेत किं कुर्वन्तं अनगारं ग्रामानुग्रामं रीयन्तं ग्रामं ग्रामं अनु इत्य

ग्रामं एक ग्राम व्रजतो मुने अन्तराले आगत ग्राम अनुग्राम त्त्व विचरन्त कोदृश अनगारं अकिञ्चन न विद्यते किञ्चन यस्य स अकिञ्चन स्तं परिग्रहरहित पुनरत्र एव दृढयति मुनि अरति परिग्रहे उत्पन्ने सतिअरति पृष्टत कृत्वा दूरे कृत्वा धर्माराम सन् संयममार्गे चरेत् विचरेत् धर्मे आर मते रति करोतोति धर्माराम पुन कोदृश साधुर्विरत आश्रवात् रहित पुन कोदृशोनिरारम्भ आरंभ रहित पुन कोदृश उपशान्त नि कषाय १५ अत्र पुरोहित राज पुत्रयो कथा। यथा अचलपुरे जितशत्रु नृपपुत्र अपराजितनामा रोहाचार्यपार्श्वे दीक्षित अन्यदा विहरन् तगरा नगरीं गत तावता उज्जयिन्या आर्यरोहाचार्य शिष्यास्तत्रागता पृष्ट साधुना तेन उज्जयिन्या स्वरूप ते रुक्त सव तत्र वर नृपपुत्रा अमात्यपुत्रो साधूनुद्वेजयत ततो गुरुना आपृच्छ्य भ्रात्रव्यप्रबोधाय शीघ्र मुज्जयिन्या गत तत्र भिक्षावेलाया लोकैर्वार्यमाणो पिबाढ स्वरेण धर्मलाभ इति पठन् राज कुले प्रविष्ट राजपुत्रा अमात्य पुत्राभ्यां सोपहास माकारितोऽभ्यागच्छत वन्द्यते तत सगत ताभ्या उक्त वेत्सि नर्त्तितु तेनोक्त वाढ पर युवां वाद यता तौ तादृश वादयितु न जानीत तत स्तेन तथा तौ कुट्टितो पृथक् कृतहस्तपादादि सन्धिवन्धनौ यथा अत्यन्त माराटि कुरुत तौ तादृशा वेव मुक्त्वा साधु रुपाश्रये समायात ततो राजा सर्वबलेन तत्रायत स्त उपलक्ष्य प्रसादनाय तस्य पादयो रपात उवाच स्वामिन् सापराधावपि इमौ मन्मोकार्यौ अत पर मपराध न करिष्यत साधुनोक्त यदी मौ प्रव्रजत स्तदा मुञ्चामि राज्ञोक्त एव मस्तु ततस्तौ प्रथम लोच कृत्वा प्रव्रा

अणु,पवेसे ततितिक्खे परोसहं ॥१४॥ अरइं पिट्ठओ किच्चा विरए आय रक्खिए। धम्मारामे निरारम्भे उवसंते

पामप्रते रो० विचरता अ० अणगारने अ परिग्रहे रहितने अ० संयमने विषे अधीर्य पणो अ० प्रवेसने विषे त० ते अणो अरति रूप ति सहवो प० परोसहं'अ संयमनें विषे अधीर्यपणु पि० परहो करी करीने वि० हिंस्यादि कथी निवर्त्यो एहवो वीरतो अ० दुर्गतना हेतु थी आत्मा राख्यो जेणे

ध० तेसधु धर्मरूपोयो आरामने विषे रतिपांमे नि० आरंभ रहित उ० उपशांत थको साधु व० चाले संयम मार्गने विषे १५ अरति परिसह उपरि कथा अचल पुरनगर जित शत्रु राजा तेहनो पुत्र अपरा जितना मातिणें रो हाचार्य पासें दीक्षा लीधी अन्यदा विहार करतां तगरा नगरी गत ते समें अवंती थको आर्य रोहाचार्यानो शिष्य तीहां आव्या पुछे साधु तेनें ते कहे अवंती थकी आव्या तिणें पुछ्यु तिहां साधु नाभक्ति करणहार के हवा ते कहे सर्वजनधरमो पण नृपपुत्र साधुनाद्वेषी एहवा समाचार सांभली गुर शीष्यने आज्ञा दीधीजे तुमे जे तुमारा भाइनें प्रतिबोधी शीघ्र जाओ तिवारे शिष्य अवती आव्या अनुक्रमें गोचरीनीवे लागी चरियें चाल्या तिवारे लोके वार्या रखे राजानें घरे गोचरी जाओ मती तिणे कहण न मान्यो राजद्वारे जाइ गाढा साद करी धर्म लाभ उच्चरे राजपुत्र अमात्य पुत्र आवी हासो करवा लागा आवो तुमने वांदीए तिवारे ते पासे गया तिवारे साधुप्रते कहे तुमे स्युजाणोछो तिवारे साधु कहे हमे सर्वजाणीइ तिवारेते कहे नृत्य करी जाणो साधु कहे कहो तेहवो नाचकीजें ते कहे अमे वाजाउं ते प्रमाणे नाचसो साधु कहे तुम कहो ते प्रमाणतो वारवली साधु कहे तुम वाजावस्यो तिम नाचवो अनें अमे नाचुते प्रमाणे तुम वजावस्यो तिवारें तिणें वातमानी वलतो साधु भणें जे जे हनो प्रतीज्ञा न पूरवें तेहनेंस्यो दंड तिवारे बेइकुमर कहे जे जे हनो प्रतिज्ञा न पूरवे तेहारे जे जीते तेहने मनमाने ते करे इम करी साधुने न चावे अने बेकुमर वजावे तेवाजा प्रमाणे साध नाच करे साध महा कलापात्र साधे बेइ कुमरने जीती राजी कीधा तिवारे साध कहे अमो अमा राजाणानो नाच करी अंते प्रमाणें वाजा वजावो तिवारे तिणे वात मानी बेइ कुमर वाजावजावे अने साथ नाच करे तिवारे साध नाचेते प्रमाणें वाजानोमेल उतरे नही साधु तो वीद्यानें बले जोते साधु जीत्या तेहाओ तिवारे बेइकुमर कहे स्वामी तुमारी जीत थइ तुमारे चीत्त मानेते दंड करो तीवारे साधर जोहरण संघाते मोहकमकुट्या अनुक्रमे साधु थानके आव्या

पण वेदकुमरने महावेदनाउपनावी आक्रद करे शरीर शितल करी मांव्यो अनुक्रमे राजाभोजनने अवसर मंदिरमां आवी कुमरने तेडावें कुमर आवे तो भोजन कीजे तिवारे कुमरना पास वानशेवक कहे महाराज कुमरनें महा वेदना छे राजा कहे वेदना नो उपाय करो तिवारें जिम जिम उपाय करें तिम तिम वेदना अधिक थाए वली कुमरनासेवक कह महाराज इहा साध आव्या हता तिणें वेदकुमरने मोहकम मारदीधी रजो हरण सघातें तिवारें राजा वचन साभलो कहे के साध उपगारी साध उपगार कर्यो हसे एह मोनिश्चे हवें कुमरनें महा वेदना मरर्णात कष्ट मरण भलो पणवेदना नखमाये तिवारे साधुनें पूछ्यो स्वामीए हनें समाधि कि मथाए तिवारें साधु कहे भेलें कुमर दीख्याले तो समाधि थाए तिवारें माता पिता कहे दीषा लेता वेदन जाए घणो भलो तिवारें कुमरनें पूछे तुम दिक्षा लेस्यो तेसरो रेसाता थाए तिषें चारित्र ले माउ जमार्ले थया तिवारे साध आपणो विद्या अपहरी सरीरे साता थाई तिवारें तेहनें माता पिताइ घणो महोत्सवे दीक्षा लोधी साधुनो आचार सूत्र सोद्धान्त भणावो देस नादेवा समर्थ थया अनुक्रमे गुरनो आज्ञा लेइ विहार करे कडेवे राज्यपूत्र चारीत्र पाले अमात्य पुत्र अननाचितवेजे सुभने बलात् कारे दीक्षादीधो पर चारित्रपालो देव गते गया अथिन् एहवा समयनें विषे कोशांबी नगरी मां तापस श्रेष्ट मरणपामी पोतानें घरे शुकर थयो तिवारे तेहने जाति स्मरण न्यपनो सर्व पोताना सुतादी कुटब प्रमुख समस्तनें जाणे पण बोलो सके नही अन्यदातस्य सुतते हनें शुकरो हणित शुकर पोता नाघरमासर्प्प उपज्यो ते सर्पने जाति स्मरण उपनो तीपतें सर्पने हण्यो तिवारेते सर्प नीयो निथकी पुत्रनें घरे पुत्र उपन्यो ते बाल कनें पिण जाति स्मरण उपनो तिवारे बालक मनमे चितवे आतो माहरा पूत्रनी स्त्री एहने माता किमकहु आमाहरो पुत्र तेहनें पिता किम कहु इमजाणो ते बालक बोलें नही माता पिता जाण्यो आ बालक गु गोछे इम करता ते बाल कमोटो थयो मोन पणे रहें ममनीवात कोई जाणे

नहो इम करतां कोइक प्रानी गुर आहारनें अर्थ आव्या तिणेंते बालक देखी शरीरनीचेष्टा जोईने साधु बतलावें तिवारे पाडोसण स्त्री बोली
जे स्वामी ए बालक जन्मनोज गुंगोछे तिवारे साधु कहे ओगुंगो न थी इवणा वाती करस्यें इम कही एक गाथा कहो यत गाथा तापस कि मिण
सूअ वएणपडि वज्ज जाणि यंधम्मं मरि उणारो रगजाओ जाओ पूतम्म पूत्तति १ अर्थ तापस मरोस वरययो सूवरने पूत्र माख्यो तिवारे सर्प थयो
सर्प हण्यो तिवारे पूतनें घरे पूत थयो एहवी गाथानो अर्थ समझीनें ते बालकनें प्रतिबोध लागो तिवारे मुखे बोल्यो शुश्रावकथयो एतला
समयने विषेसी अमात्य पुत्रो जीव देगो महा विदेह तीर्थ करनें पूछे स्वामिमाहरो जीव सुलभ बोधी किवा दुर्लभ बोधी तीवारे तीर्थ कर कहे
त्व दुर्लभ बोधी कोसंबी नगरीमा गुंगानो भाइ थाइस एहवो भगवाननो वचन सुणो ते देवता गुंगा पासें आवे तेहने बहु द्रव्य आ पीवात कहेछु
देवता नाभवथकी चवीस ताहरो लघुभाई थाईस वली मातानें आम्रनो अकालें दोहलो उपजस्ये तिवारेतुं सदा फलआम्र आपजे वली मुझने
धर्म्म उपजें प्रतिबोध लागे तिमकोजे ए वातनो मुझनें वचन आप तिवारें ते देवता वचन लेई देव देव लोके गयो एतले देवतानो आयु
पूर्णकरो तिहां अवतरे अनुक्रमे मातानें दोहलो आम्रनो उपनो तेज वनें शाता उपजें तिम आम्र आपी संतोष उपजायो अनुक्रमे जन्म थयो
घणो उछाहेंना मदोधो अनुक्रमे ते गुंगो श्रावक उपाश्रय जाय तिवारे लघुभ्राता ने ले जाए तीहां ते बालक साधु ने देखि घणो रुदन करे
अनुक्रमेतें बालक हृद थयो तेहनें उपदेश साध आपेते दुर्लभ बोहि तेहनें किमही उपदेश नलागेतेतो वचने बंधाणो धर्मशालामा धर्म सांभ
लवालेइ जाए तेहने उपदेशन लागो एतले ते गुंगो श्रावक धर्म्म सांभलो वैराग्य पणे पामी दीक्षालीधी रूडो चारीत्र पालो मरण पामी देवता
थयो अनुक्रमे देवताइं ज्ञाने करो पूर्व भव वृत्तात सम स्तदीठो तिवारें देवतानें वचनदीधो हतो ते संभारे तीवारे देवता दुर्लभ बोधिनें सुलभ बोधि

करवाने अर्थे देवता देवलोक थकी आवी जलोदरनो रोग उपजाव्यो पछे ते वैद्यनो रूप करी तेहने पासे इम कहे आछोया एतो रू, आपीश ए असाध्य रोग तदा ते जलोदरी कहे जे मागीते आपीश तिवारे वैद कहे जो माहरी साथे आवे तो साजो करू माहरो औषधनो को थलो उठावजे वीजो कांइ मागतो नथी तिवारे ते वात मानी वैद्यरोग दूर कीधो तीवारे तेहने वैद्य साथे लेइ माथें कोथली दीधी ते कोथलीलेइ साथे भमे एतले देवमाया थकी जिम जिम चाले तिम तिम कोथलो भारी थाए ते भार वहता अतीसार थयो महाखेद पाम्यो जाई सके नही अने जाइ तो पाछो जलोदर उपजे इम विमासे इम खेद पामतो साथे भमे भमता एक नगर मासा घने सूत्र भणता दीठो तिहा ते वैद भारवाहकने साथें लीधे साधु पासे जाइ वादे देशना साभले देसना साभली ते भार वाहक प्रते कहे तु दीचा लेतो तुझने छोडीइ तिवारे ते भारवाहक कहे हवे दीचा लेवी तिहा तेहने दीचा दीवरावी देवता देवलोक गयो पुठे तिणे दीचा छाडी तिवारे वली देवताइ जलोदरी कीधो वलो वैदरूप देवता आवो तेहने कहे जो दीचा लेतो तुझने साजो कोने अन्यथा साजो न थाए तिवारे तिणे वलोदीचा लेवा वात मानी तीवारे तेहनो रोग गीवाव्यो वली दीचादिवरावी देवता देवलोक गयो वली तिम जतोणे दीचा छांडी इम एहवी रीते त्रीण वार दीचा दिवरावी वेद्यरूपे देवता तेहनी साथे भमे सुलभ बोधी करवाने अर्थे इम करता विहार करता मार्गमे गाम आव्यो गाम बलतो दीठो एतले ते वैद एक तृणनो भारो लेई गाममा जाए तिवारे ते साधु कहे बलता गाममा तृण लेइ कीम प्रवेश करे छे लज्जा न थी आवती तिवारे वैद कहे तुमे पण क्रोध मान मायाली भमा बलोकौ वारवार ग्रहस्थावासमा जायो छो वारवार तुमने समझावीए छे ससार अगन समान तुम किम प्रवेश करो छो इम उपदेश आपे तो दुर्लभ बोधिने उपदेश न लागे वली तिहा थकी विहार करे मार्गे अटवी आवी तिहा देव वैद्यरूप छे ते मार्ग छाडी काटा ▮▮ तिणे पथे चाले साधु कहे कीम वाट छाडे काटो लागसे देव कहे तुम कीम गड पथ चारित्र छाडीस

जितो सत्र राजपुत्रो निःशङ्कतो धर्मं करोति इतरस्तु अमर्षं वहति अहं बलेन प्रव्राजित इति चेतसु द्वेग वहति पर पालयितो द्वावपि चारित्रं शुद्धं मृत्वा तौ दिवं गतौ अस्मिन्न वसरे कौशांब्यां तापस श्रेष्ठी मृत्वा स्वगृहे शूकरो जातः तत्र जातिस्मरणं प्राप्तवान् सर्वं स्व सुतादि कुटुम्बं प्रत्य भिजानाति परं वक्तु न किञ्चित् शक्नोति अन्यदा सुतैरेपः शूकरो मारितःस्वगृहे एव सर्पो जातः तत्रापि जाति स्मरणवान् तैरेव मारितः पुत्र पुत्रो जातः तत्रापि जातिस्मरणं माप स एवं चिन्तयति कथमे तां पूर्वं भववधूं मातरं अहं उल्लपामि कथं चे मं पूर्वभवपुत्रं पितर मह मुल्लपामीति विचार्य मौन माश्रितः मूकव्रतभाग् जातः अन्यदा केनचित् चतुर्ज्ञानिना तद्बोधं ज्ञात्वा स्व शिष्ययो मुखे गाथा प्रेषिता तावस किनिणा मूअव्वएणं पडिवज्ज जाणि अन्धम्मं मरिऊण सूअरोरगजाओ पुत्तत्ति १ एतां गाथां श्रुत्वा प्रति बुद्धो गुरूणां सुश्रावकोऽभूत् एतस्मिन्न वसरे सोऽमात्य पुत्रजीव देवो महाविदेहे तीर्थङ्करसमीपे पृच्छति भगवन् किमहं सुलभबोधिर्दुर्लभबोधिर्वा इति प्रश्ने प्रोक्तं तीर्थङ्करेण त्वं दुर्लभबोधिः कौशांब्यांमूकभ्राताभावीति

भाषा

सार रुपो कांटा मा पडो छो वलो ते प्रति बोधन पामे वलो तिहां थको एक यचना देहरे जाए तीहां यच्च एहवुं करे के जोवारे कोई फल फूल ने वेद्य चढावे तोवारे यच्च ऊंधा मुख करो पडे पछे ते यच प्रते दुर्लभ बोधि कहे रे अधम त्वं अधोमुखे कोम पडे छे तोवारे ते यच्च कहे तुमकोम जगत् वंदनोक साधुनो मार्ग छांडे तोवारे साधु कहे तुं कुण छे तोवारे देवता गुंगानो रुप करो देखाड्यो वलो पूर्वला भवनो संबंध कह्यो तोवारे ते कहे इहांथो परमार्थ तोवारे वे ताव्य पर्वते देव प्रतिमा जुहारवा गया तोहां कोईक सिडना देहरा नाखुणामां दुर्लभ बोधि अने सुलभ बोधि गुंगानो रुप स्वकुल युगल रुप याप्यो ते देखो जाति समरण उपनो दुर्लभ बोधोने तिवारे ते प्रतिबोधाणो श्रद्धा आवो रुडो रीते चारित्र पाले शिवगत लाधो इम प्रथम अरती पछे रति इम समस्त साधु अरति परिसह जोम गुंगे कठिन पणे समकोत आदर्यो इति अरति परो

लब्धोत्तर ॥ सुरो गतो मूकपार्श्वे तस्य बहुद्रव्य दत्वा प्रोक्तवान् यदाह त्वन्मा तुरुदरे उत्पत्स्ये तदा तस्या आम्रदोहदो भविष्यति स दोहद साम्प्रत मद्दर्शित सदाफलाम्रफलेस्त्वया तदानीन्तस्या पुर्णीकार्यं पुनस्त्वया तथा विधेय यथा तदानीं मम धर्मप्राप्ति स्यात् एव उक्त्वागतो देव अन्यदा देवलोकात् च्युत्वा स देवस्तस्या गर्भे समुत्पन्न तस्याआम्रदोहद समुत्पन्नो मूकेन पूर्वोक्तरीत्या पूरित पुत्रोजात मूकसुत बाल लघुमपि करे कृत्वा देवान् साधून् वन्दापयति पर स दुर्लभ बोधित्वेन तान् दृष्टा रटति एव आबालकालादपि अग्र प्रतिबोधितोपि स न बुध्यति ततो मूक प्रव्रजितो गत स्वर्गं अथ देवी भूतेन मूकजीवेन तद्दुर्लभबोधि बाल प्रतिबोधित्तु जलोदरव्यथावान् कृत वैद्यरूप कृत्वा देवेन उक्त अह सर्वरोगोपशम करोमि जलोदरी वक्ति मम जलोदरोपशान्ति कुरु वैद्येनोक्त तवासाध्योय रोग तथाप्यह प्रतीकार करोमि यदि मम पृष्टो औषधकोत्थलक समुत्पाद्य ममैव सहागमिष्यसि तेनोक्त एव भवतु ततो वैद्येन स जलोदरी सज्जीकृत समाधि भाग जात ततस्तस्योत्पाटनाय औषधकोत्थल कस्तेन दत्त स तत्पृष्टो भ्रमन् त कोत्थलक मुत्पाटयति देवमायया स कोत्थलकोऽति भारवान् जातस्त अतिभार वहन साखिद्यति परन्त मुत् सज्य पश्चात्तन्तु न शक्नोति नाभूत्पश्चात्तस्मै पुनर्जलोदर व्यथे ति विमर्श कुर्वन् वैद्यस्यैव पृष्ठो कोत्थलक वहन् भ्रमति एकदा एकस्मिन् देशे स्वाध्याय कुर्वन्त साधवो दृष्टा तत्रतो गतो वैद्येनोक्त त्व दीक्षा गृहीष्यसि यथा त्वा मुञ्चामि स भारभग्नो वक्ति गृहीष्याम्येव ततो वैद्येन अस्य दी क्षादापिता देवे च स्वस्थानङ्गते तेन दीक्षा परित्यक्ता देवेन पुनरपि तथैव जलोदर कृत्वा वैद्यरूपधरेण पुनरऽसो दीक्षा ग्राहित पुनर्गते च देवेन तेन दीक्षात्यक्ता तृतीयवार दीक्षा दापयित्वा वैद्यरूपो देव साह्व तिष्ठति स्थिरीकरणाय एकदा तृणभार गृहीत्वा स देव प्रज्वलद्ग्रामे प्रविशति ततस्तेन साधुनोक्त ज्वलति ग्रामे कथ प्रविशसि देवेनोक्त त्वमपि क्रोधमानमायालोभै प्रज्ज्वलते गृहवासे वार २ वार्यमाणोपि पुन पुन कथ प्रवि

असि वैद्यरूपेन देवेनैवमुक्तोपि स न बुध्यति अन्यदातौ अटव्यां गतौ देव: कण्टकाकुले मार्गे चरति स प्राह कस्मादुन्मार्गेण यासि देवेनोक्तं त्वमपि विशुद्धं निर्मलं संयममार्गं परित्यज्य आधिव्याधिरूपे कण्टकाकीर्णे ससारमार्गे कस्माद्यासि एवं देवेनोक्तोऽपि सन बुध्यते पुनरेकस्मिन् देव कुलेतो गतौ तत्र यच ईप्सित पूजा पूज्यमानोपि पुन: पुनरधोमुख: पतति स कथयति अहो यचस्य अधमत्वं यत्पूज्यमानोप्ययमधोमुख: पतति देवेनोक्तं त्वम प्येतादृशोऽधम: यद्वंद्यमान: पूज्यमानोऽपि त्वं पुन: पुन: पतसि तत: स साधुर्वक्तिकस्त्वं देवेन मूकस्वरूपंदर्शितं पूर्वभवसम्बन्धश्च कथित: स वक्ति मम क: प्रत्यय: ततो वैताढ्ये चैत्यवन्दापनार्थं देवेनाऽसौ प्रापित: तत्रैकस्मिन् सिद्धायतनकोणे दुर्लभबोधिदेवेन स्वबोधाय मूकविदितं राकुण्डलयुगलं स्थापितं अभूत् तत्तदानीं दर्शितं तत स्तस्य जातिस्मरणं जातं तेनाऽस्य चारित्रे दृढताऽभूत् अस्य पूर्वं अरति: पश्चात्रति: अथ संयमे अरति सद्भावे सतिस्त्रीपुरुष हास्यात् स च परीषहो सोढव्य: अतस्तत्परीषहमाह संगो एसमणुस्साणं जाओ लोगमि इत्थीओ जस्स एया परिन्नाया सुकडन्तस्स सामण्णं १६ एव मादाय मेहावी पङ्कभूयाओ इत्थीओ नो ताहिं विहन्निज्जा चरिज्जत्तगवेसए १७ लोके अस्मिन् संसारे मनुष्याणां एता स्त्रिय: संगो जातास्त्रि

सूत्र

मुणी चरे ॥१५॥ संगो एस मणुस्साणं जाओ लोगंमि इत्थिओ। जस्स एया परिन्नाया सुकडं तस्स सामण्णं ॥१६॥
एव मादाय मेहावी पंकभूयाओ इत्थिओ। नो ताहिं विहन्नेज्जा चरेज्जत्त गवेसए ॥१७॥ एगएव चरे लाढे अभि

भाषा

सह कथा संपूर्ण। संयमने विषे अरति उपने स्त्रीनो परीसह उपजवा नो संभव ते भणी स्त्रीनो ८ परिसह कहे छे स॰ नारात था वानो हेतुसजधनी कारणहारीए॰ एस्त्रीम॰ लोकनो जलोक मनुष्यादि इ॰ स्त्रीदेवांगनादिके ज॰ जे साधुने एहवो जाणपणं हुई एसर्व प्रकारे गनर्थना हेतुपणे ए॰ सर्व

नराणां स्त्रियो बन्धनं वर्त्तते यथा मृगाणां बन्धनं वा गुरादि विद्यते मगच्छते वशीभवति जीवो यस्मात् स सङ्ग बन्धनं इत्यर्थं अत्र मनुष्य ग्रहण
तेषामेव मैथुन सञ्ज्ञाया आधिक्यात् यथा मक्षिकाणां श्लेष्मसंगो बन्धनं तथा पुरुषाणां स्त्रियो बन्धनं इत्यर्थं यस्य साधो एता स्त्रिय परिसमन्तात्
ज्ञपरिज्ञया परिज्ञतवुद्धा ज्ञाता प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याता परित्यक्ता अनर्थहेतुरप्रज्ञाता अत्र प्राकृतत्वात् तृतीयास्थाने षष्ठीयेन साधुना
स्त्रिय एतादृशी ज्ञाता तस्य साधो श्रामण्य सुकृत साध्वाचार सफल १६ मेधावी धर्ममर्यादायान ताभि स्त्रीभिर्निविहन्यात संयम जीवित
घातेन आत्मानं न विनाशयेत् किन्तु आत्मगवेषकसन चरेत् आत्मानं गवेषयतीति आत्मगवेषक किं कृत्वा एव आदाय एतन ज्ञात्वा एतत् इति कि
स्त्रिय पङ्कभूता मुक्तिमार्गे कर्दमभूत मुक्तिपथ प्रवृत्तानां वन्धकत्वेन मालिन्यकारक स्त्रियस्सन्तीतिज्ञात्वा तस्मात् स्त्रीणां सङ्ग विहाय मया संसारात्
आत्मा निस्तारणीय इति बुद्धिमान् १७ अत्र स्थूलभद्रकथा यथा पाटलिपुरनगरे नवमो नन्दराजा तस्य राज्यचिन्ताकारक शकडालनामा मन्त्री
वर्त्तते तेन स्वज्येष्ठपुत्र स्थूलभद्रनामा लीलाविलासाय तन्नगराधिवासिन्या कोशावेश्याया गृहे मुक्त स्तत्र तस्या मार्गित सुवर्णादि यथेष्ट प्रेषयति
द्वितीयपुत्र श्रीयकनामा राजाङ्गपार्श्ववर्त्ती विहित अस्मिन्नवसरे तन्नगरवास्तव्यो वररुचिनामा भट्टो नवीनकृतै अष्टोत्तरशतकाव्यैर्नंद भूपाल
प्रत्यह स्तौति राजा च तस्मै द्रव्यदित्सु शकडालमन्त्रिमुख विलोकते शकडालमन्त्री तु मिथ्यात्वदृष्टिभीरुर्नतत्काव्यानि स्तौति मन्त्रिप्रशंसा विना
राजा न तस्मै किञ्चिद्दत्ते वररुचिना तु मन्त्रिभार्या स्ववचनाकृतेन तोषिता स्वभर्त्तार शकडालमन्त्रिण प्रत्याह वररुचे काव्यानि त्वया नृपपर्षदि
व्याख्येयानि यथास्थितवस्तु प्ररूपणे सम्यक्त्वस्य भूषण मित्यादिस्वनितावचो युक्त्या तत्काव्यप्रशंसन प्रतिपन्न प्रभाते पर्षदि भूपते पुरो वररुचिना
तानि काव्यानि मन्त्रिणा प्रशंसितानि तत् प्रशंसानन्तरमेव राज्ञा वररुचिभट्टाय दीनाराणां मष्टोत्तरशत दत्त तत प्रतिदिनं विप्रो भूपते पुरो

प्रकारे.जाणिने छांडे सु० रूडी आचर्यो त० तेणे यतींद्र सा० चारित्र १६ ए० एणी परे पूर्वे स्त्रीनो स्वरूप कहे छे एमजाणिने मे० बुद्धिवंत हुइ पं० मुक्ति गांमी पुरुषने कादम सरीखो खूता रहिवानो कारण इ० ए स्त्रीइ नो० ते स्त्रीसंघाते प्रवर्तीने बि० संयम जीवतव्यने हणे नहि च० आचरे धर्म अनुष्ठान अत्त० संसार थी आत्मानो गे० तारण हार हुइ १७ अथ स्त्रीपरिसह दृष्टांत गाथा १६।१७ अथ पाडल पुर नामा नगरने विषे नवमो नंद राजानो राज्य धुरंधर अमात्य शकडाल नामा मंत्री सर तेहने बे पुत्र थूल भद्र स्त्रव पुत्र तेली लावी लासने अर्थे ते नगरने विषे वेश्याने घरे यथेष्ट द्रव्य खेइ रहे सुख विलसे संसारना अने शिरीयो लघुपुत्र ते राजानि सेवामां रहे एहवा समयनें विषे ते नगरमां वररुचि नामा भट्ट ते नद राजाना १०८ दिन प्रति नवा कवित वणावे राजा तेहने बहुद्रव्य आपे तिवारे शकडाल मन्त्रीसर नीरर्थक द्रव्य उडावे मन्त्री सर मिथ्यावादीने मानेन हो नवाकाव्य राजानीप्रशंसासां भली प्रशंसा न करे मन्त्रिप्रशंसा विनाराजान तेहने किंचित् मात्र आप्युं तिवारे वररुचिभट्टमन्त्रीनोभार्या प्रते अमृतवाणी कहे मन्त्री सर मुझ उपसर क्रपा नथी राखता तिवारे स्त्री भर्तारने कहो समझाव्योतिवारे मन्त्रीसर मिथ्यावादीने माने नहीं स्त्रीना वचन थी वातमानी काव्यनी प्रशंसा करी तिवारे राजा नित्य नवा काव्य सांभले १०८ दिनार दिन प्रते आपे इम केतला इक दिवस गया बहु द्रव्य वररुचिने थयो तिवारे ते मोहवनादि कार्य करें तिवारे मन्त्री मनमां विचारे आमिथ्यावादि मिथ्यात्व कर्म पापारंभ करे द्रव्य थकी तदा तिणे राजाने वार्यो महाराजाए भट्टजी रण काव्य कहे पारका चोरना काव्य कहे छे तिवारे राजा कहे किम जाणीए मन्त्री कहे महाराज माहरी सात पुत्री छे तेहने पूछी देखो तिवारे राजामानी प्रात समे सभामा राजा पर हेंच यंधावी साते पुत्रीने बेसाडी ते पुत्री केहवी बुद्धिवंत प्रथम पुत्री १ एक वेला नवीन श्लोक काव्यसांभल तांते कहे बीजी बे वेला त्रीजी तीन वेला सांभलता कहे इम साते पुत्री कहे एहवे सभामां वररुचि आवी नवा काव्य कह्या तिवारे ते काव्य सांभली

प्रथम पुत्री योनो इम अनुक्रमे गाते कुमारीका योनो तिवारे राजाने परतीत आवी इम दस वीस दिवस थया राजा तेहनी कोइ आपे नही मान भग थयो तिवारे तिणे वररुचि भट्ट जाण्यु जे शकडाल मन्त्रीने एहवी बुद्धिवत पुत्री छे मन्त्रीना प्रपञ्च जाणी तिणे वली कोइ प्रपञ्च कयो के एक नल यणाव्यो गुप्तपणे तिहां नलने मुखे पांच से दीनारनी थैलोमुको पोते नदीमां स्नान करो जीहां नलमो लाकडो उपरी वेसो ध्यान स्मरण करे सुमरण पूरो थाए तिवारे पग थको नल दावे ते थको ते हो मणी उंडोमुख आगे पडे ए कौतुक लोग देखो अचरीज पामे इम ए वात न योराजा सांभलो जे वररुचिने नित्य गगा पंच सत दिनार आपे ते कौतुक जोया राजा आवो कौतुक देखी अचरीज पाम्यो राजा तेहनी मान वधारे इम करता बीजे दिवस मन्त्रीसर आवोते कौतुक देखो जाणु जे इहा कपट तिवारे राजा मन्त्रीसर वररुचि भट्ट आप आपणे स्थानक गया इमकरता पाछणी पूर्णमानी रात छे मन्त्रीसर तीहां आवो प्रपञ्च जोने इम करता मन्त्रीसर बुद्धि बलो तीहां नल गथो हतो ते दीठो अनुक्रमे प्रात समे मन्त्रीसरे प्रच्छन्न पुरुष ये माण्यो तीहां स्नान वेला वररुची आवी ते नलने विषे स्नान करो हेम मुकेते गुप्त पुरुष दीठो वररुचि स्नान करो ध्याने बैठा ते वेला तिहां राजा आवो बैठा पुठे थको मन्त्री सर आवो गुप्त पुरुषनें तेडो गुप्त वात नो भेदलहो ते पुरुषनें कह्यु जे तिहांथी दिनारले आयो तोहातेय जन बराबर पत्थर मूको आवज्योइम मन्त्री सरने सीखप्रमाणें सेवक कार्य करी आव्यो अनुक्रमे राजा समस्त लोक कौतुक जोवा मिल्या तिवारे वररुचीनो ध्यान पूरोय यो एतनेक नदावतां पत्थर मूक्यो हतोते मुख आगें आवो पड्यो हवे वार वार पग सघाते नल दावे तिहा थोय तो आवे इम पणोवे नायइ तिवारे वररुचि खिसाणो मान भगथयो मन्त्री सरे तेहनो प्रपञ्च राजाने वताव्यो राजा मन्त्रीसर उपर घणु राजी थयो सा बास दोधो अनुक्रमिते वररुचि मन्त्रीसर नाछिद्र जोवे पण तेह नाछिद्रन पामें इमकरता वररुचि पण्डित मन्त्रीसर नीदासि सघाते मितिवाधी तेहनें

तेहने सभी थकी कढाव्यो तिवारे वररुचि घरे आवी खिसाणो थको वीस भक्षण करी मृत पाम्यो अथ हिवे संभूत विजय आचार्य पोताना थूलभद्रादि शिष्य लेइ पाडली पुरमा चतुर्मासरहवाने आव्या अनुक्रमे आचार्य ते नगरमां च्यारे शिष्यने च्यारे स्थानके आज्ञा आपीने पूछे आपणी इच्छा होवे ते कहो तिवारे एक शिष्य कहे स्वामि च्यार मास च्यारे आहारनी पच्चक्खाण करि दृष्टि विष सर्पना बिल पर रहीस बीजो कहे कूआना भार वट्टे रहीस त्रीजो कहे सिंह गुफाने मुखे रहीस थूलभद्र कहे स्वामि हुं वेश्याने घरे चोमासे रहस्युं तिवारे गुरु इच्छा प्रमाणें आज्ञा आपी ते गया थूलभद्र कोश्यानेद्वारे आव्या कोश्याई घणे हर्षे करी मोतीडे वधावी मन्दिरमां राखी थूलभद्रे प्रथम प्रतिज्ञा करी जे मुझ थकी साढा तीन हाथ वेगली रहीने ताहरा मन माने ते हाव भाव कटाक्ष कीजे वैश्या विचारे एक वार मंदिरमां तो आवे पछे जोस्युं इम करता तिहां रह्या तिवार थूलभद्रने नाना प्रकारना काम जागवाना सरस आहार करावे राग रंग नाच नव नवा कौतुक करे काम बाणकटाक्ष चलावे पण थूलभद्र स्वामि मेरु जिम अचल ते न चले ध्रुव ठामन छंडे ते छांडे समुद्र मर्यादा न मुके पण थूलभद्र मनवचन कायाइं चोकरण भाव शुद्धे चारित्र पाले इम करता च्यार मास वितीत थया पछे च्यारे गुरुभाइ समकाले गुरुने वांद्या तिवारे त्रीण शीष्यने गुरे कह्यु आवो दुक्कर कारक अने थूलभद्रने त्रिण्य वार दुक्कर कारक कहे तिवारे त्रीण्यशिष्य कहे स्वामि एवडो अंतर किम जे कोश्याने घरे चित्रसालामां रहवुं सरस आहार नित्य करवुं किवारे उपवास न कर्यो अने अमेतो च्यारे मास उपवास कीधा विषम थानके रहवो क्षिणमात्र निद्रा आवे ताम चूके तो कूआमा पडे बीजो कहे सर्पने वीले रहवो इम सिंह गुफाने विषे एहवा कठिन परीसह सह्या तिवारे गुरु कहे ए परिसह सोहिला पण थूलभद्र सम वड कोइ नहीं जोवे जे कोश्या संघाते साढी बारे कोडि सोनइ याविलस्या तेहने घरमा रही पोताने शील राख्यो तेहने प्रतिबोधी श्राविका कीधी एमहा मोटा ऋषि चोरासी चोवीसी लगे नाम रहस्ये इम करतां एक शिष्य

ऽष्टोत्तरशतकाव्यानि न यानि वक्ति स्तुतिमान्ते भूपप्रदत्त दीनाराष्टशत गृह्णाति ततो हविमान् वररुचिनामा भट्ट शतसहस्रवित्तव्ययेन यागहोमादि करोति मन्त्री तु तथा वर्द्धमान मिथ्यात्व दृष्ट्वा तद्दाननिषेधाय राज्ञ पुर एव मुवाच राजन् अस्य ब्राह्मणस्य एतावद्धन दत्वा कथ कोशक्षयो विधीयते अय तु परकाव्यहरणात् कवित्त्वङ्करोति राज्ञोक्त किं असौ पुरातनकविकृतानि मत्पुरो वक्ति मन्त्रिणोक्त एतदुक्तानि काव्यानि ममाऽपिम मपुत्र्य पठन्ति राज्ञोक्त प्रात रेत दुक्तानि काव्यानि तव समपुत्रीपार्श्वे पाठनीयानि ततो मन्त्रिणा सव शिक्षयित्वा ममापि पुत्र प्रभाते भूपपर्षदि जवन्य तरिता स्थापिता ताय क्रमात् प्रथमा पुत्री एकवारश्रुतसर्वग्रन्थधारिका द्वितीया तु द्विवारश्रुतसर्वग्रन्थधारिका एव सर्वापि यावत् सप्तमी पुत्री सप्त वारश्रुतसर्वग्रन्थधारिका एतादृशा धारणान्विता सन्ति अथ तत्र समायातो वररुचि स्वकृतकाव्यानि नृपते पुरो वक्तु मारेभिस्तुत्यन्ते भूपतिना क्ता

कहे स्वामी ए केतलोक यात छे गुरु कहे एहनी होड नहो थाए इम करता वलो चउमासे आवे तव मीथ मनोरथे कोश्याने मदिरे आव्यो कोश्याइ जाण्यु जे थूलभद्रनी होड पर आव्या तिणे तेहने चोत्रसालिमा राख्या एक समे वरसता पाणीमे राग आलापी नृत्य करी काम बांणे वीध्यो चित्तचला थ्यो तीणे भोगनो प्रार्थना करी तिवारे कोश्या कहे थूलभद्र छाडिवारे कोड सोनइ याताव्यो ते कहे ते तो नथी तिवारे कोश्या कहे रत्नकां बल ल्यावो यदपि कहेते किहां मोले कोश्या कहे नेपाल देशना राजाने जाचे ते आपे तिवारे मुनिवर वरसता पांणीमा नेपाले गया राजाने जाचो रत्न कांबलले मार्गे चाले अनुक्रमे अडमार्गे लुटाणो इम तीण वारमार्गमा लुटाणो चोथो वारला कडोनी भुगलमा वासवरसे कोश्याने मदिरे आव्यो तिवारे कोश्या ते हने विविध प्रकारे प्रतिबोध देइ समझाव्यो अने हवणातो भु डा माहारो ताहरो आश्रवस्था भोग थको वितीत थइ इम समझावी गुरु पासे मोकले गुरे मान्यो अग्र दिवरायो इम थूलभद्र स्त्रीपरीसह जीत्या तीम बीजो जे कोइ स्त्रीपरिसह सहे ते अनतासुखलहे इति स्त्रीपरीसह उपर कथा सपूर्ण ए० एक

अहो भट्ट एतानि काव्यानि त्वत् कृतानि परकृतानि वासोऽवक मत् कृतान्येव राज्ञोक्त मेतानि काव्यानि मन्त्रिणः सप्तपुत्रोणा गृहे समागत्य स
वक्ति यदि तावच्छन्ति तदाह्न मसत्यः एवं तेनोक्ते जघन्य तराद् यचानाम्नी प्रथमा पुत्री भूपतेः पुरः समागत्य सर्वाणि तानि काव्यानि पपाठ एव
क्रमात् सर्वापि तानि काव्यानि पेठुः तथाप्रज्ञासद्भावात् ततो निःकासितो राजकुलाद्वररुचिः भूपेण सभाजनेन च तिरस्कृतः सर्वेनापमान प्राप्तः
अथ तेने त्य कपट प्रारब्धं संध्यायां गङ्गाजलान्तर्यन्त्रं कृत्वा दीनारपञ्चशतीं मुक्त्वा प्रभाते तत्र गत्वा गङ्गां स्तौति स्तुवन्तो लोकसमक्ष जलयन्त्रगन्ति
पादेनाक्रम्य हस्ते गृहीत्वा जनेभ्यो दर्शयति मत् स्तुतिरञ्जिता गङ्गा मह्य मेवं दत्ते राज्ञा तु कार्पण्यात्ममासकलङ्क मारोप्य तिरस्कारः कृत इति च
वदति तद्वार्त्ताश्रवणाद्रञ्जितोराज्ञा सर्वं वृत्तान्तं शकडालमन्त्रिणोऽग्रे कथयामास मन्त्रिणा तत्र चर प्रेषणेन तज्जालयन्त्र ज्ञात्वा दीनारपञ्चशत
ग्रन्थि मानाय्य स्वकरे धृतः प्रभाते तत्र भूपतिः स नगरलोक स्तत्रायातः वररुचिरपि गङ्गां स्तौति स्तुवन्तो पादाक्रमणेन हस्ताभ्यां च जल मालोडयन्न
पि न ग्रन्थि माप्नोति विखिन्नो वररुचि मन्त्रिणैव मुक्तं भो वररुचे तव कल्ये किं ग्रन्थिक्षेपो विस्मृतः किम्वा क्षिप्तोऽपि दीनारगन्थिरन्येना पहृतः
यद्वा नन्दराज्ये परद्रव्यापहारी कोपि नास्ती त्युक्त्वा स ग्रन्थिः सर्वजनानां भूपतेर्वररुचेश्च दर्शितः चरप्रेषणवृत्तान्तश्च प्रकटितः ततो लोकैर्धिग्कृत
खिन्नो वररुचिमुख माच्छाद्य मन्त्रिदत्तश्च ग्रंथि लात्वा स्वगृहे गतः अथ मन्त्रि छिद्राणि विलोकयति परं न पश्यति मन्त्रिगृहदास्या सह स्नेहं
चकार तद्गृहवार्त्तां च पृच्छति सापि तत् स्नेहलुब्धा सर्वं कथयति अन्यदातस्याग्रे तया प्रोक्तं अधुना श्रीयकविवाहः समागतोऽस्ति राजानं गृहे
आकारयिष्यते तत् सत्काराय नवीनछत्रचामरसिंहासनशस्त्रादिसामग्री जायमानास्ति ततो वररुचिः छिद्रं मनसि कृत्वा नागरिकडिंभाश्मोदक
दानेने दं पाठयति। रायनन्दनविजानइ जंसकडालकरेसि नन्दरायमारेठकरि सिरियोराजठवेसि १ पठन्तित तथैव मार्गे २ तद्राजवाटिकां गच्छता

राज्ञा युत मन्त्रिगृहे चरा प्रेषिता तेस्तत्रच्छत्रादिसामग्री जायमाना दृष्टा राज्ञोग्रे कथिता राजा रुष्ट प्रभाते प्रणामाय गतेन मन्त्रिणा क्रोध वह्नि ज्वालमाना ज्ञातो दृष्ट घात च स्वकीयसकलकुटुम्बक्षयकारिराजकोपस्वरूप त्वरित मेव पश्चात् स्वगृहे गत श्रीयकस्याग्रे राजकोपस्वरूप मुवाच एव मचिरेन तस्य शिक्षा दत्ता वत्स कल्ये यदाहं नृपस्य प्रणाम करोमि तदा त्वया खड्गेन मच्छिर छेद कार्यं अन्यथा सर्व कुटुम्बक्षय मसौ करिष्यति मुखनिहिततालपुटविषस्य मम शिर च्छेदे तव न कोपिदोष इति पैत्रवचस्तेन महता कष्टेन प्रतिपन्न प्रभाते राज्ञोग्रे तथैव कृत राजपर्षदि हाहाकारो जात राज्ञोक्त हे श्रीयक त्वया किं मिद कृत श्रीयक प्राह राजन् मम पित्रा न प्रयोजन यत्तवानिष्ट तस्मात्प्यनिष्ट मेवेत्यसौ मया हत तुष्टो भूपति श्रीयकस्य कथयति त्व मन्त्रिमुद्रा गृहाण तेनोक्त मम वृद्धभ्राता स्थूलभद्र कोशागृहे तिष्ठति तत स्थूलभद्रो नृपेणाकारित स्तत्रायात नृपेणोक्त मन्त्रिमुद्रा गृहाण तेनोक्त आलोच्य गृह्णामि ततोऽशोकवाटिकायां गत्वालोचयति संसारस्यानित्यता पितृविनाशकारिण्या मुद्राया शाकिन्या इव यावाद्यंताव आलोच्य लोचोऽनेन कृत पट्टीता स्वय तपस्या राजसभायां समायातस्तस्य नृपेणोक्त भो स्थूलभद्र आलोचित स्थूलभद्र प्राह लोचित शिरो मयेत्युक्त्वागत स्थूलभद्र पाचिमगरे सम्भूतिविजयसूरे शिष्यो जात अथ भ्रातृमोहेन सिरीयक कोशागृहे आलापनाय गच्छति वदति च कोशे त्वत्पतिर्मद्भ्राता स्थूलभद्रो यतिर्जात स्वत्पतिपिता शकडालश्च यम गत स्तत्कारणमसौ वररुचिर्भट्टोस्त्येव स च त्वद्भगिन्या मुपकोशाया रतोस्ति यथैव अमु मद्यपानरत करोति तथा विधीयता इत्युक्त्वा सिरीयक स्वगृहे गत अथ कोशावचनात् उपकोशा त वररुचि मद्यपानरत चकार भ्रात तद्वृत्तान्ता च कोशा मद्यपान ममो कुर्वन्नस्तीति सिरीयकाय आचख्यौ अन्यदा राज्ञा शकडालस्मारित अहो गुणवान् शक्तो भक्तो महामन्त्री ममाऽभूत् स्तहगोऽप्यसौ यदित्थ मृतस्तन्मे मनसि दूयते इति राज्ञोक्त माकर्ण्य सिरीयक प्राह यन्मे पितैव मृत तत्र मद्यपानकार्यं वररुचि

रेव कारणं श्लोकमिषेण डिम्भानाल्नैव कृत मित्यादिवार्त्ताश्चकार राजा प्रवच्छ वररुचिः किं मद्यपानं करोति सिरीयक प्राहश्वो दर्शयिष्यामी त्युक्ता स्वस्थाने गतः अथ प्रभाते नृपपर्षदि उपविष्टानां सर्वेषां नराणां करेषु सङ्केतित पुरुषेण कमलानि सिरीयको दापितवान् मदनफलचूर्णमिश्रितं कमलञ्च वररुचये दापितवान् तद्गन्धमात्रादररुचिना पीत मद्यं तत्रैव वान्तं राज्ञा तस्य धिक्कार पूर्वं नागरिक विप्रवृन्द वचसा तप्तत्रपुपानं कारितं सम्रतः अथ क्रमाद्विहरन्तः स्थूलभद्रादि शिष्यसहिताः श्रीसम्भूति विजयाचार्याः पाडलिपुरे चतुर्मासक स्थित्यै समायाताः तत्रैकः शिष्यः कृत चतु र्मासिकोपवासः सिंहगुफायां गुर्वाज्ञया स्थितः एकश्च दृष्टिविषसर्पबिलेस्थितः एकं पुनः कूपदारके तथैवस्थितः स्थूलभद्रस्तु नित्याहारकारी कोशा वेश्यागृहे गुर्वाज्ञया स्थितः कोशया तु अस्य पुर स्ताद्गृहाहा वभावो विहिता यथा परमयोगीश्वरोपि द्रवति परमे तस्य मनो न मनाक् क्षुभितं प्रत्युत सा सुशीला श्राविका विहिता शेषं चरित्रं तु प्रसिद्ध मेव एवं यथा स्थूलभद्रेण स्त्रीपरीषहः सोढ़स्तथाऽपरै रपि साधुभिः सोढव्यः अथ एकत्र स्थितस्य मुनेः स्त्रीप्रसङ्गः स्यात् अतश्चर्या कार्या इतिद्वितीयचर्यापरीषहः सोढव्यः भत स्नमाह एग एव चरे लाढे अभिभूय परीसहे गामे वा

भूय परीसहे। गामेवा नगरेवावि निगमेवा रायहाणीए ॥१८॥ असमाणो चरे भिक्खू नोय कुज्जा परिग्गहं।
असंसत्तो गिहत्थेहिं अणिकेओ परिव्वए ॥१९॥ सुसाणे सुन्न गारेवा रुक्ख मूलेव एगओ अकुक्कुओ निसीएज्जा

लो राग द्वेष रहित च० विहार करे निर्दोष रत हुइ अ० जीतीने प० परीसहाने विषे गो० करबा ते गा मने विषे वा० अथवा न० नगरने विषे पिण नि० वाणी यानो वास हुइ तिहां वा० अथवा राजधानीने विषे विहार करे १८ अ० गृहस्थादिकनी निश्राइ रहित च० नवकल्पोविहार करतो

उ टीका
अ २
८०

नगरे वावि निगमेवा रायहाणिए १८ असमाणो चरे भिक्खू नेव कुज्जा परिग्गहं असंसत्तो गिहत्थेहिं अणिकेओ परिव्वए १८ लाढ साधु एक एव चरेत् लाढयति यापयति आत्मानं एषणीयाहारेण निर्वाहयतीति लाढः क्व क्व विचरेत् ग्रामे वा अथवा नगरे अपि अथवा निगमे अथवा राजधान्यां अपि द्रव्येण भावेन च एकाकी एव विचरेत् तत्र ग्राम कण्टकादिवेष्टित नगर प्राकारादि युक्त निगमो वणिग्जनस्थान राजधानी राजस्थान एतेषु विहार कुर्यात् पर कीदृश सन् भिक्षुश्चरेत् असमान सन् न विद्यते समानो यस्य स असमान गृहस्थ अन्यतीर्थिलोकेभ्यो अधिक सर्वोत्कृष्ट

भाषा

थको विचरे भि० साधुने० नकरे ममता रूप छे प० परिग्रहने विषे अ० परिचय सबन्ध अण करतो थको गि० गृहस्थ सघाते अ० घर रहित प० प्रवर्त्ते छे १८ अथ चर्यापरीसह दृष्टांत सांभलो नगरीइ सगम आचार्य घणु वृद्ध थवे स्थान थया कोइक दिन रह्या पाछ से शिष्य हुता गोचरी आहार भणी भताने विचारी विहार कीधो गद्द प्रणाम थी नगर देवता भक्त हुओ अन्यदा दत्त नामा शिष्य आलोयण निमित्त आव्यो गुरु तेणे उपाश्रये रहता देखी चेले चितव्यो एगुरु नित्य स्थानवासी प्रमादी इम विमासी उपाश्रये रह्यो गाम मांहि भिक्षा अणल हे दत्तमहाभाग व्यवहारी यानी पुत्रगृहस्थ देखी ते मलादि क प्रयोगी साजो कियो तिहां नो आहार लेइ उपाश्रये आव्यो गुरु कह्यो आपणने ए आहार न कल्पे तिवारे चेले कलुष भाव आणी ते आहार चेले कर्यो सझाये प्रतिक्रमण करता वलि गुरु बोल्या एदोष आलोवो तिवारे चेलो कहे तुमे प्रमादि छो तिवारे गुरुने गुणिर क्यो नगर देवता तेवे कह्यु अरे अनाचारो गुरुगुणवतना श्री गुणदेखे छे पिण आपणा आली दोष देखतो अवगुण काइ न जोवे इम देवता कह्यु गुरुना गुणवी शिष्यने बुझव्यो गुरुने पाये लागे जिम सगमाचार्य परोसहसह्यु तिम बीजे ऋषीश्वरे पिण चर्या परिसहसहिवो इति चर्या परीसह दृष्टांत सु० समसानने विषे या अथवा सूना घरने विषे रु० वृक्ष हेठे राग द्वेष रहित हुइ अ० कुचेष्टा रहित नि० बेसे न० त्रासवे नही प० अनेरा उ दरादिक प्रमुखने २० त०

पुनः कीदृशः गृहस्थै रसंसक्तः गृहस्थैः सह असम्मिलितः पुनः कीदृशः अनिकेतः न विद्यते निकेतो गृहं यस्य स अनिकेतः अनगारः एतादृशः सन् परिव्रजेत् सर्वतो विहरेत् १९ अत्र सङ्गमस्य विरकथा कोल्लागपुरे सङ्गमस्थविरा बहुश्रुता यथा स्थितोत्सर्गापवाद निपुणाः दुर्भिक्षे गणं देशान्तरे प्रेष्य स्वयं नगरं नवभागीकृत्य व्यवस्थिताः नगरदेवता च तेषां गुणैः रञ्जिताः अन्यदा तत्र गुरुवन्दनार्थं दत्तनामा शिष्यः समायातः तज्ञत्यार्थं गुरवः सपात्रं तं सार्द्धं लात्वा भिक्षायां गतः एकस्येभ्यस्य भद्रकप्रकृतेर्गृहे बालोव्यन्तरेण गृहीतः सदा रोदिति उपायशतसहस्रकरणेपि व्यन्तरदोषोपशान्ति र्नजाता गुरुव स्तद्गृहे गताः चप्पुटिकाकरणपूर्वं मारुद बालेत्युक्तं आचार्य तपस्तेजसा व्यन्तरो नष्टः तुष्टा स्तन्मातृपितृ प्रभृति स्वजनास्तेभ्यो मोद कादिक माहारं गाढाग्रहेण दत्तवन्तः ते मोदका स्तस्यैव शिष्यस्य गुरुभिर्दत्ताः स्वयं तु अन्तप्रान्त माहारं विहृत्य भुक्तवन्तः प्रतिक्रमणाऽवसरे तस्य शिष्यस्य पिण्डदोषमालोचयेति गुरुभिरुक्तं शिष्य श्चिन्तयति असौ धात्री पिण्डं सदा भुंक्ते ममत्वेव कथयतीति चिन्तनसमये एव तज्ज्ञापनार्थं देव तयान्धकारं विकुर्वितं स भृशं बिभेति गुरुं प्रति वक्ति अह मऽत्र दूरस्थो बिभेमि गुरवः प्राहुः एहि मत्समीपे स वक्ति अस्मिन् घोरान्धकारेनाह मागन्तुं शक्नोमि गुरुभि स्थूत् कृतलिप्ता स्वांगुली दर्शिता तदुद्योतेन सोऽत्रायातः परं चिन्तयति गुरवो दीपकं रचयन्ति एवं चिन्तयन्नेवासौ देव तया चपेटाभि स्तर्जितः ज्ञातस्वरूपे गुरुभिस्तस्य चैत नवभागीकरणादिकं स्वस्वरूप प्रकाशितं यथा सङ्गमस्थविरैर्विहारक्रमा परपर्यायशय्यापरिषहो अध्यासित स्तथा ग्लानत्वाऽवस्थायामपि चैत नवभागीकरणेनाऽपि चर्यापरीषहो अन्ये रध्यासितव्यः अथ यथा ग्रामादिसु अप्रतिबद्धेन चर्या सह्यते तथा शरी रादिष्वपि अप्रतिबद्धेन नैषेधकी परीसहोपि सहनीयः अतस्तं परीषह माह सुसाणे सुन्नागारेवा रुक्खमूले च एगओ अकुकुओ निसीइज्जा नय वित्ता सए परं२०तत्थ से अत्थमाणस्स उवसग्गाभिधारए सकाभिओ न गच्छिज्जा उट्ठित्ता अन्नमासणं २१साधुःएककः एकाकी सन् श्मसाने अथवा शून्यागारे शून्य

उ०टीका अ २ ८८

यद्दे अथवा हृक्षमूले निषीदेत् उपविशेत् पर तत्र कोदृश' सन् अकोकुच्य नास्ति कौकुच्य यस्य स अकौकुच्य कौकुच्य हि भण्डविटचेष्टा उच्यते तया रहित सम्यक साधुमुद्रायुक्त' इत्यर्थ पुनस्साधु स्तत्र निविष्ण सन् पर अन्य जीव नविचासयेत् तत्रस्थ जीव स्थानभ्रष्ट न कुर्यादित्यर्थ २० पुन स्तदेव द्रढ यति तत्रेति पुन स्तत्र श्मशानादौ आसीयमानस्य भिचोर्यदो पसर्गाभवेयु स्तदा तान् उपसर्गान् साधु रभिधारयेत् किमेते उपसर्गा वराका मम करिष्यन्ति स्वयमेवो पशाम्य यास्यन्तीति मति कर्त्तव्या इत्यर्थ पर सकाभीत सन् तत आसनात् आतापनास्थानात् उत्थाय अन्यत् आसन न गच्छेत् आस्यते उपविश्यतेऽस्मिन् इत्यासन आतापनास्थात उच्यते २१ अत्र कुरुदत्तसाधुकथा अत्र नैषेधिकीपरीसह कोर्थ यथा ग्रामादिषु अप्रतिबद्दे न चर्यापरीषह सहनीय स्तथा शरोरेऽममत्वबद्दे न नैषेधिकोपरोषह सहनीय नैषेधिकी नाम शरीर मित्यर्थं अथ कथा हस्तिनागपुरे इभ्यपुत्र कुरुदत्त नामा प्रव्रजित विहरन् क्रमात् साकेतपुरदूरप्रदेशे प्रतिमायां स्थित तत्र चरमपोरुष्यां गोधनापहारिण चौरा समायाता स्तदृष्टौ त्वरित गता पश्चाद्गोस्वामिन समायाता स्ते चौरमार्गस्वरूपे पृष्टे स यति न किञ्चिद् मूते तत सञ्जातकोपैस्तै शिरसिमृत्पालि कृत्वांगारा क्षिप्ता स यति मनागृनापद्यत ता वेदना मधिसहमान सिद्धि गत एव नैषेधिकी परीषह सोढव्य अथनैषेधिका आतापनादिस्थाने स्वाध्यायादिक कृत्वा शय्याया

सूत्र

नयविता सए परं ।२०। तत्थ से अत्यमाणस्स उवसग्गाभि धारए। सकाभीओ न गच्छेज्जा उट्ठित्ता अन्न मासण २१

भाषा

तिहां श्मशानादिकने विषे बे० तेसाधुने अ० रहता थकां उ०उपसर्ग उपजे ते अभि०खमे शुभ्र निश्चलचित्तने ए स्यु करस्ये इम जाणीने स ते उपसर्ग थी सतो थको स०न जावे उ०तिहा थी उठीने अ०अनेरे स्यानके २१साधुने विषे निषेध परीसहनी कथा एक हस्ति नागपुरनामा नगरने विषे धनपति नामा सेठ वसे तेहनो पुत्र कुरुदत्त नामे तीणे साधुनो उपदेश सांभलीने तिवारे पछे दीक्षा लिधी अनुक्रमे विहार करता साकेतपुरनगर थकी वे गना

उपाश्रये आगच्छेत् अतस्तत्परीषह माह उच्चावयाहि सिज्जाहिं तवसी भिक्खु थामवं नाइवेलं विहन्नेज्जा पावदिट्ठी विहन्नई २२ पइरिक्कुवस्सयं

सूत्र

उच्चा वयाहिं सिज्जाहिं तवस्सी भिक्खु थामवं। नातीवेलं विहन्नेज्जा पावदिट्ठी विहन्नई॥ २२॥ पइरिक्कु वस्सयं लद्धुं कल्लाणं अदु पावगं। कि मेगराइं करिस्सइ एवं तत्थ हियासए॥२३॥ अक्कोसेज्ज परो भिक्खू न तेसिं पडिसंजले

भाषा

प्रतिमा कावसग करी रहे तिहां गायचोर चोरवाने आव्या तिणे गाय अपहरी तेणि वाटे नीकल्या ते चोरनी पूठे गामनि वाहिर आवी ते ऋषीश्वरने पूछ्यो अहो महाभाग्य चोर किणे वाटे नीकल्या तिवारे मुनी मौन पणे रह्या तिवारे तिण मस्तके माटिनि पालवांध कर अग्नि मेलि तिणे करि मस्तक बलता महातीव्र वेदना जपनी शुभ भावे एहवो मरणांत परीसह सहतो सीधो जिम कुरुदत्त मुनीश्वरे निसीहीया परिसह सह्यो तिम बीजे सहवो इति निसीहीया दृष्टांत अथार्थ शिय्यापरीसह दृष्टांत ते भणी शिय्या परीसह इग्यारमो कहे छे उ० शीतादिक निवारक उच्च उपाश्रय व० सामान्य ते त० तपस्वीइ० भि० साधु था० सीतादिक सहिवा समर्थ ना० स्वाध्याय वेलाहर्ष विखवादादिके करी वि० उलंघे नही पा० पापदृष्टि जे साधु हुइ ते वि० स्वाध्यायादिकनी वेलाइ उलंघे २२ प० स्त्रीयादिक रहित उ० उपाश्रये ल० पामीने क० शोभनीक छे अ० अथवा पा० शोभनीक त्रणांमये कि० किस्युं सुभने मे० सुभने एकरात्र क० करस्ये सुख अथवा दुख ए० इणी परे हि० समभावे होइ सुख दुख तेजीवने २३ कोसबो नगरीइ यज्ञदत्त ब्राह्मणना बे पुत्र सोमदेव सोमदत्त तेणे सोमभूत आचार्य कन्हे दीक्षा लीधी ते बिहु सिद्धांत भणी गुणी गीतार्थ थयुं कौशं बीचाली उजेणि आव्या संसारीयाने वंदाविवा तिहां देशरीति अजाण ते साधुने उसामण दीधु ते उसामण महात्मा ए वावरी

उ०टीका अ०२ ८१	लडु, कल्याण अदुव पावग क्लिसेगराइ कश्चिदुदएवतस्य हिवासए१२ तपस्वी भिचु उच्चाभि शय्याभिरुपाश्रये लब्धा खामवान भवेत् धैर्ययुक्तो भवेत् कीदृ शीभि शय्याभि उचाय अवचाय उच्चावचा ताभि उच्चावचाभि उच्चा शीतादिरचणगुणैर्युक्ता अवचास्तद्विपरीता तादृशीभि शय्यते यासुता शय्या उपाश्रया उच्यन्ते तत्रोपाश्रयेषु स्थित साधु अतिवेला साधुमर्यादा न विहन्यात् हर्षविषादाभ्या साधुमर्यादाया तिष्ठेत् सद्गुणयुक्ता शय्या लब्ध्वा हर्षभाक् न स्यात् गुणैर्हीना शय्या लब्ध्वा विषादभाक् न स्यात पापदृष्टि रागद्वेषी उच्चावचाभि शय्याभि अतिवेला साधुमर्यादा विहृ न्यात् हर्षविषादयुक्त स्यात् २२ साधु प्रतिरिक्त पशुपण्डकस्त्र्यादिरहित उपाश्रय लब्ध्वा तत्र एव अध्यासीत एव विचारयेत् कीदृश उपाश्रय कल्याण शुभ सुखदायक अथवा पापक दुःखदायक एतादृश उपाश्रय प्राप्य एव विचिन्तयेत एव मिति किं मे मम अनया एकरात्रि स्थितियोग्यया क्रियया किं काय एक रात्र गमात्र निवास आश्रयेय किं करिष्यति कल्याण उपाश्रय प्राप्य इति चिन्तयेत् पुण्यवन्तो जना एतादृशेषु स्थानेषु तिष्ठन्ति अन्ये पामरा मृण्मयमृत्तिकामयेषु नित्य वसन्ति मम तु अस्या स्थितौ न मम विधेय सुख दुःख वा सहेत जिनकल्पापेक्षया एकरात्र एका रात्रिर्यत तत् एकरात्र उपाश्रय वसेत जिनकल्पो हि एकरात्र उपाश्रय शुभवा अशुभवा सेवेत स्थविरकल्पी मुनि कतिपय अहोरात्रवासी भवेत् स्थविरकल्प पञ्चरात्र नगरे वसति २३ अत्र कौशाम्ब्या यज्ञदत्त द्विजपुत्रयो कथा यथा कौशाम्ब्या यज्ञदत्त द्विजपुत्रौ सोमदत्त१ सोमदेव २ नामानौ प्रव्रजितौ गीतार्थौ जातौ
भाषा	छते शरीरे व्यथा विपनिश्चित जाणी वैराग्य थका नदीने तटि काठ उपरि चढि पादपोपगमन असण लीधो तेहवे अकाल वृष्टिना योगे छुती नदीनो पूर आयो काठ सहित बे साधु ताणा छता पाणीनो उपसर्ग खमता शुभध्याने देवलोके गया जिम तेंणे साधु शिय्या परीसह सह्यो तिम बीजे सहिवो इति शिय्यापरीसहे दृष्टांतजाणवो अथाग्रे सूत्र माह अ आक्रोपवचने करी प गृहस्थ भि साधु न गृहस्थ प्रते प न करे कोप स० जे भणी सरिखो

अन्यदा तत्पितरौ उज्जयिन्यां गतौ तावऽपि साधु विहरन्तौ तत्रगतौ तत्र तदा देशरीत्या स्वगृहे क्रियमाणं विविधौषधमिश्रं मद्यापरपर्यायं विकटं तयोः स्वजनैर्दत्तन्तौ तत्स्वरूप मऽजानन्तौ जलविशेषबुद्धा पीतवन्तौ परिणते च तस्मिन् ज्ञातमद्यस्वरूपौ तौ कृतपश्चात् तापौ तद्वैराग्या द्वेवानशन पादपोपगम नामकं नदीतटस्थ काष्ठोपरि प्रपन्नौ ततोऽकालवृष्ट्या नदीपूरेण प्लावितौ समुद्रान्तः प्रविष्टौ तत्र जलचरोपसर्गं विपन्ना दिवङ्गतौ इमौ हि नीरपूरागमेऽपि शय्यातौ न पृथग्भूतौ एवं शय्यापरीषहः सोढव्यः अथ शय्यास्थितस्य तत्रोपद्रवे जातेसति रागद्वेषरहितस्य साधोर्यदा कश्चित् शय्यातरोवा शय्यातरादन्यो वा वचनैः आक्रोशे दिति हेतोः आक्रोशपरीषहोपि सोढव्यः अतस्तत्परीषहमाह अक्कोसिज्ज परो भिक्खू न तेसिं पडिसञ्जलेसरिसोहोइ बालाणं तम्हाभिक्खू न सञ्जले २४ सुच्चाणं फरुसाभासा दारुणा गामकण्टगा तुसिणीओ उवेहिज्जा न ताओ मणसीकरे २५ परः अन्यः कश्चित् यदि भिक्षुं साधु आक्रोशेत दुर्वचनैः स्तर्जयेत् तदा तस्मै न प्रतिसंज्वलेत् तस्योपरिक्रोधं न कुर्यात् इत्यर्थः यदि तस्योपरिसाधुरपिक्रोधं कुर्यात् तदा साधुरपिबालानां मूर्खाणां सदृशो भवेत् अत्रदृष्टान्तः यथा कश्चित् चपको देवः तयागुणै रावर्जितः सतत मभिवन्द्यते उच्यते च ममकार्यमावेदनीयं अन्यदा एकेन धिग्जातिना यौद्,

सूत्र

सरिसो होइ बालाणं तम्हा भिक्खू न संजले ।२४। सोच्चाणं फरुसा भासा दारुणा गाम कंटगा तुसिणीओ उवे हिज्जा न ताओ मणसीकरे ।२५। हओ न संजले भिक्खू मणंपि न पओसए । तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खू धम्मंवि

भाषा

हो० हुइ वा० अज्ञानि सरिखो थावे त० ते भणी भि० साधु न० ते गृहस्थ प्रते न करे कोप २४ सु० सांभलीने फ० कठोर भा० भाषा बोले कं० कांटा सरिखी भाषा सांभलीने तु० मो न करीने उ० ते कठोर भाषाने लेखे माही गणे नहीं न० ते कठोर भाषाना धणी ऊपरे म० द्वेष न करे २५ अथ

मारथ सवलक्षान् तेन क्षुत्क्षामशरीरोसाधुर्भुविपातित ताडितश्च रावौदेवतावन्दितु आयाताचपकस्तूष्णीस्थित ततश्चासौ देवतयाभिहित भगवान कि मयापराध चपक प्राप्त त्वया तस्य दुरात्मनोधिगजातेर्नकिञ्चित् कृत सोऽवादीत् न मया विशेष कोपि उपलब्ध यथाय श्रमणोऽय धिगजाति रिति

आक्रोश परिसह दृष्टांत राजगृहे नगरे अर्जुनमाली भार्यास्कन्दश्री तेहने कुल देवता मुदगर पाणी यक्ष ते वाडी ढूकडीयक्षायतन तिहां रहे नित्य फलफूले करी यक्षने पूजे एकदा तिहां छ पुरुष महादुष्टबुद्धिना धणी गोठिला एहवे नामे तेणे स्त्री दीठी अति रूपवंत तिवारे ते अर्जुनमालीने बांधी ते यक्ष देवता छए पुरुषे स्त्रीसाथे अनाचार सेव्यो अर्जुन माली देखे छे अने मन मे चिंतव्योमें ए यक्ष आज लगि पूज्यो ते फोक ए यक्षनी दृष्टि मुझने बांधी स्त्रीनें एवडो विटंबना करेछे तेभणीए यक्षने आज पछि न पूजिये एहवो चिंतवताते यक्षमालीना शरीर अहस्ये पेसी हाथ माहि मुद्गरलेई ते छए पुरुष स्त्री सहित विणास्या इम दिन२ प्रतेछपुरुष सातमी स्त्री विणासे जिको यक्ष भवन आगलि जावे तेहनें ते यक्ष विणासे इम अनेकका लग मावेछे तेहवेते नगर उद्यानें श्रीमहावीर समो सर्याछे ते सांभली समकितधारी सुदर्शन श्रेष्ठिलोकेमाता पिता वर्जता श्रीमहावीरने वंदणा करिवा जातां ते यक्ष यतन तणीवाट आवे ते सुदर्शन देखी अर्जुन माली आवीमुदगरनो प्रहार देवे पिण लागे नहीं ते सुदर्शन बीहे नथी तेहना प्रभावथी यक्ष मालीनीकाया मूकीनाठो तिवारे ते अणसणधारी अर्जुनमालीने पाछलो सम्बन्धजणावीबुझवी श्रीमहावीर पासे गया तिहां धर्म सांभली श्री महावीर कन्हे दीख्यालीधीछे हिवे राजगृही नगरीनें पासे रहेछे तिवारे लोक कहे अरे पापी माहरा स्वजन विणासी हिवडा भीक्षु थर्णे आवी इहां भिक्षा मागे तुझनेंसी भिक्षा एहवा दुष्टवचनघात प्रहार लोकाना सही क्षमा करीछमास लगे छठ २ पारणो करी अंत गडकेवली थई मोक्षपुहतो जिम अर्जुनमालीइ आक्रोशपरिसह सह्यो तिमबीजे ऋषिश्वरे सहिवो इति श्री आक्रोशपरीसह दृष्टांत पूरो थयो हिवे आगेंते

कोपाविष्टो द्वापि समानो सम्पन्नाविति एव माक्रोशताडनादिभिर्बालानां सदृशो न भवेदिति भावः तस्माद्भिक्षुर्न संज्वलेत् गालीं श्रुत्वा प्रति गालीं न दद्यात् तदा किं कुर्यादित्याह सुचार्णं० साधु तूष्णीको मौनी सन् उपेक्षेत औदासीन्येन तिष्टेत रागद्वेषरहितो भवेत् ताः भाषा मनसि न कुर्यात् किं कृत्वा परुषाः कठोराः भाषाः श्रुत्वा कीदृशी भाषाः दारुणाः दारयंति सयमधैर्यं विदारयन्तीति दारुणाः पुनः कीदृशीः ग्रामकंटकाः ग्राम इन्द्रियगण स्तस्य कण्टका इव कण्टकाः ग्रामकण्टकाः दुःखोत्पादकाः यदुक्तं चण्डालः किं मयं द्विजाति रथवा शूद्रोथवा तापसः किंवा तत्वनि वेशपेलमतिर्योगीश्वरः कोपि वा इत्य स्वल्प विकल्प जल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणोजनैः नोरुष्टो न हि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति १ पुन र्गालीं श्रुत्वा इति विचिन्तयेत् ददतु ददतु गाली र्गालीमंतो भवन्तः वय मपि तदभावात् गालिदानेप्य शक्ताः जगति विदित मेतद्दीयते विद्यमानं ददतु शशविषाणं ये महात्यागिनोपि १ इति विचार्य समत्वेन तिष्टेत् अत्रार्जुनमालाकारस्य कथा ।२५ यथा राज गृहे नगरे अर्जुननामा मालिकोस्ति तस्य प्रिया स्कन्दश्रीनाम्नी वर्त्तते स स्ववाटिकामार्गस्थं पुराद्बहिर्मुद्गरपाणियक्षं निरन्तरं स्वगोत्रदेवत्वेनार्चति अन्यदा वाटिकागतस्य अर्जुनमालि समीपे सा भोज्यं गृहीत्वा वाटिकायां यान्ती यक्षभवनस्थैः षट्पुरुषैर्दृष्टा भोगार्थं यक्षभवनांतः प्रवेशिता तदानी मेव तत यक्षपूजार्थं मालिकः समायातः तं बध्वा षडपि पुरुषा स्तस्या भोगे प्रवृत्ताः स पश्यति एवं च चिन्तयति मया एषः यक्षो मुधै वार्चितः यदै तस्य पुरः इत्थं पराभूयते ततो यक्ष स्तच्छरीरं अनुप्रविश्य तान् षडपि पुरुषान् स्त्रीसप्तमान् मारयतिस्म एवं प्रत्यहं मारयति ततो लोकोपि तस्मिन्मार्गे राजगृहपुरात् तावन्ननिर्ग च्छति यावत् सप्तमारितान्स्युः अन्यदा श्रीवीरः समवसृतः नकोपितद्भयेन वन्दनार्थं गच्छति सुदर्शनश्रेष्टी तु यद्भवति तद्भव तु मयाऽवश्यं श्रीवीर स्तत्र गत्वा वन्दनीय एवेति विचिंत्य तन्मार्गे चलितः तं दृष्ट्वा मालिकशरीरप्रविष्टो मुद्गरपाणिर्यक्षो धावितः ततः सुदर्शन श्रेष्टिनार्हत्

सिद्दसाधुशुद्दधर्मसरण प्रपन्न सागरिक मऽनशनमपि गृहीत कायोत्सर्गेण स्थित ततो धर्म प्रभावात् स यचस्त आक्रमितु न शक्नोतिपश्चात् यचो मालिकशरीर मुक्त्वा गत स्वस्थीभूतो मालिक श्रेष्ठिमुखा द्दीरागमन श्रुत्वा श्रेष्ठिना सह वन्दनार्थं गत वीरवचसा प्रतिबुद्दो दीचां गृहीतवान् राज गृहनगरमध्ये एव गृहे २ भिचार्थं भ्रमति लोकास्तु स्वजनमारकोऽय मित्वा क्रोशान् वदति स मन यचनकायशुद्दा तान् अक्रोशान् विषह्य उत्पन्न केवलज्ञान शिवमगात् एवमन्यैरपि आक्रोशपरीषह सोढव्य । अथ कश्चित आक्रोशको दुर्वचनवादी साधोर्बधमपि कुर्यात् तदा तमपि सहेत अतस्तत्परीषह माह हओ न सजले भिक्खू मणपि न पओसए तितिक्ख परम नच्चा भिक्खू धम्म विचिन्तए २६ समण सज्जय दन्त हणिज्जा कोइ कत्थइ नत्थि जीवस्सनासुत्ति एव पेहेज्ज सञ्जए २७ भिक्षु साधुर्हतोयष्ट्यादिभिस्ताडितो न सज्वलेत् न क्रोधाध्मात स्यात् मन अपि न प्रद्वेषयेत् चित्त सद्वेष न कुयात् इत्यर्थ कि कत्वा तितिचा चमा परमा उत्कृष्टा ज्ञात्वा दशविध साधुधर्मे चान्ति उत्कृष्टा विचार्य भिक्षुर्धर्म विचिन्तयेत मम

चितए ।२६। समण स जय दत हणिज्जा कोइ कत्थई । नत्थि जीवस्स नासोत्ति एव पेहेज्ज स जए ।२७। दुक्कर

भणी वधपरीसह ते रमीजके छे ह० हण्यो रोस थको ने० नकरे कोपभि० जे साधु म० मने पिण न०दुष्ट न करे ति० चमा प० परम उत्कृष्टो धर्म साध वानो कारण न० जाणीने भि० दशविध यती धर्म वि० चिन्तवे २६ स०तपस्वोइ स०सयमवत दु इन्द्रीनो दमण हार हुइ ह० हणे को० कोइ कथनार्यक० ग्राम नगरादिकने विषे न नथी था तो जी० माहरा जीवनो ना० विनाश सरीर नो ए एणी परे पि० विचरे स० साधु २७ अथ बध परीसह दृष्टात यत जतेहि पिपलिया विदु खदग सीसा नचेव परिकुविया विदिय परमत्थ सारा खमति जे पडिया हु ती १ अ० घाणीइ पीलता ए ता खदग सूरीना पाच से शिष्य तेहने क्रोध लिगार मात्र न उपनो इसी रहणीइ अनेरा साधु जे विदित जाण्यो परमार्थ धर्मनो सार चमा जे पडित हुइ

ते सर्व सहे प्राणजातां पिण मार्ग थो न चले रोस नाणे यथा सावत्थीने विषे जितशत्रु राजा धारिणी राणी तेहनो पुत्र स्कंद कुमार सर्वशास्त्र प्रवीण पंडित गुणे करी प्रवर्त्ते पुत्री पुरंदर यशा दंडकारण्य देशनो धणी कुम्भकार राजाने परणावी एकदा कुम्भकार राजानो पालिक नामा पुरोहित सावत्थीइ नगरी आव्या जितशत्रुनी सभाइ गुष्टि करतां पालक मन्त्री नास्ति मत थापे ते स्कन्द कुमार शास्त्रनी युक्ति करि नास्तीकमत उथाप्यो सभा समच ते पालकने विलखो कीधो लोके हसी तो आपणे नगरे गयो तेहवे पाछिलि सावत्थिइ स्कन्द कुमार पांचसे राजपुत्रने परिवारे श्रीमुनि सुव्रत पासे दिख्या लिधी गणधर पदवी पाम्यो एहवे केतले दिवसे मुनि सुव्रत तीर्थंकर पूछ्यो भगवन् दंडकारण्य देशे हुं विहार करी नाति बहोन छे तेहने प्रतिबोध देवा भणी मन चाल्यो छे तुम्हे आग्यायो तिवारे मुनि सुव्रत स्वामी कहे तिहां तुमने मरणांत उपसर्ग छे तुं परिसह नही सहे अने थारसेनिनाणुं आराधिक छे ते सांभली भवितव्यताना योग थी दंडकारण्ये वंदाविवा उद्याने जई जतख्यो तेहवे ते पालक पुरोहित पाछली रीसना वस थी स्कन्द परिवार सहित हणवा बांछतो रात्रि तेणे उद्याने छांना हथीयार भूमिमांहि सांतिने पछे प्रभाते आवी राजानेजणाव्यो जे तुमारो सालो संयम भांजी पांच से जोध सहित वनमाहिं आव्यो छे तुमने विणासी राज लेसी प्रपञ्च एहवो मे पुच्छ्यो छे जेन मानो तो तुमने पांचसे हथीयार छाना वाडी मांहि संताड्या छे ते देखाडुं तिहां थी राजानो मन ते भंभेरीने वनमांहि तेडी हथीयार देखाड्या महात्मा उपरि रीस चढ्यो थके ते पांच से पालकने भोलाव्या तिणे अभव्ये नगर माहि घाणी मंडावी रीस नावस थी ऋषीश्वरां ने घांणी मांहि घालीने निरदय पणे पीलवा लागो ते साधु खमा करतां केवल पांमी मोक्ष पोहता पछे गुरुने विनास्यों रीस सहित करी भुवनपति मांहि अग्निकुमार देवता हुओ ओघो मुहपती रक्त खरड्या समलीइ पुरंदरयशा आगे नाख्या भाईनो मरण जाण्यो एपापी पालक नाकाम छे हिवे

धर्मं एव रक्षणीय इति विचिन्तयेत् इत्यर्थ २६ कश्चित् दुष्ट कुत्रचित् अनार्यदेशे श्रमण साधु हन्यात् प्राणापहार अपि कुर्यात् तदा सयत साधु रेव मनेसेतविचारयेत् एव मिति कि जीवस्य नाशो नास्ति शरीरस्य नाशो विद्यते न च शरीरनाशे जीवनाश कीदृश साधु सयत जितेन्द्रिय पुन कीदृश दान्त क्रोधादि रहित साधुना मनसि एव चिन्तनीय कदाचिदहं अस्मिन् शरीरनाशावसरे क्रोध करिष्यामि तदा मम धर्मरूपजीवितव्यनाशो भविष्यति न चास्मिन् अनित्यदेहे नष्टे मम आत्मन धर्मस्य च नाशो भावीति यदुक्त दोषो मेऽस्तीति युक्त शपति शपतिवात विनाश परोषे इच्छा साक्षा न साक्षादिति शपति न मा ताडयेत्ताडयेद्वा नाशून् मुष्णाति तान् वाहरति सुगतिद नैप धर्म ममा स्त्री इत्य य कोपे हेतौ सति विमृदयति स्या हितस्येर्ष्यासिद्धि १ अत्र स्कन्दिकशिष्याणा कथा २७ यथा श्रावस्त्या जितशत्रु नृपो धारिणी प्रिया तयो पुत्र स्कन्दक पुरन्दरयशा पुत्री कुम्भकारकटकी पुरे दण्डकनृपस्य दत्ता तस्य पुरोहित पालको मिथ्यादृक अन्यदा श्रावस्त्यां मुनिसुव्रतस्वामी समवसृत तस्य देशना श्रुत्वा स्कन्दक श्रावको जात एकदा पालकपुरोहितो दूतत्वेन श्रावस्त्या प्राप्त राजसभाया जैनसाधूनाम अवर्णवाद वदत् स्कन्देन निरुत्तरीकृत्य निर्धारित सन स्कन्दककु मारोपरि दुष्ट छिद्राणि पश्यति अन्यदा स्कन्दककुमार श्रीमुनिसुव्रतस्वामिपार्श्वे पञ्चशतकुमारै सह प्रव्रजित गीतार्थो जात स्वामिनाते कुमार

भाषा

अग्नि कुमार देवता ध्याने करी जोयीतिकोवैर संभाली एक आपणो बहिन टालि बीजो देश जेतले रायनो आण हुति ते सर्व बाल्यो ते देसने आज लगि दंड कारण कहीइ पुरदर यशादिघा लेइ तप तपी देवलोक विषे गइ स्कन्दकाचार्यना पांचसेंनिनाणु शिष्य घाणी पीलता कोप्या नथी अत गड केवली हुवा जिम तेणे वध परीसह सह्यो तिम बीजे पिण ऋषिसरे बध परीसहसहिवो इति स्कन्दकाचार्यनी शिष्यनी कथा दु० दोहिलो थेवा वच उपगार,रहित पणो भो०आमत्रिणे हे शिष्य नि सदाइ अ० सहित रहित अणगारने भि० साधुने स० सर्व असनादि मे ते साधुने जा० याच्यो हो० हुवे

शिष्यास्तस्यैव दत्ताः अन्यदा स स्कन्दकः स्वामिनं पृच्छति हे भगवन् भगिनी वन्दापनार्थं गच्छामि स्वामिना भणितं तव मारणान्तिकोपसर्गोऽस्ति स्कन्दकेनोक्तं भगवन् वयमाराधकविराधका वा स्वामिना भणितं त्वां मुक्त्वा सर्वेऽप्याराधकाः स्वामिनैव मुक्तोऽपि भवितव्यतावशेन पञ्चशतशिष्यपरि वृतः कुम्भकारकटकपुरे गतः पालकेन तमागच्छन्तं ज्ञात्वा पूर्ववैरं स्मरता साधुस्थितियोग्योद्याने षट्त्रिंशदायुधानि भूमौ स्थापितानि स्कन्दकाचा र्यस्तु तत्रैव समवसृतः ततः पालकेन नृपस्याग्रे कथितं महाराज अयं स्कन्दकः पञ्चशतसाधवोऽपि च सहस्रयोधिनः परीषहभग्नास्तव राज्यं गृहीतुकामाः समायाता त्वां हनिष्यन्ति राज्यञ्च गृहीष्यन्ति यदि न प्रत्ययस्तदा उद्यानं विलोकय एभिरायुधानि भूमौ गोपितानि सन्ति नृपेण उद्यानं विलोकितं आयुधानि दृष्टानि क्रोधात्तेन ते साधवस्तस्यैव दत्ताः तेन सर्वेऽपि यन्त्रेण पीलिताः बधपरीषहस्य सम्यग् अधिसहनात् उत्पन्नकेवलज्ञानाः सिद्धाः स्कन्दकाचार्यस्तु सर्वेषां शिष्याणां तथाविधमरणं दृष्ट्वोत्पन्नक्रोधः सर्वस्याप्यस्य देशस्य दाहकोऽहं स्यामिति कृतनिदानो अग्निकुमारेषूत्पन्नः अथाचा र्यस्य रजोहरणं रुधिरलिप्तसत् गृध्रैः पुरुषहस्तं ज्ञात्वा चञ्चुपुटेनोत्पाट्य पुरन्दरयशा पुरः पातितं सापि महतीमधृतिञ्चकार साधवो गवेषिता न दृष्टा प्रत्यभिज्ञातानि कम्बलाद्युपकरणानि ज्ञातञ्च तया साधवो मारिता इति ततोऽधिक्कृतस्त्वया नृपतिः अहं तव मुखं न पश्यामि प्रव्रजिष्यामि वेति वदन्तीं तां स्कन्दकभगिनीं देवाः श्रीमुनिसुव्रतस्वामि समीपे मुक्तवन्तः स्वामिना सा दीक्षिता ततो अग्निकुमारदेवेन सनगरो देशो दग्धः ततो दण्डकारण्यं जातं अद्यापि तथैव तज्जनैर्भण्यते एभिः साधुभिर्बधपरीषहः सोढस्तथापरैरपि सोढव्यः ननु स्कन्दकाचार्यवत्कर्त्तव्यं अथ परैरभिहतस्य औषधादिक याञ्चा स्यात् तस्मात् याञ्चापरीषहोऽपि सोढव्यः अत स्तत्परीषह माह दुक्करं खलुभोनिच्चं अणगारस्स भिक्खुणो सव्वं से जाइयं होइ नत्थि किंचि अजाइय २८ गोयरग्ग पविट्ठस्स पाणीनो सुप्पसारए सेओ अगारवासुत्ति इइभिक्खू न चिन्तए २९ खलु इति निश्चयेन भोस्वामिन् अनगारस्य

भिचोर्नित्य कष्ट अपरस्य च कदा किञ्चित्कष्ट उत्पद्यते भिचोस्तु नित्यमेवकष्ट यदुक्त गात्रभङ्ग स्वरेदैन्य प्रस्वेदो वेपथु स्तथा मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचने २ इत्युक्तत्वात् भिचोर्नित्य महत्कष्ट तत्कि कष्टमित्याह से इति तस्य भिचो सव वस्तु याचित सम्भवति अयाचित गृहस्थात्

सूत्र

खलु भोनिच्च अनगारस्स भिक्खुणो । सव्वसे जाइय होइ नत्थिकिंचि अजाइय ।२८। गोयरग्गपविट्ठस्स पाणीनोसुपसारए । सेओ अगारवासोत्ति इइ भिक्खू न चिंतए ।२९। परेसु घासमेसेज्जा भोयणे परिनिट्ठिए लद्धे पिंडे अलद्धे वा

भाषा

न०नत्थि कि०काइ साधुने अ०अणजाच्या २८ जिम गाइ चरे तिम थोडु२ आहार लें ते प्रधान गोचरीने विषे प०पइठो ते साधु पा०हाथ नो यापवाने अर्थे सुखपसारी नसके तेभणी से० ते सुभने श्रेय अा० गृहवास इ० एहवो भि० साधु न० न चिंतवे २९ अथ याचना परीसह दृष्टान्तमाह श्रीनेमिना थने पहिलें समो सरण श्रीकृष्ण महाराय वादवा आव्या श्रीनेमनाथने पूछ्यो हे भगवन् माहरो मरण किम छे तिवारे कह्यु ताहरो भाई जरा कुमारने हाथे मरण हुस्ये ते वचन साभली जरा कुमार आपणा भाइनो मरण राखिवा भणी विदेशे गयु वली कृष्ण पूछे स्वामी द्वारिका एहवीज हुस्ये तिवारे प्रभु कहे मद्यथी नगर दाह हुस्ये अने जालगि नगर माहि घर दीठा आबिल तप हुस्ये तालगि नगरी नही विणसे पछे श्रीकृष्ण जे जिहा२ मद्य भाडा हुता ते सघलाइ गिरनार पर्वतनी झोलिन खाधा ए भवितव्यताने योगे एक कुभमज्जनो तेणे वने मोटा हयहेठे भाजता वीसर्यो तेकुणे नजाण्यो थनो द्वारिका माहे साद पडाव्यो घर२ दीठ दिन२ प्रते एकें को आबिल करवो जिम सकट टले इम बारे वरस थयोएकदा यादवाना कुमरगिरनारना वन माहि भमवा लागो देवयोगे मद्यनो घडो वीसर्यो हतो अवे दारुवहो एके स्थानके तो भडोइ रह्यो दीठो ते पाणी घणे जवावलु ते कुमर विह्वल

थया पाछा द्वारिका आवता तप करो तो दीपायन ऋषि दीठो तिणे कुमरे दीपायनने लात प्रहारे करी घणुं विडव्यो जे ए द्वारिकानो विणास करि स्ये तेहवे ऋषि चिन्तव्यो जे माहरा तपनो प्रभाव हुइ तो हुं मरीने सावाल वृद्ध युवांन द्वारिका नगरी दाहने अर्थे होवुं एहवो नियाणो वांध्यो तिणे कुमरे ऋषिवचन सांभली कृष्णकने आवी सर्ववात कही पछे ऋषिवचन अन्यथा करिवा कृष्ण आवी ऋषीने पगे लागो स्वामी बालक अग्यानी चूका तुमे अपराधखमो वलतो ऋषि कहे लोकनो अपवाद ऋषिनो सराप अन्यथा न थावे पछे कृष्ण पाछा आव्या ऋषि क्रोधे काल करी अग्नि कुमार देवता हुओ ज्ञान करी पाछलो वैर जाण्यो आवी अग्नि पिण नगर मांहि घर दीठ आंबल तप करे जे तपना प्रभाव थी बारे वरस नगरमांहि जोर न चाल्यो हिवे बार वरसने छेहडे नगर लोकने सम काल सरीखोज बुद्धिजपनी घणा ही वरस तप करतां हुवा आज आपणे घर न कीधो तो बीजा घणा ही नगर मांहि करे छे तिणे सख्यो जिम एकने बुद्धि जपनी तिम सहुने वुद्ध उपनी तिम सघले आंबिल तपन कराणो एहवे तिणेइ लाग पाम्यो छे नगर सघलो दाह कोधो जे दीचा लोइं तो तेने मनाथ पासे मोकल्या बीजा ते नीकल्या ते वायुना आकाण्या हुतां अग्नि सांहिनांखि श्री कृष्ण अने बलदेवनो पराक्रमी मोटे जगग्या छे आपण स्वजनपरिवारसहु बलता देखि दुखी हुवा ते बिन्ने बधव वनवासी नीकल्या तिणे वन जराकुमार रहे तिहा पहुता कृष्ण महारायने त्रिस लागी एहवे एक वृचनी छाया हेठे आवी सूता बलदेव पाणी लेवा गयो एहवे जराकुमर वनमांहि क्रीडा करता मृगने वरासिबांण मूक्यो ते वाण श्री नारायण पगने तलि ते उत्तम पद्म झलके छे तिहां आवी लागो जराकुमार आवी देखेतो ए अपराध खमो वलतो कृष्ण कहे वीतरागना वचन अन्यथा नथावे तूं ताहरे ठामे जाइ हिवडा बलदेव आवे छे ते तुझने दूहवण करिस्ये जरा कुमर आपणे स्थानके गयो पछे श्रीकृष्ण जो चिंतवे छे ए मुझने मारीगयो मे तो अनेक माग्या छे ए जीव तो जाइ इम चिंतवी आर्तध्याने काल करीने अधोगति त्रिजी नरके

गया तेहवे बलदेवपाणी नेइ तिहां आवे तठे भाइ मृतकइ तेहवे वीनावे अहो बधव पाणी पीवो मुझने पाणी आणतावार लागी सही तुम्हेतिरस्या थया इम विलापथ की मूयो नथी जाणतो खेद थको इणने खधे उपाडी इम अनेक मनावणा करता छमास हुवा एहवे एक देवता ब्राह्मणने रूपे थइ मराञ गायनो रूप विकुर्व्या तेहने वाछडो चूंघें छे एहवो स्वरूप बलदेव देखी कहिवा लगो अहो विप्र एहवो विप्रकाइ मूढ गायने घवरावे छे वलतो ब्राह्मण कहे तु मूउं जे मूआने खधे उपाडतां छमास थया अने मूयो न थी जाणतो वलोविलूरेतलीघाणी करता बलदेव कह्य अरे मूर्ख वेलूमांहि घृत किहां नीकले देवता कह्य मूआ क दीजोवें इम देवताइ बूझव्यो थो इणने सस्कार करोवे राज्य थकी श्रीनेम कन्हे चारित्रलेइ विहार करे अने भिक्षा २ भिखाने जाइ तिहां २ तेहना रूपमोह्यो स्त्रीमर्वघरना कामकाज मूकी जोवे पाछे फिरे सर्वकाम विसारे एकदा श्रीबलदेव मुनि भिख्यारे अर्थे ग्राम माहिपेसता कूआकाठे एक स्त्री बलदेवनो रूपदेखी जोतो २ घडाने भरोसें आपणा बेटाने गले रस्सो बांध्यो तेहवे बलदेवें छोडव्यो तिवारें चिन्तव्यो माहरा रूपनें धिक्कार हुयो जे रूप देखताए इसा अनर्थ उपजें एरूपपचेंद्री बालकनो पाप मुझनें लागतो ते श्रीबलदेव रूप अनर्थ हेतु जानि नियम लीधो आज पाछे ग्राममांहि आवी भिक्षा न लेवी जे वेड मांहि कोइ खडवाही काठवाही तथा सार्थवाही आव्या हु ताढीइतीयु इम चितवी वेडजइ रह्या तिहां शांतिमणाम देखीनें वेदना जाव हरणादिक आश्चर्ये रहें एहवे भृगलो एकजाती स्मरणथी ते बलभद्र मुनिनो सेवा करे निहां साथा आव्या जांणि कालदेतो ऋषिनें जणावें भातपाणी मेलवे एकदाते वनमाहि रथकारसार्थ वाहघणु हर्षपामी भिक्षा देवा उठ्यो भाव गर्भित मृगभावना भावेछे जेहु मानवीघु ततो निस्तरत अने बलभद्र सूझतो आहार लेता अर्द्धकापी वृष नोडामिवायनें जोगेतिहु उपरे पडोविणेइ मरो पांचमें ब्रह्म देवलोके देवता हुआ जिम बलदेव ऋषीश्वर याचना परीसह सह्यु तिम बीजें सहियोइति श्रीयाचना परीसह दृष्टांत १४

अमार्गितं किञ्चित् अपि नास्ति तस्मात्धिक् कष्टं भिक्षुजीवित मिति पुनस्तदेव द्रढयति गोयरग्गेति गोचराग्र प्रविष्टस्य भिक्षार्थं प्रविष्टस्य साधोः पाणिर्हस्तः पिण्डग्रहणार्थं न सुप्रसार्यः सुखेन न प्रसार्यः गौरिव चरति यस्मिन् स गोचरः गोचरे अग्रं प्रधानपिण्डग्रहणं गोचराग्रं तन्निमित्तं प्रविष्टस्य गृहे प्रस्थितस्य भिक्षार्थं करप्रसारणं दुःकरं भिक्षामार्गणं दुःकरं को नित्यं सम्यग् वपुष्मान् नरः भिक्षां मार्गयति तस्मात् अगारवासो गृहवासः श्रेयान् इति भिक्षुर्मनसि न चिन्तयेत् यथाऽरण्ये याञ्चापरीषहो दुःसहो न तथा श्रीमद्गृहाकीर्णे पुरेऽतः स्त्रीणां निजरूपकृत मनर्थं दृष्ट्वा बलदेवर्षिः पुरः प्रवेशं निषेध्य यत एव याञ्चापरीषह सोढवान् तत्कथा २९ यथा द्वारिकानगर्यामेकदा श्रीनेमिः समवसृतः कृष्णेन द्वारिकाक्षय स्वमरणकारणं पृष्टं नेमिना मद्यपान विकलीभूतखलुमारोपसर्गं समुद्भूतक्रोधा द्वीपायनात् द्वारिकाक्षयः त्वन्मरणञ्च त्वद्भ्रातृजराकुमारादेवेति प्रोक्तं वासुदेवेन द्वारिकायां निषिद्ध मपि मद्यपानं भवितव्यतावसेन कृष्णपुत्रैः कृतं मद्यपानं विकलीभूतै स्तैः क्रीडार्थं नगरबहिर्गतै स्तत्रातापनां कुर्वन् द्वीपायनऋषिर्दृष्टः अरे त्वं द्वारिकाक्षयकारी भविष्यसी त्युक्त्वा यष्टिमुष्ट्यादिभि रुपसर्गितः कोपात् द्वारिकाक्षयनिदानं चकार तन्मारणा देव मृतः अग्निकुमारेषूत्पन्नः तेन च द्वारिकाक्षयः कृतः कृष्णबलदेवावेव निर्गतौ अटव्यां तृषाक्रान्तेन वासुदेवेनोक्तं नाहमतः परं चलितुं शक्नोमि पानीय मानीयमे देहि ततो बल देवेन पानीयार्थं दूरङ्गते पादोपरिपादं कृत्वा कृष्णः सुप्तः अथ प्रागेव श्रीनेमिनाथवचन श्रवणसञ्जात भयेन जराकुमारेण वनवासं प्रपन्नेन तदानी मित स्ततो भ्रमता तत्रैवायातेन मृगभ्रान्त्या मुक्तबाणेन विद्धपादः कृष्णः पञ्चत्व माप तथापि तत्रा यातेन बलदेवेन मे भ्राता मृतः किन्तु मद्विलम्बा गमनोत्थ रोषा देष मौनमाश्रितो स्तोति बुद्ध्या तच्छिवं स्वस्कन्धे समुत्पाटितं पूर्वसङ्गतिदेवेन प्रतिबोधे कृते बलदेवेन दीक्षा गृहीता एकदा कस्मिंश्चिद्ग्रामे भिक्षार्थं मायातस्य बलदेवस्य रूपं दृष्ट्वा व्यामोहङ्गतया कूपकण्ठस्थया कयाचिन्नार्या घटभ्रान्त्या स्वबालकण्ठे एवपासितः ततो

बलदेव मुनिना प्रतिबोधिता सा वान्नगलात् पाश दूरीचकार ततो भिक्षार्थ ग्रामप्रवेशनियमो ग्रहीत वने एव तृणकाष्टहारकेभ्यो भिक्षा गृह्णाती यदि तेभ्यो न प्राप्नोति तदा तप एव करोतीति यथा बलदेवेन तुच्छलोकेभ्योपि भिक्षा मार्गिता ततो याच्ञापरीषह सोढ स्तथापरैरपि सोढव्य एव याच्ञापरीषहे बलदेवकथा अथ याच्ञाया न लभेत् तदा अलाभपरीषहोपि सोढव्य अत अलाभपरीषह माह परेसु घासमेसिज्जा भोयणे परि निट्ठिए लद्धेपिण्डे अलद्धे वा नाणुतप्पिज्ज पण्डिए ३० अज्जेवाह नलब्भामि अविलाभो सुए सिया जो एव पडिसञ्चिक्खे अलाभो त नतज्जए ३१ साधु परेषु गृहस्थेष ग्रास कवल एषयेत् तत्र च भोजने ओदनादौ परिनिष्ठिते सम्पूर्ण सिद्धे वा लब्धे ग्रासे सति वा अथवा अलब्धे अल्पे लब्धे अनिष्टे लब्धे वा पण्डितो मुनिर्न अनुतप्येत् लब्धिमानह यतो मया सम्पूर्णमिष्ट वा आहार लब्ध अनिष्टे अल्पे वा अलब्धे तथा न दूयेत इति अनुक्तोप्यर्थो गृह्यते३० तदा कि कुर्यादित्याह अद्यैव अह आहार न लभामि अपि सम्भावनायां सम्भावयामि अद्यैव आहार न प्राप्त पर सुएइति स्व प्रभाते आगामि

नाणुतप्पेज्जपण्डिए ।३०। अज्जेवाह नलब्भामि अविलाभो सुएसिया जो एव पडिमचिक्खे अलाभोत नतज्जए ॥३०॥

अथार्थ सूत्रमाह अलाभ परिसह १५ मो कहेछे प० गृहस्थना घर विषेषा० आहार भ० भो भोजननी पनेथे ल० लाधे थके पि० आहार अ० अण लाधे थके वा० अथवा ना० पश्चिखयादकुष पश्चात्तापनकरे प० पण्डित ३० अ०आज नथो पामतोएहवी सभाव नाइछे लाभ सु० आगलें सि० सभवाना छोइ जो जे साधुने ए० एणोपरे य० दीन पणारहितमन एहवो अ०अलाभ परीषहत०तेसाधुनेन०नजो मथो ते साधु ३१ न०जाणी नउ०अपनोदु० दुग्र नानाप्रमुख वे० फोडादिकवेदनाने दु दु खे पीडीयको अ अदीनपणा रहित था० थिरकरे प पोतानि प्रज्ञाथी तिहा छि० रोग अहियासे २२ अलाभपरीसह दृष्टांत पाछले भवे गामनो पटेल हुतो पाचसे हलवहावतो एकदा त्रिपुहरे भात पाणी आव्या पूठेचा न लेइ हलछोडाव्योडाव्यो पनरे

स पुद्गलानां पञ्चप्रकारश्चयं १५ एषामेव प्रत्येकं उत्तरभेदानाह [वण्णओपरिणयाजेउ पञ्चहातेपकित्तिया किण्हानीलायलोहिया हालिद्दासुक्किला तहा १६] जेपुद्गला वर्णत परिणता सन्ति ते पुद्गला पञ्चधा प्रकीर्त्तितास्तीर्थकरैः कथितास्तेवैतानाह कृष्णा कज्जलवर्णा पुनर्नीला शुकपिच्छ निभा गुलिकासदृशावालोहितारक्ताहिङ्गुलवर्णा तथा हारिद्रा पीताहरितालनिभा तथा शुक्ला शङ्ख कुन्दस्फटिकसदृशा १६ [गन्धओपरिणयाजेउ दुविहातेवियाहिया सुब्भिगन्धपरिणामादुब्भिगन्धातहेव १७] जेतु पुद्गलागन्धत परिणता सन्ति ते पुद्गलाद्विविधाव्याख्याता सुरभिगन्ध परिणामो येषान्ते सुरभिगध परिणामा सुगन्धत्वेन परिणताश्चन्दनादिवदित्यर्थं तथैव दुरभिगधा दुर्गन्धत्वेनलशुनादिवत् परिणता १७ [रसओपरिणयाजेउ पञ्चहातेपकित्तियातित्तकडु यकसाया अम्बिलामहुरातहा १८] ये तु पुद्गला पुनरसत परिणतास्तेपञ्चधा प्रकीर्त्तिता तिक्ता निम्बसदृशा कटुका शुण्ठमरिच सदृशा कषाया खदिर सदृशा आम्लानिम्बूकरससदृशा मधुरा सर्करा सदृशा १९[फासओपरिणयाजेउ अट्ठहातेपकित्तिया कक्खडाम उयाचेव गुरुयालहुयातहा २०) स्पर्शतश्चे परिणता पुद्गलास्ते अष्टधाप्रकीर्त्तिता कर्कशा अजालोमसदृशा च पुनर्मृदुका शुद्धमाला पट्टकूल

मूल

सुक्किला तहा १६ ॥ गन्धओ परिणया जेउ दुविहा ते वियाहिया। सुब्भि गन्ध परिणामा दुब्भि गन्धा तहेवय १७॥ रसओ परिणया जेउ पचहा ते पकित्तिया। तित्त कडुय कसाया अंबिला महुरा तहा १८॥ फासओ परिणया जेउ

भाषा

कालानीलारातो पीला धवला तथा १६ गन्ध परिणामे परिणम्याछे जे पुद्गल बिहु भेदे त कह्या तीर्थ करे सुगन्ध पणे परिणम्याछे पूरनो ५रे दुर्गन्ध पणे परिणमा लसणनोपरि तथा वलो १७ रसनेपरिणामे परिणम्या जे पुद्गल पाचे प्रकारे कह्या तीखा कडूया कसाइ लाखाटा मीठा तथा वलो १८

स्कन्धानां परमाणूनां च उत्कृष्टा असंख्यकाल स्थितिः जघन्यिका एकसमया स्थितिः एषा अजीवाना रूपिणां पुद्गलानांस्थिति व्याख्याता१४ अथ कालतः स्थितिं उक्त्वातदन्तर्गत अन्तरमाह (अणन्तकालमुक्कोसं इक्कं समयं जहन्नयं अजीवाणयरूवीण अन्तरेयं वियाहिया १४] अजीवाना रूपिणा पुद्गलाना स्कन्धदेश प्रदेशपरमाणूनां अन्तर विवचितचेत्रावस्थिते प्रच्युताना पुनस्तत् चेत्रप्राप्तेर्व्यवधान अन्तरं उत्कृष्टं अनन्तकाल भवति जघन्यकं एकसमयं यावद्भवति इदं अन्तरं तीर्थंकरैर्व्याख्यात पुद्गलानां हि विवचितचेत्रावस्थितितः प्रच्युतानां कदाचित्समयापलिकादि संख्यानकाल तोवापल्योपमादेर्यावदनन्तकालादपितत् चेत्रावस्थिति· सम्भवतीति भावः १४ अथ भावतः पुद्गलान् आह (वन्नओगन्धओचेव रसओ फासओतहा संठाणओय विन्नेओ परिणामो तेसिं पञ्चहाः १५) तेषां पुद्गलानां परिणामोवर्णतो गन्धतोरसतः स्पर्शतस्तथासंस्थानतश्च पञ्चधापञ्च प्रकारोज्ञेयः यतोहि पूरणगलनधर्माणः पुद्गलास्तेषां एव परिणतिः सम्भवति परिणमनं स्व स्व रूपावस्थितानां पुद्गलानां वर्णगन्धरस स्पर्शसंस्थानादिरन्यथा भवनं परिणाम.

जहन्नयं। अजीवाणय रूवीणं अंतरेयं वियाहियं १४ ॥ वन्नओ गंधओ चेव रसओ फासओ तहा। संठाणओय वि न्नेओ परिणामो तेसिं पंचहा १५ ॥ वन्नओ परिणया जेउ पंचहा ते पकित्तिया। किन्हा नीलाय लोहिया हालिद्दा

आवे अजीवरूपी द्रव्य पुद्गल पृथिव्यादिका आंतरो पूर्वे कह्यो तीर्थंकरे १४ वर्णथकी पुद्गल परिणम्या गंध थकी पुद्गल परिणम्या रस थकी परिणम्या फरसथकी परिणम्या तथा वली संस्थान कष्टो अंतर तीहांथकी वली तीहां उपजे एक समय जघन्यथिति अंतर पडेतो एक समे तीहांनो तिहां कथकी परिणम्याते जाणवा परिणाम पुद्गलास्तिकायनो पांच प्रकारे इम इइ १५ वर्ण परिणामे परिणम्याछे जे पुद्गल पांचे प्रकारे ते कह्या

किंवे भइएजे उगंधयारसयाफासओविय भइएसठाणओविय २३) पुद्गलोयर्णत कृष्णा कज्जलनिभोभवेत् सकृष्ण पुद्गलोगंधतोभज्य सुगंधो भवति दुगंधोपि भवति न तु सुरभिरेव न तु दुरभिरव किन्तु कृष्णवर्ण पुद्गल सुगंधोपि भवति दुर्गंधोपि भवति सुरभिदुरभित्वेन परिणमति दुरभि सुरभित्वेनपरिणमति न तु नियतगंध एवेति भाव एव रसत स्पर्शतश्चैव भाज्य रसाना पञ्चाना मध्ये एकस्मात् रसातरपरिणतो भवति स्पर्शाना अष्टाना मध्ये एकस्मात् स्पर्शात् स्पर्शान्तरपरिणतो भवतीति भाव तथा पुन स एव पुद्गल सस्थानतोपि भज्य पञ्चाना सस्थानाना मध्ये एकस्मात् सस्थानात् सस्थानान्तर परिणतो भवतीति भाव द्वगंधौ द्वौ रसा पञ्चस्पर्शा अष्टौ सस्थानानि पञ्चमीलिता विंशतिरित्येक एव कृष्णवर्णो विंशति विधो भवति २१ अथनीलस्य भङ्गानाह (वण्णओनि भवेनोले भइएसे उगंधओरसओ फासओ चेव भइएसठाण ओविय २४] य पुद्गलो वर्णतोनीलो लोभवति स पुद्गलोपि गंधत सुरभिगंधदुरभिगंधतो भाज्य पुन स पुद्गलोरसत पञ्चविध तिक्त कटुकादितोभाज्य च पुन स्पर्शतोऽष्टविध परसदुर्मीतोष्णादितो भाज्य सस्थानत पञ्चविधपरिमण्डलादितो भाज्यएवविंशति विधोभवति २४ अथ रक्तस्य भेदानाह [वण्णओलोहिए जेउ भइए

वन्नओ जे भवे नीले भइए सेउ ग धओ। रसओ फासओ चे व भइए सठाणओविय २३। वन्नओ लोहिए जेउ भइए सेउग धओ। रसओ फासओ चे व भइए सठाणओविय २४। वन्नओ पीयए जेउ भइए सेउ ग धओ। रसओ फा

वण थको जे हुइ पुद्गल नीलो ते गंध थको भजिवा भजना रस ५ थको फरस ८थको सस्थान ५थको भजिवो सस्थानमाहि कोइ एक हुइ २१ वर्ण थको एता पुद्गम ते गंधादिके भजियो रस ५ फरस ८ थको भजवो भजीयो सस्थान थको २४ वर्णथो पीलो जे पुद्गल ते गंधादिक थको भजियो

सदृशा गुरुका लोहपारद सदृशाः तथा पुनर्लघुका अर्कतूलसदृशा' २० (सीया उन्हायनिद्धाय तहालुक्खाय आहिया इइफासपरिणयाएए पुग्गला समुदाहियर २१] तथा पुन केचित्पुद्गलाः सीताहिमसदृशाः च पुनरुष्णा अग्नि सदृशा च पुन स्निग्धा घृत सदृशा तथा रूक्षास्च आख्याता इति अमुनाप्रकारेण 'एतेपुद्गलाः स्पर्शपरिणताः अष्टप्रकारेण तीर्थंकरैरुदाहृता २१ [संठाणपरिणयाजेउ पचहातेपकित्तियापरिमंडलायवट्टा तं साचउर समायया २२] ये तु पुद्गलाः संस्थानपरिणतास्ते पञ्चधाप्रकीर्त्तितास्तेतानाह परिमण्डलाकङ्कणाकारापुनर्वर्त्तुलालड्डुकाद्यतयः पुनस्त्रिस्रा संघाटकाकारा पुन चतुरस्रा चतुष्कोणः चतुष्किकाकारा तथा पुनरायताः प्रलम्बाः रज्ज्वाकाराः२२ समप्रत्येषां एव परस्परं सम्बंध माह [वन्नओजेभवे

सूत्र

अट्ठहा ते पकित्तिया । कक्खडा मउयाचेव गुरुयालहुयातहा १९ ॥ सीया उन्हाय निद्धाय तहा लुक्खाय आहिया । इइ फास परिणया एए पुग्गला समुदाहिया २० ॥ संठाण परिणया जेउ पंचहा ते पकित्तिया । परिमंडलाय वट्टा तंसा चउरंस मायया २१ । वन्नओ जे भवे किन्हे भइए सेउ गंधओ । रसओ फासओ चेव भइए संठाणओवियर२२।

भाषा

फरसने परिणामे परिणमत्रा जे पुद्गल आठे प्रकारे ते कह्या तीर्थंकरे खरखरा सुंहाला भारी हलुआ तथा वली १९ ताढा ऊन्हा चोपड्या तथा वली लूखा कह्या इण प्रकारे फरस पणे परिणमत्रा पूराइगलाइते पुद्गल समत्रक् प्रकारे कह्या तीर्थंकरे २० संस्थानपणे परिणमत्रा जे पुद्गल पाचे प्रकारे ते कह्या परिमंडल चूडीनीपरे वाटली मोदकनीपरिं त्रिखूणा चोखूणा आयतलांबा २१ वर्णथकी जे कालो पुद्गलते गंधथकी भजवो भजना रस थकी भजिवो जाणवो सुगंध हुवे तथा दुर्गंध हुइ रस५माहि फरस८ कोइ कहुवे कोइकनहोवे संस्थान थकी भजिवो संस्थान५माहि कोइ कहवे २२

सुगध पुद्गले पचानां वर्णाना मध्ये केचिद्वर्णा भवन्ति रसाना अपि पचाना मध्ये केचिद्रसा भवन्ति एव स्पर्शाना अष्टाना मध्ये कचित् स्पर्शा भवन्ति सस्थानानां पचानां मध्ये कानिचित्सस्थानान्यपि सभवति २८ [गधओ जे भवेदुब्भी भइए सेउवणओ रसओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय २८] अथ य पुन पुद्गलो गधतो दुरभि दुर्गंधो भवति स च पुद्गलो वर्णतो रसत स्पर्शत सस्थानतश्च भाज्य सुगध पुद्गलवत् दुर्गंध पुद्गलोपिस्याद् य २९ अथ रसपुद्गलानां भेदानाह (रसओ तित्तओ जउ भइएसेउवणओ गधओ फासओ चेव भइए सठाणओ विय ३) य पुद्गलो रसततीक्ष्णो भवति स पुद्गलो वर्णतो गधतो रसत स्पर्शत सस्थानतश्च भाज्य यत्र पुद्गले एकरसतीक्ष्णो रसो भवति तत्र सुगधयो रेक कश्चिद्गधो भवति स्पर्शाना अष्टाना मध्ये केचित् स्पर्शा भवन्ति सस्थानाना मध्ये कानि चित् सस्थानानि भवन्ति ३० अथ कटुक रसभेदानाह (रसओ कडुएजेउ भइए सेउवणओ गधओ फासओ चेव भइए स ठाणओ विय ३१] य पुद्गलो रसत कटुको भवति स पुद्गलस्तिक्त पुद्गलवत् गधत स्पर्शतस्सस्थानतश्च भाज्य ३१ [रसओ

वन्नओ। गधओ फासओ चेव भइए सठाणओविय २९॥ रसओ कडुओ जेउ भइए सेउ वन्नओ। गधओ फासओ चेव भइए सठाणओविय ३०॥ रसओ कसाए जेउ भइए सेउ वन्नओ। गधओ फासओ चेव भइए सठाणओविय ३१। रसओ य विले जेउ भइए सेउ वन्नओ। गधओ फासओ चेव भइए सठाणओविय ३२॥ रसओ महुरए

भजना सस्थान ५ माहि कोइ कहवे २८ कसायला रस थको जे पुद्गल ते भजना वर्ण थकी गंध थको फरस थकी भजना सस्थान थको ३० रस थको खाटो जे पुद्गल भजना ते वर्ण थको गधथको फरस थको भजना सस्थान थको ३१ रस थको मधर मीठो जे पुद्गल ते भजना वर्ण थि गंध थको

एसे उगधश्रो रसश्रो फासश्रो चेव भद्द एसठाणश्रोविय २५) यः पुन पुद्गलोवर्णतोलोहितोभवति हिंगुल सद्दशो भवति सोपि पूर्वोक्तविधिना गधतोरसतः स्पर्शतश्च सस्थानतोपि भज्यस्तदासोपि विंशतिविधोभवति २५[वण्णश्रोपीयएजेउ भइएसे उगधश्रोरसश्रोफासश्रोचेव भइएसंठाणश्रोविय२६] यः पुनः पुद्गलोवर्णतः पीतलः स्वर्णवर्णः स पुद्गलोपि गधतोरसतः स्पर्शतः संस्थानतश्चभज्यस्तदाविंशति विधोभवति २६ अथ शुक्लस्य भेदानाह [वन्नश्रोसुक्किलेजेउ भइएसेउगधश्रो रसश्रोफासश्रोचेव भइउसंठाणश्रोविय २७] यः पुनः पुद्गलोवर्णतः शुक्लश्चन्द्र सदृशोभवति सोपि पुद्गलोग धतोरसतः स्पर्शतः सस्थानतश्चभज्यस्तदाविंशति विधोभवति २७ इति वर्णभेदानुक्त्वागध पुद्गलभेदानाह (गधश्रोजेभवेसुब्भीभइएसे उवन्नश्रो रसश्रोफासश्रोचेव भइएसंठाणश्रोविय २८) यः पुद्गलोगंधत सुरभिश्चन्दनपरिमलादिवत् सुगंधीभवति स पुद्गलोरसत स्पर्शतश्च भज्यस्तथा सस्थानतश्च भज्यः कोर्थः

सश्रो चेव भइए संठाणश्रोविय २५। वन्नश्रो सुक्किले जेउ भइए सेउ गंधश्रो। रसश्रो फासश्रो चेव भइए संठाणश्रोविय २६। गंधश्रो जे भवे सुब्भी भइए सेउ वन्नश्रो। रसश्रो फासश्रो चेव भइए संठाणश्रोविय २७। गंधश्रो जे भवे दुब्भी भइए सेउ वन्नश्रो। रसश्रो फासश्रो चेव भइए संठाणश्रोविय २८। रसश्रो तित्तश्रो जेउ भइए सेउ

रस ५ फरस ८ थको भजीवो सस्थान थको २५ वर्ण थकी जे उजलो पुद्गल भजीवो ते गंध थकी रस ५फरस ८ थकी भजीवो सस्थान ५ थकी २६ गध थको जे पुद्गल हुइ सुगंध भजिवो ते वर्ण थकी कोईक वर्णथाइ रस ५ फरस ८ थकी भजवाना संस्थान थकी २७ रस थकी तिखो पुद्गल भजीवो ते वर्ण थकी गंध थकी फारस थकी भजना सस्थान५थकी भजना२८ रस थकी कडूश्रो जेपुद्गलभजीवो ते वर्ण ५ थकी गधरस फरस८ थको

उ॰टोका
श॰२५
१॰२७

द्रव्यं २६ [फासग्रोगुरुएजेउभद्दएसेउवन्नग्रो गन्धग्रोरसग्रोचेव भद्दएसण्ठाणग्रोविय २७] य पुद्गल सर्वतोगुरुर्भवति स पुद्गलोवर्णतोगन्धतोरसतय सस्थानतयभज्य २७ (फासग्रो लहुग्रो जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो गंधग्रो रसग्रो चेव भद्दए सण्ठाणग्रोविय २८) य पुद्गल सर्वतो लघुर्भवति स पुद्गलो सस्थानतयभज्य २७ (फासग्रो सीयए २९) य पुद्गल सर्वत शीतलो भवति सवर्णतो गधतो रसत सस्थानत वर्णतो गधतो रसत सस्थानतय भज्य २८ (फासग्रो उन्हए॰ ४॰) य पुद्गल सर्वत उष्णाभवति स पुद्गलोवर्णतो गधतो रसत सस्थानतयापि भज्य ४॰ (फासग्रो यापि भज्य २९ [फासग्रो उन्हए॰ ४॰] य पुद्गल सर्वत उष्णाभवति स पुद्गलोवर्णतो गधतो रसत सस्थानतयापि भज्य ४१ [फासग्रो लुक्खए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो निद्धए॰ ४१) य पुद्गल सर्वत स्निग्धो भवति स पुद्गलो वर्णतो गधतो रसत स स्थानतयापि भज्य ४१ [फासग्रो लुक्खए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो

घत

भद्दए सठाणग्रोविय ३५ ॥ फासग्रो गुरुए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो । ग धग्रो रसग्रो चेव भद्दए सठाणग्रोविय ३६ ॥ फासग्रो लहुए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो। ग धग्रो रसग्रो चेव भद्दए सठाणग्रोविय ३७॥ फासग्रो सीयए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो। ग धग्रो रसग्रो चेव भद्दए सठाणग्रो विय ३८॥ फासग्रो उन्हए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो। ग धग्रो रसग्रो चेव भद्दए सठाणग्रो विय ३९ ॥ फासग्रो निद्धए जेउ भद्दए सेउ वन्नग्रो। ग धग्रो रसग्रो

भाषा

सस्थान थकी ३५ फरस थको भारी जे पुद्गल भजनात वर्ण थकी गध थकी भजना स स्थान थको ३६ फरस थकी जे सोतल पुद्गल भजना ते वर्णथो ग ध थको रस थको भजनात स स्थान थको ३७ फरस थको जे उष्ण उन्हो पुद्गल ते भजयो वर्ण थको ग ध थको फरस थको भजना स स्थान थको ३८ फरस थको जे चोकणो पुद्गल ते भजियो वर्ण थको ग ध थको फरस थको भजना स स्थान थको ३९ फरस थको लुखो जे पुद्गल ते भजयो

आसाए जेउ भइएसेउ वन्नओ गधओ फासओ चेव भइए संठाणओ विय २२] यः पुद्गलो रसतः काषायी भवति स पुद्गलो वर्णतो गंधत स्पर्शतश्च भज्यः संस्थानतश्चापि भज्यः २२ [रसओ अंबिलेजेउ भइएसेउ वन्नओ गधओफासओचेव भइए संठाणओविय २३] यः पुद्गलो रसत आम्लो भवति स पुद्गलो वर्णतो गधतः स्पर्शतः संस्थानतश्च भाज्यः २३ [रसओ महुरए जेउ भइए सेउ वन्नओ गंधओ फासओ चेवभइए संठाणओविय२४] यः पुद्गलो रसतो मधुरः सर्करातुल्यो भवति स पुद्गलो वर्णतो गंधतः स्पर्शतश्च भज्यस्तथा संस्थानतोपि भज्यः २४ इति रसभेदानाह (फासओ कक्खडेजेउभइए सेउ वन्नओ गंधओ रसओचेव भइए संठाणओविय२५] यः पुद्गलः स्पर्शतः कर्कशोभवति स च पुद्गलो वर्णतो भज्यः गंधतो रसतश्च भज्यः एव संस्थानतोपि भज्यः यथाहि एकः कर्कशः पाषाणादि सदृश स्पर्श पुद्गल स्तत्पुद्गले वर्णानां पञ्चानां मध्ये केचिद्वर्णाः भवन्ति गन्धयोरुभयोर्मध्ये एकः कश्चिद्गंधो भवति रसानां पञ्चानां मध्ये केचिद्रसाभवन्ति संस्थानानां पञ्चानां मध्ये कानि चित् संस्थानानि भवन्तीति भावः २५ (फासओमउएजेउ भइएसेउव वन्नओ गन्धओरसओचेव भइएसंठाणओविय २६) यः पुद्गलः स्पर्शतोमृदुर्भवति स पुद्गलोवर्णतोगन्धतोरसतः संस्थानतश्चभज्यः खरस्पर्शवत्ज्ञेयः

जेउ भइए सेउ वन्नओ। गंधओ फासओ चेव भइए संठाणओ विय २३ ॥ फासओ कक्खडे जेउ भइए सेउ वन्नओ। गंधओ रसओ चेव भइए संठाणओविय २४ ॥ फासओ मउए जेउ भइए सेउ वन्नओ। गंधओ रसओ चेव

रस थकी भजना संस्थान थकी २२ फारस थकी मृदुः पुद्गल सुकमाल भजना वर्ण थकी गंध थकी रस थकी भजना संस्थान थकी २३ फरस थकी जे करकस पुद्गल भजना वर्ण थकी गंध थको रस थकी भजना संस्थान थकी२४ फरस थकी ए सुंवो जे पुद्गल भजना ते वर्ण थको गंध थकी रस थकी

टीका

सर्वतोपि भज्य ४६ (सण्ठाणआयवउरसोभइएसेउ वन्नो ग धओरसओविय भइएफासओविय ४६) य पुद्गल चतुरस्रोभवेत् सोपि ग धतोरसतश्च स्पर्शतयापि भज्य ४६ [जेआययसण्ठाणे भइएसेउ वन्नओग धओरसओविय भइएफासओविय ४७] य पुद्गल आयतस स्थान सवर्णतोग धतोरसत स्पर्शतयापि भज्य ४७ इति पुद्गलानां वर्णग धरस स्पर्शस स्थानानां भेदा उक्ता अथ तेषा क्रमेण प्रत्येक २ स ख्या वदति तद्यथा एकाधिक् २ पुद्गलाश्रित वर्ण ग धौ द्वौ २ रसा पञ्च ५ स्पर्शा अष्टौ ८ सस्थानानि पञ्च एव सर्वेपि विंशति २ भेदा भवन्ति कृष्ण नील लोहित पीत शुक्लाना पञ्चवर्णानां प्रत्येक २ विंशति भेद २ मीलनात् शत भेदावर्णपुद्गलस्य अथ ग धजोद्वयो षट चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति तद्यथा वर्णा पञ्चरसा पञ्च स्पर्शा अष्टौ स स्थानानि पञ्च एव सर्वे त्रयोविंशति स ख्याकास्तेच सुग धदुग धयोस्त्रयोविंशति स्त्रयोविंशति प्रमिता उभयमीलने ४६ षटचत्वारिंश द्भवन्ति अथ रसपुद्गलाना शत भेदाभवन्ति तद्यथा वर्णा पञ्चग धौ द्वौ स्पर्शाष्टौस स्थानानिपञ्च एव विंशति भेदा प्रत्येक २ तिक्तकटुकषायाम्लमधु रादि पञ्चभिर्भक्ता सन्त शत भेदाभवन्ति १० अथ स्पर्शभेदा षट त्रिंशदधिकशत तद्यथा वर्णा पञ्चग धौ द्वौ रसा पञ्चस स्थानानि पञ्च एव

मूल

वन्नओ। ग धओ रसओ चेव भइए फासओविय ४४ ॥ सठाणओय चउरसे भइए सेउ वन्नओ। ग धओ रसओ चेव भइए फासओविय ४५ ॥ जे आयय सठाणे भइए सेउ वन्नओ। ग धओ रसओ चेव भइए फासओ

भाषा

भजना स स्थान थकी ग ध थकी रस थकी भजना फरस थकी ४४ जे आयत दीर्घ स स्थान पुद्गल भजियो ते वर्ण थकी गध थकी रस थकी भजना फरस थकी ४५ अथ स्थाना कालउत्कृष्टी एक समय जघन्य अजीयनी रूपीनो आतरो कह्या तीर्थ करे ४६ एपूर्वे कह्यो ते अधर्मास्तिकाय प्रमुखना

गंधओरसओचेव भइएसंठाणओविय ४१ (य पुद्गल. स्पर्शतोरूक्षोभवति स पुद्गलोवर्णतोगंधतोरसतश्चसंस्थानतश्चभज्य: ४२) अथ संस्थानभेदानाह [परिमण्डल संठाणे भइएसेउ वन्नओ गंधओरसओचेव भइएफासओविय ४३] य: परिमण्डल संस्थानपुद्गल स च वर्णतोगंधतोरसतो योज्य तथा स्पर्शतोपि भज्य: एकस्मिन् परिमण्डलसंस्थाने चूटिकाकृतिमति पुद्गलेवर्णाना पञ्चानां मध्ये केचिद्वर्णाभवन्ति गंधयोरुभयोर्मध्ये काश्चिद्गंधो भवति रसानां पञ्चानां मध्येकेचिद्रसाभवन्ति स्पर्शानां अष्टानां मध्ये केचित् स्पर्शाभवन्ति ४३ [संठाणओभवेवट्टे भइएसेउवन्नओ गंधओरसओचेव भइएफासओ विय ४४] य: पुद्गल. संस्थानतो वट्टे इति वर्त्तुलोलड्डुकाकृतिर्भवति स पुद्गलोवर्णतोगंधतोरसतश्च भज्य स्तथा स्पर्शतोपि भज्य. ४४ (संठाणओ भवेतंसे भइएसेउ वन्नओ गंधओरसओचेव भइएफासओविय ४५) य: पुद्गल: संस्थानतस्त्रिस्रोभवेत् सोपि पुद्गलोवर्णतोगंधतोरसतश्च भज्यस्तथा

सूत्र

चेव भइए संठाणओविय ४० ॥ फासओ लुक्खए जेउ भइए सेउ वन्नओ। गंधओ रसओ चेव भइए संठाणओविय ४१ ॥ परिमंडल संठाणे भइए सेउ वन्नओ। गंधओ रसओ चेव भइए फासओविय ४२ ॥ संठाणओ भवे वट्टे भइए सेउ वन्नओ। गंधओ रसओ चेव भइए फासओविय ४३ ॥ संठाणओ भवे तंसे भइए सेउ

भाषा

वर्ण थकी गंध थकी फरस थकी भजना संस्थान थकी ४० चूडानीपरिमंडल संस्थान जे पुद्गल ते भजिवो वर्ण ५ थकी कोइक वर्ण होइ गंध थकी रस थकी फरसथको भजना कोइक गंधादिक हुइ ४१ संस्थान थकी वाटलो जे पुद्गल ते वर्णादिक थकी भजिवो गंध थकी रस थकी भजना फरस थकी ४२ संस्थान थकी इइ त्रिखूणो पुद्गल ते भजिवो संस्थान थकी गंध थकी रस थकी भजना फरस थकी ४३ संस्थान थकी चोरस जे पुद्गल

दिने लाभः स्यात् आहारस्य प्राप्तिर्भवेत् उपलक्षणत्वात् अन्येद्युरपरेद्युः अन्यतरेद्यु र्वा मा वा भूत् यः साधु रेव प्रति समीच्यते इति चिन्तयति तं साधुं अलाभपरीषहो न तर्जयेत् न अभिभवेत् २१ अत्र अलाभपरीषहे कथाद्वयं लौकिकं १ लोकोत्तरञ्च २ तत्र प्रथमं लौकिकं कथा न कथ्यते एकदा कृष्ण १ बलदेव२ सत्यकि ३ दारुक४ एते चत्वारोऽप्यश्वापहृता अटव्यां वटवृक्षाधो रात्रौ सुप्ताः आद्ये प्रहरे दारुको यामिको जातः अन्ये त्रयः सुप्ता

भाषा

से जौबने अंतराय दीधो ते कर्मढंढण कुमारने भवि पाम्यो एकदा कृष्ण महारायनी स्त्रीढंढणा तेहनो पुत्त ढंढण कुमार वैराग्य थी नेमिनाथ पासे दीक्षा लीधी गोचरी करतां अंतराय कर्मे आहार पामे नहीं साधु जे साथे फिरे छे ते पिण आहार न पामे बीजे साधे नेम आगलि कह्यु, गोचरीइ साथि न जावे तिवारे ढंढण कुमार भगवंत पासे आवी अभिग्रह लीधो परायो वहिरयु मे न लेवुं आपणी लब्धे आहार मिलें तो लेवो इम अभिग्रहे पालतां घणो काल हुवा एकदा श्रीकृष्णनेमनाथ ने पूछ्यो भगवन् अठारें हजार सांधां में दुक्कर क्रियानो करण हार कुण छे अने आज केवल ग्यान कुण पामसी तिवारेंने भिकह्युं तुमारो पुत्त ढंढण कुमार दुक्करकारक आज केवल ग्यान पामस्ये ए श्रीनेमिनाथनो बचन सांभलिते हवें श्रीद्वारिकाइं पाछा आवतां भिचाइं भमतां ढंढण कुमार गलीमे देख्या भक्ति सहित वंदणा कीधी तेहवे कोई एक व्यवहारी कृष्ण वांदता देखी चिंतव्यो ए मोटो साधु छे जेहने कृष्ण वासुदेव वांदे तो ए माहरे घरे आवेतो एहने आहार द्यु एहवो चिंतवी साधुने बोलायो व्यवहारीये सूझतो मोदिक आप्या तेलेई श्रीनेम नाथ पासे आव्या गमणागमण पडिकमी पूछे भगवन माहरो अंतराय कर्मक्षय गयो जे मे शुद्ध मोदिक लाधा तिहां श्रीनेम कहेए कृष्णनी लब्धि ताहरी लब्धि नथी एहवो सांभलि चिन्तव्यो मुझने परलब्धनो आहार न लेवो ते भणी आहार परिठवाने हेत राख मांहि चूरता कर्म चूर्या शुभ भावना धरे धन्य श्रीनेमि माहरोपण राख्यो नही तो भग पडंतद्रम के वलग्या न ऊपनो के तला वर्ष केवल पालि मुक्ति पुहता जिम ढंढण

समदशभेदास्तेच खरमृदुगुरुलघुरूक्षस्निग्धशीतोष्णपुद्गलैरष्टभिर्गुणिता: षट्त्रिंशदधिकं शतं भेदा भवन्ति प्रज्ञापनायां सर्वपुद्गलाना १८४ चतुरशी त्यधिकशतं भेदा उक्ता: सन्ति तद्यथा वर्णा· पञ्चरसा: पञ्च गंधौ द्वौ स्पर्शाःषट् एव गृह्यन्ते यतोहि यत्र खर स्पर्शपुद्गलोगण्यते तत्र तदा मृदु: पुद्गलोनगण्यते यत्रस्निग्धोगण्यते तदा तत्र रूक्षोनगण्यते परस्परविरोधिनौ हि एकत्र नतिष्ठत· तस्मात् स्पर्शा: षट्संस्थानानि पञ्च एवं सर्वेमीलिता त्रयोविंशति भवन्ति ते त्रयोविंशति भेदा: प्रत्येकं खरमृदुगुरुलघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णाद्यष्टाभि: पुद्गलैर्गुणिता: १८४ चतुरशीत्यधिकशत भेदा भवन्ति वीतरागोक्तं वच· प्रमाणं येन यादृशं ज्ञातंतेन तादृशं व्याख्यातं तत्वं केवलीवेद अधोपसंहारेण उत्तरग्रन्थ सम्बंधमाह (एसाअजीवविभत्तीसमासेणविया हिया एत्तोजीवविभत्तिं वुच्छामि अणुपुव्वसो४७) एषा अजीवविभक्ति: समासेन संक्षेपेणव्याख्याताइत्तोइति इतोऽनन्तर अणुपुव्वसोइति आनुपूर्व्याऽनु क्रमेण जीवविभक्तिं प्रवक्ष्यामि ४८) (संसारत्थायसिद्धाय दुविहाजीवावियाहियासिद्धाणेगविहावुत्ता तंमेकित्तयओसुण ४९) जीवाद्विधाव्याख्याता तेकेसंसारस्थासंसारोगति चतुष्टयात्मकस्तत्रतिष्टन्तीति संसारस्था: च पुन: सिद्धा· कर्ममल रहिता· भव भ्रमणाम्नि वृत्ता तत्र च सिद्धा: अनेकविधा

सूत्र

विय ४६ ॥ असंख काल मुक्कोस एक्कोसमओ जहन्नयं। अजीवाणय रूवीणं अंतरेयं वियाहियं ४७॥ एसा अजीव विभत्ती समासेण वियाहिया। इत्तो जीव विभत्तिं वोच्छामि अणुपुव्वसो ४८॥ संसारत्थाय सिद्धाय दुविहा जीवा

भाषा

पुद्गलनी विभक्ति विवरी ते संखेपे करी कह्यो ए अजीव विभक्त कह्या पछे जीवनी विभक्ति विचार करे छुं अनुक्रमे ४७ संसारी एकेंद्रियादिक सिद्ध एविहुं भेदे जीव कह्या ते सिद्ध अनेकभेद कह्या ते तुझ कहतां प्रति सांभलि हे शिष्य ४८ स्वलिंगय तीनेविखिं सिद्ध: बौद्धादिक अनेरेलिंग सिद्ध

उक्ता त इति तान् सिद्धभेदान् मेकथयतस्ल गाथा ४८ (इत्थी पुरिससिद्धाय तहेवयनपु सगासलिङ्गा अन्नलिङ्गाय गिहलिङ्गे तहेवय५०) इत्थीइति स्त्रिय पूर्वापर्यायापेक्षयासिद्धा स्त्री सिद्धा १ एव पुरुषपर्यायात् सिद्धा पुरुषसिद्धा २ तथैव ते नेव प्रकारेण नपु सकपर्यायात् सिद्धा नपु सकसिद्धा नपु सकाश्च कृत्रिमा एव सिद्धा भवन्ति न तु जन्मनपु सका सिध्यन्ते ३ स्वलिङ्गसिद्धायतिवेषेणसिद्धा ४ अन्यलिङ्गसिद्धा जोगपरिव्राजकादिवेषेणसिद्धा ५ तथैव गृहलिङ्गे सिद्धा गृहस्थवेषेसिद्धा ६ षट भेदाःसिद्धाना उक्ता अन्यान्तरेपञ्चदशभेदा अपि जिन सिद्ध१ स्तीर्थंकर २ अजिनसिद्ध १ गणधर तीर्थसिद्ध पुण्डरीकादि ३ अतीर्थसिद्ध मरुदेव्यादि ४ गृहलिङ्गसिद्धभरतादि ५ अन्यलिङ्गसिद्ध वल्कलचीरीप्रमुख ६ स्वलिङ्गसिद्धसाधु ७ स्त्रीलिङ्गसिद्धचन्दन बालादि ८ नरसिद्धस्थविर ९ नपु सकसिद्धगांगेयादि १० प्रत्येक बुद्ध ११ करकण्ड्वादि ११ स्वय बुद्धकपिलकेवल्यादि १२ बुद्धबोधितसिद्ध१३ एकसमये एकसिद्ध १४ एकसमये अनेकसिद्ध १५ एव पञ्चदशभेदा अपि षट स्वेव अन्तर्भवति अथ सिद्धानेव अवगाहनात क्षेत्रतश्च आह (उक्कोसोगाहणाएय जहन्नमज्झिमाइय उड्ढं अहेयतिरिय च समुद्दम्मिजलम्मिय ५१) अस्यां गाथायां उत्कृष्टावगाहनायां तथा जघन्यावगाहनायां च पुनर्मध्यमायगाहनायां

वियाहिया। सिद्धा णेग विहा वुत्ता त मे कित्तयओ सुण ४९॥ इत्थी पुरिस सिद्धाय तहेवय नपु सगा। सलिंगे अन्न लिंगेय गिहिलिंगे तहेवय ५०॥ उक्कोसा गाहणाएय जहन्न मज्झिमाइय। उड्ढ अहेय तिरियच समुद्दमि जलमिय५१

थाइ भइस्युनें लिगथि सर्वमतविस्तर स्त्री थकी सिद्ध पुरुष थकी मरी सिद्ध तिमवली नपु स थकी सिद्ध ४९ उत्कृष्टी पांचसे धनुषनी अवगाहन देहें सोभे हाथ २ जघन्य अवगाहना ते विचाले मध्यम अवगाहना उर्द्धलोक मेरुचूला अधोलोक अधोगाम अढीदीपतिरछे लोक समुद्रनें विषे नदी

कतिसिद्धा कुत्र२ स्थाने भवन्ति तदाह उत्कृष्टावगाहनायां अवगाह्यते जीवेन आकाशोऽनयार्द्दति अवगाहनायां सिद्धा॰ च पुन जघन्य मध्यमयोर्जघन्यावगाहनायां तथा मध्यमावगाहनायां उत्कृष्टावगाहनाया जघन्यावगाहनायाश्च अन्तर्वर्त्तिनीमध्यमावगाहनातस्यांसिद्धाः उर्द्धे इति ऊर्द्धलोके मेरुचूलादौ चैत्यवन्दनां कर्त्तुं गतानां केषांचित् चारणश्रमणानां सिद्धिः स्यात् तदा ते श्रमणास्तत्र कियन्तः सिद्धाभवन्ति एवं अधोलोकेगाहनगरादौ सिद्धाः कियन्तोभवन्ति एव तिर्यग्लोकेसार्द्धद्वितीयद्वीपेषु समुद्ररूपेजलेनद्यादौ एतेषु स्थानेषु एकस्मिन् समये कियन्त॰ सिद्धाभवन्ति इति प्रश्न॰ अथै तेषां एव उत्तरं वदन्ति [दसयनपुं सएसु वीसइंइत्थियासुयपुरिसेसुयअट्ठसयसमएणेगेणसिज्झई ५२] [चत्तारियगिहलिंगेअन्नलिंगेदसेवयसलिंगेणयअट्ठसय समएणेगेण सिज्झई ५२] [उक्कोसावगाहणाएउ सिज्झंते जुगवदुवे चत्तारि जहन्नाए जवमज्झमट्ठुत्तरं सय ५३] [चउरुड्ढलोए यदुवे समुद्देतओ जले वीसमहेतहेवय सयच्च अट्ठुत्तरतिरिय लोए समए णेगेण सिज्झईधुव ५४] एतासाञ्चतसृणा गाथानां अर्थः च शब्दः समुच्चये दशेति दशसंख्याकाः नपुं सकेषु

सूत्र

दसय नपुंसएसु वीसं इत्थियासुय। पुरिसेसुय अट्ठसय समएणेगेण सिज्झई ५२॥ चत्तारिय गिहिलिंगे अन्नलिंगे दसेवय। सलिंगेणाय अट्ठसयं समएणेगेण सिज्झई ५३॥ उक्कोसी गाहणाएओ सिज्झंते जुगवंदुवे। चत्तारिय जह

भाषा

तलावादि पाणीने विखे ५० दस नपुंसकने विखे वीसस्त्रीने विखे पुरुषने विखे एकसोआठ एकसमय सीझे उत्कृष्टपणे ५१ धार गृहस्थ लिंगने विखे बौद्धादिक अनेरा लिंगवेसने विखे स्वलिंगेनय तीनेंलिंगे एकसोआठ एका समे सीझे तो उत्कृष्टपणे ५२ उत्कृष्टी पांच सय धनूषनी अवगाहना देहे युगपत् साथे सीझे तु समय २ सीझे जघन्यनाहानी अवगाहनाइं ४ सीझे एके समये यवनामा ध्याननीपरि मध्यम अवगाहना देहे वर्त्तता

एकस्मिन्समये सिध्यन्ते च पुन विंशतिस्त्रीषु सिध्यन्तिपरुषेषु च अष्टसय इति अष्टभिरधिक शत अष्टशत एकस्मिन्समये सिध्यन्ते ५२ गृहाणां गृहस्थस्य लिङ्ग गृहलिङ्ग तस्मिन् गृहलिङ्गे चत्वार सिध्यन्ति एकस्मिन् समयेऽपि प्राप्नुवन्ति अन्यलिङ्गे बौद्धादिवेषेदशसंख्याका सिध्यन्ति स्वलिङ्गे न रजो हरणादिसाधुवेषेण एकेन समयेन अष्टोत्तर शत सिध्यन्ति ५३ उत्कृष्टावगाहनाया पञ्चशतधनु प्रमाणाया युगपत्समकाल एकेन समयेन द्वौ सिध्यत जघन्यावगाहनाया हिहस्त प्रमाणायां चत्वार सिध्यन्ति तथा जयमध्यमक्ति इति यवमध्यमिव मध्य मध्यमावगाहनायां एकेन समयेन अष्टोत्तरशत सिध्यन्ति तु शब्द पुनरर्थ प्रभुमिति निश्चयादिति गाथा चतुष्टयार्थं ५४ अथ तेषां एव प्रतिघातादि प्रतिपादनाय आह (कहि पडिहया सिद्धा कहि सिद्धापइट्ठिया कहि मा दिंच इत्ताण कत्थगन्तूणसिज्झई ५५) कहि इति कस्मिन् सिद्धा प्रतिहता स्खलिता सन्ति कोर्थं कुत्रसिद्धा निरुद्धगतयो

ऊड्ढाए जवमज्झट्ठुत्तर सय ५४ ॥ चउरुड्ढलोएय दुवे समुद्दे तओ जले वीस मह तहेवय। सयच अट्ठुत्तर तिरियलोए

समएणेगेण सिज्झईधुव ५५ ॥ कहिपडिहयासिद्धा कहिसिद्धा पइट्ठिया। कहिवोदि चइत्ताण कत्थ ग तूण सिज्झई५६।

१०८ सीझै एकसमै ५३ मेरु चूलादि उर्द्धलोके एकसमै ४ सीझै लवणो दधि समुद्रने तलावादि शेषपाणीने विषे तीन अधोलोक अधोगामादी विषे विस तथा वली एकसोआठए एकसमै तिरछे लोके अढोद्वीपमाहि समे एके निश्चे सीझै ५४ किहां सिद्ध प्रतिहत खलना पाम्याछे किहा प्रतिष्टित रह्याछे किहां यो दो शरीर छांडीने किहा जइने सीझै ५५ अलोकने विषे हणाणा खलना पामयाछे सिद्ध लोकने अग्रिमस्थल प्रतिष्टित रह्याछे इहा तिरछे लोके याहो शरीर छांडीने तीहां लोकने अग्रि जईने सीझै ५६ प्रमाणागुले धारियो जने

वर्त्तन्तेसिद्धा कस्मिन् प्रतिष्ठिताः सन्ति सादि अपर्यवसितं कालं स्थिताः सन्ति पुनः सिद्धाः क्वबुन्दिं शरीरन्त्यक्ता कुत्रगत्वासिज्झइ इति सिध्यन्ति प्राकृतत्वाद्वचनव्यत्ययः क्वसिद्धजीवादेहन्त्यक्तानिष्ठितार्था भवन्ति ५६ एतत्प्रश्नस्योत्तरमाह [अलोए पडिहयासिद्धा लोयग्गे य पयट्ठिया इहं बुन्दिं च इत्ताण तत्थ गन्तूणसिज्झई ५७] सिद्धाअलोके केवलाकाशलक्षणे प्रतिहता. स्खलिताः सन्ति तत्र हि धर्मास्तिकायाभावेन तेषां गतेरसम्भवोस्ति तथा पुन सिद्धालोकाग्रे लोकस्योपरितने भागे प्रतिष्ठिता सदा अवस्थिताः सन्ति इहतिर्यग्लोकादौ बुन्दिंशरीरन्त्यक्ता तत्र लोकाग्रे गत्वासिध्यन्ति पूर्वापर कालस्य असम्भवात् यत्रैव समये भवक्षयस्तस्मिन् एव समये मोक्षस्तत्रगतिश्च भवति भावः ५७ अथ लोकाग्रे चईषत्प्राग्भारा यत्संस्थानायत् प्रमा णायद्वर्णा च वर्त्तते तत्सर्वं प्राह [बारसजोयणे हि सव्वट्ठस्सुवरिं भवेईसीपब्भारनामाओ पुढवीछत्तसण्ठीया ५८] [पणयालसयसहस्साजोयणाणं तु आयया तावइयं चेवविच्छिन्नातिउणोसाहियपरिरओ ५९] (अट्ठजोयण वाहल्ला एसामज्झमि वियाहिया परिहायन्ती चरिमन्ते मच्छिय पत्ताओ तणयरी ६०) [अज्जुणसुवन्नगमई सापुढवी निम्मलासहाविणं उत्ताणय छत्तय सण्ठियाय भणियाजिणवरेहि ६१] (सङ्ख ककुन्दसङ्कासा पण्डुरानिम्मलासुभासीयाए जो

अलोए पडिहया सिद्धा लोयग्गे य पइट्ठिया। इहं बोंदिंच इत्ताणं तत्थ गंतूण सिज्झई ५७॥ बारसहिं जोयणेहिं सव्वट्ठस्सु वरिं भवे। इसीपब्भार नामाओ पुढवीछत्त संठिया ५८॥ पणयाल सयसहस्सा जोयणाणंतु आयया।

सर्वार्थसीद्ध विमानने उपरिछे ईषत् प्राग्भारा नाम सिद्ध सिला पृथिवी पाषाणमइ उताणा चीता छत्रने संस्थाने रहीछे ५७ पैताली सलाख योजन आयतलांबी तेतलीज४५ लाख योजन पोहली जाणनी त्रिगुणी झाझेरी परधि १कोडि ४२लाख ३०हजार २४९योजन झाझेरा ५८ ते सिद्ध शिला

यवेतत्कोलाय तोऽवयियाद्विमो [२] एताभि पञ्चभिगाथाभिर्षिसिलादयत् प्राग्भारामख्यो अथ लोकाग्र वर्णयति सर्वार्थसिद्धस्य नाम्नोविमानस्या परिहादपभिर्योजनैरोपत् प्राग्भारा नाम्नो पृथ्वो भवेत् कोदृशो साभूमि छत्र संस्थिता छत्र आतपत्र तस्य स स्थित स स्थान आकृतिर्यस्यासा छत्र संस्थिता २४ सामान्योक्तापि छत्र उत्तान एवयेय ५८ सार्द्धयत् प्राग्भारापृथ्वी कीदृशो वर्त्तते तत् स्वरूपमाह सार्द्धयत्प्राग्भारा योजनाना पञ्चचत्वा रिंशत् शतसहस्राणि आयतादोर्घायत्तंते पञ्चचत्वारिंशत् लक्षयोजन दोर्घास्तोत्यर्थं च पुनस्तावन्तिक तावत् प्रमाण एव विस्तीर्णा वर्त्तते विस्तारेणापि पञ्चचत्वारिंशत् ▪ क्षयोजनदोर्घाप्तोत्यर्थं च पुनस्तावन्तिक तावत् प्रमाण एव विस्तीर्णावर्त्तते विस्तारेणापि पञ्चचत्वारिंशत् लक्षयोजन प्रमाणेति भाव तथा तस्याः यत्प्राग्भारादति ग्रेय परिरयाहति परिधि त्रिगुणि साधिकोग्रेय तदा एककोटि द्विचत्वारिंशत्लक्ष त्रि प्रशसहस्र द्विशतैकोनपञ्चाशद्यो जनानि किञ्चिदधिकानि एतावान् तस्या सर्वपरधिर्भवति ५८ पुन कथभूतासा अष्टयोजन बाहुल्य अष्टयोजनानि बाहुल्य यस्या सा अष्टयोजनबाहु ल्याकारयत्प्राग्भारामध्य प्रदेशेऽ यत्प्रमाणश्चोक्तोजिनैर्व्याख्याता परिमान्तेषु सर्वदिग्वर्त्तिषु पर्यन्त प्रदेशेषु परिहीयमाना परिसमन्तात् हायतीति ध्रीयमाना एतावता अष्टौ मक्षिकाया अत्र मक्षिकापत्र मक्षिकापिच्छ तस्माद् अधिकापत्रात् अपि तनुतरामति सूक्ष्मादत्यर्थ ६० पुन कीदृशोसा

मूल

ताबद्दूयंचेव विच्छिन्ना तिगुणो साहिय परिरयो ५८ ॥ अट्ठ जोयण बाहल्ला सा मज्झमि वियाहिया । परिहायती

भाषा

आठयोजन बाहुल्य आठो त जाडपणे मध्यमप्रदेशे कह्यो तीर्थंकर देवे पछे थोडे२ पातलो घटतो घटतो छेहडे माखीना पांख थकी तनु अति पातलो ५८ वलुन धोलो सोनोते हम यतो पृथिवि सिद्ध शिला निर्मलसहित स्वभावे छत्राणा चिता छत्रने संस्थाने आकारे संस्थित कह्यो तीर्थंकर देवे

पृथ्वीअर्जुन सुवर्णमयी श्वेतकाञ्चनस्वरूपा पुनः सा पृथ्वीस्वभावेननिर्मलापुन' सा कीदृशी उत्तानकं जर्द्ध मुखं यत् छत्रकं तद्वत्संस्थित यस्या साउत्तान छत्रकसंस्थितासाजिनवरैर्व्याख्याताभणिता पूर्वं सामान्येन छत्र संस्थिता इत्युक्ता इह तु उत्तानछत्रसंस्थिता इत्युक्ता अत्रायं विशेषइति न पुनरुक्ति दोषः ६१ पुन सा पृथ्वीशंखांककुन्दसंकाशा पाण्डुराधवला निर्मलाशुभाभव्या सा पृथ्वी सीताभिधावर्त्तते सीता इत्यपर नाम तस्याः सीताभिधानायाः पृथिव्याउपरिइत्यनेन सिद्धशिलायाउपरिष्टात् एकयोजनं लोकान्तस्तुव्याख्यातः ६१ इति सिद्धिशिलास्वरूपमुक्तातत्र सिद्धाः कतिष्टतीत्याह [जोयणस्सउ जोतत्थ कोसोउवरिमोभवे तस्सकोसस्सछब्भाए सिद्धाणोगाहणाभवे ६२] योजनस्य तत्र उपरिमउपरिवर्त्तीयं' क्रोशोभवेत् तस्य क्रोसस्य षष्टेभागेइत्यनेन सत्रिभागत्रयस्त्रिंशदधिकधनुः शतत्रितय रूपे ३३३ धनुः परिमाणे सिद्धानां तत्र अवगाहनावस्थिति र्भवेत् इत्यर्थ' ६३ पुन· सिद्धानां स्वरूपमाह

सूत्र

चरिमंते मच्छीयपत्ताओ तणुययरी ६० ॥ अज्जुण सुवन्नगमई सा पुढवी निम्मला सहाविणं। उत्ताणय छत्त संठियाय भणिया जिणवरेहिं ६१ ॥ संखं क कुंद संकासा पंडुरा निम्मला सुहा। सीयाए जोयणे तत्तो लोयंताओ विया हिओ ६२॥ जोयणस्सउ जो तत्थ कोसो उवरिमो भवे। तस्स कोसस्स छब्भाए सिद्धाणो गाहणा भवे ६३॥ तत्थ सिद्धा

भाषा

भणी कही तोर्थंकर देवे ६० शंख अंकरत्न कुंद कुंदना फूलसरिखी धउली मलरहित मनोहर ऊंची सिद्ध शिलाथी एक योजन लोकनो अंत कहेहडो कह्यो ६१ ते एक योजनथो तीहां एक कोस ऊपरि लोछे ते एक कोशना छठा भागने विखे एतलेइ ३३ धनुख झाझेरा सिद्धनी अवगाहना होइ६२ तिहां सिद्ध महाभाग्य अचिंत्य शक्ति लोकना अग्रने विखे रह्याछे भवसंसार अवतार प्रपच थकी मूकाणा सिद्धरूप मोक्ष उत्तमगते पहुता ६३ उंच

(तत्यसिद्दा महाभागा लोयग्गमि पयट्ठिया भवप्पवञ्च उम्मुक्का सिद्धि वरगय गया ६३) तत्र तस्मिन् लोकाग्रे सिद्धा प्रतिष्ठिता सन्ति कीदृशा सिद्धा महाभागा अचिन्त्यशक्तिमन्त पुन कीदृशा भवप्रपञ्च उन्मुक्ता भवानरकादयोऽवतारा तेषां प्रपञ्चोविस्तारस्तत उन्मुक्ता भवप्रपञ्चोन्मुक्ता अथ भ्रमणरहिताइत्यय पुन कीदृशा सिद्धि वरगतिगता सिद्धिनाम्नी प्रधानगति प्राप्ता अत्र हि सिद्धाना भव प्रपञ्चोन्मुक्तत्वादति विशेषणेन अचलस्वभाव उक्तोऽस्ति ६३ अथ सिद्धानां कियती अवगाहनाभवति इत्याह [उस्सेहोजस्सजोहोइ भव मिचरम मियतिभागहीणातत्ताय सिद्धाणोगाहणाभवे ६४] यस्य पुरुषस्य चरिमे भवे अन्त्यभवेमोक्षगमनाहे जन्मनि याहृश उत्सेधोभवति देहप्रमाण भवति ततो देहप्रमाणात् सिद्धाना मोक्षप्राप्ताना तृतीय भागहीनाअवगाहनाभवेत् ६५ अथ सिद्धानां कालतमाह [एगत्ते णयसाइया अपज्जव सियाविय पुहुत्ते ण अणाईया अपज्जव सियाविय ६६] ते सिद्धा एकत्वे न एकस्य कस्यचित् नामग्रहणापेक्षया सादिका अमुको मुनिस्तदा सिद्ध इत्यादि सहिता सिद्धा भवन्ति च पुनस्ते सिद्धा अपर्यवसिता अन्त

महाभागा लोयग्गमि पइट्ठिया। भव प्पवचउमुक्का सिद्धि वरगइ गया ६४ ॥ उस्सेहो जस्स जो होइ भवमि चरम मिचो। तिभाग हीणा तत्ताय सिद्धाणो गाहणा भवे ६५ ॥ एगत्तेण साईया अपज्जव सियाविय। पुहुत्ते ण अणा

भाषा

यदि जे मनुष्यना भवनेविषे जेतले प्रमाणे होइ चरिमदेहलो मोक्षजावानो भव अवसरने विषे त्रीजो भागेमो होते पूर्वभवना उ चपणा थकां सिद्धानी अवगाहना हुइ ६४ एककोइकनो नामलेइ कहे अमको सीधोते आदि सहित कहोइ मोक्ष थको [illegible]हानावितणे अपर्यवसित पुहुत्त घणाआश्री जोईं येतो आदि रहित अनादि अने जेहनो पयवसान छेहडो नही अनतते कहोइ ६५ ते सिद्ध अरूपो रूपादिरहीत जीव प्रदेशमय घण अतर रहित शरीर

रहिता· मोचगमनादनन्तर अत्रागमना भावात् अन्तररहिता: ते सिद्धा: पृथक्त्वेन बहुत्वेन सामस्त्या पेचया अनादयो अनन्ताश्च ६६ पुनस्तेषामेव स्वरूपमाह [°अरूविणो जीवघणा नाण दसण सन्निया अउल सुह संपत्ता उवमा जस्स नत्थिओ ६७] ते सिद्धा: अरूपिणो वर्त्तन्ते रूपरहितत्वेन रस गंध स्पर्शानां अपि अभाव: लेश्यारहिता अपि पुन: कीदृशा· सिद्धा: जीवघना: जीवाश्च ते घनाश्च जीवघना: जीवा: सच्चिदुपयोगयुक्ता: घना अन्तर रहितत्वेन जीव प्रदेशमया पुन कीदृश: ज्ञानदर्शन सञ्ज्ञिता: केवल ज्ञान केवल दर्शने एव संज्ञा जाता येषाते ज्ञानदर्शन संज्ञिता: ज्ञानदर्शनोपयोग वन्त इत्यर्थ: पुन: कीदृशा: अतुलं अपरिमितं सुखसंप्राप्ता· यस्य सुखस्य उपमानास्ति तत्सुख प्राप्ता इत्यर्थ यत: वार्सलोश विसीच्चाश्च मोचे सुख मनु त्तरमिति ६७ अथसिद्धाना चेत्र स्वरूपमाह [लोएगदेसे ते सव्वे नाणदंसण सन्निया संसार पार निच्छिन्ना सिद्धि वर गइं गया ६८] ते सिद्धा:

ईया अपज्जवसियावि य ६६ ॥ अरूविणो जीवघणा नाण दंसणसन्निया । अउलं सुह संपत्ता उवमा जस्स नत्थिओ ६७॥ लोएग देसे तेसव्वे नाणदंसण सन्निया । संसार पार निच्छिन्ना सिद्धिंवर गइं गया ६८॥ संसारत्थाउ जे जीवा दुवि

विवरपूरा तेणे केवलज्ञान केवल दर्शन सद्भावत एतले ज्ञानदर्शनना उपजोग सहीत अतुलं घणुं सुख पाम्याछे जेहनी सुखनीओपमानथी अनंत सुखछे ६६ लोक चउदराजना एक देश विभागने विखे ते सर्वसिद्धछे केवलज्ञान केवलदर्शन उपयोग सहित गत च्यार संसारनो पारनो वाखो जेणे सिद्धे सिद्धरूप उत्तम गति गया एतले मोक्ष गया ६७ हिवे संसारी जीव कहेछे संसार संबंधिया जे जीव विहुं प्रकारे ते कह्या तीर्थंकरे ते केहा एकत्र सबीजा थावर ते वेत्रज थावरमाहि थावरतिहुं प्रकारे ६८ ते तीन केहा पृथिवी जीव अप्पकाईया जीव तथा वलिवनस्पति जीव ए थावर

सर्वे लोकैकदेशे तिष्ठन्ति इत्यनेन मुक्ता सर्वत्र तिष्ठन्ति व्योमवत्व्यापवर्जिता इति सर्वगतत्व मत अपास्त तथात्वे सति सर्वदा वेदवादि प्रसङ्गात् पुन कोदृश्या ज्ञानदर्शन संज्ञिता इत्यनेन केषाञ्चित् ज्ञान स ज्ञा केषाञ्चिद्दर्शन स ज्ञा जैन मतेतु सर्वेषां सिद्धाना उभे ज्ञानदर्शने स ञ्जातेस्त ज्ञानदर्शनमया सिद्धा इत्यर्थ पुन कीदृश्या ससारपारनिस्तीर्णा पनरागमनाभावात् ससारं अतिक्रान्ता इत्यनेन केषाञ्चिन्मते भक्तोद्धारार्थं दान वानां विनाशार्थं भूयोभूयोभूमौ अवतीर्यभक्त कार्यं विधाय मुक्तिं व्रजति प्रभुरिति मतमपि निराकृत पुन कीदृश्या सिद्धिं वरगतिं गता इत्यनेन क्षीणकर्माणोपि लोकाग्रगमनस्वभावेन उत्पत्ति समयेसक्रियत्वमप्यस्तीति गाथाभिप्राय ६८ अथ सिद्धान् अभिधाय ससारिणोजीवानाह [ससारत्थायजी वाडुविहाते वियाहिया तसा यथा वराचेव थावराति विहातहि ६९) ये जीवा ससारस्थास्ते जीवा द्विविधास्तीर्थंकरैर्व्याख्याता तेके त्रसास्थाव रास्र एतेद्विविधा अथ है विध्येसत्यपि अल्प कथनत्वात् पूर्वं स्थावराणां निर्देशंकरोति तत्रअपिषु स्थावरेषु त्रिविधास्थावरा सन्ति६९ (पुढवीआउजीवाय तहेवयवणस्सई एसेएथावरातिविहातेसिंभेएसुणेहमे ७०] स्थावरास्त्रिविधा पृथ्वीजीवा आपोजलानि पृथिवी च आपश्च पृथिव्यापस्तद्रूपाजीवा पृथिव्यपजीवास्तथैव वनस्पतीजीवा जीव शरीरयोर्द्वयो रन्योन्यानुगतत्वेन कथंचित् अभेदात् पृथिव्यप् वनस्पतिषु जीवव्यपदेश इति एते पृथिव्यादयस्त्रि विधास्थावरा सन्ति तेषां त्रयाणां स्थावराणां भेदान् मे मम कथयतस्त्वं शृणु ७० पृथिवी भेदानाह [दुविहा पुढवि जीवाओ सुहमा बायरा

हा ते वियाहिया। तसाय थावरा चेव थावरा तिविहा तहि ६९ ॥ पुढवी आउ जीवाय तहेवय वणस्सई। इच्चेए

विहु प्रकारे तेहना भेद प्रकार सांभलि हे शिष्य ६९ विहु प्रकारे पृथवीना जीव सूक्ष्मनाम्ना केवली गम्ययादर देखीताच्छदमस्थे ते एक पर्याप्तावी

उ०टीका
अ०२
१०५

तदानीं क्रोधपिशाच तत्रायात दारुक मत्याह यदि भेतान् सुप्तान् साम्प्रत भक्षयामि यदि तवैषां रक्षणे शक्ति रस्ति तदा युद्ध कुरु दारुकेणोक्त वाढ ततो मल्लयुद्ध यथा १ दारुकस्त पिशाच हन्तु नशक्नोति तथा २ तस्य क्रोधो वर्द्धते तथा च दारुकस्य न युद्धलाभो जात पराभूतएवदारुक सुप्त द्वितीये प्रहरे सत्यकि रुत्थित क्रोधपिशाचेन तथैव जित तृतीये प्रहरे बलदेव सोपि तथैवजित तुर्ये प्रहरे उत्थित कृष्ण क्रोधपिशाच स्तथैव प्रोक्त वान् कृष्णप्राह मां जित्वा मल्लदायान् भक्षय ततो यथा क्रोध पिशाचो युध्यति तथा २ कृष्णोऽत्रो बलवान् एषमल्ल इति तुष्यति यथा कृष्णस्तोषवान् भवति तथा २ पिशाच क्षीयति एव कृष्णेन पिशाच सर्वथाक्षीण स्ववस्त्रमध्येक्षिप्त प्रभाते तान् भ्रगान् दृष्ट्वा कृष्णेनोक्त किं मेतद्भवता जातन्तो सर्वेऽपि रात्रिवृत्तान्त प्राहु कृष्णे न स्ववस्त्रमध्यादाकृष्य दर्शित एवं कृष्णवदयस्तोषवान् भवति सो लाभपरीषह जेतु शक्नोति अथ द्वितीय लोकोत्तर ढंढण कुमार कथानक कथ्यते कस्मि श्चिद्ग्रामे कोपिकृषि सरीरो कुटम्बी वसति अन्येपि बहवस्तत्र कुटुम्बिनो वसन्ति वारकेण ते राजवेष्टिं कुर्वन्ति राजसत्क पञ्च शतहलानि वाहयन्ति एकदा तस्य कृषिशरीरस्य पञ्चशतहलवाहन वारक समायात तेन च वाहिता वृषभा भक्तपानवेलायां मध्येकोऽपिधिया याचो दापित भक्तान्तराय कर्मबद्ध तो मृत्वाऽसौ बहुकाल मितस्तत संसारे परिभ्रम्य कस्मि श्चिद्भवे सुकृतवशेन द्वारिकायां कृष्णवासुदेवस्य पुत्र त्वेन समुत्पन्न ढण्ढणेति तस्य नाम प्रतिष्ठित स ढण्ढणकुमार श्रीनेमिपार्श्वे अन्यदा प्रव्रजित लाभान्तरायवशात्समहर्द्ध्यां मपि द्वारिकायां हिण्डमानो न किञ्चिदाहारादि लभते यदि कदाचिल्लभते तदा सर्वथाऽसारमेव ततस्तेन स्वामी पृष्ट स्वामिना तु सकल पूर्वभववृत्तान्त स्तस्य कथित तेन चाऽय मभिग्रहो गृहीत परलाभो मया न ग्राह्य अन्यदा वासुदेवेन स्वामिन इति पृष्ट भगवन् एतावत्सु श्रमणसहस्रेषु को दुष्करकारक स्वामिनाऽऽढ ण्ढणर्षिरेव दुष्करकारक इति तदा कृष्णेनोक्त स इदानीं क्वास्ति स्वामी प्राह त्वं नगर प्रविशन् त द्रक्ष्यसि हृष्ट कृष्ण श्रीनेमिजिन प्रणम्य उत्थित

पृथ्वी तथा ५ तथा पाण्डु पाण्डु वर्णा धूसर शुभ्रा ६ इह च पाण्डु ग्रहणं कृष्णादि वर्णानां अपि स्वस्थानभेदाकार सम्भवसूचकं सप्तमी भेदसूचनका मृत्तिकारूप पनकोऽपि अत्यन्तसूक्ष्मत्वेन आकाशे पृथिव्येन आरूढ तस्माद्दृश्येन स्वप्नोत द्रव्येन श्लक्ष्णपृथ्वी सप्तविधोक्ता अथ खरादि पृथ्वीपट त्रिंशद्विधा तोर्थ करैर्व्याख्याता ७३ तान् भेदानाह [पुढवीयसक्करावालुयाय उवलेसिलायलोणोसे अयतउयतंबसीसगरुप्पसुवण्णवइरेय ७४] [हरियालेहिंगुलए मणोसिलासीसगजणपवाले अब्भपडलब्भवालयबायरकाए मणिविहाणा ७५][गोमिज्जएयरुयगेअंके फलिहेयलोहियक्खेयमरगयमसार गल्लेभुयमोयगइन्दनीलेय ७६] [चन्दणगेरुयहंसगब्भ पुलयसोगन्धि एयबोधव्वे चदप्पहवेरुलिए जलकन्ते सूरकंतेय ७७] पृथ्वीशुद्धामिश्रमयोग्या१ शर्करा भुयमोयगइन्दनीलेय ७६] [चन्दणगेरुयहंसगब्भ पुलयसोगन्धि एयबोधव्वे ... रामरत्नादि रूपाकर्करमयी २ वालुका च स्वल्पो भूमौ प्रसिद्धा २ उपलोगण्डशैलपाषाण खण्डादि रूपा ४ शिला इहत्पाषाणमयी ५ लोणोसेइति लवणोत्पे लवणं च उषाचल वर्णोपि लवणं समुद्रादिभ्य उत्पन्न तदपि पृथ्वीरूपमेव ६ कथाऽऽकरमयी ७ अयोलोह = चपुकमस्तीर ८ ताम्र प्रसिद्ध १ सीसक ११ रूप्य १२ सुवर्ण १३ अयश्च पुकश्चताम्रश्च शीसकश्च रूप्यश्च सुवर्णं च अयस्त्र पुकताम्रसीसकरूप्य उपर्यानि एतेपि पृथ्वीभेदाद्वत्यर्थं च

नीलाय रूहिराय हालिद्दा सुक्किला तहा। पडु पणग मट्टिया खरा छत्तीसई विहा ७३। पुढवीय सक्कराय वालुयाय उवले सिलाय लोणोसे। अय तय तउय सीसग रुप्प सुवन्नेय वइरेय ७४। हरियाले हिंगलुए मणोसिला सीसग

पाषाण मोटो ६ खोसखारोमाटी ७ तरुआ = तांबो ८ लोह१ सीसो ११ रूपो १२ सोनो१३ वज्रहो राजाति १४ ७३ हरियाल १५ हिंगलो १६ मैणसिल १७ सीसग जसद विशेष १८ सुरमो १९ प्रवाल २० आभूया २१ आभूयानो चूर्ण २२ एवादर पृथिवीकाय मणिनाम कहीद जेतला

तहा पज्जत्तम पज्जत्ता एव भेए दुहा पुणो ७१] पृथिवी जीवास्तु द्विविधा उक्ताः सूक्ष्माश्चर्म चक्षुर गोचरा केवल ज्ञानगम्या तथा पुन पर्याप्तिभिश्च तत्सभिः शक्तिभिर्युक्ता पर्याप्ता स्तथा पृथ्वी जीवा बादरा ते च पर्याप्ता अपर्याप्तायाः आहार शरीरेन्द्रियोच्छ्वास निःश्वासरूपाभिः पर्याप्ता अपर्याप्ता एवं द्विविधा ७१ (बायरा जेउ तेभ्यो विपरीता अपर्याप्ताः सूक्ष्माः पृथ्वीजीवाः पर्याप्ताः अपर्याप्ता बादरा पृथ्वीजीवाः पर्याप्ता अपर्याप्ता एवं द्विविधा ७१ (बायरा जेउ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया सन्हा खराय बोधव्वा सन्हा सत्त विहातहिं ७२) तत्र पुनरेषां उत्तरभेदानाह जेबादराः पृथ्वीजीवाः पर्याप्ता कठिनाश्च बोध्याः तत्र उक्तास्ते द्विविधा व्याख्याता एके बादराः पृथ्वीजोवाः पर्याप्ता श्लक्ष्णचूर्णरूपा च पुनरेके बादराः पृथ्वीजीवाः पर्याप्ता कठिनाश्च बोध्याः तत्र श्लक्ष्णखरयोः पृथ्वी जीवयोः श्लक्ष्णा पृथ्वीजीवाः सप्तविधाः ज्ञातव्याः ७२ सप्तविधत्वमेवाह (किन्हा नीलाय रुहिराय हालिद्दा सुक्किला तहा पण्डु पणग मट्टियाखरा छत्तीसई विहा ७३) कृष्णाः श्यामवर्णाः १ नीला नीलवर्णा पृथिवी २ रुधिरा रक्तवर्णा पृथ्वी ३ हारिद्रा पीतवर्णा ४ शुक्ला धवलवर्णा

थावरा तिविहा तेसिं भेए सुणेह मे ७०॥ दुविहा पुढवि जीवा सुहुमा बायरा तहा। पज्जत्त मपज्जत्ता एव भेए दुहा पुणो ७१। बायरा जे उ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया। सन्हा खराय बोधव्वा सन्हा सत्त विहा तहिं ७२। किन्हा

सूत्र

जा अपर्याप्ता एमएबिहुं प्रकारे तथावली ७० बादर जे वली पर्याप्ता बिहुं प्रकारे ते कह्या तीर्थंकरे एक सूहालावीजा कठोर जाणिवा तिहां बिहुं माहि सन्हा सुहाला सात प्रकार ७१ काला १ नीला २ राताते जाणवा ३ पीला ४ धवला ५ तथावली धोली पांडू ६ सूक्ष्म आकाशिं जडे ते पण गमाटी एव भेद ७ खरा कठिन पृथिवीना छत्तीस प्रकारे ७२ पृथिवीकाली १ मरडीयाका करा २ वेलु ३ पाषाण खंड ४ लवण ५ सिला

भाषा

[एएखर पुढवीए भेयाछत्तीसमाहिया एगविहमनाणत्ता सुहुमातत्थ वियाहिया ७८] एतेखर पृथिव्यादि भेदा षटचि शत्समाख्यातास्तीर्थंकरैरमा पृथ्वी भेदात् पृथ्वीस्याजीवा अपि भिन्नाभिन्ना तत्र शूक्ष्मबादर पृथ्वी जीवेषु सूक्ष्म पृथ्वीजीवा एकविधा अनानात्वास्तीर्थंकरैर्व्याख्याता नविद्यते नानात्व येषां ते अनानात्वा अबहुभेदा उक्ता इत्यर्थं कोर्थ पूर्वं शूक्ष्मबादरौमुख्यभेदौ द्वौ पृथ्वीकायजीवानामुक्तौ एतेहि शूक्ष्माना अवान्तरभेदाश्चैया बादराणा अवान्तरभेदाउक्ता सुक्ष्मस्त्वा तु एकएव शूक्ष्मोबादरो वा एकएवभेदोस्तिनानात्व नास्तीत्यर्थं अथतान् पृथ्वी जीवान् चेत्रतआह (सुहुमासव्वलोयमि लोय देसेयबायरा इत्तोकालविभागन्तु तेसि वुच्छ्स चव्विह ७९) शूक्ष्माये पृथ्वीकायजीवास्ते सर्वस्मिन् चतुर्दशरज्वात्मके लोके सन्ति अभिव्याप्यस्थिता सन्ति बादरा पृथ्वीकायजीवालोकदेशेतिष्टन्ति लोकस्यदेशोयिभागोलोकदेशस्तस्मिन् तिष्टन्ति बादराहिकस्मिस् कस्मिन् चित् प्रदेशेकदाचित्त भवन्ति कदाचित्कस्मिन् चित्स्थाने नभवन्ति इत्तोइति इत चेत्रप्ररूपणानन्तर तेषां पृथ्वीकायजीवाना चतुर्विध कालविभाग कालतो भेद वक्ष्ये ७९ [सन्तइ

जलकते सूरकतेय ७७॥ एए खर पुढवीए भेया छत्तीस माहिया । एगविह मनाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया ७८॥
सुहुमा सव्वलोग मि लोग देसेय बायरा । इत्तो काल विभाग तु तेसि वोच्छ चउव्विह ७९ ॥ सतइ पप्पणाईया

नाहि कह्या तीर्थं करे ७७ सूक्ष्म पृथवीका जीव सवलोक च वदेशजने विखे रह्याछे लोकना एकदेशने विसे बादर पृथवी जीव एतलानतरकालनो विभाग भेद तहंनो कहिसु सादि १ पर्यवसित २ अनादि ३ अपर्यवसित ४ भेद ७८ प्रवाह मार्ग जोइए तियारे सूक्ष्म बादर पृथि अनादि छे अनेद अपर्यवसित छेहडो ते पृथिवि जीवनो भवस्थिति भवरहियो काया थितिकाइ रहिवो ते आयी आदिछे अने सपर्यवसित सातपुण निये ७८

पुनर्वज्ञ हीरकं १४ चतुर्दशभेदा ७४ हरिताल १५ हिङ्गुलु १६ मनसिला १७ प्रसिद्धा सीसकोधातु विशेषो जसदइति लोके १८ अञ्जनं सुरमकं १९ प्रवालं विद्रुमं २० अभ्रपटलं भोडलइति प्रसिद्धः २१ अभ्रवालुका अभ्रपटलमिश्रावालुका अभ्रवालुका २२ बादरकाये बादर पृथ्वीकायेऽमीभेदा उक्ताः अथ मण्यभिधाना अपि पृथिवी अस्ति तस्मान्मणभिधानानिमणीनां नामान्युच्यते मणिभेदा अपि पृथ्वीभेदा एवेत्यर्थः ७५ कानितानि मणिनामानि गोमयकोगोमेधमणिः १३ च पुनरुचकोरुचकनामामणि १४ अङ्करत्न १५ स्फटिकरत्नं १६ लोहिताख्योमणिः १७ मरकतमणिः १८ मसारगल्लश्च १९ भुजगमो च कोमणि २० च पुनरिन्द्रनीलरत्नं २१ ७२ चन्दनो २१ गैरिकनामा मणिः २२ हंसगर्भः २४ पुलक २५ पुनः सौगधिको मणिर्बोध्यः २६ चन्द्रप्रभ २७ वैडूर्योमणिः २८ जलकान्तोमणिः २९ सूर्यकान्तोमणिः ४० ७७ अत्र एतासुगाथासुखरपृथिव्याः षड्त्रिंशद्भेदा उक्ताः गणनायां तु चत्वारिंशद्भेदा सञ्जातास्तत्कथं तत्रोत्तरं अत्र हि रत्नानां केचिद्भेदाः केषुचिद्रत्नभेदेषु अन्तर्भवन्ति तस्मान्नात्रकश्चिद्वीतरागवचनेषु दोषावकाशः ७७

सूत्र

जण प्पवाले । अब्भपडलब्भ वालुय बायरकाए मणिविहाणा ७५ ॥ गोमिज्जएय रुयगे अंके फलिहेय लोहियक्खेय। मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदनीलेय ७६ ॥ चंदण गेरुय हंसगब्भे पुलएय सोगंधिएय बोधव्वे । चंदप्पह वेरुलिए

भाषा

सर्व ७४ गोमेय्यरत्न २३ रूचकरत्न २४ अंकरत्न २५ फीटकरत्न २६ लोहिताचरत्न २७ मरकतरत्न २८ मसारगल्लरत्न २९ भूजमोचकरत्न ३० इंद्र नीलरत्न ३१ ७५ चंदनरत्न ३२ गेरुकरत्न ३३ हंसगगर्भरत्न ३४ पुलकरत्न ३५ सोगंधीकरत्न जाणवो ३६ चंद्रप्रभरत्न ३७ वैडूर्यरत्न ३८ जलकांत रत्न ३९ सूर्यकांति रत्न ४० ७६ एसर्वखर पृथवीनाभेद छत्तीस कह्या तीर्थंकरे एके प्रकारे परं घणे प्रकारे मही सूक्ष्म पृथिवीना जीवते सूक्ष्म बादर

उत्कृष्ट असख्य काल,यावत्तिष्टति जघन्य तु अन्तर्मुहूर्त्तं तिष्टति इति भाव इत्य द्विविधाया अपि स्थिति रा॥८ सपर्यवसितलमुक्त अथ कालस्यान्त र्गत एव कालातरमाह (अणन्तकाल मुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्निय विजढम्मिसएकाए पुढवीजीवाण अन्तर ८२) पृथ्वीजीवाना स्वकीयेकायेविजढ मि इति त्यक्ते सति उत्कृष्ट अनन्त काल अन्तर भवति जघन्यक अन्तर अन्तर्मुहूर्त्तं भवति कोर्थं यदाहि पृथ्वीकायस्योजीव पृथ्वीकायात् च्युत्वा अपरस्मिन् काये उत्पद्येत ततश्च्युत्वा पुन पृथ्वीकाये एव उत्पद्येत तदाकियदन्तर भवति उत्कृष्ट अनन्तकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तं यदा पृथ्वीजीवस्य पृथ्वीकायात् च्युतिर्भूत्वायनस्पति काये उत्पत्ति स्यात्तदा अनन्तकालस्यान्तर जायते वनस्पति कायस्य जीवस्य अनन्तकालस्थितित्वात् जघन्य अन्तरं अन्तर्मुहूर्त्तं भवति ८२ एतान्येव भावत आह [एएसिवन्नओचेव गन्धओरसफासओ सठाणादेसओवावि विहाणाइसहस्ससो ८३] एतेषा पृथ्वीजीवाना वर्णतोगन्धतोरसत स्पर्शत सस्थानतयापि सहस्रशोविधानानि भेदाभवन्ति सहस्रग्रहणमुपलक्षण वर्णादितारतम्यस्य बहुभेदत्वेन असख्याभेदत्वात्

अओ ८२ ॥ अणतकाल मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नय । विजढमि सए काए पुढवि जीवाण अतर ८३ ॥ एएसि वन्नओ चेव गधओ रस फासओ । सठाणा देसओवावि विहाणाइ सहस्ससो ८४ ॥ दुविहा आउ जीवाओ सुहुमा बायरा

गध थकी फरसथकी रसथकी सस्थानना आदेशथकी पणिए सस्थानना भेद भेदातरथकी विधानभेद सहस्रगमे हुइ सख्याता असख्यात अनत पणे यद्यपि वर्ण ५ गध २ रस ५ फरस ८ छै तथापि तरतम योगे घणाभेदहुइ ८३ बिहु प्रकार अपकायनाजीव सूक्ष्म अने बादर अपकाय तिम बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता इमए बिहु प्रकार वली ८४ बादर अप्काय जे पर्याप्ता पाचे प्रकारे कह्या तीर्थं करे मे घनो पाणी तथा ओसनो समुद्रनो डाभ

पय्यवसाईया अपज्जवसियाविय ठिइं पडुच्चसाईयासपज्जवसियाविय ८०] सन्ततिं प्राप्य प्रवाहमाश्रित्य एते सूक्ष्माः बादराच पृथ्वीकायजीवा अनादय आदिरहिताः च पुनरपर्य्यवसिता अपि अन्तरहिता अपि स्थितिं प्रतीत्यभवस्थिति कायस्थिति रूपांस्थितिमाश्रित्य संसारवर्त्तीजीवः ससारे पृथ्वीकायां तवर्त्तीसन् पृथ्वीकाये कियत्कालं तिष्टति इति स्थिति विचारमाश्रित्यजीवाः सादिकाः सपर्यवसितायापि वर्त्तन्ते ८० [बावीस सहस्साइं वासाएक्कोसियाभवे आउठिई पुढवीण अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ८१] [असंखकालमुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्निया कायठिई पुढवीणं त काय तु अमुञ्चओ ८२] पृथ्वीनां पृथ्वीकाय जीवानां वर्षाणा द्वाविंशति सहस्राणि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्भवेत् जघन्यिका च अन्तमुहूर्त्त स्थितिर्भवेत् ८२ भवस्थिति उक्ताकायस्थिति वदति असंखेति पृथ्वीनां इति पृथ्वीकायजीवानां पृथ्वीकायं अमुञ्चतां पृथ्वीकायेस्थिति संसारेचेद्भवति तर्हि उत्कृष्टा असंख्यकालं स्थितिर्भवेत् जघन्यका च अन्तमुहूर्त्त स्थितिर्भवेत् कोर्थः यदि पृथ्वीकायस्थोजीव पृथ्वीकायतश्च्युत्वापुनः पुनर्निरन्तरं पृथ्वीकाये एव उत्पद्यते तदा

सूत्र

अपज्जवसियाविय। ठिईपडुच्च साईया सपज्जवसियाविय ८०॥ बावीस सहस्साइं वासाणुक्कोसिया भवे। आउ ठिई पुढवीणं अंतोमुहुत्तं जहन्निया ८१॥ असंख काल मुक्कोस अंतोमुहुत्तं जहन्नियं। कायठिई पुढवीणं तंकायंतु अमु

भाषा

बावीस हजार वरिस उत्कृष्टी हुई आउखानीथिति थकी पृथवीनी अंतर्मूहूर्त्तनी जघन्यस्थिति ८० असख्याता कालनी अंतरपडे तो उत्कृष्टो अंतमूहूर्त्त जघन्य अंतर कायस्थिति पृथीवी पृथवीनो पृथिविमाहिएम तेहनी कायने मूंके वार वार तेहने ते माही रहे ८१ अनताकालनो अंतर उत्कृष्टो अंतमुहूर्त्त जघन्य अंतरे पोताने पृथिवीने विजढमि छांडे थके पृथिवीना जीवने पृथिवी पणे अंतर पडतु ८२ ए पृथिवी कायनावर्ण थकी

स्थिति कायस्थिति चाश्रित्यसादिकास्तथा सपर्यवसिता अवसानसहिता अपि वर्त्तन्ते ८८ (सत्तेव सहस्साइं वासाणु क्कोसियाभवे आउठिइ आऊण अन्तोमुहुत्त जहन्निय ८९) अपा अप्काय जीवानां सप्तैव सहस्राणि वर्षाणामुत्कृष्टा आयुष स्थितिर्भवेत् जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्तं भवेत् ८९ (असखकाल मुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्नियाकाय ठिइ आऊण त काय तु अमुचओ ९०) अपा अप्काय जीवाना त स्वकाय अर्थात् अपकाय अमुचता उत्कृष्टाकाय स्थिति असख्यकाल भवति जघनिका कायस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं भवति ९० [अणन्तकाल मुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्नय विजढंमि सए काए आउजीवाण अन्तर ९१] अपजीवाना स्वकीयेकायेत्यक्ते सति अपरस्मिन् काये उत्पद्यपुन स्वकीयेकाये उत्पत्तिस्यात्तदा उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल भवति जघनग्या अन्तर अन्तर्मुहूर्त्तं भवति वनस्पति कायेजीवोऽनन्तकालन्तिष्टति तदा अनन्तकाल अन्तर भवति इति भाव ९२ [एएसिवणओचेव गन्धओरसफासओ

संतइ पप्पणाईया अपज्जवसियावि य । ठिइंपडुच्च साईया सपज्जवसियावि य ८८॥ सत्तेव सहस्साइं वासाणु क्कोसिया भवे । आउ ठिई आऊण अंतोमुहुत्त जहन्निया ८९ । असंखकाल मुक्कोस अंतोमुहुत्त जहन्निय । कायठिई आऊण त कायतु अमु चओ ९० । अणतकाल मुक्कोस अंतोमुहुत्त जहन्नयं । विजढ मि सए काए आउ जीवाण अंतर ९१ । एए

आदिछे अने सपर्यवसित सात पुणनिश्चे ८७ सात सहस्र वरसनी उत्कृष्टी हुइ आउषाणीनी स्थिति अप्काय जीवनी अतर्मूहूर्त्त जघन्य ८८ असख्यात कालउत्कृष्टे अतर्मुहूर्त्त जघन्य यथे कायस्थिति अप्कायनी तेहनो ते माहितो ते काया अणछोडतु ८९ अनतुकाल उत्कृष्टो अतर्मुहूर्त्त जघन्ये पोतानीकाया छांडया थयो अपकाय जीवनें एतलो आतरो हुइ ९० ए अपकाय जीव वर्णथकी ग धथकी रसथकी फरसथकी स स्थानाभेदथकी

वर्णादीनां भावरूपत्वात् ८३ अथ अप्कायभेदानाह [दुविहा आउ जीवाउ सुहुमा बायरा तहा पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो ८४] [बायरा जे उपज्जत्ता पञ्चहाते पकित्तिया सुद्धोदए य उस्से य हरितणू महिया हिमे ८५] (एगविह मनाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया सुहुमा सव्वलोयसि लोयदेसेय बायरा ८६) तिसृणां गाथानां अर्थ· अप्जीवास्तु द्विविधा· सूक्ष्मा स्तथा बादरा अपि पर्याप्ता अपर्याप्तास्तद्विविधा पुनर्वर्त्तन्ते इति शेषः ८४ अथ पुनर्बादरायेपर्याप्ता अप्जीवास्ते पञ्चधा प्रकीर्त्तिताः शुद्धोदकं मेघसमुद्रादेर्जल अवश्याय शरदादिषु ऋतुषु प्राभातिक सूक्ष्मवर्षारूप· हरितस्निग्ध पृथ्वीभवरूणाग्रविन्दुः ३ महिकाजलं गर्भमासेषु सूक्ष्मा धूसरूपाः हिमे इति हिमजलं खन्धारदेशादौ प्रसिद्धं ८५ तत्र सूक्ष्मा अप्कायजीवा एकविधा अनानात्वास्तीर्थकरैर्व्याख्याताः तत्र सूक्ष्मा अप्काय जीवाः सर्वस्मिन् चतुर्दश रज्ज्वात्मलोके वर्त्तन्ते· बादरा अप्काय जीवालोकस्यैकदेशेवर्त्तन्ते ८७ (सन्तइं पप्पणाईया अपज्जवसियावि य ठिइं पडुच्चसाईया सपज्जव सियावि य ८८) सन्ततिं प्रवाहमार्गमाश्रित्य अप्काय जीवा अनादिका· पुनरपर्यवसिता अपि स्थितिं भव

सूत्र

तहा। पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो ८५। बायरा जेउपज्जत्ता पंचहा ते पकित्तिया। सुद्धोदए य उस्से य हरतणु महिया हिमे ८६॥ एगविह मनाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया। सुहुमा सव्वलोगंमि लोगदेसेय बायरा ८७॥

भाषा

ऊपरि पाणीधु अरि ४ छीम जमइ ८५ एके प्रकारे पणि नाना प्रकारे नही सूक्ष्म अप्कायना जीव तीर्हां कह्या तीर्थंकरे सूक्ष्म अप्कायना जीव सर्वलोक चौद राज व्यापी रह्याछे लोकना एकदेस सरोवरादिकने बिखे बादर अप्कायछे ८६ प्रवाह मार्ग जोई तिवारेए सुच्म बादर पृथिवी अनादिछे अने अपर्यवसित छेहडो ते पृथिवी जीवनो भव स्थिति भवे रहिवो काय थिति काया रहिवो ते आश्री

तेपकित्तिया रुक्खागुच्छाय गुम्माय लया वल्लीतयातहा ८५) तत्र साधारणशरीरवनस्पति प्रत्येक शरीरवनस्पत्योर्मध्ये प्रत्यकवनस्पति जोवास्तु अनेकधा प्रकोर्त्तितास्तेप्रत्यत्ते द्वथा १ सहकारादय गुच्छा हन्ताककण्टकारिकाद्या २ गुल्मा नवमालती प्रमुखा ३ लताश्चम्पकाद्या४ वल्य कूष्माण्डाद्या ५ तथातृणा कुशाद्या ६ ८५(वलयापव्वयाकुहणाजलरुहाओसहीतहाहरियकायबोधव्वापत्तेयाइतिआहियाद८६)वलयानालिकर कदलाद्या इहतेषां शाखा न्तराभावेनलताकपत्व उक्त ७ पर्व्वजाइक्षाद्या ८ कुहना भूमि स्फोटाद्या ९ जलरुहा कमलाद्या १० तथा अपधय शालि प्रमुखा ११ च पुनर्हरित कायायतण्डुलोयकाद्या १२ बोधव्या इति अमुनाप्रकारेण प्रत्येकाप्रत्येकवनस्पति जोवा आख्याता ८६ (साहारण सरीराओणेगहातेपकित्तिया आलुएमूल एचेय सिङ्गवेरेतहेवय८७] (हिरिलोसिरिल्लोसिस्सरिलिजावईकेय कन्दलोपलण्डुलसणकन्देय कन्दलीयकुहुव्वए८८)(लोहिणोहूयथीहूय तुहगा यतहेयय कन्हेय वज्जकन्दे कन्दे सूरणएतहा ८९] [अस्सकन्नोय बोधव्वा सोहकन्नोतहेवय मुसण्डीयहलिद्दियणेगहा एयमाइओ १००] अथ च तस्मिं गाथाभि साधारणवनस्पतोना नामान्याह ये तु साधारण शरीरा साधारण वनस्पति जोवा अनन्तकायवनस्पति जीवास्तेपि अनेकधा अनेक

वलया पव्वया कुहणा जलरुहा ओसहीतणा। हरीयकायाय बोधव्वा पत्तेयाइति आहिया८६। साहारण सरीराओ णेगहा ते पकित्तिया। आलुए मूलए चेव सिंगवेरे तहेवय ८७। हिरिली सिरिली सिस्सिरिली जावई केय कदली।

भाषा

रण शरीरछे जेहने ते अनेकप्रकारे कह्या आलूकदजातो १ मूलम २ सिंगवेर आर्दो तिमज ३ ८६ हरिलोकद ४ सिरिलोकद ५ सिस्सरो कद ६ जावइयकेय कद जाति ७ पलंडुकद ८ लसणकद ९ कदलोय कुहुव्वए कद ८७ रोहिणीकद ११ हुयथो कद १२ हुय कद १२

सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइसहस्ससो८२] एतेषा अप्कायजीवाना वर्णतोगन्धतः रसत स्पर्शतः सस्थानादेशतश्चापि सस्थाननामतश्चापि सहस्रसोवह वोभेदाभवन्ति ८२ अथ वनस्पति जीवानाह [दुविहावणस्सई जीवासुहुमावायरातहा पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेव दुहापुणो ८३] वनस्पति जीवाद्विविधाः सूक्ष्मास्तथा बादराः ते सूक्ष्मा बादराश्चापि पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च द्विविधा आख्याताः ८३ [बायराजेउ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया साहारण सरीराय पत्तेयगाय तहेवय ८४]येबादरावनस्पति जीवास्तेपि द्विविधाव्याख्याताः साधारण शरीराश्च पुन प्रत्येकाः वनस्पति जीवाः ८४(पत्तेय सरीराओणेगहा

सूत्र

सिं वन्नओ चेव गंधओ रस फासओ। संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो८२। दुविहा वणस्सई जीवा सुहुमा वायरा तहा। पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो ८३। वायरा जेउ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया साहारण सरीराय पत्तेगाय तहेवय ८४। पत्तेय सरीराओ णेगहा ते पकित्तिया। रुक्खा गुच्छाय गुम्माय लयावल्ली तणातहा८५।

भाषा

विधानभेद हजारे गमिहोइ ८१ विहुंप्रकारे वनस्पतीना जीव सूक्ष्म वादर तथावली एक पर्याप्ता बीजा अपर्याप्ता एम बिहुंभेदे पुवे वली ८२ वादर वनस्पतिकायते पर्याप्ता विहुभेदे ते कह्या तीर्थंकरे अनता जीवने साधारण सामान्य शरीर ते अनतकाय प्रत्येक जूवा शरीर जेहना ते प्रत्येक तिमज ८३ ते माहि प्रत्येक शरीर वनस्पतिना जीवछे ते माहि प्रत्येक शरीर वनस्पतीना रुख आम्रादि १ ए ताक गुच्छ[illegible] आदि २ गुल्म वन मालती आदि तथा चांपा ४ वेलितृं सडी प्रमुख तृण भीभुयादि तथावली ६ ८४ वनयनालिकेरी आदि ७ पर्वगसेलडी आदि ८ कुंदगमुंद फोडादि९ कमलादिया जलरुह १० औषधीसाली प्रमुख ११ तंदुलेयादि हरीकायजाणवी प्रत्येक वनस्पति कह्यो तीर्थंकरे ८५ अनता जीवने साधा

पुरद्वारे प्रविशन्तं साधुं दृष्टवान् हस्तिस्कन्धा दुत्तीर्य क्षणं स्तं ववन्देतेनवन्द्यमानोऽयं साधुरेकेनेभ्येन दृष्टः चिन्तितं च तेन अहो एष महात्मा क्षणेन वन्द्यते एव चिन्तयत एव तस्य गृहे ढण्ढणर्षिः प्रविष्ट स्तेन मोदकैः प्रतिलाभितः ततः स्वामिसमीपे गत्वा पृच्छति मम लाभान्तराय चीणः स्वामिना उक्तं एष वासुदेवलाभः मम परलाभो न कल्पते इत्युक्त्वा नगरा द्वहिर्गत्वा उचितस्थण्डिले मोदकान् विधिना परिष्ठापयन् शुभध्यानारोहेण केवलीजातः एव मन्यैरपि अलाभपरीषहः सोढव्यः अलाभात् अनिष्टाहारलाभात् अन्त्याहार प्रान्त्याहार भोजनात् शरीरे रोगा उत्पद्यन्ते अतो रोगपरीषहोपि सोढव्य स्ततो रोगपरीसहमाह नच्चा उप्पइयं दुक्खं वेयणाए दुहट्ठिए अदीणो थावए पन्नं पुट्ठो तत्थ हियासए ३२ ति गच्छं नाभिनन्देज्जा सचिक्खत्तगवेसए एयं खुतस्स सामन्नं न कुज्जा न कारवे ३२ वेदनया दुःखार्त्तितो मुनिः अदीन सन् प्रज्ञां स्थापयेत् बुद्धिं स्थिरां कुर्यात्

सूत्र

नच्चा उप्पइयं दुक्खं वेयणाए दुहट्ठिए अदीणो थावए पन्नं पुट्ठो तत्थ हियासए ॥३१॥ तिगिच्छं नाभिनंदेज्जा संचिक्खे-त्त गवेसए एयं खुतस्स सामण्णं जन्न कुज्जा नकारवे ॥३२॥ अचेलगस्स लूहस्स संजयस्स तवस्सिणो तणेसु सुयमाणस्स होज्जा गाय विराहणा ॥३३॥ आयवस्स निवाएणं अउला हवइ वेयणा । एवंनच्चा नसेवंति तंतुजंतण तज्जिया ॥३४॥

भाषा

कुमार अलाभ परिसहसह्यो तिम बीजे सहिवो इति अलाभ ऊपरे दृष्टांत १५ ति० रोगटालिवाने अर्थेना० अनुमोदे नहि स० समाधि सहित अ० चारित्र रूप आत्मानो गवेषक ए० इणी प्रकारेखु० जेभणी त० ते रोगवत साधुने सा० चारित्रपालिवो सही जो जं० जेन पोते नहीकरे म० अनेरापां सेंन करावे ३२ अथ रोगपरीसह दृष्टांत मथुरानगरीइ जितशत्रुराजा कालइसे नामे गणिकाने रूपे मोहे थंते जरमाहिरारिते हने कालवे सनामा

प्रकाराः प्रकीर्त्तिताः तेषा च केषां चित् प्रसिद्धानां नामान्याह आलुक आलूपिण्डालुरक्तालुकाकान्द १ स्तथा मूलकं प्रसिद्धं २ शृङ्गवेरकं आर्द्रकं ३ तथै वच९७ हरिलीनाम्नाकद:४ सिरिलीनामाकद:५ सिस्सिरिली नामापिकान्द ६ एतेकान्दविशेषाः यावति कोपिकान्दविशेष:७कान्दलीकान्द:८ देशविशेषेमांस रूप कान्दो भवति ८ लशुनकान्दसुप्रसिद्ध:१० कुह्नतकादलोकान्दोविशेषः ११ ९८ लोहिनीकान्द १२ हुताक्षीकान्द १३ हुनकान्दः १४ तुहककान्दः १५ कृष्णकान्दः १६ वज्रकान्दः १७ सूरणकान्दस्तथा१८ ९९ अश्वकर्णीकान्दो बोधव्यः१९तथैवसिंहकर्णी २० मुसण्ढीकान्द २१ हरिद्राकान्दः २२ च एवमादिका अनेकधाः कान्दजातयो ज्ञेयाः१००अथ साधारणलक्षणमाह (गूढसिरागं पत्तं सच्छीरंजचहोइनिच्छीरजंपियपणट्ठ सधिंअणन्तजीवं वियाणाहि१एगविह शूक्ष्मावनस्पतिकायजीवाः एकविधाः अनानात्वाव्याख्यातास्तत्रसूक्ष्माः वनस्पतिजीवाः निगोदनामानःसर्वस्मिन्चतुर्दशरज्वात्मलोकेव्याप्ता सन्तिबादरावन स्पतिजीवालोकदेशे अभिव्याप्यस्थिताः सन्तिक्कचित्प्रदेशेभवन्तीत्यर्थः१०१(सन्तइंपप्पणाइयाअपज्जवसियावियठिइंपडुचसाइयासपज्जवसियाविय१०२)

सूत्र

पलंडु लसण कंदेय कंदलीय कुहुव्वए ९८॥ लोहिणी हूयत्थी हूयतुहगाय तहेवय। कन्हेय वज्जकंदेय कंदे सूरणए तहा ९९॥ अस्सकन्नीय बोधव्वा सीहकन्नी तहेवय। मुसंढीय हलिद्दाय णेगहा एवमायओ १००॥ एगविह मणाणत्ता सुहुमा तत्थ वियाहिया। सुहुमा सव्वलोगंमि लोगदेसेय बायरा १०१॥ संतइंपप्प णाईया अपज्जवसियाविय।

भाषा

तुगाय कंद १४ तथावली कृष्ण कंद १५ वज्र कंद १६ सूरण कंद १७ तथावली ९८ अश्वकर्णी कांद १८ जांणिवो सीह कर्णी कंद १९ तिमवली मुसंढी कंद २० हलदकंद २१ ए आदीदेई अनेकप्रकारे अनतकायना जीव ९९ एकज प्रकार परंघणी प्रकारे नही सूक्ष्म तीहां कह्या तीर्थं करे सूक्ष्म

सन्तति प्राप्य एतेवनस्पति जोवा अनादय पुनरपर्यवसिता सन्ति कायस्थिति च प्रतीत्यश्राश्रित्यसादिका सपर्यवसिताश्च सन्ति इत्यर्थ १०२ [दसचेव सहस्साइ वासाणुक्कोसियाभवे वणस्सइण आउन्तु अन्तोमुहुत्त जहन्नय १ ३) वनस्पतीना प्रत्येक वनस्पति जीवाना वर्षाणां दशसहस्राणि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्भवेत् जघन्यिकास्थितिश्च अन्तर्मुहूर्त्त भवेत् साधारणाना तु जघन्यत उत्कृष्टतश्च अन्तर्मुहूर्त्त एव स्थिति रस्ति तस्मात् अत्र प्रत्येकवनस्पति जोवानां एव स्थिति र्ज्ञेया१ २ (अनन्तकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्नय कायठिइपणगाण त काय तु अमु चओ१ ४]पनकाना पनकोप लक्षितफूलणिवनस्पति जोवाना त स्वकीय काय अमुञ्चता कायस्थितिरुत्कृष्टतोऽनन्त काल जघन्यतयान्तर्मुहूर्त्त कायस्थिति र्ज्ञेया कोर्थ यदाहि पनकजोवपनकात् च्युत्वा पुनरनन्तरत्वेनपनकत्वे एव उत्पद्यते तदा एव उत्कृष्टतोऽनन्तकाल तिष्टति जघन्यतोन्तर्मुहूर्त्त एवतिष्टतीति भाव पनकाना च इहसामान्येनपनस्पति जोवात् निर्गोदत्वेन उत्कृष्टतोऽनन्त उच्यते विशेषापेक्षयाहि प्रत्येकवनस्पतीना तथा निगोदाना बादराणा प्रज्ञाणा वा ऽसख्येयकालाएव अवस्थिति उक्त च भगवत्या पत्तेयसरोरवायरवणस्सइकाइयाणभन्ते केवतिय कायठितोपण्णत्ता गोयमा जहन्नेण अन्तोमुहुत्त

ठिइपडच्च साईया सपज्जवसियाविय १०२ ॥ दस चेव सहस्साइ वासाणु क्कोसिया भवे। वणस्सईण आउतु अंतोमुहुत्त जहन्निया १०३ ॥ अणतकाल मुक्कोसा अंतोमुहुत्त जहन्निया। कायठिई पणगाण तकायतु अमु चओ १०४ ॥

जोव चौदराजमाहिलाभि लोकने एकदेसे बादर वनस्पती जोव १ सतति प्रवाहे अपर्यवसित अनतपणि जिणे सदाहुस्येज थिति आश्री आदि सहित अने सपर्यवसित अतसहित१ १ दशहजारवरस उत्कृष्टीथोतिहुइ वनस्पतीकायनो आउखो अंतोमूहूत्त जघ्याइ जघन१०२ अनतकाल उत्कृष्टी अतर्मूहूर्त्त जघनाकायानीस्थिति अनतकायनी ते काय अणमूकतु १ २ दसहजारवरस असख्यातोकाल उत्कृष्टी अतर्मूहूर्त्त जघनेर पोतानीकाया

उक्कोसेण सत्तरिंसागरोवमकोडाकोडीओ निगोदेण भन्ते निओदेत्ति कालतोकेविच्चिरं होन्ति जहन्नेण तं चेवउक्कोसेण असखेज्जं कालमिति १०४ अथ कालस्यांतरमाह [असंखकालमुक्कोसं अन्तोमुहुत्तं जहन्नियं विजढंमिसएकाए पणगजीवाणं अन्तर १०५] पनकाजीवाना स्वकीयेकायेत्यक्ते सति अपरस्मिन् पृथिव्यादिपु कायेपु उत्पद्य पुन पनकत्वेन उत्पद्यमानाना उत्कृष्ट असख्यकालं अन्तर भवति जघनंत्र अन्तर अन्तर्मुहूर्त्तं भवति इति कालांतरं प्रतिपादितं अथ प्रकृति मुपसंहृत्य अग्रेतनं सम्बन्धं सूचयति [एएसिम्बन्नओचेव गन्धओरसफासओ सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइं सहस्ससो १०६] एतेषां सूक्ष्मबादरवनस्पति जीवानां वर्णतोगन्धतोरसतः स्पर्शतः सस्थानादेशतयापि सहस्रोविधानानिभवन्ति सहस्रशः शब्देन असख्येया अनन्ताश्चभेदाभवन्तिइत्युच्यते१०६ [इच्चेएथा वरातिविहा समासेण वियाहिया इत्तोयतसेतिविहे वुच्छामि अणुपुव्वसो१०७] इति अमुनाप्रकारेण एतेत्रि

सूत्र

असंखकाल मुक्कोस अंतोमुहुत्तं जहन्नयं। विजढंमि सए काए पणग जीवाणं अतरं १०५॥ एएसिं वन्नओ चेव गंधओ रस फासओ। संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो१०६॥ इच्चेते थावरा तिविहा समासेण वियाहिया। इत्तोउ तसे तिविहे वोच्छामि अणुपुव्वसो १०७॥ तेऊ वाऊय बोधव्वा ओरालाय तसा तहा। इच्चेए तसा तिविहा तेसिं

भाषा

मूंके जातूं निगोदकाय मूंके पृथिव्यादि माहिजाइ पछे आवेतो अंतरपडे १०४ वनस्पती सूक्ष्म बादर वर्णथकी गधथकी रसथकी फरसथकी संस्थान देशनाभेदथकी विधानभेदसहस्र१०५ ए पूर्वे कह्या ते थावर पृथवी पाणी वनस्पति तीनभेदे सखेपे काह्या तीर्थंकरा एतला कह्यानतरत्र स त्रिहूभेदे कहुंछुं ए वचन भगवंतनुं १०६ तेऊ कायना जीव वाऊकायना जीव उदार मोटा बेंद्रियादित्र स तिम ए पूठे कागा तेत्रस त्रिहूभेदे तेहना भेद

विधास्थावरा पृथ्वी जलवनस्पति जीवातिष्टन्तीत्येवमोक्ता स्थावरा समासेनव्याख्याता विस्तरतोऽमीबहवोभेदा सन्ति इतोऽनन्तरंत्रिविधान् त्रसान् अनु पूर्व्योऽनुक्रमेणवक्ष्यामि १०६ (तेऊवाऊयबोधव्वा ओरालायतसातहा इच्चेएतसातिविहातेसिंभेए सुणेहमे १०८ तेजोयोगास्तेजासि अग्नयस्तद्वर्त्ति नोजीवा अपि तथोक्ता एव वायवय तथा उरालायाइति उदारा एकेन्द्रियापेक्षयास्थूलाद्वीन्द्रियादयश्चत्रसाइत्येते त्रसाखि विधा सन्ति तेषां तेजोवायुद्वीन्द्रिया दीना भेदान् मे कथयतोयूयं शृणुतइति यद्यपि तेजोवाय्वोःस्थावरनामकर्मोदये पित्रसत्व नास्ति ततस्तेजोवाय्वोर्गतिमत्वात् उदाराणा च लब्धितो पित्रसत्व अस्ति यतोहित्रस्यन्ति देशाद्देशान्तरं संक्रामन्तीतित्रसा इति व्युत्पत्ति १ ८ [दुविहातेउजीवायसुहुमाबायरातहा पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहापुणो १०८] तेजोजोवा सूक्ष्मास्तथास्तथाबादराश्च त पुन पर्याप्तापर्याप्तभेदेनद्विविधा सन्ति सूक्ष्मा अग्नि जीवा पर्याप्ता अपर्याप्ताश्चवर्त्तन्ते १०८ [बायराजेउपज्जत्ताणेगहातेवियाहिया इङ्गालेमुम्मुरे अगणी अच्चिजालातहेवय ११०] ये बादरा पर्याप्ता अग्नि जीवास्ते अनेकधाव्याख्याता अङ्गार प्रज्वलितेन्धनखण्डरूप समरोभस्ममिश्रिताग्निकणरूपोग्नि अग्निर्मौलभेदात् अतिरिक्त अर्चिं प्रदीपादेर्ज्वालाच्छिन्नमूला साज्वाला उपरिष्टात् स्फुरन्तो

भेए सुणेह मे १०८ ॥ दुविहा तेउ जीवाओ सुहमा बायरा तहा। पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो १०९ ॥ बा
यरा जेउ पज्जत्ता णेगहा ते वियाहिया। इङ्गारे मुम्मुरे अगणी अच्चिजाला तहेवय ११० ॥ उक्का विज्जुय बोधव्वा

सांभलो सुक्ष्मे कहतांप्रत १०७ बिहु प्रकारतेऊकायनाजीव एक सूक्ष्मबीजाबादर तिमपर्याप्तावीजा अपर्याप्ता इम ए बिहु भेदेवली १ ८ बादरदेखता जे अग्निना जीवपर्याप्ता अनेकप्रकारि ते कह्या बलता खीरडा अग्निना कणीया धूमसहित अगनि मूलसहित ते अर्चिज्वाला ऊपरि भडकर बलतो तथा

दृश्यन्ते तथैवेति पद पूरणे ११० [उक्काविज्जुयबोधव्वाणेगहा एवमाइओ एगविह मनाणत्ता सुहमाते वियाहिया १११] उल्काग्नि स्तारावदाकाशात्पतन् योदृश्यते विद्युत्तडिदग्नि एवं आदिक अनेकधाअग्निजीवावोधव्याः तेग्नय सूक्ष्मा एकविधा एव अनानात्वा व्याख्याताः १११ [सुहमासव्वलोगंमि लोगदेसेय बायरा एत्तोकालविभागन्तु तेसि वुच्छंच उव्विह ११२] सूक्ष्माग्नि जीवाः सर्वस्मिन् चतुर्दशरज्ज्वात्मलोकेसन्ति वादरा अग्निकाय जीवालोक देशे चतुर्दशरज्ज्वात्मलोकस्यैकदेशेसार्द्ध द्वितीयद्वीपेसन्ति इति चेतविभागउक्तः इतोऽनन्तरं तेषा अग्निकायजीवानां चतुर्विध कालविभागं वक्ष्ये ११२ [सन्तइपप्पणाइया अपज्जवसियाविय ठिइं पडुच्चसाइया सपज्ज वसियाविय ११३] अग्निकायजीवाः सन्तति माप्य अनादिकाः अनादिरहितास्तथा अपर्यव सिताः स्थितिं प्रतीत्य आयुराश्रित्यसादिकाः सपर्यवसिता अपि अन्तेनापि सहितावर्त्तन्ते ११३ [तिन्नेव अहोरत्ता उक्कोसेण वियाहिया आउ

सूत्र

णेगहा एवमाइओ। एगविह मनाणत्ता सुहुमा ते वियाहिया १११॥ सुहुमा सव्व लोगंमि लोग देसेय बायरा। इत्तो काल विभागंतु तेसिं वोच्छं चउव्विहं ११२॥ संतइंपप्प णाईया अपज्जवसियाविय। ठिईपडुच्च साईया सप ज्जवसियाविय ११३॥ तिन्नेव अहोरत्ता उक्कोसेणा वियाहिया। आउ ठिई तेउणं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ११४॥ असंख

भाषा

वली१०८ तारानोपरि उपरि उपरिथवीपडतीदीसे वीजलीजाणवो अनेकप्रकारे एहआदर एकजभेदछे परवीजोभेदनथीसूक्ष्म अगनिकायनाजाणा११० ते सूक्ष्म अगनि सर्वलोक चौदराज व्यापी रह्याछे एकदेशने विषे वादर एतलानतर कालनो विभाग भेद तेहनो कहिस्युं चिहंप्रकारे १११ प्रवाहि आश्री अनादिछे अंतपणिछे थिति आश्रीसादि सहित अतपणिछे ११२ त्रिणि अहोरात्रि पूर्णप्रहर चोवीस उत्कृष्टीस्थिति कही तीर्थंकरे आउ

ठिइत जण अन्तामुहुत्त जहन्निया ११४) तजसा तेजो जोवाना उत्कृष्टेन त्रोणि अहोरात्राणि आयु स्थिति व्याख्याता जघनिका आयु स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं श्रेयाद्न्यथ ११४ भव स्थिति मुक्ताकाय स्थिति माह (असखकाल मुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्नय काय ठिइ ते जण त काय तु अमुचओ ११५) तेजसास्तेजस्काय जीवाना स्व काय अमुचता उत्कृष्ट असख्य काल स्थितिर्भवति तेजस्कायस्थो जीवो मृत्वा अनन्तर तेजस्काये एव उत्पद्यते तदा असख्य काल तेजस्काये तिष्टतीत्यर्थं जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तिष्टति ११५ अथ कालस्यान्तर वदति [अणन्त काल मुक्कोस अन्तो मुहुत्त जहन्नय विजढम्मि सए काए तेज जीवाण अन्तर ११६] तेजो जोवाना स्वकीये तेजस्कायेत्यक्ते सति उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल तेजस्काय जोवा स्वतेजस्कायात् च्युत्वा अपरस्मिन् काये उत्पद्य पुन स्वतेजस्काये उत्कृष्ट अनन्त कालस्यान्ते उत्पद्यते जघन्य अन्तर चेद्भवति तदा अन्तर्मुहूर्त्त भवति नव समया दारभ्य किञ्चिदून घटिकाद्वय अन्तर्मुहूर्त्तं मुच्यते ११६ [एएसि वन्नओ चेव गधओ रसफासओ सठाणा देसओ वावि विहाणाद सहस्ससो ११७] एतेषा अग्निकाय जोवाना वर्णतो गन्धतो रसत स्पर्शत सस्थाना

सूत्र काल मुक्कोसा अतोमुहुत्त जहन्निया। काय ठिई तेऊण त कायतु अमु चओ ११५॥ अणत काल मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नय। विजढमि सए काए तेऊ जीवाण अतर ११६॥ एएसि वन्नओ चेव ग धओ रस फासओ। सठाणा देसओ

भाषा स्थानीस्थिति॰अग्निकायनो अतर्मुहूर्त्त जघन्य स्थिति ११३ असख्यातुकाल उत्कृष्टो अतर मूहूर्त्त जघन्य कायास्थिति तेऊ कायनी ते काय अण मूकतां ११४ अनतोकाल उत्कृष्टो अतर्मूहूर्त्त जघनापणे बिछडो पोतानोकायमूकी तेऊ कायना जोवने वलतु अतरहुवे ११५ ए अग्नीकायना वर्ण

देशतस्यापि सहस्रशो विधानानि भेदा भवन्ति११७ (दुविहावाउ जीवाउ सुहमावाय रातहापज्जत्तमपज्जत्ताएवमेए दुहापुणो ११८) वायु जीवा द्विविधा शूक्ष्माबादरास्ते पुनः पर्याप्ता पर्याप्तभेदेन द्विविधासन्ति११८ [वायराजेउपज्जत्तापंचहातेपकित्तियाउक्कलियामंडलियाघणगुंजासुद्धवायाय११९] येबादरा वायुकाय जीवा पर्याप्तास्ते पुनः पञ्चधा प्रकीर्त्तिता पञ्चकथनमातत' वायवोहि अनेकविधाः सन्ति उत्कालिका वायुर्यः स्थित्वा २ वांति १ मण्डलिका वायुः वातूलिकावायुः घनोघनरूपो वायुर्घनवायुः रत्नप्रभाद्यधोवर्त्ती घनोदधिस्तु विमानाना आधारो हिम पटलकल्पोवायुः गुंजन् वातीतिगुंजावायुः शुद्धावायवस्तोक २ येवान्ति ११९ [संवट्टगवा वायणेगहाए वमाईओ एगविहमनाणत्ता सुहुमाते वियाहिया १२०] सवर्त्तक वायवस्ते येर्वायुभिस्तृणा

सूत्र

वावि विहाणाइं सहस्ससो ११७॥ दुविहा वाउ जीवाओ सुहुमा वायरा तहा। पज्जत्त मपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो ११८॥ वायरा जेउ पज्जत्ता पचहा ते पकित्तिया। उक्कलिया मंडलिया घण गुंजा सुद्धवायाय ११९॥ संवट्टग वायायणेगहा एवमाइओ। एगविह मनाणत्ता सुहुमाते वियाहिया १२०। सुहुमा सव्वलोगंमि लोगदेसेय

भाषा

थकी गंधथकी रसथकी फरसथकी संस्थानभेदथकी विधानभेद सहस्र ११६ वेह्नं प्रकारे वाउकायना जीव एक सूक्ष्मनानां विजा बादर ते मोटा तिमज एक पर्याप्ता बीजा अपर्याप्ता एवेह्नं प्रकारे इम ११७ बादर वाउकायना जीव पर्याप्ता पाचे प्रकारे कह्या तीर्थ करे उत्कलिका रही २ वाइते वायमंडली यावंतो लिया घन रूपते घनवातः गुंजता वाइते गुंजवात शुद्धवात ते थोडे थोडे वाये११८ जिणे वायरे तृणादिलेई अनेथिना खेते संवर्त्तक अनेक घणे प्रकारे आदि देईने इत्यादिक एकभेद पणि अनेकप्रकारे नही सूक्ष्म कह्या तीर्थं करे ११९ सूक्ष्म चौदराजमाहि लामे लोकने एकदेसे

दय एकस्मात् स्थानात् स्थानान्तर भीयन्ते एवमादयो अनेकधा व्याख्याता परवायु जाति सामान्येन एक विधा अनानात्वा स्तोर्थ करेसे शूक्ष्मवायु काय जीवा याख्याता १२ (सुहमा सव्वलोयंमि लागदेसेय बायरा एत्तोकाल विभागन्तु तेसिवच्छं चउव्विहं १२१) शूक्ष्मा वायुकाय जीवासर्वस्मिन् चतुर्दश रज्वात्म लोकेस्थिता सन्ति बादरा वायुकाय जीवा लोकैक देशेस्थिता सन्ति इति क्षेत्रविभाग उक्त इतो अनन्तर तेषा वायुकाय जीवाना चतुर्विध कालविभाग वक्ष्ये १२१ [सतइ पप्पणाइया अपज्जवसिया विय ठिइ पडुच्च साइया स पज्जवसिया विय १२२] सन्तति प्रवाह मार्गमाश्रित्य वायुकाय जीवा अनादयस्तथा अपर्यवसिता अपि पुन स्थिति प्रतोत्यते सादिका स पर्यवसिताय वर्त्तन्ते १२२ (तिन्नेव सहस्साइ वासाणुक्कोसिया भवे आउठिइ वाउण अतोमुहुत्त जहन्निया १२३) वायुर्ना वायूकाय जीवाना त्रोणिवर्ष सहस्राणि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्भवति जघनिका स्थितिरन्त

वायरा। इत्तो काल विभाग तु तेसि वोच्छं चउव्विहं १२१॥ सतइ पप्प णाईया अपज्जव सियाविय। ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसियाविय १२२॥ तिन्नेव सहस्साइ वासाणु क्कोसिया भवे। आउ ठिई वाउण अंतोमुहुत्त जह न्निया १२३॥ असखकाल मुक्कोसा अंतोमुहुत्त जहन्निया। काय ठिई वाउण त कायतु अमु चओ १२४॥ अणत

बादर जीव एतलानतर कालनो विभाग भेद तेहनो चिहु प्रकारे कहस्यु १२० प्रवाह आश्री अनादिक्षे अतपणिक्षे स्थिति आश्रीसादि सहित स पर्यवसित अतर पणिक्षे १२१ त्रिणिहजार वरस उत्कृष्टो स्थिति होइ वाउकानी स्थितिवायरानी अतर्मुहूर्त्त जघन्य स्थिति १२२ असख्याता कालनो उत्कृष्टी अतर्मुहूर्त्त जघन्य कायस्थिति वाउनी वायुथकी मरी वायुमाहि ऊपजै ते वाउकाय मु के नही १२३ अनताकालनो उत्कृष्टी अतर

मुहूर्त्तं भवति १२३ अथ कायस्थितिमाह (असंख कालमुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं कायठिई वाऊणं तं कायतु अमुंचओ १२४) वायूना वायुकाय जीवानां स्वंकायं वायुकायं अमुञ्चतां असंख्येय कालं उत्कृष्टास्थितिर्व्याख्याता जघनिएका स्थितिरन्तमुंहूर्त्तं भवति वायुकायात् च्युत्वा पुनर्वायुकाये एव उत्पद्यते तदा उत्कृष्टो असंख्येय कालं जघन्य तयांतमुंहूर्त्तं स्थितिर्व्याख्याता इत्यर्थः१२४ अथ कालस्यान्तरमाह (अणंतकालमुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नियं विजढम्मि सए काए वाऊजीवाण अंतरं १२५) वायुजीवानां स्वकीये कायेत्यक्ते सति उत्कृष्टं अनन्तकालं जघन्यं अन्तमुंहूर्त्तं अन्तरं भवति तदा उत्कृष्टतो अनन्तकालस्यान्तर भवति जघन्यतयांतमुंहूर्त्तं अन्तरं भवति १२५ (एएसिं वन्नओचेव गंधओ रसफासओ संठाण देसओ वावि विहाणाइं सहस्ससो १२६) एतेषां उत्कलिकादि वायुनां वायुकाय जीवानां वर्णतो गन्धतो रसतः स्पर्शतस्संस्थानादेशतयापि सहस्रसो विधानानि बहवोभेदाः भवन्तीत्यर्थः १२६ एवं तेजोवायुत्रसान् उक्त्वा उदारत्रसान् आह (ओराला तसाजेज चउविहाते पकित्तिया बेंदियतेंदिय चउरोपंचिंदिया चेव १२७) ये उदारास्त्रसाद्वीन्द्रियादयस्ते चतुर्विधा प्रकीर्त्तिताः द्वीन्द्रिया१ त्रीन्द्रिया २ चतुरिन्द्रियाः ३ पञ्चेन्द्रियाः ४ चैव पदपूर्णे एतेत्रसा उदारा

सूत्र

काल मुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं। विजढंमि सए काए वाऊ जीवाणं अंतरं १२५॥ एएसिं वन्नओ चेव गंधओ रस फासओ संठाणादेसओवावि विहाणाइं सहस्ससो १२६॥ ओराला तसाजेज चउविहा ते पकित्तिया। बेइंदिय तेइं

भाषा

अंतमुंहुर्त्त जघन्य पोतानीकाया मूंकेती वायुकायांना जीवने एतलो अंतर पडे १२४ एवाअ कायना वर्णथकी इत्यादि वर्ण १२५ उदारिक जे बेइंद्रीयादि त्रस जीव चिहुं प्रकारे कहिया बेंद्रीकाया जीव तेंद्रीकाया काया१ जीभ२ नासीका३ चउरिंद्रीकाया रसना घ्राणनाक४ पंचेंद्री १२६

स०टीका अ०३६ १०५८

ह्रस्व शरीरा १२७ (बेंदियायजे जीवा दुविहातेपकित्तिया पज्जत्तमपज्जत्तातेसि भेए सुणेहमे १२८) द्वीन्द्रिया कायरसनेन्द्रिय युक्ताजीवास्ते द्विविधा प्रकीर्त्तिता ते के द्वीन्द्रिया पर्याप्तापर्याप्ताश्च एव अमुनाप्रकारेण एतेद्वीन्द्रिया सन्ति इति वाक्य मे कथयतोयूयं शृणुत १२८ (किमिणो सोमङ्गलाचेव अलसामाइ वाहया वासोमुहाय सिप्पोय सखासखणगातहा १२९)' [पल्लोयाणुल्लया चेव तहेवय वराडगा जलुगा जालगाचेव चन्दणाय तहेवय १३०] क्रमयोऽपविच जीवा च पुन सोमङ्गलाद्वीन्द्रिय जीवविशेषा अलसाश्वर्षाकाले उत्पत्तिकोड्वा माद्ववाहकाक्षुद्रैरणिजाद इति लोक प्रसिद्धिमन्तोद्वीन्द्रिय जीवा वासोमुखावासी सद्दयवदनाजीवास्तथा शुक्तयोमुक्ताफलयोनय शङ्खा द्वविजलजा तथा शङ्खनकालघवोवर्णास उत्पत्तिकोड्वा १२९ पल्लुका च पुनरण पल्लकास्तथैव वराटका कपर्दका जलूकारुधिरपा जालका अपि द्वीन्द्रियजीवविशेषा तथैव चन्दना अक्षा येषा अक्षयवास्थापनाया स्थाप्यते

सूत्र

दिय चउरो पंचिंदिया चेव १२७॥ बेइ दियाओ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया। पज्जत्त मपज्जत्ता तेसि भेए सुणेह मे १२८॥ किमिणो सोमगला चेव अलसा माइवाहया। वासी मुहाय सप्पीया सखा सखणगा तहा १२९॥ पल्लो याणुल्लोया चेव तहेवय वराडगा। जलगा जालुगा चेव च दणाय तहेवय १३०॥ इइ बेंदिया एए णेगहा एवमा

भाषा

बेइद्रिय जे जीव बिह प्रकारे ते कह्या तीर्थंकरे एकपर्याप्ता बीजा अपर्याप्ता तेहना भेद सांभलि हे शिष्य१२७ कृमि१ सोमगल बेंद्रियजाति अलस्योया चूडेल वासधीना मुख सरिखा मुखते मोती सबधिया जीवते सर्प शख जीवशख नखबेंद्रिनाक्षाजीव १२८ पल्लूकजीव तथा वडागकोडीनाजीव जलोना जीव जालकजीव चदनगोषधा तेहना जीव १२९ इणे प्रकारे बेइ द्रिय जीव अनेक घणे प्रकारे लोकने एक देशे ते सर्वबेंद्री पर सबलोक मे नहो १३०

कि सत्वा दु ख उत्पतित उद्भूत आला तव वेदनायां दु खे वा रोगपरीषहे अध्यासित सहेत कीदृशो मुनि [redacted] स्पृष्टो रोगैर्व्याप्त दु खयतीति दु ख रोगस्तेन आर्त्त पीडित क्रियते इति दु खार्त्तित तादृशोपि प्रज्ञां स्थापयेत् रोगार्त्तस्य हि प्रज्ञा चञ्चलास्यात् साधुस्तु रोगसद्भावेपि प्रज्ञां स्थिरां एव विदधीत इत्यर्थ तदा रोगार्त्त किं कुर्यादित्याह तोगच्छ मिति साधुरोगार्त्तश्चिकित्सा रोगप्रतीकार न अभिनन्देत् न अनुमन्येत तदा चिकित्साया

भाषा

पुत्र हुओ ते धर्म साभलो दोक्षा लेइ मुद्गशैल नगरोइ पुहुतो तिहा नो राजा जितशत्रु राजानी बहिनीवी तेहनी स्त्रीआपणा भाइनी हरसनी व्याधि जाणी ते गमाडवा भणी आहार माहो औषध घालो ते आहार दोष करिय औषध मिश्रित जाणी आहार परिठव्यो काया अन्य मानी अणसण लेइ प्रतिमाइ रह्यो तिण काल वेस कुमरे गृहवास थके राति सियालनो शब्दसाभली अगनो लघु भीकनो सीयाल पकडी अणाव्यो तिणे कुमरे कौतुके हणी ते अकाम निर्जराइ मरीने व्य तर थयु तिणे अपणा वैरथकीकालवेस कुमरने सीयालनो वेस करिखावा लागो ते अहियासतो रोग परीसहसहतो सीधो जिम तिणे कालवेश साधे रोगपरीसहसह्योतिम बीजें साधु सहिवो ते भणीतृणानाफरसनो १७ मो परीसह वस्त्ररहित साधुने तथा अल्प वस्त्रने लू० लूपयतीने स० सयमवतने त० तपस्वीने त० तृणाने विपेइ स० सूतावेसताइ हु हुवे गा० शरीरने विपेइ पीडा ३४ आ० तडकाने नि० पडवे करी अ० अनुभराणा ह० हुवे वे० वेदना ए० एणो परे न० जाणिने न भोगवे त० ते वस्त्र ज० जे तृणानो त० पीडायकोजिन कल्पी साधु हुवे अथ तृण स्पर्श दृष्टांत सावत्थी नगरीइ । जितशत्रु राजानो पुत्र भद्र कुमार वैराग्य थको दीक्षा लेइ विहार कयो केतले अनार्य देशे पहुतो तिहा राजाना ओलगूए महात्मा अणदीठे अथ ओलखे पूछ्यु तु कुण पिण ते ऋषि भाषा अजाणतो बोल्यो नही तिहा हेरो करी भाल्यो वस्त्र उतालिया तहने डाभ सघाते बाधो मारो उपसर्ग कोधो ते सह्यो जिम भद्र कुमार तृणस्पर्श परीसह सह्यु तिम बीजे सहिवो इति कथा कि० स्नान अण कर वे मेल करी

मुहुत्त जहन्नयं बेंदियकायठिई त काय तु अमुञ्चओ १३४) द्वीन्द्रियजीवाना त स्वकीयकाय द्वीन्द्रियकाय अमुञ्चतां कायस्थितिरुत्कृष्टा ■ ख्येयकाल स्थितिर्जघन्यतोन्तर्मुहूर्त्तं स्थिति रस्ति इत्यर्थ १३४ अथ कालस्यांतरमाह [अणतकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्नय बेंदियजीवाण अंतरेयं वियाहिय १३५] द्वीन्द्रिय जीवाना स्वकीय योनित्यागे सति अपरस्मिन्काले उत्पद्यपुनर्द्वीन्द्रिय यो नौ एव उत्पद्यते तदा उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल जघन्यतोन्तर्मुहूर्त्तं कालस्यान्तर भवति यदाहि द्वीन्द्रियो जीव स्वयोनेः पलायनस्ततो उत्पद्यते तदा अनन्तकाल तिष्ठति ततोऽनन्तकालस्यान्तर भवति पश्चात्पुनर्द्वीन्द्रियत्वे उत्पद्यते इत्यर्थं १३५ (एएसि वन्नओचेव गन्धओरसफासओ सठाणादेसओवावि विहाणाइ सहस्ससो १३६) एतेषां द्वीन्द्रियाणां वर्णतोगन्धतोरसत स्पर्शत सस्थानादेशतश्च सहस्र शोबहुनिविधानानि भेदा भवन्ति इति ज्ञेय १३६ अथ त्रीन्द्रियानाह [तेंदियाओ जेजीवा दुविहातेपकित्तिया पज्जत्तमपज्जत्ता तेसि भेएसुणेहमे१३७] येत्रीन्द्रियजीवा शरीररसनाघ्राणेन्द्रिय त्रययुक्तास्तेपर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा प्रकीर्त्तिता तेषां त्रीन्द्रियजीवानां भेदान् मम कथयतो यूय शृणुत १३७ (कुन्थूपिवीलि उड्डंसा उक्कलुद्देहियातहा तणहारकट्ठहारा मालूगापत्तहारगा १३८)

अ तोमुहुत्त जहन्नय। बेंदिय जीवाणं अ तरेयं वियाहियं १३५॥ एएसि वन्नओ चेव गंधओ रस फासओ।
सठाणा देसओवावि विहाणाइ सहस्ससो १३६॥ तेंदियाओ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया। पज्जत्त मपज्जत्ता

जाइ तु १३४ एबेंद्रो जीवना वर्णथकी गधथकी रसथकी फरसथकी सस्थानथकी विधानभेद सहस्रगमे होइ १३५ तेंद्रीजीके जीव तेविह भेदे श्रीतिर्थं करे कह्या पर्याप्ता अपर्याप्ता तेतेंद्रो जीवना भेद साभल हे शिष्य १३६ कुंथुयाकीडो जाति उद्देसा जीवविशेष उक्कलिया उदेहि जीवतणहार काट्ठहा

द्वीन्द्रियाणां मध्ये कीचित् प्रसिद्धा· केचित् अप्रसिद्धाः सन्ति १३० [इइबेन्दियाएएणेगहाएवमाइओ लोएगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थवियाहिया १३१] इति अमुनाप्रकारेण एतेद्वीन्द्रिया एव मादयोऽनेकधाः अनेकनामानोवर्त्तन्ते ते सर्वेद्वीन्द्रियाजीवालोकैकदेशे चतुर्दशरज्वात्मलोकस्य एकदेशे जला अयादौ तिष्टन्ति सर्वत्र नः व्याख्याताः सन्ति १३१ [सन्तइं पप्पणाईया अपज्जवसियाविय ठिइं पडुच्चसाईया सपज्जवसियाविय १३२] ते द्वीन्द्रियास्सन्ततिं प्राप्यप्रवाहमाश्रित्य अनादयः तथा अपर्यवसिता अपि सन्तिस्थितिं भव स्थितिं प्रतीत्यसादिकाः सपर्यवसिता अपि च सन्ति १३२ पूर्वं भवस्थितिं वदति (वासाइ बारसेवउ उक्कोसेणं वियाहिया बेन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्तं जहन्निया १३३) द्वीन्द्रियाणां द्वादशवर्षाणि आयु स्थितिरुत्कृष्टाव्याख्याताऽस्ति जघन्यतोन्तमुंहूर्त्तं न वसमयादारभ्य किञ्चिदूनं घटिकाद्वयं आयुर्पेस्थिति र्व्याख्याता १३३ अथ कायस्थिति माह (संखिज्जकालमुक्कोसं अन्तो

सूत्र

इओ। लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया १३१ ॥ संतइंपप्प णाईया अपज्जव सियाविय ठिइं पडुच्च साईया सपज्जव सियाविय १३२॥ वासाइं वारसेवउ उक्कोसेण वियाहिया। वेइंदिय आउ ठिई अंतोमुहुत्तं जहन्निया १३३ संखेज्जकाल मुक्कोसा अंतोमुहुत्तं जहन्निया। वेइंदिय काय ठिई तं कायंतु अमुंचओ १३४ ॥ अणंतकाल मुक्कोसं

भाषा

संतति प्रवाहे आदि रहित अपर्यवसित अनतपीण थिति आश्री आदि सहित अने अनंत अंतवीण १३१ वरस बारे १२ उत्कृष्टी कही वेंन्द्रिय जीवने आउखानी स्थिति अंतर्मुहुर्त्त जघन्य आउखो १३२ संख्याता कालनी उत्कृष्टी अतर्मुहुर्त्त जघन्यपणे १३२ वेंद्री जीवनी कायस्थिति तेहनी ते माहे रहि ते वेंद्रियकाय अमूंकताने १३३ अनंतकाल उत्कृष्टो अंतर्मुहुर्त्त जघन्य वेंद्री जीवनी आतरोए कह्यो स्वकायछांडी वनस्पती माहि

सन्तति प्राप्य अनादयोऽपर्यवसिता स्थिति भवस्थिति कायस्थिति प्रतीत्यसादिका सपर्यवसिता अपि १४१ (एगूणपन्नहोरत्ता उक्कोसेणवियाहिया तेन्दियआउठिई अन्तोमुहुत्तं जहन्निया१४२) त्रीन्द्रियजीवानां एकोनपञ्चाशद्दिनानि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्व्याख्याता जघन्यकायन्तर्मुहूर्त्तं आयुस्थिति रस्तीतिभाव १४२] अथ कायस्थिति माह [स खिज्जकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं तेन्दियकायठिई त काय तु अमुञ्चओ१४३] त्रीन्द्रियाणां स्वकाय त्रीन्द्रियकाय अमुञ्चतां मृत्वा तत्रैवोत्पद्यमानानां उत्कृष्टा सङ्ख्येयकाल स्थिति जघन्यतस्तु अन्तर्मुहूर्त्तं एव स्थितिरस्ति १४३ अथ कालान्तरमाह [अणतकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं इन्दियजीवाण अन्तर तु वियाहियं १४४] त्रीन्द्रियजीवानां स्वकायात् च्युत्वा अन्यत्रयो नो उत्पद्यते तदा तु उत्कृष्ट अनन्तकाल अन्तर भवति वनस्पति कायेऽनन्तकालस्य सम्भवात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तं व्याख्यातं १४४ (एएसि वण्णओचेव गन्धओरस

साईया सपज्जवसियावियं १४१। एगुणपन्न होरत्ता उक्कोसेण वियाहिया। तेइ दिय आउ ठिई अ तोमुहुत्त जह न्निया १४२॥ सखेज्ज काल मुक्कोसा अ तोमुहुत्त जहन्निया। तेइ दिय काय ठिई त काय तु अमुचओ १४३॥ अणत काल मुक्कोस अ तोमुहुत्त जहन्नय। ते इ दिय जीवाण अ तरेयं वियाहियं १४४॥ एएसि वन्नओ चेव ग धओ रस

जीवनी आउखानी स्थिति अतर्मुहूर्त्त जघनेरा १४१ सख्यात काल उत्कृष्टी अतर्मुहूर्त्त जघनेरा तेंद्रीनीकाय स्थिति तेहनो ते माहि रहे ते द्रीकायना अमूकतु १४२ अनतकाल उत्कृष्टो अतर्मुहूर्त्त जघनेरा थेंद्रीय जीवनो आंतरो कह्यो एणे प्रकारे १४३ एतेंद्री जीवने वर्णथकी गधथकी रसथकी फरसथकी सस्थानना आदेशथकी विधानभेद सहस्रगमे हुइ १४४ चौरिंद्री जे जीव तिह भेदे कह्या तीर्थं करे पर्याप्ता अपर्याप्ता तेहनाभेद साभलि

(कप्पासट्ठमिञ्जाया तिन्दुगातओ समिञ्जगा सद्दावरीय गुम्मीय बोधव्वा इन्दगायगा १३९) [इन्दगोवग माईया णेगहाएव माईओ लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया १४०] कन्थु पि पील्लु इंसा कन्थु लघुशरीर स्त्रीन्द्रिया जीव: पिपीलि: कीटिका: उद्दसास्त्रीन्द्रिय जाति विशेषा: उल्लालिकोजन्तु विशेषास्तथा उपदेहिका: तृणहार काष्टहारा एतेपि त्रीन्द्रिय जीवविशेषा: मालूका: पत्र हारका: एतेपित्रीन्द्रिय जीव विशेषा: १३८ कार्पासास्थिजाता स्तिंदुका: पुनस्तं तु समिञ्जका अपित्रीन्द्रियजीव विशेषा: सदावरी च पुनर्गुल्मी इति यूका: तथा इन्द्रकाय कायका इत्यपि कुतचिल्लोक प्रसिद्धा: १३९ इन्द्र गोपकादिका: इंद्र गोप काम मोला इति प्रसिद्ध: एवमादिका स्त्रींद्रिया अनेकधा जीवास्ते सर्वे लोकैक देशे व्याख्याता सर्वत्र न व्याख्याता: १४० [सन्तइ पप्पणाईया अपज्जव सियाविय ठिइं पडुच्च साईया सपज्जव सियाविय १४१] एते त्रींन्द्रिय जीवा:

सूत्र

तेसिं भेए सुणेह मे २३७। कुंथू पिपीलि उदंसा उक्कलुद्देहिया तहा। तणहार कट्ठहाराय मालुगा पत्तहारगा१३८। कप्पासट्ठिमिंजाय तिंदुगाओ समिंजगा। सयावरीय गुम्मीय बोधव्वा इंदगाईया १६९। इंदगोवग माईया णेगहा एव माइओ लोएग देसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया १४०। संतइं पप्प णाईया अपज्जवसियाविय। ठिइं पडुच्च

भाषा

रादि जे जीव जाणे मालूका पत्रहार १३७ कपासना जीव अठमिंजी जीव तिंदुक जीवतो समिं जगजीव सदावरी जीवघूकाश तपदी जीव जाणि वाइंदकाइय जीव १३८ इंद्रगोयमामोला प्रमुख अनेकप्रकारे तेंद्री जीव लोकने एकदेशे ते सर्व सगले लोके कह्या नथी १३९ संतति प्रवाहे अनादि अने अपर्यवसित छेहडो भवथिति कायथिति आश्री आदिछे अने सपर्यवसित सांत पोण नौर्ये १४० ओगणपंचास दिवस उत्कृष्टी स्थिति कही तेंद्री

यावद् लोगहाएवमाइश्रो लोगस्स एगदेसम्मि ते सव्वे परिकित्तिया १५०) इति अमुना प्रकारेण एतेचतुरिंद्रियाएवमादिका अनेकधा सन्ति ते सर्वे चतुरिंद्रियालोकस्य चतुर्दशरज्ज्वात्मलोकस्यैकदेशेपरिकीर्त्तिता १५० [सन्तइं पप्पणाइया अपज्जवसियावियं ठिइं पडुच्चसाइया सपज्जवसियावियं १५१] सन्तति प्राप्यते जीवा अनादय स्तथा अपर्यंवसितास्तथापि भवस्थिति कायस्थिति प्रतीत्यसादय सपर्यवसिता अपिसन्ति १५१ [छच्चेवय मासाऊ उक्कोसेण वियाहिया चउरिन्दिय आउठिइ अन्तोमुहुत्त जहन्निया १५२] चउरिन्द्रियाणा उत्कृष्टा षण्मासा आयु स्थिति र्व्याख्याता जघन्यिकाऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थिति र्व्याख्याता १५२ भवस्थिति उक्त्वाकायस्थिति माह [संखेज्जकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्निया चउरिंदियकायठिइं तं कायं तु अमुंचओ १५३] चतुरिन्द्रियाणा स्व कायं अमुंचता पुन पुनस्तत्रैवोत्पद्यमानाना संख्येयकाल उत्कृष्टास्थिति रस्ति जघन्यिका च अन्तर्मुहूर्त्त

मोहए चत्ति रोडए विचित्ते चित्तपत्तए। उहि जलिया जलकारिय नीयाततव गाइया १४९॥ इइ चउरिंदिया एए णेगहा एव माइओ, लोगस्स एग देसम्मि ते सव्वे परिकित्तिया १५०॥ सतइपप्प णाइया अपज्जव सियाविय। ठिइं पडुच्च साइया सपज्जवसियाविय १५१॥ छच्चेवय मासाउ उक्कोसेण वियाहिया। चउरिंदिय आउ ठिइ अंतोमुहुत्त

जीव मोहिजलियाजीव जलकारीजीवनीयाजीव आपवा तवगजीव एलीकहदि १४८ इणे प्रकारे चौरिंद्रीजीव अनेकघणे प्रकारे एवमादिक लोक चौद राजना एकदेशनै भागे ते सघला कह्या तीर्थंकरे १४९ सतति प्रवाहे अनादि अपर्यवसित अनतपणि थिति आश्री आदि सहित अने अतसय १५० छमासनो उत्कृष्टो थित कह्यो तीर्थकर देवे चउरिंद्री जीवनो आउखानीथित अतर्मुहूर्त्त जघन्यनौ आवखो १५१ संख्याता कालनो उत्कृष्टो

फासओ सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइ सहस्ससो १४५) एतेषां तीन्द्रियजीवानां वर्णतोगन्धतोरसतः स्पर्शतश्च संस्थानादेशतश्चापि सहस्रशोविधानानि भवन्ति१४५ अथ चतुरिंद्रियानाह (चउरिन्दियायजेजीवा दुविहातेपकित्तियापज्जत्तमपज्जत्ता तेसिं भेएसुणेहमे १४६) च उरिन्द्रियायेजीवाः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुसहितास्ते च पर्याप्तापर्याप्तभेदेनद्विधाः प्रकीर्त्तिता· तेषां भेदाः मेकथयतोयूयं शृणुत १४६ (अन्धियापोत्तियाचेव मच्छियामसगातहा भमरे कीडपयङ्गे यढिंकणेकुङ्कणेतहा १४७) (कुकुडेसिङ्गरीडीय नन्दावत्तेयविच्छिए डोलेयभिङ्गरीडीय विरलो अच्छिवेहए १४८) [अच्छिलेमाहए अत्थि रोडएचित्तपत्तए उहिं जलियाजलकारीय नीययातंबगाइया१४९] तिसृभिर्गाथाभिश्चतुरिन्द्रियजीवानांनामानिआह अन्धिकाच पुनः पौत्तिका अच्चिका तथामशका भ्रमरस्तथाकीटः पतङ्गश्च तथाढिंकणस्तथा कुङ्कुण· एते चतुरिंद्रियाजंतव १४७ पुनः कुकुटः शृङ्गरीटीनन्द्यावर्त्तवृश्चिकडोलो शृङ्गरीटकविरली अचवेधकः १४८ अच्चिल· मागधः अच:रोडक· चित्रपत्रकपधि जलका जलकारी नीचकाताम्रका १४९ एतानि देशीयनामानि [इइचउरिन्दि

फासओ। संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो १४५॥ चउरिंदियाओ जे जीवा दुविहा ते पकित्तिया। पज्जत्तमपज्जत्ता तेसिं भेए सुणेह मे १४६॥ अंधिया पुत्तिया चेव मच्छिया मसगा तहा। भमरे कीड पयंगेय ढिंकणे कंकणे तहा १४७॥ कुक्कुडे सिंगिरीडीय णंदावत्तेय विच्छिए। डोल्ले भिंगारीय विराली अच्छिवेहए १४८॥ अत्थिले

हे शिष्य १४५ अंधियाजीव तथा प्रकारे पोतीयाजीव माखी मसाजीव तिम भमरा कीडीजाति पतगीया ढंकण जीवकुंकुणजीव तिम१४६ कुक्कुडजीव सिंगरीडीजीव नंद्यावर्त्तनामवीछुजीव डोल भिंगरीडीजीव विरलीजीव अचवेधक १४७ अच्छिलजीव मागधजीव अचीरोमजीव विचितजीव चित्रपत्र

व्याख्याता १५६ (नेरइया सत्तविहा पुढवीसुसत्तसूभवे पज्जत्तमपज्जत्ता तेसिभे एसुणेइमे१५७) सप्तसुरत्नप्रभादिषु नरकपृथ्वीषु सप्तधास्तेनैरयिकाभवेयु स्तेपुननैरयिका पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च सन्ति सप्तनैरयिका पर्याप्ता सप्तनैरयिका अपर्याप्ता एव चतुर्दश प्रकारास्तेषां भेदान् मे मम कथयत सतो यूय शृणुत १५७ पूर्वं सप्तनरकपृथ्वीना स्वरूपमाह (रयणाभा १ सक्कराभा २ वालुयाभा ३ य आहिया पङ्काभा ४ धूमाभा ५ तमा ६ तमतमा तहा १५८) रत्नाना वैडूर्यादीनां आभाइव आभायस्या सारत्नाभा १ रत्नकाण्डस्य भवन पति भवनस्याभाइव आभायस्या सारत्नाभा १ शर्करा श्लक्ष्णपाषाण रूपा तदाकारा आभायस्या सा शर्कराभा २ वालुकास्त्वरज सदृश आभायस्या सावालुकाभा ३ पङ्कस्य आभाइव आभायस्या सापि ङ्काभा ४ धूमस्य आभाइव आभायस्या साधूमाभा ६ यद्यपि तत्र धूमस्य अभावोस्ति तथापि तत्र तदाकार पुद्गलाना परिणामोस्ति इति धूमा ५ तम प्रभातमोरूपान्धकारमयो ६ तमस्तमाप्रकृष्ट तमस्तमसामयी अत्यन्तान्धकारमयीइत्यर्थ ७ सप्तविध नरक पृथ्वीत्वेन तदन्तर्वर्त्तिनोपि नरकजीवा सप्तधाव्याख्याता ते पुन पर्याप्तापर्याप्तभेदाच्चतुर्दशधाज्ञेया १५८ इति सप्तनरकपृथ्वीना स्वरूपमुक्त्वा अथनामान्याह (घम्मा १ वसगासेलातहा अञ्जण

रयणाभसक्कराभावालुयाभायआहिया। पङ्काभा धूमाभातमा तमतमा तहा १५८॥घम्मावसगासेलातहा अजणरिट्ठ
गामघामाघवइचे वणारयायपुणोपुणो। रयणाइगुत्तयोचे वतहाघम्माइणामयो इइ नेरइया एएसत्तहापरिकित्तिया

रत्ननी आभाकांतिते रतनप्रभा सर्करा कांकरा सरिषी क्रांति ते सर्कराप्रभा वेलूनी आभाकांति ते सरिखीते वालूकाप्रभा कही१५६ पककादय सरिखो क्रांति ते पंकप्रभा कहीइ धूम्रनी सरीखी कांतते धूम्रप्रभातम अंधकार रूपतेतमा तमतमा अत्य त अंधकारइंण प्रकारे नारकी सातेप्रकारि कही १५७

चतुरिंद्रियाणां यावद्व्याख्याता १५३ अथ कालान्तरमाह [अणन्तकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं विजढम्मि सएकाए अन्तरेयं वियाहियं १५४] अन्तर्मुहूर्तं अन्तरं भवेत् १५४ स्वकीयकायेत्यक्ते सति पुनरन्यस्मिन् कायेऽतत्य पुनश्चतुरिंद्रियकाये उत्पद्यते तदा उत्कृष्टं अन्तरं अनन्तकालं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं एतेषां चतुरिंद्रियजीवानां वर्णतो गन्धतो रसतः स्पर्शतः संस्थान (एएसिवन्नओ चेव गन्धओरसफासओ सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइं सहस्ससो १५५) देशतयापि सहस्रसोविधानि वर्णादिभेदाभवन्ति १५५ अथ पञ्चेंद्रियभेदानाह [पञ्चेन्दियायजीवा य चउव्विहाते वियाहिया नेरइयातिरिक्खाय मणु आदेवाय आहिया १५६] पञ्चेंद्रियाश्चये जीवास्ते चतुर्विधाव्याख्याताः पञ्चेंद्रि जीवा नैरयिकास्तिर्यञ्चो मनुष्याः पुनर्देवा व्याख्याता तीर्थंकरैः

जहन्निया १५२॥ संखिज्जकालमुक्कोस अंतोमुहुत्तं जहन्निया। चउरिंदियकायठिई तंकायंतुअमुंचओ १५३। अणंतकाल
मुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं। विजढंमि सएकाए अंतरेयं वियाहियं १५४॥ एएसिं वन्नओ चेव गंधओरस फासओ।
संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो१५५॥ पंचिंदियाओ जीवा चउव्विहाते वियाहिया। नेरइय तिरिक्खाय
मणुया देवाय आहिया १५६॥ नेरइया सत्तविहा पुढवीसु सत्तसू भवे। पज्जत्तमपज्जत्ता तेसिंभेए सुणेह मे १५७॥

अंतर्मुहूर्त जघन्य चौरिंद्रि जीवनी कायस्थिति ते कायने मुंके नहीं १५२ अनंतोकाल उत्कृष्टो अंतर्मुहूर्त जघन्यपणे पोतानीकायामुंकतेथी एतलो अंतर कह्यो तीर्थंकरे १५३ एवेंद्रीय जीवना वर्णथको गंधथको रसथको फरसथको संस्थानना आदेशथको विधानभेदसहस्र गमे १५४ पंचेंद्रीय जीव चिहुं प्रकारे ते कह्या तीर्थंकरे नारकी१ तिर्यंच २ मनुष्य ३ देवता कह्या तीर्थंकरे १५५ नारकी सात प्रकारे रत्नप्रभादि सात पृथ्वीने विषे

दुचाए जहन्नेण एग तु सागरोवम १६४] द्वितीयाया नरक पृथिव्या शर्कराभाया अन्त्यमे प्रस्तटे नारकाणा उत्कृष्टत्वेन त्रीणि सागरोपमान्यायु स्थितिर्व्याख्याता जघन्येन तु एक सागरोपम आयु स्थितिर्व्याख्याता १६४ (सत्तेव सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया तइयाए जहन्नेण तिन्नेव सागरोवमा १६५) तृतीयाया नरक पृथिव्या वालुक प्रभाया अन्त्यमे प्रस्तटे उत्कृष्टत सप्तसागरोपमानयायु स्थितिर्व्याख्याता जघनात स्त्रीणि सागरोपमाणि स्थिति र्व्याख्याता १६५ [दससागरोवमाऊ उक्कोसेण वियाहिया च उत्थीए जहन्नेण सत्तेव सागरोवमा १६६] चतुर्थ्या नरक पृथिव्या पङ्कप्रभायां अन्त्ये प्रस्तटे उत्कृष्टेन दशसागरोपमानि स्थिति व्याख्याता जघनेन तु सप्तसागरोपमानि आयु स्थिति

मूल

न्नेण दस वास सहस्सिया १६१। तिन्नेव सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया। दुचाए जहन्नेण एग तु सागरोवम १६२ सत्तेव सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया। तइयाए जहन्नेण तिन्नेवऊ सागरोवमा १६३॥ दस सागरोवमाऊ उक्कोसेण वियाहिया। चउत्थीए जहन्नेण सत्तेवऊ सागरोवमा ६४॥ सत्तरस सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया। पचमाए

भाषा

छटो कह्यो तीर्थ करे कह्यो पहेलो रतनप्रभा पृथवीने जघनत दशहजार वर्ष पहेला प्रतरनी अपेक्षा १६० तीन सागरोपमनो आउखु उत्कृष्टो कह्यो तिर्थ करे बीजो पृथवीइ नारकीने छेहले प्रतरे एक सागरोपम पहेला प्रतरनी अपेक्षाइ १६० सात सागरोपनो आउखो उत्कृष्टो कह्यो उत्कृष्टो भगवंते कह्यो त्रीजो पृथवी नारकीनो छेहलो प्रतरे जघन्य तीन सागरोपमनो अपेक्षा पहिला प्रतरे १६१ दशसागरोपमनो आउखो उत्कृष्टो कह्यो चोथो पृथवी नारकीनो छेहले प्रतरे सात सागरोप मनो इहइ पहेला प्रतरनी अपेक्षा १६२ सतर सागरोप मनो आउखो उत्कृष्टो कह्यो तीर्थ करे

रिट्ठगा मघासाघवईचेव णारयाय पुणोपुणो १५८) घर्मा प्रथमा पृथ्वी द्वितीयावंशका तृतीयाशैला तथा चतुर्थी अञ्जना अरिष्टापञ्चमी मघापष्टी माघवती सप्तमी अत्रवासिनोनारका: सप्तधाभवेयु: १५८ (रयणाइ गुत्तओचेव तहा घम्माइणामओ इइनेरइयाएए सत्तहापरिकित्तिया १६०) रत्न प्रभादयो गोत्रतोज्ञेया· तथा घर्मादयोनामतोज्ञेया: इति अमुनाप्रकारेण एतेनैरयिका: सप्तधा: परिकोर्त्तिता· १६० अथ चेत्र विभागं आह (लोगस्सएगदेसम्मि ते सव्वे उवियाहिया इत्तोकालविभागं तु तेसिं वुच्छं च उविहं १६१]ते सर्वेनारकालोकस्यैकदेशेव्याख्याता· अन्यत्र सर्वत्र न सन्ती त्यर्थ: इत्तोइतोऽनन्तर तेषां नारकाणां चतुर्विधं कालविभागं वक्ष्ये १६१ (सन्तइं पप्पणाइया अपज्जव सियाविय ठिइं पडुच्चसाईया सपज्जवसिया विय१६२] सन्तति प्राप्य प्रवाह माश्रित्यतेनारका अनादयो अपर्यवसितायापि स्थितिं भवस्थितिं कायस्थिति: आश्रित्यसादय: सपर्यवसितायापि वर्त्तन्ते १६२ [सागरोवममेगन्तु उक्कोसेणवियाहिया पढमाएजहन्नेणं दसवाससहस्सिया १६२] प्रथमायां नरक पृथिव्यां रत्नप्रभायां उत्कृष्टेन त्रयोदशे प्रस्तटे एकंसागरोपमं आयु: स्थितिर्व्याख्याता: जघन्येन दशवर्ष सहस्रिका आयु: स्थिति र्व्याख्याता: १६२ [तिन्नेवसागराउ उक्कोसेण वियाहिया

सूत्र

लोगस्स एगदेसंमि तेसव्वे उ वियाहिया। इत्तो कालविभागं तुतेसिं वोच्छं चउव्विहं। १५८ संतइं पप्पणाईया अप
ज्जव सियाविय ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसियाविय। १६० सागरोवम मेगं तु उक्कोसेण वियाहिया। पढमाए जह

भाषा

लोकना एकदेश अधोलोकने विषे ए सर्वनारकी कह्यो एतला कहा पछी कालनो विभाग तेहनो चिहुं प्रकारे कहुं १५८ संतति प्रवाहे अनादि अने अपर्यवसित छेहडो पीण स्थिति आश्री आदि सहित अने पर्यवसित अंतपणिदे १५८ सागरोपम १ तेरमो पातरनो अपेक्षाइं उत्

उ०टीका
अ०२
१०८

कारण कारणञ्च दूरतएव त्यक्तं 'यदा मनस्यपि चिकित्साचिन्तन साधुर्नकुर्यात् कीदृशः साधुरात्मगवेषकः आत्मानं सयमजीवं गवेषयतीति आत्म
गवेषकः एतादृशः सन् सचित्त्वे समाधिना तिष्ठेत् पीडया पीडितो न क्रन्देत् इत्यर्थः खुयस्मात् कारणात् श्रामण्यं साधुत्वं एय एतदेव जंइति यस्मात्
रोगे समुत्पन्ने स्वय चिकित्सां न कुर्यात् अन्येनापि न कारयेत् जिनकल्पिकापेक्षयायमाचारः स्थविरकल्पिकाः पुनः कारयंत्यपि इति वृद्धसंप्रदायः।
अत्र काल वैश्यिककथा २२ मथुरायां जितशत्रुनृपोऽतिसुरूपां कालाख्यां वेश्यां अन्तःपुरेऽचिपत् तस्या पुत्रः कालवैश्यकस्तस्य भजनी मुद्गशैलनगरस्वामिना
परिणीता अन्यदा'स कुमारः शृगालशब्दं श्रुत्वा स्वभृत्यान् अपृच्छत् कस्यायं स्वरः ते रूचे फेरुकास्वरोयं कुमारेणोक्तं फेरुकोऽत्रानीयतां तैरानीतः
शृगालः कुमारेण हन्यमान खीखीति कुर्व्वाणो मृतः अकामनिर्जरयाव्यन्तरो जातः अन्यदा कुमारः स्थविरान्तिके प्रव्रजितः गीतार्थो जातः एकाकी
विहरन् प्रतिमां प्रतिपन्न तत्सरिरेरोगो बभूव न चिकित्सां कारयति नाप्यौषधं करोति तथाविधप्रत्याख्यानात् अन्यदा विहरन्नऽसौ मुद्गशैलपुरे गतः
तत्र तन्नगरस्वामिपरीणीतया तद्भगिन्यार्शोघ्नौषधमिश्रा भिक्षा दत्ता तेन चाजानतार्शोघ्नौषधमिश्र आहारो गृहीतः औषध प्रयोगे च ज्ञाते अन्नं मे
प्रत्याख्यान मित्यऽधिकरणदोषशंकया भक्तं प्रत्याख्यानं पुराहहि तत्र च तेन शृगालजीविन व्यन्तरीभूतेनो पयोगदानेनासौ उपलचित' समुत्पन्न वैरेण
च नवप्रसूतशिवारूपेण खीखीकुर्वंता खाद्यमानः शिवोपसर्गमर्शोरोगं च सोढवान् एव मऽन्यै रपि रोगः सोढव्यः अथ रोगादि युक्तस्य शयनादौ दुःसह
तृणस्पर्श स्यात् अत स्तत्परीषहमाह अचेलगस्स लूहस्स सञ्जयस्सतवस्सिणो तणेसु सुयमाणस्स हुज्जा गायविराहणा २४ आयवस्स निवाएणं अउला
हवद् वेयणा एवं नच्चा नसेवंति तंतुजं तणतज्जिया २५ तपस्विनः संयतस्य तृणेषु शयमा नस्य तृणैर्गात्रविराधना भवेत् कीदृशस्य सयतस्य अचेल
कस्य वस्त्ररहितस्य पुनः कीदृशस्य रूक्षस्य तैलाभ्यंगादिरहितस्य यदा शरीरे तृणैः क्षत्वा पीडास्यात्त दाकिं कुर्यादि त्याह आयवस्से ति तृणतर्जिता

कथिता १६६ [सत्तरस सागराऊ उक्षोसेण वियाहिया पञ्चमाए जहन्नेणं दसचेवउसागरोवमा१६७] पञ्चमायां नरक पृथव्यां धूम प्रभायां अन्त्ये प्रस्तटे सप्तदशसागरोपमानगयु: स्थितिर्व्याख्याता: जघनेन तु दशसागरोपमानगयु: स्थितिर्व्याख्याता १६७ (वावीस सागराऊ उक्षोसेण वियाहिया छट्ठीए जहन्नेणं सत्तरससागरोवमा १६८) पष्ठ्यां नरकपृथिव्यां तम: प्रभायां अन्त्येप्रस्तटे उत्कृष्टेन द्वाविंशति सागरोपमानि आयु: स्थितिर्व्याख्याता जघनेन सप्तदशसागरोपमानि आयु: स्थितिर्व्याख्याता: १६८ (तित्तीस सागराऊ उक्षोसेण वियाहिया सत्तमाए जहन्नेणं वावीसं सागरोवमा १६९) सप्तमायां नरक पृथिव्यां तमस्तम: प्रभायां अन्त्ये प्रस्तटे उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानगयु: स्थिति व्याख्याता जघनेन द्वाविंशति सागरोपमानगयु: स्थितिर्व्याख्याता१६९ [जाचेवउ आउठिई नेरईयाणं वियाहिया साते सिकायठिई जहन्नुक्कोसियाभवे१६९] नारकाणां याजघनोत्कृष्टत: आयु:

सूत्र

जहन्नेणं दसचेवउ सागरोवमा १६५॥ वावीस सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया। छट्ठीए जहन्नेणं सत्तरस सागरोवमा १६६॥ तित्तीस सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया। सत्तमाए जहन्नेणं वावीसं सागरोवमा १६७॥ जाचेवउ

भाषा

पांचमी पृथवी नारकीनी छेहली प्रतरे जघन्य दस सागरोपमनी पेहला प्रतरनी अपेक्षाइं १६३ जे वली आउखानी स्थिति उत्कृष्टी कह्यी तीर्थंकरे नारकीने विषे छट्ठीइं पृथिवीइ नारकीनी छेहले प्रतरे जघन्ये साई तेहनी तेहन्ये जकाय स्थिती जे भणी नारकी मरी नारकीसे नथाइं जघन्य पणे उत्कृष्ट पणे हुई १६४ बावीस सागरोप मनो आउखो उत्कृष्टो कह्यो तीर्थंकरे छट्ठीइं पृथिवीइं नारकीनो छेहले प्रतरे जघन्य सतर सागरोप मनो पेहली प्रतरनी अपेक्षा १६५ तेत्रीस सागरोप मनो आउखो उत्कृष्टो कह्यो तीर्थंकरे सातमी पृथिवीइ नारकीनो जघन्ये बावीस साग

स्थितिर्व्याख्याता सा एव तेषां नारकाणां कायस्थितिर्जघन्यतोत्कृष्टतश्च व्याख्याता यतोहि नारको जीवोमृत्वा पुनर्नरकभूमौ नोत्पद्यते अनन्तर गर्भज पर्याप्तसंख्येय वर्षायुष्केषु उत्पद्यते पर्याप्तके उत्पद्यते नोत्पद्यते च १७० अथ कालान्तरमाह (अणन्तकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्निय विजढ मिस एकाएनेरइयाण तु अन्तर १७१) नारकाणां तु स्वेकायेत्वक्ते सति उत्कृष्ट कालस्यान्तर अनन्तकाल भवति जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त कालान्तर भवति यदा अनन्तरनरकात् कश्चिन्नारकश्च्युत्वा गर्भजपर्याप्तमत्स्यादिषु उत्पद्यते तत्र च अत्यन्तदुष्टाध्यवसायत्वात् अन्तर्मुहूर्त आयु प्रपाल्यमृत्वाऽनन्तरनरके उत्पद्यते १७१ [एएसि वन्नओचेव गन्धओ रसफासओ सठाणा देसओवावि विहाणाइ सहस्ससो १७१] एतेषां नारकाणां वर्णतो गन्धतोरसत स्पर्शत संस्थानादेशतयापि सहस्रसोविधानानि बहवो भेदा भवन्ति १७१ अथ पञ्चेंद्रियतिरश्चां भेदानाह [पञ्चेन्दियातिरिक्खाय दुविहाते वियाहिया समुच्छिमातिरिक्खाय गब्भवक्क तियातहा १७२] पञ्चेद्रियास्तिर्यञ्चो द्विविधा व्याख्यातास्तेके सम्मूर्छिमास्तिर्यञ्च च तथा गर्भव्युत्क्रान्ति कास्तिर्यञ्चश्च

मूल

आउ ठिई नेरईयाण वियाहिया। सातेसि काय ठिई जहन्नुक्कोसिया भवे १६८॥ अणत काल मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नय। विजढमि सए काए नेरइयाणतु अतर १६९॥ एएसि वन्नओ चेव गधओ रस फासओ। सठाणा देसओ वावि विहाणाइ सहस्ससो १७०॥ पचिदिय तिरिक्खाओ दुविहा ते वियाहिया। समुच्छिम तिरिक्खाओ गब्भ वक्क

भाषा

तीय मनो १६६ अनतोकाल उत्कृष्टो अतरमुहूर्त जघन्य छांडे थके आपणो नारकीनो काया नारकीनो आंतरो हुओ १६७ ए नारकी वर्ण थकी वली गधथकी रसथकी फरसथकी सस्थानना आदेशथकी विधान भेद सहस्स गमे हुइ १६८ पचेंद्रिय तिर्यंच जीव निश्चे दिहु भेदे कह्या तीर्थ

तत्र संमूर्छा अतिशय मूढ भावस्तेन निर्वृत्ता· नि पन्ना: समूर्छिमा: संमूर्छिमायते तिर्यञ्चश्च समूर्छिम तिर्यञ्चो मन· पर्याप्ति रहिता: सदा संमूर्छिताइव· तिष्टन्ति गर्भ व्युत्क्रान्तिका गर्भजामन· पर्याप्ति सहिता: १७२ [दुविहा ते भवे तिविहा जलयरा थलयरा तहा खहयराय बोधव्वा तेसिम्भेये सुणेहमे १७३] ते द्विविधा संमूर्छिमा गर्भजाश्च तिर्यञ्च· पुन स्त्रिविधा: बोधव्या· तत् त्रैविध्यं यथा जलचरा· स्थलचरा· तथा खचरा सन्ति एतेत्रयोपि द्विविधा: गर्भजा: समूर्छिमाश्चज्ञेयास्तेषां भेदान् मे मम कथयतो यूयं शृणुत १७३ अथ जलचर भेदानाह (मच्छायकाच्छभा यागाहायमगरातहा सुंसुमारायबोधव्वा पञ्चहाजलयराहिया १७४) एते जलचरा: पञ्चधा आख्याता: एतेके मत्स्यामीना: काच्छपा: कूर्माश्चापि ग्राहास्तं तुकजीवा मकरामहामत्स्या: शिशुमारापि मत्स्यविशेषा: एतेषु पञ्चसु भेदेषु बहूनां भेदानां अन्तर्भाव: यतोहि यावन्त: स्थलजीवास्तावन्त एव जलजीवा: इत्युक्तं· १७४ [लोएगदेसेते सव्वे न सव्वत्थवियाहिया एत्तोवालविभागन्तु तेसिं वुच्छच उव्विहं १७५] ते सर्वे जलचर जीवा: लोकैकदेशे

सूत्र

तिया तहा १७१ ॥ दुविहा ते भवे तिविहा जलयरा थलयरा तहा । खहयराय बोधव्वा तेसिं भेए सुणेह मे १७२ ॥
मच्छाय कच्छभाया गाहाय मगरा तहा। सुं सुमाराय बोधव्वा पंचहा जलयरा हिया १७३ ॥ लोएगदेसे ते सव्वे

भाषा

करे एक समूर्च्छिम विजोगर्भज तिर्यंच मन सहित १६९ विभेदे कह्या ते वली त्रिहुं प्रकारे हुई जलमाहिंचाले मच्छादि तेजलचर भूमि चाले हयभा दिते थलचर तथा वलि खचर जाणवो खचर आकाशेचालेते हंसादिते जलचरादि जीवनाभेद सांभली शिष्य मुझने कहताप्रते१७० माछलानी जातका छवानी जांति ग्राहकतांतूया जीव तथा मगर मच्छ माछलानी जाति सुसमार जल चीरजीव जाणवा पांचेप्रकारे जलचर जीव जाणवा १७१ लोक

व्याख्याता जलस्थानेषु एव न तु सर्वत्र इताऽनन्तरं तेषां जलचर जीवानां तु कालविभागश्च तु विधं वक्ष्ये १७५ [सन्तइं पप्पणाईया अपज्जवसियावि य ठिइं पडुच्चसाइया सपज्जवसियावि य १७६] ते जलचरजीवा सन्तति प्राप्य प्रवाहमार्गमाश्रित्य अनाद्योऽपर्यवसिताश्च वर्त्तन्ते स्थिति प्रतीत्यभवस्थिति कायस्थिति चाश्रित्यसादय सपर्यवसिताश्च सन्ति इति भाव १७६ [इक्काय पुव्वकोडी उक्कोसेण वियाहिया आउठिइं जलयराणं अंतोमुहुत्तं जह मिया १७७] जलचराणां मत्स्यादीनां जीवानां उत्कृष्टेन आयु स्थितिरेका पूर्वकोटी व्याख्याता पूर्वस्य तु परिमाणं एतत् सप्तति कोटिलक्षवर्गाणि षट पञ्चाशत्सहस्रकोटि वर्षाणि एतेषां पूर्वं भवति जघन्यिका आयु स्थितिरेतेषां अन्तर्मुहूर्त्तं एव व्याख्याता १७७ अथ जलचराणां कायस्थिति

न सव्वत्थ वियाहिया। इत्तोकाल विभाग तु तेसिं वोच्छं चउव्विहं १७४ ॥ सतइं पप्पणाईया अपज्जव सियावि य।
ठिइं पडुच्च साईया सपज्जव सियावि य १७५॥ एक्काय पुव्वकोडी उक्कोसेण वियाहिया। आउ ठिइं जलयराण अंतो
मुहुत्त जहन्निया १७६॥ पुव्वकोडी पुहत्त तु उक्कोसेण वियाहिया। काय ठिइं जलयराण अंतोमुहुत्त जहन्निया१७७॥

चौदराजने एकदेशे ते जलचरछे पर नथी सर्वलोक चौदराजमे एतलानतरकालनो विवरो तहनो कहिस्य सादि १ पर्यवसित २ अनादि ३ अपर्यव सित १७२ प्रवाह जलचर अनादिके अपर्यवसित अतपोणके थिति आश्री आदि सहित अने पर्यवसित छेहडो १७३ एक पूर्वनी कोडी उत्कृष्टो कह्यो तोर्ध करे आउखानी स्थिति गर्भज समूर्च्छिम जलचर जीवनी अ तर मुहूर्त्त जघन्य १७४ पूर्व कोडनो पृथयोकाय थिती तीयको अतमुहूर्त्त उत्कृष्टो कह्यो सस्या पृथवीनो कायथिति जलचरनो सात आठ भव जलचरनो जलचर माहि रहे प्राणी अतर्मुहूर्त्त जघन्य १७५ अन्तःकाल

माह [पुव्वकोडी पुहत्त तु उक्कोसेण वियाहिया कायठिई जलयराणं अन्तोमुहुत्तं जहन्नया १७८] जल चराणां कायस्थिति रुत्कृष्टत. पूर्वकोटि पृथक्त्वं व्याख्याता यदा जलचरजीवो मृत्वा पुन: पुनर्जलचरयो नौ एव उत्पद्यते तदा पूर्वकोडि पृथक्त्वं यावदुत्पद्यते पृथक्त्वं द्वाभ्यामारभ्यनवांक यावत् पृथक्त्वं इति सिद्धान्तांक संज्ञास्ति द्वाभ्यां पूर्वकोटि मारभ्य यावन्नवकोटिं यावज्जलचरो जीवो मृत्वा २ जलचरयो नौ उत्पद्यते इत्यर्थ: जघन्यतस्तु अन्तर्मुहूर्त्त मेव कायस्थिति र्व्याख्याता: अथ कालांतरमाह [अणन्तकालमुक्कोसं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया विजढमिस एकाए जलयराणं तु अन्तरं १७९] जलचराणां स्वकीयेकायेत्यक्ते सति अन्यत्रोत्पद्य पुन: स्वकाये उत्पद्यते तदा कियत्कालान्तरं भवति तदुच्यते उत्कृष्टतोऽनन्तं कालान्तरं भवति यतोहि चेज्जलचरो निगोदत्वेनोत्पद्यते तदानिगोदस्यानन्तकालस्य स्थितिरस्ति जघन्य तस्तु अन्तर्मुहूर्त्तमेव कालान्तरं ज्ञेयं १७९ [एएसिंवन्नओचेव गन्धओरसफासओ संठाणादेसओवावि विहाणाइसहस्ससो १८०] तेषां जलचराणां वर्णतोगन्धतोरसत: स्पर्शत: संस्थानादेशतस्तापि विधानानि सहस्र सो भवन्ति१८० अथ स्थलचरभेदानाह [च उप्पयाय परिसप्पा दुविहाथलयराभवे च उप्पया च उव्विहाउ तं मे कित्तयओसुण १८१] स्थलचरा: द्विविधा: चतु:पदा:

सूत्र

अणंत काल मुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं। विजढंमि सए काए जलयराणंतु अंतरं १७८॥ एएसिं वन्नयो चेव गंधओ रसफासओ। संठाणा देसओ वावि विहाणाइं सहस्ससो॥ १७९ चउप्पयाय परिसप्पा दुविहा थलयरा भवे। चउ

भाषा

उत्कृष्टो निगोदमाहि जाइतो अनंतु अंतर्मूहूर्त्त जघनेय पोतानीकाय मूंकी जाइते वली फिरीने जलचरनो जलचरमाहि आविते अंतर १७६ ए जल चरने वर्णथकी गंधथकी रसथकी फरसथकी संस्थानना आदेशथकी विधानभेदसहस्रगमे १७७ च्यार पगनाते चतु:पद हयभादि उरभुइ चालेते भुज

परिसप्पाय भवेयु चत्वार पदा येषां ते चतु पदा परि समन्तात् सर्पन्तीति परिसर्पा तत्र चतु पदा चतुर्विधा सन्ति तान् चतुर्विधान् मे मम कथयतस्त्व शृणु १८१ (एगखुरादुखुरामो गण्डीपयसणप्पया हयमाई गोणमाई गयमाईसीहमाइयो १८२) एकखुरा दिखुरा गण्डीपदा सनख पदा एक खुरचरणाधोवर्त्तिहड्ड विशेषो येषां ते एकखुरास्ते च अश्वादय एव द्वौ खुरौ येषां ते दिखुरा गोवादयोबलीवर्दादयो गण्डीकमलमध्यस्य कर्णिकातद्वत्पदा येषां ते गण्डीपदा गजादय सहनखैर्वर्त्तन्तेइति सनखासनखापदा येषां ते सनखपदा सिंहादय सणप्पयाइति प्राकृतत्वात् १८२ अथ परिसर्पानाह [भुयरगपरिसप्पा परिसप्पा दुविहाभवे गोहाइ अहिमाईया इक्किका णेगहाभवे १८३] परिसर्पा जीवा द्विविधाभवेयुस्तेके भुजाभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पा उरसा सर्पन्तीति उर परिसर्पा तत्र गोधानकुल मूषकादयो भुजपरिसर्पा अहेय उर परिसर्पा एते एकेपि अनेकधाभवेयु १८३ अथै तेषां क्षेत्रविभागमाह [लोएगदेसेते सव्वे न सव्व थियाहिया इत्तोकालविभागन्तु तं सिवुच्छं चउव्विहं १८४] ते सर्वे स्थलचरा

प्पया चउव्विहाथोतेमेकित्तयओसुण१८०॥ एगखुरादुखुराचेव गडीपयसनप्पया। हयमाईगोणमाई गयमाई सीह माइणो १८१। भु उरग परिसप्पा परिसप्पा दुविहा भवे। गोहाई अहिमाईया एकेका णेगहा भवे १८२। लोएग

परिसर्पनोलादि प्रमुख त्रिहु प्रकार थलचर हुये चतु पद त्रिहु प्रकारे ते सुभने कोर्त्ति कहता सांभल हे सोय १७८ एक खुरीछे त एक खुरा घेनुईर खुराछे ते त्रिहु दा २ गडी कमलकर्णिका सरीषो पगत गडी पद नखसहित पगते सनखपद घोडादीखुर १ हयभादोबे खुर२ गजव ▩ पादे गडीपद१ गोह आदि स नखपद १७८ भुज हायिचरहदये परिसर्पवाले इम सर्प त्रिहु भेदे हुये गोह उदरा आदि सर्प आदि ते एकेका भनेकप्रकारे हुई १८०

भुजपरिसर्पाश्चलोकैकदेशेव्याख्याता· सर्व्वत्र न व्याख्याता· इतोऽनन्तरं कालविभागं स्थलचराणां चतुर्विधं वच्चे १८४ (सन्तइं पप्पणाइया अपज्जवसि यावियठिइं पडुच्चसाईया सपज्जवसियाविय १८५) सन्तति प्राप्यते थलचरा अनादयोऽपर्यवसिताश्चापि स्थितिं भवस्थिति प्रतीत्य आश्रित्यसादय सपर्यवसिताश्चापि वर्त्तन्ते १८५ (पलिओवमाइं तिन्निओ उक्कोसेण वियाहिया आउठिइंथलचराणं अन्तोमुहुत्तं जहन्नय १८६) स्थलचराणां उत्कृष्टेन त्रीणिपल्योपमान्यायुः स्थितिर्व्याख्याता जघन्यतः स्थलचराणां अन्तर्मुहूर्त्तमायु· स्थिति १८६ अथ स्थलचरास्तत्वा स्थलचरेष्वेवोत्पद्यन्ते तदाकियत्कालेन उत्पद्यन्ते तां कालस्थिति माह [पलिओवमाइं तिन्नेउ उक्कोसेणं तु साहिया पुव्वकोडी पुहत्तेणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया १८७] स्थलचराणां स्वकीये काये एव समुत्पद्यमानानां त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटि पृथक्त्वेन साधिकानि उत्कृष्टेन कायस्थितिर्व्याख्याता जघन्यिकाकायस्थिति स्तेषामन्तर्मुहूर्त्तं

सूत्र

देसे तेसव्वे न सव्वत्थ वियाहिया। इत्तो काल विभागंतु तेसिं वोच्छं चउव्विहं॥ १८३ सतइं पप्पणाईया अप ज्जवसियाविय। ठिइंपडुच्च·साईया सपज्जवसियाविय॥ १८४ पलिओवमाओ तिन्निओ उक्कोसेण वियाहिया। आउठिई थलयराणं अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥ १८५ पलिओवमाओ तिन्निओ उक्कोसेणंतु साहिया। पुव्वकोडी पुह

भाषा

लोक चौदराजना एकदेशने भागे ते सर्वछे नथी सघले कह्या भगवंते एतला कह्या नन्तरकालनो विभाग विवरो ते थलचर चिहुं भेदे कहस्युं १८१ प्रवाहमार्गे थलचर अनादिछे अपर्यवसित अतपिणि थिति आश्रीसादि अने सपर्यवसित छेहपणि १८२ पल्योपमनी त्रिहुनी स्थिति उत्कृष्टी कही तीर्थंकरे आउखानी स्थिति थलचर जीवनी अंतमुहुर्त्त जघना १८३ पल्योपम त्रिहुंनीथिति उत्कृष्टी कही तीर्थंकरे पूर्व्वकोडि पृथगले अधिक

मेव उक्ता यताहि त्रिपल्योपमायुष स्थलचरा पूर्वकोव्यायुषां समाष्टभवग्रहणानि कुर्वन्ति पञ्चेन्द्रियनरतिरियां अधिकानिरन्तरभवस्याऽसम्भ योस्ति १८७ अथ कालांतरमाह [कायठिईथलयराण अन्तर तेसिम भवे काल अणन्तमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहन्निय १८८] (विजढमिसएकाएथलयराण तु अन्तर एएसिवन्नओचेव गन्धओरसफासओ सठाणभेयओवावि विहाणा इसहस्सओ १८९) युग्म स्थलचराणा स्वकीयेकायेत्यक्ते सति वनस्पत्यादि मध्ये उत्पद्यचेत्स्थलचरेषु पुनरायाति तदा उत्कृष्ट अनन्तकाल स्यान्तर भवति जघन्य तयान्तर्मुहूर्त्तं कालस्यान्तर भवति १८८ एतेषा स्थलचराणां वर्णतोगन्धतो रसत स्पर्शत सस्थानभेदतयापि सहस्रशोविधानानि भेदा १८९ अथ खचरभेदानाह (चम्मे उलोमपक्खीय तइयासमुग्गपक्खीय विययपक्खीय बोधव्वा पक्खिणोय चउव्विहा १९०) पक्षिण चतुर्विधा बोधव्या चर्मपक्षिणश्चर्म चटिकाद्या रोमपक्षिणो राजहंसाद्या समुद्गपक्षिण समुद्गकाकार पक्षयुक्तामानुषोत्तर पर्वताद्बहिर्वर्त्तिन विततपक्षिणो ये सर्वदाविस्तारित पक्षा एव तिष्टन्ति १९० [लोएगदेसे ते सव्वे न सव्वत्थवियाहिया

त्तेण अतसुहुत्त जहन्निया। १८६ कायठिई थलयराण अतर तेसिम भवे। अणत काल मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नय॥१८७ विजढमि सए काए थलयराणतु अतर। एएसि वन्नओ चेव गधओ रस फासओ। १८८ सठाणा देसओ वावि विहाणाइ सहस्रसो चम्मे उ लोम पक्खीय तइया समुग्ग पक्खिया॥ १८९ वियय पक्खीय बोधव्वा पक्खि

अयो भव ▪ अथा ८ लागता करे ते अणो अतर्मुहूर्त्त जघन्य १८४ कायस्थोति थलचरनी अनतो तेहनो हुवेतो काल अनतो उत्कृष्टो अतर्मुहूर्त्त जघन्य पवे १८५ छाडो आपणोकाया थलचरने आतरो चर्मरूपपाखते चर्मपखी चमचेडजाति रोमरूप पांखते मोरपीछवीजो पाखबाधी छे ते समुग्ग

इत्तीकालविभागन्तु तेसिंवुच्छं च उव्विहं १८१] ते सर्वे खचरालोकैकदेशेव्याख्याता. सर्वत्र चतुर्दशरज्वात्मलोकेन सन्ति इतोऽनन्तरं तेषां खचराणां चतुर्विधं कालविभाग वक्ष्ये १८१ [सन्तइपप्पणाईया अपज्जवसियाविय ठिई पडुच्चसाईया सपज्जवसियाविय १८२] सन्ततिं प्राप्यते खचरा अनादयोऽप र्यवसिता अपि वर्त्तन्ते स्थितिं प्रतीत्यते सादय: सपर्यवसिता अपि सन्ति १८२ (पलिओ वमस्सभागो असंखिज्ज यमोभवे आउठिईखह यराणं अन्तो मुहुत्तं जहन्निया १८२) खचराणां आयु स्थिति पलग्रोपमस्य असख्येयतमो भागो भवति जघनिग्रका आयु: स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं भवति १८३ अथ खच राणां आयु: स्थिति: पलग्रोपमस्य असंख्येय तमोभागो भवति जघनग्रका आयु: स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं भवति १८३ अथ खचराणां कायस्थिति कालांतरं द्वाभ्यां गाथाभ्यां वदति [असंखभागोपलियस्स उक्कोसेणसाहिओ पुव्वकोडी पुहत्तेणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया १८४] कायठिईखहयराणं अन्तरं ते सिमं

णोय चउव्विहा। लोएगदेसे तेसव्वे न सव्वत्थ वियाहिया॥ १८० संतइंपप्पणाईया अपज्जवसियाविय। ठिइंप डुच्च साईया सपज्जवसियाविय॥ १८१ पलिओवमस्स भागो असंखिज्जइमो भवे। आउ ठिई खहयराणं अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥ १८२ असंखभागो पलियस्स उक्कोसेण वियाहिओ। पुव्वकोडी पुहुत्तेणं अंतोमुहुत्तं जहन्निया॥ १८३

पक्खी कहीये १८६ विततपोहलो पांखे जडे ते वितत पंखी जाणवा पखी च्यारप्रकारना लोकने एक देशे सघला नथी सघले भगवंते कह्या १८७ प्रवाहमार्ग आश्री ए पंखी अनादिछे १८८ पल्योपमनो असंख्या तमो भाग उत्कृष्टो आउखानि स्थिति खचर पंखी आनी अंतमुहुर्त्त जघनेत्र १८९ असंख्या तमोभाग पल्योप मनो उत्कृष्टो साधिक झाझेरो पूर्व कोड पृथकत्व पूर्वकोडिवा लाभव १ करी असंख्याता आउखानाभव करेतो अंतर्मुहूर्त्त

भवे अणतकालमुक्कोस अन्तोमुहुत्त जहनया १८५) खचराणां कायस्थिति पल्योपमस्य असंख्येयतमोभाग पूर्वकोटि पृथक्त्वेन साधिकश्च भवति जघ निकाकायस्थितिरन्तर्मुहूर्त्त भवति तेषां खचराणा कालान्तर च उत्कृष्टतोऽनन्तकाल यावद्भवति जघन्यतश्च अन्तर्मुहूर्त्त भवति १८५ (एएसिवन्नओ चेव गन्धओरसफासओ सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइ सहस्ससो १८६) एतेषां खचराणा वर्णतोगन्धतोरसत स्पर्शत संस्थानादेशतयापि सहस्रशो विधानानि भवन्ति १८६ [मणुयादुविहाभेयाउ तमेकित्तयओसुण समुच्छिमायमणुया गब्भवक्क तियातहा १८७] मनुजाद्विविध भेदास्सन्ति तान् भेदान् मेकीर्त्तयतस्त्व शृणु मनुजा मनुष्या सम्मूर्छिमास्तथागर्भव्युत्क्रान्तिका गर्भजा सम्मूर्छिमामनोरहितायत्तदेश स्थानेभूत्वा १८७ (गब्भवक्कतियाजेउ तिविहातेवियाहिया [अकम्मकम्मभूमाय अन्तरद्दीवगातहा १८८) ये तु गर्भ व्युत्क्रान्तिकास्ते मनुष्यास्त्रिविधाव्याख्यातास्ते के अकर्मकर्मभूमिगा अन्तर

सूत्र

कायठिई खहयराण अतर तेसिमभवे ॥ कालअणतमुक्कोस अ तोमुहुत्त जहन्नय १९४ ॥ एएसिवन्नओचे व ग धओ रस फासओ सठाणादेसओवाविविहाणाइ सहस्ससो१९५॥ मणुयादुविहाभेयाओतेमेकित्तयओसुण । समुच्छिमायमणुया गब्भवक्कतियातहा१९६ गब्भवक्कतियाजेउतिविहा तेवियाहिया । अकम्मकम्मभूम य अतरद्दीवगा तहा१९७ ॥ मन्नरस

भाषा

जघनेर १८० कायस्थिति खचर पक्षीनो कही अतरसे खचरपक्षीने एहुवे अनताकालनो अतर उत्कृष्टो निगोदमाहि अतर्मुहुर्त्त जघनेर १८१ खचरपक्षीना० वर्णथकी गधरसथकी संस्थानना आदेश थकी विधान भेद सहस्रगमे हुवे १८२ मनुष्य बिहु भेदेइइ ते मनुष्य कहता प्रति सांभलि हे शिष्य समूर्छिम मन विनाहोइ मनुष्य चौदभेदे होवे उपजे मन सहित ते गर्भज तथावली १८३ गर्भज मनुष्य जेहतिविहा त्रिहु भेदे ते कह्या

उ॰टीका
अ २
१०८

मृणस्पर्शं पीडिता साधव सतुज वस्त्र कम्बलादिवस्त्र वा न सेवन्ति न आचरन्ति किं कृत्वा एव प्राज्ञा एव मिति किं आतपस्य निपातेन घर्मस्य सयोगेन अतुला वेदना भवति तापसीतवर्षावातादिपीडाखाभि सोढु न शक्यते अथवा आतप्यते पीड्यते शरीर मनेनेत्वा तप तृणपाषाणादि रघु यते तस्य सयोगात् शरीरे महती वेदना भवति यदि वस्त्रादीना प्रस्तरण स्यात् तदास्मत् शरीरे तृणादिभि पीडा न स्यात् इति विचित्य वस्त्र कम्बलादिक न परिगृह्णन्ति इति जिनकल्पापेक्षया इद सूत्र वर्तते अत्र भद्रर्षिकथा यथा श्रावस्त्याजित शत्रुपुत्रो भद्र प्रव्रजित विरुद्ध राज्ये विहरन् हेरकोयमिति आख्यातृपनरैर्हत दृष्टोऽप्यनुवन् कर्द्दमे क्षुरेण तच्चिकोर्दर्भैश्च वेष्टयित्वा मुक्त तत सतहेदना अधिसेहे एव तृणस्पर्शं परीषह सोढ साधुभिरप्यधि मन्न अथ तृणादिस्पर्शात् शरीरे प्रस्वेदात् रज सर्वाङ्गलोपचय स्यात् तदामल परीषहोपि सोढव्य अत स्तमाह किलिन्न गाय मेहावी । पङ्केण रयेणवाघिसुवापरियावेण सायत्रो परिदेवए ३६ वेइज्जनिज्जरापेही आरियं धम्ममणुत्तर जाव सरीर भेउत्ति जल्ल काएणधारए ३७

सूत्र

किलिन्नगाय मेहावी पङ्केण वा रएण वा । घिसुवा परितावेण सायनो परिदेवए ॥३५॥ वेइज्ज निज्जरा पेही आरिय धम्म मणुत्तरं । जावसरीर भेउत्ति जल्ल काएण धारए ॥३६॥ अभिवायण मब्भुट्ठाण सामीकुज्जा निमंतण

भाषा

व्याख्यो गा॰ सरिर मर्यादावत मे॰ बुद्धवान प॰ परसेवा रहितमेल वा॰ अथवा र॰ रजसहितपर सेवी मेले करीने घि॰ उनालाने वा अथवा शरद ऋतुने तापवे करी पीडाणो थको सा॰ साता सुखनो॰ नवाछे ३६ व वेदे सहे मेलनो परिसह कर्मक्षय वाछतो थको आ॰ चारित्रधर्म अ॰ प्रधान पडिवज्यो जाणीइ जा॰ जामगे स॰ सरीरनो भे॰ विनाश हुवेता लगी एतले ज॰ मेलका॰ कायाइ करी धारे ३७ अथ मलपरीसह दृष्टांत चपा नग

वोपि २ योजनशतत्रयायामविस्ताराभ्यां लवण समुद्रमति क्रम्यस्थितासु पट पट् अन्तरद्वोपा सन्ति ते च द्वीपाश्चतुभिर्गुणिताश्चतुर्विंशति सख्याका भवन्ति ततश्च आद्यन्तद्वोप चतुष्कसहिता अष्टाविंशतिर अन्तरद्वोपा सन्ति एव शिखरिणि पर्वतेपि अष्टाविंशति र्ज्ञेया सर्वसाम्याच्चेषा भेदेन अपि वध तत्वात् सूत्रे ट्टाविंशति सख्याकथन विरोधायन भवति तेषु अन्तरद्वोपेषु युगले धर्मिकावसन्ति तच्छरोरमानादि कथ्यते अष्टधनु शतोच्छाया पल्यासख्यभागायुष चतु षष्टि पृष्टकरण्डा चतुर्थदिवसाहाराभि लापवन्त एकोनाशीति दिन क्षतापल्यपालना तेषां द्वीपाना नामायामविस्तारपर ध्यादि विचारस्तु चेत्र समास ब्रहद्दो कालोयचेय १९८ समूर्छिमाना हि एष एव भेद यत्कर्म भूमि समुत्पन्नाना गर्भजानां वातपित्तादिषु चतुर्दश भेदे सम्भवन्ति अङ्गुलास ख्येयभागमात्रावगाहनास्ते सर्वे मनुष्या समूर्छिमागर्भजाश्च लोकैकदेशेव्याख्याता २०० [सन्तइ पप्पयाइया अपज्जवसियाविय ठिइ पडुचसाइया सपज्जवसियाविय२ १] (पलिओवमाइतिन्नेओउक्कोसेणवियाहियाआउठिईमणुआणअन्तोमुहुत्त जहन्निया२०२) मनुजाना गर्भजानां वोपि पल्यापमानि उत्कृष्टेन आयु स्थिति व्याख्याता जघन्यका च अन्तर्मुहूर्त्त स्थितिर्ज्ञेय २ २ अथ कायस्थिति मन्तरकाल चाह द्वाभ्या गाथाभ्या

मूल

आहिओ । लोगस्स एगदेसंमि ते सव्वे वियाहिया ॥१९९ सतइ पप्प णाईया अपज्जवसियाविय । ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसियाविय ॥ २०० पलिओवमाइ तिन्निओ उक्कोसेण वियाहिया । आउ ठिई मणुयाण अ तोमुहुत्त जह

भाषा

गने विषे छे तथ समूर्च्छिम गर्भज कह्या १९९ प्रवाहमार्ग आश्री अनादिछे अतपोणछे थिति आश्री आदि सहित सपर्यवसित सांतपणि विषे १९७ पल्योपम त्रिहु नो उत्कृष्टी कही आउखानी स्थिति गर्भज मनुष्यनी अंतर्मुहूर्त्त जघन्य गर्भजनी समूर्च्छिमनी जघन्य अतर्मु

द्वीपगाश्च अकर्म्मभौमाः अकर्मभूम्युत्पन्नाः कर्म्मभूमाः कर्मभूम्युत्पन्ना तथा अन्तरद्वीपगा १९८ (पन्नरसतीस दुविहा भेया अट्ठावीसई संखाउ कमसोतेसिं इइएसावियाहिया १९८) इति अमुनाप्रकारेण एतेषां पूर्वोक्तानां कर्मभूमि अन्तरद्वीपानां संख्याक्रमशोऽनुक्रमेण व्याख्याता साक्षा संख्यादृत्युच्यते विध शब्दस्यो भयत्र सम्बन्धोऽयं यः पञ्चदशविधाः कर्मभूमिजाः भरतैरावत महाविदेहानां प्रत्येकं पञ्च २ संख्याकत्वात् पञ्चदश संख्यात्वं भवति त्रिंशद्विधा अकर्म भौमाः अत्र हैमवत हरिवर्षरम्यकैरण्यवत देवकुरूत्तरकुरुरूपाणां षणामपि अकर्मभूमीनां प्रत्येकं पञ्चसंख्यया गुणितानां त्रिंशत् संख्यात्वं सम्भवति इहचक्रमशब्दत्युक्तोऽपि गणनावसरे क्रम भङ्गोविहितः पूर्वं अकर्म्मभूमि संख्यां विहायकर्मभूमि संख्या प्रतिपादिता तत्तु कर्मभूमिजानां मनुष्याणां मुक्ति साधकत्वेन प्राधान्यख्यापनात् पूर्वं कथनं न दोषायेति तथांतर द्वीपानां अष्टाविंशति भेदाश्चांतर द्वीपाः क्षुल्ल हिमवति पर्वते पूर्वस्यांदिशि अपरस्यांदिशि च जम्बूद्वीपवेदिकायात्परतः प्रत्येकं द्वे द्वे दंष्ट्रे विदिगभि मुखेविनिर्गतेस्तः तद्यथाः पूर्वस्यां एकाद्दंष्ट्रा नयभि मुखीदंष्ट्रा द्वितीया आग्नेय्यभि मुखी पश्चिमायां एकानैऋत्यभिमुखी द्वितीया वायव्यभि मुखी एवं च तस्रषु विदिक्षु अभिमुखीषु दंष्ट्रासु प्रत्येकं

सूत्र

तीसइ विहा भेया अट्ठावीसइ। संखाओ कमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया १९८॥ संमुच्छिमाणएसेव भेउहोइ

भाषा

तीर्थंकरे करसणादि व्यापाररहित ते अकर्मभूमी करसणादि व्यापार ते कर्मभूमी अतर समुद्रने मध्ये दीप तेह नाम मनुष्यते अंतरद्वीपना मनुष्य१९४ भरत ५ ऐरवत ५ महावीदेह ५ एव कर्ममूमी १५ हेमवंत आदी अकर्मभूमी रागरूप द्वीपादि अंतर द्वीपनाभेद २८ संख्याता अनुक्रमे ते मनुष्यनी एणे प्रकारे कहो तिर्थं करे १९५ समुच्छिम १४ भेदनो एहीज गर्भजनो भेद कर्म भूमीयादिक भेद कह्या भगवते लोक १४ राजना एकदेश विभा

तहा २०६) देवायतुविधा उक्ता स्तान् भेदान् कोर्त्तयतो मे ममत्व शृणु भौमेयकव्यन्तरा ज्योतिष्कास्तथा वैमानिका भूमौभवा भौमेयका भव]नवासिनोदेवा रत्नप्रभाया पृथ्व्या अधोपि सहस्रोत्तर योजन लक्षपिण्डाया उपर्यैक योजनमवगाह्य अधश्चैक योजनसहस्र मुक्त्वामध्येऽष्टसप्तत्युत्तर योजनलक्षे भवनवासिना च असुरेन्द्रादि देवानां भवनानि सन्ति १वाणमन्तरस्ति आपत्वाद्विविधानि अन्तराणि निवासस्थानानि गिरिकन्दरविवरादीनि येषा तेव्यन्तरा २ ज्योतयन्ते इति ज्योतिषि विमानानि तत्र वासिनोदेवा ज्योतिष्का ३ विशेषेण मानयन्त्युपभुञ्जन्ति सुकृति नो यानि इति विमानानि तेषु भवा वैमानिका तथेति समुच्चये तेषा मेवोत्तरभेदानाह [दसहाउ भवणवासी अट्ठहा वणचारिणो पञ्चविहा जोइसिया दुविहा वेमाणियातहा २०७] दशधा एव भवनवासिन तु शब्द एवार्थे अष्टधावनचारिण वनेषु क्रीडारसेन चरित् शील येषां ते वनचारिणोव्यन्तरा पञ्चधाज्योतिष्का तथा वैमानिकाद्विधा २०७ तानेवनामत आह [असुरा१ नाग २ सुवन्ना ३ विज्जू ४ अग्गीय ५ आहियादीवो ६ दहि ७ दिसा ८ वाया ९ थणिया१०

वाणमंतर जोइस वेमाणिया तहा ॥ २०५ दसहाओ भवणवासी अट्ठहा वणचारिणो । पञ्चविहा जोइसिया दुविहा वेमाणिया तहा ॥ २०६ असुरा नाग सुवन्ना विज्जु अग्गीय आहिया । दीवो दहि दिसा वाया थणिया भवणवा

नातव्य तर ज्योतिषत तेयी तिर्छी विशेषे भोगवे सुकृतनाफलतेवेमानिक सौधर्मादि २०२ दसे प्रकारे भवनवासी भवनपति आठे प्रकारे व्य न्तरदेवता [पांचे प्रकारे ज्योतिषी विह प्रकारे वेमानिक देवता तिम २०१ असुरकुमार १नागकुमार २ सुवर्णकुमार ३ विद्युतकुमार ४ अग्निकुमार वाद्या भगवते ५ दीपकुमार ६ उदधिकुमार ७ दिशि कुमार ८ वायुकुमार ९ स्तनित कुमार १ एभवनवासी भवनपति २ ४ पिशाच १ भूत२ यक्षमलो३

[पलिओवमाइं तिन्नेओ उक्कोसेण तु साहिया पुव्वकोडीपुहत्तेणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया २०३] (कायठिई मणु आण अन्तरन्ते सिमभवे अणतकाल मुक्कोसं अन्तोमुहुत्तं जहन्नियं २०४) मनुजानां गर्भजानां त्रीणि पलोपमानि पूर्वकोटि पृथक्त्वेन साधिकानि उत्कृष्टेन कायस्थिति व्याख्याता जघन्यिकाचान्तर्मुहूर्त्तं स्थिति र्व्याख्याता तेषां गर्भजानां मनुजानां कालस्यान्तरं उत्कृष्टं अनन्तकालं जघन्यकं अन्तर्मुहूर्त्तं कालान्तरं ज्ञेयं २०४ [एएसिं वन्नओचेव गन्धओरसफासओ सण्ठाणादेसओवावि विहाणाइं सहस्ससो २०५] एतेषां संमूर्छिमगर्भज मनुजानां वर्णतोगन्धतोरसतः स्पर्शतः संस्थानादेशतयापि सहस्रसो विधानि भवन्ति २०५ अथ देवानाह (देवा चउव्विहा वुत्ता त मे कित्तयओसुण भोमिज्जवाण मन्तर जोइ सवेमाणि या

सूत्र

न्निया ॥ २०१ पलिओवमाउ तिन्निओ उक्कोसेणंतु साहिया। पुव्वकोडि पुहुत्तेणं अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२०२ काय ठिई मणुयाणं अणंतरं तेसिमं भवे। अणंत काल मुक्कोसं अंतोमुहुत्तं जहन्नयं २०३। एएसिं वन्नओ चेव गंधओ रस फासओ। संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो। २०४ देवा चउव्विहा वुत्ता ते मे कित्तयओ सुण। भोमिज्ज

भाषा

हुर्त्त १९८ पल्योपमनी स्थिति उत्कृष्टी कही तीर्थंकरे देवे पूर्वकोडी पृथुकत्व ८ लगी सातभव पूर्वकोडीयो करीने पल्यनुं आयु भोगवे पूर्वं पृथुकत्व ते अंतर्मुहूर्त्त जघन्य १९९ काया स्थिति मनुष्यनी जेह भणी तेहनी तेह मांहि ७। ८ भव रहे आंतरो तेहनो मनुष्यने कहीये अनंताकालनो उत्कृष्टो अंतरनि गोदमांहि जाइ तु अंतर्मुहूर्त्त जघन्य २०० एमनुष्यना वर्ण थकी गंध थकी रस थकी फरस थकी संस्थानना भेद थकी विधान भेद सहस्रगमे २०१ देवता चिहुं भेदे कह्या भगवंते ते सुभने कहतां प्रति सांभलि हे शिष्य भूमि जपना ते भूमिज भुवनपति विविध पर्वतने अंतरे जप

कप्पाइयातहेवय २११] ॥ पुनर्वैमानिकायेदेवास्तेद्विविधाव्याख्याता कल्पादेवलोकास्तान् उपगच्छन्तीति कल्पोपगा द्वादश देवलोकस्था कल्पोपगा
च पुनस्तथैवकल्पातीता कल्पान् अतीता इति कल्पातीता नवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरविमानस्था एव वैमानिकाद्विप्रकाराज्ञातव्या २११ अथ कल्पोपगतानां
नामान्याह (कप्पोवगावारसहासोहम्मीसाणगातहा २ सण कुमारमाहिंदा ४ बम्भलोगाय ५ लन्तगा ६ २१२) [महासुक्का ७ सहस्सारी ८ आणया ९
पाणया १० आरण ११ अच्चुया १२ चेव इइकप्पोवगासुरा २१३] सुरा कल्पोपगा द्वादशधासु धर्मानाम इन्द्रस्य सभाऽस्मिन्नस्तीति सौधर्म प्रथमकल्प
एव ईशानोद्वितीयकल्प सौधर्मश्च ईशानश्च सौधर्मेशानौ तौ गच्छन्ति प्राप्नुवन्तीति लातगा २१२ महाशुक्रेभवामहाशुक्रा सहस्रारभवा सहस्रारा
आनतभवा आनतास्तथा प्राणतभवा प्राणता आरणभवा आरणास अच्युते भवा अच्युताश्च आरणाच्युताइति अमुनाप्रकारेण द्वादशविधा कल्पोपगता
सुराज्ञेया २१३ (कप्पाइयायजेदेवा दुविहातेवियाहियागे विज्जाणुत्तराचेव गेविज्जानवविहातहि २१४) च पुनस्ते कल्पातीतादेवास्ते द्विविधा व्याख्याता

जेदेवा दुविहा ते वियाहिया । कप्पोवगाय बोधव्वा कप्पाईया तहेवय॥ २१० कप्पोवगा बारसहा सोहम्मी सा
णगा तहा । सणकुमारमाहिंदा बम्भलोगायलतगा२११॥ महासुक्कासहस्सारा आणया पाणयातहा । आरणा अच्चुया

कल्पमर्यादिइ इन्द्र सामान्यादिकनो व्यवस्थाते कल्पोपगतयार देवलोकना देवताकल्पे अतिक्रमीयर्त्ते इन्द्र सामानादि रहित ते कल्पातीता ९ ग्रैवेय
पांच अनुत्तरना २०७ कल्प देवलोके ऊपना देवता बारे प्रकारे ते कहा सो धर्म देवलोकना १ इसाण देवलोकना तिम २ सनत्कुमार देवलोकना ३
माहेंद्र देवलोकना ४ ब्रह्म ५ लातक देवलोकना ६ २०८ महाशुक्र देवलोकना ७ सहस्रार देवलोकना ८ आणत देवलोकना ९ प्राणत देवलोक १०

टीका

भवनवासिणो२०८] एते भुवनवासिनः कुमार शब्दान्ताः उच्यन्ते यतो हि एते कुमारवत् वेषभाषायस्त्र यानवाहन क्रीडनानि कुर्वन्ति अतएते सर्वे देवापि कुमारान्ताः तद्यथा असुरकुमारनागकुमारविद्युत् कुमार अग्नि कुमारद्वीप कुमार उदधि कुमारदिक् कुमार वायु कुमारस्तनित कुमार एतेनाभतः आख्याताः ८ अथ व्यन्तरभेदानां नामान्याह (पिसाय १ भूया २ जक्खाय ३ रक्खसा ४ किन्नराय ५ कि पुरिसा ६ महोरगाय ७ गन्धव्वा ८ अट्ठहा वाणमन्तरा२०९) व्यन्तरा अष्टविधा पिशाच१ भूता२ यक्षाश्च३पुनराक्षसा४किन्नराय५किं पुरुषाः६ महोरगा७ गन्धर्वा८ एवमष्टप्रकाराः व्यन्तराज्ञेयाः अथ ज्योतिष्काणां भेदान् नामतश्चाह (चन्दसूराय नक्खत्ता गहातारगणा तहाठिया विचारिणो चेव पञ्चहाजोइ सालया २१०) ज्योति रालया ज्योति रालयोगृही येषां तेज्योतिरालयाः ज्योतिष्कादेवा पञ्चधासन्ति धृति शेषस्तेज्योतिष्कादेवाः ठियाधृति स्थिराः मनुष्यक्षेत्राद्बहिर् ज्योतिष्कास्तिमश स्थिरा अचलस्वभावाः मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्त्तिनोहि मेरुपर्वतस्य नित्यं प्रादक्षिण्य चारिणस्तेपञ्च धाज्योतिष्काज्ञेयास्तेचामीचन्द्रा १ सूर्याश्च २ नक्षत्राणि ३ ग्रहा ४ स्तारागणा ५ प्रकीर्णकतारकासमूहास्तथा ज्ञेया २१० अथ वैमानिकानां भेदानाह [विमाणियाओ जेदेवादुविहातेवियाहिया कप्पोवगाय बोधव्वा

सिणो। २०७ पिसाय भूया जक्खाय रक्खसा किंनराय किंपुरिसा॥ महोरगाय गंधव्वा अट्ठविहा वाणमंतरा २०८ चंदा सूराय नक्खत्ता गहा तारागणा तहा। ठिया विचारिणो चेव पंचहा जोइसालया २०९। वेमाणियाणो

राक्षस ४ किंनर ५ किंपुरुष ६ महोरग नामा ७ गंधर्व ८ एआठे प्रकारेव्यंतर २०५ चंद्रमा १ सूर्य २ नक्षत्र ३ ग्रह ४ ताराना समूहपली 'प्रदी द्वीप बाहिर ते थिर अढीद्वीपमांहि चाले तिणे चारी पांचे प्रकारे ज्योतषीनां ठाम २०६ विमानना वासीजे वैमानिक देवता ते विहुं प्रकारे कह्या

मध्यमा मध्यस्था उपरितमा मध्यमा अष्टमग्रैवेयकदेवा २१६ अथ नवमग्रैवेयक देवानां नामोच्यते उवरिमाउवरिमाचेव इहगे विज्जगासुरा च पुनरुपरिमोपरिमा उपरि स्वविकापेक्षया उपरि मोपरिमा नवमग्रैवेय देवा इति अमुना प्रकारेण नवग्रैवेयका सुरा व्याख्याता अथानुत्तर विमानान्याह विजया वेजयताय जयता अपराजिया २१७ [सव्वह सिद्धिगाचेव पंचहाणुत्तरा सुरा इइवेमाणिया एए णेगहा एवमाइओ २१८] विजया विजय विमानवासिन विजयन्ते विघ्नहेतून् विजया व्युत्पत्ति तथा वैजयन्ता तथा अपराजिता अपरे इदश विघ्नहेतुभि मनुभि अजिता अपराजिता पुन सर्वार्थ सिद्धिका सर्वेऽष्या सिद्धाइव सिद्धा येषाते सर्वार्थसिद्धा सर्वार्थसिद्धा एव सर्वार्थसिद्धिका इति अमुनाप्रकारेण एते पञ्चधा अणुत्तरादेवा एवमादिका व्याख्याता द्वादश देवलोकेभ्या नवग्रैवेयकभ्या पञ्चानुत्तरभ्या सुराएवमाद्योऽशेया चतुरशीति लक्षाणि सप्तनवति

मूल

मज्झिमा २ चेव मज्झिमा उवरिमा तहा। उवरिमा हिट्ठिमा चेव उवरिमा मज्झिमा तहा २१५॥ उवरिमा२ चेय इइ गेविज्जगा सुरा। विजया वेजयताय जयता अपराजिया २१६॥ सव्वट्ठसिद्धिगा चेव पंचहा णुत्तरा सुरा। इइ वेमाणिया एए णेगहा एव माइओ २१७॥ लोगस्स एग देसमि ते सव्वे परिकित्तिया। इत्तो काल विभाग तु तेसि

भाषा

अपेक्षाए उपरला मध्यम त्रिकनो अपेक्षाए हेठिला उ चा २११ मध्यत्रिकनो अपेक्षाए मध्यविमाननो पांचमो देवता मध्यत्रिकनो अपेक्षाए उपरि लोकाना देवता उपरिला त्रिकनो अपेक्षाए हेठलो सातमाए देवता उपरिलात्रिकनो अपेक्षाए मध्य विमाननो आठमामा देवता २१२ उपरिलां त्रिकनो अपेक्षाए उपरला नवमाना देवता ८ इणे प्रकारे नवग्रैवेकनादेवता१ विजयविमानना १ वैजयंत विमानना २ जयंत विमानना ३ अप

ग्रैवेयका अनुत्तराश्च तत्र ग्रैवेयका नवविधा तत्र ग्रीवालोक पुरुषस्य त्रयोदशरज्वात्म स्थानीय प्रदेशस्तत्र ग्रीवायां अतीव शोभाकारण हेतव आभरण भूताग्रैवेया देवावासास्तत्र भवा देवाग्रैवेयकास्ते नव प्रकाराज्ञेया: २१४ तेषां ग्रैवेयाणां नामानि (हिट्ठिमा हिट्ठिमा चेव १ हिट्ठिमामज्झिमातहा२ हिट्ठिमाउ वरिमाचेव३ मज्झिमाहिट्ठिमातहा४ २१५) (मज्झिमामज्झिमाचेव५ मज्झिमा उवरिमातहा६ उवरिमाहिट्ठिमाचेव उवरिमाउवरिमाचेव८) उपरितन षट्कापेक्षया प्रथमेषु अधस्तना अधस्तना चैव पद पूरणे १ प्रथमग्रैवेय देवा: १ अधस्तनाश्च मध्यमाश्च अधस्तनामध्यमा: १ द्वितीयग्रैवेयदेवा: २ तथा अधस्तनोपरितना तृतीयग्रैवेय देवा: ३ तथा मध्यमाधस्तना: मध्यस्त त्रिकापेक्षया अधस्तनाश्चतुर्थग्रैवेयदेवा: २१५ [च पुनर्मध्यमा: मध्यमा॰ मध्यमस्थत्रिका पेक्षया मध्यमा मध्यमा पंचमग्रैवेयक देवा: तथा मध्यमत्रिका पेक्षया उपरितमा मध्यमोपरितमा: षष्ठग्रैवेयक देवा: पुनरुपरितनाधस्तना: उपरि स्थत्रिकापेक्षया अधस्तना: उपरितनाधस्तना: सप्तमग्रैवेयकदेवा: तथा उपरिमध्यमा: उपरितनत्रिकापेक्षया

सूत्र

चेव इद्र कप्पोवगा सुरा २१२ ॥ कप्पाईयाय जेदेवा दुविहा ते वियाहिया। गेविज्जा णुत्तरा चेव गेविज्जा नव विहा तहिं २१३ ॥ हिट्ठिमा २ चेव हिट्ठिमा मज्झिमा तहा। हिट्ठिमा उवरिमा चेव मज्झिमा हिट्ठिमा तहा २१४ ॥

भाषा

आरण देवलोक ११ अच्युत देवलोकना १२ इणि प्रकारे कल्प देवलोकना १२ भेद जपना देवता २०९ कल्पातीत नवग्रैवेयकादिकना जे देवता विहूं प्रकारे ते कह्या लोक रूप नर पुरुषने ग्रीवा कोट समानते ग्रैवेयकना देवता उत्तम प्रधान सुख प्रभाव जीहां ते अनुत्तर विमान देवता ग्रैवेयक नव प्रकारे जांणवा २१० नवनी अपेचाइ हेठिलामांहि हेठला पेहला देवता हेठिल्यानी अपेचाइ मध्यम विचालानी वीजोनी देवता तीम हेठलानी

भवत् तु पुनश्च त्तराणां जघन्येन दशवर्ष सहस्त्रिकाभवेत् २२२ (पलिओवमन्तुएग वासलक्खेण साहियं पलिओवमट्ठभागो जोइसेसु जहन्निया २२३) ज्योतिष्काणां चन्द्राकाणां देवानां एकपल्योपमं वर्षलक्षेणसाधिक उत्कृष्टा आयु स्थितिर्व्याख्याता पुनर्जघन्यिका आयु स्थिति पल्योपमस्याष्टमोभागो भवति २२३ (दोचेव सागराइं उक्कोसेण ठिइ भवे सोहम्मं मि जहन्नेण एगञ्च पलिओवम २२४) सौधर्म्म देवलोके द्विसागरोपमे उत्कृष्टा आयु स्थितिर्जघन्येन एक पल्योपम आयु स्थिति र्ज्ञेया २२४ [सागरा साहियादुन्नि उक्कोसेण ठिइ भवे ईसाणे मिजहन्नेण साहियं पलिओवमं २२५] ईशाने ईशान देवलोके उत्कृष्टेन द्वे सागरोपमेसाधिके आयु स्थितिर्भवेत् जघन्यतस्तु तत्र आयु स्थिति साधिक पल्योपमं अस्ति २२५ (सागराणिय सत्तेव उक्कोसेण ठिइ भवे सणं कुमारेजहन्नेण दुन्निओसागरोवमा २२६) सनत्कुमारे उत्कृष्टेन सप्तैवसागरोपमानि आयु स्थितिर्भवेत् जघन्येन

जहन्नेण दस वास सहस्सिया २२२ ॥ पलिओवमतु एग वासलक्खेण साहियं । पलिओवमट्ठ भागो जोइसेसु जहन्निया २२३ ॥ दोचेव सागराइं उक्कोसेण वियाहिया । सोहम्मं मि जहन्नेण एग च पलिओवम २२४ ॥ सागरा साहिया दुन्नि उक्कोसेण वियाहिया । ईसाणमि जहन्नेण साहियं पलिओवमं २२५ ॥ सागराणिय सत्तेव उक्कोसेण ठिई

एक करो अधिक• उत्कृष्टो थितियोतिषी चन्द्रमानी पल्योपमनो आठमो भाग ज्योतिषीने विषे तारादिकानी जघन्य २२३ बे सागरोपम उत्कृष्टी स्थिति आउखु छाइ सौधर्म्म देवलोकने विषे जघन्य एक पल्योपम आउखो २२४ सागरोपम बे झाझेरे उत्कृष्टी थिति हुई ईसाण देवलोके जघन्य झाझेरो एक पल्योपम २२५ सागरोपम सातनो स्थोत जाणवो उत्कृष्टोनोथि सनत्कुमार देवलोके जघन्यपणे बे सागरोपम २२६ झाझेरा

सहस्राणि तथा त्रयोविंशतिर्विमानापिचया अनेकविधा आख्याता २१८ (लोगस्स एगदेसंमि ते सव्वे परिकित्तिया इत्तोकाल विभागतु तेसिं वुच्छं चउव्विहं २१९) ते सर्वे देवालोकस्यैकदेशे परिकीर्त्तिता इतोऽनन्तरं काल विभागन्तु तेषां देवाना चतुर्विधं वक्ष्ये २१९ [संतइं पप्प णाईया अपज्जव सियाविय ठिइं पडुच्च साईया सपज्जव सियाविय २२०] सन्तति प्राप्यते देवा अनादय: अपर्यवसिता अपि स्थितिं भवस्थिति कायस्थितिं प्रतीत्यसादय· सपर्यवसितायापि वर्त्तन्ते २२० [साहियं सागरं इक्कं उक्कोसेण ठिइ भवे भोमिज्जाणजहन्नेणं दसवास सहस्सिया २२१] भोमिज्जाणं इति भवन पतीनां देवानां उत्कृष्टेन आयु:स्थिति: साधिकं सागरोपमं वर्त्तते जघनेन दशवर्ष सहस्रिकास्थिति र्व्याख्याता २२१ (पलिओवममेगं तु उक्कोसेण ठिइ भवे वंतराणं जहन्नेणं दसवास सहस्सिया २२२) व्यन्तराणां उत्कृष्टेन एक पल्योपमं आयु: स्थिति

सूत्र

वोच्छं चउव्विहं२१८॥ संतइंपप्पणाईया अपज्जवसियाविय। ठिइंपडुच्चसाईया सपज्जव सियाविय२१९॥ साहियंसा गरंएक्कं उक्कोसेणठिईभवे। भोमेज्जाणंजहन्नेणं दसवाससहस्सिया२२०॥ पलिओवममेगंतु उक्कोसेणठिईभवे। वंतराणं

भाषा

राजीत विमानना४ २१३ सर्वार्थसिद्धना देवताना पांच अणुत्तर विमानना देवता इणी प्रकारे वेमानीक देवता अनेक प्रकारे इत्यादिक २१४ लोकाना एकदेशने विखे ते सर्व कह्या भगवते एतलानंतर कालनो विभाग वीवरो ते देवतानुं कहेसुं २१५ प्रवाह आश्रीदेवता अनादिना अपर्यवसित अनंतपणे स्थिति आश्रीसादि सहित सपर्यवसित छेहडो पणि २१६ साधिक झाझेरो एक सागरोपम उत्कृष्टी स्थिति हुवे भवनपति चमरेंद्रादि जघन्य दशहज्जार बरसनो २२१ पल्योपम एकनो उत्कृष्टी स्थीति हुवे व्यंतर देवतानी जघन्य दसहजार वरसनी २२२ पल्योपम एक वरस लाख

मेधावी साधुर्धिंसु ग्रीष्मकालेवा शब्दात् शरदि अपिपरितापेन गाढोष्मणापंकेन प्रस्वेदात् आर्द्रीभूतमलेन अथवा रज सार्द्र मलेन परि शुष्य काठिन्यं प्राप्तेन धूल्या वा क्लिन्नगात्रः सन् बाधितः शरीरः सन् सातं सुखं न परिदेवे तंमलपहारात् सुखं न वाञ्छेत् सातार्थं विलापं न कुर्यादित्यर्थः ३६ तदा किं कुर्यादित्याह वेयज्जे ति निर्जरापेची कर्मक्षयमोप्सु साधु स्तावत्कायेन जल्लं धारयेत् देहेन मल धारयेत् पुनर्वेदज्जमल परीषहं वेदयेत् सहेत तावत्कायं यावत् शरीरस्य पातः स्यात् साधुः कीदृशः सन् आर्यं श्रुतचारित्ररूपं धर्मं प्रपन्नः सन् इत्यध्याहारः कीदृश धर्मं अनुत्तरं सर्वोत्कृष्ट ३७ अत्र सुनन्दहृष्टे भेषजार्थं साधुस्तत्कथा यथा चम्पायां सुनन्दो वणिक दानवान् अन्यदा मलाविलं साधुं दृष्ट्वा मलधारिणं सुश्रावोप सर्वं साधुना भव्य इति जुगुप्सां कृतवान् मृत्वाचासी कौशं व्यांऽभ्य पुत्रोऽभूत् स प्रस्तावे दीक्षां गृहीतवान् तदानीं तत्कर्मोदयेन देहे दुर्गन्धोऽभूत् स यति यत्र२ याति तत्र२

रीद् सुनद श्रेष्ठि तेणे एक महात्मा चारित्र पात्र मलिनगात्र आवतो देखीने ते श्रेष्ठि चितवे ए जन दर्शन मह्ला मेलो अशुचि बीजो सर्व भलो एणिए वात जोवा सरीखो नही इम दुगंछा कर्म उपार्ज्यो ते अंत समे कोसंबी नगरीए व्यवहारी यानो बेटो थयुं ते पाछिला भवना उदय थी शरीरे महादुर्गन्ध उपनो जिहां जावे तिहां लोक दुगंछा करे एहवे एकदा साधुना मुख थी सांभल्यो जे दुःख कर्मनये काउसग कीया पामे तिणे सिद्धांत वचन प्रमाण करी अटवी मांहि जई एक स्थानिके काउसग करी सासण देवता आराध्यो ते शासन देवताई तेहनो शरीर सुगंध कीधो काउसग्ग पारी पापणे स्थान के आवे लोक निन्दा करे कहे ए महा दोर्भागी देवताने भाये तो सिद्ध हुवो तिवारे तेणे चितव्यो देखो लोकनी जेहना नहीं यत. अरगमित्याह रंगना रङ्गमुचते लोकापवाद दुर्वार्थं कथं लोकोभिधियते १ लो कहसे तेवलो देवता आराधो सहज गंध कीधो तिणे जिम कीधो तिम बीजे कपीरवरे न करिवो दुगंछा कर्म उपार्जवो नही मलपरीसह सहि इति मलपरीसहए श्रेष्ठिपुत्र दृष्टांत अ० नमस्कारमा करया म० उठी बेठा थईने आसणीयो

द्वे सागरोपमे स्थितिर्भवेत् २२६ [साहिया सागरा सत्त उक्कोसेण ठिई भवे माहिंदम्मि जहन्नेण साहिया दुन्नि सागरा २२७] माहेन्द्रलोके उत्कृष्टेन साधिक सप्तसागरोपमाण्यायुः जघन्येन साधिक द्वे सागरोपमे २२७ (दसचेव सागराइं० २२८) ब्रह्मलोके उत्कृष्टेन सप्तसागरोपमाण्यायुः जघन्येन सप्तसागरोपमे २२८ [चउद्दससागराइं उक्कोसेण ठिई भवे लन्तगं मिजहन्नेणं दससागरोवमा २२९] लान्तकदेवलोके उत्कृष्टेन चतुर्दश सागरोपमानि आयुः स्थितिर्भवेत् जघन्यतो दशसागरोपमानि आयुस्थितिर्भवेत् २२९ [सत्तर स सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे महासुक्केजहन्नेणं च उदस सागरोवमा २३०] महाशुक्रे देवलोके उत्कृष्टेन सप्तदशसागरोपमानि आयुः स्थितिः जघन्येन चतुर्दशसागरोपमानि आयुः स्थितिर्भवेत् २३० [अट्ठा

भवे। सणंकुमारे जहन्नेणं दुन्निउ सागरोवमा २२६॥ साहिया सागरा सत्त उक्कोसेण ठिई भवे। माहिंदम्मि जहन्नेणं साहिया दुन्नि सागरा२२७॥ दसचेव सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। बंभलोए जहन्नेणं सत्तउ सागरोवमा२२८ चउद्दस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। लंतगंमि जहन्नेणं दसउ सागरोवमा २२९॥ सत्तरस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। महासुक्के जहन्नेणं चउदस सागरोवमा २३०॥ अट्ठारस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। सहस्सारे जह

सागरोपम सातनी उत्कृष्टी थिति होइ माहेंद्र देवलोके जघन्य तो भाभेरी वे सागरोपम २२७ दस सागरोपमनीं उत्कृष्टी स्थिति हुई ब्रम्ह देव लोके देवतानी जघन्ये तु सात सागरोपम २२८ चौद सागरोपमनी उत्कृष्टी स्थिति हुइ लांतके देवतानी जघन्यतो दस सागरोपम २२९ सतर सागरोपमनी उत्कृष्टी स्थिति हुवे महाशुक्रे देवतानी जघन्य चौद सागरोपम २३० अठारे सागरोपम उत्कृष्टी स्थित हुइ सहस्रार देवलोके जघन्ये

रस सागराइ उक्कोसेण ठिइ भवे सहस्सारे जहन्नेण सत्तरस सागरोवमा २२१] सहस्रारे देवलोके अष्टादश सागरोपमानि उत्कृष्टायु स्थिति
र्भवेत् जघन्यत सप्तदश सागरोपमाण्यायु स्थितिर्भवेत् २२१ (सागरा अउणवीसन्तु उक्कोसेण ठिई भवे आणय मिजहन्नेण अट्ठारससागरोवमा २२२)
आनत देवलोके एकोनविंशति सागरोपमाणि उत्कृष्टं आयु स्थितिर्भवेत् तथा जघन्येन अष्टादशसागरोपमाण्यायु स्थितिर्भवेत् २२२ (वीसन्तु सागराइ
उक्कोसेण ठिइ भवे पाणयमिजहन्नेण सागरा अउणवीसई २२३) प्राणतदेव लोके उत्कृष्टेन विंशति सागरोपमानयायु स्थितिर्भवेत् तथा जघन्येन
एकोनविंशति सागरोपमानि आयु स्थितिर्भवेत् २२३ [सागराइक वीसन्तु उक्कोसेण ठिई भवे आरणमिजहन्नेण वीसइ सागरोवमा २२४] आरणे
देवलोके एकविंशति सागरोपमाण्युत्कृष्टायु स्थितिर्जघनेयन तु विंशति सागरोपमानि आयु स्थितिर्भवेत् २२४ (बावीस सागराइ उक्कोसेणठिई भवे

न्नेण सत्तरस सागरोवमा २२१। सागरा अउणवीसतु उक्कोसेण ठिई भवे। आणयम्मि जहन्नेण अट्ठारस सागरो
वमा २२२। वीसतु सागराइ उक्कोसेणठिईभवे पाणयम्मि जहन्नेण सागरा अउणवीसई २२३। सागराएक्कवीसतु उक्को
सेणठिई भवे। आरणम्मि जहन्नेण वीसई सागरोवमा २२४। बावीस सागराइ उक्कोसेण ठिई भवे। अच्चुयम्मि जह

◼ठार सागरोपम छइ २२१ सागरोपमयोगणीस उत्कृष्टी थीति छइ आणत देवलोके जघन्य स्थिति अठार सागरोपमनी २२२ वीस सागरोपमनो
उत्कृष्टी स्थिति छइ प्राणत देवलोके जघन्य सागरोमयोगणीस २२३ सागरोपम एकवीसनी उत्कृष्टी स्थिति छये आरण देवलोके देवतानी जघनर
वीस सागरोपमनो २२४ बावीस सागरोपमनो उत्कृष्टी स्थिति अई अच्युत देवलोके जघनर एकवीस सागरोपम २२५ त्रेवीस सागरोपम उत्कृष्टी

अच्चुयमिजहन्नेणं सागराइक्कवीसई २३५) अच्युतदेवलोके द्वाविंशति सागरोपमानुत्कृष्टायु स्थितिर्भवेत् जघन्यतस्तु एकविंशति सागरोपमानिस्थिति भवेत् २३५ अथ नवग्रैवेयकाणां आयु स्थितिरुच्यते [तेवीससागराइं उक्कोसेण ठिई भवेपढम मिजहन्नेणं वावीससागरोवमा २३६] त्रयोविंशति सागरोपमानि प्रथमग्रैवेयके उत्कृष्टा आयुःस्थितिर्भवेत् जघन्येन द्वाविंशति सागरोपमानि २३६ (चउवीस सागराइ उक्कोसेणठिई भवे विइयंमिजह न्नेणं तेवीस सागरोवमा २३७) द्वितीये ग्रैवेयके चतुर्विंशति सागरोपमानि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्भवेत् जघन्येन त्रयोविंशति सागरोपमानि २३७ [पणवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे तइयं मिजहन्नेणं च उवीसंसागरोवमा २३८] तृतीये ग्रैवेयके पञ्चविंशति सागरोपमानि उत्कृष्टायुःस्थिति भवेत् जघन्येन चतुर्विंशति सागरोपमानि २३८ [छव्वीस सागराइं उक्कोसेणठिई भवे च उत्थं मिजहन्नेणं सागरापणवीसई २३९] चतुर्थग्रैवेयकेषड् विंशति सागरोपमानि उत्कृष्टा आयुःस्थितिः जघन्येन पञ्चविंशति सागरोपमानि २२९ (सागरासत्तवीसन्तु उक्कोसेणठिई भवे पञ्चमं मिजहन्नेणं

सूत्र

न्नेणं सागरा एक्कवीसइं २३५ ॥ तेवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। पढमम्मि जहन्नेणं वावीसं सागरोवमा २३६॥ चउवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। विइयंम्मि जहन्नेणं तेवीसं सागरोवमा २३७॥ पणवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। तइयंमि जहन्नेणं चउवीसं सागरोवमा २३८॥ छव्वीसं सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे। चउत्थंमि जह

भाषा

स्थिति हुइ प्रथमग्रैवेयकने विखे जघन्य वावीस सागरोपम २३६ चोवीस सागरोपम उत्कृष्टी स्थिति हुई वीजेग्रैवेयके जघन्य तेवीस सागरोपम२३७ पचवीस सागरोपम उत्कृष्टी थिति हवे त्रीजेग्रैवेयके जघन्य चउवीस सागरोपम २३८ छव्वीस सागरोपमनी स्थीत उत्कृष्टी स्थिति होइ चोथे ग्रैवे

सागरासत्तवीसई २४०) पञ्चमग्रैवेयके सप्तविंशति सागरोपमानि उत्कृष्टा आयु स्थितिजघन्येन षटविंशति सागरोपमानि२४० [सागराअट्ठवीसन्तुउक्को सेणठिईभवेछट्ठंमियजहन्ने णसागरासत्तवीसई२४१] षष्टेग्रैवेयके उत्कृष्टेन अष्टाविंशतिसागरोपमानि आयु स्थितिर्जघन्येनसप्तविंशतिसागरोपमाणि२४१ (सागरा अउणतीस तु० २४२) सप्तमेग्रैवेयके उत्कृष्टा एकोनत्रिंशत्सागरोपमानि आयु स्थितिर्भवेत् जघन्यात अष्टाविंशति सागरोपमानि२४२ (तीसतु सागराइ उक्कोसेण ठिइ भवे अट्ठमम्मि जहन्नेणं सागरा अउणवीसई २४३) अष्टमेग्रैवेयकेत्रिंशत्सागरोपमानि उत्कृष्टा आयु स्थितिर्भवेत् जघन्यातस्तु एकोनत्रिंशत्सागरोपमानि २४३ [सागरा इक्कवीसन्तु उक्कोसेण ठिइ भवे नवम मिजहन्नेण तीसई सागरोवमा २४४] नवमेग्रैवेयके एकत्रिंशत्सागरोप

न्नेण सागरा पणवीसई २३९ ॥ सागरा सत्तवीसतु उक्कोसेण ठिई भवे । पञ्चमंमि जहन्नेणं सागरा छवीसई २४० ॥ सागरा अट्ठवीसतु उक्कोसेण ठिई भवे । छट्ठ मि जहन्नेण सागरा सत्तवीसई २४१ ॥ सागरा अउणतीसतु उक्कोसेण ठिई भवे । सत्तममि जहन्नेण सागरा अट्ठवीसई २४२ ॥ तीसतु सागराइ उक्कोसेण ठिई भवे । अट्ठमम्मि जहन्नेण सागरा अउणतीसई २४३ ॥ सागरा एक्कतीसतु उक्कोसेण ठिई भवे । नवमम्मि जहन्नेण तीसई सागरोवमा २४४॥

यके जघनेर सागरोपम पचवीस २३८ सागरोपम सत्तावीसनी उत्कृष्टी स्थिति हुवे पांचमे ग्रैवेयकने विषे देवतानी जघन्य सागरोपम छावीस २४० सागरोपनो अट्ठावीस उत्कृष्टी स्थिति हुइ छट्ठे ग्रैवेके जघनेर सागरोपम सत्तावीस २४१ सागरोपम उगणत्रीस उत्कृष्टी स्थिति हुइ सातमे ग्रैवे यके जघनर सागरोपम अट्ठावीस २४२ त्रीस सागरोपम उत्कृष्टी स्थिति हुइ आठमा ग्रैवेयकने विषे जघनर सागरोपम उगणत्रीस २४३ सागरोपम

मानि उत्कृष्टायु स्थितिर्भवेत् जघनग्रतस्तु एकत्रिंशत्सागरोपमानि २४४] अथ पञ्चानुत्तराणां आयुःस्थिति माह [तित्तीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे च उसुविविजयाईसु जहन्ने णे क्कतीसई २४५] चतुर्ष्वपि विजय वै जयन्त जयन्तापराजितेषु विमानेषु उत्कृष्टेनत्रय स्त्रिंशत्सागरोपमानि आयुः स्थितिर्भवेत् जघनेग्रन एकत्रिंशत्सागरोपमानि २४५) [अजहन्न मणुक्कोसन्तित्ती संसागरोवमा महाविमाणे सव्वट्ठे ठिई एसावियाहिया २४६] सर्वार्थे इति सर्वार्थसिद्धिविमाने महाविमाने अजघनंग्र तथाऽनुत्कृष्टं यथा स्यात्तथा त्रयत्रिंशत्सागरोपमानग्रायुःस्थितिर्भवेत् नविद्यते जघनग्रा यत्र तत् अजघनंग्र न विद्यते उत्कृष्टा यत्र तत् अनुत्कृष्टं अर्थात् जघनग्रापि नास्ति उत्कृष्टापि नास्ति एकैवत्रय स्त्रिंशत्सागरोपमरूपा एषा आयुस्थिति र्व्याख्याता २४६ अथ देवानां कायस्थिति माह (जाचेव आउठिई देवाणं तु वियाहिया सातेसिंकायठिई जहन्नु क्कोसियाभवे २४७) याचैव देवानां चतुर्विधानां अपि आयुःस्थितिर्जघनग्रोत् कृष्टाव्याख्याता सा एव कायस्थिति र्भवेत् यतोहि देवास्त्वा देवान भवन्ति २४७ अथ कालान्तरमाह [अणन्तकाल मुक्कोसं

सूत्र

तेत्तीस सागराऊ उक्कोसिया ठिई भवे। चउसुवि विजयाईसु जहन्ने णं क्कतीसई २४५॥ अजहन्न मणुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमा। महाविमाण सव्वट्ठे ठिई एसा वियाहिया २४६॥ जाचेवउ आउ ठिई देवाणंतु वियाहिया। सा ०

भाषा

एकत्रीस उत्कृष्टी स्थिति हुवे नवग्रैवेयक जघनंग्र त्रीस सागरोपम २४४ तेत्रीस सागरोपम उत्कृष्टी स्थिति हुवे च्यार विजय १ वैजयत २ जयंत३ अपराजितने ४ बिखे देवतानी जघनग्र एकत्रीस सागरोपमनी स्थीतो हुई २४५ जघनग्र पणि नही उत्कृष्टपण नही जघनग्र उत्कृष्ट तेत्रीस सागरोपम मोटो विमान सर्वार्थसिद्धने विखे देवतानी स्थिति एह तीर्थंकरे कही २४६ जे आउखानी थिति देवता सर्वनी स्थीति कही भगवते ते वली

अन्तोमुहूर्त्त जघन्य विजढमि सएकाए देवाण होज्ज अन्तर २४८) देवाना स्वकीये कायेत्यक्ते सति वनस्पति कायेन्नजति सदा उत्कृष्ट अन्तर अनन्त
काल भवेत् जघनरतोंतर अन्तर्मुहूर्त्त भवेत्२४८ [अणन्तकालमुक्कोस वासपुहुत्त जहन्नय आणयाईण देवाण गेविज्जाण तु अन्तर २४९] आनतादीनां
नवमदेवलोकादीनां तु पुन ग्रैवेयकानां नवाना उपलक्षणत्वात् तत्र वासिनां देवानां स्वस्थानात् च्युतानाम् संसारिनिर्गोदेसमुत्पन्नानां यथात्पुन
स्वस्थाने आगच्छतां उत्कृष्ट वेलाकालान्तर भवेत्तदा अनन्त कालान्तर भवेत् जघन्य चेदतर भवेत्तदा वर्षं पृथक्त्व नववर्षाणि यावद्वर्तीत्यर्थं २४९
[संखिज्जसागरुक्कोसवासपुहुत्त जहन्नयमणुत्तराणयदेवाण अन्तरतुवियाहियं२५०] अनुत्तराणां देवानां च्यवनभूत्वा पुनर्यत्तत्रैयोत्पत्ति स्यात्तदाकियदन्तर
भवेत् तदाह उत्कृष्ट तु संख्येयसागरोपमानि अन्तरव्याख्यात जघन्य तु वर्षं पृथक्त्व नववर्षाणि यावत्२५० [एएसियन्नओचेव गन्धओरसफासओ संठाण
देसओवावि विहाणाइ सहस्ससो २५१] एतेषां देवानां चतुर्निकायानां गन्धतोरसत सर्वत संस्थानादेशतयापि सहस्रशोविधानि भवन्ति अनेकेभेदा

तेसि काय ठिई जहन्नुक्कोसिया भवे २४७ ॥ अणत काल मुक्कोस अतोमुहुत्त जहन्नय । विजढमि सएकाए देवाण
होज्ज अतर २४८॥ अणत काल मुक्कोस वास पुहुत्त जहन्नय । आणयाइण कप्पाण गेविज्जाणतु अतर २४९॥ संखिज्ज
सागरो क्कोस वास पुहुत्त जहन्नय । अणुत्तराणाय देवाण अतरतु वियाहिया २५० ॥ एएसि वन्नओ चेव ग धओ रस

देवतानो कायस्थीति भणो देवता तयाइ जघनायथ उत्कृष्टपणे हुये २४७ अनतुकाल उत्कृष्टो अतर्मुहुर्त्त जघन्य काडे थके पोतानो काया
देवता मरी देवतान थाइ एतलो अतर २४८ ईर्ना देवताना वर्णथकी गधथकी फरसथकी संस्थानना भेदथकी विधानभेद सहस्रगमे हुइ २५०

भवन्ति २५१ अथ निगमयितु माह [संसारत्थायसिद्धाय इइजीवावियाहिया रूविणो चेव अरूवीय अजीवादुविहाविय २५२] संसारस्थाश्च जीवासिद्धाश्च जीवाइति अमुना प्रकारेण व्याख्याता: च पुनरूपिणोऽरूपिणोऽजीवाश्च व्याख्याता: द्विविधा अपि कथिता: अथोपदेशमाह (इइजीवमजीवेय सुच्चासद्दहि जणय सव्वनयाणमणुमए रमिज्जासंयमेमुणी २५३) मुनि: साधुरेवं अमुनाप्रकारेण जीवान् गुरोर्मुखात् श्रुत्वा पुन: श्रद्धाय संयमे सप्तदशविधेरमेत्रतिं कुर्यात् कीदृशे संयमे सर्वनयानां अनुमते सर्वे च तेनयाश्च सर्वनया: नैगमादय: सप्तनयास्तेषां सर्वनयानां ज्ञानक्रियांतर्गतानां अनुमते अभिप्रीते ज्ञान सहित सम्यक् चारित्र रूपे २५३ [तओबहूणिवासाणिसामण्णमणुपालियाइमेण कम्मजोएण अप्पाणं संलिहेमुणी २५४] ततश्चारित्रे रमणानन्तरं बहूनि

फासओ। संठाणा देसओवावि विहाणाइं सहस्ससो २५१॥ संसारत्थाय सिद्धाय इइ जीवा वियाहिया। रूविणो चेव अरूवीय अजीवा दुविहाविय २५२॥ इइ जीव मजीवेय सोच्चा सद्दहिऊणय। सव्व नयाण अणुमए रमेज्जा संजमे मुणी २५३॥ तओ बहूणि वासाणि सामन्न मणुपालिया। इमेणा कम्म जोगेणं अप्पाणं संलिहे मुणी २५४॥

संसारीक जीवना सिद्धना जीव दुणे प्रकारे जीव विहुं भेदे कह्या रूपी अजीव विहुं भेदे अरूपी अजीव दशभेदे अजीव विहुं प्रकारे हुवे २५२ एणे प्रकारे जीवने अजीवनाभेद गुरु समीपे सांभलीने सर्वदीह प्रमाण करी पडिवजी समस्त नैगमादिकासा तनय ते ज्ञानक्रया माहि अंतर्भावता जाणी ज्ञान सहितथकी रति आणीने संयमने विखे साधु २५३ ततोदोचालोधानंतर घणा वरसलगी श्रामण्य चारित्र तपसंयम क्रयाइ उत्तम पालीने दुणे आगलि कहीस्ये तेणे अनुक्रमे कर्मयोगे आत्मा शरीर संलेखे द्रव्य थकी तपे करि काया क्षीण पाडी भाव थको कषाय रहित २५४ बारबरसताई

सूत्र

भाषा

यद्यपि श्रामण्य मनुपाल्यमुनिरंतेन क्रमयोगेन श्रात्मान स लिखेत द्रव्यतोभावतश्च क्षमीकुर्यात स प्रतिस लेखना पूर्वक क्रमयोगमाह माह [बारसेवउया साइ स लेहुक्कोसियाभवे स वच्छरमज्झमियाछ मासायजहन्निया २५५] [पढमे वास चउक्कमिविगइ निज्जूहण करे बीएवास चउक्कमि विचित्त तु तव चरे २५६] (एगन्तरमायामकट्टु सम्वच्छरेदुवेतश्रोस वच्छर ह तुनाइविगिट्ठ तवचरे २५७) (तओस वच्छरद्ध तुविगिट्ठ तुतवचरेपरिमियचेव आयामतमि स वच्छरेकरे २५८) (कोडो सहियमायाम कट्टु स वच्छर मुणोमासद्धमासि एण तु आहारेण तवचरे २५८) एतासा गाथाना व्याख्या द्वादशैववर्षाणि उत्कृष्टा स लेखनाभवेत् सलेखना द्रव्यतोभावतश्च कृशत्व करण सलेखना द्रव्यत शरीरस्य क्षमीकरण भावतश्च कषायाणा क्षमीकरण सवच्छरमेका वर्षं मध्यमिकासलेखनाभवेत् जघन्यिका सलेखनाषण्मासीभवेत् २५५ सलेपनायास्त्रैविध्येऽनुक्रममाह प्रथमे आद्येवर्षं चतुष्के विकृति निर्यूहन विकृतीना पक्वान्नत्याग आधाकर्मनिविकृत्यादि तप कुर्यादित्यथ द्वितीये वर्षं चतुष्के विचित्र एव चतुर्थषष्टाष्टमादि रूप तपश्चरेत् २५६ ततो द्वौ सवत्सरौ यावत् एको चतुर्थलक्षणेन तपसाअन्तर व्यवधान यस्मिन् तदेकान्तर आयाम आचाम्ल कृत्वातपश्च सवच्छरार्द्ध यावन्मास षटक यावत् अतिविकृष्ट अष्टम

वारसेवउ वासाइ सलेहु क्कोसिया भवे । सव्वच्छर मज्झामिया छम्मासाय जहन्निया २५५ ॥ पढमे वास चउक्कमि विगइ निज्जूहण करे । विइए वास चउक्कमि विचित्तु तव चरे २५६ एग तर मायाम कट्टु सवच्छरे दुवे । तओ सव

उत्कृष्टो हुइ सलेखना वरस एकनी मध्य सलेखणा छमासनी जघन्य सलेखना २५५ पहिला वरस च्यारने विषे विगयनो परिहार आंबिलनीवी करे बीजा आगला वरस च्यारने विषे विचित्र छठ अट्ठमादि तप करे २५६ उपवास अने आतर पारणे आंबिल इम करो बेवरस ने विषे तिवार

द्वादशादितपोन आचरेत् न सेवेत २५७ ततस्तु सवत्सरार्द्धं मास षट् कतु विकृष्टं षष्टाष्टमादितपः आचरेत् पर तत्रायं विशेषः परमित मिवस्तोकं एव आचाम्लं तपस्तस्मिन् संवत्सरे कुर्य्यात् कोर्थं पूर्वस्मिन् संवत्सरार्द्धेन अस्मिन्संवत्सरार्द्धे च एवं एकादशे सवत्सरे चतुर्थषष्टाष्टमद्वादशादीनां पारणे आचाम्लं विदध्यात् इत्यर्थः ततोकोटी सहितं तपःस्यात्२५८ इत्थं एकादशसुवर्षेषु व्यतीतेषु द्वादशवर्षे यत्कुर्य्यात्तदाह कोटीभ्यां प्रत्याख्यानस्य आद्यन्ताभ्यां सहितं कोटीसहितं तपोद्वादशे सवत्सरेमुनि· कुर्य्यात् कोर्थं विवचितदिने प्रभातसमये आचाम्लं प्रत्याख्यानं कृत्वा पुनर्द्वितीयदिने तपोन्तरं विधाय तस्यां ते पुनराचाम्लं इति कोटीसहितं उच्यते इत्यनेन द्वादशवर्षाणि तपः कुर्यात् तु पुनः पद्मान्मासिकेन तु पुनरर्द्धमासिकेन आहारेण अर्थान्मासच्चपण प्रत्याख्यानेन तथार्द्धं मासच्चपणेन आहारेणइति आहारानादरेणेन तप· प्रस्तावाज्ञ्ञपरिज्ञयाऽनशनरूपं तपश्चरेत् एतद्विस्तरस्तु निशीथ चूर्णितो ज्ञेयः २५९ अङ्गीकृतानशनस्य अशुभभावनापरिहारः कर्त्तव्यः अतोऽसुभ भावनाज्ञानार्थमाह [कन्दप्पमाभि ओगं किव्विसियं मोहमासुरत्तञ्च एयाओ

च्छरद्धंतु नाइविगिट्ठं तवं चरे २५७॥ तओ संवच्छरद्धं तु विगिट्ठं तु तवं चरे। परिमियं चेव आयामं तंमि संवच्छरे करे २५८। कोडीसहियमायामं कट्टु संवच्छरे मुणी। मासद्धमासिएणं तु आहारेणं तवंचरे २५९। कंदप्प माभि

पछी सवच्छर अर्द्ध छमासताइं नही अति दुर्लभ एहवो तप करे २५७ तिवार पछी अर्द्ध संवच्छर छमासतांइ विकृष्ट आकरो छट्ठ अट्ठमादि तप करे परिमित थोडा थोडा आंबिल करे एतले उपवासने पारणी आंबील पेहहला मास २५८ एहमासदई इम वरस २ एवं २२ २५२ पच्चखाणने धुरि आंबिल करे विचाले तप करे छेहडे आंबील करे ते कोडि सहिय करी वरस २ लगी साधु पछे मास खमण अधमास खमण आहार परिहारी

दुर्गतयोदुर्गति दुग्गइओ मरणमिविराहियाहुन्ति २६०] एता पञ्चभावना विराधिका सम्यग दर्शनचारित्रादीना भङ्गकरा सन्तोमरणान्ते मरणसमये दुर्गतयोदुर्गति कारणत्वात् दुर्गतयोभवन्ति कारणेकार्योपचार एता का भावनाक दर्प इति कन्दर्पभावनापदैकदेशेपद समुदायोपचारात एय अभियोग्य भावना किल्बिषभावना मोह भावना असुरत्वभावनादुर्गतियाव अथात देवदुर्गति स्यात् तद्द्याद्व्यवहारेण चारित्रे सत्यपि तादृगदेवनिकायोत्पत्तौ चारित्र हीनत्वमिति २ मरण भावेन नानागतिभाक्त्व स्यात् यदुक्त च समयमपि कुर्यात् एतासु भावनासु मनुजस्तु स च गच्छेत् सुरयो नौ यत्र हि चारित्र हीनत्वमिति २ मरण समये याद्दयोमति स्याद्द्गोगति स्यात इति दर्शित मरण समये यदि एताभावना नस्युस्तदासुगति स्यादित्यर्थः २६० [मिच्छादसणरत्ता सनियाणाहिसगा इइजेमरन्ति जीवा तेसिं पुणदुल्लहाबोही २६१] इति अमुनाप्रकारेणये जीवा म्रियन्ते तेषां जीवानां पुनर्जन्मान्तरे बोधिर्जैनधर्म इष्टिदुर्लभा तु प्राप्याभवेत् इतीति कि येजीवामिथ्यादर्शन रक्ता अतत्वेतत्वाभि निवेशरूप मिथ्यादर्शन तत्र रक्तामिथ्यादर्शन रक्तास्तादृश्या सन्तो म्रियन्ते पुनर्य

मिच्छा दसण रत्ता सन्नियाणाहु हिसगा। इय जे मरंति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥२६१ सम्मदसण रत्ता अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा।

योग किब्बिसियं मोह मासुरत्त च। एयाओ दुग्गईओ मरणमि विराहिया होंति २६०

अपसत्थरूप तपर्करे २५९ कंदप्पपर्णे भावना१ अभियोगीभावना२ किल्वीषीभावना३मोहभावना४ असुरपणानीभावना५एपांचभावना दुर्गतिनु कारण मरणने अवसरे पञ्चयोभावना भावेतो जिना ज्ञानो विराधकहुइ २६० मिथ्या विपरीत दर्शनने रागे राता नियाणासहित मरेहुइ पचेंद्री जीवनाघात कइये प्रकारे मरे जेजीव ते जीवने बोधिपर भवे जिन धर्मनी प्राप्ती दोहीलो२६१ समकितसाचा देवगुरु धर्मतत्वनेविखे राता रागीनियाणा रहित शुक्ल

उज्जाम्भवति ततो गुरुभिस्तस्य भ्रमण निषिद्ध तीन रात्री जिन देवता आराधनाथ कायोत्सर्ग क्षत तुष्टदेवतया सुगन्धी क्षत तथा प्युज्जाहभवने पुनरप्याराधि तया देवतया सर्वं समान गन्ध क्षत अनेनहि साधुना जल्ल परीषहो देवताराधने न सोढ एवमन्यै साधुभिर्नकाय अथ समल साधु शुचीन् सत्क्रियमाणान् दृष्टा सत्कारादिन स्पृहयेत् अतस्तत्परीषह माह। अभिवायण मभुट्ठाण सामी कुज्जानि मन्तण जेता इ पडिसेवन्ति नतेसपीह एसुणी ३८ अणुक्कसाई अप्पिच्छे अन्नाएसी अलोलुए रसेसुनाणुगिज्झेज्जा नाणुतप्पेज्ज पन्नव ३८ मुनिस्ते इति तेभ्य न स्पृहयेत् यत एतेधन्या इति न चिन्तये दित्यर्थं तेभ्य केभ्य येतानि प्रतिसेवन्ते तानि कानि स्वामीराजादि अभिवादन नमस्कार अभ्युत्थ कुर्यात् अथवा स्वामी अभ्युत्थान अभ्युत्थ कुर्यात् असनादि सन्मान कुर्यात् पुनरस्माक निमन्त्रण कुर्यात्। एतावता राज्ञानिमन्त्रितान् आहारादिभ्य प्रार्थित वान् द्रव्यलिङ्गिन साधून् न कीर्त्तयेत् इत्यर्थ पुन साधु कीदृशो भवेत्तदाह। अनुत्कषायी सत्कारादिना हर्ष रहित तादृशो भवेत् नउत्क अनुत्का ग्रेतिइत्येवशीलो उत्कषायी इति शब्दार्थं यत्र कश्चिदा सनदानाभ्युत्थाननिमन्त्रणादिक करोति तत्र गमनाय उत्को भवति उत्कण्ठितो न भवति अथवा अणु कषायी सत्कारादिक यो न करोति तस्मै क्रोध अकुर्वाण अक्रोध पुन कीदृश अल्पेच्छ धर्मोपकरण मात्र धारी अनेन निर्लोभत्वमुक्त पुन कीदृशा अज्ञा

जेताइ पडिसेवंति नतेसि पीहए मुणी ॥३७॥ अणुक्कसाई अप्पिच्छे अन्नाएसी अलोलुए। रसेसु नाणुगिज्झेज्जा ना

देवो मा० राजादिक कु करेछे भि भिवानो आमतण जेठो आपणा गच्छना तथा परपाखडीना० ते नमस्कारादिक प० अंगिकार करे छे सहतो स्पृहि वेइने पे इ मन करे मु साधुपणा खडो प्रमुख ए धन्य छे ३८ अ० जे साधुनेलोभ थोडो हुए अ० वस्त्रादिक नीवाछा रहित होइ अ० अज्ञात मिले अहार गवेषे अरस आहारने विषेलो लता रहित अलोलूपिर० मधरादिक ५ रस स्वादने विषे ना० नाहुइ गृद्धमाठा रसादिक नीवाछा न करे

मरणानन्तर अपरे जन्मनि बोधिदुर्लभत्व दर्शित इति न पुनरुक्ति दूषण २६२ [जिणवयणे अणुरत्ता जिणवयण जेकरति भावेण अमला असंकिलि ट्ठाते हुन्ति परित्तसंसारी २६४] ते जीवा परीत्तसंसारिणोभवन्ति प्राकृतत्वात् बहुवचनस्थाने एकवचन परीत्त खण्डित संसार परीत्तसंसार परीत्त संसारोविद्यते यस्य सपरीत्तसंसारोइति किंच संसारिण स्युरित्यर्थ ते इति के ये जीवाजिन वचने अर्हद्वाक्ये अनुरक्ता सद्भावेन जिनवचन कुर्वन्ति इत्यनेन मनोवाक्कायैजिनधर्म आराधयन्ति पुन कीदृशास्ते अमलामिथ्यामलरहिता पुन कीदृशा असंक्लिष्टा मोहमत्सरादि क्लेशरहिता एतादृशा जीवा संसारपार कृत्वा मोक्ष भजन्तीत्यर्थ २६४ (बालमरणाणि बहुसो अकाममरणाणि चेवबहुयाणिमरिहन्ति तेवराया जिणवयण जेनयाणन्ति २६५) ये मनुष्या जिनवचन न जानति ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति अर्हद्वाक्य न श्रद्दधन्ति ते मनुष्या बहुशोवारवार वराकादयाभाजन सन्तोबालमरणाणि इति प्राकृतत्वात् तृतीया बहुवचन स्थानेद्वितीया बहुवचन बालमरणै दहन विषभक्षणादि मरणैस्तथा अकाममरणैर इच्छा विनाक्षुधा तृषाशीता तपतापादिमरणै म्रियन्ते तथाज्ञानेनजिन वचन श्रद्धेय आवश्य आलोचनयास्यात आलोचनार्हाणांदिया आलोचना योग्यास्तु एतैर्हेतुभि श्रुतान्

मरति जीवा तेसिपुण दुल्लहा बोहि ॥ २६२ जिणवयणे अणुरत्ता जिणवयण जे करति भावेण। अमला असं किलिट्ठा ते होंति परित्त ससारी। २६४ बाल मरणाणि बहुसो अकाम मरणाणि चेवय। बहुणि मरिहति

धर्मनो प्राप्ति दोहिलो २६२ जीवातने विषे अनुरक्त रागीजिनावचन जे कोइ करे तपजपभावेकरि मोथ्यात्वमलरहीतरागद्वेषादिकमलरहीत ते हुवे थोडाकालमाहि संसारछेदो मोक्षजाइ २६४ वारे भेदे बालमरण घणीवार मरतु अकामवांछाविना ताडितापादि सहतो अकाम मरण घणी वार मरे

जीवा: स निदाना: निदानेन विषयाद्याश्रयासह वर्त्तन्तेइति सनिदानास्ताद्दशा: सन्तोम्रियन्ते तथाहुइति निश्चयेन ये जीवाहिंसका जीवहिंसाकारिण सन्तोम्रियन्ते ताद्दशानां भवान्तरे जिनधर्म्म प्राप्तिदुर्लभस्यादित्यर्थ: २६१ [सम्मद्दसणरत्ता अनियाणासुक्कले ससोगाढा इइजेमरन्ति जीवा सुलभातेसिं भवे बोही २६२] इति अमुनाप्रकारेणये जीवाम्रियन्ते तेषां जीवानां बोधिर्जैनधर्म्म प्राप्तिर्जन्मान्तरे सुलभाभवेत् इतीति किं ये जीवा' सम्यग् दर्शन रक्ता· देवतत्वगुरुतत्वधर्मतत्वरक्ता. एताद्दशा: सन्तोम्रियन्ते तथा पुनर्येजीवा: अनिदानानिदानरहिता: सन्तोम्रियन्ते पुनर्ये जीवा: शुक्ललेश्यां अवगाढा शुक्ललेश्यां प्रविष्टा: शुद्धपरिणामा: सन्तोम्रियन्ते तेषां बोधिर्भवान्तरे सुलभा भवे दित्यर्थ: २६२ [मिच्छादसण रत्तास नियाणा किहलेसमो गाढा इइजेमरति जीवा तेसि पुण दुल्लहाबोहो २६३] इति अमुनाप्रकारेण ये म्रियन्ते तेषां पुनर्जन्मान्तरे बोधिर्दुर्लभाभवेत् इतीति किं कृष्णलेश्यां अवगाढा कृष्णलेश्यां प्रविष्टा· सन्तोमिथ्यादर्शन रक्ता: पुन· सनिदाना: एताद्दशा' सन्तोम्रियन्ते तेषां जिनधर्मप्राप्ति' पुनर्दुर्लभाभवेत् अत्र मिच्छादसण रत्ता इति गाथापूर्वमुक्ता पुनरपि मिथ्यादर्शन रक्ताइति गाथा उक्तास्ति तत्र च पुनरुक्ति दूषण' न ज्ञेयं अत्र गाथायां कृष्णलेश्यावतां म्रियमाणानां भव सन्तती अपि बोधि प्राप्तिरभावइति सूचितं पूर्वगाथायां तु कृष्णलेश्यारहितानां मृतानां तु

सूत्र

इय जे मरंति जीवा सुलहा तेसिं भवे बोही ॥ २६२ मिच्छा दंसण रत्ता सनियाणा किन्हलेसमोगाढा । इय जे

भाषा

लेश्या निर्मल परिणामे सहित इणे प्रकारे जिके मरे जीव सोहिली ते जीवने हुइ बोधि जिन धर्मनी प्राप्ती २६२ कुदेव कुगुरु कुधर्मरूप मीथ्या दर्शनने विखे रागी नियाणा सहित भोगना कारणहार कृष्णलेश्या पाडुये अध्यवसाय सहित इणे प्रकारे मरे जे जीव ते जीवने वली बोधि जिन

कन्दर्पभावनां करोति कन्दर्पंच कौकुच्यश्च दर्पकौ कुच्ये ते कन्दर्पकौ कुच्ये तत्रकन्दर्पोऽट्टहास्यादि मूर्खं वक्तत्वेन जल्पन कौकुच्य काय दुर्चेष्टित च एते उभे कुर्वन् जीव कन्दर्पं भावना जनयति तथा शीलस्वभावहास्य शीलस्वभावहास्य शीलस्व भावहास्य च विकथा च शीलस्वभावहास्य विकथा स्ताभिरन्य साधय कुर्वन् कन्दर्पभावनां जनयति २६७ (मन्ताजोग काउ भूयकम्म च जेपउ जन्ति सायरसइड्डि हेउ अभिओग भावण कुणइ २६८) य पुरुष सातरसर्द्धि हेतवे मन्त्रायोग कृत्वा जन्त्रच आयोगश्च मन्त्रायोग मन्त्र ओंकारादि स्वाहान्त आयोग जपधीमालन अथवा मन्त्राणा आयोग शाधन मन्त्रयोगस्त कृत्वा तथा भूया भस्मना मृत्तिकया सूत्रेण वायत्कर्म तत भूतिकर्म मनुष्याणां तिरया गृहाणां या रक्षार्थं कौतुकादिकरण भूतिकरणं कर्म एतानि सुखार्थं सरसाहारार्थं वस्त्रादि प्राप्त्यर्थं च साधु कुर्वीत स आभियोगिकी भावनां क रोति आभीयोगिकी भावनां चोत्पाद्य स अभियोगित्वे देवत्वेन मत्वोत्पद्यते इत्यर्थं अभियोग देवाश्च देवानां आज्ञाकारिण कि कर प्राया दास प्रायाय २६८ [नाणस्स केवलीण धम्मा य रियाय सघसाहूण माई अवण्णवाई किव्विसय भावण कुणइ २६९] स

भावणा कुणइ। २६७ मंता जोग काउ भूई कम्म च जे पउंजति। साय रस इड्डि हेउ अभिओग भावण कु

कामभावनानो अभाव मुखविकारादिक अट्टहास करे विस्मय आश्चर्य कारणयि कथाए करि विस्मय आश्चर्यपमाडतो पर घनेराने कदर्प नी भावना कदर्पिया देवता गेहना अयोग्य वास वासनो ते करे २६७ जागुली आदि मंत्र अजन चूर्णादी द्रव्यना योग करीने भूति राख माटीइ सूत्रे धूपे कर्म रक्षा निमित्त घरमाहि बाहिरे कौतुक जे प्रभु जे करावे साता सरस वस्तुपामि वाने हेते आभियोगी देवताना भावना करे पछे मरी

न्तूनाह २६५ [बहु आगमविण्णाणा समाहि उप्पायगायगुणगाही एएणकारणेण अरिहा आलोयण सोउं २६६] एतैः कारणैर्जना आलोचनां श्रोतुं अर्हाभवन्ति तानि कानि कारणानि बह्वागमविज्ञानत्व समाध्युत्पादनत्वगुणग्राहित्वादीनि आलोचना श्रवणार्हत्वकारणानि इमानि ज्ञेयानि गुण गुणिनोरभेदविवक्षयाऽस्मान्येव कारणानि आलोचना श्रवणार्हाणां विशेषणत्वेन प्रतिपादयति ते नराः आलोचनां श्रोतुं अर्हाः भवन्ति ते इति के ये बह्वागमविज्ञानाः बहुः सूत्रार्थाभ्यां विस्तारोविपुल आगमोबह्वागमस्तस्य विशिष्टं ज्ञानं येषां ते बह्वागमविज्ञानाः भवन्ति च पुनर्येमुनयः समाध्युत्पादकाः समाधिं देशकालं वयो योग्यैर्मधुरवचनैरन्यस्य स्वास्थ्यं च उत्पादयन्तीति समाध्युत्पादकाभवन्ति च पुनर्येगुणग्राहिणो भवेयुः परदूषणोद्घाटकानस्युस्ते आलोचना श्रवणार्हाभवेयुरिति भाव २६६ अथ कान्दर्पादि भावनानां यत्परिहार्यत्वं उक्तं अतस्तासां एव स्वरूपमाह (कन्दप्प कुक्कुयाइं तहसीलसहा वहासविगहाहिं विम्हावन्तोयपरं कान्दप्पं भावणं कुणइ २६७) नरः कान्दर्पकौ कुच्यं कुर्वन् तथा शीलस्वभाव हास्य विकथादिभिः परं अन्यं विस्मापयन्

सूत्र

तेवराया जिणवयणंजेनयाणंति ॥ २६५ बहु आगम विन्नाणा समाहि मुप्पायगाय गुणग्गाही। एएण कारणेणं अरिहा आलोयणंसोउं ॥ २६६ कंदप्प कोकुइयाइं तहसील सहाव हास विगहाहिं। विम्हाविंतोय परं कंदप्पं

भाषा

इण प्रकारे मरेते वराक् अज्ञानी जीननावचन ते सारकरीन जाणे ज्ञानक्रियानां फलजाणनथी २६५ घणो आगम सिद्धांत अर्थनाजाण देशकालथकी मधुरधुर बचनबोले आलोयणल्येपरने समाधिनो उपजावणहारपरने आस्था जपजे समकितादी गुणग्राहकएपूठिल्ये कारणे गुणेसहित ते आचार्यादि आगलानी आलोयण सांभलि वाऽर्हयोग्य २६६ हास्य वक्रवचनकामकथाकरे काय चेष्टादि करी आश्चर्यपमाडे तथा सील फल विना प्रवृत्ति विस्मय

अग्निप्रवेशकरण तथा जले प्रवेश करण कूपवाप्यादौ बुडण पर्वतादिभ्य पतनश्च शब्दात् गृह्यते पुनरनाचार भाडसेवा एतानि कारणानि कुर्वन्तोजना जन्ममरण कारणानि बध्नन्ति ■ सार भ्रमण उत्पादयन्ति इत्यर्थं तच आचार शास्त्रोक्त व्यवहार न आचारो अनाचारस्तेन भांड स्वोपकरणस्य सेवा हास्य मोहादिभि परिभोगो अनाचार भाडसेवा इयमपि कर्मोत्पादनादनन्त भवोत्पादिका इत्यर्थं २७१ [इइपाउ करे बुद्धे नायए परिनिव्वुए छत्तीस उत्तरज्झाए भवसिद्धीय स मए त्तिवेमि २७२] ज्ञात जो बुद्धस्तीर्थं करो ज्ञातात् सिद्धार्थं कुलाज्जात उत्पन्नो ज्ञातज श्रीमहावीर परिनिर्वृतो निर्वाणङ्गत इत्यन्वय किं कृत्वा इत्यमुना प्रकारेण षट्त्रिंशत सङ्ख्यान् उत्तराध्यायान् प्रादु कृत्य उत्तरा प्रधाना अध्याया अध्ययना उत्तरायते अध्यायाश्च उत्तराध्यायास्तान् अर्थंत प्रकटी कृत्य इत्यथ कीदृशान् उत्तराध्यायान् भवसिद्धिक स मतान् भवसिद्धिका भव्यास्तेषा स मतामान्या पठनीयास्तान् २७२ इति जीवाजीव विभक्तिनामक अध्ययन षट्त्रिंश सम्पूर्णम् ॥ ३६ ॥ अथ निर्युक्तिकार एतेषा

इय विसभक्खण च जलाण च जलपवेसोय । अणायार भड सेवी जम्मण मरणाणि वधति ॥ २७१ इइ पाउ करे बुद्धे नायए परिनिव्वुए । छत्तीस उत्तरज्झाए भवसिद्धीय सम्मएत्तिवेमि ॥ २७२ जीवाजीव विभत्तिज्झयण सम्मत्त ॥३६

माहि बूडो मरण यतीना उपगरण परिहरीने मोहादिकना उपजाणहार उपगरण सेवे ते यती घणा जन्म अने मरणबांधे अपराजि अनता भव करे मोक्ष करतु २७१ ए पूठि कह्या ते सवथको अर्थथको प्रगट कह्या बुद्ध केवली महाबीर क्रोधादीक उपशमावी मोक्ष पु हुता छत्तीस उत्तरा ध्ययनना अध्ययन भव्यजीवने स मतवाह्णाए वचन साचा जाणे सुधर्मास्वामी जंबूप्रति कहे २७२ इति श्रीजीवाजीव विचार अध्ययननो अर्थ सपूर्ण ॥

पुरुषः किल्विषीं भावनां कुरुते किल्विषिक देवयो निलदायिकां भावनां उत्पादयन्ति स कः य पुरुषो ज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य तथा श्रुत ज्ञानवतोऽवर्णवादी भवति तथा यः पुरुषो धर्माचार्यस्य धर्मदायकस्य अवर्णवादी भवति अयं जातिहीनः अयं मूर्खो अय कषायी इत्यादि आशातना कद् भवति तथा संघसाधूनां संघश्च साधवश्च संघ साधवस्तेषां संघ साधूनां अवर्णवादी भवति तथा पुनर्यो मायी आत्मनः सतः अपगुणान् आच्छादयति परेषां असतो अपगुणान् वक्ति सतोगुणान् वक्ति एतादृशो जीवो मृत्वा किल्विषदेव उत्पद्यते इत्यर्थः २६९ [अणुवद्ध रोसपसरो तहय निमित्तंमि होइ पडिसेवी एएहिंकारणेहिंआसुरियंभावणं कुणइ२७०] एताभ्यां कारणाभ्यां पुरुषः आसुरीं भावनांकरोति असुर निकायोत्पादिकां भावनां जनयति एतौ कौ कारणौ इत्याह य पुरुषः अनुवद्धरोष प्रसरः अनुवद्धश्चिरकालस्थायी रोष प्रसरः क्रोध प्रसरो यस्य स अनुवद्धरोष प्रसरः तथायः पुरुषो निमित्ते अतीतानागत वर्त्तमानरूपे त्रिविधे विषये अथवा निमित्ते भूमांतरिक्षादिके प्रतिसेवी भवति कारणं विनापि शुभाशुभनिमित्त प्रयोक्ता भवति स मृत्वा असुरत्वेनोत्पद्यते इति भाव २७० [सत्थग्गहणं विसभक्खणं जलणं जले पवेसोय अणायारभण्डसेवा जम्मण मरणाणि वंधंति२७१] शस्त्रग्रहणं शस्त्राणां खड्ग छुरिकादीनां आत्मवधार्थं उदरादौ ग्रहणं शस्त्रग्रहणं तथा विषभक्षणं तालपुटादि कालकूटानां अदनं तथा ज्वलन्

णाइ ॥ २६८ नाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स संघ साहूणं । माई अवन्नवाई किव्विसियं भावणं कुणइ ॥ २६९
अणुवद्ध रोस पसरो तहय निमित्तंमि होइ पडिसेवी । एएहिं कारणेहिं आसुरियं भावणं कुणइ ॥ २७० सत्थग्ग

सूत्र

ते जीव अभिजोगीक देवतामाहि ऊपजे २६८ ज्ञानका तथा केवलीका तथा धर्माचार्यका तथा संघसाधुका अवर्णवादी तथा माइ होय सो किल्विषी भावना करे २६९ शस्त्र पेट माहिणी मरतो विष तालपुटादि भक्षणकरी मरतुं जलण अग्निमाहिथी मरतुं जल पाणी

भाषा

कग्रभूतान् उत्तराध्यायान् अनन्तागमपर्यवै संयुक्तान् आन्तायते आगमाय अनन्तागमाशब्द परिच्छित्ति प्रकारा तथा पर्यवाय अर्थपर्यवरूपा अनन्ता गमायपर्यवाय अनन्तागमपर्यवास्तेरनन्तागमपर्यवै शब्दार्थनयैश्च संयुक्तान् २ [जोगविहोद वहित्ता एए जोलहइ सुत्त अत्थ भाभासेइय भवियजणी सोपा वेद निज्जराविउला ३] सभव्यजनोविपुलानिर्जरा प्राप्नोति स क योयोगविधि वहित्वा योगोपधानतपोऽनुष्ठानविधि कृत्वा एतान् उत्तराध्यायान् सूत्रार्थतो लभेत यथागुरुमुखात् सूत्रार्थं लब्धापर भावेत सद्योपकाराभवतोत्यर्थ ३ (जह्माढत्ताएए कहविसमप्पन्ति विग्घरहियस्स सोलभिज्जइभव्वो पुव्वरिसो एव भासन्ति ४) समनुयो भव्योमुक्तिगामोइति सम्यते पूर्वर्षय पूर्वाचार्या एव भाषन्ते स इति क यस्य पुरुषस्य विघ्नरहितस्य निर्विघ्नस्य सत कथमपि

सूत्र

अणंतगमपज्जवे हिंस जुत्तो अज्झाएजइ जोग गुरुप्पसाया अहिज्जिज्जा ॥ २ जोगविहीए वहीया एए जोलहइ सुत्तमत्थवा भासेइ भवियजणी सोपावेइ निज्जरा वहुला ॥ ३ ॥ जह्माढत्ता एए कहविसमप्प ति विग्घरहियस्स सो लभिज्जइ भव्वो पुव्वरिसी एव भास ति ॥ ४ ॥ इति श्रीउत्तराध्ययन सूत्र निर्युक्ति संपूर्णम्।

भाषा

जिनना कह्या अनंते गम सरिखे पाठ अनंतपर्यवपर्याय सहित अध्ययन भणे भणावे यथायोग्य योग्यजाणो गुरुधर्माचार्यनो प्रसाद सोम दृष्टिपामीने ए भणे अप्रमत्त थको २ योगनो गुरु परंपराइ विधिस होते योगविधि वहोने इणे प्रकारे जे साधु साध्वीलहे अर्थ सूत्रने अर्थ अनेराने उपदेश्यो ते भव्यजीव ते पांमे कर्मनो निर्जरा विपुल घणो ३ सो पुरुष भव्य जीवयने मे पडता हें पूर्वाचार्य एसा कहते हें तो कोन जो विघ्नरहीत कोइ तरे से ए उत्तराध्ययन पटनेकु प्रारंभ किया थका समाप्त होयइति श्रीउत्तराध्ययन सूत्र निर्युक्तिनो अर्थ संपूर्णम् ॥ • ॥ • ॥ • ॥

अध्यायानां नामान्याह गाथाभिः। विणय १ गाथा ४८ परीसह २ गाथा ४६ चउरस ३ संखया ४३१ कामभरण ५३२ खुड्डागं ६१८ एलिज्ज ७३० काविलिज्जं ८२० नमिपव्वज्जाय ९६२ दुमपत्तं १०३७१ बहुसुय पुज्ज ११३२ हरिएस १२४७ चित्तसंभूययस्स १३५३ इसु यारं १४५३ स भिक्खु १५१६ बंभचेरंच १६१७ पावसमणिज्ज १७२१ संजइयं १८५४२ मियापुत्त १९९९ महनियंठिय २०६० समुद्द पालियज्ज २१२४ तहयरहनेमि २२४९ केसीगोयम २३ ८९ समिइयं २४२७ जन्न इज्जाय २५ ४३ तहसमायारी २६५२ ३ स खलुंक २७१४ मुक्खमग्गं २८३६ सम्मत्तपरक्कमंच २९७३ तवमग्ग ३०३७ चरणविहि ३१२१ पमायठाणं ३२२२ तहकम्मपयडि ३३२५ लेसाणं ३४ ६१ ४ अणगारमग्ग ३५२१ जीवाजीवविभत्ति ३६२७२ छत्तीसअज्झयणा जीपढइसुणइ गुणइ सोपावेणिज्जराविउला ५ इति श्रीउत्तराध्यन नाम सम्बद्ध गाथापञ्चकं अथ निर्युक्तिकार एव अस्य ग्रन्थस्यमाहात्म्य माह (जेकिरभवसिद्धीया०१) किलेति सम्भावनायां ये केचिन्मनुष्याः भवसिद्धिकाः भव्याः च पुनः परीत्तसंसारिकास्ते भव्याः एतानि षट्त्रिंशदुत्तराध्ययनानि अधीयन्ते अर्थात् ये अभव्याः बहुल संसारिणस्ते एतानि उत्तराध्ययनानि न अधीयन्ते न पठन्ति १ [तम्हाजिणपणत्ते अणन्तगम पज्जवेहिसंजुत्ते अज्झाए जहजोगं गुरुप्पसाया अहिज्जिज्जा २] तस्मात्कारणात् जिन प्रज्ञप्तान् अध्यायान् प्रक्रमात् उत्तराध्यायान् यथा योगं गुरुप्रसादात् अधीयेत यथा योगं इति योग उपधानाद्युचित व्यापारस्तं अनति मन्यइति यथा योगं पठेत

सूत्र

जे किरभवसिद्धीया परित्त संसारियाय जे जीवा। ते किरपढति एए छत्तीसं उत्तरज्झाए॥ १ तम्हा जिणपन्नत्ते

भाषा

जे जीव किलनिश्चे भव्यमुक्ति जावा जोग्य परित्त अल्प ससारी जे भव्यजीव ते जीव निश्चे भणे छत्तीस अध्ययन उत्तराध्ययननां १ ते कारण भणी

ष्येको याचक सोमहर्षं साध्वाचारा सेवने लब्धहर्षं १० साधु श्रीयुक्तवल्लभ सज्जनाना लक्ष्मी पूर्वीवल्लभय द्वितीय तेनाकारि प्रस्फुटादीपिकेय सिद्धा
तस्योत्तराध्यायनाम्न ११ न्यु नाधिक्य युक्तिमाद्याज्जदुक्त तदुग्रै स्वहाक्दूषय शोधनीय भ्रान्तिर्हिमौढ्यस्ति छद्मस्थपुंसो जात्याश्वोवा प्रस्खलत्येव गच्छन् १२
पूर्वंप्रणीतास्वति विस्तरास्तटीकाश्चनोमकरितामसास्ति तेजस्तताभ्य समवाप्य भास्वत्कृताम्ब बोधायसद्दीपकेय १३ ॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥

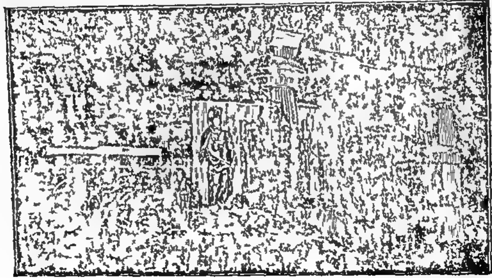

यत्ने नापि एतेउत्तराध्यायाः आढ्त्तापठनाय आरब्धाः सन्तः समाप्यन्ते सपूर्णा भवन्ति स भव्योभाग्यवान् ज्ञेय. इत्यर्थः भाग्यवतः पुरुषस्यैवनिर्विघ्नं एते अध्यायाः संपूर्णाभवन्ति यतः श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपोत्युक्तो ४ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभविरचितायां जीवाजीवविभक्ति नामकं षट्त्रिंश मध्ययनं सपूर्णं ३६ गच्छे स्वच्छतरे वृहत्खरतरेजाग्रज्जयोभासुरे श्रीमान् सूरिरभूज्जिनादि कुशलः प्रौढप्रतापान्वितः यन्नामस्मृतमात्र मेव हृदये विघ्नौघविद्रावणी सन्धत्तेमहिमानमत्र वितत मनोवाञ्छितं १ तच्छिष्यो विनयप्रभः समभवत् श्रीपाठकः पुण्यवान् सिद्धान्तोदधि तत्वरत्ननिकराविष्कार देवाचलः यद्वाक्सिन्धुरपाकरोन्मतिमतां मिथ्यामलं मानसं श्रीतद्वारगता महाति सरलाद्दयान्वयासदा २ तदनुसदनं कारुण्यस्य प्रभावनिधिर्महान् विजयतिलकःख्यातो भूमौ बभूव महामतिः सकल विशदोपाध्यायानां शिरोमणि सन्निभः विविधविबुध श्रेणि तुल्यः सदागममर्मवित्३ तुष्टावाचक पुङ्गवायतपसाध्यानेन शीलेन वा यस्मै पार्श्वजिनांघ्रि सेवन परापद्मावदीवाग्वरं शिष्यान् भूरितरांश्चकारसततः श्रीक्षेमशाखाततः शाखी च व्यरुचत्तया च मरुतां श्रीक्षेमकीर्त्तिर्गुरुः ४ सुशिष्यं क्षेमस्य प्रकट शमशिचां प्रददतं ह्युपाध्यायं ध्यानं हृदिजिन वराणां विदधतां महामेधानावागमजलधि लब्धोत्तमतटं तपोरत्नं २ मुनिषु भजतश्शान्ति रहितं ५ तच्छिष्योभूदकोदुर्नयाना माचा रत्नोन्वर्थनामापृथिव्यां सत्साधूनां पाठको द्वादशांगशास्तेजोराजं पाठकः पापहन्ता ६ तत्सद्विनेय इह वाचकमुख्य आसीत् विद्याविनोदभवन भुवनादि कीर्त्तिः श्रीहर्षकुञ्जरगणिश्च तदीयशिष्यो वैराग्य मेव सच वाचकमुद्दधार ७ लब्धिमण्डनगणिश्च ततो भूद्वाचकोविबुधवृन्दसुवन्द्यः हेमकान्ति विनयां कितगात्रोदुर्निवारहतमारविकार ८ तच्छिष्यः परवादि वृन्दवदनप्रोद्भूतयूत्यच्छलत्वालोलोकुसपच्छलस्य महतोदुर्वादवारां निधिः निःपानेविलसन्मति यतिवरस्य कुम्भजन्माकृति लक्ष्मीकीर्त्तिरिति स्फुरन्नूपततिः श्रीमानभूत्पाठकः ९ श्रीमल्लक्ष्मीकीर्त्तिसत्पाठकस्य द्वौ गुर्वाज्ञाकारिणौ सद्विनेयौ तत्रा

ना० सत्कारादिक अणदीधे थके तपे नही प० प्रज्ञावंत साधु २८ अथ सत्कार परीसहदृष्टांत मथुरानगरीयें जयसिंह राजा तेहनें इन्द्रदत्त नामा पुरोहित मिथ्यात्वोछे तेणें गोखबेठां राजमदे चारित्रिया वाटे आवतां देखी गोखथी हेठा पग करी जे हवे गुरु गोखथी हेठा नीकले तेहवे तेणें मस्तके पगदीधो तेहवो स्वरूप साधुनो श्रावक दीठो तिहांसेठएहवी प्रतिज्ञा कीधी माहरी जीवतव्य प्रमाण जोएपरोहितना पग छेद करीये तिवारे श्रेष्टि पुरोहितना छिद्रताके पिणकांई चले नही तिहांथके ते पुरोहितनो स्वरूप गुरुने कह्यो वलतो गुरु कहे महानुभाव महात्मा पूजासत्कार निन्दा ते समगिणे सत्कार असत्कार परीसह सहे वली श्रेष्टि कहे भगवन् मिथ्या त्वद्वेषीजोइयें यतः साधूणं चेई याणय पडिणीयतह अवण्णवायंच जिण वयणस्स अहियं सव्वत्थामेणवारेइ १ साधुनोआन नो उपद्रवकरणहार अवर्ण वादनो बोलण हार जिन वचन नो उत्थापक एहने यथा शक्ति शिक्षा न देतो विराध कहुंइ वलीश्रेष्टि कहे भगवन् मिथ्या त्वीनें सीखदीधी जोईये एवचन सांभली गुरु वलीश्रेष्टिने पूछ्यो हिवणाए परोहितने घरसुं हुवेछे तिवारे श्रेष्टि कहे एहने नवो अवास नीपनोछे तिहां राजा जीमवानु निहुंतर्योछे तिहां राजा आवास माहिं जीमवावेसे तिवारे तुं राजानो हाथसाही जभीराखि कहिजें स्वामीए घरमांमापे सो हिवडां अवास पडिस्ये तिरांथ कुंतेवे श्रेष्टि राजा नोतरे आवास मांहि आवे पेसे तेहवे राजाने जभीराखि कह्यो मतांपधारीएअवास पडिसीतेहवे ततकाल आवास पड्यो तिवारे राजाइं कह्युं एस्यु घाटि श्रेष्टि जाणी गुरुने थानी गुरे कह्यो राज हर्ष थको गुरुने पगे लागी वीत रागनो धर्म पडिवज्यो श्रेष्टिने ते पुरोहितनी पदवीआपि श्रेष्टिराजाने आगलि कह्यो स्वामी परोहितीये चारित्रीयाने माथे पग मूक्या हता तो एहलोकना फल देखाडिये राजापुरोहितने कडिघाल्योकेतले दिने श्रेष्टिराजा नेकहे गुरुना पग धोइ पीवेतो मूकजो तिणे हां भरी समस्तलोक समक्ष चरणोदकपायो प्रतिज्ञा सेठ पूरी कीनी जिम साधु महापुरुषे परीसहसह्यो श्रेष्टि नथी सह्यु तिम

एगो चण्णेसो जाति कुल ■ दृष्यति दृष्यादिनापरीचित चर्मात आहर्ग ग्हस्य आहारार्थं एव यतीत्येव भीम चणसेयो पुन कीदृगो भवेत् चर्मोनुप सरसाहारेनावद्य रचित पुन साधु सरसाहार भचणामत्ता वोच्चरमे पुन चनुत्कर्षीयात् सरसाहाराभिनो न कुर्यादित्यर्थं पुन पचर्व

सूत्र

सुतप्पेऽस्स पत्तव ॥ ३८॥ सोनूण मए पुव्व कम्मा नाण फलाकडा । जेणाह नाभिजाणामि पुट्ठो केणइ कन्हुई ॥३८॥

चह पच्छा उनुज्जति कम्मा नाण फला कडा । एव मसासि चप्पाण नच्चा कम्म विवागयं ॥४०॥ निरठग मि विरचो

भाषा

न करिवो इति सत्कारपरीसह दृष्टांत हिवे प्रज्ञापरीसह २ सो कहेछे से० ते प्रज्ञावंत साधु इम जाणें नू० निश्चेमए० मे पू० पूर्वजन्मातरे क० करतो ना० ग्यानको धर्ममादिक ग्यानपामि जे० जेणें करतेह नर मनुष्यपणें च० जीवादिक पदार्थ जाणुं पू० पूछ्यो थको के० कोइ मनुष्यादिक कोइ कम्या न कने तिवें ४० च० हिवे वनो प० पाछमोइ कालें उ० उदे आवस्यें क० कर्म च० चग्यान पण पामि वानो फल जे पूर्वकर्म जन्मांतरे कीधा हताइ ए० एवो परेंसे० मस्यपणु कर ज आपणी आत्माने घणो प्रज्ञापा मीने शुभाशुभकर्मना विपाक ४१ अथ प्रज्ञायां दृष्टांतमाइ उजेणीइ कालि काचार्य तेहना शिष्य प्रमादी थया जाणिनें शिष्या तरने कहो पाचसे तिहां शिष्य मूकीने गुरे सुवर्ण कृमि तट पुहताछे तिहां आपणा शिष्यनो शिष्य सागरचंद्र येला कने पहुता पिणते चोलखे नही गुरु पासे रहो सागरचद्र वखाण करे गुरने पूछे माहरा वखाणके हयो तुमे घणु यती नाय गोव सांभल्या कुण्यें गुरु कहे तुमा वखाण रूडो तिम २ अभिमान वाधें लोकनें कहे सर्व जाणु छुं इम गर्वधरे एहवे जे पूर्वे गुरे ५०० साधु मुक्याहता तिवे प्रभातियेइ गुरुपीसामनमांहि जोया किहां इ देखें नही पछे शिज्यातर श्रावकने पूछे तो श्रावक कहे तुमनेप्रमादि जाणी विहार

इति प्रज्ञावान् साधुर्न अनु तप्येत अन्येषां सत्कार दृष्ट्वाहा मम कोपि सत् कारं न करोति किमर्थं मह प्रव्रजित: इति चिन्ताप रोन भवेत् २९ अत्र आज श्रमणयो: कथा यथा मथुरायां इन्द्र दत्त: पुरोहितोस्ति सजिन शासन प्रत्यनीक: खगवाक्षस्थ: सन् अधोनिर्गच्छतो जैनयतिर्मस्तकोपरिनिज चरणं विततं करोति एव निरन्तरं कुर्वाणं तं दृष्ट्वा साधुर्न कोपि कुप्यति परमेक: श्रावक: कुपित: तत्पादच्छेद प्रतिज्ञामकरोत् अन्यानि तच्छि द्राणि अलभ मानेन तेन श्रावकेण तत्स्वरूपं गुरो: पुर: कथितं गुरुणोक्तं सहते सत्कार पुरस्कार परीषह: साधुरिति तेन श्रप्रतिना कथिता गुरु भिरुक्तं अस्य गृहे किं जायमान मस्ति तेनोक्तं नवीन प्रासादे राजानिमन्त्रामाणोस्ति पुरोहितेन गुरुभिरुक्तं तर्हित्व तत्प्रसादेन प्रविशन्त राजान करे धृत्वा प्रासादोयं पतिष्यतोति कथये अहं च प्रासादं विद्यया पातयिष्यामि ततस्तेन तथा कृते प्रासाद: पतित: राज्ञोक्तं किमिदं ज्ञात श्रेष्टि नोक्तं महाराज अनेन तव मारणाय कपटं मण्डितमभूत् ततो रुष्टेन राज्ञा स पुरोहितस्तस्य श्रेष्टिनोऽर्पित: तेन श्रेष्टिना इन्द्रकीलके तस्य पादं क्षिप्ता प्रतिज्ञापूरणार्थंश्च पिष्टमय पाद कृत्वाच्छिन्नवान् उक्तवांश्च सर्वं तत्स्वरूपं पुरोहितेनोक्तं मत: परं नैवं दृश करिष्यामीति जानुकम्पेन श्रावकेण

भाषा

कोधी गुरु सुवर्ण भूमिकाइं पहुता ते श्रावके महात्माने प्रतिबोधि गुरे कन्हे मोकल्याछिवे ते पाचसे कालिकाचार्यनो परिवार आवतो साभली सागरचन्द्र सामुहो जाइ ते सागरचन्द्रे पूछ्यु एतला साधु मां गुरु केहा तेहवे शिष्य कहे स्युं इहां नथी आव्यातेहवे सागरचन्द्र कहे एक स्थविरसाधु आव्याछे तिवारे ते पांचसे कहे इणे सागरचन्द्रे गुरुने अवगिण्या न जाण्या इम चितवी सर्व शिष्य आवी पगे लागा गुरु प्रते आपरा अवगुण खमाविवा लागा तिवारे गुरु सागर चन्द्रने कह्यं तुं गर्व मकरी सर्वजतो सर्व जाणतो सर्व वस्तु कोइ न जाणे जिम कालकाचार्ये प्रज्ञा परीसहसह्यो तिम बीजे सहिवो हिवे अज्ञान परीसहे २१ मो कहे छे निरर्थक वि० निवर्त्यो मे० मैथुन यो सु० रूडो पांचइंद्री सवर करीने जो० जीयादिक पदार्थ स० साक्षात् प्रगटना०

ममुत्त अत्र सत्कार पुरस्कार परीषह साधुभि सोढ श्रावकेण तु न सोढ इति अथ सत्कारे सति प्रज्ञा प्रकर्षापकर्षे विफलत्व न विधेय अत
प्रज्ञापरीषहोपि सोढव्य सेनूणमए पूव्व कम्मानाण फलाकडा जेणाह नाभिजाणामि पुट्ठोकेणेय कण्हुई ४ अह पच्छा उदूज्जन्ति कम्माणाण फलाकडा
एवमस्सासि अप्पाण नच्चा कम्मविवागय ४१ प्रज्ञापरीषहोपि द्विधा सोढव्य प्रज्ञा प्रकर्षे सति एव चिन्तनीय येन कारणेन केनापि पुरुषेण कुत्र
कुत्रचित् प्रश्नो पृष्ट सन् न अह पुरुष प्रश्नोत्तर जानामि तत्प्रश्नस्योत्तर ददामि सेनून इति तनून मया पूव पूर्वजन्मनि ज्ञानफलानि कर्माणि कृतानि
ज्ञान फल येषा तानि ज्ञानफलानि श्रुत ज्ञानाराधनादीनि अथ इदानी ज्ञानफलानि कर्म्माणि कृतानि पश्चादुदेष्यन्ति पश्चादुदय प्राप्स्यन्ति
कमणा विपाक ज्ञात्वाएव आमान त्व आश्वासय भो शिष्य न तु प्रज्ञा प्रकर्षे गर्व कुर्या इत्यर्थ प्रज्ञा प्रकर्षे अयमर्थ कार्य अथ प्रज्ञापकर्षे
पक्षे प्रज्ञाहीनत्वे अथ वदति येन केनचित्पुरुषेण कस्मिनचित सुगमेपि जीवादिप्रश्ने पृष्ट सन अह नाभिजानामि तनून मया पूव पूर्वभवे अज्ञान
फलानि धर्माचार्य गुरु श्रुतनिन्दारूपाणि कर्माणि कृतानिततोह प्रज्ञाहीन सञ्जातोस्मि अथाज्ञानफलानि कृतानि कर्माणि अपि पश्चात् अग्रे तनजन्मनि
उदूज्जन्ति उदेष्यन्ति उदय प्राप्स्यन्ति इति कर्मविपाक ज्ञात्वा एव आत्मान आश्वासयउदय प्राप्ताना ज्ञानावरणकर्मणा विघातार्य यत्न कार्य, कत्वा मान
मनुगामयेत्यर्थ अतोहि प्रज्ञोदये हर्षो न विधेय प्रज्ञाभावे विषादे कृतेहि आर्त्त ध्यानपरत्व न स्यात् प्रज्ञापकर्षोपरिकालिका चार्यसागरचन्द्रयो कथा
उज्जय नीत कालिकाचार्या प्रमादिन स्वशिष्यान् मुक्त्वासुवर्णकूले स्वशिष्य सागरचन्द्रस्य समीपे प्राप्तासागरचन्द्रस्तु तानिकाकिन समायातान् नोपल
क्षयति कालिकाचार्या अपि न किञ्चित्स्वस्वरूपोपलक्षण दर्शयन्ति अन्यदा सागरचन्द्रेण पर्षदि सिद्धान्त व्याख्यान प्रारब्धचमत् कृतालोका सागर चन्द्रव्या
ख्यान प्रशसन्ति कालिकाचार्याणा सागरचन्द्रेण पृष्ठ मद्व्याख्यान कोदृगन्तैरुक्त भव्यन्ते न च आचार्ये सम तर्कवाद प्रारब्ध परन्तुत्त्व तयावत्तु न

शक्नोति ~भयस्व नत्नक्षतः अथ शिष्यास्ततः शय्यातरेण तिरस्कृता. तर्यां प्राप्ताः स्वगुरुं गवेषय तत्रलिता. कालिकाचार्या समायान्तीति प्रसिद्धिं कुर्वाणाः सुवर्णभूमौ प्राप्ताः सागरचन्द्रः कालिकाचार्याः समायान्तीति श्रुत्वा पुरः गीतार्थान् प्रशाय मयापि उतमस्ति सागरचन्द्रस्तेषां सन्मुखं मायातः तस्यतैः पृष्ठं किमत्र कालिकाचार्याः समायान्तामन्ति न वा तेनोक्तं एकोर वृद्ध मायातोऽस्तिनापरं ज्ञायोति ते्षुपालनान्तः समायाताः उपलक्षिता कालिकाचार्याः प्रणतास्तैः सागरचन्द्रेण पश्चादुपलक्ष्य तेषां मिथ्या दुःकृतं दत्तं ज्ञानगा श्रुतलवगर्वितेन नतनिधर्मो यूयमागतिता इति च कथित कालिकाचार्येकतं वत्स श्रुतगर्वो न कार्यं यथा सागरचन्द्रेण श्रुतमदः अतस्त्वयापरेणे श्रुतमद. कार्यः पत्र प्रकर्ष गर्वः प्रज्ञाभावे दैन्य चिन्तनं इत्युभ यथा प्रज्ञानं अतस्तत्परोपक्रममपि मोठ्यः इति कारणादज्ञान परीषहमात् निरद्धमं मिथिरयो नेष्ठगायो सुसम्बुडो जो सक्तं नाभि जाणामि धम्मं कल्लाणपावगं ४२ तवो वहाण मादाय पडिमं पडिवज्जओ एवंपि विहरयोमे छउमं ननि यट्टई ४२ पदं निरर्थके पत्र्याभावे सति

मेहुणाओ सुसंवडो । जोसक्खं नाभिजाणामि धम्मं कल्लाण पावगं ॥४१॥ तवो वहाण मादाय पडिमं पडिवज्जओ • एवंपि विहरओ मे छउमं ननियट्टई ॥४२॥ नत्थिनूणं परेलोए इड्ढी वावि तवस्सिणो अदुवा वंचिओ मित्ति इइ भिक्खूनचिंतए ॥४३॥ अभूजिणा अत्थिजिणा अदुवावि भविस्सई । मुसंते एवमाहंसु इइ भिक्खू न चिंतए ।४४।

नथी जाणतो ध० धर्मवस्तुनो स्वभाव क० मोचनो हेतु पा० नरकनो हेतु ४२ त० तपभद्र, महाभद्रादिक प्रतिमा प० उ० सोतात भगता प० भिक्षा निप्रतिमा प० पडिवर्जीने ए० एणी परे विचरतां मे० मुझने छ० छद्मस्थ पणं न० निवर्त्तनकी टले नथी ४२ एव श्रज्ञान परीसहमांत गगापुर

नगर ने भाई वैराग्य थी दीक्षा लिधी ते माहि एक विद्यावत वीजो मूर्ख जे विद्यावत ते आचार्य पद पाम्यो अनेक शिष्यने अर्थ विचार कहता अति श्रांत खेद खिन्न हुयो तिवारे चितव्यो भणामाहि मूर्ख पण भलो जे मूर्ख दीसता गुणयत मूर्खत्व हि सखे ममापि रु चित यस्मिन् यदिष्टौ गुणा निश्चितो बहु भोजनो त्रपमना नक्त दिवाशायक कार्याकार्य विचारणाधवधि रोमानापमानेसम प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुख जीवति १ एहवो चितवतां ग्यानावरणी कर्म उपार्ज्यो केतले दिने कालकरी देवता थयो तिहांथोचवि आहीरने कुले पुत्रपणेउत्पन्न थयो कालांतरि दीक्षा लीधी तिण उतराध्ययननायोग वहता त्रिण अध्ययन करी भण्या तेहवे पाछि लाभ वनी कर्म उदय आव्यो आविलकरी असखय अध्ययन भण्या बारे वरस आविलतप करो कर्म खपावी केवल ग्यान उपनो जिम तेणे अज्ञान परिसह सह्यो तिमवीजे सहिवो ईत्यज्ञाने अषिर पुत्र कथा अग्यान परीषो सम्यक्त ने विषे सदेह सहित थायानो सभवते भणी दर्शन परीसह २२ मो कहे छे न० नथी नू० निश्चे प० परलोक इ०थामो सही आदिलब्धि रूप ऋद्धि पिण नथी त० तपस्वी अ० अथवा व० वच्योमि० माहरो आत्मा भोग थी मस्तकलो चादि करवे करी इ० एहवोभि० साधु न० न चितवी ४४ पूर्वे हुया जि० जिन सर्वज्ञ अ० छे जिनसर्वज्ञ वर्तमान काले महाविदेह खेत्रने विषे अ० अथवा आगामीइ कालेपिण भ० हुस्ये जिन सर्वज्ञ मु मृषा ते जिननो नास्ति कहे छे ए इम मा बोले मृषा इ० एहवो भि० साधु न० न चितवे ४५ अथ दर्शन परिसह दृष्टांत भूमिपुर नामा नगर आखाढ भूति नामा आचार्य तेहने घणा शिष्य क्रियावत केतलेक दिवसे आचार्यना मन माहि एहवोदर्शन सम्यक्त नो सदेह उपनोजेतिथकर हुवा छे आगे हुसी किवा नही होसी महाविदेहे जिन छे तथा नही छे देवलोक जाइके किवा नही जाय के एहवो मनमे सदेह करतोहुवो अनेमाहरा शिष्य घणाचारित्र पालिने स्वर्गे गया ते किणही पाछो आविने कह्यो नही कि अम्हे चारित्र थी देव सुख पाम्या हिवे एक लघु शिष्य सथारो कर्यो तिवारे गुरु कह्यो तुम्हे देवता हुवो

तो अम्हने कहि ज्यो हिवे ते शिष्यनी गुरु उपर राग हुंतो अने गुरे कह्यो ताहरो मुझ उपरि मोह छे तूं देवता थाजे तिवारे मुझने आवि कहो जे जे मरी हुं देवता थयुं पिणते आवी न कह्यो तिवारे आषाढ भूतो आचार्य चितवे छे चेला वल्लभ हुंता क्रिया कलाप हुंति जो देवगति पाम्या हुता तो कहतो पिण ते देवगति न थी पाम्या एहवी सका उपनी अने देवता थयो ते तो सुखमे लीन देवोने भोग राता थका नावे गतकालन जाणी हिवे गुरें चिंतव्यो जो लोकनासुख थी वाइं चुकीये इमचारित्र थी भ्रष्ट थई गच्छ छांडी एकाएकनीकल्यातेहवे लघु शिष्यदेवतानो आसन कंप्योअवधि ज्ञान करी ने देखे तो गुरु चारित्र थी पड्या छे तो हुं जई राखुं इम चिंतवी देवताइ वाटे गुरे आवता जाणी नाटकनो रचना करी गुरु तिहा गावीनेजोवा लागा तिहां छ मासलगिजोई वलो आघा चाल्यावली देवताइं संयमनो परिचाभणी वालक छह भूषण सहित विकुर्व्या तेहवेगुरु विमास्योजे गृह धर्म आदर स्युं तो धन जोई सेतो अने मुझने धन उपाववानो कारण कोई आवे नथी तो एवेडिमां वालक छे ते विणासी इम चिंतवी पालक नाम पृथवी काइ यो पूछी ते विणासी ग्रहणा लेईझो लिमे घाल्या आगलि जाता अपकाइया २ वायुकाइया ४ वनस्पतिकाइया ५ तसकाइया ६ एहवे नामे बालक ते मारी गहणा लेइ झोलीमा घाली गुरु आघा चाल्या वली देवताइं सार्थवाहनो रूप करी आचार्यने वांदी आहारनो आगह कीधु गुरु शंकित थका कहे आज अम्हारेखप नही आहारनो इम तेणे सार्थवाहे झोली छोडी देरी पाल काना आभरण ते गुरुने कहे हे भगवन् अम्हारा पुत्रनाए ग्रहणा अम्हारा पुत्र किहां इम कहे थके गुरु भयभ्रांत थई धूजवा लागो गुरुनाम धरावो एकाम करो वोजाने तुम्हे उपदेश द्यो अने जो तुमे एकाम करिस्यो तो हुं न राखिस्यं इम करतां केडे वाहिर गाइं देवमायाइ ततकाल गच्छासहित देखि गुरुने पराभव करीवा लागा तिवारे सार सरणा कीधा तिवारे देवताइ चिंतव्यो गुरे मर्वनो गम्यो पिण बोधवीज सम्यक्त नथी नींगम्यो तेकाइं नथी विणठो तत्काल आपणो रूपप्रगट करी कह्यो हे भगवन्

मैथुनात् काम सुखात् विरत निवृत्त मैथुनग्रहण दुस्त्यजत्वात् यतोह दुःकर कार्य कृतवान् योह सुसम्वृतो जितेंद्रियोपि साक्षात् स्फुट धर्म
वस्तुस्वभाव कल्याण शुभ पापक अशुभ न अभिजानाति यदि मैथुनानिवृत्तौ जितेन्द्रियत्वेपि काचिदर्थ सिद्धिर्नाभ सिद्धिर्भवेत् तदा ममज्ञान उत्पद्येत
ममतुज्ञान नोत्पन्न तदा ज्ञायाहं मैथुन अत्यज इथे वत इन्द्रिय जय अकरव पुनरित्यमपि न चिन्तयेत् तपो भद्र महाभद्र सर्वतो भद्रादि उपधान
सिद्धान्त पठनो पचाररूप एकभक्त निर्विकृति आचाम्लोपवासादिक आदाय अङ्गीकृत्य पुन प्रतिमा भिक्षो रभिग्रह विशेष क्रिया द्वादशविधा
प्रतिपद्यमानस्य मम एव विहरत साधुमार्गे विहार कुर्वतोपि छद्मस्थ ज्ञानावरणादिक कर्म न निवर्त्तते अह तप करोमि उपधान वहामि
प्रतिमाश्च धरामि साधुमार्गे विहरामि तथापि केवली न भवामीति न विचारणीय अथ अज्ञानपरीषह अत्र अज्ञानपरीषहे यथा गङ्गातीरे द्वौ
भ्रातरौ वैराग्याद्दीक्षा गृहीतवन्तौ तत्रैको विद्वान जात द्वितीयस्तु मूर्ख यो विद्वान सोऽनेक शिष्याध्यापनादिना खिन्न एव चिन्तयति अहो धन्योय
मे भ्राताय सुखेन तिष्ठति निद्रादिक अवसरे कुर्वन्नस्ति अह तु शिष्याध्यापनादि कष्टे पतितोस्मीति चिन्तयन् काव्यमिद चकार मूर्खत्व हि सखे

तुम्हेंग छ मांहि यो कदो नौकल्पा हुता वाटे आवता काइ दीठो तिवारे गुरु कहे शिष्य एक नाटक जोयो भगवन् स चेत थई ध्यान दृष्टि जोवो तो
ते दिन अने आज दिननोराति जोवो तेहवे गुरु मडलो सूर्य रोद शिष्य थी उत्तरायण दीठो छ मासनी अनतर आव्यो तिवारे देवता कहे भगवन् तुम
ने नाटक जोवतां छमास पण प्राप्त हुवा तो अम्हे देवता देवलोक नाटक प्रारभे एक नाटक ने विषे वे सहस्र वरस जाये इम भोग रगते न्यूथा
जिम आवे इम आपणो भग आविवानो सरूप जणावी धर्मे स्थिर करिदेवता देवलोकेगयु आषाढ भूत आचार्य शुद्ध चारीत्रपाली मुक्ति पुहता आषाढा
चार्य पड़िल दर्शन परिसहसह्यो तिम अन्य साधु सहिवो इति दर्शन परीसह दृष्टात ए० पूर्व कह्या ते प० परीसह स० सघलाइ पाधो से का० काश्यप

ममापि रुचितं यस्मिन् यदष्टौ गुणाः ॥ निश्चिन्तो १ बहु भोजनो २ त्रपमना ३ नक्तं दिवासायकः ४ कार्याकार्य विचारणान्ध बधिरो ५ मानापमाने समः ६ प्रायेणामय वर्जितो ७ दृढवपु ८ मूर्खः सुखं जीवति १ परं नेवं चिन्तयति नानाशास्त्र सुभाषितामृतरसैः श्रोत्रोत्सवं कुर्वतां येषां यान्ति दिनानि पण्डितजनव्यायाम खिन्नात्मनां तेषां जन्म च जीवितञ्च सफलं तैरेव भूर्भूषिता शेषैः किं पशुवद्विवेक रहितैः भूभारभूतैर्नरैः २ एवं पण्डित गुणान् अचिन्तयन् मूर्खगुणांश्चासतोपि चिन्तयन् ज्ञानावरणीयं कर्मबद्ध्वादिवं गतः ततश्च्युतो भरतक्षेत्रे आभीर पुत्रोजातः क्रमेण परिणीतः तस्य पुत्रिकाजाता सा रूपवती अन्यदा अनेकाभीराघृत भृत शकटाः कस्मिन्नगर प्रतिगच्छति असावपि तत्सार्थे घृत भृतं शकटं गृहीत्वा चलितः मार्गे सा पुत्री शकट खेट न करोति ततस्तद्रूपव्या मोहितै राभीरपुत्रैः अपथे खेटतानि शकटानि तानि सर्वाणि भग्नानि तादृशं ससार स्वरूपं दृष्ट्वा सञ्जात वैराग्यः स आभीरः तां पुत्रीं उद्वाह्य दीक्षां जग्राह उत्तराध्ययन योगोद्वहनावसरे असंखयाध्ययनोद्देशे कृते तस्य आभीरभिक्षोर्ज्ञानावरणो दयो जात न तदध्ययनमायाति आचाम्लान्येव करोति उच्चैःस्वरेण तदध्ययन निर्घोषं करोति एवञ्च कुर्वतस्तस्य द्वादशवर्षप्रान्ते अज्ञानपरीषहं सम्यग् अधि सहमानस्य केवलज्ञानं समुत्पन्नं एव अज्ञानपरीषहे आभीर साधुकथा यस्य च ज्ञाना जीर्णं स्यात् तेनापि ज्ञानपरीषहो न सोढ स्तत्रार्थे स्थूलभद्रकथा स्थूलभद्र स्वामी विहरन् बालमित्र द्विज गृहेगतः तत्र तं अदृष्ट्वा तद्भार्यां पृष्ठवान् क्व ते पतिर्गतः सा प्राह परदेशे धनार्जनार्थं गतोस्ति ततः स्वामी तद्गृहस्तम्भ मूलस्थितं निधिं पश्यन् स्तम्भाभि मुखहस्तं कृत्वा इदमीदृशं सचतादृश इति भणित्वागतः ततः कालान्तरे गृहा गतस्य विप्रस्य तद्भार्यया स्थूलभद्र स्वामिवचो ज्ञापितं तेन पण्डितेन ज्ञातं अत्रावश्यं किञ्चिदस्ति ततः खानितः स्तम्भः लब्धोनिधिः एवं स्थूलभद्रेण ज्ञानपरीषहो न सोढः शेष साधुभिरपी दृशं न कार्यं अथ अज्ञानात् दर्शनोपरिकश्चित् संसयः स्यात् अतस्तत्परीषहः कथ्यते नत्थि नूणं परलोए इड्डी

वाचितपक्खिणो चदुवावचिंयीमिति इइभिक्खू न चिन्तए ४४ अभूजिणा अत्थिजिणा अदुवावि भविस्सई मुसन्ते एवमाहसु इइभिक्खू न चिन्तए ४५
नून इति सम्भावनायां परलोको नास्ति परलोके गत कोपि नात्रागत्य वदति तस्मात्प्रत्यचस्य अभावान्नास्ति परलोक वा अथवा तपस्विन
अपि साधोरपिकाचित् ऋद्धि रामर्पौषध्यादि प्रमुखा काचिन्नास्ति न दृश्यते अथवा किं बहुना अहं वञ्चितोस्मि ऋषिभि स्थगितोस्मि इति
भिक्षुर्नचिन्तयेत् ४४ तेजिना केवलिन एव आहु कथयन्तिस्म तत् असत्य एव तत् किञ्चिनास्तीर्थं करा केवलिनो वा अभूवन् पुनर्जिना सन्ति
साम्प्रत वर्त्तमान काले महाविदेह क्षेत्रादौ सन्ति अथवाऽग्रे भविष्यन्ति इति यद्रुच्चुस्तत् असत्य प्रत्यच अदृश्यमान त्वात इति विचारे क्रियमाणे
सम्यक्त्व भङ्ग स्यात् तस्मादिति न विचारणीय सम्यक्त्व परीषह सोढव्य अत्र आचार्याषाढसूरि कथा वत्सा भूम्या आषाढभूति सूरयस्त त्र गच्छे
यीय काल करीतितत निर्जरयामासु अन्त्यसमये तेषामेव कथयन्ति युष्माभि स्वर्गेदेवी भूय मम दर्शनन्देयन्ते वत्सर्गो गच्छन्ति परमाचार्यास्ता
दर्शन न ददति तथाच सूरीणा परलोकशङ्का जायते एकदा एको विनेय प्रकाम स्वभक्त समाधि मरणसमये सूरिभिरेव मुक्त तया स्वर्गे देवी भूय
अवश्य मम दर्शनन्देय न प्रमाद्य सोपि स्वर्गदेवो जात पर विचित्र रचनानाट्यादि दर्शनेन व्यग्रत्वान्नायात तावता सूरिभिरेव चिन्तित
नास्त्येव परलोकस्तत कोपि नागच्छति यदि परलोक स्यात्तदा मच्छिष्या कृत प्रतिज्ञा अपि कथ न दर्शन दद्यु ततो मयाद्ययावद्वतानि पालि
तानि तपांसि तप्तानि कष्टानि कृतानि सर्वाण्यप्यनुष्ठानानि मुधाजातानि मुधामया भोगास्त्यक्ता वञ्चितोहमिति मिथ्यात्व प्रतिपन्ना गच्छ मुक्त्वा
एकाकि न एव लिङ्गमात्र धरानिर्गता अत्रान्तरे तेन भक्त शिष्येण देवी भूतेन कियद्दिनानि यावन्नाट्यादि विलोक्य गुरु प्रेम्णा अत्रायात मिथ्यात्व
गता गुरवो दृष्टा तत्प्रतिबोधाय कश्चिद्ग्रामस्य सीम्नि नाट्य विचक्रे तत्र आचार्या प्रणमासान् यावन्नाट्य पश्यन्त चधादिक नानु भूवन्त नाट्यञ्च

देवेन विसृष्ट आचार्या अग्रतश्चलिताः ततस्तेनैव सुरेण तेषामाचार्याणां संयम परीक्षार्थं षट्कायनामानः षट्दारकाः सर्वालङ्कार विकुर्विताः प्रथमं पृथ्वीकायिकः कुमारस्तेषामाचार्याणां दृष्टौ पतितः आचार्या आहुः भो बालभूषणानि ममार्प्पय समर्पयति तदनु सूरिभि रसौ गले गृहीतः ततश्च भयभ्रान्तो बालः प्राह प्रभो अहं पृथिवी कायिकः कुमारः अस्यां रौद्राटव्यां त्वां शरणं श्रितः भवादृशाणामेवं कर्तुं न युक्तं स्वामिन् मदुक्ताए का कथा श्रूयतां तथाहि एककुलालः खानौ मृदं खनन् मृदाक्रान्तएवं भणति जेणभिक्खं बलिन्देमि जेणपोसेमिनाइंओ सामिमही अक्क मइजायं सरणओभयं १ एतत् न्यायेन शरणागतस्यापि कथमेवं पराभवं करोषि सूरिभिरुक्तं अति पण्डितो सिबालेत्युक्त्वा तदङ्गाभरणानि गृहीतानि पात्रे क्षिप्तानि गतः पृथिवी कायिकः स्तोकान्तरे गच्छद्भिराचार्यैर्द्वितीयो पकायिक नामा बालको दृष्टः सोपि तथैव उवाच तत्कथिता कथा चेयं एकः पाटलनामा तालाचारः प्रकामं वा गमीसोऽन्यदा गङ्गा श्रोतसि प्रविष्टः तेन चक्रियमाणोऽसौ तटस्थ जनेनाभाऽपि हे पाटल प्राज्ञ किञ्चित्सूक्तं पठसोऽवा दीत् जेण रोहन्तिबोआणि जेण जीवन्तिकाछवा तस्सा मज्झेमरिस्सामि जायं सरणओभयं १ एवमप्कायिक कुमारेण कथा उक्ता तथापि तस्याभर णानि तेनाचार्येण अति पण्डितोसि कुमारेत्युक्त्वा गृहीतानि सोपि तथैवगतः अग्रेऽग्नि कायिकः कुमारस्तस्यापि तथैवोक्ति प्रत्युक्तौ तत्कथिता कथाचेदं एकस्य तापसस्य अग्निना उटजो दग्धः सवक्ति जमहं दिवा यराओय तप्पेमि महुयासिणा तेणमे उडओदड्ढो जायं सरणओभयं १ अस्मि न्नेवार्थे द्वितीयाकथा कश्चित्पथिकः पथिव्याघ्र भीत्याग्नि शरणं श्रितः तेनैव तस्यागन्दग्धं स प्राह मएवग्घसभीएणं पाओ सरणीकओ तेण दड्ढं ममं अङ्गं जायं सरणओभयं १ एवं कथाद्वय कथयतः तस्य कुमारस्य तेनाचार्येण तथैवोक्त्वा आभरणानि गृहीतानि अग्रे वायु कुमारो मिलितः तस्य तथैवोक्तिः तत्कथिता कथाचेयं एको घननिचित शरीरो वायुजानि सचाग्रदां वायु भग्नः एकोदण्डधारी मार्गे गच्छन् केनाप्युक्तः हंहो दृढांगत्वं

कथमीदृग्जात स आह जिहा साढेसु मासेसु जीसु ही हीइ माकुश्री तेणमे भज्जए अङ्ग जाय सरणश्रोभय १ एव कथां कथयतोपि तस्य कुमारस्य
याभरणानि तेनाचार्येण गृहीतानि अग्रे च वनस्पति कायिक कुमार सोपि तथैवाख्यत् तदुक्ताकथा चेय एकस्मिन् वृचे केषाञ्चित् पचिणामा
वासोस्ति तत्र वहूनि तेषा अपत्यानि जातानि अन्यदा वृचस्य मूला दुत्थिता वल्ली समन्ता द्वेष्टयन्ती वृचशिखरमारूढा एकदा तामारुह्य सर्पस्तच्छिरहा
प्राप्त नीडस्थानि पचि अपत्यानि भचितवान् पचिमातृपितृभिरुक्त जावबच्छु सुह वुच्छ पायवे निरुवद्दवे मूलाश्री उट्ठिश्रा वल्ली जाय सरण उभय१
एव सुक्तेपि वनस्पति कायकस्याभरणानि तेन आचार्येण गृहीतानि अथत्रसकायिक कुमार कथामाह एकस्मिन्नगरे परचक्रागमे पुर प्रविशतश्चा
पडालान् असोच भीत्या जनैर्निष्काश्यमानान् दृष्ट्वा मध्यस्थजना केचिदाहु अभिन्तरिश्रा भीश्रा पिलन्ती वाहिरे जणे दिस भय हमायङ्गा जाय, सरण
उभय १ त्रसकायिको द्वितोया कथामाह एकस्मिन्नगरे राजा स्वयचौर पुरोहितो भाण्डोवह तयो रन्याय दृष्ट्वा लोका परस्पर वदन्ति जत्थरा
या सयचोरी भड़िओय पुरोहिश्री दिसभज इनागरगाजाय सरणश्री भय १ अथासौ तृतीया कथामाह एकस्मिन ग्रामे एकस्य ब्राह्मणस्य पुत्री यौवन
स्थाऽतीव दर्शनीयास्ति तस्या पितुर्भोगेच्छाऽभूत् पर लज्जात कस्याप्यग्रे न कथयति दुर्बलीजात पत्न्या दुर्बलत्व कारण पृष्ठ स स्वसुता भोगेच्छा
प्राह तया प्रोक्त माविषोद् तवेच्छामह पूरयिष्यामीत्युक्त्वा माता एकान्ते पुत्री प्राह हे वत्से अस्माक पूर्व पुत्री यचाभुञ्जन्ति पश्चाद्वरस्य दीयते ततो
यच कृष्णचतुर्दश्यां त्वदा वासे समा यास्यति त्वया तस्यापमान न कार्य रात्री त्वया उद्योतो न कार्य एव मात्रा उक्ता सा पुत्री रात्रि प्रस्तावे स्वगृहे
सुप्ता यच साचात्पश्यामीति कौतुकेन दीपक कृत पर सरावस पुटे रचितस्तेन तद्गृहान्तरुद्योतो न दृश्यते रात्री तत्र पिता यचरूप प्रविष्ट
तेनेय भुक्ता रत क्लान्तश्च तत्रैव सुप्तो निद्राणश्च अनया च कौतुकेन शरावस पुट दूरीकृत्य दीपोद्योते दृष्टो जनक ज्ञात मातृकपट तया चिन्तित

यद्भवति तद्भवतु मयाऽनेनैव सह विलासः कार्यः इति चिन्तयित्वा जागरित्वेन तेन समं पुनर्भोगान् भुक्त्वा रात्रिसुप्ता सोपिसुप्तः द्वावपि निद्राणौ प्रभातेपि न जाग्रतः प्रातर्ब्राह्मणी तत्रागच्छती तथा सुप्तौ दृष्ट्वा इमां मागधिकां पठति अइ रुगाइएविसरिए चेइए अघू भगए विवायसे भित्तीइगए वि आयवे सहिसुहिए हुजणेन वुज्झई १ व्या० अचिरोद्गतकेपि च सूर्येकोर्थे प्रथमोदिते रवौ चैत्य स्तूपगते च वायसे अनेन उच्च विवस्वतोव्याह भित्तिगते च आतपे अनेन उच्चतर इत्यर्थः सखि सुखितोहुर्वाक्यालङ्कारे जनो न बुध्यते ननिद्रां जहाति अनेनात्मनो दुःखित्वं प्रकटयति साहि भर्तृ विरह दुःखिता रात्रौ न निद्रां लब्धवतीति मागधिकार्थः जननी प्रोक्तामिमां मागधिकां श्रुत्वा पुत्रि विनिद्राप्राह तुममेवह्न अम्बमालवे माहुविमा णोय जक्खमागयं जक्खो अनहुए हतायए अन्नं माय गवे सता यय १ व्याख्या तमेव अम्ब मातह इति आमन्त्रणे अलापीः उन्नावती शिक्षा समये यथा माहुत्तिमेवविमाणयत्ति यक्षमागतं विमुख मा कृथाः जक्खोयत्ति अयं यक्षः ननु अय तातकः पिता हे मातः अन्यं तातकं गवेषयेति मागधि कार्थः पुनर्माता भणति नवमासह कुच्छिधारिया जस्सापस्स पुरीसमद्दियं धूया एतएमि गेहिओ हरिओ सरणासरणयं १ व्याख्या नवमासान् यावत् या कुक्षौ धारिता यस्याः प्रश्रवणं पुरीषं च मर्दितं धूया एतएत्ति तया दुहिता मित्ति मे मम गेहिको भर्त्ता हृतः चौरित स्ततो हेतोः शरणं अशरणं मम जात मिति गम्यं हितं कुर्वत्या मम अहितं जातमिति मागधिकार्थः यथा तस्याः पुत्र्या मातृपितृभ्यां विनाशः कृतस्तथा मातृपितृतुल्येन भवता मद्विनाशः क्रियमाणोस्ति एवं त्रसकायिकेनोक्तेपि स आचार्यो न निवर्त्तते अथ त्रसकायिकश्चतुर्थी कथामाह एकस्मिन् ग्रामे एकेन ब्राह्मणेन यज्ञार्थं सरोकारिसरः समीपे वनमपि च तत्रानेकान् पशून् जुह्वत् द्विजो मृतस्तत्रैव ग्रामेऽजोऽजनि स चरणार्थं बहिर्याति सरोवनं च पश्यति ततो जातिस्मरणवान् जातः अन्यदा तत्सुतेन यज्ञः कर्तुमारेभे तदर्थमसावेवाजस्तेन सुतेन तत्रैव सरोवरे नीयमानो गाढस्वरेण पूत्कारं कुर्वन् केनचिन्मुनिना सातिशयज्ञानेन दृष्टो

भणितश्च विप्रदत्तुणायैते क्षगलतद् आरोविप्ररुकव जन्न पवत्तणते कोयओ काइ लूकूसुकव १ विप्रदत्ति देवीवचनत तटाकिकेत्यर्थ यति प्रणीतामिमां मागधिका श्रुत्वा अजो जातिस्मरणधरो मौनवान् जात तत्पुत्रेण साधु पृष्ट कथमसौ मौनीजात साधु प्राह अय त्वयिता अथयागकरणादज एवजात त पयेगोत्त अत्राथे अभिज्ञान किं साधु प्राह तव गृहागणे भूनिहित निधि असौ पादाग्रेण दर्शयिष्यति ततस्तथैव तेनाजेन सत पुत्रस्य अजस्य च धर्म प्राप्तिर्द्वयोरपि देवलोक गतिर्जाता एव तेन ब्राह्मणेन शरण मे भविष्यतीति कृत्वा तटाकसमीपे यज्ञारामो विहित स एवास्य वधस्थानतया भयनेन शरणाद्भयमुत्थितमिति शब्दपद जात एव भवन्तोपि शरणागतानामस्माक अनर्थकारिणो जाता एवमुक्तेपि वसकाधिक कुमारस्याभरणानि गृहीतानि एव पञ्चामपि कुमारकाणां पंडितवादिनो यूयमित्युक्ता भरणान्यादायाग्रे चलित सूरि पुनस्तेन देवेन सम्यक्त परीक्षार्थं दारक अणाद्यलंकृता साध्वी का दर्शिता ता दृष्ट्वा सूरिरेव भाष्यत् हे प्रवचनोड्डाहकारिके दूरतो अजमुख मा दर्शय रुष्टया तया उक्त राईसरिसवमित्ताइ परिच्छिद्दाइ पाससि अप्पणो बिल्लमित्ताइ अपच्छिद्दाइ न पाससि १ तव पतद्ग्रहे किमस्तीति तया प्रत्युतोपालब्धस्तथाप्यसौ न प्रतिबुद्ध अग्रे चलिता तेन आचार्येण स्कन्धावारगतो राजा दृष्ट तेन राज्ञा आचार्यो वन्दित प्रोक्त च हे प्रभो पात्र कल्प्यप्रासुकमोदकान गृहाण तत स पात्रचिंताभरणदर्शनभीत्याऽवदत् अद्यमयाहार न करिष्ये राज्ञा च हठात् झोलिकातः पात्र कर्षित आभरणानि दृष्टानि राज्ञोक्त हे अनार्य किं त्वया मत्पुत्रा व्यापादिता इत्यादिवचनै स्तर्जित सूरिर्भयभ्रांतो न किञ्चिदवक्ति पश्चान्मायाजाल संहृत्य सग्रिथदेव प्रकटीभूत स्ववृत्तान्त अचकथत् एव चोपदिष्टवान हे प्रभो यथा त्वया नाट्य पश्यता षण्मासान् यावत् क्षुत्तृषा न ज्ञाता एव देवा अपि दिव्यनाट्य पश्यन्तो न किञ्चित् स्मरन्ति नाप्यत्रागमनोत्साह कुर्वन्ति यत सिद्धांतेप्युक्त सकल दिव्वपेम्म विसयपसत्ता सम्मत्तकत्तव्वा अणहीणमणुयकज्जा नरभवमसुह न इंतिसुरा १ इत्यादि शिष्यदेववाक्यै सम्प्रतिबुद्ध सिद्धान्तवचनास्था कृत्वा

उत्तराध्ययने परिषहाधिकारं संपूर्णं भाविताात्मा अणगार बूंटेराय जी तच्छिष्य भगवान विजय साधुना संशोधितम् ।

पुनः सयमे लीनः पूर्वं तेन दर्शन परीषहो न सोढः पश्चात्सोढः अथ कस्य कर्मण उदये कः परीषहोदयः स्यादित्याह दर्शनमोहनीयोदयात् दर्शनपरीषहः स्यात् ज्ञानावरणीयोदये प्रज्ञा परीषहः स्यात् तस्यैवोदये अज्ञानपरीषहोपि स्यात् अंतरायकर्मोदयेऽलाभ परीषहः स्यात् चारित्रमोहनीयकर्मोदये आक्रोश १ अरति २ स्त्री ३ नैषेधिक्या ४ अचेल ५ याञ्चा ६ सत्काराः ७ एते सप्तपरीषहा उत्पद्यन्ते शेषाः एकादशवेदनीय कर्मोदये उत्पद्यन्ते ४५ अथ सर्वोपसंहारगाथामाह एए परीसहा सव्वे कासवेण पवेईया जे भिक्खू न विहन्नेज्जा पुट्ठो केणइकन्हुइत्तिबेमि ४६ एव द्वाविंशतिः सर्वे परीषहाः काश्यपेन श्रीमहावीरेण प्रवेदिताः प्रकर्षेण ज्ञात्वा यान् ज्ञात्वा भिक्षुः साधुः केनापि परीषहेण स्पृष्टः सन् कुत्रचित् कस्मिंश्चित्प्रदेशे कस्मिंश्चित्काले वा न विहन्येत सयमात् न पात्येत ४६ इदं हि कर्मप्रवादनामाष्टमो हि पूर्वस्तस्य सप्तदश प्राभृतं तस्योद्धारलेशं द्वितीय अध्ययन उत्तराध्ययनस्य इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्यलक्ष्मीवल्लभ गणिविरचितायां द्वितीयं अध्ययनं संपूर्णं ॥२॥ अथ द्वितीयाध्ययनेन

सूत्र

एए परीसहासव्वे कासवेणं पवेइया । जेभिक्खू नविहन्नेज्जा पुट्ठो केणइ कण्हुइ इत्तिबेमि ॥४५॥ परीसहज्झयणं

भाषा

गोत्रेन्द्र श्रीमहावीर देवे प० प्ररूप्या छे जे० जे धीर्यवंत भि० साधु न० नहणे सयम पु० पीडो थको के० बावीस माहिलो एक कुंणे कइ परीसह क० कोईक स्थानकने विषे इति सुधर्मा स्वामी जंबू स्वामी प्रते इम कह्युं ४६ जिममें श्री महावीर कन्हे सांभल्यो हुतो तिम हुं तुझ प्रते कहुछुं इति परीसह अध्ययन नार्थ समाप्त २ पाछिले अध्ययनेबावीसपरीसहकह्या ते स्यूं अवीलंवी २२परिसहसहे इमशिष्यपूछे थके हिवेगुरु कहेछे च्यार अंगपामता

तृतीयाध्ययनस्य सम्बन्धमाह। किमालम्बन कृत्वा एते परीषहा सोढव्या इति प्रश्ने उत्तर चतुरङ्गदुर्लभत्वालम्बनेन सम्बन्धमाह चत्तारिपरमङ्गाणि दुल्लहाणीह जंतुणो माणुसत्तं सुई सद्धा संजममिय वीरियं १ एतानि चत्वारि परमाङ्गाणि परमानि उत्कृष्टानि अङ्गानि मोक्षसाधनोपायानि परमत्व हि एतेषां प्राप्ति विना मुक्तिप्राप्तेरभावात् कथंभूतानि परमाङ्गानि जन्तो जीवस्य दुर्लभानि एतानि कानि मनुष्यत्व मनुष्यजन्म पुन श्रुतिधर्मस्य श्रवण पुन श्रद्धा धर्मे रुचि पुन संजममि संजमे साध्वाचार पालने वीर्यं सामर्थं बलस्य स्फोरण अत चुल्लग पासग धन्ने जूए रयणे यसुमिण चक्कय चम्मयुगे परमाणू दस दिट्ठं ता मणु यलंभे १ दश दृष्टांतवत् मनुष्यत्व दुर्लभ उक्त तत्र चोल्लग दृष्टान्तो यथा चोल्लग परिपाटी भोजन तदर्थं कथा कांपिल्यनगरे ब्रह्मराजा चलनी भार्या तयो पुत्रो ब्रह्मदत्त एकदा मृत पिता ब्रह्मपुत्रो बाल इति कृत्वा मित्रद्वय प्रहितो दीर्घपृष्ठनामा राजा तत्राज्य रक्षति॰ चुल

मूल

सम्मत्त ॥२॥ चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणी हजंतुणो। माणुसत्तं सुईसद्धा संजममियवीरियं ।१। समावन्नाण

भाषा

दुर्लभ छे जाणिसम्यक प्रकारे २२ परीसहा अहीयासे सहे ते भणी चौरगी नामा तीजो अध्ययन वखाणीये छे एहवो सबध कहे छे च त्तारि० च्यार परमंगाणि क० परम उत्कृष्टो मोक्षसाधनोपाय दुल्लहाणी हजंतुणो क० दुर्लभ इस संसारमे जीवीकु माणुसत्त क० मनुष्य जन्म १ सुद क०। धर्मका सुणना २ सद्धा क० धर्ममे रुचि। ३ संजम मियवीरिय क० संजममे वीर्यका फोरणा ४ अथ तृतीयाध्ययने कथा संसार माहि प्राणीने मनुष्यनो भव दुर्लभ छे तिण उपरि दश दृष्टांत शास्त्र मांहि कह्या ते लीखीये छे गाथा चुल्लग १ पासग २ धन्ने ३ जूये ४ रयणेय ५ सुमिण६ चक्केय ७ चम्म ८ युग ९ परिमाण १० दसदि ट्ठतामणुय भवि १ ए दश दृष्टांतनो संक्षेप थी समझिवा मात्र भावार्थ लिखीये छे विस्तरार्थ बीजा ग्रंथ थी गुरुसमीप थको साभलवी जाणवी पहिले दृष्टांते चूल्लग कहता भोजन तेहनो दृष्टांत ते किम जिम बारमो चक्रवर्त्ति ब्रह्मदत्त बाल पणे माता

चूलणीये विषय विकारे करीने परवस छती राजा दिर्घं स्यो आसक्तथइ ते ब्रह्मदत्त जाणी ते दीर्घ रायने प्रतिबोधिवा भणी दृष्टांत देखाड्या एकदा पद्म नागणीने गोणससर्प्प एकठा करी गोणसने प्रहार मूको कह्यु अरे पापिणी गोणस तुम्हने पद्म नागणी केहो संग वली अनेरे प्रस्तावे राजहंसी अने काग लोएकठा करी काग प्रते कह्यु रे पापीकागतोने राजहसी नो केहो सग इम कहो ता जाणे आहण्डो इम दीर्घ राय देखी भयभ्रांत थई चूलणीने कह्यो हु ताहरा पुत्त थी विहु तिण कारण जाइस्यु एहवो सांभली चूलणी रागे करी कह्यो हु विणास स्यू तु निश्चंत रहे इम कही पुत्त विणासवा भणी ला खनो घर कराव्यो ते कूड मन्त्रीश्वर जाणी कांपिल पुरनगरने परसरे गंगानदीने उपकण्ठे उडज करी रह्यो तिहां हते सुरङ्गखणावी लाखाहरने आंगणे आंण मूंकी आपणो पुत्त ब्रह्मदत्तने पासि मुंक्यो एक चिणमात्र एह थको वेगलोम थाइसि ए पुरुष रतन छे एहने जो खम घणी तेणे कारणे यतन सूं राख्यो जोइये यतः यस्मिन् कुले यः पुरुषप्रधानं स एव यत्नेन हि रक्षणीय तस्मिन् विनष्टे सकल विनष्टं इति वचनात् एहवा सीखामणतात नो अंगीकार करी मंत्रीश्वरनो वेटो रात दिन कुमरनो सेवा करे एक क्षणवेगलो न थावे इम करता कुमर परणावो तेणे घर आव्यो अर्द्धरात्रि आवि चुलणीइ तिहां अग्नि लगाडी लाखाघर गनोर पडीवा लागो तिवारे मंत्रीश्वरने पुत्रे उठो कह्यु कुमरजी जागो तिवार ब्रह्मदत्त वेठो थयु विहु पासे घर प्रज्वलतो दीठो परं उत्तम पणा थी निगारे कमन मांहि भयनाख्यो एहवो साहस जाणो परोख्या निमित्ते मंत्रीने वेटे कुमर वोलाव्यो कह्यो जो हिवे स्यु थास्ये तिवारे कुमर कहे जेहवो भवितव्य छे तेहनो समवाय मिलस्ये इसी कुमरनो वचन सांभलो मन्त्रीश्वरने चितव्यो ए कुमर साहसनो निधान पुरुषमहाप्रधान छे एहने कार्यसिद्धि स्वाधीन हुस्ये यतः उद्यमं साहसं धैर्यं वल वुद्धिपराक्रमे षडेते यस्य विद्यन्ते तस्य देवोपि शङ्कते ॥१॥ इसी जाणी वुद्धिनो परीक्षा भणी कुमर पूछे कुमर जो जिवारे वन मांहि दावा

एहवो विचित्र कर्मनी गति छे इम जाणी मन मांहि चिंतवे छे किण ही उपाय विना दर्शन चक्रवर्तिनो सुलभ नही थाये इम चिंतवी घणो लांबा वांस लेई तेहने अग्रे पुराणा खासडानी माला करी बांधाधि बांधि स्तंभतणोपरीरोपीवइठो तेतले चक्रवर्ति रे वाडी नीकल्यो चक्रवर्ति ते ब्राह्मणदेखी वग्राग्रि धजा सरीषी माला देखीवोलाव्यो ए कुण छे तेतले एकने कहतां दश पनरे तेडीवा गया ब्राह्मण तेडी आंण्यो तेतले दृष्टिगोचर आव्यो ते तले ओलख्यो चक्रवर्ति मनमांहि ओलख्यो दोहिलो वेलानो मित्र जांणी अत्यंत आदर सम्मान देई अभ्युत्थान कीधो एहवो देखी समस्त मुकटवंध राजाप्रमुख सभा लोक विस्मित लोक थयो ए दरिद्रवां भणीयाने एतलो आदर केहवो इम न जाणे ए महात्म पुरुष छेहडो न देखाडे इणे कारणे अपूर्व वस्त्र पहि रावी आपणो अर्धासने पालंखोवेसारी आगत स्वागत पूर्वक समाधि पूछी सहित रेवाडीई जई राजभुवनमांहि आव्याछे स्नान मंजन अलंकारमंडित करी भोजन मंडप वेसारी भोजन कराव्यो केतला एक दिन माहो माहिवार्ता विनोद गोष्टि रमत क्रीडा करतां दिवस उल्या ते तले चक्रवर्तिइं ब्राह्म ण प्रते कह्यु अहो मित्र सुभ कल्हेकुछले ताहरे मन रुचि आवि ते मांगि जिम ते तुम्हने देईवाचाउरण थाउ जे भणी कह्यो राज्यं यातु श्रियो यातु प्राणा यातु मलोमसाः क्षतं तेन हारितं ।२। पत्थर रेहा विहडे जतु महु तेण घडीय दिवसेणं। सपुरिसा नवयणं काले नगरएन विहडंति ।३। इण कारणे अपणी वाचा प्रतिपालु राज्यलक्ष्मी सफल करुं यतः किंताएलच्छीए सेसफल रयणकोस तुल्लाए जाससयणे हि नभूत्ता । जानहु दिट्ठा खलजणेहिं ।१। तिवारे विप्रने एहवो मतो आवो जेह भणी मनुष्यने कर्म ने अनुसारे बुद्धि ऊपजे सा सा संपद्यते बुद्धिः सा मति सा च भावना । साहायातादृशा श्रे या यादृशी भवितव्यता ।१। चक्रवर्तिने ब्राह्मण इसी कह्यो स्वामी माहरे स्त्री छे तेहस्यु संगत करी तुम समीपे मांगु राजाइं कह्यो जे इम तो जई पूछ आवो सघाते वणा मनुष्य घोडला देई ते ब्राह्मण घरे मोकल्यो राजानी अनुग्रह ते घरे आव्यो घणा द्रव्य स्यु परिवर्यो स्त्रीरलियाईतथई आगत

नागत पश्यशालादि पण कोयां ममाधि पूछो भोजन कीया पनतर फो पूछो राजा ब्रह्मदत्त सन्तुष्ट हुवो छे तह समोप स्यु मांगीये तिवारे स्त्रीए जाण्यो ए देश भण्डारनो धणी थास्ये तो मुझने छांडो परिणस्ये जे भणी कह्यो प्रथम महिला प्रथम घर घोडा चाकरनोहि अवमाणस ठाकुर थयो सब विरचे विह चनाइ ।१। इसो जाणी स्त्रीइ भरतार प्रते सवेदीया वाने कह्यो स्वामी आपण ब्राह्मणको जे घणो देशभण्डारादिक माग स्यो तो ब्राह्मण क्रिया थी भट हुस्ये ते भणी कह्यु छे कृषि वाणिज्य गो रक्षा राजसेवा चिकित्सित यत पजलिने पहिमाष नीरस देखे मीठतो जिम पाणी तिम प्राण जतन करता जाइस्ये । रजोयका भयाण जो जोवे तो धर्म करो उडवि जास्ये प्राय तडके नागे वेह जिम २ इम जाणी धन धान्यनो तृष्णा छांडोये जे घणा सोना रूपा रत्नमुक्ताफल मेलीये ते पुण्य मयाते कोइ चाले नहीं जे मणिनी कोडि धान्य एकठा करे तो पिण भोगवे जसेरस्यावे जे घणा मन्दिर प्रासाद करावे तो पुण्यभोगमचक प्रमाण भूमि आवे जो एतले घणे परिग्रहे स्यो कार्य छे सर्व छेहडे मूकी जाइसी इण कारणे विप्राने दक्षिणा सहित भोजन मांगिवानो कार्य छे इम विद ब्राह्मणसवेग दोपाव्यो ब्राह्मण पतरह भावनो भजाण मुग्धपिण तेहि वचने राचो तेतलोज प्रमाण करो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति समोप आवो जेतलो स्त्रीइ कह्यो हु तो तेतलो मांग्यो चक्रवर्ति कहे एस्यु मांग्यो घणु कांन मागि ब्राह्मण बलतो कह्यो माहरे घणु स्यु करवो छे मुझने जेतलो तुम्हारो आज्ञा वर्ते तेतला मारे घरे एकेका भोजन अन्ह विहु स्त्रीभरतारने एकेको दीनार दक्षिणा अपावो एतले कहे हते चक्रवर्ति चिन्तव्यो जेहने जेतलो सामर्थ्य होइ तेतलोज ले पिण अधिको न थावे जिम कुभतलाव माहि घालोये तो पुण्यप्रमाणोपेत पाणी ल्ये पयरा समुद्र माहि बुण घालिये तो ते तलो पाणी ले पर अधिको लेइ न सके तिम एवापडो ब्राह्मण अधिको लेइ न सके इसो जाणी तेहनो वचन प्रमाण करी ब्राह्मणीने ब्राह्मण सवे पहिलो आपणे घरनोमन्यो भक्तिसहित सूर्यपाक रसवती जेमवी जिमाडो दक्षिणा देइ सतोषा पोंजे दिन

वीजाने निमित्ता भोजन दक्षिणा दीधो परजे रस सूर्यपाकरसवती जीमतां हुवो तेहने अंतसमे भागि रसनउपनो सांभुहो पश्चात्तापि पञ्चो सूर्यपाक रसवती वली किहां लाभस्यें वली चक्रवर्तिने घरवारोकदे आविस्ये एहवो विमासी एकेके दिने घणे घरे जीमतां दक्षिणा लेतां छ खण्डपुरी करी वली चक्रवर्तिने घरे सूर्यपाक रसवती जिमवा लहे इम संभवे तिवारे शिष्य कहे छे भगवन् एगाढा दुर्लभ दीसे छे तिवारे श्रीगुरु कहे ए दृष्टान्त मनुष्यनाभव लहिवा उपरि छे जेहवो सूर्यपाक रसवतीनो भोजन तेहवो मनुष्य जन्म कदाचितब्राह्मण भोजन पावे पर मनुष्यनो भव हारव्यो पामतां दुर्लभ छे इति पहिलो दृष्टांत ॥१॥ अथ द्वितीय पासक दृष्टांत। पाडलीपुर नगरि राजा नन्दराज्य पाले तेहने वारे एक ग्रामे एक ब्राह्मण वसे ते श्रावक वारे व्रत पाले तेहने घरे पुत्र जायो ते दांत सहित देखि माताने अचरीज उपनो तिवारे निमितिये पृछ्यो एस्यूं कारण छे निमितिइ कह्यो ए राजा होस्ये माता पिताइ चिंतव्यो ए वाप डो जीव राज भोगवो रखे दुर्गति जावे एहवो जाणि कुचला दांत वालकना घसोने जताव्या वलि निमितिये ने कह्यो अम्हे वालकना दांत घस्या तिवारे निमितीइ कह्यो हिवे विवार राजा हुस्ये नाममात्र राजा सर्वमुद्रा व्यापारी एह जहुस्ये इसो सांभलो महोच्छव करोनें चाणक्य इसो नामदिधो ते पुत्रपालो मोटोकोधो अवसर जाणी पडित समोप भणाव्यो सर्वकला पारंगामी हुओ भला ब्राह्मणनी पुत्री परणावी विशेषे ज्योतष शास्तने विषे निपुणपणेथयो घणो भाव भेद लहे एकदा नदराजाने पाट नंदराज्यने विपेथापिवा भणो जग्न वेलाइं सिंहासण मांडो जेतले राज्यनोवेला थई ज्योतिषी तिण वेला चूका चाण क्य निरखोवेला जांणी मूलगे सिहासनवेठोतितरे राजपुरुषे देखि कह्यु अरे सिंहासननेविषे पहिलो भिख्या चर वेठो तें उठाडीवो जो आसण मांडो तेतले चाणक्यें आवी तिण आसन विषे पाणीपात्र मूंक्यो अत्रमें पानीयपात्रं स्थास्यति ते पिण आणीवोजो मांडो तिहां अत्रमे स्थास्यतिइ मकहते दंड

मश्री एाने राजपदयोनोवेदयोनोवेला तिणे चामायति करी तेतले राजपुरुषे ब्राह्मण अवध्य जाणी गम क्षयी देदवाहिरि काढ्यो पछे एक ग्राम का
पडोनें वेशेगयो तिहां ब्रह्मनो पुत्री गुविणीछे तेहने चन्द्रमापीवानो डोहलो जपनोछे ते जाणी जपायकरी तेदो हलो परे इम जाण्यो ए उत्तम पुरुषे
तहने पिण जण ए पुत्र तुम्ने भलांनो कारण नथी एहवो भय उपाय तिणमाण्योपइले दीधो कालें मोटो कुत्री जाणी लेगयो केतलें कालें घणी
धन उपार्जीएकै गामे गया तिहांडोकरोये वानकने चोर पुरसी वालके हाथखोर मांहि घाल्यो हाथवल्यो रोइवालागो तिवारे डोकरी कहे तु पिण
धाणक्यनोपरि मूलनोमेकै चाणोक्य सुणो पृछे किम चाणक्य पठित मूर्ख जे देश नगर साध्या विना पाडलीपुर जासी एहवो चाणये साचो जाणी
तिहां थी घणुदल नेइ देश गामादि साधी पाडलीपुरनो राज्य लीधो नदउथापी चन्द्रगुप्त राजा हवो आपणपेतिण राजाने सर्व मुन्द्रा व्यापारी
थयो एकदा भडार धन खूटो जाणी बुद्धिइ करी एक मोटो भालिरि वाधी पासे मदिरानो घडो मूक्यो लोकने कहेछु पिणयो वुछु राजा पीयेछे
तुमें काइ न पीवो इम कही पाइ पोते कहे अरे लोको मासम कुण द्रव्यनो धणी होसो माहरे तो एक राज्य मुन्द्रा जनेक मडल अनेरसु
वणनो कुडो एहवो कहिनाचे भालिरियाचे पुरुषछे तेहने कहये भालरि वजावीते वजावे एहवो साभली एक मदमातो एक व्यवहारोयोवोल्यो
अरे लोको कोइ अम्हो निव्य चेहजार गाऊ चाले तेहनो पद २ लख २ सोनइया मूकतो जाउ तोहो हाथी थाके पिण माहरो द्रव्य नथी कौं
पणारि भालरि एयात सु इत्तालिखिता जावे वली एक व्यवहारोयो बोल्यो माहरे गाय एतलीछे जेहनो मांखण तावीनाखूतो गगा जमुनाना
प्रवाहरोको राखु तेभणोय जाडो भालरि इम लखकोडि द्रव्यव्यवहारो यानें पासिलीधो ते पिण खूटोजाणीवलो धन उपार्जियानेका जे देवता आराध्यो
देवताइ, अनेय पासादीधा तेहयी कोइजोपोसके नही एहवो उपाय करीने सुवर्णमय थाल दीनारे भरो आगे मूकि लोकने इम कह्यु तुम्हारो

दाव पडैं तोदीनारे भयो थाल तुम्हने 'आपुंजे अम्हारो दाव पडेंतो एकदीनार लेउं इणें प्रकारे करि घणालोकरमिवा आवे परं तेहने कोईजी पोम सके दावतिणि जनोपडे तो आगलो किमजोपि इम करी टकानी कोडि उपार्जी पिण किणही धन पाछो वालो न सक्यो एकें कठीयारे पिण दीना रहारी आजन्मसु महनत करी दीनार २ करी थी ते कठीयाराने वली दुर्लभछे कदाचिकठीयाराने वली दीनार मिले तिमए मनुष्यनो भवघणुं दुर्लभ लही हारयो वले लहतां दोहिलो कदाचितेहनो दाव वलें परं मनुष्यनो भवहारयो दोहिलो लाहे एवीजो दृष्टांत जाणवो अथ तृतीयधान्य दृष्टान्त जिम कोइ देवता जम्बूद्वीप मांहि जेतला धान्यनी जातिछे सालि गोधूम जववरटीकंगूमोठ चिणा चउला कुलथ उडद मसूर वालोलति उडो अलसोमेथी तुंयरि प्रमुख अनेक तेतला धान्य सर्व एकठा करी पुंज करे मेरुपर्वत थकी उचा पिहुला ढिगला थावेते सरव एकठा करि ढिग करीनें तेहमांहि एक पायली प्रमाणखस २ नादांणा घाली घणुं वलद एकठा करीनें गाहावे तिम करें जिम एक धान्य जातिनो बीजो कण नदीसे पछेकोइएकडो करी गरढो. जराजीर्ण असो वर्षनो दुर्वल क्षांत मुखमांहि एकदांत नथी दोसतो न मोनें वेवडी स्त्रीछे एहवी स्त्रो तिहांविसाडीहाथ तेहने जूनो सूंपडी भागो आपी इम कहे डोकरीए धान्यमांहि एक पाइलीख स २ नादांणा मिलयाछैते सोही २ वीणीकण काढी २नें एपाइ लिभरी तेडोकरी स्त्री तेख सखसना कणकाढीपा इलीभरीसके तिवारे शिष्य कहे भगवन् एदृष्टात गाढो दुष्कर दीसेछे एकदांणा खसखसनो जेतलें लहे तेतले तेहनो आउखो पूरो हुवे तेपाइली किम भराइ तिवारे गुरु कहे ए दृष्टान्त मनुष्य जन्म उपरिछे तिम पाइ लीख खसने कणे भरीने तेहवो मनुष्य जन्म उत्तम गुणे करी भयो छे जिम ते पाइली भरतां दोहिलो छे अथवा कदाचि भरे परं मनुष्यनो जन्महारयो वलतो लहतां गाढो दोहिलो ए तोजो दृष्टांत जाणिवो ।३। हिवे चोथो जूवानो दृष्टांत कहे छे किणहीक नगरनो राजा राज्य पाले तेहनो घणो अंत

पुरी घणा पुत्र जाणी ते वडो पुत्रराज्य भोग थो जाणो राजाइ युवराज पदे स्थाप्यो राज सूत्र चलावे इम करतां घणो काल वउल्यो एकदा रात्रिने समे सुतां एहवो अध्यवसाय वडा पुत्रना मनमांहि ऊपनो अहो माहरा भाइ घणा राजा अजीन जाणीये केतलो राज्य पालिसे कालांतरि कुणीस्यु हुस्ये स्यु जाणोइ राज्य मुझने कि वाइस्ये नहो तिण कारण हिवडां छतो समर्थाइ राजा विणासो राज्य लुं तो रूडो इसो विचारी जाणी प्रभाति अभ्यंतर रसभाना मित्र तेडि आलोचो आपणपेराजा विनासो राज्य लीजे तो तुम्हारो हमारो मनोरथ पुहचे एहवें कह्यु हुते किणही कहां करु, किणही मा कह्यु कोइ मध्यस्थ रह्यु, पर घणे काने वात पडो प्रच्छन्न किम थावे यत षटकर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतु कर्णो न भिद्यते द्विकर्णो स्थापि मन्त्रस्यै ब्रह्माप्यन्त न गच्छति १ तदा कोइ राजानो पुत्रनो खल हुतो तिणे जइ राजाने कह्यो स्वामो तुम्हारो वडो पुत्र तुम्हाने विणसवा वांछे छे इम जाणी सावधान रहिज्यो तिवारे राजाइ मनमाहि चितव्यो हु पुत्र ऊपरि पाडूवो न चितवु छोरुकुछोरु होये पर मावीत्र कुमावीत्र न हुवे पिण आपणिनो उपाय करोइ इसो चितवो एक न विनसभामंडावो तिणे सभाइ एकसो अठोत्तर स्तंभ कराव्या एकेके स्तंभि अठोत्तरसोर हांसि करावी सभा पूरी राजा बैठो पुत्र नेतला हुतां तेतलाइ तेहावि तिहा वैसाड्या तेह आगलि इम कह्यो माता पिता ने छोरु सर्वएक सरीखा किसो वामणो घाखि किसो जीमणो तेह भणो हु राज तेहने आपिस्यु जो मुझने जूये रमता पासाना दाव पडता लगतां एकसो अठोत्तर दाव पडे एतले एकस्तंभनी अष्टोत्तर सो हांसि जीतोने इम बोजो स्तंभ अष्टोत्तर सय दाव पडे तो जीतो इम तोजोचो थो एव अष्टोत्तर सो स्तंभ जीता ते पुत्रने राज्यदेशोपर जे एक सो अठोत्तरस्तंभ जीता अष्टोत्तर सो मा स्तंभनी एक सो सात हांसो जितो एक जीपिवी थाके अने तेहनो वादन पद्यो तो वलो धुर थको दामि मांडिवा इणे परे ते राज्य छाण्यो यत्न तो थाय नावे इग्यार हजार क्रमे चौसठ दाव एकठा किम पडे एगाठो दोहोला थोगुत कहे कदाचितेकिणही देवानुभावे राजाने

जीती राज्य ले पर राज्य सरीखो मनुष्य जन्म हागाव्यो प्रमादवसते वलतो लहतां दुर्लभ जाणिवो इति चौथो दृष्टांत ।४। हिवे पांचमो रत्ननो दृष्टांत कहे छे जिम किणहीक नगरि को एक व्यवहारियो धनवान वसतो तेहने एक रतन टालि बीजा कोणही कि राणा नो व्यापार नथी इम कारते घणा रत्न एकठा करो एकडावडो भरो जोहां आपणे पेठो सुवे छे तिहां पलगकना पाया नोचली भूमि गत निधान करी मूको छे तिवारे रत्न सघ लाई बहु मूला छे पिण कोणहीक पुत्र कलत्र आगलि कहे नही जे कोई तेहने जोइये ते सहु वस्त्र आभरण गंधमालादिक आपे पिण विश्वास किणही नो न करे इम जाणि जे हुं मननोभेद कहिस्यु तो ए डिवारा सर्व रत्न आघा पाछा करी खरच स्ये नगर मांहि चोहटे सभाइ जिहा२ लोक मिल्ये तिहां२ ये छने तथा पुत्रने कहे अहो तुम्हारा धननो स्यो फल कांई व्यापार न करे कोई जाणे नहीं सर्पनी मणि सरीखी तुम्हारी सम्पदा छे कोई वाणी उतर नहीं कोइ साथ चलावो नही किणा व्यवहारी नही तो तुम स्याव्यवहारीयाजि म२ लोक कहे तिम२ तेहना पुत्र च्यारि छे ते मन माहि खोजे अम्हे किसुं करुं अम्हने पिता धन देखाडे नही जे देखाडे तो अम्हे पिण व्यापार करुं देशांतरजाउं वाणिज चलावुं अम्ह ने सहुको जाणे मांडवोया जाणे राजा लगि प्रसिद थाउं परं किम करुं अम्हने धन न देखाडे इम चिंतवतां केतलो एक काल वउलगो तेतले किणहीक नगर थी सगानोकागल आव्यो तिण माहि एहवो लिख्यो अम्हारे उच्छव छे जे तुम्हे आपण डोले नाव्यातो अम्हे तुम्हारे सगा नहीं तुम्हे अम्हारे सगा नथी एहवो आकरोवचन प्रमाण जाणि सेठ विमासोवा लागोहिवे किम कोजे एक दिसवाघ एक दिशि नदी किहां जाये ते सगानो नगरवेगलोजो जईये तोघणा दिवसलागे जेन जाइयेतो सगानो स्नेह तुटे सगपिण कि मतो डिये यतः नागडानष खंडेह सगपणसं धिनतोडिये भुंइ उपर भमते हि मिलिये जइ मरीये नही १ इसी जाणी ते दिगजावानो एकांत निश्चय कीवो तिहां चालिवा भणी सामग्री करीवा लागो तिवारे पुत्रे चितव्यो

७ भाषा
प०२
१२०

ए अवसर छे पिताने अम्हारो लघु भ्राता घणो वल्लभ छे ते आगलि धननो मर्म कहिस्ये इम जाण लघु भाइ तेडी सीखव्यो तु पिता कन्हे धन पूछि जे ज्ञहु छे भाइ ते वचन तहत करी जिवारे श्रेष्ठ चाल्यो तिवारे सहुवोलाविवा लाग्या केतली एक भूमिका थी सहु पाछा वाल्या लघुपुत्रने कह्यो तु पिण पाछो वलि तिणे अवसरि लघु पुत्रने कह्यो तात हु तुम्ह समीपि शिख पूछी वलि स्यु सेठि एकांत थइ कह्यो दीकरा शीख पूछी पुत्र विनये करीने पूछ्यो तात साभलो अम्हारो वात तुम्हे चाल्या देशांतरे ते देश इहा थी छे घणु आंतरि तुम्हने कालघणो लाग स्ये तेतले न जाणीये किणही नो केहो भाग्य जागिस्ये धन तपस्त्री इ साधनो भडा गृहस्थनो भडन एकहे छे सासु सास तेहनी किसो वे साराइ सो जाणी पिताइ पुत्र लघु उपरि स्नेह आणी ते रत्न जिण ठाम हुता ते ठामही कहीइ पुत्र पाछो वलो श्रेष्ठि नागलि सिधाया च्यारे भाइ घरे आव्या लघु इ भाइ ये पूछ्यो हुतो भाइ विहु ने धन देखाड्यो स हु मनमाहि हर्षित थया इणे अव सर देश देशथी टांडा आव्या एकेके ताडे पोठीयाना लाखा किराणा देय२ ना घणा आव्या नगरने परसरि उतर्या व्यवहारिया घणा वस्तु लेवा गया नायक इम कहे अम्हे रत्न साटे वस्तु देस्यो एवडा रत्न घणा कुण आपे तिवारे ते श्रेष्ठिने पुत्रे चितव्यो ए साटो अम्हे करी स्यु इम जाणि तिहा जइ साटो कीधो रत्न दीधा वस्तु लीधी विणजारा राजि आव्या हु ता ते रत्न लेई आपरणे ठामे गया तिवारे पछी केतलेक काले श्रेष्ठि आव्यो नगरने परसरे आवते अनेक ठाम२ना पु ज दीठा तेणे ऊपरि आपणो श्री दीकरानो नाम दीठो देखी ने चितव्यो अम्हारे आज लगी एहवा भारी व्यापार नथी जाण्या सरीखे नामे घणा हुवे छे कोइ अनेरो हुस्ये इम चितवतो नगर माहि आव्यो ते तले कोइ सगो मिल्यो तिणे हसोने इम कह्यो श्रेष्ठि ताहरे पुत्र तुम्हारो नाम प्रगट कारो वलतो श्रेष्ठ पूछ्यो ते किम तिवारे तेणे कह्यो तुम्हारो सच्यो धन विढ्यो घणी वस्तु उतरी आज नगरमाहि बीजो व्यापारकोइ नथी इसो साभली श्रेष्ठि घरे आव्योघरने द्वार घणा लोक मिल्या दीठा वाणि यानापुत्रने

वस्तु सांभलीर आवे छे श्रेष्ठिने देखि दीकरा प्रमुखसा मुहा आवी मिल्या आगत स्वागत पूछी घरमांहि आव्यो दीकरा पूछ्या ए वडो व्यापार तुम्हे किहां थी मांड्यो तिवारे पुत्रे कह्योतो ते रत्न वदले एतलाकिराणा लीधा छे अम्हे जाणु छुं घणोला भ हुस्थे तिवारे श्रेष्ठि कह्युं ते रत्ननी डावडी मुझने देखाडो जेतले डावडी दीठी ते तले मुर्छागत आवी पड्यो जीवने धन ऊपरि एहवो मोहछे इणे अवसरे शीतलोपचार कीधां चेतना वाहुडी श्रेष्ठि वेठो थयो ए डावडो माहरो तेणेज रत्ने करी भरो तिवारे दीकरा तेडा वडी भरीन सकीइं किहां घी भरे जे विण जारा न जांणीइं विहां ना तेहना नाम पुण न जाणीइं जिहां गयाते पुण ठाम न जाणीइं तिहां गया ते पुण ठाम न जाणीइ एहवोदृष्टांत गाढोदोहिलो तिवारे श्रीगुरु कहे कदाचि तेडा वडी रत्ने भराइ परं जे मनुष्य भव लही प्रमादवसे हारवीइं ते लहतां गाढोदोहिलो एतले पांचमो दृष्टांत थयो ।५। हिवे छट्ठो स्वप्ननो दृष्टांत कहे छे एक नगरे मूल देवइसे नामे राजकुमार हुंतो ते वाल पणे भणाव्यो वहुतरि कलानो जाणहुवो अनुक्रमे योवन वय पोहतो कर्मने वसे जूवानो व्यसन तेने उपनो तिण विसनने प्रमांण लोक माहि सकलङ्क हुओ जे भणी कह्यो नह घटा कर पंडुरा सजण दुज्जण हुय सूना देवल सेवीये तुज्झपसाये जूय २ इण कारणे जिहां जिहां जाइ तिहां विश्वास कोइ न करे तिवारे मूल देवे इसो चितव्यो मुझने इहां रहतां शोभा नहीं यतः माणिपणिइय्यजि विण सयुतो देस मावईज माहुज्जण करपल्लवे टंसिज्जंत भमिज्ज ।१। इसो विमासी देशांतर भणी नीकल्यो यतः दीसे विवहच्चरियं जाणिजइ सयण दुज्ज णविशेषो अप्पाणंच करिनजे हिंड जे तेण पुहवीए२ देशांतरे भमतां उजेणि नगरी आव्यो तिहां कलावंत देवदत्ता वेश्याने आपणो गुण देखाडो रजवो मांहो माहि राग जपनो तिहां रहिवा लागो अने एक गणिकावोजी तेहना घरनी गरढी अक्काते मनमांहि घणु दूहवाइ इणे अवसरे ते गणिकाने घरि अचलइसे नामे व्यहारीयो आवे छे तेहने जे जोइये आदि कपूर अंतर लवण ते व्यवहारीयो आपे तेह आगलि

योजी मकाहती तेणे कह्यो अहो अचल जेणे गुफा केसरि वस्यो करिकुल केरी काल आलसियाल तिहां करे सिह नही हते स्याल ॥१॥ इण कारण
जिहां तु आवे तिहां दरिद्री एक मूलदेव आवे तेसाथे सहित रमे खेले ए ताहरो समर्थ पणो केहो अन्हे देवदत्ता वारी पर गुण गहलीछती मानाइ
नही इसो साभली अचल व्यवहारियो मनमाहि रीसावि एकदा देवदत्ताने घरि आवी केतलो एकवार रह्यो जाते इयो कह्यो हु गांमांतरे सिधावी आउ
छु दिन पाच सात लागि स्ये इसो कहो अचल नीकल्यो ते तले मूलदेव तेहने घरि आव्यो नित्य त पणे शास्त्रनी गोष्ठि विनोद करिवा लागोदेवदत्ताइ
पिण कह्यो अचल व्यवहारी यो गामन्तर सिधाव्यो छे इसो जाणि निर्भय छती तेहने घरे रात्रि ने समे रह्यो जेतले प्रहर एक रात्रि वउली ते तले वेत
साइक पुरुष सहित द्वारे आव्यो एहवो कह्यो कि वाडि उघाडो इम साभली देवदत्ता ते मूल देवने कह्यो तुम्ह ढोलीया हेठलो केतलो कवेला रह्यो जेतले
व्यवहारी यो इहा आवी जाइ पछे नीकल ज्यो इम कह्ये छुते यख क नीचलो छुको रह्यु एहवो अवसर उलख्यो यत तम एव हि जानाति समय ना
परो जन दीपमन् दये जावे तममाश्रित्य तिष्ठति १ तेतले अचल मांहि आव्यो वली अकाइ भेद सर्व जणाव्यो ते जाणो पलाइ उपरि आवि बैठो
देवदत्ताने आगलो उभो रह्यो तेतले व्यवहारीये कह्यु अम्हे गाम भणी चाला हुता पर अकुन एहवो थयोतिण पाछा वल्या हिवे ते अकुननो उपद्रव
उता रिवा भणी काई उपाय कोधो जोइये तिवारे देवदत्ताइ कह्यु स्वामी उपाय जाणो ते करो तिवारे श्रेष्ठि कह्यो एकडांडिउन्हो पाणि करो स्नान
कोजस्ये तत्काल ते करी आण्यो तिवारे तेणे कह्यो पलाइ ऊपरि बैसी स्नान कीज स्ये स्वामी ए पलाक काविणासो श्रेष्ठि कह्यो पलाइ घणा करावी
देसु इम कही तिहांज बैठो छाडो माथे घालवामांडी तेथिपाणी मूल देव ऊपरि पडिवालागो पछे कालतोर पाणी पलाइ ऊपरि रेडवा लागो ते
जिमर मूल देवने शरीर लागे तिमर आपो पाछो या तो जाणो श्रेष्ठि कह्यो अरे पलाइ हेठलि स्यू छे कूतरो अथवा बीजो कोइ तेतले नीचलो जा

वतां मूलदेव देखी पुरुषां कन्हे सरडावी कढाव्यो यष्टिमुष्टिप्रहार घणा कीधा परं साहसपणो मूक्यो नहीं एहवो देखी इम जाण्यो कोई उत्तम वंसनो पुरुष उपनो छे इणे विमासी श्रेष्ठि सुदावी तेह प्रते कह्यु जिमहु तुनेमुकुं तिम तुं पिण मुझने मूंकी जे एहवोवचन सांभली तिहां थी नीकलतो एहवो मान म्लान जिहां थावे तिहां किम रहिये इम विमासी देशांतर भणी निकलतो कन्हे संवल पुण नथी तथापि चालतो जातां २ आगलि अटवी आवी ते मांहि पइठो एक ब्राह्मण सघाते मिलतो ते साथे जातां वे पोहर हुया तेतले एक तलाव आव्यो तेहनी पालिबैठा ब्राह्मण आपका अकेला आहार कीधो परं मूल देवने कांई आप्यो नथो तिवारे तिणि चिंतव्यो ए विहाणे मुझने देशो इम करी पाणी पीने आघाचाल्या वीजे दीवसे पिण तिमज ब्राह्मण मूलदेवने निणि लवन थया चोथे दिवसे अटवीई प्रांति आव्या तिण अवसरि ब्राह्मण कह्यु इहां थकी हुं अनेरे मार्ग जास्यु तिवारे मूलदेवे कह्यु ताहरो स्यूं नाम ब्राह्मण कह्यु माहरा वेनाम छे माता पिता नो दीधुं निर्घृण शर्म तिवारे तेहने कह्यु जे मूल देव मोटो हुस्रो सांभले तिवारे तुं वहिलो आवो जे यतः जे गुण कोधे करे किसो निहोरो तास पवगुण कोधे गुण करे हुं बलहारी जास १ इण कारण मूलदेव उतम पुरुषने अवगुणी नो पुण गुण ले इम कह्यो मुझ थको जेहवो उपगार थासो ते करिस्युं इम कह्यो आप पण वे ना तट नगरभणी पंथ पूछीने चालेया विचालि एक गामो देखि मांहि पइठो तिहां सघले घरे भम्यो परं थोडा उडदनावा कुला लहीं गामथी पाछो वली तलाव भणी आवतां गांमसन्मुख आवतो मासखमणने पारणे ऋषीश्वर मीलतो ते साचात् धर्म मूर्त्ति विख्यात कोर्त्ति मलि मलिन गात्र पात्रदेखिही जहरखी तीण प्रदक्षिणा देईवांद्या इसी मनमांहि चिंतवा लागो ए महांत ऋषिश्वरएगामगाहि आहार न पांमे तेभणी लोक सत्व रहो त अदाताछे तिणकारण हुंवली आगलेरे गाम आहारलेस्युं आजजेमे उडद लाधाछे ते ऋषीश्वरने आपस्यु इम चिंतवी कहिया लागो ऋषीश्वर मुझ कन्हे उडदनावा कुलाछे

ते तुम्हे नगे तिवारे ऋषिश्वर सूझतो जाणी आहारलीधो तेदेइ्ने अत्यत उल्लास पाम्यो वारवार साधु पाखती प्रदक्षिणा देतो एहवो वेद मुखे
भणेछे ते केहा धन्यास्तुनराश्च कुम्भा साङ्गुन्ति साडु पारणए वार २ एयदाकहतो जाणी सासन देवता आकाशमण्डल आवी वोली अहो मूलदेव
भागली विद्यु पदे जे मागस्येते आपस्यू एहवा कह्या अनतर मूलदेव कह्यो माहरे सर्वपहुतो जे एहवा ऋषिश्वरनो दर्शन थयो तिवारे कह्यो देवता
नो दर्शन नि फल न थावे यत अमोघा वासरे विद्युदमोघ निश्चिगर्जित अमोघ च मुनि वाक्य अमोघ देवदर्शन इमताहरे पानदान सतुष्ट थइ
तिवारे मूलदेवकह्यु गणियच देवदत्तरज्ज सहस्सचहत्थोण१ एहवो वचन शासण देवताइ प्रमाण करी आपणी ठामि पहुती तिहांथी मूलदेव आथो
थामते विश्रामे आहार करीने सध्याकालि वेनातटनगरने परिसरि एक धर्मशालाखे तिहां आवी रात्रिवासो रह्योतिहा घणा पथी आवी२ एकठा हुवा
पाछलो पोहरो एक रात्र छतो मूलदेवचन्द्रमा मुखमाहि प्रवेश करतो दीठो देखीने जाग्योतितले तिहा एक वीजो कापडी सूतो पिण चन्द्रमानो स्वप्न
दीठो देखिने उठ्यो अत्यत गाढि स्वरिवोजा कापडीया कम्हेजइ पुछी वारागी अहो करी एहनो स्यु फल थास्यें तिवारे एक कापडीयो वोलयो अरे
तु एतलानि निद्रामभाजो विहाणामाहि एकमोटो रोटो घृत गुड सहित लहिस्यें ते मूर्ख एतलेज हर्षित हुवो अरे मेरुडो स्वप्न दीठो जेहनो
एहवो फल थास्यें एहो सांभलि मूलदेव चितव्यो अहो वापडे भोलपणें कहीने फलनोगम्यो एहवो मूर्खपणोथु नहो काइ इम चितवी तो जातो
जरह्यु प्रभाति एयानाडी तिहा घणा फल फूल देखि मानोने सहाज्य देइने र जव्यो जिवारे मूल देवजाया लागोते तिवारे मालीये घणा फूल अपूर्व फल
आप्या तेलिइ नगर माहि स्वप्न पाठकनो घर पूछतो एकतेस केते आव्यो तिहा दारि घणावइ भइ सु परिवर्यो तेहने भणावतो वेठा देखीने नमस्कार
करि आगलि फल फूल ठोइ अवसर जाणी पूछ्यो स्वप्नफल तिवारे ब्राह्मण सांभलो मूल देवप्रते बोल्यो भोजम अनतर कहिस्ये मूलदेवि कह्य जिवारे

तुम्हे आदेस देश्यो तिवारे संभलोस्ये इम कही उठतो घणे आग्रहे भोजन भणी राख्यो भक्तिपूर्वक जीमाडी सभामंडपे बेसारी कह्यो जे माहरी कन्या परणें तो एहने फल कइं एहवो सांभली मूलदेव चिंतवा लागो अहो भाग्यनो उदयठांमजीवतांसगपिण मिलो इणेंकारण हर्षपाम्यो ब्राह्मण तिणे ज दिवस परणावीने स्वप्न फलएहवो कह्यो आज थकी सातमे दीवसएगांमनो राजा था इसि ए वचन तहत्ति करी मांन्यो सुखे तिहां रहितां सातमे दीवसते नगरनो राजा विणठो परं तेहने पुत्र कोई नथी तेभणी राज्यना प्रवर्तिक मिल्या हाथी घोड शृंगारी पउंतार असवार पाखे मोकल्या ते तिहांथको देवताने अनुभावि नगरमांहि थई बाहीर नीकल्या क्रीडा हेते मूल देववाडी मांहि आवी चंपाना छत्रनीचलिछा याइं आवीकल सढा लिगजेंद्रें सूंडादंडसूं उपाडी कुंभस्थले बेसाड्यो छत्र आपणि विकास पांम्यो चमर चलयाला गाहयते खारवकोथी गाजते वाजते अनेकहूंदसुपरि वण्यो नगरमांहि पईठो वीरसेन राजाइंसेनांम दीधो राजाभिषे कह्यो राजाधिराजा राज्य पालिवालागो तेहने प्रतापे करी सोमाडा राजा आपण आवी २ मिल्या चिहुंदिशि प्रसिद्ध थयो उजेणिना राजा सहित प्रतीमांडी देवदता अत्यंत सरम जाणी तिशरें तिहां तेडावी पटरांणी थापी तिहां अचल व्यवहारीयो देशांतरे भ्रमणकरतो तिहां आव्यो साथ नगरने परसरि उतारि भेटलेई राजाने मिलवा आव्यो राजा इंते ओलख्यो परंतेणे राजा ओलख्यो नही राजाइं मान सनमान देई अर्द्ध दाणकरी मुक्यो अनेतेसाथे दांण करिवामाडवीया मोकल्या तेहने वस्तु देखाडी तिण व्यवहारीइं लोभनेवसे गाठडि गर्भित हुंति तेन कही दाण चोरी पकडी मांडवीए एक गांठि उखेली जोइ मांही अनेरी २ बहु मूल्य वस्तुनी जाणी चोरनीं परे बाहुबांधी तोडीदीन मुख राजा आगलि आंणी उभो राख्यो राजाइं कह्यो वाणीया लोभथी वूडे अर्द्धदाणमूंक्यो तो पिण चोरीन छांडे हिवे राजानो आंण भांगीतेनो दंड तुम्हने आव्यो तिवारे अचल गाढो बीहवा लागो थरहर धूज्योके जाणेके धन गयानी थोडी

यात परजीवितव्यनो संदेह थयो एहवो देखो राना बधन थी छुडाव्यो पहिराव्यो वस्त्र तिवारे देवदत्ताइ कह्यु अचल मूल देव राजा आपणो वाधा
थको उरण थयोछे तिवारेना बोल तुम्हे सभारो देवदत्ता नाथरसाहि तुम्हे इम कह्यु जिमहु तुम्हने मूकु छु तिम तु तुझने मूकीजेए प्रस्ताव
आविल्यो तेह देवदत्ताएमूलदेवइ इम सांभली पगे लागी खमाव्यो राजाइ सदाय मूकी विसर्ज्यो ते कुशलि आपणे घरे गयो ते ब्राह्मण निद्दण
धर्मे मूल देवराजा थयो साभलो तिहां आविने मिल्यो तेहने एक गाम देइ अदृष्ट सेवक करी मोंकल्यो इम प्रताप दिनकर सरीखो दीपतो राजा
तिणकापडीइ साभलो पछीताव्यो मे चद्रमारो स्वप्नरोटलामाहि आलिनो गम्यो मूल देवने इण परिफल्यो जे वलीहिवे चद्रमारो स्वप्न देखु मूल
देवनीपरि सफल करु इसो जाणि रात्रि चितवीर सूये वायरो आहारलेर पर स्वप्न चद्रमाकि मदेखे ए दृष्टात दोहिलो तिवारे गुरु कहे द्रादा
थिएचद्रमानो स्वप्न हार्‍यो यनो लहे पर मनुष्यजन्म आलिनो गम्यो प्रमादवसे लहता दुर्लभछे एतलेक दृष्टात थया ६ हिवे ७मो चक्रनो दृष्टात
कहिछे इन्द्रपुर नगरमे इन्द्रराजा तेहने २२ वेटा तेहवे राजाइ मन्त्रीनो पुत्री परणी तेहने पुत्र हुओ तेहनो सुरेन्द्र दत्त नाम दीधो एकदा
कोइ वचन छलि राजाइ मन्त्रीनो बेटी छोडी पीहर रहे मन्त्रीसरे आपणी बेटीनो बेटो भणायो सास्त्रकलाइ पारगामी थयो तेहवे मथुरा
नगरीये राजा जित शत्रु तेहनीबेटीनोइन्निकन्या तेइम कहे जे कोइ राजा राधावेध साधे तिको परण ते तिहां जितशत्रु राजाइ राधाविधमडाव्यो
इम एक मडप मडायो मोटो तिहां एक मोटो स्तभ रोपीते स्तभने मस्तके एक काष्टनी पूतली मांडीनें तेहने तिखे आठ चक्र च्यार चक्र सृष्टि
फिरतां च्यार चक्र सहारि फिरता एहवे मिलियतनो उपाय करी माचारस्याग्रने तिहा देस २ ना राजकुमार तेडाव्या तिवारे इन्द्रपुरनो राजा आपणा
२२ वेटा सहित आव्यो मन्त्री पिण वेटीनो बेटो सघाते आण्यो सर्वं राजा राधावेध साधे पिणकोण होथीन सधाइ तियारे मन्त्री कह्यो स्वामो तुम्हारो

पुत्र मांहरि पुतीइ' जख्यो ते साधसेते राजाइ' ते मान्यो तेणें कुमरे तत्काल राधावेधने स्तम्भजई हेठि मोटी कडा हिचढावी तिहां तेलजकालतो भ्रमरावर्त भमतो करी ते तिहां ऊभो रहीने तेलमाहि प्रति विंब आठचक्र स्तंभ पूतलीनो रतो दृष्टि उपहरो मुष्टि धनुखबाण चढावी आठचक्र विचाले करीने काष्ठनो पूतलीना वामा नेत्र तेहनीकी कीवांधी तेनिहृति कन्या परणी राजा प्रधान ऊपरि राजी हवो जिम सूरेंद्र दत्त कुमार एक वार राधावेधसाध्यो परवी जीवारे न साधे एहवो एदृष्टांत जाणी वाह्य देखाड्यो हिवे अंतरंग कहेछे जिम ए मंडपति मए संसार जिम स्तंभ उपरि काष्ठनी पूतली तिम मनुष्य जन्म विषे तत्व बुद्धि जे आठचक्रते आठ कर्म जे सृष्टि संहारते शुभा शुभ जांणवा जेहे ठिवाल२ तेतिलते कषायादिक प्रमाद ते मांहि वर्तती निरती दृष्टी ऊपहरी मुष्टीते शुभध्यान तेणें करी आठकर्मने विवरे थयेहु'ते मनुष्य जन्मने विषे तत्व बुद्धि पामीते पूतलीनीकी कीवे धेएपुण दोहिलो एकवार कदाचिलही आ लिहारवेतो वो जीवारलहतां दुर्लभछे एसातमो दृष्टांत थयो ५ हिवे आठमो कूर्मनो दृष्टांत कहेछे जिम कोई एक मोटो द्रह अगाधजल पूरि घणे विस्तारछे तेह ऊपरि आठ सेवा लना पुड वल्याछे तेह मांहि अनेक जलचर जीव मच्छ कच्छप पाटी नक्र चक्र गाहक सुसमार प्रमुख जीवना घणा कुल वसेछे तिहांते द्रहने पासे एक वीलनो वृक्षछे तेहने विषे अनेक फल परिपक्वछे तेमांहिलोएक फल टुटीने द्रह मांहि पड्यो आठसेवालना पुड भेदाणा मोटोछिद्र थयो ततले एक काछिवो गरढो कर्मने योगे भमतो२ तिण ठिकाणें आव्यो तिहां अदृष्टपूर्वक छिद्र दीठो देखिनेइसोचिं तवीवा लागो एस्युंदीसेछे आज लगए दीसतो नही इम जांणि तिहां मूखकाढी जोइ वालागो इणें अवसर आसोजी पूर्णमानी रात्रिछे तिहां सोलेकला संपूर्ण चन्द्रमा ग्रहगण नक्षत्र ताराएमंडित निर्मलो अमृतश्रावी नयनानन्द कारी जगत्जन तापहारी एहवो दीठो देखिनें मनहांहि अत्यन्त आश्चर्य पूरि थयो चिन्तविवा लागो मीठो जे मीठो जे पांचे दीठो इण कारण

एहवो कौतुक आपणा कुटब सघलाने देखाडु तो रुडो एहवो चितवी द्रहमाहि जई सकल परिवार प्रते कह्यो अरे आवोजि तुम्हने अदृष्ट पूर्वक एक आश्चर्य देखाडु एहवो सांभली काछिवानिकोड चालि द्रह माहि अत्यत कोलाहल करी चोभ जमनो तेतले से वाल उपरि वध्यो छिद्रमुद्राणो काछिवो उरहो परहो भम्यो पर ते छिद्र नलहे जोईर थाको विलखो थयो पर ते वले वीजो काछिवो वोलगो तुमे भूला कहो तुम्हने चित्त भ्रम थयो कोइ कहे सतरोया पइतरोया एहवाज हुवे एहवा कुटवना वचन साभली चित्तने विषे पश्चात्ताप करतो विचारे छु साचो छतो पणि कूडो कीधो हिवे कोइ ते उपाय छे जिण ए पश्चात्ताप मिटे जेवलि एहवो आश्चर्य देखु अने एहने एह देखाडु तो साचो थाउ एहवो जाणि वारवार तिहा आवि जोवे पर किहां थी देखे एह वाह्यदृष्टात दुर्लभ कह्यो हिवे मनुष्य भव उपरि देखाडोयेछे जिमए द्रह तिमएससार जिम पाणि तिम जन्म मरण जिम आठ पुडो सेवाल तिम आठ कर्म जिमका छवो तिम ए ससारी जीव जिम हृच तिम यौगुरु जिम फल तिम गुरुना वचन जे छिद्र ते कर्म विवर तेण जिम चन्द्र प्रदर्शन जिम सकल सामग्री सहित मनुष्य जन्मनी लहिवो जिम तेणे काछविहाथ्यो वलवे दुर्लभ कीधो कदाचि वली ते पामे पर मनुष्य जनम प्रमादे हार्यो गाढो दुर्लभ छे ए सहु मिनो = दृष्टात थया हिवे नवमो दृष्टान्त भूसरनो कहे छे भूसरने समिल दृष्टांत ते किम लोक माहि असख्या तस मुद्र छे ते माहि सर्व थी मोटी स्वयभू रमण समुद्र छे काइ एक भूसर थको समिल जूद करी पूर्व समुद्र माहि भूसर घाले पश्चिम समुद्रे समिलते समोलवली तिणजभू सरे तिणेज छिद्र आवोविसे दोहिलो दृष्टात ते समिल भूसर एकठा किम मिले तिवारे गुरु कहे कदाचि कल्लोलनोठेलो वायुने पूर आवतोर कदाचि भूसरा स्यू समिले पर जे मनुष्यनो भवलहि प्रमाद वसे आलिमें गम्यो वली लहता दोहिलो एतले नव दृष्टात थया ॥९॥ हिवे १० मो परम माणुनो दृष्टात कहीये छे ते किम जिम कोइ सोल जाति रत्न एकठा करी तेहनो एक मोटो स्तभ अतिविस्थान सहित करे तेस्तभ दशो दिशि उद्योत

न्यास्वा सती जातः ब्रह्मदत्तेन तयो रनाचारोज्ञातः शूलाप्रोत पिष्टमय कुकुंट कुर्कुव्यादि सम्बन्ध फलदर्शनेन ताभ्या सानाचारभीताभ्या कन्या ब्रह्मदत्तस्य परिणायिता जतुग्टहञ्च कारितं तावता धनु मन्त्रिणातयो' कपटं ज्ञातं जतुग्टहात् सुरङ्गा स्पानिता सुरङ्गाद्वारेऽश्वद्वयं स्थापितं स्वपुत्रस्य वरधनुनाम्नस्तत् स्वरूपं ज्ञापितं सुरङ्गामार्गश्च दर्शितः ब्रह्मदत्तस्य वरधनुरनुचरः कृतः अन्यदा नाटं प्रेरितो ब्रह्मदत्तः कन्यासहितो जतुग्टहे सुप्तः वरधनुः प्रत्यासन्न एव सुप्तः मध्यरात्रौ मात्रा ज्वालितं ग्टहं उत्थितो ब्रह्मदत्तः स्तस्य वरधनुना सुरङ्गामार्गो दर्शित स्ततो निर्गत्य वरधनु मित्रेण सह ब्रह्मदत्तो अश्वद्वय मारुह्य दूरदेशेगतः अत्यन्त पथश्रमादश्वद्वयं मृतं पादचारेण मित्रेण सह ब्रह्मदत्त' पृथिव्यां भ्रमति एकदा दीर्घपृष्ठ प्रेषित सुभटं वृन्दं दृष्ट्वा वरधनुः पृथग्गतः कुमारस्तु एक एव भ्रमन् केनचिद्विप्रेण दृष्टः तेन सहाट वीसुत्तीर्णः पृथग् व्रजन्तं विप्रं प्राह कुमारः भो यदा मम राज्यप्राप्तिः स्यात्तदा त्वया गन्तव्यमिति अथ कुमारो महाराजाजातः चक्रवर्ति पदवीं प्राप्तः तदानीं गागतः स ब्राह्मणः उपानत् ध्वज प्रयोगेण मिलितः

भाषा

करे जाणे सूर्यनी कोडि उगी उजवा लोकरे एहवो स्तभ कारी वलो तेढाही ते रत्न जूजूयां करि गाढा खूता यांटी चूर्ण पर सूधौ सरीखो करी तिप चूर्ण वंश नी नलो भरी मेरु पर्वतनो चूलिका उपर चढी फूंक सु उडाईने ते पुद्गल सगले विखेरे किहां ईलगार मात्र पिण चूर्ण पद्यो न दीसे तेतले वले कोई कहे ए परमाणु आवी एकाठा करी पंच वर्ण रत्न मेलो वली तेहवोज स्तभ करो तिवारे स्तंभ वलतो तेहवो थातां दोहिलो तिवारे गुरु कहे कदा चिति देवताने अनुभावे ते थाये पर परमाणु लगी देवतानो दृष्टो नथी तिण कारणे ए दृष्टांत दोहिलो तथापि कदाचि ए सोहिलोहि परं जे मनुष्य भव लही प्रभाद वसे आलि हारव्यो वलती वली लहिंता दोहिलो।१०। एव दश दृष्टांत मनुष्य जन्म उपरि कह्या एहवो जांणि मनुष्य भव आर्यक्षेत्र श्रावकनो कुलदेव गुरुनी सामग्री पांमो श्रीजिन धर्म विषे प्रमाद टालिवो ए दश दृष्टांत संक्षेपे लिख्या इति दश दृष्टांत जाणवा।

मकर्णिका नर्णित कुर्म्मे इह ग्रैत्य मनोभोट मागर मनाह मात्मनी एहा मागविन्नाति गत दाम्या मधोर्य अपिनगानेर नग्नवर्त्ता मग
गुष दि कि मार्णजाति तदा विशई मवमाश पुवय मनाणाणपनानक दूषापाविन मिमाणी नाणागामपवेम्पना १ इति निगुणीम कि मलाव
वाणिना वदुनिवदन माथव मरणवेचे प्रतिमर्व भोजनं शोभाग्यगमय तथा विव माणव मधेव थजिप मार्थवामाम थमो शणिला उपाय भो
विमनथा विरमनमः देवाम भाण्डारादि माणव गादेश मार्यंगति मात्पत् जिमयोति पजिना विवारिम जो जनि यया भनम भागण तगा
नणिव भार धोति गाणीढ म वनं पानियं ताद १ इति विणिव प्रतिपय तथकिणा पगमदिने मण्डवे गाहमय्य तम भोजन कारित दोनार
दुणाप दुर्न वर्द न प्राह्मणा मवनोव ममशि ममणायेण भोजन दम्बोणा पुनयजि ग्रहे भोजन कर्तुं नायाति कदाचिदिव्यानुभावात् पायाञ्चपि
दर्द मनुष्यानमान्तर पुनमनुष्यानलाव मा यातु स्वीतोति मनुष्यत दुर्लभताया योजन दृष्टान्त प्रथम १ पाशाग दृष्टान्तो यथा गायदेवी यन्त्र
काशीदिव नगरन मान्नण पाद पमत्रा तन गहे माधव निता तदानी गदव मात्य पुरोयात दर्शित माधुना मातुभिक्ष मदेदतेभायो
राणा भविष्यतीति विचारियद यमी राणा भूता मावत नमिष्यतीति भोगा तम दृष्ण पर्णिता पुनमाहय गुरूणा दर्शित नैवन एकपुरुषाना
शिन राणा अविषति तन्न मामन्य यानिस इति मामदृण पनामी नवमानचतुर्दश विधा व्याजानि पठितवान् कामान्तरेण मरिणोत पन्यदा
वाणिकभाषा भावविराढे गता नगान्याथि न न्य पतिकामादशिन्यो वद मनारागमापार मा शपिथ भावभिर्वेगुणानिता इयव उपेचित माया
पिता दशमविनगत् मन यनमिदारेन एनो विचारितोयिमा नमन्यमो शिवालतो ययाहा गाता पाणिकेन तस्या गेह मत्य इह तथा पिव
गइ मव,भाणनाविज्ञाना भविनोना मार्ग माधमानवयाम पाणिगरिकायति यमिव पि अणोभन दृश्यगय गयागनाण पयागेह परमत्य मनोवेण

विलज्जिज्जइज्झीण विहवेण १ तथा कज्जविहूणाण नेहो अत्थ विहूणाणगओ एवंलोए पडिवन्नेति निव्वहणं कुणन्ति जे तेजए विरला २ इति चिन्तयित्वा द्रव्योपार्ज्जनार्थं नन्दराजाधिष्ठिते पाडलीपुरे गतः तत्सभाया पूर्वदिग्न्यस्ते आसने निषण्णः तत्र नन्देन समं कश्चिन्नैमित्तिकस्तत्रायातः तेनोक्तं एष ब्राह्मणो नन्दवंशस्य छायामतिक्रम्य स्थितो स्तोति तद्वाक्य श्रवणाद् भृत्यै रुत्थापितो द्वितीय आसने उपविष्टः प्रथमे करवती स्थापयति तृतीये दण्डकं चतुर्थे जपमालां पञ्चमे यज्ञोपवीतं एवञ्चेष्टां कुर्वन्नसौ नन्द भृत्यैः धृष्ठ इति ज्ञात्वायष्ट्यादिभिराच्छोटितो द्वेषमापन्न स्तदानीमेव मुखाच कोशेन भृत्यैश्च निबद्धमूल पुत्रैश्च मित्तैश्च विबुद्ध शाखं उत्पाट्य नन्दं परिवर्त्तयामि महाद्रुमं वायुरिवो ग्रवेगः २ ततोविवान्तरितो राजा भविष्यामीति ससाधु वचः स्मरन् भाग्यवन्तं पुरुषं विलोकयन्नेदिन्यां भ्रमति अन्यदानन्दस्य मयूरपालकाणां ग्रामेगतः परिव्राजक वेषेणचाणिक्यः तत्र मयूरपालक महत्तरस्य गर्भिण्याः स्त्रियाश्चन्द्रपानदोहदस्त्वात तयापितादीना मुक्तं पितादिभिर्गृहागतस्य चाणिक्यस्य उक्तं चाणिक्येनोक्तं अहं वृद्धयादोहदमस्याः पूरयिष्यामि यद्यस्याः पुत्रमष्टवार्षिकं मेददतते स्तथेति प्रतिपन्नं चाणिक्येन सासच्छिद्र मण्डपे शायिता तन्मुखाभिमुखोच्चैस्तर प्रदेशे शर्करामिश्र दुग्ध भृतस्थाल प्रवेशो विहितः तदिन्दवः तस्यामुखे पातितास्ततस्तद्दोहद पूर्त्तिर्ज्जाता कालक्रमेण पुत्रजातस्तस्य चन्द्रगुप्त इति नामदत्तं यावत् चन्द्रगुप्त स्तत्र वर्द्धते तावच्चा णिक्योपि देशान्तरे धातुर्वादादिकं शिक्षयित्वा पुत्रस्तत्रागतः स चन्द्रगुप्तो दारिकैः समं राजनीत्या क्रीडां कुर्वन् दृष्टः तत्र समागत्य सबालकयाणि क्येन याचितः बालकेनोक्तं गांण्हाण चाणिक्येनोक्तं गोस्वामी त्वां ताडयिष्यति तेनोक्तं वीरभोग्या वसुन्धरा चाणिक्येन ज्ञातं अयं महान् उदार चरित इति ज्ञात्वा कस्यचित्प्रत्यासन्न पुरुषस्य पृष्टं अय कस्य सुतः तेन मातुर्दोहद पूरकं चाणिक्यं उपलक्ष्य तव पुत्रोयमित्युक्तं चाणिक्य उवाच बालचलमया समं त्वामहं राजानं करोमि चलितश्चाणिक्येन समंबालः परदेश शिक्षितधातुर्वाद द्रव्यबलेन लोको घनोमेलितः गत्वा पाटलि पुत्रं रुद्धं

दृष्टाः विचित्रया मायया पौरान्विप्रतार्य तासर्वा दूरीकृताः ततो नगरं गृहीतं क्रमेण स सैन्यौ तौ पाटलीपुत्रपरिसरे गतौ रुद्धं तन्नगरं नन्दो धर्मद्वारेण निर्गमं अमार्गयत् ताभ्यामुक्तं एकरथे यावन्माति तावत्प्रमाणं वित्तदारासुतादिकं लात्वा निर्गच्छ नन्देन तथैव कृतं एका नन्दपुत्री रथस्थितानिर्गच्छन्ती पुनः पुनश्चन्द्रगुप्तं पश्यति नन्देन भणितं याहीति सा रथादुत्तीर्य चन्द्रगुप्तरथे गत्वा यावदारुहति तावत्तद्रथे न व आरका भग्नाः अमङ्गलमिति ज्ञात्वा चन्द्रगुप्तेन सा निषिद्धा चाणिक्येनोक्तं इमां मा निवारय नवपुरुष युगानि यावत्तव वंशोभावीति प्रतिपन्नं तेन अथ परिव्राजकराज चंद्रगुप्तचाणिक्या पाटलिपुरमध्ये प्रविष्टाः गता राजगृहे राज्य द्विधा विभज्य गृहीतं तत्रैका विषकन्यास्ति तां दृष्ट्वा परिव्राजकराजः कामविह्वलो जातः चाणिक्येन सा तस्यैव दत्ता तस्याः प्रथमं परिष्वङ्गे नैव विषार्त्तो जातः यावता चन्द्रगुप्तो विषप्रतीकारं करोति तावता चाणिक्येन भृकुटिः कृता कर्णे चेमं श्लोकं पठितवान् तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनं अर्द्धराज्यहरं मित्रं यो न हन्यात् स हन्यते १ ततश्चन्द्रगुप्तस्तत्प्रतीकाराद्दूरे भूतः परिव्राजकराजस्तु मृतः ततश्चन्द्रगुप्तः संपूर्णं राज्यं करोति परं नन्द मनुष्याश्चौर्येण देशोपद्रवं कुर्वन्ति एकदा चाणिक्यश्चौरदमनोपायं चिन्तयन्नगराद्बहिर्गतः तत्र नलदामकुविंदः स्वपुत्रं मत्कोटकैरुद्वारितं दृष्ट्वा कोपात्तेषां बिलं खनित्वा प्रज्वालयन् दृष्टश्चाणिक्येन चिन्तीतं योग्योयमिति तस्यैव तलारत्वं दत्तं पश्चात् स चौरनिग्रहं करोति प्रत्युत किञ्चिदुपकारादि न करोति तेन सर्वेपि चौराः प्रकटीकृताः व्यापादिताश्च जातं निष्कण्टकं राज्यं अथ कोशार्थं चाणिक्य उपायं करोति एकदा पाटलिपुत्र सम्बन्धिनो व्यवहारिणो भोजनार्थमाकारिता भोजनान्ते तेषां चन्द्रहासमदिरा दत्ता ते विह्वलीभूताः तावता चाणिक्यः समुत्थाय नृत्यन्नेवं पठति दोमज्झधाउरत्ताइं कंचणकुंडि आतिदंडंच राया विश्रमे सत्थी इत्यवितामेहोलवाएहि १ इदं श्रुत्वा परः कश्चित् समुत्थाय जल्पतोपि यत्र प्रकटितं तद्ददाति इतः सहस्रयोजने हस्तिपददेशे टकानां लक्षं अस्ति अत्रार्थे ममापिहोलवादयः अपरः पठति मयातिलाढ कउसोस्ति ततो मम

ते तिना बहुमधया नियतृस्मे मवार्थे ममापि ढोल वादय अन्य पठति तावन्तो मे गाव सन्ति यासा नवनीतेन महागिरिनदीप्रवाहो क्रियते
अपर प्राह तावन्तो मे वडवा सन्ति यासां एकदिनजाते किशोरपुच्छकेशै पाटलिपुरनभोमण्डल छादयामि अन्य प्राह ताद्याममेशानय सन्ति
यद्बीजे मत्यह शालयो नवीना भवन्ति भवार्थे ममापि ढोल वादय एव सर्वेषां वित्तमर्यादा श्रुत्वा चाणिक्येन यथायोग्य वित्त गृहीत अथ चाणिक्य
सुवर्णोपार्जनोपाय चिन्तयन् देवमाराध तुष्टेन देवेन तस्य जयिन पाशकादत्ता चाणिक्येन ते पासके कश्चिन्नर शिक्षित धूतार्थे प्रेरित स गृहीत
सुवर्णटङ्कस्थाल पुराभ्यन्तरे भ्रमन्नेव वक्ति यदि जयामि तदा सुवर्णटङ्कक एक गृह्णामि मा यदि अन्यो जयति तदा तस्य सुवर्णटङ्कस्थालमिद
ददामीति श्रुत्वा बहवो जनास्तेन सम द्यूतक्रीडां कुर्वन्ति पर हारिमेतव जना आश्रुवन्ति स तु सर्वत्र जयति एव पाशक युक्तस्य तत्पुरुषस्य पराजयो
दुर्लभ तथा मनुष्यत्वप्राप्तिर्दुर्लभेति पाशकदृष्टान्त २ धनेति भरतसत्कानि सर्वाण्यपि धान्यानि एकत्र समीलय मध्ये सर्षप प्रस्थ प्रक्षेप केनचिद्विना
भिधीयते मव एकोऽत्र कस्याचिद्‌तिवृद्धाया दीयते तस्या यथा सर्व धान्याना प्रत्येक पृथक्करण दुष्कर तथा मनुष्यत्वमपि दुर्लभ ३ द्यूतमिति एको राजा
तस्य अष्टोत्तर शतस्य भाल कृता सभास्ति स्तम्भे स्तम्भे च १ ८ कोणा सन्ति एकदा तस्य राज्ञ पुत्रो राजान मारयित्वा स्वय भोक्तुमीहति तस्याध्यवसा
योमन्त्रिणाज्ञात कथितश्च राज्ञे राज्ञापि पुत्रा येनायुवयोस्माकमनुक्रम न सहते स द्यूत खेलति यदि जयति तदा तस्य राज्य दीयते श्च तत्क्रीडनविधि
रय वर्तते कुमारस्य एकवारदायो भवति राज्ञो यथेच्छ दाया भवन्ति एवमष्टोत्तरशतस्तम्भाना एकैक कोण अष्टोत्तरशतवार जयति तदातस्य राज्य
दीयते तमष्येय कुर्वति राज्ञा उक्त कुमारस्य यथास्य कुमारस्य एतत्करण दुष्कर तथा मनुष्यत्वमपि दुर्लभ ४ रत्नेति एकस्मिन्नगरे कस्यचिद्
व्यवहारिणो नानारत्नानि स सनोभाव व्यापारयति अन्यदा पितरि देशान्तर गतेपुत्रै कोटिध्वजय दूरदेशान्तरीय पुरुषाणा हस्तेतानि दत्तानि जाता

राय धनपतसिंह बाहादुर का आ० सं० ४५ मा भाग

पुत्राः कोटिध्वजाः कियताकालेन पिता गृहमागतः ज्ञातवान् रत्नविक्रीणनं रोषं विधाय पुत्रानेव मूचे मम रत्नानि पश्चादापन्तु यथा तत्पश्चाद्दालनं दुष्कर तथा मनुष्यत्व मपि दुर्लभं सुविवेत्ति पाटलिपुरात् कला कुशलो मूलदेवो राजपुत्रोद्यूत व्यसनात् पित्रापराभूतो निर्गतो गुटिका क्षत वामन रूप उज्जयनी गतः तत्र तादृशा रूपेणैव तेन वीणाकला जनानां दर्शिता विस्मिताजनाः वीणाकलावार्त्ता सर्वत्र प्रसृता श्रुताच देवदत्तया वेश्यया ततस्तयास्तस्या कारणाय चेटी प्रहिता तया चागत्य एव मुक्तं भो वामन त्वां मत्स्वामिनी आकारयति तेनोक्तं १ याविचित्र विटकोटि निघृष्टा मद्यमांस निरत निकृष्ट कोमला वचसि चेतसि दुष्टतां भजन्ति गणिकां न विशिष्टाः वामनेन एवमुक्तेपि तया चेट्या विचित्रैः सामवचनैर्गृहयानीतः देवदत्तया च तेन सम वीणावादो विहितः वामनेन वीणा कलादिभि देवदत्ताजिता पादयोर्निपत्य एव मूचे भो पुरुष स्वरूपं प्रकटयः अनया कलया ज्ञायते त्वमी दृग्वामनरूपवान्नासि मूलरूपन्ते पृथग् भविष्यतीतियातंरूप प्रकटय वामनेन वेश्यावचनरञ्जितेन स्वरूपं प्रकटितं सापिश्यं तद्रूप चमत्कृता प्रकाम मागृह्य स्वगृहेतं स्वभोगासक्तं चकार अतीवतत्प्रीति पात्रं बभूव अन्यदा पूर्वं तस्यां आसक्तवान् व्यवहारि पुत्रोऽचलना मागृहे समयातः अक्कया उक्तं वत्से द्रव्य पुत्रं भज मुञ्चैनं निस्वं मूलदेवं तयाचोक्तं मूलदेवो गुणवान् अयमचलो निर्गुणः अक्कया उक्तं उभयोः परीक्षा क्रियते ताभ्यां उभयोः पार्श्वे इक्षवः आनायिताः मूलदेवेनिस्त्वच कर्पूरवासिताः सुसंस्कृता आनीता अचलेन शकटं भृत्वा इक्षव आनीताः तथाप्यक्का वचसा द्रव्य पुत्रेण पराभूतो मूलदेवो बेन्नातटं प्रस्थितः अटव्यां गच्छतो मूलदेवस्योपवासत्रयं जातं चतुर्थे दिवसेकापिग्रामे भिक्षायां राद्धमाषालब्धाः मूलदेवेन तद्भक्षणार्थं सरसि गच्छता कश्चिन्महातपस्वी दृष्टः तदभिमुखं गत्वा निस्तारयमां विस्तारय पात्रं द्रव्यादि शुद्धानिमान् माषान् गृहाणेत्युक्त्वा तेमाषास्तस्मै दत्ता तदा तत्साहस सन्तुष्टादेवी गगनमार्गेऽवदत् भो पथिकमार्गय यथेच्छं पदद्वयेन ततो मूलदेवोऽवदत् धन्नाणं खुनराणं कुम्मासाहुन्ति साहु

पारणए गणि अस्र देवदत्त रज्ज सहस्सम्र हस्तीय १ तयावोत्त द्रयमपिते मद्य सम्भवथति तस्यामेव रात्री देव कुव्या मूलदेवेन सुप्तेन स्ववदन प्रविधन्द्र स्वप्ने दृष्ट तदानो मेव तत्रैव सुप्तेन एकेन कार्प्पटिकेन तादृग्र एव स्वप्नोद्दष्ट मूलदेव स्तस्तरादुत्थितो यावत्स स्वप्न विचारयति तावत् सोपि स्वस्तरादुत्थाय स्वगुरो पुरस्त स्वप्नमाचख्यो गुरुरपि त्वमद्य घृत गुडसहित मण्डक प्राप्स्यसीति बभाषे मूलदेवस्तत उत्थाय नगरान्त स्वप्न पाठक गृहे गत्वा घन विनय क्षत्वा स्वप्नपाठकाय स्व स्वप्नमाचख्यो तेनोक्त सप्तमदिवसे तव राज्य भविय्यतीत्युक्ता स्वपुत्री तेन मूलदेवाय परि णायिता अपुत्री तन्नगरस्वामो मृत पञ्चदिव्यै र्मूलदेवस्य राज्य दत्त देवदत्ताच गणिकान्तत्रानाय्य मूलदेव राजा स्वराज्ञीञ्चकार अन्यदा तत्र व्यापा रार्थं मागतो चल व्यवहारी राज्ञा मूलदेवेनोपलक्षित शुल्कमिषेण भृग पराभूत स्वतेजो मूलदेवेन दर्शित अचल स्वापराध क्षमयामास दीप्ती वचसा मूलदेवेन मुक्त अथ स कार्प्पटिक स्वस्वप्नानुसारि स्वप्नदर्शन मूलदेव कुमार राजान जात श्रुत्वा पुनस्तादृग्र स्वप्नार्थी तस्यामेव देव कुव्या सुप्त पर तादृग्र स्वप्न न प्राप एव यथास्य कार्प्पटिकस्य तादृग्र स्वप्नप्राप्तिर्दु प्राप्या तथा मनुष्य त्वाद्भ्रष्टस्य जोवस्य मनुष्यत्व प्राप्तिर्दु प्रापेति ६ चक्रेति इन्द्रपुरे इन्द्रदत्त राजा तस्य २२ पुत्रा अन्यदा तेन राज्ञा एका मन्त्रिपुत्री उढा सा वणिक पुत्रीति परिणीय उपेक्षिता कदापि न भुक्ता एकदा सा ऋतुस्नान कुर्व्वती राज्ञा दृष्टा पृष्टञ्च सेवकाना कस्येय पत्नीतैरुक्त युष्माक पत्नी मन्त्रिपुत्री राज्ञा तदावासे गत्वा सा भुक्ता तस्या पुत्रोजात स राजसदृग्र एव यत उक्त ऋतुस्नान समयेय पश्यति नारो तत्सदृग्र जनयति गर्भमिति तया स पितुर्मन्त्रिणो राजभोग सम्भव गर्भप्रस्ताव प्रोक्त मन्त्रिणा तु तद्दिन राज्ञोक्तायाभि धानादिक स्व वहिकाया लिखित तस्या पुत्रोजात क्रमादस्थिद्धत सो मन्त्रिणैव पालित कदापि राज्ञोनैव दर्शित मन्त्रिणा कलाचार्य्यपार्श्वे ७२ कला पाठित २२ पुत्रास्तु अविनोता न पठन्ति अथ मथुराया पुरि जित शत्रु पुत्री निहत्ति नाम्नी क्षत राधा वेध

वर, प्रतिज्ञा स्वय वर मण्डपे तिष्ठति तत्र २२ पुत्र परि करित इन्द्रदत्त राजागतः मन्त्री अपि स्वपुत्री पुत्रं सार्धं लात्वा ते नैवसह तत्रगतः अनेक
देशायात राजपुत्रेषूपविष्टेषु सत्सु, इन्द्रदत्त राजा १२ स्वपुत्रा राधावेध साधनाय उत्थापितास्तैर्यथाक्रमं बाणावली मुक्ता परं मे केनापि राधावेधो
साधितः बाणपात इव स्तते बभूव सर्वैरप्यन्ये राजपुत्राः परस्परं दत्ततालाहसिता इन्द्रदत्तस्य राज्ञो महान् खेदोजातः मन्त्रिणोक्तं राजन् कथं
खेदो विधीयते मत्पुत्रीजातस्त्वत्पुत्रो वर्त्तते सोऽवश्यं राधावेधं साधयिष्यति प्रोच्यराज्ञः पुरः सपुत्र आनीतः वहिकालिखितं साभिज्ञानं तद्दिन वर्णा,
दर्शिताः तेन पुत्रेण स्व पितरं राजानं प्रणम्य राधावेध स्थानेऽधस्तैल भृतकटाहि कासं धान्त ऊर्द्ध भ्रम चकार पुत्रिका मध्यस्थित कन्यादर्शन
पुत्रिका निवेशित दृष्टिरधोवदनेन ऊर्द्धबाहुनोर्द्धस्था पुत्रिका एकेन नैव बाणेन विद्धा साधितो राधावेधः कन्या च परिणीता पितुः परमोहर्षो
वभूव २२ राजपुत्राणां महान्विषादः अथ यथा राधावेधचक्रं दुर्भेद्यं तथा मनुष्य त्वमपि दुःप्राप्यमिति ७ चर्मेति कच्छप स्तुदुदाहरण यथा एकोद्रहः
सहस्र योजन प्रमाणः सर्वत्र सैवालव्याप्तः क्वापिस्थाने एकं छिद्रं कच्छप ग्रीवा प्रमाणं एकेन कच्छपेन ग्रीवा प्रसारिता दृष्टं स चन्द्रं नक्षत्रचक्रं
दृष्ट्वा सस्वकुटम्बा करणाय मध्ये प्रविष्टः स्वकुटम्ब सहित स्तच्छिद्र मितस्ततो गवेषयति परं न पश्यति यथा तस्य तच्छिद्र दुःप्राप्यं तथा मनुष्य त्वमपि
दुःप्रापमिति ८ जुगेति युगसमिला दृष्टान्तः तथाहि केनचिद्देवेन युगं समुद्रस्य पूर्वान्ते मुक्तं तच्छिद्रान्निष्कास्य समिला समुद्रस्य पश्चिमान्ते मुक्ता
सासमिला सागरसलिले नेतस्ततः प्रेर्यमाणा कदाचिद्दैव योगेन पुनस्तच्छिद्रं प्रविशेत् न पुनर्मनुष्य जन्म लभेतेति ९ परमाणुत्ति केनचिद्देवेन कश्चित्
स्तम्भश्चूर्णीकृतः तस्य परमाणवो नलिकायां भृताः सा नलिका तेनैव देवेन मेरुमारुह्य फूत्कृता उड्डीता चेतस्ततस्तत्परमाणवः तानेकत्र संमील्य पुन
स्तत् स्तम्भस्य करणं यथा दुष्करं तथेदं मनुष्यत्वं भ्रष्टं सत् पुनरपि प्राप्तुं दुष्करमिति १० दृष्टान्ताः समावन्नाणा संसारे नाणा गोत्ता सुजाइस्सु कम्मा

णाणाविहाकट्टु पुढोविस्स भया पया १, ससारे समापन्ना भवण गन्दोवाक्यालङ्कारे प्रासा प्रजा जन्तु समूहा विश्व भृतो भवन्ति जगत्पूरका भवन्ति सत्वा नानाविधा सुपृथक जातिपु एकेन्द्रियादिपु नाना विधानि कर्माणि सत्वा कोदृशीप जातिपु नानागोत्रासु नाना बहु प्रकारेण गोत्रं नामया माला नाना गोत्रास्तासु नानागोत्रासु बहुभिधानासु २ एगया देवलोएसु नरएसु वि एगया एगया आसुरकाय अहाकम्मेहिं गच्छइ २ एकदा एकस्मिन्काले देवलोकेपु देव उत्पद्यते पुन स एव जीव एकदा नरके पु नारक उत्पद्यते एकदा आसुरकाय असुर कुमारभाव प्राप्नोति एव जीवो यथा कर्मभिग च्छति यस्मिन् समये जीवो यादृशानि यादृग्गति दायकानि कर्माणि बध्नाति तादृशी गति जीवो व्रजतीत्यर्थ ३ एगया

ससारे नाणागोत्तासु जाइसु । कम्मा नाणाविहा कट्टु पुढोविस्स भयापया ॥२॥ एगया देवलोएसुनरए सुविएगया । एगया आसुर काय आहाकम्मेहिं गच्छई ॥३॥ एगया खत्तिओ होइ तओ चडाल वुक्कसो । तओकीड पयगोय तओ

समापन्ना प्रासा ससारे ए ससारने विषे जीव आवी उपना नाना गोत्रेपु जातिपु नानाप्रकारे गोत्रे अने जातिने विषे कर्माणि नानाविधानि सत्वा विविधप्रकारना जूदा२ कर्म करीने पृथक विश्वभिता जगत् पूरका प्रजा जाता पछे जूदा२ लोकपूरक हुआ २ एकदा देवलोकेपु सौधर्मादिपु एकदा ए जीव देवलोके जाइ नरकेपु रत्नप्रभादिपु एकदा जीव आपणी करणीये नरगे जाय एकदा असुरकाय भुवनपत्यादिपु याति एकदा प्रस्तावे ए जीव असुरकुमार माहि जाय यथाकरमभि गच्छति जेहवा कर्म ए जीवे कीधा तेहवी गते जाय ३ एकदा क्षत्रियो भवती इम एकदा ए जीव मरीने क्षत्रिय हुवे तत चण्डाल शूद्र थकीए जीव चण्डाल हुवे वुक्कसहुवे बाप शूद्र माता ब्राह्मणी ते वुक्कस कहीये तत कीटक पतङ्ग शलभ वली कोडो

खत्ति ओहैाइ तओ चण्डाल वोक्कसो तओ कोडपय गोय तओ कुन्थु पिपोलिया ४ जोव. एकदा चत्रियोभवति ततोऽनन्तर सजीवश्चाण्डालो भवति तत बोक्कसोपि जीवो भवति यस्य शूद्रः पिता भवति माता ब्राह्मणी भवति ततपुत्र वोक्कस उच्यते ततस्तत्र जातो धर्मस्य दुर्लभ त्वात् कोटो भवति च पुन पतङ्गो भवति ततश्च कुन्थुर्भवति पिपोलिका कोटिका भवति यन्यान्तरेपि जातिकुलभेदाः उक्ताः सन्ति यस्य ब्राह्मणः पिता शूद्रो माता भवति सनिषाद उच्यते यस्य ब्राह्मण पिता वैश्य माता भवति स च अम्बष्ट उच्यते यस्य च निषादः पिता अम्बुष्टा च माता भवति स च वोक्कस इत्युच्यते ४ एव मावट्ट जोणीसु पाणिणोकम्मकिव्विसान निव्विज्जन्ति समारेसव्वठेसु वखत्तिया ५ प्राणिनोजीवाः संसारे एव अमुना प्रकारेण आवर्त्तयोनिषु न निर्विजन्ते न उद्विग्ना भवन्ति आवर्त्तेन पुनः पुनः परिभ्रमणेन स्पृष्टायोनयः आवर्त्तयोनयस्तेषु चतुरशीति लक्षप्रकारेषु कोट्या. प्राणिन' कर्मकिल्विषाः कर्मभिः किल्विषा' मलिनाः अधमावाकेषु केइ वन उद्विजन्ते सर्वार्थेषु चत्रियाइवसर्वंचते अर्थास सर्वार्थास्तेषु धन कनकभूमिवनिता गजादि पदार्थेषु चत्रियाराजानइव

कुंथु पिपीलिया ॥४॥ वए मावट्ट जोणीसु पाणिणोकम्म किव्विसा । ननिव्विज्जंतिसंसारे सव्वठेसुवखत्तिया ॥५॥ कम्म संगेहिं संमूढा दुक्खियावहु वेयणा । अमाणुसासुजोणीसु विणिहम्मंतिपाणिणो ।६। कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी

पतङ्गोथी ए जोव थुश्री तत कूंथू पिपलिका किटका ए जोव कुथू कोटक हुवे ४ एव आवर्त्तयोनिषु इम ए जोव जोनिने विषे परिभ्रमणकरता प्राणिन' प्राणी कर्मकिल्विषा अधमा प्राणि जोवडा कर्म्मे मैला छे न उद्विग्ना भवन्ति ससारे पर जोव उद्विग्न नथो होता ससारमाहि फरताऊ भगता नथो हवे काइ धर्म कोजे सर्वार्थेषु चत्रियाः जिम चत्रोराज ऋद्धि लेतो सतोष न पामे तिम ए जोव ससार फिरतो सन्तोष न पामे ५ कर्म्मसयोगे समूढा एजोव

तथा प्राणिनो पोत्यथ ५ कम्मसगेहि समूढा दुक्खिया बहुवे यणा अमाणु सासु जोणीसु विणिहम्मन्ति पाणिणो ६ प्राणिणो जीवा अमानुषीषु मनुष्यवर्जितयोनिषु विणिहम्मन्ति विशेषेण निहन्यन्ते विशेषेण निपात्यन्ते अर्थात् एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियेषु वारवार उत्पद्यन्ते इत्यर्थः कीदृशा प्राणिन कर्मभङ्गे कर्मसयोगे समूढा सव्यामा पुन कीदृशा दुक्खिता पुन कीदृशा बहुवेदना ६ कम्माणतुपहाणाए आणु पुव्वीकयाइओ जीवा सोहि मणुपत्ता आय यन्ति मणुस्सय ७ तु पुनर्जीवा शोधि दुष्टकर्मनाशस्वरूपां लब्धु कर्मता अनुप्राप्ता सन्तो मनुष्यत्व आददते नृजन्म प्राप्नुयन्ति इत्यर्थः कया आनुपूर्व्या अनुक्रमेण शने शने कदाचित् कर्मणा मनुष्यगति विघ्नकराणा प्रकर्षेण हानि प्रहाणिस्तया प्रहाण्या प्रकर्षेण हीनतया ७ माणुस्स विग्गह लद्ध सुइ धम्मस्स दुल्लहा ज सुच्चा पडिवज्जति तव खति महिसय ८ मानुष्य विग्रह लब्धा मानुष्य शरीर प्राप्य तस्य धर्म्म स्य श्रुतिर्दुर्लभा धर्मश्रवण दु प्राप्यमित्यर्थः य धर्म श्रुत्वा जीवा तप उपवासादिक क्षान्ति क्षमा अहिंसता सदयत्व प्रतिपद्यन्ते अङ्गीकुर्वन्ति यस्य

सूत्र कयाइओ । जीवा सोहि मणुपत्ता आययति मणुस्सय ।७। माणुस्स विग्गह लद्ध सुई धम्मस्सदुल्लहा । जसोच्चा पडि

भाषा कर्म करोने मूढ ते मूर्ख हुवा छे दुखयुक्ता बहुवेदना स्तु जोवडा दूखियाहुवे घणो वेदना ससार माहि फीरता खमे अमानुषीषु नरकातिर्य गादिषु योनिषु नरकतियच गतिने विषे जोवडा विशेषेण निपात्य ते कर्मभि प्राणिन विशेषे करो नियातीइ घालीइ जीव आपणे कर्म ६ कर्मणा प्राधान्यात् कर्मने प्रधानपणे करोने अशुभ कर्म खोण हुवा थका आनुपूर्व्या अनुक्रमेण कदाचित् अनुक्रमे फीरता२ ससा रमाहि भला कमने उदे जोवा शुद्धि मनुष्या प्राप्ता जोव निर्मल हुओ मनुष्यगति माहि आवे आप्नुवन्ति स्वीकुर्वन्ति मनुष्यत्व मनुष्यपणो पामे ७ मानुष्य देह लब्धा मनुष्य शरीर लाधू मनुष्य हुयो श्रुतिधर्मस्य दुर्लभा पर धर्मनू साभलवो दोहिलोय धर्म

तदानीं श्रीमहा वीरः प्राह हे जमाले सन्ति मम शिष्या एके केचिद् ये प्रश्नद्वय मिदं व्याख्यान्ति तथाहि हे जमालेश्रयं लोकः पूर्वमभूत् अग्रे न भविष्यति साम्प्रतं नास्तीति वक्तु न शक्यते तस्मादयं लोक त्रिकालस्थायित्वेन शाश्वतः उत्सर्पिणीं विषयो भूत्व सर्पिणी विषयो भवति इत्यादि पर्यायै रशाश्वत इति जीवोपि त्रिकालविषयत्वेन शाश्वतः देवत्व मप्यतुल पर्यायै रशाश्वत इति एव माख्यातं भगवतो वाक्यं जमालिनश्रद्दधे ततो निष्कान्तः स आत्मानं परांश्च व्युद्ग्राहयन् बहून् वर्षान् यावत् श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा बहुभिः षष्टाष्टमादिभिरात्मानं भावयित्वार्द्ध मासिक्या संलेखनयाऽनशनमाराध्य कयमाणे कडेत्ति उत्सूत्रमनालोच्य कालमासे कालं कृत्वालान्तक कल्पेत्रयो दशसागरोपमस्थित्याकिल्बिष देवत्वेनोत्पन्नः तदुत्सूत्र प्ररूपणेन चानं तं संसारं समुपार्जितवान् यदुक्तं भगवत्यां चत्तारि पञ्चतिरिक्ख जोणि यदेव मनुस्स भवग्गहणाइं संसारं अणुपरि यट्टित्ता तओ पच्छासिज्झिस्सइ बुज्झिस्सइ सव्वदुक्खाण मन्तं करिस्सइ इति प्रथम निह्नव जमाल्युदाहरणं १ अथ द्वितीय निह्नवोदाहरणं कथ्यते राजगृहे नगरे गुणशिलके चैत्ये चतुर्दश पूर्वपाठीवसुनामा आचार्य समवसृतः तच्छिष्यस्तिष्य गुप्तोस्ति सोऽन्यदा सर्वात्म प्रवाद पूर्वस्येद मालापकं पठति यथा एके भन्ते जीवप्पएसे जीवेत्तिवत्तव्वंसिआणोयणट्ठे समट्ठेएवन्दोजीवपएसेतिन्नि संखिज्जा असंखिज्जा वा जावए गपए सेणवि अणन्तो जीवत्ति वत्तव्वंसि आणोयणट्ठे समट्ठे एवं दोजोवपएसे तिन्निसखिज्जा असंखिज्जा वा तम्हा कसिणे पडिपुन्ने लोगा गासप एस तुल्लपएसे जीवेत्ति वत्तव्वंसिआ इत्यादि अत्र स प्रतिपन्नं यदि सर्वे जीवप्रदेशा एकप्रदेशहोना जीव व्यपदेशं न लभन्ते सचै कैकः सर्वान्तिमो जीव इति वक्तव्यः स्यात्तद्भावना भावितत्वात् इति तस्यान्तदेशे जीवभ्रान्तिः ततः स आमलकप्पा नगर्यांगतः तत्र मित्र श्रीनाम्नाश्रावकेण स्वगृहेनि मन्त्रितः लड्डुकान्ति मप्रदेश एक सेवतिका खाद्यास्ति मप्रदेश एक एव भतहरिडका मध्यादेक एव कूरादिकरणं भत घृतपात्र मध्यादेक एवबिन्दुः एव सर्ववस्तु सम्बन्धी एकैक प्रदेशोदत्तः पुनः श्राद्धेनोक्तं भगवन्

सिद्धान्तानुसारेण मया पूर्व दृष्ट अन्तिमे अवयवेदृत्तेपूर्णो अवयवी
यूयं प्रतिमाभिता वय तत्रार्थो कृता तेनोक्त भो श्राद्ध कि त्वयादृष्ट श्राद्धेनोक्त सिद्धान्तानुसारेण न
दृष्ट अन्तिमे प्रदेशे यथा जीवस्तथा सर्वोप्यवयवी दृष्ट अन्तिमे प्रदेशे यथा जीवस्तथा सर्वोप्यवयवी अन्त्यावयवे वक्तव्य इति वीर सिद्धान्तानुसारेण न
किञ्चिन्मयादृसमस्तोत्यादि युक्तिभिर्भिन्न यो श्राद्धेन स प्रतिबोधित इति श्रीद्वितीय निह्नवतिष्य गुप्तोदाहरण एतौ हीनिह्नवौ श्रीवीरे जीवत्ये वा भूता
अथ तृतीय निह्नवोदाहरण कथ्यते श्रीवीर निर्वाणात् २१४ वर्षेषु गतेषु श्वेतां विकायां पोलासोद्याने आषाढाचार्या स्वशिष्यान् आगाढ योगानुद्वाह्य
यत्नो हृदयशूले नराती अकस्मात्मृता स्वर्ग जग्मु तत्रोपयोगे दत्ते स्नेहात् स्वदेहमधिष्ठाय शिष्याणामागाढ योगक्रिया पूर्णाचक्रु अनन्तरच नवीनमाचार्य
मस्थाप्य सर्वेषा स्वरूपमात्मा निवेद्य स्वस्थानययु तच्छिष्यास्तत्स्वरूप दृष्ट्वा अव्यक्तमत प्रतिपन्ना न ज्ञायते कोदेव क श्रमण इति चिन्तयन्ति वदन्ति च
न कोपि किञ्चिद्वन्दते सर्वोपि व्यव हारस्तेषु न एकदा ते सर्वेपि राजगृह गता तत्र परमश्रावकेण सूर्यवंशोत्पन्नेन बलभद्र नृपेण तत्प्रतिबोधाय चौरा
एते इति मत्वा धृता यष्टि मुष्ट्यादिभिर्मारिता ते कथयन्ति भो महाराज त्व श्रमणोपासक वय श्रमणा कस्मादस्माकमनथ कारयति राज्ञोक्त एव माव
दन्तु युष्माक अव्यक्त मत तदनुसारेण न विज्ञोवय यद्भवन्त श्रमणा भवन्तपेक्षयावय न श्रमणोपासका इत्यादि वाक्य युक्तिभि ते प्रतिबुद्धा इति तृतीय
निह्नवा व्यक्तमत साधूदाहरण ३ अथ चतुर्थ निह्नवोदाहरण वीरात् २२० वर्षेषु गतेषु मिथिलायां लक्ष्मी गृहोद्यानेमहागिरि शिष्य कोडिन्न नामास्ति
तस्यापि शिष्योऽश्वमित्र अनादाऽनुप्रवाद पूर्वस्य नैपुणिक नामक वस्तु पठन् इममालापक पठितवान यथा सव्वे पडुप्पन्ने रइया वुच्छिज्जिस्सन्ति एव
जावये माणियन्ति एतदालाप कार्थमसो इत्थ विचारितवान् सर्वनैरयिका देवाश्च द्वितीय समये उच्छेद प्राप्स्यन्तीत्यत रहस्यमुक्त तदाऽवश्य सर्वे नैरयिकादय
क्षणविनश्वरा सन्तीति क्षणक्षयवाद प्ररूपयन्नसौ एकदा राजगृहेगत तत्र शौल्किकै कुट्टयितु मारेभे सग्राह्य यूय श्राद्धा वय साधव कथ कुट्यते

श्रावका ऊचुः भवन्मतेन वय गाडा भवद्भिर्दृष्टास्ते विनष्टा वयन्तु नवीनाएवोत्पन्नाः ये भवन्तो यतयः पूर्वमस्माभिर्दृष्टास्ते विनष्टा यूयन्तु नवीनाएव चणक्षय वादित्वाऽवन्मतत्वेति तैः श्रावकैः स शिक्षितः प्रतिबुद्धः इति चतुर्थ निह्नवोदाहरणं अथ पञ्चम निह्नवोदाहरणं वीरात् द्विगताष्टाविंशतिवर्षेषु २२८ गतेषु उल्लुका नदीतीरे एकस्मिन् खेटवनपुरे उल्लुकातीताभिधानं वनमस्ति तत्र महागिरिशिष्योधन उल्लुकातीत परत्र तीरे तिष्ठति तस्य शिष्यो गङ्गाचार्यः पूर्वं तीरे तिष्ठति स स्वगुरुवन्दनार्थं परत्रतीरे जिगमिषुर्नद्या मुत्तरन् खल्वाटमस्तकत्वेन ग्रधः शीत उपरिचातप इति क्रिया द्वयं युगपदेवाऽनु भवन् जुगवन्दो नत्थि उवओगा इति भगवद्वचनमन्यथामन्यमानो निह्नवोजातः आचार्यैर्नैक युक्तिभिर्बोधितोपि न मन्यते एकदा स राजगृहे वीरप्रभोद्यानेमणिनायकस्य यक्षभवने उत्तीर्णः तत व्याख्या नागतलोकानां पुरः क्रियाद्वयस्य युगपदऽनुभवो भवतीति स्वमतं प्ररूपयन् यक्षेणमुद्गर मुत्पाट्यको पञ्चदर्शयित्वा तर्जितः अरे मयाऽत्रैवसमवसृत वीरमुखाच्छ्रुतं यत् क्रियाद्वयस्यानुभवोयुगपन्न भवति समय सूक्ष्मत्वेन युगपदनुभवाभिमानो भ्रमएवेति त्वं किरादप्यधिक एवेति यक्षेणैव स प्रतिबोधितः इति पञ्चमनिह्नवकथा ५ अथषष्ट निह्नवोदाहरणं कथ्यते वीरात्पञ्च शतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षेषु गतेषु अन्तरञ्जिकापुर्यांभूत गृह चैत्यं तत्र श्रीगुप्तनामआचार्याः समवसृताः तद्वन्दनार्थं मत्प्रामत्रग्राम रोहगुप्तः शिष्यः समागच्छन् एकं उदरबद्ध लोहपट्ट जम्बूशाखाकरञ्च परिव्राजकं दृष्ट्वा पप्रच्छ किमिदमिति स प्राह ज्ञानेन ममोदरं स्फुटति तेनात्र लोहपट्टोबद्धोस्ति जम्बू द्वीपे च मत्तुल्यः कोपि नास्तीति जम्बू शाखा करे धृतास्तीति परिव्राजकेन तदानीमेव पटहोवादितः नास्ति विश्वे कश्चित् यो मयासमं वादं करोतीतिरोह गुप्तेन कथितः अहंवादं करिष्यामीति वदतापटहोवारितः स परिव्राजक स्ततो राजद्वारेगतः रोहगुप्तस्तु गुरुसमीपे समायातः पटहचोभकरण वृत्तान्तः कथितः गुरवः ऊचुः वरं न कृतं स विविध विद्या बलवान् यदित्वं स्याद्वाद युक्तिभिस्तं वादे पराजेष्यति तदासौ कुविद्याभि स्त्वेपद्रवं करिष्यति रोहगुप्तः प्राह गुरुभिस्तथा मम प्रसादः कार्यः यथा ममवादजयः

स्याद्दुपद्रवयचय स्यात् गुरुभिस्तस्य मयूरी न कुली प्रमुग्या विद्या दत्ता रजो हरणञ्चाभि मन्त्र्य दत्तञ्च यदा इमाभिस्त्वतस्य प्रराभवो न तिष्ठति तदा तत् कुविद्याभिमुखमिद रजोहरण भ्रामणीय गुरु वन्दित्वा स राज सभाया गत तत्र मिलितोवादि प्रतिवादितै रोहगुप्तेनोक्त बराकोय परिव्राजक कि जानाति पूर्वपक्षो मयाप्येवदत्त यथेष्टममोमे प्रश्नयतु परिव्राजकेन चिन्तित असो पूर्ण विद्यावान् मया जे तु मशक्यस्ततोऽस्यैव सिद्धान्त पक्षमह ग्रहामि नपुनो स्व सिद्धान्तपक्ष मुत्थापयिष्यतीति ममैव जयो भविष्यतीति विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्त अत्र राशिद्वयमङ्गी कुर्वे जीव राशिरजीवराशिश्च पुण्यराशि पापराशिरित्यादि बुद्धिमतारोहगुप्ते न तदानी जीवोऽजीवो नो जीवश्चेति राशित्रय मुक्त जीवास्त सादय अजीवा घटादय नो जीवास्तु कोकिलाच्छिन्नपुच्छादि यथाहि एकस्य दण्डस्य आदिमध्य अग्रश्चेति प्रकारत्रय एव सर्वत्रेत्यादि वचोभि स परिव्राजको निलाठितो रोहगुप्तस्याभिमुख वृश्चिकानमोच रोहगुप्तस्तु मयूरान् अमुचत् मयूरैस्तुते सर्वे भक्षिता तत परिव्राजक सर्पान् अमुचत् रोहगुप्तस्तु न कुल न् मुमोच न कुलैस् निनाशिता सर्पा तत स परिव्राजक उन्दरान्मुमोच रोहगुप्तस्तु मार्जारान् मुमोच मार्जारैस्तुते भक्षिता तत परिव्राजक न मृगान्मुक्ता रोहगुप्ते न तु व्याघ्रा व्याघ्रैर्मृगा भक्षिता तत परिव्राजकेन शूकरामुक्ता रोहगुप्ते न तु सिंहै शूकरा भक्षिता एव परिव्राजकेन येये मोचामुपाक्तप्रतिमगा रोहगुप्ते न मुक्तास्तैर्यते विनाशिता अथात्यन्त खिन्नेन परिव्राजकेन गर्दभी मुक्ता रोहगुप्ते न सारजोहरणे नहता परिव्राजकस्यैवो परिविष्टा लब्वागता तत सपरिव्राजको राजादिभिर्हीलितो राजद्वाराद्बहिः ग्रहीत्वा बहि कृत अथ रोहगुप्त परिव्राजक जित्वा गुरुसमीपे समागत सर्व यादृ स्वरूप गुरो गुरुणोक्त वर कृत पर त्वया साम्प्रत राजसभायां गत्वा राशित्रय स्थापना विषय मिथ्यादु कृत देयञ्जिन शासने राशिद्वयस्यैव व्यवस्थापनात् रोहगुप्तोऽवदत् मया तादृशाया राजसभाया गत्वा मिथ्या दुष्कृत दत्वा स्व वचनमप्रमाणीकर्तुं मशक्य गुरुणा उक्त नात्रत्रपाकार्या अवश्य

तत्र गत्वा मिथ्या दुष्कृत देहि एव वारं २ गुरुणायमुक्त: खिन्न: प्रकाम द्वेष्टी भूत्वाऽवदत् राशित्रयमेवास्ति नातकश्चिद्दोष स्ततो गुरुशिष्ययोरेव वादो लग्न: आचार्या: राजद्वारं गता: शिष्येण समं वादकं कर्तुमारेभिरे वादं कुर्वतोस्तयो: षण्मासागता: राज्ञा उक्तं मम राजकार्यं सीदन्ति भवतां वाद समाप्तिर्नजाता तर्तीयां तु स्वस्थाने भवन्त: गुरुभिरुक्तं कल्यदिवसे वादनिर्णयं करिष्यामि तत: प्रभाते राजादि जनपरिवृता: गुरव: कुत्रि काप णीसमागता तद्धनिक जगु: देहि जीवान् इति गुरुभिरुक्ते तेन कुमार कुमारी हस्ताख्यायनेके जीवादर्शिता: देहि अजीवानिति गुरुभिरुक्ते तेन घट पटादयोऽर्था दर्शिता देहिनो जीवानिति गुरुभिरुक्ते कुत्रिका पण धनिक: प्राह न सन्ति लोकत्रयेनो जीवा: यल्लोकत्रये भवति तदेव कुत्रिकापणे भवति नान्यत् एवं ४४०० चतु:चत्वारिंशच्छतप्रश्नकरणे न निर्लोठितोरोह गुप्तो निर्विषयीकृत: सगणान्निह्नव इति कृत्वा निकासित: तेन वैशेषिकमतं प्रकटी कृतं षट्पदार्था स्तेनैव प्ररूपिता इति षष्ठो निह्नव: ६ अथ सप्तम निह्नव: वीरात्पञ्चशतचतुरशीति ५८४ वर्षेषु गतेषु दशपुरे इक्षुगृहोद्याने आर्यरक्षितसूरि: समागत: तस्य गोष्ठा माहिल १ फल्गुरक्षित: २ दुर्बलिका पुष्य ३ शेतिशिष्य त्रयं वर्तते इतश्च मथुरायां अक्रीयावादी उत्थित: तत्र प्रतिवादी कोपि नास्तीति तत्रत्य सङ्घेन आर्यरक्षितसूरेर्ज्ञापित तैश्च तत्र गोष्ठामाहिलो वादलब्धिमानिति प्रेषित: तेन तत्र गत्वा राजसभायां स पराजित: मथुराश्राद्धैश्च गोष्ठामाहिलो वर्षाचतुर्मासक रक्षित: तावता दशपुरे श्रीआर्यरक्षितसूरि: स्वमरणमासन्नं ज्ञात्वा स्वपट्टस्थापनायामेव चिन्त यति बूढीगणहरसद्दो गो अममाईहिं धीरपुरिसेहिं जोतं ठवेइ अपत्ते जाणंतो सो महापावो १ एवं चिन्तयित्वा सर्वोपि संघ आकारित: तस्याग्रे सूरिणा उक्तं अहं गोष्ठा माहिल प्रति घृतघटसदृशो जात: यथा घृतघटात् घृतमपनीयते तदा बहवो घृतबिन्दवस्तत्र लग्नास्तिष्ठन्ति तथा मया यदा गोष्ठामाहिल: पाठितस्तदा मया स्वकोष्ठे बहवो विद्यांशा रक्षिता: फल्गुरक्षितं प्रति अहं तैलघटसदृशो जात: यथा तैलघटात्तैलमपनीयते तदा तत्र

तैलबिन्दव स्तोका एव तिष्ठन्ति तथा मया यदा फल्गुरक्षित पाठितस्तदास्य कोष्ठे मया घना विद्या घिसा स्तोका एव रक्षिता दुर्बलिका पुष्प प्रति
अह निष्पाव घटसदृशो जात यथा निष्पावघटात् निष्पावा अपनीयन्ते तदा नैकोपि तत्र तिष्ठति तथा यदा मया दुर्बलिका पुष्प पाठित स्तदास्य
कोष्ठे मया विद्या घिसा नैकापि विद्या रक्षितास्तीति आर्यरक्षितसूरिणा उक्ते सङ्घ प्राह भगवन् दुर्बलिका पुष्प एवाचार्य क्रियता तस्यैव सर्वविद्या
सद्भावेन योग्यत्वात् तदा सङ्घवच श्रुत्वा आर्यरक्षितसूरिभि स्वपट्टे दुर्बलिका पुष्पसूरि कृत उक्त च दुर्बलिका पुष्पस्य गुरुणा वत्स यथाह फल्गुरक्षित
गोष्ठामाहिलादीनां लालनपालनविधौ प्रवृत्तस्तथा त्वयापि प्रवर्तितव्य फल्गुरक्षितादीनामपि गुरुणा उक्त यथा भवन्तो मत्सेवाविधौ प्रवृत्ता स्तथा
दुर्बलिकापुष्पस्यापि प्रवर्त्तितव्य अपिचाह सेवाविधौ कृतेप्यकृतेपि न रोष यत असौ तु न क्षमिष्यतीति सम्यक् प्रवर्तितव्य द्वयोपरि पक्षयोरेव मुक्त्वा न
गन कृत्वा श्रीआर्यरक्षितसूरिर्देवलोक गत गोष्ठामाहिलेन श्रुत गुरोर्देवलोक गमन त्वरित तत्र समायात जनान् पृच्छति को गणधर स्थापित जनै
घृतघटादि दृष्टात प्रतिपादन पूर्व दुर्बलिका पुष्पो गणधर कृतइति प्रोक्त गोष्ठामाहिल पृथगुपाश्रये कियत्काल स्थित्वा वस्त्रादिमुक्त्वा दुर्बलिका
पुष्पोपाश्रये समागत सर्वैरपि साधुभिरस्याभ्युत्थान कृत आचार्येणापिकथित कथ पृथगुपाश्रये स्थिता अत्रैव तिष्ठन्तु स नेच्छति आचार्योपाश्रयान्निर्गत्य
स्वोपाश्रये गत अथ गोष्ठामाहिल पृथक स्थितस्सन् जनान् व्युद्ग्राहयति पर न कोपि तद्वच प्रतिपद्यते अन्यदा दुर्बलिका पुष्पसूरयोऽर्थपौरुषी कुर्वन्ति
सर्वे साधव शृण्वन्ति साधुभिराकारितोपि गोष्ठा माहिलस्तत्र नायाति न शृणोति च यूयमेव निष्पाव घटसमीपेऽर्थपौरुषीं कृत्वाचार्येपूत्थितेषु विन्ध्यो
नाम शिष्योऽनुभाषते अष्टमे कर्मप्रवादे पूर्वे कर्मप्ररूप्यते तत्र जीवस्य कर्मण कथ बध आचार्यो भणति बद्ध१ स्पृष्ट२ निकाचित३ भेदैरात्मकर्मणोर्बध
तत्रात्मप्रदेशै सह आमतन्तु बद्धसूचिकलाप वद्धकर्म भवति निकाचितन्तुतापि तत्र कुट्टित शुचिकलाप वद्भवति प्रथम हि जीवो रागद्वेष परिणामै

कर्म्मबध्नाति यथात्तत्परिणामं अमुञ्चन् तत्कर्म्मस्पृष्टं करोति तेनैवात्यन्त संक्लिष्ट परिणामेन निकाचितं निरुपक्रमं करोति तद्धि उदयगतमेव वेद्यते इति विज्ञ सेनामर्षिष्य कृत प्रश्नस्योत्तरं दुर्बलिका पुष्पाचार्यैः कृत आसन्नोपाश्रयस्थेन गोष्ठामाहिलेन श्रुतं तत्रैवस्थेन तेनोक्तं इदृचमस्माभिः गुरोः समीपेन श्रुत यदेवं कर्म्मबद्धं स्पृष्टं निकाचितं स्यात्तदामोचोनस्यात्तदाविज्ञं सेनामशिष्यो वक्ति कथं तर्हि कर्म्मबद्धं स्पृष्टं निकाचितं भवति स आह यथा कञ्चुकः कञ्चुकि शरीर स्पृशति तथा कर्म्म आत्मप्रदेशान् स्पृशति न पुनः चीर नीरन्यायेन तत्कर्म्म आत्मप्रदेशैस्सहबद्ध स्पृष्टनिकाचि तत्वभवनेन न चीर नीरव देवी भावमापद्यते तथात्वे हि कर्म्मव्युच्छेद एवनस्यादिति गोष्ठा माहिलवचः श्रुत्वा विज्झशिष्यः प्राह भो गोष्ठामाहिल दुर्बलिका पुष्प आचार्याः पूर्वोक्तमेवादिशन्ति गोष्टामाहिलः प्राह इमं न जानन्ति पुनर्विज्झ शिष्यः सूरीन् प्रश्नयति सूरिभिरुक्तं गोष्ठामाहिलोक्तं असत्यमेव यथाऽस्माभिरुक्तं श्रीगुरुभिरुक्तं तत्रदृष्टान्तः यथायः पिण्डवह्निः सर्वात्मना सम्बन्ध्यते वियुज्यते च तथात्मप्रदेशैः सह कर्म्मसम्बन्ध्यते वियुज्यन्ते चेत्यादि दृष्टान्त युक्त्या दिभिर्बद्धस्पृष्टनिकाचित कर्म्मस्थापना कृता परं गोष्टा माहिलो न मनाते अन्यदा नवमे पूर्वे प्रत्याख्यानाधि कारं गुरवः साधूनामेवं पाठयति साहुणं जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं पाणा इवाय पच्चक्खामि एयं पच्चक्खाणं वन्निज्जइ इत्यादि आचार्येणोक्ते गोष्टा माहिलः प्राह जावज्जीवाएत्ति न वक्तव्यं एवमुक्ते प्रत्याख्यानस्य सावधिकात्वेन पर लोकाशंसा भवनेन भंगसम्भवात् प्रत्याख्यानं निरवधिकं कार्यं तथाहि सव्वं पाणा इवायं पच्चक्खामि अपरि माणाए तिविहं तिविहेणं एवं प्रत्याख्यानं कार्यं गोष्टामाहिलेनैवमुक्ते विज्झादिशिष्याः सूरीन् प्रश्नयन्ति सूरयः प्राहुः प्रत्याख्यानस्य कालावधिकत्वमवश्यं कार्यं अन्यथा मर्यादापत्त्याऽकार्यत्वमेव स्यात् परलोकाशंसा सम्भवेन भङ्गो नैव स्यात् जीवन्नहं सावद्यं न सेविष्ये मृतस्य तु अवश्यंभाविनी अविरतिरिति यथोक्तनिर्वाहित्वेन न प्रत्याख्यानभङ्गः एव श्रीदुर्बलिका पुष्पोक्तं सर्वैरप्यङ्गीकृतं अन्ये फल्गु रक्षितादय स्थविरा एवमेव भणंति गोष्टामाहिलस्तु सर्वेष्येते

न क्षिप्निज्ञानन्तत वदति स्वोकमेव तीर्थंकरोतामिति स्थापयति आचार्योक्त स्थविरोक्त च न मन्यते तदा समस्तसङ्घेन शासनदेव्या कायोत्सर्गं कृत सामागता भणति कि दर्शयति सङ्घेनोक्त व्रज श्रीसीमन्धरतीर्थ करपार्श्वे एवञ्च पृच्छय यद्गोष्टा माहिलो भणति तत्सत्य उतयद्दुर्बलिकापुष्यादयो भण ति तत्सत्य सा भणति मम पुन कायोत्सर्गबल दद्त सङ्घेन पुन कायोत्सर्गं कृत सागता भगवत्समीपे भगवान पृष्ट सङ्घोक्त भगवान् प्राह दुर्बलिका पुष्पादय सम्यगवादिन गोष्ठा माहिलस्तु मिथ्यावादी निह्नव सप्तम इति भगवदुक्तमाकर्ण्य आगताशासनदेवता भगवदुक्त माचख्यौ गोष्टामाहिल प्राह एषा अल्पर्द्धिका तत्र गन्तुमेव न शक्नोति तदा गोष्ठामाहिलस्य एकान्ते दुर्बलिका पुष्याचार्यैरेवमुक्त आर्यप्रतिपद्यस्व भगवदुक्त अन्यथा सङ्घेन त्व बहि करिष्यते स न प्रतिपद्यते तदा सङ्घेन सप्तमीय निह्नव इति कृत्वा द्वादशविधसम्भोगाद्बहि कृत द्वादशविध सम्भोगयाय पञ्चकल्पे उवहि १ सुअ २ भत्तपाणे ३ अजलिपग्गहे ४ वायणायणिकाएअ ६ अब्भुट्ठाणे ७ किइ कम्मकरणे ८ वेयावच्च करणेइय ९ समो सरणे सन्निसेज्जा १० कहाएअ ११ निम तणे १२ इति सप्तमो निह्नव प्रतिपादित ७ समाप्येते देशविसवादिनो निह्नवा सम्प्रति प्रसङ्गत एव बहुतरविसम्वादी बोटिका उच्यन्ते छव्वास सएहि नव्वत्तरेहि ६ ९ तइया सिद्धिगयस्स वीरस्स तोवोडि आणदिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना १ वीरात षटशत नव ६०९ वर्षे रथवीरपुरे दीपकोद्याने समव सृता आर्य कृष्णाचार्या तत्र नगरे एक शिवभूतिनामा सहस्रमल्लो राज्ञ समीपे समागता वक्ति तव सेवा करोमि राज्ञोक्त परीक्षा कृत्वा तव सेवा वसरो दास्यते अन्यदा कृष्णचतुर्दश्या राज्ञा सावाकारित उक्त गच्छ अस्या रात्री श्मशाने इद मद्य अय पशु स्वबलिर्देय तद्द्य गृहीत्वा स तत्र गत अन्ये पुरुषास्तज्ञापनार्थं प्रच्छन्नवृत्त्या पश्चात्प्रेषिता सहस्रमल्लेन क्षुधार्त्तेन पशु निहत्य तन्मास भक्षित मद्यच पीत ते पुरुषै शिवा फेत्कारशब्दै र्भीषितो सन बिभेति पश्चादागत्य सहस्रमल्लेन राज्ञ उक्त मया बलिर्दत्त सेवकैरपि तद्वीरत्वमुक्त राज्ञा स्वसेवाया रचित अन्यदा राज्ञा मथुराग्रहणार्थं स्वसेवका

प्रेषिता: तै: समं सहस्रमल्लोपि प्रेषित: मार्गेगच्छद्भिस्तै: परस्परमुक्तं भो अस्माभि: सम्यग् राज्ञो न पृष्टं का मथुरा ग्राह्या: सहस्रमल्लेनोक्तं द्वे ऽपि मथुरे ग्राह्ये यत्र दुष्करं तत्राहं यास्यामि एवमुक्त्वा स गत: पांडुमथुरायां गृहीता च सा बलेन उक्तं च सूरेत्यागिनि विदुषि च वसति जन: स च जनाद् गुणी भवति गुणवति धनं धनाच्छ्री: श्रीमत्या जायते राज्यं १ नगरीं गृहीत्वा स पश्चादायात: राज्ञा तुष्टेन भणितं भो तुष्टोहं मार्गय मनोभीष्टं ततस्ते नोक्तं मम देहि सर्वत्र स्वेच्छा भ्रमणं दत्तं च राज्ञा अथासौ निरंतरं स्वेच्छया सर्वत्र भ्रमन् रात्रौ मध्याह्ने अन्त्यप्रहरे वा समायाति कदाचिन्नायात्यपि स्वगृहे दिवसे यावत्स गृहे नायाति तावत्तस्य भार्या न भुङ्क्ते रात्रौ यावन्नायाति तावन्न स्वपिति अन्यदा सा प्रकामं खिन्ना श्वश्रू प्रत्याह मातस्त्वत्पुत्रो ऽर्द्धरात्रे कदाचिदायाति कदाचिदन्त्यप्रहरे समायाति कदाचिन्नायात्यपि दिवसेपि रात्रावपि चायमकाल एव समायाति अहं निद्रार्त्ता क्षुधार्त्ता च तिष्ठामि तदा श्वश्र्वा भणितं अद्य त्वया द्वारं दत्वा शेयं अहं जाग्रती स्थास्यामि तद्दिवसं रात्रौ तथैव कृतं स मध्यरात्रौ समायात: द्वारमुद्घाटयेत्युक्तवान् मात्रा भणितं यत्रास्यां वेलायां द्वाराणि उद्घातानि भवन्ति तत्र व्रज स रोषान्निर्गत: कृष्णाचार्योपाश्रय एवोद्घाटितो दृष्ट: मध्ये प्रविष्ट: वन्दित्वा भणति मां प्रव्राजय आचार्या न इच्छन्ति तेन स्वयमेवलोच: कृत: ततस्तस्याचार्यैर्लिंगं दत्तं आचार्या स्तमादाय ततो विहृता: कालांतरेण तत्रैव पुनरायाता: राजा तद्वन्दनार्थमायात: गुरूननुज्ञाप्य सहस्रमल्ल: स्वगृहे आकारित: तस्य स्वगृहागतस्य रत्नकम्बलं राज्ञा दत्तं सोपि गुरुसमीपे समायात: गुरुभिस्तद्रत्नकम्बलं अनापृच्छ्य गृहीतं ज्ञात्वा सहस्रमल्ले उपाश्रयाद्बहिर्गते सति रत्नकम्बलं खण्डश: कृत्वा यतीनां पादप्रोञ्छनानि कृत्वा दत्तानि स आगतस्तत्स्वरूपं ज्ञातं स कषाय एव स्थित: अन्यदा गुरुभिर्व्याख्यायां जिनकल्पिका वर्ण्यन्ते जिनकल्पिका द्विविधा पाणिपात्रा: पतद्ग्रहधराश्च स प्रावरणा अप्रावरणाश्चेत्यादि जिनकल्पिकमार्गो वर्णित: सहस्रमल्लेन पृष्टं किमसौ मार्ग: साम्प्रतं न क्रियते गुरुभिरुक्तं स मार्ग: साम्प्रतं व्युच्छिन्नोऽस्ति

तेनोक्त यद्येव मार्गोऽनुष्ठीयते तदा नाख्यस्य व्युच्छेद परलोकार्थिना एष एव मार्गोऽनुष्ठेय सर्वथा निपरिग्रहत्वमेव श्रेय सूरिभिरुक्त धर्मोपकरणमेवेति नतु परिग्रहस्तथाहि जन्तवो बहव सन्ति दुर्दृश्या मासचक्षुषा तेभ्य स्मृत दयार्थ तु रजोहरणधारण १ आसने शयने स्थाने निक्षेपे ग्रहणे तथा गात्र सकुचने चेष्ट तेन पूर्व प्रमार्जन २ तथा सम्पातिमा सत्वा सूक्ष्माय व्यापिनो परे तेषा रक्षानिमित्त च विज्ञेया मुखवस्त्रिका ३ भवन्ति जन्तवो यस्मादन्नपानेषु कुत्रचित् तस्मात्तेषा परीक्षार्थं पात्रग्रहणमिष्यते ४ अपरञ्च सम्यक्त्व ज्ञानशीलानि तपश्चेतीह सिद्धये तेषामुपग्रहार्थाय स्मृत चीवरधारणम ५ शीतवातातपैर्दंशै मशकैश्चापि खेदिता मासम्यक्त्वादिषु ध्यान न सम्यक सविधास्यति ६ तस्य त्वग्रहणे यस्मात् क्षुद्रप्राणिविनाशन ज्ञानध्यानोपघातोवा महान् दोषस्तदैवतु ७ य एतान वर्जयेद्दोषान् धर्मोपकरणादृते तस्य त्वग्रहण युक्त यस्याज्जिन इव प्रभु ८ जिन कल्पिकस्तु प्रथमसहननएव भवति इदानी प्रथम सहननाभावाज्जिनकल्पिकमार्गोऽनुष्ठीयते इत्यादि युक्तिभिर्गुरुणा प्रतिबोधितोपि नासो प्रतिबुद्ध प्रत्युतामर्षात् स्वमावरण त्यक्त्वा एकाक्येव वने गत तस्योद्याने स्थितस्य उत्तरानाम भगिनीवन्दनार्थं गता त तथाविध दृष्ट्वा तयापि चीवराणि त्यक्तानि अन्यदा भ्रात्रा सम सा नगर्यां भिक्षार्थ प्रविष्टा आवासोपरिस्थया एकया गणिकया दृष्टा अस्मज्जाते लोको मा विरक्तो भवत्विति मत्वा तस्या उरसि शाटिका व्युत्सृष्टा सा नेच्छति भ्रात्रा उक्त एषा देवतया दत्तेति भ्रातृवचसा तया शाटिका परिहिता अथ शिवभूतिना कोडिन्न कोट्टवीरश्चेति शिष्यद्वय प्रतिबोध्य दीक्षित ततो बोटिकमत मिथ्या दर्शन प्रवृत्त सप्तानि आजय मग्ना बहवे परिभ्रस्सइ एतत्पदद्वयो परिसप्त निन्हवोदाहरणानि सुइ च लद्धु सद्ध च वीरिय पुणदुलह

सुइ च लद्धु सद्ध च वीरिय पुण दुल्लह। बहवे रोयमाणावि नोयण पडिवज्जए ॥१०॥ माणुसत्त मि आयाओ जोधम्म

श्रुति लब्धा यद्यपि जाता जीवे धर्मसांभल्यो साभलो सद्दह्यो धर्मभलो वीर्यच पुनर्दुर्लभ पणिवीय फोरववु दोहिलु जीवजाणे के धर्मभलो पिणयाइ नही

बहवे रोयमाणावि नोअणं पडिवज्जए १० च पुनः श्रुतिलब्धा च पुनः श्रद्धा लब्धावीर्यं पुनर्दुर्लभं चारित्र पालनेबलस्फोरणं दुर्लभं बलं स्फोरए दुर्लभत्वे हेतुमाह यतो बहवो जनारोचमानाः अपि धर्मरुचिं कुर्वाणा अपि एतत् वीर्यं प्रतिनो प्रतिपद्यन्ते वीर्यं नो अङ्गी कुर्वते श्रेणिकादिवत् १० माणुसत्तंमि आयाओ जो धम्मं सुच्च सद्दहे तवस्सीवीरियं लद्धुं सम्वुडे निद्धुणेरयं ११ मनुष्यत्वे आगतः सन्यः धर्मं श्रुत्वा श्रद्दत्ते स तपस्वीवीर्यं लब्धा सम्वृतः सन् निरुद्धाश्रवः सन् रजः कर्ममलं निर्धुनोति निश्चयेन धुनोति दूरीकरोति मुक्तिं प्राप्नोतीत्यर्थः ११ चतुरं ग्याङ्गेव फलमाह सोही उज्जूय भूयस्स धम्मोसुद्धस्स चिट्ठई निव्वाणं परमं जायइ घयसित्तिव्वपावए १२ ऋजु भूतस्य चतुरङ्गी प्राप्यमोक्ष गमनार्थं सरलीभूतस्य शुद्धिर्भवति कषायकालुष्य रहितः स्यात् शुद्धस्य कषाय कालुष्य रहितस्य धर्मस्तिष्टति क्षमादि दशविधधर्मः स्थिरो भवति धरमयुक्तस्य परमं उत्कृष्टं निर्वाणं मोक्षो जायते स जोवमुक्तो भवतीत्यर्थः तपस्तेजसा जाज्वल्यमानो भवति कइवघृतसिक्तः पावकइव घृतेन सिक्तोग्निरिव १२ विगिंच कम्मुणोहेउं जसं संचिणु

सोच्च सद्दहे। तवस्सी वीरियं लद्धु संवुडे निद्धुणेरयं ॥११॥ सोही उज्जुय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई। निव्वाणं परमं जाइ घयं सित्तव्व पावए ॥१२॥ विगिंच कम्मुणो हेउं जसं संचिणु खंतिए पाढवं सरीरं हिच्चा उड्ढं परक्कमई

भाषा बहवः श्रद्दधानापि घणां जीवने धमरूचे छे धमभलो जाणे छे न पुनः एनं धर्मप्रतिपद्यन्ते पणि धर्मअङ्गीकार करे नही १० मानुष्यत्वे समागतो मनुष्यत्व पणुं पाम्यो मनुष्य हुओ यः जीवः धर्मं श्रुत्वा सद्दहणा करोतिधर्मसुणीने सद्दहणा करे तपस्वी वीर्यं लब्धा आपणो वीर्य तपजपने विषे फोरवे सम्वृतो निरुद्धा श्रवः कर्मरजं धुनोति तो सम्वृत होइ आश्रवद्वारुंधे कर्मरजने फेडे दूरी करे ११ शोधि ऋजूभूतस्य मायाइं करीने रहित शुद्ध निर्मल होइ

टीका: खन्तिए शरीर पाठव छिया उड्ढ परक्कमई दिस १३ शिष्य प्रति गुरुर्वदति हे साधोत्व कर्मणोहेतु मिथ्यात्वा विरति कषाय योगादिक विशिष्ट विवेन्धि विवेक कुरु पृथक कुरु पुन क्षान्त्या क्षमया छत्वा यश संयम विनय वासचितुसञ्चय पुनरेव कुर्वन पार्थिव शरीर हित्वा उर्द्धदिशमीक्ष प्रतिप्रक्रा मति भवान् व्रजतित्व प्रयासि इत्यर्थं पृथिव्या भव पार्थिव पृथ्वी विकार १३ विसालसेहि सीलेहि जक्खा उत्तर उत्तरा महासुक्कावदिप्पन्ता मन्नन्ता अपुणव्वय १४ साधव विसदृशैं अत्युत्कृष्टै शीले साधुव्रतै यथा देवा उत्तरोत्तरा सौधर्मादिषु अच्युतान्तेषु तिष्ठन्ति इति क्रिया सम्बन्ध कीदृशास्ते देवा महाशुक्लाइव चन्द्रादित्यादय इव देदीप्यमाना पुनस्ते किं कुर्वाणा अपुनश्च्यव मन्यमाना अतिसौख्यभाक् तथा अपुनर्मरण मन्यमाना १४ अप्पियादेव कामाण कामरूवविउव्विणो उड्ढ कप्पेसु चिट्ठन्ति पुव्वावास सया बहू १५ पुन कीदृशास्ते यथा देवकामान् प्रतिपूर्व भवाचीर्णैं व्रतैर्देव कामान् देवसौख्यानि प्रति अर्पिता पुन कीदृशा कामरूप विकुर्विण कामरूप स्वेच्छारूप विकुर्वन्ति विरचयन्तीत्येव शीला कामरूप विकु

सूत्र: दिस ॥ १३॥ विसालसेहि सीलेहि जक्खा उत्तर उत्तरा । महासुक्काव दिप्पता मन्नता अपुणव्वय ॥१४॥ अप्पियादेव

भाषा: धर्म शुद्धिमासस्य तिष्ठति शुद्धधर्मने विषे रहे छे निर्वाण परम उत्कृष्ट याति ते जीव शुद्ध निर्मल थयो थको मुक्ति जाय घृतसिक्त इव पावक अग्नि घृते सींच्यो जेम दीपे निर्मल होवे तिम जीव कर्म रहित निर्मल होइ १२ प्रथक कुरु कर्मणो हेतु कर्मनुहेतु दूरि करीने यश पुष्टि कुरु क्षमाया क्षमाये करी यश उपाज्यो छे मृण्मय शरीर त्यज्या पार्थिव सप्तधातुमय औदारिक शरीर छाडीने उर्द्ध गच्छति दिसि उर्द्ध देवलोके जाइ १३ विस्तीर्ण शीले अनुष्ठान विशेषे विस्तीर्ण जे अनुष्ठान क्रीयाकलाप तप जपे करीने देवा उत्तरउत्तरा देवता होइ एकएक थी अधिक चढ़ता विमान स्थान क चन्द्रार्क इव दीप्यमाना चंन्द्रमा सूर्यनी परे दीपता तेजे विराजमान मन्यमाना अपुन च्यवं इम नथी जाणता जे अम्हे इहां थी च्यवसु १४ अर्पिता ढोकिता

कुर्विणः अथ तत्र देवलोकेषु कथं यावत्तिष्ठन्ति बहूनि पूर्ववर्षशतानि यावत् तिष्ठन्ति बहूनि इति शब्देन असंख्येयानि वर्षशतानि यावद्दिव सुखानि भुञ्जन्ति पूर्ववर्ष शतायुषा मेव चरणयोग्यत्वे विशेषतो देशनो चित्यज्ञापनार्थं मित्थ मुपन्यासः बहुभिः पूर्वैर्जघन्येन एक पल्योपमं भवति बहुभिर्वर्ष शतैः पूर्व बहुभिः पूर्वशतैः सागरोपमं भवति तावत्तिष्ठन्ति देवत्व मनु भवन्ति १५ तत्थ ठिच्चा जहाठाणं जक्खा आउक्खये चुआ उवेन्ति माणुसजोणिं सेदसङ्गे भिजायए १६ तत्र देवलोकेषु यथास्थानं स्थित्वा यक्षादेवा आयुः क्षयेच्युताः सन्तो मानुष योनिं उत्पद्यन्ते प्राप्नुवन्ति तत्र दसांगाः अभि जायन्ते अत्र प्राकृतत्वात् एकवचनं दशभिरङ्गैः सहवर्त्तन्ते इति सदशांगाः अथवा स इतिति इत्यर्थे दशं अङ्गानि येषान्ते दशाङ्गा इति पृथक् पदं एक वचनेन कश्चिन्नवाङ्गादिरपोति ज्ञापनार्थङ्गानि दशाङ्गानि १५ खेत वत्थु हिरणञ्च पसवो दासपोरुसं चत्तारि कामखन्धाणि तत्थसे उववज्जई १७ ते

सूत्र

कामाणं काम रूव विउव्विणा । उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति पुव्वा वाससया बह्न ॥१५॥ तत्थठिच्चा जहाठाणं जक्खा आउ क्खए चुया । उवेंति माणुसं जोणिं सेदसं गेभि जायइ ॥१६॥ खेत्तं वत्थु हिरणंच पसवो दास पोरुसं । चत्तारि काम

भाषा

देवस्त्रीसर्पणादीनां पुराकृतदेवता सम्बन्धिया भोगपाम्या छे पाछिले पुण्ये आणोढोया छे स्वेच्छारूपकारिणः आपणी इच्छाइ करी नवा२ रूप करी सुख भोगवे उर्द्ध कल्पो परिवर्तिषु ग्रैवेयक विमानेषु उंचादेवलोक उपरि नवग्रैवेयक उपरे छे पूर्वाणि वर्षशतानि च बहुनि वर्षनां सैकडा घणावर्ष आउखूं भोगवे १५ तत्र स्थिता यथास्थानं तेहस्थानकने विषे रहीने देवाः आयुःक्षये च्युत्वा देवता आपणा आउगा भोगवी पूरा करी चव्या देवलोक थकी प्राप्नु वन्ती मानुष्यभवा योनि तिहां थकी चवीने मनुष्यनी योनि पामे मनुष्य होइ सप्रवशेषं पुन्यकर्म च दशाङ्गेषु जायते शेष पुण्य रह्या छे बाकी थाके छे ते

देशा स्तत्र उत्पद्यन्ते तत्र कुत्र यत्र चत्वार एते कामस्कन्धा भवन्ति तत्र कुत्र यत्र क्षेत्र सम्यक भवति १ यत्र हिरण्य स्वर्ण २ रूप्य वा ३ यत्र पशवो घोटक इत्यादयो दास पौरुष चेटकचेटी पत्ति प्रमुखादिक ४ चत्वार एते स्कन्धा वर्त्तन्ते कामा मनोज्ञ शब्दादयस्तेषा हेतव स्कन्धा स्तत्पुद्गल समूहा घनेन यत्र यत्र उत्त १७ मित्तव नायव होइ उच्चागोए यवणव अप्पायके महापन्ने अभिजाए जसोवले १८ मित्राणि विद्यन्ते यस्य मित्रवान् १ ज्ञातिर्विद्यते यस्य स ज्ञातिवान् स्वजवान् २ पुनरुच्चैर्गोत्र यस्य स उच्चैर्गोत्र ३ पुनर्वर्णवान् सरीरे सवर्ण युक्त ४ पुनरल्पातङ्क अल्प आतङ्को यस्य स अल्पातङ्क ५ पुन कोदृशो महाप्राज्ञ महती प्रज्ञायस्य समहाप्राज्ञ महाबुद्धि ६ अभिजातो विनीत ७ पुनर्यशस्वी ८ पुनर्वली बलवान ९ जगोबने इत्युभयत्र मत्वर्थीय लोप श्रङ्ग नवका इहोज्ञा १८ भुच्चा माणुसए भोए अप्पडिरूवे अहाउय पुव्व विसुद्ध सद्धम्मे केवल

खधाणि तत्थ से उववज्जई ॥१७॥ मित्तव नायव होइ उच्चा गोएय वणाव अप्पायके महापन्ने अभिजाए जसो वले ॥१८॥ भोच्चा माणुस्सए भोए अप्पडिरूवे अहाउय । पुव्व विसुद्ध सद्धम्मे केवलबोहि बुज्झिया ॥१९॥ चउरग

भोगवा निर्मोक्ष दशाङ्ग सहोत मनुष्य होवे १६ क्षेत्र गृह रूप्य न यामा रामादिसेतुकेतु भयात्मक क्षेत्र पेव १ गृह २ रूप्य ३ पशुदासपदातय पुरुष त्वगहत्वात् पशुदासमेवक पौरुषत्वचत्वार कामस्कन्धा सु एच्यार कामना सधजोहां होय तत्र सकुलेषु उत्पद्यते तोहां ते पुण्यात्मा जीव आवी उपजे १७ मोत्रयसन् जातिमान् भवति मित्रनातिवत होवे घणा पुरुषमित्र करवा वाळे उच्चैर्गोत्र वर्णवान् देहवर्णउ चा गोत्रहोइ शरीर वर्ण भला होइ अल्पातङ्के नोरोग महाप्राज्ञ रोगरहित हुवे ५ महावडोवत होइ अभिजातो विनीत यशस्वी वनवान् यशवत होइ ८ यलवत होइ १० एदशबोल

उत्तराध्ययने चतुरङ्गाधिकारं संपूर्णम् भावितात्मा अणगारबूंटेरायजी तच्छिष्यभगवान विजय साधुना संशोधितं ।

बोहिंबुज्झिया १९ चउरङ्गं दुल्लहं नच्चा संजमं पडिवज्जिया तवसा धुयकम्मं से सिद्धे हवइ सासएत्तिबेमि २० शुभं तत्र स मनुष्यः अप्रतिरूपः सर्वोत् कृष्टरूपधारी सन् यथायुषं मनुष्यायुषं यावत् मनुष्यस्य भोगान् भुक्त्वा पुनर्यथावसरे केवलां निष्कलङ्कां बोधिं सम्यक्त्वं बुद्ध्वा प्राप्य पुनश्चतुरङ्गीं दुर्लभां ज्ञात्वा संयमं प्रतिपद्य शाश्वतः सिद्धो भवति कीदृशः स पुरुषः पूर्वं विशुद्ध सद्धर्मः पूर्वं पूर्वजन्मनि विशुद्धो निदानरहितः सद्धर्मो यस्य स विशुद्ध सद्धर्मः पुनः कीदृशः सः तपसा धुतकर्मांशः तपसा दूरीकृतकर्म्मलेशः इति सुधर्मा स्वामी जंबू स्वामिनं प्रत्याह हे जंबू अहं इति ब्रविमीति २० इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्तिगणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां तृतीयाध्ययनस्यार्थः समाप्तः ॥३॥ अथ तृतीयाध्ययने चतुरंगी

सूत्र

दुल्लहं नच्चा संजमं पड़िवज्जिया । तवसा धुय कम्मं सेसिद्धे हवइ सासएत्तिबेमि ॥२०॥ चाउरंगिज्ज सम्मत्तं ॥३॥
असंखयं जीविय मा पमायए जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं । एवं वियाणाहि जणे पमत्ते कन्नुवि हिंसा अजया

भाषा

पामि २८ भुक्ता मानुष्यकान् भोगान् मनुष्यसम्बन्धिया भोग भोगवोने उपमारहितान् यथायुः जाव जीवं उपमाइं रहित एहवा मनुष्यना सुख जावजीव भोगवीने पूर्वजन्मनि निर्मले प्रशस्य धर्म्मपाछला भवांतरने विषे जे चारित्रपाल्यां हता ते चारीत्रवलीअङ्गीकार करे सम्यक्त्वं बुद्ध्वा प्राप्य केवली भाष्यो धर्मसम्यक्त्व सहित लेई प्रति बूझे १९ चतुरङ्ग दुर्लभ ज्ञात्वा च्यार अंगधर्मनां दोहिलां जाणीने चारित्रं प्रतिपद्यन्ते चारित्र पडिवजे दिख्यालिइ तपसा स्फोटित कर्मभागः बारे भेदे तप करीने कर्मरजने धूणी दूरि करे सिद्धो भवति शाश्वतः सिद्धि होइ सास्तो इति समाप्तो ब्रवीमि २० इति श्रीचतुरंगी

दुलर्भीमा चतुर्थाध्ययने तां प्राप्य प्रमादस्त्याज्य इत्युच्यते। इति तृतीयचतुर्थाध्ययनयो सम्बन्ध'। असखय जीवियमापमायए जरी विणीयस्सुहुनत्थि ताण एय वियाणाहि जणे पमत्ते कणविहिंसा अजयागहिति १ हे भव्या जोवित आयु' असस्कृत वर्त्तते यत्नशतैरपि असतो वर्द्धयितु त्रुटितस्य वा कर्णवसन्धान कत्तु अशक्यत्वात् जोवित हि केनापि प्रकारेण सन्धातु न शक्यते इत्यर्थं तत मा प्रमादी मा प्रमाद कथा इइति निश्चयेन जरया उपनीतो जरोपनीत तस्य हठत्वेन मरणसमीप प्रापितस्य पुरुषस्य त्राण मरण नास्ति हे भव्य पुनरेव विशेषेण जानीहि एवमिति किंविहिंसा विहसनशीला यति शयेन पापा क शरण स्पष्टोष्यन्ति तु इति वितर्के कोदृशा विहिंसा अजिता अजितेन्द्रिया पुन कोदृशा प्रमत्ता' प्रमादिन इन्द्रियवशवर्त्तिना प्रमादिनां पापाना जरामरणाद्युपद्रवे कश्चित् शरणो नास्ति जणे पमत्ते इति प्रथमा बहुवचनस्थाने प्राकृतत्वात्समर्थ्य कवचन १ जे पावकम्मेहि

गहिति ॥१॥ जे पाव कम्मे हिधण मणूसा समाययती अमय गहाय पहायते पास पयट्टिए नरे वेराणुवद्धा नरय

अध्ययन टव्वाय गयबधे सपूर्णम् २ असस्कृत जोवित माप्रमादी प्रमाद मा कार्षी ए आउखु असस्कृत छे तूटी थकी सध्यो न जाइ ते भणी जीवप्रमाद न करे जरोपनीतस्य त्राण शरण नास्ति जराजीवने आव्या पछे वठा हुआ उठी वेसी सके नहीं तियारे सरण एहने कोइ नथी इत्येव प्रकार जानाहि प्रमादयत लोका इम जाणीने अहोलोको प्रमाद छाडो विहसन शीला असयता किंशरण स्पष्टन्ति एतले हिसा करो छो जीव मारो छो इन्द्री आपणा वसि नथी१ जे पाप कर्मभी धन मनुष्या जेमनुष्या जेमनुष्यपापकरीधन उपार्जे छे समा ददत्येव कुमति स्पष्टीला सम्यक् प्रकारे आदरी धनएकठु करो छो ते तुम्हने कोण कुमति लागो ते कुमधे करो त्यक्ता ते नरा पापयुक्ता ते मनुष्य सर्वधन छाडोने ते मनुष्य किस्या छे पास करो बांध्या छे पास किस्या स्रोधन वेटावेटो घर प्रमुख पासे करीज कथा छे पाप कर्मानुबद्धा व्याप्ता नरकेषु याति ते मनुष्य घणाभी पाप करीने घणा जीवसु वयर उपार्जी

धर्ण मञ्जूसा समायन्ती अमइं गहाय पहाय ते पासपयहिए नरे वेराणुबद्धा नरयं उविंति २ जे इति मनुष्याः पापकर्मभिधनं अर्जयन्ति ते मनुष्याः वैरानुबद्धाः पूर्वोपार्जितद्वेषबंधन बद्धाः नरकं व्रजन्ति किं कृत्वा धनं उपार्जयंति अमृतिं गृहीत्वा न मतिः अमतिस्तां अमति कुमतिं अङ्गीकृत्य अथवा अमृतं आनन्दं आनन्दहेतु गृहीत्वा ऐहिकसुखहेतुकं धनं विचार्य किं कृत्वा नरकं व्रजन्ति पापकर्मभिरुपार्जितं धनं प्रहाय त्यक्त्वा कीदृशास्ते मनुष्याः पाशप्रवर्त्तिताः पाशेषु पुत्रकलत्र धनप्रमुखबन्धनेषु प्रवर्त्तिताः पाशप्रवर्त्तिता. धनं हि नरके व्रजतो जीवस्य सार्थे नायाति एकाकी एवमहारम्भ महा परिग्रहवशात् नरकं यान्तीत्यर्थः जरीवणीयस्स हुनत्थिताणं अत्र कथा उज्जयिन्यां जितशत्रु नृपस्य अट्टणमल्लो वर्त्तते सच प्रतिवर्षं सो पारके गत्वा सिंह गिरिराज्ञः सभायां मल्लान् विजित्य जयपताका लाति अन्यदा राज्ञा एवं चिन्तितं पर देशीय मट्टणमल्लोमल्लसभायां जित्वा बहुद्रव्यं प्राप्नोति मदीयः कोपि मल्लो न जीयते नैतद्वरं एव हि ममैव महत्व च्छितिर्जायते इति मत्वा कश्चिद्बलवन्तं मत्सिनरं दृष्ट्वा स्वमल्लं चकार तस्य त्वरितमेव मल्लविद्याः समायाताः मत्सी मल्ल इति नाम कृतं अन्यदा अट्टणमल्लः सो पारके समायातस्तेन समं राज्ञा मच्छी मल्लस्य युद्धं कारित जितो मत्सीमल्लः अट्टणः स्वा जितः स्वनगरे गतः एवं चिन्तयति मत्सीमल्लस्य तारुण्येन बलवृद्धिः मम तु वार्द्धक्येन बलहानिः ततोऽन्य स्वपक्षपातिन मल्लं करोमि ततोसौ बलवन्तं पुरुषं विलोकयन् भृगुकच्छदेशे समागतः तत्र हरिणीग्रामे एकः कर्षकः एकेन करेण हलं वाहयन् द्वितीयेन फलहीयमुत्पाटयन् दृष्टः स भोजनाय स्वस्था नके सार्द्धं नीतः तस्य बहुभोजनं दृष्टं उत्सर्गसमये च सुदृढमल्पं पुरीषं दृष्ट्वा मल्लविद्या ग्राहिता फलहो मल्ल इति नाम कृतं अट्टणः सो पारके फल ही मल्लं गृहीत्वा गतः राज्ञा मत्सीमल्लेन समं फलहीमल्लस्य युद्धं कारित प्रथमे दिवसे द्वयोः समतैव जाता अट्टणेन स्वोत्तारके फलहीमल्लः पृष्टः पुत्र तवाङ्गे क प्रहारा लग्नास्तेन स्वाङ्गप्रहारस्थानानि दर्शितानि अट्टणेन औषधिरसेन तानि स्थानानि तथा मर्दितानि अथासौ पुनर्नवीभूतः मत्सीमल्लस्यापि राज्ञा

दृष्ट ■ तवाङ्गे प्रहारा लग्ना स्तथा न दर्शय फलहीमल्ल पुनर्नवीभूत गृयते मल्लीमल्लोऽभिमानात् स स्वस्थानं न दर्शयति यति च अह पुनर्नवीभूत फलही पितर जयामि द्वितीयदिवसे पुन युद्धावसरे द्वयोरपि साम्यमेव जात तृतीयदिवसे मल्लीमल्लो जित फलही मल्लेन अट्टणेन स्वपराभव स्मारित ततो मत्सिमल्ले नान्याययुद्धाचरणेन फलहीमल्लस्य मस्तक छिन्न खिन्नोऽट्टणमल्लो गत उज्जयिनी तत्र विमुक्तयुद्धव्यापार स्वगृहे तिष्ठति पर जराक्रान्त इति न कस्मै चित् कार्याय क्षम इति स्वजनै पराभूयते अन्यदा स्वजनाऽपमान दृष्ट्वा तदनापृच्छयैव कोशाम्बी नगरी गत तत्र वर्षमेक यावद्रसायन भक्षित वान् ततोऽत्यन्त बलवान जात उज्जयिन्या राजपर्षदि मल्लमहे प्रवर्त्तमाने पुनर्नवागतयौवनेन अट्टणमल्लेन समागत्य राज्ञो नीरङ्गण नाम महामल्लो जित राज्ञा तु मदीयो य मल्ल आगन्तुकेनानेन मल्लेन जित इति ज्ञात्वा न प्रशसित लोकोपि राजप्रशसामन्तरेण मौनभाक् जात अट्टणस्तु स्वस्वरूपज्ञाप नाय सभापश्चिम प्रत्याह भो भो पक्षिणो ब्रुवन्तु अट्टणेन नीरङ्गणो जित ततो राज्ञा उपलक्षितो मदीय एवाय अट्टणमल्ल इति ज्ञात्वा सत्कृत बहुद्रव्य चास्मै राज्ञा दत्त स्वजनस्त तथाभूत श्रुत्वा सन्मुखमागत्य मिलित सत्कारादि चकार अट्टणेन चिन्तित द्रव्यलोभादेते मम साम्प्रत सत्कार कुर्वन्ति यथा त्रिद्रव्यमामपमानयिष्यति जरापरिगतस्य मे न कश्चित् त्राणाय भविष्यति यावदह सावधान बलोस्मि तावत्प्रव्रजामीति विचार्य गुरो समीपे अट्टणेन उवेति ।२।

सूत्र तेणे जहा सधि मुहे गहीए स कम्मुणा किच्चइ पावकारी । एव पया पेच्च इहच लोए कडाण कम्माण

भाषा नगरनें वीषे जाइ२ चोर यथा खात्रमुखे गृहीत जिम चोर खात्र पाडे माहें पेसता थको झाल्यो स्वकर्मना कृत ते पापकारी आपणें कर्मे करी पाप नो करणहार चोऊलत्य ते कदर्थ मारीइ इम हे प्रजा हे लोक विलोकयध्व एव इहलोके परलोके अहोलोको देखो तुम्हें इणि चोरनें दृष्टान्तें इह लोकनें विषे जीव कदर्थी इछें सताना कर्मणा मोक्ष नास्ति इणें जीवें जे कर्म कीधोछे ते कर्मविणभोगव्या छुटे नही २ ससार मापन्न प्राप्ता परस्पर

दीचा गृहीता इति जरीवणी असनहुत्थिताणं अत्र अट्टणमलकथा समाप्ता तेणे जहा संधिमुहे गहीए सकम्मुणा किचइ पावकारी एवं पया पेच इहं च लोए कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि ३ यथास्तेन चौर: सन्धिमुखे खात द्वारे गृहीत: स्वकर्मणा स्वकीय कृत खात चातुर्येण कृत्वा कृत्यते शरीरे च्छिद्यते काष्ठफलके कपि शीर्षाकार उत्कीर्ण खात संकीर्ण द्वारेण शरीरे विदार्यते इत्यर्थ: कीदृश: चौर: पापकारी अत्र दृष्टान्त: कचिन्नगरे कस्य चिद्व्यवहारिण: फल कचिते गृहे केन चिच्चौरेण प्रकारकपि शीर्षाकृति खात्रं दत्तं तत्र प्रविशन्त: स्थ जागरूक गृहस्वामिना बहि: स्थ चौरेण चाकृष्यमाणो विलपन्नेव मृत: एवं अमुना दृष्टान्तेन प्रजालोक: प्रेत्य परलोके च पुन: इह इहलोके कृत्यते पीड्यते इत्यर्थ: इहलोके च धनार्जनार्थं चुत् तृषा सीता तपसहन पर्वतारोहण जलधितरण नृपसेवन संग्रामे प्रहार सहनादि क्लेशेन परभवे च विविध नरकक्षेत्र वेदना परमाधार्मिक विनिर्मित व्यथया कृत्यते इत्यर्थ: कथं हि परलोके पीड्यते तत्र हेतुमाह कृतानां उपार्जितानां कर्मणां मोक्षो नास्ति ३ अत्र पुनश्चौरकथा क्वापि ग्रामे कोपि चौरो दुरारोहे मन्दिरे खात्रं दत्वा द्रव्यं लात्वा स्वगृहं गत: प्रत्यूषे कि वदन्तीति वार्त्ता श्रवणाय खात्रासन्न लोकमध्ये गत: लोकास्तु तत्र इत्थं वदन्ति कथमत्र लघीयसि खात्रे चौर: प्रविष्टो निर्गतोवेतिलोक वाक्यं श्रुत्वा स्वकटी विलोकयन् भूप नरैर्दृष्टो व्यापादितस्स ३

सूत्र — ण न मोक्ख अत्थि ।३। संसार मावणा परस्स अट्ठा साहारणं जंच करेइ कम्म कम्मस्स ते तस्स उवेइ काले न बंध

भाषा — पुत्र कलत्रादि अर्थे संसार माहें फिरतुए जीव साधारण कर्म उपार्ज्जे बाप बेटा स्त्री बेटी एहनें अर्थे वंचक द्रोह करेछे पापे करी धन लावे सर्व कुटंब खाइछे साधारणं यत्करोति कर्म पराइ अर्थे साधारण कर्म करेछे कर्मणा ते तस्य कर्मफल विपाक समये जीवारे ते कर्म उदय आवे तिवारे न बांध वा बांधवतां प्राप्नवति ते बांधव बांधवपणुं पाले नही अलगा जाइ उभा रहे एजीव आपणी कमाइ एकलो भोगवे४ द्रव्येणत्राणं न लभेत् प्रमादी

ससार मावन परस्स अट्ठा साहारणञ्च करेद कम्म कम्मस्सते तस्सउवेयकाले न बन्धवा बन्धवय उविन्ति ४ ससार समापन्न ससारी जीव परस्य प्रमादी अथ परार्थ परनिमित्त पुत्र मित्र कलत्र स्ववान्धवार्थं यत्साधारण उभयार्थं आत्म परनिमित्त यत्कर्म करोति ते मित्र पुत्र कलत्रादय स्ववान्धवास्तस्य पापकर्मकारिण पुरुषस्य तस्य पापकर्म फलवेदकाले विपाककाले बान्धवता दुखवटन भाव न उपयान्ति ४ अत्र आभीरीवञ्चक कथा क्वापि ग्रामे कोपि वणिक् हट्टे क्रयविक्रय करोति अन्यदा एका आभीरीतद्धट्टे आगता तया भणित भो रूपकद्वयस्य मेतत्तन्देहि तेनोक्त अर्पयामि अर्पित तया रूपकद्वय तेन वणिजा एकस्यैव रूपकस्य घृत वारद्वयन्तो लयित्वा अर्पित सा जानाति ममरूपकद्वयस्य घृत दत्त वञ्चिता च सातस्याज्ञतया सचिन्तयति एष रूपको मया मुधालब्ध तताहमेव उपभुञ्जामि तस्य रूपकस्य घृतखण्डादि लात्वा स्वगृहे विसर्जित भार्य्याया कथापित अद्य घृतपूरा कुर्यात् तया घृतपूरा कृता तावता तद्गृहे सभित्रो जामाता समायात तस्यैव तया घृत पूरा परिवेषिता समि त्रेण तेन भक्षिता गत समित्रो जामाता वणिक् गृहे समायात स्नान कृत्वा भोजनार्थं मुपविष्ट तया स्वाभाविकमेव भोजन परिवेषित वणिग वदति कथ न कृता घृतपूरा तया उक्त कृता प्रत्मागन्तुकेन स मित्रेण जामात्रा भक्षिता स चिन्तयति मया सावराकी अभीरी वञ्चिता परार्थं मेवाय मात्मा पापेन सयोजित एव चिन्तयन्नेवासो शरीर चिन्तार्थं बहिर्गत तदानी ग्रीष्मोवर्त्तते स मध्याह्नवेलाया कृत शरीरचिन्ता एकस्य वृक्षस्याधस्तात् विश्रामार्थं मुपविष्ट तेन मार्गेण गच्छन्त साधु दृष्टवान वणिगुवाच भो साधो विश्राम्यता साधुनोक्त शीघ्र मया स्वकार्यं गन्तव्य वणिजा प्रुक्त भगवान कोपि परकार्यं गच्छति साध प्राह यथा त्व स्वजनार्थं क्लिश्यसि अनेन एकेनेव वचने सबुद्ध प्राह भगवन् यूयक्क तिष्ठथ साधुना भणित उद्याने स साधुना सम तत्रगत तन्मुखादर्म माकर्ण्य भणति भगवन्नह प्रव्रजिष्यामि नवर स्वजनमापृच्छामि गतो निजगृहे वान्ध

वान् भार्याञ्च भणति अत्रापणे व्यवहारतो मम तुच्छलाभोस्ति देशान्तरं यास्यामि सार्थं वाहद्वय मलाया तत्रास्ति एकः सार्थवाहो मूलद्रव्यं अर्प्पयति इष्टपुरं नयति न च लाभं गृह्णाति द्वितो मूलद्रव्य मर्प्पयति सह गमनात् लाभञ्च गृह्णाति तत्केन सहगमनं युज्यते तैरुक्तं प्रथमेन सहव्रज अथ स वणिक् स्वजनैः समं वने गत्वा उवाच अय मुनिः परलोक सार्थवाहः स्वकीय मूलद्रव्येण व्यवहारङ्कारयति मोक्षपुरञ्च नयतीति दृष्टान्त दर्शन पूर्वकं स्वजनाना पृच्छत् स वणिक् तस्य गुरोः समीपे दीक्षां जयाहेति वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते इम मिलोए अदुवा परत्थ दीवप्पणट्ठेव अणंतमोहे ने आउ अन्दठु मदट्ठमेव ५ प्रमत्तः प्रमादी मनुष्य' वित्तेन द्रव्येण त्राणं इमं मिलोए अस्मिन् लोके अथवा परलोकेत्राणं स्वकृतकर्मतो रक्षणं न लभेत न प्राप्नुयात् वेश्या गृहस्थ पुरोहित पुत्रवत् कस्मिंश्चिन्नगरे कोपि राजा इन्द्र महोत्सवेसान्तःपुरो निर्गच्छन् निर्घोषं कारयामास सर्वे पुरुषा नगराद्दहिरायां तुयोत्रस्यास्यति तस्य महादण्डो भविष्यति तत्र राजवल्लभः पुरोहित पुत्रो वेश्यागृहे प्रविष्टो राजपुरुषघोषणां श्रुत्वापि ततो न निर्गतः राजपुरुषैर्गृहीतोप्यसौ राजवल्लभत्वेन दर्पं कुर्वन्नतेभ्यः किञ्चिद्दद्दो तैस्तु राजसमीपेनीतः राज्ञा तु आज्ञाभञ्जकत्वेनास्य शूलादण्डः कथितः पुरोहितेन तत्पिता सर्वस्व मह ददामीत्युक्तं तथापि राज्ञानाय सुतः शूलायामारोपित एवेति दीप प्रणष्टः प्रणष्टदीपः पुरुषो भावोद्योत रहितः

सूत्र

वावंधवयं उवेंति । ४। वित्तेणताणं नलभे पमत्ते इममिलोए अदुवापरत्था । दीवप्पणट्ठेव अणंतमोहेनेयाउयं दट्ठु,म

भाषा

जोवने लक्ष्मी पणिराखें नहो प्रमादी जोवजाणें जिवारे कर्म उदय आवस्ये तिवारे लक्ष्मी देईने राखी स अस्मीन् लोके अथवा परलोके इहलोकने विषे अथवा परलोकने विषे राखो न सके जीवने यथा सम्यक्त रूप प्रदीपे प्रनष्टे अनन्त मोहनीयकर्माधिकारे जिमकोइक पुरुष हाथ मांहिंदो वोले इने रसकुपिका लेवाने अर्थे पेठादोवो गये मार्ग न दोसे ज्ञान दर्शन चारितात्मक मुक्तिमार्ग दृष्टापि अदृष्टमेव स्यात् तिम जीव मुक्तमार्ग दीठो छेपणि

पुरुष यथानैयायिक सम्यक दर्शनादि तत्व दृष्टाप्यदृष्टाइव करोति कीदृश प्रणष्टदीप पुरुष अनन्तमोह अनन्तोऽविनासी मोहो दर्शनावरण मोहनो यात्मको यस्य स अनन्तमोह एतादृश अध्यानो इत्यर्थं अत्र प्राकृतत्वात षष्ठार्थे प्रथमापि प्रणष्ट दीपस्य प्रणष्ट सम्यक्तस्य अनतमोहस्य उदिता मिथ्यात्वस्य नैयायिक सम्यग्दर्शन तत्व लब्धामिव स्यात् प्राप्त सम्यक्त अप्राप्तमिव स्यात् तद्दर्शनफलस्याभावात् लब्धस्य सम्यक्तस्य हानित अलब्धमेव न केवल प्रमादी पुमान् वित्तेन त्राण न लभेत किंतु प्रमादी त्राणकारण नरकादिभयनिवारणहेतु सम्यक ज्ञानादिरत्न त्रयमपि हन्ति इत्यर्थं अत्र खनिप्रविष्ट धातुवादी पुरुषो यथा प्रणष्टदीपो जात तस्य दृष्टपूर्वोपि मार्गोऽदृष्टवत् जात अत्र तत्कथा केचिद्धातुर्वादिन सद्दीपा सैंधवा बिल प्रविष्टा तत्प्रमादाद्दीपे विध्याते महातमो मोहिता इतस्ततो भ्रमन्त प्रचण्डेन विषधरेण दृष्टा गर्त्तायां पतिता मृता एव प्राप्त सम्यक्ता अपि जीवा महामोह यशात् पुनर्मिथ्यात्व गच्छन्तीति परमार्थं ५ सुत्ते सयावोपडिबद्धजीवी न वीससे पडिय आसुपन्ने घोरा मुहुत्ता अबल सरीर भारंडपक्खीवचरपमत्ते ६ प्रतिबुद्धजीवी अनिद्रो अप्रमादी पुमान अन्येषु सुप्तेष्वपि अविवेकिनरेषु निद्रायुक्तेषु सत्स्वपि न विश्वसेत् विश्वास नैव

सूत्र

दद्यमेव ।५। सुत्ते सुयावी पडिबुद्ध जीवी नवीससे पडिय आसु पन्ने । घोरा मुहुत्ता अबल सरीर भारंड पक्खी

भाषा

मोहनीय कर्मने वशे दीठो अणदीठो होय जाय५ सुप्तेष्वपि अविवेकी द्रव्यतो भावतोऽविद्वान सूर्वलोक द्रव्यनिद्राइ भाव निद्राइ सूता छे अने पडिते द्रव्य निद्राभाव निद्रा छोडीने जाय छे पण्डितो न विश्वसेत् सीघ्रप्रज्ञ तीक्ष्णप्रज्ञाजूक्त पण्डितसाधुविश्वास न करे प्रज्ञावन्त तीक्ष्णबुद्धिनो धणी रौद्रा मूहुर्त्ता अबल मृत्युदायक शरीर घोर मुहूर्त्तरौद्र मुहूर्त्त जाय छे शरीर अबल दुर्बल छे मृत्युदायि मुहूर्त्तान् ज्ञात्वा अप्रमत्त सन भारण्ड भारण्डपक्षिवत् अप्रमत्त चरेत् इम जाणीने भारंड पखीनी परे अप्रमत थको वीचरे ६ चरेत् धर्मपदानि परिसक्रमान सन् पापथकी सकतो चाले सजम विराधे नही यत्

कुर्यात् कीदृशः स आशुप्राज्ञः तत्कालयोगा बुद्धिमान् आशु शीघ्रं कार्याकार्येषु प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपा प्रज्ञा मति र्यस्य आशुप्राज्ञः यतो मुहुर्त्ताः कालविशेषा घोराः प्राणापहारित्वात् रौद्राः शरीरं अबलं बलरहितं भवति मृत्युदायिमुहूर्त्तान् ज्ञात्वा अप्रमत्तः सन् भारण्ड पक्षीवचरः एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः प्रमादात्ते विनश्यन्ति यथा भारण्डपक्षिणः १ हे साधो तथा तवापि प्रमादात् संयमजीवितस्य भ्रंसो भविष्यति अत्र अगडदत्त राजपुत्र कथा उज्जयिन्यां जितशत्रु राज्ञोऽमोघरथो नाम रथिकोऽस्ति तस्य यशोमती नाम भार्यास्ति तयोः पुत्रोऽगडदत्तो नाम वर्त्तते अन्यदा तस्य बालभावेपि पिता मृतः सो अभीक्ष्णं रुदन्तीं मातरं दृष्ट्वा पृच्छति मातर्वारं२ किं रोदिषि सा प्राह तव पितुः पदं विभूतिं चाऽमोघप्रहारी रथिको भुंक्ते त्वं कलासु कुशलस्ते न तव हस्ते पितुः पद विभूतिश्च नायातेत्यहमत्यन्तं खिन्ना निरन्तरं रोदिमि बालेन भणितं सकोऽप्यस्ति यो मम कलाः शिक्ष यति माता प्राह अस्ति कोशांब्यां दृढप्रहारी नामा कलाचार्यस्तत्र त्वामवश्यं कलाकुशलं करिष्यति अगडदत्तो गतः कौशांब्यां दृष्टो दृढप्रहारी कलाचार्यः कथितं तेन तस्य मातुःखेदकारणं कलाचार्येण पुत्रवद्वासी स्वपार्श्वे रक्षितः स्तोक कालेनैव कलासु कुशलः कृतः अन्यदा राजकुलेप्रेषितः तेन सभायां दर्शिताः कलाः चमत्कृतः सकलो लोकः पुनः पुनः साधुवाद अवदत् राजा तु नास्ति किञ्चिदाश्चर्यमिति वदन् किञ्चिदधिकमुवाच उचिताचारपालना येदं पुनरुवाच कुमार तुभ्यं किञ्च ददामि कुमार आह राजंस्त्वं साधुकारमपि न दत्से किमन्येन दानेनेति अस्मिन्नेवावसरे राजा पौरैरेवं विज्ञप्तः राजन् भवत्पुरे अश्रुतपूर्वं चौरेण द्रव्यापहरणं वारं वारं क्रियमाणमस्ति एवञ्च राजलज्जा न तिष्ठति ततो नगररक्षायत्नः क्रियतां तदैव राज्ञा तला रक्षः आज्ञप्तः सप्ताहो रात्रिमध्ये यथा चौरो गृह्यते तथा कर्त्तव्यं तदानीं तत्रस्थोऽगडदत्तः प्राह राजन्नहं सप्ताहोरात्रिमध्ये चौरं तव चरणमूलमुपने ष्यामि राज्ञा तद्वचोऽङ्गीकृतं एवं कुर्विति वारं२ उक्तं ततो हृष्टोऽगडदत्तो राजकुलान्निर्गत्य चिन्तयति दुष्टपुरुषास्तस्कराश्च प्रायः पानीयस्थाने नानाविध

लिङ्गधारिणो भ्रमतीत्यह तच्छुद्धये तटाकोपवनेषु यामीति चिन्तयित्वा नगराद्वहिरेक एव एकस्य शीतलछायस्य सहकारपादपस्य तले मलिनांबर उपविष्टश्चौरग्रहणोपाय चिन्तयन्ति तस्यैव सहकारस्य छायामायात एक परिव्राजक स्थूलजानु दीर्घजङ्घ कुमारेण दृष्टश्चिन्तितश्च नूनमेभिर्लक्षणैरय चौरएवेति भणितश्च तेन परिव्राजकेन वत्स कुतस्त्वमायात किं निमित्त भ्रमसि तत कुमारेण भणित भगवन्नहमुज्जयनीतोऽत्रागत क्षीणविभवो भ्रमामि तेन भणित पुत्र तवाह विपुलमर्थ ददामि अगडदत्तेन भणित तर्ह्ययमातुरस्हीत सन्तोहिनिष्कारणमुपकारिण स्यु एव तयोरभिलाप कुर्वतोरेव सूर्योस्तङ्गत रात्रौ तेन त्रिदण्डात् शस्त्र कर्षित बद्ध कच्छ नगरी याम इति वदन्नेव समुत्थित स अगडदत्तोपि सम्यक्कित स्तमनु गच्छति चिन्तयति च एष एव स तस्कर इति द्वावपि प्रविष्टौ नगर तत्रापि श्रेष्ठिनोयमतीवोन्नत कस्यापीभ्यस्य गृह दृष्ट तत्रचात्र दत्त परिव्राजकस्त मध्ये प्रविष्ट अगडदत्तो वहिस्थश्चिन्तयति चौरस्तु मया ज्ञात परमस्य स्वरूप सर्वन्तावत्पश्यामीति परिव्राजके नानेक भाण्डभृता पेट्यएव कर्षिता अगडदत्तसमीपेता स्थापयित्वा गतोदेव कुले ततोऽनेके भारवाहिन आनीतास्तेषा शिरसिता स्थापिता सर्वेपिगता पुराद्वहि तापस कुमार प्रत्याह पुत्र अत्र जीर्णोद्याने निद्रासुख मनुभवाम इत्युक्ता सर्वेपिसुप्ता निद्राणाश्च परिव्राजकश्च कपट निद्रया सुप्त अगडदत्तस्तु नैताद्दृशाणां विश्वास साध्य इत्यवधार्यैवं कपटनिद्रया सुप्ता तत उत्थाय वृक्षान्तरित स्थित तान पुरुषान निद्रावसगतान ज्ञात्वा सपरिव्राजक ककपत्रा मारितयान अगडदत्तस्सरे च समागत्यत तत्रापश्चात् पश्चाद्दलितस्तावता अगडदत्तेन तदन्तिके समागत्य खड्गप्रहारेण प्रकामहत पतित पृथिव्या अगडदत्त प्रत्याह यस्य गृहद्दर्शेम मम खड्ग व्रजश्मसान पश्चिमे भागे तत्र भूमिगृहेभित्तौ स्थित्वा शब्द कुर्या तत्र मम भगिनीवसति तस्या इम मम खड्ग दर्शये तत सकेत कथनात् साते भार्या भविष्यति सर्व्वं द्रव्यस्वामी त्व भविष्यसि अह तु गाढप्रहारान मृत एवेति मत्स्वरूप कथये अगडदत्तस्तत

खड्गमादाय तत्रगत: शब्दिता सा आयाता तेन दृष्टा अतीव रूपवती अवदत् कुतस्त्वमावात: समाह गृहाणेम खड्गं तद्दर्शनमात्रेणैवतया सर्वन्तस्य स भ्रातृ स्वरूपं ज्ञातं मनस्येवशोक निगूहनं कृतं अगडदत्तस्तद्गृहाभ्यन्तरं नीत: दत्तमासनं तत्र स उपविष्ट: तया विशिष्टादरेण शय्यारचिता भणितश्च स्वामिनत्र विश्राम्यतां तयोक्ते सुप्तस्तत्रागडदत्त: सा गृहाद्बहिर्निर्गता तावता अगडदत्तेन चिन्तित अस्यापि विश्वासो नैव कार्यं इति शय्यात उत्थाय अन्यत्र गृहकोणे स्थित: स: तया तु शय्यो परिष्टात् पूर्वं यन्त्रचालनेनैव मुक्ता शिला पतन्त्या तया शय्या चूर्णिता साऽत्यन्तं हर्षवती दत्ततालं भणति हतो मया भ्रातृघातकस्ततोऽगड दत्तेन त्वरितं सा केशेषु गृहीता भणिता हा दासिकेय ते धोस्त्वं मां हनिष्यन्ति सा तत्पादयो: पतिता तव चरणौ मे शरणमिति वभाण अथ तेन सा मा भय कुर्विति आश्वासिता स्वकरे गृहीता राजकुले नीता कथितश्च समस्तो वृत्तान्त: राज्ञो सोऽगडदत्त: पूजित: प्रशंसितश्च एवं अप्रमत्ता इहैव कल्याणभाजो भवन्ति उक्तो द्रव्यसुप्तेषु प्रतिबुद्धजीवि दृष्टान्त: एतावदुत्तराध्ययन वृहद्वृत्तिगतं अगडदत्ताख्यानं लिखितं अथ कथान्तरलिखितं अगडदत्ताख्यानं लिख्यते शङ्खपुरे सुन्दरनृप: तस्य सुलसा प्रिया तत्सुतोऽगडदत्त: स च सप्तव्यसनानि सेवते लोकानां गृहेष्वप्यन्यायं करोति लोकैस्तदुपालम्भा राज्ञो दत्ता: राज्ञा स निर्वासितो गतो वाराणस्यां पवनचण्डोपाध्यायगृहे स्थित: द्विसप्तति ७२ कलावान्जात: गृहोद्याने कलाभ्यास कुर्व्वंन् प्रत्यासन्न गृहगवाक्षस्थया प्रधानश्रेष्ठिसुतया मदनमञ्जर्यास्तद्रूपमोहितया च तया प्रक्षिप्त पुष्पस्तवक: सञ्जातप्रीतिस्तन्मय एवजात: अन्यदा तुरगारूढ: स नगरमध्ये गच्छन्नस्ति तावता ईदृशो लोक कोलाहल: श्रुत: यथा किंच लिउच्च समुद्दो किवा जलिउह्य आसणो घोरो किं पत्तिंरिउसेण तडि दंडो निवडिउ किंवा १ मठेण विपरिचत्तो मारंतो सु डिगोयर पत्तो सवडं मुहं चलंत कालुव्व अकारणे कुद्धो २ तावता तेन कुमारेण अश्वं मुक्ता सहस्तीगजमदनविधया द्रांग पश्चात्तमागत्य राजकुलासन्न मायातो राज्ञा दृष्ट आकारितो मानपूर्वं कुमारेण तं गजमालानस्तम्भे

वह्रा राष्ठ प्रणाम कृत राज्ञा चिन्तित कश्चिन्महापुरुषोय यतोत्यन्तविनीतो दृश्यते यत सालीभरेण तोयेण जलहरा फलभरेण तरुसिहरा विणएण
यसप्पुरिसा नमन्ति नहुकस्सइभएण १ ततो विनय रञ्जितेन राज्ञा तस्य कुलादिक पृष्ट कियान् कलाभ्यासकृत इत्यपि पृष्ट कुमारस्तुलज्जालु त्वेन
न किञ्चिद्विक्ति उपाध्यायेन तस्य कुलादिक सर्वविद्या नैपुण्य कथित कुमार वृत्तान्त श्रुत्वा चमत् कृतो भूपति अथ तस्मिन्नेवावसरे राज्ञ पुरो नगर
लोक प्राभृत मुक्ता एव मुचिवान् हे देवत्वन्नगर कुवेर सदृश कियद्दिनानि यावदासीत साम्प्रत चौरपुर तुल्यमस्ति केनापि तस्करेण निरन्तर मुष्यते
अतस्त्व रक्षा कुरु राज्ञातला रक्षा आकारिता भृश वचोभिस्तर्जिता तैरुक्त महाराज कि क्रियते कोपि प्रचण्डस्तस्करोस्ति बहुपक्रमोपिन दृश्यते
तत कुमारेणोक्त राजन्न् सप्तदिन मध्ये तस्कर कर्पण चेन्नकरोमि ततोऽग्नि प्रवेश करोमीति प्रतिज्ञा कृता राज्ञा तु पुरलोक प्राभृत कुमाराय दत्त
कुमारस्तत उत्थाय चोरस्थानानि विचारयति वेसाण मन्दिरेसु पाणागारेसु यूयठाणेसु कुम्भूरियवणेसुअ उज्जाणनिवाण सालासु १ मठसुन्न देवलेसुय
चच्चर चउहट्टसुन्न सालासु एएसु ठाणेसु पाएणतक्करो होइ २ एव चोरस्थानानि पश्यत कुमारस्य षटदिनागता सप्तमदिने नगराद्वहि
र्गत्वाध स्थित चिन्तयति छिज्जउसीस अह होउ बन्धयउ सव्वहालच्छी पडिवन्न पालणेसु पुरिसाण जहोइत होउ १ एव चिन्तयन्नसौ कुमार
इतस्ततो दिगवलोकन करोति तस्मिन्नवसरे एक परिहित धातुवस्त्रो मुण्डित शिर कुर्वंक्षि दण्डधारी चामरहस्त किमपि बुड बुड इति शब्द
मुखेन कुर्वाण परिव्राजक स्तत्रायात कुमारेण दृष्ट चिन्तितञ्च अयमवश्यञ्चोर यतोस्य लक्षणानी दृश्यानि सन्ति कारि मुण्डाभुयदण्डो विसाल वच्छत्थ
लो पुरुसकेसो नव तुव्वणीरउढोरत्तयो दीह जङ्घोय १ एव चिन्तयत कुमारस्य तेन कथित अहो सत्पुरुष कस्त्वमायात केन कारणेन पृथिव्या
भ्रमसि कुमारेण भणित उज्जयनी तोऽहमत्रायात दारिद्र भग्नो भ्रमामि परिव्राजक उवाच पुत्रक मा खेद कुरु अद्य तव दारिद्र छिनद्मि समी

हितमर्थं ददामि ततो दिवसं यावत्तौ तत्रस्थितौ रात्रौ कुमार सहित श्चौरः कस्यचिदिभ्य गृहे गतः तत्रचात्रं दत्तवान् तत्र स्वयं प्रविष्टः कुमारस्तु बहिस्थितः परिव्राजकेन द्रव्य भृताः पेटिकास्ततो बहिर्ष्कार्षिताः ताः चात्रमुखे कुमार समीपे मुक्ता स्वयमन्यत्र क्वचिद्गत्वा दारिद्र्य भग्नाः पुरुषा अनेके आनीताः तेषां शिरसिताः पेटिका दत्वा कुमारेण समं स्वय बहिर्गतः सतापसः कुमारं प्रत्येव मुवाच कुमार क्षणमात्रं वद्रे तिष्ठामः निद्रा सुखमनु भवामः परिव्राजकेनेत्युक्ते सर्वेपि पुरुषा स्तत्र सुप्ताः कपट निद्रया परिव्राजकोपि सुप्तः कुमारोपिनो तादृशाणां विश्वासः कार्यं इति कपट निद्रयैव सुप्तः तावतासपरि व्राजक उत्थाय तान् सर्वान् कंकपत्रा मारयामास यावत् कुमार समीपे समायाति तावत् कुमार उत्थायतं खड्गेन जङ्घाद्वये जघान छिन्ने जङ्घाद्वये सतत्रैव पतितः कुमारं प्रत्येव मुवाच वत्साहं भुजङ्गनामा चौरः ममेह श्मशाने पाताल गृहमस्ति तत्र वीरपत्नी नाम्नी मम भगन्यस्ति अटवटपादपस्य मूले गत्वा तस्याः शब्दं कुरु यथा साभूमि गृहद्वार मुद्घाटयति ताञ्च स्वामिनं करोति सङ्केतदानार्थं मत् खड्गं गृहाणेत्युक्ते कुमारस्तत् खड्गं गृहीत्वा तत्र गतः सतु तत्रैव मृतः कुमारेण साशब्दिता आगता द्वार मुद्घाटयामास कुमारेण भ्रातुः खड्गं दर्शयित्वा स्वरूप मुक्तं तस्याः अन्तः खेदो जातः परन्तमुखे खेदं दर्शयामास मध्ये आकारितः कुमारः पल्यङ्के शायितः उक्तश्च तव विलेपनाद्यर्थं चन्दनादिक महमानयामीति ततोनिर्गता कुमारेण चिन्तितं प्रायः स्त्रीणां विश्वासो न कार्यो यतः शास्त्रे इमे दोषा प्रायो भवन्ति माया अलियं लोभो मूढत्तं साहसं असोयत्तं निस्सन्तियातहच्चिय महिलाणसहावया दोसा १ एतस्यास्तु तथाविध चौरभगिन्यां विश्वासोनैव कार्यं इति विचिन्त्य कुमारः शय्यां मुक्त्वाऽन्यत्र गृहकोणेस्थितः सा बहिर्गत्वा यन्त्र प्रयोगेण शय्योपरि शिलां मुमोच तया शय्या चूर्णिता ततः कुमारेण सासद्यः साक्रोशं केशेषु धृता राज्ञः समीपे आनीता प्रोक्तः सर्वोपि वृत्तान्तः राज्ञातद्भूमि गृहात् समस्तं वित्तमानाय्य लोकेभ्यो दत्तं कुमारेण साजीवन्ती मोचिता पश्चान्नृपायहात् कुमारेण नृप

सुता कमल सेनानाम्नी परिणीता नृपेण कनारस्य सहस्र ग्रामादत्ता शत गजादत्ता दश सहस्याश्वमादत्ता लक्ष पादा तयो दत्ता तत सुखेन कुमार स्तत्र तिष्ठति अन्यदा कनाभ्या स समये यया श्रे ष्ठिसुतया सह प्रीतिजातास्ति तया मदनमञ्जर्या कुमार समीपे दूती प्रेषिता तया उक्त तव गुणानुरक्ता तवैवैयपत्नीभवितु वाञ्छति कुमारेणाप्युक्त यदा अह गङ्गपुरयास्यामि तदाला गृहीत्वा यास्यामीति तस्यास्त्वया वक्तव्य अथान्यदा तत्र पित्राप्रेषितानरा कुमाराकरणायसमेता कुमारस्तु तेषा वचन माकर्ण्य पितुर्मिलनाय भृशमुत्कण्ठित श्वशुर पृष्ट्वा कमलसेनया सम चलित चलनसमये च मदनमञ्जरी आकारितासापिकुमारेणसम चलिताताभ्यां प्रियाभ्या सहसैन्यसहित कुमार पथिचलन् वहन् भिल्लान सम्मुखमापतती ददर्शतदा कुमार सैन्ये नते सम युद्ध जातभग्न कुमारसैन्य भिल्लैर्लुण्ठित इतस्ततो गत भिल्लपतिस्तु कुमार रथे समायात उत्पन्न वहिना कुमारेण स्वपत्नी रथाग्रभागे निवेशिता तस्या रूपेण मोहितो भिल्लपति कुमारेणहत पतिते च तस्मिन् सर्वेपि भिल्लानष्टा कुमारस्तुतेनैव एकेन रथेन सह गच्छन्नग्रे महत सार्थस्य मिलित सार्थोपि समायदग्रमाग चलति कियन्मार्ग गत्वा सार्थिकै कुमाराय एव मुक्त कुमारइत अध्वरमार्गे भय वर्त्तते तत अध्वरमार्ग विहाय अपरेण मार्गेण गम्यते कुमारेणोक्त कि भयन्ते कथयन्ति अस्मिन् अध्वरमार्गे महत्त्वटयो समेप्यति तत्रा मध्ये महानेकचौरो दुर्योधननामा वर्त्तते द्वितीयस्तु गर्जारव कुर्वन् विषमोगजो वर्त्तते तृतीयो दृष्टि विषसर्पो वर्त्तते चतुर्थो दारुणो व्याघ्रो वर्त्तते एव चत्वारि भयानि तत्र वर्त्तन्ते कुमार प्राह एतेषां मध्ये नैकस्यापि भय कुरुत चलत सत्वर मार्गे कुशलेनैव गङ्गपुरे यास्याम तत सर्वेपि तस्मिन्नेवा ध्वनि चलिता अग्रे गच्छतास्तेषा दुर्योधन चौरस्त्रिदण्डभागमिलित सोपिपान्थोह गङ्गपुरे समास्यामीति वदन् सार्थेन सार्द्ध चलति मार्गेचैक सन्निवेश समायात स्तदात्रिदण्डिना उक्त मम उप नपितोय सन्निवेशो वर्त्तते तेनात्र गत्वा मया दध्यादि आनीयते यदि भवता रुचि स्यात् सार्थिकैरुक्त आनीयता ततस्तेन तदन्तर्गत्वादध्यादि आनीत

विषमिश्रितं कृत्वा सर्वेषां पायिता: मृता: सर्वेसार्थिका: अगडदत्तेन भार्याद्वय युतेन न पीतमिति न मृत: स त्रिदण्डीपुन: सन्निवेस मध्ये गत्वा त्रि यत्परिवारयुतो गृहीत शस्त्र: कुमारमारणाय आयात: कुमारेण खड्गं गृहीत्वा सन्मुखं गत्वाघोरसंग्राम करणेन सहत: परिवारस्तु नष्ट: भूमौ पतता तेन चौरेण एव मुक्तं अहं दुर्योधनचौर: प्रसिद्ध: त्वयाहं हतो न जीविष्यामि परं मम बहुद्रव्यं वर्त्तते मम भगिनी जयश्रीनाम्नि अस्मिन् वनमध्ये ऽस्ति तत्त्वया गृहीतव्यं सा चपली कार्या कुमारस्तत्रगत: सा आहूता समायाता दृष्ट: कुमारो ज्ञातस्तया भ्रातृवृत्तान्त: तया कुमारोपि गुफामध्ये आकारित: तत्र गच्छ मदनमञ्जर्या वारित: तां तत्र वमुक्त्वा कुमारोग्रे चलित: कियन्मार्गं यावद्गतेन कुमारेण प्रचण्ड शुण्डादण्ड प्रभग्न तरुकोटि निघृष्ट गिरितट: सवेगं सन्मुख मागच्छन् यम इव रौद्ररूपो गजोदृष्ट: तत: कुमारो रथा दुत्तीर्य गजाभिमुखं प्रचलित: उत्तरीय वस्त्रवेष्टिकां कृत्वा गजाग्रे मुमोच गजस्तत् प्रहारार्थं शुण्डादण्ड मध: क्षिपन् यावद्दीषन्न तस्तावता कुमार स्तद्दन्तद्वये पादौ कृत्वा तत् स्कन्धे ऽधिरूढ: वज्र कठिनाभ्यां स्वमुष्टिभ्यां तत् कुम्भस्थल द्वयं जघान कुमारेण प्रकामभ्रमितस्ततो भ्रामयित्वा स गजो वशीकृत: पश्चात् स गजो गौरिव शान्तीकृतो मुक्तश्च तत्रैव पुन: कुमारो रथे निविष्टोग्रे चलित: कियन्मार्गं यावद्गच्छति कुमारस्तावत् कुण्डलीकृत लाङ्गूल: स्वरवेण गिरिप्रति छन्दान् विस्तारयन् विद्युच्चञ्चललोचन: सर्पोपमां रसनां स्वमुख कुहरान्निष्कासयन् सिंह: समायात: तेनापि समं कुमारेयुद्धं कृतवान् कुमारेण कर्कश प्रहारैर्जर्जरित: सिंहस्तत्रैव पतित: कुमारस्ततोग्रे चलित: सर्वोप्युपद्रवोपि मार्गे विद्ययैव निवर्त्तित: कुशलेन कुमार: स्त्रीद्वयसंयुक्त: शङ्खपुरे प्राप्त: प्रवेश महोत्सव: प्रकामं पितृभ्यां कृत. सर्वेषां पौराणां परमानन्द: सम्पन्न: तत्र सुखेन कुमार स्तिष्ठति अन्यदा वसन्ते मदन मञ्जर्या सह कुमार एकाक्येवक्रीडा वनेगत: तत्र रात्रौ मदनमञ्जरी सर्पेण दृष्टा मृतेव सञ्जाता कुमारस्तु तस्नेहादग्नौ प्रविशन् गगनमार्गेण गच्छता विद्याधरेण

यरित विद्याबलेन सा जीविता विद्याधरस्तु स्वस्थान गत कुमारस्तया सम रात्रिवासार्थं कस्मिंश्चिद्देव कुलेगत तत्र ता मुक्त्वा उद्योतकरणाय अग्नि मानेतु कुमारो वहिर्गत तदानीं तत्र पञ्चपुरुषा पूर्वं कुमार हत दुर्योधनचौर भ्रातर कुमारवधाय घृष्टा वा गता इतस्ततो भ्रान्ता कुमारच्छल मल भमाणा तत्रसन्ति तेषु तत्प्रदीपको विहित मदनमञ्जर्या तेषां मध्ये लघुभ्रातु रूप विलोकित रूपाक्षिप्तया तस्यैव प्रार्थना विहिता त्व मम भर्त्ताभव अह तव पत्नी भवामि तेनोक्त तव भर्त्तरि जीवतिसन्ति कथमेव भवति सा प्राह तमह मारयिष्यामि तदानीमग्नि गृहीत्वा कुमारस्तत्र प्राप्त आगच्छन्त कुमार दृष्ट्वा तया तत्रस्थो दीपो विध्यापित तदाया तेन कुमारेण पृच्छ अनोद्योत कथ मभूत् तया उक्त तव हस्तस्याग्नेरेवोद्योत सरलेन तेन तथैवाङ्गीकृत मदनमञ्जर्या हस्ते खड्ग गृहित्वा कुमारोऽग्निप्रज्वालनाय ग्रीवामधश्चकार तावता तया कुमारवधाय खड्ग प्रतोकारान्निष्कासित तस्याचरित्र दृष्ट्वा चौरलघुभ्रातुर्वैराग्यमुत्पन्न पश्चादस्या हस्तात्तेन खड्ग अन्यत्र पातित पञ्चापि भ्रातर स्तत्र कुराऽलक्षिता शनै शनैर्निर्गता कस्मिंश्चिद्वने गता स्तत्र चैत्यमेकमुत्तुङ्ग दृष्ट तत्र सातिशयज्ञानी साधुर्दृष्ट तत्समीपे ते पञ्चभिरपि दीक्षा गृहीता तदाज्ञा पालयन्त सयमे रतास्तत्रैव तिष्ठन्ति कुमारेण नैतत्किमपि ज्ञात अथ कुमारस्तत्र मदनमञ्जर्या रात्रिमेकामुषित्वा प्रभाते स्वगृहे समायात कियद्दिनानन्तरमश्वापहृतएकएवागडदत्त कुमारस्तस्मिन्नेव वने तत्रैव चैत्ये गतस्तत्र देवान्नमस्कृत्य साधवो वन्दिता गुरुपादेषुनाक्षता कुमारेण पृष्ट भगवन् कथमेते पञ्चापि भ्रातर इव साधव कथमेषां वैराग्यमुत्पन्न कथमेभि र्यौवनभरेपि व्रत गृहीत एव कुमारेण पृष्टे गुरु प्राह सर्व तदीय वृत्तान्त कुमारस्तच्चरित्र श्रुत्वा युवती स्वरूपमेव विचिन्तयति अनुरज्जति क्षणेन जवईश्री क्षणेण पुणो विरज्जति अन्नन्नरागनिरया हलिद्दरागुव्व चलपेमा १ इति विचिन्त्य कुमारोपि वैराग्यात्प्रव्रजित यथासौ अगडदत्त प्रतिबुद्धजीवो पूर्व द्रव्या सुप्त पश्चाज्जाग्रत सुप्तोपि इह लोके परलोके च

सुखी जातः ६ चरे पयाइं परिसंकमाणो जं किंचिपासं इहमन्नमाणो लाभतरे जीवीयवूहइत्ता पच्छा परिन्नाय मलावधंसी ७ साधुः संयममार्गे पदानि धर्मस्थानानि परिशङ्कमानः चारित्रदूषणानि विचारयन् चरेत् संयममार्गे विहरेत् किं कुर्वाणः यत् किञ्चिदपि गृहस्थपरिचयादिकं प्रमादपदं दुश्चिन्तनादिकं बन्धस्यहेतुत्वात्पाश इव मन्यमानः पुनःसाधुर्लाभांतरे जीवित बृंहयित्वा पश्चात्परिज्ञाय मलापध्वंसी स्यात् कोर्थःएकस्माल्लाभात्अन्योलाभो लाभांतरं तस्मिंल्लाभांतरे सति ज्ञानदर्शनचारित्रादीनां लाभविशेषे सति जीवितं शरीरं बृंहयित्वा आहारभाटकदानेन धारयित्वा पश्चाल्लाभप्राप्ते रभावं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा इमं मम शरीरं अतः परं ज्ञानादिगुणार्जकं नास्तीति परिचिन्त्य प्रत्याख्यान परिज्ञया भक्तं प्रत्याख्याय अष्टकर्मलक्षणमलस्य अपध्वंस कोनिवारकः स्यात् ७ अत्र मण्डकचौरोदाहरणं उत्तराध्यन वृहद्वृत्तिगतं प्राकृतं संस्कृतीकृत्य लिख्यते वेन्नातटे मंडिक नामा तुन्नकचौरः परद्रव्याहरणा सक्त आसीत् स च दिवसे राजमार्गमध्यस्थः पादयोर्मंगडानीति वदन् बद्ध पट्टकपादो मुखे भृशमाक्रन्दन् तुन्नक शिल्प मुपजीवति रात्रौ च व्यवहारि गृहे चात्त दत्वा बहुधनं गृह्णाति नगरोद्यानान्तः स्थित भूमिगृह कूपे सर्वं क्षिपति तत्रचास्य भगिनी कन्या तिष्ठति यावभारवाहवान सावानयुति तान् स वीनिषां स्वयं पाद शौचादि बहुपचारपूर्वक भोजनपंक्ता मुपवेश्य विषमिश्रित भोजनदानेन मारयति अपर कूपान्तर्निक्षिपति एवं काले

वचरे प्पमत्तो ॥६॥ चरे पयाइ परिसंकमाणो जंकिंचि पासं इहमन्नमाणो। लाभंतरे जीविय वूहइत्ता पच्छा परि

किञ्चित् अन्यमपि गृहसस्तवादिपाशं मन्यमानः इम जाणीने ससारनां काम काज गृहस्था न स्यु परिचयपास रूपकरी जाणि इमनरेपिण लाभांतरे लाभविशेषे सति यावद्विशिष्टतरज्ञानाद्याप्तिः स्यात् तावत् जीवितं धारणीयं जीहांलगे शरीर थकी तप जप नोलाभ होइ तिहां लगे शरीर राखे पश्चात् शरीरं त्यक्त्वा कर्ममल दूरिकुर्यात् पछे आपणी प्रज्ञा बुद्धि करी सर्वपचखी अणसण लेइ पापरूप मलने फेडे ७ स्वच्छन्दतानिरोधेन उपैति मोक्ष जीव

प्र नति सति तेन चौरेण तन्नगर भय मुषित अन्यदा तत्र नगरे मूलदेवो राजा राज्ये उपविष्ट सकथ राजा तत्र सहत इति तदाख्यान मुच्यते उज्जयिन्यां नगया सर्वंगणिका प्रधाना देवदत्ता नामा गणिकास्ति तस्या गृहेऽचलो नामा व्यवहारि पुत्र परदेशायातो भोगान भुक्ते मार्गितमर्थश्च ददाति तस्या एव गृहे परदेशायातो राजपुत्रो मूलदेवोऽतिरूप सौभाग्य स्थैर्यगुणवद्रामानितोऽचल प्रच्छन्नमायाति भोगानपि भुक्ते सातु मूलदेवेन एकमेव प्रेमवती बभूव पर अचल स्तत्स्वरूप न जानाति एकदा देवदत्ता जनन्या उक्त पुत्रि किमेतेन मूलदेवेन निःस्वेन अचलमेव भज मूलदेव त्यज देवदत्ता प्राह अय पण्डितोऽतीव सौन्दर्यादि गुणवान् जननी प्राह अस्य मूलदेवस्य निःस्वत्वेन सर्वेपि गुणागता अचलस्य स्वस्वत्वेन सवैष्वौदार्याद्या द्विगुणा सन्ति यद्यौदार्य तस्य सर्वगुणाधारत्व चेत्र मन्यसे तदास्य मूलदेवस्य अचलस्यापि च औदार्यपरीक्षा कुरु ततो देवदत्तया एकादासी मूलदेवस्य पार्श्वे प्रेषिता एकाच अच लस्य पार्श्वे द्वयोरपि दासीद्वय प्रत्येकमेव मुवाच देवदत्ता इक्षुयष्टि मार्गयति तदा मूलदेव इक्षुयष्टि सुगन्धादिना सत्कार कृत्वार्पयति तदा देवदत्ता अम्बा प्रत्याह पश्य मूलदेवस्य विवेकिता तदैव अचलेन इक्षुयष्टिभृत शकट प्रेषित अथ अक्का मूलदेवस्य द्वेषिणी अचलस्य पार्श्वे गत्वा देवदत्ताया मूलदेवा सक्त स्वरूपमूचे अचलेनोक्त तया कुरु यथाह मूलदेव गृह्णामि तयोक्तमवश्य मया तद्भोगावसरो ज्ञाप्य अचलेन तस्यादीनाराष्टशत दत्त सा गृहे गत्वा देवदत्ताया इदमकथयत् अचलोऽद्य त्वरितकार्यसमुत्पन्ने क्वचिद्ग्रामे चलितोऽस्ति सोऽद्य नायास्यति तथाप्यद्य दिनसत्क भाटक प्रेषितमस्ति एवमुक्त्वा दीना राष्टशत तया देवदत्ताया दत्त देवदत्तयापि मूलदेवस्तदानीमाकारित सोऽप्यागतस्तस्या शयनीयेषु स्वाभोगे प्रवृत्त तस्या वेलाया तयाऽक्कया मूलदेव देव दत्ता सभोगस्वरूप अचलस्य ज्ञापित अचलोऽपि सपरिवार स्तत्रायात देवदत्ता त सपरिवारमायात दृष्ट्वा मूलदेव शयनीयाधश्चिक्षेप इतस्ततो वस्त्राणि विस्तारयामास अचलस्तु द्वारे स्वपरिवार मुक्त्वा तदा सद्गृहान्तर्गत्वा शयनीये उपविष्ट देवदत्ता तु न किञ्चिदुवाच नापि तस्य किञ्चिद्विलेपनाद्युपचार

चकारअचलेन शयनीयाधः प्रविष्टो मूलदेवो ज्ञातः तस्या इदमूचे अद्य मयाऽत्रस्थेनैवाभ्यङ्गनस्नाने करिष्ये तदा देवदत्तयोक्तं शयनीयवस्त्रविनाशो भविष्यति स आख्यत् तवापूर्वं वस्त्रसहितं अपूर्वं शयनोयं दास्यामोत्युक्ता तत्रैवाभ्यङ्गं स्नान चकार तन्मलक्लिन्नो मूलदेवः शय्याधस्य इतस्तत श्चलत् अचलेन शय्या वस्त्रमपसार्य केशेषु गृहीत्वानिष्कासितः उक्तमुच्चस्वरेणयाहित्व जीवन्नेव मया मुक्तः अपराधस्तु तवेदृशोस्ति यत्सांप्रतमेव त्वं मयाहन्य से परं क्रुपया त्वं मुच्यते त्वमपि कदाचिन्ममापराधे ईदृशोभूयाः एवमचलेनोक्तो लज्जितो मूलदेवः कुमार उज्जयिन्यानिर्गतोवेन्ना तटमार्गे प्रस्थपितः तदा तस्य एकः पुरुषो मिलितः मूलदेवेन पृष्टंक्व त्वं यास्यसि तेनोक्तं वेन्ना तटेयास्यामि मूलदेवेनोक्तं अहमपि तत्रैव प्रस्थितोस्मि आवां सहैव व्रजामः तेनोक्तं एवं भवत्विति द्वावपि सहैव प्रस्थितौ तस्य पुरुषस्य शम्बलम्बर्त्तते मूलदेवस्य किमपि शम्बलं नास्ति अन्तरा अटवी समायाता द्वावप्यटव्यां प्रविष्टौ मूलदेवश्चिन्तयति एष मे सम्बलविभागं करिष्यते स च भोजनसमये स्वयं भुक्ते न किञ्चिद्ददाति मूलदेवस्तु चिन्तितं अद्यानेन न किञ्चिद्दत्तं परं कल्येदास्यति इत्याशयैवाग्रतो गच्छति एवं दिनत्रयं यावन्मूलदेवेन न किञ्चिल्लब्धं न किञ्चिद्भुक्तं चतुर्थदिने मूलदेवेन स पुरुषः पृष्ठः अत्र कश्चित्प्रत्यासन्नो ग्रामोस्तिन वा तेनोक्तं इत स्तिर्यक् प्रदेशनाति दूरे ग्रामो वर्त्तते परमहं तत्र नायास्यामि अग्रे यास्यामीत्युक्ता स पुरुषोऽग्रे चलितः मूलदेव एकाक्येव तत्रगतः भिक्षां भ्रमता च मूलदेवेन राद्धा कुल्माषालब्धाः तान् वस्त्राञ्चले गृहीत्वा मूलदेवो ग्रामाद्बहिर्याति तावतामासोपवास पारणके यतिरेकोभिक्षार्थं ग्रामान्तः प्रविशन् मूलदेवेन दृष्ट. भक्त्युल्लासेनते कुल्माषा मूलदेवेन तस्मै साधवे दत्ताः साधुरपि द्रव्य क्षेत्रकालभावशुद्धां स्तान् गृहीतवान् मूलदेवेन परमया भक्त्या भणितं धन्नाणं खुनराणं कुम्मासाहुन्ति साहुपारणए अथ तत् प्रदेशाधिष्ठात्र्या देव्या मूलदेवस्योक्तं वत्सए तस्या गाथाया द्वितीयार्द्धे यन्मार्गयसि तद्ददामीति मूलदेवेन गाथा द्वितीयार्द्धमिदं क्षतं गणि अञ्चदेवदत्त दन्ति सहस्सञ्च रज्जञ्च देवतया भणितं एतत्तवाचिरेण भविष्यति ततो मूलदेवो वेन्नातटे गतः

देश कृत्वा सुप्त तत्र कार्पटिकापि बहव सुप्तास्सन्ति तेषा मध्ये एकेन कार्पटिकेन स्वमुखे प्रविशचन्द्रो दृष्ट' तादृश एव स्वप्नो मूलदेवेन दृष्ट' कार्पटिकेनतु प्रातरुत्थाय गुरो पुर स्वप्न उक्त गुरुणापिउक्त मथ घृत गुड सहित मण्डक प्राप्स्यसीति वभाषे मूलदेवस्तत उत्थाय नगरान्त स्वप्नपाठकगृहे गत्वा घन विनय कृत्वा स्वप्नपाठकाय स्वप्नमाचख्यौ तेनोक्त सप्तमदिवसे तव राज्य भविष्यतीति तस्मिन्नवसरे तत्र पुत्रो राजामृत सामन्तैर्मन्त्रिभिश्च पट्टाभिषिक्त हस्ति सप्तमेदिवसे मूलदेव समीपे समायाता हेषारवचक्रे स्पृष्टो मूलदेव मश्वारोपितवान् सामन्ताद्यैर्योग्योयमिति कृत्वा राज्ये अभिषिक्त सप्तमे दिवसे मूलदेव स्तत्र सहय दन्तिराज्य प्राप्त उज्जयनी नृपेण सार्द्ध प्रीतिश्चकार अनेक द्रव्य लक्षप्राभृतानि प्रेषितवान एकदा मूलदेवेन तत्पार्श्वे देवदत्ता मार्गिता तेन प्रीतिपरवशेन प्रेषिता मूलदेवेन स्वपट्टराज्ञी कृता तया सम यथेष्ठ मूलदेवो भोगान् भुङ्क्ते अन्यदा तत्र समुद्रमार्गो दचल समायात माण्डपिकै शुल्कचोया वद्धो मूलदेवराज्ञ पुर आनीत मूलदेवराजा उपलक्षित' कथितश्च 'त्व मामुपलक्षयति स आह कस्त्वा नोपलक्षयति त्व महाराज मूलदेवेनोक्त सोह मूलदेव इत्युक्त्वा बन्धनान्मोचितो विसर्जितश्च एव मूलदेवस्तत्र तिष्ठन्तो राज्य करोति स मूलदेवो नगर लोकेभ्य चौर पराभव ज्ञात्वाऽन्य नगर रक्षक कृतवान् सोपि चौर गृहीतु न शक्त तदा मूलदेव स्वय नीलपट प्रावृत्य रात्री निर्गत इतस्ततो भ्रमयन् यत्र सतुम्बको मण्डिकचोरोऽस्ति तत्रैवायातस्तत्पार्श्वे कपटनिद्रया सुप्त अपरेपि दारिद्र्यभग्ना पुरुषास्तत्र सुप्तास्सन्ति मण्डको तावता क्रन्द कृता यावमध्यरात्रि समायाता तदानी तत उत्थाय सर्वेप्युत्थापित मूलदेवोप्युत्थापित आयातु मया सार्द्ध सर्वानपि धनवत करोमीति वदन्तै सार्द्ध पुरान्तभ्रान्त्वा एकस्य धनिकस्य गृहे खात्र दत्वा बहूनि धनानि निष्कास्य सर्वेषा तेषा शिरसि पोट्टलकादत्ता मूलदेवस्य शिरसि एक पोट्टलिकादत्त सर्वेष्यग्रे कृत्वा स्वय खड्गपाणि पृष्ठो स्थित श्मशानान्तर्भूमिगृहे सर्वेपि प्रवेशिता पोट्टलकधनानि कूपान्तश्चिक्षेप सर्वेषामपि तेषा पाद

श्चौचं तत्रस्थया चौर भगिन्यादत्तं स्वयं पादचालनञ्चक्रे मूलदेव पादचालनावसरे तत्पादतलेपद्म दृष्ट्वा कुमार्यादिना चिन्तितं कोप्ययं महान् राजेति ज्ञात वतीनायं मया विनास्य इति मत्वा तया मूलदेवस्य नेत्र सञ्ज्ञाकृता सततो मूलदेवो नष्टः पश्चात्तया चौरस्य स्व भ्रातुरुक्तं एषः पुरुषोनष्टः भ्रातापि गृहीत खड्गस्तत्पृष्ठो चलितः मूलदेवोपि प्रत्यासन्नमायातं दृष्ट्वा कचित् स्थाने चत्वर पाषाण शिवलिङ्गं स्वोत्तरीय वस्त्रेणाच्छाद्य स्वयमन्तरितः स्थितः कोपान्धेन चौरेण तत्रागत्य स एवायं पुरुष इति कृत्वा शिवलिङ्ग मस्तके कष्ट लोहमय खड्गप्रहारोदत्तः तच्छिवलिङ्ग द्विधाकृतं हतो मया स पुरुषः इति जानन् स्वस्थाने गत्वा सुप्तः प्रभाते समण्डिक तुन्नकयतुः पश्चान्तः समागत्य तथैवकं दान् कुर्वन् स्थितः राज्ञा च प्रभाते स्वपुरुषैः स आकारितः राज पुरुषेषु तत्रायातेषु तेन चिन्तितं तदानीं मया स पुरुषो न हतः किन्तु दृषदावेव खड्गप्रहारोदत्तः योनष्टः पुरुषः सोवश्य मत्वत्यो राजा ते नैवमे पुरुष माह्वातुं प्रेषिताः यामिता वत्तत्र अथेतो न नष्टु शक्यते यद्भाव्यं तद्भवत्विति चिन्तयन्नेवासीतैः पुरुषैः शनै शनैर्व्रजन् राजसभायामानीतः राज्ञाप्यसौ अभ्युत्थानादिना मानितः अर्द्धासने निवेशितः आश्वासितः स्वनेपथ्य समस्तस्य नेपथ्योदत्तः सभोज्यसमंभोज्यमपिकारितः अन्यदातस्य उक्तं स्वभगिनीं मम देहि तेन सा दत्ता सा परिणीता राज्ञा स्वप्रेमपात्री कृता अन्यदा राज्ञा उक्तं द्रव्यं मे विलोक्यन्ते त्वं धना स्वकीयोसि ततो मे द्रव्यं देहि तत् चिन्ता तु ममैवास्ति तेनराजमार्गितं द्रव्यं दत्तं स राजपार्श्वे सुखेन तिष्ठति अन्यदा पुनरपि राज्ञाद्रव्यं मार्गितंतेन दत्तं राज्ञा तस्य पुनर्महान् सत्कारः कृतः पुनरपि राज्ञाद्रव्यं मार्गित तेनापि दत्त एवमन्तरान्तरा राज्ञा सत्कारपूर्वंतस्य द्रव्यं गृहीत भगिनी पृष्टा अथास्त्यस्य किञ्चिद्धनं सा प्राह अय रिक्तीकृतस्त्वया नातः परमस्य किञ्चिद्धनमस्तीति श्रुत्वा राज्ञासौ मण्डिकचौरः शूलायामारोपितः अत्रायमुपनयो यथाय मकार्यकार्यपि मण्डिकचौरो मूलदेवेन यावल्लाभं तावत् रक्षितः तथा धर्मार्थिनापि संयमलाभहेतुकं जीवितं रक्षणीयं यावत्कालं संयमलाभः तावत्कालं जीवितमौषधादिभिः कृत्वा रक्षणीयं नान्यथेति छंदं

निरोहेण उवेइ मोक्ख आसे जहा सिक्खियवम्मधारी पुव्वाइ वासाइ चरेपमत्तो तम्हामुणी खिप्प मुवेइ मुक्ख ८ साधुच्छंदो निरोधेन मोक्षं उपैति गुर्वादेश विनैव प्रवर्त्तनं छन्दस्तस्य निरोधो निवारणं तेन गुर्वाज्ञया प्रवर्त्तनेन निर्भयस्थानं प्राप्नोति को यथा शिक्षित वर्मधारी अश्वो यथा यथा अश्व इवार्थे शिक्षा जाता अस्येति शिक्षित वर्मसन्नाह धरतीति वर्मधारी सन्नाह धारक एतादृश सुशिक्षित कवचधारी चाश्वोऽश्ववारशिक्षायां स्थित स्वच्छन्दो निरोधेन स्वेच्छागमननिषेधेन मोक्षं प्राप्नोति निर्भय स्थान प्राप्नोति अतः शिक्षन्तु न शक्यते हे साधो पूर्वाणि पूर्वप्रमितानि वर्षाणि यावत् अप्रमत्त सन् चर साधुमार्गे विहर तस्मात् अप्रमत्तविहारान्मुनि क्षिप्र मोक्ष उपैति ८ अत्र कुलपुत्रशिक्षिताऽश्वद्वयोदाहरणं एकेन राज्ञा द्वयो कुलपुत्रयो शिक्षणाय अश्वौ दत्तौ एकेन कुलपुत्रेण प्रथमोधावन वल्गादि कला शिक्षितो द्वितीयस्तु द्वितीयकुलपुत्रेण न शिक्षित सङ्ग्रामावसरे प्रथमोऽश्वो अश्व इव पोतइव सङ्ग्रामसागरमवगाह्य पार गत सुखी बभूव द्वितीयस्तु सङ्ग्राममध्ये एव मृत अत्रायमुपनयो यथासावश्व कुलपुत्रेण शिक्षित तथा धर्मार्थ्यपि स्वात त्रविहरतो गुरुशिक्षित शिवमाप्नोति स पुव्वमेव न लभेज्ज पच्छा एसोवमा सासयवाइयाण विसीयइ सिढिले आउयमि कालोवणीए सरीरस्स भेए ९ य पुरुष पूर्व एव अप्रमत्तत्व न लभेत स पुरुष पश्चादपि पूर्वमिव अप्रमत्त त्वं न लभेत एषा शाश्वतवादिन निरुपक्रमायुषां उपमा

मूल — वाय मलावधसी ॥७॥ छंद निरोहेण उवेइ मोक्खं आसेजहा सिक्खियवम्म धारी। पुव्वाइ वासाइ चरेप्पमत्तो

भाषा — आपणो छन्दो रु धे आपणी चतुराइ कांइ न करे जे वीतरागे कह्यौं छे तिम गुरुनी आज्ञा लइन करे ता मोक्ष जाय अश्वो यथा शिक्षित बाणधारी जिम घोडा शिक्षित भलो पाखर पेहेरावी छे असवार नाम न केडे चाले तो वैरी जीती आवे तिम साधु पणो इच्छा रु धतो मोक्ष जाय पूर्वाणि वर्षाणि चरेत् अप्रमत्त साधु पूर्व वर्ष लगो अप्रमत्त थको विचरे तस्मात् साधु शीघ्र उपैति मोक्ष एहवी करणी करे तो साधु उतावलो मोक्ष जाय ८ स पूर्वमेव

युक्तिः याद्दशो जीवः पूर्वं स्यात्ताद्दशः पश्चादपि स्यात् इति शाश्वतवादिनो वदन्तीत्यर्थः आयुषि सिथिले जाते सति शरीरस्य भेदकाले उपनीते सति मरणेनिकटे समागते सति विखीदति विषिन्नो भवति अतः कारणात् पूर्वमपि पश्चादपि च न प्रमादः ८ खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे समिच्च लोगं समया महेसी अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो १० हे भव्य चिप्रं शीघ्रं विवेकं द्रव्यभावेन सङ्ग त्यागरूपं एतुं प्राप्तु भवान् न शक्नोति न समर्थो भवति तस्मात् आत्मरची सन् अप्रमत्तश्च सन् त्वं विचर किं कृत्वा समुत्थाय सम्यक् उद्यमं विधाय पुनः किं कृत्वा कामान् इन्द्रियविषयान्

सूत्र

तम्हा मुणिखिप्प मुवेइ मोक्खं ॥८॥ स पुव्वमेवं नलहेज्जपच्छा एसोवमा सासयवा इयाणं । विसीयई सिढिले आउयंमि कालोवणीए सरीरस्स भेए ।९। खिप्पं नसक्केइ विवेगमेउं तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे । समेच्च लोगं समया

भाषा

न मेलत् पश्चाद्धर्मं करिष्यामि कोइ जीव इम जाणे हवणा खाउं पोउं पछे मरणकाले धर्मकरी स पछे कोण जाणें मनना परिणाम किस्या एहोसे ते भणी पेहे लांज धर्म करीइ एपा उपमा शाश्वतवादीनां निरूप कमायुषां पछे धर्मकरीश उपमा शाश्वतवादी पाउयाना धणीने सोभे बीजाने न शोभे विषादं गच्छति शिथिले आयुर्बले सिथलीभूते पहिला धर्म कीधु नहीं पछे आउखुं पूर्ण थये जीव घणुं विषवाद पामे दुखी थाय कालोपनीते शरीर भेदे सति मरण आव्या थका झुरे मे धर्म न कीधो हवे माहरी सीगत थासे ९ प्राणी प्रायेण शीघ्रं विवेकमाप्तु न शक्नोति प्राणी मरणसमे उतावलो त्याग रूप विवेक पांली सके नही तस्मात् समुत्थाय त्यक्त्वा कामान् तिणे कारणे कामभोग छांडोने धर्मने विषे उद्यम करे ज्ञात्वा लोक समतया महर्षिः लोकनुस्वरूप देखीने समता रसे करी झीलतो थको विचरे आत्मारक्षकः चरेत् अप्रमत्तः सन् साधु केहवा छे आत्मानो रचक छे अप्रमादी थको

उ० टीका अ०४ १८७

प्रकर्षेण ज्ञात्वा इति प्रहाय त्यक्त्वा पुन कि कृत्वा लोक प्राणि समूह समया शत्रुमित्रोपरिसाम्यभावेन समित्य सम्यग ज्ञात्वा १० अत्र ब्राह्मणीकथा एको ब्राह्मण परदेशे गत्वा सर्वशास्त्रपारगो भूत्वा स्वदेशे समायात तस्य प्रकामपाण्डित्य दृष्ट्वा एकेन ब्राह्मणेन कन्या दत्ता तेन परिणीता सच लोके भृश दक्षिणा लभते धनवान् जात तस्या भार्यायास्तेन बहूनि आभरणानि दत्तानि सापि तानि स्वाङ्गे परिहिता येव रक्षति नचाङ्गात्कदाचिदुत्तार यति तेनैकदा तस्या कथित एष कुग्रामोस्ति नित्यमाभरणपरिधानमयुक्त कदाचिदत्र चौरा समायान्ति तदा तवाङ्गकदर्थना भवति सा प्राह यदा चौरा समायास्यन्ति तदा त्वरितमङ्गादाभरणान्यहमुत्तारयिष्यामि अ यदा तस्या गृहे एव चौरा समायाता सा तदानीं निबडमङ्गलग्ना आभरणानि स्वाङ्गादुत्तारयितमसमर्था तथैव स्थिता तस्यासाभरणा पाणाद्यवयवाश्छित्त्वा तैर्गृहीता साच महती कदर्थना प्राप्ता मृता एवम येपि प्राप्तकर्मविपाक कालेन विवेकमेतु शक्नोति समिश्च लोक समयामहेसी अप्पाण रक्खी चरमप्पमत्तो अत्र प्रमाद परिहारा परिहारयो र्वणिग्महिलयो रुदाहरण एका वणिग्महिला प्रोषित पतिका निजवपु शुश्रूषा पराग्गृहव्यापारेषु प्रमत्ता दासादीना यथार्हं भोजनाद्यपि अददाना तैर्मुक्ता ततो गृहागतेन भर्त्ता स्वगृहे भृत्य विभवहानि दृष्ट्वा सास्तो निष्कासिता ततो वणिजा बहुद्रव्येण अन्या परिणीता सा च न स्वदेहशुश्रूषा करोति यथार्ह भृत्यान् भोजयन्ती कार्येषु नियुञ्जयन्ती च भर्त्रा गृहस्वामिनी कृता इहैव जन्मनि प्रथम स्त्रीवत्प्रमादाद्दोषान् प्राप्नोति अप्रमादात् द्वितीय स्त्रीवद्गुणान वाप्नो

सूत्र

महेसी अप्पाण रक्खी चरप्पमत्तो ॥१०॥ मुहु २ मोह गुणो जय त अणेगरूवा समण चर त फासा फुसति असम

भाषा

विचरे जीव रक्षाकरतु १० मुहुर्मुहु वारंवार शब्दादीन् जयत साधु केहवा छे वार२ मोहनी जीते छे सयममार्गे गच्छन्त अनेकरूपस्पर्शा स्पृशन्ति अस मञ्जस अनुकूल प्रतिकूल यथा स्यात्तथा नाना प्रकारे साधने विचरताने स्पर्शा अनुकूल यथास्यात् नानाप्रकारना स्पर्श आवीसाधुने फरसे छे भूडा भला

टीका

तीत्युपनयः १० मुहुं मुहुं मोहगुणे जयन्तं अणेगरूवा समणञ्चरन्तं फासा फुसन्ती असमञ्जसञ्च न तेसु भिक्खू मणसापओसे ११ स्पर्शाः स्पृश्यन्ते इन्द्रिये रिति स्पर्शाः शब्दादयो विषयाः श्रमणं साधुं असमञ्जसं प्रतिकूलं यथास्यात्तथा स्पृशन्ति साधुं प्रति दुःखदा भवन्ति कीदृशाः स्पर्शाः अनेक रूपाः त्रयो विंशति विधाः साधुं किं कुर्वन्तं मुहुर्मुहु वारं २ मोहस्य गुणान् जयन्तं शब्दादि विषयान् जयन्तं भिक्षुस्तेषु प्रतिलोमेषु अनुलोमेषु वान प्राद्ध्येत प्रद्वेषं न कुर्वीत न च हर्षितोपि भवेत् इत्यर्थः ११ मन्दाय फासा बहुलो हणिज्जा तहप्पगारेसु मणं न कुज्जा रक्खिज्ज कोहं विणइज्ज माणं मायं न सेवेज्ज पहिज्ज लोहं १५ च पुनःसाधुस्तथा प्रकारेषु विषयेषु मनो न कुर्यात् तथाप्रकारेषु इति कीदृशेषु स्पर्शाः कीदृशाः सन्ति तानाह स्पर्शाः मन्दावर्त्तन्ते मन्द यन्ति विवेकिनं इति मन्दाः पुनः कीदृशाः स्पर्शाः बहुलोभनीयाबहुलोभयन्ति लोभ मुत्पादयन्तीति बहुलोभनीयाः पुनः साधुः क्रोधं रक्षेत् पुनर्मानं

सूत्र

जसंचनतेसुभिक्खूमणसाप उस्से ॥११॥ मंदाय फासा बहुलो हणिज्जा तहप्पगारेसु मणं न कुज्जा । रक्खेज्ज कोहं

भाषा

नतेषु भिक्षुः मनसा प्रद्वेषं कुर्यात् ते स्पर्श उपरि साधू द्वेष न आणे ११ मन्दयन्ति विवेकिनमज्ञतां नयन्ती मन्दाः प्रचुरः लोभनात्मा स्त्रीना स्पर्शपुरुषने मन्दपणे मूढपणे घणु लोभावेछे तथा प्रकारेषु स्पर्शादिषु मनो न कुर्यात् तथाप्रकार साधूस्त्री तणाहाव भावस्पर्शनने विषे मन स्फेटयेत् क्रोधं विनिवारयेत् मानं साधु क्रोध न करे मान फेड़े मायं न सेवयेत् लोभं स्फेटयेत् मायाने न सेवे लोभने टाले १२ ये संस्कृताः तुच्छतत्त्वज्ञाः बौद्धाद्याः ते संस्कृत भाषाना बोलणहारतुच्छपरवादी वादना करणहार ते प्रेमद्वेषानुगताः परवशाः ते रागद्वेषने वसि पड्या परवस पड्या थका फरसे छे एते परवादिनो अन्यतीर्थिकाऽधर्माः तान् निन्दन् ए पर अन्यतीर्थीऽधर्मीने निन्दतो थको अभिलिखेत् ज्ञानादीन् गुणान् यावच्छ्रृत्तिः समाप्तो ब्रवीमि साधु संयमनागुण वांछे संयमने विषे वर्त्ते जिहां लगी शरीरभेद न पामे तिहां लगेधर्मने विषे प्रवर्त्ते १३ इति चतुर्थं अध्ययनं असंस्कृतम् संपूर्णम् ॥ अथ अकाममरणं

उत्तराध्ययने असंस्कृताधिकारम् सम्पूर्णम् भावितात्मा अणगार श्रीबूटे रायजी तच्छिष्य भगवान विजय साधुना संशोधितम्

विनयेत् गवस्फेटयेत् मायां न सेवेत लोभ मसह्यात् परित्यजेत् जेसह्या तुच्छ परप्पवाई तेपिज्ज दोसाण गयापरज्झा एए अहम्मुत्ति दुगञ्छमाणो कंखे गुणे जावसरीरभेउत्तिबेमि १३ ये परप्रवादिन संस्कृता तुच्छा यदृच्छाभि धानतयानि सारा तेपिज्जदो साण गया प्रेमद्वेषानुगता रागद्वेषानुगता सन्ति पुनस्तेपरज्झा परवशा रागद्वेषग्रस्ता सन्ति एते अधर्महेतु त्वात् अधर्मा इति अमुना प्रकारेण जुगुप्सु मान तत्परिचयनिवारयन् निन्दाया सर्वत्र निषेधात् न निन्दत् गुणान् ज्ञानादीन् कांचेत अभिलषेत् कथ यावत् शरीर भेद शरीरस्य भेद पतन स्यादित्यर्थ इति प्रमादाप्रमादयो र्हेयो पादेय सूचक असंस्कृत प्रथम पदोपलक्षित असंस्कृताख्य चतुर्थं मध्ययन सम्पूर्ण ४ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभ गणिविरचितायां चतुर्थाध्ययनस्यार्थं सम्पूर्णं ॥ ४ अथ पूर्वाध्ययने यावच्छरीर भेद इति श्रुवतामरण कालेऽपि अप्रमाद कार्य इत्युक्त सचमरण्य विभाग ज्ञानत स्यात् अतो मरण भेदमाह इति चतुर्थ पञ्चमयो सम्बन्ध अणवसिमहोहसि एगेतिन्ने दुरुत्तर तत्थएगे महा पन्ने इम पञ्चमुदाहरे १ व्याख्या एके महापुरुषागौतमादय घातिकर्म रहिता अर्णवात् संसार समुद्रात्तीर्णा पार प्राप्ता कीदृशात् अर्णवात् महौघात्

सूत्र

विणएज्जमाण माय नसेवेज्जपइज्जलोह ।१२।। जेसखया तुच्छपरप्पवाइतेपिज्ज दोसाणुगया परज्झा एए अह म्मोत्ति

दुग छमाणोकखेगुणेजावसरीरभे उत्तिबेमि ।१३।। असखयज्झयण सम्मत्त । अणवसि महोहसि एगेतिन्ने दुरुत्तरे

भाषा

अध्ययन प्रारभ्यते ४ अर्णवे महो घेस सारसमुद्रे महा जेहनो प्रवाह छे एहवो ससारसमुद्र बोहा मधो छे एक कथित् दुरुत्तर विषमस्थान तीर्ण एक

महान् ओघीयस्य समहौघस्तस्मात् अत्र प्राकृतत्वा द्विभक्ति व्यत्ययः हे जंबू तत्र देवमनुष्य सभाया एकस्मिन् काले अत्र भरतक्षेत्रे एकस्य तीर्थंकरस्य विद्यमानत्वात् एकोमहावीरः इम प्रश्नं प्रष्टव्यार्थं रूपं प्रश्नयोग्यं वाक्यं उदाजक्के उदाहृतवान् कथं भूतः एकः महाप्राज्ञः महती केवलात्मिका प्रज्ञाप्रज्ञमिर्यस्य स महाप्रज्ञः १ सन्तिमेय दुवेठाणा अक्खा या मारणंतिया अकाम मरणञ्चेव स काम मरणन्तहा २ इमे प्रत्यक्षेद्वेस्थाने आख्याते जीवनिवासाश्रयी आख्यातौ पूर्वतीर्थंकरैः कथितौ कीदृशेद्वेस्थाने मारणान्तिके मरणमेव अन्तो मरणान्त स्तत्र भवं मारणान्तिकं तस्मिन् मरणावस्थायां जाते इत्यर्थः तेद्वे स्थाने एक अकाम मरणञ्च पुन रन्यत् तथा सकाम मरणं अकाम मरणं वाल मरणं स काम मरणं पण्डित मरणञ्चेव शब्दौपादपूरणार्थौ मरणं सप्तदशधा आवीचीमरणं १ आवधिमरणं अन्तिम ३ वलय ४ वशावर्त्त ५ अन्तः शल्य ६ तद्भव ७ पण्डित ८ बाल ९ मिश्र १० छद्मस्थ ११ केवली १२ विहायस १३ गृद्धपृष्ठ १४ भक्तपरिज्ञा १५ इङ्गिनी १६ पादपोपगमन १७ १ बालाणं अकामं तु मरणं तु असयंभवे पण्डियाणं सकामं तु उक्कोसेणं सयंभवे १२ बालानां मूर्खाणां अकाम अकामेन अनीप्सितत्वेन म्रियते अस्मिन् इति अकाम मरणं असकृत् वारं वारं भवेत तु पुनः पण्डिता सकाम सहकामे न ईप्सितेन म्रियतेऽस्मिन् इति सकाम मरणं यस्मिन् आगते सति असन्त्रस्य तया उत्सव भूतत्वेन सकामं इव सकामं

सूत्र

तत्थएगे महापन्ने इमंपण्ह मुदाहरे ॥१॥संतिमेय दुवेठाणा अक्खाया मारणंतिया अकाम मरणंचेव सकाम मरणं

भाषा

महापुरुषतीर्थंकर साधु ए संसारसमुद्रतया दुस्तरः तत्र एको महाप्राज्ञः तिहां एक महाबुद्धिवन्तः इदं प्रश्नं उदाहरेत् कथितवान् एक साधु ए प्रश्न कहे तो हुंतो १ सन्ति वियते मे मम द्वे स्थानके सन्ति छे माहरे दोयस्थानके आख्याताः मारणांतिकाः कह्या मरणने अवसरे एकं अकाममरणं निश्चये न एक स्थानके अकाममरण कह्युं द्वितीयं सकाम मरण तथा वीजूं स्थानक सकाम मरणनो कह्युः २ बालानां मूर्खाणां विवेकरहिता नां अकामजे

ताद्दश मरण पण्डितानां उत्कृष्ट स कृत् एक वार एव भवेत् उत्कर्षेण उपलक्षित केवलि सम्बन्धि इत्यर्थ जघन्येन तु शेष चारित्र वत सप्ताष्टवारान् भवेत् तत्थिम पढ मयठाण महावीरेण देसियकामगिद्धे जहा बालेभिसकूराइकुव्वइ ४ तत्रतयोर्द्वयोर्मरणयोर्मध्ये प्रथम स्थान महावीरेण अकाम मरण देशित कथित तथा येन प्रकारेण कामग्टद्धा कामेषु इन्द्रियसुखेषु ग्टद्धा कामग्टद्धा विषयिणो जीवाऽत एव बाला मूर्खा भृश अत्यर्थ वारम्वार अकाममरण अति कुर्व्वते अयत्नो अपि मनसा दुष्कर्माणि कृत्वा मुहुर्मुहु म्रियन्ते इत्यर्थः कीदृशा मूर्खा क्रूरा' ४ जेगिद्धे काम भोगेसु एगे कूडाय गच्छइ न मेदिट्ठे परे लोए चक्खुदिट्ठा इमारइ ५ कामभोगेषु य एक कश्चित् क्रूरकर्मा पुरुष कूटाय नरकस्थानाय नरकस्थान गच्छति नरक व्रजति इत्यर्थ कूट प्राणिनां पीडाकर स्थान द्वितीयास्थाने चतुर्थी प्राकृतत्वात् अथवाय एक' कश्चित् कामभोगेषु ग्टद्ध' स कूटाय गच्छति यथा मायादिकूट

सूत्र

तहा ॥२॥ बालाण अकामतु मरण असइ भवे। पडियाण सकामतु उक्कोसेण सइं भवे ॥३॥ तत्थिम पढम ठाण महावीरेण देसिय। काम गिद्धे जहा बालेभिस कूराइ कुव्वई ॥४॥ जे गिद्धे काम भोगेसुएगे कूडाय गच्छई। नमे

भाषा

मूर्खअज्ञानी यायना करणहार एहवी मनुष्यने अकाममरण होइ असकृत् वार२ भवेत् बालने अकाममरण वारवार होई पण्डिताना सकाम तु पण्डितध र्मी भाषसने सकाममरण होइ उत्कर्षेण केवलोनामेकवार भवेत् पण्डितने सकाममरण एक जवार होइ३ तत्र अकाम सकाममरणयोर्मध्ये प्रथम अकाम स्थान पहिलु अकाम मरण स्थानक महावीरेण देशित प्ररूपोत श्रीमहावीर देवे कह्यु काम लोलुप सन यथामूर्ख कामभोगने विषे ग्टद्ध हुयो थको बालमूर्ख भृश अत्यथ क्रूराणि हिंसादीनि कर्म्माणि करोति अतिक्रूर हिंसादिक कर्म करे ४ जे आसक्ता स्त्रीसम्भोगेषु विलेपनादिषु जे मनुष्य काम

तस्मै प्रवर्त्तते तं प्रति कश्चिदक्ति भोत्व धर्मं कुरु तदा स वक्ति मया परलोको न दृष्टः प्रमादयंरतिः कामभोग सुखं रतिः चक्षुर्दृष्टा प्रत्यक्ष दृश्यमाना वर्त्तते ५ हत्था गया इमे कामा कालिया जे अणागया को जाणइ परे लोए अत्थि वा नत्थि वा पुणो ६ इमे कामाः कामभोगाः हस्तागताः हस्ते आगताः हस्तागता स्वाधीना वर्त्तन्ते इत्यर्थः ये अनागताः आगामि जन्मनि भविष्यन्तीति आगामिनः कामभोग सुखास्ते कालिका कालभवा कालिकाः अनिश्चिताः को जानाति परलोकः परभवः अस्ति वा नास्ति वा इतिभाव ६ जणेण सद्धिं होक्खामि इइबाले पगब्भई कामभोगाणुराएणं केसं सम्पडिवज्जई ७ ततः स कामभोग रसगृद्धः पुमान् बालः इति प्रगल्भते इति धार्ष्ट्यं गृह्णाति इत्युक्ता धृष्टो भवति इत्तोति कि अहं जनेन सार्द्धं भवि

सूत्र

दिट्ठे परेलोए चक्खु दिट्ठा इमा रई ॥५॥ हत्था गया इमे कामा कालिया जे अणागया। को जाणइ परेलोए अत्थिवा नत्थिवा पुणो ॥६॥ जणेणसद्धिं होक्खामि इइ वाले पगब्भई। काम भोगाणु राएणं केसंसं पडिवज्जई ॥७॥

भाषा

भोगने विषे गृद्ध हुवा छे लपटाई रह्या छे एके मृषा भाषा गच्छन्ति ते एकांति कूडो बोले तथा क्रूरकर्म करे न मे दृष्टः परं लोकः परलोकमे दीठो नथी चक्षुर्दृष्टाइ मारतिः एकाम भोग ए स्त्रीनां सुख प्रत्यक्ष दीसे छे ५ हस्तागताः इमे कामाः एकाम भोगहस्त प्राप्त छे एकाम भोग हुं भोग वुं एते कालिकाः गव्दायाः ये आगताः एकामभोग छोडीने धर्म करो जिम आगे सुख पामो कोण जाणे आगे कि स्युं छे आगे कुणे दीठुं छे को जानाति परलोकः कोण जाणे परलोक अस्ति वा नास्ति वा छे किवा नथी छे ६ लोकेन सार्द्धं भविष्यामि लंपट थको धेठाइ करे जिम एतला लोकनी गति हुस्ये तिम माहरी पणगति हुस्ये इति मूर्खः प्रगल्भ ते अवलवत इम करो मूर्ख धेठाई करो प्रवर्त्ते छे काम भोगनुं रागे न काम भोगने रागे करी क्लेशं स

उ०टीका
अ ५
२ ३

यामि अथ कामभोग सुख भोक्ताजो याहृशो भविष्यति तेन सार्द्ध अहमपि भविष्यामि सबाल इति उक्ता कामभोगानुरागेण कामभोगच्छेदेन क्लेश सम्प्रतिपद्यते क्लेश इह परत्र च नाधात्मक दुःख भजते इत्यर्थं ७ तओसे दण्डसमारभइतसेसु थावरेसु अ अट्ठाए अणट्ठाए भूयगाम विहि सइ ८ तत कामभोगानुरागात् स धार्ष्ट्यवान् त्रसेषु च पुन स्थावरेषु दण्ड समारभते मनोदण्ड वाकाये पीडा समारभते अर्थेन द्रव्योत्पादननिमित्त अनर्थेन नि प्रयोजनेन वा भूतग्राम भूताना पृथिव्यप्तेजो वायु वनस्पत्येकेन्द्रियद्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियादि जीवाना वर्ग विशेषेणच्छिनस्ति अत्र अजपालकथा यथा एक पशुपालो वटतलेऽजास्त सुमास्तु तत्पत्राणि छिद्री कुर्वन् अभ्यासवृत्तेन कुतश्चिदा यातेन कस्यचिद्राज्ञ पुत्रेण दृष्टो भणितश्च अरे अहं यस्य कथयामि तन्नेत्रोपिल पातयिष्यसि तेन प्रतिपन्न राजपुत्रेण स स्वनगरेनीत एकदाऽश्ववाहनिकार्थं गच्छतो भ्रातोऽक्षीणि राजपुत्र मिति सपातयामास पयाक्ष राजपुत्रो राजाजात पशुपालस्यैव मुवाच वर वृणुतेनोक्त यत्राहं वसामि तदेव ग्राम देहि राजा तद्ग्राम तस्य दत्तं तेन च तत्र धनासुम्पक्षर आरापिता निष्पन्नेषु चतुष्वेपु गुडेन सार्द्धमुन्द खण्डानि खादन गायति अहमट पि सिखिआ सिक्विय न निरत्थय अट्टमट्टप्प साएण खज्जए गुलतुम्बय १ तेन हि पशुपालेन वटपत्राणि अनर्थाय छिद्रितानि अक्षीणि पुनरर्थाय उत्पाटितानि उभयत्रापि प्राणिवध कृत इति ८ हिंसे बाले मुसावाइ माइल्ले पिसुणे सढे भुञ्जमाणे सुरमस सेय मेय तिमन्नइ ९ सबाल हिंस्र हिंसनशीलो भवति पुनर्मृषावादी भवति

सूत्र

तओ से दंड समारभइ तसेसु थावरेसुय। अट्ठाएय अणट्ठाए भय गाम विहिंसइ ॥८॥ हिंसे बाले मुसावाई माइल्ले

भाषा

प्रति पद्यते क्लेश पण पछवजे छे ७ तत सदण्ड आरम्भ हिसा समारम्भे ते दुख्यो धोठ पणो आदरीने तिवार पछी ते मूरख त्रसेषु स्थावरेष जीवेषु त्रस स्थावरजीवनो विनास करे धनादि काजाय निरर्थक कार्यने अर्थे निरर्थक वध करे प्राणि वृन्द विहिंसेत घणा जीवने विध्वंसे मारे ८

माइल्ल: मायाकारक: कापय्यवान् पिशुन: परनिन्दक: पुन: शठो वेषाद्यन्यथा करणेन धूर्त्त: मूर्खो वा सुरामासं च भुञ्जानोऽपि मे मम एतत् श्रेय: कानि इति मन्यते अतएव शठ इत्यर्थ: ९ कायसा वयसामत्ते वित्ते गिद्धे अइत्थिसु दुहओ मलं संचिणइ सिसुनागुव्वमट्टियं १० पुन: कीदृश सन्का येनमत्त: पुन:वचसामत्त, पुन:वित्ते द्रव्ये गृद्ध: लोभी च पुन: स्त्रीषु गृद्ध: कायेनमत्त: यतस्तत: प्रवृत्तिमान् बलवान् अहं रूपवान् अहं इति इति चिन्तयन् वचसा आत्मगुणान् कथयन् सुस्वरोह इति वा चिन्तयन् उपलक्षणात् मनसा मदाध्मातो धारणादि शक्तिमान् अहं इति चिन्तयन् सदुहओत्ति द्विधा द्वाभ्यां रागद्वेषाभ्या मलं सञ्चिनुते मलसञ्चयं कुरुते क: कां इव शिशुनाग: अलसो द्वीन्द्रिय जीवविशेष: भूनाग: यथा मृत्तिकां सञ्चनुते स च स्निग्धतनु तया बहि: प्रदेशे शरीरे रेणुभि रवगुण्ठ्यते अन्तश्च मृत्तिकां एव अश्नाति ततश्च मृत्तिकातो बहिर्निसरव सूर्यकिरणै: शुष्यन् क्लिश्यति विनश्यति विनश्य च मृत्तिकाया एव वृद्धिं कुरुते तथा सोपिमलं कर्ममलं बर्द्धयति कर्म्मणा एव उत्पद्यन्ते पुन: कर्ममल वृद्धिं करोतीत्यर्थ: १० तओपुट्ठो आयङ्केण गिलाणो परितप्पई पभीओ परलोगस्स कम्माणुप्पेहि अप्पणो ११ ततोऽष्टकर्ममल सञ्चयादनन्तरं आतङ्केन रोगेन स्पृष्ट: सन् ग्लान: ग्लानिं प्राप्त: परितप्यते परिखिद्यते परलोकात् प्रभीत: कथम्भूत: स: आत्मन: कर्मानुपेक्षी यदा रोगादिग्रस्तो भवति तदा स्वयं जानाति मम कर्मणां विपाकोजात: मया पुरायानि अशुभानि कर्माणि कृतानि तस्मादहं परलोकेपि दु:खी भविष्यामि इति स्वकृतकर्मापेक्षी स्वकृतकर्म विचारक

सूत्रं

पिसुणे सढे। भुंज माणे सुरं मंसं सेय मेयंति मन्नई ॥९॥ कायसा वयसा मत्ते वित्ते गिद्धे इत्थिसु। दुहओ मलं

भाषा

हिंसन् मूर्ख: मृषावादी हिंसा करे वाल मृषावाद बोले माइल्लत्ति मायायुक्त: परदोष भाषको मायाइ करी सहित चाडी खावे निन्दा करे भुंजान: सन् मद्यमांसं मद्यमांस खातो थको श्रेय प्रसस्य इति मन्यते श्रेय रुडो करी माने ९ कायेन वचसा मदवान् कायाइ करी बचने करीमत्त मातो द्रव्ये

उ०टीका
अ०५
२०६

असीलानी गति विद्यतेयत्रयस्यांप्रती क्रूर कर्म्मणा बालानां मूर्खाणा आत्महितविध्वंसकानां प्रगाढा वेदनास्ति१२तत्थो ववाइय ठाण जहामे तमणुस्सुय अहा कम्मेहिं गच्छन्तो सोपच्छा परितप्पई १२ तत्र नरकेषु औपपातिकं स्थानं वर्त्तते उपपाते भव औपपातिका तत्रऔपपातिके स्थाने अन्तर्मुहूर्त्तादनन्तरं छेदनभेदन ताडन तर्जनादिकं स्यात् यथा यथा तन्नरकादिस्थानं मे मया अनुश्रुतं वर्त्तते अवधारित इति चिन्तयन् पश्चात् आयुःक्षये यथा कर्मभिर्गच्छन् स परितप्यति १२ जहा सा गडिउजाणं सम्मं हिच्चा महापह विसम मग्गमोइन्नो अक्खेभग्गंमि सोयई १४ यथा शाकटिक. समं समीचीनं महापथं राजमार्गं हित्वात्यक्त्वा विषमं मार्गं उत्तीर्णः सन् यानं शकटं अक्षे धुरि भग्नेसति शोचते शकटं चिन्तयति शकटभङ्गस्य शोकं करोति यतोधिग् मां अहं जानन् अपि शकटभङ्ग काष्ट मवासवान् १४ एव धम्मं विउक्कम्म अहम्मं पडिवज्जिया बाले मच्चुमुहं पत्ते अक्खे भग्गेवसोयई १५ एव असुना प्रकारेण धर्मं व्युत्क्रम्य विशेषेण उल्लङ्घ्य अधर्मं प्रतिपद्य बालो मूर्खः मृत्युमुखं मरण मुखं प्राप्तः सन् शोचते शोकं कुरुते कइव अक्षे भग्ने शाकटिक इव १५ तओ से मरणं तमि बाले सतस्सई भया अकाम मरणं मरई धुत्तेव कलिणा जिए १६ ततः स मूर्खो मरणान्ते भयात् संत्रसते संत्रासं प्राप्नोति अकाम मरणं म्रियते म्रियमाणः सन् शोकं विदधाति क इव धूर्त्तः द्यूतकारी कलिना द्यूतदोषेन जितः केनचित् ततोधिकेन दुष्टेन जितः गृहीतद्रव्यः सन् शोचते तथा शोचते इत्यर्थः अनेन सह मया किमर्थं क्रीडा कृता अहं हारितः १६ एय अकाममरणं बालाणं तु पवेइय एत्तो

सूत्र

महापहं । विसमं मग्ग मोइण्णो अक्खे भग्गंमि सोयई ॥१४॥ एवं धम्मं विउक्कम्म अहम्मं पडिवज्जिया । बाले मच्चु

भाषा

समो मोटो मार्ग जाणतो थको छांडीने विषममार्गे गंतु प्रवृत्तः विषममार्गे जावा माड्यु गाडु लेईने चक्रमध्ये स्थित काष्ठ भग्ने शोचत ते गाडीनी धुरी भागी थके शोचे पिछतावे १४ एवं धम्मं व्यतिक्रम्य उल्लंघे एणे दृष्टांते श्री तिर्थंकरनो भाख्यो धर्म छांडोने अधर्म प्रतिपद्यते धर्म मार्ग छोडीने अधर्म

सकाममरण पडियाण सुणेहमे १७ वालानां अकाममरण एतत् प्रवेदित तु शब्दो निश्चयार्थे मूर्खाणामेव अकाममरण इत्यर्थ तीर्थंकरे कथित इत प्रस्तावादनन्तर मे मम कथयत पण्डितानां सकाममरण यूय शृणुथ २७ मरणपि सपुन्नाण जहामेतमणुस्सुअ विप्पसन्नमणाघाय सजयाण वुसीमओ १८

सूत्र

सुह पत्ते अक्खे भग्गेव सोयई ॥१५॥ तओ से मरणं तमि वाले सतसाईभया। अकाम मरणं मरई धुत्ते वाकलिणा जिए ॥१६॥ एय अकाम मरणं वालाण तु पवेइय। एत्तो सकाम मरणं पडियाणं सुणेहमे ॥१७॥ मरणंपि सपुणाणं जहा मे तमणुस्सुय। विप्पसणं मणाघाय सजयाणं वुसीमओ ॥१८॥ न इमंसव्वेसु भिक्खूसु न इम सव्वेसु गारिसु

भाषा

मार्ग अङ्गीकार करे वालो मूर्ख मरण सुख प्राप्त सन् मूर्ख मरणप्राप्त हुओ थको धुरी भग्ने इव शोचति धूरीभाग्या थका जिम गाडी यान शोचे तिमते शोचे १५ तत समरणसमये प्राप्ते ते भणी भारी करमी जीव मरणसमे प्राप्त हुवा थका वाल भयात् नरकगति रुपात् सतस्यते वालमूर्ख मरणसमे प्राप्त हुआ थका अकाम मरणेन म्रियते मनुष्य मूर्ख वालमरणे करीने मरे नरके जाये यथा द्यूतकार कलिना दायेन जित सन शोचते यथा प्रमादो शोच्यते इत्यर्थं जिम जुवारो दावे जीत्यो थको झुरे शोचे तिम पापी जीव शोचे १६ एतत् अकाममरण ए अकाममरण जाणवो वालाणं मूर्खाणां च प्ररुपित ए मरण मूर्खने कह्यो इत सकाम मरण पडितानां कथयिष्यामी शृणुत हिवे पडितमरण कहस्ये साभलो पडितान मरण आकर्णय पडितमरण सांभलो १७ मरणमपि पुण्यवता पुण्यसहितानां ते सकाममरणपुण्यवत जीवने हुवे यथा एतत् अनुश्रुत अवधारीत जिमते पडीतमरण गुरुमुखे सांभल्यो छे तिम कहु छु विप्रसन्न अनाघात अनाकुलचित्त विघ्नरहित छे एहवा मनुष्यने सयताना यशात्मना सयती छे आपणी आत्मा वस कीधी छे १८

सपुख्यानां पुख्यवतां सयतानां यथा मे मम मरणं अनुश्रुतं अवधारितं भो भव्या स्तत् सकाम मरणं भवद्भि र्मनसि धार्य कीदृशं सकाममरणं विप्रसन्न विशेषेण कषायादि मलराहित्येन प्रसन्न निर्मलं पुनः कीदृशं अनाघातं न विद्यते अघातो यत्नवत्त्वेन अन्यजीवानां संयमजीवितव्यस्य च नाशो यस्मिन् तत् अनाघातं कीदृशानां संयतानां बुसीमओ आर्षत्वात् वश्यवतां वश्यः आत्मा येषां ते वश्यवंतः तेषां जितात्मनामित्यर्थः १८ न इमं सव्वेसु भिक्खूसु न इमं सव्वेसु गारिसु नाणासीला अगारत्था विसमसीलाय भिक्खुणो १९ इदं पण्डित मरणं सर्वेषां भिक्षूणां साधूनां न भवति किन्तु केषांचित्साधूनां भवेत् यतः अगारस्थाः गृहस्थाः नानाशीलाः नानाचारा भवन्ति च पुनर्भिक्षवोपि विषमशीलाः विषमं विसदृशं शीलं येषां ते विषमशीलाः केचित्स निदानतपः कारकाः केचित् निदानरहिततपःकारिणः केचिद्विमलचारित्रिणः केचिद्दकृश्यचारित्रिणः इति कथनेन तीर्थान्तरीयास्तु वेशधारिणः दूरतएव उत्सारिताः १९ सति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संयमुत्तरा गारत्थेहिं य सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा २० एकेभ्यो भिक्षुभ्यो निह्नव भग्नचारित्रादिभ्यः

सूत्र

नाणा सीला अगारत्था विसमंसी लाय भिक्खुणो ।१९। संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा । गारत्थेहिय सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा ।२०। चीरजिणं न गिणिणं जडी संघाडि मुंडिणं । एयाइंवि ण ताइंति दुस्सीलं परि

भाषा

नच इदं पंडितमरण सर्वेषु भिक्षुषु भवन्ति एपण्डितमरण सघलाए साधुने नहोइ नच इदं सर्वेषु गृहस्थेषु ए पंडितमरणसघलाइ गृहस्थने पीण नहीं अनेक विविधव्रताः गृहस्थाः नानाप्रकारे गृहस्थना आचारछे विषमशीलाः अतिगहनाचारः संयमतपः विषम आचार साधूना छे १९ संति एकेभ्यः कुतीर्थिक भिक्षुभ्योः सन्यासी योगी वौद्ध इत्यादिक कुतीर्थी थकी गृहस्थाः संयमे अनुत्तरा प्रधानाः एक२ गृहस्थसंयमे करी प्रधान छे गृहस्थेभ्यो

दानि भवन्तीत्यर्थः २१ पिंडोलएव दुस्सीले नरगाओ न मुच्चई भिक्खाए वा गिहत्थे वा सुव्वए कम्मई दिव २२ पिंडोलगोपि भिक्षुर्यदि नरकान्न मुच्यते तदा दुःशील: कषायादि युक्तास्तु नरकान्न मुच्यते एव पिंडं परदत्तग्रासं अवलगते सेवते इति पिंडोलगः अत्र निश्चयमाह भिक्षादोभिक्षुरथवा गृहस्थो वा भवेत् तयोर्भिक्षादगृहस्थयोः साधुश्रावकयोर्मध्ये यः सुव्रतः सुष्टुशोभनानि व्रतानि यस्य: ससुव्रतः सदिवं स्वर्गं क्रमति व्रजतीत्यर्थः अत्रद्रमककथा यथा राजगृहे कश्चित् द्रमकः उद्यानिकानिर्गतजनेभ्यो भिक्षामलभमानो रुष्टः सर्वेषां चूर्णनाय वैभार गिरिशिलाश्चालयन् शिलां तन्निपतितः शिलातले चूर्णितवपुः सप्तमनरकङ्गतः एवं भिक्षुरपि दुर्ध्यानेन दुःशीलत्वान्नरकमेव गच्छतीति परमार्थः २३ अगारि सामाइ यङ्गाइ सड्ढीकाएण फासए पोसहं दुहओपक्खं एगराइ न हावए १३ आगारी गृहस्थः सामायकांगानि सामाय कस्य अङ्गानि सामायकांगानि निःसंकित निःकांक्षित निर्विति किच्छिता मूढ दृष्टि प्रमुखाणि कायेन स्पृशति कीदृशः सन् श्रद्धी श्रद्धावान् सन् पुनर्गृहस्थः उभयोः शुक्ल कृष्णपक्षयोः पौषधं सेवते चतुर्दशी पूर्णिमा स्यादिषु पौषधं आहार पौषधादिकं कुर्यात् एकरात्रिं अपि एकदिनं अपि न हापयेत् न हानिं कुर्यादित्यर्थः रात्रिग्रहणं दिवा व्याकुलतायां रात्रौ अपि पौषध कुर्यात् चेत् एवं नस्यात् तदा चतुर्दशी अष्टमी उद्दिष्टा महाकल्याणक पूर्णिमाचतुर्मासकत्रयस्य दिवसे पौषधं कुर्यात् सामायिकां गत्वे नैव

सूत्र

इयंगाइं सड्ढीकाएणा फासए। पोसहं दुहओ पक्खं एगराइं न हावए।२३। एवं सिक्खा समावान्न गिहवासेवि

भाषा

तुं थको देवलोके जाइ २२ गृहस्थः सामायिकांगानि गृहस्थ सामायिकना अंग श्रद्धावान् कायेन स्पृशति श्रद्धावंत श्रावक कायाइं करीने फरसे पाले सुद्धमने अहोरात्रेः पौषधादिक द्वयो पक्षयोः पोसह चउदस अंधारी उजालीनो करे सुद्ध भावे एक दिनमपि न हा यति न त्यजति एके रात्रि पणि पोसहनी हानि न करे जो दिवसे न थाइ तो रात्रे करे २३ एवं शिक्षा समापन्नः सन् इणि प्रकारे शिक्षा अंगीकार

उ०टीका
अ०५
२११

सिद्दे भेदे नोपादान मादर व्यापनाथ २३ एव सिक्खा समावन्ने गिहवासेविसुव्वए मुच्चई छविपव्वाओ गच्छे जक्ख स लोगय २४ एव अमुना प्रका रैण गिधा समापन्न यथाचार सहित गृहस्थवासे अपि सुव्रत द्वादशव्रतधारक सन् लक पर्वतो मुच्यते त्वक् चर्म पर्वजानु कूर्पर गुल्फादि ततो मुक्तो भवति औदारिक सरोरात् मुच्यते पुन स याइ यच सलोकता गच्छेत् सहलोकेन वर्त्तते इति स लोक यचैर्देवै स लोक तस्य भावो यच स लोकता देवजातित्व प्राप्नोतीत्यर्थं अथ पण्डितमरण प्रस्तावेपि अवसर प्रसङ्गात् बाल पण्डित मरणमुक्त २४ अह जे सम्बुडे भिक्खू दुण्ह अन्नयरे सिया सव्वदु खप्पहीणेवा देवे वाविमहड्डिए २५ अथ अनन्तर य सहत पञ्चाश्रय निरोधकोभिक्षु सर्वदु कव प्रहीणे मोक्षेऽथवा देवे देवलोके एतयोर्द्वयो स्थानयोर्मध्ये अन्यतरस्मिन् एकस्मिन् स्थानेस्यात् कोदृशो देव स्यात् महर्द्धिक महती ऋद्धिर्यस्य समर्द्धिक २५ उत्तराइ विमोहाइ जुइमन्ताणु पुव्वसो स माइन्नाइ जक्खाहि आवासाइ जससिणो २६ दीहाउया इड्डिमन्ता समिद्धा कामरूविणो अहुणो ववन्नस कासाभुज्जो अच्चिमालिप्पभा २७ ताणि ठाणाणि गच्छन्ति सिक्खित्ता सयमन्तव भिक्खाए वा गिहत्थे वा जे सन्ति परिनिव्वुडा २८ त्रिभि कुलक ते भिचादा भिचाहृत्तय साधव अथवा गृहस्था आद्या सयम पुनस्तप शिचित्वा क्षदिष्टत्वा तानि स्थानानि गच्छन्ति प्राप्नवन्ति इति तृतीय गाथया सम्बन्ध ते के भिचादा पुनस्ते

सूत्र

सुव्वए । मुच्चई छविपव्वाओ गच्छे जक्खस लोगय ।२४। अह जे सवुडे भिक्खूदोन्ह अन्नयरे सिया । सव्व दुक्खप्पही

भाषा

करोने गुरु पासे व्रतसामाइ कर्य्ये गृहवासेपि सुव्रत स्यात् घरने विषे रह तो थको सुव्रत होवे भला व्रत पाले मुच्यते औदारिकात् शरीरात् औदारिक शरीर छांडीने सदेवलोक गच्छेत् ते देवता स्वर्गे थाइ २४ अथ य सहत साधु आपणो आत्मा सवरे वश करे ते साधुद्वयो॰ सिद्धदेवयोरन्यतरा स्यात् ते साधु विहु गत माहि एक कोइ गत पामे सर्वदु ख प्रचोणो वा सिद्ध स्यात् सर्व दु खक्षयकरी सिद्ध होइ सासतो देवोपि महर्द्धिक स्यात् जो

के च गृहस्थाः ये परिनिर्वृताः सन्ति परिसमन्तात् निर्वृताः विधूत कषाय मला. तानि कानि स्थानानि उत्तराणि सर्वेभ्यो देवलोकेभ्यः उपरिस्था नानि पञ्चानुत्तरविमानानि पुनः कीदृशानि तानि विमोहानि अज्ञानरहितानि येषु स्थानेषु उत्पन्नां देवानां मिथ्या त्वाभावात् सम्यक्त्वं भवति इत्यतो विमोहानि पुनः कीदृशानि द्युतिमन्तिदीप्तियुक्तानि प्राकृतत्वात् लिङ्ग व्यत्ययः पुनः कीदृशानि स्थानानि यशैर्देवैः समाकीर्णानि सहितानि

सूत्र

णेवा देवेवावि महिड्ढिए ।२५। उत्तराइं विमोहाइं ज्जुईमंताणु पुव्वसो । सामाइणाइं जक्खेहिं आवासाइं जसं सिणो ।२६। दीहाउया इड्ढिमंता समिद्धा कामरूविणो । अहुणो ववण्ण संकासा भुज्जो अच्चिमालिप्पाभा ।२७। ताणि ठाणाणि गच्छंति सिक्खित्ता संजमं तवं । भिक्खाएवा गिहत्थेवा जेसंति परिनिव्वुडा ॥२८॥ तेसिं सोच्चा सपुज्जा

भाषा

शेष कर्म रहे तो महर्द्धिक देवता थाइ २५ अनुत्तरेषु विगतमोहे अनुत्तरविमानने विषे मोहनी कर्म नथी जिहां मिथ्यात्वी नही उपजे सम्यक्ती हुवे दीप्तवंतः अनुक्रमेण सर्व्वदेव लोक थकी ज्योतीवंत छे अनुक्रम सर्वदेव लोके समाकीर्णाः व्याप्ताः देवैः विमान केह वाछे देवताइं भर्या छे इदृशाः आवा सास्तत यशस्विनः एहवा आवास छे यशवंत छे देवता २६ दीर्घायुषः ऋद्धिवंताः दीर्घ आउखाना धणी ऋद्धिवतः समृद्धाः अतिदीप्ताः स्वेच्छया रूपका रिणः समृद्ध छे वैक्रिय रूपनवा करी सुखभोगवे छे अधुनोपपन्न प्रंकासाः तत्काल उपनासरिखो सूर्यसरिखी प्रभा छे जेहनी भूयो बहवः अर्कस्य सम प्रभाः वलो घणो छे सूर्यनी माला सरीखी प्रभा क्रांति २७ तानि पूर्वोक्तस्थानानिगच्छन्ति एहवो देवलो कविषे एहवे स्थानके जाये उपजे अभ्यस्य सप्त दशधा सयंमन्त पवार भेदे सीखीने सतरे भेदे सयमसीखीने भिक्षुको वा गृहस्थो वा तपस्तो अथवा गृहस्थां जे केचित् उपशमति जिणे आपणो आत्मा

पुन कोट्टयानि आसमन्तात् आह्लादपूर्वक दु खराहित्येन उष्यते येषु तानि आवासानि कथम्भूतास्ते भिचादा ग्टहस्थाश्च यश स्विन कुन चिद्दी कान्तरे अत्र गाथाया उक्तानि साधु श्राडानां विशेषणानि सन्ति पुन कीद्दशा भिचादाग्टहस्थजीव देवा दीप्ता उया दीर्घायुष पल्यसागरी पमनोविन पुन कीद्दशा ऋडिमन्त रत्नादियुक्ता पुन कीद्दशा समृडा अत्यन्ता प्रकटा पुन कीद्दशा कामरूपिण काम स्वेच्छापूर्व रूप येषान्ते कामरूपिण याद्दश रूप मनसि वाञ्छन्ति ताद्दश कुर्वन्तीत्यर्थं पुन कीद्दशा' अधुनोत्पन्न सद्दाशा येषा क्रान्ति रुद्दी दीप्तिवर्णा दिक द्दष्टा इति ज्ञायते एते इदानी उत्पन्ना सन्ति पुन कीद्दशाभूयो अर्चिर्मालिप्रभा कोटिसूर्यप्रभा अर्चिषा ज्योतिषा मालन्ते शोभन्ते इत्येव शीला अर्चिमालिन सूर्या भूयासश्चतेऽर्चि मालिनश्च भूयोर्चिमालिन स्तद्वत् प्रभा येषान्ते भूयोर्चिमालिप्रभा २८ तेसि सुच्चा स पुज्जाण सञ्जया

सूत्र

णं सजयाण वुसीमओ । नसतसति मरणते सीलवता बहुस्सुया ।२९। तुलिया विसेस मादाय दयाधम्मस्स खतिए ।

विप्पसीइज्जा मेहावी तहाभूएण अप्पणो ।३०। तओ काले अभिप्पेए सड्ढी तालिसमतिए । विणएज्ज लोम हरिस

भाषा

वसि कोधो छे २८ तेषां श्रुत्वा सपूज्यानां तेसां भली पूज्यने समीपे साधूना वश्यात्मा सयती छे वसीभूत छे जेहनो आत्मा तेह सन्ति मरणमुप गते मरण आव्या थका शीलवती बहुश्रुता शीलवतने बहुश्रुतने २९ तोलयित्वा परीचा क्तत्वा विशेष ग्टहीत्वा मेधावी पडित आपण पु तोलीने विषय वसो करीने आदरे दया धर्मस्य चान्त्यादि दयाधर्म चमा आदरे विशेष प्रसन्नो भवेत् प्रज्ञावान् विशेष पणे प्रसन्न हुवे उपसम करे मेधावो तथाभूतनोप गांत मोहनात्मना शांतिरूप आत्मा करो आपणे ३० तत मरणकाले सम्प्राप्ते मरणकाल प्राप्त हुओ श्रद्दावान् ताद्दशगुरुणा पार्श्वे श्रद्धावत मरणो

उत्तराध्ययने मरणाधिकारम् सम्पूर्णं भावितात्मा अणगार श्रीबूंटे रायजी तच्छिष्य भगवान विजय साधुना संशोधितम्

एम्बुसी मओ न सन्त सन्ति मरणन्ते सीलवन्ता बहुस्सुया २९ सीलवन्तः साध्वाचारसहिताः बहुश्रुताः साधवो मरणान्ते मरण समीपे समागते सति न सन्त्रसन्ति न भयं प्राप्नुवन्ति किं कृत्वा तेषां सत्पूज्यानां संयतानां भावितभिक्षूणां उक्त स्वरूप स्थानप्राप्तिं श्रुत्वा पुनः कीदृशानां संयतानां वश्यवर्ता २९ तुलिया विसेसमादाय दयाधम्मस्स खन्तिए विप्पसी इज्जमेहावी तहाभूएण अप्पणा ३० मेधावी बुद्धिमान् साधुस्तथा भूतेन विषय कषाय रहितेन आत्मना विप्रसीदेत् विशेषेण प्रसन्नतां भजेत् किं कृत्वा बालपण्डित मरणे तुलिया इति तोलयित्वा परीक्ष्य पुनर्विशेषं आदाय बालमरणात् पण्डितमरणात् च विशेषं विशिष्टत्वं आदाय गृहीत्वा तथैव दया धर्मस्यति धर्मस्य क्षान्त्यां क्षमया कृत्वा विशेषं आदाय अन्येभ्यो धर्मेभ्यः क्षमया साधु धर्मोविशिष्ठ इति ज्ञात्वा विप्रसीदेत् कषायादिभ्यो विरक्तो भवेदित्यर्थः ३० तओ काले अभिप्पेए सड्ढी तालि समन्तिए विणइज्जलो महरिस भेय देहस्स कखए ३१ ततः कषायो पशमनानन्तरं काले मरण समये अभिप्रेतेसति रुचितेसति श्रद्धी श्रद्धावान् अन्तिके गुरुणां समीपे

भेयंदेहस्स कंखए ॥३१॥ अहकालंमि संपत्ते आघायायसमुस्सयं । सकाम मरणं मरइतिण्हमन्नयरं मुणित्तिदेमि ।३२।

समय गुरुने पासे यावत् अतत्त्वज्ञा पुरुषाः जे तत्त्वना अजाण पुरुष छे भेदं देहस्य कां क्षयेत् देहीनो भेदवाछे मरण वाछे ३१ अथ काले सम्प्राप्ते अथ काल आवी प्राप्त हुओ अघातायसमुत्थितं देहत्याग संलेखणां करी हर्षे समाधि मरण करे देही छांडे पाप कर्म स काम मरणं म्रियते सकाम मरणे करी मरे त्रयाणां भक्तप्रत्याख्यान१ इंगना २ पादपोपगम ३ एतेषां त्रयाणां मध्ये एकेन मरणेन मध्ये मुनिः मृयते एत्रिहुं मरण मांहि एके

तादृग भयात्स्फेटयेत् मरणभय न कुर्यात् देहस्य भेद कांचेत् शरीरत्याग अभिलषेत् यादृशो हर्षो दीक्षावसरे यादृशो हर्ष सलेखनावसरे तादृशो हर्षामरणसमयेपि विधेय नभेतव्य मित्यर्थ ३१ अह कालमि सम्पत्ते आघा याय समुस्सय सकाममरण मरद्दई तिण्हमन्नयर मुणित्तिबेमि ३२ अथ काले मरणे सम्प्राप्ते सति मुनि समुच्छ्रय अभ्यन्तर शरीर बाह्य शरीरस्य अभ्यन्तर कार्मण सरीर बाह्य औदारिक शरीर आघाय विनाशयाणां सकाममरणानां मध्ये अन्ये तरेण एकेन सकाममरणेन म्रियते तानि त्रीणि सकाममरणानि इमानि भक्त प्रत्याख्यान १ इङ्गिनी २ पादपोपगमना ३ त्यानानि यत्र भक्तस्य त्रिविधस्य चतुर्विधस्य च आहारस्य प्रत्याख्यान भक्त प्रत्याख्यान १ यत्र मण्डल कृत्वा मध्ये प्रविश्य मण्डला इङ्गिनेति म्रियते तदिङ्गिनी मरण २ यत्र छिन्न द्रुमशाखावत् एकेन पार्श्वेन निपतति पार्श्वस्य परावर्त्तो न क्रियते तत्पादपोपगमन ३ एषां त्रयाणां मध्ये अन्यतरेण मरणेन म्रियते इति सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिन प्रति कथयतिस्म अहे जम्बू अह भगवद्वचसा त्वां ब्रवीमि ३२ इति अकाम सकाममरणीय अध्ययन पञ्चम इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्राय दीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभ गणि विरचिताया अकाम सकाममरणीयाख्यस्य पञ्चमस्यार्थ ।५ पूर्वस्मिन् अध्ययने अकाम सकाममरणे उक्ते तत्र सकाममरण निग्रन्थस्य भवति तस्मा निग्रन्थस्य आचार षष्ठे

सूत्र अकामज्झयण समत्त ५ । जावंति विज्जापुरिसा सव्वे ते दुक्खसंभवा । लुप्पं तिबहुसोमूढा संसार मिअणं तगे ॥१॥

भाषा मरणे करी मरे ३२ अकाम मरण अध्ययन कथा टब्बार्थ सपूर्णम ५ ॥ हिवे छट्ठो अध्ययन कहे छे ॥ यावत अतत्वज्ञा पुरुषा जेतलना अजाण पुरुषछे सव ते दु खसभवभवति सघलाए दु खना विभागी होसे दारिद्रोपयुक्ता भवन्ति अनेक वारान ते मूर्खा ते मूर्ख घणी वार दरिद्रि हुवे दु ख देखे छेदन भेदन तणा ससारे अतर रहिते मूर्ख अग्यानी अत ससार माहिली पाइ फिरे १ आलोच पडित तस्मात् हे पडित तेबे कारणे तु देखि विचार पाम

अध्ययने कथ्यते अयं पञ्चम षष्टाध्ययनयो: सम्बन्धः जावन्ति विज्जा पुरिसा सव्वे ते दुक्ख सम्भवा लुप्पन्ति बहुसोमूढा: संसारंमि अनन्तगे १ यावन्तोऽ विद्याः पुरुषाः ते सर्वेपिमूढाः संसारे बहुसो वारम्बारं लुप्यन्ते आधिव्याधि वियोगादिभिः पीड्यन्ते न विद्यते विद्या सम्यक् ज्ञानं येषान्ते अविद्या अत्र नञ् कुत्सार्थ वाचकः ये कुत्सितज्ञान सहिताः मिथ्यात्वोपहत चेतसो वर्त्तन्ते ते मूर्खाः संसारे दुःखिनो भवन्ति कीदृशे संसारे अनन्तके अपारे कीदृशास्तेऽविद्याः दुक्खसम्भवाः दुक्खस्य सम्भवयेषु ते दुक्खसम्भवाः दुःखभाजनमित्यर्थः यावन्तः अविद्या इत्यत्र प्राकृतत्वात् अकारोऽदृश्यः १ अत्र अ विद्या पुरुषोदाहरणं यथा कश्चित् द्रमकोऽभाग्यात् कापि किञ्चिद प्राप्नुवन् पुराद्बहिरे कस्मिन् देवकुले रात्रा वुषितः तत्रैक पुरुषं कामकुम्भप्रसादेन यथेष्टभोगान् भुञ्जानं वीच्यप्रकाम सेवितवान् तुष्टेन तेनास्य भणित भो तुभ्यं कामकुम्भं ददामि उत कामकुम्भविधायिकां विद्यां ददामि तेन विद्या साधन पुरश्चरणादि भीरुणा विद्याभि मन्त्रितं घटमेवमेदेहीति भणितं विद्या पुरुषेण विद्याभि मन्त्रितो घट एव तस्मैदत्तः सोपि तत्प्रसादात् सुखीजातः अन्यदापीतमद्योयं पुरुषस्तं कामकुम्भं मस्तके कृत्वा नृत्यन् पातितवान् भग्नः कामकुम्भ स्ततोनासौ किञ्चिदर्थ मवाप्नोति शोचति चैवं यदि मया तदा विद्यागृहीताऽभविष्यत्तदाऽभिमं तत्रनवं कामकुम्भ मकरिष्यं पूर्ववदेवं सुखी अभविष्यं एवं अविद्या नराः दुक्खसम्भवाः क्लिश्यन्ते १ समिक्ख पण्डिए तम्हा पासजाईपहे बह्न अप्पणा सच्चमेसिज्जा मित्तं भूएसु कप्पए २ तस्मादज्ञानिनां मिथ्यात्विनां संसार भ्रमणत्वात् पण्डितः तत्त्वज्ञः आत्मना स्वयमेव

सूत्र — समिक्ख पंडिए तम्हा पास जाइपहे बह्न । अप्पणा सच्च मेसिज्जा मित्तिं भूएसु कप्पए ।२। माया पियाण्हुसा

भाषा — रूपात् एकेंद्रियादि जाति यथा न बहुन् संसार रूप पास देखी एकेन्द्रियादिक जोनि मांहि जीव फिरे छे अज्ञानी आत्मना सत्यं संयम विलोकयेत् ए ससारनो स्वरूप जाणीने आपणा आत्माने १७ भेद संयम अने सत्य तेहने विषे धापे मित्र भावं भूतेषु कुर्यात् सर्वजीव थकी मैत्रीय भाव करे २

परोपदेश विनैवखल्वे एपयेत् सद्योहित सत्य अर्थात् स यम अभिलषेत् पुन पण्डित भूतेषु पृथिव्यादिषु षटकायेषु मैत्री कल्पयेत् किं कृत्वा बह्वन् पास नातिपथान् समीक्ष्य पाशा पारवश्य हेतव पुत्रकलत्रादि सम्बन्धास्ते एव मोहहेतु तथा एकेन्द्रियादि जातीनां पथान पाशिजाति पथ्यास्तान् पाशजाति पथान् दृष्ट्वा यदाहि पुत्रकलत्रादिषु मोह करोति तदाहि एकेन्द्रियत्व जीवो बध्नाति २ माया पियाण्हुसाभाया भज्जापुत्ताय ओरसा नालते ममताणाय लुप्यतस्य स कम्मणा २ पण्डित इति विचारयेदिति अध्याहार कर्त्तव्य इतीति किं एते ममताणाय मम रक्षायै न अल समर्था

मूल

माया भज्जा पुत्ताय ओरसा। नालते मम ताणाए लुप्पतस्स स कम्मुणा ।३। एय मट्ठ स पेहाए पासे समिय

दसणे। छिंदे गेहि सिणेहच्च न कखे पुव्वसथव ।४। गवास मणि कुडल पसवो दास पोरुस। सव्व मेय चइत्ताण

भाषा

माता पिताश्च पायभूभाता माता पिता वडु भाइ इत्यादिक भार्या पुत्रास्ते चउरसा स्वय उत्पादिता पुत्र ते अगना उपजाव्या न समर्था पित्रादयो भवन्ति मम रक्षणाय ए पुत्रादि मुझने कर्म थी पीडा थी नहीं राखी सके सर्वे पीड्यमानस्य स्वकृतकर्मणा जिवारे कर्म आवी लागे तिवारे राखण हार कोइ नहीं ३ एतत् पूर्वोक्त स्वबुद्धा विचार्य ए पूर्वे कह्यो जे अर्थ विचारीने पश्येत् सम्यग दृष्टि भलो दृष्टे करी देखे मोथ्यात्व छाडे सम्यक्त आदरे छिन्द्यात् गृह थे ह च घर छांडे स्नेह छांडे न वांछयेत् पूर्वपरिचय गृहस्थनो परिचय न करे ते गृहस्थयासमे रह्या थका सुख याद न करे ४ गावे अश्व मणि आभरणादय गाइ अश्व मणिकुण्डल चजादय दासपौरुष छाली दास गुलाम सेवक सर्वंगवाश्वादि पूर्वोक्त त्यक्त्वा इत्यादिक सर्वेवाना छांडीने स्वेच्छारूप धारी भविष्यसि देवता वैक्रियरूपनो धरणहार देवता थाइस ५ गृहाराम मनुष्यादि पुन थावर परिग्रह घर वाग हाट प्रमुख

काथभूतस्य मम खकर्म्मणा पीडामाणस्य एते के मातापितास्नुषा पुत्रवधू भ्राता सहोदर: भार्यापत्नी पुत्रा: पुत्रत्वेन मानिता च पुन: औरसा: स्वय सुत्पादिता: एते सर्वेपि स्वकर्म समुद्भूत दु:खात् रक्षणाय न समर्था भवन्तीत्यर्थ: एयमट्ठं सपेहाए पासे समीयदंसणे छिन्दे गेहिं सिणेहञ्च न कंखे पुव्वसंथवं ४ शमित दर्शन: शमितं ध्वस्तं दर्शनं मिथ्या दर्शनं येन स शमितदर्शन: अथवा सम्यक् प्रकारेण इतं प्राप्तं दर्शनं सम्यक्त्वं येन स समितदर्शन: एतादृश: संयमीएतदर्थं पूर्वोक्तं अर्थं अशरणादिकं सपेहाए स्वपेचया स्वबुध्यापासे इति पश्येत् हृदि अवधारयेत् च पुनर्गेहिं गृद्धं रसलाम्पय्यं च पुन: स्नेहं पुत्रकलत्रादिषु रागं छिंद्यात् पुन: पूर्वं संस्तव: पूर्वपरिचय: एकया ग्रामादिवासस्तं न स्मरे ४ गवासं मणिकुण्डलं पसवो दासपोरुसं सव्वमेयञ्च इत्ताणं कामरूवी भविस्ससि ५ पुनरपि पण्डित: आत्मानं इति शिक्षयेत् अथवा गुरु: शिष्यं प्रत्युपदिशति हे आत्मन् अथवा हे शिष्य एतत् सर्वंत्यक्त्वा कामरूपी स्वेच्छाचारी भविष्यसि एतेषु ममत्वं त्यजसि तदाइह भवेतु वैक्रियलब्धि अणिमा महिमा गरिमालघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशत्व वशित्वादिमान् भविष्यसि परलोके च निरतीचार संयमपालनाद्दिव भवे वै क्रियादि लब्धिमान् त्वं भविष्यसि तत्किं तदाह गवाश्वं गावश्च अश्वाश्च गवाश्वं पुनर्मणिकुण्डलं मणयश्चन्द्रकांत्याद्या: कुण्डलग्रहणेन अन्येषामप्यलङ्काराणां ग्रहणं स्यात् सर्वे मणय: सर्वाण्यलङ्काराणि च इत्यर्थ: पशव: अजैडक पश्चपथ्याद्युत्पादक रोमधारक कुर्करादयश्च दासा गृहदासीभ्य: समुत्पन्ना: दासाश्च पौरुषाश्च दासपौरुषं एते सर्व्वेपि सरणात्र त्रायन्ते इत्यर्थ:

सूत्र

कामरूवी भविस्ससि ।५। थावरं जंगमं चेव धणं धणं उवक्खरं पच्चमाणस्स कम्मेहिं नालं दुक्खाउ मोयणे ॥६॥

भाषा

जंगम परी ग्रहस्लो प्रमुख धान्यं धनं गृहोपकरणं धनधान्यादि घरनो उपस्कार उपगरण पच्चमानस्य जीवस्य कर्मभि: आपणे कर्म्म करी जीवने पचाई जातां थका न समर्था भवन्ति दु:खमोचने ते सर्व दुःख थकी मुंकाववा भणी मुंकाववा समर्थ न होइ ६ आत्मस्थं सुखादि सव्वश्रो सर्वत: सर्वं भवमिति

नमागृपूय एतत् त्यक्ता सयम परिपालयेदित्यर्थ ५ थावर जङ्गम चेव धण धन उवक्खर पचमाणस्स कम्मेहि नाल दुक्खा उमो अणे ६ पुनरेतस्य वस्तु कर्मभि पच्यमानस्य जीवस्य दु खान्मोचने अल समथ न भवति एतत्कि स्थावर गृहादिक च पुनर्जङ्गम पुत्रमित्र भृत्यादि पुनर्धन गणमादिधान्य ब्रीह्यादि पुनरुपस्कर गृहोपकरण ६ अज्झत्थ सव्वओसव्व दिस्सपाणे पियायए नहणे पाणिणोपाणे भयवेराउ उवरए ७ साधु सर्वत सर्वप्रकारेण सव अध्यात्म सुखदुखादिक दिस्र इति दृष्टा सर्वप्रकारेण सर्व सुखदु खादिक आत्मनिश्रित ज्ञात्वा सुखदु खयोर्वेदक आत्मान ज्ञात्वा इष्ट सयो गादिहेतुभ्य समुत्पन्न सुख सर्वस्यात्मन प्रिय स्यात् इष्ट वियोगादिहेतुभ्य समुत्पन्न दुक्ख सर्वस्यात्मन अप्रिय ज्ञात्वा इत्यर्थ च पुन प्राणिनो जीवान्

सूत्र

अज्झत्थ सव्वओ सव्व दिस्स पाणे पियायए। नहणे पाणिणो पाणे भय वेराउ उवरए।७। आयाण नरय दिस्स नायइज्ज तणामवि। दोगु छी अप्पणोपाएदिस्स भु जेज्ज भोयण।८। इहमेगेउ मन्नति अपच्चक्खाय पावग। आय

भाषा

सुख दुखधान्यादि नरक हेतव दृष्टा ए सर्व दुखसुख आत्मा थकी उपजे पछे तेह भणी धान्यादिक परिग्रह थकी नरकनो हेतु देतो देखीने दिस० दृष्टा एणी तथा प्राणिन प्रियात्मकान् दृष्टा सर्व जीवने आपापणो प्राण वालहो छे इमजाणीने न हन्यात् प्राणिना प्राणीन इम जाणीने हणे नही मारे नही जीव प्राणीने भयात् वैराच उपरतो निवृत्त भयवैर थ्रु ति साधु निवर्त्यो छे ७ धन धान्यादि नरकहेतु दृष्टा धन आने करी नरगनो हेतु देखीने न गृह्णातिति अदृश तृणमपि तृणामात्र पोण अणदीधो लेवे नहीं आत्मगज्ञापर आत्मन पात्रे काष्ठादिमये आपणा आत्मानी निंदा करे काष्ठना भा पणा पात्र मांहि पात्र गृहिभिर्दत्त भोजन भुजीत गृहस्थे दीधो सूझतो आहार जीमे ८ इह जगति एके केचित् इति मन्यन्ते ए स सारमाहि केइक

प्रियात्मनो दृष्ट्वा प्रियः आत्मा येषान्ते प्रियात्मनः सर्वे जीवावि इच्छन्तीति जीविउं न मरिज्जिउं इति दृष्ट्वा इदिविचार्य प्राणिनो जीवस्य प्राणान् इन्द्रियोच्छ्वास निःश्वासा युर्बलरूपान् न हन्यात् भयात् वैरात् च उपरमेत निवर्त्तेत अथवा कथम्भूतः साधुः भयात् वैरात् उपरतो निवर्त्तितः इति साधुविशेषणं कर्त्तव्यं ७ आयाणं नरयन्दिस्स नायइज्जतणामवि दोगुंच्छी अप्पणोपाए दिन्नं भुज्जिज्जभोयणं ८ साधुस्तृणं अपिनाय इज्ज इति न आददीत अदत्तं न गृह्णीत किं कृत्वा आदानं नरकं दृष्ट्वा आदीयते इत्यादानं धनधान्यादिकं परि ग्रहं नरकं नरकहेतुत्वात् नरकं ज्ञात्वा इत्यर्थः पुनः साधुः पाएदिन्नं पात्रेदत्तं गृहस्थेन पात्रमध्ये प्रक्षिप्तं भोजनं शुद्धाहारे भुञ्ज्ज्ज इति भुञ्जीत कथम्भूतः सन् अप्पणो दुगंछी आत्मनो जुगुप्सीसन् आहारसमये आत्मनिन्दकः सन् अहोधिक् मम आत्मानं अयं आत्मादेहो वा आहारं विनाधर्मकरणे असमर्थः किं करोमि धर्मनिर्वाहार्थं मस्मै भाटकन्दीयते इति चिन्तयन् आहारं कुर्यात् न तु बलवीर्य पुष्टाद्यर्थं आहारं विदधीयते इति चिन्तयेत् अत्र अदत्तपरिग्रहा अवद्दय निरोधात् अन्येषा मप्या श्रवाणां निरोधोप्युक्त एव ८ इहमेगे उमन्नन्ति अपच्चक्खाय पावगं आयरियं विदित्ताणं सव्वदुक्खा विमुच्चई ९ इह अस्मिन् संसारे एके केचित् कापिलिकादयो ज्ञानवादिनः इति मन्यन्ते इतीति किं पापकं हिंसादिकं अप्रत्याख्याय पापं अनालोच्यापि मनुष्यः आचारिकं स्वकीयमतोद्भवानुष्ठान

सूत्र

रियं विदित्ताणं सव्व दुक्खावि मुच्चई ॥९॥ भणंता अकरंताय बंध मोक्ख पइन्निणो । वाया विरिय मेत्तेणं समासा

भाषा

अन्यदर्शनी इम माने छे पाप अपरित्यज्य पापने अणपचखीने पापने निज माचार विदित्वा ज्ञात्वा आपणो आचार जाणीने सर्व दुःखेभ्यो मुच्यते सर्वदुःख थकी मूकाइ ९ इह जगत् इह विश्वे एके कुतीर्थ्यादयः एवं मन्यन्ते ज्ञानमेव मुक्तिः एव वदंति क्रियां अकुर्वंतः क्रिया काइ करी नहीं भणोइजभण्या कीज ए जीव मुक्ति जाइ बन्धमोक्ष स्थापकः बन्धमोक्षना कहणहार वचनवीर्य वचनाडम्बरमात्रेण वचनाडम्बरमात्रे करीने

समूह विदित्वा आत्मा सर्व्वदुःखात विमुच्यते एतावता तत्वज्ञानात् मोचावाप्ति इति वदन्ति जैनाना तु ज्ञानक्रियाभ्यां मोच ज्ञानयादिना तु ज्ञानमेवमु क्त्यङ्गमिति ९ भणन्ता अकरिन्ताय वन्धमोक्ख पइन्निणो वायावीरिय मित्तेण समासासन्ति अप्पय १० पुनस्तेएव ज्ञानवादिनो वन्धमोच प्रतिज्ञिन वाचा वीयमात्रेण केवल वाक शूरत्वेन आत्मान समाश्वासयन्ति वन्धय मोचय वन्धमोचौ तयो प्रतिज्ञा आद्य ज्ञान येषान्ते बन्धमोच प्रतिज्ञिन बन्धमोचज्ञा इत्यर्थ मनएव मनुष्याणा कारण बन्धमोचयो यवैवा लिङ्गिता कान्ता तवैवा लिङ्गिता सुता इत्यादि प्रतिज्ञा कुर्वाणा ते कि कुर्वंत आत्मान आश्वासयन्ति भणन्तोज्ञान अभ्यसन्त च पुन अकुर्वन्त क्रिया अनाचरन्त प्रत्याख्यानतप पौषध व्रतादिका क्रिया निन्दत ज्ञानमेव मुक्त्यङ्गतयाङ्गी कुर्वन्त इत्यर्थ नचित्ता तायए भासा कओविज्जाणु सासण विसन्ना पावकम्मेहि वालापिण्डिय माणिणो ११ पण्डित मानिन आत्मान पण्डित मनरा ज्ञानाहङ्कारधारिणा इति न जानन्ति इति अध्याहार इतीति किञ्चित्रा प्राकृत सस्कृताद्या पटभाषा अथवा अन्या अपिदेश विशेषात् नानारूपा भाषा वा पापेभ्यो दु खेभ्यो न त्रायन्ते नरचन्ते तर्हिविद्याना न्यायमीमासादीना अनुशासन अनुशिचण विद्यानुशासन कुत स्तोयते न त्रायते इत्यर्थ अथवा विद्याना विचित्रमन्त्रात्मिकानां रोहिणी प्रज्ञप्तिका गोरीगन्धार्यादि षोडशविद्या देव्यधिष्ठिताना अनुशासन अनुशिचण आराधन कुतो नर

सूत्र

सेंति अप्पग ॥१०॥ न चित्ता तायए भासा कओ विज्जाणु सासण। विसन्ना पावकम्मेहि वाला पंडिय

भाषा

स्वस्थीभाव कुर्वन्ति आत्मान इम कहीने आपणी आत्माने आश्वासना दिइ १० चित्रा सस्कृतादिमयी भाषा जीव न रचति चित्रा सस्कृतादिमयि भाषा जीवडाने नरक पडता राखे नहीं कुतो विद्यानुशासन विद्यापठन कुतो रचति विद्यातु पढवु जीवे पाप छु ती राखे किन्तु न राखे मग्ना पाप कर्म्म सु पाप कर्म्मने विषे खूतो छे मध्ये मग्न हुआ मूर्खा रागद्वेषकृता पण्डितमानिन एव आत्मान मन्यते बाल अज्ञानी आपणा आत्माने पण्डित करि माने ११

उ०टीका अ०६ २२२

काचायते कोट्यास्ते वाला अतत्वज्ञाः पुनः कोट्यास्ते पापकर्मभिर्विपन्नाः विविध अनेकप्रकारं यथास्यात्तथा सन्ना. पापपङ्केषु कलिता इत्यर्थ १२ जेकेइ सरीरे सत्ता,वन्ने रूवेय सव्वसो मणसा कायवक्केणं सव्वे ते दुक्खसम्भवाः १२ ये केचन ज्ञानवादिनः शरीरेयत्ताः सन्ति शरीरे सुखान्वेषिणः सन्तिः तथा पुनर्येवर्णे शरीरस्य गौरादिके च पुनस्तथा रूपे सुन्दर नयननासादिके च शब्दात् शब्दे रसेगन्धे स्पर्शे च सर्वथा मनसा कायेन वाक्येन सक्ताः संलग्नाः सन्ति ते सर्वे दुक्खसम्भवाः दुक्खस्य सम्भवा दुक्खभाजन भवन्ति मृगपतङ्ग मीन मधुप मातङ्गवत् इहलोके यथामरण दुक्खभाजः परलोकेप्यार्त्तध्यानेन मृता दुक्खिनास्युरित्यर्थ १२ आवन्नादीह मद्धाणं संसारंमि अणन्तए तम्हा सव्वदिसम्पस्स अप्पमत्तो परिव्वए १३ ते अज्ञानवादिनो विपर्यिण अनन्तके अपारे संसारे दीर्घ अध्वानं दीर्घं मार्गं आपन्ना प्राप्ता सन्तितस्मात्कारणात् सर्वान्दिशं भवभ्रमणरूपांअष्टादशभावदिश इष्ट्वासाधुरप्रमत्तः प्रमाद

सूत्र

माणिणो ॥११॥ जे केइ सरीरे सत्ता वर्ण्णे रूवेय सव्वसो। मणसा काय वक्केणं सव्वेते दुक्ख संभवा ॥१२॥

आवन्ना दीह मद्धाणं संसारंमि अणं तए। तम्हा सव्व दिसं पस्स अप्पत्तो परिव्वए ॥१३॥ वहिया उड्ड मादाय नाव

भाषा

जे केचित् सरीरे सत्ता मूर्छिता इह शरीरे एशरीरने विषे जे इसल प्राणी समूर्च्छा छे शरीरे गौरत्वादिके सुंरो कार वर्णे रूपे सर्वप्रकारे रूपे करी वर्णे करी सर्व प्रकारे करी मनसा कायेन वाक्येन दुःखकरा भवन्ति मनवचनकायाइ करी ते जीव ते सर्वे दुःखयुक्ता भवन्ति ते सघलाइ दु.ख सहित होवे १२ प्राप्ता दीर्घ अध्वानं भवभ्रमण रूपं ससार समुद्र तेहने मारगे पड्या ते मार्ग किस्या छे दीर्घ लांवा छे ससारे अन्तरहिते वली संसारी किस्या छे अतपार करीने रहीत छे तस्मात् कारणात् सर्वदिशं सर्वगत्यागत्यं इष्ट्वा तिणे कारणे सर्वगति आगति देखीने अप्रमत्तः परिव्रजेत् अहो साधु ए स्वरूप जाणी

रहित सन् विचरेत् अष्टादशभावदिशय इमा पुढवि १ जल२ जलण३ वाउ४ मूला५ ख ध६ गा७ पोरवीयाय८ विट ति१० चउ११ पचदिसतिरि१२
नारया१३ देवसघाया १४ समुच्छिम १५ कम्मा १६ कम्मगाय १७ मणुयातहतरद्दीवा १८ भावदिसादिस इज ससारीनियमे आहि इति १ ससारे
प्रमादिनो जीवा इमासु अष्टादशभावदिशासु पुन पुनर्भ्रमतीत्यर्थं १२ बहिया उड्ढमादाय ना वकखे कया इवि पुव्वकम्मक्खयट्ठाए इम देह समुद्धरे १४
साधु पूर्वकर्म चयाथ इम देह समुद्धरेत् सम्यक शुद्धाहारेण धारयेत् पुन कदापि च परोपद्दोपसर्गादिभि पीडितोपि न कस्यापि साहाय्य अवकाङ्क्षेत्
अभिलपेत् अथवा कदापि विषयादिभ्यो न स्पृहयेत् कि कृत्वा बहिया ससाराद्बहिस्तात् ससाराद्बहिर्भूत उर्ध्व लोकाग्रस्थान मोक्ष आदाय अभिलष्य १४
विगिंच कम्मुणा हेउ कालकखी परिव्वए माय पिडस्स पाणस्स कड लडूण भक्खए १५ कालकाङ्क्षी अवसरज्ञ साधु कर्मणा हेतु कर्मणा कारण मिथ्या
त्वाविरतिकषाय योगादिक विगिंच विविच्य आत्मन सकाशात पृथककृत्य परित्यजेत्स यममार्गे सञ्चरेत् काल स्वक्रियानुष्ठानस्य अवसर काङ्क्षतीति
मोक्ष कालकाङ्क्षी पुन स साधु पिण्डस्य आहारस्य तथा पानस्य पानीयस्य मात्रा परिमाण लब्ध्वा भक्षयेत् यावत्या मात्रया आत्मसयमनिर्वाह स्यात्

कखे कयाइवि पुव्व कम्म खय ट्ठाए इम देह समुद्धरे ॥१४॥ विगिं च कम्मुणोहेउ काल कखी परिव्वए । माय

ससारनो अप्रमत्त थको विचरे १२ ससारात् बहिर्भूतोऽहं इति मोक्षमादाय मनसि चिन्तयित्वा ससार थको उचोमोक्ष तेहने मनमाहि राखीने ऋद्धि
विषयादिक न वाञ्छयेत् कदाचित् ऋद्धिविषयादिकने वाछे नही मन माहि किवारे ए पूर्व कर्म चयाथ पूर्वकर्म चयने अर्थे इम देह समुद्धरेत् पालयेत्
पूर्व कर्म चय करवाने अर्थे देहीने राखे धरे १४ विगच दूरीकृत्य कर्मबधकारण इत्यादि कर्मनो हेतु मिथ्या विगचे दूरि करे कालकची सन परिव्रजेत्
कालवेलाइ क्रिया करतो थको विचरे मात्रा पिण्डस्य अन्नादि पानस्य ज्ञात्वा मात्रा आहार पाणीनी जाणीने गृहस्थे स्वार्थे कृत लब्धाभक्षयेत् गृहस्थे

तावत्परिमाणं आहारं पानीयं च गृहीत्वा आहारं पानीयं च कुर्यात् इत्यर्थः कथंभूतं आहारं काडं गृहस्थेन आत्मार्थं कृतं प्राकृतत्वात् विभक्तिव्यत्ययः १५ संनिहिं च न कुव्विज्जा लेवमायाइ संजए पक्खी पत्तं समादाय निरवेक्खो परिव्वये १६ च पुनः संयतः साधुर्लेपमात्रयापि सन्निधिं न कुर्यात् लेपस्य मात्रा लेपमात्रा तया लेपमात्रया सं सम्यक् प्रकारेण निधीयते स्थाप्यते दुर्गतौ आत्मा येन स सन्निधिघृतगुडादिसञ्चय स्तं न कुर्यात् यावता पात्रं लिप्यते तावन्मात्रं अपि घृतादिकं न सञ्चयेत् भिक्षुराहारं कृत्वा पतं समादाय पात्रं गृहीत्वा निरपेक्षः सन् निःस्पृहः सन् परिव्रजेत् साधु मार्गे प्रवर्त्तेत क इव पक्खी इव यथा पक्षी आहारं कृत्वा पक्षं तनूरुहमात्रं गृहीत्वा उड्डीयते तथा साधुरपि कुक्षिसंबलो भवेत् १६ एसणास मिओ लज्जूगामे अनिअ

सूत्र

पिंडस्स पाणस्स काडं लद्धूण भक्खए ॥१५॥ संनिहिंच न कुव्वेज्जा लेवमायाए संजए पक्खी पत्तं समादाय निरविक्खो परिव्वए ॥१६॥ एसणा समिओ लज्जूगामे अणियओ चरे अप्पमत्तो पमत्तेहिं पिंडवायं गवेसए ॥१७॥ एवं

भाषा

आपणे अर्थनीपजाव्यो छे आहार सूझतो ल्ये १५ सन्निधं अन्नादिकं संसचयं न कुर्यात् विगयलिगारमात्रपिण रात्रे राखेनही लेपमात्रमपि साधु सञ्चय न कुर्यात् लेपमात्र थोड़ी पिणसनध राखे नहीं पक्षिवत् पक्षं सञ्चयं कृत्वा जिम पंखी उडे तिवारे पांख एकठी करीने उडे तिम यती धाइ पीये पात्रां एकठा करीने चाले तथामुनीः निरपेक्षी सन् विचरेत् तिम साधु निरपेक्षो थको विचरे १६ एषणासमिति विषयेसावधानः लज्जावान् साधू लज्जावंत छे ग्राम नगरादौ अनित्य वासः गाम नगरने विषे अनियत वासो थको विचरे अप्रमत्तः सन् प्रमत्तेभ्यः गृहिभ्यः साधु प्रमाद रहित छे गृहस्थ प्रमादी छे परिग्रहपास थोपिंडपात्रं भिक्षां विलोकयेत् भिक्षाआहारलिइ सूझतो १७ एवं पूर्वोक्तं स भगवान् उग्रवान् सर्वोत्कृष्टज्ञानीसर्वाधिकदर्शी उत्कृष्टज्ञानमो

उचरे अप्पमत्तोपमत्ते हि पिंडवाय गवेसए १७ एषणा समिती निर्दोषाहारग्राही ग्रामे नगरे वा अनियती नित्यवासरहित सन् चरेत् स यममार्गे प्रवर्त्तत कोदृश साधुर्लज्जुर्लज्जालु लज्जा संयमस्तेन सहित पुन कोदृश अप्रमत्त प्रमादरहित पुन साधु प्रमत्ते हि इति प्रमत्तेभ्यो गृहस्थेभ्य पिंडपात भिचा गवेषयेत् गृह्णोत प्राकृतत्वात्पञ्चमीस्थाने तृतीया १७ एव से उदाहु अणुत्तरनाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे अरहा नायपुत्ते भयववेसालिए वियाहिए त्तिबेमि १८ सुधर्मा स्वामी जंबू स्वामिन प्रत्याह हे जंबू से इति स अर्हन् ज्ञातपुत्रो महावीर एव उदाहु उदाहृतवान् अह तवाग्रे इति ब्रवीमि अर्हन् इन्द्रादिभि पूज्य ज्ञात प्रसिद्ध सिद्धार्थचत्रिय तस्य पुत्रो ज्ञातपुत्र कोदृशो महावीर भगवान अष्टमहाप्रातिहार्यादि ऐश्वर्यसमन्वित पुन कोदृश विशालात्रिशला तस्या पुत्रो वैशालिक अथवा विशाला विस्तीर्णा यस्य प्रभृतयोगुणा सन्तीति वैशालिक पुन कोदृशो महावीर वियाहिए इति व्याख्यात विशेषेण आख्याता द्वादशपरिषदासु समवसरणे धर्मोपदेश व्याख्याता धर्मोपदेशक इत्यर्थ पुन कोदृशो महावीर अनुत्तरज्ञानी सर्वोत्कृष्टज्ञानधारी पुन कोदृश अनुत्तरदर्शी अनुत्तर सर्वोत्कृष्ट पश्यतीत्येव शीलोऽनुत्तरदर्शी पुन कोदृश अनुत्तरज्ञानदर्शन धर ज्ञानञ्च दर्शनञ्च ज्ञानदर्शने अनुत्तरे च ते ज्ञानदर्शने च अनुत्तरज्ञानदर्शने अनुत्तरज्ञानदर्शने धरतीति अनुत्तरज्ञानदर्शनधर केवलवरज्ञानदर्शन धारी इत्यर्थ अत्र पूर्व अनुत्तरज्ञानी अनुत्तरदर्शी इति विशेषणद्वय उक्ता पुनरनुत्तरज्ञानदर्शनधर इति विशेषण उक्त तेन केवलज्ञान केवलदर्शनयोरैक्य

से उदाहु अणुत्तर नाणी अणुत्तर दंसी। अणुत्तर नाण दंसण धरे अरहा नायपुत्ते भयव वेसालिए वियाहिए

घणो सर्वाधिक हूमननो धणी सर्वाधिकज्ञान दर्शनधर सर्वाधिक ज्ञान दर्शन नो धणी अर्हंन अरिहंत सिद्धार्थ पुत्र सिद्धार्थ राजानो बेटो समग्र ऐश्वर्यादियुक्त विस्तीर्ण शिष्ययुक्त घणा शिष्यके जेहने सभामध्ये उम कथीतवान् इति ब्रवीम १८ इति श्रीलघुनि ग्रन्थोयाध्ययन समस्त सम्पूर्णम् ६

समयान्तरेणायुगपदुत्पत्तिः सूचिता अनयोः कथञ्चिद्भेदोऽभेदश्च सूचितः पुनरुक्तदोषोन ज्ञेयः १८ इति क्षुल्लकनिग्रन्थित्वाध्ययनं सपूर्णं अत्राध्ययने क्षुल्लकस्य साधोर्निर्ग्रन्थित्व मुक्त मित्यर्थः इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचितायां क्षुल्लक निग्रन्थितत्वाध्ययनस्य षष्ठस्यार्थः संपूर्णं ।६। अत्र पूर्वाध्ययने साधोर्निर्ग्रन्थत्वं उक्तं तच्चयोरसेषु अग्टधुर्भवति तस्यैवस्यात् रसगृद्धस्य कष्टमुत्पद्यते तेन रसगृद्धस्य कष्टोत्पत्ति दृष्टान्तसूचकं उरभ्रादि पञ्चदृष्टान्तमयं सप्तमं उरभ्रीयाख्यं कथ्यते इति षष्ट सप्तमयोः सम्बन्धः जहाएसं समुद्दिस्स कोइपोसिज्जएलयं ओयणं जवसन्दिज्जा पोसिज्जा विसयङ्गणे १ व्याख्या यथा कोपि कश्चिन्निर्दयः पुमान् आदेशं आदिश्यते विधिव्यापारेषु प्रेर्यते परिजनो यस्मिन् आगतेस आदेशस्तं प्राघूर्णकं समुद्दिश्य आश्रित्य स्वकाङ्गण स्वकीय गृहाङ्गणे एलकं एडकं उरणकं पोषयेत् तस्मै एलकाय ओदनं सम्यक् धान्यं यव मुद्ग माषादिकं दद्यात् ततश्च पोषयेत् पुनः पोषयेदित्युक्तं तत् अत्यादरख्यापनार्थं अपिशब्दः सम्भावनेसंभाव्यतेएव एवंविधः कोपि गुरुकर्मा इत्यर्थः १ अत्रोदाहरणं यथा एक मूरणकं प्राघूर्णकार्थं प्रोष्यमाण लाल्यमानं दृष्ट्वा एको वत्सः खिन्नः क्षीरमपिवन् गवामात्राप्रष्ठः कथं न वत्सः क्षीरं पिवसि स आह

सूत्र त्तिवेमि ॥१८॥ खुड्डागज्झयणं समत्तं ६॥ जहाएसं समुद्दिस्स कोइ पोसेज्ज एलयं। ओयणं जव संदिज्जा पोसेज्जावि

भाषा यथा आदेशं प्राघुर्णकं उद्दिश्य प्राहुणा ने निमित्ते उद्देशिने कोपि एलक मोढकं पोषयति कोई मीढाने पोसे पोखे ओदनं भक्तं जवमुद्गादि दद्यात् जव मूग मोठ तेहने दीजे पुष्टिं कुर्यात् स्वकीयांगणे पुष्टि कीजे आपणा घरने आंगणे १ ततः स उरभ्रः पुष्टः उपचित मांसः समर्थो

मातरेव जरणक सर्वे लोकैर्पोल्यते ब्रीहींधायते पुत्रइव विविधैरलङ्कारैरलङ्क्रियते अहन्तु मन्दभाग्य शुष्काण्यपि तृणानि न प्राप्नोमि न च निर्मल पानीयामपि न प्राप्नोति न च मां कोपिला लयति माताप्राह पुत्र अस्यैतानि आतुरचिह्नानि यथा मर्तुकाम आतुरो यद्यमार्गयति पथ्यमपथ्यंवा तत्तत्सर्वमस्य दीयते अयाम्भै मारयिष्यते तदा त्वद्रक्ष्यसि यन्यदा तत्र प्राघूर्णक समायात तदर्थन्त मूरणक मार्यमाण दृष्ट्वाभीत सवत्स पुनस्त यपानम कुर्वन मातानुशिष्ट पुत्र किं त्वभीतोसि पूव मयोक्त न स्मरसि किं आतुरचिह्नान्ये तानीति यएव ब्रीही खारित प्रकाम लालित सएव मार्यते त्वन्तु शुष्कान्येव तृणानि चरितवानसीति माभैषीनैव मारिष्यसे इति माता उक्तोवत्ससुखेनैव स्तन्यपान मकरोत् एव यो यथेष्ट विविधास्वाद लम्पटोऽधर्म माचरति सनरकायुर्बध्नातीत्यर्थ इति जरणकदृष्टान्त १ तओसे पुट्ठे परिवूढे जायमेए महोदरे पीणिए विउले देहे आए सपरिकङ्खए २ तत सए लक कीदृशोजात तत स उरभ्र पुष्ट उपचितमास परिवृढ युद्धादौ समर्थ सर्वेष्वन्येषु उरभ्रेषु मुख्यइव दृश्यमाण पुन कीदृश जातमेदा पुष्टी

सय मणे ॥१॥ तओ से पुट्ठे परिवूढे जायमेए महोदरे। पीणिए विउले देहे। आएस परिकङ्खए ॥२॥ जाव नएइ आएसे तावज्जीवइ से दुही। अह पत्तम्मि आएसे सीस छित्तूण भुजई ॥३॥ जहा खलु से उरभ्भे आएसाए

जात तठा केडे उपचित प्रौढोदर जातमेद मातो हुओ मेदहुइ पेट मोटो हुओ पुष्टिविंशाल देह पुष्ट हुओ छे जेहनो देह प्राघूर्ण बांछति हवे घर नो धणी प्राहुणा ने वाछे छे प्राहुणो आवे तो भलो थाइ आदेसने वाछे ते २ यावन्नायातिप्राघुर्णक जेतले पाहुणो न आवे तावज्जीवते सदु खवानजिहा ताइ ते मोठो दुखो थको जोवे अथवा पुरस दूखे करो जीवे अथ प्राप्ति प्राघूर्णे अथ प्राहुणो आव्यो वाट जोता थका मस्तक छित्वा भुज्यते मस्तक

भूत चतुर्थधातुः पुनः कीदृशो महोदरो विशालकुचिः पुन कीदृशः प्रीणितः यथेप्सित भोजनादिना सन्तुष्टीकृतः एतादृशः सन् स उरभ्रः विपुले विस्तीर्णे देहेसति आदेशं प्राघुर्णकं परिकांचति प्रतिच्छति इव २ जावनएइ आएसे तावजीवइ सेदुही अहपत्त मि आएसे सीसंच्छित्तूण भुंजई ३ सउर भ्रस्तावज्जीवति प्राणान् धारयति कीदृशः स दुक्खी दुक्खं अस्य भावी इति दुक्खीभाविनि भूतोपचारात् यद्यपि वर्त्तमानकाले तस्य सुखमस्ति तथापि दुक्ख आगामि कलात् दुःखी उच्यते तावत् इति किं यावत् आएशः प्राघुर्णको न एति न आगच्छति अथ आदेशे प्राप्ते सति शीर्षं छित्वा स उरभ्रः आदेशेन समं स्वामिनापि भुज्यते ३ जहासे खलु उरब्भे आए साए समीहिए एवं बाले अहम्मिठेई इई न रयाउअं ४ यथा स उरभ्रः आदेशाय

समीहिए । एवं बाले अहं मिठे इहई नरया उयं ॥४॥ हिंसे बाले मुसा वाई अद्धाणंमि विलोवए । अन्न दत्त हरेते णे माई कन्नु हरे सढे ॥५॥ इत्थी विसय गिद्धिय महारंभ परिग्गहे । भुंजमाणे सुरं मंसं परिवूढे परं दमे ॥६॥

छेदीने खाइ मोढाने ३ यथा स निश्चये नोरभ्रः जीमते खलु निश्चय स्युं जरण प्राघूर्ण कायकल्पित प्राहुणाने अर्थे राखीने विणास्यो: एवं मूर्खो धर्म्म हिनः इम मूर्खबालक अधर्मो वांछते नरकायुषं बांधे नरकनूं आउखूं ४ प्राण घातको मूर्ख मृषावादी जीवमारे झूठ बोले अध्वनि मार्गे विलोपको लूंटकः वाटपाड़े घर लूटे अन्यैरदत्त हरति चोर अदत्तादान लिइ चोरी करे वञ्चकः कस्यार्थं हरिष्यामी मूर्खः माया करे केहनो धन हरुं स दाएहज ध्यान मन मांहि रहे ५ स्त्रीलोलुपः विषयासक्तः वली बालमूर्ख विषया छे स्त्रीने विषे गृद्ध हुआ छे तीव्रारम्भ परि ग्रहजुक्तः घणो आरम्भ घणो परि ग्रह तेणे युक्त छे भुंजमानः सुरामांसं मांस खाइ मद्य पीइ समर्थे अन्यदमनशीलः इसो वलवत बीजाने दमे ६ अजस्य पक्कमांस

समोचित कल्पित एव इति तथाबाल' कार्याकार्य विचाररहित अधर्मिष्ट नरकायु इहते इव नरक गतियोग्य कर्मकरणे नरकाय कल्पित इत्यर्थ ८ हिंसे बाले मुसावाइ अद्धाण मि विलोवए अन्नदत्त हरे तेणे माईकन्नु हरे सढे ५ इत्थी विसयगिद्धे य महारम्भ परिग्गहे भुञ्जमाणे सुर मस परिवूढे परन्दमे ६ अयकक्कर भोईय तुन्दिल्ले चिय लोहिए आयुय नरएकङ्खे जहाए सवए लए ७ तिसृभिर्गाथाभि पूर्वोक्तमेव द्रढयति एता दृशो नर नारको इति नरकगतो नरकायु अर्थात् नरकस्य आयुकाङ्क्षति नरकगति योग्यकर्मा चरणात्सनर नरकगति एव वाञ्छति नरकाय कल्पित वा'क इव एलक पूर्वोक्त उरभ्र आदेश इव यथा केनचित पापेन यथेप्सित भोजनेन पोषित उरभ्र' आदेश इच्छति कीदृश स हिंस्रो हिंसनशील पुन कीदृश बालो अज्ञानी पुन कीदृश अध्वनि विलोपक जिनमार्गलोपक, पुन कीदृश अन्यादत्तहर अन्येषा अदत्त हरतीति अन्यादत्तहर अदत्तादान सेवी इत्यर्थ पुन कीदृश स्तेन्य चौर्येण कल्पितवृत्ति पुन कीदृग्मायी कापट्ययुक्त पुन कीदृश कस्य भयं नु इति वितर्के हरिष्यामीति विचारो यस्य स कन्नहर पुन कीदृश शठो वक्राचार ५ पुन कीदृश स्त्री विषयेगृद्ध पुन कीदृश महारम्भ परिग्रह' महान्तौ आरम्भपरिग्रहो यस्य समहारम्भपरिग्रह महारम्भी पुनर्महापरिग्रही पुन कीदृश सुरां मद्य मास चभु जान पुन कीदृश परिवृढ उपचित मासत्वे न स्थूल पुन कीदृश परदम पर अन्य जीव दमतीति परदम परपीडाकारक आत्मार्थं परजीवोपघातुक इत्यर्थ ६ पुन कीदृश

सूत्र अयकक्कर भोईय तु दिल्ले चियलोहिए। आउय नरए कखे जहाए सवएलए ॥७॥ आसण सयण जाण वित्त कामेय

भाषा भोजो छालानु मास घणु पचावोने करकराटक रतो खाइ मोटोदर उपचित रक्त पेटमोटो हुओ लोहि पीण उपचित हुओ आयुष्क नरके वाञ्छति आउ खु नरकनु वाञ्छे यथा आदेश प्राघूर्णक एल वाञ्छति जिम प्राहुणा नेमो ढोवा छे इतिम जाणवो ७ आसन शयन यान प्रवहण विशेष बाजोठ

अजक कर भोजी अजस्य छागादे कर्करं अतिभ्रष्टं यच्चणकवत् भुज्यमानं कर्करायते तन्मेदोदन्तुरं पक्कं शूलाकृतं मांसन्तद्भुक्तं इत्येवं शीलो अज कर्कर भोजी पुनस्तुन्दं अस्यास्तीति तुन्दिल यथेप्सित भोजनेन वर्द्धितोदर अतएव चितशोणित वर्द्धितरुधिर रुधिर वृद्धया अन्येषामपि धातूनां वृद्धिर्द्रष्ट्व्यैति ७ पूर्वं हिंसे बाले इत्यादिना आरम्भोक्ति कथिताः भुञ्जमाणे सुरम्मंसं इत्यनेन दुर्गति गमनभणनात्कष्टोत्पत्ति कथिताः अथ गाथाद्वयेन साक्षादिहैव कष्टं कथयति आसणं सयणं जाणं वित्तङ्कामे अभुञ्जिआ दुस्साहडं धणं हिच्चा बहुसञ्चिणिया रयं ८ तओ कम्म गुरुजन्तु पच्चुप्पन्न परायणे अयव्व आगया एसे मरणन्तं मिसोयए ९ ततस्तदनन्तर प्रत्युत्पन्नपरायण प्रत्युत्पन्ने प्रत्यक्ष भुज्यमानविषयसुखे परायण· प्रत्युत्पन्न परायण परलोक सुखना स्तिक वादीजनो मरणान्ते मरणस्य अन्त सामीप्यं मरणान्तः तस्मिन् मरणान्ते मरणे समीपे समागते सति शोचते शोकं कुरुते इति सम्बन्ध तत इति कुतः पूर्वं किं कृत्वा इत्याह आसनं सुखासनादिकं शयनं खट्वा छप्परादिकं हिंडोला दिकं यानं गड्डिका दिकं वित्तंद्रव्यं कामान् विषयान् भुंक्त्वा दुक्खाहृतं दुःखेनाहृयते इति दुःखाहृतं दुक्खोत्पाद्यं धनं त्यक्त्वा पुनर्बहुप्रचुर रजः पातकं सञ्चि णिया सञ्चित्य समुत्पाज्यं एतावता बहुभि परिग्रहै पातकंउपार्ज्य आयुष अन्तेस आरम्भोजीवः शोचते कथम्भूतः सजन्तुः कर्म्मगुरुः

भुंजिया दुस्साहडं धणं हिच्चा बहु संचिणिया रयं ।८। तओ कम्म गुरुजंतू पच्चुप्पन्न परायणे अयव्व आगया एसे

शय्या प्रवहण गाडां प्रमुख द्रव्यं कामान् शब्दादीन् भूक्त्वा लक्ष्मीकामभोगवीने दुखैरुपार्जितं धनं त्यक्त्वा दुःखे करीने उपार्ज्यो हतो ते धन छोडीने बहु रजःकर्ममलं उपार्जयित्वा घणा पाप मलसंचीने ८ ततः कर्म्म गुरु जीवः तिवारे पछी भारी कर्मी जन्तु प्राणी तठाकेडे वर्त्तमान कांमपरायणः अना गत कालं परलोकं न जानाति बर्त्तमान कालने विषे नरकादिक थको वोहे नहीं जाणे सर्वे हांज छे आगे काइ न थी इम जाणे यथा अजोमो ढकः

उ०टीका अ०७ २२१

कथमित्युं स्व गुरुकर्मा सकइव शोचते अजइव यथापूर्वो अल आदेशे प्राघुर्णके आगते सति शोचते तथा स आरम्भी परियही विषयी जीव
मरण समये शोचते इत्यर्थ ९ पुनस्तदेव द्रढयति तओ आउपरिक्खीणे चुआ देहावि हिंसगा आसुरीय दिशम्बाला गच्छन्ति अवसातम १०
तत आयुषि परिक्षीणे सतिते विहिंसका विशेषेण हिंसाकारका नरा देहात्च्युता मनुष्यशरीराद्भ्रष्टासन्त आसुरीय दिश गच्छन्ति कीदृशास्ते
बाला मूर्खा असुराय रौद्राणां रुद्र कर्मकारिणां इय भावदिशा आसुरीता पुन कीदृशास्ते अवशा परवशा इन्द्रियवसवर्त्तिनो वा कीदृशी आसुरी
दिशतम इति तमोन्धकार तद्युक्तत्वात् तम तमोमयी नरकगति मितिभाव इति प्रथम एलकस्य दृष्टान्त अथ काकिन्याम्र दृष्टान्तमाह जहाका
गिणीए हेउ सहस्स हारए नरो अपत्थ अम्बगभक्खाराया रज्जन्तु हारए ११ यथा कश्चिन्नर काकिन्या हेतो सहस्रपलद्वानां सह अहारयेत् काकिणी
तु रूपकद्रव्यस्य अशीतिमो भागस्तदय कश्चित् क्षपण टङ्काना दीनाराणा सहस्र पातयेत् सएतीव मूर्खशिरोमणि अत्र मनुष्यभोग सुखस्य तुच्छत्वेन रूप

सूत्र

मरण तमिसोयए ।९। तओ आउ परिक्खीणे चुयादेह विहिंसगा । आसुरीय दिसं बाला गच्छति अवसातमं ।१०।
जहा कागणीएहेउ सहस्सहारएनरो । अपत्थ अवग भुच्चा रायारज्ज तु हारए ॥११। एव माणुस्सगाकामा देव

भाषा

प्राघर्णके आगते शोच्यते जीम प्राहुणो आव्या थका मीढो सोचे तीम तथा सप्राणी मरणाते आगते शोचते तिम ते भारिकर्मा प्राणीमरण आव्या थका
सोचे ९ ततो अनन्तर आयुषि परिक्षीणेतिवारपछीतिहामनुष्यसम्बन्धीआयुखीणहोइ थकेभ्रष्टदेहा सत्त हिंसायवे मनुष्य सम्बन्धी देही छाडीछाडीने
नरकगतिदिसि नरकगति नरकने विषे जाइ गच्छन्ति अवशा पापवन्त पापी मनुष्य नरकने विषे जाइ परवसि थाइ१० यथा काकिणी हेतु जिमकोइ

दिंका दृष्टान्तः तु पुनः कश्चिद्राजा अपथ्यं आम्रफलं भुक्ता राज्यं हारितवान् हारयेत् वा अत्र भोगसुखस्य तुच्छत्वोपरिकाकिन्या म्र दृष्टान्त दयोदाहरणे दर्श्यते एकेन केनापिद्रमकेण वृत्ति कुर्वता महीपक्रमेण कार्षापण सहस्रमर्जितं सतद्वासनिकांकाटी नद्वा सार्थेन समगृह प्रस्थितः मार्गे भोजनार्थं च एकं रूपकं अशीति काकिणीभिर्भित्वा दिने २ एकया काकिण्या भुंक्ते एवं मार्गेतेन एकोनाशीति काकिण्यो भक्षिताः एकाकाकिणी अवशिष्टाऽस्ति साच सद्यः सार्थे चलिते विस्मृता अग्रे गच्छत स्तस्य स्मृतपथमागता एवञ्चतेन चिन्तित एकदिन भोजनार्थं मे रूपकभेदः कर्त्तव्यो भविष्यतीति क्वचित् वासनिकां सङ्गोप्य पश्चाद्विवृतः ततः साकाकिणी केनचित् हृता यावद्वासनिका स्थाने नरायाति तावद्वासनिकापि केनचिद् हृता ततोऽसा वुभय भ्रष्टो गृहङ्गतः शोचति अथाम्र दृष्टान्तो दर्श्यते कस्यचिद्राज्ञ आम्राजीर्णेन विसूचिका अभूत् वैद्यैर्महता उपक्रमेण तामपनीयोक्तं चेदाम्राणि पुनस्त्वं खादसि तदा विनश्यसि ततस्तेन राज्ञा स्वदेशे आम्रा उत्खातिताः अन्यदा स राजाऽश्वापहृतो दूरतर वनेगतः तत अम्रद्रुमच्छायाया सुपविष्टः पक्वान्याम्राणि दृष्ट्वा चलचित्तो मन्त्रिणा वार्यमाणोपि भक्षितवान् तदानीमेव मृतः एवं काकिण्याम्र सदृश मनुष्यकामा सेवनतो वाल नरेण देवैका

सूत्र

कामाणं अंतिए सहस्स गुणिया भुज्जो आउं कामाय दिव्विया ।१२। अणेगवासानउया जासा पन्नवउ ठिई जाणि

भाषा

मनुष्य एक कोडीने काजे सहस्रं हारयेत् कापि नरः सहस्र दीनार हारे मनुष्यकोड्क अहितं आम्रफलं भुक्ता अपथ्य अहित कारी राजाइ आंबानुं फल खांधु खाइने राजा राज्यं पुनः हारयेत् राजा राजने हारे ११ एव मनुष्यकाः कामभोगाः इम मनुष्यना काम भोग कोडी समान छे देवभोगने आगे समीपे देवताना भोगने आगे देवताना भोग सहस्र दीनार सरीखा छे सहस्रगुणाकारैर्भूयः सहस्रगुणे करी अधीक आयुः कामाश्च दिव्या देवसम्बन्धिया वलो मनुष्य आयुखा थी देवताना आयुखा घणा पल्योपम सागरोपम हुवे देवताना भोग पिण घणा नियुत पूर्व सम्बधिया वर्ष तणो आउखो चौरासी

माहार्यन्ते इति परमार्थं ११ एवं माणसगा कामा देवकामाण अन्तिए सहस्सगुणिआ भुज्जो आउ कामाय दिव्विया १२ एव अमुनाप्रकारेण क्रा
क्रियास्रफल दृष्टान्तेन काकिण्याम्र सदृशा मानुष्यका कामा देवसुखाना अन्तिके देवसुखाना समीपेत्रे या मनुष्यका माहि देवकामानां अर्थे भूयो
वार२ सहस्र गुणिता दिव्यका' कामाच यथा मनुष्यकामाना अर्थे वार२ सहस्र गुणितास्तथा आयुरपि मनुष्यायुर्देवायुषो रन्तर ज्ञेय १२ अर्थे गवा
मा नउया आ सा पढ वउठिई जाणि जीयति दुम्मे हा ऊणे वाससयाउए १२ अप्रावत क्रिया सहितज्ञानयुक्तस्य या स्थिति विद्यते सा भवता अस्माक
च प्रतीतास्ति तत्र स्थितीयानिअनेकवर्षअयनयुतानिअनेकानि असंख्यं यानिवर्षअयनयुतानि येषु तानि अनेकवर्षअयनयुतानि अथात् यानि पल्योपमसाग
राणि भवन्ति अत्र प्राकृतत्वात् अनेकवर्षं अयन युता इति पुल्लिङ्ग निर्देश प्राकृतत्वात् अथवा यत्र देवस्थितौ अनेकवर्षं अयन युता यानि इति ये कामा'
भवन्तितानि सर्वाणि पल्योप सागराणि तत्प्रमाणाआयुषि दिव्य स्थितिविषयभूतानि दुर्मेधयो दुर्बुद्धयः पुरूषा ऊने वर्षशतायुषि महावीरस्वामि वारके
मनुष्यविषये जीर्यन्ते हार्यन्ते देवयोनियोग्यायु कामसुखरहिता क्रियन्ते तुच्छ मनुष्यसुखलब्धा मूर्खा देवस्थिति सुखहीना भवन्ति अतएव दुर्मेध
सदृत्यत दुर्दुष्टामेधा येषान्ते दुर्मेधं स इति जहा यतिन्निवणिया मूलच्छित्तूण निगया एगोतत्थलहए लाभ एगो मूलेण आगओ १४ एगो मूलम्मि

सूत्र जीयति दुम्मे हा ऊणेवाससयाउए ॥१३॥ जहायतिन्निवणिया मूलघित्तुणनिगया। एगोतत्थलहए लाभ एगोमूलेण

भाषा लाख गुणा कोजे एतले नियुतांग होइ ते आंक चौरासी लाख गुणा कोजे एतले नियुताग होइ ते आंक चौरासी लाख गुणा कोजे एतले नियुत होइ
एहवा नियुत पल्योपम सागरोपम देवने आउखो वर्त्ते छे १२ अनेक वरस सख्या रहीत अयनयुत नाम काल विशेषः ८४ लाख वर्ष या सा पुण्यवतां
स्थिति पृथा सागरोपमा स्थिति सिद्धान्त ने विषे प्रसिद्ध उत्कृष्टी स्थिति होइ यानि वर्षाणि युतानि हारयति दुर्बुद्धि माणस एतलो देवता नु आउखु'

हारित्ता आगओतत्थवाणिओववहारेउवमाएसा एवं धम्मे वियाणह१५ अथ द्वाभ्यां गाथाभ्यां व्यवहारोपमा माहयया त्रयोवणिजः कस्मात् चित् व्यापा रिणः समीपात् मूलं नीवीद्रव्यं गृहीत्वा स्वकीय नगरात् अपरत्र नगरेगताः अत्र तिषु वणिग्जनेषु एकः लाभं लभते एको मूलेन नीवीद्रव्येण सह समागतः एकः मूलं द्रव्यं अपिहारयित्वा द्यूतमद्य परस्त्री वेश्या सेवनादि कुव्यापारैर्गमयित्वा स्वगृहं आगतः एषा व्यवहारे उपमास्ति एषैव उपमा धर्मेपि यूयंजानीथ इत्यर्थः १५ माणुसत्तं भवेमूलं लाभो देवगईभवे मूलच्छेएण जीवाणं नरगतिरिक्खत्तणं धुवं १६ मनुष्यो नृत्वा मनुष्यएव भवेत् तदा

सूत्र

माणु सत्तं भवे मूलं लाभो देव गई भवे। मूल छेएण जीवाणं नरगं तिरक्खत्तणं धुवं।१६। दुहओ गई बालस्स आवई आगओ।१४। एगो मूलंपि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ ववहारे उवमा एसा एवं धम्मे वियाणह॥१५॥

भाषा

हारे वर्षशतायुः किञ्चित् जने ओछे सोवरसे आउखाने लीधे १३ यथा त्रयो वणिक् जिम तिणवाणीया मूलराशि गृहान्निर्गताः पुंजी लेई ने घर थकी नीकल्या वाणिज्य करवा भणी पिताइं सहस्र दीनार दीधा घर थकी एकस्तत्र वणिक् लाभं लभेत् एक लाभ पामे एकः वणिक् मूलधनेन आगतः एक मूलगो आपणी पूंजी लेई आवे १४ एकोवणिक् व्यवसायं कुर्वन् स्वधनं हारयित्वा एक आपणी सघली पूंजी खोइने आगतः तत्र वणिक् आव्यु तोहां वाणीओ व्यवहार विषये उपमा एषा व्यवहारी उपमा कही एवं धर्मेपि जानीते इम धर्मने विषे पणि दृष्टांत जाणवो १५ मानुष्यत्व भवेन्मूलं मनुष्य पण पूंजी सरीखूं लाभः देवगतिर्भवेत् देवगति तेलाभ उपाय मूलछेदेन जीवानां मूल छेद कीधो पूंजी खोइने नरकत्वं तिर्यंचत्व ध्रुवं स्यात् मूल छेद्या थी नरक तिर्यंच पण पामीइ १६ द्विधा गतिः नरकगति स्तिर्यग्गतिश्च

मनुष्यत्व मूलद्रव्य सदृशं ज्ञेय यो मनुष्य भवात् च्युत्वादेवो भवेत् तदा देवत्व लाभतुल्य ज्ञेय यत्पुनर्मनुष्याणां नरकस्तिर्यक त्व प्राप्तिर्भवेत् तदा मूलच्छेदेन ध्रुवं निश्चित दुर्भाग्यत्व ज्ञेय १६ दुहओ गईबालस्स आवइ वह मूलिया देवत्तमाणुसत्तंच जिप्पिए लोलयासढे १७ बालस्य मूर्खस्य द्विधा गति र्भवेत् कथंभूतागति आवइ वहमूलिया आपदश्च मूलिका आपद विपदोवध स्ताडनादि आपदश्च वधश्च आपदवधौ तौ मूल यस्या सा आपदवधमूलिका ज इति यस्मात् कारणात् स बालो मूर्खोदेवत्व मानुषत्वश्च हारित कीदृश सन् लोलया लाम्पट्येन जित पुन कीदृश शठ धूर्त १७ तओजिएसइ होइ दुविह दुग्गइङ्गए दुल्लहातस्स उम्मग्गा अद्धाएसु चिरादवि १८ ततो देवत्व मनुष्यत्व जयात् देवगति मनुष्यगति हारणात् स मूर्ख सदाद्वार२ दुर्गति प्रती भवति इत्यध्याहार तस्यबालस्य सुचिरादपि अद्धाए प्रभूतेपि आगामि निकाले उम्मग्ग उन्मज्जन उन्मज्जातस्या दुर्गते सकाशात्नि स्सतिर्दुर्लभा

वह मूलिया। देवत्त माणुसत्तच ज जिए लोलुया सढे।१७। तओ जिएसइ होइ दुविह दुग्गइ गए। दुल्लहा तस्स उम्मग्गा अद्धाएसु चिरादवि।१८। एव जीय स पेहाए तुलिया वालच पडिय। मूलियंते पवेसति माणुस्स जोणि

रागद्वेषाकुलितस्य मूर्खने बेगति नरक अने तिर्यञ्च गति होवे आगच्छति वधकारि का गति आपदा रूपवधरूपगति तेहनी मूलछे यद्यस्मात् देवत्व मानुषत्व च यथा हारित जिणे कारणे तिणे मनुष्ये मूर्ख देव पण मणुष्य पण हार्यो लोलुप गृद्ध शठ मायावान् लोलुपो के स्त्रीने विषे शठमाया घणी करे १७ तत जीवस्य सय भवति सदा तत तिणे कारणे जीवने सदा होइ द्विधा दुर्गति गत सन नरकतिय च नीगति माहि गयो थको वाध्यो दुर्लभ तस्य निस्सार अवस्य हारित देवगति मनुष्यगति तेहने नरक तिर्यंच गति थी निसरवु दोहिलु तिणे ते भणी देवगति नरकगति हारीने काले

भवति निःसरणं दुःकरश्च वेदित्यर्थः १८ एवं जियं सपेहाए तुलियाबालञ्च पण्डियं मूलियन्ते पवेसन्ति माणुसंजोणिमन्तिजे१८ एवं अमुना प्रकारेण बालं मूर्खं जितं संप्रेक्ष्य आलोच्य च पुनः बालं मूर्खं पुनः पण्डितं तलज्ञन्तु लित्वा तोलयित्वा इतिविचारणीयं इतीति किन्तेमनुष्या मूलियं मौलिकं मूले भवं मौलिकं मूलद्रव्यं प्रविशन्ति लभन्ते तेकेये मनुष्याः मानुषं योनिं इति प्राप्नुवन्ति ते मूलरचक्र व्यवहारि तुल्यात्रे याः १९ वेमायाहिं सिक्खाहिं जे नरा गिहिसुव्वया उवेन्ति माणुसं जोणिं कम्मसचाइ पाणिणो २० मानुषं योनिं के व्रजन्ति तदाह ये नराः विमाताभि र्विविधप्रकाराभिः शिक्षाभिं

सूत्र

मंतिजे ।१९। वेमायाहिं सिक्खाहिं जेनरा गिहि सुव्वया । उवेंति माणुसं जोणिं कम्म सच्चाहुपाणिणो ॥२०। जेसिं तु विउला सिक्खा मूलियंतेअइत्थिया । सीलवंता सवीसेसा अदीणाजंति देवयं ॥२१॥ एवं अदीणवं भिक्खू अगा

भाषा

चिरभूतेपि घणे काले काल गये थके नौरठुं दोहिलुं छे कोइ प्राणी परदेस गयो बांछे घरे जाउं ते मार्ग काटे पगे करी तदआविमार्ग १८ एवं अमुना प्रकारेण बलं हारितं सम्प्रेक्ष इणे प्रकारे बालकने हाथी देखीने तोलयित्वा मूर्खः पुनः पंडित विचारीने मूर्ख पणे अने पंडित पणे ते नराः मूलधन नो वीयं प्रवेश प्राप्नोति ते मनुष्य वीचारीने धर्म अंगीकार करे मानुषी योनि यांति ये पंडिताः पण्डितमाणसमनुष्य नो जोनि पामे १९ विविध परिणामाभिः शिक्षाभिः विनीत पणानी भांति२ नी शिक्षाइ करी गुणव्रत अणुव्रते करी ये नरा गृहस्था अपि सुव्रताः सदाचाराः भवन्ति जे मनुष्य गृहस्थ थका पणिसुव्रत होइ भला व्रत पाले छे प्राप्नुवन्ति मानुषीं योनिं ते मनुष्यनी योनि पामीने कीदृशाः ते सफलकर्म्माणः प्राणीनः किस्या ते मनुष्य छे सफल भला कीधा छे जे प्राणी २० येषां पुनः विपुला शिक्षा दर्शनाचारमयी जे मनुष्यने महाव्रत रूप शिक्षा छे व्रतपाले छे मूलादपि अधिकलाभंयुक्ता

गृहिसुव्रता भवन्ति गृहिणयते सुव्रताश्च गृहिसुव्रता गृहीत सम्यक्त्वा गृहस्थ द्वादसव्रता ते प्राणिनस्तेजीवाश्च इति निश्चयेन मानुष योनि उत्पद्यन्ते जेसिन्तु विउलासिक्खा मूलियन्ते अइत्थिआ सीलवन्ता सवीसेसा अदीणा जंति देवयं २१ व्याख्यातुरेवार्थं येषा जीवानां विपुल विस्तीर्णा शिक्षाग्रहणा सेवनादिकास्तिते जीवा मूलकमिव नृभवत्व अतिक्रान्ता सन्त देवत्व जान्ति प्राप्नुवन्ति किंभूता तेजीवा शीलवत सदाचारा पुन कथंभूता ते सविशेषा सह विशेषेण उत्तरगुणेन वर्तन्ते इति सविशेषा पुन कीदृशा अतएव अदीना नदीना सन्तोषभाज इत्यर्थं २१ एवं अदीणवं भिक्खु अगारिंच वियाणिया कहन्नु जिच्चमेलिक्खं जिच्चमाणो न संविदे २२ पण्डित पुमान् मेलिक्ख इदृश जिच्च इति जीय ज्ञेतव्य देवगति मनुष्यगति रूप जीयमान इन्द्रिय विषयैर्हार्यमाण कथन्नु न सम्विदेत् कथं न जानीत अपितु पण्डित ज्ञपरिज्ञया एव जानीत एव किं ज्ञात्वा एव अमुना प्रकारेण अदैन्यवत सन्तुष्टि भाजन्दिन साधुच पुन अगारिण गृहस्थं वियाणिया विशेषेणदेव गतिमनुष्य गतिवा गामित्व लक्षणेन ज्ञात्वा तस्मात्पण्डितोधर्ममार्गे सावधानोभवेदित्यर्थं २२ जहा कुसग्गे उदय समुद्देण सममिणे एवं माणुस्सगाकामा देवकामाण अन्तिए २३ यथाकुशाग्रे उदक समुद्रेण समं मन्यतेएव मानुष्यका कामा देवकानां अन्तिके समीपेज्ञेया १३ कुशग्रमिता इमेकामा सन्नि

सूत्र

रिंच वियाणिया । कहन्नु जिच्च मेलिक्खं जिच्चमाणानसंविदे ।२२। दार जहा कुसग्गे उदय समुद्देण सममिणे ।

भाषा

तिणे मानु भावे मूलपणो मनुष्यनो भव अतिक्रम्यो शीलवन्त सदाचारा सविशेषा सर्वोत्तमा आचारवन्त सर्वमाहि उत्तम दीनभाव रहिता याति देवगति दीनपणु करो रहित देवपणो पामे २१ एवं अमुना प्रकारेण अदीनवत साधु एणप्रकारे अदीनवत साधु दीन भाषा रहित गृहस्थ च ज्ञात्वा साधु पणो गृहस्थ पणो जाणोने कथं नु वितर्के जिच्च इदृश मनमाहि विचारे इद्री किम जीतिजे जियमान न जानाति मनुष्य भवजीततो हारी तु

रुद्धंमि आउए कुसहेउं पुरीकाउं जीगक्खेमं नसम्बिदे२४ संनिरुद्धे संचिप्ते आयुषिइमी प्रत्यचा. मनुष्य सम्बन्धिन कामा कुशाग्रमात्रा सन्तीत्यध्याहार एवं सत्यपिजन कस्यहेतुं पुरस्कृत्यकं हेतुं किंद्वारणमाश्रित्ययोगंच्च पुन क्षेमं न सम्बिदेन सम्बित्ते योगं क्षेमश्च कथं न जानातीत्याश्चर्य मित्यर्थ २४ इह कामानियट्टस्स अत्तट्ठे अवरज्झई सुच्चाने आउयं मग्गं जंभुज्जो परिभस्सई २५ इहेति अवदृष्टांतपञ्चके क्रमात् अपायबहुलत्वं१ तुच्छत्वं २ आयव्ययतो लाभ हारणं समुद्र जलदृष्टान्तं च ज्ञात्वा इह नरभवे कश्चिद्गुरुकर्मा जीवस्तस्य कामात् भोगसुखात् अनिवृत्तस्य आत्मार्थो मोक्ष अवराध्यतिनश्यति विषयिणो जीवस्य मोचो न भवतीत्यर्थं अत्र हेतुमाह जंइति यस्मात् कारणात् स गुरुकर्मा जीवो नैयायिकं मार्गं मोच मार्गं श्रुत्वा वारं२ परिभ्रश्यति संसार

सूत्र

एवं माणुस्सयाकामादेवकामाण अंतिए ।२३॥ कुसग्गमित्ता इमेकामा सन्निरुद्धंमि आउए। कस्सहेउं पुरा काउं जोगक्खेमं नसंविदे ॥२४॥ इह कामानियट्टस्स अत्तट्ठे अवरज्झई। सोच्चानेयाउयंमग्गं जंभुज्जो परिभ

भाषा

न जाणे २२ यथा कुशाग्रे उदकं जिमडा भने अग्रिपाणी नोबिंदुओ पुनः समुद्रे ण समतां करोति समुद्रना पाणीनी परे एवं मानुष्यकाः कामभोगाः ज्ञातव्याः इम मनुष्यना कामभोग जाणवा देव भोगनां समीपे देवताना कामभोग समुद्र सरिखा छे २३ कुसाग्रविंदुप्रमाणाः सन्ति एते काम भोगाः डाभने अग्रभागे पाणीनाटीपका सरीखा मनुष्यना कामभोग छे संचिप्ते आयुषि थोडो आउखे थए किं हेतूं आश्रित्य गृहीत्वा किस्युं हेतु कारण आश्रयीने आगलि करीने योग क्षेमं न जानीते अप्राप्तस्य प्रापणं योगप्राप्तस्य पालनं क्षेमः अनपामी वस्तुनेइ पामी जेते योग कहीइ पामी वस्तुने भलीपरि पाली जे ते खेम कहीइ ते जाणीने नहीं २४ इह जगति कामेभ्यो अनिवृत्तस्य ए जीवडो कामभोग थकी निवृत्ति नहीं हुओ छे आत्मार्थं स्वर्गादि

गर्त्तायां पततीत्यर्थं २५ इह काम नियट्टस्स अत्तट्ठे नावरज्झई पूइदेह निरोहेण भवेदेविति मे सुय २६ हे शिष्य मे मया इति श्रुत इतीति किं इह अस्मिन् नरभवे कामात् निवृत्तस्य जीवस्य लघुकर्मण, आत्मार्थो मोक्षो न नश्यति सच पुमान् पूतिदेहनिरोधेन औदारिक देहत्यागेन शतन पतनविध्वंसनधर्मात्मकपिण्डाभावेन देवो भवेत् देवशरीर प्राप्नुयात् २६ इड्डीजुई जसो वण्णो आउत्र सुह मणुत्तर भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु तत्थ सेउववज्जई २७ स नि र्विपर्योकामात् निवृत्तो जीवस्तत्र मनुष्येषु भूयो वार२ उत्पद्यते तत्र कुत्र यत्र मनुष्येषु ऋद्धि स्वर्णरूप्यरत्नमाणिक्यादिका भवति यत्र द्युतिर्देहस्य कांति र्भवति पुनर्यत्र यशो भवति पराक्रमादुत्पन्नधर्मविशेषरूप यश उच्यते पुनर्यत्र वर्णो गांभीर्यादिगुणैर्वर्णन वर्ण श्लाघा अथवा वर्णशब्देन गौरत्वादि गुणो

मूल: मज्जई २५॥ इह कामनियट्टस्स अत्तट्ठे नाव रज्झई। पूइदेह निरोहेण भवेदेवेत्तिमे सुय २६॥ इड्डीजुइ जसो वण्णो आउ सुह मणुत्तर। भुज्जोजत्थमणुस्सेसुतत्थसे उववज्जई ॥२७॥ बालस्सपस्सबालत्त अहम्म पडिवज्जिया चिच्चाधम्म

भाषा: अपराधितेनस्यति जे जीवडो आपणा आत्माने अपराधे ते गति न पावे श्रुत्वा नैयायिक मोक्षमार्ग मोक्षनो देणहार शुद्धमार्ग सुणी अंगीकार कीधो यत् भूय परिभ्रष्टा भवति अङ्गीकार करीने पछे यथा जीव धर्म थकी भ्रष्ट होइ जाइ २५ इह मनुष्य भवे काम भोगेभ्यो निवृत्तस्य एणे मनुष्यभवे कामभोगथी नीवर्त्याने आतमन यथों न विनस्यति आत्माना अर्थ देवलोकादिक विषये नही पूतिदेह निरोधेन उदारीक देहत्यागे न औदारीक अप वीत्र सरीर इहां छाडीने भवेत् देवा सिद्धो वा इति मया गुरुमुखात् श्रुतं देवता अथवा सिद्ध होवे इम मे गुरु कन्हे साभल्यु २६ ऋद्धि द्युति कान्ति यश वर्ण ऋद्धिकांति शरीरनी यश प्रससनीक वर्ण आयु सुख प्रधान दीर्घ आउखु अने प्रधान सुख के जीहां यत्र भूय मनुष्येषु नरदेवेषु जे कुलने

उत्तराध्ययने एलकाज्झयणाधिकारम् सं० भावितात्मा अणगार श्रीबूंटे रायजी तच्छिष्य भगवान विजय साधुना संशोधितं

वा पुनर्यत्र आयु संपूर्णं प्रचुरंच भवति पुनर्यत्र सुखं भवति एतेषां सर्वेषां अनुत्तरपदेन विशेषणं कर्त्तव्यं अनुत्तर सर्वोत्कृष्टं देवभवापेक्षया एतद्वक्तव्यं २७ बालस्स पस्स बालत्तं अहम्मं पडिवज्जिया चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे नरए उववज्जइ २८ हे शिष्य त्वं बालस्य हिताहितज्ञान रहितस्य बालत्वं मूर्खत्वं पश्य स अधर्मिष्टो बालो धर्मं त्यक्त्वा अधर्मं प्रतिपद्य नरके उत्पद्यते २८ धीरस्स पस्स धीरत्तं सव्वधम्माणुवत्तिणो चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे देवेसु उववज्जइ २९ हे शिष्य धीरस्य पण्डितस्य धीरत्वं पश्य त्वं विचारयधिया राजते इति धीरः धियं बुद्धिं राति ददातीति धीर· तस्य कीदृशस्य सर्वधर्मानुवर्त्तिन सर्वे ये

सूत्र

अधम्मिट्ठे नरएसु उववज्जई २८॥ धीरस्सपस्सधीरत्तं सव्वधम्माणु वत्तिणो। चिव्वा अधम्मं धम्मिट्ठे देवेसुउववज्जई २९
तुलियाण बालभावं अबालं चेव पंडिए। चइऊण बालभावं अबालं सेवइ मुणि त्तिबेमि ३०॥ एलकज्झयणं ७॥

भाषा

विषे इतलावाना छे तत्र स उत्पद्यते ते कुले मनुष्य पणे उपजे २७ मूर्खस्य पश्य मूर्खत्वं मूर्खपणुं देखो अधर्मं प्रतिपद्यते अधर्म अङ्गीकार करे छे त्यक्त्वा धर्मं अधर्मिष्टः धर्मने छोडीने अधर्म अङ्गीकार करे छे नरकेषु उत्पद्यते नरकने विषे जो उपजे तीहोपणजीवने २८ धीरस्य पश्य धीरत्वं धीर मनुष्य नुं धीरपणुं देखोने सर्वत्र धर्मानुवर्त्तिनः सर्वज्ञनो भाष्यो धर्म तेहना अनुवर्त्तीते करे छे त्यक्त्वा अधर्म धर्मिष्टः सन् अधर्म मार्ग छांडीने धर्म मार्गे प्रवर्त्यो थको देवेषु उत्पद्यते देवलोकने विषे देवता हुइ २९ तोलयित्वा विचार्य मूर्खस्य मूर्खत्वं मूर्खपणो देखीने पण्डितभावं च पण्डितः मुनिः पण्डितसाधु पण्डीतपणो आदरी त्यक्त्वा मूर्खलक्षणं मूर्खपण छांडीने पण्डित सेवते मुनिः इति समासब्रवीमि अबाल भाव पण्डित पणो तत्वार्थ सेवे ३०

चान्त्यादयो धर्मास्तान् अनुवर्त्तितु अनुकूलत्वेन चरितु शील यस्य ससर्वधर्मानुवर्त्ती तस्य चान्त्यादिदशविध धर्मधारकस्य कीदृश धीरत्व तदाह सध मिंटो धीर अधर्म त्यक्त्वा देवेषु उत्पद्यते २९. तुलियाण बालभाव अबाल चेवपडिए चइ जण बालभाव अबाल सेवइ मुणीत्तिवेमि ३० मुनिस्तीर्थं करादेशकारी साधुरेव अमुना प्रकारेण बालस्य बालभाव च पुन पण्डितस्य अबाल पण्डितत्व तुलिया इति तोलयित्वा चकारो वाक्यालङ्कारे पश्चात् पण्डितस्तत्त्वज्ञ पुमान् बालभाव मूर्खत्व त्यक्त्वा अबाल पण्डितत्व सेवयेत् अङ्गीकुर्यादित्यर्थं इति अह ब्रवीमि सुधर्मा स्वामी जबूस्वामिन प्रत्याह ३० इति औरभ्रीयाख्य सप्तम अध्ययन सपूर्ण ७ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचिताया सप्तमाध्ययनस्यार्थ सपूर्ण ॥ ७ ॥ अथाष्टम अध्ययन कथ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने विषयत्याग उक्त स च निर्लोभस्यैव भवति ततोऽष्टम अध्ययन कपिलस्य महामुने दृष्टान्त गर्भितनिर्लोभत्व दृढीकरण कथ्यते पूर्व क कपिल कथच स मुनिर्जात अतस्तदुत्पत्ति रुच्यतेयथा कोशा व्यानगर्याजित शत्रु राजा राज्य करोति तत्र काश्यपो ब्राह्मण स चतुर्दश विद्यास्थानपारग पौराणा राज्ञश्चातीवसम्मत तस्य राज्ञा महती हस्तिर्दत्ता काश्यप ब्राह्मणस्य यशानाम्नी भार्यावर्त्तते तयो कपिलनामा पुत्रोऽस्ति तस्मिन् कपिले बाले एव सति काश्यपो ब्राह्मण कालङ्कत' तदधिकारो राज्ञाऽन्यस्मै ब्राह्मणायदत्त सो अश्वा रुढ छत्रेण ध्रियमाणेन नगरान्त व्रजति एकदात तथा व्रजन्त दृष्ट्वा यशाभृश रुरोद कपिलेन पृष्ट मात कि रोदषीति सा प्राह वत्स तव पिता इदृश्या

सूत्र — अधुवेअसासयमीससारम्मि दुक्खपउराए। किं नामहोज्जतकम्मय जेणाह दुग्गइ नगच्छेज्जा १॥ विजहित्तुपुव्वस

भाषा — इति श्रीएलका अध्ययननो टब्बो सपूर्णम् ॥७॥ अध्रुवे असाश्वते ए ससार अध्रुवनित्य नथी अशाश्वतो छे नीश्चल नथी ससार दुक्ख प्रचुरे ए ससार अने कदुक्खे करी भर्यो छे कि तन्नामेति सभावने भवेत् तत कर्म अनुष्ठान पाचसे चोर बोल्या स्वामी इसो कोइ अनुष्ठान धर्ममार्ग के येनाह दुर्गति न

त्वद्या पुरात्तर्भ्रमन्नभूत् मृते च तव पितरि त्वयि वा विदुषि सति मम तवपैत्र्यं पदं प्राप्स्यती रोदिति कपिलः अहमपि पठामि तदा माता प्राह पुत्र अत्र तव न कोऽपि त्वां नीत्वा पाठयिष्यति ततस्त्वं श्रावस्त्यां व्रज तत्र तव पितृमित्रं इन्द्रदत्तो ब्राह्मणस्त्वां पाठयिष्यति कपिलः श्रावस्त्यां तत्समीपमुपगतः तेन पृष्टं कस्त्वं कुत आयातः कपिलेन सर्वं स्वस्वरूपमूचे तेन मित्रपुत्रत्वात् सविशेषं पाठयति परं स्वगृहे भोजनव्यवस्थां कारयितुं न शक्नोति ततस्तेन शालिभद्र नामा तत्रत्यो व्यवहारी प्रार्थितः यथास्य त्वया निरन्तरं भोजनं देयं त्वत्प्रसादाद्विचिन्तितोऽयं पठति तेनापि प्रतिपन्नं कपिलः शालिभद्रगृहे प्रत्यहं भुंक्ते इन्द्रदत्त गुरुसमीपेऽध्येति शालिभद्रगृहे चैका दासी वर्त्तते दैवयोगात्तस्या समं रक्तोऽभूत् अन्यदा सा गर्भिणी जाता कपिलं प्रत्याह यत्र तव पर्वाऽऽगता ममोदरे त्वद्गर्भो जातः अतस्त्वयाऽत्र भरणपोषणादिकार्यं कपिलस्तद्वचनं श्रवणाकूर्ण्य खिन्नः परस्तामरतिं प्राप न च तस्यां रात्रौ निद्रां प्राप पुनस्तया भणितं स्वामिन् खेदं माकुर्याः मदुक्तमेकमुपायं शृणु अत्र धननामा श्रेष्ठी वर्त्तते तस्य यः प्रथमं प्रभाते गत्वा वर्धापयति तस्य सुवर्णमाषद्वयं ददाति ततस्त्वमद्य प्रभाते गत्वा प्रथमं वर्धापय यथा सुवर्णमाषद्वयं प्राप्नुयाः कपिलस्तस्या वचः श्रुत्वा मध्यरात्रौ उत्थितस्तस्य भाग्निमपरः कश्चिन्मा प्रथमं यायादिति मत्वा तस्यैव गच्छन् कपिलः पुरारक्षकैर्गृहीतः चोरधिया बद्धः प्रभाते पुरस्वामिनः पुरो नीतः पुरस्वामिना पृष्टं कस्त्वं किमर्थमर्द्धरात्रौ निर्गतस्तेन सकलं स्वरूपं प्रकटीकृतं सत्यवादित्वात्तस्य तुष्टो राजाऽऽह यत् त्वं मार्गयसि तदहं ददामि सपाह विमृश्य मार्गयिष्यामि राजाऽऽह याहि अशोकवनिकायां विचारय स्वेष्टं कपिलस्तत्र गतः इति चिन्तयितुमारब्धवान् चेदहं सुवर्णमाषद्वयं मार्गयामि तदा तस्माद्दास्याः शाटिकामात्रं जायते नतु आभरणानि ततः सहस्रं मार्गयामि तदापि तस्य आभरणानि न जायन्ते ततो लक्षं मार्गयामि तदापि ममजालतुरङ्गमोत्तमगजेन्द्रप्रवररथादिसामग्री न जायते ततः कोटिं मार्गयामीति चिन्तयन्नेव स्वयं मम्वेगमागतः सुवर्णमाषद्वयार्थं निर्गतस्यापि ममकोट्यापि तुष्टिर्न जातेति धिगिमां तृष्णामिति विचार्य

समस्तके लोच क्षतवान् शासन देवतया तस्य रजोहरणादि लिङ्ग मर्पितं कपिलो द्रव्य भावाभ्या यति भूत्वा राज्ञ पुर समागत राज्ञा भणित त्वया विचारित स आह जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहोपवड्डइ दोमास कणयकज्ज कोडीएवि न निट्ठियमिति विचार्योह यन्नात्वा सयमीजात राज्ञोक्त कोटिमपि तवाह ददामि तेनोक्त सर्वोपि परिग्रहो मया व्युत्सृष्टो नमे कोव्यापि कार्यमित्युक्त्वा स श्रमणस्ततोवि हृत षणमासान् यावत् छद्मस्थ एवासीत् पश्चात्केवलीजात इतय राजगृह नगरान्तराल मार्गे बलभद्र प्रमुखाचोरा सन्ति एतेषा प्रतिवोधोमत्तो भविष्यतीति ज्ञात्वा स कापिल केवली गत तैर्दृष्ट प्रोक्तश्च भो श्रमण नृत्य कुरु केवली प्राह वादक कोपि नास्ति ततस्ते पञ्चशत चौरास्तालानि कुट्टयन्ति कपिल केवली गायति तद्गीत इत्समाह अधुवे आसासयमि ससारमि दुक्ख पउराए कि नाम हुज्जत कम्मय जेणाह दुग्गइ न गच्छिज्ज्जा १ भोजना अस्मिन् ससारे तत्कर्मका कि नाम कि सम्भाव्यते तत्कि कामवर्त्तते तत् कि क्रियानुष्ठान वर्त्तते येन कर्मणा अह दुर्गति नगच्छेय केवलिन समयस्य दुर्गति गमनस्य उभयो रभावेपि प्रतिवोधापेक्षया इति केवली भगवान् इद आह कथभूते ससारे अध्रुवे नव नव स्थानक निवास सद्भावात् अस्थिरे पुन कीदृशे ससारेऽशाश्वतेऽनित्ये पुन कीदृशे ससारे दु ख प्रचुरे दु खै शारीरिक मानिसिकै पुष्टे प्रचुरे पूर्णे जन्मजरा मृत्युसहिते १ विजहित्तु पुव्वसजोग न सिणेह कहिम्मि कुव्विज्जा

योग नसिणेह कहिंविकुव्वेज्जा । असिणेह सिणेह करेहिंदोसपदोसेहि मुच्चएभिक्खू २॥ ततोनाण दसणसमग्गो

गच्छेत् जे धर्मने अगोकार कर्या थका हु दुर्गतिने विषे नजाउ १ त्यक्त्वा पूर्वसयोग मात पितादि तिवारे कपिल ऋषि तेहना वचन साभलीने घरनो सबन्ध छांडोने कुत्रापि स्नेह न कुर्यात् स्नेह कोइ वस्तु उपरे न करे स्नेहकारेष्वपि पुत्रादिषु स्नेहना करणहार पुत्रकलत्रादिक ते उपरे सनेह न करे एव कुर्वन् इहलोके परलोकेऽपि दु खैर्मुच्यते भिक्षु इम करतु साधु इहलोक परलोकना दु ख थी छूटे २ ततोनन्तर ज्ञानदर्शनपूर्ण कपिलमुनि कपिल

विवषयामिषदोष विषण विषया एव ग्टद्धिहेतुत्वात् आमिषं विषयामिषन्त देवदोष जीवस्य दूषण करणत्वात् विषयामिषदोष स्तत्र विशेषेण सन्नो निमग्न विषयामिषदोष विषण पुन कोट्टश हित निश्रेय स बुद्धिपर्यस्त हितं आत्मसुखं निश्रेयसो मोच्च हितञ्च निश्रेयसश्च हित निश्रेयसी तयो र्विषये याबुद्धि हितनिश्रेय स बुद्धिस्तस्या प्रकासात् विशेषेण पर्यस्त पराङ्मुख हितनिश्रेय सबुद्धि विपर्यस्त स्वर्गापवर्गसुखाद्भ्रष्ट इत्यर्थ ५ दुप रिच्चया इमे कामानोसुजहा अधोर पुरिसेहिं अहसन्ति सुव्वया साइ जे तरन्ति अतरं वणिया वा ६ इमे प्रसिद्धाकामाः अधीर पुरुषैर्नसुजहा न सुखे न हातुं योग्या इत्यर्थः मिष्टान्नादि भोजनवत् कीट्टशा इमे कामाः अतएव दुःपरित्यजाः अथ केचित् सुव्रताः साधवः सन्ति ये अतरन्तरीतुं अशक्यं ससारन्तरन्तिकेइव वणिजइव यथा वणिजाः सामुद्रिकाः व्यापारिणः अतरं महाससुद्रं प्रवहणैस्तरन्ति अत्र वा शब्दोहि इवार्थे ६ समणा मुएगे वयमाणा पाण वहंमिया अयाणन्ता मन्दानिरय गच्छन्ति बाला पावियाहि दिट्ठीहि ७ एके केचित् कुतीर्थ्याः मिथ्यात्विन पापिकाभिः पाप हेतुकाभिर्दृष्टिभिः बुद्धिभिः प्राणवधं अधर्मं अजानन्तः नरकं गच्छन्ति कथम्भूतास्ते मृगा अविवेकिनः पुनः कीट्टवास्ते मन्दाः जडाः यथा केचित् रोगग्रस्ताभिर्दृष्टिभिः सम्यग् मार्गं अजानन्तः कस्मिन् चित् दुःख व्याप्ते मार्गे व्रजन्ति पुनस्ते केचित् कुतीर्थ्याः किं कुर्वन्तः सुइति वयं श्रमणाः इति

सूत्र

अहसंति सुव्वया साहू जे तरंति अतरं वणियावा ६॥ समणा मु एगे वयमाणा पाणवहंमिया अयाणंता। मंदा

भाषा

स्म: एके केचित् परतीर्थिकाः इति वदन्ति केइकपरतीर्थी इम कहे अम्हे श्रमण साध छे प्राणवधं मृगाव अजानन्तः जीवमारे धर्मनो मार्ग जाणे नहीं मूर्खाः मिथ्यात्व पीडिताः नरकं गच्छन्ति मंदमूर्ख मीथ्यात्वे करी पीडा थका नरके जाइ विवेकहीनाः पापदृष्टिभिः मूर्ख विवेके करी हीन पापनेज विषे दृष्ट छे जेहनी ७ न हि प्राणवधं अनुजानन् अनुमोदयन् प्राणवध करे वली प्राणी बध करी अनुमोदना करे कदाचित् सर्व दुःखेभ्यो न मुच्यते

वयमाणा वदन्त श्रमण धमरहिता अपि स्वास्मिन श्रमणत्व मन्यमाना इत्यर्थ यदि प्राणवध अपि न जानन्ति तदाऽन्ये षा मृषावादादीनान्तु प्रानन्तेषु कुतएव सभाव्यते कथम्भूतास्ते मन्दमिथ्यात्वरोगग्रस्तापुन कथम्भूतास्ते बाला विवेकहीना विवेकहीनत्व द्वितीया पापशास्त्रेषु धर्मशास्त्रबुद्धित्वात् तद्यथा ब्रह्मण ब्राह्मण आलभेत इन्द्राय चत्र आलभेत मरुद्भ्यो वैश्य तमसे शूद्र तथा यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्वमिद जगत् आकाशमिव पङ्केन नासौ पापेन लिप्यते १ धर्मोहि बाले रग्रेय ८ नहुपाण वह अणुजाणे मुच्चिज्ज कयाइ सव्वदुक्खाण एवा यरिएहि अक्खाय जेहि इमो साहुधम्मो धम्मो ८ ते आर्ये पूज्ये आचार्ये एव आख्यात इत्युक्त ते के ये आचार्ये अय साधुधर्म साध्वाचार अथवा सम्यग धर्म प्रज्ञप्त कथित इतीति कि जीव प्राणिवध जीवस्य हिंसा अनुजानन् अनुमोदयन् इहति नियमेन कदापि सर्वदुखेभ्यो न मुच्येत अत्र प्राणिबधस्य अनुमोदनाया स्त्यागात करणकारणयो रपि त्याग उक्त प्राणवधकरण कारणानुमतित्यागाञ्च मृषावादा दत्ता दान मैथुन परिग्रहादी नामपि करणकारणानुमतस्यापि निषेधा

सूत्र

नरयगच्छ तिवालापावियाहि दिट्ठीहि ७॥ नहुपाणवह अणुजाणे मुच्चेज्जकयाइ सव्वदुक्खाण । एवा यरिएहि अक्खा
हिजेहि इमोसाहु धम्मोपन्नत्तो ८॥ पाणेयनाइ वाएज्जा सेसमीएत्ति वुच्चइ । ताइ तओसे पावय कम्म निज्जाइउदय

भाषा

कदाचित् सर्व दुख थकी मूकाइनहो एव आचार्ये स्तीर्थङ्करैराख्यात इम तीर्थं करगण धरे कह्यु ये अय साधु धर्मोप्रज्ञप्त कथित जे तीर्थंकरे ए साधु धर्म कह्यु प्ररुप्यो ८ प्राणान् नातिपातयेत विनाशयेत् विनासन करे प्राणी जीवने मारे नही ससाधु समित कथ्यते ते साधुपाच समिते समितो कहीइ ततो अनन्तर पापकर्म नियमेन नगच्छति ते पुरस पापने विषे न जाये यथास्थलात् उच्च प्रदेशात् उदक याति जिम उच्च प्रदेश थी पाणी ढली

उ०टीका
अ०८
२४८

त्थेय: ८ पाणियना इवा इज्जा से समोइत्ति वुच्चई ताई तओसे पावय कम्मं निज्जाइ उदगं वथलाओ ८ य: साधु: प्राणान् जीवान् न अतिपातयेत् न विनाशयेत् स्वयं न हिंस्यात् च शब्दात् प्राणहिंसाया: कारणानुमत्योरपिनिषेध: उक्त: सत्राता ,जीवरक्षाकारी साधु: समित उच्यते सेइति अथ अनन्तरं सर्वजीवरक्षणात् अनन्तरं ततस्तस्मात् समितात् संमिति गुणयुक्तात्साधो: पापकं कर्म अशुभं कर्मनिर्याति निर्गच्छति कस्मा त्किमिव स्थलात् उन्नतभूतलात् उदकं पानीय निर्गच्छति उन्नतभूतले यथा उदकं न तिष्ठति तथा समितसाधौ पातकं न तिष्ठति इत्यर्थ: ८ जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहिंच नो तेसिं मारभे दंडं मणसा वयसा कायसा चेव १० जगत् लोकस्तत्र निश्रिता: आश्रिता स्तेषु जगन्निश्रिते त्रसेषु थावरेषु च जीवेषु मनसा वचसा च पुन: कायेनतेषु दंडं न समारभेतवधं न कुर्यादित्यर्थ: अत्रो ज्जयिन्यां श्राद्धपुत्रस्य कथा १० अवन्त्यां श्राद्धसुतश्चौरैर्हत्वा मालवकेराट् सूपकार हस्ते विक्रीत स्तेन लावकादिन्मारयेत्युक्तोऽमारयत्र्यपिटया हतस्तथाप्य मारयन् गाढं कुट्यमानं आरटन् राज्ञा शुत्वाहृयामानीत उक्तश्चकिरेनजीवान् हिंसि सोऽवक् अहंश्राद्धो नहन्मि ततो राजाबन्धने र्यमाणो जीवानघ्नन् हस्त्यग्रे चिप्तोपिनाहन् तत: प्रसन्नस्तं स्वङ्गा रक्षां चक्रे यथा समारेपिन प्राणानपिवधेकार्षादेवं प्राणत्यागेप्यन्यै यत्नं सुद्ध सणा

सूत्र

व थलाओ ८॥ जग निस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहिंच । नोतेसिं मारभे दंडं मणसा वयस कायसा चेव १०॥

भाषा

जाइ तिम पाप जाइ ८ जगनि:स्तेषु लोकास्तेषु पृथ्वीने आश्रयाछे भूतप्राणीया त्रसेषु थावरेषु च एक जीव त्रस छे हाले छे बीजा थावर चाले नहीं न तेषां दंडं कुर्यात् ते त्रस थावरने पीडे नहीं मनसा वचसा कायेन निश्चे मन वचनकायाइ करी पीडान ऊपडावे १० शुद्ध निर्दोषा एषणा ज्ञाला शुद्ध निर्दोष एषणा जाणीने तत एषणायां स्थापयेत् साधु: आत्मान तीहां साधु आपणा आत्माने काजे सूझतो आहार लिइ संयमनिर्वाहाय ग्रासं गवेषयेत्

श्रोनद्याण तत्थठविज्ज भिक्खू अप्पाण जायाए घास मेसिज्जा रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ११ भिक्षु साधु शुद्धेषणां ज्ञात्वा शुद्धाहारग्रहण विज्ञाय तत्र निर्दोषग्रहणे आत्मान स्थापयेत् पुन साध्वाचार वदति भिक्षाभिक्षाचरो मुनिर्यात्रार्थं शरीरनिर्वाहायग्रास आहार एषयेत् गवेषयेत् न पुन साधू सगृद्ध स्यात् ११ पताणि चेवसे विज्जा सीयपिण्ड पुराण कुम्मास अदुवक्कस पुलाइवा जवणट्ठाय निसेवए मन्थू १२ साधुर्यापनाथ शरीरनिर्वाहाथ प्रान्तानि नीरसाणि अन्नपानीयानि सेवेत च पुन अन्तानि अपि सेवेत तानि प्रान्तानि अन्तानि अन्नपानीयानि कानि इत्याह शीत पिंड शीत शाल्या दिम्नस्यपिण्ड शीतपिण्डम्त पुन पुराण कुल्माष पुराणा प्रभूतकाल यावत्सचिन्ता पुराणायते कुल्मापाथ पुराणकुल्मापा पुरातनराजमापाम्तान् प्राकृत त्वादेकवचन अदुव अथवा वक्कस अतिनिपीडितरस तणमात्र स्थित वृक्कसमुद्गादीना तुप वा अथवा पुलाक असार वल्लचणकादिक पुन शरीरधारणार्थं मथु बदरचूर्ण निषेवेत बदरचूर्णस्यापि रूच तया प्रातत्व अत्र यापनाथ इत्युक्त तेन अयमर्थो ज्ञेय यदि खतिवातादिना तदिच्छया पनानैव स्यात्तो न

सूत्र

सुद्धे सणाओ नच्चाण तत्थ ठविज्ज भिक्खू अप्पाण । जायए घासमेसेज्जारस गिद्धेनसिया भिक्खाए ११। पताणि चेव सेवेज्जा सीय पिंड पुराण कुम्मास । अदुवक्कस पुलाग वा जवणट्ठाए निसेवए मथु ॥१२॥ जेलक्खणच सुविणच अग

भाषा

सयमनिर्वाहवा भणी आहारनी गवेषणा करे स्निग्धादिकु गृद्धी न स्यात् स्निग्ध आहारनी विषे गृद्ध लोलपी न होइ ११ प्रातानि नीरसानि सेवेत् प्रातशीतल ठण्ढा आहार लिइ शीतलाहार जीर्णान् कुलमाषान पुराणा शीतल उडदवा कुलाथोइ अथवा मुद्गमापादिकचणकादि अथ मु ग उडददाल विणा प्रमुख यापनार्थं शरीर निवाहार्थं मु थु वदिर चुर्ण शरीर निर्वाहा निमीत्ते लिइ के १२ य साधु पुरुष लक्षण स्वप्न शास्त्र जे कोइ यति

निषेवेत अपि स्थविरो ग्लानस्य येन आहारेण शरीरे सुखं स्यात्तदाहारं सेवेत अयमर्थो ज्ञेयः १२ जे लक्खणंच सुविणंच अंगविज्जं च जेपउं जंति न हुते समणा वुच्चन्ति एवं आयरिएहिं अक्खायं १३ हुइति निश्चयेन ते श्रमणा उच्यन्ते आचार्यैः एवं आख्यातं तेके ये लक्षणं सामुद्रकशास्त्रोक्तं द्वात्रिंशत्प्रमाणं मषातिलादिकं च पुनः स्वप्नं स्वप्नशास्त्रं गजारोहणात् भवेद्राज्यं श्रीप्राप्तिः श्रीफलागमात् पुत्राप्तिः फलिताम्रस्यसौभाग्यं माल्यदर्शनादित्यादि अंग वियां अङ्गस्फुरणफलशास्त्रं यथाशिरसः स्फुरणे राज्यं हृदयस्फुरणे सुखं बाह्वोश्च मित्र मिलापः जङ्घयोर्भोगसङ्गमः इत्यादि सर्वं मिथ्या श्रुतं साधुना न प्रयोज्य मित्यर्थः यदाह धर्मदासगणिक्षमाश्रमण जोइसनिमित्त अक्खरं कोउअ आएसभूयकम्मेहिं करणाणुमोयणिज्जे साहुस्स तवक्खओ होइ १३ इह जीवियं अनियमित्ता पब्भट्ठा समाहि जोएहिं ते कामभोगरसगिद्धा उववज्जंति आसुरे काए १४ ते कामभोगरसगृद्धा आसुरे काये उत्पद्यन्ते किं कृत्वा

सूत्र

विज्जंच जेपउंजंति । नहुतेसमणा वुच्चंतिएवं आयरिएहिं अक्खायं ॥१३॥ इहजीवियं अणियमित्तापब्भट्ठासमाहिजो॰
गेहिं । तेकामभोगरसगिद्धा उववज्जंतिआसुरेकाए ॥१४॥ तत्तोविय उव्वट्टित्ता संसारंबहु अणुपरियट्टंति । बहुकम्म

भाषा

पुरुषलक्षण स्वप्ननो विचार कहे अंग विद्या अंगस्फुरणादिफलं शरीर फुरके तेहना विचार कहे नते श्रमणाः उच्यन्ते एतलावाना जे करे तेहने साधु न कहीइं एवं तीर्थंकरे राख्या तं इम तीर्थंकरे आचार्यें कह्यो १३ इह जन्मनि जीवतं अनियंत्रिता नियमरहिताः इहां आपणो आत्मा तप जप करीने यत्ने नहीं वसि करे नहो प्रभ्रष्टाः समाधि योगेभ्यो समाधि थकी भ्रष्ट थयो ते काम रस गृद्धाः ते पुरुष जे कामभोग रसे गृद्ध हुवे छे उत्पद्यन्ते आसुरे काए असुरकायेषु ते पुरुष असुर निकायमांहि जाइ १४ ततोपि उद्वृत्त्य असुरनिकायात् ते असुर काय थी नीसरीने संसारं बहु भ्रमन्तिः संसारमांहि

इह अस्मिन् संसारे जीवित आत्मान तपो विधानादिना अनियमित्ता इति अनियता अवशीकृत्य ते के ये समाधियोगेभ्य प्रभ्रष्टा समाधिना स्थैर्येण योगा मनो वाक कायाना एको भावा समाधियोगास्तेभ्य प्रभ्रष्टा प्रकर्षेण अध पतिता पुन कीदृशास्ते कामभोगरस गृद्धा विषयसेवन स्वादलोला आसुरे काये असुरकुमारयोनौ अत्र अनियत्ता इत्युक्तं न किञ्चित् अनुष्ठान कृत्वा असुरकुमारत्वेन उत्पद्यन्ते नितरा अतिशयेनय मिथ्यानिश्चय न निय त्य अनियम्य उत्कृष्ट तप कृत्वा इत्यर्थं १४ तत्तो विय उव्वट्टित्ता संसार बहु अणुपरियट्टति बहुकम्मलेवलित्ताण बोही होइ सुदुल्लहातेसि १५ ततोपि च तत असुरनिकायात् उद्धृत्य निःसृत्य बहु संसार अनुपर्यटन्ति बहुल संसार भ्रमन्ति पुनस्तेषा संसारे भ्रमता बोधि सम्यक्त्व लब्धिसुदुर्लभा भवति कथभूताना तेषा बहु कर्मलेपलिप्ताना प्रचुरकर्मपङ्क खरण्टिताना १५ कसिण पि जो इम लोग पडिपुन्न दलिज्जइक्कस्स तेणाविसे नतु सिज्जा

लेवलित्ताण बोही होइसुदुल्लहातेसि ।१५। कसिणपि जो इम लोय पडिपुन्न दलेज्ज एकस्स तेणाविसेन तूसेज्जा इइ दुप्पूरए इमेआया ॥१६॥ जहा लाभोतहा लोभोलाभालोभो पवड्ढई । दोमासकय कज्ज कोडीएवि ननिट्ठिय ॥१७॥

परिभ्रमण करे घणो बहु कर्म लेपलिप्ताना घणो जे कर्ममल तेहनो लेप तिणे करी लिपाणा छे तेहा पुरुषाणा बोधि जिन धर्म प्राप्ति दुर्लभा भवन्ति ते पुरुषने जिनधर्म नी प्राप्ति वली सम्यक्त्वनी प्राप्ति दोहिलि हुवे १५ समस्तमपि इद लोक सघलाइ इह लोकने विषे धनादिभि पूर्ण भृत्वा एकस्य ददाति धनादिके भरीने कोइएक पुरुषने दीजे तेनापि स न तोषयेत् तोषणि ते पुरुष सन्तोषाइ नही इत्येव अय आत्मा दु पूरो असन्तुष्ट ए जीव आत्मा सन्तोष्यो न जाइ १६ यथा लाभ स्तथा लोभ जिमलाभ होय तिम लोभ बधे द्विमाषक नक कार्यं कृत दोइ मासासो नाने अर्थे मागवागयो हतो

उ०टीका
अ०८
२५२

दुद्दुपूरए इमे आया १६ यदि शब्दस्य अध्याहार यदि कश्चित् इन्द्रादि देव एकस्य कस्यचित्पुरुषस्य प्रतिपूर्णं धनधान्यादि पदार्थैर्भृतं कृत्स्नं समस्त लोक विश्वं दद्यात् तदापि तेन धनधान्यादि परिपूर्ण समस्त लोकदानेन स पुरुषो न तुष्येत् इति हेतो अय आत्मा दु पूरकः दुःखेन पूर्यते इति दु पूर दुःपूर एव दुःपूरक १६ जहालाहो तहालोहो लाहालोहो पवड्ढई दोमास कयंकज्जं कोडीएवि न निट्ठियं १७ पूर्वोक्तमर्थं एव दृढयति यथालाभस्तथा लोभ लाभाल्लोभः प्रवर्द्धते द्विमाषकृतं द्विमाषार्थं द्विमाषप्रमितस्वर्णग्रहणार्थं कृतं कार्यं स्वर्णकोटिभिरपि न निष्ठियं न निष्ठितं पूर्णं न जातं इत्यर्थः माष तु पञ्चगुंजाप्रमाण माषद्वय प्रमितस्वर्णेन कार्यं दास्या पुष्पतांबूलवस्त्रा भूषणमूल्यादिरूपं तत्कार्यं कोटिद्रव्येणापि परिपूर्णं नाभूत् स्त्रीमूलाहि तृष्णा इति हेतोः तत्परिहारार्थं गाथा माह १७ नो रक्खसीसु गिज्झिज्जा गंडवत्थासुणेगचित्तासु जाओ पुरिसंपलोभित्ता खेलंति जहावदासेहिं १८ राक्षसीषु नो गृद्ध्येत् न विश्वसेत् ज्ञानादिजीवितापहारात् राक्षसीतुल्या कथं भूतासु स्त्रीषु गंडवक्षस्सु गंडं गडु स्तदुपमत्वात् उच्चैः कुचौ वक्षसि यासां ता गण्डवक्षस स्तासु गंडवक्षस्सु उच्च कुचस्फोटकवक्षस्कासु वैराग्योत्पादनार्थं कुचयोर्गण्डूपमानं बीभत्सोत्पादं उपमानं पुनः कीदृशीषु स्त्रीषु अनेकचित्तासु अनेकेषु पुरुषेषु चित्त यासां ता अनेकचित्तास्तासु अथवा अनेकेषां पुरुषाणां चित्तं यासु ता अनेकचित्ता स्तासु अथवा अनेकानि चित्तानि सङ्कल्प विकल्परूपाणि चिन्तनानि यासां ता अनेक चित्ता स्तासु याः स्त्रियो राक्षसा पुरुषं कुलीन मानवं प्रलोभयित्वा त्वमेव मम भर्त्ता त्वमेव मम जीवितं

सूत्र

नोरक्खसीसुगिज्झेज्जा गंडवत्थासु णेगचित्तासु । जाउपुरिसंपिलोभित्ताखेल्लंति जहावदासेहिं ।१८। नारीसु नोपगि

भाषा

कोड्यापि न निष्ठित कीडा न गमे चट्यो पोण स्त्रोर रह्यो नहीं १७ राक्षसीषु स्त्रीषु न गृद्धो भवेत् स्त्री राक्षसी छे एहने विषे गृद्ध होवु नहीं गंडकुच रूप ग्रन्थियुक्तहृदयासु कुचरूप गंड छे जेहने हिये अनेक ठाम जेहनो चित्त छे या स्त्रिय पुरुषं या वाक्येन विप्रतार्य जे स्त्री पुरुषने लोभा वीने रमे

त्वमेव मम शरणं इत्यादि वचनैर्वशीकृत्य प्रीतिमुत्पाद्य ते पुरुषैः सह रमन्ते क्रीडन्ति के यथा दासैः यथा एव दासैः क्रीडति ते कुलीनपुरुषा अपि स्त्रीभि र्व्यामोहिता सन्तो दास प्राया भवन्ति यथा दासा गम्यता स्थीयता इद कार्यं क्रियता इद कार्यं मा क्रियता इतिवचन श्रुत्वा स्वाम्यादेशकारिणो भवन्ति तथा नारीणां वशवर्त्तिन पुरुषा किङ्करा भवतीत्यर्थः १८ नारीसु नोपगिज्झिज्जा इत्थी विप्पजहे अणगारे धम्मच पेसल नच्चा तत्थ ठविज्ज भिक्खू अप्पाण १९ अनगार साधु स्त्रीषु न गृद्धेत् न गृद्धिं कुर्यात अनगार स्त्रिय विशेषेण प्रजह्यात् परित्यजेत पुनर्भिक्षुधर्मं ब्रह्मचर्यादिरूप पेशल मनोज्ञ ज्ञा त्वा तत्र धर्मे आ त्मान स्थापयेत १९ इइ ए स धम्मे अक्खाए कविलेणच विसुद्ध पन्नेण तरिहिंति जे उकाहिंति तेहि आराहिया दुवेलोगत्तिबेमि२० इति अमुना प्रकारेण एष धर्मः कपिलेन आख्यात कथित कथभूतेन कपिलेन विशुद्धप्रज्ञेन केवलज्ञानयुक्तेन ये पुरुषा कपिलकेवलिनोक्त धर्म कारि

ज्झिज्जा इत्थीविप्पजहे अणगारे । धम्मचपेसल नच्चातत्थठवेज्ज भिक्खू अप्पाण ॥१९॥ इइ एसधम्मे अक्खाएकविलि णच विसुद्ध पन्नेण । तरिहिंतिजेउ काहिंति तेहि आराहिया दुवे लोगत्तिबेमि ।२०।काविलीयज्झयण सम्मत्त ॥८॥

क्रीडन्ति यथा दासीभि सहखेलावे पुरुषने पछे दासिनोपरि आइ आपणेवशिकरे१८ नारीय नोपगृद्ध कुयात् स्त्रीने विषेरुद्धपणु न करसु स्त्रियोविविध प्रकारे त्यजेत् यतीस्त्रीने त्यागेसग्रादरे नहो धर्मं रम्य ज्ञात्वाधर्म मनोजाणीने तत्रधर्मे स्थापयेत्साधु आत्मान तीहा धर्मने विषेसाधु आपणा आत्माने थापे१९ इति एष धम्म आख्यात ए धम्म कह्या कपिलेन ऋषिणा विशुद्धप्रज्ञेन कपिलकेवलीइ एधम्मपाचसे चोर आगे कह्यु शुद्ध बुधने धणीइ ते जे धम्म करस्ये तेतरस्ये ते आराधितो हो लोकौतिषि पुण्यमाइ दोइ लोक आराध्या इति समाप्तौ ब्रवीमिर इतिश्रीकपिलमुनि अध्ययन टव्वो सपूर्णम् ॥८॥

प्यन्ति ते पुरुषाः संसारं तरिष्यन्ति पुनस्ते पुरुषैः द्वौ अपि लोकौ आराधितौ सफलौ कृतौ इत्यर्थः इत्यादि दोधकान् कपिलोक्तानि श्रुत्वा तत्र केचिच्चौराः प्रथमेनैव दोधकेन प्रतिबुद्धाः केचित् द्वितीयेन एवं पञ्चशतचौरा अपि प्रतिबुद्धाः प्रव्राजिताश्च इति कापिलीय अध्ययनं अष्टमं संपूर्णं ॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययनसूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां कापिलिकाध्ययनस्यार्थः संपूर्णः ॥८॥ अथ नवमं अध्ययनं कथ्यते अष्टमेऽध्ययने हि निर्लोभत्वं उक्तं निःर्लोभ पुरुषोहि इंद्रादिभिः पूज्यः स्यात् नवमेऽध्ययने नमि राजर्षिरिन्द्रेण आगत्य भाव पूर्वकं वन्दितः इति अष्टमनवमाध्ययनयोः सम्बन्धः तत्र नमिस्तु प्रत्येकबुद्धः प्रत्येक बुद्धाश्चत्वारः समकालसुरलोकाच्यवनप्रत्येक प्रतिबोध प्रव्रज्याग्रहणकेवलज्ञानोत्पत्ति सिद्धि गमनभाजो जाता स्तेषु प्रथमः करकंडू १ द्वितीयो द्विमुखः २ तृतीयो न मि राजा ३ चतुर्थो नगति ४ रिति तेषां प्रत्येकबुद्धानां कथा न कं उच्यते तत्र प्रथमं करकण्डूकथा यथा करकण्डूकलिङ्गेसु पञ्चालेसु यदुम्महो ननोराया विदेहेसु गन्धारेसुय निग्गई १ श्रीवासु पूज्य जिनपतिकल्याणकपञ्चकास्ते विनष्टपापायां चम्पायां नगर्यां दधिवाहन नामा नृपोभूत् तस्य चेटकमहाराज पुत्री पद्मावती प्रियाजाता साऽन्यदा गर्भिणी बभूव गर्भानुभावेन च तस्याईदृशं दोहदमुत्पन्नं अहं पुंवेषधरा भर्त्रा धृता तपत्रा गजाग्रभागा रूढा आरामे सञ्चरामि लज्जया इदं दोहद भूपतेः पुरोवक्तुमशक्ता सा कृशाङ्गी बभूव राज्ञाऽन्यदा तस्याः कृशाङ्ग कारणं पृष्टं अति निर्बन्धेन सा स्वदोहदं ज्ञापयामास राजा अत्यन्तं तुष्टस्तां पट्टहस्ति स्कन्धे समारोप्य स्वयं तच्छिरसि छत्रं धृतवान् तादृश एव राजा गजारूढ राज्ञी पञ्चाङ्गारेस्थितौ वने ययौ तस्मिन् समये तत्र जलदारम्भो बभूव तत्र सल्लकी प्रमुख विविध वृक्ष पुष्प गन्धैर्जलसिक्त मृत्गन्धैश्च विह्वलीभूतः स करी मदोन्मत्तः स्ववासभूमिं स्मरन् अटवीं प्रति अधावत् अगवारैः पदातिभिर्नासौ न स्पृष्टः तेन गजेन गर्भान्वितया कदलीकोमल शरीरयाराज्ञा सार्द्धं स राजा महाटव्यांनीतः सम विषमोन्नत दूरासन्नाननेक भावान् पश्यन् भूपतिर्वटमेकमायातं दृष्ट्वा

भार्यां प्रतीदम वदत् हे भद्रे पुर स्सस्य वटस्य शाखामे कामवलम्बे थास्व अहमप्येकां शाखामाश्रियिष्यामि गजस्तु एव मेवया तु एव मुक्ता राजा वटशाखायां लग्न राज्ञीतुभयव्यग्रावटावलम्ब कर्तु मचमा हस्तिनाऽग्रतोनीता राज्ञातुवटादुत्तीर्यशने शनैर्मिलित सैन्य पत्नीविरहदुःखितश्चम्पायां प्रविष्ट राज्ञी दुष्टेन तेन हस्तिना महतो महती मटवी नीता क्षुधाकुल स हस्ती चतुर्दिक्षुपानीय पश्यन एक सरो दृष्ट्वा तत्पाल्या मवतीर्यया वदय पतति तावत्साराज्ञी वृक्षावलम्बेन तत्कान्त्या दुस्तार गजस्तु पीचतापित सरोन्तर्विवेश राज्ञीक तार दृष्ट्वा भयभीतासती मनसि एव चिन्तया मास क्वचतनगर क्व सार्थी क्वतमन्दिर क्वसा सुखशय्या दुष्कर्मणां विपाकात् सर्वमेगत अथवात्र वनेविविध श्वापदेर्ये प्रमादवशगाया मम मृत्युर्भवि ष्यति तदा मम दुर्गति रैवेति मत्वाऽप्रमत्ता सती आराधना व्यधात् सुकृतानि अनुमोद्य सर्वजीवेषु क्षमा कृत्वा चानशन साकार प्रपेदेनमस्कार ध्यायन्ती तत उत्थाय सा एकयादिशागच्छन्ती पुरस्तादेक तापस ददर्श तापसे नैयमेव पृष्टा वत्से त्व कस्य पुत्रीकस्य प्रिया आगत्यै व त्व मया भूरि भाग्या प्राप्ता इय मातवावस्था कथय वय अभया अमिन स्व सा राज्ञी तापस निर्विकार निर्मलकर प्राप्त्वा स्ववृत्तान्त अकथ जगौ एतस्या राज्ञा पितु र्येटक राज्ञो मित्रे ण तेन तापसेन उक्त वत्से त्वयानात पर चिन्ताकार्या अयम्भव सर्व विपदामास्पद सर्ववस्तूनाम नित्यता चिन्तनीया एव प्रतिबोध्य सा राज्ञी तेनतापसेन स्वाश्रम नीता तस्या प्राणया फलैकारिता अथच सदेश सौस्थिता नीत्वा स तापस एव जगाद हे पुत्रि अत पर हलकृष्टा सा वधाधरा वर्त्तते सा मुनिभिर्नोक्षप्या ततोह पयाहलामि अय मार्गो दन्तपुरस्य वर्त्तते तत्र दन्तवक्रनामा राजा वर्त्तते इत सुसार्थेन त्व पुरेगच्छे एव निगद्य स तापस स्वाश्रम जगाम राज्ञी तु पुरान्त साध्व्युपाश्रये जगाम साध्व्या पृष्टे तया सकलोपि वृत्तान्त कथित साध्वी तस्या एव मुप देश ददौ अस्मिन् वनेदु खागारे ससारे सुखाभासएव सर्वेषा सर्वोपि भवनिस्तारी भवद्भिस्त्याज्य एव साध्वी वचसा वैराग्ययुता सा तदैवदीक्षां जग्राह

स्वव्रत विघ्नभिया सती सन्तमपि गर्भं न जगौ कालान्तरे तस्या उदरवृद्धौ साध्व्या पृष्टं किमेतत्त्वेति तयोक्तं मम पूर्वावस्था सम्भवो गर्भो वर्त्तते मया तु व्रतविघ्न भयान्नोक्तं ततो महत्तरा साध्वीतां साध्वीं उड्डाहभयेन एकान्ते संस्थापयामास काले सा पुत्रं प्रसूयरत्नकंबलेन संवीतं पितृनाम मुद्रां कितञ्च कृत्वा श्मसाने द्रागमुमोच श्मसानपतिर्जनं गम स्तं बालकन्तथाविध मालोक्य गृहीत्वा च अनपत्यायाः स्वपत्न्याः समर्पयत् सा श्रमणी गुप्त चर्य्ययातं व्यतिकरं ज्ञात्वा महत्तराया अग्रे एव माचख्यौ मृत एव मया बालो जातस्ततो मयात्यक्तः सबालो लोकोत्तर कान्तिर्जन गमधाम्नि दत्ताप कर्णिकं नामावर्द्धधे सा साध्वी सततं बहिर्व्रजन्ती पुत्रस्नेहेन मातङ्ग्या सह कोमलालापैः सङ्गतिं चक्रे सबालकः प्रतिवेश्मिक बालकैस्सह क्रीडन् महत्त्व जसा भृशं राजते आगर्भं बहुशाकाद्य शनदोषेण तस्य बालकस्य कण्डूलतादोषो भवत् स्वयं राजचेष्टां कुर्वाणः सबालः परबाले सामन्तीकृतै देह कण्डू याकरैः कारयति ततोलोकै करकण्डूरिति नाम दत्तं सा साध्वी तद्वदनविलोकनार्थं मातङ्ग पाटके निरन्तरं याति भिक्षालब्धं मोदकादि तस्मै ददाति श्रमणत्वेप्यपत्यजा प्रीतिस्तस्या दुस्तरेति बालकोपि तस्या दृष्टायां बहुविनयं करोति प्रीतिञ्च दधाति स बालक षड्वर्षः पितुरादेशात् स्मशानं रक्षति अन्यदा तस्मिन् श्मसाने रक्षतिसति कोपि साधुर्लघु साधु प्रति तत् श्मसानस्थं सुलक्षणं वंशं दर्शितवान् उक्तवांश्च मूलाच्च तुरङ्गुलत इमं वंशमादाय स्व समीपे स्थापयति सोऽवश्यं राज्यं प्राप्नोति इद साधुवचस्तेन बालकेन तत्रस्थेनैकेन द्विजेन श्रुतं द्विजसुतं वंशं आ चतुरङ्गमूलं छित्वा यावद् गृह्णाति तावत्करकण्डूना तत्करात् सवंशो गृहीत' स्वकरे गृहीतः कलहं कुर्वतो द्विजस्य करकण्डुना उक्तं मत् पितृश्मसानवर्त्तोऽयं वंशं नाहमन्यस्मै दास्ये स ब्राह्मण करकण्डूबालश्चेति द्वावपिवि वदन्तौ नगराधिकारि पुरोगतौ नगराधिकारिभिर्भणितं अहोबालतवायं वंशः किं करिष्यति सप्राह ममायं राज्यं दास्यति तदाधिकारिणः स्मिता एव मुच् यदा तवराज्यं भवति तदा त्वयाऽस्य ब्राह्मणस्य एकोग्रामोदेयः शिशु तद्वचः अङ्गीकृत्य स्वगृहमगात्

स विप्रोन्य विप्रे स भूयन्तस्माल हन्तु मुपाक्रमत् त हिजोपक्रम ज्ञात्वा करकण्डूपिताजनङ्गमा स्व कलत्र पुत्रयुक्त स्तन्देश विहाय अने गत् स कुटम्ब मजनङ्गम चिंतितलक्षामन् कञ्चनपुरञ्जगाम तत्र अपुत्रे नृपे मृते सचिवैरधि वासितसुरग करकण्डु दृष्ट्वा हेषारव क्षतवान् त सलक्षण दृष्ट्वा नगर लोक जय जयारवश्चक्रु अथादितान्यपि वाद्यानि स्वय निनदु स्वय छत्र शिरसिस्थित ततो माल्यैरपि नवीनानि वस्त्राणि परिधाय सकरकण्डूस्त अश्व मारुरोह यावन्नगरलोकै परमप्रमोदेन स पुरान्त प्रवेश्यते तावद्विप्रास्त म्लेच्छोयमिति कृत्वा नमे निरे तदा क्रुद्ध स शिशुस्त वंशदण्ड रत्नमिव करे जग्राह अधिष्ठाट देवैर्व्योम्नि इति घुष्ट इमराजान मवगणयिष्यति तस्य मूर्द्धि असोदण्ड पतिष्यति इत्युक्त्वा सुरास्तच्छिरसि पुष्पवृष्टिश्चक्रु भीता सन्तो विप्रा तस्य स्तुतिकृत्वा वारम्वार माशीवाद मुच्चरन्ति करकण्डूरेव मुवाच अहो ब्राह्मणा एते भवद्भिर्याण्डाला गर्हितास्तत सर्वेप्यमीवाटधाना वा स्त्यायाण्डाला सस्कारैर्ब्राह्मणा कार्या सस्कारादेव ब्राह्मणो जायते न तु जात्या कश्चिद्ब्राह्मणो भवतीति भवदागम वचनात् अथते ब्राह्मणा प्रकामभीतास्तत्रवाटधानवा स्तथा याण्डाला ब्राह्मणो कृता १ महोत्सवेन काञ्चनपुरे प्रवेशित सकरकण्डुरमात्यै र्नृपपट्टेऽभिषिक्त क्रमान्महा प्रता पोऽभूत् अन्यदा तत्र स प्रतिवादी विप्रस्त भूप निशम्य ग्रामाभिलाषुक सन् करकडू नृपपर्षदिप्राप्त करकडू नोपलक्ष्य तस्य विप्रस्योक्त तवयदिष्ट तत्स यय ब्राह्मणेनोक्त मद्गृह चम्पाया,वर्त्तते तेन तद्विषयग्राम एकमहमीहे अथ करकडू नृपतिचपापूरनाथस्य,दधिवाहन भूपते अस्मै द्विजाय त्वद्विषय ग्राममेक देहीति आज्ञा प्राहिणोत् आज्ञाधारिण करकडू नृपस्य दूत विस्मितचित्त कुडय चम्पापति दधिवाहन प्राह अरे स म्लेच्छबाल स मृगतुल्य करकडू सिहतुल्येन मयासह विरुध्यते परवस्त्वभिलाप भवस्य पातकस्य तव स्वामिन शुद्धि मत्खड्गतीर्थस्नान दास्यति एवमुक्त्वा दधिवाहनेन तिरस्कृत सद्दूतस्तत गत्वा करकडू नृपाय यथार्थमवदत् करकडू नृपोपि प्रकाम क्रुद्ध स्वसैन्यपरिवृत चम्पापुरसमीपे समायात दधिवाहनोपि पुरोदुर्ग रुन्धेह्न

स्वय बहिर्निस्ससार उभयोः सैन्यसज्जीभूते,यावता योद्धं लग्ने तावत्साध्वी तत्रागत्य करकण्डूनृपतिं प्रति एवमूचे अहो करकंडू नृप त्वया अनुचितं पित्रा सह युद्धं किमारब्धं करकंडूनृपः प्राह हे महासति कथमेष दधिवाहनोस्माकं पिता साध्वी स्वस्वरूपमखिलमूचे आर्यां मातरं दधिवाहनञ्च पितरं मत्वा करकंडू नृपो जहर्ष तथापि करकंडू नृपोभिमानात् स्वपितरं दधिवाहनं मतुं नोत्सहते तदा साध्व्यपि दधिवाहनसमीपे गता, दधिवाहन भृत्यै रुप लक्षिता दधिवाहनभूपाय राज्ञी साध्वीरूपासमागतेति वर्द्धापनिका दत्ता अथ दधिवाहन नृपोपि तां साध्वीं ननाम गर्भवृत्तान्तं पप्रच्छ साध्वी ऊचे सोयं ते तनयः येन सह त्वया युद्धमारब्धं अथ दधिवाहननृपः प्रीतात्मा पादचारी करकंडू नृपं प्रति गत्वा वत्स उत्तिष्ठेत्युक्त्वा तं उत्थाप्य आश्लिष्य च शिरसि अजिघ्रत् हर्षाश्रु जलसहितै स्तीर्थजलै पुत्रो यं राज्यद्वयेपि दधिवाहनेनाभिषिक्तः दधिवाहनः कर्म विनाशाय स्वयं दीक्षां गृहीतवान् करकडू नृपो राज्यद्वयं पालयामास चम्पायामेव स्ववासमकरोत् तस्य गोकुलानि दृष्टानि आसन् संस्थान आकृतिवर्णविशिष्टानि गोकुलानि कोटिसंख्यानि तेन मेलितानि सतानि निरन्तर पश्यन् प्रकामं प्रमोद लभते अन्येद्युः स्फाटिकसमान एको गोवत्स स्तेन गोकुलमध्ये दृष्टः अय कण्ठपर्यन्तदुग्धपानैः प्रत्यहं पोषणीय इति गोपालान् स आदिष्टवान्,अन्यदा समासे पुष्टतनु र्बलशाली घनघर्घरशब्देन अन्यवृषभान् त्रासयन् भूपतिना दृष्टः तथापि भूपते स्तस्मिन् वृषे प्रीतिरेव बभूव साम्राज्यकार्यकरणव्यग्रो भूपति कतिचिद्वर्षाणि यावद्गोकुलेनायातः अन्यदा तद्दर्शनोत्कण्ठः सभूपतिस्तत्र समायातः स वृषः क्व इति गोपालान् भूपतिः पप्रच्छ गोपाले र्जराजीर्णं पतित दशनो हीनबलो वत्सै र्घट्टितदेहः कृशाङ्गः सदर्शितः तं तथाविधं दृष्ट्वा भवदशां विषमां विचारयन् करकंडू राजा एव चिन्तयति यथाऽसौ वृषभः पूर्वावस्थां मनोहरां परित्यज्य इमां वृद्धावस्थां प्राप्तः तथा सर्वोपि ससारी संसारे नवां नवामवस्था माप्नोति मोक्षे चैव एकावस्था मोक्षस्तु जिन धर्मादेव प्राप्यते अतो जिनधर्ममेव सम्यगाराधयामीति परं वैराग्य प्राप्तः करकडू राजा स्वयमेव प्राग्भव संस्कारो

दयात् प्रतिबुद्ध सद्य शासनदेव्यर्पितलिङ्गस्तृणवद्राज्य परित्यज्यप्रव्रज्यामङ्गीचक्रे च श्वेत सुजात सुविभक्तशृङ्ग गोष्टाङ्गणेवीक्ष्य स्वयं जरार्त्त ऋद्धि च वृद्धिञ्च
समीक्ष्य बोधात् कलिङ्गराजर्षि रवाप धर्मं १ इति करकण्डू चरित्र समाप्त इदानी करकण्डू राजा प्रतिबुद्ध स्तदानीमेव द्विमुख राजा प्रतिबुद्ध स्ततो
द्विमुखचरित्र प्रोच्यते काम्पिल्यपुरे जयवर्मा राजा तस्य गुणमालाप्रियास्ति अन्येद्यु र्जयवर्मा राजा स्थपतीनेव माह अद्भुत आस्थानमण्डप कुरुतयास्तुस्ते
भूमिपूजा पुरस्सर भूमिभाग परीक्ष्य सुमुहुर्त्ते खात विरचित तत्खाते पञ्चमदिवसे नानामणि मण्डित खमणिरिव प्रज्वलन् मुकुटो दृष्ट तैर्विज्ञप्तो राजा
सहर्ष भूमितस्त मुकुट जग्राह विचित्रवादित्रनिर्घोष पूर्वं महतोत्सवेन त मुकुट स्वगृहे प्रावेशयत् वस्तायै सत्लता शिल्पिनो विमानसदृशा आस्थान
मण्डप सद्यस्कु चित्रकारै स्तत् सद्यएव विचित्रित भूय शुभमुहुर्त्ते त मुकुट मस्तके निधाय तस्मिन्नास्थानमण्डपेसु सिंहासणे निविष्ट तस्मिन् मुकुटे
मूर्द्धस्थिते सति राज्ञो मुखद्वय दृश्यते तदनुसराजा लोके द्विमुखतया विख्यात अथेय मुकुटकथा अवन्तीशेन चण्डप्रद्योतेन श्रुता स्वदूत प्रहित दूतोपि
तत्र गत्वा द्विमुख प्रतिएव मवादीत् राजन् तव मुकुटमिम चण्डप्रद्योत भूपति र्मार्गयति यदि तव जीवितेन कार्य तदा तस्याय प्रेष्य एव दूतवच
श्रुत्वा द्विमुखनरेन्द्र प्रोवाच रे दूत तव स्वामिन मम मुकुटग्रहणाभिलाष स्वयमु शरणायेव जातोस्ति त्व तत्र गत्वा स्वस्वामिन ब्रूया शिवा देवी
राज्ञी १ अनलगिरि नामा हस्ती २ अग्निभीरुनामा रथ ३ लोहजङ्घनामा दूतश्चेति ४ वस्तुचतुष्टय ममार्पितामित्युक्ता द्विमुखनृपेण स दूतो गले
धृत्वा निष्कासित उज्जयिनीं गत्वा चण्डप्रद्योताय तद्वचो निवेदयामास क्रुद्धोथ चण्डप्रद्योत नृपतिर्गणनायक तुरगगजेन्द्ररथपदाति दलपरिवेष्टित
स्थाने स्थाने प्राभृतपूर्वकमभ्यागतानेकराजसैन्यवर्द्धमानबल पञ्चालदेशसीमं प्राप द्विगुणोत्साहोद्विमुखनृप तै समस्तै सैनिकलचैथ परिवृतश्चण्डप्रद्योत
स मुखमगात् तयोर्घोर सङ्ग्रामो बभूव मुकुटप्रभावात् द्विमुख राज्ञस्तदाद्विगुण भुजबल प्रससार क्षणेन सकलमपि चण्डप्रद्योतबल तेन भग्न नष्टच चण्ड

प्रद्योतं रथान्निपात्य बद्धा च स्वपुरं निन्येद्विमुख नृपस्त्त्' स्वावासे भव्यरीत्या रचितवान् अन्यदा चण्डप्रद्योतेन प्रकाम स्वरूपां सलावण्यां कन्यां दृष्ट्वा यामिकानामिवमुक्तं अस्य द्विमुखराज्ञः कति अपत्यानि सन्ति इयं अंगजाकस्य यामिका ऊचुः अस्य राज्ञो वनमालापत्नी सप्तसुतान् सुषुवे अन्यदा तया विन्तितं मया सप्तपुत्रा जाताः लालिताश्च पुत्रो तुनैकापि जातेति मन्मनोरथपूर्त्तये सामदनयचमारराध अन्यदा सा कल्पद्रुमकलिकां स्वप्ने ददर्श क्रमेणेमां सुषुवे यचोपयाचितं दत्वाऽस्या मदनमञ्जरीति नाम कृतं साम्प्रतं सर्वलोक चमत्कारकारी यौवनागमे इयं जातेति यामिकावचनं श्रुत्वा अपरो धिकं तद्रूपं च दृष्ट्वा कामार्त्त चण्डप्रद्योतश्चिन्तयति इयं चेन्मम पत्नी स्यात्तदा मम जीवितं सफलं स्यात् राज्यभ्रंशोपि मे कल्याणाय जातः यदियं दृष्ट्वा चेद्द्विमुख राजा इमां मह्य दत्ते तदा अहमस्य यावज्जीवं सेवको भवामि चण्डप्रद्योतस्येदृशः परिणाम स्तस्य यामिकैर्ज्ञात्वा द्विमुखराज्ञे कथितः राजा ज्ञया यामिकै श्चण्डप्रद्योतः सभायामानीतः द्विमुखराज्ञाऽभ्युत्थानं कृत्वा चण्डप्रद्योतः स्वार्द्धासने निवेशितः प्रांजलीभूय एवं बभाषे मत्प्राणास्तववशगा स्सन्ति मत्क्रियस्त्वदायत्ता सन्ति त्वं मम प्रभुरसि अहमतःपरं सदैव तव सेवकोस्मि अथ तद्भाववेत्ताद्विमुखराजा चण्डप्रद्योताय तदैव निजां पुत्रीं प्रदौ ज्योतिर्विद्भिः सुमुहूर्त्ते दत्ते चण्डप्रद्योत नृपो द्विमुखराजपुत्रीं परिणीतवान् करमोचावसरे च तस्मै घनं द्रव्यं दत्तमवन्तीदेशं च दत्तवान् कन्या सहितं चण्ड प्रद्योत स्वदेशे द्विमुखो विसर्जितवान् अन्यदा द्विमुखनरेन्द्रस्य पुरे लोकैरिन्द्रस्तम्भोऽद्भुतः कृतः पूजितश्च द्विमुखनृपोऽपितं भृशं पूजितवान् तस्मिन्महे व्यतीते अन्येद्युः स्तं इन्द्रस्तम्भं विलुप्तशोभं अमेध्यान्त पतित द्विमुखराजा ददर्श एवं च चिन्तितवान् जनैयं पूजितो मणिमाला कुसुमादिभिश्च श्रृङ्गा रितः सोयमिन्द्रस्तम्भः साम्प्रतमी दृशोजातः यथायं स्तम्भः पूर्वापरावस्थाभेदमाप्तः तथा सर्वोपिसंसारीभिन्नां भिन्नामवस्थां प्राप्नोति अवस्था भेदकारणं रागद्वेषावेव तत्प्रलयस्तु समताश्रयणाद्भवति समताचममता परित्यागाद्भवति ममतापरित्यागस्तु संयमम्बिना न भवती तिवैराग्यमापन्नः शासन देवता

समर्पितवेव सर्वविरति सामायिक द्विमुख राजस्वय प्रतिपद्य प्रत्येक बुद्धो बभूव उक्तञ्च वीचाचित पौरजनै सुरेश ध्वजस्य लुप्त पतित परेक्षि भूति त्व
भूति द्विमुखो निरीच्य बुद्ध प्रपेदे जिनराजधर्म १ इति द्वितीयप्रत्येकबुद्ध द्विमुख चरित्र समाप्त ॥२॥ इदानी द्विमुख राजा प्रति युक्तस्य
दानो मेवनमि राजा प्रतिबुद्ध अथ तृतीयप्रत्येकबुद्धनमि चरित्र मुच्यते मालवमण्डल मण्डन सुदर्शनपुरमस्ति तत्र मणिरथो राजा तस्य भ्राता
युगबाहुवर्त्तते तस्य भार्या सुशीला सुरूपा मदन रेखा वर्त्तते सा बाल्यावस्थात आरभ्य सम्यक्त मूल द्वादशव्रतानि जग्राह तस्या पुत्रचन्द्र यशावर्त्तते
अन्यदा मणिरथेन मदनरेखा दृष्टा तद्रूप मोहितो नृप एव चिन्तयति इय मदनरेखा मम कथम्वशो च भवति प्रथम साधारणै कृत्यैस्ता विश्वा
सयामि पश्चात्कामाभिलाषमर्पितस्या समये कारयिष्येह दुष्कर काय बुद्धा किं न सिद्ध्यति एव चिन्तयित्वा राजा तस्यै ताम्बूल कुसुमवस्त्रा
लङ्कारादिक प्रेषयति सापिनिर्विकाराज्येष्ठ प्रेषितत्वात् सर्व गृह्णाति एकदा मणिरथस्वामी कान्ते स्वय मिलयाच भद्रे त्वमा भर्त्तार विधाय
यथेष्ट सुख भुक्ष्व साजगो राजन तव लघबन्धु सकलत्रेमयि एतादृश वचनमयुक्त त्व निष्कलङ्क भूरि सत्वघ पञ्चमो लोकपालोसि एव वदस्व
किं न लज्जसे शस्त्राग्नि विषयोगे मृत्युसाधनम्वर निज कुलाचार रहित जीवित न श्रेय परस्त्री लम्पटा स्वजीवित यशश्च नाशयन्ति तया
एव प्रतिबोधितोपि नृप कदाग्रह न मुमोच एवञ्च व्यचिन्तयत् यदाऽस्या प्रीतिपात्र मदनबन्धुर्युगबाहु व्यापाद्यते तदेय मम वशी भवति
अन्यदा मदनरेखा स्वप्ने पूर्णेन्दु ददर्श तया युगबाहवे निवेदित स्वप्न युगबाहुना कथित तव सुलक्षण पुत्रो भविष्यति तस्या गुरुदेव वन्द
नार्चनादोहद सुत्पन्न युगबाहुर पूरयत् अन्यदा युगबाहुर्वसन्ते मदनरेखया सम उद्याने रन्तुङ्गत तत्रैव रात्रौ कदलीगृहेसुप्त परिवार समन्तात्तद्
गृह वेष्टयित्वा स्थित तदावसर ज्ञात्वा मणिरथ नृपस्तत्र एकाकी समायात अद्य युवराजा अत्र कथ सुप्त इति यामिकान् प्रत्युवाच युगबाहुरपि

कद्लीगृहादहि रागत्यमणि रथपादो न नाम नमतोस्य स्कन्धदेशे मणिरथः खड्गञ्चिक्षेप उवाच एवन्धिग् मे प्रमादतः करात् खड्गं पतितं मणिरथ अङ्घ्रि ताकारेण तद्दुःकर्म ज्ञात्वाऽपि स्वामिनि उपेक्षितः इतोऽवसरे दृत्यक्तश्च मणिरथः सद्यः ततोगतः पितृघात वार्त्तां निशम्य चन्द्रयशाः पुत्रोघातचिकित्सकैः परिवृतस्तत्रायात चिकित्सकै रत्न्यावस्थागतं युगबाहुं निरीक्ष धर्म एवास्यौषधमितिप्रोक्तं मदनरेखा स्वभर्त्तुं रत्न्यावस्थां विलोक्य विधिना आराधनां कारयामास हे दयित मे विज्ञप्तिं शृणु धनाङ्गनाद्येषु मोहन्त्यज जैनधर्मं स्वी कुरुहितं भजस्व धर्मप्रसादा देव प्रधानं कुटम्बदेह गेहादिकं भवान्तरे प्राप्स्यसि सर्वाख्यपि पापानि सिद्ध साक्षिकमालोचय पुण्यानि अनुमोदय सर्वजीवान् क्षामय अष्टादश पापस्थानानि व्युत्सृज अनशनञ्च कुरु शुभभावनां भावय चतुःसरणान्याश्रय परमेष्ठि मन्त्रस्मरणं कुरु मनसा सम्यक्त्व माश्रयेत्थिवं मदनरेखा वचनानि श्रद्दधानः पञ्च परमेष्ठि मन्त्रं स्मरन् युग बाहुः परलोकम साधयत् मदनरेखा मनस्येवं व्यचिन्तयत् अथ स्तन्वो ज्येष्ठो ममशीलं विध्वंसयिष्यति ततो निस्सरणावसरो मम सांम्प्रतमेवास्तीति निश्चित्य मदनरेखा वेगतो निर्गता सद्य एकाकिन्येव व्रजन्ती उत्पथमाश्रिता क्वापि महत्यटव्यां प्राप्ता विभावरी विरराम जातं प्रभातन्देव गुरूनां स्मरणञ्चकार मध्याह्ने सा प्राणयात्रां फलैरेवाऽकरोत् तस्या मेवा टव्या रात्रौ सुप्ताया स्तस्याः शील प्रभावेण न किञ्चिद्भयं बभूव सासती अर्द्ध रात्रौ पुत्रं सुषुवे पितृनामाङ्कित मुद्रिका तस्याङ्गुलौ क्षिप्ता रत्नकम्बलेन वेष्टयित्वा शुचिभूमौ निक्षिप्य मदनरेखा शौचार्थं सरसिगता तत्र स्नानं कुर्वन्ती जल करिणा शुण्डादण्डेन गृहीता नभसि उत्क्षिप्ता नभ सोपि पतन्तीक्षतां कश्चित्तरुण विद्याधरो वैताढ्यं निनाय सा विद्याधरं प्राह वन्धो अहं मद्य निशि अटव्यां पुत्रो अजीजनं स तु रत्नकाम्बलवेष्टितो मया तत्रैव मुक्तोस्ति अहन्तु सरसिस्नानं कुर्वन्ती जलकरिणा उत्क्षिप्ता त्वया गृहीता अत्रा नीता अथ त्वं ततो मत्पुत्र मिहानयमां वा तत्र नय अन्यथा बालस्य तत्र मरणापद्भविष्यति त्वं प्रसीदमां पुत्रेण मेलय पुत्रभिक्षा प्रदानेन त्व मे दयां

कुरु सोपि युवा विद्याधर एतस्या सरागचक्षु क्षिपन् एव मुवाच गन्धारदेशे रत्नवाह नाम नगरमस्ति तत्र विद्याधरेन्द्रो मणिचूडो वर्त्तते अस्य प्रिया कमलावती मणिप्रभनामान पुत्र मा असूत यौवनावस्थाञ्च गतस्य मे श्रेणिद्वय राज्य दत्वा मणिचूड स्वय प्रव्रज्या जग्राह सचारण मुनि चतुर्ज्ञानी भूत्वा साम्प्रतमष्टमे द्वीपे जिन बिम्बानि नन्तु समायातोस्ति अह तत्र वन्दितुत गच्छन्नभूव अन्तराले त्वा दृष्ट्वा लात्वा चाह पुनरवागत अत पर त्व मे प्रियाभव तवादेश करोऽहमस्मि तव पुत्र सम्बन्धो मया प्रज्ञप्ती विद्ययाज्ञात अश्वापहृतो मिथिलेश्वर पद्मरथाख्य स्तत्रायातस्तस्मात् स्वरूप दृष्ट्वा गृहीत्वा च स्वपत्न्यै दत्त स्वाय प्रकाम सुखभागी वर्त्तित एव तद्दच श्रुत्वा मदनरेखा अचिन्तयत् असौ स्व तत्त्वो युवाहत शीलभङ्ग मे करिष्यति तावत्काल मे विलम्ब श्रेयान् यावदस्यपिता साधुर्नबन्ध्यते तदुपदेशात् सव भविष्यतीति ध्यात्वा मदनरेखाऽवदत् हे भद्र त्व मा प्रथम नन्दीश्वरेनय यथाह तज्जिन बिम्बानि वन्दे पश्चात् कृतकृत्याऽह तवेप्सित करिष्यामि एवन्तयोक्ते सहर्षो मणिप्रभस्ता विमाना तन्निधाय नन्दीश्वरद्वीपेगत तत्र शाश्वतजिन बिम्बानि नत्वा मदनरेखा आत्माय मन्यमाना मणिप्रभेण सम चतुर्ज्ञान धरचारण श्रमण प्रासादमण्डपोपविष्ट मणिचूडमुनि प्रणनाम समुनिरता सती मत्वा स्व सुतञ्च लम्पट मत्वा तथा देशना विस्तारयामास यथासौ विद्याधर स्वदार सन्तोष व्रत जग्राह मदनरेखाञ्च स्वा भगिनीञ्च मेने हृष्टमानसा सती स्वपुत्रस्य कुशलोदन्त प्रपच्छ मुनिराह महानुभावे शोक मुञ्चा सर्वं सुतवृत्तान्त शृणु जम्बूद्वीपे पुष्कलावती विजयोस्ति तत्र मणितोरणपुरी तस्या मितयशा राजा स च चक्रवर्त्यभूत् तस्य पुष्पवती कान्ता तयो पुष्प सिंहरत्न सिंहाभिधानौ पुत्रौ अभूतान्तौ सदयौ धर्मकर्मतौ विनीतौस्त अन्यदातौ राज्ये स्थापयित्वा चक्रवर्त्ती तपस्या जग्राहतौ द्वावपि भ्रातरौ चतुरशीति लक्ष पूर्व यावद्राज्य प्रपालत एकदा चतौ दीक्षा गृहीतवन्तौ षोडश पूर्वलक्षाणि यावद्दीक्षा पालयत अन्ते समाधिना मृत्वाऽच्युत कल्पे सामानिकौ देवौ जातौ ततश्च्युत्वा धातकी खण्डभरते हरि

षेण राज्ञः समुद्रदत्ता भार्यासुतौ सागर देवदत्ताभिधानौ धार्मिकौ जातौ अन्यदातौ द्वादशतीर्थं करस्य दृढसुव्रतस्य बहु व्यतिक्रान्ते तीर्थेसु गुरु समीपे दीक्षां अग्टह्णीतां तृतीये दिवसेतौ द्वावपि विद्युत्पातेन मृत्वा शुक्र देवलोके महर्द्धिकौ देवौ अभूतां अन्येद्युस्तौ देवौ अत्रैव भरते श्रीनेमि जिनेश्वरं इति पृष्ठवन्तौ भगवान् नौ अद्यापि कियान् संसार स्तिष्टति स भगवान्प्राह युवयोर्मध्ये एकोऽत्रैव भरते मिथलापुर्यां विजयसेन भूपतेः पद्मरथाख्यः पुत्रो भावी एकस्तु सुदर्शनपुरे युगबाहु पुत्रो मदनरेखा कुक्षिसम्भूतो नमि नामा भविष्यति तस्मिन् भवेद्वावपि युवांशिव पदं प्राप्स्यथ एवं नेमिजि न वचनं निशम्य निजमायुः पूर्णं विधाय एको मिथिलापुरि पद्मरथो नृपोऽभवत् तेन पद्मरथेन अश्वापहृतेन तस्मिन् वने समायातेन हे महानुभावे स पुत्रो दृष्टो ग्टहीतश्च मिथिलायां नीत्वा स्वपत्न्यै समर्पितः तज्जन्मह्योच्छवो महान् विहितः अत्रान्तरे तत्र नन्दीश्वर प्रासादेन्तरिचादेकं विमानमततारतन्मध्यादेको दिव्यविभूषाधर सुरोनिर्गत्यमदन रेखान्ति· प्रदक्षिणी कृत्य प्रथमं प्रणनाम पश्चान्मुनिं प्रणम्य अग्रे निविष्टः सुरः मणिरथ विद्याधरेन्द्रेण विनय विपर्या सकारणं पृष्टः ससुर प्राह अह पूर्वभवेयुगबाहुर्मणि रथनाम्ना वृहद्भ्रातानिहत· अनयाममाराधनाऽनशनादि कृत्यानि कारितानि तत् प्रभावादहमी दृशोदेवोब्रह्मदेवलोके देवोजात ततो धर्माचार्यत्वादहमिमां प्रथम प्रणत एव खेचरं प्रतिबोध्य स सुरोमदनरेखां जगौ हे सति त्वं समादिश किन्ते प्रिय कुर्वेसाप्राह ममसुक्तिरेव प्रिया नान्यत्किमपि तथापि सुताननं द्रष्टुमुत्स काम्मान्त्वमितो मिथिला पुरीनय तत्राहन्निर्वृतात्मनापरलोकहितं करि ष्यामि इत्युक्त वतींतां देवो मिथिला पुरीनिनाय तत्र प्रथमं मदनरेखाजिन चैत्यानि नत्वा श्रमणी नामुपाश्रये जगाम वन्दित्वा पुरोनिविष्टान्तां प्रव र्त्तिना एवं प्रति बोधयामास मूढचेतसोजनाजर्माद्विनाभवत्तय मिच्छन्तोपि मोह वशेन पुत्रादिषु स्नेहं कुर्वन्ति संसारे हिमाल्ट पितृबन्धु भगिनी दयिता वधूप्रियतम पुत्रादीनां अनन्तश्च सम्बन्धो जाताः लक्ष्मो कुटम्ब देहादिकं सर्वं विनश्वरं धर्मएवेकः शाश्वत· इत्यादि साध्वीबाक्यैः प्रतिबुद्धा

सा सती देवेन पुत्रदर्शनार्थं प्रार्थिता एवमाह भवद्गिः करेण प्रेम पूरेण ममाल। अत परन्तु साध्वीचरणा एव शरण मित्युक्ता साध्वी समीपे सामन्नज्यां जग्राह देवस्ता वन्दित्वा स्वस्थाने जगाम पद्मरथस्य गृहे यथायम्बालो वर्द्धते तथा २ तस्यान्ये राजानोऽनमत् तत पद्मरथ राजातस्य बालस्य नमिरिति नाम कृतवान् इति व्रजतस्तस्य बालस्य कलाचार्यसेवनात् सर्वां कला समायाता सकललोक लोचनहर यौवनमप्यस्या यात पित्रा च अष्टाधिक सहस्र राजकन्या पाणिग्रहण कारयितं पद्मरथोऽन्ये राज्य दत्वा स्वय तपस्या गृहीत्वा केवलज्ञान प्राप्यमोक्षङ्गतवान् नमिराजा प्राज्य राज्य पालया मास न्यायेन यय पात्रमभूत् अथ पूर्व युगबाहु हत्वा मणिरथनृप सिद्धमनोरथ स्वधाम जगाम तत्र तदानीमेव प्रचण्ड सर्पेण दृष्ट सुय नरक जगाम द्वयोर्भ्रात्रो रूर्ध्वदेहिका कृत्वा मन्त्रिभिर्युगबाहु पुत्रचन्द्र यशराज्येऽभिषिक्त सन्याये न राज्य पालयति अन्यदा नमिराज्ञो धवलकान्तिर्गजो मदोन्मत्त आलान स्तम्भमुन्मूल्य अपरान् हस्तिनोऽश्वा मानुष्या न पिन्नासयन् चन्द्रयशा नृप नगरसीम्नि समायात चन्द्रयशा नृपस्तमागत श्रुत्वा समन्तात्सु भटै र्वेष्टयित्वा स्वय वशीकृत्य च जग्राह नमिराजाष्ट भिर्दिनैस्ता वार्त्ता श्रुत्वा नमिचन्द्र द्वयोत्तिकें दूत प्रेषितवान् दूतोपि तत्र गत्वा धवलकरिण मार्गयामास कुपितचन्द्रयशा दूतङ्गले धृत्वा नगराद्बहिर्निष्कासयामास दूतोपिनमे पुर गत्वा स्वापमान जगौ कुपितो नमिराजाऽतुलसैन्यैर्वेष्टितोऽच्छिन्न प्रयाणै सुदर्शनपुरसमीपे समायात चन्द्रयशा भूपति स्वसैन्यवेष्टितो यावदभिमुख युद्धार्थंचलित तावदपश कुनैर्वारितो मन्त्रिभिरेव मूचे स्वामिन् कोट्ट सज्जीकृत्य तत्र साम्प्रत पुरान्तरेवस्थातु युक्त कालविलम्बेन एतत्काय कर्त्तव्य ततश्चन्द्रयशा कोट्टि शतघ्नीभिर्जलाद्युपस्करैश्च सज्जी कृतवान् नमिस्त कोट्ट स्वसैन्यैरवेष्टयत् अथ स्वे सैनिकै सह ऊर्द्धस्थाना सैनिकाना महान सग्राम प्रवर्त्ततेनमि कोट्टभङ्गे विविधानुपायान करोति चन्द्रयशा नृपस्तु कोट्टरक्षणे विविधान् उपायान् करोति अस्मिन् अवसरे तयोर्माता साध्वी मदनरेखा प्रवर्त्तिनी अनुज्ञाप्य तत्सग्राम वारणाय प्रथम नमिराज

सैन्ये समायातां नमि रपितां साध्वी न नाम आसने चोपविश्य नमे पुरः सासाध्वी एवं वाचं विस्तारयामास अनन्तदुःखैक भाजनेस्मिन् संसारे नृभवं प्राप्यपापैस्त्वं किं मुह्यसे राजन् तव बन्धुना चन्द्रयशा सा स्वयमागतो हस्तीचेद्गृहीत स्वहितैन समं किं युद्धं करोषि क्रुद्धस्त्वं न किञ्चिद्वेत्सि यदुक्तं लोभी पश्येजनप्राप्तिं कामिनीं कामुकस्तथा भ्रमं पश्येद्यथोन्मत्तोन किञ्चिच्चक्षुधाकुलः१ इदं साध्वी वचोनिशम्य नमिश्चिन्तयामास अयचन्द्रयशा युगबाहु भवोस्ति अहन्तु पद्मरथपुत्रोस्मि इयं साध्वी सत्यवादिनी सती कथं ममचानेन समं भ्रातृत्वं वदतीति विमृश्य साध्वी प्रत्येवं भाषतेस्म हे पूज्ये असौक अहंक भिन्न कुलसम्भवयो मदेतयो कथं भ्रातृत्वं वदसीति नमिना उक्ते साध्वीप्राह वत्स यौवन ऐश्वर्यभवं मदं मुक्त्वा यदि शृणोषि तदा सकलं स्वरूपं कथ्यते अथ श्रोतु मुत्सकाय नमि नृपाय सर्वं पूर्वस्वरूपं साध्वी जगाद पुनरेव बभाषे सुदर्शनपुरस्वामी युगबाहुस्तवास्य पिता अहं मदनरेखा तवमातेति पद्म रथस्तु तवपालक' पितेति अनेन भ्रात्रासमं माविरोधं कुरु बुद्ध्या स्वहितमिति साध्वीप्रोक्तं युगबाहु नामाङ्कित करमुद्रा दर्शनत' सर्वं नमिः सत्यं विवे दतां साध्वीं प्रकामञ्चित्तोल्लासेन स्वमातरं मत्वा विशेषान्नमिः प्रणनाम उवाच च मातर्यत् त्वया प्रोक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव नात्रकाचिद्विचारणा अस्मिन् मेय करमुद्रा युगबाहुस तत्वं ज्ञापयति अयचन्द्रयशामे ज्येष्ठभ्राता भवत्येव परलोकः कथं प्रत्याज्यते लघुभ्रातृ वात्सल्यतो ज्येष्ठस्ते सम्मुखमायाति तदाह मुचितं विनयं कुर्वन् शोभामुद्वहामि एवं नमि नृपोक्तं माकर्ण्य सा साध्वी दुर्गाद्वार वर्त्मना प्रविश्य राजसौधे जगाम चन्द्रयशा भूपस्तुताम कस्मा दागता मुपलक्ष्य स्वमातरं साध्वीं विशेषादभ्युत्थाय नतवान् उचितासनोपविष्टान्तां साध्वी वृत्तान्तं पृष्ठवान् साध्वी सकलवृत्तान्तं नमिराज मिलनं यावत् कथयामास चन्द्रयशा नृपस्त नमिं निजलघुभ्रातरं मत्वा सभालोकान् प्रत्येकमुवाच सुलभा सन्ति सर्वेषां पुत्रपत्न्यादयः शुभा· दुर्लभः सोदरो बन्धुर्लभ्यते सुकृतैर्यदि १ इत्युक्त्वा चन्द्रयशा नृपोपि पुराद्बहिर्निर्गतः नमि रपित ज्येष्ठभ्रातरं सम्मुखं गच्छन्तं दृष्ट्वा सिंहासना दुत्थाय भूतलमिल

च्छिरा प्रथनाम चन्द्रयशा नृपोपि स्वकराभ्यां भूतला दुत्थाप्य अग्रमालि लिङ्ग तुल्याकारी तुल्यवर्णौ तौ एक मातृपितृसम्भूतत्वेन तदा परमप्रीतिपद
जातो लोके सहोदरौ भ्रातौ चन्द्रयशा नृपस्तु तदानीमेव न मिथिलावेसुदर्शनपुर राज्य ददौ स्वय सयामाङ्गत्य मध्ये दीक्षा लली क्रमेण राज्यद्वय
पालयन्नमि क्षितौ प्रचण्डाज्ञां अन्येऽ यदानमिर्वपुषि दाघज्वरोजात पूर्वं कर्मदोषेण तस्य षण्मासिकी पीडामहती उत्पन्ना निद्रामपि न लेभे अन्त
पुरी नूपरशब्दापि कर्णशूलाय आसन् नमि राज्ञो दाघज्वरशान्तये स्वयं चन्दन घर्षयन्तीनां अन्तःपुरीणां वलयशब्दा रोमसभक्ष प्राया बभूव ततता
भिर्वलयानि समस्तान्युत्तारितानि एकैक मङ्गलाय रचित तदानीं शब्दाश्रवणेन नमिना कथिमिवाटस्य सेवक पृष्ट कथमधुना कङ्कणशब्दान
शूयते तेनोक्त स्वामिन् भवत् पीडाकारत्वेनान्त पुरीभि कङ्कणान्युत्तारितानि एकैक मङ्गलाय रचितमितिने कैक कङ्कणशब्दा शूयते परस्पर घर्षा
भावात् एव तदच श्रुत्वा प्रतिबुद्धो नमिरेव चिन्तयामास यथा सयोगत शुभा अशुभा शब्दा जायन्ते तथा रागादिकादोषा सयोगत एव भवन्ति
यद्यस्माद्रोगादह मुक्त स्यान्तदा सवसङ्ग विमुक्तदोक्षा ग्रहामि तस्येति ध्यायमानस्य रात्रौ सुखेन निद्रा समायाता निद्रायां स्वप्नमेव ददर्श गजमा
रुह्य श्वेत मन्दिर गिरिमारूढ प्रात प्रतिबुद्ध नीरोगीजात स एव व्यचित यत् श्रम पर्वत काप्यहमदर्शं एव मूहापोह कुर्वतस्तस्य जातिस्मरण मुत्पन्न
नमिराजा पूर्वभव ददर्श यदाह पूर्वभवे शुक्र कल्पे सुरोऽभवत्तदार्हज्जन्माभिषेक कारणाय अहमस्मिन् मेरौ अगम अथ कङ्कणदृष्टान्तेन एकत्व सुख
कारीति चिन्तयन् प्रत्येक बुद्धत्व प्राप्य प्रव्रजितो नमि तदाराज्य अन्त पुर एकपदेत्यजन्त नमि ब्राह्मणरूपेण शक्र समागत्य परीक्षितवान् प्रणत
वान् शक्रपरीक्षा समये नमिराज सत्का शक्रस्य नमि राजर्षि उत्तररूप उत्तराध्ययनान्तर्नवममध्ययन जात इति नमिचरित्र सम्पूर्णम्। अथ यदानी नमि
प्रतिबुद्ध स्तदानीमेव नग्गति नृप प्रतिबुद्ध अथ नग्गतिनृप चरित्र कथ्यते अस्मिन् भरते पुण्ड्रवर्द्धन नाम नगर अस्ति। तत्र सिंहरथो राजा वर्त्तते

गन्धारदेशाधिपति स्तस्य राज्ञो अन्यदा द्वौ अश्वौ प्राभृते समायातौ तयो परिचार्थं एकस्मिन् तुरङ्गे राजा अधिरूढ. एकस्मिंयतुरङ्गे अपरो नरआरुढः तैन सममपरेश अश्ववारशतैः परिवृतो भूपतिर्वाह्यालिकायां गतः परीचां कुर्व्वता च राज्ञा अश्वः प्रधानगत्या विमुक्त· सोऽपि बलवता वेगेन निर्ययौ। यथा यथा राजा वल्गां आकर्षयति तथा२ स वायुवेगा जात पुरोपवनानि अतिक्रम्य सो अश्वो राजानं लात्वा महाटव्यां प्रविष्ट· श्रान्तेन भूपेन तदा अस्या वल्गां विमुक्ता तदा राजा एवं विपरीता अश्वं मन्यतेस्म· तस्मादुत्तीर्य्य राजा भूमिचरो बभूव तच्च पानीयं पाययित्वा वृक्षे बबन्ध स्वप्राणवृत्तिं फलै विदधे तत एक नगमारुह्य क्वचित्प्रदेशे सुन्दरमेकं महावासं ददर्श राजा कतूहलात्तस्मिन्नावासे प्रविष्टः तत्र एकाकिनीं पवित्रगात्रां कन्या भूपति दृष्ट वान् सा राजानं आगच्छन्तं दृष्ट्वा भूरिहर्षा आसनं ददौ राजा ऊचे का त्वं कोयमद्रिनिवास किमिदं रम्यं धाम सा प्राह भूपालप्रथमं मत्पा णिग्रहणं कुरु साम्प्रतं सिंहविशिष्टं लग्नमस्ति पश्चात्सर्वंवृत्तान्तमहं कथयिष्यामि तयेत्युक्ते नरपतिस्तत्र तया समं पूजितं जिनविम्बप्रणम्य उद्वाहमाङ्गल्यं अलं चकार भूपतिना परिणीता सा कन्या विविधान् भोगोपचारान् चकार विचित्राश्च भक्तीः दर्शयामास अवसरे राजा तां प्रत्येवमाह विमलः पुण्यैरावयोः सम्बन्धो जातोस्ति परत्वं स्ववृत्तान्तं वद कासि त्वं कथमत्रैकाकिनी वससिस्वभर्त्रा एवमुक्ते सा स्वसम्बन्धं मूलतो वक्तुमारेभे चितिप्रतिष्ठे नगरे जितशत्रु नृपोऽस्ति सो अन्यदा परदेशायात चरानेवाह अहो मद्राज्ये किञ्चित् न्यूनमस्ति ते प्राहुः सर्व्वमस्ति तव राज्ये परं विचित्र चित्रामसभा नास्ति ततो नृपति चित्रकरान् आकार्यसभागृहभित्तिभागा सर्वेषां समाचित्रयितुं दत्ताः सर्वेपि चित्रकराः स्वस्वभित्तिः भागान् गाढोद्यमेन चित्रयन्ते तत्रैको वृद्धचित्रकः सकलचित्र कलावेदी स्वभित्तिभागं चित्रयितुमारब्धवान् सहायशून्यस्य तस्य निरन्तरं गृहत· कनकमञ्जरी रूपवती पुत्री भक्तं तत्रानयति अन्यदा सा स्वगृहाद्यभक्त मानयन्ती राजमार्गे गच्छन्ति अश्ववारमेकं ददर्श स च बालस्तो वराकादि जनसङ्कीर्णे अपि राजमार्गे त्वरितमश्वमवाहयत्

मौकास्तु तद्भूयादितस्ततो नष्टा साऽपि क्वचिनष्टा स्थिता पश्चात् तत्रायाता भक्तपात्रहस्ता ता आगता वीक्ष्य स हृष्ट चित्रकार पुरषोत्सर्गार्थं बहिर्जे
गाम एकत्र आहार पात्र माच्छादयित्वा सा क्वचिद्भित्तिदेशे वर्णकैर्मयूरपिच्छ मालिलेख अथ तत्र राजा सम्प्राप्त भित्तिचित्राणि पश्यन् कुमार्यालेखिते
कैकिपिच्छे साधात्पोच्छ मन्यमान कर चिक्षेप भित्त्यास्फालनतो नखभङ्गेन विलक्षीभूत त नृप सामान्य पुरुषमेव जानन्ती सा चित्रकरपुत्री एव माह
चतुर्थं पादस्त्व मया लब्ध नृप प्राह पूर्वं त्वया केन त्रयपादा लब्धा साम्प्रतमह काथ त्वया चतुर्थं पादोलब्ध सा प्राह शूयता यो अद्य महाराज मार्गे
त्वरित मश्व वाहयन् बालस्त्री प्रमुखजनाना त्रासमुत्पादयन् हष्ट स मूर्ख्यत्वे प्रथम पादो हष्ट ॥१॥ द्वितीय पाद इतो राजाय कुटम्बलोकसहिते
चित्रकरैस्सम भित्तिभाग जरातुरस्य एकस्य मम पितुर्दत्तो तृतीय पादो मम पिता यो नित्य भक्ते समायाते बहिर्याति चतुर्थस्त्वं योऽस्मिन् भित्ति
देशे मल्लिखिते मयूरपिच्छे कर चिक्षेप परमेत्र त्वया निविमृष्ट यदत्र सुधा छष्टे भित्तिदेशे निराधारा मयूरपिच्छस्थिति एव तस्या वचश्चातुरी
रञ्जितो राजा तत्पाणिग्रहण वाञ्छकस्सन् तस्या पितु समीपे स्वमन्त्रिण प्रेषयित्वा तां प्रार्थितवान पित्रापि सा दत्ता सुमुहूर्ते परणीता राज्ञ प्रकाम
प्रेमपात्र बभूव सर्वान्त परोपुमुख्या जाता विविधानि दूष्यानि रत्नाभरणानिच आस सादेकदा तया मदनाभिधानाय दासी रहसी एव बभाषे भद्र यदा
मदनगातो भूपतिस्स्वपिति तदा त्वया अह एव प्रष्टव्या स्वामिनो कथा कथयेति तयोक्त अवश्य महन्लदानी अह प्रक्षयिष्ये अत्ररात्रिसमये राजा तद्गृहे
समायात तां भुक्त्वा रतश्रान्तो यावत् स्वपिति तावता दास्या इय पृष्टा स्वामिनी कथा कथयराज्ञीप्राह यावद्राजा निद्रा नाप्नोति तावन्मौन कुरु पश्चात्
त्वदग्रे यथेष्ट कथा कथयिष्यामि राजाऽपिता कथां श्रोतुकाम कपटनिद्रासुष्वाप पुनर्दास्यासाम्प्रत कथा कथयेति पृष्टा चित्रकरपुत्री कथा कथयितु मारम्भे
मधुपुरे वरुणश्रेष्ठी एक करप्रमाण देवकुल अकारयत् चतु करप्रमाणो देवस्तत्र स्थापित सतस्मै देव चिन्तितार्थं दायको बभुव अथ दासीप्राह एक हस्ते

देवकुले चतुःकर प्रमाणोदेवः कथं मात इति तया पृष्टे सा राज्ञी प्राह इमं रहस्यं तव कल्ये रात्रौ कथयिष्यामि अद्यतु निद्रा समायातीति प्रोच्यसा
राज्ञी राजशय्या पुरो भूमौसुप्ता सादासीतां दृष्ट्वा स्वगृहे गता राजा मनस्येवं चिन्तयामास कल्य रात्रावपीदं कथानकं मया श्रोतव्यमिति निश्चित्य राजा
सुप्तः सुखनिद्रा मवाप द्वितीयदिनेऽपि राजा तस्या एव गृहे रात्रौ समायातः रात्रर्द्धं यावत् सुखं भेजे पश्चाद्रत श्रान्तो राजा पूर्वं कथानक श्रवणाय
कपटनिद्रयासुप्तः दासीप्राह स्वामिनी कल्य कथानक रहस्यं वद राज्ञीप्राह एक हस्ते देवकुले चत्वारः करायस्य स चतु करो देवो नारायणादिवा
स्तत्रस्थापित इत्यर्थ एका कथा १ अथ तृतीयेदिने रात्रावपि राजा तथैव कपटनिद्रयासुप्तः दासी पुनः कथा मद्य कथयेति तामाह सा प्राह विन्ध्या
चले पर्वते कोपि रक्ता शोकद्रुम प्रौढोऽस्ति तस्या घनानि पत्राणि सन्ति परच्छायाना भवत् दासीप्राह पत्राढ्यतस्य तस्य च्छाया कथं नजायते राज्ञीप्राह
एतद्रहस्यन्तव कल्ये रात्रौ कथयिष्यामि अद्याह रतश्रान्ता निद्रासुख मनु भविष्यामीत्युक्त्वा सुप्ता सा दासीतु स्वगृहे गता अपर रात्रौ राजा भोगान्
भुक्त्वा तथैव तत्र सुप्तः दासीप्राह स्वामिनी कल्य सत्कथा रहस्य कथनीयं राज्ञीप्राह तस्य वृक्षस्य सूर्यातपस्य मूर्ध्नि छाया नास्ति अतएव छायाऽस्तीत्यर्थ
इति द्वितीय कथा २ अथ पुनस्तथैव रात्रौ नृपेसुप्ते दासी पृष्टा राज्ञीप्राह कथा क्वचिद्विवेशे कश्चिदोष्ट्रश्चरन् कदापि बब्बूलतरु ददर्श तदाभिमुखां ग्रीवां
कुर्वन् अप्राप्तशाखः प्रकामं खिन्न स्तस्यैव बब्बूलतरोरुपरि उत्सर्गं कृतवान् दासी राज्ञीं प्रपच्छ हे स्वामिनीकथमेतद् घटते स्व ग्रीवया बब्बूलतरुनप्राप्त
तदुपरिकथमसौ उत्सर्गंचकार राज्ञीप्राह अद्य निद्रासमायातीति नैवं तत्कथा रहस्यं कल्य रात्रावश्यं कथयिष्यामि इत्युक्त्वा सुप्ता कल्य दिनरात्रावपि
तथैव नृपे सुप्ते दासी पृष्टां राज्ञी तत्कथा तत्त्वं प्राह स उष्ट्रः कूपमध्यस्थं तं बब्बूलतरु ददर्शेति परमार्थ इति तृतीयकथा ३ पुनस्तथैव नृपे सुप्ते रात्रौ
दासी पृष्टा सा राज्ञी कथामाचख्यौ कस्मिन्नगरे काचित्कन्या भृसं रूपसौभाग्यवती अस्ति तदर्थं तस्याः पितृभ्यां त्रयोनरा आहूताः समायाता तदानीं

वनिता दृष्टा मा जग्ना मता मया मम मोषान्देको वल्पतिनितायां प्रविष्टो भण्मसाषभूत द्वितीयस्तस्य पिण्डदाता तडभ्यो परितोषं चकार ततोगणु शुश्रमाणभ्या,तत्र ग्राम मदृमतेन नपितायां मिता जनाः प्रथमं [चरत सम्योऽजीवयत् जनाम्युत्थिता तान् चौत्वरान् ददर्श राज्ञी दासीमाह हे सखि गृपितव्या जनायता जोयरोगुक दासीमाह यद्व नवेधि त्वेव मूर्षि राज्ञीमाह यद्य निद्रासमायाति दृष्ट्,ता सुप्ता द्वितीयदिन रात्रौ दासी पृष्टा सा चवदत् यदाम्या गन्नीयक म पिता न गरोगृत म बन्धु, यो भन्मपिण्ड दत्त म तस्यति रिति इति चतुर्थ कथा ४ तथैव रात्रौ नृपे गुप्ते दासी दृष्टा राज्ञी भाष अजित नृप नयनयो दिव्यमणहार घरं नगत भूमिग्रहरत्वा मोत्रात् सुवर्णकारे चनोपटत् तत्रैव सुवर्णकारं सम्या पतितां ज्ञातवान् राज्ञीमाह हे मगो तेन घरदत्तानोपमहिते सुगतभूमिगृहे यामिनो मृग कथं ज्ञात दासी भाष नाह वेधि त्वमेव मुषि राज्ञी प्राह यद्य सांप्रतं निद्रा ममायातोन्,ज्ञा सुप्ता द्वितीय दिनरात्रौ दासी पृष्टा सा प्राह स सुवर्णकारो रात्रयन्धोऽस्तीति परमार्थं इति पञ्चमी कथा ॥५॥ पुनरेकदा रात्रौ सुप्ते नृपे दासी पृष्टा सा प्राह केनापि राज्ञा द्वौ मलिम्लचौ निग्रहपेट्यां क्षिप्तौ समुद्रमध्ये प्रवाहितौ क्वापि तट मायेटौ सन्त दिनविवरे प्रदीप्ता उद्घाट्य तौ दृष्ट्वा पृष्टौ भो युवयोरत्र क्षिपयो कतमो दिवमोऽयं तयो मध्ये एक प्राह अद्य चतुर्थो दिवस राज्ञी प्राह ४ सखि तेन चतुर्थो दिवस कथं ज्ञात दासीमाह यदृ नवेधि त्वमेव मूर्षि राज्ञी तु यद्य साम्प्रत निद्रा समायातीत्यु,प्ता सुप्ता द्वितीय दिनरात्रौ दासी पृष्टा राज्ञी प्राह स चतुर्थ दिवसज्ञा पुष्पभुर्यन्तरो वर्तते इति परमार्थं इतिषष्ठी कथा ॥६॥ पुनरन्यदा दासी पृष्टा सा राज्ञी रात्री कान्त मायन्त्रो काचित स्त्री मपत्नी स्वरूप भयेन निजाङ्गभूषणानि पेट्यां क्षिप्यमुद्राप्य दत्वा पान्तीक भूमौ मुमोच सान्यदा सामी सख्यो निजामे गता मंपत्नी च विचार्य जिगोपिता पेटो मुद्राप्य धनेजाभरणनेपि मध्यादेक हार निष्काश्य मातनयाय ददो तनया च नृपति गृहे त गराव

कार किंयत्कालानन्तरं साक्षी तत्रायात तां पेटीं दूरादवलोक्य एवं ज्ञातवती यदस्याः पेट्या मध्यान्ममहारोऽनयाऽपहृत इति सा सपत्नी चौर्येण दूषयामास सपत्नी शपथान् करोनिर्हरापहारं न मन्ये तदासाक्षीतां सपत्नीं दुष्टदेवपादस्पर्श शपथाय आकर्षितवती तदानीं भयभ्रान्ता सपत्नीं तं हारन्तनयाग्टहादानोय तस्यै ददौ दासी प्राह हे स्वामिनी तया कथं ज्ञातो हारापहारः राज्ञी प्राह कलत्र रात्रौ कथयिष्यामि इत्युक्ता सुप्ता द्वितीय दिनरात्रौ पुनस्तया पृष्टा राज्ञीप्राह सापेटी स्वच्छकाचमयी अस्तीति परमार्थं इति सप्तमी कथा ॥७॥ कस्यचिद्राज्ञ कन्या केनापि खेटेनाऽपहृता तस्य राज्ञः चत्वार पुरुषाः सन्ति एकोनिमित्त वेदी द्वितीयोरथ कृत् तृतीय सहस्रयोधा चतुर्थो वैद्य तत्र निमित्त वेदी दिसं विविद रथ कृद्दिव्यं रथ चकार खगामिनं तं रथमारुह्य सहस्रयो धावैद्यश्च विद्याधरपुरेगतौ सहस्रयोधी तं खेटं हतवान् हन्यमानेन तेन खेटेन कन्या शिरश्छिन्नं तदैव तेन वैद्येन औषधेन शिरः सजोजितं राजा तु पश्चादागतेभ्य एभ्यश्चतुर्भ्य स्तां सुतां ददौ कन्या आह एषु मध्ये यो मया सह चिताप्रवेशं करिष्यति तमहं वरिष्यामि प्रोच्य सा कन्या सुरङ्गा द्वारि रचितायां प्रविष्टाः यस्तया सह तत्र प्रविष्ट स तां कन्यां ऊढवान् दासी प्राह हे स्वामिनी चतुर्षु मध्ये को अत्र प्रविष्ट राज्ञी प्राह अथ रतिश्रांताया मे निद्रा समायातीत्युक्ता सुप्ता द्वितीयवासररात्रौ पुनर्दासि प्रष्टाः राज्ञी प्राह निमित्तवेदि द्ध्य न मरिष्यति इति मत्वा चितां प्रविष्ट स्तमूढवान् इति परमार्थं इति अष्टमी कथा ।८। पुनरपि रात्रौ दासी पृष्टा राज्ञी कथामाह जयपुर नगरे सुन्दरनामा राजास्ति असौ अन्यदा विपरीताश्वे न एकएवाटव्यां नीतः वल्गां शिथिलीकृत्य अश्वात् स राजा उत्तीर्णः तमश्वं क्वचित्तरौ बद्धा स्वयमितस्ततो भ्रमन् स कस्मिंश्चित् सरसि जलं पपौ तत्रैकां सुरूपां तापसपुत्रीं ददर्श तापसपुत्र्या हृतः स तापसाश्रमं प्राप तत्र तापसास्तस्य भृशं सत्कारं चक्रुः सा कन्या तापसैर्दत्ता राज्ञा च परणीता तां नवोढां कन्यां गृहीत्वा तमेवाश्वमधिरुह्य पश्चाद्दलितः अन्तरालमार्गे क्वचित् सरपाल्यां राजा सुप्तोपि जाग्रन्नेवास्ति राज्ञा तु

निद्रा पाप खेशरि राघसेन तवागत्य नृपस्यैव कथित पचमासान् यावद्भुचितो ग्रह त्वा भच्चं प्राप्य ग्रय त्वत्ति भविष्यामि ग्रन्यथा मद्याच्चित देहि राज्ञोक्त ब्रुहि यथाञ्छित तेनोक्त कश्चिद्दष्टादशवर्षीयो ब्राह्मणपुत्र शिरसि पित्रदत्तपद खया खड्गेन हत सप्तदिनमध्ये चेद्दत्तो दीयते तदा त्वां मुञ्चामि नान्यथा इति राज्ञा प्रतिपन्न प्रभाते राजा चलित कुशलेन स्वपुरे गत सैनिका सर्वेपि मिलिता राज्ञा स्वमन्त्रिणो राचसवृत्तान्त कथित मन्त्रिणा सुवर्णपुरुषं निर्माय पटहवादनपूर्व नगरे भ्रामित एव चोद्घोषित ब्राह्मणपुत्रो राचसस्य जीवितदानेन नृपजिवितदान दत्ते तस्य पित्रोरय सुवर्ण पुरुषो दीयते इयनुद्घोषणा षटदिनानि यावत्तत्र जाता सप्तमदिने एकत्र ग्रामे ब्राह्मणपुत्र स्तां निर्घोषणा श्रुत्वा एव मातापितरौ ग्रबोधयत् प्राणा गत्वरा यस्मि मातापितरौ चेद्रणाय प्राणै कृत्वा प्रदीयते तदावर तेनाह नृप जीवितरचाय स्व जीवित राचसाय दत्त्वा सुवर्णपुरुष दापयामि एव वार वारमाग्रहेण मातपित्रोरनुमति गृहीत्वा राजसमीपे गत राज्ञा सुतत्पितु पादौ शिरसि दापयित्वा स्वयमाकर्ण्यंत उद्वेण दृष्टो भुत्वा राचसस्य समीपं सानीत यावता राचसोदृष्ट भ्रायता नृपेणोक्त भो ब्राह्मणपुत्र इष्ट स्मर एव नृपेणोक्त स ब्राह्मणपुत्र हृतस्ततोनिर्नं निषिषत् जहा सततदानी राचसमुष्ट प्राह यदिष्ट तन्मार्गयति सप्राह यदित्व तुष्ट स्तदा हिंसात्यज्य जिनोदित दयाधर्मं कुरु राचसेनापि तद्वच सा दयाधर्मं प्रतिपन्न राजादयोपित दारक प्रसस्तितवन्त ग्रय दासीप्राह हे राज्ञि तस्य ब्राह्मणपुत्रस्य कोहास्यहेतु तयोक्त साम्प्रत मे निद्रा समायातोरुणा साग्रुता द्वितीयदिने दासीपृष्टा सा राज्ञीप्राह हे हले ग्रय तस्य हास्य हेतु नृणां हि माता पिता नृप शरणन्ते तयोपि मत्पार्श्वस्था ग्रह पुन ग्रसनर शरण ययामीति [redacted] हास्य मुत्पन्न इति परमार्थं इति नवमीकथा ८ एव साचित्रकरसुता कथाभि र्मुहुर्मुहु र्मोहयति राजान वशी चकार राजा तत स्या मेवासक्तोऽन्यासां राज्ञीनां नामापि नजयाह ततस्तस्या छिद्राणि पश्यन्ति सर्वाऽपि सपत्न्य परमद्वेष वहन्ते चित्रकरसुतातु निरन्तर मध्याह्ने

रहसि एकाकिनी कपाट युगलं दत्वा गृहान्तः प्रविश्य पूर्ववस्त्राणि प्रावृत्य आत्मानं एवं न निन्द आत्मन् तवायं पूर्ववेषः साम्प्रत राजप्रसादादुत्तरा मवस्थां प्राप्य गर्वं माकुर्याः एव मात्मनः शिक्षां ददतां दृष्ट्वा सपत्नी राजानं एवं विज्ञपया मासुः स्वामिन्नेषा क्षुद्रा तवाहर्निशं कार्मणं कुरुते यद्यस्माकं वचनं न मन्यते तदा मध्याह्ने स्वयं तद्गृहे गत्वा तस्याः स्वरूपं विलोकय भूपतिस्तासां वाक्यं निशम्य मध्याह्ने तस्याः गृहेगतः सा तु तथैव पुर्वने पथ्य परिधाय आत्मन् शिक्षां ददती भूपतीना दृष्टाः सर्वाणि तद्वचांस्यपि श्रुतानि राजा तस्याः निगर्वतां ज्ञात्वा परमा प्रमोद मवापद्दमां पट्टराज्ञीं चकार विशेषात्मनो विनोदं द्रयञ्चकार अन्यदा तन्नगरोद्याने विमलाचार्याः समायाताः राज्ञासह नृप स्तद्वन्दनाय तत्रागतः नगरलोकोपि तद्वन्दनार्थं गतः तदा विमलाचार्यो देशना चकार चित्रकरसुता नृपश्च द्वावपि प्रतिबुद्धौ श्रावकधर्मं गृहीतवन्तौ परस्परमना बाधया त्रिवर्गं साधनं कुरुतः अन्येद्युस्तया दत्त पञ्च परमेष्टी श्रीनमस्कार· स पिता मृतो व्यन्तरोजातः कालान्तरेणाऽर्हन्त धर्म्ममाराध्यः चित्रकरसुता राज्ञी मृता देवीत्वं प्राप ततश्च्युत्वा वैताढ्ये तोरणाभिधे पुरे दृढशक्तो खेचरस्य पुत्री कनकमाला बभूव प्राप्तयौवनां तामेकदा वीक्ष्य कन्दर्प तप्तौ वासव नामा कश्चित् खेचरोऽपहृत्य अत्र महा अद्रौ मुक्ता स्वचित्ते प्रमोदं बभार अत्र विद्याबलात् समग्रां सामग्रीं विधाय स वासव विद्याधरो यावत्तस्वोद्वाहाय समुत्सुकोऽभवत् तावत् कनकमालाग्रजस्वर्णतेजा स्तदनुपदिकस्तत्रायात स्तं वासवं विद्याधर मधिक्षिप्तवान् तौ द्वावपि कोपाद् घोरं युद्धं कुर्वाणो परस्पर प्रहारात्तौ मृतौ कनकमाला तु भृसं भ्रातृशोकं चकार तदानीं कश्चिदेव स्तत्रागत्य कनकमाला प्रत्येवमवदत् पुत्रीभ्रातृशोकं मुञ्च चित्तं स्वस्थं कुरु ईदृश एवसंसारोस्ति त्वं मम पूर्वभवेपुत्री अभूः तिष्ठत्वमत्रैव गिरौ अत्र स्थिताया स्तव सर्वं भव्यं भविष्यति एवं देववचनमाकर्ण्य कनकमाला चिन्तयामास को असौ देवः कथमस्याहं पुत्री असौ मयि स्निह्यते अहमप्यस्मिन् स्निह्यामि यावदेवं कनकमाला चिन्तयति तावत्तज्जनको विद्याधरेन्द्रो दृढशक्तिना माथा

यन् तत्रायात स्वपुत्र स्वतेजसम्निरोधन वासवविद्याधर च मृत दृष्ट्वाछिन्नमस्तकाञ्च ता पुत्रीदृष्ट्वाएव विचारयामास अयमुत इय सुता अथ मत् स्वयो
व्यमो दृष्टगवस्था प्राप्ता स्वप्नोपम जगत्सर्व दृश्यते एव ध्यायतस्तस्य हृदयशक्तिविद्याधरस्य जातिस्मरणमुत्पन्न असौ शासनदेवीप्रदत्तवेषधारणश्रमणोयतिर
भूत् अत्र सध्यन्तर स्वया पुत्र्या सह त श्रमण ननाम जीवन्ती ता पुत्री वीक्ष्य स चारणश्रमण स्त व्यन्तर नमन्त अपृच्छत् किमिदमिन्द्रजाल मया दृष्ट
व्यन्तर प्राह तव पुत्री मत् मिथो नियुध्य मृतो इयच कन्या जीवन्त्यपि मया तव मृता दर्शिता मुनिप्राह कथ त्वया मृता कृता सव्यन्तर स्मृत्वा एवमाह
हे मुनिना यक एतत् वार्त्ता शृणु चिति प्रविष्टनृपवर्जितमत्तो रिय प्राग्भवे पत्नी अभवत् चित्राङ्गदनाम्न चित्रकृती ममैषा पुत्री अभवत् एतया प्राग्भवे
अन्त्यसमये मम नमस्कारा दत्ता तत्प्रभावादह व्यन्तरी जात एषा अपि मृता देवो जाता देवी त्वमनुभूय तव सुता अत्र भवे जन्मो तेन विद्याधरेणापहृत्य
अत्र चैत्ये मुक्ता यात्रार्थं माया तेन मया दृष्टा एतस्या वन्धो चौरे च मृते यावदिमा अहमाश्रयामि तावद्भवन्तोत्र प्राप्ता मया विमृष्ट इयमनेन जनकेन
सम माया खिति मया एतस्या गोप न माया विहिता यत्तव निराश ल मया तदानी कृत तत क्षन्तव्य मुनिवर्ये अस्मो व्यन्तरया त्वया तदा माया
कृता सा मम तव माया अपहारिणो जाता तेन मम भवतीपकृत न किमप्यपराध एवमुक्त्वा स मुनिर्धर्माशिष दत्वा अन्यत्र विजहार अथ प्राग्भव
वृत्तान्त श्रुत्वा सा कन्या जाति स्मृति भागभूत प्राग्जन्म जनक व्यन्तर प्राह तात त पूर्वभवपति मेलय व्यन्तर प्राह स ते प्राग्भवभर्त्ता
जितपत्र् नृपति देवो भूय च्युत साम्प्रत सिंहरथो नाम राजा जातोस्ति स गन्धार देशे पुण्ड्रवर्द्धन नगरा दश्वापहृतोत्र समायास्यति
स हि त्वामत्रैव सकलसामग्र्या परिणेष्यति यावत स इहाभ्येति तावत त्वमत्रैव तिष्ठेत्युक्त्वा सव्यन्तर पुराचले शाश्वत जिनबिम्बानि न तु
गतवान् इम सर्ववृत्तान्त कथयित्वा सा कन्या राजान प्रत्याह स्वामिन त्वमत्र भाग्याकर्षित समायात सिंहरथ राजापि इमा पूर्वभव

बुद्ध: स्वयं सम्बुद्ध इति द्वितीयगाथाया अर्थ: अथ प्रथमगाथाया अर्थ सनमि पूर्वंदेवलोके देव· आसीत् तेन इत्युक्तं चइऊण देवलोगाओ देव लोकात् च्युत्वा सनमिर्भूपो मानुष्य लोके मनुष्य जन्मनि उत्पन्न सच न मि भूप उपशान्तमोहनीय सन् पौराणिकी जातिं पूर्वजन्म देवलोकादौ स्मरति अत्र वर्त्तमान निर्देश स्तत्कालापेक्षया उक्त: २ सो देवलोग सरिसे अन्ते उरवरगओ वरे भोए भुजित्तु नमीराया बुद्धो भोगे परिच्चयइ ३ स नमी राजा बुद्धो ज्ञात तत्व सन् भोगान् परित्यजति किं कृत्वा भोगान् भुक्त्वा कथम्भूतान् भोगान् वरान् स्त्रीसमूहे प्राप्त· सन् कीदृशैस्त· पुरेदेव लोक सदृशे देवाङ्गना सदृशे इत्यर्थ· भुक्तभोगस्य पुरुषस्य भोग: दुस्त्यज इति हेतो भोगान् परित्यजतीत्युक्तं ३ महिलं स पुरजणवयं वलमारोहच्च परियणं सव्वं चिच्चा अभिनिक्खंतो एगन्त महड्ढिओ भयवं ४ स भगवान् महात्म्यवान् यशस्वीनमीराजा एकान्तं द्रव्यतो वनषण्डादिक

भयवंसहसंबुद्धो अणुत्तरेधम्मे । पुत्तंठवित्तुरज्जे अभिनिक्खमई नमीराया ॥२॥ सोदेवलोग सरिसे अंतेउरवर गउवरे

सूत्र

भोए भुंजित्तु नमीराया बुद्धोभोगे परिच्चयई ॥३॥ महिलंसपुर जणवयं वलमारोहंच परियणं सव्वंचिच्चा अभिनि

भाषा

वंत जातिस्मरण उपना थका स्वयं आत्मने सबुद्ध आपणपे धर्मने विषे प्रतिबोध पाम्या पुत्रं स्थापयित्वा राज्ये पुत्रने राज्य थापीने अभिनि:क्रमति नमी राजा दिक्षा ग्रहीता२ स नमी देवलोक सदृशान् भोगान् ते नमीराजा देवलोकसरोखा अंतपुरगत: वरान् भोगान् अंतेउरीने विषे वर प्रधान भोग भुक्ता नमो राजा भोगभोगवीने नमो राजा ज्ञानतत्व भोगान् परित्यजति ज्ञातपछे प्रतिवुद्ध हुओ थको भोगने छांडे३ मथिलां नगरीं जनपद सहीता मोथला नगरे देससहीत छंडे हस्त्यादी चतुरङ्गसैन्यं अन्त:पुरं परिजनं सर्वचतुरंगिणी सेना हाथी घोडा रथ पायक अंते वरस घलोपारीवार सर्वदेश त्यक्ता

भावतय मर्वसयोगरहित त्व एक एवाह मिव्यती निश्चय समाधित पुन कोट्यो नमीराजा अभिनि क्रान्त ससारात नि क्रान्त ससारात नि सृत' किं कृत्वा मिथिला सपुरजनपदा तथा वलतथा अवरोध अन्त पुर तथा परिजन सव त्यक्त्वा ४ पुराणि च जनपदाय पुरजनपदास्तै सहवर्त्तते इति स पुरजनपदाता सपुरजनपदा एतादृशीं मिथुलां पुरी हित्वा ४ कोलाहलगबभूय आसीमहिला इ पव्वय तमि तइया राइ रिसिमि नमिमि अभिनिक्खम तमि ५ तदा तस्मिन् काले मिथिलायां नगर्या सव स्थान कोलाहलकभूत आसीत् कोलाहलो अव्यक्त रोदना क्रन्दितजनित कलकल शब्द कोलाहल एव कोलाहलक कोलाहलक भूतो जातो यस्मिन तत् कोलाहलकभूत एतादृश सर्वं स्थान गृहविहारादिक जात क सति नमौ राजि

क्खतो एग तमहिट्ठिओ भगव ॥४॥ कोलाहलगभूय आसीमहिलाइ पव्वय तमि । तइया रायरिसिमि नमिमि,
अभिनिक्खमतमि ॥५॥ अब्भुट्ठिय रायरिसि पव्वज्जाठाण मुत्तम । सक्कोमाहण रूवेणइम वयणमव्ववी ॥६॥ किंतुभो

प्रव्रजित ए भवलांवाना छोडी दीक्षा लोधी एकांन्तमधिष्टत भगवान् नमि ऋषीश्वर मोक्षने अर्थं एकान्ते जई रह्या ४ क्रन्दित कलर मय गृहारामा दि नमि राजाने नगरी थको नीकलता लोक रोवालागा कोलाहल हुओ आसीत् मिथुलाया प्रव्रजन्त नमि मीथुला नगरीने विषे तिण प्रस्तावे दिक्षाने समे तस्मीन् प्रस्तावे राजर्षि जोवारे नमि राजाइ दिक्षा लोधी नमी प्रवज्य निर्गच्छति सतो नमि राज ऋषिने दीक्षाने अर्थे नीकलता थका ५ अभ्यु त्थित राजर्षि स थमने नमी राजऋषिने उठता थका प्रव्रज्या स्थान उत्तम उत्तम जे दीक्षातेहने विषेसक ब्राह्मण रूपेण आगत्य शक्रप्रमथदेवलोकथको आव्योब्राह्मणरूपधरीने नमीपासेआवीने इद वचनमब्रवीत् इन्द्रे एहवु वचन प्रश्न कीधु ६ किंइति प्रश्ने तु इति वितर्के भोइतिआमन्त्रणे अद्य मिथलाया

अभिनि:क्रामति सति गृहात् कुटम्बात्क्रोधमानमायादिभ्यो वा नि:सरति सति कथम्भूते नमी राजर्षौ राजा चासौ ऋषिश्च राजर्षिस्तस्मिन् राजर्षौ राज्यावस्थायां अपि ऋषिरिव ऋषि स्तस्मिन् राजर्षौ ५ अब्भुट्ठिय रायरिसि पव्वज्जाठाण मुत्तमं सक्को माहणरूवेण इमं वयण मब्बवी ६ नमि राजर्षिं शक्र: ब्राह्मणरूपेण इदं वचनमब्रवीत् कथं भूतं राजर्षिं उत्तमं प्रव्रज्याया स्थानं प्रव्रज्यास्थान ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणानां निवासं प्रति अभ्युत्थितं उद्यत मित्यर्थ ६ किंतु भो अज्ज महिलाए कोलाहलग संकुला सुव्वंति दारुणा सद्दा पासाएसु गिहेसुय ७ किं इति प्रश्नेतुप्रति वितर्के भो इति आमंत्रणे भो राजर्षे अद्य मिथिलायां प्रासादेषु देवगृहेसु भूपमन्दिरेषु च पुनस्त्रिकचतुष्क चत्वरादिषु दारुणा: हृदये उद्वेगोत्पादका विलापा: क्रन्दितादय: शब्दा किं नु श्रूयन्ते इति इन्द्रो राजर्षिं नमिं पृच्छति सेत्यर्थ: कीदृशा: शब्दा: कोलाहलकसंकुला: प्रव्यक्त शब्दव्याप्ता: ७ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारणचो ईओ तओ नमी रायरिसिं देविंदं इणमब्बवी ८ तत: इन्द्रप्रश्नानन्तरं नमी राजर्षिर्देवेन्द्रं इदं अब्रवीत् किं कृत्वा एतं अर्थं इत्यर्थं प्रतिपादकं शब्दं निशम्य श्रुत्वा कथंभूतो नमी राजर्षि: हेतुकारणाभ्यां चोदित प्रेरित: हेतुकारणनोदित: तत्र हेतु पञ्चावयववाक्यरूपं कारणञ्च येन विना कार्यस्य उत्पत्तिर्न भवति पञ्च अवयवा इमे प्रतिज्ञा १ हेतु २ उदाहरण ३ उपनय ४ निगमन ५ रूपा: पक्षवचनं प्रतिज्ञा १ साध्यसाधकं हेतु: २ तत्साद्दश

अज्जमहिलाए कोलाहलग संकुला। सुव्वंति दारुणा सद्दापासाएसु गिहेसुय।७॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारण

कोलाहलो राजा मीथुला नगरी कोलाहले व्याप्त: कोलाहले करी व्याप्त छे श्रूयते रौद्रा: शब्दास्ते कयं एहवा रौद्रशब्द किम सभलाइ छे प्रासादेषु च प्रसादनेविषे घरने विषे७ एतदर्थं श्रुत्वा एहवु अर्थसांभलीने पञ्चावयवमनुमानवाक्यं हेतु: अनन्यथा सिद्धनियतपूर्वभावित्वं कारणत्व तेन प्रेरीतहेतु पञ्चा वयवरूपप्रतिज्ञा हेतु२ उदाहरण२ उपनय४ निगमनानि५ ए पञ्चावयवरूपहेतु अने कारण तीणे प्रेरीयो तत. प्रश्नकृतानतर नमिराजर्षि ते प्रश्न कीधां

दर्शन उदाहरण ३ उदाहरणेन साध्येन च सयोजन उपनय ४ हेतु उदाहरणोपनयै साध्यस्य नियमीकरण निगमन ५ तथैव दर्शयति तव धर्मा र्थिन अग्रामनगरात् गृहात् कुटम्बादीनि सरण दीक्षाग्रहण अयुक्त इति प्रतिज्ञावाक्य कस्माद्धेतो आक्रन्दादि दारुणशब्दहेतुत्वात् इद हेतुवाक्य २ यत् यत् आक्रन्दादि दारुणशब्दहेतुक भवति तत् धर्मार्थिन पुरुषस्य अयुक्त किंवत् हिंसादिकर्मवत् यथा हिंसादिकर्म आक्रन्दादि दारुण शब्दहेतुक तत् हिंसादिकर्म च धर्मार्थिनोपि अयुक्त भवति इद उदाहरणवाक्य तस्मात् तथा तवापि धर्मार्थिनो नि सरण अयुक्त ४ इद उपनयवाक्य तस्मादाक्र न्दादि दारुण रौद्र शब्द हेतुत्वात् हिंसादि कर्मवत् सर्वथा तव गृहात् नगरात् कुटम्बात् नि सरण अयुक्तमेव ५ इति निगमनवाक्य इति पञ्चावयवात्मको हेतुरुच्यते कारण दर्शयति यत् यस्य पूर्व असतो वस्तुन उत्पादक तत् तस्य कारणभवतो गृहाभिनिःसरण दारुणशब्दकार्यस्य कारण ज्ञेय यदा भवत गृहाभि सण पूर्वजात तदा पश्चात् आक्रन्दादि शब्दलक्षण काय जात यदा भवतो दीक्षाग्रहण न स्यात् तदा आक्रन्दादिशब्दस्य कथ स्यादित्यर्थ एव हेतु कारणाभ्या इन्द्रेण प्रेरितो नमि राजर्षिरथ यदुवाचत्तदर्थ तनया गाथयाह ८ महिलाए चेइए वत्थे सीयच्छाए मणोरमे पत्तपुप्फफलोवेए बहुण बहुगुणेसया ९ वाएण हीरमाणम्मि चेइयम्मि मणोरमे दुहिआ असरणा अत्ता एए कदति भोखगा १० नमि राजर्षि कि अब्रवीदित्याह मिथिलायां नगर्या चैत्ये उद्याने भो एते खगा पक्षिण आक्रन्दन्ति कोलाहल कुर्वन्ति चिति पत्रपुष्पफलादीना उपचय चित्या साधुचित्य चित्यमेव चैत्य उद्यान

चोईओ । तओ नमीरायरिसी देविंद इणमब्बवी ॥८॥ मिहिलाए चेईएवच्छेसीयच्छाए मणोरमे । पत्तपुप्फफलोवेएबहु

पछी नमी राजऋषि प्रते देवेन्द्र एव अब्रवीत् देवेन्द्र इन्द्र इम कहतो हुओ ८ मीथलाया उद्याने हवे मीथुला नगरीने विषे चैत्यने विषे वृक्षने विषे सीतलछायायुक्त मनोरमाय्ये शीतलकाया के रमवायोग्य शीतलकरी के पत्रपुष्पफलोपेतो पत्रफल फलसहित के बहुना खगादीना लोकाना च बहुगुणे

तस्मिन् चैत्ये उद्याने एते उच्यमानाः खगाः विहगाः पूत्कुर्वन्ति कथम्भूते चैत्ये मनोरमेमनोज्ञे पुनः कीदृशेवृचे: सीतलच्छाये पुनः कीदृशैर्वृचैः पत्रपुष्प फलोपेतैः पत्रपुष्पफलैर्युक्तैः पुनः कीदृशे चैत्ये बहूनां खगानां बहुगुणे प्रचुरोपकारजनके इत्यर्थः एते खगाः क्रसति विलपति चैत्ये वृचे वातेन क्रिय माणे सति इतस्तत प्रचिप्यमाणे सति उद्याने देवगेहेच वृचे चैत्यमुदाहृतं इत्यने कार्थः कथंभूते चैत्ये मनोरमे मनोज्ञे कीदृशाः एते खगाः दुःखिताः पुन कीदृशाः अशरणाः पुनः कीदृशाः आर्त्ताः पीडिताः अत्र यत् स्वजना क्रन्दनं उक्तं तत् खगा क्रान्दनं स्वयं वृचकल्पः यावत्कालं तद्वृचस्य स्थिति रासीत् तावत्कालं भोगादिषु स्थिरता आसीत् ततश्च आक्रन्दादि दारुणशब्दानां अभिनिःक्रमणं हेतुत्वं असिद्धं स्वार्थहेतुकत्वात्तेषां स्वार्थंसीदमानं दृष्ट्वा एवं करोति सर्वोजन अतो भवदुक्तं हेतुकारणे असिद्धे एव एतेषां स्वजनानां मया स्वार्थभङ्ग· क्रतोनास्ति ममापि अतस्थाने एभिः स्वजनैः सह इयती एवस्थितिः केनाप्यधिकी कर्त्तुं न शक्यते तस्मान्मम मिथिलातो निःसरणं दीचाग्रहणं सर्वथा मिथिला वास्तव्यलोकानां आक्रन्द शब्दहेतुः कारणश्च

सूत्र

णंबहूगुणेसया ।९। वाएणहीर माणंमि चेईयंमि मणोरमे । दुहियाअसरणाअत्ताएएकंदंतिभोक्खगा ।१०। एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारण चोईओ । तओ नमिंरायरिसिं देविंदोइण मव्ववी ।११। एस मग्गीय वाउय एयं डज्झइ

भाषा

सदा घणा लोकने घणा गुणकारी छे ९ वा तेन इतस्ततः चाल्यमाने वायरेकरी हलाव्या छे एहवा वृचछे उद्याने मनोरमाख्ये चैत्यवृच मनोरमइ सेनामे दुःख प्राप्ताः शरणरहिताः पीडिताः दुखिय थका असरण थका शरणकोइनुं नथी पीडा दुखी छे ए आक्रन्दन्ति भो पचिणः ए पंखी इणे कारणे भो व्राह्मण आक्रन्दकरे छे १० एतदर्थं श्रुत्वा ए अर्थ सांभलीने हेतुभिः कारणैश्च प्रेरितः हेतु अने कारणे प्रेर्‍यो ११ एष अग्निः सवायु ए

ग टीका पा०८ २८१ नाम्बे रेवयं १० एवमहं निसाभित्ता हेउकारण चोइयो तमो नमिराय रिसि देविन्दोइण मब्बवी ११ ततस्तदनन्तरं देवेन्द्रो नमिराजर्षि प्रति इद वक्ष्यमाणमवचन मब्रवीत् कि तत्ता यत मय निगम्य कोदगो देवेन्द्र हेतुकारणाभ्यां प्रेरित मयया हेतुकारणयोर्विषयेनमि राजर्षिणा प्रेरित पृथ ह्वि इन्द्रेण नमि राजर्षि प्रति इतुम भो नमि राजर्षि एतेषां आक्रन्दादि दारुणशब्दहेतुत्वात् तव दोषापत्तेण भयत्र पुनर्मेषां आक्रन्दादिशब्दरूपकार्यस्य तत्र दोषापत्त्यं एवकारण इयुतो मति नमिराजर्षिणा च तेषां आक्रन्दादि दारुणशब्दस्य स्वार्थं एव हेतुकारणे उक्ते तेन प्रसिद्धोय भयदुःखौ हेतु कारणात्म्य निरुत्तेय इति राजर्षिणा इन्द्र प्रेरित मन् इद वचन नमिराजर्षि प्रति पुनरुवाचेवयं ११ एस अग्गीय वाउय एय डज्झत्ति मन्दिरं भयवं पत्ते उत्तेण कोमणं नावपेक्खाह १२ हे भगवन् एष प्रत्यक्षाग्निवायुश्च दृश्यते पुनरेतत् प्रत्यक्ष मन्दिर दहतो तवैवाभ्यागार तवगृह म जनति हे भग वन् तेन इति तत्र कारणेन अवसानं इति वाक्यालङ्कारे तत् अन्तःपुर राज्ञीवास कौमण इति कस्मात् कारणात् नोपेक्षसे नावलोकसे यत् यत् आत्म मोयस्य भवति तत्तत् योवलोक्य यथा आत्मीयं ज्ञानादि तथा इदं भवत अन्तःपुरं अपि ज्वलमान अवलोकनीय १२ एयमट्ठं ०हे तओ नमीरायरिसी देविन्द इणमब्बवी १२ अस्य गाथाया अर्थस्तु पूर्ववत् अयमेव विशेष नमिराजर्षिं देवेन्द्रस्य वचन श्रुत्वा देवेन्द्र प्रति इद अब्रवीत् १२ सुहं वसामो जीवामो जेसिंमो नत्थिकिंचण मिहिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचण १४ भो ब्राह्मण यथा सुख यथा स्यात्तथा वसाम सुख

मंदिरं । भयवं अंतेउरं तेणं कीसाणं नाव पेक्खइ ॥१२॥ एयमट्ठ निसामित्ता हेउ कारण चोइओ । तओ नमीराय

सूत्र आगिवायु सहित् यह छे एतदग्ने मन्दिरं ए तुम्हारा मन्दिर दाझे छे हे भगवन् अन्तःपुर ए तुम्हारो अतेउरी तणिना माहे दाझे छे कस्मात् त्वं अवलोकतो नथी जिम न भो जोता १२ एतदर्थं श्रुत्वा ए अर्थ सांभळीने हेतुकारणे प्रेर्यो १२ सुख यथा स्यात्तथा वसाम प्राणान् धारयाम भो

भाषा

त्तिष्ठामः सुखं यथा स्यात्तथा जीवाम प्राणान् धारयामः मोइति अस्माक किञ्चनमपि स्वल्पमपि ज्ञानदर्शनाभ्यां विना अपरं किमपि स्वकीयं नास्ति यत्किञ्चित् आत्मीयं भवति तत् विलोक्यते अग्नि जलाद्युपद्रवेभ्यो रक्ष्यते यदात्मीय न भवति तस्यार्थं केन खिद्यते यदुक्तं एगोमे सासओ अप्पानाण दंसण संजुओ सेसामे बाहिराभावा सव्वे संजोगलक्खणा १ तदेव दर्शयति मिथिलायां नगर्यां दह्यमानायां सत्यां मे मम किमपि न दह्यते इति हेतोः सर्वेपि स्वजन धनधान्यादयः पदार्थाः मत्तोऽतिशयेन भिन्ना एतेषां विनाशेनचास्माकं विनाश इत्यर्थः १४ चत्त पुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो

सूत्र

रिसी देविंदं इणमब्बवी ॥१३॥ सुहं वसामो जीवामो जेसिं मोनत्थि किंचणं । महिलाए डज्झमाणीए नमे डज्झइ किंचणं ॥१४॥ चत्त पुत्त कलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो पियं नविज्जए किंचि अप्पियंपि न विज्जए ॥१५॥ बहुं खुमुणिणो भद्दं अणगारस्स भिक्खुणो । सव्वओ विप्पमुक्कस्स एगंत मणुपस्सओ ॥१६॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊका

भाषा

ब्राह्मण सुखे वस छुं सुखे जीवुं छुं येषां अस्माकं नास्त्यल्पमपि किञ्चन जेह भणी माहरु काइ नथी मथिलायां दह्यमानायां मथिला नगरी दाझतां थकां न मम दह्यति किञ्चित् माहरु काइ दाझ तुं वलतुं नथी १४ त्यक्तपुत्रकलत्रस्य छांडा जिणे पुत्र कलत्र कहतां स्त्री निर्व्यापारस्य कृष्यादिरहित स्य भिक्षो गृहस्थना व्यापार थी रहित पिय न विद्यते किञ्चिद् प्रेम नथी किसी वस्तु उपरि अप्रीयं अपि न विद्यते कोइ वस्तु उपरि द्वेषपणिनथी १५ बहुखु निश्चयेन मुनीनां मङ्गलं साधुने घणुं भद्र कल्याण छे गृह रहितस्य भिक्षो गृहस्थनो व्यापार तिणे करी रहित साधु सर्वतः विप्रमुक्तस्य सघलो आरम्भ तिणे करी रहित छे एकांत मोक्ष चिन्तयत एकात मोक्ष मार्ग चिन्तवे छे १६ एतदर्थं श्रुत्वा ए अर्थ साभलीने हेतु कारणे प्रेरित हेतु

पिय न विज्जए किंचि अप्पियपि न विज्जए१५ एतादृगस्यभिचोर्भिक्षाचरस्य प्रियमप्रियञ्च किमपि न विद्यते कथम्भूतस्यभिचो त्यक्त पुत्रकलत्रस्य त्यक्तानि पुत्रकलत्राणि येन सत्यक्त पुत्रकलत्रस्तस्य परित्यक्त सुतभार्यस्य पुन कीदृशस्य निर्व्यापारस्य व्यापारात् निर्गतो निर्व्यापारस्तस्य निरारम्भस्य पञ्च विंशतिक्रियारहितस्य १५ बहु खु मुणिणो भद्द अणगारस्स भिक्खुणो सव्वओविप्पमुक्कस्स एगन्तमणुपस्सओ १६ खुइति निश्चयेन मुने साधोर्बहुभद्र प्रचुर सुख वर्त्तते कथम्भूतस्य मुने अनगारस्य नियतवास रहितस्य पुन कीदृशस्य मुने भिक्षया गृहीताहारस्य किं कुर्वतो मुने एकान्त अनुपश्यत एकएव अहं इत्यन्तो निश्चय एकान्तमेव निश्चय विचारयत एकत्व भावना भावयत पुन कीदृशस्य मुने सर्वत परिग्रहात् विप्रमुक्तस्य१६ एयमट्ठ ० हे० तओ नमीरायरिसि देविन्दोइणमब्बवी १७ इति नमिराजर्षेर्वचन श्रुत्वा देवेन्द्र पुनर्नमिराजर्षिं प्रतीद मब्रवीत् १७ पागार कारयित्ताण गोपुरट्टालगा णिय उसूलगसयग्घीओ तओगच्छसिखत्तिया१८ हे क्षत्रिय तत पश्चात् त्वङ्गच्छसिदीक्षाय गच्छेत्यर्थ किं कृत्वापूर्वं नगरस्य रक्षार्थं प्राकार कोट्ट कार यित्वा पुनस्तस्य प्राकारस्य गो पुराणि कारयित्वा प्रतोलीकथनात् एव अर्गला सहित या दृढ कपाटानि कारयित्वा पुनस्तस्यप्राकारस्यअट्टालकानि चकारयित्वा अट्टालकानि हि प्राकारकोट्टको परिवर्त्तीनि मन्दिरानि उच्यन्ते भुरजानां उपरिस्थ गृहाणि सप्तामस्थानानि कारयित्वा पुनस्तस्य प्राकारस्य उसूलग इति खातिका कारयित्वा तत्र प्रकारे शतघ्नी कारयित्वा शतघ्नीहि यन्त्रविशेषा याहि एक वार चालिता सत्य शतसंख्या

सूत्र रण चोइओ । तओ नमि रायरिसि देविंदो इण मब्बवी ॥१७॥ पागार कारइत्ताणं गोपुरट्टालगाणिय । उसूलग सय

भाषा जारणे प्रेर्यो १७ प्राकार कारयिला पछी नमी राजऋषि कोटकरी नवास खरा गोपुर प्रतोलद्वा राणि अट्टालक युद्धस्थानानि ते नगरेयुद्धस्था नक जे कोट उपरे बेसी जूद्ध करे खानि कास तप इत्यदचे पण यन्त्राणि खाइडी कली यन्त्राणी जत्रादीक करवाने तत गच्छ हे चत्रिय एत

कान् सुभटान् विनाशयति दूरमार कुहकवाण अराबादि पाषाण यन्त्रादीन् कारयित्वा पश्चात् व्रजेत् अत्र हे चत्रिय इति सम्बोधनं उक्तान्तेन चत्रियो हि रक्षाकरणे समर्थः स्यात् चतात् प्रहारात् भयात् त्रायते इति चत्रियः योहि चत्तियः स्यात् स पुर रक्षां प्रति चम एवस्यात् इति हेतोः चत्तियेति संबोधनं प्रोक्तं १८ एयमट्ठं० हे० तओ नमीरायरिसी देविन्द इणमब्बवी१९ इति देवेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा पुनर्नमि राजर्षि देवेन्द्रं प्रति इदं अब्रवीत् २९ सड्ढ नगरं किच्चा तव सम्बर मग्गल खन्ती निउण पागारन्ति गुत्तं दुप्पधं सगं २० धणुं परिक्कमं किच्चा जीवञ्च इरियं सयाधि इञ्चके यणं किच्चा सच्चेणं पलिमन्थए २१ तव नारायजुत्तेणं भित्तूणं कम्मकञ्चुयं मुणी विगयसङ्गामो भवाओ परिमुच्चइ २२ तिसृभि. गाथाभि' इन्द्रवाक्यस्य प्रत्युत्तरं ददाति भो प्राज्ञ मुनिजिन वचन प्रमाण कृत्वाधुर्भवात् संसारात् परिमुच्यते परिसमन्तात् मुक्त भवति मुक्ति सौख्य भाक् स्यात् कथम्भूतो मुनिर्विगत संग्राम विगतः संग्रामो यस्मात् स विगत संग्रामः सर्वशत्रूणां विजयात् संग्रामरहितो जात इत्यर्थः समुनिः किं कृत्वा विगत संग्रामो

सूत्र

रघीओ तओ गच्छसि खत्तिया ॥१८॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारण चोइओ। तओ नमी रायरिसी देविंदं इण मब्बवी ॥१९॥ सड्ढंच णगरं किच्चा तवसंवर मग्गलं। खंतीनिउणपागारं तिगुत्तं दुप्पधंसगं ।२०। धणुपरक्कमं किच्चा

भाषा

लावांना करी पछे जाइ जे १८ एतदर्थं श्रुत्वा एहवुं अर्थ सांभलीने हेतु कारणे प्रेरित १९ श्रद्धा तत्त्व वुद्धिञ्च नगरं कृत्वा तत्त्वनी सद्दहणाए नगर करीने ततः सवरं गोपुरार्गलां तपः अने सतरे भेदे संयमए अर्गलाकी माउ कीधा चमारूपीयोनगरने पासे गढ कोधी छे चमा रम्यं प्रकारे त्रिभि र्गुप्तभिः गुप्तं चिष्टतं त्रिहु गुप्ते करी गढ विप्रो छे २० पराक्रमं मयं धनुः कृत्वा पराक्रमरूप धनूख कीधा ते इर्या रूपं जीव प्रत्यञ्चा कृत्वा इर्या रूप

जात स्तदाह यद्धा तत्व श्रवण रुचिरूपां समस्त गुणाधारभूता भगवद्वचने स्थैर्य बुद्धि नगर कृत्वा तत्र श्रद्धा नगरे उपशम वैराग्य विवेकादीनि गो पुराणि कृत्वा इति अनुक्तमपि दृश्यते तपो द्वादशविध संयम सप्तदशविध अर्गला प्रधान कपाट अपि अर्गला ततोऽर्गला कपाट कृत्वा पुनस्तस्य श्रद्धानगरस्य क्षान्ति प्राकार कृत्वा चर्मा वप्र कृत्वा कथंभूत प्राकार निपुण परिपूर्ण धन धान्यपानीयादिभिर्भृता पुन कथंभूत प्राकारन्ति स्त्रिभिर्गुप्तिभिर्गुप्त रचित गोपुरोट्टालकोत्सूलक खातिका स्थानीयादिभो रचित पुन कीदृश प्राकार दुःप्रधर्षक शत्रुभिर्दुरा कलनीय पूर्व इन्द्रेण प्राकारादीन् कारयित्वेति उक्त तस्योत्तरमिदं प्रेय अधुना प्राकारादौ संग्रामोविधेय इत्याद्य मुनिर्विगत संग्रामः स्यात् विजयोस्यात् इत्यर्थं पराक्रम क्रियायां बलस्फोरण धनु कृत्वा च पुनस्तस्य धनुष सदा ईर्या ईर्या समितिर्जीवा प्रत्यञ्चा कृत्वा च पुनस्तस्य पराक्रम धनुषो धृति धैर्यं धमाभिरति केतन शृङ्गमय धनुर्मध्ये काष्ठ मुष्टिस्थान कृत्वा तत् केतनश्च स्नायुना दृढ बध्नते इदमपि धैर्यकेतन शृङ्गधनुर्मध्यस्यकाष्ठ

जीवच इरिय सया। धिइ च केयणा किच्चा सच्चे ण पलिमथए।२१। तवनाराय जुत्तेण भित्तूणकम्म कंचुय। मुणीविगय संगामो भवाओ परिमुच्चई ॥२२। एयमट्ठं निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ। तओ नमिरायरिसिं देविंदो इण

धनुषनो प्रत्य चा तातो कोधो धृति सन्तोष मुष्टि कृत्वा धनूर्मध्यधृतसन्तोष मूठि कीधो धनूषनो मध्यभागे सत्येन बध्नीयात् बन्धे वेष्टयेत् सत्यवचनें करोने तेह मूठीने लपेटे बन्धने दोये २१ तपोमय लोहबाणयुक्तइ नबारे भेदे [illegible] तेहज हुओ लोहनो बाण तीर भित्वा विदार्य कर्मकंचुक कर्मसनाह इणे तीरे करी कर्म कंचुककर्म सन्नाह भेदे मुनि विगतसंग्राम मुनीश्वर संसारसम्बन्धी संग्राम अणकरतो थको भवात् संसारात् परिमुच्यते संसार थको

सत्वेन स त्वरूपस्नायुना पलिमन्थए इति परिबध्नीयात् पुनस्तप एवनाराचो लोहमय बाण स्तपो नाराचयुक्तस्तेन तपो नाराचयुक्तेन तेन पूर्वोक्तेन ध्पराक्रम धनुषा कर्म कञ्चुकं कर्मसन्नाहं भित्वा अत्र कर्मकञ्चुक ग्रहणेन आत्मा एव उद्धत' अचुन्स एव बोद्धव्य: तस्यैव कर्मकञ्चुकं कर्मसन्नाह भेद्यं इत्यर्थ: कर्मणस्तु कञ्चुकत्वं तद्गत मिथ्यात्व विरति कषायोदय भाज आत्मन यत्रा नगरस्य रोधं कुर्वत: दुर्निवारत्वात् कर्मकञ्चुकभेदात् तस्यात्मनोजितत्वात् जितकाम्रोजात एवप्राकार कारयित्वेत्यादि तस्य साधनता प्रोक्ता २२ एयमट्ठं० हे० तओ नमिंराय रिसिन्देविन्दो इण मव्ववी २३ एतन्नमिराजर्षेर्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रो नमिराजर्षि मति इदम ब्रवीत् २३ पासाए कारइत्ताणं वद्धमाण गिहा णिय वालग्गपो इयाओय तओ गच्छसि खत्तिया २४ हे चत्रियतत: पश्चात् त्वज्ञ इ कि छत्वा प्रासादान् कारयित्वा भूपयोग्य मन्दराणि कारयित्वा पुन वर्धमानगृहाणि अनेकधा वास्तुविद्यानिरूपितानि वर्धमानगृहाणि कारयित्वा पुनर्वर्धमानगृहाणि वालाग पोतकानकारयित्वा वलभी: कार यित्वा गृहोपरि बद्धनारउटी प्रमुखा: कारयित्वेत्यर्थ' गत्वा वालाग पोतिका: जलमध्य मन्दिराणि कारयित्वा पश्चात् मुगदानि गृहाणि कारयित्वा पश्चाद्गन्तव्य मित्यर्थ: ५४ एयम ०हे० तओ नमिरायरिसो देवेन्दं इणमव्ववी२५ ततो नमिराजर्षि रिन्द्रस्य वचन श्रुत्वा देवेन्द्रं प्रत्यब्रवीत्२५ संसयं खलुसो कुणइ जो मग्गे कुणईघरं जत्थेव गन्तुमिच्छिज्जा तत्थ कुव्विज्ज सासयं२६ भो प्राज्ञ सत्पुरुष संशयं एव कुरुते, पुरुषोमार्गे गृहं कुरुते यो हि एवं जानाति

मव्ववी ।२३। पासाए कारइत्ताणं वद्धमाणं गिहाणिय । वालग्गपोइयाओय तओ गच्छसि खत्तिया ।२४। एयमट्ठं

सुकाइ २२ एतदर्थं श्रुत्वा एहवो अर्थ सांभलीने हेतु कारणे' प्रे रित २२ प्रासादानि कारनित्वा प्रसादकरावीने वर्धमान गृहाणि वर्धमानघर ऊपर घर करावीने वस्तु विद्या पोतिका च देशभाषाइ क्रीडा स्थानानि वानुक ग्रन्थने विषे जे घर कश्यो के तत: गच्छ हे क्षत्रिय: तिवार पछे हे चत्रिय तुं

मम कदाचिद्गमन न भविष्यति सएव मार्गे गृह कुर्यात् अत्र गृहकरण तु मार्गस्थानमेवज्ञेय यस्य तु गमनस्य निश्चयो भवेत् समार्गे गृह न कुर्यादेव अहन्तु नसशयित मम सशयोनास्ति इति ह्यहं सम्यक्त्वादि गुणयुक्तानां मुक्तिनिवासयोग्यत्वेन यत्रैव गन्तु इच्छेत् तत्रैव स्वाश्रय रूपगृह अथवा सा सय इति शाश्वत अविनश्वर गृह कुर्यादित्यर्थं २६ एयमट्ठ हे० तओ नमिराय रिसिन्दे विन्दी इणमव्ववी २७ तत पुनर्देवेन्द्रो नमिराजर्षिवचन श्रुत्वा नमिराजर्षि प्रतीद वचनमब्रवीत् २७ आमोसे लोमहारेय गण्ठिभेयेय तक्करे नगरस्स खेम काऊण तओ गच्छसि खत्तिया २८ हे क्षत्रियत्व ततस्त्वद

सूत्र

निसामित्ता हेउ कारण चोईओ तओ नमी रायरिसिं देविंद इण मव्ववी ॥२५॥ ससय खुसो कुणईजो मग्गेकुणई घर। जत्थेव ग तुमिच्छेज्जा तत्थ कुव्वेज्ज सासय ॥२६॥ एयमट्ठ निसामित्ता हेउ कारण चोईओ। तओ नमि राय रिसि देविंदो इण मव्ववी ॥२७॥ आमोसे लोमहारेय ग ठिभेएय तक्करे। नगरस्स खेम काऊण तओ गच्छसि ख

भाषा

जाणे २४ एतदर्थं निशम्य श्रुत्वा एहवो अर्थ साभलीने हेतुकारणे प्रेरिता २५ नमी राजा बदेत् हे ब्राह्मण स पुमान सशय कुरुते ते पुरुष सन्देहवारे जे मार्गे गृह करोति जे मार्ग माहे घर करे यत्रैव गन्तुमिच्छेत् तेह नगरने विषेज जावो वाछे तत्रैव कुरुते शाश्वत गृह मुक्तिरूप मुक्तरूप शाश्वते घरे जाइ तिहा घर करे विचे घर कुण करे २६ एतदर्थं निशम्य श्रुत्वा एहवो अर्थ साभलीने हेतुकारणे प्रेरित २७ आसमन्तात् मुष्णातीति आमोषकान् लोमाहारान् प्राणीन् जे लोकने मूसे चोरी करीने माणस मारे वाट लूटेधाडपाडे ग्रन्थिभेदकान तस्करान् गठी छोडा चोर प्रति नगरस्य खेम कृत्वा एहवा चोर निवारीने नगरने खेम कल्याण करीने तत गच्छ हे क्षत्रिय तिवार पछी हे क्षत्री तु जाजे २८ एतदर्थं निशम्य श्रुत्वा एअर्थ

उ०टीका अ०९ २९०

नन्तरं गच्छेः किं कृत्वा नगरस्य चेमं कृत्वा तत्र नगरे आमोषालो महारा: च पुनर्ग्रंथि भेदास्तस्करा: खातपातका लुण्टका विद्यन्ते तान् नगरात् बहि निःकास्य सुखं कृत्वा पश्चात्त्वं दीक्षा गृहीतव्या आमोषादयोहि एते तस्कराणां भेदा संति आसमन्तात् मुष्णन्ति चोरयन्ति इत्यामोषास्तान् निवार्यं लोमहरास्ते उच्यन्ते ये अति निर्दयत्वेन परस्य पूर्वं प्राणान् हत्वा पश्चात् द्रव्यं गृह्णन्तितिलोमहारा लोमात्मना पट्टसूत्र मयपाशेन प्राणान् हरन्तीति लोमहारा पाशवाहकास्तान् निवार्यं पुनर्ग्रन्थिद्रव्य ग्रन्थिं घुर्घुरक कर्त्तिका क्षुरकादि प्रयोगेण भिन्दन्ति विदारयन्तीति ग्रन्थिभेदा स्तान् सर्वान् तस्करान् निराकार्यं नगरं तस्कररहितं कृत्वा पश्चात्परिव्रजे रित्यर्थः २८ एयमट्ठं० हे० तओ नमी रायरिसी देविन्दं इणमब्बवी २९ तत एतद्वचनं श्रुत्वा इन्द्रं प्रति नमिराजर्षि रिदमब्रवीत् २९ असइन्तु मणुस्सेहिं मिच्छादण्डोप जुञ्जए अकारिणत्थ वज्झंन्ति मुच्चई कारगोजणो ३० असकृद्वारं २ मनुष्यैर्मिथ्या वृथैव अपराधरहितेषु निरपराधिजीवेषु ज्ञानादण्डकारा इादण्डः प्रयुज्यते यतोहि अत्र संसारे अकारिण आमोषादि क्रूरकर्म्मणां अकर्त्तारो बध्यन्ते कारकाय आमोषादीनां क्रूरकर्मणां कर्त्तारश्च जनामुच्यन्ते अनेन तेषां तु मात्

सूत्र

त्तिया ॥२८॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेउ कारण चोइओ । तओ नमी रायरिसी देविंदं इण मब्बवी ॥२९॥ असइं तु मणुस्सेहिं मिच्छादंडो पजुंजई । अकारिणोत्थ वज्झंति मुच्चई कारओ जणो ॥३०॥ एयमट्ठं निसामित्ता हेउकारण

भाषा

सांभलीने हे तूकारणैः प्रेरितः २९ असकृत् बारंवार मनुष्ये असयंवार वार मनुष्ये मिथ्या दण्डः प्रयुज्यते झूठा दण्ड करे छे अकारिणो निरापराधी बधांते जे निरपराध छे चोरी न थी करता तेहने मारेछे चौर्यकारको जनः मुच्यते छुट्यते जे मनुष्य चोरी करे ते मुकाइ छे छूटे छे ३० एतदर्थं

उ०टीका
अ०९
२९१

सम्यक्त्वेन धेमकरणस्याप्यऽग्रकत्व प्रोक्त यत् इन्द्रियाणि श्रामीपतुल्यानि ग्रेयानि तान्येवजेयानि २० एयमट्ठ हे० तओ नमिराय रिसिन्दे विन्दो इणमब्ववी २१ तत पुनर्देवेन्द्रो नमिराजर्षिं प्रति इद अब्रवीत् २१ जे केइपत्थिवा तुब्भ ना न मन्ति न राहिया वसेते ठावइत्ताण तओ गच्छसि खत्ति या २२ हे नगराधिप ये केचित् पार्थिवा राजान तुभ्य न नमन्ति तान भूपालान् वशे स्थापयित्वा ततो हे क्षत्रियत्व गच्छ२२ एयमट्ठ० हे० तओ नमो रायरिसो देविंद इणमब्ववीत् २३ ततो देवेंद्र वचनान्तर नमि राजर्षि देवेन्द्र प्रत्य ब्रवीत् २३ जो सहस्स सहस्साण सगामेदुज्जए जिणे एगजिणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ २४ यो मनुष्य सग्रामे सुभट सहस्राणां

सूत्र

चोईओ। तओ नमिराय रिसिदेविंदोइण मब्बवी ॥२१॥ जे केइपत्थिवातुब्भ ना णमंति नराहिवा। वसे ते ठावइत्ताण तओगच्छसिखत्तिया ॥२२॥ एयमट्ठ निसामित्ताहेउ कारणचोईओ। तओनमीरायरिसी देविंदइण मब्बवी ।२३। जो सहस्स सहस्साण सगामेदुज्जएजिणे। एग जिणेज्जअप्पाण एससेपरमोजओ ॥२४॥ अप्पाणमेवजुज्झाहि किंतेजुज्झे

भाषा

निशम्य श्रुत्वा एहवु अर्थ साभलीनेहेतु कारणे प्रेरित २१ जेकेचित् पार्थिवा तुभ्य हे राजन् जे केइ राजा तुझने न नमन्ति हे नराधिप नथीमाने ताहरी आज्ञा माहि नही वर्त्ते छे वशे तान् स्थापयित्वा तेहाने आपणे वश करि तत गच्छ हे क्षत्रिय हे क्षत्रिय एकार्य करिने जाजे२२ एतदर्थंनिसम्य श्रुत्वा एहवु अर्थ साभलीने हेतु कारणे प्रेरित २३ य सहस्र सहस्राणि दशलक्षाणि जे सुभटसग्रामने विषे रलने विषे दुर्जयान् जयति दुर्जन ते खल तेहने जीते आपणे वशि करे एक आत्मान जयति एककोइ पुरुष आपणा आत्माने जीते एष तस्य परमो जय जे आपणा आत्माने जीते ते परम

उ०टीका
अ०९
२९२

सहस्रं जयेत् कथभूते संग्रामे दुर्ज्जये अथवा कथभूतं सुभटसहस्राणां सहस्रं दुर्ज्जयं दुःखेन जयो यस्य तत् दुर्जयं यः कश्चित् एकः एतादृश सुभटः स्यात् यः सुभटानां दशलक्ष जयेत् एकः पुन एतादृशः पुरुषः स्यात् य आत्मानं दुष्टाचारे प्रवृत्तन्तेन सह युध्येत् आत्मना सहयुद्धं कुर्यादित्यर्थ एष आत्मविजयः से इति तस्य आत्मजयिनः परम उत्कृष्टो जय प्रोक्तः कीर्थः योहि आत्मविजयी पुमान् भवति तस्य पुरुषस्य दशलक्ष सुभटविजयनः पुरुषात् महान् जयवादः दशलक्ष सुभटजेतुः सकाशात् आत्मविजयी पुमान् वलिष्ठ इत्यर्थः ३४ अप्पाणमेव जुज्झाहि किन्ते जुज्झेण बज्झओ अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ३५ ततश्च आत्मनासहैवं युध्यस्व तव वाह्येन युद्धेन वाह्य संग्रामेण किं न किमपीत्यर्थ वाह्य पार्थिवादि विजयो व्यर्थ एवेत्यर्थः आत्मना एव आत्मानं जित्वा मुनि सुखं एधते प्राप्नोतीत्यर्थः अत्र आत्माशब्देन मन सर्वत सूत्रकालाच्च पुंसकत्व पतति गच्छति प्राप्नोति नवीनानि २ अध्यवसाय स्थानां तराणीत्यात्मा मन उच्यन्ते ३५ पश्चिन्द्रियाणि कोहं माणं मायन्त तहेव लोहश्च दुज्जयञ्चेव अप्पाणं सव्वमप्पे जिए जियं ३६ भो प्राज्ञ आत्मामन एव दुर्जयं तस्मिन् आत्मनि जिते सर्वं एतत् जितं एतत् कि किन्तदाह पञ्चइन्द्रियाणि च पुनः क्रोधोमानो माया तथैव लोभश्चैका रात् मिथ्यात्वा विरति कषायाद्रिक एतत्सर्वं अरिचक्रं आत्मनिजिते जितं इतिज्ञेयं यत्पूर्वं ये केचित्पार्थिवा ननमा इत्युक्तं तस्योत्तरं प्रोक्तं ३६

सूत्र

णाबज्झओ । अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेए ॥३५॥ पंचिंदियाणि कोहंमाणं मायंतहेवलोहंच । दुज्जयंचेव अप्पा

भाषा

जइ वडो सुभट ३४ आत्मानेव सह युद्धं कुरु आपणे आत्मा सघाते युद्ध करो ते तव वाह्य युद्धेन किं तुम्हारे वाह्य युद्ध संग्रातेस्युं काम आत्मानेव आत्मानं आपणो आत्मा आपें ज आत्माने जीपे जीत्वा सुखं प्राप्नोति जीतीनें सुख पामे ३५ पञ्चेन्द्रियाणि क्रोधश्च पांचे इन्द्रीने क्रोध मानमाया तथैव लोभ च तिमज लोभ एव आत्मा दुर्जयः इणि करीने आत्मा दुर्जय छे जेजीतवो दोहिलो छे सर्वमपि आत्मानि जिते सति सर्वं जीतं एक आत्मा जीपे

एयमट्ठं ३० तओ नमिराय रिसिन्दे विन्दो इणमब्ववी३७ एतद्वचन श्रुत्वा इन्द्र पुनर्नमि राजर्षि प्रतीद अब्रवीत्३७ जइत्ता विउले जन्ने भोइत्ता समण माहणे दया भुञ्चाय जट्ठाय तओ गच्छसि खत्तिया ३८ रागद्वेषयोस्त्याग निश्चित्य अथ जिन धर्मेस्थैर्य परीक्षितु इन्द्र प्राह भो क्षत्रिय तत पश्चात्त्व गच्छ कि कृत्वा विपुला विस्तीर्णान् यज्ञान् याजयित्वा विस्तीर्णान् यज्ञान कारयित्वे त्यर्थ श्रमण ब्राह्मणान् भोजयित्वा पश्चात् श्रमण ब्राह्मणादिभ्यो गवादीन् दत्वा च पुनर्भुक्त्वा शब्दरूप रसगन्धस्पर्शादि विषयान् भुक्त्वा राजर्षिलेन स्वयमेवयागाने इष्ट्वा यज्ञान् अश्वमेधादीन् कृत्वा यत् प्राणिना

सूत्र

ण सव्वमप्पे जिएजिय ।३६। एयमट्ठ निसामित्ता हेउ कारणचोइओ। तओ नमिरियरसि देविंदो इणमब्बवी ।३७। जइत्ताविउले जन्ने भोइत्ता समणमाहणे । दच्चा भोच्चा यजट्ठायतओ गच्छसि खत्तिया ।३८। एयमट्ठ निसामित्ता हे० उकारण चोइओ । तओ नमी रायरिसी देविदइण मब्बवी ।३९। जो सहस्स सहस्साण मासेमासे गवदए । तस्सावि

भाषा

जीत्यो तेणे सर्व जीत्य ३६ एतदर्थ निशम्य श्रुत्वा एहवो अर्थ साभलीने हेतु कारणे प्रेरीत, ३७ यजित्वा कृत्वा विपुलान् यज्ञान अहो क्षत्रिय यज्ञ विपुल विस्तीर्ण करीने भोजयित्वा श्रमण ब्राह्मणान् श्रमणशाक्यादि ब्राह्मवेदना जाण तेहने जीमाडीने दत्वा स्वर्णादि भुक्त्वा भोमान् जिष्ठाय स्वय यज्ञ कृत्वा स्वर्णादिकदे इने भोग भोगवीने त्याग करीने जेष्ठाय जेष्ठेभ्य पूज्येभ्य तत गच्छ हे क्षत्रिय पछे तु जायजे हे क्षत्रिय ३८ एतदर्थ निशम्य श्रुत्वा ए अर्थ साभलीने हेतुकारणे प्रेरित ३९ य सहस्र गुणित दशलक्षरूप जे पुरुष दशलाख मासे मासे गवा दद्यात् गाय मासे मासे दीये छे तस्मादपि स जम श्रेय तेहदेवा थको पोण सजम श्रेय सजम भलो साधुने यद्यपि किञ्चित् न ददाति यद्यपि साधु काइ नही देताछे तो पणि सजमश्रेय ४०

प्रीतिकरं स्यात् तत् धर्मायस्यात् यथा अहिंसादि तथा अमूनि यजापन भोजन दान भोगयजनादीनि धर्मायस्युरित्यर्थ ३८ एयमट्ठं० हे० तओ नमी रायरिसिं देविन्दं इणमब्ववी ३९ ततः पुनर्नमि राजर्षिं देवेन्द्रं प्रतीदं अब्रवीत् ३९ जो सहस्सं सहस्साणं मासे मासे गवन्दए तस्साविसञ्जमो सेओ अन्दितस्स विकिञ्चणं ४० यः गवां सहस्राणां सहस्रं अर्थाद्दशलक्षं गवां मासे मासे दानपात्रेभ्यो दद्यात् तस्यैवं विधस्य गवां दशसहस्रदाय कस्यापि तस्मात् गवां दानात् साधोः संयमः आश्रवादिभ्यो विराग श्रेयान् अतिशयेन प्रशस्यः अत्र साधोरितिपदं अध्याहार्यं कीदृशस्य साधो किञ्चित्स्वल्पं वस्तु अपि अददानस्य अदातुरित्यर्थः ४० एयमट्ठं० हे० तओ नमिंराय रिसिन्देविन्दो इणमब्ववी ४१ एतत् पूर्वोक्तमर्थं श्रुत्वा नमिंराजर्षिं प्रतिदेवेन्द्रः पुनर ब्रवीत् ४१ घोरा समञ्च इत्ताणं अन्नं पत्थेसि आसमं इहेव पोसहरओ भवाहि मणु आहिव ४२ अथ चतुर्णामाश्रमाणां मध्ये प्रथमं गृहस्थाश्रमं एव वर्णयति प्रव्रज्यां दार्ढ्यं च परीक्षयति भो मनुजाधिप घोराश्रमं गृहस्थाश्रम त्यक्त्वा अन्यं भिक्षुकाश्रमं प्रार्थयसि घोरो हीनसत्वैर्नरै निर्वोढुमशक्यः आश्राम्यते विश्रामो गृह्यते यस्मिन् स आश्रमः आश्रमाश्चत्वारः ब्रह्मचारी १ गृही २ वानप्रस्थ ३

संजमोसेओ अदिंतस्सवि किंचणं ।४०। एयमट्ठं निसामित्ता हेउकारण चोईओ । तओ नमिंरायरिसिं देविं दो इण मब्ववी ॥४१॥ घोरासमंचइत्ताणंअन्नंपत्थेसिआसमं । इहेवपोसहरओ भवाहिमणुयाहिव ॥४२॥ एयमट्ठं निसामित्ता

एतदर्थं निशम्य श्रुत्वा ए अर्थं सांभलीने हेतु कारणैः प्रेरितः ४१ घोराश्रमं गृहधर्मरूपं त्यक्त्वा घोर दोहिलो गृहस्थाश्रम छोडीने अन्यमाश्रम प्रार्थयसि अनेरो आश्रम प्रार्थे छे इहेव पोष धरती इहांज घरने विषे रत सावधान होइ अहो मनुजाधिप राजन् अहो नमी राजा अधिपती ४२ एतदर्थं

भिक्षुकपा ४ तत्र गृहिणां आश्रमो हि दुरनुचर पालयितुमशक्य स्त परित्यज्य अन्य अपर हीनबलानां कातराणां सुखेन उदरभरणसमर्थं भिक्षूणा आश्रम वाञ्छसि यत् उक्त गृहाश्रमसमो धर्मो न भूतो न भविष्यति पालयन्ति नरा शूरा क्लीवा पाषण्डमाश्रिता १ सुदुर्बहं परित्याय घोरं गार्हस्थ्यमाश्रमं मुण्डनग्न जटावेषा कल्पिता कुक्षिपूर्त्तये २ सर्वत सुन्दरा भिक्षा रसा यत्र पृथक२ स्यादेकयामिकी सेवा नृपत्वं सामयामिक ३ तस्मा दिह कातराणां आचरित भवादृशानां शूराणां न योग्य इति भाव इहैव अत्रैव गृहस्थाश्रमे पौषधे रत चातुर्दशी पूर्णिमोद्दिष्टामावस्याष्टम्यादितिथिषु उपवासादिरतो भव अणुव्रतोपलक्षण चैतत् अस्योपादान पर्वदिनेषु अवश्य तपोनुष्ठानख्यापक यत् यत् घोर दुष्कर तत् धर्मार्थिना नरेण अनुष्ठेयं यथा अनशनादि इति अत्रार्थे हेतुकारणे स्वयमेव प्रेर्ये४२ एयमट्ठ ० हे०तओ नमीरायरिसी देविंद इणमब्बवी४३ अथ नमि राजर्षि देवेन्द्र प्रतिगृहस्थाश्रमा त्भिक्षुकाश्रमे अधिकलाभ दर्शयति धर्मव्यापारपरो हि अधिकलाभ दृष्टिर्भवेत् ४३ मासे२ जओ बालो कुसग्गेण तु भुंजए न सो सुअक्खायधम्मस्स कलिं अग्घइ सोलसिं ४४ य कश्चिदसौ निर्विवेकी नर मासे२ कुशाग्रे एव भुङ्क्ते नतु कराङ्गुल्यादिना भुङ्क्ते यथा य कश्चित यावत् भोजनादि कुशस्य दर्भ स्याग्रे अधितिष्ठति तावदेव भुङ्क्ते अधिक न भुङ्क्ते अल्पाहारी स्यादित्यर्थ अथवा यो बालोऽज्ञानी मासे२ कुशाग्रे एव भुङ्क्ते कुशाग्रेण आहारदत्ति

हेउ कारण चोईओ तओ नमी रायरिसी देविंदइण मब्बवी ।४३। मासेमासेउ जो बालो कुसग्गेणतु भुंजए । न

निशम्य श्रुत्वा बलवो अर्थ शांभलीने हेतु कारणे प्रेरित ४३ मासे मासे य बाल मूर्ख मास मास खमण कोइ एक आत्मानो मिथ्या दृष्टी करेछे कुशा ग्रमात्र नाधिक भुङ्क्ते पारणे मास खमणने जेतलीडाभनो अग्रभागे आवे तेतलो खाइ स य ताख्यातचारित्रधर्मस्य भगवन्तनो भाख्यो चारित्र रूपधर्म

उ०टीका
अ०९
२८६

कुर्यात् अन्नं न किमपि भुंक्ते इत्यर्थः एताहक् कष्टानुष्ठानकारी सोपि स्वाख्यातधर्मं षोडशीं अपि कलां न अर्घति न प्राप्नोति सुष्ठुनिरवद्यं आख्यात स्वाख्यातस्तस्य स्वाख्यातस्य जिनोक्तस्य सयम धर्मस्य चारित्रस्य यः षोडशोभाग स्तत्तुल्योपि अज्ञानी लाभालाभस्य अज्ञः कुशाग्रभोजी नस्यादित्यर्थः तस्मादृहे तिष्ठतस्तप कुर्वतो बालस्य यथा ख्यात चारित्र पालकस्य साधोर्महदन्तरं गृही अतीव धर्मात्मा भवति तथापि सर्वसावद्यत्यागी न भवति देश विरत एव स्यात् तस्मात् सर्वं निरवद्यत्वात् जिनोक्तत्वात् मोक्षार्थिना निरवद्य धर्म एव आश्रयणीयः सावद्यस्तु न आश्रयणीयः आत्मघातादि वत् ४३ एयमट्ठं० हे०तओ नमिंरायरिसिं देवेन्दो इणमब्ववी ४४ तत पुनर्नमिराजर्षिं प्रति देवेन्द्र इदमब्रवीत्४४ हिरणं सुवणं मणिमुत्तं कंसं दूसञ्च वाहणं कोस वड्ढावइत्ताणं तओ गच्छसि खत्तिया ४५ अथ द्रव्यलोभ त्यागं परीक्षितुमाह हे क्षत्रिय हिरण्यं घटिते स्वर्णं सुवर्णं अघटितं मणयश्चन्द्र कान्त्याद्याः इन्द्रनीलाद्याः वामुक्तं मुक्ताफलं कास्यङ्कांश्य भाजनादि दूष्यं वस्त्रादि वाहनं रथाश्वादि कोशं भाण्डागारं एतत् वृद्धिं प्राप्य वर्द्धयित्वा ततस्त्वं

सूत्र

सोसुअक्खाय धम्मस्सकलं अग्घइ सोलसिं ।४४। एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारण चोईओ । तओनमि रायरिसिं देविं दोइण मब्बवी ॥४५॥ हिरणं सुवणं मणिमुत्तं कंसं दूसंच वाहणं । कोसं वड्ढावइत्ताणं तओ गच्छसि खत्तिया ।४६॥

भाषा

तेहने षोडशीं कलां न अर्घयन्ती न प्राप्नोति सोलमी काला एने पोहचे नहीं ४४ एतदर्थं निशम्य श्रुत्वा एहवो अर्थ सांभलीने हेतुकारणैः प्रेरित ४५ रुप्यं सुवर्णं इन्द्रनीलाद्या मुक्ताफलं रूपुं सोनुं मणि इन्द्रनीलादि कांस्यं वस्त्रं रथ्यादिक थाली चरवी वस्त्र वाहण वहल प्रमुख भण्डारं वृद्धिं नीत्वा भण्डार भरीने भण्डारवधारीने ततः गच्छ हे क्षत्रियः तिवार पछी जाजे तुं हे क्षत्रियः ४६ एतदर्थं नीशम्य श्रुत्वा ए अर्थ सांभलीने हेतुकारणैः

दीघार्वे गच्छ यवाय मामय य अपरिपूर्णेच्छो भवति स धर्मानुष्ठान योग्यो न भवति यथा मम्मण अपरिपूर्णेच्छोहितवान् सा कांची भवति ४५ एयमट्ठ० हे तस्रो नमीरायरिसी देविन्द इणमब्ववी ४६ एतत् वचन श्रुत्वानमिराजर्षिं देवेन्द्र प्रति पुनरब्रुवीत सुवण रुप्यस्स यपव्वयाभवेसियाहु केलास समा असङ्खया नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि इच्छाहु आगाससमा अणन्तिया४८ पुढवीसाली जवाचेव हिरण पसुभिराह पडिपुन्न नालमेगस्स इइ विज्जा तवचरे ४९ सुवर्णस्य तु पुन रूप्यस्य च असख्यका बहव कैलाशसमा अतुला स्यु कदाचि बहुयस्मात कारणात्पर्वता भवेयु तदापि लुब्धस्य लोभ ग्रस्त नरस्यतै कैलाश पर्वत प्रमाणै स्वर्ण रूप्य पुञ्जै नंकिञ्चिदित्यर्थ लोभवत पुरुषस्य कदापीच्छा पूर्त्ति नस्यात् इइति निश्चयेन इच्छा आकाशसमा अनन्तिका अपारा ४८ पुनरिच्छाया एव आनन्त्यमाह पृथिवी समुद्रान्ता शालय कलमाषाष्टिक लोहितादेव भोज्यादय स्तण्डुला यवधान्यानि च शब्दात् अन्यान्यपि गोधूम मुद्गादीनि हिरण्य सुवर्ण घटितदीनारादि द्रव्य हिरण्यग्रहणेन अन्या अपि ताम्रकांस्यरीरादिधातव पशुभिर्गवाश्वगज

एयमट्ठ निसामित्ता हेऊ कारण चोइओ। तओ नमी रायरिसी देविन्दं इण मब्ववी ॥४७॥ सुवण्ण रुप्प स्सय पव्वयाभवे सियाहु केलास समाअसखया। नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि इच्छाहु आगाससमा अणन्तिया ॥४८॥

प्रेरित ४७ सुवर्णरूप्यस्य पर्वत प्रमाणा राशयो भवेयु सोनारूपानो पर्वतप्रमाण राशिढिगलो हुओ स्यात्निश्चित कैलाशपर्वतसमाना असख्याता मेरु पर्वत तुल्या मेरु पर्वतसरीखा असख्याती सोना रुपाना पर्वत नरस्य लुब्धस्य नतै कैलाससमै सुवर्णादिकिञ्चित् लोभी आपुरुपने दीजे तोही सन्तो पन पामे इच्छा ई निश्चित आकाशसमा अनन्ता द्रव्य असख्याता तृष्णा अनन्ती आकाशवत् ४८ पृथ्वीशालयो यवाय ए सघली पृथ्वी शालि जव सोना

खरीष्टादिभि सह प्रतिपूर्णं समस्तं एव एकस्य पुरुषस्य इच्छा पूर्त्तयेन अलं न समर्थ भवति इइ इति एतत् विदित्वा साधुस्तपश्चरेत् तपः कुर्यात् इच्छानिरोध एव तपस्तत् विदध्यात् तपसा एव इच्छा पूर्त्तिः स्यात् तथाच सति सा कांचत्वं असिद्ध संतुष्ट तया मम चाकांचणीय वस्तु न एव अभावात् ४९ एयमट्ठं० हे०तओ नमिंरायरिसिं देविन्दो इणमव्ववी ५० अथ पुनर्नमि मुनि प्रतिदेवेन्द्र इदं आह अच्छेरग मम्भुयए भोए च यसिपत्थिवा असन्ते कामे पत्थेसि संकप्पेण विहन्नसि ५१ हे पार्थिव एतत् आश्चर्यं वर्त्तते यत्त्वं एवम्विधोपि अद्भुतान् रमणीयान् भोगान् त्यजसि भोगत्यागाय असतोऽविद्यमानान् अप्रत्यक्षान् कामान् विषयसुखानि स्वर्गापवर्ग सौख्यानि प्रार्थयसे एतत् अपि आश्चर्यं अथवा तवात्मकोदोषः अतिलोभस्य विजृम्भितं एतत् अलब्ध प्रधान प्रधानतर भोग सुखाभिलाष रूपेण विकल्पेन विहन्यसे विबाध्यसे अदृष्ट स्वर्गापवर्ग सुखलोभेन प्रत्यक्षाणि भोगसुखानि लब्धा

सूत्र

पुढवी साली जवा चेव हिरणं पसुभिस्सह । पडिपुण्णं नालमेगस्स इइ विज्जा तवंचरे ॥४९॥ एयमट्ठं निसामित्ता - हेऊकारण चोइओ तओ नमिं रायरिसिं देविंदो इणमव्ववी ॥५०॥ अच्छेरगमभ्भुयए भोगेचयसि पत्थिवा । असंते

भाषा

रूपा हाथी हिरण्यं पशुभिः अश्वादीनि घोडा प्रमुखतिणे प्रतिपूर्ण न समर्थः एकस्य एकने प्रतिपूर्ण भरीने एक मनुष्यने दोजे तो हि तेहनी तृष्णा पूरी न होइ इति विदित्वा तपः चरेदासेवेत इम जाणीने तप करे ४९ एतदर्थं निगम्य श्रुत्वा एतवु अर्थ सांभलीने हेतुकारणैः प्रेरितः ५० आश्चर्यं वर्त्तते यत् त्वं अद्भुतकान् आश्चर्यना करणहारामहा अद्भुत भोगान् त्यजसि हे पार्थिवएहवा भोगने छोडे छे असंतः अविद्यमानान् कामान् प्रार्थयसे तदाश्चर्यं छता भोग छांडीने अछता भोगनी वांछा करे छे संकल्पेन उत्तरोत्तर अप्राप्त भोगाभिलाष रूपेण विकल्पेण विहन्यसे संकल्पविकल्प करीने

पश्चात्तापेन त्व पीडमे इत्यर्थं य सद्विवेकी भवेत्तलथ वम् त्वञ्चा अलब्ध वस्तुनि साभिलाषो नस्यात्५१ एयमट्ठ ०हे० तओ० देविन्दो इणमव्ववी५२ तत पुनर्नमिराजर्षिं देवेन्द्र प्रतीदम ब्रवीत् ५२ सल्ल कामा विसङ्कामा कामा आसीविसोवमा कामे पत्थेमाणा अकामाञ्जति दुग्गइ ५३ एते कामा विषया विविधबाधा विधायित्वात् सल्य सल्य सदृशा देहमध्य प्रविष्ट व्रटित भल्लितुल्या प्रतिचण पीडोत्पादिका पुन कामा विष विष सदृशा यथा विष तालपुटादि भक्षित सत् मरणोत्पादक तथा कामा अपि धर्मजीवित विनाशिका मुखेन मधुरत्व मुत्पाद्य पश्चान्मरण मुत्पादयन्ति दारुणत्वात् पुन कामा आशी विषोपमा आशीदाढा विष येषान्ते आशी विषा सर्पास्तेषा उपमा येषान्ते आशी विषोपमा सर्पसदृशा यथा सर्पदष्टा जीवा म्रियन्ते तथा कामैर्दष्टा जीवा म्रियन्ते यथा हि फण मण भूषता सर्पा शोभना दृश्यन्ते स्पृष्टाय विनाशायस्यु एतादृशान प्रार्थयन्तोजना दुर्गति यान्ति कीदृश्या जना अकामा कामसुखाभिलाष वाञ्छतोपि अलभमाना अप्राप्त मनोरथा कामिनो नरकादौ व्रजन्तीत्यर्थ तस्मादेते प्रत्यच

कामेपत्थेसि सक्कप्पेण विहन्नसि ॥५१॥ एयमट्ठ निसामित्ता हेउ कारण चोइओ। तओ नमी रायरिसी देविंद इणमव्ववी ॥५२॥ सल्ल कामा विसकामा कामा आसी विसोपमा। कामेपत्थे माणा अकामा जंति

सुखकाइ नहीं आगे भलाछे इम करीने तु सर्वखावे छे ५१ एतदथ निशम्य श्रुत्वा ए अर्थसाभलीने हेतु कारणे प्रेरित ५२ कामा पुन कीदृक विधा विष शल्योपमा अहो ब्राह्मण ए काम भोग विष सरीखा छे शल्य सरीखा छे पुन कामभोगा कीदृशा आशीविष उपमावली कामभोग केहवाछे आसी वीष सरीखा छे कामान् प्रार्थयमाना कामभोगने बाछे छे पीण मीलता नथी असेव्यमानापि यान्ति दुर्गति असेवता थका पीण दुर्गतने विषे जाइ ५३

सुखोत्पादका अपिकामाः कष्टदायकत्वात् सयम धर्मंय सकलकष्ट हरत्वात् विवेकिभिः कामास्त्याज्या सयमोगाद्यः इति हार्दं ५३ अथ कथं दुर्गतिं यान्तीत्याह अहोव यइकोहेणं माणेणं अहमागई मायागइ पडिग्घाओ लोभाओ दुहओभयं ५४ जीव क्रोधेन अधो व्रजति नरके याति मानेन अधमागतिर्भवति गर्दभोष्ट्रमहिष शूकरादि गतिः स्यात् माययासुगतेः प्रतिघातः मायासुगते रर्गला भवति लोभात् द्विधापिभयं स्यात् ऐहिकं पारलौकिकञ्च भय दुक्खं स्यात् कामप्रार्थंते हि अवश्यं भाविनः क्रोधादयस्तं चक्रोधादय ईदृशाः ततः कथन्तत् प्रार्थनातो दुर्गतिर्नस्यात् एवं वचन युक्तिं श्रुत्वा इन्द्रो नमिराजर्षिं प्रतिक्षोभयितुम शक्त· किं अकरोदित्याह ५४ अव उज्झि जणमाहण रूवं विउव्विजण इन्दत्तं वन्दइ अभित्थुणन्तो इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं ५५ इंद्रो नमिराजर्षिं प्रति वन्दते कि कुर्वन् इमाभिः प्रत्यच वक्ष्यमाणाभि र्मधुराभिः वाग्भिः स्तुवन् किं कृत्वा ब्राह्मणरूपं

सूत्र

दुग्गइं ।५३। अहोवयइ कोहेणं माणेणंअह मागई । माया गई पडिग्घाओ लोहाओ दुहओ भयं ॥५४॥ अवउज्झि - जणमाहण रूवं विउव्विजण इंदत्तं । वंदइ अभित्थुणंतो इमाइं महुराहिं वग्गुहिं ।५५। अहो तेनिज्जिओ कोहो

भाषा

अधो व्रजति क्रोधेन अधोगति जाइ क्रोधे करीने मानेन अधमा गति मानि करी अधमगत पामीए मायया गतिप्रतिघातं माया भली गतनेहणे लोभात् द्विधा भय· इहलोके परलोकेपि भय लोभ थकी भवो भवने विषे भय ऊपजे ५४ अपोह्य त्यक्त्वा ब्राह्मणरूपं ब्राह्मणनूं रूपछांडीने दूरीकरीने रूपं विकुर्व्य इन्द्रत्वं इन्द्रनूं रूपविउव्वि वोकुर्वीने वंदिते स्तुतिं कुर्वन् इन्द्र नमी राजऋषिने वांदे स्तुत करतो थको आभिर्मधूराभिर्वाग्भिः इसील धुरीमीठीवांणीइं करीने ५५ अहो इति आश्चर्ये त्वया निर्जितः क्रोधः अहो माहानुभाव क्रोध जीत्यो अहो इति आश्चर्ये ते त्वया मानः पराजितः अहो पुण्यात्माते मान

अपोह्यत्वक्षा इ द्रल वि कुर्व्य विधाय ५५ अहो ते निज्जिओ कोहो अहोमाणो पराजिओ अहो ते निज्जिया माया अहो लोहो वसीकओ ५६ अहो इत्याशये त्वया क्रोधो निर्जित यतो मयात्वा प्रयुक्त अत अपार्थिवा वशीकर्त्तव्या स्तदापि त्व न क्रुद्ध इत्यर्थ अहो इत्याशये त्वया मानोपि दूरी क्षत यतो मन्दिर दह्यते अन्त पुर दह्यते इत्यादि उक्त तथापि मयि विद्यमाने ममपुर ममान्त पुरञ्च दह्यते इति तव मनसि अह क्षत्रिर्नासीत तस्मान्निर्मानस्त्व वर्त्तसे अहो इत्याशयें त्वया मायापिनिर्जितानिराक्षता यतस्त्व नगरस्य रक्षाकारणेषु प्राकाराट्टालकादिषु नि कासनयोग्येषु आमोष लोमहार ग्रन्थिभेदक तस्करादीना वशीकरण हनानादिषु च मनोनोऽकारी अहो इत्याशयें लोभो वशीक्षत हिरण्य सुवर्णादिक वर्द्धयित्वा पश्चा द्गन्तव्य इति युवामिमा प्रति इच्छा कृत्वा कामसमा अत त्वया इत्युक्तवान तस्माश्चत्वारोपि कषायास्त्वयाजिता इत्यर्थ ५६ अहो ते अज्जवं साहु अहो तेसाहु मद्दव अहो ते मुत्तिउत्तमा ५७ अहो इति विस्मये आश्चर्यकारि या साधुसमी चीनत्वं तय आर्जव ऋजो सरलस्य भाव आर्जव विनयवत्त्व वर्त्तते अहो आश्चर्यकारि तव साधु सुन्दर मार्दव मृदोभावो मार्दव कोमलत्व सदयत्व वर्त्तते अहो साधु तवक्षान्ति क्षमा वर्त्तते अहो साधु तव मुक्तियत्त्वर्त्तते निर्लोभता वर्त्तते ५७ अथ पुनर्वर्द्धमान गुणद्वारेण अभिष्टौति इहंसि उत्तमोभन्ते पिच्चा होहिसि उत्तमो लोगुत्त मुत्तम ठाण सिद्धि गच्छसि नीरयो ५८ हे मुने हे भगवन हे पूज्यत्व इह अस्मिन् जन्मनि उत्तमोसि सर्व पुरुषेभ्य प्रधानोसि उत्तमगुणान्वित त्वात

सूत्र

अहोते माणो पराजिओ । अहो ते निरक्किया माया अहोते लोभोवसीकओ ॥५६॥ अहोते अज्जव साहु अहोते साहु

भाषा

जीत्यो अहो इति आश्चर्य ते त्वया निराक्षता माया अहो नमि ते माया जीती अहो इति आश्चर्य ते त्वया लोभ वशीक्षत अहो साधु ते आपणो लोभ वशि कीधो ५६ अहो इति आश्चर्य तेनैव सरलत्व शोभन अहो नमी ताहरु सरल पणु भल अहो इति आश्चर्य ते तव प्रधान मार्दव अहो नमि भलु

पिच्चा इति प्रेत्य परलोकेपि उत्तमो भविष्यति लोकस्य उत्तमोत्तमं अतिशयप्रधान स्थानं एतादृशं सिद्धिं मुक्तिस्थानं गच्छसि त्वं गमिष्यसि अत्र लोगुत्तमुत्तमं इत्यत्र मकार प्राकृतत्वात् लोकोत्तमोत्तमां इति वक्तव्यं ५८ एवं अभिथुणन्तो रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए पायाहिणं करन्तो पुणो पुणो वन्दए सक्को ५९ शक्र इंद्रो नमिराजर्षिं पुनः पुनर्वन्दते भूयो भूयो नमस्करुते किं कुर्वन् प्रदक्षिणां कुर्वन् पुनः किं कुर्वन् उत्तमया प्रधानया श्रद्धया रुच्याभक्त्या अभिष्टुवन् स्तुतिं कुर्वन् इत्यर्थः ५९ तो वन्दिऊणपाए चक्कं कुसलक्खणे मुणिवरस्स आगासे णुप्पइओ ललिय चवल कुण्डलकिरीडी ६० तो इति ततः शक्रः आकाशं प्रतु उत्पतितः उड्डितः किं कृत्वा मुनिवरस्य राजर्षेः पादौ वन्दित्वा कीदृशौ मुनेः पादौ चक्रां कुशलक्षणौ राज्ञो हि

सूत्र

महवं। अहोते उत्तमाखंती अहोते मुत्ति उत्तमा ।५७। इहंसि उत्तमा भंते पेच्चा होहिसि उत्तमो लोगुत्त मुत्तमं ठाणं सिद्धिं गच्छसि नीरओ ।५८। एवं अभित्थुणंतो रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए। पायाहिणं करेंतो पुणोपुणो

भाषा

ताहरूं सुकमाल पणुं अहो तव प्रधाना क्षमा अहो नमी तुझमांहि उत्तम प्रधान क्षमा अहो ते तव मुक्तोर्निर्लोभ ता श्रेष्ठा अहो नमी तुझ मांहि निर्लोभता पणुं श्रेष्ठ प्रधान हे भदन्त इह जन्मनि त्वं श्रेष्ठः असि हे पूज्य इह भवने विषे तुं उत्तमछे पश्चादागामि भवे भविष्यसि उत्तमः प्रधानः पर लोकने विषे पीण तुं उत्तम हुस्ये लोकोतमं स्थानं लोकने विषे जे उत्तम स्थानक तेठाम मोक्षं जास्यसि नीरजः कर्म रजो रहीत सीद्धने वीषे जाइसी कर्मरहीत थको ५८ एवं पूर्वोक्त रीत्या अभोष्टुवन् इन्द्रे इगस्तव्यो थको राजरिषि नमि श्रेष्ठया श्रद्धाः राजऋषिने उत्तम श्रद्धाइं करीने किं कुर्वन् प्रदीक्षणा कुर्वन् प्रदीक्षणा देतु थको पुनः पुन वारंवारं वन्दते शक्रः वारवार इन्द्रवन्दना करे ५९ ततः वन्दित्वा पादौ ऋषीश्वरना पगवांदीने किंविशिष्टौ

पादयोर्यस्मा कुशलचण स्यात कीदृश शक्र ललित चपल कुण्डलकिरीटी ललिते सविलासे चपले चञ्चले चते कुण्डले च यस्य स ललित चपल कुण्डल
किरीट मुगट अस्तीति किरीटी ललित चपलकुण्डयासी किरीटी ■ ललित चपल कुण्डल किरीटी चपल सुन्दर कुण्डल मुकुटधारक इत्यर्थं ६०
नमी नमेइ अप्पाण सक्ष सक्केण चोइओ चइ ऊणगेह वेदेही सामन्ने पज्जवट्ठिओ ६१ नमिराजर्षि आत्मान विनयधर्मे भावयति कथभूतो नमि
शक्रेण साक्षात्प्रकारेण प्रत्यक्षीभूय चोदित गृहीत मनोभाव परीक्षिताशय सान्निर्वेदेहेषु विदेहदेशेषु भवोवेदेह विदेहदेशाधिप गृह त्यक्त्वा श्रामण्ये
श्रमणसाधो कर्म श्रामण्य साधधर्म तत्र पर्यवस्थित उद्यतो भूत् यदि उपसर्गेण अयमभ्युद्यतो स्वयमेव उद्यतो न तु इन्द्र प्रेरणातो धर्मविमुतो
भूदिति भाव ६१ एव करेति सवुडा पण्डिया पविअक्खणा विणियट्टन्ति भोगेसु जहा से नमी रायरिसी त्तिबेमि ६२ सवुडा सम्यक ज्ञाततत्त्वा
पण्डिता सुनिश्चितशास्त्रार्था एव अमुनाप्रकारेण कुर्वन्ति भोगेभ्यो विशेषेण निवर्त्तन्ते कीदृशा सवुडा प्रविचक्षणा प्रकर्षेण अभ्यासातिशयेन विच

वदए सक्को ।५९। तो वन्दिऊण पाए चक्क कुसलक्खणे मुणिवरस्स आगासेणुप्पईओ ललियचवलकुंडल तिरीडी ।६०।
नमी नमेइ अप्पाण सक्ष सक्केण चोइओ। चइऊण गेह वइदेही सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥ एव करेति

मुनिपादौ चक्राङ्कुशलक्षणोपेतौ चत्र अङ्कुश साथीयो प्रमुखसहित के पगमुनीश्वरना अर्थात् शास्त्रोक्तसुभलक्षणयुक्त हे चरणकमल इन्द्रआकाशे उत्प
तित इन्द्र आकाशने विषे ग्यो ललीतचपल कुण्डलमुकटवान मनोहर चपल कुण्डल अने मुकट पहरया छे इन्द्रे ६० एव अमुना प्रकारेण कुर्वन्तो
साक्षात् शक्रेण प्रेरित प्रत्यक्ष आवीने इन्द्र परीक्षा कीधी त्यक्त्वा गेह विदेहदेशोद्भव घर विदेहदेश छाडीने चारित्रे उद्युक्त अभवत् चारीत्रने

षणा क्रियासहित ज्ञानयुक्त इत्यर्थ कश्च भोगेभ्यो निवर्त्तन्ते यथा नमि राजर्षिः भोगेभ्यो निवर्त्तित इति अहं ब्रवीमिसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीनं प्रतिवदति ६२ इति नमि प्रव्रज्याख्यनवमं अध्ययनं॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणि शिष्यलक्ष्मीवल्लभ गणिविरचितायां नवमाध्ययनस्यार्थः सपूर्णः ॥९॥ अथ दशमं अध्ययन प्रारभ्यते। नवमेऽध्ययने चारित्रविषये निष्कम्पत्वं उक्तं तत् निष्कम्पत्वं शिख्यातएव भवतितती दशमेऽध्यय ने शिक्षां वदति इति नवमदशमा ध्ययनयोः सम्बन्धः दशममध्ययनं श्रीगौत ममुद्दिश्य श्रीवीरेणाभिहतं इति गौतमवक्तव्यता तावदुच्यते पृष्टि चम्पा नाम्नी नगरी तत्र सालनामा राजामहा शालिनामा युवराजा तयो र्भगिनो यशोमती तस्याः पिठरनामा भर्तास्ति यशोमती कुक्षिसम्भूतः पिठरपुत्रो गागलि नामा वर्त्तते अन्यदा भगवान् श्री महावीरस्तत्र समवसृतः सालराजा महाशालादि परिवृतस्तत्रागतो भगवन्तं वन्दित्वाग्रे धरणीतलोपविष्ट श्रीमहावीरक्ततामिमां देशनामशृणोत् मानु ष्यादिका धर्मसाधनसामग्री दुर्लभास्ति मिथ्यात्वादयो धर्मप्रतिबन्ध हेतवो बहवो वर्त्तन्ते महारम्भादीनि नरककारणानि सन्ति जन्मादि दुःखप्रचुरः ससारोस्ति कषायाः संसारपरिभ्रमणहेतवस्सन्ति कषायपरित्यागे च मोक्षप्राप्तिरिति भगवद्देशनां श्रुत्वा संवेगमुपागतः सालराजाजिनेंद्र प्रत्येवमुवाच भगवच्चरणमूलेहं तपस्यामादास्ये परं महासालं यावद्राज्ये स्थापयामि तावच्छ्रीभगवद्भिरन्यत्र विहारो न कार्यः भगवता उक्तं प्रतिबन्धं मा कार्षीरिति

सूत्र

संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा। विणियट्टंति भोगेसु जहासे नमी रायरिसित्तिबेमि।६२। नमिज्झयणं सम्मत्तं ॥९।

भाषा

विषे उद्यत सावधान हुआ ६१ एव अमुना प्रकारेण कुर्व्वन्ती इम कहे सय बुद्धाः पण्डिताः प्रविचक्षणाः पण्डितविचक्षण जाण साधु विशेषेण निवर्त्तन्ते भोगेभ्य भोगथकी विशेषे नीवर्त्ते यथा सनमि राजर्षि इछांथा तिम छांडे इति समाप्तौब्रवीमि जिम नमि राजा६२ इति नमि प्रव्रज्याध्ययन समाप्तं ॥९॥

सालराजा गृहे गत्वा महाशाल भ्रातरं प्रत्येवमाह बन्धो त्वं राज्यं पालय अहं व्रतं गृह्णामि महाशाल उवाच अहमपि भवास्त्वविग्नोसि अलं महारम्भ हेतुनाराज्येन ममापि प्रव्रज्याग्रहणमनोरथोस्ति तदा सालराज्ञा भगिनीपुत्रो गागलि स्वराज्येभिषिक्त सालमहासाली द्वावपि प्रव्रजितौ भगिनीश्रम णोपासिका जाता भगवांस्ततो विहारं चकार सालमहासालमुनी एकादशाङ्गानि अधीतौ अन्यदा भगवान राजगृहे समवसृत तत्रानेकभव्यान प्रति बोध्य स्वामी चम्पायां गत तत्र सालमहासालौ स्वामिनं प्रत्येवमूचतु यदि भगवदाज्ञास्यात्तदा वयं पृष्टिचम्पायां व्रजाम यदि कश्चित्तत्र प्रतिबुध्यते सम्यक्त्वं वा लभते तदास्माकं महान् लाभो भवन्तीति स्वामिना तदा तयो र्गौतम सार्थे दत्त गौतमस्वामी ताभ्यां सह पृष्टिचम्पायां गत तत्र गागलि राजा पितृमातृभ्यां पिठरयशोमतीभ्यां सह वन्दितुमायात समागताया पर्षदि एवं देशनां चकार भो भव्य सत्वा विषयप्रसक्ता मा तिष्ठत अनेकादु खदायी संसारे प्रतिबन्धं मा कुरुत कष्टेन मनुष्यादि सामग्री प्राप्तासि सन्ध्या अभ्ररागसदृशी यौवनादि प्रपञ्चोस्ति यथा दृष्ट नष्ट सकलसंयोगोस्ति जलबिंदुचञ्चल जीवितमस्ति ततो जिनधर्मे प्रकामसुद्यम कुरुत तथा चिरेण शाश्वत पदप्राप्ति र्भवतां भवतीति गौतमदेशनां श्रुत्वा गागलि प्रतिबुद्धो भणति भगवन्नहं भवदन्ति के प्रव्रज्यां गृह्णोष्ये नवरं मातृपितरौ पृच्छामि ज्येष्ठपुत्रं राज्ये स्थापयामि एवमुक्त्वा गृहे गत्वा मातृपितरौ पृष्टौ ताभ्यामुक्तं यदि त्वं प्रव्रजिष्यसि तदा वयमपि प्रव्रजिष्याम ततः पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा गागलि राजा स्वमातृपितृभ्यां सह प्रव्रजित गौतमस्वामी तैः शिष्यैःसह चम्पां चलित मार्गे साल महासालयो शुभाध्यवसायेन केवलज्ञानमुत्पन्न पुनरग्रे गच्छतां गागलि प्रमुखाणां त्रयाणामपि तथैव शुभध्यानेन केवलज्ञानमुत्पन्न एवं सर्वेपि ते गौतम सहिताश्चम्पायां गता गौतमस्वामी भगवच्चरणौ प्रणता सालमहासालादिकेवलिनो भगवत प्रदक्षिणां कृत्वा तीर्थं प्रणम्य केवलपर्षदभिमुखं चलिता तावदुत्थितो गौतमस्तान् प्रत्येवं भणति भो शिष्याः क्व व्रजत वन्दत तीर्थंकरं तावता भगवान प्राह गौतम केवलिनो माशातयेति भगवद्वचसा गौतम

तान् व्यामयति मनस्येवं चिन्तयन्ति अहं न सेत्स्यामि किं मदीया शिष्याः केवलमासादयन्ति अद्य यावन्मया केवलज्ञानं नाप्तं अस्मिन्नवसरे मिथो देवानामेवं संलापो वर्तते अद्य भगवता व्याख्यावसरे एवमादिष्टं यो भूमिचरः स्वलब्ध्याऽष्टापदाद्रौ चैत्यानि वन्दते स तेनैव भवे सिद्धिं यातीति श्रुत्वा गौतम स्वामिनं पृच्छति भगवन्नहं मष्टापदे चैत्यानि वन्दितुं यामीति भगवता उक्तं व्रजाष्टापदे तत्र चैत्यानि वन्दस्व ततो हृष्टो गौतमो भगवच्चरणौ वन्दित्वा तत्र गतः पूर्वं हि तत्राष्टापदे तादृग् जनसम्वादं श्रुत्वा पञ्च पञ्चशतपरिवारास्त्रयः कौडिन्न १ दिन्न २ सेवाला ३ ख्या स्तापसास्तत्रागतास्सन्ति तेषु कौडिन्न स्तापसः सपरिवारः एकान्तरोपवासेन भुंक्ते पारणे मूलकन्दाद्याहारयति सोऽष्टापदे प्रथममेखलामारूढोस्ति द्वितीयो दिन्न तापसः सपरिवारः प्रत्यहं षष्ठ षष्ठ पारणके परिशाटितानि पर्णानि भुंक्ते स द्वितीयमेखलामारूढोस्ति तृतीयः सेवालतापस सपरिवारो निरन्तरमष्टमपारणके सेवालं भुंक्ते स तृतीयमेखलामारूढोस्ति एवं तेषु क्लिश्यमानेषु गौतमः सूर्यकिरणावलम्बेन तत्रारोढुमारब्धः ते तापसाश्चिन्तयन्ति एषः स्थूलवपुः कथमत्राधिरोढुं शक्यते वय तपस्विनोपि अशक्ता एवं चिन्तयत्स्वेव तेषु पश्यत्सु स गौतम क्षणादष्टापदपर्वतशिखरमधिरूढः ते पुनरेवं चिन्तयन्ति यदासाववतरिष्यति तदास्य शिष्या वयं भविष्यामः गौतमस्वामी प्रासादमध्ये प्राप्तो निजनिजवर्णपरिमाणोपेता चतुर्विंशति जिनेन्द्राणां भरतकारिताः प्रतिमा ववन्दे तासां चैवं स्तुतिं चकार जगच्चिन्तामणि जगन्नाह जगगुरु जगरक्खण इत्यादि स्तुति कृत्वा पूर्वदिग् भागे पृथिवी शिलापट्टेऽशोकवरपादपस्याध एकरात्रौ पर्युषितः इतश्च शक्रलोकपालो वैश्रमणस्तत्र चैत्यानि वन्दितुमायातः प्रत्येक चैत्यानि वन्दित्वा अशोकतरोरधः समायातो गौतम स्वामिनोग्रे वन्दित्वा निषण्णः तस्याग्रे गौतम एवं धर्मं कथयति धर्मार्थकामाख्यः पुरुषार्थाः तत्रार्थकामसाधकत्वेन धर्म एव प्रधानः स च देवगुरु भक्तिरागेण भवति देवः पुनः सर्वज्ञः सर्वदर्शी अष्टादश दोषरहितो भवति गुरवः सुसाधवो भवति साधव समशत्रुमित्राः समलोष्टकाञ्चनाः पञ्चसमिताः त्रिगुप्ताः प्रशमा प्रशमरसा जितेन्द्रिया

जितकषाया निर्मलब्रह्मचर्य्यधरा स्वाध्यायध्यानयुक्ता दुश्चरेण तपश्चरणा अन्तप्रान्ताहारा शुष्कमांस रुधिरा कृशशरीरा भवन्ति इमां गौतमक्रियमाणां देशनां श्रुत्वा वैश्रमणमनस्येव विसम्वादो जात अहो एतेषां विशेषपुष्टिद्युतिधर शरीर यतिवर्णने चेदृशमिति वैश्रमणमनोवितर्क ज्ञात्वा गौतमस्तदा पुण्डरीकाध्ययन प्ररूपितवान् तथाच पुष्कलावती विजये पुण्डरीकिण्यां नगर्यां महापद्म राजाभवत् तस्य पद्मावती राज्ञी बभूव तस्या कुक्षिसम्भूतौ पुण्डरीक कण्डरीक नामानौ पुत्रौ जातौ पितर्युपरते पुण्डरीको राजा जात कण्डरीको युवराजा जात अन्यदा तत्र स्थविरा साधव समायाता स्थिता नलनीवनउद्याने कण्डरीक सहित पुण्डरीकस्तत्र गतो वन्दित्वा निषण्ण स्तेषां देशनां शुश्राव पुण्डरीक श्रावकधर्म्मं प्रपन्नवान कण्डरीक प्रबुद्धस्तान् प्रत्येव जगाद अह भवत्निकटे प्रव्रज्या ग्रहीष्ये नवर पुण्डरीकराजान प्रतिपृच्छामीयुक्त्वा पुण्डरीक प्रति अह प्रव्रजामीत्युक्तवान पुण्डरीकोब्याह मा इदानी त्व प्रव्रज्यां गृहाण तवाय राज्याभिषेक करोमि त्व निश्चिन्त सन् राज्य पालय यथेष्ट सुख भुज कण्डरीको नैतदङ्गी कुरुते पुन २ प्रव्रज्या ग्रहमेव कुरुते यावदसौ राज्यादिलोभेन गृहे स्थापयितु पुण्डरीकेण शक्यते तावत्संयमकष्ट पुण्डरीकोस्य दर्शयति अथ संयम सत्य दुर्व्वहु खद्गधार पर वालुकास्वादसदृश गङ्गाप्रमुख महानदी प्रवाहसम्मुखगमनवद्‌साध्य भुजाभ्यां समुद्रतरणवत् कष्टानुष्ठेय अत्र द्वाविंशति परीषहा सोढव्या तत सुकुमालशरीरेण भवता नाय संयम परिपालयितु शक्य तस्मादगृहएव तिष्ठ राज्यसुख च भुङ्क्ष्वेति पुण्डरीकेणोक्त कण्डरीक प्राह कापुरुषाणां परलोकपराङ्मुखाणां इहलोक विषयसुखतृष्णावतां अय संयमो दु पालोस्ति अहत्व विषयसुखपराङ्मुख परलोकस सुख शूरवीरोस्मीति नाह संयमादिभेमीति वदन्त कण्डरीकं पुण्डरीकराजा संयमग्रहणार्थं मनुज्ञातवान् पुण्डरीककारितमहामह पूर्वक कण्डरीक संयम गृहीतवान क्रमेण स्थविरान्तिके एकादशाङ्गानि पपाठ चतुर्थषष्ठाष्टमादि तपासि प्रत्यह चकार एकदा तस्य तपस्विनस्तप पारणके तुच्छाहारैर्दाघज्वरादयो रोगा प्रादुर्भूता स्तथाप्यसौ स्थविरै सम

विहारं चकार एकदा ते स्थविरा कण्डरीकेण समं विहरन्तः पुण्डरीकिण्यां नगर्यां समायाता नलिनीवने समवसृता पुण्डरीकराजा तेषां वन्दनया तत्रायातः स्थविराणां देशनां श्रुत्वा कण्डरीकं ऋषिं वन्दते तद्वपुः सरोगं पश्यति पुनः स्थविरान्तिके समागत्य एवमवादीत् यदि स्थविराणामाज्ञा स्यात् तदाहं कण्डरीकमुनेर्वपुषि प्रासुकौषधादिभिश्चिकित्सा कारयामि यूयं मम यानशालायां तावत्कालं तिष्ठत ततस्ते स्थविराः कण्डरीकेण समं यानशालायां गत्वा स्थिताः ततः स पुण्डरीक राजा कण्डरीकस्य प्रासुकौषधैश्चिकित्सां कारयति त्वरितमेव तस्य रोगोपशान्तिर्जाता. स्थविरास्ततो विहारं चक्रुः रोगात् कादिप्रमुक्तोपि कण्डरीकमुनिर्मनोज्ञाहारादि मूर्च्छितस्ततो विहारं कर्तुं नेच्छति कण्डरीकस्य तादृशं स्वरूपमाकर्ण्य पुण्डरीकराजा तदन्तिके समागत्य एवमाह धन्यस्त्वं कृतपुण्यस्त्वं सुलब्धमनुष्यभवस्त्वं येन राज्यं मन्तःपुरञ्च परिहृत्य संयममादृतवान् एवं द्विवारं त्रिवारंवा पुण्डरीकेणोक्तं प्राप्तलज्जः पुण्डरीकराजानमापृच्छ्य कण्डरीकः स्थविरैः समं ततो विजहार कियत्कालं उग्रविहारं कृत्वा पश्चात्संयमाद्विखिन्नः शनैः२ स्थविरान्तिकान्निर्गत्य पुण्डरीकिन्यां नगर्यां अशोकवनिकायां अशोकवरस्य पादपस्याधः समागत्य शिलापट्टमारूढ उपहतमनः संकल्पः विकल्पं किञ्चिध्यायन्नेव तिष्ठति ततः पुण्डरीकधात्री प्रसङ्गात्तत्रायाता तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाय न्यवेदयत् पुण्डरीकोपि तत्रागत्य तं त्रिः प्रदक्षिणी कृत्य धन्यस्त्वमित्यादि उक्तवान् कण्डरीकस्य तद्वचनं न रोचति सर्वथा संयमाद्भ्रष्टं तं ज्ञात्वा पुण्डरीकः पुनरेवमुवाच अहो भ्रातस्ते यदि विषयार्थस्तदं राज्यं गृहाणेत्युक्त्वा तं राज्येऽभिषिक्तवान् स्वयं तु पञ्चमौष्टिकं लोचं संयममुपात्तवान् कण्डरीका सत्कं पात्रोपकरणादिकं च गृहीतवान् स्थविराणामन्तिके प्रव्रज्यां गृहीत्वा हारं गृहीष्ये नान्यथेत्यभिग्रहं कृत्वा स्थविराभिमुखमेकाक्येव चलितः कण्डरीकस्तु राजगृहान्तं गत्वा तस्मिन्नेव दिने सरसमाहारं भुक्तवान् रात्रौ च तस्य तदाहारसारात् कृशशरीरस्य उदरे महाव्यथा उत्पन्ना न कोपि तस्यांतिके मन्त्रिसामन्तादिकश्चि

किमार्थं समायाति प्रव्रज्यापरित्यागादयोग्य इत्यय सर्व्वैरपि लोकैरुपेचित आर्त्तं रौद्रध्यानोपपन्नकाल कृत्वा सप्तमनरकपृथिव्या नारकित्वेनोत्पन्न पुण्डरीकस्तु स्थविरान्तिके गत्वा पुनर्दीक्षा गृहीतवान प्रथममष्टम तप कृतवान् पारणके च शीतलरूक्षाहारेण वपुषि महावेदना समुत्पन्ना ततस्तेन अनशन विहित चत्वारि शरणानि कृतानि आलोचितप्रतिक्रान्त पुण्डरीक काल कृत्वा सर्वार्थसिद्धविमाने देवत्वेनोत्पन्न इम आख्यात वैश्रमणाग्रे उक्ता एव पुनरुवाच अहो देवानुप्रियदुर्बलशरीरोपि कण्डरीक सप्तमी गतवान् सबलशरीरोपि पुण्डरीक सवार्थसिद्ध विमाने गतास्तस्मादुर्बलशरीर सयमसाधन सबलशरीर तद्व्याघातक एव नियमोनास्तिकिन्तु ध्यानमेव तत्साधनयस्य शुभध्यान स सयमाराधक यस्यतुअपध्यान सस यमविराधक एव गौतमस्वामि व्याख्यान श्रुत्वा वैश्रमणो वन्दित्वा स्वस्थान गत गौतम प्रभाते चैत्यानि नमस्कृत्य अष्टापदादात्यवतरतिस्म तापसास्तदा एवमाहु यूयमस्मद्गुरवो वय भवच्छिष्या भवाम गौतमस्वामी भणति मम धर्माचार्य त्रिलोकगुरुवर्द्धमाननामास्ति तेच भणति युष्माकमप्याचार्यो वर्त्तते गौतम प्राह ईदृशो मेन धर्माचार्यो वर्त्तते यथा सर्वज्ञ सर्वदर्शी रूपसम्पदा तिरस्कृत त्रिलोकरूप किङ्करी कृतसकलसुरासुरविरचितसमवशरणोपविष्ट उपरिधृतछत्त्रत्रय सुरेन्द्र वीज्यमानचामरयुगल चतुस्त्रिंशदतिशयनिधान श्रमणभगवान श्रीमहावीरनामा वर्त्तते एव वीतरागस्वरूपमाकर्ण्य तेषा तापसाना सम्यक्त्वोचय सम्पन्न तत सर्वेपि तापसा गौतमस्वामिना प्रव्राजिता शासने देव्या तेषा सर्वेषां लिङ्गानुपनीतानि ते सर्वे शिष्यै सह गौतमस्वामी ततश्चलित कस्मिंश्चिद्ग्रामे गत भिक्षावेला जाता गौतमेनोक्त यद्भवता रोचते तद्वक्तव्य मया नीयते तैरुक्त पायसमानेय सर्वलब्धिसंपन्नो गौतम क्वचिद्गृहे पतद्ग्रह पायसेन भृतवान् उपाश्रये आगत्य सर्वेषा तेषा मण्डल्यामुपवेशितानां पात्रेषु क्षीर परिवेषितवान नच क्षीर क्षीण भवति महा नसिकलब्धिमता गौतमेन पतद्ग्रहे अङ्गुष्ठक्षेपात् जेमतामेव सेवालतापसानामीदृश परिणामो जात अहो अस्माक शुभकर्मोदयो जात यतो अनभ्रवृष्टिसदृश समस्त

उ०टीका
अ०१०
३१०

शास्त्रार्णव पारगामी द्वयो गुरुरस्माभिर्लब्ध इत्यादि भावना भावयतां तेषां तत्रैव केवलज्ञानमुत्पन्नं [illegible] तापसानां तु भोजनानन्तरं चलितानां भगवत
मीपे प्राप्तानां भगवतः छत्रादिविभूतिं च पश्यतां [illegible] केवलज्ञानमुत्पन्नं [illegible] तापसानां तु [illegible]
सार्धेनैव केवलज्ञानमुत्पन्नं गौतमस्वामी भगवन्तं प्रणनाम ते तापसमुनयः [illegible]
भणति इतागच्छत भगवन्तं प्रणमत भगवान् वीर [illegible] गौतम [illegible] गौतमस्वामी [illegible] तदा पर [illegible]
जाता ततो भगवान् श्रीमहावीरो गौतमस्वामिनं प्रत्याह [illegible]
त्वयतेचोविचरश्चिरं व भवे तावाज्यं केवलज्ञानमुत्पन्नं [illegible]
कार्यमिति तदानीं स्वामी महावीरो द्रुमपत्रकाध्ययनं प्ररूपितवान् [illegible]
यनकृतत्वा ततो वे वन्दति उत्तरगमनकाले [illegible]
गच्छत एवं मम [illegible] गौतम [illegible]

सूत्र
दुमपत्तए पडुयए जहा निवडइ राइ गणाण अच्चए । एव मणुयाण जीविय समयं गोयम मा पमायए ॥१॥ [illegible]

भाषा
द्रुम पत्रक पाण्डुर पत्रं यथा निपतति [illegible]
रात्रि [illegible] तियां पातो [illegible]
गौतम समयमात्र प्रमादं मा कर [illegible]

गौतम एव अनेन दृष्टान्तेन मनुजाना मनुष्याणां जीवित जानीहि त्व समय समयमात्रमपि मा प्रमादी प्रमादमा कुर्या अत्र समयमात्रग्रहण अत्यन्त प्रमादनिवारणार्थं अनेन केन दृष्टान्तेन तत् दृष्टान्तमाह यथा रात्रिगणाना अत्यये गमने रात्रीणा गणा रात्रिगणा कालपरिणामा रात्रिदिवससमूहा स्तेषां अत्यये अतिक्रमे पाण्डुरक द्रुमपत्रक पत्र इन्तात् शिथिलप्राय पर्णं निपतति तथैव दिनाना अत्यये आयुर्लघणी इन्ते शिथिले जाते सति जीवित शरीर पतति जीवो जातो यस्मिन् तत् जीवित शरीरमित्यर्थं जीवितस्य कालस्य विनाशाभावात् जीवितशब्देन शरीरमुच्यते १ यदाह निर्युक्तिकार परियत्तिय लावन्न चलतसंधि मुत्तबिटम्म पत्त वसण पत्त कालपत्ते भणइ गाह १ जहतुम्भे तहअम्हे तुम्भेवि अहोहिया जहा अम्हे अप्पाहिइ पडत पडुअपत्त किसलयाण २ नविअत्थि नविअहोही उल्लावो किसलयपडुपत्ताण उवमा खलुए सकया भविय जणविबोहणट्ठाए ३ यथा हि किशलयानि पाण्डुपत्रे ण अनुशिष्य ते तथा अन्योपि यौवनगर्वितो अनुशासनीय अथायुषो अनित्यत्वमाह कुसग्गे जहओसविंदुए थोव चिट्ठइ लवमाणए एव मणुयाण

सूत्र

जहओसविंदुए थोव चिट्ठइ लवमाणए। एव मणुयाण जीविय समय गोयममापमायए ।२। इइ इत्तरियम्मि आउए जीविए बहु पच्चवायए। विहुणाहि रय पुरे कड समय गोयममापमायए ।३। दुल्लहे खलु माणुसे भवे चिरकालेण

भाषा

वायरो आवे तिवारे खोसो पडे एव मनुष्याणा जीवितव्य इम मनुष्य नो आयुखो अस्थिरछे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी हे गौतम समय मात्र पीण प्रमाद मतकरजे २ इत्युक्त प्रकारेण त्वरित स्वल्पकाल भावि आयुषि थोडा आयुष का जीविते बहु प्रत्यपाय उपघात सहित आउखा माहि घणा विघ्न कष्टछे विधु निहि जीवान पृथक कुरु रज कर्म पुराकृत पूर्वकृत कर्म जीव थी दूरि करि समय मपि हे गौतम मा प्रमादी ३ दुर्लभो निश्चयेन

जीवियं समयं गोयममापमायए २ हे गौतमसमयमात्रमपि मा प्रमादीः तत्र हेतुमाह यथा कुशस्याग्रे अवश्यायबिंदुर्लम्बमानः सन् स्तोक स्तोककालं तिष्ठति वातादिना प्रेर्यमाणः सन् पतति तथा मनुष्याणां जीवितं आयुरस्थिरं ज्ञेयं एवं आयुषोऽनित्यत्वं ज्ञात्वा धर्मे प्रमादो न विधेय इत्यर्थः २ इइइत्त रियंमि आउए जीवियए बहुपच्चवायए विहुणाहिरयं पुरे कडं समयं० ३ इत्युक्तदृष्टान्तेन इत्वरे स्वल्पकाल परिमाणे मनुष्यस्य आयुषि भो गौतमपुराकृतं रजः प्राचीनकृतं पातकं दुष्कर्म विशेषेण धुनोहि जीवात् पृथक्कुरु हे गौतम पुनर्जीवितिके अर्थात् सोपक्रमे आयुषि बहवः प्रत्यवाया उपघातहेतवो अध्य वसायादयो वर्त्तते यस्मिन् तत् बहुप्रत्यवायकं तस्मिन् बहुप्रत्यवायके समयं अपि मा प्रमादं कुर्याः अत्रायुः शब्देन निरुपक्रमं आयुर्भण्यते जीवितशब्देन सोपक्रम भण्यते एति प्राप्नोति उपक्रमहेतुभि रनपवर्त्यं तया यथा स्थित्या एव अनुभवं इति आयुः तस्मिन् आयुषि निरुपक्रमे आयुषि स्वल्पपरिमाणेऽपि दुष्कृतं दूरीकुरु यद्यपि पूर्वकोटि प्रमाणमायुर्भवति तथापि देवापेक्षया स्वल्पमेव ज्ञेयं अल्पमत्वात् यदुक्तं धनेषु जीवितव्येषु रतिकामेषु भारत अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याताः यास्यन्ति यान्ति च अत्र सोपक्रमनिरुपक्रमायु र्ज्ञानं केवलिन एव भवेत् ३ दुल्लहे खलु माणुसे भवे चिरकालेणविसव्वपाणिणं गाढायविवागकम्मणो समयं० ४ खलु इति निश्चयेन सर्वप्राणिनां सर्वजीवानां चिरकालेनापि मनुष्यो भवो दुर्लभो दुःप्राप्यो वर्त्तते तत्र हेतुमाह कर्मणां

सूत्र विसव्वपाणिणं । गाढाय विवाग कम्मुणो समयं गोयममापमायए ।४। पुढ़विकाय मइगउ उक्कोसं जीवोउ संवसे

भाषा मानुष्यो भवः हे गौतम ए मनुष्यनोभव निश्चय करो पामवो दोहिलोबहुकाले नापि सर्वप्राणीनां चिरकाले सर्वजीवने पाम वादोहि लाछे गाढाना शयि तुम शक्यः तयाहढाः यतो विपाकाः उदया कर्मणां गाढा तीव्र कर्मना विपाक जीवनें छे चिरकाल ना लागाछे तेह भणी लोउतां दोहिला समयमपि हे गौतम माप्रादी ४ पृथ्वीकायऽधि गंत प्राप्त पृथ्वीकाय माहिं गयाथका जोव उत्कृष्टोजीव उत्कृष्ट'सं'वसति रहेंतेकहछें काल संख्यातोतं असंख्या तो

मनुष्यगति विघातकानां विपाका विगाढा विशेषेण गाढ़ा विगाढा विनाशयितुमशक्या तस्मात्समयमात्रमपि प्रमाद माकुर्या ४ अथ मनुजत्व दुर्लभ मित्याह पुढविकायमइगओ उक्कोस जीवो उवसवसे काल सखाईओ समय० ५ जीव ससारी पृथ्वी काय अधिगत पृथ्वीकायभाव प्राप्त सन् उत्कर्षत उत्कृष्टकाल सख्यातीत असख्योत्सर्पिण्यवसर्पिणी मान कालं सम्वसेत् तद्रूपतया अवतिष्ठेत् इत्यर्थ तस्मात्समयमात्रमपि मा प्रमादी ५ आउक्कायमइ० ६ तथा अपकाय अधिगतो जीव उत्कृष्ट असख्योत्सर्पिण्य वसर्पिणीमान कालसम्वसेत् तस्मात्समय मात्रमपि० ६ तेउकाय०७ एवतेजस्कायअग्निकाय अधि

सूत्र

काल सखातीय समय गोय ममापमायए ॥५॥ आउक्काय मइगओ उक्कोस जीवो उवसवसे। काल सखातीय समय गोयममापमायए ॥६॥ तेउक्कायमइगओ उक्कोसजीवोउ वसवसे। काल सखातीय समय गोयममापमायए ॥७॥ वाउ क्कायमइगओ उक्कोसजीवोउ वसवसे। काल सखाईय समयगोयममापमायए ॥८॥ वणस्सइकाय मइगओ उक्कोसजी

भाषा

सर्पिण्यव सर्पिणी मान असख्यातो कालरहे असख्यातीउत्सर्पिणी अवसर्पिणीकालरहे समयमपि हे गौतम माप्रमादी५अपकायअधिगत प्राप्त पाणी माहिगयोथको नोवउत्कृष्टोजीव स वसति उत्कृष्टोरहेतोएतलीर हे कालस ख्यातीत असख्यातोत्सर्पिणीअवसर्पिणीमान असख्यातीउत्सर्पिणी अवस र्पिणीरहे समयमपि हे गौतम प्रमादी ६ तेज काय अधिगत अग्निकायमाहि गयो थको जीव उत्कृष्ट जीव सम्वसति जीवसम्वसे रहे उत्कृष्टो काल सख्यातीत असख्याती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रहे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ७ वायुकायमधिगत वायुकायमांहि गयो थको जीव उत्कृष्ट जीव सम्वसति उत्कृष्टो जीव रहे काल सख्यातीत असख्यात काल रहे समयमपि गौतम माप्रमादी गौतम धर्मकर्म करतां प्रमाद न करवो ८ जीवो

गतो जीव उत्कृष्ट संख्यातीतं कालं असख्योत्सर्पि ख्यवसर्पि णी प्रमाणं कालं सम्बसेत् तस्मात्०७ वाउकाय०८ एवं जीवो वायुकायं अधिगतोपि उत्कृष्ट असंख्योत् सर्पि ख्य सर्पि णी प्रमाणं काल सम्बसेत् तस्मात् समयमात्रमपि प्रमादं माकुर्याः ८ वणस्सइ कायमइ गओ उक्कोसं जीवो उवसम्बसे काल मणन्तं दुरन्तं समयङ्गोय ममापमायए ८ जीवः संसारी वनस्पतिकाय अधिगतः उत्कर्षतः उत्कृष्ट कालं अनन्त उत्सर्पि ख्यवसर्पि णीमानं अनन्त कायिकापेचं वसेत् कथम्भूतं अनन्तकालन्दुरन्त दुष्टौंतो यस्य स दुरन्तस्तन्ते हि वनस्पतिकाय मध्यगता जीवास्तत् स्थानात् उद्वृत्ता अपि प्रायोवि शिष्ट नरादिभवं न लभन्ते तस्मात् दुरन्तमितिविशेषण ८ बेन्दिय काय मइगओ उक्कोसं जीवो उवसम्बसे कालं सङ्खिज्ज सन्नियं समयं० १० द्वीन्द्रिय कायं जीवः अधिगतः सन् उत्कृष्ट कालं संख्यात सञ्ज्ञकं संख्याता संख्यात वर्ष सहस्रात्मिका संज्ञायस्य स संख्यात संज्ञकस्त संख्यातसंज्ञकं संख्यात

वोउ वसंवसे। कालमणंतं दुरंतसमयं गोयममापमायए ॥८॥ बेइंदियकाय मइगओ उक्कोसंजीवोउ संवसे। कालंसंखे ज्जसण्णियं समयं गोयममापमायए ॥१०॥ तेइंदियकाय मइगओ उक्कोसंजीवोउवसंवसे। कालंसंखिज्जसण्णियं समयंगो

वनस्पति कायमधि गत० प्राप्तः वनस्पती कायमांहि गयो थकोजीव उत्कृष्ट जीव सम्बसति उत्कृष्ट रहे जीव नवरं कालमनं तमित्यनंतकालपेक्षया अनं तोत्सर्पिणीअव सर्पिणी प्रमाणं अनन्ती उत्सर्पिणी अवसर्प्पीणि काल रहे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी८ द्विन्द्रियकायमधिगत प्राप्त बेन्द्रियकायमांहि गया थको जीव उत्कृष्ट जीव सम्बसति उत्कृष्टो जीव वसे रहे कालं संख्यात वर्षसहस्रात्मकं संख्याता काल रहे संख्याता वरस रहे समयमपि हे गौत म माप्रमादी १० त्रीन्द्रियकायं अधिगतः प्राप्तो जीवः तेन्द्रीयमांहि गया थका जीवः उत्कृष्ट जीव सम्बसति उत्कृष्टो कालजीव रहे कालसख्यातवर्ष

वर्ष सहस्रात्मक कालं हीन्द्रियकायन्तिष्ठेदित्यर्थं तस्मात्त्व० ११ तेंद्रिय काय मइगओ उक्को सम्बीवो उवसम्वसे० १२ एवञ्जीव त्रीन्द्रियकाय अधिगत स ख्यात वर्षसहस्रात्मक काल उत्कृष्टम्वसेत् तेन त्व समयमात्रमपि प्रमाद माकुर्या १२ चउरिन्दिय कायमइगओ १२ एव जीवचतुरिन्द्रियकाये जीवोऽधिवसन् सख्यात वर्षसहस्रात्मक काल अधिवसेत् तस्मात्त्व प्रमाद समयमात्रमपि माकुर्या १३ पञ्चिन्दिय काय मइ गओ उक्को सम्बीवो उव सम्वसे सत्तड भवग्गहणे समयङ्गोय ममापमायए १४ पञ्चेन्द्रियकाय अधिगत पञ्चेन्द्रियत्व प्राप्त सन् उत्कृष्ट सप्ताष्ट भवग्रहणे सम्वसेत् सप्त अष्टो वा परिमाण येषान्ते सप्ताष्टा सप्ताष्टाश्च तेभवाश्चसप्ताष्ट भवास्तेषां ग्रहण सप्ताष्ट भवग्रहण तस्मिन् यदा हि पञ्चेन्द्रियो भूत्वा भवेत् तदा उत्कृष्ट सप्ताष्टवार स्यादित्यर्थं तस्मात् समयमात्रमपि मा प्रमादी कश्चित्पुण्यवान् सख्याता युष्को जीव युगलादिक सप्तभवान् करोति कश्चित् असख्यातायुष्को जीवोऽष्ट भवान् वा करोति एवं ज्ञात्वा प्रमादी न विधेय १४ देवे नेरइ मइ गओ उक्को सम्बीवो उवसम्वसे इक्के क भवग्गहणे सम १५ देवे देव भवे नरके

यममापमायए ॥११॥ चउरिंदिय कायमइगओ उक्कोसजीवोउ वसवसे। कालसंखिज्जसंणिय समयगोयममापमा यए ॥१२॥ पंचिंदिय कायमइगओ उक्कोसजीवोउवसवसे। सत्तट्ठभवग्गहणे समयगोयममापमायए ॥१३॥ देवोनेरइ

सहस्रात्मक सख्याता वरस रहे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ११ चउरिन्द्रियकायमधिगत प्राप्त चउरिन्द्रीयकायमाहि गयो थको जीव उत्कृष्ट सम्वसति उत्कृष्टो जीव रहे कालसख्यात वर्षसहस्रात्मक सख्यात वर्ष रहे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी १२ पञ्चेन्द्रियकायमधिगत प्राप्त पञ्चेन्द्रि य कायमाहि गयो थको उत्कृष्ट जीव सम्वसति उत्कृष्टो जीव रहे सप्ताष्टभव उत्कृष्टत सात भव अथवा आठभव समयमपि मा प्रमादी हे गौतमधर्मने

नरक भवे अधिगतः ससारी जीवः उत्कृष्ट एकै कस्मिन् भवग्रहणे सम्बसेत् तस्मात् समयमात्रमपि प्रमादं माकुर्याः देवो मृत्वादेवो नस्यात् नारको मृत्वा नारको नस्यात् एक अन्यद्भवान्तरं कृत्वा पश्चात्स्यादित्यर्थः तस्मादेकैक भवगहणमित्युक्तं १५ एवं भवसंसारे संसरइस हासु हेहिं कम्मेहिं जीवोपमाय बहुलो समय गो० १६ एवं असुना प्रकारेण जीवः भव संसारे भवभ्रमणे शुभाशुभैः कर्मभिः प्रेर्यमाणः संसरति पर्यटति कीदृशो जीवः प्रमादबहुलः प्रमादो बहुलो यस्य स प्रमादबहुलः प्रमादवसवर्त्तीत्यर्थः तस्मात् प्रमादस्य दुर्निवारत्वं ज्ञात्वा समयमात्रमपि प्रमाद माकुर्या मनुष्य

सूत्र

एयमइगओ उक्कोसंजीवोउवसंवसे । एक्केक्क भवग्गहणेसमयंगोयममापमायए ॥१४॥ एवं भवसंसारेसंसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं । जीवोपमाय बहुलो समयंगोयममापमायए ॥१५॥ लद्धूणवि माणुसत्तणं आयरियत्तं पुणरावि दुल्लहं । बहवे दसुयामिलक्खुया समयंगोयममापमायए ॥१६॥ लद्धूणवि आयरियत्तणं अहीणा पंचिंदियाहु दुल्लहा । विगलिंदिय -

भाषा

वोपि १३ देवैनैरयकै चापी गतः देवता नारको मांहि गयो थको उत्कृष्ट जीवः सम्बसति उत्कृष्ट जीव वसे रहे एकैक भवगहणे एकएकगह भव करे समयमपि गौतम माप्रमादी १४ एवं भवसंसारे० इणे प्रकारे भवरूपसंसारमांहि नवा नवा भव करतो जीव परिभ्रमति शुभाशुभ कर्मभिः भमतु फीरे छे आपणअसुभकर्मं करीने जीवः प्रमाद बहुल० जीवप्रमादे करीने बहुलछे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी १५ लब्धमपि मानुषत्वं यद्यपि मनुष्यपणुं लाधु जीवे आर्यत्वं पुनरपि दुर्लभं तोपणि आर्यखेत्र पामवुं दोहीलु बहवचोराः म्लेच्छाः यवनदेशोद्भवा बहवे घणा चौर म्लेच्छघणा छे आर्यकुल पांमवो दोहिलो छे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी १६ लब्धापि आर्यत्वं आर्यदेस लाधो अहीन पञ्चेन्द्रियता दुर्लभेव सपूर्ण पञ्चेन्द्रियपणो दुर्लभदोहिलो

त्व प्राप्तो ऽपि उत्तरोत्तर गुणानि दुर्लभा इत्यर्थं १६ लद्धूण विमाणु सत्तण आयरित्त पुणरावि दुल्लह बहवेदसुयामिलक्खुया समय० १७ मनुष्यत्व अपि लब्धा आर्यत्व आर्यदेशोत्पत्ति भाव पुनरपि दुर्लभ यद्यपि मनुष्यत्व जीव प्राप्नोति तदापि आर्यदेशे मनुष्यत्व दुर्लभमित्यर्थं यत्रदेशेषु धर्माधर्म जीवाजीव विचार ॥ आर्योदेशस्तत्रोत्पत्ति दुर्लभा पुनरपि बहवो जीवादस्युवश्चौरा देशानां प्रान्ते पर्वतादिषु निवासकारिण स्तस्करा भवन्ति म्लेच्छा येषां वाक सम्यक केनापि न ज्ञायते ते म्लेच्छा उक्तस्ते पुलिन्दाना हलानेष्टा शवरावरटा भटा माला भिल्ला किराताय सर्वेपि म्लेच्छजा तय तत्र च धर्माधर्मज्ञान दुर्लभ तस्मात् समयमात्रमपि प्रमाद माकुर्या १७ लद्धूणवि आयरियत्तण अहीण पञ्चिन्दियसाहु दुल्लहा विगिलिन्दिय याहुदीसइ समय १८ आर्यत्व आर्यदेशोत्पत्ति भाव अपि लब्धाइ इति पुनरथें अहीन पञ्चेन्द्रियता पुनर्दुर्लभा हु इति बाहुल्येन बहूनां विकलेन्द्रि ताहृश्यते विकलानि रोगाद्यपहतानि इन्द्रियाणि येषान्ते विकलेन्द्रिया स्तेषां भावो विकलेन्द्रियता साहृश्यते बहवोहि दुष्कर्म वशात् रोगोद्रेकेण

मूल

याहुदीसई समयगोयममापमायए ॥१७॥ अहीणपञ्चिन्दियत्तंपिसेलहे उत्तमधम्मसुइहुदुल्लहा। कुतित्थि निसेवए जणे समयगोयममापमायए ॥१८॥ लद्धूणवि उत्तमसुय सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा। मिच्छत्तनिसेवएजणे समयगोयम

भाषा

बाहुल्येन विकलेन्द्रिय ताहृश्य ते घणालोकइन्द्रीइ करी हीणदीसे छे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी १७ अहीन पञ्चेन्द्रीयत्वमप्यति दुर्लभ सयत्तपि सेलहे कदाचित् लभेत तथापि उत्तम धर्मस्य श्रुति दुर्लभा पाचेंद्री परगडा पाम्या पणि शुद्धधर्मनो सुणवो दुर्लभ कुतीर्थ नीसेवते लोका कुतीर्थना सेव णहार घणा लोक दिसे छे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी १८ लब्धापि उत्तमां श्रुति उत्तमधर्मसाभल्यो श्रद्धा पुनरपि दुर्लभा वर्त्तते धर्मसाभल्यो पीण

उ०टीका
अ०१०
३२०

स्यादित्यर्थः तस्मात् श्रोत्रबले सति धर्मश्रवणादरः कर्त्तव्यः तत्र समयमात्रमपि त्वं मा प्रमादी २२ परिजूरइते सरीरयं केसा पंडुरया हवंति ते से चक्खुबले ० २२ गाथाया पूर्वार्द्ध स्यार्थः पूर्ववत् ज्ञेयः तत्पूर्वसत्क चक्षुर्बलं हीयते तत् हानौ च धर्मकरणं दुर्लभं ज्ञात्वा प्रमादं मा कुर्याः २२ परिजूरइते सरीरय० से घाणबलेय० २३ तत् पूर्वसत्कं अपि घ्राणबलं नासाबलं हीयते तस्माद्घ्राणबले सति त्वया सुरभिदुरभिगन्ध ग्रहणेन विषये रागद्वेषकरण वेलायां प्रमादी न विधेयः २३ परिजूर० सेजिब्भबले यहायई समयं० २४ तत् जिह्वाबलं हीयते यादृशं तरुणावस्थायां भवेत् तादृशं वृद्धावस्थायां न स्यात् तस्माज्जिह्वा बले सति स्वाध्यायादिकरणे प्रमादं माकुर्याः २४ परिजूरइते सरीरयं० सेफा सबले यहा यए सम० २५ तत्स्पर्शबलं शरीरबलं हीयते यादृशं यौवने शरीरं बलं भवेत् तादृश जरायां न स्यात् तस्माद्धर्मानुष्टानादौ प्रमादं माकुर्या २५ परिजूरइते सरीरयं० से सव्वबले यहायई सम० २६ तत् तरुणावस्था सत्कं सर्वबलङ्कर चरणदन्तादीनां बलं हीयते तस्मात्समयमात्रमपित्वं मा प्रमादी १६ अरई गण्डम्बिसूइया आयङ्का विविहा

सूत्र

तिते । सेजिब्भबलेय हायई समयंगोयममापमायए ॥२४। परिजूरइते सरीरयं केसापंडुरया हवंतिते । सेफासबलेय हायई समयंगोयममापमायए ।२५। परिजूरइते सरीरयं केसापंडुरया हवंतिते । सेसव्वबलेय हायई समयंगोयम

भाषा

प्रमादी २४ परिजीर्यते तव शरीर दिन२ प्रति शरीरजीर्ण थाइछे केशा श्वेताः भवन्ति तव केश धवला हुस्ये से सर्व्व बलात् चीयते देहनो स्पर्शनो वलश्री छो पडे छे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी २५ परिजीर्यते तव शरीरं दिन२ प्रति शरीर जीर्ण थाइ छे केशाः श्वेता भवन्ति तव केश धवला हुइ छे से सर्वबलात् हीयते कर चरणाद्यवयवानां शरीरनो वल ओछु थाई छे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी २६ अरतिः वातादिजन्य चित्तोद्वेग

उ टीका अ०१० २२१

फुसन्तिते विवडद् विद्व सहते सरीरय समं० २७ हे गौतम तेतव विविधा नानाप्रकारा० आतङ्कारोगा शरीर स्पृशन्ति ते के च आतङ्का अरति पतुरयोति विधिवातोद्भूत चित्तोद्वेगो वात प्रकोप इत्यर्थं गण्ड रुधिर प्रकोपोद्भूत स्फोटक विशूचिका अजीर्णोद्भूत वमनाध्मान विरेचादि सद्यो मृत्यु क्षत् रुक इत्यादयो रोगा आतङ्का देह पीडयन्ति ते रोगै पीडते शरीरे सति धर्माराधन दुष्करन्ते शरीर रोगादिभूत सत् निपतति विशेषेण बलाप चयात् नश्यति पुन शरीर ते तवविध्वस्यते जीवमुक्त सत् विशेषेण अध पतति अत्र सर्वत्र सम्पिते तव इत्युक्त गौतमे च केशपाण्डुरत्वादि इन्द्रियाणा हानिय न सम्भवति तथापि तन्निश्रया अपरशिष्यादि वग प्रतिबोधार्थं उक्त दोषाय न भवति तथा च प्रमादो न विधेय २७ वुच्छिन्दसिणेह मप्पणो कुमय सारइय वपाणिय से सव्वसिणेह वज्जिए समयज्ञो० २८ हे गौतम आत्मन स्नेहमपि विषयेराग व्युच्छिन्धि अपनय स्नेहबन्धन त्यजेदित्यर्थं

सूत्र

मा पमायए ।२६। अरईग डविसूईया आयका विविहा फुसति ते विवडइ विद्धसइ तेसरीरय समय गोयम मा पमा यए ।२७। वोच्छिंदसिणेह मप्पणो कुमुय सारइयवपाणिय । सेसव्वसिणेह वज्जिए समय गोयम मा पमायए ।२८।

भाषा

गड गडविसूचिका अजीर्णविशेष मालविका आतङ्का सद्योघाति रोगा विविधा स्पृशन्ति तवाङ्ग आन्तकरोग नानाप्रकारना रोग आवी व्यापे निपतति बलत विध्वसति जीवमुक्त आध पतति तेव शरीरक बल थी रहित करे शरीर विणासे जीव थी रहित करे एहवा रोग आवी आवी स्पर्शे सरीरे समय मपि हे गौतम मा प्रमादी २७ निवारय स्नेहराग आत्मान दूरिकरी स्नेह आत्मानो चन्द्रविकाशिकामल शारदोभव जलवत् कमलपाणी माहि लगी पछे कादमपाणी छांडीने पो मलिम रहे तिम तु गौतमससार थी रहित हुसेसर्व स्नेहवर्जित सन् तिम सर्वत्र स्नेहवर्जिने विचरे समयमपि हे गौतम

किं किमिव कुमुदं कमलं पानीयमिव यथा कुमुदं पानीयंत्यक्त्वा पृथक् तिष्ठति तथा त्वमपि स्नेहन्त्यक्त्वा पृथक् भवेत्यर्थः कीदृशं पानीयं शारदं शरदि ऋतौ भवं शारद अत्र पानीयस्य शारदमिति विशेषणेन मनोरमत्वं स्नेहस्य दर्शितं स्नेहोहि संसारिणो जीवस्य मनोहरो लगति से शब्दोऽथ शब्दार्थे अथ त्व सर्वस्नेह वर्जित सन् समयमात्रमपि प्रमादं माकुर्याः २८ चिच्चा धणञ्चभारियं पव्वइओहि सि अणगारियं मावन्तं पुणोवि आइए समयं०२९ हे गौतम यदित्वं अनगारितां साधुत्वं प्रव्रजितोसि प्रकर्षेण प्राप्तोसि किं कृत्वा धनञ्च पुनर्भार्यां त्यक्त्वा तदा पुनरपि वान्तम्यतं मापिव त्यक्तं वस्तुनि ग्रहणादर माकुर्याः समयमात्रमपि मा प्रमादीः २९ अव उज्झियमित्त बंधवं विउलंचेव धणोहसंचयं मातंवि इयं गवेसए सम० ३० हे गौतम मित्र बान्धवं अव उज्झिय अपोह्यत्यक्त्वा च पुनर्धनौ घसञ्चयं धनस्यओघ समूहो धनौ घस्तस्य सञ्चयो राशीकरणं तदपि अपोह्यत्यक्त्वा बितीय इति द्वितीय

चिच्चाधणंच भारियं पव्वइओ हिसि अणगारियं। मावंतंपुणोवि आइए समयं गोयम मा पमायए ।२९। अवउज्झिय मित्तबंधवं विउलंचेव धणोहसंचयं। मातंबीइयंगवेसए समयंगोयममापमायए ।३०। न हुजिणे अज्जदिस्सइ बहु

मा प्रमादी २८ त्यक्त्वा धनं पुनः भार्यां धन अने भार्या छोड़ीने प्रव्रजितः अनगारतां दीचालीधी छे अणगार हुओ छे मा भोगादिकं वां तं पुनरपि न गवेषय कांमभोग सर्वतैवस्या छे ते बली अङ्गीकार मत करे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी २९ अपोह्य त्यक्त्वा मित्राणि च बान्धवांश्च छांड्या छे मित्र तथा बान्धव भाई विपुल,पुन एव द्रव्य समूह विपुलविस्तीर्णं जे धन संच्या हता ते सर्व छांड्या छे मातन्मित्रादिकं गवेषयः एतावता मेलोने वीजीवार बली गवेषणा करे मति समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ३० नहु निश्चये जिनोद्य दृश्यते वर्त्तमान काले वीतराग नथी दीसता बहुमतो दृश्यते

शार पुनरित्यय तत् मिवसान्यत धनो घसञयादि मागवेपयेत् तस्मात् समयमात्रमपि माप्रमादी ३० नहुजिणे अज्जदिस्सई बहुमए दिस्सइ मग्ग देसिए सम्पइने याउ एयहे समय० ३१ पुनरपि गौतमादीन् दृढीकरोति श्रीमहावीर हे गौतम सम्प्रति इदानीं मयि विद्यमाने प्रत्यक्ष प्रमाणेन दृश्यमाने सति नैयायिके मुक्तिरूपे पथिमार्गविषये माप्रमाद भवान् कुर्यात् यद्यपि तवेदानी केवलज्ञान नास्ति तथापि अहं विद्यमानोस्मि इति सांप्रत समग्रया भावेन प्रमादस्त्याज्य अग्रे तु मदिरहेपि एताद्रशा भाविनो भव्यजना भविष्यन्ति ये इति विचिन्त्य इत्यनुमान प्रमाणं विधाय नैयायिके मार्गे साधधर्मे मयि च स्थिरा भविष्यन्ति तत् किं अनुमान कृत्वा अप्रमादिन स्थिराश्च भविष्यन्ति तदाहमार्गे इव मुक्तिनगर प्रतिपन्था इव देसित कथितो मार्गदेसित अयमेव दयाधर्मो मुक्तिमार्गइव कथितो दृश्यते अद्य इदानीं जिनो न दृश्यते कथम्भूतोय मार्गदेसित बहुमत बहुभिर्जनैः मानितो बहुमत अथवा बहवोमताता न यायस्मिन् स बहुमत नैगमसंग्रह व्यवहार ऋजु शब्दसमभिरूढ एवम्भूतादि सप्त नया मात ज्ञानदर्शन चारित्राणि मोक्षमार्ग अपरमतेषि एकान्त वादित्व तस्मादय जैन मतस्तु बहुमत एवंविधोय मुक्तिमार्ग अतीन्द्रियार्थ दर्शित जिन केवलिनं विना तस्मात् अस्य बहुमतस्य मुक्तिमार्गस्य एव भव्या आस्थन्ति चेदयं मुक्तिमार्गोस्तित्विनो नास्ति तदा अस्य मार्गस्य चानि रूपापि आसीत् न च न कश्चित् यथाऽपि सामान्य किन्तु अस्य धर्मस्योपदेष्टा कश्चिदासौ जिन एव भवितु मर्हति इति मद्विरहेऽपि अप्रमादिनो भविष्यन्ति मयि सम्प्रति केवलिनि सति अस्मिन् नैयायिके पथि सर्वथा प्रमादस्त्याज्य एवेति भाव निश्चित आयो मुक्तिलक्षणो तासो चस्मिन सनै यायिको ज्ञानदर्शनचारित्र रूप रत्नत्रयात्मक इत्यर्थ अथ पुनरपि अन्या गाथा ग्रन्थगर्भोप्यस्ति हे गौतम अद्य इदानीं भवान् जिन दृष्टी न दृश्यते इति क्रिया यत्नात् भवान् इति पद अनुक्त मपि गृह्यते परं बहुभिर्मतोमान्यो ज्ञातो वा बहुमत अथात् प्रसिद्ध मार्गदेशक निशित भवन

मार्गो देशितो मया तवोपदिष्टः स मार्गस्त्वया विलोक्यते एव तस्मात् सम्प्रति इदानीं मयि जिने सति नैयायिके मार्गे मदुक्ते मार्गे समयमात्रमपि माप्रमादीः मयि विद्यमाने सति मयि विषये मोहात् भवान् जिनो न वर्त्तसे पश्चात्त्वं जिनो भावी तस्मादिदानीं मद्वचने प्रामाण्यं विधेयं इत्यर्थः३१ अवसोहिय कण्टयापहं उत्तिम्रोसि पहं महालयं गच्छसि मग्गं विसोहियं सम० ३१ हे गौतम त्वं महालयं पन्था न मुत्तीर्णोसि प्राप्तोसि महान् सम्यक् ज्ञान दर्शनचारित्र लक्षणः आलयः आश्रयो यस्मिन् स महालयस्तं महालयं एतादृशं पन्थानं राजमार्गं प्राप्तोसि किं कृत्वा कण्टकपथं अव शोध्य कण्टकानां बोद्ध चरकसख्यादीनां पन्थाः कण्टकपथ आकारः प्राकृतिकः अथवा कण्डैः कुतीर्थिकैः आकीर्णो व्याप्तः कुत्सितः पन्थाः कण्टकापथस्तं परिहृत्य सम्यक् मुक्तिमार्गं राजमार्गमिव प्राप्तोसि हे गौतम यदि विशेषेण शोधिते निरवद्ये मार्गे गच्छसि तदा समयं अपि प्रमादं

मणदिस्सइमग्गदेसिए । संपइनेयाउएपहे समयंगोयममापमायए ॥३१॥ अवसोहिय कंटयापहंउत्तिम्रोसिपहं महालयं गच्छसि मग्गंविसोहिया समयंगोयममापमायए ।३२। अवले जहभारवाहए मामग्गेविसमेव गाहिया । पच्छापच्छाणु

मार्गदेशकः घणा मत मुक्तिमार्गना देखाडणहारदीसेछे सम्प्रति मोक्षमार्गे पथि साम्प्रतहवणा मोक्षमार्गने विषे प्रमाद मत करे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ३१ अवशोध्यपरिहृत्य कण्टकानां द्रव्यतस्थूलकण्टकादीनां भावतः चरकादि कांटानो मार्गलांघ्यो छे चरकादीपाखंडी तेहने पणी मार्गलांघ्यो छे उत्तीर्णोसि पथं महान्तं लांघ्यो छे मोटा मार्ग गच्छसि मार्गे त्वं विशोध्य भलो परे मार्ग सोभीने तुं जाइसो मुक्तने विषे ते कारणे करीने समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ३२ अवलो यथा भारवाहक निबल जिम भारवाहक मार्गविषम अवगाह्य प्रविश्य त्यक्त अङ्गीकृत भार माथे भार लीधो छे विषम

टीका

त्व मा कुर्याः ३२ अवने जह भारवाहए मामग्गे विसमे वगाहिया पच्छा पच्छाणुतावए समय० ३३ हे गौतम यथा कश्चित् भारवाहको विषम मार्ग अवगाह्य विषमे मार्गे स्वर्णादि भारमुत्पाट्य समे मार्गे अवल स्यात् स च भारवाहक पश्चात् गृहमा गत पश्चादनुतप्यते पश्चा तापपीडित स्यात् कोर्थं यथाकथिद्भारवाहक सिरसि कतिचिद्दिनानि यावत् विषमे मार्गे स्वर्णादि भारमुद्वहति तदनन्तर कुत्रचित्पाषाणादि सङ्कुले मार्गे भारेणाक्रान्तोह मिति ज्ञात्वा त भारमुत्सृजति स च भारवाहक पश्चाद् गृहमागत सन् निर्द्धनत्वेन पश्चादनुतप्यते पश्चात्ताप पीडित स्यात् तथा त्वमपि विषम मार्ग तारुण्यादि वयोविशेष महाव्रतभार मुद्वाह्य समे मार्गे यौवनोत्तारे कुत्रचित्परीषहादिना स्खलन् महाव्रत भार त्यजन् अवली भवन् पश्चादृत्थे वयसि आगत सयमधनरहितो भूत्वा मा पश्चादनुतप्ये मा पश्चात्तापपीडितो भूया इति विचिन्त्य समयमात्रमपि मा प्रमादी ३३ तिण्णोहुसि अण्णवमहं कि पुणचिट्ठसि तीरमागओ अभि तुरपार गमित्तए सम० ३४ हे गौतम त्व अर्णव भवसमुद्र तीर्ण एव असि उत्तरित प्रायोसि कि पुनस्तीर आगत सन् तिष्ठसि औदासीन्य भजसि हे गौतम भवार्णवस्य पारगन्तु अभित्वरस्व पारगमने उत्ताली भव इत्यर्थं तीर

मूल

तावए समयगोयममापमायए ॥३३॥ तिण्णोहिसि अणवमहकिपुण चिट्ठसितीरमागओ । अभितुरपारगमित्तए समय

भाषा

भार सर्व लाध्यो छे चौरकाले पापडी तेहनो चौषमार्ग लाध्यो छे दोहिलो पश्चात् पश्चात्ताप करतथा पछे ते भारवाहक मारग लांघ्या पछी पछताये घाटनो मार्ग लांघ्यो छे घर थोडो सोमार्ग आदे रह्या छे तिवारे भारनाखोदीइ हे गौतम मार्ग लाघीने थोडामाही भारनाख्यो समयमपि हे गौतममा प्रमादी ३३ तीर्णोसि भवसागर महांत हे गौतम ससारसमुद्रतर्यो छे कि पुनस्तिष्ठसितीरमागत हे गौतम काठे आवीवैठा काइ छे अभि सन्मुखमुनि ग तुत्वरा शीघ्र भव पार अर्थान्मुक्तिपदगन्तु हे गौतम तु शीघ्र मुक्ति जाइ समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ३४ क्षपकश्रेणि मुत्कृता आरुह्य क्षपकश्रेणि

मत्र मुक्तिपदमुच्यते तस्मात्समयमात्रमपि मा प्रमादीः ३४ अकले वरसेणिमुस्सिया सिद्धिं गोयमलोयं गच्छसि खेमंच सिवं अणुत्तरं समयं० ३५ हे गौतम त्व सिद्धिं सिद्धि नाम कं लोकं स्थानं गमिष्यसि प्राप्स्यसि किं कृत्वा अकलेवरश्रेणिं उत्सृज्य न विद्यते कलेवरं शरीरं येषां ते अकलेवराः सिद्धा स्तेषां श्रेणि उत्तरोत्तरप्रशस्तमनः परिणति पद्धतिः चपकश्रेणि स्तां अकलेवर श्रेणिं उत्सृज्य उत्तरोत्तरसंयमस्थानप्राप्त्या उन्नतां दूरवृत्वा कथम्भूतं सिद्धिं लोकं चेम परचक्राद्युपद्रवरहित पुन कोदृशं शिव सकलदुरितोपशमं पुनः कीदृश अनुत्तरं सर्वोत्कृष्टं३५ बुद्धे परिनिव्वुडेचरे गामगए नगरेवसंजए संतिमग्गचबूहए समयं० ३६ हे गौतम परिनिर्वृतः शांतरससहितः सन् चरसंयमं सेवस्व कीदृशः ग्रामे गतो ग्रामगतः च पुनर्नगरे गतः च शब्दात् वने वा स्थितः पुन कोदृशः संयत् सम्यक् यत्नं कुर्वाणः पुनः कीदृश बुद्धो ज्ञाततत्त्वः च पुन हे गौतम शांतिमार्गं त्वं बृंहये भव्यजनानां उपदेशद्वारेण

गोयममापमायए ॥३४॥ अकलेवर सेणिमुस्सिया सिद्धिं गोयमलोयं गच्छसि । खेमंचसिवंअणुत्तरं समयं गोयमलापमा-
यए ॥३५॥ बुद्धेपरिनिव्वुडे चरेगामगएनगरेव संजए । संतिमग्गंचबूहए समयंगोयममापमायए ।३६। बुद्धस्सनिसम्म

नेविषे चढीने पछे मुक्तिजाइ सिद्धिं हे गौतम लोकं गच्छसि हे गौतम सिद्धिलोकने विषे जाईस परचक्रादि रहितं शिवं सर्वोत्तमं मुक्तिः कोसी छे खेम कल्याणनी करणहार छे शिव उपद्रव रहितछे सर्वोत्कृष्टछे समयमपि गौतम मा प्रमादी३५ ज्ञाततत्वपरीनोर्वृतकषायः सयमचरेत् तत्त्व जाणे छे कषाय आपणे वशो कोधा छे इम विचरजे मुक्तिमार्गं वृद्धिं नयेत् सयतः गाम नगरने विषे शीतल हुओ थको विचरे मुक्ति मार्गंच वृद्धिं नयेत् उपशम मार्गव धारे उपसम मार्ग वृद्धि करे समयमपि हे गौतम मा प्रमादी ३६ वीरस्य श्रुत्वा भाषित बुद्धतोर्थंकर तेहनो वचनसांभलो सुष्टु कथितं तीर्थंकर भलो काह्यो

उ०टीका
अ १

हवि प्रापये अत कार्यं समयमात्रमपि मा प्रमादो ३६ बुद्धस निसम्म भासिय सुकहियमट्ठपओ वसोहिय राग दोस छिंदिया सिद्धि गए गोयमुत्ति बेमि ३७ गौतम सिद्धि मुक्तिस्थान प्राप्त किं कृत्वा बद्धस्य श्रीमहावीर देवस्य सुष्टुसो भन भाषित सुभासित सम्यक उपदेश निगम्य श्रोत्रद्वारेण हृदय धाय च पुन राग द्वेष च छित्वा कोदृश सुभाषित सुकथित सुतरां अतिशयेन शोभनप्रकारेण उपमायोगेन कथित वाक्यप्रबन्धेन रचितमित्यर्थं सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन पुर प्राह यथा श्रीमहावीरदेवेन गौतमादि शिष्यार्थे कथित तथाह तवार्थे ब्रवीमीत्यर्थं ३७ इति द्रुमपत्राख्य अध्ययन दशम सम्पूर्णम् ॥१ ॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययनसूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्यलक्ष्मीवल्लभगणिविरचितायां दशमाध्ययनस्यार्थं सम्पूर्णं १० अथ दशमेऽध्ययने प्रमादपरिहाराय उपदेशो दत्त सच विवेकिन एव स्यात् विवेकी च बहुश्रुतो भवेत् अत एकादश अध्ययन बहुश्रुताख्य बहुश्रुतपर्यैन

सूत्र

भासिय सुकहियमट्ठपओवसोहिय । राग दोसचक्किदियासिद्धिगइ गएगोयमत्तिबेमि ॥३७॥ दुमपत्तज्झयणसम्मत्त ॥१०॥
संजोगाविप्पमुक्कस्स अणगारस्सभिक्खुणो । आयारपाउकरिस्सामि आणुपुव्विसुणेहमे ।१। जेयाविहोइ निव्विज्जेथद्धे

भाषा

अर्थं पदे उपशोभित अर्थं अने पद तेणे करी शोभित छे राग द्वेषच छिद्यात् रागद्वेष छेदीने सिद्ध गते गत गौतम इति समाप्तौ ब्रवीमी गोतमगुणि प्रुहता ३७ इति श्रीद्रुमपत्रकाध्ययन सपूर्णम् ॥१०॥ सजोग रहितस्य वाह्य सजोग घर धन माल बेटा बेटी प्रमुख अन्तरङ्ग सयोग धार कषायसजोगवाह्य अन्तरसयोग सर्व छांड्या छे अनगारस्य भिक्षो घररहित भिक्षुयतीने आचार प्रकटी करिष्यामि ते साधुनो आचार प्रगट करीस अनुक्रमेण शृणुत मे मन कथयत अनुक्रमे सुझने कहता सांभलो१ यथापि भवन्ति निर्विंद्य विद्या रहित जे साधु विद्याइ करी हीन हुवे

मुच्यते सूत्रं संजोगाविप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो आयारं पाउकरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेहमे १ हेजंबू संयोगात् विप्रमुक्तस्य अनगारस्य भिचो: आचारं साधुयोग्यक्रियां बहुश्रुतपूजा रूपं बहुश्रुतस्वरूपज्ञानं आनुपूर्व्या अनुक्रमेण प्रादुःकरिष्यामि प्रकटी करिष्यामि मे मम कथयिष्यतः त्वं शृणु १ अथवा साधो आचारं आकारं बहुश्रुतस्य आकारं बहुश्रुतः कीदृग् स्यात् तत् प्रकटी करिष्यामि १ प्रथमं तत् परिज्ञानार्थं अबहुश्रुतस्य लक्षणमाह ॥ जेया विहोइ निव्विज्जे थद्धे लुद्धे अणिग्गहे अभिक्खणं उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए २ यश्च यो मनुष्यो निर्विद्यो भवति अपिशब्दात् सविद्यो वा भवति स चेत् स्तब्धो अहङ्कारी भवति पुनर्लुब्धो भवति रसादिषु लोलुपो भवति पुनर्यो अनिग्रह इन्द्रिय दमरहितो भवति पुनर्यः अभीक्ष्णं वारं२ उल्लपति उल्ला बल्येन यथा तथा अविचारितं लपति वाचालो भवति स पुरुष अविनीतो विनयधर्मरहितोऽबहुश्रुत उच्यते सविद्योपि अबहुश्रुतः स्यात् चेत्तविद्यत्वस्य फलं न प्राप्नुयात् तद्विपरीतो बहुश्रुतः स्यात् अबहुश्रुतस्य कारणमाह २ अह पंचहिं ठाणेहिं जेसिं सिक्खा न लब्भई थंभाकोहापमाएणं रोगेणालस्सए णए ३ अथ श्रोतुः पुरुषस्य उत्कर्णता करणे यै पञ्चभि स्थानैः पञ्चभिः प्रकारैः शिक्षाग्रहणा आसेवना रूपान लभ्यते न प्राप्यते तानि पञ्चस्थानानि शृणु इत्यध्याहारः स्तम्भः क्रोध प्रमाद रोग आलस्यंच स्तम्भात् अहङ्कारात् शिक्षायोग्यो न भवति तथा क्रोधात् अपिशिक्षायोग्यो न भवति तथा पुनः प्रमादेन मद्यविषयकषायनिद्राविकथा रूपेण उपदेशयोग्यो न स्यात् तथा रोगेण वातपित्तश्लेष्मकुष्ठशूलादिव्याधिना शिक्षाग्रहणार्हो न भवति तथा

सूत्र लुद्धेअणिग्गहे । अभिक्खणं उवल्लवई अविणीएअबहुस्सुए ॥२॥ अहपंचहिंठाणेहिं जेहिंसिक्खानलब्भई थंभाकोहापमा

भाषा स्तब्धः लुब्धः रसादिग्टध्नः स्तब्धरहे लोभ करे इन्द्रीआपणा वश न करे अहङ्कार करे अभिक्षण पुनः२ वार वारं उल्लपीति वार वारबोले लबाडी करे स अविनीतः अबहुश्रुतः उच्यते ते साधु अविनीत अबहुश्रुत कह्यो जे २ अथ पञ्चभिः स्थानैः हवे पांचे थानके करी यै सिक्षाग्रहणं न लभ्यते सूत्र अर्थने

उ०टीका अ०११ १२८

पालस्येन चतुर्थमेन च यत्ने न एते सर्वं प्रकारे अथवा एतेषां स्थानाना मध्ये एकैकेनापि स्थानेन शिचा न प्राप्यते गुरूपदिष्टाशास्त्रार्थाभ्या सब्रूस न
गम्रीति शिचा लाभस्याभावात् अबहुश्रुतत्व स्यात ३ अथाये तन गाथायां बहुश्रुतत्वेहेतूमाह अह अट्ठहि ठाणेहि सिक्खासीलेत्ति वुच्चई अहस्सिरेसयादंते
नयमम्मुदाहरे ४ अथानन्तर एतैरष्टभि स्थानै अष्टभि प्रकारै शिक्षाशील इत्युच्यते शिचा ग्रहणासेवना रूपशास्त्र शीलते धारयतीति शिचा शील
तानि प्रष्टप्रकाराणोमानि अहस्सिरे अहसनशील पुन सदा दांत जितेन्द्रिय पुनर्यो मर्म न उदाहरेत् य एताहृशो भवति स गुरूणां शिक्षायोग्यो भव

मूल

एग रोगेणालस्सएणय ।३। अहअट्ठहिठाणेहि सिक्खासीलेत्तिवुच्चई । अहस्सिरेसयादंते नयमम्मसुदाहरे ।४। नासीले
नविसीले नसियाअइलोलुए । अकोहणेसच्चरए सिक्खासीलेत्ति वुच्चई ।५॥ अहचउदसहिठाणेहि वट्टमाणेउसंजए । अविणीए

भाषा

लहे ते पांच स्थानक कहे गर्वात् क्रोधात् प्रमादात् गर्व करी क्रोध करी२ प्रमादेकरी ३ निन्दा करीने रोगेणालस्येन च रोगे करीने४ आलसे करीने ५ए
पांच योगे करी अर्थ सूत्र न पामे ३ अथ अष्टभि स्थाने हवेए आठ स्थानके करीने शिक्षा शील इति उच्यते शिक्षाने योग्य हुवे यती अहसनशील
सदा दांते इन्द्रियमदते सहे नहीं सदा मायणोह इ द्रीयदमे न च मर्म उदाहरेत् कोइ नो मर्म बोले नही ४ न शीलेन नव विध शील सातिसारा
अशील नहुवे सदा शील आचार सहीत हुवे अतीचार न होइ न स्यात् अति लोलुप अति लोलपी न हुवे आक्रोधस्य तत्परत क्रोध न करे सत्य बोले ए
आठे योगे करी शिक्षा शील कहीये सिक्षा सील इति उच्यते ५ अथ चतुर्दशस्थानके हवे चउद स्थानकने विषे वर्त्तमान अधाधु असयती कहीइ
अविनीत इति उच्यते ते साधु अविनीत कहीइ निर्वाण मोक्ष न याति निर्वाण कहीइ मोक्ष तीहां पणि नजाइ ६ पुन पुन क्रोधी भवति वार

तीत्यर्थं गुणिनी ग्रहणात् गुणानां ग्रहणं कर्त्तव्यं नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए अकोहणे सच्चरई सिक्खा सीलेत्ति वुच्चई ५ पुनरेतादृशः शिचा शील उच्यते एतादृश यः सर्वथा अशीलो न स्यात् न विद्यते शीलं यस्य स अशीलः शीलरहित इत्यर्थः पुनर्यो विशीलो न स्यात् विरुद्धशीलो विशीलः प्रतीचारै कलुषितव्रतो न स्यात् यः पुनरति लोलुप अति रसास्वाद लम्पटो न स्यात् अथवा अतिलोभ सहितो न स्यात् पुनर्योऽक्रोधनः क्रोधेन रहितः स्यात् पुनर्यः सत्यरतिः स्यात् स शिचाशीलः स्यात् इत्यर्थं हास्य वर्जनं १ दांतत्वं २ पर मर्मानुद्घाटनं ३ अशील वर्जनं४ विशीलवर्जनं ५ अति लोलुपत्व निषेधन ६ क्रोधस्य अकरणं ७ सत्यभाषण ८ एतैरष्टभि प्रकारैर्बहुश्रुतत्वं स्यादिति भावः ५ अथ अबहुश्रुतत्व बहुश्रुतत्व हेतोरविनीत विनीतयोः स्वरूपमाह अह चउदसहि ठाणेहिं वट्टमाणे उसंजए अविणीए वुच्चईसोउनिव्वाणंच न गच्छई ६ अथ चतुर्दशसु स्थानेषु वर्त्तमानं संयतोऽविनीत उच्यते स चाविनीतो निर्वाणं मोचस्त्र नगच्छति न प्राप्नोति अथवा निर्वाणं निर्वाणकारणं ज्ञानदर्शन चारित्रलचणं रत्नत्रयं सुखकारण न प्राप्नोति अत्र चतुर्दशसु स्थानेषु इति सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात् तृतीया बहुवचनं ६ अथ तानि चतुर्दशस्थानानि तिसृभिर्गाथाभिराह अभिक्खणंकोही हवइ पबन्धञ्चपकुव्वई मित्तिज्ज माणो वमई सुय लद्धूणमज्जई ७ अविपाव परिक्खेवो अविमित्तेसु कुप्पई सुप्पियस्साविमित्तस्स रहे भासइ पावगं ८ पइन्नवाई दुहिले थद्धे लुद्धे अणिग्गहे असम्बिभागो अचियत्ते अविणी इत्ति वुच्चई ९ अथतानि चतुर्दशस्थानानि विभजति य ईदृशो भवति स च पुमान् अविनीत इत्युच्यते ईदृशः कीदृशः

सूत्र वुच्चई सोउनिव्वाणंचनगच्छई ॥६॥ अभिक्खणंकोही हवइपबंधंचपकुव्वई। मित्तिज्जमाणोवमई सुयंलद्धूणमज्जई ।७।

भाषा वार क्रोध करे प्रबन्धं पुनः कुरुते दीर्घ क्रोधी स्यात् ते घणो काल क्रोध राखे मित्रीयमाणोपि वमति त्यजति मैत्राइ कीजे ते मित्राईने माने नहीं श्रुतलब्ध्वा अहङ्कारं करोति शास्त्र भणीने अहङ्कार करे ७ अपि सम्भावने पाप परिक्षेपी पाप समतिने विषे न पलाइ सूधी पाले नहीं मित्रेषु कुप्यति

अभीक्ष्ण वार २ क्रोधो भवति क्रोध करोति च पुन प्रबन्ध क्रोधस्य हदि कुपितोपि कोमलवचनै रपि क्रोधस्य अल्पजन क्रोधस्य स्थिरीभाव प्रकुरुते मित्रीयमाणोपि मित्र ममास्तु अय इति विचिन्त्यमानोपि पश्चाद्वमति त्यजति कोर्थ पूव हि मित्रभाव कृत्वा पश्चात् त्वरित मित्रत्व त्रोटयति ननु सा धवोहि कदापि मित्रत्व उ हभाव केनापि सह न कर्तु सयोगादिप्र भुक्ता भवेयु स्तर्हि वाय मित्तित्व्यमाणो वमइ इत्यन्त्र अत्रहि षट् जीवनिकायेषु व्रत ग्रहणसमये मैत्री विधाय शिथिला चारित्वेन ता मैत्री यजेयु रित्यर्थ अथवा केनापि धर्मशिक्षा शास्त्रार्थ दानादिना उपकार कृत स च हित कारकत्वात् मित्र प्रायस्तत्र उपकार लोपत्वेन कृतघ्नत्वेन मित्रत्व वमति अविनीतस्य तल्लक्षण इत्यर्थ५ पुनर्य श्रुत लब्ध्वामाद्यति ज्ञानाभ्यासादहङ्कार करोति मिथ्या मदोन्मत्त इत्यर्थ ७ अपि शब्द स भावनाया य पाप परिक्षेपी अपि सभाव्यते पापै समिति गुप्ति स्खलनै परिक्षि पति तिरस्करोती त्येव शील पाप परिक्षेपी स मिति गुप्ति विराधक प्रति तिरस्करोति कोर्थ यदाचित् कश्चित् स मिति गुप्तिषु अज्ञानि तया स्खलति तदा त प्रति धिक्करोति छिद्र इष्टान्य निन्दतीत्यर्थ तथा मित्रेषु अपि कुप्यति मित्रेभ्योपि मिथ्यादात्वलसर्वेभ्य क्रुध्यति स्वय क्रोध करोति ता् वा क्रोधयति पुन सुतरां अतिशयेन प्रियस्य मित्रस्य हितवाञ्छकस्य गुर्वादेरपि रहसि एकान्ते पापक पाप एवपापक अवर्णवाद भाषते कोर्थ अग्रत प्रिय वक्ति पृष्ठत दोष वक्ति इत्यर्थ ८ पुन प्रकीर्णवादी प्रकीर्ण असबद्ध वदतीति प्रकीर्ण वादी अथवा प्रतिज्ञया च इद इत्थ एव इत्यादि निश्चयभाषणशील पुन

अविपावपरिक्खेवी अविमित्तेसु कुप्पई सुप्पियस्साविमित्तस्स रहेभासइ पावग ।८। पइण्णवादीदुहिले थद्धेलुद्धे अणिग्गहे

मित्र उपरि कोपै रोस करे सुप्रियस्यापि मित्रस्य अत्र अने वली जे अपणो गाढो मीत्र छे वालो एकात भाषते अशुभ हितसु पणि एकाते भूडू बोले निन्दा करे ८ प्रतिज्ञावादी निश्चय भाषानो बोलणहार मित्रादिकस्य द्रोहकारी स्तब्ध १ लुब्ध ११ रसलम्पट १२ सविभाग रहित सविभाग न करे

उ०टीका
अ०११
२३२

दुहिलो द्रोग्धा द्रोहकरणशील इत्यर्थं पुनस्तब्धो अहङ्कारी अहं तपस्वी इत्यादि जल्पकः पुनर्लुब्धो रसयुक्ता हारादौ लोभी पुनरनिग्रहः अवशी क्षतेन्द्रियः पुनः असंविभागी सम्विभजति आनोताहारं अन्येभ्यः साधुभ्यः प्रार्थयतीत्येवं शीलं सम्विभागी नसम्विभागी असंविभागी आहारेण स्वयमेव उदर बिभर्त्ती त्यर्थः अन्यस्मै न ददाति अचियत्ते इति अप्रीतिकरः दर्शनेन वचनेन अप्रीति उत्पादयति एतैर्लचणै रविनीत उच्यते अथ चतुर्दशस्थानानां नामानिआह क्रोधः १ क्रोध स्थिरीकरण २ सितत्वस्य वमनं त्यजनं ३ विद्यामदः ४ परछिद्रान्वेषण ५ मिताय क्रोधस्योत्पादनं ६ प्रियमित्रस्यैकान्ते दुष्टभाषण सुखे मिष्टभाषण ७ अविचार्यभाषण ८ द्रोहकारित्व ९ अहङ्कारित्व १० लोभित्व ११ अजितेन्द्रियत्व १२ असम्विभागित्व १३ अप्रीतिकरत्व १४ चतुर्दशस्थानानि चतुर्दशहेतूनि कारणानि अविनीतत्वोत्पादकानि ज्ञेयानि ९ अह पनरसहिं ठाणेहिं सुविणी इत्ति वुच्चई नीयावत्ती अचवले अमाई अकूहले १० अथ पञ्चदशभिः स्थानैः सुविनीत इत्युच्यते तानि पञ्चदशस्थानानि इमानि यः एतैः पञ्चदशभिर्लचणै र्युक्तो भवति सविनीत इत्यर्थः प्रथम यः नीचावर्त्ती नीचं अनुद्धतं गुरो शय्या शनात् अनुच्चं ततवर्तितु स्यातु वा शीलं यस्य स नीचावर्त्ती गुरोः शय्यातः गुरो राशनात् वा नीचे शय्यासने शेते तिष्ठति वा इत्यर्थ १ पुनर्योऽचपल न चपलः अचपलः अचपलत्वं चतुर्द्धा भवति गत्या अचपलः १ स्थित्या अचपलः २ भाषा अचपल ३ भावे अचपल ४ गत्या अचपलः शीघ्रचारी न भवति १ स्थित्या अचपल स्तिष्ठन् अपि शरीरहस्तपादादिकं अचालयन् स्थिर स्तिष्ठति २ भाषया अचपलः

सूत्र

असंविभागी अवियत्ते अविणीएत्ति वुच्चई ।९। अहपन्नरसहिंठाणेहि सुविणीएत्ति वुच्चई । नीयावित्तीअचवले अमाई

भाषा

अप्रीतकर सघलाइने अप्रोतनो करणहार एवम्विधो अविनीतः कथ्यते एहवो साधु अविनीत कहीइ ९ अथ पञ्चदशस्थानके ए पनरहस्थानके साधु सुविनीत इति कथ्यते सुविनीत कहीजे नीचवृत्तिः १ नमनशीलः गुरुने नमे चपलपणे नहीं माया रहित २ अकूतुहल कतूहले करी रहित ४ १०

असत्यादिभाषो न स्यात् ३ भावेन अचपल सूत्रे अर्थं अनागते असमाप्ते सत्येव अर्थे तन गृह्णाति ४ अचपलस्यार्थं २ पुनर्यं अमायी मायास्यास्तीति मायो शुभ मिष्टाचाहारादी आचार्यादीनां अवञ्चक ३ पुनर्यं अकुतूहल न विद्यते कतूहल यस्य स अकतूहल कुहक इन्द्रजाल भगल विद्या नाटका दीनां न नविलोकक इत्यर्थं ४ ।१० अप्प चाहिक्खिवइ पवधच न कुव्वई मित्तिज्जमाणो भयई सुय लद्ध नमज्जइ ११ पुनर्योऽल्प अधिचिपति अल्प शब्दोऽत्र भावार्थं क अपि न अधिचिपति किमपि कठिनैर्वचनै र्न निर्भर्त्सयति इत्यर्थं ५ च पुन प्रबन्ध न करोति प्रचुरकाल क्रोध न रचति दीर्घ रोषी नस्यादित्यर्थं ६ मित्रीयमाण भजते मित्रत्व कर्त्तारं सेवते कोर्थं य कश्चित् तस्मै विद्यादानाद्युपकार कुर्यात् तस्मै स्वयमपि प्रत्युपकार करोति क्रतघ्नो न स्यात इत्यर्थं ७ पुन श्रुत लब्ध्वा न माद्यति मद न करोति ८ अष्टम स्थान ११ नय पाव परिक्खेवी नयमित्ते सु कुप्पई अप्पियस्सावि मित्तस्स

अकुतूहले ॥१०॥ अप्पचाहिक्खिवती पवधचपकुव्वती । मित्तिज्जमाणोभयती सुयलद्ध नमज्जती ॥११॥ नयपावपरिक्खेवी नयमित्तेसुकुप्पती अप्पियस्साविमित्तस्स रहेकल्लाणभासई ॥१२॥ कलहडमरवज्जए बुद्धे अभिजाइगोरिरिमपडि

स्वल्पमपि नाधिचपति कठोरवचन न बोले कदेशी ५ क्रोधवई नच न कुरुते क्रोध वधारे नही ६ मीत्रैयतामपि भज्यते ७ सर्वभूत जीवादिकसु मीत्राइ पणो राखे सदाइ श्रुत लब्ध्वा न माद्यति ८ शास्त्रभणीने मदन करे सर्वथा ११ नच पाप परीचेपी आचार्यादिकनी निन्दा न करे नच मित्रेभ्य कुप्यति मित्र उपरे कोपे नहीं १० अप्रियस्यापि मित्रस्य अनितस्य रुमोवाइ करे ११ एकान्ते रम्य भाषते एकान्ते भलो भलो वात करे १२ कलहडमर वर्जित कलह वारो वर्जीत वचनकलह न करे बुद्धिवान् सयमभारवाहक ज्ञात तत्वनी जाणसुविनीत ह्रीमान लज्जावत १४ प्रति सलीन प्रतिग्रा

रहे कल्याण भासई १२ च पुन- पापपरिक्षेपो न भवति पापेन परिक्षिपति तिरस्करोतीत्येव शील पापपरीक्षेपी समिति गुप्त्यादिषु खय स्खलनं कृत्वा आचार्यादिभिः शिक्ष्यमाणः सन् आचार्यादीनां एव मर्मोद्घाटको न भवति ८ न च मित्रेभ्यः कुप्यति अपराधे सत्यपि मित्रोपरि क्रोधं न करोति १० पुनर्योमित्रस्य मम मित्रत्वाङ्गीकृतस्य अप्रियस्य च अपराधे सत्यपि पूर्वकृतं सुकृतमनुस्मरन् रहसि अपि कल्याणं एव भव्यं एव भाषते न च तस्य दूषणं वदतीत्यर्थः ११ कलह डमरवज्जे इ वुद्धे य अभिजाइ गोहिरिमं पडिसंलीणे सुविणी इत्ति वुच्चई १२ पुनर्यः कलह डमरं वर्जयति तत्र कलहं वाक्य युद्धं त्यजति डमरं चपेटा मुष्टिलत्तादिभिर्युद्धं तयोरुभयो र्वर्जको यो भवति १२ पुनर्बुद्धिमान् बुद्धोऽवसरज्ञो भवति पुनर्योऽभिजातिगो भवति अभिजातिं कुलीनतां गच्छति प्राप्नोतीति अभिजातिग- गुरुकुलवास सेवक इत्यर्थः १३ पुनर्यो ह्रीमान् ह्री विद्यते यस्य स ह्रीमान् कलुषाध्यवसाये अकार्यकरणे लज्जायुक्त इत्यर्थ १४प्रति सलीन गुरु सकाशेऽन्यतवाद्गत स्थातो न चेष्टते चेष्टां न करोति स प्रतिसंलीन उच्यते य एतादृशो भवति स विनीत उच्यते अथ पूर्वोक्त पञ्चदशस्थानानां सुविनीतत्वकारणानां नामान्याह गुरो शासनात् द्रव्यभावतो नीचासनोपवेसनं १ अचपलत्वं २ अमायित्वं ३ अकुतूहलत्वं ४ कस्यापि अनिर्भर्त्सन ५ अदीर्घरोषत्व ६ मित्रस्य उपकारकरणं ७ विद्या मदस्य अकरणं ८ आचार्यादीनां मर्मस्याऽनुद्घाटनं ९

सूत्र संलीणे सुविणीएत्ति वुच्चई ॥१३॥ वसेगुरुकुलेनिच्चंजोगवं उवहाणवं । पियकरेपियंवाई ससिक्खंलद्धुमरहई ॥१४॥

भाषा वान् आपणी इन्द्री दमे सुविनीत इति उच्यते ते शिष्य सुविनीत आज्ञाकारी कहीये १३ वसेत् गुरु कुलपासे नित्यं निरन्तरं तिष्ठन्ति सुविनीत शिष्य सदाइ गुरुपासे वसे योगवान् उपधानवान् योगवान् धर्मव्यापारविधिकर्त्ता तपो विशेषसूत्रपठनादौ जिम उपधान प्रीयंकरं प्रियवादी प्रेम करे प्रेम बोले सशिक्षां लब्धुं अर्हतो ते शिष्य शिक्षाने योग्य होवे १४ यथा शङ्खगतं पयो दुग्धं निर्मलं जिम संख दूधे भर्यो द्वाभ्यां विराजते दोइ प्रकारे वाहिरि

७ टीका
अ ११
३३५

मित्राय क्रोधस्य अनुत्पादन १० अपराधे सत्यपि मित्रस्य अमित्रस्य वा परपृष्ठे दूषणस्य अभाषण ११ कलह डमरवर्जन १२ गुरुकुलवास सेवन १३ लज्जावत्व १४ प्रतिमलीनत्व एतानि पञ्चदशस्थानानि सुविनीतस्य ज्ञेयानि १३ अथ सुविनीत कीदृक स्यादित्याह वसे गुरुकुलेनिच्च जोगव उवहाणव पिय वाइ से सिक्ख लद्ध मरुइ १३ स मुनि शिक्षा लब्ध अर्हति शिक्षायै योग्यो भवति स इतिक यो गुरुकुले नित्य वसेत् गुरो पूज्यस्य विद्यादोक्षादायकस्य वा कुले गच्छे सवाटके यावज्जीव तिष्ठेत् पुनर्यो मुनि योगवान योगो धर्मव्यापार सविद्यते यस्य स स योगवान अथवा योगो॰ऽङ्गसमस्तहानित्यर्थं पुनर्य साधु उपधानवान् उपधान अङ्गोपाङ्गादीना सिद्धान्ताना पठनाराधनार्थं आचाम्लोपवास निर्वि ऋयादि रूप तपो विशेष सविद्यते यस्य स उपधानवान् सिद्धान्ताराधन तपोयुक्त इत्यर्थं पुनर्य साधु प्रियङ्कर आचार्यादीना हितकारक पुनर्य प्रियवादी प्रियो वादोऽस्यास्तीति प्रियवादी प्रियभाषी एतैर्लक्षणैर्युक्तो मुनि शिक्षा प्राप्त योग्यो भवति १४ अथ बहुश्रुत प्रतिपत्तिरूप आचार स्वपदार्थे आह जहासखे पयो निहित दुहओ विरायइ एव बहुस्सुए भिक्खू धम्मो कित्तीतहा सुय १५ यथा सखे निहित पयो दुग्ध द्विधापि विराजते उभय प्रकारेण शोभते पयो धवल अथच पुन शखेपि धवले अत्यन्त धवलत्वे न वर्णो विराजते एव अमुना प्रकारेण शखमध्यदुग्ध दृष्टान्तेन बहुश्रुते भिक्षौ धर्मो

मूल

जहासखम्मिपय णिहित दुहओविविरायई एव बहुस्सुए भिक्खूधम्मो कित्तीतहा सुय ॥१५॥ जहासे कवोयाण आइन्ने

भाषा

भीतरो उज्वल थको सोभे एव अमुना प्रकारेण बहुश्रुती भिक्षु इम बहुश्रुत साधु धर्मकीर्ति तथा श्रुत तिम साधु धर्म अने कीर्ति करीने सोभे १५ यथा अश्व कम्बोज देशजातीना जिम कम्बोजदेसना उपना अश्व अश्वाना मध्ये आकीर्ण कथक स्यात् गुणे प्रासकथक प्रधान [सुजात] घोडा माहि

उ०टीका
अ०११
३२९

यतिधर्मस्तथाकीर्त्ति श्रुत च एतत्पदार्थतयं स्ततएव भासते बहु प्रचुरं श्रुत श्रुतज्ञानं यस्य स बहुश्रुतः तथा एवं गुरुकुलवासिनि साधौ बहुश्रुते आश्रयविशेषात् अत्यन्तं शोभते बहुश्रुते स्थितो धर्मः कीर्त्तिर्यशश्च मालिन्यं न प्राप्नोति यत्र कीर्त्तिगुणश्लाघा यशः सर्वत्र प्रसिद्धत्वं इति अनयोः कीर्त्ति यशसोर्लक्षणं ज्ञेयं १५ जहासे कंबोयाण आसन्नो कंथएसिया आसेजवेण पवरे एवं हवइ बहुस्सुए १६ बहुश्रुतः साधु एवं भवति एतादृशो भवति एवं विराजते एवमिति कथं यथा कंबोजानां कांबोजदेशोद्भवानां अश्वानां मध्ये यः आकीर्णः शीलादिगुणैर्व्याप्तो विशुद्धमाता पितृयोनिजत्वेन सम्यग् आचा रस्वामिभक्त्यादिशालिहोत्रशास्त्रोक्त गुणयुक्तः कोदृशः आकीर्णः कन्थकः लघुपाषाणभृत कुतप निपतन संजातशब्दात् नत्रस्यति अथवा शस्त्रादीनां प्रहा रात् निर्भीक कंथकः उच्यते पुनः कोदृशः सः जवेनवेगेन सम्यक्गत्या प्रवरः प्रकर्षेण वरः श्रेष्ठः यथाहि सर्वेषु कांबोजदेशोद्भवेषु अश्वेषु आकीर्णः कंथ को अश्वो गमनेन अत्यन्तं प्रधानो भवेत् राजादीनां वल्लभो भवेत् तथा बहुश्रुतोपि सर्वेषां ज्ञानक्रियावतां मुनीनां मध्ये परवादिनां वादत्रस्त सम्यक् आचारविहारेण विराजमानः स्यात् सर्वेषां वल्लभो भवेदित्यर्थं जहाइन्न समारूढे सूरेदढपरक्कमे उभओ नंदिघोसेणं एवंह० १७ पुनर्यथा सूरः आइन्न समारूढः आकीर्णो जाति विशुद्धघोटक स्तत्समारूढः आकीर्णं समारूढो दृढपराक्रमः स्थिरपराक्रमो बलं यस्य सः स्थिरपराक्रमः स्थिरोत्साहः केनापि अन्यसुभटेन न अभिभूयते इति अध्याहारः नच तं प्रत्याश्रितोपि भृत्यादिवर्गं केनापि अभिभूयते कथंभूतः ससूर उभयतो वामदक्षिणतः अथवा पृष्ठतः

सूत्र

कंथएसिया आसेजवेणपवरे एवं हवइ बहुस्सुए ।१६। जहाइन्न समारूढे सूरेदढपरक्कमे उभओ नंदिघोसेणं एवंहव

भाषा

आकीर्णसुविनीत प्रधान घोडो होवे अश्ववेगेन प्रवरः अश्व घोडो वेगे करी प्रधान एवं भवति बहुश्रुत शोभे १६ यथा आकीर्णः जात्यतुरङ्गमाश्रितं जिम असवार आकीर्णं सुविनीत घोडे चढ्यो जिम शूरो दृढपराक्रमवान् सुभटं शूर पराक्रमी सत्ववन्त उभ यतः वामदक्षिणपार्श्वे द्वादशतूर्यनादेन सहितः

मयतो वा नांदीघोषेण उपलक्षित नादी द्वादशतूर्याणि तेषां द्वादशतूर्याणां घोषो नान्दीघोषस्तेनोपलक्षित अथवा त्व चिर जीया इत्यादि बन्दिजनोच्चा रितागोवचन तस्य घोष शब्द स्तेनोपलक्षित यथैतादृश शूर सर्वत्र विजयी स्यात् एव बहुश्रुतोपि साधुर्जिनप्रवचनाश्रारूढ दृढपराक्रम इत्यन्यपरवादि दर्शनात् भवन्त परवादि जये समर्थ उभयतो दिनरजन्यो स्वाध्यायरूपेण नादीघोषेणोपलक्षित अथवा उभयत पार्श्वद्वयो शिष्याध्ययनरूपेण नादी घोषेण उपलक्षित अथवा प्रवचनोद्दीपकत्वेन स्वतीर्थे चिरजीवत्वसौ इत्याद्याशीर्वचनरूपेण नादीघोषेणोपलक्षित परतीर्थ्यै पराभवितु अशक्यो भवेत् तदाश्रितोपि सघ केनापि पराभवितु न शक्यते १७ जहा करेणु परिकिन्ने कुजरे सट्ठिहायणे बलवते अप्पडिहए एव १८ यथा षष्टि हायनो षाष्टिवा र्षिक कुञ्जरो बलवान् अप्रतिहत स्यात् प्रतिद्वंद्वि गजे प्रतिहन्तु शक्यो न स्यात् तथा बहु श्रुतोपि षष्टिवर्षाणि यावत् गजो वर्द्धमान बल स्यात् कथभूतो गज करेणुभिर्हस्तिनीभि परिकीर्ण परिवृत षष्टिहायन तथा कुञ्जर स्थिरमतिश्च स्यात् एव बहुश्रुतोपि उत्पातिक्यादि च तद्बुद्धिभि र्विद्याभिवासहित वड्मा नाशाम्नार्थ बल केनापि प्रतिवादिना जेतु न शक्यते १८ जहासे तिक्खसिंगे जायखन्धे विरायइ वसहे जूहाहिवई एव० १९ यथा स इति वक्ष्यमाणो वृषभ यूथस्य गोवर्गस्य अधिपो विराजते एव बहुश्रुतोपि विशेषेण राजते कथभूतो वृषभ तीक्ष्णशृङ्ग पुन कथ भूत जातस्कन्ध उत्पन्न धूर्द्धरणभाग एतादृशो बलो वर्दइव बहुश्रुतोपि शोभते कथभूतो बहुश्रुत परपक्षभेदकत्वेन तीक्ष्ण स्वमत परमत ज्ञानरूपे

इयइस्सुए ॥१७॥ जहा करेणु परिकिन्ने कुजरे सट्ठि हायणे । बलवते अप्पडिहए एव हवइ बहुस्सुए ॥१८॥ जहा से

विहु पासे वादसतूर्यनादे करी सोभे एम भवति बहुश्रुत इम बहु श्रुतसोभे १७ यथा हस्ती हस्तनीभि परिवृत जिम हथणीने परिवारे परिवयो थको कुञ्जर हस्ती षष्टि हायन षष्टि वर्षायु जिम हाथी साठिवरसनो बलवान् अप्रतिहतो भवति अनेरा वेरी हाथी पराभवी सके नही एव भवति बहु

शाले एव शृङ्गे यस्य स तीक्ष्णशृङ्गः पुन· कथम्भूतो बहुश्रुतः जात उत्पन्नो गणस्य कार्यरूपधुर प्रतिधौरेयिकत्वेन पुष्टः स्कन्धो यस्य सजातस्कन्धः पुन· कीदृशो बहुश्रुतो यूथाधिपतिः यूथस्य चतुर्विध सङ्घस्य अधिपति यूथापति एवं बहुश्रुतो यूथाधिप वृषभवत् आचार्यादिपदवीं प्राप्तः सन् विराजते १९ जहासे तिक्खदाढे उदग्गे दुप्पहंसए सीहे मियाणपवरे एवं० २० यथासिंहो मृगाणां अरण्यजीवानां मध्ये प्रवरः प्रधानः स्यात् एवं बहुश्रुतोपि सिंह इव अन्यतीर्थाय मृगाणां मध्ये प्रकर्षेण श्रेष्टः स्यात् कथंभूतः सिंहः तीक्ष्णदंष्ट्र पुनः कीदृश सिंहः उदग्रः उत्कटः पुनः कथम्भूतः दुप्रहंस्यकः दुरभिभवः अन्यै जीवैर्दुःध्ृष्यः दु सह इत्यर्थः बहुश्रुतोपि सिंहइव कथम्भूतो बहुश्रुत तीक्ष्णाः सप्तनयविद्या रूपा दंष्ट्रा यस्य स तीक्ष्णदंष्ट्रः अतएव उत्कटः दुर्जयः

तिक्ख सिंगे जायखंधे विरायई । वसहे जूहाहिवई एवं हवइ बहुसुए ॥१९॥ जहासेतिक्ख दाढे उदग्गे दुप्पहंसए सीहे मियाण पवरे एवं हवई बहुसुए ॥२०॥ जहा से वासुदेवे संख चक्क गयाधरे । अप्पडिहय बले जोहे एवं हवइ •

श्रुतः इम ए हाथीने दृष्टान्ते करी अन्यदर्शनीये अजय हुवे बहुश्रुतसाधु १८ यथा सः तीक्ष्णः शृङ्गः जिमतीखासी गडानो धणी जातोपचितभूतः स्कन्धोऽस्येति वृषभः उपचितस्थूल स्कन्धे करी विराजीत छे वृषभः यूथाधिपतिः जिम वृषभ गायनायुथ मांहि सोभे एवं भवन्ति बहुश्रुतः इमबहुश्रुत हुवे १९ यथा तीक्ष्ण दंष्ट्रः जिम तीक्ष्णदाढसहितः उदग्रः उत्कटो अतएव दुःप्रधर्षको अन्यै दुरभिभवनीयः अनेरे जीवें पराभवीसके नही यथासिंहो मृगाणां प्रवरः जिम सीह मृगमाहि प्रधान एव भवति बहुश्रुतः २० यथा सवासुदेव जिमते वासुदेव संख१ चक्र २ गदाधरः संखचक्रगदाप्रमुख ए धारे अप्रतिहतबलयोद्धः किणही जीत्यु न जाइ इस्यु महासुभट हुवे एवंविधः बहुश्रुतो भवन्ति २१ यथा स चतुरन्तः जिम चक्रवर्त्ति चतुरङ्गिणी सेनानो नायक

पुन कथम्भूती वहुश्रुत दु प्रहस्यक अथ तीर्थँदुंदुंथ कलितु मग्रक्य इत्यर्थं २ जहासे वासुदेवे सखचक्क गयाधरे अप्पडिहय बले जोहे एव० २१
यथा स प्रसिद्धो वासुदेव अप्रतिहतवल स्यात् अप्रतिहत केनापि अनिवारित बल यस्य स अप्रतिहतबल एव वहुश्रुतोपि केनापि परमतिना अनि
वारितबल स्यात् कोदृशो वासुदेव शखचक्र गदाधर वासुदेवस्य हि रत्नसप्तक स्यात् चक्र धणुह खग्गो मणी गया होइतहयवणमाला सखो सत्तइ
माइ रयणाइ वासुदेवस्स १ अत्र तयाणां एव ग्रहण बहुयतेन साम्याथ समाना मध्ये तयाणा एव प्राधान्य नयस्ति पुन कोदृशो वासुदेव योध
युध्यति शत्रून प्रतिसहरतोति योध यदुक्त युद्धे सूरा वासुदेवा खमासूरा अरिहन्ता तपसूरा अणगारा भोगसूरा चक्कवट्टी वासुदेवोहि स्वशरीरेण
युद्ध कृत्वा शत्रून् जयतोत्यर्थं एव वहुश्रुतोपि वासुदेव वत् कोदृशो वहुश्रुत सखचक्र गदातुल्यानि रत्नतयाणि ज्ञानदर्शनचारित्रकपाणि धरतीति
शखचक्रगदाधर पुन कोदृशो वहुश्रुतो योध अन्तरङ्ग शत्रुघातक अत्र वहुश्रुतस्य वासुदेवोपमान २१ जहासे चाउरन्ते चक्कवट्टी महड्डिया च
उद्दसरयणाहिवइ एव० २२ यथा स इति प्रसिद्ध चक्रवर्त्ती विराजते इत्यध्याहारस्तथा वहुश्रुतोपि विराजते कोदृशश्चक्रवर्त्ती चातुरन्त चतुर्भि हय गज
रथपदातिभि सेनाङ्गै शत्रोऽरोणा विनाशयस्य सचाउरत चतुरत एव चातुरत आसमुद्र आहिमाचल विविधविद्याधर वृन्द गीत कीर्त्ति तथा एक
च्छत्र षट् खण्डराज्यपालक चातुरन्त पुन कोदृशश्चक्रवर्त्ती महर्द्धिक महती ऋद्धियस्य स महर्द्धिक चतु षष्टि सहस्रान्त पुरनारीणा शय्यासु वैक्रिय

सूत्र

वहुस्सुए ॥२१॥ जहासे चाउरंते चक्कवट्टी महिड्डिए। चउद्दस रयणाहिवई एव हवइ वहुस्सुए ॥२२॥ जहा से स

भाषा

चक्रवर्त्ति महाऋद्धिनो धणी चक्रवर्त्तिने मोटी ऋद्धि हुवे चतुर्दशरत्नाधिपति स्यात चउदे रत्ननिधाननो अधिपति होइ सुख भोगवे एव भवती वहु
श्रुत २२ यथा सहस्राक्ष जिमते इन्द्र सहस्राक्ष हजारनेत्रनो धणी वज्रहस्त दैत्यपुरदमन वज्रहाथने विषे रहे दैत्यने विणसाडे शक्र देवाधिपती

उ०टीका
अ०११
२४०

ग्रतिं विधाय रममाणः वैक्रियादि ऋद्धि सहित इत्यर्थः दिव्यानुकारि लक्ष्मीयुक्तो वा पुनः कीदृश चक्रवर्त्ती चतुर्दशरत्नाधिपतिः चतुर्दशरत्नानि अमूनि सेनापति १ गृहपति २ पुरोहित ३ गज ४ हय ५ सूत्रधार ६ स्त्री ७ चक्र ८ छत्र ९ चर्म १० मणि ११ काकिनी १२ खड्ग १३ दण्ड १४ एतेषां रत्नानां स्वामी एवं बहुश्रुतोपि कीदृशो बहुश्रुतः चतुर्भिः दानशील तपो भावलक्षणैर्धर्मैरन्तसतरूपणां गतीनां यस्य स चतुरन्त चतुरन्त एव चातुरन्तः चतुर्दशरत्नाधिपतिः चतुर्दशपूर्वरूपाणि रत्नानि तेषामधिप इत्यर्थः पुनः कीदृशो बहुश्रुतः महर्द्धिकः महत्य ऋद्धयः आमर्षौषधिव प्रौसधिखेलौषध्यादयो यस्य समहर्द्धिक लब्धि ऋद्धिसहित इत्यर्थः अथवा महती ऋद्धिज्ञानसम्पत्तिर्यस्य स महर्द्धिकः २२ जहासे सहस्सक्खे वज्जपाणी पुरन्दरे सक्के देवाहि वई एवं० २३ यथा स इति प्रसिद्ध, शक्र इन्द्रो विराजते तथा बहुश्रुतोपि विराजते कीदृशः शक्र सहस्राक्षः सहस्रं अक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः सहस्रनेत्र कीदृशः वज्रपाणिः वज्रमस्य हस्तः पुनः कीदृश पुरन्दरः पुराणि दैत्यनगराणि दारयति विध्वंसयतीति पुरन्दरः दैत्यनगर विध्वंसकः पुनः कीदृश देवाधिपतिर्देवेषु अधिपति देवाधिपतिः देवेषु अधिक कान्तिधारी अथ कीदृशो बहुश्रुत शक्रः सहस्रं अक्षीणिश्रुतज्ञानानि यस्य स सहस्राक्षः सहस्रसंख्यै रचिभिर्नेत्रै रिव श्रुतज्ञानभेदैः पश्यतीत्यर्थ पुनः कीदृशो बहुश्रुत शक्र. वज्रपाणिः वज्र वज्राकारं पाणौ यस्य स वज्रपाणिः विद्यावतः पूज्यस्य हस्तमध्ये वज्रलक्षणस्य सम्भवात् पुन कथंभूतो बहुश्रुतः शक्रः पुरन्दरः पुरं स्वतनु दारयति तपसा दुर्बलीकरोतीति पुरन्दर तपस्वी इत्यर्थः

सूत्र

सहस्सक्खे वज्जपाणी पुरंदरे। सक्के देवा हिवई एवं हवइ बहुस्सुए ॥२३॥ जहा से तिमिरविद्धंसे उत्तिट्ठंते दिवायरे।

भाषा

शक्र इंद्र देवता मांहि अधिपति हुवे एवं भवति बहुश्रुत २३ यथा सः तिमिरान्धकारविध्वंसकः जिम दिवाकरः सूर्य अन्धकार फेडे, तिम उर्द्ध गच्छन् दिनकरः सूर्य उंचो चढ़तो सूर्य तिम तेजसा जलतेव ज्वालाग्रुत्यवः इस बहुश्रुतः अज्ञानरूप अन्धकार टाले तपतेजे करी दीपे बहुश्रुत २४ यथा स

पुन कथभूतो बहुश्रुत गणदेवताधिपति देवेषु सर्वसाधुषु अधिपति अधिक सर्वसाधून् अधिक यथा स्यात्तथापाति रचतीति देवाधिपति रिसौद्धि देवाय सम विविता इत्युक्ते देवा अधिक पातिरचन्ति सेवां कुर्वंत्ति उपद्रवेभ्यो रचन्ति हरिके शवल साधुवत् वेयाहत्य कुर्वन्तीति देवाधिपति देवै रपि पूज्यते इत्यथ २३ जहासे तिमिरविड से उत्तिठ्ठन्ते दिवायरे जलसे इवते एण एव० २४ यथा स इति प्रसिड उत्तिष्ठन उद्गच्छन दिवाकर सूर्य स्तेजसा ज्वलन् ज्वालाभि सलर्पन् इव विराजते तथा बहुश्रुतोपि राजते कथभूत सूर्य तिमिर अन्धकार विध्व सते इत्यं वयोल स्तिमिर विध्व सी अथवा तिमिरस्य विध्वसी यस्मात् स तिमिरविध्व स अथ बहुश्रुत एव दिवाकर कीदृक् स्यात कथभूतो बहुश्रुत सूर्य स्तिमिर मिथ्यात्वान्धकार विध्व सयतोति तिमिरविध्वस किं कुर्वन् उत्तिष्ठन क्रियानुष्ठानादो अप्रमादी भवन पुन कीदृशो बहुश्रुत दिवाकर किं कुर्वन् इव तेजसा द्वादशविध तप स्तेजसा माहात्म्येनवा ज्वलन् देदीप्यमान परियादिभिर्द्रष्टु मपि अशक्य इत्यर्थ २४ जहासे उडुवइचन्दे नक्खत्त परिवारिए पडिपुख्ने पुन्नमा सोए एव ह० २५ यथा पूर्णमास्या राकाया उडपति चन्द्रोभवति जनाह्लादको भवति चन्दति आह्लादयतीति चन्द्र अन्वर्थनामा भवति तथा बहुश्रुतोपि पूर्णिमास्या सम्बद्धमासी प्रतिपूर्ण उडपतिरिव चन्द्रो भवति भव्यजनाह्लादको भवति कीदृश उडुपति नक्षत्रैर्ग्रह तारकादिभि परिवृत परिवारोजातोऽस्येति परिवारित इति वा पुन कीदृश उडपति प्रतिपूर्ण षोडशकलाभिर्युक्त पूर्णीमास ससारो यस्या पूर्णमासी सम्यक्त्व लब्धिरूपाया पूर्ण

सूत्र — जलते इव तेएण एव हवइ बहुसुए ।२४। जहासे उडुवई चदे नक्खत्ते परिवारिए । पडिपुन्ने पुणमासीए एव हवइ

भाषा — नक्षत्रपति चन्द्र जिमते उडुपति ग्रह नक्षत्रनो स्वामी चन्द्रमा नक्षत्र परिवारपरिवृत नक्षत्रनो परिवार तिणे करी परवस्यो थको प्रतिपूर्ण पूर्णमासि पूर्ण पूनिमने होने शोभे एव भवति बहुश्रुत २५ यथा सामानिकाना लोकसमूहाना जिम लोकना घरमाहि कोट्ठागारेषु धान्याश्रय सुष्टुदस्यु मूषकादिभ्य

मास्यां बहुश्रुतरूप उडुपतिर्भव्य जनाह्लादको भवतीतिभाव: पुन: कोदृग्गो बहुश्रुतोडुपति: साधुभिर्नचत्रै रिव परिवृत: सहित: पुन· कीदृशो बहुश्रुतोडु पति प्रतिपूर्ण सर्वधर्म कलाभि संपूर्ण इत्यर्थ २५ जहासे सामाइयाणं कुट्ठागारेसुरक्खिए नाणाधन्न पडिपुण्णे एव० २६ यथा स इति प्रसिद्ध· सामाज कानां महाग्टहस्थानां कोष्टागारो विराजते तथा बहुश्रुतोपि विराजते समायोजन समूहस्तंऽर्हंतीति सामाजिका कौटम्बिकानां कथम्भूत कोष्टागार सुरचित सुतरां अतिशयेन चौर मूषकादिभ्य उपद्रवेभ्यो रचित· सुरचित· पुन कोदृगकोष्टागार नानाधान्य प्रतिपूर्ण चतुर्विंशतिधान्यै· प्रतिपूर्णो भृत अथ बहुश्रुत कोदृश सुरचित सुतरां अतिशयेन गच्छ संघाटस्य सुनिभिर्यंतेन रचित. पुनर्नानाप्रकारै रङ्गो पाङ्गादिरूपैर्धान्यै· प्रतिपूर्णा इत्यर्थ,२६ जहासे दुमाणपवरा जम्बू नाम सुदंसणा अणाढियस्स देवस्स एवं० २७ यथा द्रुमाणां मध्ये जम्बू नामा सुदर्शना इत्यपरनामा द्रुमोत्तम· प्रवर

सूत्र

बहुस्सुए ।२५। जहासी सामाइयाणं कोट्ठागारेसु रक्खिए। नाणाधण्ण पडिपुण्णे एवं हवइ बहुस्सुए ।२६। जहासे दुमाण पवरा जंबूनाम सुदंसणा। अणाढियस्स देवस्स एवं हवइ बहुस्सुए ।२७॥ जहा सा नईण पवरा सलिला सागरं

भाषा

सकलधाद्रचित: कोठारमांहि भलो परिचोरादिक उंदरादिवा थको वस्तु जले करी राखे नानाधान्य प्रतिपूर्ण: नानाप्रकारना धान्यतेणे करी भग्या थको सोभे एवं भवति बहुश्रुतसाधु२६ यथा स द्रुमाणां मध्ये प्रवरा जिम सघला वृचमांहि प्रवर प्रधान सोभे जंबू नामाभिधानेन सुदर्शन नामाभिधान: जबूद्र सेनामे बीजो नाम सुदर्शन अनाद्दतस्य अनाढोयाइसे नामे देवता तेहनु थानक एवं भवति बहुश्रुत साधु २७ यथा शीता नद्दीनां मध्ये प्रवरा: जिम सीता नदी सर्व नदीमांहि मुख्य सलिला समुद्रगामिनी भवति सलिला कही पछे नदीसागर समुद्रमाहे जाइ सीता पूर्ववाहिनी सीतोदा पश्चिमवा

प्रधान शोभते तथा वहुश्रुतो सर्वमुनिना मध्ये प्रधानो विराजते स च जम्बू सुदर्शना नामा हच अनाढिकस्य जम्बूद्वीपाधिष्टात् देवस्य वर्त्तते तस्य हि जम्बूद्वीपाधिपतित्वेन सर्वेभ्य प्रधानत्व मेव मित्यर्थं वहुश्रुतोपि मिष्टफल सदृश सिद्धान्तार्थ फलद देवादिभिरभिगम्य २७ ज हामा नदइपवरा सलिला सागरङ्गमा सीया नीलवन्तपवहा एव० १८ यथा सा इति प्रसिद्धा नदीना मध्ये सीता नाम्नी नदी प्रवरा प्रधाना शोभते तथा वहुश्रुतोपि शोभते कथम्भूता सीतानदी सलिला सलिल पानीय यस्या अस्तीति सलिलानित्यनीरा पुन कथम्भूता सीता सागरङ्गमा सागर गच्छतीति सागरगमा पुन कीदृश्या सीता सीलवन्त पवहा नीलवत पर्वतात् प्रवाहो यस्या सा नीलवत् प्रवाहा नील पर्वतादुत्तीर्णा इत्यर्थं वहुश्रुतोपि साधूना मध्ये प्रधान निर्मलजलतुल्य सिद्धान्त सहित पुन सागरमिव मुक्तिस्थान गामी पुनर्वहुश्रुतो नीलवत् पर्वतसदृशोच्चतकुलात् प्रसूत उत्तम कुलप्रसूतो हि सद्विद्या विनयौदार्यगाम्भीर्यादिगुणयुक्त स्यात् २८ जहासेनगाणपवरे सुमह मंदरे गिरी नाणो सहि पज्जलिए एव हवइ २८ यथा स इति प्रसिद्धो नगाना पर्वताना मध्ये सुतरा अतिशयेन महान उच्चैस्तरो मन्दरो मेरु गिरि मेरु पर्वत शोभते तथा वहुश्रुतोपि शोभते कथम्भूतो मेरु नानौषधी प्रज्वलित नानाप्रकाराभि रौषधीभि अन्य विशल्या सञ्जीवनी सरोहिणी चित्रामणी विपापहारिणी शस्त्र निवारिणी भूत नाग दमन्यादिभि मूलीभि प्रज्वलितो जाज्वल्यमान एव वहुश्रुत सर्व साधूना प्रवरो गुणै

गमा। सीयानीलवत पवहा एव हवइ वहुसुए २८ जहासे नगाण पवरे सुमह मंदरो गिरी नाणो सहि पज्जलिए

मूल

भाषा
हिनो सीता सीतोदा नीलवतीइयासीता नदी नीलवत पर्वत इती उपनी जीन सर्व नदी माहि तु गमी तिम वहुश्रुत गच्छमाहे सोभे सुसाधु २८ यथा सइति प्रसिद्धो नगाना पर्वताना मध्ये सुतरा अअतिशये महात् उच्चैस्त रोमदरोमेरु गिरिमेरुपर्वत शोभते नानोपधिभि

प्रवरो गुणैरुच्चैस्तर: श्रुतस्य माहात्म्येन अत्यन्त स्थिर: परवादिविवादवात्या अचल: अनेकलब्ध्यतिशयसिद्धि रूपाभि रोषधोभि र्मिथ्यात्वान्धकारैरपि वज्रस्वामि मानतुंग कुमुदचन्द्रादिवत् जैनशासन प्रभावनारूप प्रकाशकारक: २९ जहासे सयंभुरमणे उदही अक्खत्रोदए नाणारयण पडिपुणे एव० ३० यथा स इति प्रसिद्ध: स्वयम्भूरमण नामा चरमोदधि विराजते तथा बहुश्रुतोपि विराजते कथंभूत स्वयम्भूरमणोदधि: अक्षयं शाश्वतं अविनाशि उदकं जलं यस्य स अक्षयोदक: पुन: कथंभूत: स्वयम्भूरमण समुद्र: नानारत्नप्रतिपूर्ण: बहुप्रकारै: अनर्घ्यै मणिगर्भै भृत: तथा बहुश्रुतोपि स्वयंभूरमणइव कथं भूत: बहुश्रुत: अक्षयज्ञानोदक अक्षयज्ञान जल: पुनर्बहुश्रुत स्वयंभूरमण समुद्रवत् नानाप्रकारातिशयरूपरत्नै सपूर्ण: ३० समुद्दगंभीरसमादुरासया

सूत्र एवं हवइ बहुस्सुए २९ जहासे सयंभु रमणे उदही अक्खओदए नाणा रयण पडिपुणे एवं हवइ बहुस्सुए ३० समुद्द गंभीरसमा दुरासया अचक्किया केणइ दुप्पहंसया सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो खवित्तु कम्मं गइमुत्तमंगया ३१

भाषा प्रज्वलित नानाप्रकारनो ओषधो तेने रत तिणे तेजवत थको जाज्वल्यमान दीपतो शोभे एज भवति बहुश्रुत २९ यथा स स्वयंभु रमण समुद्र शोभते स्वयभु रमण समुद्र जलचयरहित: अखूटपांणो छे जे समुद्रने विषे नानारत्नै: मरकताटिभि प्रतिपूर्ण: स्यात् नानाप्रकारना रत्न तिणे करो भर्यो छे एव भवति बहुश्रुत: ३० समुद्रगांभीर्यसमा सदृशा: अनाकलनोया समुद्रनो परि गभीर छे अनाकलनोय कोइकनो सजे नहीं परिषहादिनाकेनापि पराभवं कर्तुं न समर्था: किणो परिसहे पराभव करो सकोइ नहीं परिसह कोइ जेहने जोतो सके नहो श्रुतेन पूर्णा विस्तरेण तायणो रक्षका: सिद्धान्त करोने पूर्णभर्या पूर्वजोवना रक्षक नपयित्वा कर्म सर्वकर्म खपावोने उत्तमां गतिं गता उत्तमगतिने विषे गया ३१ तस्मात् श्रुतं पठनीय तिणे कारणे

[अचक्रिया केणइ दुप्पहसया सुयस्स पुणा विउलस्स ताइणो खवित्तु कम्म गइमुत्तमगया] ३१ एताद्दशा श्रुतस्य पूर्णा बहुश्रुता उत्तमा गति गता प्रधान स्थान मुक्ति प्राप्ता कि कृत्वा कर्माणि चिपयित्वा श्रुतस्य पूर्णा इत्यत्र तृतीयास्थाने षष्ठी श्रुतेन श्रुतज्ञाने पूर्णा कीदृशस्य श्रुतस्य विपुलस्य विस्तीर्णस्य अनेकहेतुयुक्तिदृष्टात उत्सर्गवादनयादनेक रहस्यार्थयुक्तस्य कीदृशा बहुश्रुता समुद्रगम्भीरसमा समुद्रस्य गाम्भीर्येण तुल्या समुद्रगम्भीरसमा पुन कीदृशा दुराशया केनापि परवादिना कपट कृत्वा न आशयणीया केनापि ठगितु अशक्या इत्यर्थ पुन कथभूता अचकिता अत्रासिता परीषहैस्त्रास अप्रापिता पुन कीदृशा दु प्रहस्या परिवादिभि पराभवितुमशक्या एताद्दश श्रुतज्ञानधरा मोक्ष गता गच्छन्ति गमिष्यन्ति ३१ [तम्हासु अमहिट्ठिज्जा उत्तमट्ठगवेसए जेणप्पाण पर चेव सिद्धि सपाउणिज्जा सेत्तिवेमि] ३२ उत्तमार्थं गवेषको मोक्षार्थी पुमान् तस्मात् बहुश्रुतस्य मोक्षप्राप्तियोग्यत्वात् श्रुत सिद्धान्त अधितिष्ठेत् उत्तमश्चासो अर्थश्च उत्तमार्थो मोक्षार्थस्त गवेषते इति उत्तमार्थगवेषक येन श्रुतेन आत्मानश्च पुन परमपि सिद्धि प्रापयेत् मोक्ष गमयेत् कोर्थ बहुश्रुत स्वयमपि मोक्ष प्राप्नोति अन्य अपि स्वसेवक मोक्ष प्रापयतीत्यर्थ इत्यह ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामी जबू स्वामिन प्रत्याह ३२ इति बहुश्रुतपूजाख्य एकादश अध्ययन सपूर्ण ॥११॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययनसूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचिताया बहुश्रुतपूजाध्ययनस्यार्थ सपूर्ण ॥११॥ अथ द्वादश प्रारभ्यते एकादशे बहुश्रुतपूजा प्रोक्ता ॥ अथ द्वादशे बहुश्रुतेनापि तपो विधेय इति एकादशद्वाद

सूत्र

तम्हासुय महिट्ठिज्जा उत्तमट्ठ गवेसए जेणप्पाण परचेव सिद्धि सपाउणेज्जासेत्तिवेमि३२ बहुस्सुयज्झयणसम्मत्त ॥११॥

भाषा

सिद्धान्त भणवु उत्तमार्थो मोक्ष तस्य गवेषक उत्तम अर्थ मोक्षतेहना गवेषक जीवे के येन कृत्वा आत्मान परश्च जिणे सिद्धान्ते करी आपणा आत्माने अने परशिष्यादिकने सिद्धि प्रापयति निस्तारयति इत्यर्थ मुक्ति सम्प्राप्त इति सुधर्मास्वामी ब्रवीमि ३२ इति श्री बहुश्रुताख्यमध्ययन सपूर्णम् ॥११॥

अगे: सम्बन्ध: अतोत्राध्ययने तपो माहात्म्यमाह । हरिकेशबलसाधु स्तपस्वी बभूव तत्सम्बन्धो यथा मथुरानगर्यां शङ्खोनाम राजा विषयसुख विरक्तः स्थविराणामन्तिके निष्क्रान्त कालक्रमेण गीतार्थो जातः पृथ्वीमण्डले परिभ्रमन् हस्तिनागपुरे प्राप्त तत्र भिक्षानिमित्तं प्रविष्टः तत्रैको मार्गो अतीवो ष्णोस्ति उष्णकाले केनापि गन्तुं न शक्यते उष्णमार्गस्य हुतवह इति नाम सञ्जातं तेन मुनिना तत्रगवाक्षस्थितः सोमदेवाभिधानः पुरोहितः पृष्ट किमेतेन मार्गेण व्रजामीति पुरोहितेन चिन्तितं यद्यसौ हुतवहमार्गे गच्छति तदा दह्यमानमेनं पश्यतो मम कौतुकमनोरथः पूर्णो भवतीति अतस्तेन स एव मार्गो निर्दिष्टः ईर्यापयुक्तो मुनिस्तेनैव मार्गेण गन्तुं प्रवृत्तः लब्धिपात्रस्य पादप्रभावतस्तादृशोपि मार्गे शान्तो बभूव तस्मिन् मार्गे शनैः शनैश्चलन्तं मुनिं वीक्ष्य स पुरोहितः स्वावास गवाक्षादुत्तीर्य स्वपदाभ्यां तं मार्गं स्पृष्टवान् हिमवच्छीतलो मार्गस्तेन ज्ञातं मुनिपादमाहात्म्यं एतन्न चिन्तितं हा मया पापकर्मणा पुण्यात्मनोऽस्यकोदृशो मार्गः प्रकाशितः परमस्य पादस्पर्शादेव मार्गतापोपशान्ति र्जाता ततो यद्यहमस्य शिष्योऽभूवं तदामे तत्पापच्छित्तं भवतीति चिंतयित्वा तस्यमुने पुरः स्वपापं प्रकाशितं पादौ च प्रणतो मुनिनापि तस्य सम्यग्धर्मः प्रकाशितः जातं संवेगेन तेन सोमदेवेन तस्य मुनेरंति केदीक्षा गृहीता चारित्रं विशेषात्पालयति परमहं ब्राह्मणत्वादुत्तमजातिरितिमदङ्कुरुते परंनैवं भावयतिगुणै रुत्तमतायांतिनतुजाति प्रभावत क्षीरोदधि समुत्पन्नः कालकूटः किमुत्तमः १ किंच कोशेन कृमिजं सुवर्णं सुपलादूर्वापि गोरोमत पंकात्तामरसं शशांकमुदधे रिन्दीवरं गोमयात् काष्टादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना जाता लोकमहर्घता निजगुणै शासात कि जन्मना २ एवं परमार्गमभावयन् सजातिमदस्तब्धः सोमदेवः कियत्कालं संयममाराध्य कालक्रमेण मृतो देवो जात स्तत श्च्युत्वाजितगङ्गानि सुतायान् ततश्च्युतो गङ्गातीरे हरिकेशाधिपस्य बलकोटाभिधानस्य चण्डालस्य भार्यायाः गौर्याः कुक्षौ समुत्पन्नः साच तत्र फलितं चाम्रवृक्षं दृष्ट्वा स्वप्नपाठकानांच कथितवती तैरुक्तं तव प्रधानपुत्रो भविष्यतीति कालमासे दारको

जात जातिमदकरणेनास्य चण्डालकुलोत्पत्तिजाता म शाल सौभाग्यरूपरहितो वान्धवानामपि हसनीय तस्य वल इति नाम प्रतिष्ठित सच वर्द्धमान प्रकाम क्लेशकारित्वेन सर्व्वेषामुद्वेगकारी जात अन्यदा वसन्तोत्सवे प्रासे चाण्डालकुटम्बानि विविधखाद्यपानकरणाय पुराद्वहिर्मिलितानि सन्ति स वल नामा बालक परवालैस्सम लेश कुर्व्वन् प्रातिहृदैर्निर्यूढ दूरस्थ स विलासक्रीडापरायि परवालानि पश्यति पर मध्ये समायातु न शक्नोति तस्मिन्नवसरे तत्र सर्पो निर्गत सविष इति ज्ञात्वा चाण्डाले मारित पुनस्तत्र प्रलम्बमलर्णिक निर्गत निर्विषमिति ज्ञात्वा तैर्नैर्विनाशित ताद्दश मरण द्दष्ट्वा तेन बलवानेनचिन्तित निजैर्नैवदोषैप्राणिन पराभव सर्व्वत्रप्राप्नुवन्ति यथाह सर्प सद्दश सविषस्तदा पराभवपद प्राप्त यथलसिकवन्निरपराधो भविष्यत्तदा न मे कश्चित्पराभवो भविष्यदिति सम्यग्भावयतस्तस्य जातिस्मरणमुत्पन्न विमान वाससुखस्मृतिमार्गमा गत जातिमदविपाकोऽपि प्रात सर्व्वेगमागतेन दीक्षा गृहीता स हरिकेशीवल शुद्धक्रिया पालयन् षष्ठाष्टमदशमद्वादशमासादित पर्व्वीयन् क्रमेण विहार कुर्व्वन् वाराणसी नगरी प्राप्त तत्र तिन्दुकवने मण्डिकयक्षप्रासादे स्थितो मासक्षपणादितप करोति तद्गुणावर्ज्जितय यक्षस्त महर्षि निरन्तर सेवते अन्यदा तत्र वने एको परो यक्ष प्राघूर्णक समागत तेन मण्डकयक्षस्य पृष्ट कथ त्व मद्दने साम्प्रत नायासि तेनोक्त ग्रहमिह स्थितमिम मुनि सेवे एतद्गुणावर्जितया यन गन्तु नोत्सहे सोप्यागन्तुको यक्षस्तद्गुणावर्जितो बभूव आगन्तुकयक्षेण मण्डिकयक्षस्योक्त एताद्दशा मुनयो मद्दनेपि सन्ति तत्र गत्वा अद्य तान् सेवामहे इत्युक्त्वा द्वावपि तौ तत्र गतो विकथादि प्रमादपरास्ते तन ताभ्या द्दष्टा तेभ्यो विरक्तौ तो यक्षो पश्चात्समा गत्य हरिकेशीवल महामुनि प्रणमत प्रयह सेवतेस्म अन्यदा तत्र यक्षायतने वाराणसीपति कौशलिकराजपुत्री भद्रा नाम्नी नानाविध परजनानुगता पूजासामग्रीं गृहीत्वा समायाता यक्ष प्रतिमा पूजयित्वा प्रदक्षिण कुर्व्वन्ती मलक्लिन्न वस्त्रगात्र दुस्सहतप करणकृश कुरूप त महामुनि द्दष्ट्वा थूत्कृत

निससर्ज यक्षेण चिन्तितं इय महामुनिं तिरस्कुरुते गतो मया शिक्षणीयेति अधिष्ठिता तेन यक्षेण असमञ्जसं प्रलपन्ती दासीभिरुत्पाद्य राजगृहं नीता राज्ञा मन्त्रिका वैद्याश्च आकारिताः तैश्चिकित्सायां कृतायामपि न तस्याः कापि विशेषो जातः अथ तस्या मुखे संक्रान्तो यक्षः कथयत्यस्मात् कन्यया मदायतनस्थितो महानुभावः संयमी निन्दितः यदीयं तस्य संयमिनः पाणिग्रहणं कुरुते तदा मयास्या वपुर्मुच्यते नान्यथेति चिन्तितं राज्ञा कथमपि जीवन्ती भूत्वा अपीयं जीवत्विति विमृश्य यक्षवचनं राज्ञा प्रतिपन्नं सा स्वस्थशरीरा जाता सर्वालङ्कारभूषिता गृहीतविवाहोपकरणा महाविभूत्या यक्षायतने गता तस्य महर्षेः पादौ प्रणम्य एवं विज्ञप्तिं चकार हे महर्षे त्वं मत्पाणिग्रहणं कुरु तत्क्षणं मुनिना भणितं भद्रे बुधजननिन्दितया मनसा सह यदालं न चिन्तय ये साधव एकस्यां वसतौ स्त्रीभिः समं वासमपि नेच्छन्ति तेन साम्प्रतं करग्रहेण कथं गृह्णन्ति सिद्धिवधूरागाः साधवः कां मृगनिपूर्णासु युवतीषु रज्यन्ते अथ तेन यक्षेण तस्य महर्षेः शरीरं प्रच्छाद्य तत्सदृशं भिन्नरूपं विकुर्व्य करग्रहेण जगृहे एकरात्रिं यावद्वञ्चिता प्रभाते यक्षोऽदृश्यीभूतः स्वाभाविकरूपो भूत्वा तामाह भद्रे अहं संयम्येव स्त्रीस्पर्शं विधायाध्या करोमि न मया त्वत्कर करेण गृहीतः किन्तु मत्क्षीन यक्षेणैव त्वं विडम्बिता स च साम्प्रतं दूरे गतः मत्तस्त्वं दूरे भव महर्षिणेत्युक्ता सा प्रभाते सर्वमिव मन्यमाना भृशं विषण्णा राजगृहे गता सर्वं तत् स्वरूपं राज्ञोऽग्रे प्रावोचत् तदानीं राज्ञः पुर उपविष्टेन रुद्रदेव पुरोहितेनोक्तं राजन्नियं ऋषिपत्नी तेन मुक्ता ब्राह्मणाय दीयते ततो राज्ञां सा तस्मै दत्ता पुरोहितोऽपि तया सह विषयसुखमनुभवन् कियन्तं कालं निनाय अन्यदा तस्या यज्ञपतीत्वकारणार्थं यज्ञस्तेन कर्तुमारब्धः तत्र यज्ञमण्डपे देशान्तरेभ्यो अनेकभट्टाः समाः समायाताः तदर्थं भोजनसामग्री तत्र प्रगुणीकृता अस्मिन्नवसरे तत्र महर्षिर्मासोपवासपारणके गोचर्यां भ्रमन् यज्ञमण्डपे समायातः इत्यादिकथानकं हरिकेशीयस्योक्तं शेषकथानकं सूत्रादेवावसेयं सूत्रं [सोवागकुलसंभूओ गुणुत्तरधरो मुणी हरिएस बलो नाम आसी भिक्खू जिइंदिओ] १ स हरिकेशबलो नाम प्रसिद्धो भिक्षुरासीत्

कोदृश स साधु जितेंद्रिय पुन कीदृश श्वपाक कुलसम्भूत श्वपाकश्चाण्डाल स्तस्य कुले सम्भूत पुन कीदृश मुनि मन्यते जिनाज्ञा इति मुनि जिनाज्ञापालक इत्यर्थं जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेंद्रियो विषय जेता पुन कीदृशो गुणत्रयधर गुणत्रय ज्ञानदर्शन चारित्राख्य धरतीति गुणत्रय धर १ [इरिए सणभासाए उच्चार समिईसुय जओ आयाण निक्खेवे सजओ सुसमाहिओ] २ पुन कथभूतो हरिकेशबलो मुनि ईर्येषणा भाषोच्चार स मितिषु जओ इति यती यत्नवान् ईर्या च एषणा च भाषा च उच्चारश्च ईर्येषणा भाषोच्चारास्तेषां समितय सम्यग व्यवहारा ईर्येषणा भाषोच्चार समितय स्तासु ईरण इर्या गमनागमन तस्य समितौ गमनागमन व्यवहारे यत्नवान एषण एषणा आहारग्रहण तत्र समितिरेषणा समितिस्तत्र यत्नवान एव

सूत्र

सोवागकुलसभूओ गुणुत्तरधरो मुणी । हरिएसबलो नाम आसी भिक्खू जिइ दिओ ॥१॥ इरिएसणभासाए उच्चारे समिईसुय । जओ आयाण निक्खेवे सजओ सुसमाहिओ ॥२॥ मणगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो जिइ दिओ । भिक्खु

भाषा

चण्डालकुलो भय सोपाककाहीइ चण्डाल तेहने कुले उपनो सर्वोत्तम गुणधरोमुनि सर्व उत्तम जे गुण तेहनो धरणहार छे साधु हरिकेशबलोनाम हरिकेशी चण्डालनी जाति छे बलोश्री नाम छे आसीत् अभूत् भिक्षु जितेन्द्रिय आसीत् हुओ साधु जितेन्द्रिय आपणा इंद्रि जित्या छे १ इर्येषणा भाषाया इर्या समति एषणा समति भाषा समति पुरीष समितिषु च उच्चारणा सवण समितिनें विषे यत्न वान ग्रहणे मोचने च भांडा ममुख मूकेतो पूजीने मूकेले तो पूजीने लिइ सयमान्वित सुसमाधित सतरह विधि सयम पाले समाधि वतछे समाधि माहि वर्त्तेछे २ मनो गुप्तवान् मन जेहने गुप्त ठामिछे वचन गुप्तवान वचन जेहने गुप्तछे काय गुप्तवान जितेंद्रिय काया जेहनी गुप्तछे

भाषा समितौ भाषा व्यवहारे यत्नवान् भासाए इत्यत्र एकारः आर्षत्वात् तिष्ठति उच्चार समिति मूत्रपुरीषादि परिष्टापन विधौ यत्नवान् पुन कीदृशो हरिकेशबलः साधुं आदान निक्षेपे वस्त्रपात्राद्युप करण ग्रहण मोचने संसम्यक् प्रकारेण यतः संयतः संयमी पुनः कीदृशः सुतरां अतिशयेन समाधितः समाधिसहितः चित्तस्थैर्य सहित इत्यर्थः पञ्चसमिति युक्तः सुसाधुरस्तीत्यर्थः २ [मणगुत्तो वयगुत्तो कायगुत्तो जिइन्दिओ भिक्खट्ठावंभइज्जंमि जन्नवाड मुवट्ठिओ] ३ पुनः कीदृशो मनो गुप्तगुप्तः पुनर्वचन गुप्तगुप्तः पुनः काय गुप्तगुप्तः पुनः जितेन्द्रियः एतादृशो हरिकेशबल. साधुभिक्षार्थं ब्राह्मणानां इज्या ब्राह्मणी ज्यातस्यां ब्राह्मणेज्यायां ब्राह्मण यज्ञपाटके उपस्थितः तत्र ब्राह्मणा यज्ञं कुर्वन्ति तत्र यज्ञपाटकेः प्राप्तः मनो गुप्तगुप्तो मनोगुप्तः वचो गुप्तगुप्तो वचोगुप्तः काय गुप्तगुप्तः कायगुप्तः इत्यत्र सर्वत्र मध्यपदलोपी समासः ३ [तंपासि ऊणमेज्जन्तं तवेण परिसोसियं पन्तोवहि उवगरणं उवहसन्ति अणारिया] ४ तं हरिकेशबलं साधुं एज्जन्तं आयातं पासि जण दृष्ट्वा अनार्यां दुष्टा, ब्राह्मणा उपहसन्ति उपहासं कुर्वन्ति कीदृशं तं तपसा परिशोषित तपसा दुर्बलीकृत पुन कीदृशं तं प्रान्तोपध्युपकरणं जीर्ण वस्त्रोपधिधारकं प्रान्तं जीर्णं मलिनत्वादिना असारं उपधिर्वर्षा कल्पादि सएव उपकरणं धर्मोपष्टंभ हेतुरस्येति प्रान्तोपध्युपकरणस्तं प्रान्तोपध्युपकरणं ४ जाईमय पडिथद्धा हिंसगा अजि इंदिया अबंभचारिणो वाला इमं वयण

सूत्र

बावंभइज्जंमि जन्नवाड मुवट्ठिओ ॥३॥ तं पासिऊणमेज्जतं तवेण परिसोसियं। पंतोवहि उवगरणं उवहसंति

भाषा

पांचे इन्द्रीजीत्यां छे भिक्षार्थ ब्राह्मणानां भिक्षानि अर्थे ब्राह्मणनेघरे यज्ञपाठके उपस्थित. प्राप्तः यज्ञवाडाने विषे आव्यो ३ तं हरिकेशं आगच्छन्तं दृष्ट्वा तेह रिकेशी साधुने आवतो देखी ते साधु कीस्या छे तपसा षष्ठादिना परिशोषितं छट्ठ अट्ठमभासखमण आदेदेईने तपे करीने आपणा देही सुखाईछे प्रान्तो पध्युपकरणं जीर्णोपध्युपकरण प्रांत फाटा तूटावस्त्र पहर्या छे हास्यं कुर्वन्ति अनार्या ब्राह्मणा एहवायतीने हसवालागाब्राह्मण अनार्य४ जातिमद

मव्वयो ५ ते ब्राह्मणा विवेकविकला इद वचन अब्रुवन् कीदृशास्ते जातिमद प्रतिस्तब्धा जातिमदेन ब्राह्मण ब्राह्मण्यद्रवलेन यो मदोऽहङ्कारस्तेन प्रतिस्तब्धा अनम्रा जाति मद मतिस्तब्धा पुन कीदृशा हिंसका जीवहिंसाकरणशीला पुन कीदृशाअजितेंद्रिया विषया सक्ता पुन कीदृशा अब्रह्म चारिणो मैथुनाभिलाषिण अब्रह्मणि कामसेवनायां चरन्ति रमन्ते इति अब्रह्मचारिण कुशीला इत्यर्थ ते ब्राह्मणा किं अब्रुवन् इत्याह [कयरे आगच्छ इदित्त रूवे काले विकराले फोक्कनासे ओमचेलए पसु पिसायभूए स करदूस परिहरियकण्ठे] ६ कतर कोय आगच्छति अतिशयेन इति कतर एका र प्राकृतत्वात् परमय कीदृग दीप्तरूपो बीभत्सरूप दीप्तवचन बीभत्सार्थं वाचक पुन कीदृश काल कालवर्ण पुन कीदृग् विकरालो विकृतागोपा

मूल

अगारिया ॥४॥ जाइमय पडिवद्धा हिंसगा अजिइंदिया । अवभचारिणो वालाइम वयणमव्ववी ।५। कयरे आगच्छइ • दित्तरूवे काले विगराले पोक्कनासे । उमचेलए पसु पिसायभुए सकरदूस परिहरिय कण्ठे ॥६॥ कयरे तुम ईय अद

भाषा

प्रतिवद्ध ते ब्राह्मणकिस्या छे जातिना मदतिणे करी लुब्धप्राणघातक अजितेंद्रियवन्तो ब्राह्मण केहवाछे हीसाजीव वध करे छे इन्द्री जेणे जीत्या नथी अब्रह्मचारीणो मूर्खा वली ब्राह्मण किस्या छे अब्रह्मचारी कुशीलिया छे वाला मूर्ख इद वचन अब्रवीत हवे ते ब्राह्मण यतीने एहवावचन कहे छे ५ कतर त्व आगच्छति छे बीभत्सरूप कतरकोणरे तू आवे छे कुत्सित दैत्यरूप वर्णे काल दन्तुरिना विकराल ए फोक्कनास तु कालो छे मोटा दांत छे तेह भणी विकराल छे मोटो थूलनासिकाछे हे उच्छिष्टवस्त्रधारक पीसाचभूत मैला वस्त्र छे घणी धूलशरीरेलागी छे तेह भणी पणी पिशा चदीसे छे उत्करटिका यस्तनिक्षिप्त कण्ठ अकरडाना पर्या वस्त्र लेइ ते गले पहरया छे जोणे जतीये ६ कतर इत्येव दुष्ट अदर्शी ब्राह्मण बोल्या कोण

गधर लम्बोष्ठ दन्तुरत्वादि विकारयुत्ता· पुन: कीदृश: पोक्कनाश: पोक्का अग्रेस्थलोन्नता मध्ये निम्ना चिप्पटा नाशायस्य सपोक्कनाश: पुन कीदृग् अवम चेल: अवमानि असाराणि चेलानि वस्त्राणि यस्य स अवमचेल: सला विलत्वेन जीर्णत्वेन त्याज्यप्राय वस्त्रधारीत्यर्थ: पुन: कीदृश: पांशु पिशाच भूत: धुल्यावगुण्ठित शरीरत्वेन मलिनवस्त्रत्वेन भूततुल्य इत्यर्थ: एतादृश' कोयं शङ्करदूष्य' कण्ठे परिधृत्य अता गच्छति समीपे आगतं दृष्ट्वा एवं जचुरि त्यर्थं शङ्कर उत्कारटक रोडोकावस्त्र जकारडी विशेष स्तत्रस्य' दूष्य' वस्त्रं शङ्करदूष्य' यद्यपितस्यसाधोर्वस्त्रं उत्कारटकनास्ति तथापितेषां अत्यन्त घृणोत्पादक त्वेनतैरुक्त' कोयं उत्कारटक वस्त्रं कण्ठे परिधृत्य पिशाच सदृशो भ्रमन्नता गच्छति सहि हरिकेशी साधु· कुत्रापि आत्मीयं उपरण' न मुञ्चति सर्व वस्त्रोपधि उपकरणादिकं गृहीत्वैव भिक्षार्थं भ्रमतीतिभाव· ६ [कयरेतुमं इय अदंसणिज्जे काएव आसाइहमागओसि ओम चेलगा पंसु पिसाय भूया गच्छ खलाहि किमिहं ठिओसि] ७ पुनस्ते किमूचुरित्याहरे इति नीचामन्त्रणे अवमचेलक· सटित पटित वस्त्रधारी धूलीधूसर भूत कत्वस्त्व' कोसिकया आशया इह यज्ञपाटके आगतोसि काएव आशा इति प्राकृतत्वात् मकारोपि लाक्षणिक· कीदृशस्त्व' इय अदंसणिज्जे अनेन मलिनवस्त्रादिधारणेन अदर्शनीय इति अदर्शनीय: द्रष्टुं अयोग्य· त्वद्दर्शना देवास्माकं धर्मो विलीयते अत्र गाथायां उमचेलगा पंसु पिशाय भूया इति पुनरुक्ति अत्यन्त निर्भर्त्सनार्थारिभूतप्राय गच्छ इतो यज्ञस्थानाद्व्रज खलाहित्ति देशीय भाषया अपसर दूरं दृष्टिमार्गात् किमिहस्थितोसि त्वया सर्वथात्र

सूत्र सणिज्जे। काएव आसाएइह मागओसि। उमचेलगा पंसुपिसायभूया गच्छ खलाहि किमिहंठिओसि ।७। जक्खो

भाषा रे तूं आवे छे इहां अदर्शनीक देखवा अयोग्य कया वांछया इह यज्ञपाटके आगतोसि अरे पिशाच ए यज्ञ वाडे किसो इच्छाइ आव्यो छे हे उमचेलकरज सा पिशाचवत् जात· मैलावस्त्रछे धुलिलागी छे शरीरे तिणे करीने पिशाचभूतछे अतोयज्ञपाटकात् व्रजस्व अपसर किंचि'तोसि हे खल हे दुर्ज्जनजापर

न भातस्य मित्यर्थं तैर्याप्रणे रित्यर्थे सति स साधुस् किमपि न अवादीत् तदा तङ्क्तस्य यक्षस्य ह्रत्यमाह ७ [जक्खो तहितिंदुय रुक्खवासी अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स पच्छायइत्ता नियग सरीरं इमाइं वयणाइं सुदा हरित्था] ८ तस्मिन् काले तिन्दुकवृक्षवासी यक्ष इमानि वक्ष्यमाणानि वचनानि उदाहा र्षीत् अवोचदित्यर्थं किं कृत्वा निजक शरीरं प्रच्छाद्य स्व शरीरं प्रच्छन्न विधाय साधुशरीरे प्रवेशं कृत्वा कथंभूत स यक्ष तस्य मुने अनुकम्पक अनु कूर्प कम्पते चेष्टते इत्यनुकम्पक साधो सेवक इत्यर्थं तिन्दुकवनमध्ये एको महान् तिन्दुकवृक्षोस्ति तस्य अधस्तस्य चैत्यमस्ति तत्र साधु कायोत्स र्गेण तिष्ठति तस्य साधोर्धर्मानुष्ठानं दृष्ट्वा गुणरागी सेवक सञ्जातोस्ति इतिभाव स यक्ष इत्यवादीत् ८ [समणो अहं संजओ बंभयारी विरओधणपयण

तहिं तिंदुयरुक्खवासी अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स पच्छायइत्ता नियग सरीरं इमाइं वयणाइं उदाहरित्था ।८।
समणो अहं संजओ बंभयारी विरओ धणपयण परिग्गहाओ । परप्पवित्तस्सओ भिक्खकाले अन्नस्स अट्ठा इहमागओ

जो मत उभो रहे कोम उभो छे ७ तव यज्ञपाटके यक्ष तिंदुकवृक्षवासी तेह यज्ञपाडाने विषे एक तिंदुकनामे वृक्ष छे ते वृक्षमांहि एक यक्ष रहे छे अनुकम्पया भक्त्या महामुने हवे ते यक्ष ते साधुनो भक्तने वास्ते प्रच्छाद्य स्व तनु अदृश्य कृत्वा आत्मीय शरीर आपणु शरीर आच्छाद्य ढांकीने यतीना शरीरमें संक्रमीने इमानि वचनानि उदाहृतवान् इस्या वचन बोलवा लागो यतीना शरीरमांहि पेसिने यक्ष ८ अहं श्रमण अहं संयत अहं ब्रह्मचारी अहो ब्रह्मणो माध कु संयती कु ब्रह्मचारी कु निवृत्त धनस्वजन परिग्रहात् विरमो छाड्यो धन आपणो परिवार सर्व परिग्रहपणि छाड्यो परार्थं निष्पन्नस्य भिक्षाकाले पराइ अर्थे नीपना जे आहार पाणी भिक्षाने काले भिक्षावेलाइ अन्नस्यार्थेइह यज्ञपाटके आगतोस्मि ए यज्ञपाडाने विषे अन्नने अर्थे

परिग्गहाओ परप्पवित्तस्सउभिक्खकाले अन्नस्स अट्ठाइह मागओसि] ८ स यक्षः किम वोचत् तदाह भो ब्राम्हणा भवद्भिरुक्तं कोसिरेत्वं तस्योत्तर अहं श्रमणोस्मि श्राम्यति तपसि श्रमं करोतीति श्रमणस्तपस्वी पुनरहं संयतः सावद्य व्यापारेभ्यो निवर्त्तितः पुनरहं ब्रह्मचारी ब्रह्मणि भोगत्यागे चरति रमते इत्येवं शीलो ब्रह्मचारी पुनरहं धनपचन परिग्रहात् विरत तत्र धनं गो महिष्यश्वादि चतुःपदरूपं पचनं आहारादिपाक. परिग्रहो गणिमधरिमभेय परिच्छेद्यादि द्रव्यरूपः कया आशया इह गतोसि अस्योत्तरं भो ब्राम्हणा भिक्षाकाले,भिक्षावसरे अन्नस्य अर्थाय अत्रागतोस्मि कीदृशस्य अन्नस्य परप्रवृत्तस्य परस्मै परार्थं प्रवृत्तं पक्वं परप्रवृत्तं गृहस्थेन आत्मार्थं राद्धं ८ [वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जई य अन्नं पभूयं भवयाणमेवं जाणाहि मेज्जायण जीविणत्ति सेसावसेसंलहओ तवस्सी १० अत्र भवयाणं इति भवतां एतत्समीपत रवर्त्ति अन्नं प्रभूतं अद्यते इति अन्नं भक्ष्यं प्रभूतं प्रचुरं विद्यते तदेव प्रचुरत्वं दर्श्यते वियरिज्ज इति वितीर्यते दीनहीना नाथेभ्य सर्वेभ्यो वितीर्यते विशेषेण दीयते पुनः खाद्यते खद्यक घृतपूरादिकं स शब्दं भक्ष्यते पुनर्भुज्यते तण्डुल मुद्गदाल्यादि स घृतं आकण्ठं अभ्यवहार्यते इत्यनेन अत्रकाचित् कस्यापि भक्ष्यवस्तुनोन्युनतानदृश्यते यूयं मे इति मां याचन जीविनं जानीत याचनेन भिक्षया जीविनं जीवितव्यं अस्येति याचन जीवीतं इति अस्मात् कारणात् तपस्वी मलचर्णो मुनिरपि अत्र शेषावशेषं शेषात् अपि

सूत्र ओसि ॥९॥ वियरिज्जइखज्जइ भुंज्जईय अन्नंपभूयं भवयाणमेयं । जाणाहिमेजायण जिविणोत्ति सेसावसेसं लहओ

भाषा आव्यो छुं ९ दीयते खाद्यानि खाद्यते भक्तरूपादि यक्ष कहे छे अहो ब्राम्हणो तुम्हो अन्न जिमो छो चोखा दालि रोटी प्रमुख धान्यं प्रचुरं भवतां एतत् तुम्हारा यज्ञ वाडा मांही ए धानघणा दीसे छे जानीतया च नजीवी इति अहो ब्राह्मणो मुझने तुम्हो याचना जीवी जाणो हुं भिक्षा मांगीने आजीवीका करु छुं शेषावसेष उद्धरितं अन्तप्रान्तलभेत तपस्वी अहो ब्राह्मणो अम्हसरिखो जगत्रो सांभळ ताढुं तपस्वीने द्यो १० संस्कृतं उत्पादितं भोजनं ब्राम्ह

ग्रेय शेषावशेष उद्दरित प्रान्तप्रायमाहार लभता प्राप्नोतु इत्यपि यूय जानीतकोर्थं स मुनिरवादीत् अत्र अन्न यत्र तत्र परिष्ठाप्यते भवद्भिरेतादृशी बुद्धि करणीया अय तपस्वी आहारार्थ आगतोस्ति अयमपि शेषावशेष आहार प्राप्नोतु इति विचार्य मह्य शुद्धमाहार दीयतामिति यचेणोक्ते सति ते ब्राम्हणा कि प्राहुरित्याह १० [उवक्खड भोयणमाहणाण अत्तट्ठिय सिद्धमिहेगपक्ख न उव्वय एरिसमन्नपाण दाहामुतुभ किमह ठिओसि] ११ रे भिक्षो इह अस्मिन् यज्ञपाटके भोजन यत् उपस्कृत घृतहिङ्गवाधान्यक मिरच लवण जीरकादिभि घृतोपस्कार शाकादिक पुनरिहसिद्ध चतुर्विधाहार दाख वर्त्तते तद् रे भिक्षो आहार एकपक्ष वर्त्तते एक पक्षो ब्राम्हणो यस्य तत् एकपक्ष एतदाहार शूद्रेभ्यो नदेयमस्ति ब्राम्हणाना वर्त्तते पुनरिद आहार

मूल तवसी ॥१०॥ उवक्खड भोयण माहणाण अत्तट्ठिय सिद्धमिहेगपक्ख। णउव्वयएरिसमन्नपाण दाहामुतुभ किमिहठि

ओसि ११ थलेसुबीयाइ ववंतिकासगातहेवनिन्नेसुयआससाएएयाएसद्धाएदलाहिमज्झआराहएपुसमिणखुखित्त।१२।

भाषा एना ब्राम्हण काजे छे ए आहार माटी ब्राम्हणाने काजे नीपनो छे आत्मार्थ निष्पन्न इह एक एक ब्राम्हणेभ्य एव देय अने वली आत्मार्थे नीपनो एक पक्ष छूट ब्राम्हण बीजा को इने देवो नहीं नच वय इद्दश अन्न पान अम्हे इसो अन्न तुझने तुभ्य न दास्याम कि इहस्थितोऽसि नहि थाइशा काइ उभो छे ११ यक्षो वाच उच्च भूभागेषु बीजानि वपति कौटम्बिका कानवी उ चा थलने विषे बीजवावे तथा निम्नेषु नीच भूमिषु वपति धान्यानय तिम वली नीची भूमिकाने विषे वावेधाननीची भूमिकाने विषे वावे धाननी आशा करे एतदुपमयाश्रद्धयादद्ध्व मह्य एखेतनीउपमाकरीनेमुझने पणिथी आराधयेत् पुण्य इद निश्चितक्षेत्र अहो ब्राम्हणो ए क्षेत्र पवित्र छे भलो छे तुम्हो आराधो १२ ब्राम्हणा ऊचु क्षेत्राणि अस्माक ख्यातानि लोके अम्हे साधु

आत्मार्थिकं आत्मार्थमेव आत्मार्थिक व्राम्हणैरपि आत्मनैवभोज्यं नत्वन्यस्यै चित् देयमित्यर्थः तु इति तेन हेतुनाचय एतादृशं व्राम्हणभोज्यं अन्न पानं तुभ्य न दास्यामः इह त्वं किं स्थितोसि अस्माकं धर्मशास्त्रे उक्तमस्ति न शूद्राय मतिं दद्यात् नोच्छिष्टं न हविः क्षतं नचास्योपदिशेद्धर्मं नचास्य व्रतमादिशेत् ११११ तदा यक्षः पुनरवादीत् [थलेसुवीयाइं ववंति कासयातहेव निन्नेसुय आससाए एयाए सद्धाएदलाहिमज्झं आराहिए पुन्नमिणं खुखेत्तं] १२ एतया अनया उपमया श्रद्धया भाववनया मह्यं दद्ध्वं खु इति निश्चयेन इदं सल्लक्षणं पुण्यं शुभं क्षेत्रं आराधयत एतया इति कया उपमया तां उपमां आह कर्षका: क्षेत्रीकारका नरा आशंसया विचारणया काले वर्षाकाले स्थलेषु उच्चप्रदेशेषु तथैव निम्नेषु निम्नभूमिप्रदेशेषु बीजानि वपन्ति कोर्थः वर्षा काले क्षेत्रीकारका बीज वपन्त एवं चिन्तयति यदि प्रचुरा वर्षा भविष्यन्ति तदा स्थलेषु फलावाप्तिर्भविष्यति यदि च अल्पाः वर्षा भविष्यन्ति तदा निम्न प्रदेशेषु फलावाप्तिर्भविष्यति उभयत्र उच्च नीचप्रदेशेषु बीजं वपन्ति न पुनरेकत्रैव बीजं वपन्ति यदि यूयं व्राम्हणा निम्नभूमिसदृशा स्तदा अहं स्थलभूमिसदृशो गण्यः मह्यमपि दातव्यं न केवलं यूयमेव क्षेत्ररूपा किन्तु अहमपि पुण्यक्षेत्रमस्मीति भावः १२ इति श्रुत्वा ते व्राम्हणा स्त प्रत्यूचुस्तदाह [खित्ताणि अम्हं विइयाणि लोए जहिं पकिन्ना विरुहंति पुन्ना जेमाहणा जाइ विज्जोववेया ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं] १३ अरे पाषण्डपाश तानि क्षेत्राणि अस्माभिर्विदितानि वर्त्तन्ते इति अध्याहार जहिं इति यत्र क्षेत्रेषु प्रकीर्णानि उप्तानि बीजानि प्रदत्तानि

सूत्र

खेत्ताणिअम्हं विदियाणिलोए जहिंपकिन्नाविरुहंतिपुन्ना। जेमाहणाजाइ विज्जोविवेयाताइं तुखेत्ताइं सुपेसलाइं।१३

भाषा

व्राम्हण कहे छे जेदाननां क्षेत्र छे ते अमे जाणु छुं यत्र क्षेत्रेषु वपानि सति प्रादुर्भवन्ति पुण्यानि जे क्षेत्रने विषे व्योवो थका उगी पुण्य ये व्राम्हणाः जाति विद्योपपेताः जे व्राम्हण योग करी विद्या करी सहित छे उत्तम जाति छे घणी विद्या जाणेछे तानि क्षेत्राणि सुपेशलानि मनोज्ञानि इस्या व्राम्हण अम्हारे

दानानि पूर्णानि विकशंति विशेषेण उत्कर्षन्ति फलदानि भवन्ति विभक्तिलिङ्गव्यत्ययस्तु प्राकृतत्वात् ये ब्राम्हणा जातिविद्योपपेता स्तेतु ब्राम्हणा गुणरा पतिशयेन पेशलानि मनोहराणि क्षेत्राणि श्रेयानि तत्र जातिब्राम्हणत्व विद्यावेदाध्ययन जातिश्च विद्याच जातिविद्ये ताभ्या उपपेता सहिता जाति विद्योपपेता उप अप इता इत्यत्र गकाध्यादिषु परकपमित्यनेन उपशब्दस्य अकारलोप पश्चादाद्गुणेन सिद्धि यदुक्त समयोविप्ये दान द्विगुण ब्राम्हण ब्रूवे गव्यगुणमाचार्ये पनत्त वेदपारगे २ इत्युक्तत्वात् वेदपाठगा ब्राम्हणा पुण्य क्षेत्राणि १२ अथ यज्ञ आह [कोहोय माणोयवहोयजेसि मोस अदत्त च परिग्गहं च तेमाहणाजाइ विज्जा विहोणा ताइं तु खित्ताइं सुपावयाइं] १४ भो ब्राम्हणा येषां भवतां मध्ये क्रोधो वर्त्तते च पुनर्मानमाया लोभाश्च वर्त्तन्ते चकारात् मानादीनां ग्रहण च पुनर्येषां जीवहिंसा वर्त्तते अदत्त अदत्तादान मप्यस्ति च शब्दात् मैथुन कामा भक्तिरस्ति च पुन परिग्रहो वर्त्तते ते यूयमेब्राम्हणा जाति विद्याविहीना क्रिया कर्मविशेषेण चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थित इति वचनात् ब्राम्हणत्व जातिमान् ब्राम्हण ब्राम्हण ब्राम्हणोभ्यां उत्पन्नो यते किं तु ब्राम्हणत्वे न ब्राम्हणक्रिया निष्ठत्वे न ब्राम्हणस्थितेन जातिधर्मेण विशिष्टो ब्राम्हण उच्यते तस्मात् युष्मासु ब्रम्हक्रियानिष्ठत्व ब्राम्हत्वस्य अभावात् न जातिरस्ति ब्राम्हणा ब्रम्हचर्येण इति लक्षणोक्तित्वात् न पुनर्यूय विद्या युक्ता विद्यायास्तु विरति रूपफलभावात् विद्यावान् अपि यावत् विरतिमान् सन् पापवात् सम्वरवारिण न वर्त्तते तावत् स विद्यावान न उच्यते विद्या अपि परमार्थत स्तएव उच्यते यासुपथा अथ परिहार उक्त तस्मात् भवन्तो विद्या

कोहोयमाणोयवहोयजेसि मोस अदत्तचपरिग्गहच। तेमाहणाजाइ विज्जाविहूणा ताइं तुखेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

पुण्यनां खेत्र मनोहर कह्या १२ अथ यज्ञोवाच क्रोधच मानच वधच येषां क्रोधमान छे जे माहिवली वध करे छे जीवमारे छे मृषावादच अदत्तच परि ग्रहच मृषावाद बोले अदत्तादानलिइ परिग्रह राखे ये ब्राम्हणा जातविद्या विहिना तेब्राम्हण जाति विद्याइं करीने हीन तानि क्षेत्राणि सुपापकान्येव

वन्तः भवत्सु भवदुक्तं एव जाति विद्योप पेतत्वं वृाम्हण लक्षणं सर्वथा नास्त्येव तस्मात् तानि सु पापकानि एव खेत्राणि भवन्तः न पुण्यक्षेत्राणि युयं१७ अथ कदाचित्ते एवं वदेयुः वयं वेदविदो वर्त्तामहे इत्याह [तुम्भेत्थ भोभारगिराणं अट्ठं नयाणाह अहिज्जवेए उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति ताइंतु खित्ता इं सुपेसलाइं] १५ भो इया मन्त्राणि भो वृाम्हणा यूयगिरां वेदवाणीनां भारहरा· भारोद्वाहकाः यतो यूयं वेदान् अधीत्य वेदानां अर्थं न जानीथ तथाहि आत्मा रे ज्ञातव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः पुनरयं समो मशके नागे च न हिंस्यात् सर्वभूतानीत्यादि वेदवाक्यानि अधीतानि अथ पुनर्भवद्भि जीव हिंसास्वेव प्रवर्त्यते तस्मादत्र यागः पृथक् उच्यते यत्र च आत्मनां अग्नौदाहः सचात्र वेदे यागएव न स्यात् यदि च सएव आत्माएव भवद्भिर्ज्ञातः तदा

त्व

तुम्भेत्थभोभारहरागिराणं अट्ठंनजाणाह अहिज्जवेए। उच्चावयाइं मुणिणोचरंति ताइं तुखेत्ताइं सुपेसलाइं।१५

अज्झावयाणं पडिकूलभासीपभाससे किंतुसगासिअम्हं। अविएयंविणस्सओ अन्नपाणं णयणं दाहामुतुमंणियंठा।१६।

भाषा

ते वृाम्हणरूपक्षेत्र अत्यन्त पापी कह्या १४ यूय अत्र लोके विप्राभारधरा गिराणां सन्ति तुम्हे भो वृाम्हणो निःकेवल शास्त्रना भार अने वृाम्हणना नामनो भार वहो छो जे अम्हे वृाम्हण वाणीति तुम्हे वेदनो अर्थनेति ज्ञात्वा अने वली तुम्हे वेदना भणो छो उच्चनीच स्थानानि मुनि यश्चरन्ति धनवन्तने घरे अने निर्धनने घरे भिक्षाने अर्थे यतो जाइ नान्येव मुनिलक्षणानि क्षेत्राणि शोभनानि तेजसाधु रूप जे क्षेत्रछे ते भला पुण्य हेतु छे पुण्यक्षेत्र छे१५ अथ विप्रा' आहुः अध्यापकानां पाठकानां विपरीत भाषो वृाम्हण बोल्या अहोसाधु उपाध्यायनुं भुंडोबोलोछो प्रकर्षेण ब्रूषे कस्मात् समीपे अस्माकं अम्हारे पासे ऊभो थको अम्हने स्यु कहे छे अविसम्भावने एतत् दृश्यमानं अन्नपानं क्वथितादिभावं प्राप्नोतु अन्नपांणी विणसी जाइ छे कोही जाइ छे तो हिपणि न किञ्चिद्दा

किमय याग कुर्थोध्व प्रथम यागोपि भवद्भिर्नज्ञायते कानि तर्हि चेत्राणीत्याह हे ब्राह्मणा मुनीन् सुपेशलानि अत्यन्त सुन्दराणि क्षेत्राणि जानीथ ये मुनय उच्चावचानि गृहाणि उत्तमाधमानि कुलानि भिक्षार्थं चरन्ति अथवा उच्चावचाइ उच्चानि महान्ति वृतानि उच्चवृतानि येषां तानि उच्चवृतानि प्रकारप्राकृतत्वात् महाव्रतधराचितानि क्षेत्राणिभव्यानिज्ञेयानि इत्यर्थं १५ तदा छात्रा किं प्राहु [अज्झावयाण पडिकूलभासी पभाससे कितुसगासि अम्ह अविएय विणस्सउ अन्नपाण नयण दहामुतुमनियंठा] १६ किन्तु इति शब्दो निन्दाक्रोधवाचको अरे नियंठा अरे दरिद्रि त्व उपाध्यायानां प्रतिकूलभाषी सन् अस्मत्पाठकानां सम्मुखवादी सन् अस्माक सकाशे अस्माक प्रत्यक्ष प्रभाससे प्रकर्षेण यथा तथा भाषसे असबद्ध वचन ब्रूषे तस्मादरे एतत् अन्नपान विनश्यतु एतदाहार सटतु पततु अपि परमेतदाहार तुभ्य उपाध्याय प्रतिकूलवादिनेनदद्म १६ तदायक्ष आह [समिइहि मज्झ सुसमाहियस्स गुत्तीहि गुत्तस्स जिइ दियस्स जइमेनदाहित्यइहेसणिज्ज किमज्ज जन्नाणलभित्थलाभ]१७ यदि मे मम इह अस्मिन् यज्ञपाटके एषणीयं शुद्ध आहार अद्य अवसरे न दास्यथ तदा यज्ञानां लाभ पुण्यप्राप्ति रूप फल किं लप्स्यथ अपि तु न किम पीत्यर्थ पात्रदान विना किमपि न फल इत्यर्थं कथभूतस्य मम तिसृभि गुप्तिभिर्गुप्तस्य पुन कीदृशस्य पञ्चभि समितिभि सु अत्यन्त समाहितस्य युक्त

मूल
समिईहिंमज्झ सुसमाहियस्स गुत्तीहिगुत्तस्सजिइ दियस्स । जइमेणदाहित्थ अहेसणिज्ज किमज्ज जन्नाणलभेत्थ

भाषा
अथ तव अन्नपान ए निश्चय तुझने ए अन्नपाणी काइ नही थां तुपरहोजा १६ साधुरुवाच सुमतिभि सुसमाधितस्य यक्ष कहे छे पांचे समते करी समाधिमतो छो गुप्तिभि गुप्तस्य जितेन्द्रियाय अने त्रु विहु गुप्ति करो गुप्त छु पांचे इद्री मे आपणा जीत्या छे यदि मे मम यूय न दास्यथ एषणीय वस्तु जो तुम्हे सूझतो आहार एषणीय सुझने नही यो तदा किमद्य यज्ञानां लाभ लप्सिथ तो ते आज एह यज्ञनु फल स्यु पामस्यो १७ विप्रा प्राहु

स पुनः कोदृशस्य मम जितेन्द्रियस्य जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेन्द्रियस्तस्य अत्र चतुर्थी स्थाने षष्ठी एतादृशाय पात्राय मह्यं चेत् यूयं प्रासुकमाहारं न दास्यथ तदा भवतां सर्वमपि वृथा फलस्य अभावात् १७ अथोपाध्याय आह [के इत्थ खत्ता उवजोइया वा अज्झावया वा सह खंडिएहिं एयंखुदंडेण फलेण हंता कंठंमि चित्तूणखलिज्जतोण] १८ केचित् अत्र अस्मिन् यज्ञपाटके चत्ता चत्रियाः उपज्योतिषः अग्नेः उपसमीपे अग्निसमीपवर्त्तिनः पाका स्थानस्थाः वा अथवा अध्यापकाः वेदपाठका सह इति अध्याहारः कथभूता पाठकाः खंडिकैः छात्रैः सहिताः ये एनं मुंडं दंडेन वंशयष्ट्या फलेन बिल्वा दिना हत्वा कंठ गृहीत्वा गलहस्तं दत्वा खलयेयु इतो यज्ञस्थानान्निःकासयेयु• जोडत्यन्वयः इत्युक्तं तत् प्राकृतत्वात् ये इति वक्तव्यं प्राकृतत्वाद्वचन व्यत्ययः १८ [अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता उद्धाइया तत्थ बहू कुमाराः दण्डेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव समागया तं इसिताडयन्ति] १९ तत्र तस्मिन् यज्ञ

सूत्र

लाभं ॥१७॥ केएत्थखत्ताउवजोइयावा अज्झावयावासहखंडिएहिं। एयंतुदंडेणफलेणहंता कंठंमिघित्तूण खलेज्ज-
जोणं ॥१८॥ अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता उद्धाइयातत्थबहूकुमारा। दंडेहिंवित्तेहिंकसेहिंचेव समागयातंइसिताल

भाषा

कश्चित् अत्र चत्रिया वाथवा उव जोई या अग्निरक्षका ब्राह्मण वीग्या कोई छे रे अत्र चत्रिय अथवा अग्निरक्षक अध्यापकाः सह छात्रैः उपाध्याय इहां कोइ छे छात्र सहित यः एनं निर्ग्रन्थं दण्डे न फलेन हत्वा जे एह जतीने दण्डे करी फल बीजोरा प्रमुखे करी हणीकण्ठं गृहीत्वानि'ःकासयेत् गले झालिने एहने काढी परी १८ अध्यापकानां वचनं श्रुत्वा उपाध्यायनां वचनसांभलीने उद्धापिताः तत्र बहवः कुमाराः मारवा भणी ब्राह्मणना छोकरा घणा दोडा दण्डैः वेत्रैः कसैश्च तर्ज्जनकैचेव निश्चयेन दण्डे करीने ताजणे करीने वाधे करीने समागता सन्त तं मुनिं ताडयन्ति आव्या थका ते

पाटके वहव कुमारा तरुणा छात्रा दण्डेण यष्टिभिर्वेत्रैर्वल्वजै कशैयर्म दवरकैस्त ऋपि ताडयन्ति कोट्यास्ते कुमारा समागता समील्यैकतो भूय आगता अथो क्रीडनक समागत इति रभसत सभूय यथ्यादि सर्व गृहोला समागता इत्यर्थ त मुनि ताडयन्ति कि कृत्वा उपाध्यायाना वचन श्रुत्वा १८ [रन्नो तहिंकोसलि अस्स धूया भद्दत्तिनामेण अणिन्दिय गौतमा सिया सजय हम्ममाण कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ] २० तत कौशलिकस्य राज्ञ धूया इति सुता भद्रावर्त्तते सा भद्रातसा धुस्ते ब्राह्मण कुमारैर्हन्यमान दृष्ट्वा क्रुधान् मारणोद्यतान् कुमारान् प्राह्मयच्छावान् परिनिर्वापयति पश्नैकपगमयति इत्यर्थ कोदृश त साधु सयत प्रथमावस्थायां स्थित कोदृशी सा भद्रा अनिन्दिताङ्गी अनिन्दित अङ्ग यस्या सा अनिन्दिताङ्गी शोभन

सूत्र

यति ।१८। रणोतहिंकोसलियस्सधूया भद्दत्ति नामेणअणिंदियंगी। तपासियासनय हम्ममाण कुद्धेकुमारेपरिनिव्व वेद २० देवाभिओगेणणिओवुएणदिन्नामुरन्नामणसाणज्झाया। णरिंददेविंदभिवंदिएणजेणामिवताइसिणासएसो २१

भाषा

ब्राह्मण यतीने मारे छे १८ तब यक्षे कौशलिक राज्ञ पुत्री ते यज्ञ वाडाने विषे कौसलिक राजानी बेटी मंडिलमाहे बैठीछे भद्रा इति नाम्ना अनिन्दिताङ्गी निर्दोष शरीरा भद्रा एहवे नामे निर्दोष शरीर छे जेहनु त ऋपि दृष्ट्वा दण्डादे हन्यमान तेवोइ भद्राइ यती मार तु दीठो क्रुधान् कुमारान् विनिवारयति देखोने क्रोधसहित जे कुमार तेहने वारे छे २० भो कुमारा देवाभि योगेण देववशेन प्रेरितेन अहो कुमारो देवताने वसि करो प्रेयो यक्षो मम दाता राज्ञा मनसापि न ध्याताराजाइ एह यतीने मुने दीधी पणि मन करी पणी मुझने इछे साधुइ नवांछी नरेन्द्रदेवेन्द्राभि वन्दितेन ए यती किस्या छे रनिवीए देवता इन्द्रे वाद्या छे येन ऋषिणा अह वाता त्यागास्मि स एष मुनि जिणे ऋपि मुझने छाडी ते ए ऋषीश्वर छे २१ एप

शरीरा२० [देवाभि श्रोगेण निश्रोइएणं दिन्ना मुरन्ना मणसा न झाया नरिन्द देविन्दभि वदिएणं जेणामिवन्ताइसिणा सएसो] २१ सा भद्रा किमवादीत् तदाह भो ब्राम्हणा एषः स ऋषिर्वर्त्तते येन ऋषिणा अहम्वांता प्रहन्त्यक्ता कथभूतेन ऋषिणा नरेन्द्र देवेन्द्रादिभिः यन्दितेन कोदृशा अहं राज्ञा दत्ता अस्मै अर्पिता अनेन ऋषिणा अहं राज्ञादीयमानास्मि तदा मनसा पिन ध्याता न अभिलषिता कोदृशेन राज्ञा देवाभिश्रोगेन नियोजितेन देवस्य यत्तस्य अभियोगो बलात्कारो देवाभियोगस्तेन यद्य देवहठेन नियोजितेन प्रेरितेन इत्यर्थः एतादृशो यत्यागो मुनि रस्ति तस्मात् भवद्भिर्न कदर्थ्यः इति भद्रा राजकन्या ब्राम्हणान् अवादीत् २१ पुनः सा किमाह [एसो हुसो उग्गतवो महप्पाजिइन्दिश्रो सञ्जय बंभयारी जोमेतयानेच्छइ दिज्जमाणिं पिउणासयं कोसलिएण रन्ना] २२ हुइति निश्चयेन उपलक्षितो मया एषः उग्रतपा महात्मा वर्त्तते उग्रंतपो यस्य स उग्रतपा महान् प्रशस्य आत्मायस्य स महात्मापुरुष स इतिकः यस्तपस्वी कोशलिकेन पिता मम जनकेन राज्ञा स्वयं आत्मना तदादीयमानां मां न ऐच्छेत् न वाञ्छतिस्म कोदृश एष जितेन्द्रियः पुनः कोदृशः सयतः सप्तदशविध संयमधारो पुनः कोदृशो ब्रम्हचारी ब्रम्हचर्यवान् २२ [महायसो एस महाणुभागो घोरव्वश्रो घोर परक्कमोय माएयंहीलह अहीलणिज्जं मासव्वेते एणभेणिइहिज्जा] २३ पुन एषः साधुर्महायशा वर्त्तते पुनर्महानुभागः अचिन्त्यातिशयः पुनरेष

एसोहुसोउग्गतवो महप्पाजिइंदिश्रो संजश्रोवंभयारी। जोमेतयाणेच्छइ दिज्जमाणिंपिउणा सयंकोसलिएणरन्ना २२॥

निश्चयेन स साधुः उग्रतपाः महर्षिः ते एजसाधू छे उग्रतपस्वो महात्मा जितेन्द्रियः संजतः ब्रम्हचारी किस्यो छे साधु इन्द्री जीपी जीत्या छे संजम पाले छे ब्रम्हचारी छे यः मांपिता दीयमानां न इच्छन्ति जिको यती मुझने देता थका ने पिता स्वयं आत्मना कोशलिकेन राजाम्हारो पिता कोशलिक राजा आपरतो मुझने देता हता पर इणे यतीइ मुझने वांछो नहीं अङ्गिकार कोधी नहीं २२ महायशा एष मुनिर्महानुभाव ए जती महायशनो

घोरव्रती दुर्द्धर महाव्रतधारी पुनर्घोर पराक्रमी रौद्र मनोबल क्रोधादि चतु कषायाणां जये रौद्र सामर्थ्य स्तस्मात् एन मपस्विन माहीलयथ कथम्भूत एन अहीलनीयं अवगणनाय अयोग्य स्तवनार्हं मित्यर्थं एष मे इति भवतो युष्मान् सर्वान् मानिर्द्धाक्षीत् मा भस्मसात् कार्षीत् इति यदा नृपपुत्र्या उक्त तदा यच्च किं अकार्षीदित्याह २३ [एयाइ तीसे वयणाइ सुच्चा पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइ इसिस्सवेया वडि यट्ठयाए जक्खा कुमारे विणिवार यन्ति] २४ यक्षा परिवारसहिता वर्यं वैया वृत्यर्थं कुमारान् ब्राह्मणबालकान् विशेषेण निवारयन्ति किं कृत्वा तस्या सोमदेवस्य यज्ञाधिपस्य पुरो हितस्य पत्न्या भद्राया वचनानि श्रुत्वा कीदृग्यानि वचनानि सुभाषितानि सुष्टुभाषितानि ब्राह्मणेभ्य शिक्षारूपेण प्रकासितानि २४ [ते घोररूवा ठिइ अन्त लिक्खे असुरा तहिन्ना जणतालयन्ति ते भिन्नदेहे रुहिर वमन्ते पासित्तु भद्दाइण माहुभुणो] २५ ते यक्षास्तदा तस्मिन्काले तान् जनान्

मूल

महाजसो एसमहाणुभागो घोरव्वओ घोरपरक्कमोय । माएयहीलह अहीलणिज्ज मासव्वेतेएण भेणिद्दहेज्जा ॥२३॥

एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चापत्तीएभद्दाए सुभासियाइ । इसिस्सवेयावडियट्ठयाए जक्खा कुमारेविणिवारयति ।२४॥

भाषा

भणी महानुभाव छे घोरव्रती घोर पराक्रमय बीजानीयती भथवा नजाइ एहवा व्रतनो पालणहारछे यथा जे बलवत छे मा एन हीलय अहीलनीय अव ज्ञातुमयक्य रेशा भणी एहनीं हीलना मत करो ए साधु अनिन्दनीक छे मा सर्वानपि युष्मान् तेजसा निर्दहेत् रखे तुम्हने सघला एने तपने तेजे करी भस्म करी २१ एतानि तस्या वचनानि श्रुत्वा एहवा वचनसांभलीने सोमदेव पुरोधस पत्नी सुभद्राया सुभाषितानि सोमदेवपुरोहित तेहनी स्त्री भद्रा तेहना भलावचन यंये वैयावृत्य निमित्ता यक्षपतीना वेया वच्चनिमित्त सावधान हुआ वेयावचकरवा लागी यक्षा कुमारान् विनिवारयती यक्ष देवता

टीका — ब्राम्हणान् ताड़यन्ति चपेटादिभिर्घ्नन्ति कीदृशास्ते यचा· घोररूपा पुनः कीदृशास्ते अन्तरिचे आकाशेस्थिताः पुनः कीदृशास्ते आसुराः असुरपरिणाम युक्ताः उग्रेचते असुराइव इत्यर्थः तेहि यस्मिन् यज्ञपाटकेते इतितान् भग्नदेहान् दृष्टा भद्राभूय पुनरपि इदं वचनं आहुरिति आह ब्रूते प्राकृतत्वाद्वचन व्यत्यय तान् किं कुर्वन्तो रुधिरं वमन्तः २५ [गिरिं नखेहिंखणह अयं दन्तेहिं खायह जायवेयं पाएहि हणह जे भिक्खं अवमन्नह] २६ अरे वराका इति अध्याहार यूयं नखैः करजैर्गिरिं पर्वतं खनथइव इह शब्दस्य गहणं सर्वत कर्त्तव्य पुनर्दन्तै रयो लोहं खादथभचयथइव पुनर्जातवेदसं अग्निं पादै र्हनथइव अग्निं चरणैः सर्मयथइव येयूयं भिक्षुं साधुं अवमन्यथ अस्य भिचो रपमानं कुरुथ गिरिलोहाग्नीनां उपमानं अनर्थ फलहेतुत्वात् उक्तं २६

सूत्र — तेघो ररूवाठियअंतलिक्खे असुरातहिं तंजणतालयंति। ते भिन्नदेहे रुहिरंवमंते पासित्तु भद्दाइणमाहुभुज्जो ।२५॥
गिरिंणहेहिंखणह अयं दंतेहिंखायह। जायवेयं पाएहिंहणह जे भिक्खूं अवमन्नह ॥२६॥ आसीविसोउग्गतवोमहेसी

भाषा — ब्राम्हणना कुमरने निवारे छे २४ ते घोर रौद्र वारणधारिण स्थिताः आकाशे ते यच घोररूद करीने आकाशने विषे ऊभा छे यचः तत यज्ञपाटके तत् छात्र लोकां घ्नन्ति यच देवता ते यण ठामे छात्रने मारे ताडे छे तान् वालकान् भिन्नदेहात् ते वालक धरतीइ पद्या छे रुधिर वमता मोढा थकी लोहीनाखे छे दृष्टा भद्रा इदं प्राहुः पुनः इस्यु स्वरूप ब्राम्हण नूं देखी भद्रा बोली २५ पर्वतनखैः खनथ अहो ब्राम्हणो तुम्हे नखे करी पर्वतखणो छो लोहं दन्तैः खादयथ लोह दांते करीने तुम्हे खाओ छो अग्निं पादे हणथ अग्निपगे करीने मर्द्दयावांछो छो ये भिक्षुं यूयं अवमन्यत जे तुम्हे साधने अवगणो छो होलो छो २६ आशीविषलब्धिवन्तः उग्रतपा महर्षिः भद्रा कहे छे एयती आशीविष लब्धिनो धणी छे उग्रतपकरे छे मोटो ऋषीश्वर छे

[भासी विसी उग्गतवो महेसो घोरव्वयो घोर परक्कमोय अगणिव पक्ख दृपयगसेणा जे भिक्खूय भत्तकाले वहेह] २७ पुनर्भद्रा आह भो यूयं इत्यध्या
हार एष तपस्वी आशीविष शापदाने समर्थ आशीविष सर्प उच्यते यथा सर्पं पादादिना अवमन्यमानो मारणायस्यात् तथा अयमपि शापवि
षेण मारयति पुनरयं उग्रतपा महर्षि पुनरसो घोरव्रत पुनर्घोर पराक्रम ये पुनर्यूयं भक्तकाले भोजनकाले भिक्षुकं पूर्वोक्तलक्षण मुनिं वध्यथ यथा
हिंसि ताडयथ ते यूयं पतङ्गसेना शलभसमूहा अग्नि प्रस्कन्दय इव आक्रमथ इत्यर्थः यथा पतङ्गसेना अग्नि वधाय प्रविशमाना म्रियन्ते तथा
यूयं मरिष्यथ इत्यर्थं २७ [सीसेण एय सरणं उवेह समागया सव्वजणेण तुम्हे जइ इच्छह जीवियवा धणं वा लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा] २८ भो
ब्राह्मणा तुम्हे इति यूयं सर्वजनेन सर्वकुटम्बेन समागता सम्मिलिता सन्त एनं तपस्विनं शीर्षेण मस्तकेन शरणं उपेत शिरः प्रणामपूर्वं सर्वेप्यागत्य

घोरव्वओ घोरपरक्कमोय । अगणिव पक्खंदपयंगसेणा जे भिक्खूयभत्तकाले वहेह ॥२७॥ सीसेणएयंसरणं उवेह समा
गयासव्वजणेणतुम्हे । जइ इच्छहजीवियवाधणंवा लोगं पि एसोकुविओडहेज्जा ॥२८॥ अवहेडियपिट्ठि स उत्तमंगे

घोरव्रत घोरपराक्रम घोरव्रत पाले छे घोर पराक्रम छे अग्निमध्ये प्रवेश शलभाना सेनाइव अग्निमाहि पडी जिम पतङ्गी आनी सेनावली भस्म
थुवे तिम तुमने थाजो भस्म करो स्ये यूय भिक्षु भोजनकाले इनथा तुम्हे भोजननी वेलाइ ऋषीश्वरनी पीडा करो छो २७ सीसेण एनं मुनिं शरण प्रप
द्यय मस्तक नमायोने पगे पडी एउनो सरण करो समागता सर्वजनेन यूयं सघला लोक एकठा होईने तुम्हे यदि वांछत यूयं जीवित धन तुम्हे जो
वांछो जीवितव्य अने धनतो तुमे सरण ल्यो मुनिनो लोकमपि एष साधु कुपित सन् भस्मसात् करोति ए साधु कोप्यो थको सघला लोकने भस्मकरस्ये

अय एत्रास्माकं शरणं इत्युक्त्वा अभ्युपागच्छत यदि यूयं जीवित वा अथ धनं इह इच्छथ यतः एष साधुः तपस्वी कुपितः सन् लोकं समस्तं नगरादिकं दहेत् २८ [अवहेडिय पिट्ठि स उत्तमंगे पसारिया बाहु अकम्मचिट्ठे निज्जे रियत्थे रुहिरं वमन्ते उड्ढं मुहे निग्गय जीहनित्ते] २९ [ते पासिया खण्डिय कट्ठभूए विमणो विसिन्नो अहमाहणोसो इसिम्पसाए इस भारियाओ हीलञ्च निन्दञ्च खमाहभन्ते] ३० युग्मं अथानन्तरं स ब्राम्हणः ऋषिं प्रसादयति कीदृशः स ब्राम्हणः स भार्यः पत्नीसहितः सह भार्यया भद्रया सहवर्त्तते इति स भार्यः कथं कथं प्रसादयति तदाह हे भदन्ते हे पूज्य हीलां अस्मत्कृत अपमानञ्च पुनर्निन्दां हास्माभिः भवतां निन्दाकृता तां निन्दां यूयं चमध्वं कीदृशो ब्राम्हणो विमनाः विदूनमनाः पुनः कीदृशो विषिन्नः विषे

सूत्र

पसारियाबाहु अकम्मचिट्ठे । निब्भरियच्छेरुहिरं वमंते उड्ढं मुहेणिग्गयजीहणेत्ते ॥२९॥ तेपासिया खंडियकट्ठभूए विमणोविसन्नो अहमाहणोसो । इसिंपसाएइ सभारियाओ हीलंच णिंदंचखमाहभंते ॥३०॥ वालेहिं मूढेहिं अया •

भाषा

२८ अवहेडिता अधोनामितः पृष्टावधिः मस्तकान् माथा पूठादि साफिया छे मोहडा पुठाने कीधा छे प्रसारितवाहुन् अकर्मचेष्टान् व्यापाररहितान् वाहपसारी छे चेष्टा काइ नथी करता हाथ पग हलावता चलावता नथी प्रसारित नेत्रान् रुधिरं वमन्तः आंखि पसारि छे मुख थकी लोहीनाखे छे उर्द्ध मुखान् निर्गतजिह्वा नेत्रान् मुख उंचा कीधा छे जीभ वाहिर काढी छे नेत्र फाटा छे २९ तान् दृष्ट्वा छात्रान् काष्ठभूतान् ते छात्रने एहवे हवाले पड्या देखीने मनोरहितः विषादप्राप्तः सन् स ब्राम्हणः ते यज्ञनो करावणहारपुरोहित विषाद पाम्यो मन भूंडो होइ गयो हवे स्यु थास्ये ऋषि प्रसन्नं करोति सभार्यां भार्या सहित एवे ते ब्राम्हण भार्यासहित ऋषिने प्रसन्न करे छे अवज्ञां निन्दा चमस्व हे भदंत तुम्हारी हीला कीधी छे निन्दा कीधी

उ॰टीका
प॰१२
२६७

पेण दीन किं कृत्वा तान् खण्डिकान् छात्रान् काष्टभूतान् काष्ठसदृशान् निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा पुनः कीदृशान् तान् अवहेठित पृष्टि स उत्तमांगान् अवहेठितानि पृष्ठ यावत् नामितानि पृष्टे गत्वा लग्नानि सन्ति शोभनानि उत्तमांगानि मस्तकानि येषान्ते अवहेठित पृष्ट स उत्तमांगा स्तान् यथाऽग्न पृष्ट देश सलग्नमस्तकान् पुनः कीदृशान् प्रसारितबाहु कर्मचेष्टान् प्रसारिता प्रलम्बीकृता बाहवो यैस्ते प्रसारितबाहव न विद्यते कर्माणि अग्नि विषये इन्धन घृतादिनिक्षेपणे चेष्टा सामर्थ्यं येषान्ते अकर्मचेष्टा प्रसारित बाहवश्चते अकर्म चेष्टाश्च प्रसारित बाहुकर्म चेष्टा स्तान् बाहुप्रसारणत्वेन दूरे पतितैं धनदर्वीकान् इत्यर्थः पुनः कीदृशान् निर्भेरिताक्षान् निर्भेरितानि प्रसारितानि अक्षीणि यैस्ते निर्भेरिताक्षास्तान् तरलितनेत्रान् पुनस्तान् किं कुर्वत रुधिरं वमत मुखात् रक्त स्रवत पुनः कीदृशान् ऊर्ध्वमुखान् ऊर्ध्ववदनान् पुनः कीदृशान् निर्गतजिह्वा नेत्रान् जिह्वा च नेत्रे च जिह्वा नेत्रे निर्गते जिह्वा नेत्रे येषान्ते निर्गत जिह्वा नेत्रास्तान् ३० अथ स ब्राह्मणो हरिकेश ऋषिं कीदृशैर्वचनैः प्रसादयतितानि वचनान्याह [बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं जहीलियातस्सखमाहभंते महप्पसाया इसिणोहवंति नहुमुणीकोवपराहवंति] ३१ भो पूज्या भो भदंता एभिर्बालै शिशुभिर्मूढैः कषायमोहनीयवशगैर्मूर्खैर्हिताहित विवेकविकलैश्च इति यस्मात् कारणात् यूयं अवहीलिताश्चघर्षिता तस्य इति तस्य अवहीलनस्याप राधममक्ष ऋषयोमहाप्रसादा भवति अतीव निर्मलचेतसो भवन्ति न पुनर्मनय कोपपरायणा भवन्ति मुनय क्षमा वन्तो भवन्ति ३१ तदामुनि

मूल

गाएहिं जहीलियातस्स खमाहभंते। महप्पसाया इसिणोहवंति नहुमुणी कोहपराभवंति ॥३१॥ पुव्विंच इण्हिंच

भाषा

ए हे पूज्य हे भगवंत तु खमि २॰ शिशुभि मूढैरज्ञानै बालके मूढ अज्ञानीये यत् यूय हीलिता पीडिता तस्य क्षमस्व तुम्हने हील्या पीड्या ते खमो हे भदंत महा प्रसन्नचित्ता ऋषयो भवन्ति प्रसन्नचित्त महाप्रसाद वन्तश्री ऋषीश्वर हुवे छे निश्चित मुनय कोपपरानहवन्तीत्यर्थं मुनीश्वर कोपने वशि न

कि अवादीदित्याह [पुव्विंच इन्हिंच अणागयञ्च मणप्पओसो नमी अत्थिकोइ जक्खाहुवेयावडियं] करेन्ति तम्हाहु एएनि हया कुमारा]॥ २२ भो व्राम्हणामेममपूर्वं अतीतकाले च पुनरिन्हिं इदनीं वर्त्तमानकाले च पुन अनागते आगामिनिकालेमन: प्रद्वेषो ना ममनास्ति अतीते काले नासीत् इदानी प्रद्वेषोनास्ति अग्रेपि न भविष्यतीत्यर्थ' कोपि अन्योपिनास्तिहुपुनरर्थे येनयच्चा वैयावृत्य' साधु तर्जकनिवारणं साधुभक्तिं कुर्वन्ति तस्मात् इइति निश्चयेन एते कुमारा. यच्चैर्निहता: २२ अथसर्वे उपाध्यायादयस्तद्गुणा हृष्टचित्ताएवमाहु [अत्थञ्च धम्मञ्च वियाणमाणा तुब्भे नविकुप्पह भूइपन्ना तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो समागया सव्वजणेण अम्हे २३ हे स्वामिन यूयं अपि निश्चयेन कुप्यत कोपं न कुरुत कथंभूता यूयं अर्थं सर्वशास्त्राणां तत्व'

सूत्र

अणागयंच मणप्पओसोणमे अत्थिकोइ। जक्खाहुवेयावडियं करेतितम्हाहु एए णिहया कुमारा ।२२। अत्थंच धम्मंच वियाणमाणा तुब्भे णविकुप्पहभूइपन्ना। तुब्भंतुपाएसरणं उवेमो समागया सव्वजणेण अम्हे ॥२३। अच्चेमुतेराहा

भाषा

होइ क्रोध न करे २१ मुनिरुवाच पुरा पूर्वं इदानींच अनागत काले यती कहेछे पेहेलां हवणां अने आगे पीण मन प्रद्वेषो मम नास्ति कोपि माहरा मनमांहि द्वेष कोइ नथी देवविशेषाहु निश्चयेन वै या वृत्तिं कुर्वन्ति व्राम्हण कहे सामी ए कुमरकिणे पछाड्या यती कहेछे मान भावी यच्च देवविशेष तिनु वीनय वेया वच्चकोधु तस्मात् ह्व निश्चयेन ए ते घातिता कुमारा: तिणे कारणे ए तुम्हाराकुमर देवताइ हण्या माख्या काष्ठभूत कीधा छे २२ अर्थं पुन: धर्मं विजानत: अहो ऋषीश्वर तुम्हे अर्थ धर्मनी गति जाणो छो यूयं नैव कुप्यत: प्राणरक्षण बुद्धियुक्ता तुम्हे कोपमकरो जीवरक्षा करो ए जीव उपरि कृपा करो युष्माकं चरणौ शरण कुर्म्म: वय तुम्हारा पगनो शरण करकुं समागता: सर्वजीवने वयं आइने सर्वपरीवार साथे अम्हे २३ पूजयामो

उ०टीका अ०१२ २१८

■ पुन, धम वस्तूनां स्वभाव अथवा धम दशविध साध्वाचार विजानाना अर्थधर्मप्रज्ञा इत्यर्थ पुन कथभूता यूय भूति सर्वजीवरचा तत्र प्रज्ञा येषां ते भूतिप्रज्ञा तस्मात वय तुभ्य इति युष्माक शरण उपेम उपागता स्म प्राप्ता स्म अस्मे शब्दे न वयमिति ज्ञेय कीदृशा यूय सर्वजनेन समागता सर्व कुटम्बपरिवारेण समागता मिलिता ३३ [अच्चेमुते महाभागा नतेकिंचिन अच्चिमो भुजाहि सालिम कूर नाणावजण सजुय] ३४ हे महाभाग ते तव मय अपि अर्चयाम ते तव सर्वमपि शावयाम ते तव वय किमपि चरणधूलि अपि न अर्चयाम के वय ये त्वां अर्चयाम त्व तु देवाना पूजार्ह वय तव का पूजा कुर्म एतादृशी का मूजास्ति या तव योग्या परन्तु वय दासभाव कुर्म इत्यर्थ सालिम इति शालिमय सम्यग् जातिशुद्ध शालिनिष्पन्न कूर त दुलभोज्य भु जाहि भु च कथभूत कूर नानाव्यञ्जनस युत बहुविधे व्यंञ्जनैर्दध्यादिभि सहित३४ [इम च मे अत्थिपभूयमन्न त भजसु अम्ह अणुग्ग

सूत्र

भागा नतेकिंचिणअच्चिमो। भुंजाहिसालिमकूर णाणावजण सजुय ॥३४॥ इमचमे अत्थिपभूयमन्न तभुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा। वाढति पडिच्छइभत्तपाण मासस्सऊपारणए महप्पा ॥३५॥ तहिय गंधोदय पुप्फवास दिव्वातहि वसु

भाषा

वयं तव हे महानुभागा पूजा कां तुम्हने न कि पी अर्चते भूख्य श्रहाथ शालिनिष्पन्न कूर सामी जीणचोखानोपना के सालनो नीपनो के ए कूर नाना विध विजनसयुक्त विधि विधिनां सालणा सहित एचावल जिमो ३४ इद च मम प्रभूत प्रचूर खड खाद्य ए अम्हारे अन्न पकवान घणो इके तदस्मद्दाण अणाक प्रसाद करणाय ए आहार तुम्हे जोमो अम्ह उपरि कृपा करोने ततो मुनि वाढ एवमस्तु इत्युक्त्वा गृह्णाति भक्तपान तिवारे यती घणो आग्रह देखीने भातपाणीं लिइ विहरे मासोपवासस्य पारणे महात्मा मुनि मास खमणने पारणे माहात्मा ३५ तदा दानावसरे गन्धोदक पुष्पाव हष्टि जीता

हट्टा वाढंति पड़िच्छइ भत्तपाणं मासस्सओपारणए महप्पा] ३५ हे स्वामिन् मे मम इदं प्रत्यक्ष खंडमंडकादिकं अन्नं प्रभूत वर्त्तते प्रचुर वर्त्तते पूर्वमपि शालमयं क्रूरं ग्रहणं कृतं अत्र च पुनरन्नग्रहणं तत्सर्वान्न प्राधान्य ख्यापनार्थं तद्भोज्यं भंक्ष इति ब्राह्मणे· प्रोक्ते सति मुनि प्राह बाढं इत्युक्त्वा तथास्तु वाढ शब्दोंगीकारे एवं एव करोमि गृह्णोयामीत्युक्त्वा साधुर्मासस्यपारणके भक्तपान आहारपानीयं प्रतीच्छति अङ्गीकरोति कथम्भूत स मुनिर्म हात्मा महान् निर्मलो नि कषाय आत्मायस्य स महात्मा महापुरुष ३५ [तहियं गन्धोदय पुष्फवासं दिव्वा तहिं वसुहारायवुट्ठा पहयाओ दुंदुहिओसु रेहिं आगासे अहोदाणं चघुट्ठं] ३६ तहिं तस्मिन् यज्ञपाटकेमुनिना आहारे गृहीते सति गन्धोदक पुष्पवर्षमभूदिति शेष· सुगन्धपानीय कुसुमवर्षा आसन् इत्यर्थः च पुनस्तस्मिन् स्थाने दिव्या प्रधानादेवैः कृतावसुधारा वृष्टा स्वर्णदीनाराणां वृष्टिरभूत् वसु द्रव्यं तस्य धारा सतत पातजनिता वसुधारा सा वृष्टा देवै पातिता इत्यर्थः तु पुनः आकाशे सुरै दुन्दुभय प्रहता देवैः आकाशे वादित्राणि वादितानि च पुन आकाशे अहोदानं २ इति घुष्टं देवै· शब्दितं ३६ तदा च द्विजा विस्मिता किमाहुः तत् आह [सक्खं खुदी स दूतवो विसेसो नदो सई जाइ विसेस कोइ सो वागपुत्तं हरिएससाहुं जस्से रिसा इड्ढि महाणुभागा] ३७ खुइति निश्चयेन तपोविशेषः साक्षात् दृश्यते जातिविशेषः कोपि न दृश्यते तपो माहात्म्यं दृश्यते जातिमाहात्म्यं किमपि न दृश्यते श्वपाकपुत्रं चांण्डालपुत्रं तं हरिकेश साधुं पश्यत इति शेष तं इति किं यस्य हरिकेशस्य साधोः एतादृशी सर्वजनप्रसिद्धा ऋद्धिर्वर्त्तते देव

सूत्र

हाराय वुट्ठा । पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं आगासे अहो दाणंचघुट्ठं ।३६। सक्खं खुदीसइ तवोविसेसो नदीसईजाइ

भाषा

यतीने आहार लेतां थकां सुरभी पांणी फूलनो वृष्टिहुई तस्मिन् समये द्रव्य वृष्टिः कृता देवैः तेह समे देवताइं द्रव्यनी वर्षा कीधी वादिता वाजित्र विशेषाः देवैः देवता ए देव दुंदुभी वजाडी आकाशे अहो दानमपि घोषितं आकाशने विषे अहो दानमहो दानं इसी घोषणा कीधी ३६ साक्षात्

साक्षात् रूपा सपत्पृवत्त ते कीदृशो ऋद्धिर्महानुभागा महान् अनुभागो अतिशयो यस्या सा महानुभागा महा माहात्म्यसहिता इत्यर्थं ३७ अथ मुनिस्तान् ब्राम्हणान् उपशान्तिमिथ्यात्वान् दृष्टा धर्मोपदेशमाह [कि माहणा जोइसमारभता उदएणसोहि बहियाविमग्गह जमग्गहा बाहिरिय विसोहि मत सुदिठ्ठ कुसलावयति] ३८ किमिति प्रश्नेऽधिक्षेपे भो ब्राम्हणा यूय शृणुत ज्योति अग्नि समारभन्त अग्नीनां समारभ कुर्वन्त कि ब्राम्हणा भवन्ति अपितु न भवन्ति भो ब्राम्हणा उदकेन शोधि कुर्वतो बाह्य शुद्धि विमार्गयथ जानीथ याग कुर्वन्त स्नान कुर्वन्तश्च ब्राम्हणा न भवन्तीत्यर्थं या याग स्नानादिका बाह्या विशुद्धि विमार्गयथ विचारयथ ता बाह्या विशुद्धि कुशला ज्ञाततत्त्वा सुदृष्ट सम्यग दृष्ट न वदन्ति यत् यज्ञादौ अग्नीना तेज

विसेस कोइ। सोवागपुत्ते हरिएस साहु जस्सेरिसा इड्डिमहाणुभागा ॥३७॥ कि माहणा जोइ समारभता उदएण सोहि बहियावि मग्गहा। ज मग्गहा बाहिरिय विसोहि न त सुदिठ्ठ कुसला वयति॥३८॥ कुसचजव तणकट्ठमग्गि

प्रत्यक्ष दृश्यते तपो विशेष साक्षात् प्रत्यक्ष ए तपनो महीमा दीसे छे न दृश्यते जाति विशेष कोपी जातिनोविशेषतो कोइ दीसतो नथी चण्डालपुत्र हरिकेशी साधु चण्डाल रो बेटो हरिकेशी साधु यस्य साधोरीदृशो देवसान्निध्य सम्पत्सातिशयमहाप्रभावा जे हरी एहवो ऋषि महाप्रभावक ३७ ब्राम्हणा योतिरग्निस्त समारम्भमाना जाग कुर्वंत ब्राम्हण अग्निपूजे याग करे सात पीढी इक वीस पीढी ताइ अग्निराखे जलेन शुद्धि निर्मलता बाह्या विमार्गयन् गवेषयन् यथा जने करीने बाहिरली शुद्धि वाछो छो यन्मार्गयथा बाह्य विशुद्धि तुम्हे ब्राम्हणो बाहिरली शुद्धि वाछो छो न तत् रम्य तत्त्वज्ञा कुशला वयति ते स्नान पाणीनो शुद्धितत्त्वना जाण मलीन कहे ३८ दर्भ पुन यज्ञस्तम्भ तृण काष्ठ अग्निकारी छो सन्ध्याया प्रभाते उदक स्पृशतो सन्ध्या

स्नायस्थजीवानां विराधना अथ च स्नानादौ अप्कायस्य जीवानां विराधनाविशुद्ध्यर्थं विधीयते तत् तत्वज्ञैर्न सम्यक् दृष्टं सम्यग् न कथितमित्यर्थः यदुक्तं स्नानं मनोमलत्यागी यागश्चेन्द्रियरोधनं अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः इति ३८ [कुसंच जूवंतणकट्ठमग्गिं सायंच पायं उदयं फुसन्ता पाणाइं भूयाइं विहेडयंता भुज्जो विमंदापकरेह पावं] ३९ भो ब्राह्मणाः मन्दा यूयं भूयोपि पुनरपि शुद्धिकरणप्रस्तावेपि पापं प्रकुरुथ पूर्वमपि संसारकार्यकरण प्रस्तावे आरंभं कृत्वा प्राणान् भूतानि विनाश्य पातकमुपार्जितं पुनर्धर्म करणप्रस्तावे तदेव क्रियते इत्यर्थं किं कुर्वन्तः कुशं दर्भं यूपं यज्ञस्तम्भं तृणं वीरणादिनडादिकं काष्ठं शमीवृक्षस्येन्धनं अग्निं च एतत्सर्वं प्रतिगृह्णत एतत्सायं सन्ध्याकाले च पुनः प्रातः प्रभाते उदकं पानीयं स्पृशन्तः आचमनं कुर्वन्तः अतएव प्राणान् द्वीन्द्रियचतुरिन्द्रियान् भूतान् तरून् पृथिव्यादीन् अपि तदाधारभूतान् विहेटयंतः विशेषेण हिंसन्त इत्यर्थः एतेषां एव प्राणभूतसत्वानां विराधनेन हिंसा भवति पुनरेतेषामेव शुद्धिकरणकालेऽपि विराधना विधीयते कुतोऽस्माकं शुद्धिर्भविता इति न जानन्ति अतएव मन्दा मूर्खाः यत उक्तं दृष्टिपूर्वं चरेन्मार्गं वस्त्रपूतं पिवेज्जलं ज्ञानपूतं सजेद्धर्मं सत्यपूतं वदेद्वचः ३९ अथ प्रत्युत्पन्नशङ्कास्ते ब्राह्मणाधर्मं पप्रच्छुः [कहं चरे भिक्खु वयं जयामोपावाइं कम्माइं पणुल्लयामो अक्खाहिणो संजयजक्खपूइया कहं सुजुट्ठं कुसलावयति] ४० हे भिक्षो वयं कथं चरेमहि कस्यां क्रियायां प्रवर्त्तेमहि हे भिक्षो पुनर्वयं कथं ययामो यागं कुर्मः पुनर्वयं पापानि पापहेतूनि कर्माणि पणुल्लयाम प्रणुदामः प्रकर्षेण स्फोटयामः हे यक्ष पूजित हे संयतेन्द्रिय कुशलाः धर्म

सूत्र · सायंच पायं उदयं फुसंता। पाणाइं भूयाइं विहेडयंता भुज्जोवि मंदा पकरेह पावं ॥३९॥ कहंचरे भिक्खु वयं

भाषा समय प्रभात समय पाणीने फरसो छो प्राणान् द्वीन्द्रियादीन् भूतान् पृथ्व्यादीन् विहेडयत बेंद्रियादिक जीव पृथ्व्यादिक एकेन्द्रि जीवते धर्म बुद्धे करी तुम्हे मारो छो पुनरपि पापसञ्चयं कुरुथ मूर्खाः आगे पाप करीने मूर्ख आत्माने घणु मैलो करो छो ३९ अथ विप्राः प्राहुः हे भिक्षुः वयं कथं चरामो

उ०टीका
प०१२
१७१

मर्मज्ञा विद्वांस कथ केन प्रकारेण सुजुट्ठं इति सुष्टु शोभन इष्ट स्विष्ट शोभनयजन वदन्ति तत् शोभनयज्ञ नोऽस्मान् आख्याहि कथयेत्यर्थं ४० पञ्च मुनिराह [छज्जीवकाए असमारभंता मोस अदत्त च असेवमाणा परिग्गह इत्थिओ माणमाय एय परिन्नाय चरति दंता] ४१ पूर्वं ब्राम्हणैरय प्रश्नो विहित कथ वय प्रवर्त्तमहि तस्योत्तर भो ब्राम्हणा दान्ता जितेन्द्रिया एतत पूर्व्वोक्त पापहेतुक परिज्ञाय चरन्ति प्रवर्त्तन्ते साधवो ज्ञ परिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यान परिज्ञया आरभान्निवर्त्तन्ते इति भाव दान्ता कि कुर्वाणा षट जीवकायान् असमारभमाणा अनुपमर्दयन्त पुनर्म्मृषावाद च पुनरदत्त असेवमाना पुन परिग्रह उपकरणमूर्च्छा सचित्ता चित्तद्रव्य ग्रहणरचणात्मक पुनस्त्रीतुपुनर्मान अभिमान पुनमाय परवञ्चनात्मिका असेवमाना मान

मूल

जयामो पावाइ कम्माइ पुणोजयामो। अक्खाहिणेसजयजक्खपूइयाकह सुजट्ठ कुसला वयति ॥४०॥ छज्जीवकाए • असमारभ ता मोस अदत्त च असेवमाणा। परिग्गह इत्थिउ माणमाय एय परिन्नाय चरेज्जदंता ॥४१॥ सुसवुडा

भाषा

हिवे ब्राम्हण कहे छे हे भिक्षु अम्हे किमवालु केहवी करणी करु पाप कर्माणि प्रेरयाम जिणी क्रियाइ करोने पाप कर्म दूर करे अध्यापयकथयनो अस्माक भो सयत यक्ष पूनीत अम्हने कहो अहो साधु यक्ष पूजित कथ सुष्टु यज्ञ तत्वज्ञा वदन्ति भलो यज्ञ पण्डित किस्यो कहे छे ४० षट्जीवनिकायान् अविनासयन्ति ■ जीवनिकायनी रक्षा करे जीव मारे नही मृषावाद अदत्तञ्च असेवमाना मृषावादबोले नही अदत्ता दान साध लीये नही परिग्रह स्त्रिय मानञ्च मायाञ्च परिग्रहस्त्री मान माया रहित एतानि त्यक्त्वा चरन्ति दंता दमनेन्द्रिया क्रोध मान माया लोभ छाडीने विचरे दान इन्द्रिय जिपे दम्या छे आपणा ४१ सुसवृत पञ्चभि सम्वरै प्राणवधविरमणादिभि पाचें आश्रय जिपे रुध्या छे इह ससारे जीवितमपि अनभि ■पत

माययोः सहकारित्वेन क्रोधलोभयोरपि त्यागो ज्ञेयः एतान् सर्वान् पापहेतून् ज्ञात्वा पुनस्त्यक्त्वा साधवो यतनया चरन्ति अतो भवद्भिरपि एवं चरितव्य मित्यर्थः ४१ अथ द्वितीयप्रश्नस्य कथं यजाम इत्यस्य उत्तरमाह [सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं इह जीवियं अणवकंखमाणा वो सट्ठकायासुइचत्तदेहा महा जयं जयई जन्न सिट्ठं] ४२ भो ब्राह्मणा पञ्चभिः सम्वरैः हिंसा मृषाअदत्त मैथुनपरिग्रह विरमणैः सुसम्वृताः सुतरां अतिशयेन संवृता आच्छादिता अवः निरुद्ध पापागमनद्वाराः सुसंवृताः संयमिनः जन्नसिट्ठं यज्ञश्रेष्ठं जयन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः यज्ञेषु श्रेष्ठो यज्ञश्रेष्ठस्तं अथवा श्रेष्ठो यज्ञः श्रेष्ठयज्ञस्तं प्राकृतत्वात् यज्ञश्रेष्ठं इतिज्ञेयं कीदृशं श्रेष्ठयज्ञं महाजयं महान् जयः कर्मारीणां विनाशो यस्मिन् स महाजयस्तं कीदृशाः सुसंवृताः इहास्मिन् मनुष्य जन्मनि जीवित प्रस्तावादसंयमजीवितव्य अनवकांक्षमाणाः असंयम अनीप्संत इत्यर्थः पुनः कीदृशाः सुसंवृताः व्युत्सृष्टदेहाः विशेषेणपरीषहोपसर्गसहने उत्सृष्ट कल्पितः कायो यैस्ते व्युत्सृष्टदेहाः पुनः कीदृशाः शुचयो निर्मलव्रताः पुनः कीदृशाः त्यक्तदेहाः त्यक्तो निर्ममत्वेन परिचर्याभावेन अवगणितो देहो यैस्ते त्यक्तदेहाः एतादृशाः साधवस्तिष्टं यज्ञं कुर्वन्ति एष एव कर्मप्रस्फोटनोपाय इत्युक्तं ततो भवस्तोप्येवं यजतामिति भावः यजमानस्य कान्युप कारणानि इति पुनर्ब्राह्मणाः पृच्छन्तिस्म ४२ [कितेजोई केवतेजोइठाणं कातेसुया किंचते कारिसंगं पहायते कयरासंति भिक्खू कयरेण होमेण हुणासि

पंचहिं संवरेहिं इह जीवियं अणवकं खमाणा। वोसट्टकायासुइचत्त देहा महाजयं जयइ जन्नसिट्ठं ।४२। कितेजोई

अवाञ्छत· इह ससार मांहि जीवितव्यनीवांछा पणिनकरे जे हुं घणा दिन जीवु इम न वांछे व्युत्सृष्टकाया निरतिचारदेहो त्यक्तदेहा शुश्रूषा भावात् देही आपणो जेणे वोसिरावो छे अतीचारकोइ नलगाडे ईदृशं मुनयो महायज्ञं कर्मजयरूपं यज्ञं यजति कुर्वंति यज्ञं श्रेष्ठं साधु भगवंत श्रेष्ठ उत्तम इस्यो यज्ञ करे ४२ कः तवाग्निः किं तव ज्योतिः स्थानं कुंडंब्राह्मण कहे छे अहो साधु तुम्हारे अग्नि केहवो छे अने

अ०टीका
अ १२
१७५

जोइ] ४३ हे मुने ते तव किं ज्योति कोऽग्नि किं पुनस्ते तवज्योति स्थानं अग्निस्थानं अग्नि कुंड किमस्ति ते तव कापुन स्रुचोघृतादिप्रक्षेप कारस्त्यं च पुन स्ते तव करीषाग्र्यमग्न्युद्दीपनकारणं किमस्ति विध्याप्यमानोग्निर्येन उद्दीप्यते सन्धुक्ष्यते तत्करीषा गमय किं विद्यते च पुन एधा कतरा का समिध याभिरग्नि प्रज्वाल्यते ता का सन्ति च पुन शान्तिर्दुरितोपशमहेतु रध्ययनपद्धति सावकतराकास्ति हे भिक्षो ल कतरेण इति केन होमेन हवन विधिज्योति रग्निं जुहोषि अग्निं प्रीणयसि षट्जीवनिकायविराधनाविनाहि यज्ञो न स्यात् हे भिक्षो भवता षट् जीवनिकायविराधनानुपूर्वं निषिद्धा अतो मुनिते ब्राह्मणा यज्ञ यज्ञोपकरणसामग्रीं च पृच्छ ४३ अथ मुनिर्मुनिर्योग्य यज्ञमाह [तवोजोई जीवोजोइ ठाणं जोगासु या सरीरं कारिसङ्ग

सूत्र

केवते जोइठाणा कातेसुया किंचते कारिसंग । एहायते कयरासंति भिक्खू कयरेण होमेण हुणासि जोइं ।४३। •

तवो जोई जीवो जोइ ठाणं जोगोसुया सरीरं कारिसंग । कम्म एहासंजमजोग संती होमं हुणामीइसिणं पसत्थं ।४४

भाषा

तुम्हारे अग्निनु स्थानक केहवु छे का तव चाटु कार्वीकि घृतादिप्रक्षेपणपात्र अग्निदीपनकारण काठ किस्यो तुम्हारे अग्निमांहि घृतवालवानो चाटुओ छे भिक्षो तवइ धनानि कानि सन्ति भलो साधु तुम्हारे इधणकेहवा छे केन होमेन हवनं करोषि किसे होमि करोने अग्निने होमो छो ४३ साधोवाच तपो ज्योति जीवो ज्योति स्थानं कुण्ड तपो ज्योति कह्यो जीव ज्योति नु स्थानक कह्यो मनोयोगादय सुधा घृतक्षेपणपात्राणि शरीरं तपो उद्दीपकत्वात् करीष मनोयोगवचन योग सुय कहता चोपालणरापात्र शरीरइ तो तप कीजे ते करीष कह्यो जे कर्माणि इधनरूपाणि संयमयोगरूपा शान्ति आठकर्म रूपइ धण संयमरूपयोग शान्ति ईदृश होमं करोमि ऋषीणां प्रशस्त ऋषि कहे छे एहवो होमइ करु छु ए रिषीश्वरने प्रशस्त कह्यो छे ४४ क तव

कम्म पहा संयम जोगसन्ती होमं हुणामि इसिणं पसत्थं]४४ भो ब्राम्हणा अस्माकं तपोज्योतिः तपः अग्निरस्ति कर्मेन्धनदाहकत्वात् द्वादशविधं हि तप सकल कर्मकाष्ठानि प्रज्वालयति जीवोज्योतिः स्थानं जीवोऽग्निकुण्डं तपसः आधारत्वात् मनोवाक्काय योगास्ते शुचोदर्व्योक्रिया: मनोवाक्काय योगैः शुभ व्यापाराः घृतस्थानीया स्तपोग्नि प्रज्वलन हेतवो वर्त्तन्ते शरीरं करीषांगं तेनैव शरीरेण ततोग्निर्दीप्यते शरीरसाहाय्येन तप स्यादित्यर्थः शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधन मित्युक्तं कर्माणि एधाइन्धनानि कर्मेन्धनानि तपोग्नि प्रज्वालयन्ति मह्हा दुष्टकर्मकारिणोपि तपसा निर्मलाः संजाताः संयमजोगः शान्तिः संयमस्य सप्तदशविधस्य योग सम्बन्धः स शान्ति सर्वजीवानां उपद्रव निवारकत्वात् अनेन होमेन अहं तपोग्नि जुहोमि कथम्भूतेन होमेन ऋषीणां प्रशस्तेन मुनीनां योग्येन साधवोहि एतादृशं यज्ञं कुर्वन्ति न अपरे एतादृशं कर्तुं समर्था भवन्ति ४४ यज्ञस्वरूपं तु साधुनोक्तं अथ ब्राम्हणा स्नानस्वरूपं पृच्छन्ति [केते हरए केयते सन्तितित्थे कहिंसिण्हाओ वरयं जहासि आयक्खणो सञ्जय जक्ख पूइया इच्छामुनाउं भवओ सगासे] ४५ हे ऋषे यक्षपूजितत्वं नः अस्मान् आचक्ष्वब्रूहि वयं भवत सकाशात् स्नातुं इच्छामः हे मुने ते तवको ह्रदः कः स्नानकरणयोग्य जलाधारः किं पुन तव शान्ति तीर्थं शान्त्यै पापशान्ति निमित्तं तीर्थं शान्ति तीर्थं पुण्यक्षेत्रं यस्मिन् तीर्थे दानादि बीजगुप्तं पातकशमनं पुण्योपार्जकञ्च स्यात् कुरुक्षेत्रादिसदृशं

सूत्र

केतेहरए केयतेसंतितित्थे कहिंसिण्हाओ वरयंजहासि। आइक्खणो संजयजक्खपूइयाइच्छामुणाउं भवओ

भाषा

ह्रदः क तव पापोपशमनाय तीर्थं कोण तुम्हारे द्रहः कवण तुम्हारे पाप दूरकरवानुं तीर्थकवण तुम्हारे कुत स्नानः त्वं रजः कर्ममलं जहासि किहां स्नान कीधां कर्मरूपमेलटले कथयनो अस्माकं भो संयत यक्षपूजित कहे अम्हने साधु यक्षे पूजित वाञ्छामि तव समीपे स्नातुं वांछुं ताहरे पासे जाणवाने ४५ धर्मरूपी द्रहः ब्रम्हरूपं शान्ति तीर्थं धर्मरूपद्रह ब्रम्हज्ञान शांति तीर्थ निर्मलमलरहितं आत्मा जीव भली लेश्या तेहने विषे यत्र स्नातः

कि तीर्थं वर्त्तते पुनर्हेमुने त्वस्मिन् स्थाने स्नात सन् रज कर्ममल जहासित्यजसि त्व निर्मलो भवसि एतत् सर्वेषां प्रश्नाना उत्तरम्वद इत्यर्थ ४५ इति पृष्टे मुनिराह [धम्मे हरएवम्भे सन्ति तित्थे अणाविले अत्तपसन्नलेसे जहिसिन्हाओ विमलो विसुद्धो सुसीय भूओपजहामिदोस] ४६ भो ब्राम्हणा धर्मोहिंसा विरमणोदया विणयमूलो ह्रदो वर्त्तते कर्ममलापहारकत्वात् ब्रम्हचर्यं मैथुनत्याग शान्तितीर्थं तस्य तीर्थस्य सेवनात् सर्वपाप मूल राग द्वेषौ निवारितौ एव यदुक्त ब्रम्हचर्येण सत्येन तपसा सयमेन च मातङ्गर्षिगत शुद्धिं न शुद्धि स्तीर्थयात्रया १ कीदृशे ब्रम्हचर्यतीर्थे अनाविले निर्मले पुन कीदृशे ब्रम्हचर्यं तीर्थे आत्मप्रसन्नलेश्ये आत्मन प्रसन्ना निर्मलत्व कारण लेश्या यस्मिन् स आत्मप्रसन्न लेश्य स्तस्मिन् आत्मनिर्मलत्वकारण तेज पद्म शुक्लादि लेश्यात्रयस्तेन सहिते इत्यर्थ यत्र यस्मिन् ब्रम्हचर्यं तीर्थे स्नात अह विमलोभाव मलरहितो विशुद्धोगत कलङ्क सुशीतीभूत रागद्वेषादि रहित सन् दोष कर्मज्ञानावरणीयादिक अष्टप्रकारक प्रकर्षेणजहामित्यजामि४६ [एयसिणाण कुसलेहि दिट्ठ महासिणाण इसिण पसत्थ जहिसिण्हाया विमला विसुद्धा महारिसी उत्तमठाण पत्तित्तिबेमि] ४७ पूर्व उक्त कर्मरजो विनाशक स्नान तस्योत्तरमाह भो ब्राम्हणा कुशलैस्तत्वज्ञै केवलिभि एतत्

सणासे ॥४५॥ धम्मे हरए बम्भे सति तित्थे अणाविले अत्तपसन्नलेसे। जहि सिणहाओ विमलो विसुद्धो सुसीइ भूयोपजहामिदोस ॥४६॥ एय सिणाण कुसलेहि दिट्ठ महासिणाण इसिण पसत्थ। जहि सिन्हाया विमला

विमलोनिर्मलो विशेषेण शुद्ध स्नान कीधू थकोनिर्मल हुइ विशेषे करीशुद्ध हुइ अतिशयेन शीतीभूतो दोष त्यजामी अतिसीतलहुओयकोसर्वदोष छांडा लडा ४६ एतत्स्नान कुशले कथित ए स्नान कुशले पण्डिते कह्यु उत्तमस्नान ऋषीणा प्रशस्त उत्तम स्नान ए ऋषिने भलो कह्यो यत्र स्नाता विमला

स्नानं दृष्टं परेभ्यश्च प्रोक्तं कथम्भूतं एतत् स्नानं महास्नानं सर्वेषु स्नानेषु उत्तमं पुनः कीदृशं तत् स्नानं ऋषीणां प्रशस्तं मुनीनां योग्यं येन स्नानेन स्नाताः छतग्रीवा विमलाः कर्ममलरहिताः अतएव विशुद्धाः निःकलङ्का महर्षयो मुनीश्वराः उत्तमं प्रधानं स्थानं अर्थात् मोक्षस्थानं प्राप्ताः इति अहं ब्रवीमि जम्बूस्वामिनं प्रति श्री सुधर्म्मास्वामी प्राह इति हरिकेशीयं अध्ययनं द्वादशं सम्पूर्णं १२ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपीकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचितायां हरिकेशीयाध्ययन स्यार्थः सम्पूर्णं १२ अथ त्रयोदशमध्ययनमारभ्यते तप कुर्वता पुरुषेण निदानं न कार्यं इत्याह । इति द्वादश त्रयोदशयोः सम्बन्धः चित्रसम्भूत साध्वी सम्बन्धमाह साकेतनगरे चन्द्रावतंशकस्य राज्ञः पुत्रो मुनिचन्द्रनामा बभूव स च निवृत्त काम भोग तृष्णः सागरचन्द्रस्य मुने समीपे प्रव्रजितः गुरुभिः समं विहरन्नन्यदा एकस्मिन् ग्रामे प्रविष्टः सार्थेन सह सर्वेपि साधवश्चलिताः सार्थ भ्रष्टोसावटव्यां पतितः तत्र चत्वारो गोपाल दारकास्तं क्षुत्तृषाक्रान्तं पश्यन्ति शुद्धे रशनादिभिः प्रतिजागरति यतिना तेषां पुरोदेशनाकृताः ते गोपाल दारकाः प्रतिबुद्धास्तदन्तिके प्रव्रज्यां गृहीतवन्तः ते सर्वैः शुद्धादीक्षा पालिता द्वाभ्यां तु दीक्षापालितैव परं मलक्लिन्नवस्त्रादि जुगुप्सा कृता ते चत्वारोपि देवलोकं गताः तत्र जुगुप्साकारको द्वौदेवलोकच्युतौ दशपुरे नगरे सांडिल्य ब्राह्मणस्य यशोमत्या दास्याः पुत्रत्वेनोत्पन्नौ युग्मजातौ बभूवतुः अतिक्रान्त बालभावौ तौ यौवनं प्राप्तौ अन्यदा क्षेत्ररक्षणार्थं तौ अटव्यां गतौ रात्रौ वटपादपाधः सुप्तौ तत्रैको दारको वटकोटराद्विर्गतेन सर्पेण दृष्टः द्वितीयः

सूत्र

विसुद्धा महारिसी उत्तमठाणं पत्तेत्तिबेमि ।४७। इति हरिएसज्झयणं सम्मत्तं ॥१२॥

भाषा

निर्मला जेहने विषे स्नान कीधा थकी निर्मल हुआ शुद्ध हुया थका महामुनि यः उत्तमं स्थानं प्राप्त इति ब्रवीमि मोटी साधु उत्तम स्थानकने विषे प्राप्त हुया मुक्ति गया एहवुं कहे सुधर्मा स्वामी ४७. इति हरिकेशी अध्ययन संपूर्णम् द्वादशमध्ययनप्ररूपीतः सम्पूर्णम् ॥१२॥ त्रयोदशम अध्ययन प्राह १

सर्पोपलम्भनिमित्तं भ्रमन् तेनैव सर्पेण दृष्टस्ततो द्वावपि मृतौ कालिंजरपर्वते मृगी कुचौ समुत्पन्नौ युग्मजातौ मृगौ जातौ कालक्रमेण तौ द्वौ मात्रा सम
भ्रमन्तौ एकेन व्याधेन एकशरेणैव हतौ मृतौ ततो द्वावपि मृतौ गङ्गातीरे एकस्या राजहंस्या कुचौ समुत्पन्नौ जातौ क्रमेण हंसौ मात्रा सम भ्रमन्तौ
एकेन मत्स्यबन्धकेन गृहीतौ मारितौ च ततो वाराणस्यां नगर्यां महर्द्धिकस्य भूतदिन्नाभिधस्य चाण्डालस्य पुत्रत्वेन समुत्पन्नौ क्रमेण जातयोस्तयो चित्र
सम्भूतनामकृत तौ चित्रसम्भूतौ मिथ प्रीतिपरौ जातौ इतश्च तस्मिन्नवसरे वाराणस्यां नगर्यां शङ्खनामा राजा तस्य नमुचिनामा मन्त्री अन्यदा स्य
किञ्चित् दूषण जात कुपितेन राज्ञा सबधाय भूतदिन्न चण्डालस्य दत्त भूतदिन्नचण्डालेन तस्यैवमुक्त भो मन्त्रिन् त्वामह रक्षामि यदि मद्गृहे शान्तभूमिं
गृहस्थितो मत्पुत्रौ पाठयसि जीवितार्थिना तेन तत् प्रतिपन्न भूमिगृहस्थ सचित्र सम्भूतौ पाठयति चित्रसम्भूतमाता तु मन्त्रिपरिचर्यां कुरुते मन्त्री तु
तस्यामेव व्यासक्तो भूत् निजपत्नी व्यभिचारि चरित चाण्डालेन ज्ञात नमुचिमारणोपायस्तेन चिन्तित पितुरध्यवसाय ताभ्यां ज्ञात उपकार प्रीतिरताभ्यां
स नमुचि नाशित ततो नष्ट स क्रमेण हस्तिनागपुरे सनत्कुमारचक्रिणो मन्त्री जात इतश्च ताभ्यां मातङ्गदारकाभ्यां चित्र सम्भूताभ्यां रूपयौवनलावण्य
नृत्यगीतकलाभि र्वाणारसी नगरी जन प्रकाम चमत्कार प्रापित अन्यदा तत्र मदनमहोत्सवो जात सर्वेषु लोकेषु गीतनृत्यवादित्रादिविनोदप्रवृत्तेषु
सत्सु तौ मातङ्गदारकौ वाराणसीनगर्यां त समागत्य सर्वा स्वकला दर्शयितु प्रवृत्तौ तयो र्विशेषकलाचमत्कृता लोकास्तयोःप्रमुखा समीपे गता
एकाकारो जात अस्पृश्य स्पृश्यादिक न जानन्ति सर्वेपि लोकास्तन्मयतां गता ततश्चतुर्वेदविद्भिर्ब्राह्मणै र्नगर स्वामिन एव विज्ञप्त राजन् ताभ्यां चित्रसम्भू
ताभ्यां चण्डालाभ्यां सर्वोपि नगरीलोक एकाकार प्रापित राज्ञा तयोर्नगरी प्रवेशो वारित कियत्कालानन्तर पुनस्तत्र कौमुदी महोत्सवो जात स्तदानीं
कियत्कालो तौ राजशासन विस्मार्य नगरीमध्ये प्रविष्टौ तत्र स्वच्छवस्त्रेण मुखमाच्छाद्य प्रेक्षणानि प्रेक्षमाणयो स्तयोरसम्प्रवर्धोद्भवेन सुखाङ्गीत निर्गत सर्व

लोका वदन्ति केन किं नरानुकारीणेदं कर्णसुखमुत्यादितमिति वस्त्रं पराकृत्य लोकै र्तयो र्मुखमीचितं उपलचितौ तौ मातङ्गदारकौ राज्ञानुशासनभञ्जक त्वेन जनैर्यष्टि मुष्ट्यादिभिर्हन्यमानौ तौ नगर्या· बहिर्निष्कासितौ प्राप्तौ बहिरुद्याने भृशं खिन्नौ एवं चिन्तयतः धिगस्तु अस्माकं रूपयौवनसौभाग्य लावण्य सर्वकलाकौशल्यादिगुणकलापस्य यतोऽस्माकं मातङ्गजाभ्यां सर्वं दूषितं लोकपराभवस्थानं वयं प्राप्ताः एवं गुरुवैराग्यमागतौ स्वबान्धवादीनामना पृच्छ्यैव दक्षिणदिगभिमुखौ चलितौ दूरं गताभ्यां ताभ्यां एको गिरवरो दृष्ट· तत्र भृगुपातकरणार्थमधिरूढौ तौ शिलातलोपविष्ट' तपः शोषिताङ्गं शुभ ध्यानोपगतं आतपना गृह्णन्तमेकं श्रमणं ददृशतु हर्षितौ तौ तत्समीपे जग्मतुः भक्तिमानपूर्वं ताभ्यां स वन्दितः साधुना धर्मलाभकथनपूर्वकं तयोः स्वागतं पृष्ट' ताभ्यां पूर्ववृत्तान्तकथनपूर्वकं स्वाभिप्राय' साधोः कथित साधुना कथितं न युक्तमनेक शास्त्रावदातबुद्धीनां भवादृशानां गिरिपतनमरणं सर्व दु'खक्षयकारणं श्रीवीतरागधर्मं गृह्णन्त्विति पञ्च महाव्रतरूपः श्रीवीतरागधर्मस्तयो कथितः ततस्ताभ्यां तस्य मुने समीपे दीक्षा गृहीता कालक्रमेण तौ गीतार्थौ जातौ ततः स्वगुर्वाज्ञया षष्ठाष्टमदशमद्वादशार्धमासमासक्षपणादि तपोभि रात्मानं भावयन्तौ ग्रामानुग्रामं विहरन्तौ कालांतरेण हस्तिनाग पुरं प्राप्तौ बहिरुद्याने स्थितौ अन्यदा मासक्षपणपारणके सम्भूतसाधुर्नगरमध्ये भिक्षार्थं प्रविष्ट· गृहानुगृहं भ्रमन् राजमार्गानुगतो गवाक्षस्थेन नमुचि मन्त्रिणा दृष्ट· प्रत्यभिज्ञातः चिन्तितंच स एष मातंगदारको मदध्यापतो मच्चरित्रमशेष मजानन्नस्ति कदाचिच्च लोकाग्रे वक्ष्यते तदा मम महत्त्वभ्रंशो भवि ष्यतीति मत्वा दूतैः स मुनि यष्टिमुष्ट्यादिभि र्मारयित्वा नमुचिना नगराद्बहिर्निष्काशयतु मारब्ध निरपराधस्य हन्यमानस्य तस्य कोपकरालितस्य मुखा न्निर्गतः प्रथमं धूमस्तोम· तेन सर्वमपिनगरमन्धकारितं। भयकौतूहलाक्रान्तानागराम्तत्रायाता क्रोधाध्मातन्तंमुनिं दृष्ट्वा सर्वेपि प्रसादयितु' प्रवृत्ता· स नत्कुमारचक्रवर्त्यपि तत्रायात तं प्रसादयितु' प्रवृत्त एवं बभाण भगवन् यदस्मादृशैरज्ञानैरपराद्ध' तद्भवद्भि' क्षमणीयं संहरन्तुतपस्तेज' प्रसादं

कुर्वन्तु ममोपरिप्रसाद सर्वनागरिकजीवित प्रदानेन पुनरेवम्विधमपराधन्नकरिष्याम इत्यादि चक्रिणाप्युक्तोसौयावन्न प्रशाम्यति तावदुद्यानस्थचित्र साधुर्जनापवादात्तं कुपित ज्ञात्वा तस्य समीपमागात एव उवाच भो सम्भूतसाधो उपशामयकोपानल उपशम प्रधाना श्रमणा भवन्ति अप राधेपि न कोपस्यावकाश ददति क्रोध सर्वधर्मानुष्ठान निष्फलीकारकोस्ति यतउक्त मासुववासुकरइचित्तवणवासुनिसेवइ पढइनाणसुज्झाणनिञ्च अप्पाण भावइ धारइदुइरबभचेरभिक्खासणभुञ्जइ जासुरोसतसुसयलु धम्मनिष्फलु सम्मज्जइ इत्यादिकैश्चित्रसाधूपदेशै सम्भूतस्य उपशान्त क्रोध तेजोलेश्या स ह्रता ततस्तौद्वावपितप्रदेशाश्चिहृत्तौ तदुद्यान चिन्तित चैताभ्या आवाभ्या स लेखनाकृता साम्प्रतमावयोयुक्त मनशन कर्त्तुं । इति विचार्यताभ्या मनशन विहित सनत्कुमार चक्रिणा न सुचि मन्त्रिणो इत्तान्तो ज्ञात दुतै सह रज्जुवद्ध कृत प्रापितश्च तदुद्याने तयो समीपे ताभ्यां समोचित सनत्कुमारोपि तयोर्वन्दनाथ साम्त पुर परीवार स्तत्रायात सर्वलोकसहितश्चक्री तयो पादयुग्मे प्रणत चक्रिण स्त्रीरत्न सुनन्दापिश्चौत् सुकात्तयो पादे प्रणता तस्यान्कसर्शानुभवेन सम्भूतयतिना निदान कर्त्तुमारब्ध तदानी चित्रमुनिना एव चिन्तित अहो दुर्जयत्व मोहस्य अहो दुर्दान्तता इन्द्रियाणा येन समाचरित विकृष्ट तपस्करोपि विदित जिन वचनोप्यय युवती बालाग्र स्पर्शेणैव्य अध्यवस्यति तत प्रतिबोधितु कामेन चित्र मुनिना तस्य सम्भूत मुने रेव भणित भ्रातरे तदध्यवसायाद्विरमस्व कुरु एतेहि भोगा असारा परिणाम दारुणा ससार परिभ्रमण हेतव सन्ति एतेषु मानिदान कुरुनिदानात्तव घोरानुष्ठान नैवताद्दक फलद भविष्यति एव चित्र मुनिना प्रतिबोधितोपि सम्भूतो न निदान तत्याजयद्यस्य तपस फल मस्ति तदाह भवान्तरे चक्रवर्ती भूया समिति निकाचित निदान ततो मृत्वासौधर्मे देवलोके द्वावपि देवौ जातौ ततश्च्युतश्चित्र जीव पुरमताल नगरे इभ्यपुत्रोजात सम्भूत जीवस्ततश्च्युत कांपिल्यपुरे ब्रह्मनाम राजा तस्य चलनी नाम्नी भार्यास्तस्या कुक्षौ चतुर्दश स्वप्न सूचित उत्पन्न क्रमेण जातस्य

तस्य ब्रम्हदत्त इति नामकृतं देहोपचयेन कला कलापेन च प्रवर्द्धितः तस्य ब्रम्हराज्ञ उत्तमवंशसम्भूताश्चत्वारः सुहृदस्सन्ति तद्यथा काशी विषयाधिपः
कटकः गजपुराधिप कणेरदत्तः कोशल देशाधिपति दीर्घः चम्पाधिपतिः पुष्पचूल इति तेऽत्यन्त स्नेहेन परस्पर विरहमनिच्छन्तः समुदितास्सैवं एकं २
वर्षं परिपाट्या विविध क्रीडाविलासै रेकस्मिन् राज्ये तिष्ठन्ति अन्यदातेचत्वारोपि समुदितास्सैव ब्रम्हराज्ये स्थिता सन्ति तस्मिन्नवसरे ब्रम्हराज्ञो मस्त
तत्र औषधाद्य साध्यः शिरोरोगः उत्पन्न स्ततस्तेन कटकादि चतुर्णां मित्राणां मुत्सङ्गे ब्रम्हदत्तो मुक्तः उक्तश्च यथैषमद्राज्यं सुखेन पालयति तथा
युष्माभिः कर्त्तव्यमिति, राज्यचिन्तां कारयित्वा ब्रम्हराजा कालङ्गतः मित्रैस्तस्य प्रेत्य कर्मकृतं मिथश्चैवं भणितं एष कुमारो यावद्राज्य धुरार्हो भवति
तावदस्माभि रेतद्राज्यं रक्षणीयमिति विचार्य सर्व्वसम्मतं दीर्घराजानं तत्र स्थापयित्वा कटक करेण दत्त पुष्पचूलाः स्वस्वराज्ये जग्मुः स दीर्घ राजा
सकलसामग्रीकं राज्यं पालयति भाण्डागारं विलोकयति प्रविशत्यन्तः पुरं चुलिन्यासमं मन्त्रयति तत इन्द्रियाणां दुर्निवारत्वेन ब्रम्हराज्ञ मैत्री भव
गणय्य वचनीयतां अवमन्य चुलिन्या समं सम्भ लग्न एवं प्रवर्द्धमान विषयसुख रसयो स्तयोर्गच्छन्ति दिनाः ततो ब्रम्हराज मन्त्रिणा धनुर्नाम्ना तयो
स्तत्स्वरूपं ज्ञातं चिन्तितं च यएवं विषमकार्यं माचरति स किं कुमार ब्रम्हदत्तस्य हिताय भविष्यति एवं चिन्तयित्वा तेन धनुर्नाम्ना मन्त्रिणा स्व पुत्रस्य
वरधनुनाम्नः कुमारस्य एवं भणितं यथा पुत्र यथा ब्रम्हदत्तस्य माता व्यभिचारिणी जातास्ति दीर्घ राज्ञा भुज्यमानास्ति अयं समाचार एकान्ते त्वया
ब्रम्हदत्त कुमारस्य निवेदनीयः तेन च तथा कृतं ब्रम्हदत्त कुमारोपि मातुर्दुश्चरितम सहमान स्तयो ज्ञापनार्थं काक कोकिला मिथुनं शूलाप्रोतं कृत्वा
चुलनी मातृ दीर्घ नृपयोर्दर्शितं एवं प्रोक्तं ये ईदृशमनाचारं करिष्यति तस्याहं निग्रहं करिष्यामीत्युक्त्वा कुमारो बहिर्गतः एवं द्वित्रिभिर्दृष्टान्तै दिन
त्रयं यावदेवञ्चकार उवाच ततो दीर्घ नृपेण शङ्कितेन चुलिन्याएवमुक्तं कुमारेणावयोः स्वरूपं ज्ञातं अहङ्काकस्त्वं कोकिलेति दृष्टान्तः कुमारेण ज्ञापितः

तयोश्च बालोय यत्त दुश्नपतिनानार्थे काचिच्छद्वा कार्या ततो दीर्घपृष्ठेनोक्त त्व पुत्र वात्सल्येनन किमपि स्वहित वेत्सि अयमयश्च मावयो रति विघ्नकर
स्तदवश्यमय मारणीय मयि स्वाधीने तवान्ये पुत्रा बहवो भविष्यन्ति एताहृश दीर्घ नृपवचस्तयाङ्गी कृत यत उक्त महिला आल कुलहर महिला
लोयमिदुश्चरियखित्त महिला दुग्गइदार महिला जोणी अणत्थाण १ मारइयिय भत्तार हणइ सुअन्तइपयासए अत्थ नियगेहिपिपीलावरणारी रागा
उरापावा २ चुलिन्या भणित कथमेष मारणीय कथञ्च लोकापवादो न भवति दीर्घनृपेणोक्त साम्प्रतमस्य विवाह क्रियते पश्चात्सर्व्वमावयो चिन्तित
भविष्यति ताभ्यां ब्रह्मदत्तस्य कस्यचिद्राज्ञ कन्या पाणिग्रहण कारित तयो शयनाय अनेकस्तम्भ यत सन्निविष्ट गूढ निर्गमद्वार जतुगृह कारित इतश्च
धनु मन्त्रिणा दीर्घ नृपाय एव विज्ञप्त एष मम पुत्रोवरधनुरे तद्राज्य कार्यकरण समर्थो वर्त्तते अह पुन परलोक हितङ्करोमि दीर्घ नृपेणोक्त इह
स्थित एवत्व दानादि धर्म कुरुतस्ये तदच प्रतिपद्य धनुमन्त्रिणा गङ्गातीरे महती प्रपाकारिता तत्र पथिक परिव्राजकादीनां यथेष्टदान दातु
प्रवृत्त दानोपचारा वर्जिते परिव्राजकादिभिर्हि गव्य् त प्रमाणा सुरङ्गा जतुगृह यावत्खानिता जतुगृहान्त सुरङ्गा द्वारि शिलादत्ता इतश्च चुलिन्या
महताडम्बरेण वधूसहित कुमारस्तत्र प्रवेशित तत समग्र परिवारो विसर्जित वरधनु कुमारपार्श्वेस्थित एव स्वपितागदित वृत्तान्तानुसारेण
सावधानो जाग्रन्नेव सुप्त ब्रह्मदत्त कुमारस्तु एक शय्याया तया बध्वासह सुप्त गत रात्रि प्रहरयुग्म तदा तत्रचुलिन्या स्वहस्तेन अग्निकन्दुको यस्त
तेन तद्गृहं सम तात्दह्यमान दृष्ट्वा विनिद्रो ब्रह्मदत्त स्वमित्र वरधनु पप्रच्छ किमेतदिति वरधनुना सर्व चुलिनी स्वरूप कथित पुन कथित इयच
कन्या राजपुत्री न किन्तु काप्यन्या तस्मादस्या मोहोमना गपिन कार्य त्वमस्यां शिलायां पादप्रहार कुरु येनावा निर्गच्छाव वरधनूक्त सर्व्व ब्रह्मद
त्तेन कृत ततो द्वावपि निर्गत्य सुरङ्गाद्वहिर्देशे समायातौ तत्र च धनुमन्त्रिणा पूर्वमेवद्वौ तुरङ्गमौ पुरुषौ च मुक्तौस्त ताभ्यां तयो सङ्केत कथित तुर

आरूढौ तावपि कुमारौ ततश्चलितौ एकेन दिवसेन पञ्चाशद्योजन मात्रं भूभागङ्गतौ दीर्घं मार्गं खेदेन तुरङ्गमौ व्यापन्नौ तत पादचारेण गच्छन्तौ तौ कौट्टाभिधान ग्रामङ्गतौ कुमारेण वरधनुर्भणित मां क्षुधा बाधते वरधनुः कुमारं बहिरेवोपवेश्य स्वयं ग्राममध्ये प्रविष्टः नापितं गृहीत्वा तत्रायातः कुमारस्य मस्तकं मुण्डापितं परिधापितानि काषाय वस्त्राणि चतुरङ्गुल प्रमाण पट्टबन्ध कुमारस्य स्त्री वत्सालङ्कृते हृदि बद्धः वरधनुनापि वेषपरावर्त्तनः कृतः तादृश वेषधरौ द्वावपि ग्राममध्ये प्रविष्टौ तावता एको द्विज स्व मन्दिरान्निर्गत्य अभिमुख मागत्य तौ कुमारौ प्रत्येवमाह आगच्छता मस्मद्गृहे भुञ्जतां तेनेत्युक्ते तौ द्वावपि तद् गृहे गतौ ब्राह्मणेन राजरूप प्रतिपत्ति पूर्वकं भोजितौ भोजनान्ते च एकाप्रवर महिला बन्धुमतीं नाम्नीं कन्यां उद्दिश्य ब्रह्मदत्त कुमार मस्तकोऽचान् प्रक्षिपति भणति च एषोऽस्याः कन्याया वरोस्त्विति वरधनुना भणितं किमितस्य मूर्खस्य बटुकस्य कृते एतावानायास क्रियते यतो गृहस्वामिना भणित श्रूयतामत्रादाया स वृत्तान्त पूर्वं सुव्रत नैमित्ति केनाख्यातं यथाऽस्याः बालिकायाः पट्टाच्छादित वक्षःस्थल समित्रो भवद्गृहे भोजनकारो वरो भविष्यति सोयमस्या योग्योवर इति तस्मिन्नेव दिने तस्याः कन्यायाः कुमारेण पाणि ग्रहणं कारितं मुदितौ गृहस्वामी कुमारस्तु एकरात्रौ तत्रस्थितः द्वितीयदिने वरधनुना कुमारस्योक्तं आवाभ्यां दूरे गन्तव्यं दीर्घराजा सत्वरत्वेनात स्यातुमावयोरयुक्त मिति तौ द्वावपि बन्धुमत्याः स्वरूपं कथयित्वा निर्गतौ गच्छन्तावेकदा कस्मिंश्चिद्दूर ग्रामे गतौ तृषा क्रान्तं कुमारं बहिरुपवेश्य वरधनुः सलिलमानेतुं ग्राममध्ये प्रविष्टः त्वरितमेव पश्चादागत्य एवं कुमारस्योक्तवान् अत्र ईदृशो जनापवादो मया श्रुतः यद्दीर्घ नृपेण ब्रह्मदत्तमार्गं सर्वत्र सैन्यैर्बन्धितोस्ति तत कुमारं आवामितो नश्याव: नष्टौ ततो द्वावपि उन्मा मार्गेण व्रजन्तौ महाटवीं प्राप्तौ तत्र कुमारं वटाध उपवेश्य वरधनुर्जलमानेतु मितस्ततो बभ्राम दिनावसाने वरधनु दीर्घ पृष्ट नृप भटैर्दृष्ट प्रकामं यष्टि मुष्ट्यादिभिर्हन्यमानः कुमारं दर्शयेति प्रोच्य

मानय कमारासन्न प्रदेशे प्रापित तावता वरधनुना कमारस्य केनाप्य लक्षिता सज्ञा कृता भट्टे दृष्ट एव ब्रम्हदत्तो नष्ट पतितय दुर्गमे कान्तारे क्षुधा तृषायमार्त्त कुमारस्तृतीये दिने तामटवी मतिक्रान्त स्तापसमेक ददर्श दृष्टे च तस्मिन् कुमारस्य जीविता सा जाता कुमारेण तापस पृष्ट भगवन् क्व भवदाश्रम तेन श्रासन्न एवास्मदाश्रम इत्युक्त्वा कुलपतिसमीप नीत कुमारेण प्रणत कुलपति कुलपतिना भणित वत्स कुत इह भवदागमन कुमारेण सकलोपि स्ववृत्तान्त कथित कुलपतिना उक्त अह भवज्जनकस्य लघुभ्राता ततस्त्व निज चैवावास प्राप्तोसि सुखेनात्र तिष्ठ इत्यभिप्राय तापसस्य ज्ञात्वा कुमारस्तत्रैव सुख तिष्ठन्नस्ति अन्यदा तत्र वर्षाकाल समायात तदानी निश्चिन्तेन कुमारेण तत्र तापसान्तिके सकला धनुर्वेदादिका कला अभ्यस्ता अन्यदा शरत्काले फलमूलकन्दनिमित्त तापसेषु गच्छत्सु ब्रम्हदत्तकुमारोपि तै सम वने गत वनश्रिय पश्यता तेन एको महाहस्ति दृष्ट कुमारस्तदभिमुख चलित कुमार दृष्ट्वा हस्तिना गजगर्जारव कृत कुमारेण तस्य पुरो निजमुत्तरीय वस्त्र निक्षिप्त वारितापि तत्क्षणात् शुण्डादण्डेन गृहीत क्षिप्त च गगनतले यावत् क्रोधान्धो जात तावत् कुमारेण छल कृत्वा तद्वस्त्र स्वकराभ्या गृहीत ततस्तेन नानाविध क्रीडया परिश्रमनीत्वाकरोमुक्त स पश्चाद्गन्तु प्रवृत्त तत् पृष्ठौ कुमारोपि चलित इतश्च अग्रे गच्छन कुमार पूर्वापर दिग्विभागे परिभ्रमन गिरिनदीतटसन्निविष्ट जीर्णभवनभित्तिमात्रोपलक्षित जीर्ण नगरमेक ददर्श तन्मध्ये प्रविष्टश्चतुर्दिक्षु दृष्टि क्षिपन् पार्श्वपरिमुक्तखेटखड्गविकटवशकुडग ददर्श कुमारेण तत् खड्ग तथैव कौतुकाद्गृहीत एकप्रहारेण निपतित वशकुडग वशान्तरालस्थित च निपतित दृष्टमेक स्फुरदोष्ठ मनोहराकार शिर कमल दृष्ट्वा सभ्रान्तेन कुमारेण एव चिन्तित हा धिगस्तु व्यवसितस्य धिङ्मे बाहुबलस्येति कुमार स्व निनिन्द पश्चात्तापाक्रान्तेन तेन कुमारेण दृष्ट धूमपानलालस कबन्ध समधिकमधृति स्तस्य पुनर्जाता इतस्तत पश्यता कुमारेण पुन प्रवरमुद्यान दृष्ट तत्र भ्रमन अशोकतरुपरिक्षिप्तमेक सप्तभूमिक आवास कुमारो दृष्टवान् तन्मध्ये प्रविष्ट

कुमार· क्रमेण सप्तभूमिकामारूढ़: तत्र विकसितकमलदलाची प्रवरां महिलां पश्यतिस्म कुमारेण सा पृष्टा कासि त्वमिति ततः सा स्वसद्भावं कथयितुं प्रवृत्ता महाभाग मम व्यतिकरो महान् वर्त्तते ततस्त्वमेव प्रथमं स्ववृत्तान्तं वद कस्त्वं कुतः समायातः एवं तया पृष्टे कुमार आख्यत् अहं पञ्चालाधिपति ब्रम्हराजपुत्रो ब्रम्हदत्तोस्मीति कुमारोक्तिश्रवणानन्तरं हर्षोत्फुल्लनयना सा अभ्युत्थिता तस्यैव चरणे निपत्य रोदितुं प्रवृत्ता ततः कारुण्यहृदयेन कुमारेण सा पुनरेवं भणितामुखमुन्नतं कुरु मारुदेत्याश्वासिता सा कुमारेण त्वं स्ववृत्तान्तं वदेत्युक्ता साचख्यौ कुमार अहं तव मातुलस्य पुष्पचूलस्य राज्ञः पुत्री तवैव पित्रा दत्ता विवाहदिवसं प्रतीच्यमाणा निजगृहोद्यान दीर्घिकापुलिने क्रीडन्ती दुष्टविद्याधरेणात्रानीता यावदहं स्वजनविरहाग्निसंतप्ता इह तिष्ठामि तावत् त्वं अतर्कितदृष्टिसमोऽत्रायातः अथ मम जीविताशा सञ्जाता यत् त्वं मयादृष्टः कुमारेणोक्तं स मम शत्रुः क्वास्ति येन तद्बलं पश्यामि तया भणितं स्वामिन् ममानेन शङ्करी नाम्नी विद्यादत्ता कथितं च इयं विद्या पठितमात्रा तव दासदासी सखी परिवारा भूत्वा आदेशं करिष्यति तथा त्रिकमागतं प्रत्यनीकं निवारयिष्यति दूरस्थस्यापि मम चेष्टितं पृष्टा सती इयं तव कथयिष्यति साद्य मया प्राप्ता स्मृता सती मम तच्चेष्टितं प्राह यथा स उन्मत्तनामा विद्याधरः पूर्णपुण्याया स्तव बलात् सर्वतेजय सोढुमशक्तस्त्वामत्र मुक्त्वा निजभगिनीं ज्ञापनाय ज्ञापिकीं विद्यां प्रेषयित्वा च स्वयं विद्यां साधयितुं वंशकुडङ्गे गतोस्ति ततो निर्गतमात्रस्त्वां परिणेष्यतीति ममाद्य तया विद्यया कथितं एतत्तस्याः वचः श्रुत्वा ब्रम्हदत्तेनोक्तं वंशकुडंगस्थस्य तस्य विद्याधरस्य मया साम्प्रतमेव शिरश्छिन्नं तयोक्तं आर्यपुत्र शोभनं कृतं यत्स दुरात्मा निहतः ततः सा कुमारेण गन्धर्वविवाहेन परिणीता तया समं विलसन् कुमारः कियत्कालं तत्र स्थितः अन्यदा कुमारेण तत्र दिव्यवलयानां शब्दः श्रुतः कुमारेणोक्तं कोयं शब्दः श्रूयते तयोक्तं कुमार एषा तव वैरिभगिनी खण्डश्रीखा नाम्नी विद्याधर कुमार परम्रता स्वभ्रातृनिमित्त विवाहोपकरणानि गृहीत्वा समायाता त्वमितस्त्वरितमपक्रम यावदेता सा मद्रूममभिप्रायं

वेद्मि यदेतस्या तयोपरि रागो भविष्यति तदाह प्रासादोपरिस्थितां रक्ता पताका चालयिष्यामि अन्यथा तु सितामिति कुमारस्तदुष्टद्वाङ्गिर्गत्वा दूरे स्थित ऊर्द्ध्वविलोकते तावच्चालितां धवलपताकां दृष्ट्वा शनै २ स्तत्प्रदेशादपक्रान्त प्राप्तो गिरिनिकुञ्जमध्ये तत्र भ्रमता कुमारेण एक सरोवर दृष्ट तत्र स्नान कृत्वा सर पश्चिमतीरे उत्तीर्णेन कुमारेण दृष्टा एका वरकन्या चिन्तित च अहो मे पुण्यपरिणति येनैषा कन्या मे दृग्गोचरसमागता तयाप्यसौ कुमार स्नेह निर्भर विलोकित कुमार विलोकयन्ती सार्द्ध प्रस्थिता स्तोकया वेलया तया कन्यया एका दासी प्रेषिता तया कुमाराय वस्त्रयुगल पुष्पताम्बूलादिक दत्त उक्त च या युष्माभि सरस्तीरे कन्या दृष्टा तया सर्वमिद प्रेषित लावण्यलतिका नाम्नी अह तस्या दासी अस्मि तयाच ममेदमादिष्ट एन महानु भाव कुमार मम तात महामन्त्रिणो शरीरस्थिति कारय ततस्तत्र कुमार यूयमागच्छत तत कुमारस्तया सह तदेवामात्यमन्दिरे गत तत्र तस्या मन्त्रिणएयमुक्त मन्त्रिन त्वत्स्वामि पुत्राय प्रेषितोस्ति प्रकामं अस्यादर कर्त्तव्य मन्त्रिणा तथैव कृत द्वितीयदिने कुमारो मन्त्रिणा राज्ञ सभाया नीत अभ्युत्थितेन राज्ञा कुमारस्य धुरि आसन दत्त पृष्टश्च वृत्तान्त कुमारेण सर्वोपि कथित अथ विविधभक्त्या भोजितस्य कुमारस्य एवमुक्त राज्ञा कुमार तव भक्तिरस्माद्दृशै कापि कर्त्तुन पार्यते परमियमेवास्माक भक्तिर्यदिय कन्या तव प्राभृतीकृता सुमुहूर्त्ते तयोर्विवाहो जात कुमारस्तया सम विलासन् सुखेन तत्र तिष्ठति अन्यदा कुमारेण तस्या प्रियाया पृष्ट किमर्थमेकाकिने मह्यमेव नृपेण दत्ता सा उवाच आर्यपुत्र एष मदीय पिता बलवत्तरवैरिसन्ता पित इमा विषमपल्लि समाश्रित अत्र तातपत्न्या श्रीमत्याश्चतुर्णा पुत्राणामुपरि अह पुत्री जाता अहमतीव पितुर्वल्लभा यौवनस्था अन्यदा पित्रा उक्ता पुत्रि मम सर्वेपि राजानो विरुद्धा सन्ति तेन त्व इह स्थितैव योग्य वर गवेषय ततोहं ग्रामाद्बहिस्तस्य सरस्तीरे समायातान् पथिकान् विलोकयन्ती स्थिता तदानी त्व तत्रायातो मया भाग्यात् प्राप्तयेति परमार्थ तत श्रीकान्तया सम विषयसुखमनुभवतस्तस्य सुखेन वासरायान्ति अन्यदा स पल्ली

पतिः कुमारेण समं निजसैन्यवेष्टितः स्वविरोधि नृप देशभङ्गाय चलित मार्गे गच्छतस्तस्य क्वचित्सरस्तीरे वरधनुर्मिलितः कुमारेणोपलक्षितः कुमारं दृष्ट्वा स रोदितुं प्रवृत्तः कुमारेण बहुप्रकारं वारितः स्थितः कुमारेण पृष्टं मत्तो दूरीभूतेन त्वया किमनुभूतं वरधनुः प्राह कुमारतदानीं त्वां वटाध उपवेश्य अहं जलार्थं गतः सर एकं दृष्टवान् ततो जलं गृहीत्वा तवान्तिके यावदहमागतुं प्रवृत्तः तावत्सन्नद्धबद्धकवचैर्दीर्घनृपभटैः सहसाम्मिलितैरहमुपलक्षितस्ताडितश्च उक्तं चकब्रह्मदत्तइति मयोक्तं अहं न जानामि ततो दृढतरं ताडितो अहमवदं ब्रह्मदत्तो व्याघ्रेण भक्षित तैरुक्तं तं देशं दर्शय तैर्मार्यमाणोहं तवान्तिकदेशमागत्य तदानीं त्वां संग्रामकार्यं त्वयि ततो नष्टे अहं पुनस्तैर्भृशं ताड्यमानः स्वमुखे परिव्राजकदत्तां गुटिकां क्षिप्तवान् तत्प्रभावदहं निश्चेष्टो जातः ततस्ते मृतोयमिति ज्ञात्वा सर्वेपि भटागताः तेषां गमनानन्तरं चिरकालेन मया गुटिकामुखान्निष्कासिता ततः सचेतनोहं त्वां गवेषयितुं प्रवृत्तः न मया दृष्टस्त्वं ततोहमेकं ग्रामं गतः तत्र दृष्ट एकः परिव्राजकः तेनोक्तं अहं तव तातस्य मित्रं सुभगनामा तव पिता धनुर्नष्टः माता तु दीर्घेण गृहीता मातङ्गपाटे चिप्तास्तीति श्रुत्वाहमतीव दुःखित काम्पिल्लपुरे गतः कापालिकवेषं कृत्वा मातङ्गवत्तरं वञ्चयित्वा मातङ्गपाटकान्मातरं निष्कासितवान् एकस्मिन् ग्रामे पितृमित्रस्य देवशर्म ब्राह्मणस्य गृहे मातरं मुक्त्वा त्वामन्वेषयन्नहमिहायातः इत्थं यावत्तौ वरधनु ब्रह्मदत्तौ वार्त्तां कुरुत तावदेक पुरुषस्तत्रागत्य एवमुवाच यथा महाभाग भवता क्वचिदितस्ततो न पर्यटितव्यं त्वदन्वेषणार्थं दीर्घनियुक्ता नृपा इहागताः सन्तीति श्रुत्वा तौ द्वावपि ततो वनान्नष्टौ भ्रमन्तौ कौशाम्ब्यां गतौ तत्र बहिरुद्याने द्वयोः श्रेष्ठिसुतयोः सागरदत्तबुद्धिलनाम्नोः कुर्कुटयुगलं लक्षपणकरणपूर्वकं योद्धुं प्रवृत्तं द्रष्टुं कौतुकेन तौ तत्रैव स्थितौ बुद्धिलकुर्कुटेन सागरदत्तकुर्कुटः प्रहारेण जर्जरीकृतो भग्नः सागरदत्तेन प्रेर्यमाणोपि स्वकुर्कुटो बुद्धिलकुर्कुटेन समं पुनर्योद्धुं नाभिलषति हारितं लक्षं सागरदत्तेन अत्रान्तरे वरधनुना उक्तं भो सागरदत्त एषसुजातिरपि कुर्कुटः कथं भग्नः ममात्रार्थे विस्मयोस्ति यदि

कोपि कोपं न करोति तदा बुद्धिलकर्कटमह पश्यामि सागरदत्तो भणति भो महाराज विनोकयनास्थन मम कोपि द्रव्यलोभ किं त्वभिमानसिद्धिमात्र प्रयोजनमस्तीति ततोवरधनुनाविलोकित स कुर्कुट तच्चरण निबद्ध सूचीकलापोदृष्ट बुद्धिलोपिवरधन प्रति शनैरेव माह यदित्व सूचीकलाप न बध्यसि तदाहत्व लक्षाघाद दास्यामि ततो वरधनुनाऽक्त विलोकितोयत् कुर्कुटोनात्र किञ्चिद् दृश्यते एव मुक्तापि यथा बुद्धिलोनजानाति तथा सूचीकलाप मपा स्य सागरदत्तस्य तद्धति कर कथित सागरदत्तेन पुन स कुर्कट प्रेरितोबद्धिल कर्कुटेन सम युद्ध प्रवृत्तेमागरगत्त कुर्कुटेन जितो बुद्धिल कुर्कट हारित बद्धिलेन लक्ष तुष्ट सागरदत्त एवमाह आर्यपुत्र गृहेगम्यते इत्युक्त्वा द्वावपि कुमारोरथे निवेश्य सागरदत्त स्वगृहेगत सागरदत्तम्तौ परमप्रोत्या पश्यति सागर दत्तगेह नियन्त्रितो तौ अतो या प्रहात् तदगृह एव तस्थतु कियद्दिनानन्तर एकोदा स दासा यातस्तेन एकान्ते वरधनु राकारित उक्त वरधनुकुमारायतव तदानो सूचि व्यतिकर द्रव्य समुरगेन बद्धिलेन तद् द्रव्यार्पणाय अय हार प्रेषितोस्ति इत्युक्त्वा हारकरण्डिकातेन वरधनवे दत्ता दास स्वगृहेगत वरधनुरपिहार करण्डिका गृहीत्वा ब्रह्मदत्तान्तिके गत स्वरूप कथयि त्वाहारकरण्डिकातेन वरधनवे दत्ता स्वरूप कथयित्वाहारकरण्डिकातोहार निष्कास्यदर्शितवान् हार पश्यता ब्रह्मदत्तेनहारैकदेशस्थो ब्रह्मदत्त नामाङ्कितो लेखो दृष्ट पृष्ट मित्रकस्येष लेख वरधनुर्भणति को जानाति ब्रह्मदत्तनामका पुरुषाबहवसन्ति ततोदूरे गत्वा वरधनुना उत्कीर्णो लेख तन्मध्ये इयङ्गाथा दृष्टा पत्थिजइनइ विजए जणेण सञ्जोय जणिय जत्तेण तहवितु मच्चिइ धणिय रयणवइ मुणइ माउ सूम्बुद्धाध्यायता वरधनुनाऽस्या गाथाया अर्थोऽवगत द्वितीयदिने एका परिव्राजिका तत्रायाता सा कुमारसिरसि कुसुमाक्षतानि प्रक्षिप्य कुमारत्व शतसहस्रायुर्भवेदित्या शिष दत्तो वरधनुमेकान्ते तेन सम किञ्चिन्मन्त्रयित्वा सा प्रतिगता कुमारेण वरधनुर्जल्पित अनया किमुक्त वरधनुर्भणति अनया एवमुक्त यत्तव

बुद्धिलेन करण्डेहारः प्रेषितोस्ति तेन समं योलेखः समागतोस्ति तत् प्रतिलेखं समर्प्पय मया उक्तं एष लेखो ब्रह्मदत्त राजा नामाङ्कितो वर्त्तन्ते ततस्त्व मेव वदको सौ ब्रह्मदत्तः तया उक्तं श्रूयतां परस्यापि त्वया न वक्तव्यं इह नगर्यां श्रेष्टि पुत्री रत्नवतीनाम्नी कन्यकास्ति सा बालभावादारभ्य अतीव ममस्नेहानुरक्तायौवनमनु प्राप्ता अन्यदिनेसा किञ्चित्ध्यायन्ती मयादृष्टा च पुत्रि त्वं किं ध्यायसीति साकिमपिनैवबभाणपरिजनेनोक्तं इयं बहून् प्रह रान् यावत् ईदृश्येव किञ्चिद्दार्त्तं ध्यान् कुर्वन्ती दृश्यते परमस्याहार्दंन ज्ञायते ततः पुनरपि तस्याः पृष्टं सा किञ्चिन्नोवाच तत्सख्याप्रियंगुल्या उक्तं हे भगवति तव पुरुषलज्जाया किञ्चिदक्तुं शक्नोति अहं तावत्कथयामि इयं गत दिने क्रीडार्थं मुद्यानेगता तत्रानया स्वभ्रातुर्बुद्धिलस्य श्रेष्टिनः कुर्कुटयुद्धं कार यतः समीपेएकोवर कुमारोदृष्टः तं दृष्ट्वैषा एतादृशीजाता कुमारीसख्याः प्रियंगुलतिकाया एतद्वचः श्रुत्वा मया उक्तं पुत्रि कथयसद्भावं पुनः पुनरेवं मयोक्ता सा कथमपि सद्भावं उक्त्वा प्राह भगवति त्वं मम जननीनास्ति किञ्चित्तवाकथनीयं अनया प्रियंगुलतिकया कथितो यो ब्रह्मदत्त कुमारः स मे पतिर्भविष्यति तदावरं अन्यथाहं मरिष्यामि सामया भणिता वत्से धीराभव अहं तथा करिष्ये यथा तव समीहितं भविष्यति ततः सा किञ्चित् स्वस्था कल्यदिने पुनरेवं मया तस्या विशेषाश्वासना करणार्थं कल्पितमेवोक्तं वत्से स ब्रह्मदत्त कुमारो मया दृष्टः तयापि समुच्छ्वसित रोम कूपया भणितं भग वति तव प्रसादेन सर्वं भव्यं भविष्यति किन्तु तस्य विश्वास निमित्तं बुद्धि लव्यपदेशेन इम हार रत्नकरण्डके प्रक्षिप्य ब्रह्मदत्तराज नामाङ्कित लेख सहितं कृत्वा कस्यचिद्धस्ते प्रेषय ततो मया कल्ये तथा विहितं एषले स्वव्यतिकरः सर्वोपि मया तव कथितः साम्प्रतं प्रतिलेखं देहि ततो मयापितस्या प्रतिलेखोदत्तः तन्मध्ये चेदृशी गाथा लिखितास्ति गुरुगुण वरधणुकलिओ तमाणिओ मुणइबंभदत्तो विरयणवई रयणमई चन्दोविय चन्दमाजोगो १ इदं वरधनूक्तमाकर्ण्य अदृष्टाया मपि रत्नवत्यां परमप्रेमवान् कुमारो जातः तद्दर्शन सङ्गमोपाय मन्वेषमाणस्य कुमारस्य गतानि कतिचिद्दिनानि अन्यदिने

समागतो नगरयष्याद्दरधनु एवम्र कुमहत्त यथा एतन्नगर स्वामिनो दीर्घनृपेण स्व किङ्करा आवां गवेषणाय प्रेषिता सन्ति नगरस्वामिना च आवां ग्रहणोपाय कारितोऽस्ति एताद्दयी लोकवार्त्ताबहि श्रुता सागरदत्तेन एतद्व्यतिकर श्रुत्वा द्वावपि भूमिगृहे गोपितौ रात्रि पतिता कुमारेण सागर दत्तस्य भणित तथा कुरु यथा पक्रमान एतदाकर्ण्य सागरदत्तोद्दाभ्यां सह नगराद्बहिर्निर्गत स्तोका भूमिगत्वा नेच्छन्तमपि सागरदत्त बलान्निवर्त्य कुमार वरधनूद्दावपि गन्तु प्रवृत्तौ पथि गच्छन्ता ताभ्या यक्षायतनोद्यान पादपान्तरालस्थिता प्रहरण समन्वित रथवर समीपस्था एका प्रवरमहिला दृष्टा ततस्तया समुत्थाय सादर भणितौ किमियत्यां वेलाया भवन्तौ समायातौ इति तस्या वच श्रुत्वा कुमार प्राह भद्रे कौ आवां तयोक्त त्व स्वामी ब्रह्मदत्तोऽयच वरधनु कुमार इतिश्रुत्वा कुमार उवाच कथमे तदवगत त्वया सा उवाच श्रूयता इहैव नगर्यां धनप्रवरोनाम श्रेष्ठीवर्त्तते तस्य धनसञ्चया भार्या वर्त्तते तया अष्टपुत्राणा मुपरि एका पुत्री प्रसूता सचाहमेव मम च कोपि पुरुषो नरोचति ततो मातुरनुभयाद्द यक्षमाराधितु प्रवृत्ता तुष्टेन यक्षेण मयोक्त वत्से तव भर्त्ता भविष्यच्चक्रवर्त्ती ब्रह्मदत्तो भविष्यति मया भणित समया कथ ज्ञातव्य तेनोक्त बुद्धिल सागरदत्तयो कुकुटयुद्धमध्ये यो दृष्टस्तवानन्द जनयिष्यति स वरधनुमित्र सहितो ब्रह्मदत्तकुमार उपलक्ष्य तत पर मयाहार लेख प्रेषणादिक यत्कृत तत्सर्व तव सुप्रतीतमेवास्तीति कुमरी वाक्यमाकर्ण्य सानराग कुमारस्तया सहरथ मारूढ सा कुमारेण पृष्ठा इत क्व गन्तव्य रत्नवया भणित यस्तिमगधपुरे मम पितृ कनिष्ठ भ्राता धनसार्थवाह नामा श्रेष्ठी सज्ञातव्यतिकरो युवा मम च समागमन सुन्दर ज्ञास्यति ततस्तत्र गमन क्रियते यथायथा युवाभिप्सा तथा कार्यमिति रत्नवती वचसा कुमारो मगधापुराभिमुख प्रवृत्त वरधनुस्तदा सारथिर्बभूव ग्रामानुग्राम गच्छन्तौ तौ कौशांबी देशान्निर्गतौ अन्यदा गतौ गिरिगुहा टव्यां तत्र कण्टकसुकण्टकाभिधानौ द्वौ चौर सेनापती त प्रवर रथ विभूषित स्त्रीरत्न च प्रेक्ष्य तद्रक्षक च कुमारद्वयमेव प्रेक्ष्य सन्नद्धौ सपरिवारौ प्रवृत्तु

मायती अत्रावसरे कुमारेण तथा प्रहरणशक्तिर्दर्शिता यथा सर्वेपि चौरसुभटा कुमारप्रहाराजर्ज्जरा: सर्वासु दिक्षु गता: कुमारस्ततो रथारूढो चलित· वरधनुना उक्त: कुमार यूय दृढयान्ता स्ततो सुहुर्त्तमात्रमतैव रथे निद्रासुखमनुभवत ततो रत्नवत्या सह कुमार· प्रसुप्त: गिरिनदी एकामार्गे समायाता तावत्तुरङ्गमा: अमखिन्नानाग्रे चलन्ति तत कथञ्चित् प्रतिबुद्ध कुमार: अमखिन्नान् तुरंगमान् पश्यन् रथाग्रे च वरधनुमपश्यन् जलनिमित्तं वरधनुर्गतो भविष्यतीति चिन्तितवान् इतस्तत: पश्यन् कुमार: रथाग्रभागरुधिरावलिप्तं ददर्श ततो व्यापादितो वरधनुरिति ज्ञात्वा हा हा हतो मे सुहृत् इति शोकार्त्त: कुमारो रथोत्सङ्गात्पपात मूर्च्छाञ्च प्राप्तवान् पुनरपि लब्धचैतन्य एवं विललाप हा भ्रात: हा वरधनु मित्र त्वं क्वगतोसीति विलपन् कुमार: कथमपि रत्नवत्या रचित कुमार: रत्नवन्ती प्रत्येवमाह सुन्दरि न ज्ञायते वरधनु मृतो जीवन्नास्तीति ततोहं तदन्वेषणार्थं पश्चाद्व्रजामि तया भणितं आर्यपुत्र अवसरो नास्ति पश्चाद्गलनस्य येनाहमेकाकिनी चौरश्वापदादिभीमं चारण्यमिदं अत्र च निकाटवर्त्ती सीमावकाशोस्ति येन परिम्लाना कुशकण्टका: पश्यन्ति एतद्रत्नवतीवच: प्रतिपद्य रत्नवत्या सहकुमार: पथि गन्तुं प्रवृत्त: मगधदेशसंस्थितमेकं गामं प्राप्त तत्र प्रविशन् कुमार: सभामध्यस्थितेन ग्रामाधिपतिना दृष्ट: दर्शनानन्तरमेव एष न सामान्य: पुरुष इति ज्ञात्वा सोपचार प्रतिपत्त्या पूजितो नीतश्च स्वगृहं दत्तस्तत्र सुखावास: तत्र सुखं तिष्ठन् एकग्रामाधिपतिना भणित: कुमारत्वं विखिन्न इव लक्ष्यसि कुमारेणोक्तं मम भ्राता चौरेण सह भण्डन कुर्वन् न जाने कामप्यवस्थां प्राप्त: ततो मया तदन्वेषणार्थं तत्र गन्तव्यं ग्रामाधिपेनोक्तं अलं खेदेन यद्यस्या मटव्यां सभविष्यति तदाऽवश्यमिह प्राप्साम· इति भणित्वा प्रेखितानिज पुरुषा अटव्यां गत्वा समायाता: कथयन्ति अस्माभि: सर्वत्र स पुरुषो गवेषित परं क्वचिन्न दृष्ट: किन्तु प्रहारपतितो बाण एवैष दृष्ट: तत· कुमारो वरधनुर्मृत इति चिरकालं शोकं चकार एकदा रात्रौ तस्मिन् ग्रामे चौरधाटि: पतिता सा च बाणै: कुमारेण जर्जरीकृता नष्टा अथ हर्षितो ग्रामाधिपतिर्ग्रामस्थ

अथ ग्रामाधिपतिमापृच्छ्य प्रतयलित कुमार क्रमेण राजगृह प्राप्त तत्र नगराबहि परिव्राजकाश्रमे रत्नवतीमुक्त्वा स्वय नगराभ्यन्तरे गत तत्रैकस्मिन् प्रदेशे धवलगृह दृष्ट तदन्तप्रविष्टेन कुमारेण द्वे कन्ये दृष्टे ताभ्यां कुमार दृष्ट्वा प्रकटितानुरागाभ्यां भणित कुमारयुष्मादृशामपि पुरुषाणा रक्षाजनमुत्सृज्य भूमितु कि युक्त कुमारेणोक्त सजन क येनैव यूय भणथ ताभ्यामुक्त प्रसाद कृत्वा आसनेनिवेश तु भवन्त तत उपविष्ट आसने कुमार ताभ्यां कृमा रस्य मज्जनभोजनाद्युपचारं कृत्वा उक्त कुमार यूयतामस्मद्वृत्तान्त इहैव भरतक्षेत्रे वैताढ्य गिरिदक्षिणश्रेणिमण्डने शिवमन्दिरे नगरे ज्वलनशिखो राजा तस्य विद्युच्छिखा नाम्नी देवी तस्या आवां द्वे पुत्र्यौ अस्मद्भ्राता उन्मत्तो नाम वर्त्तते अन्यदा अस्मत्पिताग्निशिखाभिधानेन मित्रेण सम यावद्गोष्ठ्यां प्रविष्टस्तिष्ठति तस्मिन्नवसरेऽष्टापदपर्वताभिमुख व्रजन्त सुरासुरसमूह पश्यति राजापि पुत्रीसहितस्तत्र गन्तु प्रवृत्त अष्टापदे प्राप्तोजिनप्रतिमाश्च वन्दिता कर्पूरागरुधूपाद्युपचारो महान् कृत प्रदक्षिणात्रय कृत्वा निर्गच्छता राज्ञाऽशोक पादपस्याध उपविष्ट चारणमुनियुगल दृष्ट प्रणतश्च तत्रोपविष्टस्य राज्ञ पुरस्तादगुरुणा एव धर्मदेशना कर्तुमारब्धा असार ससार शरीर भगुर शरदभ्रोपम जीवित तडिद्विलसितानुकारि यौवन किंपाकफलोपमा भोगा सन्ध्याराग सम विषयसुख कुशाग्रजलबिन्दुचञ्चला लक्ष्मी सुलभ दु ख दुर्लभं सुख अनिवारितप्रसरो मृत्यु तस्मादेव स्थिते सति भो भव्या मोह प्रसर छिन्दन्तु जिनेन्द्रधर्मे मनो नयन्तु एव चारणश्रमणदेवाना श्रुत्वा सुरादयो यथा गत प्रतिगता तदावसरेणाग्निशिखेना भणित यथा एतासा बालिकानां को भर्त्ता भविष्यति चारणश्रमणाभ्यामुक्त एते द्वे कन्ये भ्रातृवधकारिणो भार्य्ये भविष्यत तयो रेतच्च श्रुत्वा राजा श्याममुखो जात अस्मि न्नवसरे आवाभ्यामुक्त तात साम्प्रतमेव साधुभ्यामुक्त ससारस्वरूप तत आवयो रल एव विधावसानेन विषयसुखेन आवयोरेतद्वचस्तातेन प्रतिपन्न आवाभ्याच भ्रातृस्नेहेन स्वदेहसुखकारणानि त्यक्तानि भ्रातुरेव स्नानभोजनादिचिन्ता कुर्वन्त्यौ आवां तिष्ठाव अन्यदाऽस्मद्भ्राता पृथिवी भ्रमता दृष्टा

कुमारभवन्मातुलपुत्रीपुष्पवती कन्यका तद्रूपा चित्तचित्तस्तां हृत्वा आगता परं तत् दृष्टिं सोढुमक्षमो विद्यां साधितुं गतः अतःपरं वृत्तान्तो युष्माकं ज्ञानगोचरोऽस्ति तस्मिन् काले भवदन्तिकादागत्य पुष्पवत्या आवयोर्भ्रातृवधवृत्तान्तः कथितः ततः शोकभरेण आवां रोदितुं प्रवृत्ते मधुरवचनैः पुष्पवत्या रक्षिते तदा आवां शङ्करीविद्या एवं वक्तुं प्रवृत्ता असौ भ्रातृवधकारी ब्रह्मदत्तचक्रवर्त्ती भविष्यति युवां मुनिवचनं किं न स्मरथ एतद्वचनमाकर्ण्य आवाभ्यां जातानुरागाभ्यां मानितं परं पुष्पवत्या बालिकया स्नेहरससंभ्रान्तया रक्तपताकां विहाय श्वेतपताका चालिता तद्दर्शनानन्तरं त्वमन्यत्र कुत्रापि गतः नानाविधग्रामाकर नगरादिषु भ्रमन्तीभ्यां आवाभ्यां त्वां न क्वचिद्दृष्टः ततो विखिन्ने आवां इहागते साम्प्रतमवातर्कितहिरण्यसमं तव दर्शनं जातं ततो महाभाग पुष्पवती व्यतिकरं स्मृत्वा कुरु अस्मत् समीहितं एवं श्रुत्वा कुमारेण सहर्षं मानित गन्धर्वविवाहेन तयो. पाणिग्रहणं कृतं एक रात्री ताभ्यां समं उषित्वा प्रभाते कुमारस्तयोरेवमुवाच युवां पुष्पवत्या समं गच्छतं तया समं तावत् स्थातव्यं यावन्मम राज्यलाभो भवति एवं श्रुत्वा ते गते तावत् कुमारो न तद्धवलगृहं न तं परिजनं पश्यति चिन्तितवांश्च एषा विद्याधरी मायेति चिन्तयन् रत्नवती गवेषणा निमित्तं तापसाश्रमाभिमुखं गतः न च तत्र रत्नवती दृष्टा न चान्यः कोपि पुरुषो दृष्ट ततः कं पृच्छामीति विचार्य इतस्ततः पश्यति तावदेको भद्राकृतिः पुरुषस्तत्रायात कुमारेण स पृष्ट. भो महाभाग एवंविध रूपनेपथ्या एका स्त्री मयात मुक्ता कल्येऽद्य वा त्वया दृष्टा तेन भणितं पुत्र त्वं किं तस्या रत्नवत्या भर्त्ता कुमारो भणति एवं तेन भणितं कल्ये सा मया रुदती दृष्टा अपराह्णकाले तस्याः समीपे गतः पृष्टा च सा मया पुत्रिका कासि त्वं कुत समागताः किंतेशोककारणं क्व त्वया गन्तव्यं तया किञ्चित्कथिते सामया प्रत्यभिज्ञाता मम त्वं दौहित्री भवसीति उदित्वा मया तस्य लघुपितु समीपे गत्वा शिष्टा तेनाप्युपलक्ष्य सा विशेषा दरेण स्वमन्दिरे प्रवेशिता सर्वत्र त्वं गवेषितः परं न क्वचिद्दृष्ट सांप्रतं सुन्दरं जातं यत् त्वं लब्धः एवमुक्त्वानीत कुमारस्तद्गृहे उपचारः कृत तत्र महो

लयेन रत्नवती पाणिग्रहण कुमार कृतवा[तया सह विषयसुख मनुभव[कियत्काल तस्थौ अन्यदा वरधनुवर्यं दिवसोऽद्येति उक्ता तद्गृहे कुमा
रेण ब्राम्हणादयो भोजिता अस्मिन्नवसरे वरधनु कृतब्राम्हणवेषो भोजन निमित्त मागत एव भणितु प्रवृत्त भो स्थापयन्तु तस्य भोज्यतापि यथा
यदि मम भोज्य प्रयच्छत तदा तस्य परलोकवर्त्तिन उदरे भोज्य संक्रमति गृहपुरुषै स्तच्च कुमारायशिष्ट कुमारोपि गृहाद्वहि र्निर्गत दृष्टो वरधनु
प्रत्यभिज्ञातस्य गाढ कमारेणा लिङ्गित गृहमध्ये प्रवेशित स्नानमज्जन भोजनादिभि सत्कृतश्च अनन्तर कुमारेण पृष्टो वरधनु स्ववृत्तान्त जगौ यथा
तस्यां रात्रौ निद्रावश मुपागतेषु युष्मासु सत्सपृष्टतो धाविला चोरेण एकेन कुडङ्गान्तरितेन मम पादे बाणप्रहार कृत तद्वेदना परवशोह निपतितो मह्यौ
तले पर अपाय भीरुत्वेन मया युष्माक न निवेदित रथस्तु अग्रे चलित अहन्तु ग्रामे पतित वृक्षान्तराले चलन् महता कष्टेन तस्मिन् ग्रामे प्राप्त ० यत्र
यूयं स्थिता तेन ग्रामाधिपतिना सत्कृत युष्माक प्रवृत्ति श्रुत्वाऽहमत्र प्रगुणीभूतो भोजन प्रस्तावे समागत यूय मत्रमद्भाग्यान्मिलिता अथ तयो
स्तानाऽवियुक्तयो सुखेन दिवसायान्ति अन्यदा ताभ्यां परस्परमेव विचारित यथा आवभ्यां कियत्काल मुक्तपुरुषा कराभ्या स्यातव्य एवं च चिन्तयतो
स्तयोर्गत कियान्काल मन्यदा तत्र समायातो मधुमास मदनमहोत्सवे जायमाने सर्वलोको नगराद्बहि क्रीडितु मायात वरधनु कुमारावपि कौतु
केन नगराद्बहिर्गतौ निर्भर क्रीडारस निमग्ने लोकेऽतर्कितएव पातित मिठो निरङ्कुशोराज्ञ हस्ती तत्रायात समुच्छलित कोलाहलो भग्न क्रीडा
रसो नष्ट समन्तान्नारी निकर एका च बालिका समुन्नत पयोधरा नश्यन्ती तस्य हस्तिनो दृष्टौ पतिता सा मरण मार्गयन्ती इतस्तत पश्यति तस्या
परिजना पूत् कुर्वन्ति भयभ्रातावास्या पुरीभूता कुमारेण स करोहकित एषा मोचिता सोपिकरीतां मुक्ता रोषवश विस्तारित लोचन प्रसा
रित शुण्डादण्ड शीघ्र कुमाराभिमुख धावित कुमारेणापि उत्तरीय वस्त्र गजाभिमुख प्रक्षिप्त गजेन तद्वस्त्र शुण्डया गृहीत्वा गगने प्रक्षिप्त गग

नाम्न पुनर्भूमौ निपतितो तद्ग्रहणाय यावत्करी पुनर्भूम्यभिमुखं परिणमतितावदुत्प्लुत्य कुमारस्तत्स्कन्धमारूढ़. स्व करतलाभ्यां तत् कुम्भस्थल मास्फालितवान् मधुरवचनैश्च सन्तोषितः सन् करी स्व वशंनीतः समुच्छलितः साधुकारः जयति कुमार इति पतितं बन्दिजनै कुमारेण स करी मालान स्तम्भ समीपं नीतो बद्धश्च नरपति स्तमनन्य सदृशं दृष्ट्वा परमं विस्मयं प्राप्तः स्वमन्त्रिणं पप्रच्छकएषः ततः कुमार स्वरूपाभिज्ञेन मन्त्रिणा उक्तं एषः ब्रह्मराज्ञः पुत्रो ब्रह्मदत्तकुमार इति ततस्तुष्टेन राज्ञानीतः कुमार स्व भुवनं सत्कृत स्नानमज्जन भोजनादिभिः ततः कुमारस्याष्टौ स्व पुत्र्यो दत्ताः महोत्सवपूर्वं तासां पाणिग्रहणं कुमारेण कृतं तत्र कियद्दिनानि वरधनुकुमारौ सुखेन स्थितौ अन्यदा एका स्त्री कुमारसमीपमागत्य भणितुं प्रवृत्ता यथा कुमारोऽस्ति किंचिद्वक्तव्यं कुमारेणोक्तं वद सा उवाच अस्यामेव नगर्यां वै श्रमणो नाम सार्थवाहस्तस्य पुत्री श्रीमती अस्ति सा मया बालभावा दारभ्य पालिता या त्वया तदानी हस्तिसंभ्रमाद्रक्षिता तया हस्तिसंभ्रमोत्तरित्वा तदानीं जीवितदायकं त्वां सा स्नेहेन विलोकितवती साम्प्रतं त्वदेक चित्ता तद्रूपलावण्यकलाकौशलमोहिता त्वामेव स्मरन्ती परिजनेन कथमपि स्वमन्दिरं नीता तत्रापि न मज्जन भोजनादिदेहस्थितिं करोति तदानीं मया तस्या उक्तं कथं त्वमकाण्डे ईदृशी जाता यावन्ममापि प्रतिवचनं न ददासि हसित्वा सा एवमुवाच हे अम्ब भवत्याः किमकथनीयं परं लज्जया किं चिद्वक्तुं न शक्नोमि पुनर्मया साग्रहं पृष्टा सा उवाच येनाहं हस्तिसंभ्रमाद्रक्षिता तेन समं यदि मम पाणिग्रहणं न स्यात् ततो मेवश्यं मरणं एवमुक्ता तया अहं तव समीपे प्रेषिता अङ्गी कुरुतां बालिकां कुमारेण तद्वचोऽङ्गीकृतं प्रशस्तदिवसे तस्याः पाणिग्रहणं कुमारेण कृतं वरधनुना तु सुबुद्धिनामात्य पुत्रानन्दननाम्न्याः पाणिग्रहणं कृतं एवं च द्वयोरपि विषयसुखमनुभवतो स्तयोर्गता कियन्तो वासराः तयोः सर्वत्र प्रसिद्धिर्जाता तौ अन्यदा गतौ याराणस्यां ब्रह्मदत्तं बहिः स्थापयित्वा वरधनुर्नगरस्वामि कटकसमीपं गतः एष हर्षितः सबलवाहनः संमुखो निर्गतः कुमारं हस्तिस्कन्धे समारोप्य

नगरी प्रवेशोत्सवो महान् कृत स्व भवने नीतस्य कुमारस्य स्नानमज्जनभोजनादि सामग्री कृत्वा प्रकाम सत्कार कृत्वा च स्वपुत्री कनकवती अनेकाश्व
रथद्रव्यकोशसहितादत्ता प्रशस्तविवाहो जात तया सम विषयसुखमनुभवतस्तस्य सुखेन कालो याति ततो दूती सम्प्रेषणेनाकारिता सबलवाहना
पुष्पचूलराजधनुमन्त्रिकणेरदत्त भवदत्तादयोऽनेके राजमन्त्रिण समायाता ते सर्वे कुमारो राज्येऽभिषिक्त तदा ब्रह्मदत्त आयुधस्थाने चक्ररत्नमुत्पन्नम्
वरधनुस्तु सेनापति कृत ब्रह्मदत्त सर्वसैन्यसहितो दीर्घनृपोपरिचलित ग्रनवच्छिन्न प्रयाणै काम्पिल्यपुरे प्राप्त दीर्घनृपेणापि कटकादीना स्वकीय
कारणाय दूत प्रेषित तैस्तुनिर्भर्त्सितो दूत स्वस्वामिसमीपे गत ब्रह्मदत्तसैन्येन काम्पिल्यपुर समन्तादेष्टित ततो दीर्घनृपेण एव चिन्तित कियत्काल
मस्माभिर्बिलप्रविष्टै स्थेय साहसमवलम्ब्य नगरात् स्वसैन्य परिवृतो दीर्घ नृपोनिर्गत्य समुखमायात ब्रह्मदत्त दीर्घनृपसै ययोर्घोर सग्राम प्रवृत्त क्रमा
द्ब्रह्मदत्तसैन्येन दीर्घनृपसैन्य भग्न अथ दीर्घ नृप स्वयमुत्थित ब्रह्मदत्तोपि तमायात वीक्ष्य प्रदीप्तकोपानलस्तदभिमुख चलित तयो र्द्वयो युद्ध लग्न
अनेकैरायुधैर्निक्षिप्तैर्न तयो सग्रामरस सपूर्णो नभूव ब्रह्मदत्तेन ततश्चक्र मुक्त चक्रेण दीर्घनृपमस्तक च्छिन्न ततो जयत्येष चक्रवर्त्ती इत्युच्छलित [illegible]
कत सिद्धगन्धर्वैर्देवैर्मुक्ता पुष्पवृष्टि उत्तश्च उत्पन्नोय द्वादशचक्री ततो जनपदलोकै स्तूयमानो नारीवृन्दकृतमङ्गल कुमार स्वमन्दिरे प्रविष्ट पुनस्साधि
तानि षट खण्डानि कृतश्च सकलसामन्तै र्ब्रह्मदत्तस्य चक्रवर्त्यभिषेक चक्रवर्त्ति त्व पालयन ब्रह्मदत्त सुखेन काल निर्गमयति अन्यदा चक्रवर्त्तिन पुरो
नटेन नाट्य कर्त्तुमारब्ध स्वदासी अपूर्व कुसुमदामगण्ड हस्ते ढौकित तत्र प्रेक्षतो गीतविनोद शृण्वत् चक्रवर्त्तिन एव विमर्शो जात एवविधो नाट्य
विधिर्मया क्वचित् दृष्ट क्वचिच्चेदृश पुष्पदामगण्डमपि घ्रातएव चिन्तयत स्तस्य जातिस्मरणमुत्पन्न दृष्टा पूर्वभवास्तत्र सौधर्मे पद्मगुल्मविमानेऽनुभूत नाट्य
दर्शन दिव्य पुष्पाघ्राणादिक स्मृतिपथ ययौ देवसुखस्मरणेन मूर्च्छा गत पतितो भूमौ चक्री पार्श्ववर्त्तिभिर्वातोत्क्षेपादिना स्वस्थोकृत ततश्चक्रवर्त्तिना

पूर्व भवभ्रातृ शुद्ध्यर्थं श्लोकार्द्धं मिदं रचितं यथा अखदासी मृगी हंसी मातङ्गावमरौ तथा इदं श्लोकार्द्धं कृत्वा चक्रिणा वरधनु सेनापते रग्रं इदं श्लोकार्द्धं सर्वत्र निर्घोषय एतत्पश्चिमार्द्धं यः पूरयति तस्य राजा राज्यार्द्धं ददाति इदं श्लोकार्द्धं सर्वैर्लोकैः शिक्षितं ते यत्र तत्र निर्घोषयन्ति अत्रावसरे स पूर्व भवसम्बन्धीभ्राता चित्रजीव पुरिमताल नगरे इभ्य पुत्रो भूत्वा सञ्जात जातिस्मरणो गृहीतव्रत स्तत्र नगरे मनोरमा विधाने आरामे समवसृतः तत्र प्रासुके भूभागे पात्रोपकरणानि निक्षिप्य धर्मध्यानोपगतः कायोत्सर्गेण स्थितः अत्रान्तरे आरघट्टिकेन पठ्यमानं तत् श्लोकार्द्धं मुनिनाश्रुतं ध्यानोप योगेन स्व भ्रातृस्वरूप सर्वमवगम्य मुनिना उत्तरचरणद्वयंपूरितं एषा नौषष्टिकाजाति अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः ततोऽसावारघट्टिकस्तत् श्लोकार्द्धं लिखित्वा प्रफुल्लास्य पङ्कजो गतो राजकुल पठितश्चक्रिणः पुरः संपूर्णः श्लोक ततः पूर्वं भव भ्रातृस्नेहातिरेकेण चक्री मूर्च्छां गतः क्षुभिता सभा रोषवशं गतेन सेव कवर्गेण आरघट्टिकश्चपेटाभि र्हन्तुमारब्धः हन्यमानेन तेन जल्पे इदं पदद्वयं मया न पूरितं किन्तु वनस्थितेन मुनिनेति विलपन्नसौ मोचितो गतमूर्च्छेण चक्रिणा पूर्वभवभ्रातृमुनि समागतं श्रुत्वा तद्दर्शनेच्छाकृष्ट चित्तो ब्रम्हदत्त चक्री सपरिकरो निर्ययौ उद्याने तं मुनिं ददर्श वंदित्वाग्रे उपविष्टः मुनिना प्यारब्धा धर्मदेशना दर्शिता भवनिर्गुणता वर्णिता. कर्मबन्धहेतवः ख्यापितो मोक्षमार्गः ख्यापितः शिवसौख्यातिशयः इमां देशनां श्रुत्वा पर्षत्सम्विग्ना जाता ब्रम्हदत्तस्तु अभावित एवमाह भगवन् यथा त्वसङ्गसुखेन वयमाह्लादिता स्तथा राजश्रीकारेण साम्प्रतंमस्मानाह्लादयन्तु पश्चादावां तपः सममेव करिष्यावः एतदेव वा तपसः फलं मुनिराह युक्तमिदं वचो भवता मुपकारोद्यतानां परं इयं मानुष्यता दुर्लभा सततं पतनशीलमायु श्रीश्चञ्चला मन वस्थिता धर्मबुद्धि विषयाः विपाक कटव विषयासक्तानां च ध्रुवो नरकपातः दुर्लभं पुनर्मोक्षबीजं विरतिरत्नं तत्त्यागान्नरकपातहेतुःकतिपयदिनभावि राज्याश्रयणा न विदुषां चित्तमाह्लादयति तत परित्यज्य कदाग्रहं प्राग्भवानुभूतः दुःखानिस्मरपिवजिनवचनामृतरसं सञ्चरतदुक्तमार्गेण सफलीकुरु

मनुष्यजन्मेति स प्राह भगवन् पारागेनादृष्टसुखवाञ्छाग्रामतालधय तन्मैवमादिश काम मत्सभोहित मुनिराह ससारसुख भुक्त परभवे मध्ये दु खाय भावोतितत् त्याग कार्यं रे एव भणिता वार वारमुक्तोपि यदा चक्रवर्त्ती नप्रतिबध्यते तदा मुनिना चिन्तित आ ज्ञान पूर्वभवे सनत्कुमार चक्रिस्त्रीरत्नकेश समर्गेनजाताभिलाषातिरेकेण स पूर्वभवेनुनामया निवार्यमाणेपि चक्र वर्तिपदवी प्रार्थितनिदान कृत तस्येदृश फल मत कारणादसौ दुष्टाध्यवसायो जिनवचनानामसाध्य इत्युपेक्षित मुनिस्ततो विजहार क्रमेण मोक्ष गत चक्रिणोपि प्रकामसुखमनुभवत कियान् कालो नीत अन्यदा एकेन पूर्वपरिचितेन द्विजातिनोक्तोसौ भो राजाधिराज ममेदृशो वाञ्छा समुत्पन्नास्तियच्चक्रि भोजन भक्ष्ये चक्रिणोक्त भो द्विजमामक भोजन भोक्तु त्वमक्षम यतो मा विहाय मद्भोजन कस्य न परिणतिमतीपूपमस्ति नोक्त धिगस्तु ते राज्य लक्ष्मीमाहात्म्य यदन्नमात्रदानेप्यालोचयसि ततश्चक्रिणा तस्य भोजनमङ्गीकृत स्वगृहे नियत्र स्वभोजन दानेन भोजितयासौ भार्या पुत्रस्नुषादुहितृ पौत्रादि कुटम्बान्वित भोजन कृत्वा स स्वगृहे गत रात्रावत्यन्तजातोन्माद प्रसरोसौ मन पीडित मातृस्नुषाभगिनीव्यतिकरी महावेदना नष्टचित्त प्रवृत्तोऽकार्यं माचरितु द्विज द्वितीये दिने मदनोन्मादो पशान्तो परिजनस्य निजमास्य दर्शयितु मपारयन्निर्गतो नगरात्स द्विज एव चिन्तयामास अनिमित्तवैरिणाचक्रिणाह विडम्बित भ्रमपथहता तेन द्विजेन वने भ्रमता एकोऽजपालकोदृष्ट स कर्करकाभिरश्वत्थपत्राणिकाणो कुर्वन् लक्ष्यवेधोपवृत्तं ते द्विजेन चिन्तित मद्विवक्षित कार्यंकरोयमिति कृत्वोपचरितस्तेनदान सन्मानादिभि कथित तेन स्वाभिप्रायोस्य रहसितेनापि प्रतिपन्न अन्यदा गृहाद्विनिर्गच्छतो ब्रह्मदत्तस्य कुड्यान्तरित तनुनाऽनेन अमोघ वेधिनानिक्षिप्तगोलि कया समकाल उत्पाटिते लोचने राज्ञातद्वृत्तान्त अवगम्य उत्पन्नकोपेन असौ स पुत्रबान्धवो घातित चक्रिणाऽन्ये द्विजा घातिता पश्चात्स कोपेन च चक्रिणा मन्त्रिण एव मुक्त यथा ब्राह्मणा ना अक्षीणि कर्षयित्वास्थालेनिक्षिप्य स्थाल मम पुरोनिधेहि यतोहमेतानि स्वहस्तेन मर्दयित्वावैरपालनसुखमनुभवामि मन्त्रि

णातस्य चक्रिण' क्लिष्टकर्मोदयवसतां अवगम्यशाखोट तरुफलानिशालेनिचित्य अर्पितानि सोपि रौद्राध्यवसायस्तानि फलानि प्रचि बुद्धामर्दयित्वा सुख मन भवति एव प्रत्यहं करोति ततः सप्तशतानि षोडशोत्तराणि वर्षाणि आयुरनुपाल्य प्रवर्द्धमान रौद्राध्यवसाय सप्तमनरक पृथिव्यां त्रयस्त्रिं शत्सागरोपमायुर्नारको बभूव सांप्रत सूत्र मनुष्टीयते जाईपराजिओ खलुकासिनियाणन्तु हत्थिण पुरंमि चुलइबं भदत्तो उप्पन्नोप उमगुम्माओ १ खलु इति निश्चये अलङ्कारे वा जात्या चाण्डालाख्यया पराजितः पराभूतः सर्वतो निर्ज्जरितो गृहीतदिच' संभूतचित्तस्य लघुभ्राता हस्तिनागपुरे चक्रवर्त्ति स्त्रीरत्न वन्दनात् केशपाश सस्पर्शात् चक्रवर्त्ति पद प्रार्थनारूपं निदानं अकार्षीत् ततः स संभूत साधुः पद्मगुल्म विमाने नलिन गुल्म विमाने उत्पन्नः ततश्च नलिन गुल्म विमानात् सम्भूत जीवो ब्रह्मराज्ञो भार्यां चूलणीतयो पुत्रत्वेन ब्रह्मदत्त इति नाम्ना उत्पन्नः इति गाथार्थः १ कम्पिल्ले सम्भूओ चित्तो

सूत्र

जाईपराजिओखलुकासिनियाणंतु हत्थिणपुरम्मि। चुलणीए बंभत्तो उववण्णो पउमगुम्माओ ॥१॥ कंपिल्ले संभूओ चित्तोपुणजाओपुरिमतालंमि। सेट्ठिकुलंमि विसालेधम्मं सोऊणपव्वइओ ॥२॥ कंपिल्लंमिनयरेसमागया दोविचित्त

भाषा

जाति चण्डालः निश्चयेन पराजित' जातिचण्डालनो तिणे जोत्यो थको आकर्षीत् निदान' हस्तिनागपुरे नियाण' कीधु' हथिणा पूरनगरने विषे सभूति नामे साधुइ' चुलन्या उदरे ब्रह्मदत्तं चक्रवर्त्तिचुलणीनो कूखिमाहिब्रह्मदत्त चक्री उत्पन्नः नलिनीं गुल्मविमानात् नलिनीं गुल्मविमानथी चवीनेऊपनो १ काम्पिल्यपुरे नगरे सभूतिः उत्पन्नः संभूति कांपिल्यपुरे नगरे ऊपनो चित्रजीव पुनः पुरिमताले नगरे चित्रनो जीवपुरिमतालनगरने विषे श्रेष्ठिकुलेश्रवि साले उत्पन्नः विस्तीर्णसेठनो कुलतीहां ऊपनो भोगववा लागो तत्र धर्मंश्रुत्वा प्रव्रजित साधुने पासे धर्मसांभली' ससार असारजाणी दिक्षा लीधी २

उ टीका
अ १३
४०१

पुण्णनाम्नी पुरिमतालम्मि सेट्ठिकुलम्मि विसाले धम्म सोऊण पव्वइ ओ २ काम्पिल्ये नगरे ब्रम्हराजा तद्भार्या चुलणी पुत्र सम्भूत जीवो ब्रम्हदत्त सञ्जात चित्तश्चित्रजीव पुन पुरिमताननगरे विशाले विस्तीर्णे एकस्मिन् श्रेष्ठिन कुलेश्रेष्ठिपुत्र सञ्जात सच चित्र जीवस्तत्र श्रेष्टिपुत्रत्वेन समुत्पद्य अनुक्रमेण तारुण्ये धम शुत्वा प्रव्रजित प्रव्रज्या ग्रहीत २ काम्पिल्य मियनयरे समागयादो विचित्त सम्भूयासुह दुक्खफलविवाग कहन्तिते एक्कमेक्कस्स ३ अघ सचित्त जीवो गृहीतदीक्ष समुत्पन्न जाति स्मृत्यादिज्ञानो विहरन् कापिल्ये नगरे समागत यत्रैव कापिल्ये नगरे ब्रम्हदत्तोपि लब्ध चक्रवर्त्तिपद स्ति इति एकदा देवोपनीत मन्दारक पञ्च पुष्पाणा माला साधम्य दृष्ट्वा समुत्पन्न जातिस्मृ तिरभूत् तदा च ब्रम्हदत्तेन आसदासो मृगो हसो मातङ्गो अमरो तथा इति श्लोकार्द्ध स्वयम्बु सम्बन्ध गर्भित कृत्वा नगरे उद्घोषणा कारिताय कश्चिदस्य तत्र श्लोकार्द्ध पूरयति तस्मै वाञ्छित ददामि राज्यार्द्ध ददामि अस्मिन्नेवावसरे भ्रातृबोधनार्थं समागतेन चित्रजीव साधुनाइ मानो षष्ठिका जातिरन्योन्याभ्या वियुक्तयोरिति श्लोकोत्तरार्द्ध पूरित तदनमध्ये अरघट्ट भ्रामकेण आरामिकेण साधुमुखेन शुत्वा राज्ञोग्रे उक्त राजापि शुत्वा मूर्च्छा प्रापततो राज्ञा पृष्टेन कुट्टितेन तेनोक्त मया श्लोकार्द्ध पूरित नास्ति किंतु आरामे कायोत्सर्गस्थितेन एकेन साधुना पूरित ब्रम्हदत्त चक्रधरेण श्लोकपूरणात् ज्ञातोय साधुर्ममभ्राता ततो राजा गुरुसमीपेगतोऽत एव सूत्रकारे णाह कापिल्ये नगरे द्वावपि चित्रसम्भूत जीवो चक्रवर्त्ति मुनीश्वरो समागतो एकत्र मिलितो तौच सुखदु खफलविपाक सुकृत दु कृतकर्मानुभावरूप

सूत्र

सम्भूया सुहदुक्ख फलविवाग कहेंतिते । एक्क मेक्कस्स ॥ ३ ॥ चक्कवट्टी महिड्ढीओ बभदत्तो महायसो भायर बहुमा

पाभा

कापिल्ये नगरे कापोल्यनगरनेविषे समागतो मिलितौ द्वावपिचित्रसभूतीजोवो एकठामि मिल्या चित्रसभूतिना जीवबे भाइ एकठा हुआ सुखदु फलविपाक सुखदु खनाजेफलतेहनो विपाक भोगववोतोहो एकैकस्य परस्पर कथयत तेबे भाइ माहोमाहि सुखदु खभोगव्यातेहनो वात कहेछे २

एकैकस्य परस्परं कथयतः स इति अध्याहार्यं ३ चक्कवट्टी महड्ढीओ बमदत्तो महायसो भायरं बहुमाणेणं इमं वयणमब्बवी४ ब्रम्हदत्तचक्रवर्त्ति भ्रातरं बहु मानेन मनसारागेण इदं वचनं अब्रवीत् कथम्भूतः चक्रवर्त्ति महर्द्धिकः सम्प्राप्त षट्खण्डराज्य पुनःकथभूतो ब्रम्हदत्त महायशाः महत्यशो यस्य स महा यशा भुवनत्रय प्रसिद्ध ४ आसिमोभायरादोवि अन्नमन्नवसाणुगा अन्नमन्नमणुरत्ता अन्नमन्नहिएसिणो ५ मोइति आवां द्वावपि भो भ्रातः भ्रातरौ आस्व पूर्वजन्मनि आवां उभौ भ्रातरौ अभूव इत्यर्थ कथंभूतौ द्वौ अन्योन्यवशानुगौ अनयोनयपरस्परं वशं अनुगच्छतः इति अनयोनयवशानुगौ अनयोनयवशवर्त्तिनौ इत्यर्थः पुन कथंभूतौ अनयोनं अनुरक्तौ परस्परं स्नेहवन्तौ पुनः कोदृशौ अनयोना हितैषिणौ परस्परंहितवाञ्छकौ एतादृशौऽभूव इत्यर्थः अत्र मुहुर्मुहुरनयो नयग्रहणं चित्ततुल्यता अत्यादरख्यापनार्थं ५ दासा दसन्ने आसोमिया कालिञ्जरे नगे हंसासयंगतीराए चण्डाला कासिभूमिए६ क्व च अभूतां तत्स्थानमाह

सूत्र

णेणं । इमं वयण मब्बवी ॥ ४ ॥ आसिमो भायरादोवि अन्नमन्न वसाणुगा । अन्नमन्न मणुरत्ता अन्नमन्न हिए सिणो ॥ ५ ॥ दासा दसन्ने आसी मियाकालिंजरे नगे हंसा मयंगतीराए । सोवागा कासि भूमीए ॥ ६ ॥

भाषा

चक्रवर्त्तीमहर्द्धिकः चक्रवर्त्तिमोटी ऋद्धीनोधणी ब्रह्मदत्तनामामहायशाः ब्रह्मदत्तएहवेनामे महायश भ्रातरंभवांतर सहोदरं बहुमानेन सत्वापछिला भवना भाईने घणोमानदेइने इद वचन अनवोत् इस्यु वचनकहेछे ४ पूर्वभवेआवांजातौ भ्रातरौ द्वावपिपाछिलेभवे आपणबेभाई हुआ चांडालकुलने विषे अन्योन्य वशिवर्तिनो माहोमांहि परमस्नेहवत अन्योनयानुरक्तौमाहोमांहि अनुरतापरस्पर हितवांछकौमाहोमाहि हितवांछेछे५ दासौ दसार्णे देशेउत्पन्नौ दास हुआ दशार्ण देसनेविषे ततोपि कालिंजरेनगे मृगोजातः कालिंजरपर्वतने विषेमृगहुआ तथा मृतगंगानदीतीरेहंसाजातौमृतगंगानदीतीरे हंस

भावां दशार्णदेशेदासौ आख कालञ्जर नाम्नि नगे पर्वते मृगौ आख पुनर्मृत गङ्गानदीतटे हसौ आवां आख काशीभूम्या वाराणस्यां चाण्डाली अभूव६ देवायदेवलोगमि आसि अम्हे महड्डिया इमाणो छट्ठिया जाइ अन्नमन्नेण जाविणा ७ पुनस्ततश्चाण्डालजन्मत परश्चो भ्रात अम्हे आवां देवलोके सौधर्मे देवलोके महर्द्धिकौ देवौ अभूव हे भ्रात णोईति आवयो अन्योन्य जाविणा परस्पर साहित्य रहिता परस्पर वियोग सहिता षष्टिका जातिरिय प्रत्यक्षा जाता ७ इति श्रुत्वा मुनिराह कम्मानि याणपगडा तुम्हे राय विचिन्तिया तेसिं फलविवागेण विप्पओग मुवागया ८ हे राजन् त्वया कर्माणि विचिन्तितानि आर्त्त ध्यानरूपाणि ध्यानानि ध्यातानि आर्त्त ध्यानहेतुभूतानि कर्माणि विचिन्तितानि इत्यर्थं निदानेनउपार्जितानि कीदृशानि कर्माणि निदानप्रकृतानि भागप्रार्थनारूपेण प्रकृतानि निदानानि प्रकृतानि प्रकपणबडानि तेषाकर्मणां फलविपाकेन फलोदयेन आवां विप्रयोगमुपागतौ वियोग प्राप्तौ अथ

सूत्र देवाय देवलोग मि आसि अम्हे महड्डिया। इमाणो छट्ठिया जाई अन्नमन्नेण जाविणा ॥ ७ ॥ कम्मानियाण पगडा तुमे रायविचितया। तेसि फल विवागेण विप्पओग मुवागया ॥ ८ ॥ सच्च सोयप्पगडा कम्मामए पुरा कडा।

भाषा हुआ चडालीजातौकाशीभूम्या वाणारस्या चाडालहुआ वाणारसीनगरीइ ६ सौधर्मदेवलोके देवोजातौ सौधर्मदेवलोकने विषे देवता हुआ उत्पन्नो आवां महर्द्धिकौआपणहुआ महर्द्धिकदेवता एषा आवयो षष्टीजाति षष्टोभव एआपणोछट्ठोजाति छट्ठोभवछे अन्योन्येनविना पृथक्‌ इ आइइ भवने विषे आपण जूदी जातिनाधे जूदा हुआ ७ अथ मुनीरुवाच कम्माणिनिदान्‍ा ... प्रगडानि वडानितियाणु करीने कर्मबाध्यु अहो राजन् त्वयाचिंतितानि कृतानि हेराजन् स्नोरत्र देखीतेभोग चींतव्यानीयाणोकीवो तेषा कर्मणा फलविपाकेन ते कर्मने उदये करीनेविप्रयुक्तप्राप्तौ पृथकजातौ जूदाजूदाउपना

चक्रीप्रश्न करोति सच्चसो अप्पगडा कम्मामए पुराकडाते अज्ज परिभुञ्जामो किनुचित्ते विसेतहा ९ हे साधो हे भ्रातः मया पुरा पूर्वजन्मनि कर्माणि कृतानि कथम्भूतानि कर्माणि सत्यशौचप्रकटानि सत्य मिथ्याराहित्यं शौचं आत्मशुद्धिकारकं धर्ममयं अनुष्ठानं सत्यञ्च शौचञ्च सत्य शौचेताभ्यां प्रकटानि प्रसिद्धानि एताद्दृशानि यानि मया सुकर्माणि कृतानि तानि शुभकर्माणि अद्य अस्मिन्जन्मनि परिसमन्तात् भुञ्जे स्त्रीरत्नभोगद्वारेण तेषां फलं विषय सुखानि अनुभवामि हे चित्र यथाहं राज्यसुखं भुञ्जे तथा किं चित्तोपि भवानपितु भुंक्ते नु इति वितर्कों वोर्थ चक्रीवदति यथाहं इदानी पूर्वोपार्जि तानां सुकृतानां फलानि परिभुञ्जे तथा किं चित्रभवान् परिभुंक्ते अपितु भवान् न परिभुंक्ते एव भवतम् भिक्षुकत्वात् तानि सुकृतानि किं नि फलानि जातानि इति आशयः ९ अथ मुनिराह सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं कडाणकम्माण न मोक्ख अत्थि अत्थेहिं कामेहिं उत्तमेहिं पाया ममं पुन्नफलोववेए १० हे राजन् नराणां सुचीर्णं सम्यक्प्रकारेण कृतं संयमतपः प्रमुखं सर्वं सफलं एववर्त्तते नराणां इत्युपलक्षणत्वात् सर्वेषामपि सफलं भवति यतः कृतेभ्य कर्मभ्यो मोक्षोनास्ति जीवैः कृतानि कर्माणि अवश्यं भुंज्यते प्राकृतत्वात्सप्तमी स्थाने षष्ठी कृतानां कर्माणां मोक्षोनास्ति यदुक्तं कृतकर्मक्षयोनास्ति कल्प

ते अज्ज परिभुंजामो किं नु चित्ते विसेतहा ॥ ९ ॥ सव्वं सुचिन्नं सफलं नराणं कडाण कम्माण नमोक्ख अत्थि ।

वियोगपाम्यो ८ अथ ब्रह्मदत्ताहसत्यशपाल्यागशौच निर्दंभताब्रह्मदत्तकहेछे सत्यवोल्योकापटनकोधोदद्रीदस्या शुभकर्म्माणियानिमयापूर्वभवेकृतानि पाछलाभवनेंविषेंजेमेंभलाकोधाहता ते अयइहभवे अहं परिभुंजामोवेदयामि। ते तपजपनाफलआजहुंभोगवूंछुं किमिति अश्रेभोचित्रभवानपि तथा न परिभुंक्ते कि कारणं। अहो चित्र ते शुभकर्ममाहरेउदय आव्यांछुंभोगवूंछुंताहराशुभकर्म्म एकीहांगयाएस्युंथयुं ९ मुनिराह सर्वमपिपुण्यं सुचीर्णं रूडुंकृतनराणां सर्वजीवानां सफलं भवतियतोकहेछे पुण्यकीधांमर्वजीवने उदयआवे निष्पालनजाइकटेक्ती कृतेभ्यःकर्मभ्योमुक्तिर्नास्ती कीधाजेकर्मते

उ०टीका
अ०१३
४०५

कोटि गतैरपि भवन्य ने यभोक्तव्य क्षत कर्म शुभाशुभ १ तस्मात् ममापि आत्मा अथेद्रव्ये पुन कामैर्विषय सुखे पुण्यफलैरुपेतो वर्त्तते कीदृशे अर्थे
कामे उत्तमेमनोहरे अथवा कोदृशे कामे अर्थे प्रार्थनीये अत्यन्ते प्राप्य तेजनैरिति अथाम्ते अर्थैं दृत्यनेन चित्रजीवेन साधुना उक्त मयापि सर्वे
न्द्रियाणां सुखानि द्रव्याणिच पुण्यफलानि प्राप्तानि इति त्वया न ज्ञातव्य अनेन किमपि सुकृतफल न लब्धमस्ति इतिभाव १० तदेव सूत्रकारो गाथया
आह नागाहि सम्भूय महाणुभाग महड्ढिय पुण्यफलोपवेय चित्त पि जाणाहितहेवराय इड्ढीजुइ तस्स वियप्प भूया ११ पूर्वनाम्ना ऋषिर्वदति हे सम्भूत
महाराज यथा त्व मामान महानुभाग तथा महर्ड्डिक तथा पुण्यफलोपपेत जानासि तथा चित्रमपि मामपि तादृश एव जानाहि महान् अनुभागो
यस्य न म नुभागस्त महानुभाग इह माहात्म्य तथा महती ऋद्धिर्यस्य स महर्ड्डि महर्ड्डिरेव महर्ड्डिकस्त महर्ड्डिक विशाल लक्ष्मीक पुण्यफलेन उप
पेत स्त एतादृश ऋद्धिर्हि पद घतु पद धनधानादि सम्पत्ति द्युतिर्दीप्तिस्तस्य चित्रस्यापि अर्थात्ममापि प्रचरावर्त्तते इति जानीहि च शब्दोऽत्यस्मादर्थे इच

सूत्र
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि । आया मम पुण्णफलो ववेए ॥ १० ॥ जाणाहि सभूय महाणुभाग । महड्ढिय पुन्न
फलो ववेय । चित्तपि जाणाहि तहेव राय । इड्ढीजुई तस्सवियप्पभूया ॥ ११ ॥ महत्थ रूवावयणप्पभूया गाहाणु

भाषा
श्योनोवरूटेनश्री अर्थे द्रव्ये कामे शब्दादे युत उत्तमे द्रव्यैकरोकामभोगउत्तमप्रधानतिणेकरीने आत्मामपुण्यनफलेनउपनीसहीत आत्मापुण्य
फलतिणेकरीनेंसुहित १ हे सभुतयथात्व आत्मान जानासिकिदृश महानुभाग तथा महर्ड्डिकपुनरफलोपपेत अहो सभूति तिजेतु आपणा आत्माने
जाणेछे । पुण्यवत ऋद्धिवत महानुभावचित्रमपि तथैवजानीहि । भोराजनअहोराजाचित्रनेंपणितु इमजजोमजुम्पनाटोलानि ऋद्धि द्युति चित्रात्ममपि

उ०टीका
अ०१३
४०६

वृद्धसम्प्रदायः यथा निदानसहितः सम्भूतश्चक्रवर्त्ति रभूत् तथा चित्र साधुर्निदानरहित एकस्य श्रेष्टिनो महर्द्धिकस्य कुले पुत्रत्वेन उत्पन्न तत्र चक्रवर्त्तिवत् ऋद्धि रासीत् प्रतिदिनं सुवर्ण दीनाराणां कोटी याचकेभ्यो ददान आसीत् निरन्तरञ्च षट् ऋतु सुखदायकेषु मनोहरोच्चैस्तर प्रासादेषु भोगान् भुञ्जान अनेक गजतुरगरथ यानादिक ऋद्धिमान् सुरूप कामिनीनां परिकरेण परिवृतोद्वात्रिंशद्विधनाटकं पश्यन् सदा सुखनिमग्नो बहुधा भोगरसयुक्तो बभूवेति कथानकंज्ञेय ११ महत्थरूवावयणप्पभूआ गाहाणुगीया नरसंघमज्झे जं भिक्खुणो सीलगुणे ववेया इहज्जयंते समणोमिजाओ १२ अथ चेत् एतादृशो ऋद्धिस्तव आसीत्तर्हि कथत्यक्ता हे भ्रातः सा गाथा साधुभिर्नरसंघमध्ये नराणां मनुष्याणां संघो नरसंघस्तस्य मध्ये मनुष्य सभामध्ये अनुगीता उक्ता मया श्रुतेतिशेषः गीयते इति गाथा धर्माभिधायिनो सूत्रपद्धतिर्भवाख्य विरसुखात् कर्णगोचरीकृता कथम्भूता गाथा महार्थ रूपा महान् द्रव्य पर्याय भेद सहितो निश्चय व्यवहार सहितः च अर्थो यस्य तन्महार्थं तादृश रूपं यस्याः सा महार्थरूपा पुनः कीदृशा गाथा वयणप्पभूया वचनैर्नयभेदाः प्रभूता वचन प्रभूता अल्पाक्षराबह्वर्थां इत्यर्थ सा इतिका गाथायां गाथा श्रुत्वा इत्यध्याहारः यां धर्माभिधायिनीं सूत्रपद्धतिं श्रुत्वा भिक्षव साधवः शीलगुणोपपेताः सन्त इह जिन प्रवचनेयतते मुनयः शीलं चारित्रं गुणोज्ञानं शीलञ्च गुणश्च शीलगुणौ ताभ्यां उपेताः शीलगुणोपपेताः क्रियाज्ञानसहिताः सन्तो हंन्मते स्थिरा भवन्ति इत्यर्थ तां गाथां श्रुत्वा अह अपि श्रमणस्तपसि निरतो जातोस्मि न तु दुःखात् साधुसञ्जातोस्मि इति भाव. १२ उच्चोदए महु

सूत्र गीयाणरसंघमज्झे । जंभिक्खुणो सीलगुणो ववेयाइहज्जयंतेसमणोमिजाओ ॥१२॥ उच्चोदएमहुकक्के यवभेपवेइया आ

भाषा प्रभूतावद्धीआसीत्। ऋद्धीद्युतिकांतिघणीचित्रनेपणिहतो ११ मुनि पुनराह: महार्थरूपावह्वर्थाः वचनैयस्तोका: अर्थवणोछेवचनथोडाछे इदृशीगाथा मुनिभिः कथितः णरसंघमध्ये इसीगाथाऋषीश्वरे मनुष्यनासंघमांहिंकहताहुवा यांगाथांश्रुत्वाभिक्षुकोमुनयःसीलगुणेयुक्तासतः जेगाथानेंसांभलीइमनीश्वर

कहेय वली परेहया आवसहायरम्मा इमगिह चित्तधणप्पभूय पसाहि पञ्चाल गुणोववेय १३ अथ ब्रह्मदत्त पुन साध निमन्त्रयति पूर्वनाम्ना सम्बोधन क्रत्वा वदति हे चित्र त्व इम इद प्रभूत गृहे प्रचुरधन सहित गृह प्रसाधि प्रतिपालय गृहेस्थित्वा सुख भुंक्ष्व इत्यर्थं अथवा चित्तधणप्पभूय इति एक एवपद गृहविशेषण चित्र नानाप्रकार प्रभूत प्रचुर धन यस्मिन् तत् चित्रप्रभूत धन एतादृश ममभन्दिर गृहमित्यर्थं पुन कीदृश गृह पञ्चालदेशाना गुणा इन्द्रियविषया शब्दरूप रसगन्धस्पर्शा तै रुपेत पाञ्चालगुणोपपेत च पुन रम्या रमणीया मम आवसथा प्रासादा प्रवेदिता प्रकर्षेण वेदिता प्रवेदिता प्रकटा सन्नितान् अपित्व प्रसाधि इति शेष ममवार्द्धिक रत्नपुर सरैर्देवैरुपनीता प्रासादास्तेके प्रासादा उच १ उदय २ मधु ३ वार्क ४ ब्रह्म ५ एते पञ्चप्रासादा यत्र चक्रिणो रोचन्ते तत्रैवस्थवार्द्धिकरत्नेन चक्रिसूत्रधारेण विधीयन्ते इति वृद्धा आहु तस्मादन इद गृहमिति,पृथक उपन्यस्त पाञ्चालाना गुणग्रहणतु अत्युदोर्णत्वात् अन्यथा भरतक्षेत्रस्य सारतदगृहेस्त्य व १३ नट्टेहि गीएहियवाइएहि नारीजणाइ परिवारयन्तो भुजाहि भोगाइ इमाइभिक्खू ममरोयइ पव्वज्जाहु दुक्ख १४ भोचित्र हे भिक्षो हे साधो मम एतत् रोचते एतत् हृदये प्रतिभाति इति निश्चयेन प्रव्रज्या दुःख

वसहायरम्मा। इमगिह चित्तधणप्पभूय पसाहि पञ्चालगुणो ववेय ॥१३॥ नट्टेहि गीएहियवाइएहि णारीजणाइ

गोनगुणसहित इह प्रवचननेविषे उद्यम करतेहे तोगाथायुक्ता अहमपियमणोजात १२अथ चक्रोराइ उच्चोदय मधु मक श्रभ ४ ब्रह्म५ पाच आवासकहे प्रवेदिता कथोता पचआवासा रम्या मनोज्ञाए पचआवास मनोज्ञमनोहरकह्या इद गृह हे चित्रविचित्रधने पूर्णएवरइहेचित्र,नानाप्रकारउ धनतिणेकरीने भल्योपूर्ण परिपालय पचालदेशगुणयक्त एघरतूपालि अगोकारकरिके इवुछे घरपचालदेशनीजे न मोगिरिकरोनभयोऊे १३ पुन चक्रोआह। नाटैः वादित्रैश्चवलोवविसवधनाटकगोतवाजा नारोजनान् परिवारयन् । व्यापारयन् स्त्रीएगीतया

वर्त्त ते इति शेष: दीचायां सुख किमपि नास्ति तस्मात् हे साधील इमा प्रत्यच दृश्यमानान् भोगान् भुंच्व कथम्भूत: सन् नाटकैर्द्वात्रिंशद्विधै गीतैर्गा न्धर्वशास्त्रोक्तैर्वादित्रै र्भरतशास्त्रोक्तै मृदङ्गादिभिस्तथा नारीजनै: परिवृत सन् विषयसुखानि अनुभव अत्र नारीजनानामेव ग्रहणं कृतं अन्येषां गजाश्ववस्त्रासन द्रव्यादीनां ग्रहणं न कृत तत्तु तस्य स्त्रीलोलुपत्वात् सर्वविषयेषु स्त्रीणामेव प्राधान्यात् १४ तं पुव्वनेहेणकयाणुरायं नराहिवं कामगुणे सुगिद्धं धम्मस्सिओतस्सहियाणुपेही चित्तोइमं वयणमुदाहरित्था १५ यदा तु ब्रम्हदत्तेन सम्भूतजीवेन चित्रजीवं साधुं प्रतिउक्तं तदा चित्रजीव साधु स्तिवरूदं वचनं त ब्रम्हदत्त नराधिपं चक्रिण प्रति उदाजहार अवादीत् कथम्भूत त ब्रम्हदत्तं पूर्वस्नेहेन कृतानुरागं पूर्वभवबान्धव प्रेम्णा विहित प्रीति भाव पुन कथम्भूतं नराधिप कामगुणेषु विषयसुखेसु गृद्धं लोलुपं कीदृशश्चित्र जीवसाधु धर्माश्रित: धर्मं आश्रित' पुन: कीदृशश्चित्र तस्य ब्रम्हदत्तस्य हितानुप्रेची हितवाञ्छक: हित अनुप्रेचते इत्येव शीलहितानुप्रेचो १५ किं उदाजहारेत्याह सव्वं विलब्वियङ्गीय सव्व' नट्टं विडम्बिय सव्वे आभ

परिवारयंतो। भुंजाहि भोगाइं इमाइं भिक्खू ममरोयई पव्वज्जाहु दुक्खं ॥ १४ ॥ तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं णराहिवंकामगुणे सुगिद्धं । धम्मस्सिओतस्सहिआणुपेही चित्तो इमं वयण मुदाहरित्था ॥१५॥ सव्वं विलवियंगीयं

ननाटकीधांके ओभिक्षु इमान् भोगान् भुक्त अहोसाधुतुं एओगभोगविमसप्रव्रज्यादु:खरूपारोचते मुझने दीक्षादुक्खरूप लागेछे १४ तं ब्रम्हदत्तं पूर्वस्नेहेन कृतानुरागं ब्रम्हदत्तपूर्वभव स्नेहेकरीनें रागधरयोयतोजपरि नराधिपं चक्रवर्त्तीनं कामगुणेषु गृद्धं नराधिपचक्रवर्त्ति प्रतिं केहवुछें राजाकामनेविषेगृद्धइच्छ ओछे धर्माश्रित: तस्यराज्ञोहितचित्तक चित्रसाधुधर्मने विषे आश्रयछे राजा जपरिहित चितवेछें चित्र:इद बचन उदाहृतवान्। चित्रसाधूइस्युं वचन

रणाभारा सव्वे कामा दुहावहा १६ हे राजन् गीत सव विलवित विलापतुल्य सव नाट्य नाटक विडम्बित भूतावेष्टित पीतमद्यादिजनाग विक्षेप तुल्य सर्वाणि आभरणानि भारतुल्यानि सर्वे कामा दुःखावहा दुःखदायका गजपतङ्ग भृङ्ग मीन कुरङ्गादीनामिव बन्धन मरणादिकष्टदा इत्यर्थ १६ बालाभिरामेसु दुहावहेसु नतसुहं कामगुणेसु राय विरत्तकामाणतवोहणाण ज भिक्खुण सीलगुणेरयाण १७ हे राजन् विरक्तकामाना विरक्ता ज्ञानेन्य इति विरक्तकामास्तेषा निजितेन्द्रियाणा भिक्षुणा साधूना यत्सुख वर्त्तते तत्सुख वसतगुणेषु शब्दादिषु इन्द्रियसुखेषु कामिना पुरुषाणा नास्ति कीदृशेषु कामगुणेषु बालाभिरामेषु बालाना निर्विवेकाना अभिरामाबालाभिरामास्तेषु मूर्खाहितविषयेषु रज्यन्ते पुन कीदृशेषु कामगुणेषु दुःखावहेषु दुःखदायकेषु कीदृशाना भिक्षुणा तपोधनाना तपएवधन येषान्ते तपोधनास्तेषा पुन कीदृशाना शीलगुणेरताना शीलस्यगुणा गुणकारिणो नय

सूत्र

सव्व नट्ट विडवीय । सव्वे आभरणाभारा सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥ बालाभिरामेसु दुहावहेसु णतसुहंकामगुणेसु राय विरत्तकामाण तवोहणाण । जभिक्खुण सील गुणे रयाण ॥ १७ ॥ नरिंद जाई अहमाणराणसोवागजाइ दुहओ

भाषा

गीयातिक रेढे सगवदित रूप गीत सवगीतविलापरूपछे सवनाट्य विड वनप्राय सर्वनाटक विडवनाप्रायछे सवे आभरण भारभूता सघला आभरणभारभूत सर्वकामा दुखदायका सर्वकाम सुखदुःखनादेणहारछे मुनिराज १६ बालाना मूर्खाणाऽभिरामेषु हर्षोत्पादकेषु दुःखकारणेषु एकामगिकी बालजनसूखोइने भलालागेइमजपने भो राजन् इदृशेषु कामगुणेषु ततसुख नहि अहोराजा एहवाकामगुणनेविषेते सुखनथी विरक्तकामाना तपोधनानां कामभोगथी विरक्तथाछेतपजेधनछे यातत्सुखभिक्षुण शीलगुणेरताना ततसुख अनाननास्ति नैसुख साधुनेछे सीलनेविषेसुखवीजेठानेनथी १७

विधि व्रह्मगुप्तस्त्वेषु रताः आसक्तास्तेषां १७ नरिंदजाई अहमा नराण सोवा गजाई दुहंगोगयाण जहिंवयं सव्वजणस्सवेसा वसीयसोवाग निवेसणेसु १८ हे नरेन्द्रनराणां मनुष्याणां मध्ये अधमानिंद्याजातिः श्वपाकस्य चण्डालस्य जातिर्वर्त्तते सा जातिर्द्वयोरपि आवयोर्गताः प्राप्तायं इति वाक्यालङ्कारे यस्यां जातौ आवां सर्वजनस्यद्वेष्यौ अभूव श्वपाक निवसनेषु चण्डालगृहेषु वसीय आवां अवसात् १८ तीसे उजाई इउपावियाए वुच्छामि सोवाग निवेसणेषु सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा इहंतु कम्माइं पुरे कडाइं १९ तस्यां च जातौ तु पापिकायां पापिष्टायां श्वपाकनिवसनेषु चाण्डालगृहेषु वुच्छामु इति उषितौ निवासं अकार्षं कीदृशौ आवां सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयौ हीलनीयौ इहतु अस्मिन् जन्मनि पुराकृतानि कर्माणि प्रकटीभूतानीत्यर्थः प्राचीनजन्मनि सम्यगनुष्टानरूपाणि कृतानि तेषां फलानि जातिकुलबलैश्वर्यरूपाणि इह प्रकटितानि तस्मात् धर्मकरणे प्रमादोनविधेय इत्यभिप्रायः १९

सूत्र

गयाणं। जहिं वयं सव्व जणस्सवेस्सावसीय सोदागणि वेसणेसु ॥ १८॥ तीसेय जाईयउपावियाए बुच्छामुसो दागणि वेसणेसु। सव्वस्स लोगस्सदुगंछणिज्जा। इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं ॥ १९॥ सो दाणिसिं राय महाणुभा

भाषा

हे नरिंद्र हे राजा अधमा जातिः मनुष्याणां हे राजन् अधमाजाति मनुष्यमांहिं चंडालजातिः द्वयोरपिगत्योरभूत् ते चंडालनीजाति आपणबे जणनेहुई यत्रगतौवयं सर्वजनस्य द्वेष्यौ अप्रीतिकरीजातौ ते चडालरीगतरे विषे आपेनिंदनींकहुआ अप्रीतिनाविषे करणहारसर्वलोकानेस्थितौश्वपाकचंडालगृहेषु आपणचांडालनाघर मांहि वस्यारह्या १८ तस्यांजातौप्राप्तायांते चंडालनींजातिपांम्यायकां स्थितौचांडालगृहेषु चांडालनाघरमांहिरह्याथका सर्वस्यलोकस्य जुगुप्सनोयानिनिंदनीं यानिसर्वलोकनें जूगुप्सनियनिंदनींकहुआ इहजन्मनिपुराकृतानि कर्माणि शुभानि उदयंगतानि एजन्मने विषे पाछलि भवेजे

सोदागिसिराय महाणुभाभो महड्डिभो पुन्नफलोववेभो च इत्तु भोगाइ असासयाइ आदाणहेउ अभिनिक्खमाहि २ हे राजन् यस्त्व सम्भूत पुराआसी मौदागिसि इति सत्वमिदानीं राजा चक्रधरो महानुभागो माहात्म्य सहितो जातोसि कीदृशो राजा मइद्धिको विशालसक्षीक पुन कीदृक् पुण्य फलोपपात पुण्यफलसहित तस्मात् आदानहेतो आदानस्य चारित्रधर्मस्य हेतो आदीयते स विवेकै रित्यादान चारित्रधर्मस्तस्य हेतो अभिनिक्ख माहि अभिनि ज्ञम अभिसमन्तात् नि क्रमे गृहपाशात्त्व नि सरसाधुर्भवेत्यर्थ कि कृत्वा अशाश्वतान् अनित्यान् भोगान् त्यक्त्वा पुराकृतस्य धर्मस्य फल चेत्त्वया इदानो भुज्यते तदा इदानीमपि धर्म अङ्गीकुरु यतोयै शाश्वत सुखभाक स्यादितिभाव २० धर्मस्य अकरणे दोषमाह इह जीविएराय असा सयमि धणियतु पुन्नाइ अकुव्वमाणो सेसो अइमम् सुशोयणोए धम्म अकाउण परम्मिलोए २१ हे राजन् इह अस्मिन् मनुष्यजीविते मनुष्यायुषि पुण्यानि

गो। मड्डिड्डियो पुन्नफलो ववेओ। च इत्तु भोगाइ असासयाइ आदाणहेउ अभिणिक्खमाहि ॥ २० ॥ इह जीविए राय असासयमि। धणियं तु पुन्नाइ अकुव्वमाणो। से सोयई मच्चु मुहो वणीए। धम्मं अकाउण परम्मिलोए॥२१।

सूत्र

भाषा

गअशर्मंओयाइताने उदेश ध्ये यके १८ अस्मिन्काले हे राजन् महाणुभागीमर्ज्जंसे हे राजन् इहकालने विषे तु माहानुभाववर्त्तेछे महर्द्धिक धर्मफलोप पेतोपुण्यरहितछे पुनैः करीसहितछे त्यज्ञाभोगान् अशाश्वतान्। भोगकालोने अशाश्वताछे त्याने आदानमोक्ष तत्निमित्त दीक्षायहणश्च आदान मादान फलोइमोक्षतेहने निमित्तइदिक्षालेर इह जीविते राजन् आसास्वतेसतो एजीवितव्य हे राजन् अशाश्वतोछे अत्यर्थपुण्यानि अकुर्वमानोजीव तु धको मशोच्यतेपश्चात्मृत्य मुख उपनोतेमतिपछे जोवडोमरण आवते शोचिद्रूखोहोइ धर्म अकरीनेपरलोके गच्छति२१ यथा इहलोके सिंहोमृग गृहीत्वा

उ०टीका
अ०१३
४१२

अज्ञानी मनुष्य: सुकृतानि न करोति सदु कर्मभिर्मृत्युमुख उपनीत: सन् धर्मं अकृत्वा परस्मिन्लोकेगत शोचते पश्चात्तापं कुरुते मरणसमये एव जानाति हामया मनुष्यजन्म प्राप्य धर्मो न कृत इति चिन्तांकरोति कथम्भूते जीविते धर्मियतु अत्यन्त अशाश्वते २१ जहेहसोहोव्मियंगहाय मचू नरं नेइहु अंतकाले एतत्समाया वपिया नभाया कालं मितम्मिं सहरा भवंति २२ यथा इह संसारे सिंहो मृगं गृहीत्वा स्ववश नयति तस्मिन् मनुष्यस्य मरणकाले माता च पुन: पिता च पुनर्भ्राता एते सर्वे अंशधरा न भवन्ति अंशं जीवितव्य भाग धारयन्ति मृत्युनानीयमानं नर रक्षन्तीति अंशधरा स्वजीवितव्यदायकान भवन्तीत्यर्थ: २२ पुनर्दुःखादपि न त्रायन्ते इत्याह णतस्सदुक्खं विभयन्तिनाइओ नमित्तवग्गानसुया नबंधवा एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं कत्तारमेवं अणुजाइकम्मं २३ पुन हे राजन् मनुष्यस्य अर्थात् दु:खार्त्तस्य नरस्य दु:ख शारीरिकं मानसिकं दुःखं ज्ञातय स्वजना: न विभजंति

सूत्र

जहेह सीहोवमियं गहाय। मच्चू नरं णेइ हु अंतकाले। णतस्समायावपि यानभाया। कालंमि तम्मं स हरा भवंति ॥ २२ ॥ णतस्सदुक्ख विभयं तिणाइओ। ण मित्तवग्गाण सुयाण बंधवा। एक्कोसयं पच्चणुहोइ दुक्खं कत्ता

भाषा

यांति जिमइ हांसीं हमृगलानें झालोनें लेईजाइ वयात्र्य:नरंनयतिइुनिश्चितं प्रांतसमयेतिमकाल मनुष्यनेअंत्यसमयेलेईजाय न तस्य माता वा पिता वा बांधववावा तेहने माता न पिता न भाई तस्मिन्काले सहरादु खसंभाविनो न भवति ते कालनेविषे ते सगातेहजोवनु दुक्खकोईवंटावेनहीं२२ न तस्य वा दुक्खं ज्ञातयोऽपि तेहनु दुक्खज्ञाति पणिवटावोसके नहीं नमित्रवर्गा: समूहा: नसुता: नबांधवा: नमित्रदुक्खवेहेंचावे न बेटानभाई एकोजीव प्रत्यनुभवति स्वयं दुक्खं वेदयति एकलोजजीवदूक्खसहें कर्त्तारमेव अनुयांति गच्छति कर्मवारणहारने पूठे कर्मजाय ॥ २३ ॥ त्यक्त्वाद्विपद भार्यादि

दु खस्य विभागिनो न भवन्ति भित्वय निवसमूहा पुन सुता अगना पुनबान्धवा भ्रातरोपि न दु ख विभजन्ति तदा कि भवतीत्याह एकोय जो योऽसवाइ स्वयमेव दु ख प्रत्यनुभवति एकाको स्वयमेव दु ख असाता वेदनोभुक्त कथ स्वजनादिवर्गे सति एको दु ख भुक्ते तत्राह कर्म शुभाशुभरूप कर्तारं एव अनुयाति अनुगच्छति य कर्मणा कर्त्ता सएव कर्मणा भोक्तास्यादिति भाव यदुक्त यथा धेनसहस्रेषु वत्सो विदन्ति मातर तथा पुराकृत कर्मकर्तार मागच्छति १ २ २ चिच्चादुपयच च उप्पयच खित्त गिह धण धन्न च सव्व सकम्मवीओ अवसोपयाइ परभव सुन्दरपावग वा २ ४ अगरण भावना उक्ता एकत्वभावना वदति अथ स्वकर्मात्म द्वितीयोय जीव स्वस्वकर्म स्वकर्म सएव आत्मनो द्वितीय यस्य सस्वकर्मात्म द्वितीय स्वकर्म सद्वितीय जीव सुन्दर देवलोकादिस्थान वा अथवा पापक नरकादिस्थान एवम्विधं पर भव अन्यलोक अवश सन् प्रयाति कि त्यक्त्वा द्विपद भार्यादि च पुनश्चतु पद गजाश्वादि क्षेत्र इक्षुक्षेत्रादिगृह ससभौमिकादिधन दीनारादि रजत स्वर्णादिधान्य तन्दुल गोधूमादि च अब्दाहस्त्राभरण सार रत्नादि एतत् सव त्यक्त्वाद्वितीयजीव परभवे व्रजतीत्यर्थः २४ अथ मरणादनतर पश्चात्तस्य पुत्रकलत्रादय कि कुर्वंतीत्याह त इक तुच्छ सरीरग विद्दगयदहिय उपाव

रमेव अगुणो दुकम्म ॥ २३ ॥ चिच्चा दुपय चउप्पय चखेत्त गिह धण धन्न च सव्व। सकम्मवीओ अवसो पया।
इ पर भव सु दर पावग वा ॥ २४ ॥ त एक्क तुच्छ सरीरग से विद्दं गय दहिय उ पावगे ण। भज्जाय पुत्तावियणाय

पशु पक्ष्यादि तुरगादिद्विपदचतुष्पदक्षाडीने खेत्र गृह धन धान्य च सर्व त्यक्त्वा जीवकर्मद्वीतीय कर्मसहाय अवसोपरवश प्रयाति गच्छति एजीवआपणा कर्ममात्र लेईने परभवको जायपरलोके पर लोके शुभाशुभ पाप अशुभ वा परलोकि जाइ भला कर्मकोधाइ तोदेवताथाइभु डाकर्मकोधाभु डोगते जाइ

गेणं भज्जाय पुत्तो वियनाय ओय दायारमन्नं मणुसङ्कमन्ति २५ से इति तस्य मृतस्य पुरुषस्य तत् एकाकं जीवरहितं अतएव तुच्छं असार शरीरं चितीगतं श्मशानाग्नि प्राप्तं पावके दग्ध्वा भस्मसात् कृत्वा पश्चात् तस्य भार्या च पुन॰ पुत्रापि च पुनर्ज्ञातयः स्वजना॰ एते सर्वेपि अन्यं दातारं अनुसंक्रमन्ति कोर्थ यदा कश्चित् पुरुषो म्रियते तदा तच्छरीरं प्रज्वाल्यतस्य स्त्रीपुत्रबान्धवाः अन्यं स्व निर्वाहकर्त्तारं धनादिदायकं सेवन्ते सर्वेपि स्वार्थ साधन परायणा भवन्ति २५ उवणिज्जइ जीवियमप्पमाय वन्नं जराहरइ नरस्सराया पञ्चालरायावयणं सुणाहि माकासि कम्माइं महालयाइं २६ हे राजन् नरस्यप्राणिनो जीवितं आयुप्रमाणं यथा स्यात्तथा कर्मभिर्न्त्यवे उपनीयते पुनर्जीविते सत्यपि नरस्य वर्णं शरीरसौन्दर्यं जराहरति वृद्धावस्था रूपं विनाशयति तस्मात् हे पञ्चालराज हे पाञ्चालदेशाधिप वचनं मम वाक्यं शृणु महालयानि महांति मांसभक्षणादीनि कर्माणि त्वं माकार्षीः २६ अथ नृपतिराह अहंपि जानामिज हे हसाहजंमे तुमं साहसिवक्कसेयं भोगाइमेसङ्गकरा भवन्ति जेदुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं २७ हे साधो इह जगति यथा वर्त्तते तथाहं अपिजानामि यत् त्वं मे मम एतत् वाक्यं सङ्गिष्यसि शिष्यारूपेण साधिकथयसि परं किङ्करोमि इमे प्रत्यक्षं भुज्यमानाः

सूत्र

उय । दातार मन्नं अणुसंकमंति ॥ २५ ॥ उवणिज्जई जीविय मपमायं । वन्नं जराहरइ णरस्स रायं । पंचाल रायावय

भाषा

॥ २४ ॥ तं एकअसारदेहंरोगेभर्‍ तां ते एकएशरीररोगीकरीने भश्मो चिताप्राप्त दग्धं अग्निनापछेएशरीर च हिमांहि बालीइ अग्निसु बालीइं भार्या च पुत्रा पि ज्ञातयः स्त्रीपुत्रज्ञाति प्रमुखइष्टकार्यकरदातार अन्यजनयाति नियतः तेहने चाल्योस्त्रीबेटाज्ञातीप्रमुखवीजाजननें जाइ आश्रये बीजानी चाकरीसेवाकरे ॥ २५ ॥ उपनीयतेचयं प्राप्नोति जीवितव्यं निरंतरएजीवितव्यनिरंतरक्षयपामेछे आउखुं निरंतरओछुपडेछे भो राजन् वर्णजराहरति नरस्य अहोराजामनुष्यनोवर्णरूपजराहरेछे भोपञ्चालराजन्वचनं शृणु अहोपञ्चालदेशनाराजायचनशांभलिमाकार्षीत् कर्माणि महारौद्राणि अहोराजातुं

भोगा सङ्गकरा भवन्ति वन्धनकरा भवन्ति कोदृशा इमे भोगा हे आर्य येभोगा अस्मादृशैर्गुरुकर्मभि दुर्जया दुस्त्यजा २७ हत्थिणपुरम्मिचित्ताद दृष्ट्वा नरवद्द महड्डिय कामभोगेसुगिद्धे ण नियाण मसुह कड २८ हस्तिनागपुरे भो चित्रमया निदान क्वत कोदृश निदान अशुभ भोगाभिलाषत्वात् अशुभ किं क्वत्वा नरपति सनत्कुमार चक्रिण दृष्ट्वा कोदृश चक्रिण महर्द्धिक कोदृशेन मया कामभोगेषु गृद्धेन इन्द्रियसुखलोलुपेन २८ तस्मै अप डिक्क तस्स इम एयारिसफल जाणमाणो विज धम्म कामभोगेसु मुच्छिओ २९ तस्य निदानस्य प्राग्भवक्वतभोगाभिलाषस्य इम प्रत्यक्ष भुज्यमान एता दृश वक्ष्यमाण फल जात कथम्भूतस्य तस्य निदानस्य अप्रतिक्रान्तस्य अनालोचितस्य यस्मिन अवसरे हस्तिनागपुरे आवा धनमन क्वत्वा प्रसन्नो तदा

सूत्र

ण सुणाहि । माकासि कम्माइ महालयाइ ॥ २६ ॥ अहपि जाणामि जहेह साहू जमे तुम साहसि वक्कमेय । •
भोगा इमे सगकराहवंति । जेदुज्जया अज्जो अम्हारिसेहि ॥ २७ ॥ हत्थिण पुर मिचित्तादट्ठूणं णरवइ महिड्ढीय ।
कामभोगेसु गिद्धे ण । णियाणमसुह कड ॥२८॥ तस्समे अप्पडिक्क तस्स इम एयारिस फल जाणमाणोविजधम्म ।

भाषा

महारौद्रभूता कर्मकरेमति ॥ २६ ॥ अहमपि जानामि,यथाइहेजगति हे साधो अहो साधुइ पणिभलीपरिजाणु छुयत ममलभापवसि वाक्य एतत अहो साधजितु वातमुझनेकहेंछेमुझने उपदेसदियेछेसोसाधोभोगा शब्दादय इमे प्रतिबधोत्पादका भवति अहो यतीएभोगभुझनें प्रतिबधकारणहुयेछे धम माहि अतराय करेछे ये भोगा ऽस्मादृशे कातरे जेणभोग अल्पसरिपाकातर अज्ञानीने छोडता ॥ २७ ॥ हस्ति नागपुरेभोचारित्रहेचीत्र हस्ती नागपुरने विषे दृष्टा । नरपतिसनत्कुमारचक्रिण महर्द्धिक देखीनेसनत्कुमारचक्रवर्तिनीऋद्धि कामभोगेषुगृद्धेनकामभोगनेविषेगृद्धहुउ मुर्छितहुउ

चक्रधरस्य स्त्रीरत्नस्य केशपाशो मम चरणे लग्नस्तदा मया निदान क्षतः तदात्वयाह निवारितः भो भ्रातः त्वं निदान माकार्षीः चेन्निदानं क्षतः स्यात् तदा मिथ्या दु क्षतं दातव्यं त्वया इत्युक्तोपि अहं निदानान्न निवृत्त इत्यर्थः जंइति यस्मात् कारणात् अहंजिनोक्तं धर्मं जानन् अपि कामभोगेषु सुतरां अतिशयेन मूर्छितोस्मि इन्द्रियसुखेषु लुब्धोस्मिनोचेत् ज्ञानस्य एतदेवफलं ज्ञानीविषयेभ्यो विरक्तः स्यात् अहं ज्ञाने सत्यपि विषयेषु रमा मे तन्निदान स्यैव फलमित्यर्थः २९ नागोजहापङ्कजलावसन्नो दट्ठुं थलं नाभिसमे इतीरं एवं वयं कामगुणेसुगिद्धा न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ३० हे साधो यथा नागो हस्तीपङ्कजलावसन्नः अल्पजले बहुपङ्के अवसन्नोऽत्यन्तं निमग्नस्तीरं दृष्ट्वाऽपिन अभिसमेति तीरस्य तटस्य अभिमुखं गतोपितटं न प्राप्नोति तीरन्तुदूरतः परन्तुस्थलं अपि दृष्ट्वा न उत्तमभूमिं प्राप्नोति एवं अमुनाप्रकारेण अनेन दृष्टान्तेन वयं इति अस्मादृशाः कामगुणेषु शब्दरूप रसगन्धस्पर्शा दिषु गृद्धाः लोभिनो भिक्षोर्मार्गं साधुमार्गं साध्वाचारं न अनुव्रजामः न प्राप्नमः तस्मात् किंकुर्मोवयं विषयिणो जानन्तोप्य जानन्त इव जाता इत्यर्थः३० अच्चेइकालोतुरियन्ति राइओ नया विभोगा पुरिसाणनिच्चा उविच्चभोगा पुरिसञ्चयन्ति दुमंजहाखीण फलं वपक्खी ३१ अथ मुनिः संसारस्य अनित्य

कामभोगेसु मुच्छिओ ॥ २९ ॥ णागोजहापंकजलावसन्नो । दट्ठुं थलंणाभि समेति तीरं । एवं वयं कामगुणेसुगिद्धाण भिक्खूणोमग्गमणुव्वयामो ॥ ३० ॥ अच्चेइकालोत्तरंति राइओणयावि भोगा पुरिसाणनिच्चा । उविच्चभोगा पुरिसं

निदानं अशुभं क्षतं तिवारे मे भूंडनोयाण कोधूं २८ तस्य नीदानस्य ममअनालोचितस्य ते नियाणोमे आलोयोनहीमोच्छामीदुक्कड़दीधोनही इदं एतादृशं फलं जातं एअम्हारेऋद्धितेहनोफलछुउं जानन्नपि यद्दहं धर्मं जेहभगणोधर्मनोमार्गछुं जाणं छुं एधर्मनाफल कामभोगेषु मूर्छितं कामभोग

लेन उपदेश ददामि हे राजन् काल अयेति अतिशयेन गच्छति कालस्य कियाति अयुर्यातोचर्यं रात्रय त्वरयन्ति उत्तालतया व्रजन्ति हे राजन् पुरुषाणां भोगा अपि अनित्या भोगा पुरुषं उपेत्य स्वेच्छया आगत्य पुरुषन्त्यजन्ति पुरुषा यद्यपि भोगान् त्यक्तुं न इच्छन्ति तथापि भोगा स्वयमेव पुरुषान् त्यजन्ति इत्यर्थं क कि इव यथा पक्षिण क्षीणफल वृक्ष यथा त्यजन्ति ३१ जइतसि भोगे च इउ असत्तो अज्जाइ कम्माइ करेहिराय धम्मेठिओ सव्वपयाणु कम्पोतोहोहिसिदेवो इउ विउव्वी ३२ हे राजन् यदित्व भोगान् त्यक्तुं अशक्तोसि असमर्थोसि तदा हे राजन् आर्याणि शिष्ट जन योग्यानि कर्माणि कुरु पुनर्द्धर्मेस्थित प्रजानकम्पो भव इतिशेष सर्वप्रजापालकोभव सर्वांयता प्रजाय सर्वप्रजा तासु अनुकम्पते इत्येवशील सर्वप्रजानकम्पो हे राज आय कर्मकरणात् त्व वेउव्वीवैक्रिय वैक्रिय शक्तिमान देवो निर्जर इतो भवादग्रे भविष्यसि ३२ न तुज्झभोगेच इऊण बुद्धी

वयति। दुम जहाखीणफल वपक्खी ॥ ३१ ॥ जइतसिभोगे चइउ असत्तो। अज्जाइ कम्माइ करेहि राय। धम्मे ठिओ सव्वपयाणु कंपी। तोहोहिसि देवोइउ विउव्वी ॥३२॥ नतुज्झ भोगे च इऊण बुद्धीगिद्धोसि आरंभ परिग्गहे

नेविपें मूर्छितइओछु जाणतु यको २८ ययानागोहस्तिपकयुक्तजलेमग्न हाथीजोमकादवसहितपाणीमाहिखूंतो इहास्थलतीर न प्राप्नोति हाथीतीरनेइढा हानेदेवेपथिनों सरोमके नहो अमुनाप्रकारेएवय कामगुणेष गृहाइम अह्ने कामभोगनें विषें मूर्छितइओछु भिच मार्ग नव्रजामीनसेवामहेतिणे कारणे ह यतोनोमार्गं आदरोमकत् नथो ३० अथ मुनिराह अयेतिचष्र याति काल सोघ्र गच्छतिरावय कालआउखोचषर घटेरात्रि पणिऊतावलीजाइ छेनापि भोगा पुरुषाणानित्या शाश्वता भोगपणिनिश्चयसु मनुष्यनेशास्वतानही उपेत्यागत्यभोगा पुरुषयजन्ति भोगापुरुषनेपासेआवीनेनासीजाइ

गिद्धोसि प्रारम्भ परिग्गहेसु मोहंकाओ इत्तिउ विप्पलावो गच्छामिरायं आमन्तिओसि ३३ हे राजन् अह गच्छामि अहं व्रजामि मयाल आमन्तितोसि मया त्वं पृष्टोसि धातूनां अनेकार्थत्वात् हे राजन् तुज्झ इति तव भोगान् त्यक्तुं बुद्धिर्नास्ति अनार्यकार्याणां भोगा एव कारणानिसन्तो अतो भोगान् अनार्यकार्याण्यपि त्यक्तुं मतिर्नास्ति पुन आरम्भ परिग्रहेषु त्वं गृद्धोसि लुब्धोसि आरम्भ परिग्रहान् न त्यजसि इत्यर्थः एतावान् विप्रलापः विविधवचनोपन्यासः मोघः कृतः निरर्थकः कृत जलविलोडनवत् व्यर्थोजातः तस्मात् कारणात् अथाहं त्वत्तः सकाशात् अन्यत्र व्रजामि तवाग्रास्ति इत्युक्त्वा मुनिर्गत अथ मुनौगते सति ब्रह्मदत्तस्य किमभूत्तदाह ३३ पञ्चालरायावियबंभदत्तो साहुस्स तस्सवयणं अकाउं अणुत्तरे भुञ्जियकाम भोए अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ३४ पञ्चालदेशानां राजा पाञ्चालराजो ब्रह्मदत्तश्चक्रवर्त्तिरपि अनुत्तरे सकल नरकवासेभ्य उत्कृष्टे अप्रतिष्टान नाम्नि प्रविष्टस्तत्रोत्पन्न इत्यर्थः किं कृत्वा अनुत्तरान् सर्व्वोत्कृष्टान् कामभोगान् भुंक्त्वा पुनः किंकृत्वा तस्य चित्त जीवसाधोर्वचनं उपदेश वाक्यं अकृत्वा निदानवारकस्य नरकागतिरेवतस्य गुरु कर्मत्वान्न साधो रूपदेशावकाशो जात इत्यर्थः. ३४ चित्तोविकामेहि विरत्तकामो उदग्गचारित्त

सु ॥ मोहं काउएत्तिउविप्पलावो। गच्छामिरायं आमंतिओसि ॥ ३३ ॥ पंचालरायावियबंभदत्तो साहुस्स तस्सवयणं

यथाक्षीणफलं वृक्ष पक्षिणस्तजन्ति जिमखीणफलवृक्षने पंखीछांडे ३१ यदित्वं भोगांस्त्यक्तुं न समर्थः जोतुं भोगछांडवाने समर्थ नहीं तदाकर्माणि आर्याणि उत्तमानि कुरुभोराजन् तुं आर्यउत्तमकर्मकरिभलं कर्मकरिधर्मस्थितः सर्वलोकेषु दयावान् धर्मने विषेरह्याथकासर्वजीवने विषेदयाकरे अतोनर भवात् देवोवैक्रियदेही भविष्यसिएमनुष्यसिएमनुष्यनाभवथीदेवताहोईं सवैक्रियशरीरनोधणी ३२ अथ यदा सनप्रति बुध्यते तदा मुनिराहः न तवभोगान् त्यक्तुं बुद्धि भोगछोडवाताहरी बुद्धिनथी गृध्ररूपमस्ति आरंभपरिग्रहेषु तुं मूर्छितछेओछे आरम्भपरिग्रहने विषे मयामोह वृथा कृतः एतावान्

तवो महेसो अणतर सञ्जमपालइत्ता अणुत्तर सिद्धिगइ गओत्ति बेमि ३५ चित्रोपि पूर्वं भवचित्रजीव साधुरपि महर्षिर्मैषामुनि अनुत्तर सर्वोपरि
यत्ति सिद्धिस्थानङ्गत किं कृत्वा अनन्तरक्षिनाम्ना विशुद्ध सप्तदशविध सयम पालयित्वा कथमभूत स साधु कामेभ्यो विरक्तकाम भोगेभ्यो विरक्ताभिलाष
पुन कोदृश स उदग्रचारित्र तपा उदग्र प्रधान साध्वाचार सर्वविरतिलक्षण दशविधरूप चारित्र तपो द्वादशविध यस्य स उदग्र चरित्रतपा एता
दृग सन् मोक्ष प्राप्तचित्र जोव मुनिरिति सुधमास्वामो जम्बूस्वामिन वाक्रति रे जम्बू अह तवाग्रे इति ब्रवीमि ३५ इति चित्रसभूतीय त्रयोदश
चित्रसभूतीय अध्ययन सपूर्ण ॥१३ अथ चतुर्दशमध्ययम मारभ्यते त्रयोदशेऽध्ययनेहि निदानस्य दोष उक्त चतुर्दशेऽध्ययनेनिर्निदानस्य गुणगाद
अत्र मुख्यतस्मुनिदान राहित्यमेव मुक्ते कारण इत्युच्यते तत्र सम्प्रदाय ये गो गोपदारको चित्रसभूत पूर्वभव मित्रो साधुसेवाकरी देवलोकं गतो

सूत्र

अक्काउ । अणुत्तरेसु जिय काम भोगी अणुत्तरेसोनरएपविट्ठो ॥३४॥ चित्तोविकामेहि विरत्तकामो । उदग्गचारित्तत
वोमहेसी । अणुत्तर सञ्जमपालइत्ता अणुत्तर सिद्धिगइ गउत्तिबेमि ॥ ३५ ॥ चित्तसभूइज्झयण सम्मत्त॥१३।

भाषा

मलापाएमे वचनामापकोकटकोधी गच्छामि हे राजन् निमन्त्रितोसि प्रष्टोऽसित्व हे राजन् जाउ छु तुम्हनेपुच्छोछे३३पचालराजापि ब्रह्मदत्त पचाल
देशनोराजा ब्रह्मदत्त तस्य साधो वचन अणवातेसाधूनु वचन अणकरीने सर्वोत्तमान कामभोगान् भुक्त्वा अणूत्तरसर्वथकोउत्तकष्टीनरकने विषेउपनो३४
चित्र सम्भूतपिण एकामभोगायकोविरक्तथयोछेकामको अभिलापावांछाजेहनो एहवोथको उदग्रप्रधानचारित्रतपवतमोटोरिषीश्वरसाधु महानुभावनिर्म्म
लश्रेरधनसजम यथा ख्यातचारित्रनिर्मलपालोने जेसाध अष्टकमजोतोने प्रधानसिद्धगतिप्रतेंप्राप्तथयोसिद्धस्थानिकें पहुतो इमकहुछु तिबेमि ॥ ३५॥

ततश्चुत्वा क्षितिप्रतिष्ठिते नगरे इभ्यकुलेद्वावपि भ्रातरौ जातौ तत्र तयोः चत्वारः सुहृदो जाताः तत्र भोगान् भुक्त्वा स्थविराणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा सर्वेपि प्रव्रजिताः सुचिरकालं संयम मनुपाल्य भक्तं प्रत्याख्यातं कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे पद्मगुल्मविमाने षडपि सुहृद पल्योपमायुष्का देवत्वेनोत्पन्नाः तत्र येते गोपजीव वर्जादेवाश्चत्वारः ततश्चुत्वा कुरुजनपदे इषुकारपुरे ऽवतीर्णाः स्तत्र प्रथम इषु कार राजाजात. द्वितीय स्तस्यैव राज्ञः पट्टदेवी कमला वती जाता तृतीय स्तस्यैव राज्ञो भृगुनामा पुरोहितः संवृतः चतुर्थ स्तस्यैव पुरोहित भार्यासंवृत्ता तस्यावशिष्टं नामगोत्रं यशा इति नाम जातं स च भृगु पुरोहितः प्रकाम सन्तानलाभ मभिलषति अनेकादेवोपयाचन कुरुते नैमित्तिकान् प्रच्छति तौ द्वावपि पूर्वभव गोपदेवौ वर्द्धमानावधिना एवं ज्ञातवन्तौ यथा आवां एतस्य भृगु पुरोहितस्य पुत्रौ भविष्याव' ततः श्रमणरूपं कृत्वा द्वावपि भृगुगृहे समायातौ सभार्येण भृगुणावन्दितौ सुखासनस्थौ धर्मं कथयतः तयोरन्तिके सभार्येण भृगुणा श्रावकव्रतानि गृहीतानि पुरोहितेन कथितं भगवन् अपत्यं भविष्यति नवेति साधुभ्यामुक्तं भवतां द्वौ दारकौ भविष्यतः तौ च बालावस्थायामेव प्रव्रजिष्यतः तयोर्भवद्भ्यां व्याघातो न कार्यः तौ प्रव्रज्यया लोकं प्रतिबोधयिष्यतः इति भणित्वातौदेवौ स्वस्थानं गतौ ततोऽचिरेणच्युत्वा पुरोहितभार्याया उदरे ऽवतीर्णौ ततो सौ पुरोहितः सभार्यो नगरान्निर्गत्य प्रत्यन्तग्रामेस्थितः तत्रैव सा ब्राह्मणी प्रसूता दारकौ जातौ लब्ध संज्ञौतौ ताभ्यां मुनिमार्गविरक्तता करणार्थं एवं शिक्षितौ य एते मुण्डितशिरस्काः साधवो इमन्ते ते बालकान्मारयित्वामांसं खादन्ति तत एतेषां समीपे श्रोमङ्गिनं कदापि स्थेयम् अन्यदातस्माद्ग्रामादेतौ क्रीडन्तौ बहिर्निर्गतौ तत्र, पथश्रान्तान् साधूनागच्छतः पश्यतः ततो भयभ्रान्तौ तौ दारकौ एकस्मिन् वटपादपे आरूढौ साधवस्तु तस्यैव वटपादपस्याधः पूर्वं गृहीतागनादिभोजनं कर्तुं प्रवृत्ताः वटारूढौ तौ कुमारौ स्वाभाविक मन्नपान पश्यतः ततश्चिन्तितुं प्रवृत्तौनैतेवा नमांसाशिनः किंतु स्वाभाविकाहारकारिणः क्वचिदेतादृशाः साधवो ऽस्माभिर्दृष्टा इति चिन्त

यतो भयोजाति मरणमुत्पद्य तत प्रतिबुद्धौ तौ साधून् वन्दित्वा गतौ मातृपितृसमीप अध्ययनोक्त वाक्यैः स्ताभ्या मातापितरौ प्रतिबोधितौ तद्वन निपुराजानञ राज्ञो प्रतिबोधितवतो एव षडपिनोवा गृहीत प्रव्रज्या केवल ज्ञानमासाद्य मोक्ष गता अथ सूत्र व्याख्यायते देवाभवित्ताणपुरे भवम्मिकेइ चुयाएग विमाणवासो पुरे पुराणे उसुयारनामे खाए समिद्धे सुरलो अरम्मे १ सकम्मसे सेण पुराकएण कुले सुदग्गेसुयते पसूया निव्विण ससारभया पहाय जिण दमग्ग मरण पवन्ना २ गाथाद्वयेसव्यध केचित् जीवा येवा केनापि न ज्ञायते यतोऽपि पूर्ववतुर्णामपि शेषजीवाना नाम नोक्त यौ पुनर्द्वौ चिरन्तभूताभ्याम् भवगेयौ अभूतौ तौ द्रव्य व्यवहारिण सुतत्वेन उत्पन्नौ तयो पुनयत्वारोमित जीवा स्तेषां अपि नामनैकापिनज्ञायते एव षडपि जीवा पूर्व अनिर्दिष्ट नामानोऽभूवन् अहो पश्यत पश्यत धर्मस्य माहात्म्य जीवानां भव्यकर्मपरिपाकत्व च केचित् जीवा पूर्वस्मिन् भवे देवी भूय देवत्व प्राप्यसौधर्म देवलोके नलिनो गुल्मविमाने एकत्र निवास कृत्वा स्वकर्मशेषेण स्वस्यकर्मणः पुण्यप्रकृति लक्षणस्य शेषेण ते षडपिजीवा

सूत्र देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी केई चुया एगविमाणवासी पुरे पुराणे उसुयारणामे खाए समिद्धे सुरलोय रम्मे ।१। स कम्म सेसेण पुराकएण कुलेसुदग्गेसुयतेपसूया। निव्विण्ण ससार भया जहाय जिणिंदमग्ग सरण पवन्ना ॥ २ ॥ पुम

भाषा देवो भविचा पूर्वभवे पाछ्या भवने विषे देवता होइने केचित् चला एकपद्मगुल्मविमानवासिनो छइकजीव पद्मगुल्म विमानथी च वीने नगरें चिरतनइ सुकारनामनगर पुराणोछे जूनोछे प्रसिद्ध रिद्धि युक्त सुरलोकइवरम्यवलोनगरजेहवुछे सर्वत्र प्रसिद्धछे ऋद्धसहीतछे देवलोकनी परिरम्यमनोहरछे १ स्वकमशेषेनपुराकृतेन आपणाकृतकर्मतेहनें अनुसारे कुले उत्तमे उत्कटद्विजक्षत्रियजाति रूपे प्रसूतापटजीवा उत्तमवलने विषेछ

इषुकारनाम्नि पुरे पुराणे पुरातने नगरे पुनः ख्याते सर्वत्र प्रसिद्धे पुनः समृद्धे धनधान्य पूर्णे पुन सुरलोकवत् रम्ये उदग्रे उत्कटे चत्रियादिके प्रसूता उत्पन्ना कथं भूतेन स्वकर्मशेषेण पुरातनेन पूर्वजन्मोपार्जितेन ते जीवा इषुकारपुरे समुत्पद्य तत्र संसारभयात् निर्वेद्य निर्वेदं प्राप्य चतुर्गति भ्रमण भयादुद्वेगम् आसाद्य तदा जहाय इति भोगान् त्यक्त्वा जिनेन्द्रमार्गं जिनेन्द्रेणोक्तोमार्गो जिनेन्द्रमार्गं स्तं ज्ञान दर्शन चारित्ररूपं मोचस्य मार्गं शरणं जन्म जरा मृत्यु भयापहं स्थान प्रपन्नाः प्राप्ताः इति गाथाद्वयार्थः २ पुमत्तमागम्म कुमारदोवी पुरोहिओतस्सजसायपत्ती विसाल कित्तीयत हो सुयारो रायत्थ देवी कमला वईय ३ तेषांषण्णां अपि पृथक् भेदं दर्शयति सूत्रकारः तेषां षणां मध्ये द्वौ जीवौ गोपौ पुं स्त्वं आगम्य पुरुष वेद त्वं प्राप्य कुमारौ जातौ भृगु ब्राह्मणस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ अत्र कुमारत्वेन एवं उक्तौ यौ हि अपरिणी तौ एव दीक्षां जगृहतु· तृतीयो जीवः पुरोहितो भृगुनामा ब्राह्मणा आसीत् तद्भार्या यशानाम्नी चतुर्थोजीवः तथा विशालाविस्तीर्णाकीर्त्तिर्यस्य स विशाल कीर्त्तिः एतादृशः इषुकार नामा राजा पंचमोजीवः च पुन· इह राज्ञ भवे एव तस्यैव राज्ञो देवी राज्ञी कमलावती जाता इति षष्ठोजीव· एते षडपि जीवाः स्व स्व आयुःक्षयेशुत्वा केचिदग्रतः केचित्पश्चात्पूर्वं सबंधेन एकत्र नगरे मिलिताः इत्यर्थः ३ जाई जरा मच्चभयाभिभूया बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठादट्ठूण ते कामगुणे

सूत्र

पुमत्तमागम्म कुमार दोवी पुरोहिओ तस्स जसायपत्ती विसाल कित्तीय तहो सुयारो रायत्थदेवी कमलावईय ॥ ३ ॥

भाषा

जीवदेवलोकथकी चवीने आवीनें उपनासंसारभयात् निर्विन्नाभीताजहायभोगान् त्यक्त्वा संसारनाभयथकी बीहनासर्वभोगछांडीनेंजिणेन्द्र मार्गे सरणं प्रपन्नाआश्रिताः तीर्थंकरनोभाष्योमार्गतेहनूं शरणकीधूं २ पुरुषत्वं प्राप्य कुमारौ द्वौ द्विजपुत्रौ वे ब्राह्मणनावेटा भृगूनामातृतीय पुरोहित· चतुर्थि तस्य पुरोहितः तस्य जसानाम्नी पत्नी विस्तीर्ण कीर्त्तिस्तथाइषुकारो नाम राजा पांचमोइषुकारराजा तस्य च कमलावती देवी एतेषट्जीवाउत्पन्नाः ३

उ॰टीका
अ॰१४
४२२

विरत्ता ४ तौ दो कुमारो कामगुणेभ्य शब्दरूप रसगन्धस्पर्शेभ्योविरक्तौ जातौ किं क्तत्वा दट्ठूण इति दृष्ट्वा साधून् विलोक्य अथवा शब्दादिविषयान् मोगराशि विभूतान् दृष्टा किमत्र संसारचक्रस्य विमोक्षार्थं संसारस्य चातुर्गतिकस्य यत् चक्र योनि कुलभेदायमूहयक्रवद् भ्रमण यातस्य विमोक्ष नार्थं निवारणाय कोद्दशो तो कुमारो जाति जरामृत्यु भयाभिभूतो जन्मजरामरणभयेन पीडितौ पुन कोद्दशौ तौ कुमारौ वहिर्विहाराभिनिविष्ट चित्तौ वहि संसाराद्विहार स्थान वहिर्विहारो मोचस्तस्मिन् अभिनिविष्ट सञ्जादर चित्त ययो स्तौ वहिर्विहाराभि निविष्टचित्तौ ४ पियपुत्तगादुन्निवि माहणस्स सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स सरित्तु पोराणियतत्थजाइ तहा सुचिन्न तव संजम च ५ ब्राह्मणस्य भृगुनाम्न पुरोहितस्य राज्ञ पूज्यस्य दो प्रियपुत्रको लघु वल्लभपुत्रौ यौ आस्तां ताभ्यां द्वाभ्यां पुरोहितस्य वल्लभ पुत्राभ्यां तथा तेन प्रकारेण तपो द्वादशविधिश्च पुन संयम सप्तदशविधं सुचीर्णं

मूल

जाईजरा मच्चु भयाभि भूया वहि विहाराभिनिविट्ठचित्ता। ससार चक्कस्स विमोक्खणट्ठादट्ठूणते काम गुणेविरत्ता॥४॥
पिय पुत्तगा दोन्नि विमाहणस्स स कम्मसी लस्स पुरोहियस्स। सरित्तुपोराणिय तत्थ जाइं तहा सुचिन्न तवसंजमंच॥५॥

भाषा

अथ हिवपूर्वे जन्मजरामरणभीतोहवे ब्राह्मणनाबेटा जन्मजरामरणथी बीहना कुमारो वहिर्विहारो मोक्षेदत्तचित्ती ते ब्राह्मणनाबेटामोक्षने विषे थिरदोधोंअणगार चक्रय मोचार्थ त्यागार्थ संसार चक्रथको आपणा आत्मानेमु कावबाने अर्थे साधून् द्दष्टातो कामगुणेभ्यो विरक्तो साधूने देखोने ब्राह्मण नाबेटाकामभोगथकोविरक्तभा४ प्रयो अभिष्टो पुत्रौ प्रियपुत्रकौद्वावपि ब्राह्मणस्य भृगुनामापुरोहित वणु बेटावालहाछे स्वकर्मशीलस्य पुरोहितस्य यजन याजनादितत्पर छे पुरोहित आपणापटकर्मतेहनेविषे सावधानछे यज्ञतर्पण करोम् त्यांचिरतनां तव जाति ते ब्राह्मणनाबेटाने जाति स्मरण उपनु

सुतरां अतिशयेन निदानादि शल्यरहितेन आचरित सचित किं कत्वा तत्र तस्मिन् ग्रामे एव पुरातनीं जाति स्मृत्वा जाति स्मरणं प्राप्य कीदृशस्य पुरोहितस्य स्व कर्मशीलस्य स्वकीय ब्राह्मणस्य यजनादिकं षट् विधं कर्मस्वकर्म तदेवशील आचारो यस्य स स्वकर्मशीलस्तस्य राज्ञ शांति पुष्ठ्यादिकार कस्य ५ ते काम भोगेसु असज्जमाणामाणुस्सा एसुंजे आविदिव्वा मुक्खाभिकंखी अभिजाय सड्ढा तातं उवागम्म इमं उदाहु ६ तौ द्वौ पुरोहित कुमारौ तातं स्वजनकं उपागम्य तातसमीपे आगत्य इदं अग्रे वक्ष्यमाणं वचनं उदाजह्रतुः वाक्यं ऊचतुरित्यर्थं कीदृशौ तौ कुमारौ मानुष्यकेषुकामभोगेषु, असज्जमाणादति असक्तौ अनादरौ अपितु पुनर्यादिव्याः कामभोगास्तेष्वपि असक्तौ एतावतामनुष्यदेव संबधिकामसुखेषु त्यक्तौ द्यसो पुनः कीदृशौ तौ मोक्षाभिकांक्षिणौ सकल कर्म क्षयाभिलाषिणौ इत्यर्थः पुनः कीदृशौ तौ अभिजात श्रद्धौ उत्पन्नतत्त्वरुची इत्यर्थं ६ किं जाचु रित्याह असासयं दट्ठुइमविहार बहु अंतरायं नयदीह आउं तम्हागिहंसिं नरइं लभामो आमंतयामोचरिस्सामुमोणं ७ भोतात आवां गृहेरतिं सुखं न लभामहे

ते काम भोगेसु असज्जमाणामाणुस्सएसुं जेयाविदिव्वा। मोक्खाभिकंखी अभिजाय सड्ढा तातं उवागम्म इमं उदाहु ॥ ६ ॥ असासयं दट्ठु इमं विहारं बहु अंतरायं णय दीह माउ। तम्हा गिहंसि नरइं लभामो आमं तया

तथा सुचरितं तपः सजमचपाळ्ळिलाभवने विषें जेतपजपकोधाहताते सवेसांभखा ५ तौ द्वौ कांमभोगेषु अरजंतो विरक्तीतेविजणाकांमभोगनें विषें अरंजताथका मानुष्यसंबधोषु च दिव्येषु च मनुष्यसंबधियाभोगदेवसंबधीभोग मोक्षाभिलाषिणौ उत्पन्नतत्वबुद्धीमोक्षनेवांछेछें तत्वनीरुचि उपनीछे पितरं प्रतिआगम्येदं वचनं कथीत वतौ ते ब्राह्मणनाबेटापिताने पास आवी इम कहवालागा ६ असास्वतं दृष्ट्वा इदं विहारं मानुष्यं जन्मएमनुष्यनो

उ टीका अ०१४ ४२५

तस्मात कारणात् आवाभव न आमव यानहेला पृच्छावहे आवा हौ अपि मौन चरिष्याव मुनेभावो मौन साधुधम अंगीकरिष्यावइयर्थं आवा रहे रति नगभावहे तत् किं कृत्वा इम विहार इम मनुष्यत्वावस्थान अशाश्वत अनित्य दृष्ट्वा कीदृश विहार बहु अंतराय बहव अंतराया यस्मिन् स बहु तरायस्त च पुनस्तत्र विहारेमनुष्य भवेदीर्घं पल्योपमसागरोपमादिक नास्ति मनुष्याणां हि स्वल्पमेवायुर्बहवोंतराया संति तस्मादृहे आवयो सर्वथा प्रीतिर्नास्तीत्यर्थं ७ अहतायगोतत्थमुणीणतेसितवस्सवाघायकर वयासी इम वय वेयविदोवयति जहानहोइ असुयाग लोगो ८ अथ पुत्राभ्या एव उक्ते सति तदवसरेतत ताति कमराजेनत्रोभृगु पुरोहितस्तत्रावसरे तत्र ग्रामेवासीत् इति तयो तपसो व्याघातकर इद वचन अवादीत् कथ भूतस्तयोमुन्यो श्रमणयो द्रव्यतस्तु ब्राह्मणपुत्रो अवहोतवेयो भावतस्त एतस्यमोतौस्तयाद्वावसुन्योरित्यर्थं किं अवादीदित्याह हे पुत्रौ वेदविद वेदग्गा इद वचन वदंति यथा येन कारणेन असुताना जनाना लोको गतिर्नास्ति न विद्यते सुतो येषा ते असुतास्तेषा असुताना अपुत्राणा यतोहि पुत्र विना धर्मोन्नति प्रदानाद्यभावात् पुत्रेणा म्रियमाणत्वेनार्त्त ध्यानपरायणत्वेना गतिल पितृगा स्यात् यदाह भगयारे अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो मोचरिस्सामिमोण ॥७॥ अह तायगो तत्थमुणीणतेसितवस्सवाघाय कर वयासी इम वय वेय विदो वयति

सूत्र

भाषा

जमारोअसाम्यतो भवायोबहवो अतरायारवदीघमागुबलएमनुष्यने जमारे अतरायवणो आउ तु थोड तस्मात् कारणात् ––तिनलभावहेतिणेवा रणि अह्मे तात अम्हे घरमांहिरति सतोषपाम्या न होका एतएव आमवनाव पृच्छाम चरिष्यामो मौनमुनिव्रत इसे कारणे तुम्हने पूछाछा आदेगमा गांछादिस्यालेस्या घादियधो ७ अथ तात पिता तव तगिरि समये भाव सुनि रूपयी हवे पितातें भाव चारित्रियारे तपस व्याघातकरवचोअवादीत् तपने अतरायनो वचन कहवालागा भो पुत्रौ इद वचन वेदविदो वदंतो हे वेदाश्रो वेदनाजाणइमकहेछे यथा असुताना अपुत्राणां परलोकान भवति

नेवच नेवच तस्मात् पुच सुखं दृष्ट्वा पश्चाद्धर्मं समाचरे ८ अहिज्जवेए परिविस्स विप्पे पुत्ते परिट्ठप्पगिहंसिजाया भोच्चाणभोगेसहइत्थियाहिं अरणयाहोहगुणीपसत्था ९ हे पुत्री युवां आरण्यकौ भूत्वा तदनन्तरं प्रशस्तौ मुनीभूयास्तं परं किं कृत्वा पूर्वं वेदान् चतुरोऽधीत्यपठित्वा पुनर्विप्रान् परिवेष्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पुनः पुत्रान् परिष्टाप्यकला सुनिपुणान् कृत्वा गृहभारयोग्यान् पुत्रान् गृहं भलाप्य पुनः स्त्रीभिः सह भोगान् भुंक्त्वा इति भृगु पुरोहितेन उक्तं ९ सोयग्गिणा आयगुणिन्धणेणं मोहानिलाप ज्जणाहि एणं सन्तत्तभावं परितप्पमाणं लालप्पमाणं बहुहावहुं च १० पुरोहिय तं कमसोणुणं तं निमन्तिय तं च सुएधणेण जहक्कम कामगुणेसु चेव कुमार गातेपसमिक्ख वक्कं ११ युग्मं द्वाभ्यां गाथाभ्यां तौ पुत्रौ भृगु पुरोहितं स्वजनकं आह तुः कुमारौ तं पुरोहितं स्वजनकं वाक्य जच तुरित्यध्याहारः किं कृत्वा पसमिक्ख प्रकर्षेण अज्ञानाच्छादितमतिं समीक्ष्य दृष्ट्वा इति द्वितीयगाथया सबधः किं कुर्वंत तं पुरोहितं क्रमसः अनुक्रमेणऽनुनयं त स्वाभि प्रायेणशनै २ तौ पुत्रौ प्रतिज्ञापयं तं पुन किं कुर्वन्तं धनेन सुतौ

जहाण होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥ अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया । भोच्चाण भोगे सह इत्थियाहिं आरणया होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥ सोयग्गिणा आय गुणिं धणेणं मोहा निलापज्जलणा हिएणं ।

वेदाऽध्ययनापरलोकान इह वेदनाजाणइमकहेके ८ पुनः भृगुराह वेदान्पठित्वावेदभणीनें परिवेष्यभोजयित्वाविप्रान् ब्राह्मणजिमाडीने पुत्रान् स्थापयित्वा गृहेजोतो पुत्रघरनेविषे थापीने भुक्त्वा भोगान् स्त्रीभिः सहस्त्री संघाते भोगभोगवीने आरणगौमुनीप्रशस्तौ भवतः पछे भलामुनिश्वरहोवे ९ इष्टवियोगात् शोकादि ज्ञानिना आत्मगुणाः रागादयः इहइंधनं शोकरूप अग्निइउ आत्मागुणरागादिकें इंधणहुआमोहरूपवनात् अधिकप्रज्वलितेन मोहरूप

उ०टीका अ०१४ १०७

प्रति निमन्त्रय त च पुनयथा क्रम कामगुणे भोगैर्निमन्त्रय त यथा क्रम इति यथावसर पूर्व इत्यत्र वेदान् अधीत्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा भोगान् भक्त्वा इत्यादि अवसर दर्शयन्त इत्यर्थ इति द्वितीयगाथार्थ अथ पूर्वगाथया अर्थ सोयमीति पुन कीदृश पुरोहित शोकाग्निना सन्तप्तभाव शोक वह्निना प्रज्वलितचित्त अतएव परितप्यमान समन्तात्प्रसाज्जायमान पुन कीदृश पुरोहित बहुधाबहु प्रकारेण वेदादि वाचो यत्नां बहुवार २ यथा स्यात्तथा लालप्यमान मोहवशात् हीन दीन वचांसि अतिशयेन भाषमाण कीदृशेन शोकाग्निना आत्मगुणेन्धनेन आत्मन स्वस्य शोकाग्नेरेव सहचारित्वेन तद्गुणकारित्वात् शोकाग्नेरेवोद्दीपकत्वात् गुणा रागादय आत्मगुणास्ते एव इन्धन उद्दीपन यस्य स आत्मगुणेन्धनस्तेन पुन कीदृशेन मोहानिल प्रज्वलनाधिकेन मोहानिलात् अज्ञान पवनात् अधिक प्रज्वलन अस्येति मोहानिलाधिक प्रज्वलनस्तेन अज्ञान पवनाधिक जाज्वल्यमानेन प्राकृतत्वात् अधिकशब्दस्य परनिपात ११ अथ तौ कुमारौ उत्तर वदत वेया अहीयानहवन्ति ताण भत्तादियानिम्तितमसमेष जायाय पुत्तानइवम्लिताण कोना

सतत्त भाव परितप्पमाण लालप्प माण वहुहा वहु च ॥ १० ॥ पुरोहिय त कमसोणुणत णिम तय तच सुए धणेण

जरकम कामगुणेसु चेवकुमारगाते पसमिक्ख वक्क ॥११॥ वेया अहीयाणभवन्तिताण। भोत्तादियाणिति तमत

मूल

पवनतिनेकरीने अग्निवणोद्दीप्योछे अनिहत्तनेनभावीश्रत करण सततभाव परितप्यमान दह्यमान मनमाहितपेछे अत करणने विषे दाझे छे निरतर विलपमान बहुधाअनेक प्रकारे मोहनों कर्मनोलोभोयलोपणो विलापटलवलाटविलाप करतोछतो करेछे १० त पुरोहित पितर क्रमशोअनु क्रमेण नुर त अनुनय त स्वाभिप्रायेण प्रज्ञापय त ते पुरोहित आपणे अभिप्राये करीने पुत्रने प्रेरेछे निमतयति युतौ धने कृत्वा पुरोहित

भाषा

मते अणुमन्निज्जएय १२ पूर्वोक्तस्य वेदान् अधी यप्रव्रजितव्य इत्थे तस्योत्तर भो तात वेदा अधीता त्राण शरण न भवन्ति वेदा मरणात् वेदपाठिनं न त्रायन्ते यदुक्तं वेदैर्विद्भिरेव भिन्नमध्ययनं नाम हत्तं ब्राह्मणलक्षणं हत्तंस्थं ब्राह्मणं प्राहुर्नेतरान् वेदजीवकान् १ पुनर्भो तात द्विजा: ब्राह्मणाभुक्ता: भोजिता: तमं तमे इति तमस्तमसि नरक भूमि भागे रौद्रे रौरवकादिकेनयन्ति प्रापयन्तिण इति वाक्यालकारे तमसोपि यत्तमस्तमस्तस्मिन् तमस्तम सिते हि ब्राह्मणाभासाभोजिता कुमार्गे पशुबधासवासेवनादौ अतस्तद्भोजनादान नरका हेतुकं च पुन: पुत्रा: जाताउत्पन्ना त्राणं शरणं न भवन्ति किं नरकपातान्नरक्षयतीत्यर्थ उक्तं च वेदानुगैरेव यदि पुत्राद्भवेत्स्वर्गो दानधर्मो निरर्थक: धन धान्य वयं त्यक्त्वारिक्तं कुर्यान्नमन्दिर १ बहु पुत्रा दुलीगोधा स्ताम्रचूडास्तथैव च तेषां च प्रथम स्वर्गं पश्चाल्लोको गमिष्यति २ तदा भो तात तव तद्वचनं को नाम पुरुषोऽनुमन्येत स विवेक' पुमान् क: सम्यक् ज्ञात्वा जानीते इत्यर्थ: इत्यनेन वेदाध्ययनं ब्राह्मणानां भोजनं पुत्राणां गृहेस्थापनं एतत् त्रयस्य उत्तरं दत्वा भोगान् भुक्ता इत्यस्योत्तरन्ददत: १२ खण मित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा पगामदुक्खा अनिकामसुक्खा संसार मोक्ख स्सविपक्ख भूया खाणी अणत्थाण उकाम भोगा १३ हे तात काम भोगा अनर्थानां

मेगं जायाय पुत्ताणहवंतिताणं कोणामते अणुमन्नेज्ज एयं ॥१२॥ खणमित्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा पगाम दुक्खा

वेटाने भजे करोजे निमंत्रे छे यथा क्रम पुनरपी कामगुणै: निमन्त्रयति वली अनुक्रमे कामगुणे करी निमंत्रे छे ती कुमारी प्रसमीक्ष्य दृष्ट्वा वाक्यं जल्पतो ते कुमार विचारीने देखीने पीतानेकहेछे ११ कुमारी आहतु: अहो तात वेदा पठिता: न भवंति त्राणं रक्षका: अहो पिता वेदभणायका त्राण रक्षक नहवे शुक्ता: द्विजा: विप्रा' प्रापयंति तमसोपि तमो नरक गति गमयती ब्राह्मण जोमाडयाथका जोव नरकेजाइ जाताश्चपुत्रा शरणं न भवंति: पुत्रजायायका शरण न आवे नरके पडता राखे नहो तदा अहो तातकोमलामंत्रेण ते तव भाषित न मन्यते अहो तात ए तुम्हारो वाणो नमन्यते कुण

खानि सदृशा वर्त्तन्ते अनर्थानां ऐहिकपारलौकिक दु खानां उत्पत्ति स्थान सदृशा भवन्तीत्यर्थं तदेवाह कीदृशा काम भोगा क्षणमात्रसुखा क्षणमात्र मैथुन काले एव सुखयन्तीति क्षणमात्रसुखा पुन कीदृशा बहुकाल दु खा बहुकाल नरकादिषु दु ख येभ्यस्ते बहुकालदुःखा पुन कीदृशा प्रकाम दुःखा प्रकाम अत्यन्त दु ख येभ्य प्रकामदु खा पुन कीदृशा अनिकामसुखा अप्रकृष्टसुखा तुच्छसुखा इत्यर्थं पुन कीदृशा ससारस्य भव भ्रमणस्य मोक्ष ससार मोक्षस्तस्य विपक्षभूता शत्रु भूता ससारभ्रमण हेतुकारिण इत्यथ १३ परिव्वय ते अनियत्तकामे अहो अराओ परितप्पमाणे अण्णप्पमत्ते धणमेसमाणे पप्पुत्तिमच्चु पुरिसोजरच १४ एतादृश पुरुषोमृत्यु प्राप्नोति च पुनर्जरां प्राप्नोति कीदृश सन् परिव्रजन् परिसमन्तात् विषयसुखलाभार्थं इतस्ततो भ्रमन् पुन कीदृशोऽनिवृत्तकाम न निवृत्त कामोऽभिलाषो यस्य स अनिवृत्तकाम अनिवृत्तेच्छ इत्यर्थं पुन कीदृश अहर्निशं अहर्निशं इति रात्रौपरितप्यमान आप त्वादहो अरात्रौ इति स्थिति अहो रात्रं अप्राप्तवस्तु प्राप्तिनिमित्त चिन्तामग्नचिन्ताचितयादग्ध पुन कीदृश अन्य प्रमत्त अन्ये स्वजनमातादिर पत्रकलत्रभ्रात्रादय तदर्थं प्रमत्तस्तत्कार्यकरणासक्त अन्य प्रमत्त पुन कीदृश धन एष यत् निविधोपायैधनवाञ्छन् इत्यर्थ एव सैष मूढ पमान् म्रियते स्वार्थ किमपिन करोति पुन स्थितो पूर्णाया एकदामृत्युर्वाजरावा अवश्य प्राप्नोत्येवेति भाव १० इमं च मे

खणिगामसोक्खा ससारमोक्खस्स विपक्खभ्याक्खाणी अणत्थाणउ कामभोगा ॥१३॥ परिव्वयंते अणियत्त कामे

माने १२ क्षोणकाल सुखकारा अल्पसौख्या चिरकाल दु खदायका थोडाकाल सुखनाकरणहार घणाकालताइ दुक्खदीए अतिशयेन दुक्खकरा प्रकाट सुखरहिता घणोकालए इयो जोवडो दुखभोगवे स्वल्पमात्र सुख ससारे मोक्षस्य मुक्तिमार्गस्य विपक्षभूता शत्रुरूपा मोक्षमार्गनावयरी मोक्षजा वादिये नहो अनर्थानां खानिय कामभोगा एकामभोग अनर्थनोखाणिछे सर्व अनर्थएहथी उपजे हे पिता १२ परिव्रजन् विषय सुखलाभाय काम

अत्थि इमं च नत्थि इमं च मे किच इमं अकिचं तं एव मेव लालप्पमाणं हराहरन्तित्तिकहं पमाये १५ पुन० पूर्वोक्त मेव द्रढयति हरा कालास्तं मनुष्य हरन्ति हरन्ति प्राणिनां आयुरिति हराः दिवसरजन्यादयः कालाः तं किं कुर्वन्तं एव मेव लालप्यमानं व्यक्तं वचनं वदंतं एव मिति किं इदं च मे मम अस्ति इदं प्रत्यक्षं धान्यादिकं मम गृहे वर्त्तते पुनरिदं च रजतस्वर्णां भरणादिकं मे मम नास्ति च पुनरिदं मम कृत्यं घट् ऋतु सुखं गृहादिकं करणीय वर्त्तते इदं च मे मम अकृत्यं वाणिज्यादि अकरणीयं अस्मिन् वाणिज्ये लाभो नास्ति तस्मात्रकृत्यं अकृत्यं इत्यर्थः इति हेतो भो तात कथं प्रमादीत कथं प्रमादं कुर्यात् प्रमाद कर्त्तुं कथं उचित इत्यर्थः १५ धणं पभूयं सह इत्थी याहिं सयणातहा काम गुणायगामा तवं कएतप्प इजस्स लोगो त सव्वसाहोणमिहेव तुज्झं १६ अथ पुनः पुरोहितस्तौ लोभ यितु माह भो पुत्रौ यस्य कृते यदर्थं लोकोजनः तपस्तप्यते तत्सर्वं इह

मूल

अहो यराओ परितप्पमाणे अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे पप्पोत्ति मचुं पुरिसोजरंच ॥१४॥ इमंचमे अत्थि इमंचणत्थि • इमंचमेकिच्च इमंअकिच्चं तंएवमेवं लालप्पमाणं हराहरंतितिकहं पमाए ॥१५ धणं पभूयंसह इत्थियाहिं सयणात

भाषा

सुखसक्ता उरइ परइभमे फिरे अपूर्ण अभोलाषथको ननि हत्याछेकाम अहोरात्रं च परितप्पमानः रात्रिदोनने विषे तपतुथको आर्त्त ध्याने रुद्रध्याने परितपतो अन्नर्थं प्रमत्त प्रमादवान् धनं गवेषयन् प्रमादीथकोपरको धनगवेषतु फिरे स्तोकमात्रमिले अहकारकरतो पुरुषाः मृत्यु जरां च प्राप्नुवंति पुरुष जरामृत्युपामे १४ इदं मे अस्ति इदं च मे नास्ति एम्हारे वस्तुछे एम्हारे वस्तु नहोछे इदं च मे कर्मकर्त्तव्यं ए अम्हारे कृत्यकरवुं छे इदं च मे अकृत्यं एम्हारे कृत्यनथोकरवुं त पुरुषं एवमेव पृथेवलालप्पमानं वदंते ते पुरुषने इमकहताने कालवटिका हरतो परलोकं न यति कालनोंघडोआउखानेहरे

अस्माक गृहे तुम्भ इति युवयो स्वाधीन वर्त्तते तव किं किं इत्याह धन प्रभूत प्रचुर वर्त्तन्ते धनार्थं हि लोको बहु दु ख भुंक्ते तदन प्रभूत स्त्रीभि सहितमस्ति धनादेवस्त्रिय स्वाधीना एवस्य तथा स्वजना ज्ञातयोपि वर्त्तन्ते यस्य हि कुटम्ब प्रचुर भवति सकेनापि धर्षं तु न शक्यते इत्यर्थ पुन प्रकामा भूयास प्रचुरा कामगुणा रूप रसगन्धस्पर्शादय इन्द्रिय विषया वर्त्तन्ते तस्मात्किमर्थं तपस्तपनीय १६ धणेण कि धम्मधुराहिगारोसयणेणवा काम गुणे हि चेव समणाभविस्सामुगुणोहधारो वहि विहारा अभिगम्मभिक्ख १७ अथ पुत्रौ वदत भो तात धर्म्मधुराधिकारेऽस्मिविषयेति धर्म धूर्वहना धिकारे आवा श्रमणौ भविष्याव कीदृशौ श्रमणौ गुणौ घधारिणौ ज्ञानदर्शनचारित्र रूप गुण समूहधारिणौ किं कृत्वा बहिर्विहार अभिगम्य द्रव्यतो बहिर्ग्रामागरनगरादिभ्य एकान्त आश्रित्य भावतो वहि क्वचित् अप्रतिबद्ध आश्रित्य तस्मादावयोर्धनेन किं अथ वा स्वजनेन किं पुन काम गुणे इन्द्रिय सुखे किं धनस्वजनविषयाद्विन परलोक सुखायस्युरित्यर्थं यदुक्त वेदेपि न प्रजयाधनधान्येन त्यागेनैकेनामृतत्वमान शुरित्यादि १७ अथ भृगु स्तयोर्न निराकरण परलोक निराकरणाय च आत्मनोऽभावमाह जहाय अग्गी अरणीउ असन्तो खीरेघयन्तिल्ल महातिलेसु एमेवजाया सरीर सिसत्ता समुच्छइ नासइ नावचिट्ठे १८ हे जाया हे पुत्रौ सत्वाजीवा एवमेव अमुना दृष्टान्तेन शरीरे असन्त पूर्वं अविद्यमाना एवस] मर्द्धिते उत्पद्यन्ते पृथि

हाकामगुणापकामा। तवकए तप्पई जस्सलोगो त सव्वसाहीणमिहेवतुब्भं ॥१६ धणेणकिंधम्म धुराहिगारे सयणे

परलोके निद्राय प्रमादकारी १५ अथ पिताइधन प्रभुत प्रचुर सह स्त्री भि हिवे पिता कहेछे पुत्र धन घणोछे स्त्री पिणघणीछे स्वजना पितृव्यादय तथा कामगुणा प्रकृष्टादय भाइबधपौतरोयादि प्रमुखघणाइछे तप क्रियानुष्टान यस्य कृतेयदथ लोक तप्यते जेहने अर्थे लोक तप जप करेछे तत् सर्व स्वाधीन हस्त प्राप्तइहे वजस्मनियुवयो वर्त्तते ते सर्वसंसारना सुख तुम्हारे हस्त प्राप्तछे हे पुत्रो १६ पुत्रो प्राह धर्मधुराधिकारे पुत्र कहेछे धर्मने अधि

व्यते जीवायुाकाशानां समुदाय सयोगात् चैतन्यरूपो जोव उत्पद्यते इत्यर्थः बदरी छलि गुडमधूक पुष्पपानीयादि द्रव्याणां मेलापात् मदशक्तिरिव पूर्वं असत् उत्पद्यते तथा भूतानां सयोगात् चेतना उत्पद्यते पुनः सजोवो न पश्यति न अवतिष्ठते शरीरनाशे तन्नाश शरीरेसति पञ्चभूतकलापे सति स भवेत् पञ्चभूतानां पृथग्भावे तस्यापि नाशएव एवमिति केन प्रकारेण जीवा पूर्वं अविद्यमानाः उत्पद्यन्ते तद्दृष्टान्तमाह यथा एव च शब्दोत एवार्थे अग्नि अरणीओ अरणीतः अग्निमथनकाष्ठतः पूर्वं अदृश्यमाणोपि सयोगात् उपरित नारणि काष्ठेन अधोवंशाकादि काष्ठसंयोगात् अग्निः उत्पद्यते नवे काकिनि अरणिकाष्ठे पूर्वं अग्निर्दृष्टः एव चोरेघृतं चोरमपि पूर्वंसुणो छात्यपश्चात् तन्मध्ये तत्र स्तोक प्रक्षिप्य चतुर्यामरूत्रानो छात्यपश्चान्मन्थानेन विलोड्यते तदा तत पूर्वंअसदेवघृतउत्पद्यते एवं महातिलेषु उत्तमतिलेषु यन्त्रादिमथन सयोगात् तिलेभ्यस्तेल पूर्वं प्रत्यक्षंअविद्यमानमपि उत्पद्यते अरणि काष्टादधः काष्ठसयोगाभावे चैतन्यरूपजोवाभावइत्यर्थं १८ अथएतस्य उत्तरस्योत्तरन्तोआहतु· नोइन्दियगिज्झ असुत्त भावा असुत्तभावावियहोइनिचो

सूत्र

जावा कामगुणे हिंचेव समगा भविस्सामो गुणोहधारी। वहिं विहारा अभिगम्मभिक्खं ॥१७ जहाय अग्गी अरणी अ संतोखीरेघयंतिल्ल महातिलेसु एमेवजाया सरीरंसिमत्ता संमुच्छइणा सइणावचिट्ठे ॥१८ नोइंदियगिज्झ असुत्तभावा

भाषा

कारे धनतुं कि स्वकाम स्वजनेन किं अथवा कामगुणे किचेव पुनरेव स्वजन संघाते किसाकामभोगस्युंछे मुकस्यु निश्चेकरोने श्रमण भविस्याम: गुणोघधारिणो यतीहुस्यां गुणना समूह तेहना धरणहार ग्रामादि विहारकरणो अभिगम्य प्राप्त्य शंगीकृतभिक्षां ग्रामादिकने विषेविहारकरस्या भिक्षा मांगवी अगोकारकरोने १७ अथ पिता आह नास्ति व पूर्वं नास्ति इत्याह यथा अग्नि वह्निः अरणिकाष्टात् अविद्यमानोपि उत्पद्यते जिम अरणोना

अध्यात्महेतु नियं च बन्धो संसारहेतु च वदन्ति बन्धं १८ हे तात अय आत्मा अमूर्त्तभावात् इन्द्रियग्राह्यो नो इति नास्ति शब्दरूप रसगन्धस्पर्शादीनां अभाव
त्व अमूर्त्तत्व तस्मात् अमूर्त्तत्वात् इन्द्रियग्राह्यो नास्ति यो अमूर्त्तो भवति स इन्द्रियग्राह्योपि न भवति योय इन्द्रियग्राह्यो भवति स अमूर्त्तोपि न
भवति यथा घटादि पुनरयमपीव अमूर्त्तभावात् अपि नित्योयजीव वर्त्त द्रव्यत्वे सति अमूर्त्त तद्विद यथाव्योम अथ कदाचित्कश्चिद्वक्ष्यति चेदयं
अमूर्त्तं आत्मा तदा कथमस्य बन्ध तत्रोत्तरं वदत अस्य जीवस्य शरीरे बन्धोनियतो निश्चित अध्यात्महेतुर्वर्त्तते कोर्थं आत्मनि अधिकृत्य भवतीति
अध्यात्म मिथ्यात्वाविरति कषाय योगादिक तदेवहेतु कारण यस्य स अध्यात्महेतु अस्य जीवस्य य बन्धोभवति स मिथ्यात्वादिभिर्हेतुभिरेवस्यादिति
यथा अमूर्त्तस्यापि आकाशस्य घटादौ इव घटोत्पादनकारणैर्घटे आकाशस्य बन्धोजायते तथा आत्मन शरीरे बन्ध इत्यर्थ च पुनर्बन्धः संसारस्य हेतु

अमुत्तभावाविय होइ णिच्चो अज्झत्थहेउ णियय(?)स्सबन्धो । संसारहेउं च वयन्ति बंधं ॥१९. जहावयं धम्ममयाणमाणा पाव

काष्टने विषे अग्नि उपजे इत समुच्छिंत अथवा तिलनेतैल उत्पद्यते दूधने विषे घी उपजे तिमजे विषेतेलउपजे रे पुत्रो एवमेव शरीरे सत्वाजीवा
समुच्छिते रे पुत्रमो इम शरीरने विषे जीव स मुर्च्छाई रह्याछे स मूर्च्छिंत शरीरनाशे तथाय स्यात् न अवतिष्ठति आत शरीर मांहिले मूर्च्छि एमशरीर
नानाशथी तेहनो नाश काष्टनेविषे अग्नि उपजे १८ अथपुत्री आहतु न भवति इन्द्रिये ग्राह्य आत्मा अमूर्त्तत्वात् [illegible] आत्मा इन्द्रियेकरि नदीसे
अमूर्त्तपणायकी अमूर्त्तिभावादपि स्यात् नित्य मूर्त्ति नहींछे अरूपीछे इन्द्रीयग्राह्यछे पर नित्यमासतोछे अध्यात्म मिथ्यादितहेतु स्तकारणथकी
नियतो निश्चतो अस्य बध कर्म सर्वे य आश्रवधोया आत्मनिविषे रह्यो जे मिथ्या त्वादि तेहने हेते निश्चे अरिकर्मनो बधथाये तथापि अरूपी जीवोपि
रूपिकर्मादिभाजन तथा संसारचतुर्गति भ्रमणरूप बन्धे तु तत् कारण वदति कमवय १९. यथा वयं धर्मसम्यक्स्वरूपं अजानत अम्हे धर्मरूपसम्यक्

भव भ्रमणस्य कारण बन्ध वर्द्धन्ति यावत् शरीरेण बद्ध स्तावदय जोवो भव भ्रमणं करोतीत्यर्थ. यदुक्त वेदांतेपि कर्म्मवशो भवेज्जीव वार्मसुक्ताभवेत् शिव भव भ्रमणस्य कारण बन्ध वर्द्धन्ति यावत् शरीरेण बद्ध स्तावदय जोवो भव भ्रमणं करोतीत्यर्थ.

सूति १९ जहावयं धम्ममयाणमाणा पावं पुराकम्ममकासिमोहा उरुभमाणा परिरक्खियता तन्नेव भुज्जोविसमाय रामो २० हे तात यथा पुरा पूर्वं मोहात् तत्वस्य अज्ञानात् आवामथैं वयं पापं पापहेतुकं कर्म अकार्ष आवां किं कुर्वाणौ धर्मं सम्यक्तादितत्वं अजानानौ पुनः कथं भूतौ अवरुध्यमानौ गृहान्निः शरणं अप्राप्यमानौ पुनरावां कथं भूतौ परिरक्ष्यमाणौ साधु दर्शनाद्वार्यमाणौ पुरा ईदृशौ आवां अज्ञात तत्वौ पापकर्म्म परायणौ अभूव तत्पापं कर्मभूय पुनर्नैव समाचराव न कुर्वं इत्यर्थः २० अब्भाहयमिलोगमि सव्वओ परिवारिए अमोहाहिपडन्तीहिं गिहिं स नरइं लभे २१ भो तात अस्मिन् लोके जगति आवां गृहे गृहवासे रतिं न लभावहे कथं भूते लोके अमोघाभि अवश्यं भेदिकाभिः शस्त्र धाराकाराभिः पतन्तीभिः आगच्छन्तीभि अभ्याहते पीडिते पतन्तीभिः शस्त्र धाराभिः कदर्थिते पुनः कथं भूते लोके सर्वतः सर्वासुदिक्षु परिवारिते परिवेष्टिते वा गुरादौ पतित मृगवत् दुःखितौ

पुराकम्म मकासि मोहा । उरुभमाणा परिरक्खियंता तन्नेव भुज्जोविसमायरामो ॥२० अब्भाहयंमि लोयंमि सव्वओ परिवारिए अमोहाहिं पडती हिंगिहंसि नरइं लभे ॥२१ केण अब्भाहओ लोओकेणवा परिवारिओ कावाअमोहा

अजाणतायका पुरापूर्वं पापकर्मंकृतवतो मोहात् अज्ञानात् पाछिल्याभवनेविषे अम्हे पापकर्मकोधा ऽज्ञानपणायको सेवकें रुध्यमानाः रक्षाररुमाणाः सेवकेरु धोजतायकारारखितायका तत् पापकर्म भूयोपिन समाचरामः ते पापकर्म अम्हे वली नहीं करुं २० अभ्याहृते पीडिते कर्मभिः लोके किस्ये करीने सर्वलोक पोडाछे सर्वतश्च परिवारिते वेष्टीते सघलेइ वोटोछे अवंध्य शस्त्रादिभि पतंतीभिः अतितीखानखीं लमहीए सस्त्रपडेछे गृहेपु रतिं

टीका

स २१ तदा पुरोहितोऽपृच्छत् केण अभ्याहतो लोको केणवा परिवारितो कावाअमोघावत्ता जायाचिन्ता परोहु मे २१ हे पुत्रो केन लोक अभ्याहत वा अथवा केनाय लोक परिवेष्टित वा अथवा का अमोघा अवश्य गेदिका शस्त्र धारा उक्ता हे पुत्रो अह इति चिन्ता परो भवामि २१ तदा पुत्री प्रत्येक प्रश्नानां उत्तर वदत मच्चुणाअभ्याहओ लोओ जराए परिवारिओ अमोहारयणी वुत्ता एवत्ताय वियाणह २२ हे तात त्व एव अमुना प्रकारेण जगत् जानीहि एव मिति कथ तदाह लोकोय मृगरूपो मृत्युना व्याधेन अभ्याहत पीडित स च मृत्युर्हि सर्वस्य जन्तो पृष्टेधावति जरया वृद्धत्वेन परिवेष्टित जीर्यते शरीर अनयेति जरापलित मात्र मिह जरानीयते बलवीर्यं पराक्रमाणां हानि रेवजरा तया सर्वं जगत् परिवेष्टितमस्ति तथा एव मृत्युर्जगज्जन्तु घातयति न केवलाराजय एव भवन्ति अथ रात्रि ग्रहण भयोत्पादनार्थं स्त्री लिङ्ग शब्दस्य अमोघा इत्यस्योपमार्थं श्रेय २२ जाजा वच्चइ रयणी नसापडिनियत्तई अहम्म कुणमाणस्स अफलाजन्तिराईओ २३ हे तात यायारजन्यस्तत्स्वादि यसायव्यु त् क्रामन्ति व्रजन्ति नासार जन्योन प्रति निवर्त्तन्ते पुनर्व्यावृत्यनायान्ति अधर्मं कुवत पुरुषस्य रातयो दिवसाय अफलागिरर्थका यान्ति तस्माद्धर्माचरणेन सफला विधेया इत्यर्थ २३

मूल

वुत्ताजाया चितापरोहुमे ॥२२ मच्चुणाअभ्याहओ लोओजराए परिवारिओअमोहारयणीवुत्ताएवताय वियाणह ॥२३

भाषा

समाधि न लभामहे घरने विषे अम्हे रतिसमाधिनहीपामीका २१ पिता आह केम पोडोतालोक कि एलोककिणेपोडयोछे केनवा परिवारितो वेष्टीत केणे वधणी सघलेवोव्याछे अमोघा अस्ततुल्यकाप्रोक्ताकु य सफल अस्तगेणि काहो हे जाती अह चितापरोभवामि हे पुत्रह चितातुरहोउ छु २२ मृत्युना पोडितोलोक मरणेलोक पोड्याछे जरयापरिवेष्ठीत जराइ वोव्याछे अमोघा रजरण प्रोक्ता सफरा शास्त्रनी श्रेणितेरात्रिकही भो तात एव जानोत दिवसजेजाइ ते पणिआउखु घटावेछे २३ या यागच्छति रजनी जे जे रात्र जाइछे न सापडोनीवर्त्तते ते पाछीलेय ले न्हो अधर्मं कुर्व्वत

उ०टीका अ०१४ ४२६

तद्देव पुनरप्याहतुः जाजा वच्च इरयणी नसापडि नियत्तई धम्मं तु कुणमाणस्स सफलाजन्तिराईश्रो २४ पूर्वार्द्धस्यार्थस्तथैव हे तात धर्म कुर्वाणस्य पुरु षस्य रात्रयोदिवसाश्च सफलायान्ति धर्माचरणं विनानिः फला इत्यर्थः प्राकृतत्वात् वचनव्यत्ययः नृजन्मनः फलं धर्माचरणं धर्माचरणं हि व्रतं विना नस्यात् अतआवां व्रतं गृहीष्यावः नृजन्मनि रात्रि दिवसाम् स फलाम् करिष्यावइति भावः २४ तद्वचनाकर्ण्य वोभो भृगु पुरोहितः पुत्रौ प्रत्याह एगओ सम्वसित्ताणं दुहओ समत्त सञ्जया पच्छाजायागमिस्सामोभिक्खमाणा कुले कुले २५ हे पुत्रौ द्वयञ्चद्वयञ्चद्वये आवां युवाञ्च सर्वेपि सम्यक्त्व संयुताः सन्तः एकातएकत्र गृहवासे सम्यक् सुखेन उपित्वागृहस्था धर्मं संसेव्य पश्चाद्वृद्धावस्थायां गमिष्यामः ग्रामनगरारण्यादिषु मास कल्पादि क्रमेण प्रव्रजिष्यामः इत्यर्थं किं कुर्वाणाः कुले कुले गृहे गृहे अज्ञातउंछ कृत्वा गोचर्ययाभिक्ष्यमाणाः भिक्षां गृह्णन्तोभिक्षवोभि विष्यास इत्यर्थः २५ तदा तौ पुत्रौ जनकं प्रत्याह तुः जस्सत्थिमच्चुणासक्खं जस्सवत्थि पलायणं जोजाणइनमरिस्सामिसोहु कङ्खे सुएसिया २६ हे तात हु इति निश्चयेन स एव पुरुषः इति

सूत्र

जाजावच्चइ रयणी न सापडि नियत्तई अहम्मं कुणमाणस्स अफलाजंति राईओ ॥ २४ ॥ जाजावच्चइरयणी नसा पडिनियत्तई। धम्मं च कुणमाणस्स सफला जंतिराइओ ॥२५॥ एगओ संवसित्ताणं दुहओ संमत्त संजुआ। पच्छा

भाषा

जीवस्य अधर्म्म करता जीवने निःफलायांतिरात्रयः निःफला जायछे रात्रि २४ या या रात्रिर्गच्छति सा रात्रिः सफलं जाति सफलजाइछे २५ अथ पिताआह एकत्र गृहवासे स्थित्वा एकठा घरमांहे रहेंछे पितारो पुत्रौ च सम्यक्त्वादि व्रतसहिताः पिता बेटा सम्यक्त्वादिव्रतलेईने घरें रह्या पश्चात् भो जातौ गमिष्यामि पछे आपणजास्यां कुले २ गृहे २ भिक्षा मलभमाना घरि २ भीखमांगताथका २६ यस्य मरस्य मृत्युना, सहसख्य मैत्री अस्ति

कांक्षति इति प्रार्थयति सुपइति स्व आगामिदिने प्रभाते इद स्यात् अधुनजात तर्हिं कि कल्येस्यादित्यर्थं इति सचितयति स इति कः यस्य पुरुषस्य मृत्युनासहकालेन सह सख्य मित्वत्व अस्ति य एव जानाति मृत्युर्ममसख्यावर्त्तते च शब्दः पुनरर्थे पुनर्यस्य पुरुषस्य मृत्यो पलायन अस्ति यः पुरुष एव जानाति मृत्युर्मे मम कि करिष्यति यदा मृत्युरायास्यति तदाहं प्रपलाय्य कुत्रचिद्गमनयास्यामि अहं मृत्युगोचरो न भविष्यामि पुनर्यं एव जानाति अहं न मरिष्यामि अहं चिरञ्जीवो अस्मि २६ अज्जेव धम्म पडिवज्जयामो जहिं पवन्ना पुणब्भयामो अणागयं नेवय अत्थि किंची सद्धाखमन्ने विणइत्तु राग २७ भो तात अद्यैव धर्मं वय प्रतिपद्यामहे आर्षत्वात् कि कृत्वा राग स्नेह स्वजनादिषु प्रेमविण इत्तु इति विनीयस्फोटयित्वा कीदृश धर्मं ते इति नो अस्माक श्रद्धा मम श्रद्धया तत्करुचावमो योग्यस्त यतो हि साधु धर्मे स्नेह सर्वथा निवार्यं तत्करुचिर कार्या तथा चैनो हि साधु

जाया गमिस्सामो भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥ जस्सत्थि मच्चुणासक्खं जस्सवत्थि पलायणं जोजाणइन मरिस्सामि।

सोहुकक्खे सुएसिया ॥२७॥ अज्जेवधम्म पडिवज्जयामो जहिंपवन्ना न पुणब्भवामो। अणागयं नेवय अत्थिकिंचि

जेह पुरुषने यमस्य मौत्रादृइवे यस्य अस्ति मरणात् पलायन जेहनें मरणथीनासवानो शक्ति छे यो जानाति न मरिष्यामि जिजाणेछ नहीं मरुं स कांक्षति वाछति इद कर्स्यं करिष्यामि ते वाछे एह काले कामकरीस २६ भो तात अद्यैवधर्मं प्रतिपद्यामः अम्हो तात अम्हे आजहुजधर्मं अगीकार करस्यां य प्रपन्ना पुनर्नभमाम जे धर्म अगीकारकीयाथकांवली ससारमाहिनहींआवा विषय सौख्यादिनैव अस्ति किंचित् अमाम ए विषय सुखनीअ प्राप्तिकांइ नथी जीव ससारमाहिफीरता अथाभोगव्याछे श्रद्धा अभिलाषसम्प्रयुक्त नो अस्माक अमारी श्रद्धाछे रागछोडवानां २७ हे पुत्रो प्रक्षीणपुतस्य

सुखी भूत्वा वृद्धत्वे प्रधान मार्गं प्रव्रज्यारूपं मोक्षमार्गं गमिष्याव २० भुत्तारसाभोद्र जहातिणेवश्रो न जीवियट्ठापजहाम्नि भोए लाभं अलाभं चसु
हच्च दुक्खं संविक्खमाणो चरिस्सामि मोणं २१ अथ भृगु ब्राम्हणीं प्रत्याह भोद्र इति हे भवति हे ब्राम्हणि रसाः शृङ्गारादयो भोगाश्च भुक्ताः सन्तीनेद्रति
नोऽस्मान् जहतित्यजन्ति वयो यौवनं अपित्यजति हे ब्राम्हणि भोगान् जीवितव्यार्थं न प्रजहामि किं तु लाभं च पुनरलाभञ्च पुनः सुखञ्च पुनर्दुःखं
संविक्खमाणः समतयाईच्चमाणः समभावेन पश्यन् अहं मौनं चरिष्यामि मुनेः कर्ममौनं मुनयो हि लाभालाभे सुखि दुःखे जीविते मरणे तथा शत्रौमित्रे
तृणेस्त्रैणे साधवः समचेतस· १ यस्मिन् साधुधर्मे रसेषु जीवितव्येषु निःस्पृहत्वं तन्मुनित्वं अंगीकरिष्यामि २१ माहूतुमंसोयरियाण संभरे जुन्नोव्वहंसो
पडिसुत्तगामी भुंजाहि भोगाइमए समाणं दुक्खं खुभिक्खायरिया विहारो २२ अथ पुनर्ब्राम्हणीप्राह हे पुरोहितत्वं मयासमं भोगान् भुंक्ष्व इत्यलं

सूत्र

मुता कामगुणेपकामं पच्छा गमिस्सामोपहाण मग्गं ॥२१॥ भुत्तारसा भोद्र जहाहणेवउं न जीवियट्ठा पहयामि
भोए । लाभं अलाभंच सुहंच दुक्खं संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ॥२२॥ माहू तुमंसोयरियाण संभरे जुन्नोवहंसो

भाषा

कामभोगान् प्रकामं सेवामहे तिणेकारणिंए कामभोग आपणभोगवीद्र अतिसेवये पश्चात् गमिष्यामि आश्रयिष्यामः प्रधानमार्गं मुक्तिमार्गं पछे आपण
आदरस्यां प्रधानमार्गं मुक्तिमार्गं मोक्षमार्गं २१ रसाः विषयाः भुक्ता हे भद्रं प्रियेनोऽस्मान्वयो यौवनं रूपं त्यजति हे ब्राम्हणी भोग भोगव्यां हतां
यौवनवयजाइरहेनही मानजायछे ऽवस्था न जीवितार्थं त्यजामि भोगान् असंयमजीवितार्थं न पर भवभोगवांछाए कामभोग पेटभराने अर्थे इह
लोकार्थे नही छोडता लाभं अलाभ पुन· सुखं दुक्खं लाभ अलाभ सुख दुःख इष्यन् पश्यन् प्राणान् चरिष्यामी मुनिभावं भोगवतोथकोजीव परिख्या

कारेण इत्यपि हे स्वामिन् त्वं पन सोदर्याणां सहोदराणां भ्रातृणां स्वजन सम्बन्धिनां गृहे स्थितानां मासार्या कोर्थं त्वं मुनिर्भूत्वापयाद् स्थित सन् गृहवासान् स्व मन्यून् स्मरिष्यसि तथाश्रया साई विषय सुख भुञ्जानो गृहेतिष्ट इत्यर्थं खुइति निश्चयेन भिक्षाचर्या विहारो दुःख दुरुहे दुरेवास्ति भिक्षाचरत्व असहमानस्त्व गृह वास स्मरिष्यसि इति भाव त्वं क इव सोदरात् स्मरिष्यसि जीर्णहस इव वृद्धो हसो यथा प्रति श्रोतोगामी सन्मुख जल प्रवाहस्तरन् तत्र तरणा सन्न पथादनु श्रोतो जल तरणं स्मरसि मनसिखिन्न सन इति जानाति मया किमर्थं सन्मुख जल प्रवाहतरणमारब्ध जलप्रवाह मार्गेण सह तरणमेव मम श्रेय तथात्वमपिमा भूरित्यर्थं ३३ अथ भृगु पुरोहित आह जहायभोईतणु अभु अह्नोनिम्मोयणि हि सपलाइ मुत्तो एमे एजाया पयहन्ति भोए तेहिं कह नाणु गमिस्समिक्को ३४ भोइ इति हे भवति हे वाम्हणि भुजङ्ग सर्पं स्वतनुजा शरीरादुत्पन्ना निर्मोचनी निर्मोक कञ्चुक हित्वा मुक्त सन प्रयाति एव एतौ जातौ पुत्रौ भोगान प्रजहीत तौ भोगत्यागिनौ पुत्रौ प्रति अह एकाकीसन् कथ न अनुगमिष्यामि पुत्राभ्यां विहीनस्य एकाकिनो मम कोदृशो गृहवास धन्यौ यौ पुत्रौ तरुणाविवकरुण इव विषय सुखत्यक्त्वा भुजङ्गमवत् प्रजत इत्यर्थं ३४ छिन्दित्

पडिसोत्तगामी भु जाहि भोगाइ मए समाण दुक्खखु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥ जहायभोइ तणुय भुयगो

करतु साधूनो क्रियाकरोसि सहताऊता ३२ अथ ब्राह्मणोआह मा इति निषेधेत्व सौंदर्यान स्वजनानि स्मरसि ब्राह्मणी कहेछे रखेतु दिक्षालेइने स्वजनने समरेपछे पिछतावेनेकादिग्धान्नोधो यथा जीर्णहस विपरीत जलगामीजिमजीर्णं बूढो राजहसउपराठे पाणीमाहि पछोयको सोचेतिमतु सोधो स भु स्व भोगान् मयासम सुभ्र स घाते भोगभोगवि दीचानीवातरहवायो दुक्खरूपोनिश्चयेन भिक्षाचर्य्या विहारए भिक्षाचर्यनु व्रतदोहिलछे पाण्, नहो जाइ ३३ अथ वाह्मणआह यथा हे भद्र सरोरीत्पना भजगसर्पं जिमसर्पं आपणाशरीरथी उपनीभोइति आमवणे नीर्मोचनों

जालं अवल वरोइया मच्छाजहा काम गुणेपहायधोरियसीला त वसाउयाराधीराइभिक्खायरियञ्चरन्ति ३५ हे व्राम्हणि धीराः धैर्यवन्ताजनाद्र निश्चयेन भिक्षा चर्याभिक्षा इति साधुधर्मञ्चरन्ति कीदृशाः धीराः तपसा उदाराः अथ वा कीदृशीं भिक्षाचर्यां तपसा उदारान्तपसा उदारां तपसा प्रधानां प्राक्षतत्वाद्विभक्ति लिङ्गव्यत्ययः पुनः कीदृशाधीरा धौरेयशीलाः धौरेयाणां धुरन्धराणां इव शीलं उद्बोढभारोद्वाहनसामर्थ्यं येषान्ते धौरेयशीला किं कत्वा धीराभिक्षा चर्याञ्चरन्ति काम गुणान् प्रहाय प्रकर्षेण हित्वा के किं यथा यथा शब्द इवार्थे के किं इव रोहिताः मत्स्याः रोहितजातीयामीनाः अवलं जोर्णं जाल इव यथा बालिष्टमत्स्याजीर्णं जालञ्छित्वानिर्भय स्थाने चरन्ति तथा धीराः कामगुणान् पास सदृशान् त्यक्वाभिक्षाचर्यां आद्रियन्ते अहमपि इत्थ एव चरिष्यामि इति भावः ३५ इति भृगु वचनं श्रुत्वा व्राह्मणी आह न हेव कुञ्चासम इक्कमन्ता तयाणि जालानिदलित्तु हंसा पतन्ति

निम्मोयणिं हिच्चपलेइ मुत्ते। एमेव जाया पयहंतिभोएनोहं कहं नाणु गमिस्समेक्को ॥३४॥ छंदित्तुजालं अवलं वरोहिया मच्छाजहा कामगुणेपहाय धोरेय सीलातवसा उदारा धीराहुभिक्खायरिअं चरंति ॥३५॥ नहेव कुंचा

कंचुलिकां त्यक्ताागच्छति निरपेक्ष सन् जोमकांचलीछांडीने सर्पनासे एतोएव जातो पुत्रो भोगांस्त्यजत एताहरा पुत्रभोगछांडीने दिक्षालीइछे ततः अहं कथंनानुगमिष्यामो एको द्वितीयः तोहुं वेटाने साथिं किमनजाउं पूठिरहीने एकलोस्युं करुं ३४ जालं छित्वा अवलं दुर्बलं रोहितो मत्सः रोहितनामा मछ्यपूंछे करीजालछेदीनांखे जालकिस्याछे निवलछे यथा रोहितोमछ्यः जालं छिनत्ति तथा कामगुणान् त्यक्वाजिम मछ्यजाल छोडी नासेतिमपुत्र कामभोगछोडी नासेछे छत्वाशीलान् आचारगुणान् तपसा उदारान् लेईने शीलनागुण तपनागुण अम्हे ईदृशाः धीरा जीवान्

पुत्ताय पईयमञ्भ तेहि कहि नाणुगमिस्समेक्का २६ पुत्रौ द्वौ अपि पतिर्भृगु पुरोहित एते त्रयोपि मम इति मा दलयित्वामत्सम्बन्धि स्नेह जाल भोगाभिष्वङ्ग जालञ्छित्वापत्नन्ति परियान्ति परिसमन्तात् यान्ति स्वयमात्मनि चरति इत्यर्थ एतेके इव क्रोश्चा क्रौञ्च पचिणोहंसा हंस पचिणो वाते इव यथा क्रौञ्चपचिणी हंस पचिणय ततानि विस्तीर्णानिजालानि दलयित्वाभित्वासमक्रामन्त नाना प्रदेशात् उल्लङ्घयन्तौ नभसि परियान्ति गगने परि यान्ति स्वेच्छयाविचरन्ति अत्र हि विषय सुख जालोपम नित्वनैपत्वात्साधुधर्मनभ स्वल्प उत्तमजीवानां क्रौञ्च विहङ्गह स विहङ्गमोपमान यदा एते त्रयोपि मान्यक्त्वा प्रजन्ति तदा अहं एकाकिनीतान् कथ न अनु गमिष्यामि अपि तु अनु गमिष्याम्येव २६ पुरोहित त स सुय सदार सुखाभिनिक्खम्म पहायभोए कुटम्बसार विउलुत्तमत्त राय अभिक्ख समुवायदेवी ३६ अथ यदा च तुषा प्रव्रज्यायां मनोभूत् तदा किं प्रभूत् इत्याह राजान त इषु कारिण देवीकमला मभीक्ष्ण वार २ समुवाय सम्यक प्रकारेण प्रिया पूर्वकमुवाच किं कृत्वा पुरोहित भृगु स सुत पुत्र सहित सदार स पत्नीक

मूल

समच्छमता तयाणि जालाणि दलित्तुहंसा । पलेति पुत्ताय पईयमञ्झ तेह कहनाणु गमिस्समेक्को ॥३६॥ पुरोहि यत ससुय सदार सोच्चाभिनिक्खम्मपहायभोए कुडवसार विउलुत्तमतराय अभिक्ख समुवायदेवी ॥३७॥ वतासी

भाषा

भिक्षाचर्या चरतिइ स्या पोरपुरुष भिक्षाचर्याविचरे दीक्षामेई सूझती आहारलोइ ३५ अथ ब्राह्मणी प्रबुद्ध आह यथा नभसि आकाशे क्रौंचपक्षिण जिम आकाशनेविषे क्रौंचपङ्खी यथा तानि रचितानि जालानि दलित्वाइ सा गच्छन्ति क्रौंच पखियाने हसाने जालमाच्छे ते जालतोडीने आकाश उडीजाइ तथा परियाति गच्छ ति पुत्रौ पतिश्च ममतिमए माहरावे बेटाएभरतारभोग जालछोडीनेजाइछे तान् प्रति अह एका कथनाणुगमि

भोगान् प्रहाय प्रकर्षेणत्यक्त्वा पुनर्विपुलं विस्तीर्णं उत्तमं तं कुटम्बसारं प्रहायत्यक्त्वा कुटम्ब स्वजन वर्गं सार धनधान्यादिकं उभयमपित्यक्त्वा अभिनिः क्रम्य गृहान्निर्गत्य प्रव्रजित इति श्रुत्वा तस्य पुरोहितस्य धनादिकं गृह्णन्त राजान राज्ञी प्राह इत्यर्थं ३७ वन्तासी पुरिसोराय नसोहोइपसंसिओ माहणेण परिचत्तं धणं आयाओसिच्छसि ३८ राज्ञी किं उवाचेत्याह हे राजन् योवान्ताशोसपुरुषः प्रशंसनीयो न भवेत् श्लाघ्यो न भवेत् हे राजन् ब्राह्मणे न परित्यक्तं धनं त्वं आदातुं इच्छसि ब्राह्मणेन त्यक्तं धनं वान्ताहार सदृश गृहीत्वा त्वं श्लाघ्यो न भविष्यसीत्यर्थः वां तं वदनादुद्गतं आहारं अश्नातोत्येवं शीलोवान्ताशो वान्ताहारभोक्तेत्यर्थ ३८ सव्वं जगजइ तुहं सव्वं वा विधणं भवे सव्वं पिते अपज्जत्तं नेवताणायतं तव ३९ हे राजन् यदि सर्वं जगत्समस्तोपि भूलोकस्तव भवेत् भवायत्तः स्यात् वाय वा सर्वमपि धनं रजतस्वर्णरत्नादिकं अपि तद् भवेत् तत्सर्वं जगत् पुनः सर्वं अपि धनत्ते तव अपर्याप्तंभवेत् तव इच्छा पूरणाय असमर्थं स्यात् यत इच्छाया अनन्तत्वात् पुनस्तत्सर्वं जगत् तत्सर्वं धन त्राणाय मरण भया द्रक्षणायन

सूत्र

पुरिसोरायं नसोहोइप संसिओ । माहणेण परिचत्तं धणं आयाओ मिच्छसि ।३८। सव्वंजगं जइतुहं सव्वंवाविधणं भवे । सव्वंपिते अपज्जत्तं नेवताणायतंतव ॥३९॥ मरिहिसिरायं जयातयावामणोरमे कामगुणे पहाय एक्कोहु धम्मो

भाषा

थामि तेसाथेइं पणिजाईसिएकलीरहोनेस्युकरं २६ तं पुरोहितं सुतकलत्रसहित ते पुरोहितने बेटाबायडिसाथे श्रुत्वा गृहात् निर्गत्यभोगांस्त्यक्त्वा सुणोनेदीक्षालिइछे भोगछांडीने धनधान्यादिगृह्णन्तं स्त्रीकुर्वंतं धनधान्य अंगीकरताराजाने अभीक्ष्णं पुनः सम्यग् उच्यते कमलावती देवीहीवे राजाने वारंवार कमलावती देवी कहे २७ भोराजन् वमनभोजी पुरुषः अहो राजा वम्यो आहारजे पुरुषकारे स न भवति प्रसंसनीयः ते पुरुष प्रशंस वा योग्य

टीका

धन भवेत् यदि जगत् धाद्य इच्छा पूरणाय अथ च मरणा द्रत्यणाय असमर्थं तदा किं ब्राह्मण परित्यक्त धन ग्रहणेत्यर्थ ३९ मरिहिसिराय जया तया वामणोरमे कामगुणेपद्दाय एक्को हु धम्मोनर देवताण न विज्जइ अयमिहे इकिंचि ३० हे राजन् यदा तदा यस्मिन् तस्मिन् काले मनोरमान् मनो हरान् कामगुणान् प्रहाय प्रकर्षेण यत्नामरिष्यसि म्रियमाणस्य पुरुषस्य च धनादि साथे नभवति हे नरदेवहु इति निश्चयेन एकोधर्म एयत्राण शरण विद्यते इह जगति इह मृत्यौ वा जीवस्य अयत् किंचित् त्राण न विद्यते ४० नाह रमे पक्खिणि पजरे धास ताण छिन्ना चरिस्सामि मोण अकिंचिणा उज्जुकडा निरामिसा परिग्गहारंभनि अत्त दोसा ४१ अह इहेति अध्याहार हे राजन् अह नरमे रतिं न प्राप्नोति वा शब्द इवार्थे पक्षिणी पजरे इव यथा पक्षिणी पजरेरति न प्राप्नोति अह सन्तानच्छिन्नासती मौन मुनीनां आचार चरिष्यामि करिष्यामि छिन्न सन्तान स्नेह सन्ततिर्ययासाछिन्न सन्ताना पुन कथ भूता सती अह अकिंचना स चित्ताचित्तविविध परिग्रहरहिता पुनरह भूतासती ऋजुमायारहित क्रत तपो धर्मं ययासा ऋज कृता पुन कथ भूतासती निरामिषासती नि क्रान्ता आमिषात् विषयादिपदार्थात् इति

सूत्र

नरदेवताण। नविज्जई यत्तमिहेह किंचि ॥४०॥ नाह रमेपक्खिणि पजरेवा सताणछिन्ना चरिस्सामिमोण। अकिं

भाषा

न इइ ब्राह्मणेन परीत्यक्त माहणेछोडीजइ धन वित्त ग्रहीतु मिच्छसि जेधन तेहने लेवु वाछेछे ३८ सर्व्वं जगत् यदितव सर्वजगत् तुझनेहोजे अथवा स्वर्णादिक सर्वताहरेहुवे सर्वमपि तव अपर्य्याप्त असपूर्ण सर्वंते अपर्य्याप्तसतोहितोने न स्यात् रक्षणाय तत्सर्व तव धनएधन तुझनेराखी सकेनही ताहरीतृष्णापूरी न होइ ३९ हे राजन् यदा तदा कालेषु मरिष्यसि हे राजन यदा तदाकालितु मरीश मनोरमान कामगुणान् त्यक्त्वा मनोहरए कामभोग छोडीने हे नरदेव एकधर्मएव त्राण शरण हे राजा एकधर्मजीवनेराखणहारछे दुर्गति पडताने न विद्यते अन्यत् इहलोके किंचित् बीजो वस्तु

निरामिषाविषयाद्दय: पदार्था हि विषय जोवानां ग्टद्धिहेतुत्वादामिषोपमाएतस्मादहं निर्विषयासती पुन: कथं भूतासती अहं परिग्रहारम्भ निहत्तदोषा परिग्रहश्च आरम्भश्च परिग्रहारम्भौ तौ निहत्तौ दोषौ यस्या सा परिग्रहारम्भ निहत्तदोषा ४१ दवग्गिणा जहारन्ने डज्झमाणे सुजं तु सु अन्नेसत्तापमो यन्ति राग दोसवसङ्गया ४१ अपरं यथा अरण्ये जोवेषु दह्यमानेषु सत्सु अन्ये अदग्धा: सत्ता: प्रमोदं ते हर्षिता: भवन्ति मनसि एवं जानन्ति एतेज्वलन्ति तदाज्वलं तु वयं अदग्धास्ति गत: कथं भूतास्ते रागद्वेषयोर्वंगङ्गता: रागद्वेषग्रस्ता: ४१ एव मेव वयं मूढा काम भोगेसु मुच्छिया डज्झ माणं न वुज्झामोरागदोसग्गिणा जगं ४३ एवं अमुनैव दृष्टान्ते न वयं मूढा: अविवेकिन काम भोगेषु मूर्च्छिता. सन्त: रागद्वेषाग्निनाजगत् दह्यमानं न बुध्यामहेनजानीमहे वयमिति बहुवचनात् वह्वोऽस्मा दृगाजोवा इति ज्ञापनार्थं ४२ भोगे भुचावमित्ताय लहु भूय विहारिणी आमोयमाणा

चगाउज्जु कडा निरामिसापरिग्गहारंभ नियत्तदोसा ।४१।। दवग्गिणा जहारन्ने डज्झमाणेसु जंतुसु । अन्नेसत्ताप मोयंति रागदोस वसंगया ॥४२। एवमेव वयंमूढा कामभोगेसु मुच्छिया डज्झमाणा नबुज्झामो । रागदोसग्गिणा

धर्मवोना जोवने राखणहार शरणझोनयी ४० नाहरमेपक्षिणोइव भवपंजरे जिम पक्षिपांजरा मांहि संतोष न पामेतिमहुं ए भवपांजरामांहिरति नहीपामुछुं संतति छिन्ना स्नेहरहिता चरिष्यामि मोनंहु स्नेहकरोरहित मौनव्रतआदरोदिप्यायहस्तावास लेईसे द्रव्यतो हिरण्यादिरहिता: कषायादि रहोता: विषयादिमुक्ता: द्रव्यरहित कषायरहित विषयरहित परिग्रहारंभदोषरहिता परिग्रह गने आरभदोषतिणेकरोरहितछे ४१ दवाग्निना यथाऽरण्ये दावानल अग्नि अटवोने वोपेलागोथको दह्यमानेषु जतुषु दाझतायका जोवनेदेखोने अन्ये प्राणिन: प्रमोदवति सुख'ति वोजाजोव अरण्य

गच्छन्ति दियाकामक्रमाइव ४४ धन्यास्तेजो वा इयध्याहार जे जीवा भोगान् भुक्त्वा पुनरुत्तरकाले वा त्यात्क्वा अर्थात्साधवो भूत्वा आमोदमाना गच्छन्ति दियाकामक्रमाइव ४४ धन्यास्तेजो वा इवध्याहार जे जीवा भोगान् भुक्त्वा पुनरुत्तरकाले वा त्यात्क्वा अर्थात्साधवो भूत्वा आमोदमाना गच्छन्ति विचरन्ति वाञ्छित स्थान व्रजन्ति ते जीवा के इव कामक्रमाद्विजो इवक्राम स्वेच्छया क्रमो विचरण साध्याचरणीयानुष्ठानेन सन्तुष्टा सन्तोगच्छन्ति विचरन्ति वाञ्छित स्थान व्रजन्ति ते जीवा के इव कामक्रमाद्विजो इवक्राम स्वेच्छया क्रमो विचरण येषां ते काम क्रमा स्वेच्छाचारिण अप्रति बद्धविहारत्वेन यत्र २ संयमनिर्वाहस्तत्र २ यान्तीत्याशय पुन कथ भूतास्ते जीवा लघु भूतविहारिण लवर्वायुस्तद्भूतास्तदुपमा सन्तोविहरन्तीत्येव शीला लघु भूतविहारिण अथ वा लघुयासौ भूतश्च लघु भूतो वायुस्तद्वत् विहरतीत्येव शीला लघु भूत विहारिण वायुरिवा प्रतिबद्ध विहारिण ४४ इमे यवद्धा फन्दन्ति ममहस्तज्जमागया वयञ्च सत्ताकामेसु भविस्सामो जहाइमे ४५ हे आर्य इमे च प्रत्यक्षा शब्द रूपरसगन्धस्पर्शादय पदार्था बद्धा नियन्त्रिता सुदृढी कृता ममहस्ते पुनस्त वहस्ते आगता अपि फन्दन्ति अस्थिति धर्म तया गत्वरा

जग ॥४३॥ भोगेभोच्चावमित्ताय लहुभूय विहारिणो । अमोयमाणा गच्छंति दियाकम कमाइव ॥४४॥ इमेय वद्धा फन्दंति ममहत्थज्जमागया वयच सत्ताकामेसु भविस्सामो जहाइमे ॥४५॥ सामिस कुललंदिस्स वज्झमाणं निरामिस

नातिहने देखीने खुसीथाइ रागद्वेषवशगता रागद्वेषनेवशि पड्यायका ४२ एवमेव वय मूढा इम अम्हे मूर्ख कामभोगेषु मूर्च्छिता कामभोगने विषे मूर्च्छापाम्याछे दृष्टान्त न बुझामोनवेद याम दाझतायकानथीजाणता रागद्वेषादिना जगद्दिख रागद्वेषने वशिपड्यायका न जाना ४३ पूर्व भोगान् भुक्त्वा तृप्त थाला पछलां भोग भोगवपछे छाडीने अप्रतिबद्ध विहारिणोयतय हलूयाछ आयकावायूनीपरि अप्रतिबद्धयको विहारकरे आमोद माणा हर्षयुक्ता गच्छन्ति हर्षसहितथकाजाइ द्विजा पक्षिण इव स्वेच्छाचारिण जिमपखी आपथीइच्छाइजाछे ४४ इमेप्रत्यक्षा शब्दादय बद्धा राग

दृश्यन्ते सुरचिता अपियान्तीत्यर्थः एतादृशेषु गत्वरेषु कामेषु पश्चावयं गता सञ्जातालिता जाताः तस्मात् एतेषु गत्वरेषु कः स्नेहः हे स्वामिन् आवां यथा इमे पुरोहितादयः चत्वारोजातास्तथा भविष्याम. ४५ सामिस कुललं दिस्स बज्झमाणं निरामिसं आमिसं सव्वमुज्झित्ताविहरामिनिरामिसा ४६ हे राजन् अहं सर्वं आमिषं अभिष्वङ्गहेतुं धन धान्यादिकं उज्झित्वात्यक्त्वा निरामिषात्वनासङ्गासती अप्रति बद्धविहार तया विहरिष्यामि किं कृत्वा सामिषं आमिष सहितं कुललं गृद्धं अपरं पक्षिणं वा परैरिति अन्यैर्बध्यमानं पीड्यमानं दृष्ट्वा सामिषः पक्षी हि आमिषाहारिपक्षिभिः पीड्यते अथ वा सामिषं सस्पृहं भोजनाद्यर्थं लुब्धं कुललं पक्षिणं परैर्बध्यमानं पीड्यमानं दृष्ट्वा यतो हि पक्षिणो यदा गृह्णन्ते तदा तान् भक्ष्यं दर्शयित्वापाशा दिना बध्यन्ते आमिषाहारी शकुनिस्तु आमिषदर्शने नैव लोभयित्वामीनवत् बध्यते सह आमिषेण आमिषरसास्वादलोभेन वर्त्तते इति सामिषस्तं सामिषं ४६ गिद्धोवमे उनच्चाणं कामे संसारवड्ढणे उरगोसुवन्नपासिव्व सङ्कमाणो तणुं चरे ४७ हे राजन् त्वमपि विषयेभ्य शङ्कमानः सन् तनुं स्तोकं यतन याचरेः इति चरम विषयेभ्यो भीति पदे २ बिभिया इत्यर्थः किं कृत्वा गृध्रोपमान् पूर्वोक्तसामिष कुललोपमान् विषय लोलुपान् जनान्

आमिसं सव्वमुज्झित्ता विहरिस्सामो निरामिसा ॥४६॥ गिद्धो वसेउ नच्चाणं कामे संसारवड्ढणे । उरगो सुवन्न पासेव्व

ह्वेपरचिता फंदंति स्थिरा न भवंतिएकामभोग भलो परि राज्याधका घोरनहोर मम इसो समागताऽपि माह राज्ञाधनेनिमें आव्यायकाळे वयं पुनः कांमभोगेषु आसक्ताः अम्हे कांमभोगनेविषे आसक्तप्राय भविष्यामः उद्दृगाः यथा पुरोहितादयः जिमएपुरोहितादिकछवेछे तिमहोस्यां अम्हे पिण ४५ सामिषं मांसयुक्तं कुललं पक्षिणं दृष्ट्वा मांससहीत पंखीनेदेखीने पीड्यमानं निरामिषेण जे मासरहित पंखीछे ते मांससहीत पंखीने पीडे मांसखोसीलोइ एवं आमिष धनधान्यादि सर्व्वंत्यक्त्वा इम आमिषसरिखुं धनधान्य छोडीने विहरिस्यामि निरामिषा विषयरहिता निरामिषप्राय

उ०टीका
अ०१४
४४८

ज्ञात्वातु पुनः कामान् संसारवर्द्धकान् ज्ञात्वा विषयलोलुपा कामे पीडिता संसारे भ्रमन्तीति ज्ञात्वा त्व काङ्क्षयशङ्कमान सन् सुपर्णपार्श्वे गरुड समीपे उरगइव सर्पइव यथा गरुडपार्श्वे सर्पं शनैः २ शङ्कमानः सन् चरति यथा गरुडो न जानाति तथाऽविश्वासी सन् तनु यथा स्यात्तथा चलति तथा त्वमपि गरुडोपमानां विषयानां विश्वास माकुर्याः अत्रहि विषयाना गरुडोपमान संयमरूप जीवितापहारकत्वात् नरस्यहि भोगलोलुपत्वात् उरगोपमान यत उरगो भोगीव उच्यते विषयास्तु हन्यमानास्तु न्दरा गरुडाकारा भोगिनांहि विषयेभ्य एव मृत्युः स्यात् तस्माद्विषयेभ्य शङ्कनीयमित्यर्थः ४७ नागोव्व बधण छित्ता अप्पणोवसहि वए एय पत्थ महाराय उसुयारित्तिमेसुय ४८ हे राजन नागइव हस्तीव बन्धन छित्वा आत्मनो वसति स्वकीय स्थान विन्ध्याटवींयाति तथा त्वमपि बलवत्वात् नागो विषय शृङ्खला छित्वा आत्मन स्थान मुक्ति व्रजे धीरपुरुषा गजतुल्या विषया शृङ्खला तुल्या मुक्तिविन्ध्याटवी इव ज्ञात्व गजस्य स्थानमुक्त हे इषुकारि महाराज मया साधुमुखात् इति पथ्य हित श्रुतमस्तिनाहं स्वबुध्या ब्रवीमि इत्यर्थः ४० चइ त्ताविउल रज्ज कामभोगेयदुच्चए निव्विसयानिरामिसानिन्नेहानि परिग्गहा ४९ सम्म धम्म वियाणित्ता चिच्चाकामगुणेवरे तव पगिज्झहक्खाय घोर घोर

सूत्र

सकमाणो तणु चरे ॥४७॥ नागोव्व बधण छित्ता अप्पणो वसहिवए । एय पत्थ महाराय उसुयारित्तिमेसुय ॥४८॥

भाषा

यथा विहरस्यां ४६ गरुडोपमान् ज्ञात्वा गरुडपखिया सरिखा पुरुषजाणीने कामान् संसारवर्द्धकान् एकामभोग संसार नावधारण हारछे उरग सर्प गरुडपार्श्वेभय चस्त सन् सय गरुडने समीपे भययको सकमान तनुर्भवति तथाचरे भो राजन् शकमान शरीर हुवे गुरुडथी विहतो थाले हुवलो ४७ यथा नागो हस्ती बधनच्छित्वा जिम हाथी बधन तोडीने आत्मनावसति स्थान गच्छति आपणे स्थानकिजाइ एतत्पथ्य भो महाराज अहो महाराज एपथ्यके भोइषुकारमे मयाइति श्रुत भो इषुकार महाराजामे इमसाभल्य ४८ इति श्रुत्वा राजा प्रतिबुद्ध राजा राणीइ राज्यछांडी तथा कामभोगान

उ०टीका
अ०१४
४५०

परक्कमा ५० एवंते कमसोवुद्धा सव्वेधम्म परायणा जम्ममच्चुभउव्विग्गा दुक्खस्संत गवेसिणो ५१ तस्मिन् कुलके एव अमुना प्रकारेणते सर्वेपि क्रमशोऽनुक्रमेण षडपि जीवा बुद्धा प्रति बोधं प्राप्ताः किं कृत्वा विपुलं विस्तीर्णं राज्यं त्यक्त्वा च पुनर्दुस्त्यजान् कामभोगान् त्यक्त्वा कथं भूतास्ते सर्वे निर्विषया विषयाभिलाषरहिता पुनः कथ भूताः निरामिषा स्वजनादि सङ्गरहिता पुनः कोदृशा निष्परिग्रहा बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहिताः ४९ पुनस्तेजीवाः किं कृत्वा प्रतिबोधं प्राप्ता सम्मं सम्यक् प्रकारेण धर्मं साधु धर्मं विज्ञाय पुनर्वरान् दुर्लभान् प्रधानान् कामगुणान् त्यक्त्वा कामस्य मदनस्य गुणकारित्वात् काम वृद्धिकरत्वात् गुणाः कामगुणास्तान् कामगुणान् स्रक् चन्दनवनितादीन् कामोद्दीपनौषधादीन् त्यक्त्वा अत्र पुनः कामगुण ग्रहण तेषां अतिशयख्यापनार्थं पुनः किं कृत्वा घोरं अघोर पुरुषैर्दुरनुचरं यथा ख्यातं तीर्थंकरोद्दिष्टन्तपो द्वादशविधं प्रगृह्य भावतोऽङ्गीकृत्य पुनः कथं भूता. ते सर्वे घोर पराक्रमा घोरं पराक्रमं धर्मानुष्ठान विधिर्येषां ते घोर पराक्रमा पुनः कोदृशा ते सर्वे धर्म परायणाः धर्मध्याने तत्परा इत्यर्थः पुनः कोदृशास्ते जन्म मृत्यु भयो

सूत्र

चइत्ता विउलं रज्जं कामभोगेय दुच्चए। निव्विसया निरामिसा निन्नेहानिपरिग्गहा। ४९ ॥ सम्मं धम्मं वियाणित्ता चिच्चाकामगुणे वरे तवंपगिज्झ हक्खायं घोरं घोर परक्कमा ॥५०॥ एवंते कमसो बुद्धा सव्वेधम्म परायणा

भाषा

दुस्त्यजन् वलो छोडतां दोहिला इस्या कामभोग छोड्या निर्विषयाः निरामिषाविषयतृष्णारहित वोषयरहित हुया नोस्नेहानिः परिग्रहाः स्नेहरहीत परिग्रहें रहित हुआ ४९ सम्यक् धर्मं ज्ञात्वा साचोधर्मजांणोनें त्यक्त्वा कामगुणान् वरान्वरप्रधान कामभोग त्यजीनेतपो गृहीत्वायथाख्यातं तीर्थंकरभाषितं तीर्थंकरनो भाख्योतपअंगोकारकरोने घोर रौद्रः घोरपराक्रमी संतो चक्रतु घोरपराक्रमीं करीनें ५० एवं अमुना प्रकारेण ते षडपी जीवाः क्रमेण बुद्धा

उ०टीका
अ० १४
४५१

छिन्ना जन्ममरण भीति भीता पुनस्ते सर्वे किं कर्त्तुमिच्छव दुःखस्यान्त गवेषिणा दुःखस्यान्त मोक्ष गवेषण मोक्षाभिलाषिण इत्यर्थ ५१ सासणे विगयमोहाण पुव्विं भावण भाविया अचिरेणेव कालेण दुक्खस्सन्तमुवागया ५१ पुनस्ते षडपि जीवा अचिरेण एवस्तोक कालेन दुःखस्य संसारस्य अन्त अवसान अर्थात् मोक्ष उपागता मोक्ष प्राप्ता कोदृशास्तेविगत मोहानां वीतरागाणां शासने तीर्थे पूर्व पूर्वस्मिन् भवे भावनया सम्यक् क्रिया भ्यास रूपया द्वादश विधमन परिणति रूपया भावितारंजितात्मान ५१ अथ तेषा सर्वेषां षणां अपि जीवानां नामान्याह राया सह देवीए माहणीय पुरोहिओ माहणोदारगा चेव सव्वे ते परिनिव्वुडे त्तिबेमि ५३ राजा इषु कारीदेव्या मह राज्ञा कमलया सह ब्राह्मणी भृगुनामा पुरोहितो राज्ञ पूज्य पुनर्ब्राह्मणी पुरोहितस्य पत्नी यशा च पुनर्दारको ब्राह्मण ब्राह्मण्यो पुत्री एते सर्वेपि परिनिर्वृता मोक्ष प्राप्ता इति अहं ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामीज

सूत्र

जम्ममच्चु,भओ व्विग्गा दुक्खसंत गवेसिणो ॥५१॥ सासणे विगयमोहाण पुव्व भावण भाविया। अचिरेणेवकालेण दुक्खस्संत मुवागया ५२॥राया सहदेवीएमाहणीय पुरोहिओ। माहणो दारगाचेव सव्वे ते परिनिव्वुडेत्तिबेमि ५३॥

भाषा

इणा प्रकारेतेछइजीवप्रतीबोधपाम्या सर्वेऽपि धर्मपरायणा जाता तेसगलाइ धर्मने विषे तत्परहुआ जन्ममृत्यु भयोद्विग्ना जन्ममरणनाभयथोउभगाछे दुखउस्यातगवेषिणो मोक्षाभिलाषीण दुखनो अंतकरवावांछे के मोक्षवांछे छे ५१ शासने विगतमोहानां अर्हंता जिनशासननेविषेगत मोहछुआछे पूर्वजन्मभावनायाभाविता पूर्वजन्मजातिस्मरण ज्ञानउपनोतिणि करीने आमाभावितहुई संवेगऊपनो स्तोकेनैवकालेन थोडाकालमाहि दुःखस्यांत मोक्ष उपागता प्राप्ता दुखनो अतकोधो मुक्ति पुहुता ५२ राजादेव्या सह राजा रांणी ब्राह्मणय पुरोहीत बांभण पुरोहीत ब्राह्मणी दारको वा

बूखामिनं प्राह ५२ इति इषु कारीय अध्ययन चतुर्दश सम्पूर्णं ॥१४॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्तिगणि शिष्य लक्ष्मी कीर्त्ति गणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां इषुकारी यस्याध्ययनस्यार्थः सपूर्णं ॥१४॥ अथ पचदशं प्रारभ्यते ॥ चतुर्दशेऽध्ययनेनिर्निदा नस्य गुणः प्रोक्त स च निर्निदान गुणो हि मुख्य द्वत्याभिचोरेव भवति अतोभिचोर्लचणमाह मोणञ्चरिस्सामि समेच धम्म सहिए उज्जुकडेनियाणछिन्ने सन्थवं जहेज्ज अकामकामो अन्नायएसो परिव्वएजेसभिक्खू १ य एतादृशसन् परिव्रजेत् अनियता अप्रतिवद्ध यथा स्यात्तथा विहरेत् विहार कुर्यात् सभिक्षुरुच्यते स इति कः यः पूर्वं मनसि एव जानाति अहं मौन मुनीनां कर्ममौनं साधु धर्मं चरिष्यामि श्रामण्यं अङ्गीकरिष्यासि किं कृत्वा धर्मं दशविधं पञ्च महाव्रत दीक्षां समेत्यप्राप्य पुनर्योदीक्षां गृहीत्वा सस्तव पूर्वपश्चात्संस्तवं परिचय कुटम्ब स्नेहं जह्यात् त्यजेत् पर कीदृशः सन् सहिए इति सहितः स्थविरैर्वहु श्रुतैः साधुभि सहितः साधुर्हि एकाकीनतिष्टेत् इक्कस्सकओ धम्मोइत्युक्तत्वात् अथ वा कथं भूतः सन् सहितः सन् स्वसहितं यस्य स स्वहितः आत्माहिताभिलाषो पुन कीदृश उज्जुकडे ऋजु सरलकृत मायारहितन्तपो येन स ऋजु कृतः अशठानुष्टानकारीत्यर्थः पुन कीदृशः नियाणछिन्नेछिन्ननिदान निदानशल्यरहित इत्यर्थ पुन कीदृशः अकामकामः न विद्यते कामस्य कामोऽभिलाषो यस्य स अकामकामः कामाभिलाष

उसुयारिज्जं समत्तं ॥ १४ ॥ मोणं चरिस्सामि समेच्चधम्मं सहिएउज्जु कडेनियाण छिन्ने । सथवं जहेज्ज अकामकामे

वाह्मणी आदीऱ्हे जीव व्राह्मणनावेटावेई सर्व ते षडपिपरोनिर्वृता मोक्षप्रासाः सर्वेपोक्षइए जीवमोक्षपाम्यां ५२ इति श्रीचवदमा अध्ययननेविषेराजा इषुकारनो अध्ययनटव्वार्थसंपूर्णम् ॥ १४ ॥ अहं मौन सेविष्यामिइंमौन अंगीकार करु इति चितयित्वा समिंचारित्र धर्मं प्राप्यचारित्र अगी कारकरीने अन्यः साधुभि सहित रिजूस्वभाव निदान रहित अनेरा साधुसघाते सरलस्वभावथकोनीयाणेकरोरहितनीयाणोनकरे स्वजने सङ्

रहित पुन कोदृग अन्नाएसी अज्ञातैषी यव कुले तस्य साधोस्तपोनियमादि गुणैन ज्ञातस्तत्र एषयते ग्रासादिक गवेषोत वाञ्छते इत्येव शील अज्ञातैषो य एव विध सभिक्षुरियुच्यते अनेन सिहतयानि क्रम्यसिह तयाविहरण भिक्षु लनिबन्धन प्रोक्त साधुना चतुर्भंगी यथा सिहत्ताए निक्खमन्ति सिहत्ताए विहरन्ति सियालत्ताएनिक्खमन्ति सियालत्ताए विहरन्ति सिहत्ताए निक्खमन्ति सियालत्ताए विहरन्ति सियालत्ताए निक्खमन्ति सिहत्ताए विहरन्ति एव चतुर्भंगी उक्ता तत्र सर्वोत्तमासिहतयानि क्रमण सिहतया पालन तत्र यथास्यात्तथा पुन राह १ रागो वरय चरे ऋलाढे विरएवेय वियायरक्खिर पन्ने अभिभूयसव्वदसी जेकम्हिविनमुच्छिए सभिक्खू१ पुन सभिक्षु रित्युच्यते स इति क यो रागो परत यथा स्यात्तथा रागरहित यथा स्यात्तथा चरेत् पर कोदृग सन् विरत असयम मागाविहस पुन कोदृग सन् वेदविदात्मरक्षित वेद्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनेनेति वेद सिद्धान्तस्तस्य वेदन वित् ज्ञान वेदवित् सिद्धान्तज्ञान तेन आत्मारक्षितो दुर्गति पतनात् येन स वेदविदात्मरक्षित पुन कोदृग पन्ने प्राज्ञ हेयो पादेय बुद्धिमान् पुनर्यं अभि भूय परीषहान् जित्वा तिष्टतीति अभ्याहार पुन कोदृग सर्वदर्शी सर्व प्राणि गण आत्मवत्पश्यतीति सर्वदर्शी पुनर्यं कस्मि श्चित्सचित्ताचित्तवस्तु नि न मूर्छित अनोत्पन्न इत्यर्थ १ अक्को स वह विदित्तु धोरे मुणी चरेलाढे निच्चमायगुत्ते अविग्गमणे असम्पहिट्ठे जेकसिण अहियासए सभिक्खू २ पुन

अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥१ रागोवरयचरे ऋलाढे विरए वेय वियाय रक्खिए। पन्ने अभिभूय सव्वदसी

परिचय न करतो कामाभिलाषरहित सगासु परीचय न करे कामाभीलाष रहितथको अज्ञातकुल पन्नन् अनित्यत विहरे साधु अज्ञात कुलने विषे विचरे अनिलविहारियको १ रागरहित यथा स्यादेव विहरेत् लाढ प्रधान रागरहित थको विचरे क्रीयाकरे विरत सजयान्वित आगमवेत्ता आत्मरक्षक ससारथी विरतथयाछे सिद्धांतनाजाण आपणाआत्माने भलीरीतेराखेछे प्राज्ञ आत्मान पराजित्य सर्वदर्शी पडित आत्मानेजीते सर्वजन्तु

सभिक्षुरित्युच्यते स इति कः य आक्रोशय वधय अनयोः स माहारः आक्रोशवधं वाक् तर्जनताडनं विदित्वा स कर्म फलं ज्ञात्वा धीरस्तदा क्रोशवधादि सह न शोलो मुनि वागुप्ति युक्तः सन् चरेत् साधु वर्त्म निविहरेत् पुनः कीदृशः सन् लाढ साध्वनुष्टानेतत्परः पुनः कीदृशः नित्यं आत्मागुप्तः गुप्त असंयमस्थानेभ्योरचित आत्मायेनस गुप्तात्मा प्राकृतत्वा द्विपर्यय पुनः कीदृशः अव्यग्रमनाः अनाकुलचित्तः पुनः कीदृशः असं प्रहृष्ट आक्रोशादिषु न प्रहर्षवान् कश्चित्कदाचित् कर्म चित् दुर्वचनेनिर्भत्सयति तदा हर्षितो न भवतीत्यर्थः पुनर्यः कृतस्नं समस्तं आक्रोशवधं अध्यास्ते सहते सम हत्तिर्भवति स साधुरित्यर्थः ३ पं तं सयणासणं भइत्तासो उनहं विविहं च दं समसगं अव्वग्गमणे असं पहिट्ठे जेकसिणं अहियासएसभिक्खू ४ पुनर्यः प्रान्तं असारं अप्रधानं सयनं आसनं उपलक्षणत्वात् भोजनाछादिनादिकं भजित्वासेवयित्वा पुन शीतोष्णच्च पुनर्विविधम्दं समशकं रुधिरपानकरं जन्तु गणं सकलं प्राप्य अव्यग्रमनाभवेत् स्थिरचित्तोभवेत् पुनर्यः सम्यक् शयना सनभोजनाच्छादनलाभात् शीताद्युप द्रव रहितस्थानलाभात् तथादंशमशकादिरहित स्थानलाभात् असंप्रहृष्टो भवति हर्षितोनभवति सम दुःख सुखो भवति एतादृशः सन् एतत् सर्वं अध्यास्तेसभिक्षुरित्युच्यते ४ नो सक्कियमिच्छईन पूयं नोवियव दणगंकओपसंसंसेसज्जए सुव्व एतवस्सोसहिए आयगवेसएसभिक्खू ५ सभिक्षुर्भवेत् स इति कः यः सत्कृतं सत्कारं आत्मनः सन्मुखं जनानां

जेकम्हि विनमुच्छिए स भिक्खू २॥ अक्कोसवहंविदित्तुधीरे मुणीचरे लाढे निच्चमाय गुत्ते अवग्गमणे असंपहिट्ठे

जाणे जोवा जोवादिवस्तुनिमूर्च्छानकरीति साधु सचित्त अचित्त वस्तुउपरि मूर्च्छानकरेते साधुकहीइ २ आक्रोशवधं कर्मफलं प्रतिवध ज्ञात्वा आक्रोशे निर्भर्त्से मारे कोइ तो न करे क्रोध कर्मबंधनुं हेतुछे इमजाणो धीर क्रोधछांडे स मुनिः चरेत् प्रधानोनित्य असंयमस्थानेभ्यः गुप्तः मुनी विचरे चोहार करे प्रधानथकोजे असंयमनास्थानकतेहथकी गुप्त अलगाछे उद्विग्नमनाः संसारचिंतारहिताः मन आपणोठामिराखे संसारनी चिंता मांहि पड्यो नहो

स टीका
अ १५
४५५

आगमन अभ्युत्थानादिक विहार कुर्वतोऽनुगमनेन समेषण इत्यादिक नोइच्छति पुनर्यं पूजां वस्त्रपात्राहारादि भिरर्चां न इच्छति अपि च पुनर्वन्दनक द्वादशावर्त्त पूर्वक नमन तदपि नवाछति कुतश्चित्पुरुषात् प्रशंसां अपिनो इच्छति स स यत सम्यक यतने साध्वनुष्ठाने यत्न कुरुते इति स यत पुन कोदृश सुव्रत शोभन व्रतधारक पुनर्यं सहित सर्वजीवेषु हितान्वेषो अथवा ज्ञानदर्शनाभ्यां सहित पुनर्यं आत्मान कर्ममलापहारेण शुद्ध गवेषयतीति आत्मगवेषक पुनर्यं तपस्वो ५ जे पुजहाइ जीविय मोह वाकासिणनि अच्छई नरनारियजहेस यातवस्सी नयको जहह उवेई स भिक्खू ६ य पुनस्त हेतु जहातित क येन हेतुना येन कृतेन जीवित स यम जीवितव्य जहाति पुनर्येन कृत्वा मोह वा,मोहनीय कर्मकषायनो कषाय रूप

सूत्र

जे कसिण अहियासए स भिक्खू ॥ ३ ॥ पंत सयणासण भइत्तासी उनह विविहच दसमसग अवग्गमणे असपहिट्ठे जेकसिण अहियासए स भिक्खू ॥४॥नोसक्किय मिच्छईन पूय नोविय वदणग कओपसस। ससजए सुव्वए तवस्सी

भाषा

अहंकार न करे य छसन पुण आक्रोशवधादिसहेत् साधु जेसघला आक्रोश वचनताडनादि सर्वसहे ते साधु कहिइ ३ प्रांत सर्वथा अधमप्राय नागन गेविवाप्राइ भू जासपरानहींइत्याशयन आसनसेवेलिइ शीतोष्ण विविध दंसमसगसहेत शीतोष्णडांसमसाखटमल आदीलागाथकासहे अनाकुल चित्त असप्रहर्ष अनाकुल चितथकोरहित क्रोधे हर्षने दुक्ख न करे य कृत्स्न समस्त सहते सभिक्षु जे सघलु सहेतेसाधूकहीजे ४ नो सत्कारमिच्छतिनपूजा सत्कारपणिवाछे नही पूजापणिवाछे नही नापिवदणग कुर्वंत प्रससावाछति वदनाकरतां गृहस्थाने प्रससान वाछे स सयत सुव्रत तपस्वी ते सयत सुव्रत तपस्वीकहीइ सयमसहित आत्मागवेषक स भिक्षु स यमसहित आत्मानोगवेषकते साधूकहीइ ५ येन हेतुना पयते जोव

कृत्स्नं संपूर्णं नियच्छति बध्नाति तादृशं नरं नारीं स्त्रीं सदा सर्वदा प्रजह्यात् कोर्थः येन पुरुषस्त्र्यादिना ज्ञात्वा स यमं याति येन ज्ञात्वा मोह कर्मो दयः स्यात् तं प्रति यत्नवानिति भिक्षु रित्यर्थः पुनर्यस्तपस्वी तपोनिरतः पुनर्यः कौतूहलंस्त्र्यादि विषयं अथवा नाटकेंद्रजालानि कौतुहलं न चोपसेव्येत स भिक्षु रित्युच्यते ६ छिन्नं सरं भोममं तलिक्खं सुविणं लक्खण दंडवत्थु विज्जं अंगवियारं सरस्सविजयं जोविज्जाहिं न जीवई स भिक्खू ७ पुन स भिक्षु रित्युच्यते सः कः यः इत्यादिभिर्विद्याभिर्न जीवति आजीविकां न करोति ताः काः विद्याः छियते इति छिन्नं वस्त्रादीनां मूषकादिना दशनं अग्न्यादि प्रज्वलनं कज्जल कर्दमादिना लिंपनं स्फटनं इत्यादि शुभाशुभविचार सूचिका विद्या छिन्न मित्युच्यते यदाहि वस्त्रे नूतने किंचिद्विकारे सति विचारः क्रियते यदुक्तं रत्नमालायां निवसंत्यमराहि वस्त्रकोणे मनुजाः पाशदशांत मध्ययोश्च अपरेपि च रक्षसां त्रयोंशाः शयनेचासनपादुकासु चैवं १ कज्जल कर्दम गोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुरिते वा चिंत्यमिदं नवधा विहितेस्मिनिष्ट मनिष्ट फलंच सुधीभिः २ भोगप्राप्तिर्दैवतांशे नरांशे पुत्राप्तिः स्याद्रा क्षसांशे च मृत्यु प्रांते सर्वांशेप्यनिष्टं फलं स्यात् प्रोक्तं वस्त्रे नूतने साध्वसाधः इत्यादि विद्यया जीविकां न कुर्यात् स साधु पुनर्यः सरं इति स्वरविद्यां

सूत्र

सहिए आय गवेसए स भिक्खू ५॥ जेण पुणो जहाइ जीवियं मोहंवाकसिणं नियच्छई। नरनारिंपजहे सया तव स्सीनय कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ६॥ छिन्नं सरंभोम मंतलिक्खं सुविण लक्खण दंडवत्थु विज्जं। अंगवियारं सरस्स

भाषा

त्यजति संयमजीवितेन जे वातकरी संयमजीवित व्युटे ते वात न करे छांडीने कषायादिरूप मोहनीयं संपूर्णं नेच्छती मोहनीयकर्मसर्वथा न वांछे सर्वथा न करे नरनारीसंगंप्रजहाती स तपस्वी पुरुष नारिनो संगछांडे ते तपस्वी कहीये छोडे सदा न च कुतूहलं करोति स भिक्षू कुतूहल तमासो

८ टीका
अ०१५
४५७

प्रयु क्तं स्वरंहि षडज ऋषभगांधार मध्यम पञ्चमस्तथा धैवती निषध सप्ततन्त्री कण्ठोद्भवा स्वरा षडजरौति मयूरी पञ्चमरागेण जल्पते परभृत् इत्यादि विद्या इत्यादि सङ्गीतशास्त्र पुनर्भोम भूमी भवभौम भकम्पादि ऋतु विना वृक्षादिफलन इत्यादि लक्षण इत्यादि विद्या पुनरांतरिच्च अन्तरिक्षे आकाशे भव आन्तरिक्ष उल्कापात धूमकेतु प्रमुखाणा उदय विचार विद्या स्वप्न स्वप्नगत शुभाशुभलक्षण स्वप्नविद्या लक्षण स्त्रीपुरुषाणा सामुद्रक शास्त्रोक्त तुरग गजादीनां शालिहोत्र गजपरीक्षादिशास्त्रोक्त दण्ड दण्डविद्या वंशदण्डादि पर्वसंख्याफलकथन वास्तुविद्या प्रासादानां गृहाणां विचारकथन वास्तु शास्त्रोक्त अङ्गविद्या शरीर स्पर्शनस्य नेत्रादीना स्फुरणस्य वा विचारोक्त विचार शास्त्र पुन स्वरस्य विजय दुर्गा शृगाली वायसतित्तरादीना स्वरस्य विजयस्तस्य स्वरस्य शुभाशुभ निरूपणाभ्यास य एताभिर्विद्याभिराजीविका न करोति सभिक्षुरित्यर्थं ७ नत्त मूल विविह विज्जचिन्त वमण विरेयण धूमनेत्तसिणाण आउरे सरणन्ति गच्छियश्च त परिन्नाय परिव्वए समिक्खू ८ पुन सभिक्षुरिल्युच्यते स इति क य एतत् सव परिज्ञाय परिसमन्तात् ज्ञात्वा परिज्ञाय परिव्रजेत् साधु मार्गे चरेत् जाणियव्वानोसमायरितव्वा इत्युक्तं एतत् किं किं मन्त्र श्री ह्री प्रभृतिक साक्षात्देवाराधन मूल मूलि काराज हिमीशप पुष्पागरपुष्पादि गुण सूचक शास्त्र पुनर्विविध नाना प्रकार वैद्यचिन्तावैद्यकशास्त्रस्य औषधचिकित्सालक्षणस्य चिन्तन वर्जयेदिदल

सूत्र

विजयजो विज्जाहि न जीवई स भिक्खू ॥ ७ मत मूल विविह विज्जचित वमण विरेयण धूमनेत्त सिणाण आउरे

भाषा

नकरेतेसाधु कहोजे६ नतवस्त्र दंतादीनाछेदनषडजातिराग वस्त्रादिछेदवानालक्षण भूमिकपहोइतारातुटे उल्कापातहवेआकाशनीवातकहे स्वप्नलक्षण दंड लक्षण वास्तुविद्याप्रासादलक्षणस्त्र पनविचारवत्रिसलक्षणपुरुषाना वास्तुकविद्याघरप्रसाददेहरातेहनालक्षणपसुलक्षणघरलक्षणअंगस्फुरण श गालादिशब्दस्य अभ्यास अगफरकवांनोविचारशियालनावचनसब्दनोविचारय एताभि विद्याभि नजीवति सभिक्षु जेकोइएतलीविद्याकरीआजीविकानकरे ते सधुकहीजे७

सूलो कुष्टोमांसी ज्वरोद्यतं इत्यादि पुनर्वमनं वमनादिकरणोपायं अथ वा वमन फलं ज्वरादौवमन' श्रेष्ठं तथा विरेचन' विरे च गुण कथन' तदौषध प्रयोगचिन्तनं धूमो मनः शिलादि सम्बन्धी 'भूत चासनादिकः नेत्र शब्देन नेत्र संस्कारक' गुटी चूर्णादिक' स्नान' अपत्यार्थं मन्त्रौषधीभि संस्कृतजले मूलादि स्नान' अथ वा रोगमुक्त स्नान' वा पुनः आतुरे इति आतुरस्य रोगादि पीडितस्य हा मातः इत्यादि स्मरणं आत्मनश्चिकित्सित' रोग प्रतीकार चिन्तन' परित्यजेत् एतत्सर्वं परिज्ञाय आत्मनः परस्य वा उभ यथा परिव्रजेत् साधु मार्गं यायादित्यर्थः ८ खत्तियगण उग्गराय पुत्तामाहणभोइय विविहायसिप्पिणो नो ते सिंवय इसि लोग पूइयं तं परिन्नाय परिव्वए सभिक्खू ८ सभिक्षुरित्युच्यते स इति कः यस्तेषां गाथा पूर्वोक्तानां श्लोक' कीर्त्ति यथा एते भव्या पूजाइति एते पूजा योग्याः एतेषां पूजा कर्त्तव्याः एतेषां कीर्त्तिकरणे एतेषां पूजाया उपदेशे च न कश्चिल्लाभ' स्यात् साधुना एतेषां कीर्त्ति पूजेन कर्त्तव्ये इत्यर्थः एतेके के येचत्रियाः राजान तथा गणाः मल्लादीनां समूहाः पुनरुग्राः कोटपाला राज पुत्राः राजकुमाराः ब्राह्मणाः प्रसिद्धा भोगिनो भोग वंशोद्भवाः अथ वा भोगिनोविषयभोक्तारः च पुनर्विविधानाना प्रकाराः शिल्पिनश्चित्रकर सूत्रधार स्वर्णकारलोहकारादयो ये वर्त्तन्ते

सरणंतिगिच्छियंच । तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ८ खत्तिय गणउग्गरायपुत्तमाहण भोइय विविहाय सिप्पिणो

मन्त्रमूलिका 'विविध वैद्यचिता मन्त्रहरिणे गमेषि प्रमुख मूल जडो बूटी भांतोनोवैद्यपणानो चिंताकरे औषधकाढाप्रमुखवमनविरेचनधूम्नप्रयोग' स्नान' औषधदेईनेवमनकरावे वीरेचादीए गुदाइधूत्रादेई रोगमुक्तिने अर्थे स्नानकरावे आतुरे रोगादौमात्पीतादिसमरणंआत्मनःचिगिच्छांरोग आव्या थकां मावापसंभारे एतलां पोताने रोग आव्याथकां न करे अने बीजाने पणिऔषधनकरे एतानि परित्यक्षा परिव्रजेत्सभिक्षु' एतलां वांनाछांडे न करेते साधुकहीइ ८ चत्रियादि समूहं उग्र राजपुत्राः चत्रियना समूह'कोटवाल राजपुत्राः राजामना वेटा ब्राह्मणभोगिनिश्चय ब्राह्मण नृपामात्यादय'

तान् परिन्नाय उभ यथा ग्रात्वा साधु साधुमार्गे परिव्रजेत् ९ गिहिणोजे पव्वइएण दिट्ठा अपव्वइएणवसथुया हविज्जा तेसि इहलोइय फलट्ठा जोसथव नकरेइ सभिक्खू १० यस्ते गृहस्थै सह लोक फनार्थं सस्तव परिचय न करोति प्राक्ततत्वात् तेसि इति तृतीयास्थाने षष्ठी तै गृहस्थै कै ये गृहस्था परिव्रजिते नगृहीत दीक्षेण दृष्टा यथाद्य पुनरर्थे पुनरप्रव्रजितेन अगृहीतदीक्षेण गृहस्था अभस्थितेन ससुता कृत परिचिया तै सह आलाप सलाप इह लोक स्वार्थायन कुर्यात् स साधुरित्यर्थं १० जइवि आहारपाणग विविह खाइ मसाइम परेसिलइ जोतन्तिविईणनाए कम्मो मणवयण कायसुसम्बुडे सभिक्खू ११ सभिक्षुर्नभवति सक य परेसि इति परेभ्य गृहस्थेभ्य आहार अन्नादिक पानक दुग्धादिक पुनर्विविध नाना प्रकार खादिमखजूरादिक लभत इति तेन अशनपान खादिमस्वादिमादिना चतुर्विधेन त्रिविधेन मनोवाक्काय योगेन न अनुकम्पते ग्लानबालादीन्

सूत्र

नोतेसि वयइ सिलोग पूय त परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥९॥ गिहिणोजे पव्वइएण दिट्ठा अपव्वइ एणवसथुया हवेज्जा तेसिइहलोइय फलट्ठा जो सथव न करेइ स भिक्खू १०॥ सयणा सणपाण भोयण विविह खाइमसाइम

भाषा

वोद्यानोपजोविन ब्राह्मण राजाभेष्टिता आददेईने प्रधानादिक नोव चत्रियादीना वदति एतेभव्या ते चत्रियादिकनि प्रयसा न करे एभलापूजनीकाछे एसवजानोजाणोनेछाडे करे नहो ते भोत्तुसाधूकहोइ ९ ये गृहस्था प्रव्रजितेन दृष्टा जे केईगृहस्थयतोइ दिग्यालेईने दीठाछे परीचयकर्योछे गृहस्था वस्त्रायाभुपरिचोताभवतो अथवा गृहस्थावस्थानापूरा परोचोतछे तेषा इहलोक फलार्थं तेहस्यु इहलोकनेअर्थे य स स्तव परिचय न कुर्यात् स भिक्षु जे परिचयनकरे ते साधू १० शयनाशनपानभोजनाथाटी वाजोठपाटीया आहारपाणी विविध खादिमस्वादीम परेभ्य नानाप्रकारना खादि

न उप कुरुते कोर्थ: य अशनपानखादिमस्वादिमाहार' लब्धा वालवृद्धानां साधूनां तेनाहारेण सम्विभाग' न करोति स साधुर्नभवतीत्यथ · असंवि भागीनहु तस्समोक्ख इत्युक्तं: पुन साधु' कीदृग् भवति मनो वाक्काय योगेन सुतरां संवृत· पिहिता यवहार: ११ सयणा सणपाणभोयण' विविहं खाइ मसाइमं परेसिं अदए पडिसेहि एनियंठे जेतत्थनपउस्सई सभिक्खू १२ पुनर्य: शयनासनपान भोजन' पुनर्विविध' खादिमस्वादिम' परेण गृहस्थेन अदत्ते अथ वा गृहे साध्वी प्रतिषिद्धे सति तस्मिन् गृहस्थे प्रद्वेष' न करोति न प्रद्वेषि कोर्थ: यदा कश्चित्साधु: कस्यचिद् गृहस्थस्य गृहेगतस्तस्य च गृह स्थस्य गृहे प्रभूतं शयन' शय्याश्च अशनं मोदकादिक' पानं खर्जूरद्राक्षादि पानीयं शर्करादि जलं प्रासुक' तण्डुल प्रक्षालन जलं वा भोजनं तण्डुलदा ल्यादि पुनर्विविध नाना प्रकार' खादिम' खर्जूरनालकेरगरिमादिक' स्वादिम' लवङ्गएलाजाती फलतजादिक' वर्त्तन्ते परं स गृहस्थ' साधवेन प्रद दाति अथ पुनर्निवारयति] रेभिक्षो अत्रनागन्तव्य' इति तद्वाक्यं श्रुत्वा इति न जानातिधिगेनं गृहस्थं दुष्ट' य: प्रभूते वस्तुनिसतिमह्यं न ददाति

परेसिं अदए पडिसेहिए नियंठे जेतत्थनपओ सई स भिक्खू ॥११॥ जं किंचि आहारपाणं विविहंखाइ मसाइमं परें सिं लद्धुं जोतंतिविहेणनाणु कंपेमणा वयकाय सुसंवडेस भिक्खू ॥१२॥ आयामगं चेव जवोदगं च सीयंसो वीरंच

मस्वादिम गृहस्थनीं यांनोपनांछे आदेभ्य: प्रतिषिद्धो निग्रंथ: यतोजाई जभारमा गृहस्थजोआजा परहो तुम्हने नहोयां निग्रंथ य· तत्र नप्रद्वेष्येत् सभिक्षु: इमसांभलीयती रीसनकरे कोपनकरे गृहस्थ उपरे ११ यत्किंचित् आहारपाणच जेकेई आहारपानीं विविध' खादिमस्वादिमंलब्धागृहस्थेभ्य: नानाभांतिनाखादिम गृहस्थनाघरथकीयतीढ' लीधाछे लब्धा गृहस्थेन: य: तेन आकारेण त्रिविधेन नानुकंपेत् न निंदयेत् मनोवाक्कायेससवृत'स'

अथ च मा निवारयति इति द्वेष न विधत्ते स साधुभिक्षुरित्युच्यते १३ आयाममश्चैव जवोदणञ्च सीय च सोवीरचजवोदगञ्च नो हीलएपिंडनीर
सन्तुपन्त कुलाइ परिव्वए सभिक्खू १४ य प्रान्तानि कुलानि परिव्रजेत् प्रान्तानि दुर्बलानि वित्तविस्ताभ्या दुर्बलानि एताद्दशानि कुलानि आहा
रार्थं परिव्रजेत् सर्वदाधनिना एव कुलेषु यो न याति सर्वदादानशौडानामेव कुलेषु न याति ततो हि नियतपि डसेवनात् साधोर्धर्मभ्रंशानि
स्यात् तु पुनर्य आयामक धान्यस्य यव श्रावणञ्च पुनर्यवौदन यव भक्त पुन शीत चिरकालीन पुन सौवीर काञ्जिक पुनर्यवोदक यव प्रक्षालनजल
इत्यादिक पुनर्यवोरसम्पिड सर्वथारसवर्जित एताद्दश आहार पानीय गृहस्थानां गृहात्प्राप्य यो नहीलयेत् न निन्देत् कदन्नमिद कुत्सितपानीय
मेतत् इत्यादि वचन न ब्रूते स साधुभिक्षुरित्युच्यते १४ सद्दाविविहाभवन्ति लोए दिव्वामाणुस्सया तहातिरिच्छाभीमाभयभेरवाउरालाजे सुच्चान
विहिज्जइ सभिक्खू १५ य एताद्दशान् शब्दान् श्रुत्वा न विहिज्जइ न व्यथते धर्मध्यानान्न चलते सभिक्षुरुच्यते एताद्दशान् कोद्दशान् ये शब्दा लोके दिव्या
दिविभयादिव्या देवैर्भयाय कृता पुनर्ये शब्दा मानुष्यका मनुष्यै कृता मानुष्यका तथा ये शब्दाइति तिरश्चीनोस्तैरश्चास्तिर्यग्भ्यो भवास्तिरश्चीना

जवोदग च नोहीलए पिंड नीरसतु पत कुलाइ परिव्वए स भिक्खू ॥१३॥ सद्दा विविहाभवतिलोए दिव्वामाणुस्साय

भिक्षु भलो भुंडी आहारपाणीयके मनवचनकायाइ करोने निंदे नही ते साधुकहीजे १२ उष्ण पय अवश्रमण निश्चयेन उसामणि निश्चयणि यव
धान्योदन वा जवधा नतु ओदनकहीये आहार शीतल भक्त कांजिकच नहीलयेत् पिंडनीरसधा नतु उसामणजवतु धोअणसीतलपाणी कांजीतु
पाणीनीरसलाधु हो ले नही निंदे नही दरिद्र गृहाणि परिव्रजेत् स भिक्षु निरसघरने विषेगोचरीकरे ते साधु कहीइ १३ शब्दा विविधा भवति लोके
शब्दलोकने विषेभांत२ नाछेदेवकृता मनुष्यकृता तथातिर्यगकृता देवता संबधिया मनुष्य संबधिया तिर्यच संबधिया रौद्र अत्यतभयकरा उदारा रौद्र

भवन्ति तान् श्रुत्वानचोभ प्राप्नोति कोदृशा: शब्दा: भय भैरवा: भयेन भैरवा: भय भैरवा अत्यन्तसाध्वसोत्पादका पुन' कोदृशा: उदारा: महान्तो भवन्ति १५ वाय विविहसमिच्चलोए सहिए खेयाणु गए यकोवियप्पापन्ने अभि भूय सव्वदंसी उवसन्ते अविहेडएसभिक्खू १६ य: पुनर्लोके विविध वाद' समेत्य अविहेठको भवेत् कस्य चिद्बोधको न भवेत् कस्य चित्पचपातं न कुर्यात् लोके हि बहुनिदर्शनानिसन्ति ते परस्परं वादं कुर्वन्ति अन्योन्य' मत दूषयन्ति मुंडाजटाधारिभिर्नग्ना वस्त्र धारिभिर्गृहस्थावनवासिभि इत्यादि स्वस्व मताभिप्राय वचन रूप' वादं कृत्वा कस्यापि बाधां न कुर्यात् इत्यर्थ: कोदृशोय: सहित: ज्ञान दर्शनचारित्र सहित: पुन कोदृश: खेदानुगत' खेदयतिमन्दीकारोति कर्म अनेनेति खेद' संयमस्तेन अनुगत खेदानुगत: सप्तदशविध संयमरत: पुन: कोदृश कोविदात्मा कोविदोलब्ध शास्त्र परमार्थ आत्मायस्येति कोविदात्मा पुन: कोदृश: प्राज्ञ: प्रकर्षेण अन्येभ्य: आधिक्यं न जानातीति प्राज्ञ: सारबुद्धिमान् पुन: कोदृश: अभि भूय सर्वदर्शो अभि भूय परीषहान् जित्वा रागद्वेषौ निवार्य सर्वजन्तुगणं आत्मसदृशं पश्यतीत्येवं

सूत्र

तहातिरिच्छा। भीमाभयभेरवा उरालाजे सोच्चा न विहिज्जइसभिक्खू ॥१४॥ वायं विविहं समेच्चलोएसहिएखेयाणु गए कोवियप्पा। पन्ने अ भिभूय सव्वदंसी उवसंतेअ विहेडए स भिक्खू ॥१५॥ असिप्पजीवीअ गिहेअमित्ते जि

भाषा

बीहामणा भयनाकरणहार उदार शब्दो न यस्तान् श्रुत्वा न बिभेति स भिक्षु: जतीयानें सांभलोने धरमथ्यां नयो न चले न बीहे ते साधु कहीजे १४ वाद' विविध समेत्य ज्ञात्वा वादव्याकरणना तर्कना वादमत घणाछे लोकने विषे भांति भांतिनाछे गुणे सहित: संयमवार्ताविचक्षण: आत्मा सर्वागमवेत्ता गुणीकरिसहित संयमनो पालणहार सर्वशास्त्रनो जाण चारित्र सहीत तत्वनांजाण प्राज्ञ' बुद्धिमान् परीषहान् जित्वा सर्वदर्शी सर्व आत्मवत् पश्यति उप

मोन सर्वदृगो पन कोदृश उपशान्त कषायरहित स्यात् सभिक्षुरित्युच्यते १६ असिप्प जीवी अगिहे अमित्ते जिइ दिए सव्वओ विप्पमुक्के अणुक्क साइलहुअप्प भक्खी चिच्चागिह एगचरे स भिक्खत्तिबेमि १६ स भिक्षुर्भवेत् स इतिक योऽगृह द्रव्यभावभेदेन द्विविध त्यक्ता एक एकाको रागद्वेष रहित अवहाया वा परतोत्येव चर स्यात् कथभूत स असिल्पजीवो शिल्पेन विज्ञानेन जीविते आजीविका करोतीति शिल्पजीवी न शिल्पजीवो असिल्पजीवो चित्रकरणादिविज्ञाने आजीवोका न करोतोत्यर्थं पुन कोदृश अगृह न विद्यते गृह यस्य स अगृह स्त्रोपरिचयरहित अथवा गृहस्थै सह परिचयरहित पन कोदृश अमित्र शत्रुमित्ररहित पुन कीदृशो जितेन्द्रिय पुन कौदृश सर्वतो विप्रमुक्त वाह्याभ्यतर स योगाद्विप्रमुक्तो सर्वपरिग्रहरहित पन कोदृश अणुकषाय मन्दकषायो इत्यर्थं पन कौदृश लघ्वल्पभक्षी लघूनि नि साराणि वल्लचणानि पावक कुलत्थमाषादि प्रासुकाहाराणि तानि स्तोकानि भक्षितु शील यस्य स लघ्वल्प भक्षोनोरसस्तोकाहारकारोत्यर्थं अथवा लघुप्रासुकच तत अल्पच लघ्वल्प तदाहार भक्षितु शील यस्य स लघ्वल्पभक्षो अथ वा लघु चोणकमास चासौ अल्पभक्षी च लघ्वल्प भक्षी इत्यह ब्रवीमि इति श्रीसुधर्मास्वामीज बूस्वामिन प्राह १६ इति भिक्षुलक्षणाध्ययन सपूर्णं १५ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचिताया

मूल इ दिए सव्वओविप्पमुक्के अणुक्कसाईलहु अप्पभक्खी । चिच्चागिह एगचरे स भिक्खूत्तिबेमि ॥१६॥ भिक्खुज्झयण

भाषा गात हिंसारहित न कुत्रापि विरोधकारक स भिक्षु १५ शिल्पे चित्रादिभिर्नजीवति चीतारमकरोवेचो आजीविकानकरे अणगार अमित्र जितें द्रिय सर्वतोविप्र मुक्त इ द्रिजोत्याछे वाह्याभ्यतर जेगाठिते छयोमूकाणाछे स्वल्पकषाय लघु अल्पजीवी थोडो कषाय थोडो जीमेछे त्यक्तागृह रागद्वेष रहित विचरेत् स भिक्षु घरछोडोने रागद्वेषरहित विचरेते साधु कहीजे १६ इति भिक्खु अध्ययन सपूर्णम् १५ श्रुतमया हे आयुष्मन् हे चिर जीवी शिष्यमें

उ०टीका
अ०१६
४६४

भिक्षु लक्षणाध्ययनं पञ्चदशं संपूर्णं १५ अथ षोडशं अध्ययनं प्रारभ्यते ॥ पञ्चदशेऽध्ययने हि भिक्षु गुणा उक्ताः ते भिक्षु गुणा हि ब्रह्मचर्ययुक्तस्य साधोर्भवन्ति अत षोडशे अध्ययने ब्रह्मचर्यस्य समाधिस्थानानि उच्यन्ते सूत्रं सुयंमे आउसन्तेणं भगवया एव मक्खायं इह खलुथेरेहिं भगवन्ते हिं दसबम्भचेर समाहिट्ठाणापन्नत्ताजेभिक्खू सुच्चानिसम्मसञ्जमबहुले समर बहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्तिन्दिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरिज्जा श्रीसुधर्मा स्वामी स्वशिष्यं जंबुस्वामिनं प्राह हे आयुष्मन् मे मया श्रुतं तेणं इति तेन भगवताज्ञानवतातीर्थंकरेण आख्यातं श्रीमहावीरेण स्वामिना उक्तं आसवत्ता तस्य वयहणं पुनरिह श्रीजिनशासनेस्थविरैर्गणधरैर्भगवद्भिर्माहात्म्यवद्भिस्तीर्थंकरोक्तार्थधारणशक्तिमद्भिर्दश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानान्युक्तानि ब्रह्मचर्यस्थैर्य कारणान्युक्तानि कोर्थः मम एषाबुद्धिर्नास्ति किन्तु तीर्थंकरैः पुनर्गणधरैर्गौतमादिभिः स्वापेक्षया इत्थं एवमुक्तं तदेवमयोच्यते यानिब्रह्मचर्यसमाधिस्थाना निभिक्षुः श्रुत्वा शब्दतः श्रवणे कृत्वानिशम्य अर्थतो मनसि अवधार्यसंयम बहुलः सन् बहुलः प्रधान प्रधानतर स्थानप्राप्तः उत्तमः संयमो यस्य स बहुल संयमः वर्द्धमान परिणामचारित्रः सन् विहरेत् पुनर्यानि ब्रह्मचर्य समाधिस्थानानि श्रुत्वा भिक्षुर्गुप्तो मनोवाक्काय गुप्तियुक्तः सन् अतएव गुप्तं नवगुप्ति

सूत्र

समत्तं १५॥ सुअंमेआउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इहखलुथेरेहिं भगवंतेहिंदसबंभचेर समाहिठाणापन्नत्ताजेभिक्खू सोच्चानिसम्म संजम बहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्तेगुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरिज्जा कयरे

भाषा

सांभल्यो भगवता एवं आख्यातं यथोक्तं भगवते श्रीमहावीरे इसकाम् इह प्रवचने निर्ग्रन्थस्थविरैः भगवद्भिः इहजिन शासनने विषेअस्थिर भगवंते ते दसब्रह्मचर्य समाधिस्थानानि कथितानि दशब्रह्मचर्यना समाधिस्थानकप्ररूप्या कहिगरेकमा १ यानि भिक्षु श्रुत्वा ये साधु भगवंत

टीका अ ११ ४६५

सेवनात् गुप्त सुरक्षित ब्रह्मचर्य्य चरितु सेवितु शील यस्य स गुप्त ब्रह्मचारीस्थिर ब्रह्मचर्य्यधारक सन् सदासर्वदा अप्रमत्त अप्रमादी सन् विहार कुयात् यतो हि पूर्व य साधर्ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानानि शृणोति स साधुर्ब्रह्मचर्यपालनेस्थिरोभवति यदुक्त सुच्चा जाणइ कल्लाण सुच्चाजाणइ पावग उभयपिजाणइ सोचा जसेयम्त समायरे इति श्रुत्वाजम्बूमाह कयरेखलुथेरेहि भगवन्ते हि दसवम्भचेर समाहिठाणापन्नत्ता जेभिक्खू सुच्चानिसम्म सञ्जमबहुले सम्बरबहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्ति दिए गुत्तबम्भयारी सया अप्प मत्ते विहरेज्जा हे स्वामिन् यानि ब्रह्मचर्यसमाधि स्थानानि भिक्षु साधु श्रुत्वा अर्थत हृदयवधाय सयम बहुल सम्बर बहुल समाधि बहुल गुप्तो गुप्तेन्द्रिय गुप्त ब्रह्मचारी सदा अप्रमादी विहरेत् तानि खलु निश्चयेन कतराणिकानि ब्रह्मचर्य समाधि स्थानानि ते स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानानि प्रतिपादितानि यानि भिक्षु श्रुत्वानिशम्य सयम बहुल

सूत्र

खलुतेथेरेहिभगवतेहि दसबम्भचेरसमाहिठाणापन्नत्ता जेभिक्खू सोच्चानिसम्मसञ्जमबहुलेसम्बरबहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्ति दिए गुत्तबम्भयारीसयाअप्पमत्तेविहरिज्जा इमेखलुते थेरेहिभगवतेहिदसबम्भचेरसमाहिठाणापन्नत्ताजे

भाषा

निशम्य अवधार्यहियामाहे अवधारीने समाधि बहुल सजमपाले पापनेरोकता सवरबहुल सवरकरे समाधि बहुल आपणोचित्तठामिराखे गुप्त गुप्तेंद्रिय शरीरपांचेंद्रीगोपवीराखे गुप्तब्रह्मचर्यधारी गुप्तब्रह्मचर्यनोधारी सदा अप्रमत्तो विचरेत् सदासर्वदा अप्रमत्तथको विचरे २ कतराणि निश्चयेनस्थविरेगणधरे ते शिष्यपूछे हे पूज्यतेस्थानकस्थविर भगवते दशब्रह्मसेवनस्थान समाधीस्थानानि कथीतानि दशब्रह्मचर्यनास्थानकह्या २ अमुनि निश्चयेन स्थविरे भगवद्भि ए निश्चयस्थु स्थविरे भगवत दश ब्रह्मसेवन समाधिस्थानानि कथितानि दशविध ब्रह्मचर्य समाधिस्थान कह्या य भिक्षु

सम्बर बहुल गुप्त गुप्तेन्द्रियो गुप्त ब्रह्मचारी सदा अप्रमत्त सन् विहरेत् इति जबूस्वामिनः प्रश्नवाक्यं श्रुत्वासुधर्मास्वामी प्राह इमे खलु तेथेरेहि भगवन्तो
हिं दसवम्भवेरसमाहिठाणा पनत्ता जेभिक्खूसुचानि सम्मसंयमबहुले सम्बर बहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्ति दिए गुत्तवभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा
हे जंबू इमानि प्रत्यक्षं वक्ष्यमाणानि खलुनिश्चयेन तानिस्थविरैर्भगवद्भिर्दशब्रम्हचर्यं समाधिस्थानानि शब्दतः श्रुत्वानि शस्य अर्थतोहृद्यवधार्यभिक्षुः साधुः
संयम बहुलः समाधि बहुलो गुप्तोगुप्तेन्द्रियो गुप्त ब्रम्हचारी सर्वदा अप्रमत्तः अप्रतिबद्धविहारीसन् विचरेत् तानि समाधि स्थानानि निरूपयति तं जहा
विवित्ताइ सयणासणा इंसे विज्जा सेनिगन्थेनो इत्थी पसुपंडगसंसत्ता इस यणासणाइं सेवित्ताहवइ सेनिगन्थे तद्यथा तानि यथा सन्ति तथा निरू
पयामि हे जम्बूसनिग्रन्थो भवेत् स इति क यो विवक्तानि स्त्री पशु नपुंसकपंडगादिभि विरहितानि शयनानि पट्टिकासंस्तारकादीनि अर्थात् शयना

सूत्र

भिक्खू सोच्चानिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्तेगुत्ति दिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरिज्जातं
जहा विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा सेनिग्गंथेनोइत्थीपसुपंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ तं

भाषा

स्थानानि श्रुत्वा अर्थतो निसम्य संजम बहुले साधूचारित्रि या जेस्थानकनेसांभली संयमपाले आश्रवेकरीरहित घणीं समाधिसहित गुप्तेंद्रियः इंद्री
गुप्तकोधांछे नवगुप्ति सेवनात् नवब्रम्हचर्यनी वाडिपाले सदा अप्रमत्तो विहरेत् सदासर्वदा अप्रमत्तथकोविचरे तं जहा ४ विविक्तानि शयनासनादि
फलकपादप्रोंछनानिसेवते विविक्त काहतां एतलेवनेरहित उपाश्रयादिक सेवेतेनि ग्रंथ साधू कहीये स्त्रिपसूपडके करीश्रना कीर्णं अव्याप्तरहीत
नोस्त्रोपशुक्लीवव्याप्तानि शयनासनानि नहीस्त्रीतिरयंचनपुंसकेकरी शयनासन व्याप्तजश्राछे शयनासनादी सेव्यमानस्य शयनासन सेवताथका

दीनां स्थानानि सेवेत कायेन अनुभवेत् अय अन्वयार्थं य स्त्री पशु पडकादि रहितस्थानानि सेवेत सनिग्रन्थो भवेत् इत्यर्थं अथ व्यतिरेकेण घर्ममाह यस्मिन् सति यद्भवेत् सोन्वय यस्मिन् असति यन्न भवेत्सव्यतिरेक व्यतिरेक दर्शयति नो इत्थी पसुपडगस सत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ताहवइसेनि गन्थे स्त्रे नवूसनिग्रन्थो नो भवेत् सख य स्त्री पशुपडकादिभि सेवितानां शयनासनानां सेविता उपभोक्ता भवेत् इति वचन श्रुत्वा शिष्य प्राह त मिति आयरियाह हे स्वामिन् तत् पूर्वोक्त कथ केनोत्पत्ति प्रकारेणेति चे देव यदि मन्यसे इति शिष्येण प्रष्टव्ये सति आचार्य्य आह निगन्थस्सखलु इत्थि पसुपण्डगसमत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्सवभ्भयारिस्सवभ्भचेरेसङ्कावाकङ्खावाविति गिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयवालभेज्जउम्माय वापा उणिज्जादीहका लियवारोगायक हविज्जा केवलिपणत्ताओ धम्माओभसेज्जा तम्हाखलुनो इत्थि पसुपण्डगससत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ताहवइसे निगन्थे १ हे शिष्यखलु निश्चयेन स्त्री पशुपण्डकादिभि स सक्तानिशयनासनानि सेव्य मानस्य निर्ग्रन्थस्य ब्रह्मचर्यधारिणोपि साधोर्ब्रह्म चर्येशङ्का उत्पद्यते इमा स्त्री सेवेवानर्सं वे वा अथ वा अन्ये पा मपि स्त्रीपशुपण्डकादि सहित स्थाने स्थित ब्रह्मचारिण साधु दृष्ट्वा शङ्कोत्पद्यते कि मय एतादृशो विरक्तानां सयना सनाना सेवी ब्रह्मचारी भवेत् नवा आत्मनस्तु स्त्यादिभिरत्यन्तापहृत चित्ततयामिथ्यावो दयादेव स्त्री सेवने मैथुने नवलक्ष्य सूक्ष्म जोवाना बधोजिने प्रोक्त

सूत्र

कहमितिचेआयरिआह निग्ग थस्सखलु इत्थि पसुपडग ससत्ताइं सयणा सयणाइं सेवमाणस्सब भयारीस्स ब भचेरेस

भाषा

तिये करोस सत्ता आकीर्ण व्यामसहित शयनाशनादिसेवणहारहुवे नहीं ते निग्र साधुहुवे ५ आचार्य्य आह गुरुकहेछे निग्र यस्य निग्र थ साधुने निश्चयेन खलु स्त्रोक्लीवपशुव्यासा निक्लीपशु नपु सकसहित शय्याशनादि सेव्यमानस्य शयन आसन सेवतां सेव्यमानस्य ब्रह्मचारिण ब्रह्मचारीने ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्यने विषे शंका ऊपजे कखायाक्षा ऊपजे एषैव एव विधा स्वरूपाइति स्त्यादीनां वांक्षाकिमेतत्कष्टफलभावि विगतेच्छावेति समुत्पद्येत चारित्रस्य

उ०टीका
अ०१६
४६८

तसत्य वा इत्यादि रूपः संशय उत्पद्यते पुनर्ब्रह्मचारिण कोचांस्त्री पशुपण्डकादिभि मैथुनेच्छा उत्पद्यते पुनर्ब्रह्मचारिणः साधीर्ब्रह्मचर्ये विचिकित्स उत्पद्यते मया ब्रह्मचर्यपालने एतावन्महकष्टं विधीयते तस्य ब्रह्मचर्यकष्टस्य फल भविष्यति नवा तस्मादहमे तेषां सेवनं एतेषां सेवने नतु सांप्रतं मम सुख जायते एतादृशोमति समुत्पद्येत वा अथ वा भेदश्चारित्रस्य विदारणं विनाशं लभेत् वा अथ वा उन्मादं कामेन पारवश्यं प्राप्नुयात् वा अथ वा तादृशे स्त्र्यादि सहितानि स्थानानि सेव्य मानस्य साधोर्दीर्घकालिकं प्रचरकाल भाविस्त्र्यादि सेवनाभिलाषोत्कर्षत आहारादौ अरुचिर्निद्राराहित्यादि दोषै रोगोदाघज्वरादि आतङ्कः शीघ्र प्राणी शूलादिः रोगस्य आतङ्कश्च अनयोः समाहारो रोगातङ्कं शरीरे भवेत् यतो हि कामाधिक्यात् कामिनां शरीरे दशकाम भावाजायन्ते यदुक्तं प्रथमे जायते चिन्ताद्वितीये द्रष्टुमिच्छति तृतीये दीर्घनिःश्वास चतुर्थे ज्वरमादिशेत् पञ्चमे दह्य ते गात्रं षष्टे भक्तं नरो चते सप्तमेच भवेत्कम्प उन्मादश्चाष्टमे तथा नवमे प्राण सन्देहो दशमे जीवितत्यजेत् कामिनं मदनोद्वेगा दशसञ्जायतेह्यमी इति स्त्री दर्शनादशभावा

सूत्र

काबा कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयंवालभिज्जा उम्मायंवा पाउणिज्जा दीहकालीयंवारोगायंकं हविज्जा केव लिपसत्ताओ धम्माओभसिज्जा तम्हाखलुनोइत्थिपसुपंडग संसत्ताइंसयणासणाइं सेवित्ता भवइ सेनिग्गंथे ॥१॥

भाषा

विनाशलभेतेफलप्रति संदेहजपजे होयके न होइ भेदचारित्रनो नासपामे उन्मादं कामग्रहं वा अथवा प्राप्नुयात् उदमाद उपजे प्रभूतकालिभावी दीर्घकालताइं दाघज्वरादिशूलकादिरोगातंकोभवेत् दाघज्वरादीक रोग जपजे केवलो प्रज्ञप्तात् धर्मात् भ्रंश्यते केवलीनो भाष्यो धर्मथी भ्रष्टहवे तस्मात् न पशु क्लीव व्याप्तानि तस्मात् तिणे कारणे निग्रंथ स्त्री पशु नपुंसक शयनासनादि सेवनात् शयनासन सेवेनही स निग्रंथो

उ टीका
अ १६
४६८

उपद्यन्ते अथ पुन केवलि प्रज्ञप्तात केवलि प्रणीतात धमात् श्रुत चारित्र रूपात्भ्रश्येत् धर्माद्भ्रष्टो भवेत् तस्मात् एतेषा दूषणानां प्रादुर्भावात् खल्ल नियमेन स्त्री पशु पण्डक स संसक्तानामयनासनस्थानाना सेविता उपभोक्ताभिचुर्नोभवेत् सनिग्रन्थो भवेत् इति प्रथम ब्रह्मचर्य समाधिस्थान एषा प्रथमा वृम्हचर्यतरोर्वाटिका १ नो निग्गन्थे इत्थीण कह कहेत्ता हवइसे निग्गन्थे त कह मिति चेआयरियाह निग्गन्थस्स खलु इत्थीण काह कहेमाणस्सवम्भया रिस्स बम्भचेरेसङ्कावाकङ्खावाविति किच्छा या समुप्पज्जिज्जा भेय वालभेज्जा उम्माय वा पाउणिज्जादीहका.लय वारोगाय कहविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्मा ओ भसेज्जा तम्हा खल निग्गन्थे नोइत्थीण कह कहेज्जा २ सनि ग्रन्थो भवति स इति क य स्त्रीणा अयात् एकाकिनीना स्त्रीणां एव कथा वाक्य प्रवन्ध रूपा वार्त्ता अथ वा स्त्रीणां जाति कुलनेपथ्य विषया पद्मिनी चित्रिणी हस्तिनी शङ्खिनी मुग्धामध्या प्रौढादि रूपां कार्णाटलाट सिंहल देशोद्भ याना नारीणा वर्णना रूपा वा कथा प्रति कथयिता न भवति स साधुर्भवतीत्यर्थ स्त्रीणा म्ये कथा अथवा स्त्रीणां एव वर्णन करोति स साधुर्नस्यादिति भाव इत्युक्ते शिष्य प्राह तत्कथमिति चेदेव यदि मन्यसे आचार्य आह हे शिष्य खलु नियमेन निग्रन्थस्य साधो स्त्रीणा कथा [illegible] मानस्य व्रम्ह

सूत्र

नोनिग्गथेइत्थीण कहकहित्ता हवइसेनिग्गथेतकहमितिचेआयरियाह । निग्गथस्स खलुइत्थीण कहकहेमाणस्स वभ यारिस्स वभचेरे सकावा कखावाविितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयवालभिज्जा उम्मायवापाउणिज्जादीहकालियवारो

भाषा

भवति तेनिग्र थ साधूहोइ ६ न स्त्रीणा कथा कथयिता भवति निग्र थ साधु भगवत स्त्रीनी कथा न कहे ते निग्र थ तत् कथमितीचेत् शिष्यपूछे स्वामोस्त्रीनी कथाका न कहे आचार्या आह गुरुकहे निग्र थस्य साधो खलु निश्चयेन स्त्री कथा वार्त्ता कथयतोयतो स्त्रीनी कथाकहतुथको व्रम्ह चारिण व्रम्हचारिने वृम्हचय वृम्हचयनेविषे शका स्त्री सेवेनवा काक्षावाछा वम्हचय पालन फल भविष्यति नवाइति धर्मे स देह समुत्पद्यते सम्यक

चारिणोपि ब्रम्हचर्ये शङ्का एनां सेवामि न सेवासि वा इत्यादि रूपा वाऽथवा आकांचाऽग्रे तनानां पदानां पूर्ववदेय अर्थोज्ञेय: नवरं तम्हा इति तस्मात् शङ्कादि दोष प्रादुर्भावात् खलु निश्चयेन नियत्य स्त्रीणां एवाग्रे स्त्रीणामेव वा केवलां कथां न कथयेत् २ इति द्वितीय ब्रम्हचर्य समाधिस्थानं एषाद्वितीया वा टिका अथ तृतीया माह नोनिग्गन्थो इत्थीहिं सद्धिं संनिसिज्जागए विहरित्ताहवइसेनिग्गन्थे तं कहमिति चेत् आयरियाहनिग्गन्थस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्नि सिज्जागयस्स विहरमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरेसङ्का वा तम्हा खलुनो निगन्थे इत्थीहिं सन्नि सिज्जागए विहरेज्जा ३ सनिग्गन्थो भवेत् य:

गायंकंहविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओभंसिज्जा तम्हाखलुनोनिग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा ॥२। नोनिग्गंथोइत्थीहिंस द्धिंसंनिसिज्जागए विहरित्ता हवइसेनिग्गंथे तं कहमितिचे आयरिआहनिग्गंथस्स खलुइत्थीहिंसद्धिंसंनि सिज्जागयस्स

प्रकार उपजे भेद वा लभेत् चारित्रथी भ्रष्टहुवे उन्माद वा प्रापयेत् उन्माद अथवापामे दीर्घकालिकं रोगातंकवा भवेत् घणाकाल स्थाई तेहने शरीरे रोगहुवे केवलि प्रज्ञप्त धर्मात् भ्रस्यते केवली भाषीत धर्म्मथीचूके तस्मात् कारणात् खलु निश्चयेन न स्त्री पशु नपुंसक संसक्तानि शयनासनानि तिणेकारणे स्त्री पशु नपुंसवासहित शयनासन सेवेनहीं स साधुर्भवति ते साधुकहीइ ननिग्रंथ. साधु स्त्रीणां कथां कथयति ते माटे साधूस्त्रीनी कथा कहे नहीं ७ न साधू स्त्रीणां सार्धं निषद्यंगत विचरेत् नहीं निग्रंथ साधू स्त्रीजाति संघाते वाजोठ प्रमुख आसने एकठा विचरणहार स्त्रीवेसी उठेपछी घडी २ काचीनकल्पे स निग्रंथ: एहवो ते साधू तत् कथमितिचेत् केन कारणेन तत्र आचार्यकहे निग्रंथस्य साधो साधुने खलु निश्चयेन स्त्रीणां सार्धं आसनाद्युपविष्टस्य साधो: निग्रंथा साधू स्त्रीजाति साथें आसन प्रमुखतीहांवेठानरहे विहारं कुर्वत: विहरे तेहने ब्रम्हचर्यवत' ब्रम्हचर्य

स्त्रीभि सार्द्ध निषिद्यानिषीदन्ति यस्यां इति निषद्यापट्टिकापीठ फलक च तुक्कादायमनन्तांनिषद्याद्गत स्थित सन्विहृत्ता अवस्थातान भवेत् कोर्थ य स्त्रीभि सह एकस्मिन् आसनेन उपविशेत् सनिग्रन्थो भवेत् अत्राय सम्प्रदाय यदा सनै पुरा स्त्री उपविष्टा भवति तत आसनात् स्त्रिया उत्थितायां सत्यां मुहूर्त्तादनन्तर तत् आसन साधोरुपविशनयोग्य भवति त कह मिति चे आयरियाह अनयो पदयोरर्थं पूर्ववत् निग्गन्थस्स खलु इत्थी हि नि सन्नस्य सह स्त्रीभि साह निषद्यागतस्य प्राप्तस्य विहरमाणस्य तत्र स्थितस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्कादयो दोषा उत्पद्यन्ते तत्कारणात् खलु निषद्येन निपन्य स्त्रीभि सह एकत्रासनेगत प्राप्त सन् नो विहरेत् नोपविशेत ३ इति तृतीय ब्रह्मचर्यस्थान यथा तृतीया वा टिका ३ नोनिग्गन्थे इत्थीण इन्दियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलो इत्तानिज्झाइत्ताइवइ हवेनिग्गन्थे त कहमिति चे आयरियाहनिग्गन्थस्स खलु इत्थीण इन्दियाइ मणो हराइ मणोरमाइ आलो एमाणस्स निज्झायमाणस्स बम्भयारिस्सबम्भचेरे सङ्काावाकङ्खावावितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेय वालभेज्जा उम्माय वा पाउ

णिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा तम्हा खलु नो निग्गन्थे इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा निज्झाएज्जा

वर्तनेपणि ब्रह्मचर्ये ब्रह्मचर्यनेविषे शंका वांछा काचा ऊपजे ब्रह्मचर्यने विषे स देह ऊपजे पालु केनपालु एहवोस का ऊपजे भेद वा लभेत उन्माद वा उनमादनकरे प्राप्नुयात दीर्घकालिक स यधि रोग ऊपजे रोगातक रोग ऊपजे भवेत दीर्घकाल केवली प्रज्ञप्त धर्मात भ्रश्यते केवली कथित धर्मथकी पडे चूके तस्मात निग्रन्थेन निग्र थ स्त्रीणां कथा कथयन् स्त्रीसार्द्ध एकासनेनिषीदति साधू स्त्री सार्द्ध नविहरति स साधूनि ग्र थोभवति ते साधुनिग्र थ

उ०टीका
श०१६
४७२

गिज्ञा दोहकालियं वारोगायं कंह विज्जातिवलि पणत्ताओ धम्माओभं सिज्जा तम्हाखलुनोनिगग्ये इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइज्जा निज्झाइज्जा ४ सनिग्रन्थो भवति स इति कः यः स्त्रीणां मनोहराणि मनः हरन्ति दृष्टमात्राणि चित्तं आक्षिपन्तीति मनोहराणि पुनर्मनोरमाणि मन रमयन्त्यनुचिन्त्यमानानि आह्लादयन्तीति मनोरमानि ईदृशानि इन्द्रियाणि नयन वदन जघन वक्षःस्थलनाभि कक्षादीनि प्रति आलोकयिता समन्ता दृष्टानिध्यातानितरान्ध्यातानि ध्याता दर्शनादनन्तरं अतिशयेन चिन्तयितायो न भवेत् सनिग्रन्थो भवति इत्युक्ते शिष्यः पृच्छति तत्कथमिति चेत् आचार्य आह हे शिष्यनिग्रंथस्य खलु निश्चयेन निग्रंथः स्त्रीणां मनोहराणि मनोरमाणि इन्द्रियाणि न आलोकयितानसमन्ताद्दृष्टा अथ वा न ईषदपि दृष्टान च तानि इन्द्रियाणि निध्यातानितराञ्चिन्तयितान भवेत् स्त्री इन्द्रियाणां रागेन दृष्टानितरान्ध्याता साधुर्नभवेदित्यर्थः ४ इदं चतुर्थं ब्रह्मचर्य समा

सूत्र

विहरिज्जा॥३॥नोनिग्गंथेइत्थीणंइंदियाइंमणोहराइंमणोरमाइंआलोइत्तानिज्झाइत्ताभवतिसेनिग्गंथेतंकहमितिचे ०
आयरिआहनिग्गंथस्सखलुइत्थीणंइंदियाइंमणोहराइंमणोरमाइंआलोइत्तानिज्झाइमाणस्सबंभयारिस्सबंभचेरेसंका

भाषा

जाणवो ८ न निग्रंथः स्त्रीणां इंद्रियाणि मनोरमाणि दृष्ट्वा मनसिहर्षं न यति निग्रंथ साधूस्त्रीनां मनोहर आंखि प्रमुख इंद्रीदेखीने मनहर्षन ऊपजे जोवेएतले एकांइ सुंदरछे एहवु आलोकोनेजोईने नितरांध्यानवान् नभवति घणुं रूपादिकनोचितवणहार न होइ स निग्रंथः साधुः तत् कथमितिचेत् तें किमआचार्य आहआचार्यकहे निग्रंथस्यसाधुनेनिश्चे स्त्रीणांस्त्रीना चक्षुरादीनोइंद्रियाणी मनोहराणीभलां मनोरमाणिमनमे सुखदाईआलोक्यमानस्य दृष्टिमांडीजरहतानें नितरांध्यायमानस्यघणुं रूपादिकध्यां न करतानेब्रह्मव्रतधारिण ब्रह्मचारीसाधुनेब्रह्मचर्यें ब्रह्मचर्यनेविषेशंकाकांक्षावांछा ब्रह्मचर्यनेविषे

७ टीका प०११ ४७१

पिम्मानं ४ एया चतुर्थो या टिका अथ पचमो प्राह नो निग्ग थे इत्थीण कुड्डन्तर सिवा दूसन्तरसि वा भित्तिन्तरसिवा कूइयसद्द वा रुइयसद्द वागीय
सद्द वा गियसद्द वाकन्दिय सद्दवा विलवियसद्दवा सुणित्ताहवइ सेनिग्ग थेत कह मिति चे आयरियाहनिग्ग थसखलु इत्थीण कुड्डन्तरसिवा दूसन्तर
सिवाभित्तिन्तर सिवा कूइय सद्द वा रुइय सद्द वागीय सद्द वा हसियसद्द वाथणि य सद्द वा सुणमाणस्स बभयारिस्सबभचेरे संका वा कंखा वा विति
गिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेद वालभिज्जा उम्माय वापाउणिज्जा दीहकालियं रोगायंक वा हविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओभ सिज्जा तम्हा खलुनोनिग्ग थे
इत्थीण कुड्डन्तर सिवा दूसन्तर सिवाभित्तिन्तरसिवा कूइयसद्दवारुइय सद्दवा गीयसद्द वा हसियसद्द वाथणिय सद्दवा विलविय सद्द वा
सुणमाणे विहरेज्जा ५ मनिग्ग थो भवेत् स इति क य कुड्यान्तरे कुड्य पाषाणरचित तेन अन्तर व्यवधान कुड्यान्तर तस्मिन् कुड्यान्तरेस्थित्वा

मूल

यामंगावावितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जाभेयवालभिज्जाउम्मायवापाउणिज्जादीहकालियंवा रोगायंक हविज्जाकेवलि
पन्नत्ताओ धम्माओभ सिज्जा तम्हा खलुनिग्ग थेनोइत्थीण इन्दियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्तानिज्झा
एज्जा ॥४॥ नोइत्थीण कुड्डतरसिवादूसतरसिवा भित्तियतरसिवा कुड्डय सद्दवारुइय सद्दवागीयसद्दवाहसियसद्दवा।

भाषा

सदेह समुत्पद्यते ते धमने विषे सदेहनपने भेद वालभेत्धर्मनोभेदपडे दीर्घकालनकषणाकालेजपनो रोगातकभयेत्रोगादिक ऊपजे केवलि प्ररुसात् धेन
मोजयित धर्मयको भ्रष्टथोइ तस्मात् नियमेन ननिग्र थ स्त्रीणां चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि मनोरमानि मनोहराणि आलोच्यजोईने नितराध्यानयान् न
भवति स मा॥ ८ गाा॥ न स्त्रीआ नोजातिना कुड्यातरेषुभींतिने आंतरेरहे नहीं पाषाणमइ भीत कुड्यांतरेषु वा परियचने आंतरे रहे नहीं भित्तिरथु

इत्यध्याहार: इत्यन्तरेवा वस्त्र रचितभित्यन्तरे परिच्छदाया अन्तरेस्थित्वाभित्यन्तरे मृत्तिकापक्केष्टिकाणांभित्ति व्यवधाने स्थित्वा वा इत्योगं इति स्त्रीणां कूइयसद्दं सम्भोग समये भोक्तुर्मन प्रसत्तये कोकिलादिविहग शब्दानुरूपं कूजित शब्दं पुन: स्त्रीणां रुदित शब्दं भोग समये प्रेमकलहजनितं रोदन शब्दं वा अथ वा पुन गीत शब्दं वा पञ्चमरागादि हुङ्कार रूपं गीत शब्दं वा अथ वा पुन: स्त्रीणां हसित शब्दं काह कहादिकहा स्योत्पादिकाऽट्टाट्टहदंत नि कासनोद्भव शब्दं स्तनित शब्दं वा भोग समये दूरतर घनगर्जितानुकारि शब्दं वा क्रन्दित शब्दं वा प्रोषित भर्तृकाणां विरहिणीनां भर्तृवियोग दु:खात् जातं वा अथवा विलपित शब्दं भर्तृगुणान् स्मारं २ प्रलापरूपं शब्दं प्रतिय: श्रोता न भवति स निर्ग्रन्थोभवति इति श्रुत्वाशिष्य: पृच्छति तत्कथ केन कारणेन यदेव मुच्यते इति श्रुत्वा आचार्य आह हे शिष्य खलु निश्चयेन कुड्यान्तरादिषु पूर्वोक्तस्थाने स्थित्वा स्त्रीणां पूर्वोक्तान् कूजितादिशब्दान् शृण्वतो निर्ग्रन्थस्य ब्रह्मचारिणोऽपि ब्रह्मचर्ये शङ्कावाकांक्षावा इत्यादि ये दोषा उत्पद्यन्ते तस्मात्कारणात् खलु निश्चयेन

थणियसद्दंवाकंदियसद्दंवा विलवियसद्दंवासुणित्ता हवइसेनिग्गंथे तं कहमितिचे आयरियाह निग्गंथस्स खलुइत्थीणं कुड्डंतरंसिवा जावविलवियसद्दंवासुणमाणस्स बंभयारिस्सबंभचेरेसंकावा कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जाभेयं

वा भीतिने आंतरे रहेइनही इटमइभीत कुजित शब्दवा भोगने अवसरे बोलवो रुदितशब्ददेवा भोगने अवसरे रुदन शब्द गीतशब्देवा रागरूप गीतशब्द हसितशब्दंवाहसवानोशब्द स्तनितशब्दंवा गर्जारवसब्दने करनो क्रंदितशब्दं वा विरहिणी नोआ क्रंदशब्द कंदियसद्द वा विलपित शब्ददेवा दिलविय सद्द वा गुणसंभारो२विलाप करे रोवेते शब्दएह वां सांभलणहारनहोई ननिग्रंथ: ते साधु: कहीये तत्कथमितिचेत् ते किम आचार्या: प्राह आचार्य

उ टीका
अ १६
४७५

निग्रन्थ ।कुद्यान्तरेषु स्थित्वा स्त्रीणां कूजितादिशब्द नो शृखन् विचरेत् स्त्रीणा हि कामोद्दीपकशब्द श्रोता साधुर्नभवेत् इति भाव इति पञ्चम ब्रह्मचर्य समाधिस्थान एषा पचमी वाटिका ५ अथ षष्टीमाह नोनिग्गन्थे इत्थीण पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरित्ताहवइसेनिग्गन्थे त कहमिति चे आयरि याह निग्गन्थस्स खलु इत्थीण पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरेज्जाहवइसेनिग्ग थे ६ सनिग्रन्थो भवेत् य पूर्व गृहस्थत्वे स्त्र्यादिभि स हरत कामासनै

सूत्र

बालभिज्जा उम्मायवा पाउणिज्जादीहकालियवा रोगायकहविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भसिज्जा तम्हा खलु निग्ग थे नोइत्थीण कुड्ड तरसिया जावसुणे माणे विहरिज्जा ॥ ५ ॥ नो पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरित्ता भवइसेनि

भाषा

कहेछे निग्रथस्य साधुने नियें स्त्रीण स्त्रीजातिना कु ड्यतरेषुवाभीति प्रमुखने आंतरे १ दुष्य तरेषु वा परीयचने आंतरे २ भित्तितरेषु वा भीतिने आंतरे ३ कुपित शब्द वा कलहनोशब्द रुदितशब्द वा रोवानोशब्द गीतशब्द वा गीतनोशब्द हसितशब्द वा हसवानोशब्द स्तनितशब्द गर्जारवशब्द क्र दित शब्द विलपितशब्द वा विलापश द श्रूयमानस्य साभलताथका ब्रह्मचारीने न विचरेत् न विहरे १ ब्रह्मचारिण ब्रह्मचारीने ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्यने विषे सका आकाक्षावा विचिकित्सावा समुत्पद्यते जपनेभेद वा लभेत् चूके उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकाल वा रोगातक वा भवेत् केवलिप्रज्ञप्तधर्मात केवलिभाषित धर्मथकी भ्रष्टी भवतो तस्मात् निश्चएन निग्रथ स्त्रीणां कुड्य तरेषु वा दुष्यातरेषु वा कुपीतशब्द वा रुदीतशब्द वा गीतशब्द वा स्तनितशब्द वा क्र दितशब्द वा विलपितशब्द वा शृणोतिविलापश दा साभलोने ५ न निग्र थसाधु पूर्वरत पूर्वकीलित वा अनुस्मरन् भवति साधु जेगृहस्थपणे भोग भोगव्याहोइ गृहस्थपणे जूवटाप्रमुखरामति कीधो ते सभारे नही स निग्र थ तत्कथमितिचेत् आचार्या आह आचार्य कहे निग्र थस्य साधो

उ०टीका अ०१६ ४७६

मैथुन सेवनं पुनस्ताभिरेयसमं पूर्वक्रीडित ग्टहस्थावस्थायां पुरी द्युतादिक्रीडनं क्रतं तस्य अनुस्मर्त्तामुहुश्चिन्तयितो नो भवेत् स साधुर्भवेत् इत्युक्ते: शिष्य: प्राह तत्कथमितिचेत् तदाचार्याह हे शिष्य खलु निश्चयेन स्त्रोभि: सह पूर्वक्रतं रतं मैथुनं पूर्वक्रतं द्युतादिक्रीडितम् अनुस्मरत: वारं २ चिन्तयतो निर्ग्रंथस्य साधोर्ब्रम्हचारिणो ब्रम्हचर्ये शङ्कादयो दोषा उत्पद्यन्ते तस्मात् खलु निश्चयेन निर्ग्रंथ: स्त्रोभि सहपूर्वरतं पूर्वक्रीडितं प्रति अनुस्मर्त्तान भवेत् स साधुर्भवेत्६ इति षष्टं ब्रम्हचर्य समाधिस्थानम् इति षष्टीवाटिका अथ सप्तमीं प्राह नो निग्गंथे पणीयम् आहारं आहरेत्ताहवइसेनिग्गंथे तं कहमितिचे

सूत्र

ग्गंथेतंकहमितिचेआयरिआह निग्गंथस्स खलुइत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्सबंभयारिस्स बंभचेरेसंका वा कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जाभेयंवालभिज्जा उम्मायंवा पाउणिज्जा दीहकालियंवा रोगायंकंहविज्जा • केवलिपन्नत्ताओधम्माओ भंसिज्जा तम्हाखलुनोनिग्गंथे इत्थीणंपुव्वरयंपुव्वकीलियअणुसरेज्जा ॥६॥ नोपणीयंआहारं आहरित्ता भवइ सेनिग्गंथेतं कहमिति चे आयरि आह निग्गंथस्सखलुपणीयं पाणभोयणं आहारेमाणस्सबंभयारिस्स

भाषा

निश्चयेन स्त्रोणां पूर्वरतं पूर्व भोग भोगव्या पूर्वकीलितं पूर्वइपासा रामति करी तत् अनुस्मरण मानस्यते संभारता साधुने ब्रम्हव्रतधारकस्य ब्रम्ह व्रते शकाकरे कांचा वा वितिकिच्छा वास मुत्पद्यते भेद वा लभेत् भेदपामे उन्मादं वा प्राप्नुयात् दीर्घकालकं रोगातंकं भवेत् केवलि प्रज्ञप्त धर्म्मात् भ्रस्यते तस्मात् निर्ग्रंथ न निश्चयेन स्त्रोणां पूर्वरतं पूर्वकीलितं अनुस्मरन् भवति स निर्ग्रंथ ६ नहि प्रणीतं घ्रतोपचितं आहारं आश्नाति स साधु: नहिं

आयरियाह निग्गथस्सखलु पणीय पाणभोयण आहारेमाणस्सबम्भयारिस्सबम्भचेरे सका वा० तम्हाखलुनोनिग्ग थे पणीय आहारेज्जा ७ सनियन्थो भवेत् य प्रणीतश्रलदुटतादि बिंदुक उपलक्षणत्वादन्यदपि सरस अत्यन्तधातु वृद्धिकर कामोद्दीपकमाहार प्रति आहर्त्तान भवेत् य सरसाहार कृत् न भवेत् सनियन्थ तदा शिष्य पृच्छति तत्कथमिति चेत् तदा आचार्य आह हे शिष्य निग्रथस्य साधो खलु निश्चयेन प्रणीत सरस आहार भुञ्जानस्य ब्रम्हचारिणो ब्रम्हचर्यशङ्कादयो दोषा उत्पद्यन्ते तस्मात् इत्यादि दोष प्रादुर्भावात् निग्र थ प्रणीताहारकारी न भवेत् ७ इति सप्तम ब्रम्हचर्य समाधि स्थान इति सप्तमो वा टिका अथाष्टमों प्राह नो निग्ग थे अइमायाए पाणभोयण आहरेत्ताहवइसे निग्ग थे त कहमिति चेआयरियाह निग्गथस्स खलु अइमायाए पाणभोयण आहारेमाणस्सबम्भयारिस्सबम्भचेरे सङ्कावा० तम्हा खलु नोनिग्ग थे अइमायाएपाण भोयणेभुञ्जिज्जा८ सनिग्र थो भवेत् योऽति

व भचेरे सकावाकखावाविति गिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयवालभिज्जा उम्मायवापाउणिज्जा दीह कालिय वा रोगा यकहविज्जा केवलि पन्नत्ताओ धम्माओ भसिज्जातम्हा खलुनो निग्ग थे पणीय आहार माहारेज्जा ॥७॥ नो अइमा

नीय थ साधू घृतने झरते एहवो आहार तेहनाकरणहारहवे नहो स निग्र थ तत्कथमितिचेत् आचार्यो आह निग्र थस्य घृतोपचिताहार भु जमानस्य साधुने निश्चे प्रणीतभूघृता चूरिमा प्रमुखनो आहारकरताने ब्रम्हचारीने ब्रम्हचर्ये शकावा काक्षावा विचिकित्सावा समुत्पद्यते भेदवा लभेत् उन्मादवा प्राप्नुयात् दीर्घकालिकया रोगातक भवति केवलो प्रज्ञप्तात् धर्मात् भ्र स्यते तस्मात् निश्चयेन नहि भवति निग्र थ घृतोपचित आहारस्य कर्त्ता स निग्र थ ते साधु कहोजे ॥ नहि साधु अतिमात्रया भक्तपान गृह्णाति स साधु निग्र थसाधु पुरुषने ३२ कवलास्त्रीने २८ नपु सकने २४

मातया द्वात्रिंशत्कवला: पुरुषाणां आहारस्य माता ततोधिकाहारं पानकं द्राक्षासर्करादेर्जल आहारान्न भवेत् यतो हि आगमे पुरुषस्य द्वात्रिंशत्कवलै आहारमाता: स्त्रियस्तु अष्टाविंशति कवलै: आहार माता नपुंसकस्य चतुर्विंशतिकवलैराहारस्य माता उक्तास्ति वृम्हचारिणो हि अधिकाहारपानीयं न करणीयं इति श्रुत्वाशिष्य पृच्छति तत्कथमिति चेत्तदा आचार्यप्राह निग्गंथस्य खलु अतिमात्रं आहारपानीयमाहत्तु मात्राधिकं आहारकर्तुं वृम्ह चारिणो वृम्हचर्येशङ्कादयो दोषा उत्पद्यन्ते तस्मात् शङ्कादि दोषाणां प्रादुर्भावात् खलु निश्चयेन निग्रंथो अतिमातयापानीय भोजनं वा नभुञ्जेत् ८ इत्यष्टमं वृम्हचर्यं समाधिस्थानं ८ इत्यष्टमो वा टिका अथनवम्युच्यते नोनिग्गंथे विभूसाए वाई हवइ सेनिग्गंथेतं कह मिति चेआयरियाह निग्गं थे खलु विभूसावत्ति एवि भूसि य सरीरे इत्थी जणस्स अहि लसणिज्जे हवइ तओणं तस्सइत्थीजणेणं अहि लसिज्जमाणस्सबंभचेरे संकावा० तम्हा खलु नो

याए पाण भोअणं आहारित्ता भवइ से निग्गंथे त कहमिति चे आयरि आह निग्गंथस्स खलु अइमायाए पाण भोयणं आहारेमाणस्स वंभयारिस्स वंभचेरे संकावा कंखावा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयंवालभिज्ज। उम्मायं वा पाउणिज्जादीहकालियं वा रोगायंकंहविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा। तम्हा खलुनोनिग्गंथे अइ

एप्रनाणो अधिकरांणो भोजन आहारणहार न होइ ते साधु: तत् कथमितिचेत् आचार्यां प्राह: निग्रंथस्य निश्चयेन इतिमात्रयापान भोजन कुर्वत: साधो: मानथको अधिकपांणीने आहारजिमे जीमताने वृम्हचर्ये शंकावा कांचावा विचिकिच्छावा समुत्पद्यते भेदंवा लभेत् उन्मादंवा प्राप्नुयात् दीर्घ कालिकं वा रोगातंकं भवेत् केवलो प्रज्ञप्तात् धर्मात् भ्रश्यंत तस्मात् निश्चयेन नहीं निग्रंथ साधु अतिमात्राये पणोपांणी भोजन न भोगवे न जीमे

निगये विभूसियवत्तिए भवेज्जा ९ सनिग्र थो भवेत यो विभूषानुपातोनो भवेत विभूषा शरीरशोभा अनुवर्त्तयित्त अनुपाति तु विधा तु शील अस्येति तिविभूषानुवर्त्ती विभूषानुपातो वा शरीर शोभाकरणोपकरणेषु स्नान दन्तधावनादिभि सत्कारकर्त्ता न भवेत्ससाधुर्ब्रह्मचारी इति श्रुत्वा तदा शिष्य आह तत्कथमिति चेत्तदा आचार्य आह खलु निश्चयेननिग्र थ साधुर्विभूषानुवर्त्तिक शरीरशोभाकारीविभूषितशरीर स्नानाद्यलङ्कृत तनु पुमान् स्त्रीजनस्य अभिलषणीय कामायवाञ्छनीयो भवेत ततोण तत पश्चात्स्त्रीजनेन अभि लषणी यस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्य्यप्रकाद्यो दोषा उत्पद्यन्ते

सूत्र

मायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा ॥८॥ नो विभूसाणुवाई भवइ सेनिग्ग थे त कहमितिचे आयरिआहनिग्ग थस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसिय सरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जेहवइतओण तस्स इत्थिजणेण अभिलसिज्जमाणस्सब भ • यारिस्स व भचेरे सका वा कखा वा वितिगिच्छावा समुप्पज्जिज्जा भेयवालभिज्जा उम्माय वा पाउणिज्जा दीह

भाषा

स निग्र थ ते साधु कहीये ९ विभुषानु पाती शरीर वस्त्रादिकनीविभूषानोकरणहार हुवेनही ते निग्र थ साधुतेकिमइमजो शिष्य पूछेंतो ते शिष्यने आचार्यकहेछे नहो निग्र थ निश्चे करीने विभूषानो करणहार विभूषित अलकृत शरीरथकी स्त्रीजनने अभिलषनीय प्रार्थनीयहुवे तिवारे पछेतेह निग्र थने स्त्रीजने अभिलषीजता प्रार्थीजताथकाने ब्रह्मचारीने ब्रह्मचर्यना सेवनहारी ब्रह्मचार विषे ब्रह्मचर्यनेविषे सकापापती सदेह कखा स्त्री प्रमुखनोवाछा एकष्टनोफलछे किवा नही ते विचिकित्सा अतिसेकरी ऊपजे वा अथवा भेदचारित्रनो विनासपामे वा अथवा उन्माद कामनो विकार पामे वा अथवा दीर्घकाल घणोकालरहे एहवो रोगदाघज्वरादिक आतकसूलादिक रोगहुवे केवली नाप्रज्ञप्त भाष्या ज्ञानदर्शन चारित्र रूपथीरिया

उ०टीका अ०१६ ४८०

तस्मात् शंकादि दोषाणां प्रादुर्भावात् खलु निश्चयेन निग्रंथो विभूषानुवर्त्तिको न भवेत् ९ इति नवमं ब्रह्मचर्य समाधिस्थानं ॥ ९ इति नवमीवा टीका॥ अथ दशमी कथ्यते नो निग्गंथे सद्दरूवस्स गन्धफासाणुवाई भवेज्जा हवइसेनिग्गंथेतं कहमितिचेआयरियाह निग्गंथस्स खलुसद्दरूवरस गन्धफासाणुवाइ यस्स बंभचेरे संका० तम्हा खलुनोनिग्गंथे सद्दरूव रसगन्धफासाणु वाई भवेज्जा १० स निग्रंथो भवेत् स इति कः यः शब्दरूप रसगन्धस्पर्शानुपाती न भवेत् शब्दस्य रूपस्य रसस्य गन्धस्य शब्दरूप रसगन्धस्पर्शा तान् अनुपतति अनुयातीति शब्दरूप रसगन्धस्पर्शानुपाती शब्दो मन्मनादिः रूपं स्त्री संबंधि लावण्यं रसो मधुरादिः गन्धश्चन्दनागरकस्तूरिकादिः स्पर्शः कोमलः त्वक् सौख्यदः एषां भोक्ता साधुर्नस्यात् इत्युक्ते शिष्यः पृच्छति तत्कथमिति चेदा चार्य आह निग्रंथस्य खलुनिश्चयेन शब्दरूप रसगन्धस्पर्शानुपातिनो ब्रम्हचारिणो ब्रह्मचर्ये शंकादयोदोषा उत्पद्यन्ते तस्मात् शंकादिदोषाणां प्रादुर्भावात् खलुनिश्चयेन निग्रंथः शब्दरूपरसगन्धस्पर्शानुपाती विषयासेवीनभवेत्१०एतद्दशमं ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानं॥१० अथात्रसर्वेषां दशानां समाधिस्थानानां संग्रह

सूत्र

कालीयं वा रोगायंकं हविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा। तम्हा खलुनोनिग्गंथे विभूसाणुवाईसिया ॥९॥ नो सद्दरूवरसगंधफासाणु वाईभवइ सेनिग्गंथे तं कहमितिचे आयरिआह निग्गंथस्स खलुसद्दरूव रसगंधफासाणु

भाषा

धर्मथकी भ्रष्टथावे चूके तेहभणी खलु निश्चये निग्रंथ साधु विभूषावान् नभवति शोभानो करणहार नहवे साधूशृंगार ९ नही साधूः शब्दरूप रसगंध स्पर्शानुपाती ग्राहको भवति नहीं साधूमामणा वचनकटाक्ष मधुरादि सुगंध कोमलादिक नो आश्रयणहारहोइ ते निग्रंथ साधु तत्कथमितिचेत् आचार्याः आहुः निग्रंथस्य निश्चयेन शब्दरूप रसगंधस्पर्शानुपातिनः ग्राहकस्य निग्रंथ साधुने निश्चे मामणां वचनकटाक्ष मधुरादि सुगंध कोमला

उ०टीका अ०१६ ४८१

श्लोकान् पद्यरूपान् आह त जहा ज विवत्तिमणाइन्न रहियथो जणेय बम्भचेरस्सरक्खट्ठा आलयतु निसेवए १ साधुर्बृह्मचारी त आलय त उपाश्रयं निषेवते तुपदपूरणे त क य आन्यो विवत्त एकान्तभूत तत्रत्यवास्तव्य स्त्रीजनेन च शब्दात् पशुपण्डकैरपि रहित पण्डकशब्देन नपुंसक उच्यते कालाकाल विभागागत साध्वोजन याडोजनचाथित्व [विविक्तत्व श्रेय यदुक्त अट्ठमी पक्खिएसोत्तु वयणाकालमेवय सेसकालमिइन्तोश्रोनेयाउ अकाल चारीओ १ तस्मात् य आलयस्त्र्यादिभिरसेवितस्त आलय बृह्मचारी साधय निषेवते इत्यर्थं पुनर्यंआलय अनाकीर्णो गृहस्थानां गृहाद्दूरवर्ती किमर्थं बृह्मचर्यस्य रक्षार्थं योहि स्व बृह्मचर्यं रक्षितुमिच्छति स एतादृश उपाश्रय निषेवते अत्र लिङ्गव्यत्यय प्राकृतत्वात् १ अथयन्नाय जणपि काम

सूत्र

वाईयस्सय भयारिस्स व भचेरे सका वा कखा वा वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेयवालभिज्जा उम्माय वापाउ णिज्जा दीहकालीय वा रोगायक हविज्जा केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भ सिज्जा तम्हा खलुनोनिग्गंथे सद्दरसरूव गंधफासाणु वाईहविज्जा दसमे बभचेर समाहिठाणे भवइ भवति इत्थसिलोगा त जहा ज विवित्तमणाइन्न

भाषा

दिकनो आश्रयणहार बृह्मचारीने बृह्मचर्यै शकावा कखावा विचिकित्सा अथवा समुत्पद्यते भेदवालभेत् उन्माद वाप्राप्नुयात् अथवा उन्मादक पामि दीर्घकालिकरोगा त क या भवेत् चिरकालस्थायी रोगहुवे केवली कथित धर्मात्भ्रष्टोभवति धर्मथी चूके तस्मात् निश्चयेन नहीं निगृथ सद्द रूप रसगधस्पर्शानुपाती भवति स निगृथ एतानि दशब्रह्मचर्यं समाधिस्थानान्युक्तानि भवति एदशबृह्मचर्यं समाधिस्थानक कह्या एणे अधिकारे श्लोक कहेछे १० य विविक्तो रहस्यभूत अनाकीर्णं ये विविक्त एकातनिरव्य जन स्त्रीजनेन रहित स्त्रीजने करि रहित बृह्मचर्यस्य रक्षार्थं बृह्मचर्यनीरक्षाने

रागविवड्डण बभचेररओ भिक्खूथी कहंतु विवज्जए २ अथद्वितीय वृम्हचर्य रतोभिक्षु स्त्री कथां विवर्ज्जयेत् स्त्रीणां कथा स्त्री कथा ता त्यजेत कीदृशीं कथां मनः प्रह्लाद जननीं अन्तः करणस्य हर्षोत्पादिकां पुन कीदृशीं कामराग विवर्द्धनी विषय रागस्य अतिशयेन वृद्धिकर्त्री २ समञ्च संथवंथी हिं सङ्कहञ्च अभिक्खणं बभचेररओ भिक्खू निच्चसोपरिवज्जए३ ब्रह्मचर्यरतो भिक्षुर्नित्यशोनिरन्तरं सर्वदा स्त्रीभि समं सस्तवं अर्थात् एकासनेस्थित्वापरिचयं च पुन अभीक्ष्णं वारं २ सकथां स्त्री जातिभिः सहस्थित्वा बर्त्तों वार्त्तां परिवर्जयेत् सर्वथात्यजेत् ३ अङ्गपच्चङ्गसंठाणं चारुल्लवियपेहियं बम्भचेररओत्थीण

सूत्र

रहियं इत्थीजणेणाय बंभचेरस्सरक्खट्ठा आलयंतु निसेवए ॥१। मणपल्हायजणणी कामराग विवड्ढणी बंभचेर रओ भिक्खूत्थी कहंतु विवज्जए ॥२॥ समच सथवंथीहि संकहंचअभिक्खणं बंभचेर रओभिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥३॥ अगपच्चंग सठाणं चारुल्लवियपेहिय बंभचेर रओत्थीणं चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥४। कुड्डेयंरुइयंगीयं हसियंथणिय

भाषा

अर्थ एवविधः उपाश्रयः सेवएत् एहवे उपाश्रय सेवे १ मनः प्रह्लादजननी मननें हर्षनी उपजावणारीकामरागविवर्द्धनीं कामरागनीवधारण हारीएहवी वृम्हचर्यरत ,सन् भिक्षुशीलवृतपालणहार साधुस्त्रीकाथातु विवर्जयेत् स्त्रिनीकाथा न करे वर्जे २ स्त्रिभिः समं संस्तवः परचयः स्त्रीसंघाते घणो परिचय संकथां च अभीक्ष्ण वारं २ स्त्रीसंघाते वारं २ वार्त्ता न करे ब्रह्मचर्ये रतः सन् भिक्षु ब्रम्हचर्यनेविषेरत साधु नित्यं स परिचय वर्ज्जयेत् नित्य ते परिचय वर्जे ३ अंगानि शिर प्रभृतीनि प्रत्यगानि कुच कटाक्षादीनि अंग शिरआदि देहने प्रत्यंग कुच कटाक्षादिक मनोहर उन्मत्त उल्लापः प्रेक्षितः चारु मीठोबोलवु नजरभरोजोवुं वृम्हचर्यरतः स्त्रीणां वृम्हचर्यने विषेरत साधुस्त्रीने चतुर्थांश विवर्ज्जयेत् स्त्रीना मीठांवचन आंखिना कटाक्षदेखे नहीं नेव

टीका
अ॰ १६
४८२

चक्खुगिज्झ विवज्जए ४ ब्रह्मचर्यरत साधु स्त्रीणा अङ्ग प्रत्यङ्ग सस्थान चक्षु ग्राह्य विवर्जयेत् अङ्ग मुख प्रत्यङ्ग स्तनजघन नाभि कचादिक सस्थानक कटो विषये हस्त दत्वा ऊर्द्धस्थायित्व पुन स्त्रीणां चारुल्लपित प्रेक्षित चक्षुर्ग्राह्य विशेषेण वर्जयेत् चारुमनोहर यत् उल्लपित मन्मनादिजल्पन प्रेक्षित कटाक्ष दृषित चक्षुरावलोकन एतत्सर्वं परित्यजेत् कोर्थ ब्रह्मचारीहि स्त्रीणां अङ्ग प्रत्यङ्ग सस्थान चारुभणित कटाक्षैरवलोकन एतत्सर्वं दृष्टि विषय मागतमपि तत स्वकीयच क्षुरिन्द्रिय बलाद्धि वारयेदित्यर्थं ४ कूइय रुइय गीय हसियथणियकन्दिय वम्भचेररओ थीण सोयगिज्झ विवज्जए ५ ब्रह्मचर्यरत स्त्रीणा कूजित रुदित गीत हसित स्तनित क्रन्दित श्रोत्र ग्राह्य कर्णाभ्या ग्रहीतु योग्य विशेषेण वर्ज्जयेत न शृणुयादित्यर्थं ५ हास कीड रय दप्प सह सावित्तासियाणि य सह भुत्ता सणाणिय इति वा पाठ वम्भचेर रओ थीण नाणुचिन्ते कयाइवि ७ ब्रह्मचर्यरतो ब्रह्मचारी स्त्रीणा हास्य पुन क्रीडां तथारत मैथुन प्रीति दर्प स्त्रीणा मानमर्दनादुत्पन्न गर्व पुन सहसा अपत्रासितानि सहसात्कारेण आगत्यपश्चात्पराङ्मुखस्थितानां स्त्रीणा नेत्रै हस्ताभ्यां निरुध्य भयोत्पादनहास्योत्पादनानि सह सावित्ता सितानि उच्यन्ते एतानि पूर्वानुभूतानि कदापि न अनुचिन्तयेत् नस्मरेत् अथ च सह भुक्तासनानि न अनुचिन्तयेत् सह इति स्त्रिया सार्द्ध भुक्त एकासने उपविश्य पूर्वं भोजनानि कृतान्यपि न स्मरेत् सहासन भुक्तानि इति वक्तव्ये सह भुक्तासनानि इति प्राकृतत्वात् ७ पणियं भत्तपाणं तु खिप्पं मय विवड्ढण वम्भचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ८ ब्रह्मचर्यरतोभिक्षु प्रणीत घरदपतादिरस

सूत्र

कूइयं रुइयं गीयं हसियं थणियकन्दियं वम्भचेर रओ थीणं सोयगिज्झं विवज्जए ॥५॥ हासं किड्डं रइं दप्पं सहभुत्तासणाणिय वम्भचेर रओ थीणं नाणु

भाषा

याह्यत्रज ७ अस्यार्थ प्राग्वदवसेय कुपीत रुदित गीत हास्य स्तनित क्रन्दित क्रन्दितशब्द ब्रह्मचर्य रत सन्स्त्रीणा ब्रह्मचर्य रत साधु स्त्रीणा श्रोत्र ग्राह्य विवर्जयेत् स्त्रीनो शब्दमात्रकाने सभलाइते वर्जे ५ हास्य हासु क्रीडा रमवु रत सभोग दर्प गर्व अकस्मात् अप त्रासितानि त्रासकरणानि

भक्त माहारं तथा पान द्राक्षा खजूर सर्करादिमिश्रितं पानीय नित्यशः परिवर्जयेत् सर्वदापरित्यजेत् सदा सेवनाद्दाउग्रं स्यात् तथा ब्रह्म रतोभिक्षुर्यदा हारं पानीयं च चिप्रं शीघ्रं मद विवर्द्धन कामोद्दीपकं भवति तदपि नित्यं परिवर्जयेत् ८ धम्मलद्धं मियं काले जत्तत्थं पणिहाणवं नाइ मत्तन्तुभुंजिज्जा बम्भचेररओ सया ९ ब्रह्मचर्यरतः साधुर्ब्रह्मचारी सदा अति मात्रं मात्रां अतिरिक्तं अतिमात्रं मात्राधिकं आहारं नैव भुञ्जीत परं कीदृशं आहारं धर्मेण लब्धं न तु विप्रतार्यगृहीतं तदपि आहारं मितं मानोपेतं तदपि काले गृही तु तदपि आहारं यात्रार्थं संयमनिर्वाहार्थं न तु बल वीर्यादिवृद्ध्यर्थं गृहीतं तदाहारं कदाचित् सरसं अपि लब्धं तदा सदैव नभुञ्जीत कीदृशो ब्रह्म चारी साधुः प्रणिधानवान् प्रणिधानं चित्तस्यस्थैर्यं तद्वि द्यते यस्य स प्रणिधानवान् चित्तस्वास्थ युक्त इत्यर्थः ९ विभूस परिवज्जिज्जा शरीर परिमण्डणं बंभचेररओ भिक्खू सिङ्गारत्थं न धारए १० वृम्हचर्यरतो

चिंते कायाइवि ॥६॥ पणीयंभत्तपाणंतु खिप्पंमय विवड्ढणं । बंभचेर रओभिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥७॥ धम्मलद्धं मियंकाले जत्तत्थं पणिहाणवं । नाइमत्तंतुभुंजेज्जा बंभचेररओ सया ॥८॥ विभूसं परिवज्जेज्जा सरीर परिमंडणं बंभ

सोक्षु रामतिकोधी त्रासजपजायो वृह्मचर्यरतो भिक्षु नास्मरति कदाचित् न संभारेकिवारेए ६ प्रणितं रस संसक्त भक्तपानं चिप्रं मद विवर्द्धनं जतावलुं मदनुं जपजावणहार तत्काल वृम्हचर्यरतोभिक्षु शील वृतनोपालणहार नित्यं सदा परिवर्जयेत् एसरस आहारकरवो छांडे ७ धर्मार्थं लब्धं मितं काले धर्मार्थे पाम्योते पणिथोडुं गोचरीवेलाइ यात्रार्थं संयमनिर्वाहार्थं चित्त स्वस्थोपेतं संयमना निर्वाहने अर्थे स्वस्थचित्त न अतिमात्रं पुनः भूंजीत घणी पेटभरीने खाइनहो वृह्मचर्यरतः सदा व्रम्हचर्यने विषे सदारतछे ८ शरीर सत्कार रूपं परिवर्ज्जयेत् शरीरसोभावर्ज्जे शरीरस्य

भिक्षु शरीरस्य परिसमन्तात मण्डन नखकेशादीनां संस्कारकरणं शृङ्गारार्थं परिवर्जयेत् पुनर्ब्रह्मचर्यधारी विभूषां सम्यक् शब्दादिविहित शरीर शोभां परिवर्जयेत् १० सद्दे रूवेय गन्धे य रसे फासेतहेवय पञ्चविहेकामगुणे निच्चसोपरिवज्जए ११ ब्रह्मचारीनित्यश सर्वदा शब्द कर्ण सुखद रूप नेत्र प्रीति कर पुनर्गन्धनासा सुखद तथा रसमधुरादिक तथैव स्पर्श त्वक प्रीतिकर एव पञ्च विधकाम गुणान् परिवर्जयेत् ११ अथ यत् पूर्वं उक्त शकाकाचादि दूषण स्यात् तत्सर्वं पृथक दृष्टान्तेन द्रढयति आलओथी जणाइन्नोथीकहायमणोरमा संथवो चेवनारीण तासि इन्दियदरसिण १ कूइय रुइय गीत हसिय भुक्तासिणाणिविपणीय भत्तपाणञ्च अइमाय पाणभोयण१ गत्तभूसणमिट्ठञ्च कामभोगायदुज्जयानरस्सत्तगवेसिस्स विसत्तालउड जहा इति तिसृभिर्गा थाभि पूर्वाण्येव ब्रह्मचर्य समाधिभ गकारणान्याह आत्मगवेषकस्य नरस्य स्त्रीजनस्य च एतत्सर्वं ब्रह्मचर्य घातकत्वात्त्याज्य इत्यर्थं आत्मान ब्रह्मचर्य जीवित

सूत्र

चेरस्त्री भिक्खूसिगारत्थं न धारए ॥९॥ सद्दे रुवेय गन्धेय रसेफासे तहेवय। पञ्चविहेकामगुणे निच्चसो परिवज्जए ॥१०॥
आलओथी जणाइन्नोथी कहाय मणोरमा संथवो चेवनारीण तासिइंदिय दरिसण ॥११॥ कुइंय रुइंयगीय हसिय भुत्ता

भाषा

परिमंडना शरीरनु मंडन नख केश मूछ प्रमुख एहनी शोभावर्जे ब्रह्मचर्य रतोभिक्षु शीलव्रतधारी साधु शृंगारार्थं न धारयेत् शृंगारने अर्थे धरे नही ९ शब्दरूप गधने विषे रसस्पर्शं तथाच तिमज पञ्चविधान् कामगुणान् पांचे प्रकारे कामगुण प्रति नित्य स परिवर्जयेत् सदा वर्जे ब्रह्मचारी १० आलय स्त्रीजनाकीर्ण जे उपाश्रयस्त्रीए भर्योछे स्त्री कथा च मनोरमावली स्त्रीनी कथा मनोहर कहीछे ख स्तव परिचयो नारीभि सह स्त्रीनोपरिचय भणीछे तासा स्त्रीणा इंद्रियदर्शन अने स्त्रीना ज चक्षुरादींद्रियदेखवा ११ कुस्त्रीणा कूजित रुदित गीत स्त्रीना कूजितरोवु गीत

गवेषयतीति आत्मगवेषकस्तस्य वल्लभ ब्रम्हचर्यस्य किं मिव ताल पुटं विषमिव यथा शब्द इवार्थे यथा ताल पुटं विषं तालुक स्पर्शनमाता देवत्वरितं जीवितं हन्ति तथा एतदपि त्वरितं ब्रम्हचर्यजीवितमपहरतीत्यर्थः तत् किं किं इत्याह स्त्री जनाकीर्णं आलयोगृहं उपाश्रय १ पुनर्मनोरमाः मनोहरा स्त्री कथा १ च पुनर्नारीणां संस्तवः स्त्रीभिः सह एकासने उपविशनं परिचय करणं पुनस्तासां स्त्रीणां रागेण इन्द्रियाणां नयन वदनस्त नादीनां दर्शनं १ पुन स्त्रीणां कूजित तथा रुदितं पुनर्गीतं तथा हसितं पुनः स्त्रीभिः सहभुक्ता सनानि पुनस्तथा प्रणीतरसभक्त पानसेवनं पुनरति मात्र पानभोजनं १ पुनर्गात्र भूषणार्थं शोभाकरणं पुनर्दुर्ज्जया कामभोगा अधीरपुरुषैस्त्यक्तुमशक्याः एतत्सर्वं ब्रम्हचर्य धारिणापरिहरणीयं१ दुज्जएका

सूत्र

सियाणिय पणीयंभत्त पाणंच अइमायं पाणभोयणं ॥१२॥ गत्तभूसणमिट्ठंच कामभोगाय दुज्जया नरस्सत्तगवेसिस्स विसं तालउडंजहा ।१३। दुज्जए कामभोगेय निच्चसो परिवज्जए। संकाठाणाणि सव्वाणि वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥१४।

भाषा

हसितं पूर्वभुक्तानिभोगानि अशनानि हसवुं पाछिलाजे भोगभोगव्या प्रणीतभक्तपानंच सरस आहारपाणी अतिमात्रायः पानभोजनमात्रायको अधिक आहारपांणी १२ गात्र विभूषणं इष्टं च शरीरनीं शोभा भलीकरे तथा दुर्ज्जया कामभोगा एतलांवांना ब्रम्हचारी करे तो तेहने कामभोग जीततां दोहिला जोत्यान जाइ नरस्य आत्मगवेषिणः जे पुरुष आपणा आत्मानोगवेषीछे जाणिछे आत्माने संसारथकीकाढु एतानि पूर्वोक्तानी तालपुट विष सदृशांनि एजेपुंठे कह्यां वोलते आत्मागवेषीने तालपुटसरीषाछे १३ दुर्ज्जयान् कामभोगान् एकामभोग दुर्ज्जयछे नित्य सत्कार कामभोगं परि वर्जयेत् नित्य सदा कामभोगवर्ज्जे तथा शंकास्थानानि सर्वाणि च वलीजे शंकानां स्थानकते सर्ववर्ज्जे वर्जयेत् प्रणिधानवान् वृढवान् परिहरे एकाग्र

मभोगेगनिघसो परिवज्जिय सहाठाणाणि सव्वाणि वज्जिज्जायणि हाणव १४ प्रणिधानवान् एकाग्रचित्त सर्वाणि दशापि शकास्थानानियानि पूर्वोक्तानि तानिवज्जेत् पुनर्दुर्जयान् भोगान् परिवर्ज्जयेत पुन कामभोग ग्रहण अत्यन्तनिवारणोपदेशार्थं १४ धम्मारामे चरेभिक्खू धि इम धम्मसारही धम्मा रामेरएदन्ते(बम्भचेरसमाहिए १५ ब्रह्मचर्यं समाधिमान् भिक्षु साधुधर्मारामे चरेत धर्मं आराम इव दुःख सन्तापतप्ताना सौख्य हेतु त्वात धर्माराम स्तस्मिन् धर्मारामेतिष्टन् शीलधर्मं स एव आरामस्तत्र विचरेदित्यर्थं कीदृशोभिक्षुर्धृति मान् धैर्ययुत पुन कीदृशो धर्मसारथी धर्ममार्गं प्रवर्त्तयिता पुन कथ भूतो धर्मारामरत धर्मं आसमन्तात रमन्ते इति धर्मारामा साधयस्तेपुरत साधुभि सह युक्तोनत्वेकाकीतिष्टति पुन कीदृशोदान्त इन्द्रि याणा जैताकषायजेताच १५ देवदाणवगन्धव्वा जक्खरक्खसकि नरा बम्भयारि नम सन्ति दुकरञ्जे करिन्तित १६ अथ ब्रम्हचर्यधरणात फल माह देवाविमान वासिनो ज्योतिष्काय दानवा भवन पतयो गन्धर्वादेवगायना यचा हच वासिन सुरा राक्षसा मांसास्वादतत्परा किन्नरा व्यन्तरजातय

सूत्र

धम्मारामे चरेभिक्खू धिइमधम्मसारही। धम्मारामे रएदंते बम्भचेर समाहिए ।१५। देवदाणव गन्धव्वा जक्खरक्खस किनरा बम्भयारि नम सति दुक्करजे करंतित ।१६। एसधम्मे धुवेनियए सासए जिणदेसिए। सिद्धासिज्झ तिवाणेण

भाषा

चित्तनोधणी १४ धर्मारामेचरेत् भिक्षु धर्मने विषे मोयवन खडतेह्नी वीयेरमेसाधू धृतिमान धर्मसारथी सतोष सहित धर्मसारथी धर्मारामेरत दांत मघाटकमध्यवर्त्ती धर्माराम साधूकह्येछे ते माहिमोन्योछे वृम्हचर्य समाधिमान वृम्हचर्य सहितवर्त्तेछे १५ देव दानव गधर्वा देव दानव अने गधर्व यक्ष राक्षस कीन्नरा जक्ष राक्षसथ्य तर वृम्हचारीनें नमस्कार कुर्वंतो वृम्हचारीनें ते नमस्कारकरे यस्मात दुष्कर करोति जिण कारणे तेदुष्कर

उ०टीका
अ०१६
४८८

एते सर्वेपि तं वृम्हचारिणं नमस्कुर्वन्ति तं कं यो वृम्हचारी पुरुषः स्त्री जनो वा दुष्करं कर्तुमशक्यं धर्मं करोति शीलधर्मं पालयति १६ एस धम्मे धुवेणितएसासएजिणदेसिए सिद्धासिज्झन्ति चाणेणं सिज्झिस्सन्ति तहावरेत्तिबेमि १७ एष धर्मः अस्मिन्नध्ययने उक्तः वृम्हचर्यलक्षणो ध्रुवोस्ति परतीर्थिभिरनिषेध्योस्ति तस्मात् प्रमाण प्रतिष्ठितः पुनर्नित्य त्रिकालेप्यविनश्वरः अत एव शाश्वतः त्रिकाले फल दायकत्वात् पुनर्जिनैस्तीर्थंकरैर्देशितः प्रकाशितः इति विशेषणैः अस्य शीलधर्मस्य प्रामाण्यं प्रकाशितं अनेन शीलधर्मेण बहवो जीवाः सिद्धा अतीतकाले सिद्धिं प्राप्ताः च पुन ते न धर्मेण कृत्वा इदानीं सिध्यन्ति तथा तेन प्रकारेण शील धर्मेण सेत्स्यन्ति सिद्धिं प्राप्स्यन्ति अत्राध्ययने मुहुर्मुहुर्वृम्हचर्यसमाधिस्थानानि प्रकाशितानि मुहुर्मुहुर्दूषणानि उक्तानि तत् अत्रशीले अत्यन्तपालनादर प्रकाशनाय न तु पुनरुक्ति दोषो ज्ञेयः इति अहं ब्रवीमि इति सुधर्मा स्वामीजंबूस्वामिनं प्राह १७ इति वृम्हचर्य समाधिस्थानानां अध्ययनं षोडशं संपूर्णं १६ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मी

सूत्र

सिज्झिस्संतितहावरेत्तिबेमि ॥ १७ ॥ बंभचेरज्झयणं सोड़सं समत्तं ॥ १६ ॥ जेकेइउपव्वइए नियंठे धम्मं सुणित्ता

भाषा

करेछे १६ एषः धर्मो ध्रुवो नित्यः एधर्मनीश्चे शास्वतोछे शास्वतः जीनं तीर्थं करेण देसित सास्वतो धर्म तीर्थं करे कह्यु पूर्वं सीधाः अधूनापि सिद्धंति अनेन वृम्हचर्य रूपेण धर्मेण पूर्वे सीधाहवणांपणिसीझेछे एसीलधर्मथी तथा अपरे प्राणिनः आगामी काले सिद्धिं गमिष्यतो बीजापणि प्राणी आगल्याभवनेविषे सीझस्ये १७ इति वृम्हचर्य समाधिस्थानं समाप्त ॥ १६ ॥ सोलमा अध्ययनने विषेसीलगुणवर्णनं संपूर्णम् अथ हिवे पाप श्रमणमाख्यातः अध्ययन सप्तदश मोप्रोच्यते १७ य कश्चिद्विनयोपपन्न निर्ग्रंथः यतीद्र धर्म सांभली दीक्षालीधी धर्मश्रुत्वा विनयान्वितः सन् धर्म

वज्रभगणि विरचितायां ब्रह्मचर्य समाधिस्थान षोडश संपूर्ण ॥१६॥ अथ सप्तदश अध्ययन प्रारभ्यते ॥ षोडशे अध्ययने ब्रह्मचर्यं गुप्तय प्रकासितास्ता गुप्तयस्तु पापस्थान वर्ज्जनादेव भवति तस्मात्पापस्थान सेवनात्पाप श्रमणो भवति तत पाप श्रमण ज्ञानार्थं सप्तदश अध्ययन प्रकाश्यते इति षोडश सप्तदशयो सम्बन्ध जेकेइमो पव्वइ एनियंठे धम्म सुणित्ताविणओववन्ने सुदुल्लह लहिउ बोहि लाभ विहरेज्ज पच्छाय जहासुहंतु१ य कश्चित प्रव्रजितो गृहीतदीक्षो निग्रंथ साधु पूर्व धर्म श्रुतचारित्र रूपधर्म श्रुत्वाविनय ज्ञानदर्शन सेवनरूप उपपन्न प्राप्त सन् पुनरयं साधु सुतरां अतिशयेन दुर्लभ सुदुर्लभ बोधिलाभ श्रीतीर्थंकरस्य धर्मं सम्यक्त्व लब्ध्वा पश्चाद्यथा सुख यथेच्छ निद्राविकथा प्रमादवत्वेन विचरेत सिंहत्वेन धर्मं अङ्गीकृत्य शृगालवत्या एव विचरेत स च प्रमादीगुरुणा हे शिष्यत्वं अधीष्व इत्युक्त सन् किं वक्ति तदाह १ सिज्जादढापाउरणंमि अत्थि उप्पज्जइभुत्तुतहेवपाओ जाणामिज वट्टइ आउसुत्ति किं नाम काहामि सुएणभन्ते १ हे गुरोशिज्जा उपाश्रयो वसतिर्दृढावर्या शीतातपपीडानि हृत्तकारास्ति प्रावरण वस्त्र शीता द्यपद्रवहर शरीराच्छादक मे मम अस्ति वर्त्तते हे गुरो पुन भोक्त भोजन तथैव पातु पानीयं उत्पद्यतेमिलति हे आयुष्मन् हे भगवन् यद्वर्त्त मान जीवादिवस्तु वर्त्तते तदपि अह जानामि इति हेतो हे भगवन् श्रुते न सिद्धान्ताध्ययने न किं करिष्यामि अत्र हे भगवन् इत्यामन्त्रण येपे वर्त्तते कोप ये भगवन्तोऽधीयन्ते तेषां अपिन अतीन्द्रियज्ञान तत् किं गलतालुशोषेणैयध्ययसितोय भवति स पाप श्रमण उच्यते इति इत्थमपि सम्बध्यते

सूत्र

विणओववन्ने सुदुल्लह लहिओ बोहिलाभ विहरेज्ज पच्छाय जहासुहंतु॥१॥ सेज्जादढा पाउरणंमिअत्थि उप्पज्जई भोत्तु

भाषा

सांभलीने विनय धर्म अंगीकारकरीने पालवालागो सुदुर्लभ दोहिलू लब्धा लाभीने बोधिलाभ सम्यक्त्वलेईने अंगीकार करीने विहरेत पश्चात यथा सुख विचरे पछे जैयां सुखे १ शय्यावसति दृढा वर्षाकालादी अस्तो उपाश्रय दृढछे वर्षाकालयोग्य वस्त्रपरिमाहरीछे उत्पद्यते भोक्तु तथैव पातु

उ०टीका
अ० १७
४९०

सिंहावलोकनन्यायेन २ जेकेई पव्वई एनिद्दासोलेपगामसो भुच्चापि च्चासुवई पापसमणेत्तिवुच्चई ३ स पाप श्रमण इत्युच्यते पापश्चासौ श्रमणश्च पापश्रमण: पापिष्ट साधुरित्यर्थ: स इति क: य: कश्चित् प्रव्रजितो गृहीतदीक्ष: सन् पश्चात् प्रकामशोऽत्यंत सुक्तादधिकं बादिका भुक्त्वा पीत्वा दुग्धतक्रादिकं आचम्य निद्राशीलो भूत्वा सुखं प्रतिक्रमणादि क्रियानुष्टानं अकृत्वा एवस्वपिति स सम्यक् साधुर्नभवेदित्यर्थ: २ आयरिय उवज्झा एहिं सुयं विणयच्च गाहिए ते चेवखिं सई वाले पावसमणेत्ति वुच्चई ४ स पाप श्रमण इत्युच्यते स इति क यस्तानेव आचार्यान् गणइत्तान् उपाध्यायान् पाठकान् खिंसई इति निन्दते किं जानन्त्येते अज्ञा: अहं यादृशं आचारं सूत्राणांऽर्थं जानामिताद्दृशं एते आचार्या उपाध्यायान जानन्तीत्युक्तानिन्दति तान् कान् यै: आचार्यै रुपाध्यायैश्च श्रुतं ग्राह्य विनयश्च गाहित: शिक्षितस्तान् प्रति निन्दति इति न जानाति एतैरेवाहं शिक्षित: एताद्दृश: कृतघ्न: पाप श्रमण श्रमणाभास:

सूत्र

तहेवपाउं जाणामिजंवद्दइ आउसोत्ति किंनामकाहामिसुएणभंते ॥ २ ॥ जेकेई पव्वईएनिद्दासीलेपगामसो । भोच्चापिच्चासुहंसुवई,पावसमणेत्ति वुच्चई ।३॥ आयरिय उवज्झाएहिंसुयं विणयंच गाहिए तेचेवखिंसई बाले पाव

भाषा

भात पांणोभोकजालाभिक्ते तत् जानामि जीवादियत्वर्तते हे आयुष्मान् हुं जाणुं छुं जे वर्त्ते छे जीवा जीवादि पदार्थ उपदेश किं नाम करिष्यामि श्रुते नाधीतेन हे भगवन् हे पूज्य सिद्धांतभणीने किम्प्रकारं २ य कश्चित्प्रव्रजितो जे कोई दीक्षालेई निद्राशील प्रकामो बहुश: निद्राने विषे तत्पर घणो हुइ भुक्ताखाईने पोत्वातक्रादिकं सुखं स्वपतिक्षादि छासिपीने सुखेसूइ पापश्रमण इत्युच्यते ते पापश्रमणकहीइ ३ आचार्योपाध्यायै· अर्थत· आचार्य उपाध्याय पासे श्रुतं विनयं वाशिक्षत: श्रुत सिद्धांतभणा विनयादिशोख्या तेषां आचार्यादोनां निंदति मूर्ख: पछेते गुरुने मूर्खनिंदे स पापश्रमण:

टीका
अ॰ १७
४८१

श्रमण लक्षणेहीन श्रमणत्व मन्यमान पाप श्रमण उच्यते कोदृश सर्वानोऽज्ञानोरविवेकी इत्यर्थ ४ आयरिय उवज्झायाण सम्म नोपडितप्पइ अपडि पूर एयइ पावसमणेत्ति वच्चइ ५ ज्ञान विषय पाप श्रमणत्व उक्त्वादर्शन विषय आह य आचार्याणा पुनरुपाध्यायाना सम्यक प्रकारेण वै परोत्वराहि त्येन न परिटप्यति प्रोति न विदधाति पुनर्य अहदादीना यथा योग्य पूजावा पराड मुखो भवति अप्रति पूजको भवति अथ वा उपकारकर्त्तु रपि उपकार जिज्ञाय स्य प्रत्युपकार किमपि न करोति स अप्रतिपूजक उच्यते पुनरत्थोहङ्कारी मनसि एव जानाति अह महापुरुषोस्मि एतादृशो मुनिर्य स्यात् स पाप श्रमण उच्यते ५ सम्मद्दमाणि पाणाणि बीयाणि हरियाणि य असजए सजयमन्नमाणे पावसमणेत्ति वुच्चइ ६ य प्राणान् द्वित्रि चतुरिन्द्रि यान् समर्दमानोऽतिशयेन पोडयन च पुन बीजानिशालि गोधूमादि सचित्तधान्यानि समर्दयति च पुनर्हरितानि दूर्वादीनि फलपुष्पादीनि समर्दयति पुनर्य असयत सन् आत्मान सयत मन्यमान स पाप श्रमण उच्यते ६ सथार फलग पीढ निसिज्ज पायकम्बल अप्पमज्जियमारुहइ पावसमणेत्ति

सूत्र

समणेत्ति वुच्चई ।४। आयरिय उवज्झायाण सम्म नो परितप्पई । अप्पडिपूयएथद्धे पावसमणेत्ति वुच्चई ॥५॥ सम्मद्द माणोपाणाणि बीयाणि हरियाणिय । असजएसजयमन्नमाणे पावसमणेत्ति वुच्चई ॥६॥ सथार फलग पीढ निसिज्ज

भाषा

इत्युच्यते ते पाप श्रमणकहोइ ४ आचार्योपाध्यायाना आचार्य उपाध्यायनी सम्यक न परिसम्यक सुश्रुषा न करोति सम्यक प्रकारे शुश्रुषा न करे अप्रति सुज्ञो गवणस्तब्ध गुरु हुतो विमुखरहे स्तब्धको अहकारो स पाप श्रमण इत्युच्यते ते पापश्रमण ५ समर्दयन प्राणान बेंद्रियादीन बीजानि हरि तानि च दुर्वादीनि बीजनो लोट्रीमर्दै असयत सन आत्मान सयत मन्यमाना असयतीथको आपणा आत्माने सयतीकरोमाने स पापश्रमण इत्युच्यते ६

बुच्चई ७ पुनर्यः संस्तारंकम्बलादिकं फलकं पट्टिकादिकं पीठं सिंहासनादिकं निषद्यां निषीद्यते उपविश्यते इति निषद्यातां निषद्यां स्वाध्यायातापनादिक्रियायोग्यां भूमिं पादकम्बलं पाद पुञ्छनं इत्याद्युपकरणं अप्रमृज्यरजोहरणादिना प्रमार्जनं अकृत्वा जीवयतनां अकृत्वा आरोहतिसपाप श्रमण उच्यते ७ दवदवस्स चरई पमत्तेयअभिक्खणं उल्लंघणेय चण्डेय पावसमणेत्ति बुच्चई ८ पुनर्यः आहारार्थं यदा व्रजति तदा दवदवइति घाते पृथिवीं क्षुट्टयन् शीघ्रं २ व्रजति ईर्यासमितिं न साधयति पुनरभीक्ष्णं वारं २ प्रमत्तः प्रमादी सर्वाभि स मिति भिर्हीनस्यात् अप्रमत्तो न भवति पुनर्य उल्लंघनः उल्लंघयति अज्ञानिनां अथवा बालानांहास्याद्यविनयकर्तृणां भावयन् स्वकीयं आचारं अति क्रामयतीति उल्लंघनः पुनर्यश्चंडः क्रोधोध्मातचित्तः स्यात् स पाप श्रमण उच्यते ८ पडिले हेइ पमत्ते अवउज्झइ पायकम्बलं पडिलेहणा अणा उत्ते पावसमणेत्ति बुच्चई ९ पुनः पाप श्रमण स उच्यते स इति वा:

पायकंबलं। अपमज्जियमारुहई पावसमणेति वुच्चई ७॥ दवदवस्स चरईपमत्तेय अभिक्खणं। उल्लंघणेयचंडेय पाव समणेत्ति वुच्चई ८॥ पडिलेहेइ पमत्ते अवउज्झइ पायकंबलं। पडिलेहणा अणाउत्ते पावसमणेत्ति वुच्चइ ९॥ पडि

स स्तारक काष्टमयं पटका संथारो पूठिउ बाजोठ स्वाध्याय भूमि पादपुछन सज्झायनी भूमीका पुछणं अप्रमृज्य आरोहति अणपूंजीवेसे पापश्रमण. स उच्यते ७ द्रुतं द्रुतं भिक्षार्थी चरति उतावलो २ भिक्षाभणीजाइं प्रमत्तो भवति वारं वार प्रमत्तहुइ वार वार वच्छ बालकादीनां लंघक क्षुद्रवा छडावालक लांघीने जाइ चंडसहसथकोरहे पापश्रमण: स उच्यते ८ प्रतिलेखयति प्रमत्त· सन् प्रमत्तथको पडिलेहणाकरे मुंचति पादप्रोंछन कांबलादि भावितोहां पूछणां कांबलामूके प्रतिलेखनया अनुपयुक्तः पडिलेहस्य असावधानहुते मनिकरी स पाप श्रमणेति उच्यते ९ प्रतिलेखयति प्रमत्तः सन्

यो वस्त्र पात्रादिक निजोपकरण प्रमत्त सन् प्रति लेखयति मनो विनाप्रति लेखयतीर्थं पुनर्य पादेश्च वल पाद पुञ्छन अथ वा पात्रकम्बल अपोज्झति यत्र तत्र अप्रमार्जिते अप्रति लेखिते स्थले निक्षिपति अत्र पात्रकम्बल ग्रहणेन सर्वोपधि ग्रहण कर्त्तव्य पुनर्य प्रतिलेखनायुक्त प्रति लेखनाया स्वकीय सर्वोपधि प्रति लेखनाया अनायुक्त आलस्य भाक प्रत्युपेक्षानुपयुक्त इत्यर्थं एतादृश पाप श्रमणो भवेत् १० पडिलेहेइ पमत्ते सेकिञ्चिहुनिसामिया गुरु परि भवइनिय पावसमणेत्ति वुच्चइ ११ स पाप श्रमण इति उच्यते स क य साधुर्यत्किञ्चित् वस्तु उपाध्यायादिक प्रतिलेखयति तदा किञ्चिन्निशम्य प्रतिलेखयति कोर्थ यदा प्रतिलेखनायसरे कथिद्वार्त्ताङ्करोति तदा तद्वार्त्ता श्रवण व्यग्रचित्त सन् प्रतिलेखयतीत्यर्थं पुनर्यो गुरुन् नित्य परि भवति स तापयति स पाप श्रमणो भवति ११ बहुमाइपमुहरीथद्देलद्दे अणिग्गहे असंविभागी अचियत्ते पाव समणेत्तिवुच्चइ १२ पुनर्यो बहुमायो प्रचरमायायुक्तो भवति पुनर्य प्रमुखर प्रकर्षेण वाचालो भवति पुनर्यस्तब्धोहङ्कारी भवति पुनर्योलब्धो लोभी पुनर्योऽनिग्रह नविद्यते निग्रहो यस्य स

पडिलेहेइ पमत्तेसेकिंचिहु निसामिया। गुरु परिभवेइ निच्च पाव समणेत्ति वुच्चई १०॥ बहुमाई पमुहरी थद्धेलुद्धे अनिग्गहे। असंविभागी अवियत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई ११॥ विवायचउदेरेइ अहमे अत्तपन्नहा। वुग्गहे कलहे

प्रमत्तथको पडिलेहे स साधु किंचित् विकथादिक निशम्य शुलाकाइ विकथादिसाभलीने गुरुभि निग्यत सन् गुरो पराभव करोति स पापश्रमण इति उच्यते १० बहुमायावान् प्रकर्षेण वा चाल घणी मायाकरोइ वाचाल घणोबोले स्तब्ध अहंकार लुब्धो लोभवान् इन्द्रिय निग्रहरहित अहंकार लाभो इन्द्रो जोयानहो सविभागरहित गुवादिष्वपि अप्रीतिमान् स विभागनकरे आहार नोभागनकरे नहो गुरु ऊपरि अप्रीति स्नेहकरे पाप श्रमण

उ०टीका
प०१७
४८४

अनिग्रह अवशोकृतेन्द्रिय पुनर्योऽसं विभागी गुरुग्लानादीनां उचिताहारादिनान प्रति सम्बिभजति पुनर्योऽचियत्त इति गुर्वादिषु अप्रतीति कार्त्ता स पाप श्रमण इत्यु्च्यते १२ विवायच्चउदेरेइ रेइ अहम्मे अत्तपन्नहा वग्गहे कलहेरत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई १३ य पुनरेतादृशो भवति स पाप श्रमण इत्यु्च्यते सः कः यो विवादं वाक्कलहं उदीरयति उपशान्त मपि पुनरुज्वालयति पुनर्यः अधर्म असदा चाररतः पुनर्यआत्म प्रज्ञहा आत्मां स द्दोध, रूपतया हितां प्रज्ञां हन्तोति गास प्रज्ञहा तत्र बुद्धिहन्ता पुनर्योव्युद्ग्रही भवति विशेषेण उद्ग्रहोदण्डादि प्रहारजनितयुद्धं व्युद्ग्रहस्तस्मिन् रतः तथा पुनः कलहेरागुजे रतः १३ अथिरासणे कुक्कुईए जत्थ तत्थनिसीयई आसणमि अणा उत्ते पाव समणेत्ति वुच्चई १४ पुनर्य अस्थिरासनो भवति अस्थिरं आसनं यस्य स अस्थिरासनः आसनेस्थिरं न तिष्टतीत्यर्थः पुनर्यकौ कुच्यक कौ कुच्यं भण्डचेष्टादि हास्य मुख विकारादिकं तत्करोतीति कौ कुच्यिक भण्डचेष्टाकारी पुनर्यो यत्र तत्र निषीदति स चित्त पृथिव्यां अप्रासुक भूमौतिष्टति पुन आसने अनायुक्तः आसने असावधानः स पाप श्रमण इत्युच्यते १४ स सरक्खपाओ सुयई सिज्जं न पडिलेहई सथारए अणाउत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई १५ पुनः सः पाप श्रमण उच्यते सः कः यः सरजस्कपाद स्वपिति सस्तारकेरजोपगुंठितचरणः अप्रमृज्यैव शेते पुनर्य शिज्यां न प्रतिलेखयति शय्यां वसतिं उपाश्रयं न सम्यक् प्रतिलेखयति न प्रमार्जयति पुनर्यः

सूत्र

रत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई१२॥ अथिरासणे कुक्कुईए जत्थतत्थनिसीयई। आसणं मिअणाउत्ते पावसमणेत्ति वुच्चई१३।

भाषा

स उच्यते ११ विवादं कलह च उदीरयति विवादने उदरेइ कालहने उदेरे अधर्मिष्टः आत्मानो बुद्धिहतिनासयति अधर्मिष्ट पापी आपणी बुद्धिने हणे विग्रहे दंडिप्रहार कलहो वचनादि विवादे रक्तः विगह विषवाद कालहकरे चोटलगाडे कालहरक्त पाप श्रमण स उच्यते १२ अथिरासनः आसणथीरनहीं मुखादिचेष्टा कारक मुखादिकारी चेष्टाकरे यत्र तत्र निषीदति जोहां तोहां बेसे आसणे पीठादी अनायुक्तः असावधान आसनपीठा

सम्तारकं अनायुज्य सम्तारकेनै तत्र पौरुषी अभणित्वा अविधिना असावधानत्वेनशेते स पाप श्रमण उच्यते १५ दुद्धदहीविगइओ आहारेइ अभि रा१ अरए य तवोकम्मे पाव समणेत्ति वुच्चइ १६ यो दुग्धदधिनीविगतो अभीक्ष्ण वार२ आहारयति पुनय तप कर्मणि अरत तप कर्माणि अरति धते स पाप श्रमण उच्यते १६ अत्यन्त मिय सूरमि आहारेय अभिक्खण चोइयोपडिचोएइ पाव समणेत्ति वुच्चइ १७ पुनयं सूर्योऽस्तमिते सति अभीक्ष्ण प्रतिदिन आहारयति आहार करोति पुनयचोदित प्रेरित सन् प्रतिचोदयति केनचित् गीतार्थेन शिक्षित सन् त पुन प्रतिशिक्षयति स पाप श्रमण उच्यते १७ आयरिय परिच्चाइ परपासण्ड सेवइ गाण गणियदुब्भए पाव समणेत्तिवुच्चइ १८ पुनयं आचार्यपरित्यागी आचार्यान् परित्य जतीति आचार्यपरित्यागी आचायाद्धि सरसाहार अपरेभ्योग्लानादिभ्योददति अस्मभ्य ददन्ति तप कुर्व तु इत्यादि गुरुणां दूषण दत्वा पृथक भवति

सूत्र

ससरक्खपाओ सुवइ सेज्ज नपडिलेहइ। सथारए अणाउत्ते पावसमणे त्ति वुच्चई १४॥ दुद्धदही विगईओ आहारेइ अभिक्खण। अरए य तवोकम्मे पावसमणेत्ति वुच्चई १५॥ अत्य तमियसूरमि आहारेइ अभिक्खण चोइओ पडिचो

भाषा

भोजनेविषे असावधान अणपडलेहयायेमे स पाप श्रमण इति उच्यते १३ स चित्त रजोयुक्त पादो स्वपति सचित्तरजस्यु भरया पगेसांये सिज्यां वसति न प्रमाजयति उपाश्रयपडिलेहेनही पू जनहीं सम्तारके अनायुक्त अथ असावधानसथाय सथारानेविषे असावधानरहापडीलेहेनही उपयोगराखेनही ते पाप श्रमण कहीये १४ दुग्ध दधिप्रमुख विकृतय दूध दहि इत्यादिकविगै आहारयति अभीक्ष्ण वार २ आहार करे वारवार तप कर्माणि अरत तपनेविषे रति नही तप न करे ते पापश्रमण उच्यते १५ अस्त गच्छतिसूर्ये अथ मर्तांताह आहारयति अभीक्ष्ण वारवार जिमे वारवार

पुनर्यः परपाषडान् सेवते इति परपाषण्डसेवक परेषु पाषण्डेषु मृद्वीशय्यादि सुखं दृष्ट्वातान् सेवते पुनर्योगाणं गणिको भवति गणात् गणं षण्मासभ्यन्तर एव सङ्क्रामतीति गाणं गणिकोऽत एवदुर्भूतो दुराचारतयानिन्दनीयः इत्यर्थः स पाप श्रमण उच्यते १८ सयङ्गेहं परिचज्ज परगेहं सिवावड़ेनिमित्तेण यव वहरई पावसमणेत्तिवुच्चई १९ यः पुन स्वयं स्वकीयं गृह दीक्षां गृहीत्वा पूर्वं एकान्ततः परस्य अन्यस्य गृहस्थस्य गृहेपरगृहे व्याप्रियते आहारार्थी सन् तत् कार्य्याणि कुरुते पुनर्योनिमित्तेन शुभाशुभ कथनेन व्यवहरति द्रव्यं अर्जयति अथ वा गृहस्थादिनिमित्तं व्यवहरति क्रय विक्रयादिकं कुरुते स पाप श्रमण इत्युच्यते १९ सन्नाइ पिण्डजेमेई निच्छई सामुदाणियं गिहिनिसिज्जञ्च वाहेइ पावसमणेत्ति वुच्चई १० यः पुनः स्वज्ञाति पिण्ड स्वकीय बन्धुभिर्दत्त आहारं भुंक्ते रागपिण्डं भुंक्ते इत्यर्थः पुनर्यः सामुदायिकं समुदायेभवं सामुदायिकं गृहात् गृहात् गृहीतं भैक्ष्यं न इच्छति नवाञ्छति

सूत्र

एइ पावसमणेत्ति वुच्चई १६ ॥ आयरिय परिच्चाई परपासंड सेवए। गाणं गणिए दुब्भुए पावसमणेत्ति वुच्चई १७॥
सयंगेहं परिव्वज्ज परगेहं सिवावडे। निमित्तेणय ववहरई पावसमणेत्ति वुच्चई १८॥ सन्नाइ पिंडंजेमेइ नेच्छई

भाषा

गुरुभि श्रियतस्तानेव प्रतिश्रियति गुरुशीख्यादिधाथकां साहमी गुरुनेसीखदे ते पापश्रमण कहीइ १६ आचार्य परित्यागी आचार्यने छोडीने पर दर्शन शास्त्रे रत सेवाकारकः परदर्शननी सेवाकरे परदर्शननीनां शास्त्रभणे षण्मासमध्ये नव नव गच्छं संक्रामतिछमासमांहिनवानवागच्छमांहिपेसे स पाप श्रमणः इति उच्यते १७ स्वकीयं गृहं परित्यज्य आपणुं घरछांडीने परगृहे पिंडार्थी सन् व्याप्रियतेकृत्यं करोति पराए घरे कामकरे आहारनिमीत्ते निमित्त द्रव्यार्जनार्थं करोति द्रव्योपार्जवाने अर्थे निमित्तप्रकासे स पापश्रमण इत्युच्यते १८ स्वज्ञातपिंडं जीमयति आपणी जातिनाघरथकी आहारलीइ

उ०टीका
अ० १७
४९७

पुनर्यो गृहि निषद्या गृहिणो निषिद्यागृहस्थस्य गृहेगत्वा पल्यङ्कादिक वाहयति आरोहति मञ्चमञ्चिकापीठिकादिषु तिष्टतीत्यर्थं स पाप श्रमण उच्यते २० एयारिसे पञ्चकुसीलसवुडे रूवधरे मुणिपवराणहिट्ठिमे अयसिलोए विसमेवगरहिए नसेइह नेव परं मिलोए २१ एतादृशो रूप धरो मुनिवेषधारी स इह अस्मिन् लोके न तथा परमि परस्मिन् लोकेऽपि न स गृहस्थोऽपि न भवति साधुरपि न भवति उभयतोऽपि भ्रष्ट इत्यर्थ स कोदृश पञ्चकुशील सवृत पञ्चवते कुशीलाय पञ्च कुशीलास्तद्वत् असम्भृतोऽजितेन्द्रिय अत्र प्राकृतत्वादकार लोप अथवा पञ्च कुशीलै सवृत सहित याह्याजिनमते पञ्च कुशीलास्तमध्यवर्त्ती इत्यर्थं ओसन्नोपासत्थो होइ कुसीलोतहेवससत्तो अह छन्दो विषएए अयदणिज्जाजिणमयम्मि १ पाप श्रमणोप्यव दनीय एव पुन कीदृशो मुनि प्रवराणा प्रधान मुनीना मध्ये अध स्थित स पाप श्रमण एतस्मिन्

सामुदाणिय। गिहिनिसेज्जचवाहेइ पावसमणेत्ति वुच्चइ १९॥ एयारिसेपंचकुसील सवुडे रूवधरे मुणिपव

यत्र

राणहिट्ठिमे अयसिलोए विसमेवगरहिए नसेइहनेव परत्थलोए २०॥ जेवज्जए एएसयाओ दोसे समुच्चए होइ

भाषा

सामुदायिकि भिक्षा न वांछति तेघरनी भिक्षा न वांछे घणा घरनी गृहनिषद्या तूलिकादिका सेवते गृहस्थानापल्यङ्क ग्रीय्मपीठि प्रमुखसेवे उपरिबेसे स पापश्रमण इति उच्यते १९ एतादृशा पंचकुशीला पार्श्वस्थादय वेषमात्रधारिका एपाच कुसिलियापासत्थादिक वेसमात्र तेहना धरणहार जसवो पासत्थो२ कुसीलो३ ४ ससत्तो५ अहाछदो एणा च मुनिवेषधरा मुनिवराणा अधस्ताद्वर्त्ती मुनिवरमाहि अधम भूडा अस्मीन् लोके विषयेनिद्यएवस्मात् इहलोकमे पिणे निदकहुईनेव परलोकेगहिंतो भवति न तेहने इहलोक सिद्धि न परलोके सिद्धि २० य वर्जयति एतान् सदापि दोषान् एदोषने जे

लोके विषमिवगर्हितः विषमिव निन्द्यः विषवत् त्याज्यइत्यर्थः २१ जीवज्जए एएस सया ओदो से सेसुव्वए होइ मुणीणमज्झे अय सिलोए अमिय वपूइए आराहए लोगमिणं तहापरित्तिबेमि २१ यः एए इति एतान् दोषान् सर्वदा वर्जयेत् स सुव्रत सुष्टुव्रतानि यस्य स सुव्रतः महोज्वल व्रतधारी सर्व मुनीनां मध्ये एतस्मिन् लोके अमृत इव पूजितो भवेत् सर्वमुनीनां आदरणीयः स्यात् पुनः सुव्रत साधुः अस्मिन् लोके तथा परत परभवेपि आराधकः स्यात् २१ इति पाप श्रमणीयं १७ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मी वल्लभगणि विरचितायां पाप श्रमणीयाख्यं सप्तदशमध्ययनं सम्पूर्णं ॥ १७ ॥ अथाष्टदशं अध्ययनं आरभ्यते ॥ सप्तदशेऽध्ययने पाप स्थानकनिवारणं उक्तं तत्पापस्थानं निवारणं संयमतो भवति स च संयमो हि भोगजयात् ऋद्धेस्त्या गाच भवति स च भोगत्यागः संयतराजर्षिदृष्टान्तेन अष्टादशाध्ययनेन दृढयति इति सप्तदशाष्टा दशयोः सम्बन्ध कम्पिल्लेनयरेरायाउदिणबलवाहणे नामेण सञ्जएनाममिगव्वं उवनिग्गए १ काम्पिल्ये नगरे राजा अभूत् कीदृशः स राजा नाम्ना संयतः इति नाम प्रसिद्धः पुन कीदृशः उदीर्ण बलवाहन उदीर्णं उदयं प्राप्तं बलं येषां तानि उदीर्ण बलानि उदीर्ण बलानि वाहनानि यस्य स

सूत्र मुणीणमज्झे अयंसिलोए अमयंवपूइए आराहए दुहओ लोगमिणंत्तिवेमि॥२१ पावसमणिज्जं सम्मत्तं॥१७ कंपिल्लेनयरे राया उदिण्ण बलवाहणे । नामेण संजएनामं मिगवं उवनिग्गए १ ॥ हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेवय । पाय

भाषा कोइवर्जे स सुव्रत सदाचारोभवति मुनीनां मध्ये तिको साधू मुनीश्वरां मांहेसदाचारइवें तथास्मिन्लोके अमृतमिवय पूजितः इहलोकानेविषे अमृतनी परिपूजोइ इमलोकं परलोकच आराहयति आराहइं इणे प्रकारे इहलोकसाधेइति ब्रवीमितिम२१ इति सतरमः इति सतरमध्ययनंटवार्थस्य संपूर्ण १७ कांपिल्यपुरेनगरे राजाकांपिलपुररम्यमनोहरछे उदयप्राप्त वलचतुरंगसेनासहित उदयप्राप्तछेओछे चतुरंगिणीसेनासहित नाम्नासयतराजासंयतीइस्येनामे

उदीर्ण बलवाहन अथ वा बल चतुरङ्ग गजाश्वरथसुभट रूप वाहन सिविकाविशरि प्रमुख बल च वाहन च बलवाहने उदीर्णे उदय प्राप्ते बलवाहनी यस्य स उदीर्ण बल वाहन स स यतो राजा मृगव्या उपनिर्गत नगरात् आचेटकेगत मृगव्या आचेटक उच्यते १ हयाणीए गयाणीए रहाणी एत हे यय पायत्ताणीए महया सव्वओ परिवारिए २ पुन कोदृश स यतो नृप हयानां अनीक तेन हयानीकेन घोटककटकेन तथा पुनर्गजानीकेन कुञ्ज रकटकेन तथैव रथानीकेन पुनर्महता प्रचुरेण पादात्यनीकेन सर्वत परिवारित सर्व परिवारसहित २ युग्म मिय छुभित्ताहयगओक पिल्लुज्जाणकेसरि भीए सन्ते मिएतत्थ वहेइरससुच्छिए १ स स यतो नृपोहयेगतोऽश्वारूढस्तत्र कांपिल्योद्यानेकेशरिनाम्नि पूर्वं मृगान् क्षिप्त्वा प्रेरयित्वा श्रमेन त्रासयित्वा तान् मृगान् बध्यति कीदृश स यतोरसमूर्च्छित रसलोपा मास्वादानु भवस्तत्रलोलुप कीदृशान् मृगान भीतान् पुन कीदृशान् ग्लानि प्रमान् ३ अह

ताणीए महया सव्वओ परिवारिए २ ॥ मिएछुभित्ता हयगओ कंपिल्लुज्जाणकेसरीभीएसतेमिए तत्थवहेइरससु च्छिए ३ ॥ अहकेसर मिउज्जाणे अणगारे तवोधणे सज्झायज्झाणसजुत्ते धम्मज्झाणज्झियायइ ४ । अप्फोव मण्डव

राजाछे मृगव्या आखेटके निर्गत आहेडाने निमित्ते नीसर्यो१ हयबल हाथोऽश्वकटक गजबल हाथी कटक रथबल रथतथेवच तिमबली पादातनीकेन पायक घणा महतासर्वत परिवारित वेष्टीत सघलेपरिवारे बीव्योथको २ मृगान् क्षोभयित्वा अश्वारूढ मृगानेक्षोभ उपजावे चलावीने घोडेचडोथको कांपिल्योद्याने केसरनाम्नि कांपिल्यनगरने पासे केसरीनामे उद्यान वन थकछे भीतान् स त्रस्तान् मृगान् तत्रउद्यानेतेसयतो राजाइ विहाव्या मृगउ रहा परहादोडेछे इस्या मृगाने मारेछे रसने विषे मूर्छित हुओथको ३ अथ केशरिनाम्नि उद्याने हवे केसरीनाम उद्यानने विषे अणगार साधू भगवत

केसरंमिउज्जाणे अणगारेतवोधणे सज्झायज्झाणसंजुत्ते धम्मज्झाणंज्झियायई४ अथ मृगान् तासमारणोत्पादनानन्तरं केसरि उद्याने अनगार धर्म ध्यान आज्ञाविनयादिकं ध्यायति धर्मध्यानं चिन्तयति कथम्भूतोनगारस्तपोधन. तपएवधनं यस्य स तपोधनः पुनः कीदृशः स्वाध्यायध्यानसंयुक्तः ४ अफ्फोव मंडवंमोज्झायईज्झवियासवे तस्सागएमिएपासं वहेइसे नराहिवे ५ अफ्फोडवमंडवमि इति वृचाद्याकोर्णः अफोव सचासौ मण्डपश्च अफोवमण्डपस्तस्मिन् अफोवमण्डपेमण्डपोहिनागवल्लीद्राचादिभिर्वेष्टिते स्थाने इत्यर्थः तस्मिन् निकुञ्जे लतावेष्टिते सोनगार अप्फोवमण्डपेस्थितो ध्यानंध्यायति धर्मध्यानं चिन्तयति कीदृश सोनगारः चपिताश्रवः चपिता निरुद्धा आश्रवायेन स चपिताश्रवः निरुद्धपापागमनद्वारः अत्र पूर्वगाथा यामपिध्यानं ध्यायति

सूत्र

मीज्झायइज्झ वियासवे। तस्सागएमिए पासंवहेइसे नराहिवे ५। अह आसगओ राया खिप्प मागम्मसो तहिं। हए मिएउपासित्ता अणगारं तत्थपासइ ६। अहराया तत्थसंभंतो अणगारो मणाहओ मएउमंदपुन्नेणं रसगि

भाषा

तपोधन तप तेजधनछे जेहने स्वाध्याय ध्यानसंयुक्तः सज्झायध्यानतिणे करी सहित धर्मध्यान ध्यावेछे ४ अनेक वृचयुक्त मंडपे अनेक वृच एकठा हुआछे तीहांछायाइ साधु वेठाछे ध्यायतो धर्मध्यानं धर्मध्यानध्याइछे साधुकेहवाछे चपिताश्रव आश्रव सर्वरुंध्याछे तस्य पार्श्वे मृगाः आगता ते मंडपने पासे मृग आव्याछे वोहतोदोडेछे सनराधिपः वाधितुं मारयितुं लग्न ते संयतराजा मृगने मारवा लागो ५ अथानंतरं अश्वारुढो राजाहवे राजा घोडे चढ्योथको चिप्रं शीघ्रं आगत्य तस्मिन् मंडपसमीपे उतावलो मडपंसमीप आवीने हतान् मृगान् दृष्ट्वा मार्‍यो मृगपछीछे ते राजादेखीने अणगार तत्र पश्यति वलीतोहां मंडपनेविषे यतीवेठादीठा ६ अथ राजा तत्र संभ्रांतः भीतः देखीने राजा संभ्रातडरयोवीहनो चिंतियति अनगारी मुनिः

टीका ५०१

इत्युक्त पुनरपि यत् उक्त तत् प्रयत्नादरख्यापनार्थं स नराधिप सयती भूप, तस्य धर्मध्यान परायणस्य साधो पार्श्वे आगत मृग हन्ति स ५ अह पासगपो राया गिपनागम्म सोतहि हयमिएउपासित्ता अणगार तत्थ पासइ ६ अथानन्तर अश्वगतो अश्वारूढ स सयतीराजा तत्र तस्मिन् सता मृगेविध्य शीघ्र आगत्यहत मृग दृष्ट्वा तत्र अनगार साधु पश्यति ६ अहराया तत्थ सम्भन्तो अणगारे मणाहओ मएओ मन्द पुण्णे ण रसगिद्धे ण विग्गुणा ७ अथानन्तर तत्र तस्मिन् स्थाने स सयती राजा सम्भ्रान्तो मुनि दर्शनाद्भीत इत्यर्थ मनसि एव चिन्तयतिस्म मया मन्द पुण्येन न्युन भाग्येन अनगार साधुरनाहत अल्पेन आहतो भूत् स्तोकेनटनित इत्यर्थं मया पापेन अय साधुमारित एवा भूत् इत्यर्थं कीदृशेन मया रस गृद्धेन मासा स्वादनोलुपेन पुन कीदृशेन मया घेत्तुणा घातुकेन जीवहन न शीलेन ७ आसविसज्जइत्ताण अणगारस्स सोनिवो विण एण वन्दए पाए भगव इत्यमे गमे ८ स नृप अनगारस्य विनयेन पादौ वदते कि कृत्वा अश्व विसर्ज्य इति वाक्यालकारे घोटकन्यक्त्वा पुन स नृप इति वक्ति हे भगवन् इत्य इति मत्र मृग वधे मे पराध क्षमस्व अपराधमिति पद अध्याहार्य ८ अहमोणेण सो भयवअणगारेज्झाणमस्सिए रायाण न पडि मन्तेइ तओराया भयद्दुओ ९

घेत्तुणा ७॥ आस विसज्जइत्ताण अणगारस्स सोनिवो। विणएणवन्दए पाए भयव इत्थमेखमे ८ ॥अहमोणेणसोभ

भाषा — मनाक स्तोकमात्र हत राजामनमाहि चितवेछे इमिएमृगमाख्या महीपति थोडे मयामद पुन्येनमेमदपुन्यने धणीइ रसगृद्धेनघातकेन रस नामने विषे गृद्धछे जीवनेमारछु ७ अश्व विसर्य त्यक्ता घोडायको उतरीने अनगारस्य समीपे स नृप आगत्य ते सयतराजायतो नेपासे आवीने विनयेन पादौ वदंयति विनयकरी राजायतीनापगवादे हे भगवन् मेमम अपराध क्षम [illegible] भगवन् माहरो अपराध खमो ८ अथानतर मौनेन युक्त

अथ राज्ञा मुनेश्वरस्य वन्दना कृता ततो नन्तर स भगवान् ज्ञानाति अथ युक्तो नगार साधुर्मौनेन ध्यानं आश्रित· सन् पिण्डस्य पदस्य रूपस्थ रूपातीता दिकं ध्यायन् अथ वा धर्मध्यानं आश्रित सन् राजानं संयत भूपं प्रति न निमंत्रयति न जल्पयति ततस्तस्मात्कारणात् मुनेरभाषणात् राजा भय द्रुतो भयभ्रान्तो भूत् इति वक्ति च ९ सञ्जओ अहमस्सीति भयवं वाहराहिमे कुद्धे तेएण अणगारे डहेज्जनरकोडिए १० किं वक्ति तदाह राजामनसि एवं जानातिस्म अयं साधुर्मौनी चांज्ञाला किञ्चिद्विरूप त्वरितं मा कुर्यात् तस्मात् स्वकीयं नृपत्वं स्व नाम सहितं अवादीत् इति भाव हे भगवन् अह संयतो राजास्मि इति हेतो हे भगवन् मेव्याहरमाज्ञल्पय हे स्वामिन् भवादृशः साधु क्रुद्धः सन् तेजसा तेजो लेश्यादिनानरकोटिन्दहेत् तस्मात् स्वामिना क्रोधो न विधेय १० अभयं पत्थि वा तुज्झं अभयदाया भवाहिय अणिच्चेजीवलोगं मिकिं हि साएपसज्जसि ११ तदा मुनि राह हे पार्थिव हे राजन्

यवं अणगारेज्झाणामस्सिए। रायाणं नपडिमंतेद्दूतओराया भयद्दुए ९॥ संजओ अहमस्सीति भयवं वाहराहिमे।
कुद्धे तेएण अणगारे डहेज्ज नरकोडीओ १०॥ अभयं पत्थिवातुज्झं अभयदाया भवाहिय। अणिच्चे जीवलोगंमि

सन् स भगवान् हवेते साधूमौनकरीवेठाछे अणगारो ध्यांनमाश्रित· स्थित: साधूध्यांनध्यायछे ध्यांनमांहिं वर्त्तेछे राजानंनप्रतिमंतयति तिणिवारणै राजाने वोलाव्यो नहीं ततो राजा भयद्रुतभयभीतोजात तिवारेराजा भयभ्रांत हुओ ९ सयतोनामा अहमस्मि संयतनामे राजाहुंछु अनेरोनथी हे भगवन् आलापय मांव्याहरमुझने वोलावो मुझस्युवातकरो कुपित: सन्तेजसा अणगारकोप्योथको यतीतेजे करीनेदहेन्नर कोटी: मनुष्यनीकोडिने वाले १० नृपि त्वाच:अभयदानभोपार्थिव तुभ्यं भो राजा तुझने अभयदानछे अभयदाता भवभवानपिजिममेतुझनेअभयदानदीधुतिमतुं सर्वजीवने प्रभयदानदे अनित्ये

तुभ्य अभय भय मा भवतु त्वमपि अभय दाता भवाहि इति भव च इति पाद पूरणे जीवाना अभयदान देहि जीवानां हिंसा माकुरु इत्यर्थं हे राजन् अनित्ये जीवलोके समारे किं इति किमर्थं हिंसाया प्रसज्जसि प्रकर्षेण सक्तो भवति जीवलोकस्य अनित्यत्वेत्वमपि अनित्योसि किमर्थं प्राणि वध करोषि इत्यर्थं ११ यथा सव्व परिचज्ज गन्तव्वमवसस्सते अणिच्चे जीवलोगमि कि रज्ज मिपसज्जसी १२ हे राजन् यदा सर्वं अन्न पुरादिक कोष्टागार भण्डागारादिक परित्यज्यते तव परलोके गन्तव्य वर्त्तते कथ भूतस्य ते अवशस्य परवशस्य मरण समये जीवोजानाति न म्रियते पर किं करोति जीव परवश सन् स्वेच्छाविना एव जीवो म्रियते यदुक्त सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीवियोनमरिज्जिओ तेन हे नृप तव सर्वं परित्यज्यमस्त्यमस्ति तदा अनित्ये जीवलोके अनित्ये ससारे किं राज्ये प्रसज्जसि प्रसक्त करोषि रक्तो भवति १२ जीविय चेव रूवच विज्जु सम्पायचचल जत्यत मुज्झसीराय पिचत्य ना

पिंहिसाए पसज्जसी ११ ॥ जयासव्व परिच्चज्ज ग तव्व मवसस्सते । अणिच्चे जीवलोग मि किरज्ज मि पसज्जसी १२
जीवियचे वरूवच विज्जुसपायचवल जत्यत मुज्झसीराय पेच्चत्य नावबुज्झसे १३ ॥ दाराणिय सुयाचेव मित्ताय तह

जीवलोके अनित्यछे जीवलोक मनुष्य पण कय हिंसयासक्तो भवसि कांहिसाने विषे आसक्तथाइछे ११ रे राजन् यस्मात् सवपरित्यज्यजिणि कारणे सर्वने छांडीने गतव्य अवश्यते ताराने अवश्य परलोक जावु छे अनित्ये जीवलोकेअनित्य जीवलोक मनुष्य पणु किं राज्ये प्रसज्जसि अहो राजाराज्य राज्यने विषे आसक्तथयो छे १२ हे राजन् जीवितव्य रूपच अहो राजाएयाउखुने रूप विद्युत पात वत चलवर्त्तते वीजलीनोझबकारते सरिखु चचलछे यवतं मुह्यसे हे राजन् हे राजा एह जीवितव्यने विषे तू मोहपामेछे मूर्छाइछे परलोकार्थं त्व न जानासि परलोकार्थ तु कांइ समझतु नथी १३

ववुज्झसि १३ हे राजन् जोवितं आयुः च पुनः रूप शरीरस्य सौन्दर्यं विद्युत्सम्पातचञ्चलं वर्त्तते विद्युतः सम्पातश्चलनं तद्वत् चञ्चलं वर्त्तते हे राजन् यत्र यस्मिन् आयुषि रूपे चलं मुह्यसे मोहं प्राप्नोषि प्रेत्यार्थं परलोकार्थं नावबुध्यसे न जानासि १३ दाराणि य सुया चेव मित्ताय तहबन्ध वा जीवं तमणु जोवन्ति मय नाणुव्वयन्ति य १४ हे राजन् दाराः स्त्रिय च पुनः सुताः आत्मजाः पुनर्मित्राणि तथा बान्धवाः ज्ञातयो भ्रातृ प्रमुखा एते सर्वेपि. जीवन्तं मनुष्यं अनुजीवन्ति जीवतो धनवतः पुरुषस्य पृष्टे उदर पूर्त्तिं कुर्व्वन्ति तस्य द्रव्यं भुञ्जन्ति इत्यर्थं परं तं पुरुषं मृतं न अनुव्रजन्ति मृतस्य तस्य पुरुषस्य पृष्टेकोपिन व्रजन्तीत्यर्थं तदा अन्यद्गृहादिकं किं पुनं सहयास्यतीति अतः कृतघ्नेषु आदरो न विधेयः तस्मात्परिकरेकोरागः कर्त्तव्यः१४ नीहरन्ति मुयं पुत्तापि यरं परमदुक्खियापि यरोवितहा पुत्तो बन्धूरायातवं चरे १५ हे राजन् पुत्रा मृतं पितरं नीहरन्ति गृहान्निः कासयन्ति कीदृशाः

सूत्र

बंधवा। जीवंत मणुजीवंति मयंनाणुव्वयंतिय १४ ॥ नीहरंति मयंपुत्ता पियरं परमदुक्खिया। पियरोवि तहा पुत्ते बंधूरायं तवंचरे १५ ॥ तओतेणज्जिएदव्वेदारेय परिरक्खिए कीलंतन्नेनरारायं हट्ठतुट्ठ मलंकिआ १६ ॥ तेणा

भाषा

स्त्रीयःस्त्री सुता पुनः पुत्रतिमः मीत्राणि तथा बांधवाः मित्र तथा भाई तदुपार्जितं वित्ताद्युपभोगं अनुगच्छंति जीविते जीवतांथकां पुठे लागि सेवाकरे मृतेनानुगच्छंति साडं पणिमूयापछी सांथे कोइ नजाइ १४ निष्कासयंति मृतं पुत्राः पिताभरे तिवारे पुत्र कहे वेगोकाढो पितरं परमदुक्खिता पिताने परमदूक्खियथका पितरोऽपि तथापुत्रान् निष्कासयति पितापणि पुत्रने काढी मूआने बांधवा बंधून् भो राजन् तस्मात्तपश्चर भाइ भाईने काढे तिणि कारणी राजा तप करि १५ ततो मरणानंतरंतेनार्ज्जितनद्रव्ये ण तिवारे पछी पुत्र ते तात नो उपायो द्रव्य दारेषु च परिरक्षितेषु अने स्त्रीभली परिराखी

पुत्रा परम दु खिता अत्यन्त शोकार्दिता पितरोपि जनका अपि तथा तेन प्रकारेण पुत्रान मृतान् नि कासयन्ति एव बान्धवा बान्धवान् मृतान् नि कासयन्ति तस्मात् एव ज्ञात्वा हे राजन तपश्चरेत् तप कुरु इत्यर्थ १५ तओतेणज्जिएदव्वे दारेय परिरक्खिए कील तन्नेनराराय हट्ट तुट्ठ मल किया १६ ततो नि सरणानन्तर ते नेव पित्रायर्जितधनेन च पुनर्दारेषु स्त्रीषु हे राजन अन्ये नरा क्रीडन्ति स्वामिनिमृते सति तस्य धने तस्य स्त्रीषु च अपरे मनुष्या हृष्ट तुष्ट यथास्यात्तथाहर्षिता सन्तुष्टा सन्त अलङ्कृता अलङ्कारयुक्ता सन्तय क्रीडा कुर्वन्ति कथ भूते धने परिरक्षिते समस्त प्रकारेण चौराग्नि प्रमुखेभ्य रक्षिते यावत् स जोवति तावत् धनस्य स्त्रीणाञ्च रक्षा कुरुते मृते सति अन्ये भुञ्जन्ति धन स्त्री प्रमुखा पदार्थास्तत्रैव तिष्ठन्ति न च सार्धं समागच्छन्ति कोर्थ वराकोजन दु खेन द्रव्य उत्पाद्य यत्नेन रक्षति दारा अपि जोवितव्य मिवरक्षति अलङ्कारैर्नवैर जयति तस्मिन् मृते सति ते नैव वित्तेन तैरेवदारैश्च अन्ये हृष्टा शरीरे पुलकादिमन्त तुष्टा आन्तर प्रीतिभाजोलङ्कृता विभूषिता सन्तोरमन्ते यत इदृशी भव स्थितिरस्ति ततो हे राजन् तपश्चरेत् तप कुर्यादिति स वध १६ तेणा विज कय कम्म सुह वाज इवा दुह कम्मुणातेण सञ्जुत्तो गच्छइ उपर भव १७ तेनापि मरणोन्मुखेन जोवेन यत् शुभ कर्म अथ वाऽशुभ कर्म कृत भवेत सुख दुःख वा उपार्जित स्यात् तेन शुभाशुभ लक्षणेन कर्मणा स युक्त सन् स जोव पर भव गच्छति एतावता जोवस्य सार्धं अन्यत् कि मपि नायाति स्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म सार्धं समागच्छति १७ सोऊण तस्सो धम्म अणगारस्स अन्तिए महया

सूत्र विज कयकम्म सुहवाजइवादुह। कम्म णातेण सजुत्तो गच्छइओ परभव १७॥ सोऊण तस्सोधम्म अणगारस्स

भाषा इतो भो राजन् अन्ये नरा क्रीडति भु जतिते द्रव्य अने स्त्री तेहने बीजा पुरुष भोगवे हृष्टा तुष्टा अलङ्कृता हर्षितअथवा सतोष पामें भलालूगडा घरणापहरे १६ येनापि यत्कृत कर्मजीवे जीवे जे कर्मकीधाछे शुभ अथवा अशुभ भलु अथवा भ डु कर्मतेनेव युक्त तेजकर्म साथे गच्छति परभव

सम्वेयनिव्वेयं समावन्नो नराहिवो १८ स सयती राजा महयाइति महासम्वेगं निर्वेदं समापन्नः सम्वेगश्च निर्वेदश्च सम्वेगनिर्वेदं सम्वेगोमोचाभिलाषः निर्वेद संसारादुद्विग्नता स राजा उभयं प्राप्त इत्यर्थः किं छत्वा तस्य अनगारस्य साधो अन्तिके समीपे धर्मं श्रुत्वा १८ सज्जओ चइउं रज्जं निक्खन्तोजिणसासणे गद्दभालिस्सभगवओ अणगारस्स अन्तिए १९ संयती राजा गर्दभालि नाम्नोऽनगारस्य अन्तिके समीपे जिनशासनेवीतराग धर्मे निःक्रान्त समागतः संसाराद्‌दूराच्चनि सृत जैनीं दीक्षामाश्रितः किं छत्वा राज्यन्त्यक्त्वा १९ चिच्चारज्ज पव्वइओ खत्तिओ परिभासई जहातेदीसई रूवं पसन्नं ते महामणी २० अत्र वृद्ध संप्रदायो अयमस्ति स संयतराजर्षिर्गर्दभालिनामाचार्यस्य शिष्योजात पश्चाद्गीतार्थोजातः समस्त साध्वाचारवि

स्रूत

अंतिए। महया संवेग निव्वेयं समावन्नो नराहिवो १८॥ संजओ चइओरज्जं निक्खंतो जिणसासणे। गद्दभालिस्स भगवओ अणगारस्स अंतिए १९॥ चिच्चारज्जंपव्वइए खत्तिए परिभासई। जहाते दीसईरूवं पसन्नंते तहामणो २०

भाषा

जीवः ते जीव परलोकने विषे जाइ १७ श्रुत्वा तस्य साधो· वचनं गर्दभिल्ल आचार्यना वचन सांभलीनेअणगारस्य समीपेतेयतीपासे धर्म सांभलीनेमहता संवेगेन निर्वेदंभवोद्विग्नना मोचेच्छा घणोसंवेग उपनो संसारथी उभगो रूपं समापन्नः संप्राप्तः नराधिपः मोचनी इच्छाहुई राजाने १८ संयती राजा राज्यंत्यक्त्वा संयतीराजा राज्यछोडीनेनिःक्रान्तः चारित्रंप्रपन्न जिनशासने चारित्रलीधो जिनशासननेविषे गर्दभालि भगवंतः गर्दभालि भगवंतने अनगारस्य समीपे साधू समीपे १९ त्यक्त्वादेशादिकां प्रवज्यांच गृहीत्वा किंचित्नगरेगतः तत्र क्षत्रियः सुरभवात् मनुष्य भवे समागत्य सच पूर्व भवस्मृत्वा प्रवजितः स ऋषिः संयतस्य मिलित ततस्वरूपमाहः यथा न च दृश्यते रूपं विकाररहितं क्षत्रिय राजऋषि संयतीने पूछेछे जेहवुं ताहरु रूपदीसेछे

चारदत्तो गुरारादेशेन एकाकी विहरन् एकस्मिन् ग्रामे एकदा समागतोस्ति तव ग्रामे चत्रियराजर्षिमिलित स चत्रिय साधु सयत मुनि प्रतिभाषते वदति पर स चत्रिय मुनि कोदृशोस्ति सहि पूर्वजन्मनि वैमानिक आसीत् ततश्युत्वा एकस्मिन् चत्रिय कुले समुत्पन्न तत्र कुतश्चित्तथा विधनिमित्त दर्शनादुत्पन्न जाति स्मृतिस्तस्य समुत्पन्न वैराग्यो राज्यन्त्यक्त्वा प्रव्रजित सचचत्रियराजर्षिर निर्दिष्टनामाधचत्रिय जाति विशिष्टत्वात् चत्रिय मुनिर्जाति स्मृति ज्ञानवान् स स यत मुनि दृष्ट्वा परिभाषते स यतस्य ज्ञानपरीक्षा कर्त्तु सयत मुनि मित्यधयाहार कि परि भाषते तदाह हे साधो यथा येन प्रकारेण ते तव रूप बाह्याकार दृश्यते तथा तेन प्रकारेण तव मन प्रसन्न विकार रहित वर्त्तते अन्त कालुष्ये हि एव प्रसन्नताऽसम्भवात् २० पुन कि परिभाषते इत्याह कि नामे कि गुत्ते कस्सट्ठा एव माहणे कह पडियरसी बुद्धे कह विणीयत्ति वुच्चसि २१ हे साधो तव कि नाम तव कि गोत्र पुनकस्मैऽर्थाय इति कस्मै अर्थाय या त्व माहन प्रव्रजितोसि हे साधो त्व बुद्धान कथ प्रति चरसि त्व आचार्यान केन प्रकारेण सेवसे पुन हे साधो त्व कथ विनीत इत्युच्यसे अह त्वा पृच्छामि २१ सज्जओ नाम नामेण तहा गुत्तेण गोयमो गद्दभाली ममा यरिया विज्जाचरण पारगा २२ अथ चत्रिय साधो प्रश्नानतर सयत साधु रुवाच हे साधो अह सयत इति नाम्ना अभिधानेन नाम प्रसिद्धोऽस्ति तथा पुनरह गोत्रेण गौतमोस्ति मम आचार्या

सूत्र

किंनामे किंगुत्ते कस्सट्ठाएवमाहणे । कहपडियरसीबुद्धे कह विणीएत्ति वुच्चसि २१ ॥ सजओ नामनामेण तहा

भाषा

तथा ते विकाररहित मन वर्त्तते तेहवोताहरो विकाररहित मनवर्त्ते छे २० किनामा किगोत्र ताहरु नामस्यु छे ताहरुगोत्रस्यु छे कस्मै अर्थायसा हणो मुनि जात तु किस्ये अर्थे जतीछओछेकथकेन प्रकारेण प्रतिचरसी बुद्धे आचार्यादिकनी सेवाकिमकरे कथविनीत इत्युच्यते कोणप्रकारि वीनीत कहीइ २१ सयत प्राह अहनाम्ना सयत स यती कहीके सयतीमाहरोनाम तथागोत्रेण गौत्तम गौतमगोत्र गर्दभालिनामानो मम आचार्या

गुरवोगर्दभालिनाम कोदृशा मम गुरव· विद्याचरण पारगा विद्या च चरणं च विद्याचरणे तयो पारगाः विद्याचरण पारगाः विद्याः श्रुतज्ञानं चरणं चारित्रं तयोः पारगामिनः अयं आशयः अहंतैर्गर्दभालि नामाचार्यैं जीवघातान्निवर्त्तित स्तन्निवृत्तौ मुक्तिफलं उक्तश्च ततस्तदर्थं माहनोस्मि यथा तदुपदेशं गुरून् प्रतिचरामि तदुपदेश सेवनाच्च विनीतोस्मि इतिभावः अथ तद्गुण बहुमानतोऽपृष्टोपि क्षत्रियमुनिराह २२ किरियं अकिरियं २ विनयं ३ अन्नाणञ्च ४ महामुणी एएहिं चउहिंठाणेहिं मेयन्ने किंप भासइ २३ हे संयत महामुने एतैश्चतुर्भिः स्थानैर्मिथ्यात्वाधार भूतैर्हेतुभिः इत्वा मेयज्ञाः किं प्रभाषंते मेयं जीवादिवस्तुजानंतीति मेयज्ञा पदार्थज्ञाः कुतीर्थ्यावादिन· कुत्सितं प्रजल्पन्ते एतावता एतैश्चतुर्भि हेतुभिर्मिथ्यात्विनः सर्वेत्रि षष्ठ्युत्तर त्रिशतभेदाः पाषण्डिनो यथावस्थित तत्वं अज्ञानाना यथा तथा प्रलापिन सन्तितत्वया ज्ञातव्याः तानिकानि चत्वारिस्थानानि क्रिया

सूत्र

गोत्तेण गोयमो गद्दभाली मसायरियाविज्जा चरण पारगा २२ ॥ किरियं २ अकिरियं २ विणयं ३ अन्नाणंच महा · मुणी एएहिं चउहिंठाणे हिंमेयन्ने किंपभासई२३॥ इइपाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए। विज्जाचरण संपन्ने सच्चेसच्च

भाषा

गर्दभालिनामें आचार्य माहरो गुरुछे विद्याचारित्रपारगामिनः विद्याअने चारित्रपारगामीछे २२ अथ अपृष्टोपि क्षत्रीआह क्रियावादी १ अक्रियावादी २ विनयवादी ३ अज्ञानवादी ४ पुनः महामुने एतैः चतुर्भिस्थानैः तत्ववेत्ता एचिहुं स्थानके जे मुक्ति कहे ते झूठ मृषावाद वोले कुत्सित· भाष्य ते मिथ्याभाषिणीत्यर्थः २३ इति प्रादुरकार्षीत् प्रकटीकृत ज्ञात तत्वं सन् तत्वनेजाणे श्रीमहावीरे इमकह्यो ज्ञातक मोचं गतः ज्ञातकुलनो उपनोमोक्षगयो तथा विद्याचरणाभ्यां संपन्नः सहित विद्या अनेचारित्र तिणेकरीसहित ज्ञानछे सत्यवोले सत्य पराक्रमः सांचोछे जेहने पराक्रम २४

टीका प०१८ ५०८

जीवादिसत्ताकथा १ पथात् अक्रियाजीवादिपदार्थानां अक्रियानास्तित्वरूपा २ विनय सर्वेभ्यो नमस्कारकरण ३ अज्ञान सर्वेषां पदार्थानां अभ्य ४ एतेहि एकान्तवादित्वेन मिथ्यात्विनोज्ञेया कुत्सितभाषणहिएतेषां विचारस्य असहत्वात् यतोहि सर्वथा सर्वत्र सत्ताया सत्वात् सर्वत्रजीव स्यात् अजी वेपि जीव बुद्धि स्यात् १ पुनर्नास्तित्वे आत्मनो नास्तित्वेऽस्य प्रमाणबाधितत्वात् च जीवाजीवयो रुभयोरपि साद्दश्य नास्तित्व स्यात् २ सर्वत्र विनये क्रियमाणे निर्गुणे विनयस्य अशुभफलत्वात् विनयोपिस्थाने एव कृत फलद तस्मात् एकान्त विनयोपि न श्रेष्ट ३ अज्ञान हि मुक्तिसाधने कारण नास्ति मुक्तेर्ज्ञान स्यैवकारणत्वात् हेयोपादेय पदार्थयोरपि ज्ञानेनैव साध्यत्वात् ज्ञान विनाहितमपि न जानाति तस्मात् अज्ञानमपि न श्रेष्ट ४ तस्मात् क्रियावादिन १ अक्रियावादिन २ विनयवादिन ३ अज्ञानवादिन ४ सर्वेप्येते एकान्तवादिनो मिथ्यात्विन कुतीर्थिन कुत्सितभाषिणोज्ञेया एतेषां पाषण्डिनां सर्वेभेदा ३६ ३ त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशती प्रमिताभवन्ति तत्र क्रियावादिनां १८० अक्रियावादिनां ८४ विनयवादिना ३२ अज्ञानवा दिनां ६७ कुत्सितभाषित हि नचै तत् स्वाभिप्रायेण किंतु भगवद्वचसा एतेषां कुत्सितभाषित्व तदाह १३ इइपाउ करेबुद्धे नायए परिनिव्वुए विज्जा चरण संपन्ने सच्चे सच्च परिक्कमे २४ इत्येते क्रियवादिन कुत्सित प्रभाषन्ते इत्येव रूप वचन बुद्धोज्ञाततत्वोज्ञापक श्रीमहावीर प्रादु २ करोत् प्रकटी चकार कोद्दशोज्ञातक परिनिर्वृत कषाया भावात् परिसमन्तात्शीती भूत पुन कोद्दशोज्ञातक विद्याचरणसंपन्न विद्याशब्देन क्षायकोत्तमज्ञान चरण यथाख्यात चारित्र ताभ्यां संपन्न सहित पुन कीदृश सत्यवचनवादी पुन कोद्दश सत्यपराक्रम सत्यवीर्यसहित २४ तेषा फलमाह पडति

मूल

परक्कमे २४ ॥ पडति नरएघोरे जेनरा पावकारिणो दिव्वंच गय गच्छ ति चरित्ता धम्ममारिय २५ ॥ माया बुइय

भाषा

पतति नरके घोरे पडे घोरनरकने विषे ये नरा पापकारिण जे मनुष्य पापनाकरणहारछे दिव्य प्रधानगति गच्छति देवता सबधिनी गतिने विषे

नरएघोरे जेनरा पावकारिणो दिव्वं च गइगच्छन्ति चरित्ता धम्ममारियं २५ पुनः चत्रिय मुनिर्वदति हे महामुने ये पापकारिणोनरा पापं असत्प्ररूपणं कुर्वन्तीति इत्येवं शीलाः पापकारिणो ये नरा भवन्ति ते नरा घोरे भीषणे नरकेपतंति च पुनधर्मं सत्प्ररूपणारूपञ्चरित्ता आराध्य दिव्यं दिवः सम्बन्धिनी उत्तमांगतिं गच्छन्ति कथंभूतं धर्म्मं आरियं आर्यं वीतरागोक्तं इत्यर्थं अतपापं असत्यवचनं ज्ञेयं धर्मं सत्यवचनं ज्ञेयं एवंज्ञात्वा भोसंयत भवता सत्यप्ररूपणापरेणैव भाव्य मित्यर्थः २५ कथमपि पापकारिण इत्याह माया वुइयमेयंतु मुसाभासा निरत्थिया संजममाणोवि अहं वसामि इरियामिय २६ एतत्क्रियाऽक्रिया विजय अज्ञानवादिनां मायोक्तं मायया कपटेन उक्तं मायोक्तं शाठ्योक्तं ज्ञेयं एते सर्वेपि कपटेन मृषाभाषन्ते इत्यर्थः एतेषां क्रियावादिनान्तु तस्मात्कारणात् मृषाभाषां असत्याभाषा निरर्थका सत्यार्थ रहिता अपि निश्चयेन तेनैवकारणेन हे साधो संयच्छन् पापात् निवर्त्तितः सन् तेषां पाषण्डिनां असत्प्ररूपणातो निवर्त्तितः सन् अहं वसामि निरवद्योपाश्रयादौ तिष्टामि अत्राहं पाषण्डिनां वाक्यरूपपापात् निवृत्तः तिष्टामि इत्युक्तं तत् तस्य स्थिरीकरणार्थं यथाहं असत्प्ररूपणात् निवृत्तस्तथा त्वयापि निवर्त्तितव्यमित्यर्थः यत साधुः स्वयंसाधुमार्गेस्थित अपरं अपि साधुमार्गेस्थापयति च पुन हे साधो अहं इरियामि इरे ईर्यया गच्छामि गोचर्यादौ भ्रमामि २६ सव्वेते वेइयामज्झं मिच्छादिठी अणारिया

मेयंतु मुसा भासा निरत्थिया। संजममाणोवि अहं वसामि इरियामिय ॥ २६ ॥ सव्वेते वेइया मज्झं मिच्छदिट्ठी

जाये ज्ञात्वा आर्यधर्म्म उत्तम प्रधान धर्म्म करीने २५ वचन मेतत् क्रिया वादिनां एवचन क्रियावादीनुं मिथ्यावादीबोले मृषा भाषा निरर्थका. प्रयोजना एभृठोभाषा निरर्थक तेथ्थी निवर्त्तमानोहते क्रियावादीथको अलगोरह्योहतु भुटथकीनि वर्तेहुं त्ये छतो वसामि उपाश्रये इरियामिविचरामि उपाश्रयमांहिरहुंछुं विचरुंछु २६ ते सर्वे क्रियावादीनो ममविदिताः यथा अमीं चत्रिय साधु कहे संयतीने एक्रियावादी सर्वमे जाण्याछे मिथ्या

उ०टीका
अ०१८
५११

विद्यमाने परलोए मध्य जाणामि अप्पय १ ७ हे माधो ते मयपि क्रिया अक्रिया विनया ज्ञानवादिन चत्वारोपि पाषण्डिनो मया विदिताज्ञाता एतेचत्वा रोपि मिथ्या दृष्टयो मिथ्यादर्शन युक्ता पुन एते चत्वारोपि अनार्या अनार्यकर्म कर्त्तार सम्यग मार्ग विलम्बका मया एतेषा दृशा सन्ति तादृशा ज्ञाता पुनर्जन्मने परलोके विद्यमाने सम्यक प्रकारेण अप्यह आत्मान स्वस्य परस्य च जानामि आत्मापर लोकात् आगत ततोह पर लोक आत्मान च सम्यक जानामि ते कुतीर्थिनोपि सम्यग् ज्ञातास्तेन कुतीर्थिनां सङ्ग न करोमि कथ जानामीत्याह अहमासि महापाणेऊ इम वरिस सओवमो जासापाली महापालो दिव्यावरि म सओवमा १८ हे मुने अह महाप्राणे विमाने पञ्चमे ब्रह्म लोके देव आस कथ भूत अह द्युति मान् द्युति विद्यते यस्य सद्युति मान् तेजस्वो पुन कथ भूतोह वषशतोपम वषशत जीविन पुरुषस्यो पमायस्या सौवर्षं शतोपम कोर्थं यथा इह वर्ष शतजीवी इदानीं परिपूर्णायु

मूल

अणारिया । विज्जमाणे परेलोए । सम्म जाणामि अप्पय ॥ २७ ॥ अह मासि महापाणे जुइम वरिस सओवमे ।
जा सा पाली महापाली दिव्वा वरिस सओवमा ॥ २८ ॥ सेचुए बभलोयाओ माणुस्स भव मागओ । अप्पणोय

भाषा

इहरी धनाया मिथ्यातो धनायते पुर म परलोक नथी जाणे जीवमहजेइ पे दाहोयछे विद्यामाने परलोके परलोक विद्यमानछे सम्यक आत्मान जानामि पा मानेतणिभलोपरिजाणु छु २७ अह बभूव ब्रह्म देवलोकेषु [illegible] देवलोकनेविषेहुओ द्युतिमान् वर्षशतोपमे महांकांतिनोधणीं वर्षसोनीं उपमाइ या मापचोपमा पल्योपम सागरोपमादि महापालो सागरोपम देवसबधिनो वषशतोपमा देवता सबधिनीं सोवरसनी उपमा २८ च्यु तो ब्रह्मलोकात् ब्रह्म देवलोकथो च योने मानुष भवमागत मनुष्यने भविआव्यो आत्मानष परेषा आपणो अने बीजानो आयुर्जानामि यथा भवति तथा

पालिर्महापालिश्चसादिव्या स्थिति मैं अभूत् इति शेष· पालि शब्दस्य कोर्थः पालिरिव पालि रुच्यते तयाहं तत्र विमाने परिपूर्णायुरभूवं तत्र च या पालिर्महापालिश्चसादिव्या स्थिति मैं अभूत् ... जीवित जल धारणात् पालि शब्देन भव स्थितिः कथ्यते सा चेह पल्योपम प्रमाणा महापाली सागरोपम प्रमाणस्थिति· कथ्यते दिवि भवादिव्यादेव भव सम्बन्धिनो स्थितिरित्यर्थः कथम्भूतापालिर्महापालिश्च वर्षसतोपमा वर्षशते केशोद्धारहेतु भिरुपमीयते या सा वर्षशतोपमाद्विविधापिदिव्या भवस्थिति स्तत्रास्तिपरं मे महापालोदिव्या भवस्थिति रासीदिति आम्नायः दशसागरायुरहमासमित्यर्थं १८ सेचुओ बम्भलोगाओ माणुस्सं भवमागओ अप्पणोयपरे सिंच आउं जाणे जहातहा १९ से इति सोहं इत्यध्याहारः सोहं ब्रह्मलोकात्पञ्च मदेवलोकात् चुतः सन् मानुष्यं भवं नरसम्बन्धि जन्मसमागतः आत्मनः च पुनः परेषां च यथा तथा आयुर्जीवितं वर्त्तते तथा जानामि यस्य मानवस्य येन प्रकारेण आयुरस्ति तस्य तेन प्रकारेण सर्वं जानामि परं विपरीतं न जानामि सत्यं जानामि १९ नाणारुइं च छन्दन्नु परिवज्जेज्जसञ्जए अणट्ठाजेय सव्वट्ठा इइ विज्जामणु सञ्चरे ३० हे मुने संयतः साधुनानारुचि क्रिया वाद्यादि मत विषयमभिलाषं परिवर्जयेत् च पुनः छन्दः स्वमति कल्पिताभि प्रायं नानाविधं परिवर्जयेत् च पुनर्ये अनर्थाः अनर्थ हे तवोये सर्वार्थाः अशेष हिं सादयो गम्य त्वात्तान् परिवर्जयेदिति सम्बन्धः इत्येव रूपां विद्यां सम्यग्ज्ञान रूपां अनुलक्षी कृत्य सञ्चरे स्त्वं संयमा ध्वनियायाः अहमपि इति विद्यां ज्ञानं ज्ञात्वा अङ्गीकृत्य संयम मार्गेया मीति त्वयापि तथैव संचरितव्य मिति हार्दम् ३०

सूत्र — परेसिंच आउं जाणे जहा तहा ॥ २९ ॥ नाणारुइं च छंदं च परिवज्जेज्ज संजए। अणट्ठा जेय सव्वत्था। इइ

भाषा — जिमआउखुं छेतिम जाणुं छुं २९ च्छत्रिय मुनिरुवाच पुनः नानारुच्यं च परतीर्थिकानां अभिलाप अभिप्रायं परिवर्ज्जयेत् स्वेच्छापणं साधुवर्ज्जे अनर्थं हेतुत्वात् ये च हिंसादय अनर्थनां कारणछे इत्येव रूपाविद्याः परित्यज्य अनुचरेत् साधुः ते सर्वछांडीने तपकरुंछुं अहोसंयतसाधु ३० निर्वर्त्ते हुं

उ०टीका
भ०१८
५१२

पडिक्कमामि पसिणाण परमन्तेहि वा पुणो अहो उट्ठिओ अहोरायम् इइ विज्जातवचरे ३१ पुन स्वाचार यत्ति हे मुने अह पसिणाणम इति प्राकृतत्वात् विभक्तिव्यत्यय प्रश्नेभ्य शुभाशुभ सूचकाङ्गुष्टादि पृच्छाभ्य प्रति क्रमामि पराङमुखोभवामि वा अथवा पुन परमन्त्रेभ्य प्रतिक्रमामि] प्रतिनिवर्त्ते परस्य गृहस्थस्य मन्त्राणि कायालोचनानि तेभ्य परमन्त्रेभ्य एभ्य सर्वेभ्य पराङ्मुखोभवामि अहो इति आश्चर्ये अहोरात्रम् उत्थित धर्मं प्रत्युद्यत कश्चिदेव महात्मा एवम्विध स्यात् इति विद्वान् इति जानन् तपश्चरे ननु प्रश्नमन्त्रादिकश्चरे ३१ ज च मे पुच्छसीकाले सम्मसुद्धेण चेयसा ताइ्पाउकरे बुद्धे त नाण जिणसासणे ३२ अथ सयतमुनिना पृष्ट त्व आयु कथ जानासि तदा पुन क्षत्रियमुनिराह हे सयत त्व मा काले इति कालविषयम् आयुर्विषय ज्ञान पृच्छसि कीदृश त्व सम्यक शुद्धेन निर्मलेन चित्तेन उपलक्षित ता इति

सूत्र

विज्जा मणु सचरे ॥ ३० पडिक्कमामि पसिणाण परमतेहि वा पुणो। अहो उट्ठिए अहो राय इइ विज्जा तव चरे ३१ ॥ जच मे पुच्छसी काले। सम्म सुद्धेण चेयसा। ताइ पाउ करे बुद्धे। त नाण जिणसासणे ॥ ३२ ॥

भाषा

प्रश्नेभ्य हिवेंह प्रश्नथकी,निवर्त्तो कोइने प्रश्न कहु नहो मन्त्रेभ्य गृहकार्यालोचेभ्य गृहस्थाना आलोचतेहथकी निवर्त्तोंछु अहो इति विस्मये उत्थित जाग्योथको सावधानछत्रोथको] अहोरात्र इति विद्या तपश्चरेत् रातिदिन विद्याऽनेतपसमाचरु छु करछु ३१ भो सयत यच्चमा पृच्छसि क्षत्रियराज ऋषिकहेछे सजतीने जेतू पूछेछे आउखानुज्ञान सम्यकशुद्धे न चेतसा मनसा शुद्धभले मनिकरीने तत्तु प्रादु कृतवान प्रकटितवान् बुद्धे तीर्थं करे जोको ज्ञान तीर्थं करे प्रगटकीधाछे तत् ज्ञान जिनशासने वर्त्तते तेज्ञानजिन सासननेविषेछे ३२ सदनुष्टान रुचि कुर्याद्धीर धीरबीरपुरुष भलो

सूत्रलात् तत् ज्ञानं वुद्धः श्रीमहावीर. अथवा वुद्ध श्रुत ज्ञानवान् प्रादुरकरोत् पुनस्तच्चज्ञान श्रीजिन शासनेजानीहि न अपरस्मिन् कुत्रापि दर्शनेऽस्ति ततोहं तत्र स्थित तत् प्रसादात् वुद्धोऽस्मि इति भावः २२ किरियञ्चरोएधीरो अकिरिय परिवज्जए दिट्ठीए दिट्ठि सम्पन्ने धम्मञ्चरसु दुच्चरम् २३ धीरः अचोस्य क्रियां जीवस्य विद्यमान तां जीवसत्तां रोचयति स्वयं स्वस्मै अभिलपयति तथा परस्मै अपि अभिलपयतीत्यर्थः अथवा क्रियां सम्यक अनुष्टान रूपां प्रतिक्रमण प्रतिलेखनारूपां मोक्षमार्ग साधनभूतां ज्ञानसहितां क्रियां रोचयति पुनः अक्रियां जीवस्य नास्ति त्वं जीवे जीवस्य अविद्यमानतां परिवर्जयेत् अथवा अक्रियां मिथ्यात्विभिः कल्पितां कष्टक्रियाम् अज्ञानक्रियां परित्यजेत् पुनर्धीरः पुमान् दृष्ट्या सम्यक् दर्शनात्मिकया दृष्टि सम्पन्नो भवति दृष्टिः सम्यग् ज्ञानात्मिका वुद्धि स्तया सम्पन्नः सहितो दृष्टिसम्पन्न सम्यक् दर्शनेन सम्यक् ज्ञान सहित इत्यर्थः तस्मात्त्वमपि सम्यग्दर्शन ज्ञान सहितः सन् सुदुश्चरं कर्तुमशक्यं धर्मञ्चारित्र धर्मञ्चर अङ्गीकुरु २३ एयं पुण्णपय सोच्चा अत्थधम्मोवसोहियं भरहो विभारहं वास चिच्चा कामाइ पव्वइए २४ अथ क्षत्रियमुनिः संयतमुनिं प्रति महापुरुषाणां धर्ममार्ग प्रवर्त्तितानां दृष्टा तेन दृढीकरोति हे मुने भरतोपि भरतनामा चक्र्यपि भारतं भारतं चेत्र षट्खंडमिदं त्यक्त्वा पुनः कामान् कामभोगान् त्यक्त्वा प्रव्रजितो दीक्षां प्रपन्नः इत्यर्थः किं कृत्वा एतत् पूर्वोक्तं पुण्यपदं श्रुत्वा पुण्यस्य तत्पदस्य पुण्यपदं पुण्य पवित्रं अर्थात् निःकलङ्कं निर्दूषणम् अथवा पुण्यं पुण्यहेतुभूतम् एतादृशं पदं पद्यते ज्ञायते अर्थोऽनेनेति पदं सूत्रं जिनोक्तमागमं

सूत्र

किरियंच रोयए धीरे। अकिरियं परिवज्जए। दिट्ठीए दिट्ठि संपन्ने। धम्मं चरसु दुच्चरं॥ ३३॥ एयं पुन्न पयं

भाषा

क्रिया ऊपरि रुचिकरे रुचकरे अक्रीयां परिवर्ज्जयेत् भुंडी क्रियानिवर्जे दृष्टा सम्यग् दर्शनेन सम्पन्नः सहित. सम्यक् दर्शन सम्यक्त्व तिणेकरी सहित धर्मं चारित्र धर्मं सेविसु दुष्कर दुष्कर जे चारित्रधर्मछे ते सेवेकरि ३३ अथ क्षत्रियेन पृष्टः कथं त्वं अथ पर्वं मुनीनां दृष्टांतानि कथयती

उ० टीका अ० १८ ५१५

क्रियाक्रियादि नानारुचि वर्जन निर्वेद शब्दसूचना लक्षण तत् श्रवणविषयाकल्य अथवा पूर्णं पद पूर्णपद सम्पूर्णं ज्ञान पदशब्देन ज्ञानमप्युच्यते कीदृश पुण्यपदम् अर्थ धर्मोपशोभितम् अर्थ्यते प्राप्यते इति अर्थं स्वर्गापवर्ग प्राप्तिकारणभूत अर्थश्च धर्मश्च अर्थधर्मौ ताभ्याम् उपशोभितम् अर्थ धर्मोपशोभितम् एतादृश जिनोक्त सिद्धान्तम् अर्थ धर्मसहित श्रुत्वा यदि भरतचक्रधरसम्पूर्णं भरतक्षेत्र षट्खण्ड राज्यं त्यक्त्वा दीक्षा जग्राह तदा त्वया अस्मिन् जिनोक्तागमे चलितव्य महाजनो येनगत स पन्था इत्युक्तत्वात् स कल नृपेषु ऋषभ पुत्रो भरतो मुख्य स्तेनाश्रय मार्गं समाश्रित इत्यर्थं अथात्र भरत चक्रिण कथा अयोध्या नगर्यां श्रीऋषभदेव पुत्र पूर्वभवकृत मुनिजन वैयावृत्यर्जित चक्रिभोग प्रथमचक्री भरतनामास्ति तस्य नवनिधानाना चतुर्दशरत्नाना द्वात्रिंशत सहस्र नरपतीना द्विसप्तति सहस्र पुरवराणा षण्णवति कोटिग्रामाणां चतुरशीति सहस्र हयगयरथानां षट्खण्डभरतस्य ऐश्वर्यं कुर्वत स्वमत्यानुसारेण साधर्मिकवात्सल्य कुर्वत स्वय कारिताष्टापदगिरि स्थित चतुर्मुख योजनायामजिनायतनमध्यस्थापितनिज २ वपु प्रमाणोपेत श्रीऋषभादि चतुर्विंशति जिन प्रतिमावन्दनार्चन समाचरत श्रीभरत चक्रिण पञ्चपूर्वलक्षाण्यति क्रान्तानि अन्यदा महाविभूत्या उद्वर्त्तितदेह सर्वालङ्कारविभूषित सभरत चक्री आदर्श भुवनेगत तत्र स्वदेह प्रेक्षमाणस्य अङ्गुलीय कम्पतित तच्च तेन न ज्ञात आदर्शभित्तौ स्व देह पश्यतातेन पतितामुद्रिकास्वकराङ्गुलो अशोभमाना दृष्टा ततो द्वितीयां गुलीतोपि मुद्रिकाऽपनीता साप्य शोभमानादृष्टा तत क्रमात्सर्वाङ्गाभरणानि उत्तारितानि

सूत्र

सोच्चा। अत्थ धम्मो वसोहिय। भरहोवि भारह वास। चिच्चा कामाइ पव्वइए ॥ ३४ ॥ सगरोवि सागर त।

भाषा

एतत्पुन्यपद श्रुत्वा एपुन्यनु पद सांभलीने आयर्जानासि इति पृष्टे क्षत्रियाह कीदृश पद अर्थधर्माभ्या उपशोभित अर्थ अने धर्मतेणेकरी सहितछे भरतोपि चक्रवर्त्ती भारतवर्ष भरत चक्रवर्त्ति भरतक्षेत्रने छोडीने त्यक्त्वा कामान् दीक्षा प्रपन्न थयो कामभोग छोडीने दीक्षालीधी ३४

तदा स्वशरीरं अतीवाशोभमानां निरीक्ष्य संवेगमापन्नश्चक्री एवं चिंतितुं प्रवृत्तः अहो आगन्तुकद्रव्यै रेवेदंशरीरं शोभते न स्वभावसुन्दरं अपि च एतच्छरीर सङ्गेन सुन्दरमपि वस्तु विनश्यति उक्तं च मणुवं असणं पाणं विविहं खाइ मसा इमं सरीरसङ्गमावन्नं सव्वं पि असुइं भवे १ वरं वत्थं वरं पुष्फं वरं गन्ध विलेवणं विणस्सए सरीरेण वरंसयणमासणं २ निहाणं सव्वरोगाणं कयग्घमथिरं इमं पत्तासुइभूअमयं अयक्कपरिकम्मणं ३ तत एतच्छरीरकृते सर्वथान युक्तं अनेकपाप कर्मकरणेन मनुष्य जन्महारणं यत उक्तं लोहायनावञ्जलधौभिनत्ति सूत्राय वैडूर्यमणिं दृणाति स चन्दनं प्लोषति भस्मराशेर्योमानुषत्वं नयतीन्द्रियार्थैः १ इत्यादिकं चिंतयतः तस्य भरतस्य प्राप्तभावचारित्रस्य प्रवर्द्धमानशुभाध्यवसायस्य क्षपकश्रेणि प्रपन्नस्य केवलज्ञानमुत्पन्नं शक्रस्तत्रसमायातः कथयति च द्रव्यलिङ्गं प्रपद्यस्व येन दीक्षा उत्सवं करोमि ततो भरतकेवलि नाखममधाकेपञ्चमौष्टिको लोचः कृतः शासनदेवतया चर जोहरणोपकरणानि दत्तानि दशसहस्रराजभिः समं प्रव्रजितो भरतः शेषचक्रिणस्तु सहस्र परिवारेण प्रव्रजिताः ततः शक्रेण वन्दितो सौ ग्रामाकरनगरेषुभ्रमन् भव्य सत्वान् प्रतिबोधयन् एकपूर्वलक्षं यावत् केवल पर्यायं पालयित्वा परिनिर्वृतः तत्पट्टे च शक्रेण आदित्ययशान्रपोभिषिक्तः इति भरत दृष्टांतः ३४ पुनस्तदेव महापुरुष दृष्टांतेन द्रढयति सगरोविसागरं तं भरहवासंनराहिवो इस्सरियं केवलं हिच्चा दयाइ परिनिव्वुडो ३५ हे मुने सगरोपि सगरनामानराधिपोपि दययासंयमेन परिनिर्वृतः कर्मभ्योमुक्तः अत्र नराधिप शब्देन अपि शब्दात् द्वितीयचक्रवर्त्यधिकारात् अनुक्तोपि चक्री एव गृह्यते किं कृत्वा भरत वर्षं भरतक्षेत्रं अर्थात् भरतक्षेत्र राज्यन्त्यक्त्वा पुनः केवलं परिपूर्णं एकच्छत्र रूपं ऐश्वर्यं हित्वात्यक्त्वा कीदृशं भरतवर्षं सागरां तं समुद्रान्त सहितं क्षुल्लहिमवत् पर्वतं यावत् विस्तीर्णं भरतक्षेत्र राज्यमित्यर्थः अत्र सगर चक्र वर्तिदृष्टान्तः तथाहि अयोध्यायां नगर्यां इक्ष्वाककुलोद्भवोजितशत्रु, नृपोस्ति तस्य भार्याविजयानाम्नी अस्ति सुमित्रनामाजित शत्रु सहोदरोयुवराजावर्त्तते तस्य यशोमती नाम्नी भार्यास्ति

जित शत्रु राज्ञाविजयानाम्नायतुर्दश महास्वप्न सूचित पुत्र प्रसूत तस्य नाम अजित इति दत्त स च द्वितीयस्तीर्थकर इति सुमित्रयुवराजपत्न्या यशोमत्यासगरनामाद्वितीयचक्रवर्त्ती प्रसूत तौ द्वावपि यौवन प्राप्तौ पितृभ्या कन्या परिणायितौ कियताकालेन जित शत्रु राज्ञा निजेराज्येऽजित कुमार स्थापित सगरो युवराज्ये स्थापित सहोदर विजय सहितेन जितशत्रु नृपेणदीक्षा गृहीता अजितराज्ञा च कियत्काल राज्य परिपाल्यतीर्थ प्रवर्त्तन समये स्वराज्ये सगर स्थापयित्वा दीक्षा गृहीता सगरस्तु उत्पन्न चतुर्दशरत्न साधित षट् खण्डभरतक्षेत्रो राज्य पालयति तस्य पुत्रा षष्टि सहस्र स व्याकाजाता एकराशि उदरात् सर्वेषा तेषां मध्ये ज्येष्ठो जह्नु कुमारो वर्त्तते अन्यदा जह्नु कुमारेण कथ चित्सगर सन्तोषित स उवाच जह्नु कुमार यत्तवरोचते तन्मार्गय जह्न उवाच तात ममास्त्ययमभिलाष यत्ता तानुज्ञातोह चतुर्दशरत्नसहितोऽखिल भ्रातृपरिवृत पृथ्वी परिभ्रमामि सगरचक्रिणा तत् प्रतिपन्न प्रशस्तमुहूर्त्ते सगरच क्रिण समीपात्तनिर्गत सबल वाहन अनेकजनपदेषु भ्रमन् प्राप्तोऽष्टापद पर्वते सैन्यमधस्तान्निवेश्य स्वयमष्टापदपर्वतमारूढ दृष्टवांस्तत्र भरतनरेन्द्रकारित मणि कनक मय चतुर्वि शति जिन प्रतिमाधिष्ठित स्तूपशतसङ्कुल जिनायतन तत्र जिन प्रतिमा अभिवन्द्य जह्न कुमारेण मत्रिण पृष्ट केन सुकृतवता इदमतीवरमणीय जिन भवन कारित मत्रिणा कथित भवत् पूर्वजेन श्रीभरत चक्रिणेति श्रुत्वा

भरह वासं नराहिवो इस्सरिय केवल हिच्चा दयाए परिनिब्बुओ ॥३५॥ च इत्ता भारह वास चक्कवट्टी महिड्ढिओ मव्व

सगरोपि समुद्रपर्यं त सगर चक्रवर्त्तिपणि समुद्रपर्यं त भरतवर्ष भरतक्षेत्रे नराधिप राजा ऐश्वर्य सपूर्ण त्यक्त्वा सर्वऐश्वर्य ऋद्धि छाडीने दया सजमे परिनिवृत्तो मुक्ति गत दयाकहता सजम तिणे करीने मुक्ति पोहता ३५ हुजीगाथानु समास य त्यक्त्वा भारत वर्ष भरतक्षेत्र छाडीने चक्रवर्त्ति महर्द्धिक चक्रवर्त्ति महाऋद्धिनो धणी प्रव्रज्यां अभ्युपगत दीक्षालीधी मघवा नामा महायशा मघवा एहवेनामे महायशनोधणी ३६

जह्नुकुमारोऽवद्दत् अन्यः कश्चिदष्टापद सदृश पर्वतोस्ति यत्र दृश्यमन्य चैत्यं कारयामः चत स्मृषु दिक्षु पुरुषास्तद्गवेषणाय प्रेषितास्ते सर्वत्र परिभ्रम्य समायाताः जचुः स्वामिन् ईदृशः पर्व्वतः क्वापि नास्ति जह्नुनाभणितं यद्येवं वयं कुर्म्मः एतस्यैव रचां यतोत्रचैत्ये काल क्रमेण लुब्धाः सर्वे नराः भवि ष्यन्ति अभिनवकारणात् पूर्वकृत परिपालनं श्रेयः तद्दण्डरत्नं गृहीत्वा समन्तोष्टापदपार्श्वेषु जह्नु प्रमुखा सर्व्वेपि कुमारा खातुं लग्नाः तच्च दण्ड रत्नं योजन सहस्रं भित्वा प्राप्तं नागवनेषु तेन तानि भिन्नानि दृष्ट्वा नाग कुमाराः शरणङ्गवेषयन्तो गता नागरा जज्वलन प्रभसमीपे कथितः स्व भवन विदारणः वृत्तान्तः सोपि सम्भ्रान्त उत्थितोऽवधिना ज्ञात्वा क्रोधोद्धर समागतः सगरसुत समीपं भणितवांश्च भोभो किं भवद्भिर्दण्डरत्नेन पृथ्वीविदार्य अस्मद्भवनोपद्रवः कृतः अविचार्य भवद्भिरेतत्कृतं यत उक्तं अप्पवहाए नूणं होइ बलं उत्तणाण भुवणंमिणियपक्खु बलेणच्चिय पडिइपयङ्गोपईवंमि १ ततो नागराजोपशमननिमित्तं जह्नुनाभणितं भो नागराज कुरुप्रसादं उपसंहर क्रोध सम्भरं चमस्वास्मदपराधमेकं नह्य स्माभिर्भवता सुपद्रवनिमित्तं एतत्कृतं किं तु अष्टापदचैत्यरचार्थं मेषा परिखा कृता न पुनरेवं करिष्याव तत उपशान्तकोपोज्वलन प्रभः स्वस्थानं गतः जह्नुकुमारेण भ्रातृणां पुर एवं भणितं एषा परिखादुर्लङ्घ्यापि जल विरहितानसोभते तत इमां नीरेणपूरयामः दण्डरत्नेन गङ्गां भित्वा जह्नुनाजलमानीतं भृता परिखातज्जलं नागभवनेषु प्राप्तं जल प्रवाह सन्त्रस्तं नागनागिनी प्रकरं इतस्तत प्रणश्यन्तं प्रेक्ष्य प्रदत्तावधि ज्ञानोपयोगः कोपानलज्वालामाला कुलोज्वलन प्रभ एव मचिन्तयत् अहो एतेषां जह्नुकुमारादीनां महापापानां मया एकवारमपराध चान्तः पुनरधिकतरं उपद्रव कृतः ततो दर्शयाम्येषामविनय फलं इति ध्यात्वाज्वलन प्रभेण तद्वधार्थं नयन विषा महा फणिनः प्रेषिता स्तैः परिखाजलान्तर्निर्गत्यनयनैस्ते कुमाराः प्रलोकिता भस्मराशीभूताः सर्वेपि सागरसुताः तथा भूतां स्तान् वीच्यसैन्ये हाहारवोजातः मंत्रिणाउक्त एतेसु तीर्थरचां कुर्वतोऽवश्य भावितया इमा मवस्थां प्राप्ताः सन्नताविव

भविष्यत्तीति किं शीघ्र ते अतस्त्वरितमित प्रयाण क्रियते गम्यते महाराज चक्रि समीप सर्वसैन्येन मन्त्रि वचनमङ्गीकृत ततस्त्वरितप्रयाण करणेन क्रमात् प्राप्त स्व पुरसमीपे तत सामन्तामात्यादिभि रेव विचारित समस्त पुत्र वन्धोदन्त कथ चक्रिणो वक्तु पार्यते ते सवेदग्धा वय याचता गा समायाता एतदपि प्रकामत्नपाकर तत सर्वेपि वय प्रविशामोऽग्नौ एव विचारयता स्पा पुर समायात एकोद्विज ते नेदृशा भो वीरा किमेवमा कुलीभूता मुक्तविषाद यत ससारे किञ्चित्सुख दु ख मत्यसमन्ततमस्ति भणितञ्च कालम्मि अणाईए जीवाण विविहकम्मवसगाण त नत्थि सवि हाण जसमारे न सभवइ १ अह सगरचक्रिण पुत्रवधव्यति कर कथयिष्यामि सामन्तादिभिस्तञ्च प्रति पन्न तत स द्विजोमृत बालक करे कृत्वा दष्टोस्मीति वदन् सगर चक्रि गृहद्वारेगत च क्रिणातस्य विलापशब्द श्रुत चक्रिणासद्विज आकारित केन दष्टोसीति चक्रिणापृष्ठ स प्राह देव एक एवमेसुत सर्प णदष्टोमृत एतद् खेनाह विलपामीति करुणासागरस्त्वामेन जीवय अस्मिन्नवसरे तत्र मन्त्रि सामन्ता प्रापिता प्रणम्य चक्रिण प्रणम्य उपविष्टा तदानीं चक्रिणा राजवैद्यमाकार्यमुक्त एन निर्विष कुरु वैद्येन तु चक्रि सुतमारण श्रुतवताउक्त राजन् यस्मिन् कुले कोपिनमृत तत कुलाद्भस्मयद्यानयसि तदैनमह जीवयामि द्विजेन गृहे २ प्रश्न पूर्वक भस्मार्गित गृह मनुष्या स्समाद्दपि त्वस्मात्तदुक्ति प्रमुख कुटम्बमारणान्याचख्य द्विजश्चक्रि समीपे समागत्य उवाच नास्ति वैद्योपदिष्टताद्दश भस्मोपलब्धि सर्वं गृहे कुटम्बमनुष्यमरण सद्भावात यद्येव तत किं स्व पुत्र शोचसि सर्वं साधारणमिद मरण उक्त च किं अस्थिकोद्द भवणे जस्स जायाइवेव पायाइ नियकम्म परिणईए जम्मण मरणाइ ससारे १ ततो ब्राह्मण मारुद शोक शुद्ध आत्महित काय चिन्तय यावत्त्वमपि एव मृत्युसिंहेन न कवलो क्रियसे विप्रेण भणित देवाह मपि जानाम्येव पर पुत्रमन्तरेणसां प्रतिमे कुलक्षय तेनाह मतोपदु खित त्व तु दु खिताऽनाथवत्सलोऽप्रतिहत प्रतापश्चासि ततो मे देहि पुत्र जीवितदानेन मनुष्यभिक्षा च किणाभणित भद्र

इद मशक्य प्रतीकारं उक्तं च सोयन्ति सव्व सत्ताइं एत्थनकम्मन्तिमन्ति तं,ताइं अदिट्ठपहरगम्मीविहिमकिं पौर सङ्गुणइ १ ततः परित्यज्यशोकं कुरु परलोकहितं मूर्खएवहृते नष्टे मृते करोति शोकं विप्रेण भणितं महाराज सत्यमेतत् न कार्योऽत्र जनकेनशोकः ततस्त्व मपि मा कुर्याः शोकमस भावनोयं भवतः।शोक कारणं जातं संभ्रांतेन चक्रिणा पृष्टं भो विप्र कीदृशं मम शोक कारणं जातं विप्रेण भणितं देव तव षष्टि सहस्रः पुत्राः काल कृताः इदं श्रुत्वाः चक्रीवज्र प्रहाराहतइवनष्ट चेतनः सिंहासनात्रि पतितो मूर्छित सेवकै रुपचरितश्च मूर्छावशानेव शोकातुरमनामुक्तकलकण्ठे नरुरोद एवं विलापान्"चकार हा पुत्रा हा हृदयदयिता हा बन्धुवल्लभाः हा शुभस्वभावाः हा विनीता· हा सकलगुणनिधय· कथंमामनाथं मुक्तायूयंगताः युष्मत् विरहार्त्तस्य ममदर्शनंददतः हानिर्दयपापविधे एकपदेचैव सर्वान् बालकान् संहरतस्तव किं पूर्णं जातं,हा निष्ठुरहृदयत्वं असह्य।सुतमरणदुःख,सन्तप्तं किंन शतखण्डं भवसि एवं विलपामयक्री तेन विप्रेण भणितः महाराजत्वं मम सांप्रत्येवं उपदिष्टवान् स्वयंच कथं शोकं गच्छसीति उक्तञ्च परवसणं मिसुहेणं संसारा,सायरं कहइलोओणिय बन्धुजणविणासो सव्वस्सविच लइधीरत्तं १ एक पुत्रस्यापि मरणं दुःसहं किं पुनः षष्टिसहस्र पुत्राणां तथापि सत्पुरुषाव्यसनं सहन्ति पृथिव्ये वज्रनिपातं सहति नापरइति अवलंब्य सुधीरत्वं अलमत्र विलपितेन यत उक्तं सोयं ताणंपिनोताणं कम्मवन्धोउ केवलो तो पण्डिया नसोयन्ति जाणन्ता भवरूवयं १ एवमादि वचनविन्यासैर्विप्रेण स्वस्थीकृतो राजा भणितायतेनैव सामन्तमन्त्रिणः वदन्तु यथावृत्तं षष्टिसहस्र पुत्र मरणव्यतिकरं तैरुक्तः सकलोपितद्व्यतिकर प्रधानपुरुषैः सर्वैरपि राजाधोरतांनोत· उचित कृत्यं कृतवान् अत्रान्तरेऽष्टापदासन्नवासिनोजना प्रणत शिरस्काश्चक्रिण एवं कथयन्ति यथा देवयो युष्मदोयसुतैरष्टापदरक्षणार्थं गङ्गाप्रवाह आनीत· स आसन्न ग्रामनगराण्युपद्रवान् प्रसरतीतित भवान् निवा रयतुदेवः अन्यस्य कस्यापि तन्निवारणशक्तिर्नास्तोति चक्रिणा स्व पौत्रो भगीरथोभणित· वत्स नागराज मनुज्ञाप्य दण्डरत्नेन गङ्गाप्रवाहं नय

समुद्र ततो भगीरथि रष्टापद समोपगत अष्टमभक्तेन नागराजा आराधित समागतो भर्णति किते सम्पादयामि प्रणामपूर्व भगीरथिनाभ
णित तव प्रसादेनामु गङ्गाप्रवाह उदधि नयामि अष्टापदासन्न लोकाना महानुपद्रवोस्तोति नागराजेन भणित विगतभयस्त्व कुरुख समीहित
निवारयिष्याम्यह भरतनिवासिनो नागान् इति भणित्वा नागराज स्वस्थानङ्गत भगीरथिनापि ततानागाना बलि कुसुमादिभि पूजातत प्रभृति
लोकानागवलिकरोति भगीरथिदण्डेन गङ्गाप्रवाहमाकर्षन् भजथ वद्रनुस्थल गैलमवाहान् प्राप्त पूर्वसमुद्रन्त याव तारिता गङ्गा तत्रनागाना
बलि पूजाविहिता यत्र गङ्गासागरे मवाहिता तत्र गङ्गासागरतीर्थ जात गङ्गा जह्नुनानीतेति जाह्नवी भगीरथिनीतेति भागी रथी भगीरथिस्तदा
मिलितेनागे पूजितोगतोऽयोध्या पूजितश्चक्रिणातुष्टेन स्थापित स्वराज्ये सगर चक्रवर्तिना श्रीअजितनाथ समीपे दीक्षा गृहीता क्रमेण
कमक्षय कृत्वा सगर सिद्ध अन्यदा भगीरथिना राज्ञा कश्चिदतिशयज्ञानी पृष्ट भगवन् कि कारण तत् जह्नुप्रमुखा षष्टिसहस्रा भ्रातर सम
काल मरण प्राप्ता ज्ञानिनाभणित महाराज एकदा महान् सघश्चैत्यवदनाथ समेत पर्वते प्रस्थित अरण्यमुल्लङ्घ्य अन्तिम ग्राम प्राप्त तन्निवासिना सर्वेण
अनार्यजनेन अत्यन्त मुपद्रुतो दुर्वचनेन वस्त्रान्न धनहरणादिना च तत् प्रत्यय तद्ग्रामवासिलोकेर अशुभ कर्म बद्ध तदानीमेकेन प्रकृति भद्रकेण कुम्भकारे
णोक्त मा उपद्रवत् इम तीर्थयात्रागत जन इतरस्यापि निरपराधस्य परिक्लेशन महापापस्य हेतुर्भवति कि पुनरेतस्य धार्मिकजनस्य ततोयद्येतस्य सघस्य
स्वागत प्रतिपत्ति कर्तु न शक्तास्तदा उपद्रवन्तु रक्षत इति भणित्वा कुम्भकारेण निवारित सग्रामजन सघस्तत्रगत अन्यदा तद्ग्राम निवासिना एकेन
नरेण राजनिवेशे चौर्य कृत ततो राजनियुक्तै पुरुषै सग्रामो द्वारपिधान पूर्वक ज्वालित तदा स कुम्भकार साधु प्रसिध्या ततो निष्कासितोऽन्यस्मिन्
ग्रामेगत तत्र षष्टि सहस्र जनादग्धा उत्पन्नाविराट विषयेतिमग्रामेकोद्रविले नता को द्रव्यएकत्र पुञ्जीभूता स्थिता सन्ति तत्रैक करी समायात

तत्तरगेनता: सर्व्वा अपि मर्द्दिता: ततो मृतास्तेनानाविधासुख दुःख प्रचरासुयोनिषु सुचिरं परिभ्रम्य अनन्तर भवे किञ्चित् शुभकर्म उपार्ज्य सगर चक्रि सुतत्वे नोत्पन्ना· षष्टि सहस्र प्रमाणा अपि ते तत्कर्म शेषवशेन तादृशं मरणं व्यसनं प्राप्ता· सोपि कुम्भकारस्तदा स्वायु· क्षयेमृत्वा एकस्मिन् सन्निवेशेधन सम्रद्धो वणिग्जात तत्र ग्रतस्तु जात सज्जाती मृत्वा नर पतिजात शुभानु बन्धेन शुभकर्मोदयेन प्रतिपन्नो मुनि धर्मं शुद्धं च परिपाल्य ततो मृत्वा सुरलोकं गत ततश्च्युतस्त्वं जह्नु सुतोजात: इह भागीरथ: श्रुत्वा सम्वेगमुपागतस्त्वं अतिशयज्ञानिनं नत्वागत· स्वभवनं इदं च भगीरथि पृच्छासम्बिधा नगं प्रसङ्गत उक्तं इति सगर दृष्टान्त: २ ॥३५ च इत्ता भारहं वासञ्चक्कवट्टीमहड्डिए पव्वज्जमब्भुवगओ मघवं नाम महायसो ३६ पुनर्मघवानामा तृतीय चक्रवर्त्ती प्रव्रज्यां दीक्षां अभ्युपगत: चारित्रं प्राप्त: कोदृशो मघवामहर्द्धिक: चतुर्दश रत्न नवनिधान धारको वै क्रियर्द्धिधारीवा पुन: कोदृशो महायशा: विस्तीर्णकीर्त्ति: अत्र मघवाख्यस्य चक्रिण· दृष्टांत: इहैव भरतक्षेत्रे श्रावस्त्यां नगर्यां समुद्रविजयस्य राज्ञो भद्रादेव्या: कुक्षौ चतुर्दश महास्वप्न सूचितो मघवानामाराजसुतोजात: स च यौवन स्थोजन कोन वितीर्ण राज्य· क्रमेण प्रसाधितभरतक्षेत्र स्तृतीयश्च क्रवर्त्तीजात: सुचिरं राज्य मनुभवतस्तस्य अन्यदा भव विरक्तताजाता स एवं भावयितुं प्रवृत्त येऽत्र प्रतिबन्ध हि तवोरजणीया: पदार्थास्ते स्थिरा: उक्तं च हिय इत्थिया उदारा सुपाविणी यामणोरमा भोगा विउला लच्छोदेहो निरामओ दीहजीवितं १ भव पडि बन्धनि मित्तं एगा एवत्थु नवरसव्वंपि काइवय दिणावसाणे सुमिणो भोगुव्वनाहि किंपि१ ततोहं धर्मकर्मणि उद्यमं करोमि धर्म एव भवान्तरानुगामी एवमादिकं परिभाव्य पुत्र निक्षिप्तराज्यो मघवा चक्री परिव्रजत: काल क्रमेण विविध तपश्चरणेन काल कृत्वा सनत् कुमारो कल्पेगत: इति मघ वा दृष्टांत ३६ सण कुमारोमणुस्सिन्दो चक्कवट्टी महड्डिए पुत्तं रज्जे ठवेऊणं सोविरायातवं चरे ३७ अत्र सनत् कुमार दृष्टांत· अस्यात्र भरतक्षेत्रे कुरुजङ्गलजनपदे हस्तिनाग पुरं नाम नगरं तत्राश्वसेनोनाम राजा तस्य भार्या सहदेवी नाम्नी

तयो पुत्रश्चतुर्दश स्वप्न सूचितचतुर्थचक्रवर्त्तीसनत् कुमारो नाम तस्य सूरिकालिन्दो तनयेन महेन्द्रसिंहेन परम मित्रेण सम कलाचार्यं समीपे सर्वकला भ्यासी जात सनत् कुमारो यौवन मनुप्राप्त अन्यदावसतमासेऽनेकराज पुत्र नगर लोक सहित सनत् कुमार क्रीडार्थमुद्यानेगत तत्राश्व क्रीडा कर्तुं सर्वे कुमारा अश्वारूढा स्वस्वम वद्धे लयन्ति सनत् कुमारोपि जलधिकल्लोलाभिधान तुरङ्गमारूढ समकाल सर्वे कुमारैर्मुक्तास्ततो विपरीत शिक्षितेन कुमाराश्वेन तथा गति कृत्वा यथा अपर कुमाराश्वा प्राक पतिता कुमाराश्वस्तु अदृश्यो भूत ज्ञातवृत्तान्तो राजा स परिकरस्तात् पृष्ठे चलित अस्मिन्नवसर प्रचण्ड वायुवातु लग्न तेन तुरङ्गपदमार्गो भग्न महेन्द्रसिंहो राजाज्ञा मार्गयित्वा उन्मार्गेणैव कुमारमार्गणाय तत्र प्रविष्टो भीषणां महाटवीं तत्र भ्रमतमास्य वर्षमेकमति क्रान्त एकस्मिन् दिवसेगत स्तोक भूमि भाग तावत् तावदेक महत्सरोवर दृष्टवान तत्र कमलपरिमल माघ्रातया श्रु तवांच मधुरगीतवेणुरव यावन्महेन्द्रसिंहोऽग्रे गच्छति तावत्तरुणीगणमध्य संस्थित सनत् कुमार दृष्टवान विस्मितमना महेन्द्रसिंहश्चिन्तयति कि मयाप्यविभ्रमो दृश्यते कि वा सत्य एवाय सनत् कुमार यावदेव चिन्तयन महेन्द्रसिंहस्तिष्ठति तावत्पठित सिद बन्दिना जय २ आससेण न इय लनयङ्ग कुरुभवण लग्गणिउ भजयति कुरुवणनाहसण कुमार जयलद्धमाहप्प १ ततो महेन्द्रसिंह सनत्कुमारोयमिति निश्चितवान अथ प्रकाम प्रमुदितमना सनत् कुमारेण दूरादागच्छन दृष्ट सनत् कुमारोप्यत्यावाभि मुख मायवौ महेन्द्रसिंह सनत् कुमार पादयो पतित सनत कुमारेण ससु

च्चम भ॰वगश्री मघवनाम महायसो ॥ ३६ ॥ सणकुमार मणुस्सिंदोचक्कवट्टी महिड्ढिश्रो पुत्त रज्जे ठवेऊण सोविराया

सनत्कुमारो सनत्कुमारनामे मनुष्येंद्र मनुष्यमाहि इंद्र चक्रवर्त्ति महर्द्धिक चक्रवर्त्ति महान्ऋद्धिवत पुत्र राज्ये स्थापयित्वा पुत्रने राज्यदेइने सोपि राजा दीप्तमान् तपचरत् तिणे राजाइ तपआदर्यो ३७ त्यक्त्वा भारत वर्ष त्यजीने भरतक्षेत्र चक्रवर्त्ति महर्द्धिक चक्रवर्त्ति महाऋद्धिनो धणी शांति

त्थापितौ गाढमालिङ्गितश्च द्वावपि प्रमुदितमनस्कौविद्याधरदत्तासने उपविष्टौ विद्याधर लोकश्च तयो. पार्श्वे उपविष्टः अथानंदजल पूरितनयने न समत् कुमारेण भणितं मित्र कथमेकाकी त्वं अस्यामटव्यामागतः कथं चावस्थितोहं त्वया प्राप्तः किञ्च करोति मद्विरहे ममपितामाता च कथितः सर्वो वृत्तान्तो महेन्द्रसिंहेन ततो महेन्द्रसिंहो वरविलासिनीभिर्मज्जितः स्नापितश्च भोजनं द्वाभ्यां सममेव कृतं भोजनावसाने च महेन्द्रसिंहेन सनत् कुमारः पृष्टः कुमारतदात्वं तुरङ्गमेणापहृतः क्वगतः क्वस्थितश्च कुतएतादृशो ऋद्धिस्त्वया प्राप्ता सनत्कुमारेण चिन्तितं न युक्तं निजचरित्र कथनं निज मुखे नेति संचिन्त्य स्वयं परिणीता खेचरेन्द्र पुत्रीविपुलमतीनाम्नी स्व प्रिया साकुमार वृत्तान्तं स्व विद्याबलेन कथयितुं प्रवृत्ता तदानीं कुमारो भवदादिष्ट पश्यत्सु कुमारस्तु तुरङ्गमेणापहृतो महाटव्यां प्रविष्टः द्वितीयदिनेऽपि तथैव धावतोश्वस्य मध्याह्न समयेजातः क्षुधापि पासाकुलितेन श्रान्तेन अश्वेन निष्कासिताजिह्वा कुमारस्तत उत्तीर्णः सोऽश्वस्तदानी मेव मृतः कुमारस्ततः पादाभ्यामेव चलितः तृषाकुलितश्च सर्वत्र जलं गवेषयन्नपि न प्राप ततो दीर्घाध्वश्रमेण सुकुमारत्वेन चात्यन्तमाकुलीभूतो दूरदेशस्थितं सच्छदं वृक्षं पश्यन् तदभि मुखं धावन् कियत् कालानन्तरं तत्र प्राप्तः छायायामुप विष्टः पतितश्च लोचने भ्रामयित्वा कुमारः अत्रावसरे कुमार पुण्यानुभावेन वन वासिनाय क्षेणजलमानीत शिशिरशीतलजलेन सर्वाङ्ग सिक्तः आश्वा सितश्च लब्धचेतनेन च कुमारेण जलं पीतं पृष्टश्च कस्त्वं कुतो वा नीतं जल मिदं तेन भणितं अहो यक्षोऽत्रनिवासी सलिलं चेदं मानसरोवरादानीतं कुमारेणोक्तं यदि मान्तद्दर्शयसि तदा तत्र मानसरोवरे प्रक्षालयामि तदाममपुस्तापोपनयति तच्छ्रुत्वायक्षेण करतल संपुटे गृहीत्वानीतोमानसरोवरं तत्र व्यसनापतितोयमिति ज्ञात्वा क्रुद्धेन वैताढ्य वासिनासितयक्षेण समं कुमारस्य युद्धं जातं तथाहि यक्षेण प्रथमं मोटितरुः प्रचण्डः पवनोमुक्तः तेन नभस्तलव्याप्तं लध्यान्ध कारितं ततो विमुक्ताट्टहासाज्वलनज्वालापिङ्गलकेशापिशाचामुक्ताः कुमारस्तैर्मनाक् न भीति गत. ततो नयनज्वाला

स्फुलिङ्गवयभिनागपाशे कुमारोयचेप वद्ध जीर्णरज्जुबन्धनानिचतान् त्रोटयतिस्म कुमार तत करास्फालन पूर्वं मुष्टिमुद्यम्य यत्त समायात तावतामुष्टि प्रहारेण कुमारस्त खण्डीकृतवान पुनयच स्वस्थो भूत्वा गुरुमत्सरेण कुमार घन प्रहारेणहतवान् तत् प्रहारात्त कुमारश्छिन्न मूलद्रुम इव भूमौ निपतित ततो यचेयद्दूरमुत् चिप्यगिरवर कुमारस्थो परिचिप्त तेन दृढपीडिता गोनिश्रितनोजात अथ किं यत्कालानन्तर लब्ध सज्ञ कुमारस्तेन सम बाहुयुद्ध चकार कुमारेण करमुद्गराहतो यच प्रचण्डवाताहत चूत इव तथा भूमौ निपतित यथा मृत इव दृश्यते पर देवत्वात्तन मृत आराटि कुर्वाण स यचस्तथा नष्टो यथा पुनर्नदृष्ट कौतुकान्नभस्यागतविद्याधरै पुष्प वृष्टिर्मुक्ता उक्त च जितोयच कुमारेणेति ततोमानस सरसि यथेष्ट स्नात्वा उत्तीर्णं कुमारो यावत् स्तोका भूमिभाग गत तावत्तत्र वनमध्य गता अष्टौ विद्याधर पुत्रीर्दृष्टवान् ताभिरप्यसो स्निग्धदृष्ट्या विलोकित कुमारेण चिंतित एता कुत समायाता सति पृच्छाम्यासा स्वरूपमिति पृष्ट कुमारेण तासा समीपे गत्वा मधुरवाण्या कुतोभवन्त्य आगता किमर्थं मेतत् शून्यमरण्य मलङ्कृत ताभिर्भणित महाभाग इतोनाति दूरे प्रियसङ्गमाभिधानास्माक पुरी अस्ति त्वमपि तत्रै वागच्छेति भणिति किङ्करी दर्शितमार्गस्तासा नगरी प्राप्त किङ्करकिपुरुषै राजभुवनन्नीत दृष्टश्च तन्नगरस्वामिनाभानुवेगराज्ञा अभ्युत्थानादिनासत्कृतश्च [redacted] राज्ञा महाभाग त्व एतासा ममाष्टकन्याना वरोभव पूर्व हि ज्ञातया तेन अर्चिमालिनाम्ना मुनिनाएव मादिष्ट योसिताच यच जेष्यति स एतासा भर्त्ताभविष्यति ततस्त्व मेता परिणयेति नृपेणोक्ते कुमारेण तथेति प्रतिपन्न राज्ञा महामह पूर्वक विवाह कृत कङ्कण कुमारकरेबद्ध सुप्तस्ताभि सार्द्ध रतिभुवने कुमार पल्यङ्कोपरि निद्रावशमेवात्मान भूमौपश्यति किमेतदिति चिंतितवान् करबद्ध कङ्कण पश्यति तत खिन्नमना कुमारस्ततो गतु प्रवृत्त अरण्यमध्ये च गिरिवरशिखरे मणिस्तम्भ प्रतिष्ठित दिव्यभुवन दृष्ट कुमारेण चिंतित इदमप्यालम्बाल प्रायम्भविष्यतीति तदासन्नेयावद्गन्तु प्रवृत्त कुमार स्तावत्

तत्रवनान्त: करुणस्वरेण रुदन्त्या एकस्यानार्या: शब्दं श्रुतवान् प्रविष्ट स्तत्रवनान्त सप्तभूमिमारूढ: रुदन्त्या तत्र एकया कन्ययाभणितं कुरुजनपद नभस्तल मृगाङ्क सनत्कुमार त्व भवान्तरेपि मम भर्त्ताभूया इति वारं २ भणती पुनर्गाढं रोदितुं प्रवृत्ता ततो रुदन्त्यैवतयासनं दत्तं तत्रोपविश्य कुमार स्तां पृष्टवान् सनत्कुमारेण सहतवक: सम्बन्ध: येन त्वं तमेवं स्मारयसि सा प्राह मम स मनोरथ मात्रेण भर्त्ता कथमिति कुमारेणोक्ता सा प्राह अह हिमाचेत पुरस्वामि सुरथनामनरेन्द्र भार्या चन्द्रयशा पुत्री अस्मि अन्यदाहं यौवनं प्राप्ता पित्रा चमत्कृतेऽनेका राजकुमार चित्रपटरूपाणि दूतैरानीय दर्शितानि एकमपि चित्रपटरूप मम न रुचते एकदा सनत्कुमार चित्रपटरूपं दूतै रानीय मे दर्शितं तदत्यन्तं मेरुरुचे मोहिताचाह तद्रूपमेव ध्यायन्ती स्वगृहे तिष्टामि तावदहमेकेन विद्याधरेण पितृगृहादपहृता तानीता स्वय विकुर्व्वितसिप्तावासेमां मुक्त्वा स क्वचित् गतोस्ति या वक्ता कन्या एव वदत्यस्ति तावत् अशनिवेग सुत वज्र वेगेण विद्याधरेण तत्रागत्य सनत्कुमार उत्क्षिप्तो गगनमण्डले सा च कन्या हाहारवं कुर्वाणा मूर्च्छापरा धीना निपतिता पृथिवी पीठे तावदाकाशमार्गादागत्य सनत्कुमारेण स विद्याधरो मुष्टिप्रहारेण व्यापादित सनत्कुमारेण तस्या वृत्तान्त कथित: परिणीता च सा सुनन्दाभिधाना कन्या सास्य स्त्रीरत्नं भविष्यति स्तोकवेलायां तत्र वज्रवेग विद्याधरभगिनी सन्ध्यावली समागता भ्रातर व्यापादित दृष्ट्वा कोप मुपागता पुनरपीदं नैमित्तिकंवच: स्मृतिपथमागतं यथा तव भ्रातृवधकस्तव भर्त्ता भविष्यतीति मत्वा कुमारस्यैवं विज्ञप्ति चकार यदहमिहत्वां विवाहार्थमायातास्मीति सनत्कुमारेण सा तत्रैव परिणीता अत्रांतरे सनत्कुमारसमीपे द्वौविद्याधर नृपौ समायातौ ताभ्यां प्रणामपूर्वं कुमारस्यैवं भणितं देव अशनिवेग विद्याधरो विद्याबलमज्ञात पुत्र मरणवृत्तान्तस्त्वया समयोद्धुमायाति तदन्तश्चन्द्र वेगभानुवेगाभ्यां आवां हरिचन्द्र सेनाभिधानौ निजपुत्रौ प्रे पितौरहसि संनाहयप्रेषित: आवां अस्मत्पितरौभवत्से वार्थं समागता: तदनन्तरं तत् समागतौ चन्द्रवेगभानुवेगौ सनत्कुमारस्यसाहाय्याय सन्ध्यावल्या प्रज्ञप्ती

विगाद्दता चन्द्रवेग भानुवेग सहित सनत्कुमार स्वग्रामाभिमुख चलित तावता अग्निवेग सैन्यसहित समायातस्तेन सम प्रथमचन्द्रवेग भानुवेगौ युद्ध प्रवृत्तौ चिरकाल युद्ध कृत्वा तयोर्बल भग्न तत स्वयमुत्थित सनत्कुमारस्तेन अग्निवेगेन समघोर युद्धमारब्ध प्रथम महोरगास्त्र कुमारस्याभिमुख मुक्त तद् कुमारेण मुष्टिनैवनिहित पुनस्तेन आग्नेय अस्त्र मुक्त तत्कुमारेण वरुणास्त्रेण निहत पुनस्तेन वायव्यास्त्र मुक्त कुमारेण शैलास्त्रेण प्रतिहत ततो गृहीत धनुर्बाणान् मुञ्चन् कुमारस्त निर्जीवमिव चकार पुनर्गृहीत करवाल स सनत्कुमारेण छिन्न दक्षिणकर कृत ततो द्वितीयकरेण बाहुयुद्ध मिच्छतस्तस्याभिमुख आयात तस्य कुमारेण शिरश्छिन्न तदानी अग्निवेग विद्याधर रक्षीरनेक विद्याधरै सहिता सनत्कुमारेण सङ्क्रान्ता ततोऽग्निवेग विद्याधर परिहृत सनत्कुमारो नभोमार्गाद्विद्याधर रथेन समुत्तीर्य तदावासे पुनरायात दृष्टस्तत्र हर्षिताभ्या उभाभ्या ताभ्या आर्यपुत्र स्वागत अत्र च समस्त विद्याधरै सनत्कुमारस्य राज्याभिषेक कृत सुखेनात्र विद्याधर राजसेवित सनत्कुमारस्तिष्ठति अन्यदा चन्द्रवेगेन विज्ञप्त यथा सनत्कुमार देव ममपूर्व अर्चिमालि मुनिना एवमादिष्ट यथेद तव कन्याशत भानुवेगस्य चाष्ट कन्याय परिणेष्यति सोऽवश्य सनत्कुमारनामा चतुर्थचक्री भविष्यति सहतोमासमध्ये मानसरोवरे समेष्यति तत्र व्यसनापतित सरसिस्नान असिताक्षोयक्ष पूर्वभववैरीद्रक्ष्यति स पूर्व भववैरी कथमिति सनत्कुमारेण पृष्टे चन्द्रवेगोमुनिमुखश्रुत तत्पूर्व भववृत्तान्त प्राह अस्ति काञ्चनपुर नाम नगर तत्र विक्रमयशोनाम राजा तस्य पञ्चशतानवत प्रयावर्त्तन्ते तत्र नागदत्त सार्थवाहोऽस्ति तस्य रूपलावण्य सौभाग्य यौवनगुणै सुरसुन्दरीभ्योऽधिका विष्णुसिरीनाम भार्यास्ति सान्यदा विक्रमयशो राज्ञा दृष्टा मदनातुरेण तेन स्वान्त पुरेक्षिप्ता ततो नागदत्तस्तद्विरहया उन्मत्तो भूतएव विलपतिहा चन्द्रानने आगता दर्शनमे देहीति विलपन् काल नयति विक्रमयशो राजानुमुक्त सकल राजकार्योऽगणितजनापवादस्तया विष्णुश्रियासह अत्यन्तरति प्रसक्त काल नयति पञ्च

यतान्त पुरोणां नामानि गृह्णाति अनग्रदाताभिः कार्मणादियोगेन विश्रुश्रीर्व्यापादिता ततो राजा तस्या मरणेनात्यन्त शोकार्त्तोऽश्रुत जलभ्रनयनो नागदत्तएवोन्मत्तोभूतो विश्रुश्रीकलेवरं वह्नि सात्कर्तुं न ददाति ततो मन्त्रिभिर्नृपः कथमपि वञ्चयित्वाऽरण्ये तत्कलेवरं त्यक्तं राजा च तत् कलेवर मपश्यन् परिहृतान्नपान भोजन स्थितः मन्त्रिभिर्विचारितं एष तत्कलेवर दर्शन मंतरेण मरिष्यतीति अरण्ये नीत्वाराज्ञ स्तत्कलेवरं दर्शितं राज्ञा तदानीं तत्कलेवर गलत्पूतिनिवहं निर्यत्कृमिजाल वायस कर्षित नयनयुगल चण्ड खगतुण्डखण्डितं दुरभिगन्धं प्रेक्ष्य एवमात्मानं निन्दितुमारब्धं रेजीवयस्य कृते त्वया कुलशीलजाति यशो लज्जाः परित्यक्ताः तस्ये दृशो अवस्थाजाता ततो वैराग्यमार्गं प्राप्तो राजाराज्यं राष्ट्रं पुरं स्वजनवर्गञ्च परिहृत्य सुव्रताचार्य समीपे निष्क्रान्तः ततश्चतुर्थ षष्ठाष्टमादि विचित्रतपः कर्मभिरात्मानं भावयन् प्रान्ते संलेखनां कृत्वा सनत् कुमारदेव लोकेगतः ततश्च्युतो रत्नपुरे श्रेष्ठि सुतोजिन धर्मोजातः स च जिनवचन भावितमन सम्यक्त्वमूलं द्वादशविधं श्रावक धर्मं पालयन् जिनेन्द्र पूजारतः कालं गमयति इतश्च सनागदत्तः प्रिया विरह दुखितो भ्रान्त चित्त आर्त्तध्यान परिक्षिप्त शरीरो भूत्वा बहुतिर्यग्योनिषु भ्रान्त्वा ततः सिंहपुरेनगरेऽस्मिन् शर्मनामाद्विजो जातः कालेनत्रिदण्डि व्रतं गृहीत्वाद्विमासचपणरतो रत्न पुरमागतः तत्र हरिवाहनो नाम राजा तापस भक्तस्तेन तपस्वी आगतः श्रुतः पारणकदिने राज्ञानि मन्त्रित स गृहमागतः अत्रान्तरे सजिन धर्मनामा श्रावकस्तत्रागतः तं दृष्ट्वा पूर्वभवजात वैरानुभावेनरोषारुण लोचने न मुनिनाएव मुक्तराज्ञः यदा त्वं मां भोजयसि तदास्य श्रेष्टिन पृष्टौस्थालं विन्यस्यमां भोजय अन्यथा नाहं भोक्ष्ये राज्ञा उक्तमसौ श्रेष्टोमहान् वर्त्तते ततोऽपरस्य पुरुषस्य पृष्टौ त्वं भोजनं कुरु स प्राह एतस्य पृष्टा वेव भोजनं करिष्ये ना परस्येति राज्ञा तापसानुरागेण तत् प्रतिपन्नं राज्ञो वचनात् श्रेष्टिना पृष्टौ स्थालमारोपितं तापसेन तत् पृष्टौ दाह पूर्वकभोजन कृतं श्रेष्टिना पूर्वभव दुष्कर्म फलं ममोपस्थिति मिति मन्यमानेन तत्सम्यक् सोढ मिति स्थालीदाघेन तत्

पृष्टोचत जात तत सतापसस्तथा भुक्ता स्व स्थानेगत श्रेष्ठ्यपि [illegible] गृहे गत्वा स्व कुटम्बवर्ग प्रतिबोध्यजैनदीचा जग्राह ततो नगरान्निर्गतोगिरि शिखरेगत्वा न ग्रनमुखचार पूर्वदिगभि मुख मासार्द्ध यावत्कायोत्सर्गेण स्थित एव शेषास्वपि दिक्षु तत पृष्टिचते काक शिवादिभिर्भचित सम्यग् तत्पीडा सहमानो मृत्वासौ धर्म कल्पे इन्द्रोजात सतापसोपि तस्यैव वाहन ऐरावणोजात ततश्च्युतोऽथ ऐरावणो नरतिर्यक्षु भ्रान्त्वाऽसिताचो जात शक्रोपि ततश्च्युत्वाहस्तिनाग पुरे सनत् कुमारो च क्षीजात एव असिताचयचस्य भवता सह वैरकारणमिति मुनि नोक्तं मयातवान्तरया स निमित्त भानुवेग विसर्जयित्वा प्रियसङ्गम पुरोनिवेश पूर्व तव भानुवेगेन कन्यापरिणायिता मुक्तो मयैव कारणेनत्व तद्वन्दने एव करिष्याम इति विचार्य तदा विद्याधरास्तत्र तवन्त ततो विज्ञपयामि देवमन्य स्व मेकन्याशतपाणि ग्रहण ता अपि तव भवन्तु स्व कमल पश्यति एव भवत्विति कुमारायोक्ते स चन्द्रवेग कुमारेण सम स्व नगरेगत तत्र कुमारेण कन्या शत परिणीत पुनरत्रागतश्च दशोत्तरेण कन्याशतेन सह भोगान् भुंक्ते कुमार अद्य पुनरेव मुक्त कुमारेण यथाद्य गमव्य यतास्माभिर्विचोजित साम्प्रतमत्रायातस्य कुमारस्य पुर प्रेक्षण कुर्वता अस्माक कुमार पत्नीना भवद्दर्शन जातमिति अत्रान्तरेरति गृहशय्या उत्थित कुमार महेन्द्रसिंहेन सम विद्याधरपरिवृती यै ताश्च गत अवसर लब्ध्वा महेन्द्रसिंहेन विज्ञप्त कुमारतव जननी जनकौ त्वद्दिदर्शनौ दु खेन काल गमयत ततस्तद्दर्शन प्रसाद क्रियता इति महेन्द्रसिंह वचनानन्तरमेव महतागमनस्थित विद्याधर विमानहयगजादि वाहनारूढ विद्याधर वृन्दस महैन हस्तिनागपुरे समाप्त कुमार आनन्दिताश्च जननी जनक नागरजना ततो महत्यावि भूत्याश्च वेन राज्ञा सनत् कुमार स्व राज्ये अभिषिक्त महेन्द्र सिंहश्च सेनापति [illegible] जननी जनकाभ्या स्थविराणामन्तिके प्रव्रज्या गृहीता स्वकार्यमनुष्टित सनत् कुमारोपि प्रवर्द्धमानकोश बलसारो राज्य मनुपालयति उत्पन्नानि चतुर्दशरत्नानि नवनिध यश कृता च तेषा पूजा तदनतर [illegible] रत्नदर्शित मार्गोमागधवरदा

सप्रभासिसिन्धु खण्ड प्रतापादि क्रमेण भरतचेत्रं साधितवान् कुमारः हस्तिनागपुरे चक्रवर्त्ति पदवीं पालयन् यथेष्टं सुखानि भुंक्ते शक्रेणावधि ज्ञान प्रयोगात्तं पूर्वभवे स्वपदाधि रूढं ज्ञात्वा महताहर्षेण वै श्रमणोऽनुज्ञप्तः सनत् कुमारस्य राजाभिषेकं कुरु इमं च हारं वनमालां छत्रं मुकुटं चामरयुगलं कुण्डलयुगं दूष्य युगं सिंहासनञ्च पादपीठञ्च प्राभृतं कुरुशक्रेण तव वृत्तान्तः पृष्टोस्तीति ब्रूयाः वै श्रमणोपि शक्रादत्तं गृहीत्वागजपुरनगरे समागत्य तत् प्राभृत चक्रिणः पुरोमुक्तवान् शक्र वचनं चोक्तवानिति पुन शक्रेण तिलोत्तमारम्भो देवांगने तत तदभिषेक करणाय प्रेषिते चक्रिणोनुज्ञाग्टहीत्वा विकुर्वितयोजन प्रमाण मणिपीठो परिरचितमणिमण्डपान्त स्थापि ते मणि सिंहासने कुमारं निवेश्यकनक कलशाहृतक्षीरोदजलधाराभिर्धवलगीतानि गायन्त्यो देवोदेवाभ्यषिञ्चन् रम्भाति लोत्तमादेव्यो तदानीं नृत्यं कुरुत महामहोत्सवेन कुमारमभिषिच्य वै श्रमणादयः स्व लोकं जग्मुः चक्र्यपि भोगान् भुञ्जन् कालं गमयति अन्यदा सुधर्म सभायां सौधर्मेन्द्रः सिंहासने अनेक देव देवीसेवितः स्थितोस्ति अत्रांतरे एकईशान कल्प देव सौधर्मेन्द्र पार्श्वे आगतः तस्य देह प्रभया सभास्थित देव देह प्रभाभर सर्वतोनष्टः आदित्योदये चन्द्र ग्रहादय इवनिः प्रभा सर्वे सुराजाता तस्मिन् पुनः स्वस्थानेगते देवैः सौ धर्मेन्द्रः पृष्टः स्वामिन् केन कारणेन अस्य देवस्य दृशीप्रभाजातास्ति शक्रः प्राह अनेन पूर्वभवे आचाम्ल वर्द्धमानतपोखण्डं कृतं तत् प्रभावादस्य देहे प्रभा ईदृशी जातास्ति देवैः पुनरिंद्रः पृष्ट अन्योपि कश्चिदीदृशो दीप्तिमानस्ति नवा इन्द्रेण भणितं यथा हस्ति नागपुरे कुरुवंशेस्ति सनत् कुमारनामा चक्री तस्य रूपं सर्वदेवेभ्योप्यधिकमस्ति इदं शक्र वचो अश्रद्दधानौ विजय वै जयन्तौ देवौ ब्राम्हण रूपौ आगतौ प्रतीहारेण मुक्त द्वारौ गृहान्तः प्रविष्टौ राजसमीपं गतौ दृष्टयतैलाभ्यङ्गं कुर्वन् राजातीवविस्मितौ देवौ शक्रवर्णितरूपाधिक रूपन्तौ पश्यन्तौ राज्ञा पृष्टौ किमर्थं भवन्तौ अत्रायातौ तौ भणतः देव भवद्रूपं त्रिभुवने वर्ण्यते तद्दर्शनार्थं कौतुकेन आवा मनायातौ ततोति रूपगर्वितेन राज्ञा तौ उक्तौ भो भो

विप्रौयुवां किं मद्रूपं दृष्टं स्तोकं कालं प्रतीक्षेथां यावदहंस्नानं समासुपविशामि एवमस्त्विति प्रोच्यनिर्गतौ द्विजौ चक्रयपि शीघ्रं मज्जनं कृत्वा सर्वा गोपाङ्ग शृङ्गारं दधत् सभायां सिंहासने उपविष्टं अकारितौ द्विजौ ताभ्यां तदा चक्रि रूपं दृष्टा विषण्णाभ्यां भणितं अहो मनुष्याणां रूपं लावण्य यौवनानि क्षणं दृष्टं नष्टानि तयोर्हि जयोरेतद्वच श्रुत्वा चक्रिणा भणितं भोकिमेवं भवन्तौ विषण्णौ मम शरीरं निन्दतं ताभ्यां भणितं महाराज देवाना रूपं यौवनं तेजांसि प्रथमवयादारभ्यपण्मासशेषायु समयं यावदवस्थितानि भवन्ति यावज्जीवं नहीयन्ति भवतां शरीरे तु आश्चर्यं दृश्यते यत्तद्रूपलाव ण्यादिकं साम्प्रतमेव दृष्टं नष्टं राज्ञाभणितं कथमेव भवद्भ्यां ज्ञातं ताभ्यां शक्रप्रशंसादिकं सर्वोपि वृत्तान्तः कथितं चक्रिणा तु केयूरादि विभूषितं बाहुयुगलं पश्यताहारादि विभूषितं मपि स्ववक्ष स्थलं विवर्णमुपलक्ष्य चिन्तितं अहो अनित्यता संसारस्य असारताशरीरस्य एतावन्मात्रेणापि कालेन मच्छरीरस्य यौवनं तेजांसि नष्टानि अयुक्तं रस्मिन् भवे प्रतिबन्धं शरीरमोहोऽज्ञानं रूपं यौवनाभिमानो मूर्खत्वं भोगासेवनं उन्मादः परिग्रहो ग्रह इव ततः एतत्सर्वं व्युत्सृज्य परलोकहितं संयमं गृह्णामीति विचार्य चक्रिणा पुत्रं स्वराज्येऽभिषिक्तं स्वयं संयमग्रहणाय उद्यतो जातः तदानी देवदेवीभ्यां भणितं अए इरिय धीरं तु मे चरियं नियं वस्स पुव्व पुरिसस्स भरह महानरवइणो तिह्लु अणविक्खायकित्तिस्स १ इत्याद्युक्त्वा देवौ गतौ चक्र्यपि तदानीमेव सर्वं परिग्रहं परित्यज्य विरतः चार्वसमीपे प्रव्रजितः ततः स्त्रीरत्न प्रमुखाणि सर्वरत्नानि शेषाधरमण्यः सर्वेपि नरेन्द्राः सर्वसैन्य लोकानवर्षाणि यावत्तमामागानुलग्ना तेन संयमिनासिंहावलोकनन्यायेन दृष्ट्यापि न विलोकिता। षष्ठ भक्तेन भिक्षानिमित्तं गोचर प्रविष्टस्य प्रथममेव अजातक्रस्य गृहस्थेन दत्तं तक्रं द्वितीय दिवसे च षष्ठं एव कृतं पारणके प्रान्तनीरसाहारकरणात्तस्यैते रोगाः प्रादुर्भूताः कण्डू १ ज्वर २ कास श्वास ४ स्वरभङ्ग ५ अक्षिदुःख ६ उदरव्यथा ७ एताः सप्त व्याधयः सप्तशत वर्षाणि यावदध्यासिता उग्रतपः कुर्वतस्तस्य

आमर्षौषधी १ ०खेलौषधी १ विप्पौषधी २ जल्लौषधी ४ सर्वौषधी ५ प्रभृतयो लब्धय. सम्पन्ना: तथाप्यसौ स्व शरीर प्रतीकारं न क रोति पुन: शक्रेणैकदा एवं प्रशंसित: अहो पश्यन्तु देवा: सनत्कुमारस्य धीरत्वं व्याधिकदर्थितोप्ययं न स्ववपु. प्रतीकारं कारयति एतदिन्द्रवचन मश्रद्दधानौ तावेवदेवौ वैद्यरूपेण तस्य मुने: समायातौ भणितवन्तौ च भगवन् तव वपुष्यावां प्रतीकारं कुर्व: सनत्कुमार स्तदानीं तूष्णीं कएवस्थित: पुनस्ताभ्यां भणितं तथैव मुनिर्मौनभाक् जात: पुन: पुनस्तथैव तौ भणत: तदा मुनिना भणितं भवन्तौ किं शरीर व्याधिस्फोटकौ किम्वा कर्मव्याधिस्फोटकौ ताभ्यां भणितं आवां शरीर व्याधिस्फोटकौ तदानीं सनत्कुमारमुनिना स्वमुखथूत्कृतेन घर्षिता स्वाङ्गुली कनकवर्णा दर्शिता भणितञ्च अहं स्वयमेव शरीरव्याधिं फेटयामि यदिमे सहनशक्तिर्नस्यात्तदेति युवां यदि संसार व्याधिस्फोटनसमर्थौ तदातंस्फोटयथ: तौ देवौ विस्मित मनस्कौप्रकटितस्वरूपौ एव मूचतु: भगवन् त्वमेव संसारव्याधिस्फेटन समर्थोसि आवाभ्यांतु शक्रवचनमश्रद्दधानाभ्यामिहागत्यत्वं परीक्षितौ यादृश: शक्रेण वर्णि तस्तादृश एवत्वमसीत्युक्त्वा प्रणम्य च स्वस्थानं गतौ भगवान् सनत्कुमारस्तु कुमारत्वे पञ्चाशद्वर्ष सहस्राणि चक्रवर्त्तित्वे वर्षलक्षं श्रामण्ये च वर्षलक्ष्य मेकं परिपाल्य संमेत शैलशिखिरङ्गत: तत्र शिलातले आलोचना विधानपूर्वं मासिकेन भक्तेन कालंकृत्वा सनत्कुमार कल्पे देवत्वेनोत्पन्न: ततश्चुतो महाविदेहे वासे सेत्स्यति इति सनत्कुमार दृष्टान्त: ३७ चइत्ता भारहंवासं चक्कवट्टी महड्ढिओ सन्ती सन्ती करेलोए पत्तोगइ मणुत्तरं ३८ पुन: शान्ति. शान्तिनाथ: प्रस्तावात्पञ्चमचक्री अनुत्तरां गतिं प्राप्त: मोक्षप्राप्त: कथम्भूत: शान्ति: लोके शान्तिकर: शान्तिं करोतीति शान्तिकर: इति विशेषणेन

सूत्र: तवं चरे ॥३७॥ चइत्ता भारह वासं चक्कवट्टी महड्ढिओ संतीसंति करेलोए पत्तो गइ मणुत्तर ॥ ३८ ॥ इक्खागरायवस

भाषा: करोलोके शांतिनामाचक्रवर्त्ति शांतिनो करणहार प्राप्त: गतिं अनुत्तरां अनुत्तर प्रधान मुक्ति गत्ति तीहां प्राप्तहुवो ३८ इक्ष्वाकुवंश वृषभ सम इक्ष्वाकुवंसने

भिन्न कुलरेली नृड अन्नजश्च निम्भिन्न सुहासुही कम्म परिणामी १ अपरेण मन्त्रिणाभणितं पोतनाधिपतेर्विद्योतेन समादिष्टो न पुनः [illegible] यित तच्छ्रुत्वो [illegible] बभाण च
ततः सप्तमदिवसान् यावदपरः कोपि पोतनाधिपतिर्विधीयते सर्व्वैरप्युक्तमयमुपायः साधुमयोक्तं मज्जीवित रक्षार्थतेऽपरजीववध कार्यं क्रियते [illegible]
तर्हि यत्त प्रतिमायाराज्याभिषेकः क्रियते एवं मन्त्र यित्वा सर्व्वेपि यत्त प्रतिमापोतन पुरेराज्येऽभिषिक्ता सप्तदिवसान् यावत् मया पौषधागारेगत्वा
पौषधा एव कृता सप्तमदिवसमध्याह्न समये गगन मार्गेऽकस्मात् मेघ समुत्पन्नः स्फुरिताविद्युल्लता इतस्ततः परिभ्रम्य यत्त प्रतिमाविनाशिता अष्टमे
दिवसेचाह पौषध शालातोनिर्गत्यविसेण स्व भुवने स मायात तं नैमित्तिकं कनकरत्नादिभि पूजितवान् पुनरहं नागरिकैः पोतनराज्ये अभिषिक्तः
तदिदमस्मिन्नगरे विविध महोत्सव कारणमिति श्रीविजयेनोक्तेऽमित तेज प्राह अविसम्वादनिमित्तं सोभनोरक्षणो पाय इत्युक्त्वामित तेजराजा स्वस्थानं
गतवान् अन्यदा श्रीविजयराजा सुतारया समं वनेरन्तुं गतः सुतारया तत्र कनक मृगो दृष्टः श्रीविजयस्योक्तं स्वामिन्नमेनं मृगं आनीयदेहि मम
क्रीडार्थं भविष्यति ततः श्रीविजयराजा तद्ग्रहणार्थं स्वयमेव प्रधावितो नष्टो मृगस्तत् पृष्टिं राजानत्यजति कियन्ती भुवं गत्वा उत्पतितो मृगः तावता
सुतारा कुर्कुट सर्पेण दष्टा पूत्त्कार अहं कुर्कुटसर्पेण दष्टाहाप्रियमांत्रायस्वेति श्रुत्वा श्रीविजयस्त्वरितं पश्चादायात तावतासुतारापरत्वमुपागता
राजा च शोकापरवशस्तया सम चितायां प्रविष्टः उद्दीप्तोज्वलनः तावतास्तोक वेलायां समागतौ द्वौ विद्याधरौ तत्र एकेन सलिलमभिमन्त्र्य चितासिक्ता
वैतालिनी विद्यानष्टा स्वस्थवान् राजाजात बभाण च किमिदमिति विद्याधराभ्यां भणितं आवां अमिततेजस्य स्वकीयौ जिन वन्दननिमित्तं आकाश
मार्गेभ्रमन्तो अशनिघोष विद्याधरेण ह्रियमाणायाः सुतारायाः आक्रन्द शब्दं श्रुतवन्तौ तन्मोचनार्थं आवाभ्यां युद्धमारब्धं ततः सुतारया च प्रोक्तं
अलं युद्धेनयथा महाराज श्रीविजयो वैतालिनी विद्यामोहितो जीवितं परित्यजति तथा तदुद्याने गत्वा शीघ्र कुरुततत आवां इहा यातौ दृष्टस्त्वं वैता

तिन्या मम चिताद्रूप अभिमन्त्रानेन सिक्ताचिता नष्टासादुष्टवैतालिनी स्वस्थावस्थस्वसुस्थित इति अपहृतां सुतारां बालाविपण्ण श्रीविजयोराजा
भणितयताभ्यां राजन् खेद माकुरु स पाप क्वयास्यसि इत्यादि वचनै श्रीविजय राजानमाश्वासतौ विद्या धरौ अमित तेज समीप गतौ ततोऽमित
तेजप्रेषित विद्याधर रचित विमाने स श्रीविजयोपि अमित तेज समीप गत अमित तेज श्रीविजयाभ्यां स सैन्याभ्यां गत्वा तन्नगर वेष्टित अशनि
घोषातिके दूत प्रेषित ततो रागमन श्रुत्वाऽशनि घोषो नष्ट उपयसेयतस्य अचलस्य समीपेगत अमित तेज श्रीविजयावपि तत् पृष्ठौ तत्र यातौ
तत्रापि गतमत्सरौ अशनि एजेन अमित तेज विद्याधरेण सुतारापितानीता मया वसरेणाशनि घोषेण भणित न मया दुष्टभावन सुताराऽपहृता
किं तु विद्यां साधयित्वा गच्छता मया दृष्ट्वा पूर्वस्नेहेन इमा त्यता, न नक्नोमीति वैतालिन्या विद्यया श्रीविजय मोहित्वासुतारा गृहीला स्व नगरे
[illegible] नाम्ना शीलभद्रमकाय तथापि ममापराधं क्षमध्वं सच तच्य इत्याकर्ण्य अमित तेजेन भणित भगवन किं पुन कारण एतस्य अस्या स्नेहो
भूत् ततोऽपन केवली कथयति मगधदेशेऽचलग्रामे धरणी जटी नाम विप्रस्त[illegible] कपिलानाम चेटी तस्या पुत्र कपिलो नाम तेन कर्णं श्रवण,मात्रे ण
विद्यागृहीता गतश्च देशान्तरेरत्नपुरं नाम नगरं तत्र कस्य चिदुपाध्यायस्य मठेगत उपाध्यायेन पृष्ट कस्त्वं कुत आगत कपिले नोक्त अचलग्रामे
धरणीजटविप्रसुत कपिल नामाहं विद्यार्थी अत्रायातस्तवसमीपमिति उपाध्यायेन स बहुमान स्व गृहे रक्षित विद्यामध्याप्य स्वपुत्रीतस्य दत्तासत्यभामा
नाम्नी अन्यदा वर्षा काले स कपिलो रात्रौ स्वयकाणिकघाया कृत्वा वर्षत्येव मेघे स्व गृहद्वारे समायात सत्यभामा च अयस्तिमित वस्त्रो भविष्यतीति
चिन्तयन्ती अपराणि वस्त्राणि गृहीत्वा गृहद्वारे सम समायाता कपिलेन तस्या उक्त अस्ति मम प्रभावो येन वस्त्राणि नक्लिद्यन्ति तावताऽविश्वात
तया मनस्यो इ[illegible] प्रात पाय नग्न एव समायातो वस्त्राणि कक्षायां च निहित वा निश्चयन्य मय हीन कुल इति सा कपिले मन्दस्ने हा[illegible]मिमृपार्श्वे

धरणि जटोविप्रस्तत्कपिल समीपे समायात सत्यभामा च पित्र पुत्रयोर्विरुद्धमाचारं दृष्ट्वा परमार्थं पृष्टोधरणि जट विप्र॰ तेन यथार्थं क. यभाण च श्रीषि
विग्नासत्यभामाकामभोगेभ्योनिर्विणा प्रव्रज्याग्रहणनिमित्तं पृष्ट: कपिल: नमु चत्येष कपिल: तदा इयं गतातन्निवासि श्रीषेणराज्ञ: समीपं गते
भोराजन् मां कपिल समीपान्मोचय येनाहं दीक्षां गृह्णामि राज्ञा कपिलस्योक्तं कपिलो न मनयते राज्ञा पुनस्तस्या उक्तं तावत् त्वं मम गृहेतिष्टयावत्
कपिलं बोधयामीति अन्यदा स राजा स्व पुत्रौ गणिकानिमित्तं युध्यमानौ दृष्ट्वा वैराग्येण विषं भक्षितवान् तत: सिहनिन्दिताऽभि निन्दितानाम्नी
श्रीषेण नृपस्य भार्ये कपिलस्य भार्या सत्यभामा च विष प्रयोगेण कालङ्गता: चत्वारोप्यमीजीवादेव कुरुषु युगलत्वेनोत्पन्ना: तत: सौधर्मे कल्पे गता:
ततश्च्युत्वा श्रीषेण जीवोऽमित तेजो जात॰ अभिनिन्दिता जीव: श्रीविजयो जात सत्यभामा जीव: सुताराजाता स कपिल जीवस्तिर्यग् भवेषु चिरकालं
भ्रान्त्वा क्वचित्तथा विधमनुष्टानं कृत्वाऽग्नि घोष: समुत्पन्न सुतारञ्च सत्यभामा ब्राह्मणी जीवं दृष्ट्वा पूर्वस्नेहेनापहृत्यगत: पुनरप्यमित तेजेन-पृष्टं
भगवन्नहं किं भविको न वा अचल केवलिनाकथितं त्वं भविक इतश्च नवमे भवेतीर्थं करो भविष्यसि एषोपि श्रीविजयस्तव गण धरो भविष्यति तत
एवमाकर्ण्य मित तेज श्रीविजय नृपौ अचलकेवलिनं वन्दित्वागतौ स्व स्वस्थानं अन्यथामित तेज श्रीविजयाभ्यां उद्यानगताभ्यां चारण श्रमणाभ्यां
अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा उक्तं यथा षड् विंशति दिनानि भवतोर्द्वयोरप्यायु: ततस्ताभ्यां मेरौगत्वा कृतो अष्टाह्नि कामहोत्सव: स्व स्वराज्ये च गत्वा स्व स्व
पुत्रौ अभिषिच्य अभिनिन्दिताजगन्नन्दन मुनि समीपे पादपोपगमनं अनशनं विहितं विधिनाकालं कृत्वा प्राणते कल्पे विंशति सागरोपमायुर्देवत्वे
नोत्पन्नौ ततश्च्युतौ इहैव जम्बूद्वीपे पूर्वं विदेहेरमणी विजये शीतायामहा नद्यादक्षिण कूलेसुभगायां नगर्यां प्रेमसागरस्य राज्ञो वसुन्धरा अनङ्ग
सुन्दर्योर्महागर्भे क्रमेण कुमारत्वे नोत्पन्नौ अमित तेज जीवोऽपराजितनामाश्रीविजयजीवोऽनन्त वीर्यनामाजात: तत्रापि प्रतिशत्रुदमितारं व्यापाद्य

उ०टीका
अ०१८
५१०

क्षमेण समदेशत्व यामुन्शव्यमापन्नौ तयोर्यपिता प्रव्याविधानेन मृत्वाऽसुर कुमारेचमरेन्द्रत्वे नोत्पन्न अनन्तवीर्यस्तु काल कृत्वा द्विचत्वारिंशत्क्ष अवर्या
गुनारक प्रथम पृथिव्यामुत्पन्न चमरस्तु पुत्रस्नेहेन तत्र गत्वावेदनोपशम चकार सोपि सम्यिग सम्यक्त सहते अपराजितो वलदेवोभ्रातृविरहदु खितो
निर्गित पुत्र राज्ये जगद्दरगणधर समीपे निष्क्रान्त शुद्धां प्रव्रज्यां परिपाल्य अच्युतेन्द्र त्वेनोत्पन्न अनन्त वीर्यस्तु नरकादुद्धृत्य वैताढ्ये विद्याधरत्वेनोत्पन्न
अच्युतेन्द्रेण स प्रति बोधितो सोप्रव्र ज्या गृहीत्वाऽच्युतकल्पे इन्द्र सामानि कत्वेनोत्पन्न अपराजितोऽच्युतेन्द्रस्ततश्च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे सीतामहानदी
दक्षिण कूले मङ्गलावतो विजयेरत्न सञ्चय पुर्या क्षेम करोराजा तस्य भार्यारत्न माला तयो पुत्रोवज्राभिधानोजात इतश्च सीविजयजीवो देवायुरनुपाल्य
तस्यैव पुत्रत्वेनोत्पन्न सहस्रायुध इति तस्य नाम प्रतिष्ठित अन्यदापौषधशालायास्थितो वज्रायुधो देवेन्द्रेण प्रशंसित यथाय वज्रायुधो धर्माच्चालयितु न
शक्यते देवैरपि तत एको देवस्तद्वाक्यमश्रद्दधान पारापतरूप विकुर्व्यभयभ्रान्तो वज्रायुधमाश्रित वज्रायुध तव शरण ममास्तु इति मनुष्यभाषया उवाच
वज्रायुधेन तस्य शरण दत्त स्थितस्तदन्तिके पारापत तदनन्तर तत्रैवागतो लावक तेनापि भणितयथा महासत्व एषमया क्षुधाक्रान्तेन प्राप्त ततो मुञ्चैन
मन्यथा नास्ति मम जीवितमिति ततस्तद्वचनमाकर्ण्य वज्रायुधेन भणित नयुक्त शरणागत समर्पयितुं तवापिन युक्तमेतत् यत परप्राणैरप्याप्याणजीवरक्षा
सप्राण अप्राण क्रियमाण कथमनामेद अप्राण यथा जीवित तव प्रिय सर्व्वेषामपि जीवानां तथैवास्ति भयभ्रान्त दीन व्यापादयितु तव न युक्त धर्म्मं कुरु
पाप मुञ्चलावक प्रतिभणति राजन्नहं बुभुक्षित नमे मनसि धर्म्म स्फुटति तत पुनरपि भणित राज्ञा भो महासत्व यदि बुभुक्षितस्तव ततोन्यत्सवमांस
ददामि लावक प्रतिभणतिस्वयव्यापादित जीवमांस दुर्लभितोह न च रोचते मह्यपरव्यापादितमांस राज्ञा भणित यावन्मात्र पारापततुलति तावन्मात्र
ददामि सोप्यवदत् यदि त्व स्वदेहा दुत्कोर्यमांस ददासि तदाह मुञ्चामि तद्राजा प्रतिपन्न ततस्तुष्टी लावक राज्ञा चतुला आनायिता एकस्मिन्पार्श्वे

पारापत प्रचिप्त: एकस्मिन्पार्श्वे स्वदेहा दुत्कीर्णमांसारोपोविहित. राजा यथा २ तत्र मांसं प्रचिपति तथा २ अन्यत्रपार्श्वे पारापतो गुरुतरो देवमा यमा भवति राजा पुनः २ स्वदेहमांस मनग्रलचिपति तं दृष्ट्वा राजलोक. समस्तो हाहारवं चकार पारापतपार्श्वे गुरुभारमवेच्य स्वमांसपार्श्वे राजा स्वयमारूढः एतादृशं वज्रायुधस्य सत्वं दृष्ट्वा विस्मितोदेव. स्वंरूपं प्रकटीकृत्य प्रकामं स्तुत्वा च स्वस्थानंगतवान् अनग्रदा वज्रायुध सहस्रायुधौ पितृपुत्रौ चेमङ्करगणधर समीपे जात वैराग्यौ सहस्रायुध सुत बलिराज्ये भिषिच्य प्रव्रजितौ प्रव्रज्या पर्यायश्च परिपालग्रपादपोपगमन विधिना कालं कृत्वा द्वावपि जनौ परितनग्रैवेयके एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितकौ अह देवौ जातौ अहमिन्द्रसौख्य मनुभूय ततश्च्युतौ इहैव जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावती विजये पुण्ड रीकिण्यां नगर्यां घनरथोराजा तस्यद्वे महादेव्यौ पद्मावती मनोरमती च तयोगर्भे जातौ वज्रायुधौ मेघरथ सहस्रायुधौ दृढरथश्चेति द्विजिन्नतौ ततो कृत ताभ्यां कलाग्रहणं तौ द्वौराज्ये स्थापयित्वा वनरथ स्वयं दीचां गृहीत्वा केवल ज्ञानमुत्पाद्य तीर्थंकरोजातः तयोर्मेघरथ दृढरथयोः पूर्व भवभ्यासतो जिन धर्मदचताऽभूत् अधिगत जीवाजीवादिभावौ तौ सुश्रावकौ जातौ अनग्रदापितुस्तीर्थं करस्य समीपे द्वावपि जनौनिजपुत्रं राज्ये भिषिच्य प्रव्रजितौ तत्राधीत सूत्रार्थेन मेघरथेन विंशति स्थानकैः समर्जितं तीर्थङ्करनाम गोत्रं दृढरथेन शुद्धं चारित्रं आराधितं द्वावपि संलेखनाविधिना कालं कृत्वाऽनु त्तरोपपातिकेषु देवेषु उत्पन्नौ तत्र सर्वार्थसिद्ध विमानेऽनर्गलं सुखमनुभूय मेघरथ कुमारस्ततश्च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे भरतेचेत्रे हस्तिनागपुरे विश्वसेनस्य राज्ञोऽचिरादेव्या. कुचौ भाद्रपद कृष्णसप्तमी चतुर्दश स्वप्नसूचित पुत्रत्वेनोत्पन्न पुनर्ज्येष्ठ कृष्णत्रयोदशीदिनेजन्मसंजात चतुषष्टि सुरेन्द्रैरपि जन्माभिषेकः कृतः उचितसमये गर्भस्थेवास्मिन् भगवति सर्वदेशेषु शान्तिर्जातेति शान्तिरितिनामकृतं मातपितृभ्यां क्रमेणासौ सर्वकलाकुशलोजातः यौवनं प्राप्तः विवाहितः प्रवरराजकन्याः क्रमेण राज्ये स्थापितः पिताचारित्रं गृहीतं शान्तिश्चक्रवर्त्ति पदवीसमायाता उत्पन्नानि चतुर्दशरत्नानि साधितं भरतं षट्खण्ड

समये च निंक्राम्य षोडशवर्षाणि चोग्रविहारेण विहृत्य केवल ज्ञान भाग् जात देवाश्च समवसरणमकार्षुः प्रव्राजिता केवल पर्यायेणघनकालं विहृत्य
संमेतगिरि शिखरेमोक्षमगमत् तस्य भगवतः कुमारत्वे त्रयोविंशति वर्ष सहस्राणि माण्डलिकत्वे च त्रयोविंशति वर्ष सहस्राणि चक्रित्वे त्रयो विंशति
वर्षसहस्राणि श्रामण्ये च त्रयोविंशति वर्षसहस्राणि साद्धानि च सप्तशतानिवर्षाणि अभवन् सर्व्वायुर्हि नवति वर्षसहस्राणि सार्द्ध सप्तशतानि चास्य
बभूव इति श्रीकुन्थुनाथ दृष्टान्त सागरन्तं च इत्ताण भरहं नरवरी सरो अरोय अरयं पत्तो पत्तोगइमणुत्तरं ४० च पुनः अरो अरनामानरवरेश्वरः
सप्तमचक्रीसागरान्तं समुद्रान्तं भरतक्षेत्रं षट् षण्डराज्यन्त्यक्त्वा अरजस्त्वं प्राप्तः सन् अनुत्तरागतिं सिद्धिगति प्राप्तः मोक्षं गत इत्यर्थः चक्री भूत्वातीर्थं
करपदं भुक्त्वा मोक्षं गतइत्यर्थः अत्र अरनाथ दृष्टांत अरनाथस्त्तराध्ययन वृत्तिर्द्दयोपि नास्ति तथापि ग्रंथांतराल्लिख्यते प्राग् विदेह विभूषणे मङ्गला
वतीविजयेरत्न सञ्चया पुरी अस्ति तत्र महीपालनामा भूपालोस्ति प्राज्यं राज्यं भुंक्ते अन्यदा गुरुमुखाद्धर्मं श्रुत्वा स वैराग्य मागतः स तृणमिव
राज्यन्त्यक्त्वादीक्षां लली गुर्वंतिके एकादशाङ्गानि अधीत्यगीतार्थो बभूव बहुवत्सरकोटीः स संयममाराध्य विशुद्ध विंशति स्थानकै अर्हन्नामकर्म
बबंध ततो मृत्वा सर्वार्थसिद्धविमाने देवो बभूव ततश्च्युत्वा इह भरतक्षेत्रे हस्ति नागपुरेसुदर्शननामा नृपो बभूव तस्य राज्ञी देवीनाम्नी बभूव
तस्याः कुक्षौ सोऽवततार तदानीं रेवती नक्षत्रं बभूव तया चतुर्द्दश स्वप्नादृष्टा तत पूर्णेषु मासेषु रेवती नक्षत्रे तस्य जन्म बभूव
जन्मोत्सवस्तदाषट् पञ्चाशत् दिक् कुमारिकाभि चतुः षष्टिसुरेन्द्रैर्निर्मितः तत सुदर्शन राजापि स्व पुत्रस्य जन्मोत्सवं विशेषाच्चकार अस्मिन्
गर्भगते माता प्रौढारत्न मयोऽरस्वप्ने दृष्टः ततोपितास्याऽरइति नाम कृतं देव परिवृतः स वयसा गुणैश्चवर्द्धते स्म एकविंशति सह
स्रवर्षेषु अरकुमारस्य पिता राज्यं दत्तं एकविंशति वर्षसहस्राणि यावद्राज्यं भुक्तवत तस्या शस्त्र कोशे चक्ररत्नं समुत्पन्नं ततो भरतं साध्य

उ०टीका
अ १८
५४१

एकविंशति सहस्र वर्षाणि राज्यचक्रवर्त्ति त्व बभुजे तत स्वामीस्वय बुद्धोपि लोकान्तिक देव बोधितो वार्षिक दान दत्वा षष्टु षष्टि सुरेन्द्र सेवितो वैजयन्त्याख्यागिबिकामारुढ सहस्राम्रवणे सहस्र राजभि सम प्रव्रजित ततयतुष्ठाना षर्मो योणि वर्षाणि छाद्मस्थे विहृत्य पुन सहस्राम्रवणे प्राप्त तत शुक्लध्यानेनध्वस्तपाप कमार केवल ज्ञान प्राप तत सुरै सम वसरणे कृते स्वामी योजनगामिना शब्देन देशना चकार तद्देशना श्रुत्वाकेपि सुश्रावकाजाता केपि च प्रव्रजिता तदानीं कुभ भूप प्रमुख प्रथमोगण धरोजात चत्वारिंशत्सहस्र षष्टि सहस्रा साध्वीजाता साध्व स्वामिनस्तावत् प्रमाणा एव जाता श्रावकाश्चतुरशीति सहस्राधि कलक्षत्रयमाना बभूवु समेत शैलशिखरेमासिकाऽनशनेन भगवानपि वृत देवैर्निर्वाणोत्सवोऽभूत् तत इयर षत्र वृत्ति दृष्टान्त च दशाभारत वासवज्जयहीमहड्ढिओ च दत्ता उत्तमे भोए महापउमोतवच्चरे ४१ हे मुने महापद्मोपि अष्टम चक्री महर्द्धि स्तपोऽचरत् किं कृत्वा भारत वासमत्यक्त्वा पुनरुत्तमान् प्रधानान् भोगान्त्यक्त्वा ४१ अथ महापद्म चक्रवर्त्ति दृष्टान्त इहैव जम्बूद्वीपे भारते वर्षे कुरुक्षेत्रे हस्तिनाग पुर नाम नगर तत्र श्रीऋषभ वंशप्रसूत पद्मोत्तरो नाम राजा तस्य ज्वालानाम महादेवी तस्या सिंहस्वप्न सूचितो विष्णु कुमार नामा प्रथम पुत्रो द्वितीयश्चतुर्दश स्वप्नसूचितो महापद्मनामा द्वावपि वृद्धि गतौ महा पद्मो युवराजा कृत इतश्च उज्जयिन्यां नगर्यां श्रीधर्मनामराजा तस्य नमुचिनामामन्त्री अन्यदा तत्र श्रीमुनिसुव्रतस्वामि शिष्य सुव्रतोनाम सूरिं समवसृत तद्वन्दनार्थं लोक स्वर्वि भूत्यानिर्गत प्रासादोपरिस्थितेन

मूल

चइत्ता भारहवास चक्कवट्टी महिड्ढिओ । चइत्ताउत्तमेभोए महापउमो तवचरे ४१

एरवयंमी एत्तोगइ मणुत्तरं ४०॥

भाषा

यत्त त चरनमरो मुनिराजो प्राप्तो गति अनुत्तरा मुक्ति गति पाम्यो ४० त्यजा भारतवर्ष भरतक्षेत्र छोडीने चक्रवर्त्ती महर्द्धिक चक्रवर्त्ती महापद्म दिवसमभो त्यजा उत्तमान् भोगान् उत्तमभोग छोडीने महापद्मनामपचरेत् महापद्मनामा राजाए तपआदर्यो ४१ एतन्यक्तो साधयित्वा एकछत्र

राज्ञाद्दष्ट पृष्टाश्च सेवका: अकालयात्रया कार्यं लोको गच्छति ततो नमुचिम' त्रिणाभणितं देव अत्र उद्याने श्रमणा समागता तेषां यो भक्तो लोक: स तद्वन्दनार्थं गच्छति राज्ञाभणितं वयमपि यास्याम नमुचिना उक्तं तर्हित्वया तत्र मध्यस्थेन भाव्यं यथाहं वादं क्षत्वातान्नि रुत्तरी करोमि राजा नमुचि सहितस्तत्रगत नमुचिनाभणितं भो श्रमणायदि यूयं धर्मं तत्वं जानीथतर्हिवदथ सर्वेपि मुनय चुद्रोयमिति क्षत्वा मौने न स्थिता: ततो नमुचिर्भृशं रुष्ट: सूरिं प्रतिभणति एष वयस्क: किं जानाति तत: सूरिभिर्भणितं भणाम· किमपि यदि ते मुखं खर्जूति इदं वच· श्रुत्वा अनेकशास्त्र विचक्षणे न चुल्लकशिष्येण भणितं भगवन् अह मेवैनं निराकरिष्यामि इत्युक्ता चुल्लकेन सवादेनिरुत्तरीक्षत' साधूनासुपरिद्वेष' गत रात्रौ च चरहत्या एकाक्येव मुनि बधार्थमागतो देवतयास्तम्भित: प्रभाते तदाश्चर्यं दृष्ट्वा राज्ञालोकेन च भृशन्तिरस्कृतौ विलक्षो भूतो गतो हस्तिनागपुरं महापद्म युव राजस्य मन्त्रीजात: इतश्च पर्वतवासी सिंहबलोनाम राजा स च कोट्टाधिपति रिति महापद्म देशं बिनाश्यकोट्टे प्रविसति ततोरुष्टेन महापद्मेन नमुचि मंत्री पृष्ट: सिंहबलराजग्रहणे किञ्चिदुपायं जानासि नमुचिनोक्तं सुष्टुजानामि ततो महापद्म प्रेरित सैन्यद्रुतोगतोनिपुणोपायेन दुर्गं भंक्ता सिंहबलो बद्ध आनीतश्च महापद्मान्तिके महापद्मे नोक्तं नमुचेयत्तवेष्टं तन्मार्गय नमुचिनोक्तं सांप्रतं वर: कोशेऽस्तु अवसरेमार्गयिष्यामि एव यौवराज्यं पालयतो महापद्मस्य कियान् कालोगत अन्यदा महापद्ममाता ज्वाला देव्याजिनरथ: कारितो अपरसात्रा च मिथ्यात्ववासितयाजिन धर्मप्रत्यनीकयालक्ष्मीनाम्न्या ब्रह्मरथ कारितोभणितश्च पद्मोत्तरो नाम राजा यथा एष ब्रह्मरथ: प्रथम नगर मध्ये परिभ्रमतु जिनरथ: पश्चात्परिभ्रमतु इदं च श्रुत्वा ज्वाला देव्या प्रतिज्ञा क्षता यदि जिनरथ: प्रथमं न भ्रमिष्यति तदा परजन्मनि ममाहार: ततो राज्ञा द्वावपि रथौ निरुद्धौ महापद्मे न स्वजननरा: परमाम धृतिं दृष्ट्वानगरान्निर्गत: केनापि न ज्ञात: परदेशे गच्छन् महाटव्यां प्रविष्ट: तत्र च परिभ्रमन् तापसालयेगत तापसैर्दत्त सम्मानस्तत्रतिष्ठति इतश्च

पाषा नगया नमिनयो राना परिवसति स च कान्ननरेन्द्रेण प्रति रुद्ध ततो महान् संग्रामो वभूवजनमेजको नष्ट तस्मान्त पुरमपोतस्ततो
नष्ट नमेनकस्य राज्ञो नागवतो नाम भार्या सामदनावनो पुत्रा सम नष्टा आगतातततापसाश्रम समाश्वासिता कुलपतिना तत्रैवस्थिता कुमार
मदनावल्यो परस्परमनुरागोजात कुलपतिनातत्माता च तयो परस्पर मनुरागोजात कुलपतिनागवत्यामाता च भणिता मदनावली यथा पुत्रिक
कि नमरसिनैमित्तिकवचन यथा चक्रवर्त्तिनस्त्व प्रथमपत्नो भविष्यति तत कथ यत्र तवाशुराग करोषि कुलपति नापि कुमारस्य विसर्जनार्थं सुत
कुमारत्वमितोगच्छ तदानो त्वरितमेव ततोनिर्गत कुमार एव मनोरथं चकार यथाह मेतस्या सङ्गमेन भरताधिपो भूत्वा ग्रामाकरनगरादिषु
सर्वत्रजिनभवनानिकारयिष्यामीति भ्रमन् कुमारोऽथ प्राप्त सिंधुनदन नाम नगर तत्रोद्यानि कामहोत्सवेनगरान्निर्गतानरानार्यैश्च विविध क्रीडाभि
क्रीडन्ति अग्निवमरि राज्ञ पट्ट हस्तो आलानस्तम्भ उनमूल्य मदह हट्टभित्तिभङ्ग कुर्वन् नगराद्बहिर्युवती जनमध्ये समायात तावत तथा विध दृष्ट्वा
दूरत प्रधावितु असमया तत्रैवस्थिता यावदसौतासामुपरिशुण्डापात करोति तावतादूरदेशस्थितेन महापद्मेन करुणा पूर्णहृदयेनाक्कितो सौ करी
सोपि वेगेन चलित कुमाराभि मुख तदानो ता सवा अपिभणति हाहाऽस्म द्रक्षणार्थं प्रहृत्तोय करिणाहस्यते एष तासु प्रलपन्तीषु पश्यन्तीषु चतयो
करिकुमारयो घोर संग्रामो बभूव सर्वोपि नागरजनस्तत्रा यात सामन्त भृत्यसहितो महसेनराजापि तत्रायात भणित च नरेन्द्रेण कुमार अनेनसम
संग्राम माकुरु कृतान्त इव दुष्टो सौतवविनाशकरिष्यतीति महापद्म उवाच राजन् विश्वस्तोभव पश्यममकलामित्युक्त्वाक्षणेन स मत्तकरिण स्वकलयावशी
कृतवान् आरुह्य त मत्तगज महापद्म स्वस्थानेनीतवान् साधुकारेण त लोका पूजितवान् यथा एष कोपि महापुरुष प्रधान कुलसमुद्भवोस्ति अन्यथा
कथमोदृग रूप विज्ञान चास्य भवति ततो राज्ञा स्वगृहे नीत्वा कुमारस्य विविधोपचारकरण पूर्वक कन्याशत दत्त तेन सम विषयसुख मनुभवतस्तस्य

महापद्म कुमारस्य दिवसास्तत्र सुखेन यान्ति तथापितां मदनावलिं हृदयान्नविस्मारयति अन्यदारजन्यां शय्यातो सौ 'वेगवत्याविद्याधर्याऽपहृतः निद्रा
त्वयेसातेन दृष्टा मुष्टिं दर्शयित्वा साकुमारेणभणिता किं त्वमेवं मामपहरसि तया भणितं कुमार शृणु वैताढ्ये सूरोदयनामनगरमस्ति तत्रेन्द्रधनुर्नाम
विद्याधराधिपतिरस्ति तस्य भार्या श्रीकान्तावर्त्तते तस्याः पुत्रीजयचन्द्रानाम्नी वर्त्तते सा च पुरुषद्वेषिणीनेच्छति कथमपि वरं ततो नरपत्याज्ञयामयासर्वत्र
वरनरेन्द्रान् विलोक्य२ पट्टिकायां लिखिताः सर्वेपि तस्यादर्शितानकोपिरूचितः अनन्तरदामयातस्यस्त्वरूपं दर्शितंतद्दर्शनानन्तरमेवसाकामावस्थयागृहीता
भणितं च तया यद्येष भर्त्ता न भविष्यति तदा वश्यं मयामर्त्तव्यं अन्य पुरुषस्य मम यावज्जीवं निवृत्तिरेव एष तस्या व्यतिकरोमया तन्मातृपितृो ज्ञापितः
ताभ्यां त्वदानयनायग्रह प्रयुक्ता अविश्वसन्त्यास्तस्याविश्वासार्थं मया इयंप्रतिज्ञा कृता यद्यहंतं त्वरितं नानयामि तदा ज्वाला कुलेज्वलने प्रविशामि तत
कुमारयदितव प्रसादेन मम मरणं न सम्पद्यते यथा च मे प्रतिज्ञानिर्वाहो भवति तथा प्रसादं कुरु ततस्तदा श्रया तया महापद्मः सूर्योदये तत्र नीतः
पतिर्मिलितः तेन च सुमुहूर्त्ते तस्याः पाणिग्रहणं कारितः पूजिता च वेगवती इतश्च जयचन्द्रायामातुल भ्रातरौ गङ्गाधरमहीधरनामानौ विद्याधरौ
खेचराधिपतिप्रचण्डौ इमंव्यतिकरं ज्ञात्वा अनेक भट सहितौ महापद्मेनसमं संग्रामार्थमागतौ महा पद्मोपि तयोरागमनंश्रुत्वा सूरोदयपुराद्बहिर्विद्याधर
भट परिवृतोनिर्गतः संलग्नस्तयो संग्राम तदानीं महापद्मेन स्यन्दनाः कुञ्जरा अश्वा सुभटाः परबल सत्काः सर्वेपि बाणैर्विद्धाः भग्नं स्वबलं दृष्ट्वा
गङ्गाधरमही धरौ स्वयमुत्थितौ महापद्मेन उभा वपि हतौ ततो लब्ध जयः समहापद्मः उत्पन्न स्त्री वर्जं सर्वरत्नं प्राप्तनवनिधिर्द्दातिं शत्सहस्र अमण्डले
श्वरसेवितपादपद्म परिणीत एको न चतुः षष्टि सहस्रान्तं पुरी हयगजरथपदातिकोश सम्पन्नो नवम चक्रवर्त्ती जातस्तदापि षट् षण्डभरतराज्यं
समदनावल्यारहित नीरसं मन्यते अन्यदातस्मिन्ना अमपदे गतस्य तस्य महापद्म चक्रिणः तापसैर्महान् 'सत्कारः कृतः जनमेजयेनापि राज्ञामदनावली

तस्य दृष्टातेन परिणीताप्यरोरेव बभूव ततो महापद्म चक्रवर्त्ति ऋद्धि समेतोहस्तिनागपुर प्राप्त प्रणनाम जननीजनकपदान् ताभ्यामधिकस्नेहेन प्रेचित पर्यातरेवैव ममयस्ततो मुनि सुव्रतस्वामिशिष्यो नागसूरी ततोनिर्गत स परिवार पद्मोत्तरराजातवन्दित्वा पुरोनिषण्ण गुरुणा च तत् पुरो भव निर्वेदाननो देशनाकृता तां श्रुत्वा वैराग्यमापन्नो राजा गुरु प्रत्येवमुवाच भगवन्नह राज्य स्वस्य कृत्वा भवदन्तिके प्रव्रजिष्यामि गुरुणाभणित मा प्रतिबन्ध कुर्विति गुरु प्रणम्य नगरे प्रविष्टोराजा आकारितामन्त्रिण प्रधानपरिजनाविष्णु कुमारश्च सर्वेषा मपि राज्ञा एवमुक्त भो भो श्रुयतां भवद्भि मसारासारताप्रमेतावत्कालं वञ्चित यच्छ्रामण्य नानुष्ठितवान तत साम्प्रत विष्णु कुमार निजराज्ये भिषिच्य प्रव्रज्या गृह्णामि ततो विष्णु कुमारेण विज्ञप्त तात ममापि किं पाकोपमैभोगै यत तवमार्गमेवानुसरिष्यामि ततो विष्णु कुमारस्य दीक्षानिश्चय ज्ञात्वा पद्मोत्तरराज्ञा महापद्म आकारितो भणितश्च पुत्र मभिदं राज्य प्रतिपद्यस्वविष्णु कुमारोह च प्रव्रज्यां प्रतिपद्याव अथ विनीतेन महापद्मेन च भणित तात निजराज्याभिषेक विष्णु कुमारस्यैव पुत्र मध पुनरेतस्यैवाज्ञा प्रतीच्छको भविष्यामि राज्ञाभणित वत्समयोक्तोप्यय राज्य न प्रतिपद्यते अवश्य मय मया सम प्रव्रजिष्यते तत शोभनदिवसे महापद्मस्य कृतो राज्याभिषेक विष्णुकुमारसहित पद्मोत्तरराजा सुव्रतसूरिसमीपे प्रव्रजित ततो महापद्मोविख्यात शासनचक्रवर्त्तीजात स्वमाद्य मपर मायकारितो तौ द्वावपिरथौ तयैवमा महापद्मचक्रिणातु जननीसत्को जिनरथोनगरीमध्ये भ्रामित जिनप्रवचनस्य कृता उन्नति ततप्रभृति बहुलोको धर्मोद्यममतिश्चिन शासन प्रतिपन्न तेन महापद्मचक्रिणा सर्वस्मिन्नपि भरतक्षेत्रे ग्रामाकर नगरोद्यानादिषु कारितानि जिनायतनानेक कोटिलक्ष प्रमाणानि पद्मोत्तरमुनिरपि पालित निष्कलङ्क श्रामण्य शुद्धाध्यवसायेन कर्मजाल क्षपयित्वा समुत्पन्न केवलज्ञान सम्प्राप्त सिद्धिमिति विष्णुकुमारमुनि रपि उग्रतपोविहारनिरतस्य वर्द्धमान ज्ञानदर्शनचारित्र परिणामस्य आकाशगमनादि वैक्रियलब्धय उत्पन्ना स कदाचिन्मेरुवत्त गदेहो गगने व्रजति

कदाचिन्मदनवत् दृति रूपवान् भवति एवं नानाविधलब्धिपात्रः संजातः इतश्चते सुव्रताचार्याः बहुशिष्यपरिवृता वर्षा रात्रस्थित्यर्थं हस्तिनागपुरीयाने समायाताः ज्ञाताश्च तेन विरुद्धेन न मुचिना अवसरं ज्ञात्वा राज्ञा विज्ञप्तं यथा पूर्वप्रतिपन्नं मम वरंदेहि चक्रिणा उक्तं यथेष्टं मार्गय नमुचिना भणितं राजन्नहवेद भणितेन विधिनायज्ञं कर्तुमिच्छामि अतो राज्यंमेदेहि चक्रिणानमुचिः स्वराज्येभिषिक्तः स्वयमंतपुरे प्रविश्य स्थितः नमुचिर्यज्ञपाटकमा गम्य यागनिमित्तं दीक्षितो बभूव राज्येभिषिक्तस्य तस्य वर्द्धापनार्थं जैनयतीन् वर्जयित्वा सर्व्वेपि लिङ्गिनोलोकाश्च समायाताः नमुचिना सर्वलोक समक्षं उक्तं सर्व्वेपिलोका मम वर्द्धापनार्थं समायाता जैनयतयः कोपिनायाता एवंच्छलं प्रकाश्य सुव्रताचार्या आकारिताः आगताः नमुचिनाभणिताः भो जैनाचार्यायो यदा ब्राह्मणोवा क्षत्रियोवा राज्यं प्राप्नोति स तदा पाषण्डैरागत्य द्रष्टव्यः इयंलोकस्थितिः यतो राजरक्षितानि तपोधनानि भवंति यूयं पुन स्तब्धाः सर्वे पाषण्ड दूषकाः निर्मर्यादामां निंदथः अतो मदीयं राज्यं मुक्ताऽनयत्र यथासुखं व्रजतयोयुष्माकं मध्ये कोपिनगरे भ्रमन् दृश्यते सर्वेवध्यो भविष्यति सुव्रताचार्यैरुक्तं राजन्नस्माकं राजवर्द्धापनाचारो नास्ति तेन वयं त्वद्वर्द्धापन कृते नायाताः नचवयं किञ्चिन्निंदामः किंतु समभावा स्तिष्ठामः ततः नरुष्टामः प्रतिभणति यदि श्रमणं सप्तदिनोपरि अहं द्रक्ष्ये तमहमवश्यं मारयिष्यामि नात्र सन्देहः एतन्नमुचिवाक्यं श्रुत्वाचार्याः स्व स्थानमायाताः सर्व्वेपि साधवः पृष्टाः किमत्र कर्त्तव्यं तत एकेन साधुना भणितं यथा सदासेवित तपोविशेषो विष्णुकुमारनामा महामुनिः सांप्रतं मेरु पर्व्वतचूलास्थो वर्त्तते स च महापद्मचक्रिणो भ्रातास्ति ततस्तद्वचनादय मुपशमिष्यति आचार्यैरुक्तं तदाकारणार्थं यो विद्यालब्धि संपन्नः स तत्रव्रजतु तत एकेन साधुना उक्तं अहं मेरुचूलां यावद्गगनेगन्तुं शक्तोस्मि पुनः प्रत्यागन्तुं न शक्तोस्मि गुरुणा भणितं विष्णुकुमार एवत्वामिहानेष्यति तथेति प्रतिपद्य स मुनिराकाशे उत्पतितः क्षणमात्रेण मेरुचूलायां प्राप्तः तमायातं दृष्ट्वा विष्णुकुमारेण चिन्तितं किञ्चिद्गुरुकं संघकार्यं समुत्पन्नं यदयं मुनिर्वर्षाकाल

मध्ये समायात तत समुनिर्विष्णुकुमार प्रणम्य आगमन प्रयोजन कथितवान् विष्णुकुमारस्त मुनि गृहीत्वास्तोकवेलया आकाशमार्गेण गजपुरे प्राप्त वन्दितास्तेन गुरव गुर्वाज्ञया साधुसहितो विष्णुकुमार मुनिर्नमुचि पर्षदिगत सर्वै सामन्तादिभिर्वन्दित नमुचिस्तु तथैव सिंहासने तस्थिवान् नमनाक विनय चकार विष्णुना धर्मकथन पूर्व नमुचेरेव भणित वर्षाकाल यावन्मुनयोऽत्र तिष्ठन्ति नमुचिना भणित किमत्र पुन पुनर्वचन प्रयासेन पञ्चदिवसान् यावन्मुनयोऽत्र तिष्ठन्तु विष्णुना भणित तव उद्याने मुनय स्तिष्ठन्तु तत सजातामर्षेण नमुचिनारेव भणित सर्वपाखण्डाधमैर्भवद्भिर्मद्राज्ये स्थेय मद्राज्य त्वरितत्यजत यदि जीवितेन कार्य तत समुत्पन्नकोपानलेन विष्णुनाभणित तथापि त्रयाणा पदान स्थान देहि ततो भणित नमुचिनादत्त त्रिपदीस्थान पश्यन्ति पश्चा बहिर्द्रक्ष्यामि तस्य शिरश्छेद करिष्यामि तत स विष्णुकुमार क्षत नानाविधरूपो वृद्धि गच्छन् क्रमेण योजनलक्ष प्रमाणरूपोजात क्रमाभ्या दर्दर कुर्वन् ग्रामाकरनगर सागराकीर्णा भूमि प्रकम्पयन् शिखरिणा शिखराणिपातयतिस्मत्रिभुवने क्षोभ कुर्वन् स मुनि शक्रेणज्ञात तस्य कोपोपशान्तये शक्रेण गायनदेव्य प्रेषिता ताश्चैव गायन्तिस्मसपरसन्तावश्यो धर्म्मयणदावग्गोदुग्गद्गगमणहेउ कोवोताश्वोयसमकरेसु भयवति एवमादीनि गीतानितावारवार श्रावयन्तिस्म समुनि नमुचिसिंहासनात्पातितवान् दत्तवान् पूर्वापर समुद्रपाद सर्वजन भापयतिस्म ज्ञातवृत्तान्तो महापद्मचक्री तत्रा यात तत्र सकलसमजेन सुरासुरैश्च शान्तिनिमित्त विविधोपचारै रुपशामित तत्प्रभृति विष्णुकुमारस्त्रिविक्रम इतिख्यात उपशान्तकोप समुनिरालोचित प्रतिक्रान्त उग्र यतउक्त चार्षे एए गच्छमिकुलगणसङ्घे अचेइ अविणामेआलोयपडिक्कन्तो सुद्धाजक्लित्ताविउला १ निष्कलङ्क श्रामन्यमनुपाल्य समुत्पन्नकेवल स विष्णुकुमार सिद्ध गत महापद्म चक्रवर्त्यपि क्रमेण दीक्षा गृहीत्वा सुगतिभागभूत् इति महापद्म दृष्टात एगछत्त पसाहित्ता महि माणनिसूरणो हरिसेणो मनुस्सिन्दो पत्तोगइमणुत्तर ४२ पुनर्मुने हरिषेणो मनुष्येन्द्रो हरिषेणनामा नवमचक्री अनुत्तरां गति सिद्धिगति प्राप्त कि कृत्वा महोपृथ्वी

एकछतां प्रसाध्य प्रपाल्य कोदृशो हरिषेणो माणनिसूरण: अहङ्कारि शत्रु मानदलन: ४२ अत्र हरिषेण दृष्टान्त: काम्पिल्यनगरे महाहरि राज्ञी मेरा देव्या. कुक्षौ चतुर्दश स्वप्न सूचितो हरिषेणनामा चक्रवर्त्ती समुत्पन्न: क्रमेण यौवनं प्राप्त: पित्राराज्ये स्थापित: उत्पन्नानि चतुर्दशरत्नानि प्रसाधितश्च भरतं क्षत पट्टाभिषेको हरिषेण उदारान् भोगान् भुञ्जन्कालं गमयति अन्यदा लघुकर्म तया भववासाद्विरक्त: एवं चिन्तितुं प्रवृत्तः पूर्वंकृत सुकृत कर्मवशेनमयात्र दृशोरिद्धि: प्राप्ता: पुनरपि परलोक हितं करोमि उक्तञ्च मासैरष्टभिरह्नावा पूर्वेण वयसा यथा तत्कर्त्तव्यं मनुष्येण यथान्ते सुखमेधते १ एवमादि परिभाव्य पुत्रं राज्ये निवेश्य निष्क्रान्त उत्पन्नकेवलश्च सिद्धिङ्गत. पञ्चदशधनुषि उच्चत्वं दशवर्षसहस्रायुश्च संजातमिति हरिषेण चक्री दृष्टान्तः अन्वितो राय सहस्से हिंसुपरिच्चाईदमच्चरे जयनामो जिणक्खायं पत्तोगइ मणुत्तरं ४३ जयनामा एकादशश्चक्री जिनाख्यातं जिनोक्तं धर्मं चरित्वा च अनुत्तराङ्गतिं प्राप्त: कोदृशो जयनामा राज सहस्रैरन्वित: नृपसहस्रेण परिवृतोजैनींदीक्षां अचरत् पुन: कोदृशो जयनामदम परित्यागी सम्यक् परित्यागी ४३ अत्र जयनामचक्रवर्त्तिदृष्टान्तं: राजगृहे नगरेवप्रगायाराज्ञ्या: कुक्षौ चतुर्दश स्वप्नसूचितो जयनामा पुत्रोजात: क्रमेण संसाधित भरतश्चक्रीजातं राज्यश्रिय मनुभवन् भोगेभ्यो विरक्तोजात: एवं चिन्तितवान् सुचिरमपि उषित्वास्यात् प्रियैर्विप्रयोग: सुचिरमपि चरित्वा

सूत्र

एगच्छत्तं पसाहित्तामहिमाणनिसूरिणो हरिसेणो मणुस्सिंदोपत्तोगइमणुत्तरं ४२॥ अन्निओरायसहस्सेहिंसुपरिच्चाईदमं

भाषा

पृथ्वो भोगवोने महिं अरिमांनदलन: पृथ्वीने विखेवेरीनोमानतेहनो दलणहार हरिषेणो मनुष्येंद्र: हरिषेण मनुष्यमांहि इंन्द्रप्राप्त. गतिं अनुत्तरां उत्तमां उत्कृष्टांगोहतापधानगतमांहिं ४२ अन्वित राजसहस्रैर्युत: हजारराजवियां साथे सुष्टुपरंत्यागी दानशील संयमंचकार राज छोडीनेंदिक्षालीधी

नास्तिभोगेषु त्वसि सुचिरमपि विचिन्त्यत्वायमेकोऽपि धर्म एव स्वेव मुपागतो निष्क्रान्तोऽनुक्रमेण सिद्ध द्वादशधनुर्देहमानो वर्षसहस्रायुश एषा यामोदिति जयचक्रिदृष्टान्त दसन्नरज्ज मुइयच इत्ताण मुणीचरे दसन्नभद्दो निक्खन्तो सक्कसक्केण चोईओ ४४ दशार्णभद्रोराजा साचात् शक्रेण चोदित प्रेरित सन् निष्क्रान्त गृहस्थावस्थातो निसृत पुनर्मोनी सन् अचरत् मुने कर्म मौन मौन अस्यास्तीति मोनि मुनिर्भूत्वा विहार अकरोत् किं कृत्वा दशार्ण राज्य त्यक्ता दशार्णाना देशाना राज्य दशार्णराज्य कीदृश दशार्णराज्य मुदित समृद्ध अत्र दशार्णभद्रदृष्टान्त अस्तिवराटदेशे धनपुर नाम सन्निवेशे तत्र कोमदत्तर पुत्रोस्ति तस्य भार्या दुस्शोलानगरा रचकेण सम चौर्यरति कुर्वन्त्यस्ति अन्यदा तत्र सन्निवेशे नटैर्नाट्य प्रारब्ध तत्र कौतु कं स्त्रोवेष कृत्वा नृत्यन्ति घनोलोक दर्शनाय मिलितोसि सापि तत्रगतास्ति सास्त्रीरूपधर त नर्त्तक प्रेक्ष्य पुरुषश्च ज्ञात्वा कामविह्वलाजाता एक तत्पुरुष प्राह यद्यसौ अनेन वेषेण एषमद्गृहे समागत्य मया सम रमते तदाहमस्मै अष्टोत्तरशत द्रव्य ददामि तेन प्रतिपन्न भणित त्वयवहि एष तव गृहे त्वरितमेव समायास्यति तत सा स्वगृहेगता एषोपि तत् पृष्ठे तद्गृहेगत तया पादशोधनदत्त स भोक्तु मुपविष्ट तथा चौर्य्याभृत भाजन यावदसौ भ क्ते तावतारचक स्तत्रायातो वदत् कपाटमुद्घाटयेति सा नटपुरुषमुवाच त्व तिलगृहोदरे प्रविश्ययावदेन निवर्त्तयामि सतिल गृहोदरे प्रविष्ट बुभुचित सन् कोष्ठस्थान् तिलान् भूक्षयखादति आगत कपाट निधीयतत्रा रच चोरेयोभ्रत पात्र दृष्ट्वा सभोक्तु मुपविष्ट यावत्सैमतितता

सूत्र चरे जयनामो जिणक्खाय पत्तोगइ मणुत्तर ४३ ॥ दसन्नरज्ज मुइयचइत्ताण मुणीचरे। दसन्नभद्दो निक्खतो सक्ख

भाषा जयनामा चक्रवर्त्ति जिने आख्यात कथित प्राप्त गति अनुत्तरा अनुत्तरगति मोचतिहांपोहता ४३ दशार्णराज्य त्यक्त दशार्ण भद्रराजाइ राज्य छोडीने त्यक्तामुनिं चरेत् त्यजीनेयतीहुश्रो दशार्ण भद्रराजा प्रव्रजित दशार्ण भद्रदीघालोघी साचात् शक्रेण प्रेरित प्रत्यक्ष इन्द्रे प्रेर्यो ४४ नमि

वत्तस्था· पतिर्द्वारे समायातः तया उक्तं तलारचस्य शीघ्रमुत्तिष्ट प्रविशास्मिन् तिलगृहोदरे परंदूरे नगन्तव्यं कोणे सर्पस्तिष्ठति त्वया तत्र प्रदेशेन
गन्तव्यं प्रविष्टस्तलारचस्तिल गृहोदरे पतिस्तत्रायात· चौरेयीपात्रं दृष्ट्वा तेन पृष्टं किमेतत् तया उक्तं बुभुचितास्मीति जेमामि स उवाच त्वं तिष्ट अहं
पथ श्रान्तत्वाद्विशेषतो बुभुचितो स्मीति प्रथमं जेमामि तया उक्तं अद्याष्टमीवर्त्तते कथमस्नातो जेमसि ते नोक्तं त्वं स्नानासीति तवस्नाने न मम स्नान
जातमिति प्रोच्य स भोक्तुमुपविष्टः इतश्चतलारचक नट पूत्कार श्रवणे सर्पोयमितिे पूत्करोतीति भीतस्तलारचतिलोदरान्निर्गतो नष्टस्तु तोयमेवावसर
इति ज्ञात्वा स्त्री वेष धरोनरोपि नष्टः पत्याष्टष्टासास्त्री किमेतत् तया उक्तं मयालं साम्प्रतमेव वारितः यद्यष्टम्यामयत्नमस्नातोमाभोजनं कुरुत्वया वाक्या
नेनाद्यभोजनं कर्त्तुमारब्धं अतस्त्वयातदृक्षे सदावसन्तौ इमौ पार्वती महेश्वरौ नंष्टागतौ मदहर उवाच हादुष्ट कृतं मया तं पश्चात्तापं कुर्वन् पुनस्तां
उवाच कोप्यस्त्युपायः यदेतौ पुनरायात· सा उवाच यदिन्यायेनवित्तं उपार्ज्य पूजां कुर्य्यास्तत पुनरेतौ तव गृहे समायास्यतः ततो गतोमदोहरोदेशान्तरे
दशार्णदेशे इचुवाटक कर्म्मणि लग्न दशगद्यानक सुवर्णं लब्धं तथाप्यल्पमिति ज्ञात्वा न तुष्टिं प्राप इतस्ततो भ्रमन् एकदाटव्यां प्रविष्टः पिप्पलतरुमूले
विश्रामं गृह्णाति अत्रांतरे अश्वापहृतो दशार्णभद्रस्तत्रायातस्तं दृष्ट्वा राज्ञापृष्टं कस्त्वं किमर्थमत्रायातः स उवाच यथा स्थितं वृत्तान्तं राज्ञाचिंतितं
असौस्त्रियाविप्रतारितः परदेशे भ्रमन्नस्ति ततस्तस्य स्त्री चरितं उक्त्वासगृहेनीत्वा भोजनादिविहितं राज्ञाचितितं अहो असत्यदेवेपीश्वरादौ कीदृशी
भक्तिर्वर्त्तते मया सत्यदेवेपि श्रीमहावीरेविद्यमानेपि तादृशं भक्ति प्रपञ्चनं न विहितमिति राजायावच्चिंतयति तावदेक प्रतिहार पुरुषेण राज्ञोग्रे एव
मुक्तं भगवान् श्रीमहावीरः समायातः राजापरितुष्टश्चिन्तयति यदिनामेष मदहर पुत्रो विशिष्टविवेकरहितोपि निजदेव पूजा सम्पादनार्थमेव परिक्लि
श्यते ततोस्माभिरीदृशैः सारासारविवेचन विचचणैः समग्रसामग्र्यात्रिभुवनचिन्तामणि कल्पस्य श्रीमहावीरस्य विशेषेण पूजाकार्येति ततः कल्येहं

सवहा तथा योमहावोर वन्दिष्ये यथा केनाप्येव न वन्दित पूर्वं ततोद्वितीय दिवसे कृत प्रभात कृत्य स्नान विलिप्तालङ्कृत देह स्मारूप
योवन लावण्यनेपथ्ययुक्त सर्वाङ्गोपाङ्गालङ्कृतयाचतुरङ्गण्यासेनया सहितो बहुभिर्मन्त्रि सामन्ते श्रेष्टिसार्थवाहैश्च परिवृत भभादि वादित्र
श्रेणिबधिरिति दिगन्तराल्लो मर्थ्यं गोयमानगुणो नृत्यतोभिविलासिनोभि पोषित नेत्ररसो गजेन्द्रारूढो दशार्णभद्र भूपतिर्भगवतो वन्द नार्थ
मायात विशुद्धभावेन भगवान् वन्दित राजा मदहरपुत्रस्य हर्षितवान् ममान्तरे शक्रेण चिन्तित मत्कृतया महाविभूत्यासौ दशार्णभद्र प्रति
बोध याम्यनाति शक्र इद्गयों विभूति विकुर्वितवान् तथाहि ऐरावण हस्तिनोष्टौ दन्ता विकुर्विता दन्ते २ अष्टौ पुष्करिण्यो विकुर्विता पुष्क
रिण्यां २ भग्ने २ पद्मानि पद्मे २ ष्ट २ पत्राणि पत्रे २ द्वात्रिंशद्बद्धनाट्यानि अनया विभूत्या ऐरावणारूढेन शक्रेण प्रदक्षिणी कृत्य भगवान् वन्दित
त तादृश दृष्ट्वा दशार्णभद्रेण चिन्तित अहो खलु तुच्छोऽह यत्तुच्छया विभूत्यागर्व कृतवान् यत [redacted] अहिंद्र भहार्थोवेषमिद्रुम्नि उत्तणाणीयागर्ब्बद
उत्तान्यकरोद्गु मूसगोवाड्डिमासम्म १ अनेन शक्रेण प्रागभवे शुद्धो धर्मं कृत तत ईदृशीलब्धिर्लब्धा ततोऽहमपितमेव धर्म करोमि किं ममाम विषादेन
उक्तञ्च समसत्त्या यथय मन् पुरुप पुरुष किमनत्र मभ्येति पुण्यैरधिकतर चेत्तनुसोपि करोतु तान्येव १ इत्यादि सवेगभावनया प्रतिबुद्ध स्वयोपगम
मात्तपारित्रमोहनोयोभगवन्त प्रत्येव दशार्णभद्रोऽवादीत् भगवन् भवचारकादह निर्विण्णोऽस्मि ततश्चारित्र प्रदानेनानुग्रह मम कुरुभगवता तदानीमेव
महर्षरेण सम स दशार्णभद्रोदीक्षित शक्रेण तदावंदित उक्त च श्रमणमार्गग्रहणीनत्वयैवजित येने हृष्टो ऋद्धि सहसापरित्यक्ता पूर्वं त्वयाभिमान
ग्रन्थेन द्रव्य वन्दन कृतमिति त्वमेव धनगोनाहमिति दशार्णभद्रमुने प्रशसा कृत्वाशक्र स्वस्थान गत वा निति दशार्णभद्र दृष्टांत [नमीनमेइ अप्पाण
सक्ख सक्केण चोइओ चइऊणगेहं वइदेहो सामन्ने पज्जुवट्ठिओ ४५ पुनर्हं मुनेविदेहेप भवो वैदेही विदेहदेशस्वामीनमिनामाट्रपोगेह स्टहवासन्त्यक्त्वाश्रामण्ये

साधु धर्मं पर्युपस्थित: चारित्रयोग्यानुष्टानं प्रत्युद्यतो भूदित्यर्थ: पुन: समुनि: साचात् ब्राह्मण रूपेण शक्रेण प्रेरित: सन् ज्ञानचर्यायां परिचित: सन् आत्मानं नमि इति नयेस्थापयति क्रोधादिकपायरहितो भवतीत्यर्थ: ४५ अथ द्वाभ्यां गाथाभ्यां चतुर्णां प्रत्येकबुद्धानां एकसमये सिद्धानां नामानग्राह करकण्डूकलिंगेसु पञ्चालेसु यदुम्मुहो नमीरायाविदेहेसु गन्धारेसुयनिग्गई ४५ एवं नरिन्दवसहा निक्खन्ताजिणसासणे पुत्ते रज्जे ठवेऊण सामन्नेपज्जु

सूत्र

सक्केण चोइओ ४४॥ नमीनमेइ अप्पाणं सक्खं सक्केण चोइओ। चइऊणगेहंवइ देहीसामन्ने पज्जुवट्ठिओ ४५ ॥ कर कंडुकलिंगेसु पंचालेसु यदुम्महे। नमीराया विदेहेसुगंधारेसु यनग्गई ४६॥ एवं नरिंद वसहा निक्खंताजिणसासणे पुत्तं रज्जे ठविऊणं सामन्ने पज्जुवट्ठिया॥ ४७॥ सोवीर राय वसहो चइऊणं मुणीचरे। उदायणो पव्वइओ

भाषा

राजर्षि आत्मान नयति नमिराजाइ आपणो आत्माने नमे साचात् शक्रेणप्रेरित: प्रत्यचइंद्रे प्रेर्यो त्यक्ता गृहत्ववैदेही घरछांडीने विदेहदेश छांड्यो श्रामण्ये पर्युपस्थित चारित्रने विखे उठ्यो ४५ करकंडू कलिंगेषू करकंडू राजाइ कलिंगदेश छांड्यो पंचालेषु पंचालदेशेषु दुमुखो बभूव पंचालदेशने विखे दुम्मुहहुओनमीराजा विदेहेषु विदेहदेशेषु नमीराजाइ विदेहदेशनो राज्यछांड्यो गधारेषु नग्गति: गंधारदेश नगई राजाराज्य छोड्यो ४६ एवं नरेंद्र वृषभा: एतलाए राजा वृषभ समानधोरी निष्क्राता जिनशासने जिनशासनने विखे दीचालीधी पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा पुत्रने राज्य देईने श्रामण्ये पर्युपस्थिता: चारित्रलेइ सावधान धर्मने विखे उद्यत हुआ ४७ सोवीरराज राजा वृषभ: सोवीरदेशनो राजा वृषभसमान त्यक्ता मुनि चरेत् त्यजीने मुनीश्वर हुआ उदायनराजा राज्यंत्यक्ता: प्रव्रजित उदाई राजाइ राज्य छोडीने दीचालीधो प्राप्तोगतिं अनुत्तरां प्राप्त हुयो उत्तमगति ४८ तथैव

वहिया ४६ हे मुने करकण्डुराजा कलिङ्गेषु देशेष अभूदित्याध्याहार च पुन पाञ्चालेषु देशेषु द्विमुखोनृपोभूत् विदेहेषु देशेषु नमीराजाभूत् च पुनर्गन्धा
रेष गन्धारनाम सुदेशेष निर्गतिनामाराजाभूत् एते चत्वार करकण्डू १ द्विमुख २ नमि३ निर्गतिनामानोनरेन्द्र वृषभा राजमुख्या पुत्रान राज्ये स्थाप
यित्वा पश्चात् जिनशासने जिनाज्ञाया श्रामण्ये चारित्रे पर्यवस्थिता चारित्र योग्य क्रियानुष्ठानतत्परा सन्तोनि क्रान्ता ससारात् नि सृता भव
भ्रमणात् विरता आसन इत्यध्याहार सिद्धि प्राप्ता इति भाव एतेषा चतुर्णा प्रत्येक बुद्धानां कथा प्रबन्ध पूर्व नमेरध्ययनतोज्ञेया सौवीररायवसभो च
इत्ताण सुगोचरे उदायणो पव्वइओ पत्तोगइ मणुत्तर ४८ सौवीर राजवृषभ सौवीराणा देशाना राजा सौवीरराज सचासौवृषभश्च सौवीरराज वृष
भोराज्यभार धरण समर्थ सौवीरदेश भूपमुख्य एतादृश उदाय न नामाराजा वीतभयपत्तनाधीशो मौन मुनिधर्म आचरत् किं कृत्वा राज्य परित्यज्य
सच उदायन प्रव्रजित सन् अनुत्तरा प्रधाना गति प्राप्त अथोदायन भूपदृष्टान्त भरतक्षेत्रे सौवीरदेशेवीतभयनाम नगरे उदायनो नाम राजा
तस्य प्रभावती राज्ञी तयो पुत्रोऽभीचिनामाऽभवत् तस्य भागिनेय केशीनामाभूत् स उदायनराजा सिन्धुसौवीर प्रमुख षोडशजनपदानावीत भय
प्रमुख त्रिशत त्रिषष्टि नगराणा महासेन प्रमुखाणा दशराज्ञा बद्धमुकुटाना छत्राणा चामराणा च ऐश्वर्य पालयन्नस्ति इतश्चपाया नगर्या कुमारनन्दी
नाम सुवर्णकारोऽस्ति स च स्त्रीलम्पटो यत्र २ सरूपा दारिका पश्यति जानाति वा तत्र पञ्चशत सुवर्णानि दत्वा ता परिणयति एवञ्चतेन पञ्चशतकन्या
परिणीता एकस्तम्भ प्रासाद कारयित्वा ताभिस्सम क्रीडति तस्य च मित्र नागिलोनाम श्रावकोऽस्ति अन्यदा पञ्चशैलद्वीप वास्तव्यहासाप्रहासाख्य तयोस्त
तयोर्भर्त्ता विद्युन्माली नाम देवोऽस्ति सोन्यदाच्युत ताभिश्चिन्तित कोपि व्युद्ग्राहयाम सोऽस्माक भर्त्ता भवति स्वयोग्यपुरुष गवेषणाय इतस्ततो
भ्रमन्त्यौ ताभ्या चम्पानगर्या कुमारनन्दी सुवर्णकार पञ्चशत स्त्री परिवृतो दृष्ट ताभ्या चिन्तित एष स्त्रीलम्पट सुखेन व्युद्ग्राहयिष्यते

कुमारनन्दो भणतिके भवंत्यौ कुतः समायाते ते आहतु आवां हासा प्रहासा देव्यौ तद्रूप मोहित कुमारनन्दी सुवर्णकारस्तेदेव्यौ भोगार्थं प्रार्थित वान् ताभ्यां भणितं यद्यस्मद्भोगकार्यं तदा पञ्चशैलद्वीपं समागच्छेः एवं भणिते देव्यौ उत्पतिते गते स्वस्थानं राज्ञः सुवर्णं दत्वापटहं वादय तिस्म कुमारनन्दि सुवर्णकारं यः पञ्चशैलद्वीपं नयति तस्य स धनकोटिं ददाति एकेन स्थविरेण तत्पटहः स्पृष्टः कुमारनन्दिना तस्य कोटि धनं दत्त स्थविरोपि तद्धनं पुत्राणां दत्वा कुमारनन्दिना सहयान पात्रमारूढः समुद्रमध्ये प्रविष्टः यावद्दूरेगत स्तावदेकं वट दृष्ट्वान्स्थविर उवाच तस्य वटस्याधः दूरंवाहनं निर्गमिष्यति तत्र जलावर्त्तोस्तीतिवाहनं भंक्ष्यति त्वं तु एतद्वटशाखामाश्रयेः वटेत्र पञ्चशैलद्वीपात् भारण्ड पक्षिणस्स मायास्यन्ति संध्यायां तच्चरणेषु स्वं वपुः स्ववस्त्रेण दृढं बध्नीयाः ते च प्रभाते इत उड्डीना पञ्चशैलं यास्यन्ति त्वमपितैः समं पञ्चशैलं गच्छेः स्थविरेण एव मुच्यमाने तद्वाहनं वटाधोगतं कुमारनन्दिना वटशाखावलम्बनं कृतं भग्नश्च तद्वाहनं कुमारनन्दी तु भारण्डपक्षि चरणावलम्बेन पञ्चशैले गतः हासा प्रहासाभ्यां दृष्टः उक्तश्च तव एतेन शरीरेण नावाभ्यां भोगो विधीयते स्व नगरे गत्वा गुष्टत आरभ्य मस्तकं यावज्ज्वलनेन स्व शरीरंदह यथा पञ्चशैलाधीशो भूत्वाऽस्मद्भोगेच्छां पूर्णीं कुरु तेनोक्तं तत्राहं कथं यामि ताभ्यां करतले समुत्पाद्य स नगरोद्याने मुक्तः ततोलोकस्तं पृच्छति किं त्वया तत्राश्चर्यं दृष्टं स भणति दृष्टं श्रुतं अनुभूतं पञ्चशैल द्वीपं मया यत्र प्रशस्तेहासा प्रहासाभिधे देव्यौस्तः यत्र कुमारनन्दिना तत्र स्वांगुष्ठेऽग्निमाधा यित्वा मस्तक यावत् स्व शरीर ज्वालयितु मारब्ध तदा मित्रेणायं वारितः भोमित्र तवेदं कापुरुषजनो चितं चेष्टितं न युक्तं महानुभाव दुर्लभं मनुष्य जन्म माहारयः तुच्छमिदं भोगसुखमस्ति किं च यद्यपि त्वं भोगार्थी तथापि स धर्मानुष्ठानमेव कुरु यत उक्तं धणश्री धणच्छियाणं कामत्थीणञ्च सव्व कामकरो सग्गपवग्गसंगमहेउ जिणदेसिओ धम्मो १ इत्यादि शिक्षावाक्यैर्मित्रेण सवार्यमाणोपि इंगिनी मरणेन समृतः पञ्चशैलाधिपतिर्जातः तस्मिन्नवस्र

श्रावकस्य महान्खेदोजात अहो भोगकार्ये जनाइत्थ क्लिश्यन्ति जानन्तोपिवथ किमत्र गार्हस्थेस्थिता अ इति स श्रावक प्रव्रजित क्रमेण कालं कृत्वा अच्युत देवलोके समुत्पन्न अवधिनास स्व वृत्तान्त जानातिस्म अन्यदा नन्दीश्वर यात्रार्थं सर्वे देवेन्द्राश्चलिता स श्रावकदेवोपि अच्युतेन्द्रेण सम चलित तदा पञ्चशैलाधिपते स्तस्य विद्युन्मालिनाम्नो देवस्य गले पटहोलग्न उत्तारितोनोत्तरति हासा प्रहासाभ्या उक्त इय पञ्च शैलद्वीपवासिनो स्थिति यत् नन्दीश्वरद्वीपयात्रार्थं चलिताना देवेन्द्राणा पुर पटह वादयन् विद्युन्मालि देवस्तत्रयाति ततस्त खेद माकुलगललग्न इम पटह वादयन् गीतानि गायन्तीभ्यां आवाभ्यांसह नन्दीश्वरद्वीपे याहि तत स तथा कुर्व्वन् नन्दीश्वरद्वीपोद्देशेन चलित श्रावकदेवस्त स खेद पटहवादयन्त दृष्ट्वा उप योगे नोपलक्षितवान् भणति च भोल मां जानासि स भणतिक शक्रादिदेवान् न जानाति ततस्त श्रावकदेव तस्य स्व प्राग्भवस्वरूप दर्शयतिकसर्व पूर्व वृत्तान्त माख्याति तत सवेगमापन्न सदेवो भणति तदानीमहं किं करोमि श्रावकदेवो भणति श्रीवर्द्धमान स्वामिन प्रतिमा कुरु यथा तव सम्यक्त्व सुस्थिर भवति यत उक्त जोकारवेइ जिण पडिमजिणाण जियरागदोस मोहाण सो पावेइ अन्नभवे सुहजणण धम्मवररयण १ अन्यच्च दारिद दोहग्ग कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमइओ अवमाणरोयसोआ नहुन्ति जिण बिम्बकारिण २ तत स विद्युन्माली महाहिमवच्छिखराद्गोशीर्षं चन्दन दारूण्यानयित्वा श्रीवर्द्धमानस्वामि प्रतिमा निवर्त्तितवान् ताश्चमञ्जूषायां क्षिप्तवान तस्मिन्नवसरे पश्यासान यावदितस्तती भ्रमत्प्रवाहण वायुभिरास्फाल्य मान विलोकितवान् तत्रगत्वा चासौ त उत्पात उपशामितवान् सां यात्रिकाणा चता मञ्जूषादत्तवान् भणितवाश्च देवाधिदेव प्रतिमाचात्रास्ति यत्रपेय विशेष पूजामाप्नोति तत्रैषदेया देवाधिदेवनाम्नैवेय मुद्घाटियति भवद्भिरनेया स्थिताया न कोप्युपद्रवो भविष्यति ततस्ता लात्वा सा यात्रिकावीतभय पत्तन प्राप्ता तत्रोद्दायन राजा तापसभक्तस्तस्य सामञ्जूषादत्ता कथितश्च सुरवचन मिलितश्च तत्र ब्राह्मणादिको भूरिलोक भणति च गोविन्दाय

नम· प्रत्युता मंजूषानोद्घाटिता तत केचिद्भणन्ति अत्र देवाधिदेवश्चतुर्मुखो ब्रह्मास्ति अन्ये केचिद्वदन्ति अत चतुर्भुजो विष्णुरेवास्ति केचिज्जगुः ति अत्र महेश्वरो देवाधिदेवोस्ति अस्मिन्नवसरे तत्रोदायन राजपट्टराज्ञी चेटकराजा पुत्री प्रभावती नाम्नी श्रमणोपासिका तत्रायाता तया तस्या मंजूषाया: पजां कृत्वा एवं भणति गयराग दोसमोहो सव्वन्नू अट्ठपाडिहेरसंजुत्तो देवाहिदेव गुरुओ अइरामे दंसणंदेउ १ एवं उक्ता तया मंजूषायां हस्तेन परशु प्रहारोद्दत उद्घाटिता सामंजूषा तस्यां दृष्टाऽतीव सुन्दरा स्नान पुष्पमालालंकृता श्रीवर्द्धमानस्वामि प्रतिमाजात जिनशासनोन्नतिः अतीवानन्दिता प्रभावती एवंनभाण सव्वन्नू सव्वदंसण अपुण भवभविय जिणमणाणंदजय चिन्तामणिजय गुरुजय २ जिणवीर अकलपी१ तत्र प्रभावत्या अन्त पुर मध्ये चैत्यगृहंकारितं तत्रेयं प्रतिमास्थापिता तां चत्रिकालं सा पविता पूजयति अन्यदा प्रभावतीराज्ञी तत्प्रतिमाया: पुरोनृत्यति राजा च वीणां वादयति तदानीं स राजा तस्यां मस्तकं न पश्यति राज्ञोऽधृतिर्जाता हस्ताद्वीणा पतिता राज्ञा पृष्टं किं मयादुष्टं नर्त्तितं राजा मौनमालंब्यस्थित: राज्ञा प्रति निर्बंधे उक्तवान् यत्तव मस्तकमपश्यन्नहं व्याकुलीभूतो हस्ताद्वीणां पातितवान् सा भणति मया सुचिरं श्रावकधर्मः न काचिन्मम मरणा द्भीतिरस्ति अन्यदा तत् प्रतिमा पूजनार्थं स्नाता सा राज्ञी स्वचेटीं प्रतिवस्त्राण्यानयेत्युवाच तया च रक्तानि वस्त्राण्यानी तानि राज्ञी क्रुद्धाप्राह जिनगृहे प्रविशन्त्या मम रक्तानि वस्त्राणि ददासीत्युक्त्वा चेटीं आदर्शेण हतवती मर्मणि तत्प्रहार लग्नात् सा मृता प्रभावत्या चिन्तितं हामया निरपराधत्रस जीव वधकरणाद्व्रतं भग्नं अतःपरं किंमे जीवतव्येन ततस्तया राज्ञाराज्ञ उक्तं अहं भक्तं प्रत्याख्यामि राज्ञानेयेति प्रतिपादितं तया पुनस्तत्रैवोच्यते तदा राज्ञा उक्तं यदित्वं देवी भूत्वा मां प्रतिबोधयसि तदा त्वं भक्तं प्रत्याख्याहि राज्ञा तद्वचोंगी कृतं भक्तं प्रत्याख्याय समाधिना मृता देवलोकंगता देवीभूत् तां च प्रतिमां कुब्जा देवदत्तादासी त्रिकालं पूजयति प्रभावती देवस्तु उदायनं राजानं प्रतिबोधयति न च सतं बुध्यते राजा तु तापसभक्तोत:

सदेव श्रापस सहूय कत्वाऽमृतफलानि गृहीत्वागतो राज्ञे दत्तवान् राज्ञा तानि आस्वादतानि पृष्टय तापस क एतानि फलानि तापसो भणति एतन्नगराभ्यर्णेऽस्मदाश्रमस्ति तत्र तानि फलानि सन्ति राजा तेन सम एकाक्येव तत्र गत तापसैस्समाचारे सद्दन्तु मारब्ध राजा ततो नष्ट तस्मिन्नेव वने जैन साधून् ददर्श तेषामसोशरणमाश्रित भय माकुर्व्विति राज्वासित तापसा निहत्ता साधुभिश्च तस्यैव धर्म उक्त धम्मोचेवेत्य सत्ताण सरण भवसायरे देव धम्म गुरु चेव धम्मइत्थोय परिक्लए १ दस अट्ठ दोसरहिश्रो देवोधम्मो विनिउणदय सहिश्रो सुगुरुयबभयारी आरभ परिग्गहावरश्रो२ इत्यादिकोपदेशेन स राजा प्रतिबोधित प्रतिपन्नो जिनधर्म प्रभावतीदेव आत्मान दर्शयित्वा राजान च स्थिरीकत्वा स्वस्थानंगत एव उदायन राजा श्रावकोजात इतश्च गन्धारदेश वास्तव्य सत्यनामा श्रावक सर्वत्र जिनजन्म भूम्यादितीर्थानिवन्दमानो वैताढ्य यावद्गत तत्र शाश्वत प्रतिमा वन्द नार्थं उपवासत्रय कृतवान् तपस्तुष्टया तदधिष्टाढ देव्यास्तस्य शाश्वतजिन प्रतिमादर्शिता तेन च वन्दिता अथ तया देव्यास्तस्मै श्रावकायकामित गुटिकादत्ता तत स निवृत्तो वीतभयपत्तने जीवितस्वामि प्रतिमा वन्दितु मायात गोशीर्ष चन्दनमयीं ता ववन्दे दैवात्तस्यातीसारो रोग उत्पन्न कुब्जया दास्या प्रतिचरित ॥ निरुगजात तुष्टेन तेन तस्यै कामगुणिता गुटिकादत्ता कथितश्च तासा चिन्तितार्थ साधक प्रभाव अन्यदासादासो अह सुवर्ण वर्णा सुरूपा भवामीति चिन्तयित्वा एका गुटिका भक्षितवती सुवर्णवर्णा सुरूपा च जाता ततस्तस्या सुवर्णगुलिकेति नाम जात अनन्तर सा चिन्तयति भोगसुख मनुभवामि एष उदायन राजा ममपिता अपरेमत्तुल्या केपि राजानो न सन्तीति चण्डप्रद्योतमेव मनसि कृत्वा द्वितीया गुटिका भक्षितवती तदानी तस्य चण्डप्रद्योतस्य स्वप्ने देवतया कथित वीत भयपत्तने उदायनराज्ञो दासी सुवर्णगुलिकानाम्नी सुवर्णा वर्णाऽतीव रूपवती त्वद्योग्यास्ति चण्डप्रद्योतेन सुवर्णगुलिकाया समीपे दूत प्रेषित दूतेन एकान्ते तस्या एवकथित चण्डप्रद्योतस्वामी त्वत्ते तया भणित अत्र चण्डप्रद्योत प्रथम मायातु त

पश्यामि पश्चाद्यथा रुच्यातेन सहायास्यामि दूतेन गत्वा तस्या वचनं चण्डप्रद्योतस्योक्तं सोपि अनिलगिरि हस्तिनमधि रुह्य रात्री तत्रायातः पृष्टस्तया रुचितश्च सा भणति यदीमां प्रतिमां साढं नयसि तदाह मायामि नानयेति ततस्तेन तत्स्थान स्थापनयोग्यानया प्रतिमा तदानीं नास्तीति तस्यां रात्री तत्र उषित्वा स्व नगरे पश्चाद्गत तत्र तादृशीं जिन प्रतिमां कारयित्वा पुन रत्रायात स्वां प्रतिमां तत्रस्थापयित्वा मूल प्रतिमां दासीं च गृहीत्वा उज्जयिनींगतः तत्रानलगिरिणा मूत्र पुरीषे कृते तद्गन्धेन वीत भयपत्तन सत्का हस्तिनो निर्मदाजाता उदायनराज्ञया तत्कारणं गवेषितं अनल गिरि हस्तिन पदं दृष्टं उदायने न चिन्तितं स किमर्थं मत्रायात गृहमानुषैरुक्तं सुवर्णगुलिकान दृश्यते राजा उक्तं चेटी चण्डप्रद्योतेन गृहीता प्रतिमां विलोकयततैरुक्तं प्रतिमादृश्यते परं पुष्पाणि म्लानि दृश्यन्ते राज्ञा गत्वा स्वयं प्रतिमाविलोकिता पुष्पम्लान दर्शनेन राज्ञा ज्ञातं नेयं सा प्रतिमा किं त्वनेयति विषन्नेन राज्ञा दूतश्चण्ड प्रद्योतांतिके प्रेषितः मम दास्या नास्तिकार्यं प्रतिमां त्वरितं प्रेषयेति दूतेन चण्डप्रद्योतस्योक्तं चण्डप्रद्योतः प्रतिमां नार्पयति तदा सैन्येन समं ज्येष्टमास एवोदयनश्चलितः यावन्मरुदेशे तत्सैन्यमायातं तावज्जला भावात् तत्सैन्यं तृषाक्रान्तं व्याकुलीबभूव तदानीं राज्ञा प्रभावती देवश्चिन्तितं तेन समागत्यत्रीणि पुष्कराणि कृतानितेषु जललाभात् सर्व्वं सैन्यं सुस्थं जातं क्रमेण उदायन राजा उज्जयिनींगतः कथितवांश्च भो चण्डप्रद्योत तव ममचसाक्षात् युद्धं भवतु लोकेन मारितेन अश्वस्थेन रथस्थेन वा त्वया मया च युद्धमंगी कुरुचण्ड प्रद्योतेनोक्तं रथस्थे नैव त्वया मया चयोद्धव्यं प्रभाते चण्डप्रद्योतः कपटं कृतवान् स्वय अनलगिरि हस्तिन मारुह्य संग्रामांगणे समायातः उदायनस्तु स्वप्रतिज्ञानि र्वाहो रथारूढः संग्रामांगणे समायतः तदानी मुदायनेन चण्डप्रद्योतस्य उक्तं त्वमसत्य प्रतिज्ञोजातः कपटं च कृतवानसि तथापि तव मत्तो मोक्षो नास्तीति भणता उदायनेन रथो मण्डल्यां क्षिप्तः चण्ड प्रद्योतेन तत् पृष्टौ अनलगिरि हस्तीवेगेन क्षिप्तः स च हस्तीयंयपाद

मुत्तिपति तत उदायन शरैर्विध्यते यावत् हस्तीभूमौनिपतित तत् स्कन्धादुत्तरन् प्रद्योतोबद्ध तस्य ललाटे मम दासीपतिरित्यक्षराणि लिखितानि तत उदायनराजाचण्ड प्रद्योतदेशेस्वाधिकारिण स्थापिता स्वय तु चण्ड प्रद्योत काष्ट पञ्जरेक्षिप्त्वा सार्द्ध च नीला स्वदेश प्रति चलित साम्प्रतिमा तु ततो न उत्तिष्ठतीति तत्रैव सामुक्त्वा अवच्छिन्न प्रयाणै चलितस्य अन्तरावर्षा काल समायातस्तेन दशोदयभिराजभिर्दूली प्राकार कृत्वा मध्ये सरचित सुनिम तत्र तिष्ठति यत्स्वयभुक्त तत् चण्डप्रद्योतस्यापि भोजयति एकदापयुं षणादि नमायाततदा उदायनेन उपवास कृत सूपकारै चण्डप्रद्योत पृथग् भोजनाय पृष्टस्ते तैवत्र मद्यपय पणादिने उदायनराजा उपोषितो स्तोति यद्भवतो रोचते तत्पच्यते चण्डप्रद्योते नोक्त ममाप्यद्योपवासोस्ति नज्ञात मया दपयुं पणादिन सूपकारैचण्ड प्रद्योतस्य उक्त उदायनराज्ञ तेनापि चिंतित जानाम्यह यथाय धूर्त्तसाधर्म्मिकोस्ति तथाप्यस्मिन् बद्धे मम पर्युषणान शुध्यति चण्ड प्रद्योतीमुक्त क्षामितश्च तद्भराच्छादननिमित्त रत्न पट्टस्तस्य मूर्द्धिबद्ध स्व विषयश्चतस्यदत्त तत प्रभृति पट्टबद्धा राजानोजाता मुकुटबद्धाश्च पूर्वमभ्यासन् वर्षा रात्रे व्यतिक्रान्ते उदायनराजातत प्रस्थित व्यापाराय योवणिग् वर्गस्तत्रायात सतत्रैवस्थित दशभीराजभिर्वासितत्वा द्दशपुर नाम नगरं प्रसिद्ध जात अन्यदा स उदायनराजा पौषधशालाया पौषधिक पौषध प्रतिपालयन् विहरति पूर्वरात्र समये च तस्यैताहशोभि प्राय समुत्पन्न धन्यानि तानि ग्रामाकरनगराणि यत्र श्रमण भगवान् श्रीमहावीरो विहरति धन्यास्तेराजेश्वर प्रभृत योये श्रमणाभगवत श्रीमहावीर स्यान्तिके कैवल प्रज्ञप्त धर्मं शृण्वन्ति पञ्चाणु व्रतिक सप्तशिक्षा व्रतिक द्वादशविध श्रावकधर्मञ्च प्रति पद्यन्ति तथा मुण्डीभूत्वा आगारात् अनगारिता प्रव्रजन्ति ततो यदि श्रमण भगवान् श्रीमहावीर पूर्वानुपूर्व्याचरन् यदीहागच्छेत् ततोह अपि भगवतोन्तिके प्रव्रजामि उदायनस्यायमध्यवसायो भगवताज्ञात प्रातश्चम्पात प्रतिनिष्क्रम्यवीत भय पत्तनस्य मृगवनोद्याने भगवान समवसृत तत्र पर्षन्मिलिता उदायनोपि तत्रायातो भगवद्दन्तिके

अहं प्रव्रजिष्यामि परं राज्यं कस्मैचिद्दास्यामीत्युक्ता भगवन्तं वन्दित्वा स्व गृहाभि मुखं चलितः भगवतापि प्रतिबंधमाकार्षीरित्युक्तं ततो हस्ति रत्नमारुह्य उदायन राजा स्वगृहे समायात तत उदायनस्यैतादृशोध्यवसायः समुत्पन्नं यद्यहं स्व पुत्रं अभीचिकुमारं राज्ये स्थापयित्वा प्रव्रजामि तदायं राज्ये जनपदे मानुष्यकेषु कामभोगेषु मूर्छितोऽनाद्यनन्तं संसारकान्तारं भ्रमिष्यति ततः श्रेयः खलु ममनिजकं केसिकुमारं राज्येस्थापयितुं एवं सम्प्रेक्ष्य शोभनेतिथि करणमुहूर्त्ते कौटुम्बिक पुरुषानकार्यं एव मवादीत् क्षिप्रमेवकेशिकुमारस्य राज्याभिषेक सामग्रीं उपस्थापयत ते. कृतायां सर्वसामग्र्यांकेशि कुमारो राज्येभिषिक्तः ततस्तत्रकेशि कुमारो राजाजात. उदायन राजा च केशि कुमार राजानं पृष्ट्वा तत् कृतनिष्क्रमणाभिषेक श्रीमहावीरांतिके प्रव्रजित बहुनिषष्टाष्टमदशमद्वादशममासार्द्धमासक्षपणादीनि तपः कर्माणि कुर्वाणोविहरति अन्यदातस्य उदायनराजर्षेः अन्तप्रान्ताहारकरणेन महान् व्याधिरुत्पन्नः वैद्यैरुक्तं दध्यौषधं कुरु स च उदायनराजर्षिर्भगवदाज्ञया एकाकीव विहरति अन्यदाविहरन् वीतभयेगतः तत्र तस्य भागनेयः केशिकुमारराजामात्यैर्भणित स्वामिन्नेष उदायन राजर्षिः परीषहादि पराभूतः प्रव्रज्यांमोक्तुकाम एकाकीव इहायातः तव राज्यं मार्गयिष्यति स प्राहदास्यामि तैरुक्तंनैष राजाधर्मः पुनः स प्राह तर्हि किंकरिष्यति ते प्राहुर्विषमिश्रमस्य दीयते राज्ञोक्तं ततस्तैरेकस्याः पशुपाल्या गृहे विषमिश्रित दधि कारितं तेषां शिष्ययातया तस्य तद्दत्तं उदायन भक्ता याचदेवतयाऽपहृतं उक्तं च तस्य देवतया मर्हर्षेतवविषं दत्तं दध्यं तस्त्येन दध्यौषधं परिहरः तद्वाक्याद्दधि परिहृतं रोगोवर्द्धितु मारब्ध पुनस्तेन दध्यौषधं कर्तुमारब्धं पुनरपि तदन्तर्विषं देवतयाऽपहृतं एवं वारत्रयं जातं अन्यदादेवता प्रमत्ता जाता तैश्च विषं दत्तं तत उदायनराजर्षिः बहूनि वर्षाणि श्रामण्य पर्यायं पालयित्वा मासक्यासंलेखनया केवलज्ञानमुत्पाद्यसिद्धस्तस्य शय्यातरः कुम्भ कारस्तदानीं कुचिद्ग्रामान्तरेकार्यार्थं गतो भूत् कुपितया च देवतया वीतभयस्योपरिपांशु वृष्टिर्मुक्ता सकलमपि पुरमाच्छादितं अद्यापि तथैवास्ति

गणातर कुश्यकारन्तु यनिपद्या मुक्ता उदाय नराजपुत्रस्य अभीचिकुमारस्य तदा अय हत्तान्तो जात यदानीं उदायन केगि कुमार राज्ये भिषिच्य प्रव्रजित ततोस्यायमध्यवसाय सप्तृपा अह मुदायनस्यैष्ट पुत्र प्रभावत्यामजस्तादृशमपि मासुक्तावेगि कुमार राज्ये भिषिच्य उदायन प्रव्रजित इत्यननानतिवेन दुःखेन पराभूतोयोतभवपत्तन मुक्ता चम्पाया कोणिकराजान उपसम्पद्यविपुलभोग समन्वितो भूत् सच अभीचिकुमार श्रमणोपासका भिगतजोयोपि उदायनराज्ञि समनुगवैरोभूत् अभीचिकुमारो वहुणि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्याय प्रतिपाल्य अर्द्धमासिक्यासलेखनया उदायनवैरस्थान मनालोच्यकाल कृत्वाऽसुरकुमारत्वेनोत्पन्न एकपल्योपमस्थितिरस्यासोत् महाविदेहे क्षेत्रे चात्सेत्स्यतीति उदायन कथा तहेवकासीराया सेजसच्च परक्कमो कामभोए परिचज्ज पहगोकम्ममहावण ४९ हे मुने तथैव ते नेव प्रकारेण पूर्वोक्त नृपवत् काशिदेशपतिर्नन्दननामाराजा सप्तमबलदेव कर्म रूप महावन प्राहनत् उन्मूलया मासेत्यर्थ कि कृत्वा भोगान् परित्यज्य कोदृशोनन्दन श्रेय सत्यपराक्रम श्रेय कल्याण कारक यस्तस्य सयम श्रेय सत्य तत्र पराक्रमो यस्य स श्रेय सत्यपराक्रम मोक्षदायकचारित्र धर्मे विहित वीर्य इत्यर्थ ४९ अत्र काशिराज दृष्टात वाराणस्यां नगर्यां अग्नि शिखोराजा तस्य जयन्त्यभिधादेवीतस्या कुक्षि समुद्भूत सप्तमबलदेवो नन्दनोनामतस्यानुजोभ्राताशेषवतीराज्ञीसुतोदत्ताख्यो वासुदेव स च पित्रा प्रदत्तराज्य साधितभरतार्द्धोनन्दनानुगतो राज्य श्रिय स्फीता अनुबभूव कालेनपट पञ्चाशद्वर्षसहस्राण्यायुरति वाह्य मृत्वादत्त पञ्चमनरक पृथिव्यामुत्पन्न नन्दनोपि च गृहीत श्रामण्य समुत्पादितकेवल प्राप्त पञ्चषष्टि वर्ष सहस्राणि जीवितमनुपाल्यमोक्षगत षट् विंशति धनू षितानयोर्देह प्रमाण

सूत्र पत्ता गइ मणुत्तर । ४८ । तहेव कासी राया सेउ सच्च परक्कमो । कामभोगे परिच्चज्ज पहणे कम्म महावणं ॥४९

भाषा काशीराजा प्रशसनीय यस्यत्र यपराक्रम प्रशसनीकछेजिहनो पराक्रम कामभोगान परित्यच्यकामभोगाने छोडोने कर्ममहावनप्राहतिसकर्मरूपजे महा

मासोदिति काशिराज दृष्टांत· तहेव विजओराया अणट्ठाकित्ति पव्वएरज्जं तु गुण समिद्धं पयहित्तु महायसो ५० हे मुने तथैव विजयो नामा, द्वितीयो बलदेवोराजा प्रव्रजितोदीचां प्रपन्न: किं कृत्वा राज्यं तु पयहित्तु इति परित्यज्य कोदृशं राज्यं गुण समृद्धं गुणैः सप्ताङ्गैः पूर्णं स्वामी१ अमात्य२ सुहृत्३ कोश ४ राष्ट्र५ दुर्ग६ बलानि७ च राज्यांगानि अथ वा गुणै इन्द्रियकामगुणैः पूर्णं कीदृशोविजय: अणट्ठा अनार्त्त: आर्त्तध्यानरहित: पुन: कोदृश: कोर्त्ति: कोर्त्त्योपलचित: अथ वा अणट्ठाकित्ती इति अनष्टाकीर्त्ति: आसमन्तात् नष्टा अकीर्त्तिर्यस्य स अनष्टाकीर्त्ति अयशोरहित: ५० अत्र विजयराज कथा द्वारावत्यां व्रह्मराजस्य पुत्र: सुभद्राकुक्षि सम्भूतो विजयो नाम द्वितीयो बलदेवोस्ति स च स्व लघु भ्रातृद्विसप्ततिवर्षशत सहस्रा युर्द्धि पृष्ट वासुदेवमरणानन्तरं श्रामण्यमङ्गीकृत्य उत्पादितकेवल ज्ञान: पञ्चसप्तति वर्ष सतसहस्राणि सर्व्वायुरति वाह्य मुक्तिं गत: सप्तति धनूंषिचानयो र्देहमानमिति विजयराजकथा तहेव वुगन्तवं किच्चा अव्वक्खित्तेणचे असा महव्वली रायरिसी आदायसिरसासिरिं ५१ तथैव महाबलनामाराजर्षि स्तृतोये भवेमोच्चं जगामेतिशेष: किं कृत्वा अव्याक्षिप्तेन चेतसास्थिरेण चित्तेन उग्रं प्रधानं तप कृत्वा पुन: किं कृत्वा सिरसामस्तकेन श्रियं चारित्र लक्ष्मीं आदाय गृहोत्वा अत्र महाबलराज्ञ कथा अत्रैवभरतचेत्रे हस्तिनागपुरं नगरमस्ति तत्र बलनाम राजा तस्य प्रभावती नाम्नी राज्ञी अन्यदा साराज्ञी प्रवरशयनो योपगतईषन्निद्रां गच्छन्ती शशाङ्कशङ्खं धवलं सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा तत· सातुष्टा यत्र बलस्य राज्ञ: शयनीयं तत्रोपागच्छति

सूत्र

तहेव विजओ राया अणट्ठा कित्ति पव्वए। रज्जं तु गुण समिद्धं पयहित्तु महायसो। ५०। तहेवुग्गं तवं किच्चा

भाषा

वन तेहनेजुगतुं हुआ अष्टकर्म्म दूरिकया ४९ तथैव विजयोनामराजा तिमजविजयनामे राजा सर्व्वथापिगत कुकोर्त्ति: प्रव्रजित: सर्व्वथा करीने गईछे भूंडो कीर्त्ति जेहनी एहवे राजाइं दिचालोधो राज्यं गुणसमृद्धं गुणे करीने भर्यो राज्यंत्यक्त्वा महायशा महायश तेहनो धरणहार ५० तथैव

घ टीका
अ १८
५६२

त भद्र मनस्यराग कथयति तत स धनोराजात स्वप्न श्रुत्वा हृष्ट तुष्ट एव मवादीत् हे देविलया कल्याण छत् स्वप्नो हृष्ट अर्थ लाभो भोगलाभो राज्य लाभय भविष्यति एव खनु तव नवसुमासेषु सार्द्ध सप्तदिनान्यधिकेषुगतेषु कुलप्रदीप कुलतिलक सर्वलक्षण सम्पूर्णोदारको भविष्यतीति तत सापभा वती एतदर्थ श्रुत्वा हृष्टातुष्टावलस्य राज्ञस्तद्वचन स्वीकरोति राजानुज्ञया च स्वशयनीये समागच्छति तत् प्रभृति च सासुखेनगर्भमुद्वहति प्रशस्तदोहदा सापूर्णेषु सुकुमालपाणि पाद सर्वलक्षणोपेत देवकुमारोपमन्दारक प्रसूतवती तत प्रभावत्या देव्या प्रतिचारिकावल राजान विजयजयाभ्यां पुत्र जन्मनावर्द्धयन्ति ततो वलराजा एतमर्थ श्रुत्वाहृष्टतुष्टोधाराहतकदम्ब पुष्पमिव समुच्छ्वसितरोमकूपस्ता सामङ्ग प्रतिचारिकाणां मुकुटवर्ज सर्व स्व शरीरालङ्कार दद्दौमस्तकक्षपनादिक प्रीतिदान च यथेच्छ विसर्जयान् तत सवलो राजाकौटुम्बिक पुरुषानाकारयति आगतायतान् एवमवादीत् भोदेवानुप्रिया क्षिप्रमेवहस्तिनागपुरेन गरेचारकशोधन मानोन्मान प्रवर्द्धनचकुरुत वदापन घोषयत एव राजाज्ञयाते तथैव कृतवत प्राप्ते च द्वादशे दिवसे तस्य दारकस्य महाबल इति नाम चक्रु तु ततो महाबल पञ्चधात्रो परिवृतोयवर्द्धे गृहीतकलाकलापश्च यौवन मनुप्राप्त असदृश रूपलावण्यगुणो पपेतानां अष्टानां राजवरकन्यानां एकस्मिन्नेवदिवसेपाणि ग्रहणमकरोत् ततस्तस्य महाबल कुमारस्य मातापितरावतिशयेन महद्दृष्ट प्रसादोपशोभित वास भवन कारयत एताद्दृश प्रीतिदान ददतु अष्टोहिरण्य कोटय अष्टोमुकुटानि अष्टौ कुण्डलयुगलानि अष्टौहारा अष्टौगोसाहस्रिक अष्टौग्रामा

मूल अ नविखत्तेण चेअसा। महब्बलो रायरिसी आदाय सिरसा सिरिं॥ ५१॥ कह धीरे अहेऊहिं उम्मत्तुव्व महिं

भाषा उपतप ञ वा तोम र उपतपकरीने अव्याक्षिप्तेन चेतसा सावधान चित्तकरीने महाबलो राजर्षि महाबलराजऋषिग्रहवा मस्तके सयमश्रिय मस्तकने विषेनेहने मजमसिरो ५१ अथपवित्र पुनरपि उद्देशमाह कथधोर पडित अहेतुभि क्रियाभि किमधीरपश्चितभु डो क्रिया करीने उम्मत्तदवग्रथिलइव

अष्टीदासा अष्टीमदन्तिन अष्टौ सौवर्ण स्थालानि एवमन्यदपि सार स्वापतेयं मातृपितृभ्यां तस्य प्रदत्तं ततः समहाबलः प्रासादवरगतः उदारभोगान्
भुञ्जानो विचरति तस्मिंश्चकालेविमलस्वामिनः प्रपौत्रापर्म घोषो नाम अणगारः पञ्चभिरनगारशतै परिवृतो ग्रामानुग्राम विहरन् हस्तिनागपुरमागत
तस्यान्तिके नागरिकपरिषत्समागता महाबलोपि धर्म्म श्रोतु तत्रायातः श्रुत्वा च धर्म्मं वैराग्यमापन्नो महाबल कुमारोहृष्टतुष्टः त्रिर्वारं नत्वा एवमवा
दीत् हे भगवन् श्रद्दधामिनि ग्रन्थं प्रवचनं यथा भवद्भिरुक्तं सत्यमेवेति संयममार्गं मह्यमङ्गीकरिष्यामि नवरं मातापितरौ आपृच्छामि गुरवः प्रोचु
प्रतिबन्धं माकार्षी ततः समहाबलो धर्म घोषमनगार वन्दित्वाहृष्टतुष्टोरथमारुह्य हस्तिनागपुरमध्ये यत्र स्वगृहं तत्रोपगत रथात् प्रत्यवतरति
यत्रमातापितरौ तत्रोपागत्य एवमवादीत् अहो मातापितरौ मया धर्म्मघोषस्य अनगारस्य अन्तिकेधर्मः श्रुतः स च धर्मोमेऽभिरुचितः ततो महाबल
कुमारं मातापितरौ एव मवदतां पुत्रत्वं धन्यः कृतार्थश्च ततः समहाबल एवमवादीत् अहोमातापितरौ इच्छाम्यहं भवदाज्ञया प्रव्रजितुं संसार भया
दहमुद्विग्नोस्मीति ततः साप्रभवती अनिष्टामकामाम श्रुतपूर्वामिमां पुत्रवाचां श्रुत्वारोमकूपगलत्स्वेदाकीर्णं गात्राशोकभरावतपिताङ्गानि स्तेजस्का
दीनवदनाकरतलमर्दितकमलमालेवत्ताना विकीर्णकेशहस्तात् टिलाधरणी पीठेनिपतिता मूर्च्छिताच परिचारिकाभि काञ्चनकलशात् छिन्नधाराभि
रभिषिच्यमानासमाश्वासिता सतीरुदमाना एवमवादीत् त्वमस्माकं एक एव पुत्रोऽस्ति इष्टः कान्तोरत्न भूतोनिधि भूतो जीवितभूत उम्बर पुष्पवद्
र्लभोस्ततो नैवं वयमिच्छामस्तवक्षणमात मपि विप्रयोगं तत पुत्रत्वं तावद्गृहेतिष्ठ यावद्वय जीवामः अस्मासुकालगतेषु परिवर्द्धित कुलसन्तानस्त्वं
पश्चात्परिव्रजेः तत समहाबल एव मवादीत् हेमातर्यत् त्वं वदसितत्सर्वं मोहविलसितं परं मनुष्यभवेजाति जरामरण शोकाभिभूतोऽध्रुवे सन्ध्याभ्ररा
गसदृशेस्वप्नदर्शनोपमे विध्वंसन स्वभावे सम प्रीतिर्नास्ति कोजानाति हे मातः कः पूर्वं कः पश्चाद्गमिष्येति अतोहं शीघ्रमेव प्रव्रजिष्यामि ततः

सामभावती एव मवादीत् पुत्र इदन्ते शरीर विशिष्टरूपलक्षणोपपेत विज्ञान विचक्षण रोगरहित सुखोचित प्रथम यौवनस्थ वर्त्तते अतस्त्वमि
ताहश शरीर योवन गुणान् अनुभव पश्चाद्दजे तत समहावल एवमवादीत् हेमात इद मनुष्यशरीर दु खायतन विविधव्याधि ग्रस्त अस्थि
सञ्चय स्नसाजालसम्बद्ध अशो च निधान अनवस्थिताकार जनोपवीतश्च भविष्यतीति इच्छाम्यह त्वरित प्रव्रजितु तत सामभावती एवमवादीत्
पुत्र इमास्तवसर्वकलाकोमल स्वभावामार्दवार्जवक्षमाविनयगुणयुक्ताहावभावविचक्षणा सुविशुद्धशीलकुलशालिन्य प्रगल्भयश्चामनोनुकूलभावानुरक्ता
अष्टोतवभार्यास्सन्ति ताभिस्सम भोगान् भ ङ्क्ष्वपश्चाद्दय परिपाकेपरिव्रजे तत समहावल एव मवादीत् इमेखलु मानुष्यका कामभोगा उच्चार
प्रश्रवण श्लेष्मवान्तपित्तशोणित शुक्रशोणित समुद्भवा अध्रुवा क्रीडिता बहूपसर्गा कटुकविपाका दु खानुबन्धिन सिद्धि विघातकारिणास्सन्तीति सदयवाह
प्रव्रजिष्यामि पुनर्माता पितरो एव मूचतु पुत्र परपर पर्यायात् बहु हिरण्य सुवर्ण विपुलधनधान्यानि स्वयमास्वादतोऽन्येषा दानाद्युत्कृष्टाण मनुष्य
लोक सत्कार सन्मानान्यनुभवाण पश्चात्परिव्रजे तत स महावल एव मवादीत् इद सर्व हिरण्यादिक वस्तु अग्निग्राह्य राजग्राह्य दायादग्राह्य मृत्यु
ग्राह्य अध्रुव विद्युच्चञ्चल नास्य भोग केनापि ग्रहीतु शक्य इति शीघ्रमेवाह प्रव्रजिष्यामि ततो मातापितरो विषय प्रवर्त्तक वाक्यै रं हि एन रक्षितु
न शक्नुत अथ सयमोद्वेजकैर्वाक्यैरेव मूचतु पुत्र अयनिर्ग्रन्थमार्गो दुरनुचरोस्ति अत्र लोहमयायवाश्चर्व्वणीयास्सन्ति गङ्गा प्रतिश्रोतसि गन्तव्य
मस्ति समुद्रो भुजाभ्या तरणीयोस्ति दीप्ताग्निशिखाया प्रवेष्टव्यमस्ति खड्गधाराया सञ्चरणीयमस्ति पुत्र निर्ग्रन्थाना आधाकर्मिक बीजादि भोजनश्च
न वर्त्तते न कल्पते पुत्रत्व तु सुकुमालोसि सुखोचित स्त्वामिनत्व क्षुधा तृषा शीतोष्णादि परीषहोपसर्गान सोढु न समर्थोसि पुन भूमिशयन केशलोचन
अस्नान ब्रह्मचर्य भिक्षाचर्याश्च विधातु न शक्नोसि तत पुत्रत्व तावद्गृहेतिष्ठ यावद्वय जीवाम तत स महावलएव मवादीत् अय निर्ग्रन्थ मार्ग

क्लीवानां कातराणाञ्च इहलोक प्रतिबद्धानां परलोक पराङ्मुखानां दुरनुचरोस्ति न पुनर्वीरस्य निश्चितमतेः पुरुषस्य किमप्यत्र दुष्करमस्तीति मां प्रभु जानीत प्रव्रज्या ग्रहणार्थं अथ मातृपितृभ्यां तं गृहेरक्षयितुम शक्ताभ्यां आकांक्ष्येव प्रव्रज्यानुमतिर्दत्ता ततो बलिराजा कौटुम्बिक पुरुषैः हस्तिनाग पुरं बाह्याभ्यन्तरे समार्जितोपलिप्तं कारयतित महाबलं कुमारं मातापितरौ सिंहासने समारोपयत सौवर्णिक कलसानामष्टशतेन यावद्भौमे यामा मष्टशतेन सर्वर्द्धयामहान् निष्क्रमणाभिषेकोस्य कृतः पितावभाण पुत्रभणतव किं ददामि कस्य वस्तुनः सांप्रतं तवार्थः ततः स महाबल उवाच इच्छा मितात कुत्रिकापणात् एकेन लक्षेनपतद्ग्रहं एकेन लक्षेण रजोहरण एकेन लक्षेण काश्यपाकारणमिति ततोबलराजा कौटुम्बिक पुरुषै स्त्रीण्यपि वस्तूनि प्रत्येकं एकैकलक्षेण आनायितवान् ततः स काश्यपोवसुभूतिनामा बलेन राज्ञाभ्यनुज्ञातोऽष्टगुणोपोतिकेन पिनद्ध मुखश्चतुरंगुल वर्ज्जकेशान् महा बल मस्तकेचकर्त्त प्रभावतीतान् केशान् हंसलक्षण पटशाटके प्रतिक्षिपति तत्रवस्त्र स्वीर्षकस्थाने नग्यति ततः स महाबलोगोशीर्षं चन्दनानुलिप्तः सर्व्वा लङ्कार विभूषितः पुरुष सहस्रवाह्यां शिविकामारूढ एकयावरतरुण्याधृता तपत्रोद्वाभ्यां वरतरुणीभ्यां चाल्यमान वरचामरो मातृपितृभ्यां अनेक भट्ट कोटि परिवृतः प्रव्रज्या ग्रहणार्थं चलित तदानीन्तं नगरलोका एवं प्रशसन्ति धन्योयं कृतार्थोयं सुलब्ध जन्मायं महाबलकुमारोयः संसारभयोद्विग्नः सर्व्वं सांसारिकविलासमपहाय प्रथमवयः स्थएव परिव्रजति एवं लोकैः प्रशंस्यमाण प्रलोक्यमानोगुलीभिर्दृश्यमानः पुष्पफलेषु विकीर्यमाणेषु याचके भ्यश्च स्वयं दानं ददत् हस्तिनागपुर मध्यं मध्यं निर्गच्छन् धर्मघोषा नगारांतिके समायातः शिबिकातः प्रत्यवतीर्णः ततो महाबलं कुमार पुरतः कृत्वा मातापितरौ धर्म्मघोषम नगारं वन्दित्वा एव मवदतां भगवन्नेषमहाबल कुमारः संसारभयोद्विग्नः कामभोगविरक्तो भवदन्तिके प्रव्रजितु मिच्छति तत इमां शिष्य भिक्षां वय दद्मः स्वीकुर्व्वंतु भवन्त धर्म्म घोषा नगारएव मुवाच यथा सुखं देवानुप्रिया माप्रतिबन्धं कुरुत ततः स महाबलहृष्ट तुष्टो धर्म्म

पोषमनगार वन्दित्वा उत्तरपूर्वदिगन्तराले॰पक्रम्य अलंकारवर्गं मुत्तारयति अश्रूणि मुञ्चन्ती प्रभावती देवी उत्तरीयवस्त्रे तमलंकारवर्गं प्रतिपति महाबल कुमार प्रत्य य अवदत् पुत्र अवाये विरेयाइटितव्य यतितव्य अत्रार्थेन प्रमाद तत स महाबल पञ्चमौष्टिक लोच करोति धर्मघोषा नगरा न्तिके समागत्य एव मवादीत् भगवन्नय लोक प्रदीप्त प्रदीप्तो जरामरणयस्तत्वास्तीति स्वयमेवमां प्रव्राजयत तत स धर्मघोष सूरिस्त स्वयमेव प्रव्राज्य समाचारीम शिक्षयत् ततो महाबलो नगारजात पञ्चसमिति त्रिगुप्तियुक्त क्रमेण चतुर्दशपूर्वधरश्चाभूत् बहुभिश्चतुर्थ षष्ठाष्टमादिभिर्विचित्र तप कर्म भिरात्मान भावन् द्वादशवर्षाणि श्रामण्य पर्याय मनुपालयन् अन्ते मासिकयास लेखनया आलोचित प्रतिक्रान्त समाधिप्राप्त कालमासे काल कृत्वा ब्रह्मकल्पे दशसागरोपमस्थितिको देवो बभूव ततश्च्युतश्च श्रेष्ठि कुलेवाणिज ग्रामे पुत्रत्वे नोत्पन्न तत्र सुदर्शन इति ज्ञातनामोन्मुक्त बालभाव श्रमण भग वत श्रीमहावीरस्यान्तिके प्रव्रजित क्रमेण सिद्ध इति महाबलकथा अहधीरे अहेउहि उम्मत्तुव्व महिंचरे एए विसे समादाय सूरादढ परक्कमा ५२ हे महामुने एते भरतादय सूरा धैयवन्त पुनर्दृढपराक्रमाश्च सयमे स्थिरवीर्यभाजो बभूवुरितिशेष किं कृत्वा विशेष मिथ्या दर्शिभ्योजिनमतस्य विशेष रूढोत्ता मनन्याध्याय तस्मात् हे महामुने धीर साधु अहेतुभि क्रिया १ अक्रिया २ विनय ३ अज्ञान प्रमुखै कुत्सितहेतुभिर्विपरीतभावयैरुन्मत्त इव मद्यपानो यमत्ता पृथिव्यां कथञ्चरेत् अपितु स्वेच्छया यथा तथा प्रलपनपरायण सन् न चरेत् तस्मात् त्वयापिधीरेण सता तत्त्वैव निश्चित विधेय

चरे। एए विसेस मादाय सूरा दढ परक्कमा ॥ ५२ ॥ अच्चत नियाण खमा सच्चामे भासिया वई। अतरिंसु तरि

प्रत्रो इ गच्छेत् उन्मत्तनो परि पृथ्वी इविचरे एते भरतादा विशेषमादाय भरतादिकराजवीनो विशेषलेईने सूरा दढ पराक्रमा सूरवीर दढ तु परा क्रमवरे ५२ अच्चत निदान क्षम मन्यग्धनक्षमा अत्य तनिदाणाकर्मतेह रूपजेमलते दृरिकोधाकेनियाणारहितछे सत्य मया भाषितावाच अहो

उ० टीका
अ० १८
५६८

इतिधर्मा ५२ अथ तनियाण खमा सत्यामिभासियावई पतारं सुतरंतेगी तरिस्सन्ति अणागया ५३ हे मुने मेमया सत्यावई इति सत्यावाक् भाषिता प्राग्जन्मात्तृतीयायां पष्टो जिनशासनं एव आश्रयणीय इत्येवं रूपावाणी मयोक्ता अनया वाण्या अङ्गीकृतया बहवोजना अतरन् संसारसमुद्रं तरन्ति स्म एके अनयावाण्या इदानीं नापितरन्ति अनागता अपि अग्रे भाविनो भव्या अपि अनयावाण्या भवो दधिंतरिष्यन्ति कीदृशास्ते भूतभविष्यत् वर्त्तमान जना: अत्यन्तनिदान चमा अत्यन्तं निदानं कर्ममलशोधनं तत्र चमा: कर्ममल प्रचालन सावधाना: नितरां दीयते शोध्यते पवित्री क्रियते आत्माऽनेनेति निंदानदेप् शोधने इत्यस्यरूपं ५३ कहंधीरे अहेऊहिं अत्ताणं परिआवसे सव्वसंगविणिम्मुक्के सिद्धे ह वइनीरएत्तिबेमि ५४ धीर: साधु अहेतुभि: क्रियावाद्यादि कुमतिनां याचोयुक्त्य सप्ररूपणा लचणैर्मिथ्यात्वस्यकारणै आत्मानं स्वकीयमात्मानं कथंपर्या वासयेत् कुत्सितहेतूनां आवासं आत्मानं कथं कुर्यात् अपितु न कुर्यात् इत्यर्थं किमित्यं शितस्य फलस्यादित्याह सर्वसंगैर्द्रव्य भावभेदेन संयोगै: संयोगेभ्योवा विशेषेण निर्मुक्त: सर्वसंग विनिर्मुक्त: तत्र द्रव्यसंगोधनधान्यादिरूप: भावसंग क्रियावादि मिथ्याप्ररूपणारूप: ताभ्यां उभाभ्यां संगाभ्यां विनिर्मुक्त: सर्वसंग विनिर्मुक्त: सन्साधु: सिद्धो भवति कर्ममलापहारेण नीरजा निर्मल: स्यात् उज्वलो भवेत् इत्यादि उपदेशं दत्वा चत्रिय मुनिर्महीतले विजहार संयतमुनिरपि चारित्रं प्रपाल्यमोचं प्राप

सूत्र तेगी तरिसंति अणागया ॥ ५३ ॥ कहं धीरे अहेऊहिं अत्ताणं परियावसे । सव्वसंग विणिमुक्के सिद्धे हवइ नीरए

भाषा संयतो एम भाषावाणीं साचोवाहोछे इगां आराध्यतीर्णा एकेतरंति इदानीं एहवाणोने आराधोकेएकजोवतस्याछे तरिष्यंति अनागत काले संसार समुद्र एकतीहवणांतरेछे आगतकालेतरस्ये५३ कथं धीर अहे तुभि: परिकल्पित हेतुभि किमचतुर आत्मानं पर्यं वासयेत् वासं कुर्यात् कल्पित वाते करीने कल्पितधर्मे करी आपणा आत्माने वासेनहीं सर्वसंग विनिर्मुक्त: सन् सर्वसंग रहितहोईने सिद्धोभवति नीरजं इति ब्रवीमिसिद्धहोई मुक्त

उ टीका
अ १८
५६८

इति सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिन प्राह हे जम्बू अह ब्रवोमि इति परिसमाप्ता ५४ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां संयतीयाध्ययन अष्टादश अथातो व्याख्यात १८ अथैकोनविंशतितम कथ्यते अष्टादशेऽध्ययने भोगर्द्धीना त्याग उक्त भोगर्द्धि त्यागात् साधुत्व स्यात् तत्साधु त्व हि अप्रति कर्म तया स्यात् तत एकोनविंशति तमे अध्ययनेनि प्रतिकर्मता मृगा पुत्र दृष्टांतेन कथयति सुग्गीवेनयरेरम्मे काणणुज्जाण सोहिए राया बलभद्दोत्ति मियातस्सग्गमाहिसी १ सुग्रीवेनाम्नि नगरे बलभद्र इति नामा राजा भूत् कीदृशे सुग्रीवे नगरे रम्ये रमणीये पुन कीदृशे काननोद्यानशोभिते तत्र कानन बृहत् वृक्षाणा आम्र राजादनादितरुणा वन उद्यान नानाविध पादपलतादीना वन अथवा क्रीडा योग्यवन वा उद्यान उच्यते तत कानन च उद्यान च काननोद्यानेताभ्या शोभित काननोद्यानशोभित तस्मिन तस्य बल भद्र भूपस्य

त्तिबेमि ५४ ॥ सजइज्ज ज्झयणसम्मत्त ॥ १८ ॥ सुग्गीवे नयरे रम्मे काणणुज्जाण सोहिए । राया बलभद्दोत्ति मिया तस्सग्गमाहिसी ॥१॥ तेसि पुत्ते बलसिरीमियापुत्तेत्ति विस्सुए । अम्मापिऊणदइए जुवरायादमीसरे ॥ २ ॥

सूत्र

भाषा

जाइ कमरहितहोइने ५४ इति स नति राजा वर्णन अठारमु ए अध्ययन सपूर्णम सुग्रीवे नगरे मनोहरे सुग्रीवइसे नामे नगरछे रम्य मनोहरछे काननोद्यान शोभिते बृहत् वृक्षाश्रये वने बागवाडी वृक्षतिणे करीने सहितछे राजा बलभद्र इति नामातेनगरीने विषे बलभद्र राजाछे मृगा वती तस्यराज्ञी अग्रमहिषी मृगाववतीइस्से नामे तेहने पटराणीछे १ तेयो पुत्रो बलश्रीनाम तेहने पुत्र बलश्रीइस्से नामेछे लोके मृगा पुत्रेति विख्यात लोकने विषे मृगापुत्र प्रसिद्ध हुओ अवापित्रो मात जनकयो मातापिताने दयिता बल्लभेन वाल्होछे पितायेदीनो युवराजायतोश्वरो दमितेंद्रिय युव

मृगानाम्नी अग्र महिषी अभूत् महिषी पट्ट राज्ञी अग्रा प्रधाना स चासौ महिषी च अग्र महिषी १ तेसिं पुत्तेबलसिरी मिया पुत्तेत्ति विस्सुए अम्मापि जणदूइए जुवरायादमोसरे २ तेसिं पुत्ते इति तयोर्बल भद्र मृगाराज्ञ्यो पुत्रो बल श्रीनामा आसीत् बलश्रीतिमातापि त्वभ्यां कृत नामा सबल श्रीलोक विश्रुतो लोक· प्रसिद्धो मृगा पुत्र इत्यभूत् मृगाया महाराज्ञ्याः पुत्रोमृगा पुत्रः लोकास्तं मृगापुत्र मित्यूचुरित्यर्थः कीदृशो मृगा पुत्रः अम्मापि जण इति मातापित्रोर्दयितो वल्लभः पुनः कीदृशः युवराज युवाचा सौराजा च युवराज· कुमार पदधारकः पितरि जीवति सति राज्य योग्यः कुमारो युवराज उच्यते पुन कीदृशः दमोविद्यते येषां तेदमिनस्तेषां ईश्वरोदमीश्वरः उपसमवतां साधूनां ऐश्वर्यधारी अत्र कुमारावस्थायां एव दमीश्वर इति विशेषण उक्तं तत्तुभाविनि भूतोपचारात् अथवाऽत्र द्रव्यनिक्षेपो ज्ञेयः द्रव्यजिनाजिनजीवा इति वचनात् १ नन्दणेसो उपासाए कीलए सह इत्थि हिं देवोदो गुन्दगोचेव निच्चं मुइयमाणसो ३ मणि रयण कुट्टिमतले पासाएलोयणट्ठिओ आलोए इनगरस्स च उक्कति य चच्चरे ४ उभाभ्यां गाथाभ्यां संबंधः स मृगापुत्रः कुमारो नन्दने विशिष्ट वास्तु शास्त्रोक्त सम्यग् लक्षणोपेते प्रासादेराजमन्दरे स्त्रीभिः सह क्रीडते कद्वदोगुन्दुकदेव इव त्रयस्त्रिंशक सुरइव इन्द्रस्य पूज्यस्थानीया देवा स्तायस्त्रिंशकादोगुन्दकाऽप्युच्यन्ते पुनः कीदृशः स· नित्यं मुदितमानसः निरन्तर हृष्टचित्तः एतादृशोमृगा पुत्र· प्रासादा लोकनेस्थितः सन् नगरस्य चतुष्कत्रिक चत्वरान् आलोकते प्रासादस्य आलोकने गवाक्षेस्थितः स नगरस्य चतुष्कादिस्थितानि कौतूहलानि पश्यति

सूत्र

नदणे सोउपासाए कीलए सहइत्थिहिं। देवोदोगुंदुगोचेव निच्चंमुइय माणसो ।३।। मणिरयण कुट्टिमतले पासाया

भाषा

राजाछे इंद्रीजिणे जीतोछे दमो कहिये योगी तेहनो स्वामीछे २ समृगापुत्र वासे आनदोत्पादके भवने क्रीडते ते मृगापुत्रने हर्षनो ऊपजावणहारो महल क्रीडते सहस्त्रीभिः स्त्री सहितते महलमांहि क्रीडाकरेछे देवोदोगुंदकइव दोगंदक देवतानीपरि नित्यं मुदितमानस· नित्यें सदा हर्षित थको

कीदृशे प्रासादालोकनेमणिरत्नकुट्टिमतले मणयश्च रत्नानि च तै कुट्टित जटित तल यस्य तत् मणिरत्न कुट्टिमतल तस्मिन् ४ अहतत्य अइच्छ त पासई समणसञ्जय तव नियमसञ्जमधर सीलड्ड गुण आगर ५ अथानतर समृगा पुत्र कुमारस्तत्र तस्मिन् चतुष्कत्रिक चत्वरादौ अइच्छन्त अति क्रामन्त विचरन्त श्रमण पश्यति कीदृश श्रमण सयत जीवयतन कुर्वन्त सयत इति विशेषणे नवीतराग देवमार्गानुसारिण नतु शाक्यादि मुनि पुन कीदृश तपोनियम सयमधर तपो बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविध नियमोद्रव्यक्षेत्रकाल भावेन अभिग्रह ग्रहण सयम ससदशविध तपश्चनियमश्च सयमश्च तपोनियमसयमास्तान् धरतीति तपोनियम सयमधरस्त पुन कीदृश शीलाढ्य शीलै अष्टादश सहस्र ब्रह्मचर्य भेदै आढ्य पूर्ण पुन कीदृश

लोयणेठिओ। आलोइए नगरस्स चउक्क तियचच्चरे ।४॥ अहतत्थ अइच्छ त पासइ समण सजय । तवनियम सजम धरसीलड्ड गुण आगर ।५॥ त देहईमिया पुत्ते दिट्ठीए अणमिसाइए। कहिमन्नेरि सरूवदिट्ठ पुव्व मएपुरा ॥६॥ साहु

भोग भोगवेछे मृगापुत्र ३ स मृगापुत्र मणियडपीठे मणीरत्ने करीजडीतछे आगणो जेहनो प्रासादावलोकने गवाक्षे स्थित प्रासादनोगो खडोभरोखे बेठा छे आलोकयतो नगरस्य नगरने देखेछे चउकत्रिक चत्वराणि चउक्कत्रिक चाचरहाट प्रमुख ४ अथ ततत्तिकादिषु आगच्छ पइविंसे मृगापुत्र चउक हाटने विषे भायतो पश्यति श्रमण सयत देखे एकमतीने तपो सयम धरयतोकिस्याछे तपनियम स यम तेहना धरणहार शीलयुक्त गुणाना आगार शीने करोत यथा गुणनो आगरछे ५ त तदपि मृगापुत्र पश्यतितेहने मृगापुत्र देखेछे दृष्ट्यामेषोन्मेषरहितया मेषोन्मेष रहित दृष्टि करीने कथ एव मन्ये ईदृश रूप किहाइ एहवो स्वरूप दृष्ट पूव प्रागजन्मनि दीठहतू पाछिले भवे ६ साधो दर्शने तस्य मृगापुत्रस्य साधूने दर्शने करीतेमृगापुत्रने शोभने

गुणाकर गुणानां ज्ञानदर्शनचारित्र गुणां आकर खनि शब्दश ५ त देहईमिया पुत्ते दिट्ठीए अणिमिसाइएकाहि मन्नेरिसरूवं दिट्ठ पुव्वं मए पुरा ६ मृगा पुत्रस्त सुनिं अनिमिषया दृष्या देहई पश्यति दृष्टा च एव विचारयति क्वचित् एतादृशं रूपं मया दृष्ट पूर्वं अहं एवं मन्ये जानामि सुनिं दृष्टा प्रमुदितमना: अभूत् पूर्वपरिचितमिव मुनि मेने इत्यर्थ: ६ साहुस्सदरिसणेतस्स अज्झवसाणंमिसोहणे मोहं गयस्स सन्तस्सजाईं सरणं समुप्पन्नं ७ तस्य मृगापुत्रस्य कुमारस्यतस्य साधोर्दर्शनेजाति स्मरण समुत्पन्न प्राग् भवस्मरणज्ञानं सञ्जातं तस्य कथं भूतस्य सत: शोभने अध्यवसाये समीचीने मनस: परिणामेचायोपशमभावे मोहं मूर्च्छांइतस्य प्राप्तस्य सत: मोह क्वाय मया दृष्ट इति चिन्ता सद्दृष्मूर्छात्मकं कोर्थ: पुरासाधोर्दर्शनं जातं दर्शनात्सम्यग् मन परिणामोभूत् तदाच मूर्च्छा उत्पन्ना तस्यां मूर्छायां जाति स्मृतिरभूदिति भाव: ७ देवलोगचुओ सन्तो माणुस्सभवमागओ सन्निनाणे समुप्पन्ने जाईसरणं पुराणयं ८ किं तत् जाति स्मरणं तदाह अह देवलोकात् च्युत: सन् मानुष्यं भव आगत इति संज्ञिज्ञाने समुत्पन्ने सति पुराणकं

सूत्र

साहुस्सदरिसणेतस्स अज्झवसाणंमि सोहणे । मोहंगयस्स संतस्सजाईं सरणं समुप्पन्नं ।७। देवलोग चुओसंतो माणुस्संभव मागओ सन्निनाणसमुप्पन्ने जाईसरणं पुराणयं ।८। जाईसरणेसमुप्पन्नेमियापुत्तेमहड्ढिए सरईपोराणियं जाइं सामन्नं

भाषा

अध्यवशावे भलेऽध्यवसाइं करीने अंत:करण परिणामो परिए गमने विखे करीने मूर्च्छा आवी जातिस्मरण उत्पन्न जातिस्मरणज्ञान ऊपनुं ७ देवलो कात् च्युत: सन् देवलोकइती चव्योथको मनुष्य भवे समागत: मनुष्यने भवे आव्यो सम्यग्ज्ञाने समुत्पन्नो सम्यग् भलोजातिस्मरण ऊपनो जातिस्मरति पौराणिको पाछलीं आपणीं जातिस्मरी सांभली ८ जातिस्मरणे समुत्पन्ने: जातिस्मरण ऊपने थके मृगापुत्रो महर्द्धिकं मृगापुत्र महाऋद्धिनो धणी

टीका
अ १९
५७२

प्राचीन जाति स्मरण अभूदिति शेष सञ्जिनोगर्भ तपश्चेन्द्रियस्य प्रान सञ्ज्ञान तस्मिन् सञ्जिज्ञानि ८ जाइ सरणे समुप्पन्ने मिया पुत्ते महड्ढिए सरइ पोराणिय जाइ सामणत्त पुराकय ८ मृगापुत्रो मर्हर्द्धिको राज्य लक्ष्मी युक्त पौराणिकी प्राचीना जाति स्मरति किं स्मरति मया श्रामन्य चारित्र पुरा पूर्व पालितमभूत् क्वचित जातिस्मरणे शानेसमुत्पन्ने सति सञ्जाते सति ८ इत्यत्र पाठांतरमस्ति गाथाया पुनरभिलात् विसएसु अरज्जन्तो रज्जतोसंजमम्मि य अम्मापि उर उवागम्म इम वयण मब्बवी १० मृगापुत्र अम्मापि उर मातापितर उपागत्यसमीपमागत्य इद वचन अब्रवीत् किं कुर्वन् विषयेषु अरजन् विषयेभ्यो विरक्तो भवन् च पुन चारित्रे संयमेरजन् साधमार्गे प्रीति कुर्वन् इत्यर्थ ८ सुयाणि मे पंचमहव्वयाणि नरएसु दुक्खञ्चतिरिक्ख जोणिसुनिव्विण्णकामो मरजवाओ अणुजाणहपव्वइस्सामि अम्मो १० हे पितरो मे मया पंच महाव्रतानि प्राग जन्मनि श्रुतानि नरकेषु पुनस्तिर्यग योनिषु दुःख श्रममभूत् ततोहं निर्विन्नकामोस्मि निवृत्तविषयाभिलाषोस्मि अहं महार्णवात् ससार समुद्रात् प्रव्रजिष्यामि निस्तरिष्यामि यूयं मतोऽस्मा अनुज्ञानीत आज्ञां दत्त। अम्मतायम एभोगा भत्ताविसफलोवमा पच्छाकडुयविवागा अणु बन्ध दुहावहा ११ हे पितरो मया पूर्वं भोगाभुक्ता

च पुराकय८॥ विसएसुअरज्जतोरज्जतोसजमम्मियअम्मापियरउवागम्मइमवयणमब्बवी १०॥ सुयाणिमेपंचमहव्वयाणि

स्मरति पोराणिको जाति पाछिलो जाति जन्म सामणोसामन्य चारित्र पूर्व पूर्वजन्मकृत वली पाछीण भवे जे चारीत्र पाल्यु हतु ते सांभरु ८ स कुमार विषयेष्वगर्द्धिकुर्वन् ते कुमार विषयने विषे पराङमुख थको विषयथी मनउतर्यो रज्यमान संयमे संयमने विषेरा चतुथको मातापिता समीपे आगत्य मातापिताने समीपे आवीने इद वचनमब्रवीत् एहवो वचन कह्यानागो १० श्रुतानि मयापंचमहाव्रतानि पंचमहाव्रत सुण्यां सांभल्या नर

उ०टीका
अ०१९
५७४

कीदृशा भोगा विषफलोपमाः विषफले रूपमोयते इति विष फलोपमाः पूर्वं भोगसमये मधुरा परं पश्चात्कटुकविपाकाः कटुकोविपाको येषां ते कटुकविपाका॰ प्रान्ते दुःखदाइत्यर्थ अथ पुन कीदृशाः अनुबन्ध दु क्खावहा अनुबन्धं निरन्तरं दुःखस्य आवहादायकाः अविच्छिन्न दु क्खदायिनः११ इमं सरीरं अणिच्चं असुई असुइ सम्भवं असासयं वासमिणं दुक्ख केसाण भायणं १२ हे पितरौ इमं शरीरं अनित्यं अशाश्वतं अशुचि अपवित्रं च वर्त्तते पुनरिदं शरीरं अशुचि सम्भवं अशुचेः शुक्र रेत सम्भूतं पुनरिदं शरीरं अशाश्वतावासं अशाश्वतः अनित्य आवासो जीवस्य निवासो यस्मिन् तत् अशाश्वतावासं पुनरिद शरीरं दु क्ख क्लेशानां भाजनं दुक्खानि जन्मजरामृत्यु प्रमुखाणि क्लेशाः धनहानि स्वजन वियोगादयस्तेषां भाजनं स्थानं

सूत्र

नरएसुदुक्खं च तिरिक्खजोणिसु निव्विन्नकामोमि महन्नवाओ अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ११॥ अम्मताय मए भोगा भुत्ता विसफलोवमा। पच्छाकडुयविवागा अणुबंध दुहावहा १२॥ इमं सरीरं अणिच्चं असुई असुइसंभवं असासया

भाषा

केषु दुक्खं वलीनरकना दुक्खसांभल्यां तिर्यग्योनिषु च गनीतिर्यंचनीयोनिना दुक्ख सांभल्यां निस्तरणाभिलाषोऽस्मिन् महार्णवात् संसार सागरात् एसं सारसमुद्र थी नीकलणहारछुं हे मात हे तात अनुजानीत आज्ञा द्यो हवे हुं दीक्षा लेईस मुझने आज्ञा दीजे ११ हे मात हे माहरा तातमए भोगा हे माता पितामें भोगव्या भुक्ताः विषफलसदृशाः किंपाकें विषफलसरीखाछे पश्चात् कटुका विपाका कटुरसाभोगवतां मीठालागे पछे घणुं कडआहोये रसतेहनो कडुओ अनुबंध परिणामे दुक्खकारण जिवारे परिणमे तिवारे दुक्खदोइ १२ इम शरीरं अनित्यं एशरीर अनीत्यछे अपवित्र

अथवा दुःख ने तथापि क्लेशरोगास्तेषां भाजनं १२ असासए सरीर मिरइनेवलभामिह पच्छापुरावच इव्वे फेणवुव्व यसन्निभे १४ हे पितरो अह अशाश्वते शरीरेरति नलभामि अह स्यास्या न प्राप्नोमि पुन कीदृशे सरीरे पश्चाद्भोग भोगानन्तर पुरा पूर्वं भोगभोगात् अर्वाक एवत्यक्तव्ये पुन कीदृशे शरीर फेन बुदबुदसन्निभे पानी प्रस्फोटक सदृशे १४ माणुसत्ते असारंमि वाहीरोगाण आलए जरामरणघत्थंमि खण पिनरमामिह १५ हे पितरो असारेमनुष्यत्वे अह क्षणमपि नरमामि न हर्षं भजामि कीदृशे मनुष्यत्वे व्याधिरोगाणां आलये व्याधय कुष्ट शूलादयो रोगावातपित्त श्लेष्मादयस्तेषां गृहे पुन कीदृगे मनुष्यत्वे जरामरणाभ्यांग्रस्ते १५ जम्मदुक्ख जरादुक्ख रोगाय मरणाणिय अहो दुक्खोहु ससारो जत्थकी सन्ति

वासमिणं दुक्खकेसाणभायणं १३॥ असासएसरीरंमिरइं नोवलभामिहं। पच्छापुराचचइयव्वो फेणबुब्बुय सन्निभे १४॥
माणुसत्ते असारंमिवाही रोगाण आलए जरामरणघत्थ मि खणंपि नरमामिहं १५॥ जम्मदुक्खजरादुक्ख रोगाय मर

शुक्रशोणित सम्भवति यनो किस्य अपवित्रछे शुक्रशोणित शु उपनूछे असाश्वतावास जीवस्य एजीवतव्यनो अशाश्व तुवासछे दुक्खक्लेशानु भाजन दुक्खयने क्लेश तेहनु भाजन घरछे १२ असाश्वते शरीरे एशरीर असासतू छे चित्तस्वस्थ न प्राप्नोति चोत्तने विखे सासतो संतोष नपामु छु पश्चात् भुक्तभोगी तथात्यजनीय पहिलेनापछे एशरीरने अवस्य छोडस्य फेनवद्बुदसन्निभ एजीवतव्य पाणीनापरपोटा सरीखूछे १४ माणुसत्वे असारे एमनुष्य पण असा रछे व्याधिरोगानां गृहे एशरीरव्याधि रोगनु घरछे जरामरणग्रस्त जराने मरणतिणे करीग्रस्तछे अह क्षणमात्रमपिनरमेसुख न लभेहं क्षणमात्रपणि सुखनथी पामतु १५ जन्मदुःख जरानुदुक्ख जन्म जरानु दुक्ख रोगाणि मरणाणिच रोगनो दुक्ख मरणनुदुक्ख अहो इति विस्मयेदु खहेतु ससारा एससार

जन्तुणो १६ हे पितरौ हु इति निश्चयेन ससारो दुःखं दुःख हेतु वर्त्तते अहो इति आश्चर्ये यत्र संसारेजीवा· क्लिश्यन्ति क्लेशं प्राप्नुवन्ति संसारे किं किं दुःख तदाह जन्मदुखं जरादुखं पुन ससारे रोगास्तापशोतशिरोर्त्ति प्रमुखाः पुनर्मरणानि च एतानि सर्व्वाणि दुःखानि यत्र सन्ति तस्मात् अयं संसारो दुःख हेतु रेव यत्र भव भ्रमणे जोवा क्लिश्यन्ति क्लेशार्त्ता भवन्ति १६ खित्तं वत्थुं हिरण्णं पुत्तं दारं च बन्धवा च दूत्ताणं इमं देहं गन्तव्वम वसस्समे १६ हे पितरौ मे मम अवश्य परवशस्य सतोः परभवे गन्तव्यं किं ज्ञात्वा चेत्रं ग्रामवाटिकादिकान्त्यक्त्वा पुनर्वास्तु गृहं हिरण्यं रूप्यं स्वर्णं पुत्रदारं पुत्रबालत्वं च पुन बांन्धवान् स्वज्ञातीन् भ्रातॄंपि तव्यान् इमान् सर्वान् त्यक्त्वा इमं देह सरीरं अपित्यक्त्वा १७ जहा किं पाकफलाणं परिणामो न सुन्दरो एवं भुत्ताणभोगाणं परिणामो न सुन्दरो १७ हे पितरौ यथा किं पाकफलानां विषवृक्षफलानां परिणामो भक्षणानन्तर परिणति समयः सुन्दरो न भवति एव भुक्तानां भोगाना अपि परिणाम सुन्दरो नास्ति यादृश विषफलानां भक्षणं तादृशभोगानांभोग किं पाकफलानिहि दृष्टं

सूत

गाथाय। अहो दुक्खोहु संसारो जत्थकीसंति जंतुणो १६॥ खित्तंवत्थुं हिरन्नंच पुत्तदारंच बंधवा। चइत्ताणं इमं देहं गंतव्व मवसस्समे १७॥ जहा किंपागफलाणं परिणामो न सुंदरो एवंभुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो १८।

भाषा

सर्वदुखहेतुछे यत्र ससारे क्लिश्यंति जोवाः एह संसारने विखे जोव क्लेशपामे छे १६ चेत्रंवस्तुगृहादि सुवर्णखेतूघ रसोनु पुत्रान् स्त्रियः भ्रातादयः पुत्र स्त्रोभाई तत्रादइदेहं एदेहोछोडोने गंतव्यं अवश्यमेव अवश्य परलोकाभे जाय १७ यथा किंपाकफलानां जिमकिंपाकफलनो विपाको नस्यात् सुंदरः जोमकोंपाकफलनुं विपाक परिणमेंते भला नहीं एवं भुक्तानां भोगानांइमभोग भोगव्यानो विपाको नस्यात् सुंदरः परिणाम सुंदर भलोनहुइ १८

नैन रमणीयानि भवन्नमयेपि सुखादूनि भवन्ति भुक्ते रनन्तर प्राणापहारीणि तथापि विषयसुखान्यपि १७ अद्वाण जो महन्तन्तु अपाहिज्जोपवज्जइ गच्छन्तोसेदुहीहोइ छुहातहाए पीडिओ १८ हे पितरौ य पुरुषो महान्त अध्वान दीर्घ मार्ग अपाथेय सम्बलरहित सन प्रव्रजति सपुमान् क्षुधा तृषया पीडित सन् दु खी भवति १८ एव धम्म अकाऊण जोगच्छइ परभव गच्छन्तोसेदुहीहोइ वाहीरोगेहि पीडिओ एव अमुनाप्रकारेण अथ वल पुरुषदृष्टान्तेन य पुरुषोधर्मं अकृत्वा परभव गच्छन्ति अन्यत्जन्मव्रजति सगच्छन् दु खी भवति कीदृश व्याधिरोगै पीडित १९ अद्वाण जो महतन्तु सपाहेज्जो पवज्जइ गच्छन्तोसेसुहीहोइ छुहातिन्हाएवज्जिओ २० हे पितरौय पुरुषोमहात अध्वानं दीर्घ मार्ग सपाथेय सम्बलसहित प्रव्रजति स पुरुष क्षुधातृष्णाभ्या विवर्जित क्षुधातृष्णा विवर्जित सन् मार्ग गच्छन् सुखी भवति २० एव धम्म पिकाऊण जो गच्छइ परभव गच्छन्तोसे सुहीहोइ अप्पकम्मे अवेयणे २१ एव अमुना प्रकारेण अनेन सम्बल सहित नरदृष्टान्तेन योमनुष्यो धर्म्म कृत्वा पर भव परलोक गच्छति स धर्माराधकं

अद्वाणजो मह ततु अप्पाहिज्जो पवज्जई गच्छ तोसेदुहीहोइ छुहातण्हाहि पीडिओ १९॥ एव धम्म अकाउण जो गच्छइ परभव । गच्छ तोसे दुहीहोइ वाहीरोगेहि पीडिओ २०॥ अद्वाणजो महततु सप्पाहिज्जो पवज्जइ गच्छ तो

मार्गेय पुमान् महातगरिष्ट जिको मनुष्यमोटेमार्गे अप्रबल गच्छति प्रबले करी रहितजाइ गच्छन् सन् सदुक्खीभवति जातुयकीते दुक्खीथाइ क्षुधा तृष्णाभ्यापीडित भूखेत्रषाइ पीडोथको १९ एव धम्म अकृत्वाइम धम्म अणकीधा य परलोक गच्छति परलोकने विखेजेजाय गच्छन् सनुसदुक्खी भवति जातुयकीते दु खोहोइ व्याधिरोगाभ्यां पीडित व्याधिरोगेपिडोथको २० अध्वनिमार्गेय महतिमोटा मार्गनेविखे सपाथेय प्रबलसहितो प्रबलपाणी लेइने

उ०टीका अ०१८ ५७८

पुरुष: सुखीभवति ,कीदृश: स अल्पकर्मा अल्पानि कर्माणि यस्य स अल्प कर्मालघु कर्मा पुन: कीदृश: स अवेदन: नविद्यते वेदना यस्य स अवेदन: अल्पवेदनो वेदनारहितो वा अल्प पाप कर्मा अल्पासातावेदन इत्यर्थ: २१ जहागेहेपलित्तंमि तस्सगेहस्सजोपहूसारभण्डाणिनीणेइ असारं उव उज्झइ २२ हे पितरौ यथा गृहे अग्निना प्रदीप्ते प्रज्वलिते सति तस्य गृहस्य य: प्रभु: स्वामीतदासारभण्डानि सारपदार्थान् आजीविका हेतून् गृहात् नीणेइ नि कासयति असारं भाण्ड अपोज्झति अपोहतित्यजतीत्यर्थ: २३ एवं लोए पलित्तंमि जराए मरणेणय अप्पाणतार इस्सामि तुभेहिं अणु मन्निओ २४ एवं अनेन दृष्टांतेन लोके जरयामरणेन च प्रदीप्ते प्रज्वलिते सति अहं आत्मानं तारयिष्यामि कीदृशोहं युष्माभिरनुमत: भवद्भि: दत्ताज्ञ स्तस्मात् मह्यं आज्ञादातव्या अहं भवदाज्ञया आत्मन उद्धारं करिष्यामीति भाव: २४ तं बिन्तम्मापि यरो सामन्नं पुत्त दुच्चरं गुणाणं तु सहस्साइं

सूत्र

सेसुही होइ छुहातण्हाए वज्जिओ २१॥ एवं धम्मंपिकाऊणं जोगच्छइ परंभवं। गच्छंतोसे सुहीहोइ अप्पकम्मे अवे यणा २२ जहागेहे पलित्तंमि तस्सगेहस्स जोपहूसारभंडाइं नीणेइ। असारं अवउज्झइ २३। एवंलीए पलित्तंमि

भाषा

जाय गच्छन् स सुखी भवति जाइतो सुखीहोइ चुधातीषा विवर्ज्जित: भूखत्रीषाइं करीरहित २१ एवंधर्म्ममपिकृत्वाइमधर्म्मकरीने योगच्छति परभवे जेजाइं परलोकने विखे गच्छन् सुखी भवति जातेथकी जीवसुखीहुवे अल्पकर्म्मा अल्पवेदना थोडा कर्म थोडीवेदना २२ यथा गृहे प्रज्वलिते जिम कोईने घरे अग्निलागीहुवे तस्य गृहस्य स्वामी तेहना घरनो स्वामी सारभंडानि निष्कासयति सारप्रधानभांडावस्तुकाढेतिम असारं सर्वत्यजति असार सर्व्ववस्तुछांडे २३ एवं लोके प्रदीप्ते इमलोकने विखे अग्निलागीछे जरायामरणानिच जराअने मरणरूप आगिलागीछे आत्मानं भांडतुल्यं तारयिष्यामी

टीका

धारेयव्वा इ भिक्खुणो २५ अथ मातापितरौ त मृगा पुत्र प्रतिब्रूत हे पुत्र यामण्य दुक्कर साधुधर्मो दुष्करोस्ति हे पुत्रचारित्रस्य उपकारकारकाणां गुणाना सहस्राणि भिचोधारितव्यानि मूल गुणाथोत्तर गुणाय भिचुणाधारणीया २५ समया सव्वभूएसु सत्तु मित्ते सुवाजगे पाणाइ वाइ विरई जावज्जीवाइ दुक्कर २६ पुनर्हे पुत्र सर्वभूतेषु समता कर्त्तव्या अथ वाजगे इति जगति शत्रु मित्रे षु समता कर्त्तव्या पुनर्या यज्जीव माणाति पातविरति दुष्कर इति दुष्करा २६ निच्चकालप्पमत्तेण मुसावायविवज्जण भासि यव्व हिय सव्व निच्चाउत्तेण दुक्कर २७ पुनर्नित्यकाल सर्वदा अप्रमादिनेन

सूत्र

जराए मरणेणाय। अप्पाण तारइस्सामि तुब्भेहि अणुमनिओ २४। त वितम्मापियरो सामन्न पुत्तदुच्चर गुणाणतु सहस्साइ धारेयव्वाइ भिक्खुणो ॥ २५ ॥ समया सव्वभूएसु सत्तु मित्ते सुवाजगे पाणायवाय विरई जावज्जीवाए दुक्कर २६॥ निच्चकालप्पमत्तेण मुसावायविवज्जण भासियव्व हियसव्व निच्चाउत्तेण दुक्कर २७ ॥ दतसोहणमाइस्स

भाषा

आपणाआमाने भाडलो परितारे युषाभ्याअनुज्ञात तुम्हारोआदेसलेइने तुम्हे तुमारो आदेशथी२४त मृगापुत्र प्रतिब्रूतामातापितरौ हवेमातापिता मृगा पुत्रप्रतिइमकहेछे चारित्र हेपुत्र दूष्कर हेपुत्र चारित्रदोहिलोछे हे पुत्रचारित्र उपकारकाणा गुणानातु सहस्राणिगुणना हजार मूलगुणउत्तर गुणाय भिचु धारयितव्यानिसाधो साधुने धरणाछे २५ तुल्यता सर्वभूतेषु सर्वजीव ऊपरे समताभाव राखे शत्रुमीत्रे षु रागद्वेषाकरणत शत्रु मीत्र ऊपरे सरिखा भाव राखे समता भाव आणे ततो लोके प्राणातिपात विरतितिषे कारणे प्राणातिपातनी विरती करे यावज्जीव तु दु कर जावज्जीवताइ दोहीलि२६ निय काल अप्रमत्तेन सदाइ अप्रमात्पणु मृषा वाद विवर्जन मृषावाद वर्जिवो भाषितव्य हित सर्व सर्वजीवने हितमोले नित्य सावधानेन

उ०टीका
अ०१८
५८०

मृषा वादस्यविवर्जनं मृषा वाद विवर्ज्जन कर्त्तव्यं पुनर्हितं हितकारकं सत्यं वक्तव्यं पुनर्नित्या युक्तेनस्थातव्यं तदपि दुष्करमस्ति आयुक्तः क्रियासु सावधानत्वं नित्यं अयुक्तो नित्यायुक्तस्तेन स्थातव्यं अत्र भाव प्रधान निर्देशोमन्तव्यः नित्यं अयुक्तत्वेन स्थातव्यं तदपि दुष्करमित्यर्थः २७ दन्तसोहण माइस्स अदत्तस्स विवज्जणं अणवज्जे सणिज्जस्स गेन्हणा अविदुक्करं २८ हे पुत्र पुनः साधुधर्मे दन्तशोधन प्रमुखस्यापि अदत्तस्य वस्तु नोपि विवर्जनं शिलाकामात्र मपि वस्तु अदत्तं न ग्रहीतव्यं अनवद्यं च तत् एषणीयं च अनवद्यैषणीयं तस्य अनवद्यैषणीयस्य पिण्डादेर्ग्रहणं अपि दुष्करं अनवद्यं निर्दूषणं अचित्तं प्रासुकं एषणीय द्विचत्वारिंशद्दोष रहितं पिण्डं ग्रहीतव्यं तदपि दुष्करमित्यर्थः २८ विरई अबम्भचेरस्स काम भोगरसन्नुणा उग्गं महव्वयं बम्भं धारेयव्वं सु दुक्करं २९ हे पुत्र अब्रह्म चर्यस्यमैथुनस्य विरतिः कर्त्तव्या सापि दुष्करा हे पुत्र काम भोग रसज्ञेन पुरुषेण उग्रं घोरं बम्भं ब्रह्मचर्यं महाव्रतं धर्त्तव्यं तदपि दुष्करं लब्ध भोगसुखा स्वादस्य भोगेभ्योनिवृत्तिरत्यं तं दुष्कराइत्यर्थः २९ धण धन्नपेसवग्गे सु परिग्गह विवज्जणं

सूत्र

अदत्तस्स विवज्जणं अणवज्जे सणिज्जस्स गिन्हणा अविदुक्करं २८ ॥ विरई अबंभचेरस्स कामभोग रसन्नुणा । उग्गं महव्वयं बंभं धारेयव्वं सुदुक्करं २९ ॥ धणधन्नपेसवग्गेसु परिग्गह विवज्जणा । सव्वारंभ परिच्चाओ निम्ममत्तं सुदु

भाषा

अति दुष्कर २७ दंतसोधनादे त्वणादेःदतशोधन शलीप्रमुख अदत्तस्य विवर्ज्जनंअदत्तादानपणि वर्ज्जेलोइनहीं अनवद्यस्य एषनीयस्य निरवद्य सूझतो ग्रहणमपि अतिदुःकरं आहारपाणी लेणो दोहिला २८ विरतिः ब्रह्मचर्यस्य शीलव्रतनीं विरतीकरे कामभोगस्य रसज्ञेन कामभोगनाजाण उग्रं महाव्रतं ब्रह्मचर्य उग्रमहाकठिनसीलब्रत जाज्जीव सीलपालतांदोहिलो धारवो २९ धन्यधान्य प्रेष्यवर्गेषु धनद्रव्य धान्यपशूनासमूह परिग्रहविवर्ज्जनं परिग्रह

उ०टीका
प०१८
५८१

मआरम्भ परित्यागो निर्ममत्त्व सु दुष्कर २० धन धान्य प्रेष्य वर्गेषु परिग्रह विवजन कर्त्तव्य धन गणिमादि धान्य गोधूमादि प्रेष्य वर्गोदासदास्या दिवग धन च धान्य च प्रेष्य वर्गच धनधान्य प्रेष्यवर्गास्तेषु मोह यत्न विशेषेण वर्ज्जन एतदपि दुष्कर पुन सर्वारम्भ परित्याग कर्त्तव्य स चापि दुष्कर पुनर्निर्ममत्वचिन्तन दुष्कर नमेकचिदस्ति अह मपि कस्यापि नास्मीति चिन्तन दुष्कर २० चउव्विहेवि आहारेराई भोयणवज्जणासन्निही सञ्चओ चेव वज्जेयव्वोसुदुक्कर २१ हे पुत्र पुन साधुधर्म चतुर्विधे आहारेरात्रि भोजनस्य वर्ज्जनाकार्या असन पानखादिमस्वादिमाना चतुर्णा माहाराणा मपि रात्रि भोजनत्याग एव कर्त्तव्य च पुन सन्निधि घृत गुडादे उचितकालाति क्रमेण स्थापन तत सन्निधि यासो सञ्चयश्च सन्निधि सञ्चय एव नियमेन वर्ज्जितव्य सोपि सुतरा दुष्कर २१ छुहातण्हायसी उण्ह दसमसगवेयणा अक्कोसा दुक्खसिज्जाय तणफा सजल्लमेवय २२ पुनर्हे पुत्रक्षुधा सहनीयात्यल्पाहार तृष्णाल्पा च सोढव्या सीतोष्ण सहनीय दसमशकानां वेदना सहनीया पुनराक्रोशा दुर्वचना नितसहनमपि दुष्कर पुनर्दुःखशय्याइति शय्या उपाश्रयस्य दुक्ख शय्यादुक्ख तदपि सहनीयं सस्तारके तृणस्पर्श दुक्ख पुनर्जल्ल मल परीषहोपि सोढव्य साधना २२ ताडणातज्जणाचेव वहबन्ध परीसहा दुक्ख भिक्खायरिया जायणाय अलाभया २३ पुनस्ताडनाचपेटा टक्करादिनाहनन पुनस्तर्जन अङ्गु

सूत्र

ष्कर २० चउव्विहेवि आहारेराईभोयण वज्जणा । सन्निहीस चओचेव वज्जेयव्वो सुदुक्करं २१ ॥ छुहातण्हायसीउण्ह

भाषा

कणथी सर्वारम्भ परित्याग सर्वआरम्भनु छांडवु निर्ममत्व अतिदुःकर निर्ममत्व पणु दोहिलु २० चतुर्विधे अपि आहारे च्यारेआहारे रात्रीभोजन विवर्जन रात्रिने विषे खाय वर्जन सन्निधि सचयो घृतादिस्थापन रात्रिने विषे घृतप्रमुखराखणो नहीं वर्ज्जितव्य सुदुष्कर एवर्जवुदोहिलु २१ क्षुधाभूख

त्यादिनानिर्भत्सनं भयोत्पादनं पुनर्वधबन्धपरीषहाः सहनीयाः तत्र वधोयष्ट्यादिभिर्हननं बन्धनं रज्वादिनादमनं वधश्च बन्धश्च बधबन्धौ तयोः परीषहाः सोढव्याः पुनर्भिक्षाचर्यायाः दुक्खं गृहस्थ गृहेयाचनाकर्त्तव्या तत्कारणेपि दुक्खमस्ति तत्रापि याचनायां कृतायां अपि अलाभता अप्राप्तिर्भवेत् तदापि दुक्खं न कर्तव्यं एतदपि दुष्कारं ३३ कावोयाजा इमावित्ती केसलोश्रोयदारुणा दुक्खं वम्भवयं घोरं धारेउं श्रमहप्पणा ३४ हे पुत्र साधु धर्मे पुनः कापोतीया वृत्तिर्वर्त्तते इति शेषः कपोतानां पक्षिणां या इव वृत्तिः साकापोताया यथा हि पक्षिणोनित्यं शङ्किताः सन्तः स्वभक्ष ग्रहणे प्रवर्त्तन्ते भक्ष्यं कृत्वा च पुनः सार्थे किमपि न गृह्णन्ति कुक्षि सम्बला भवन्ति तथा साधवोपि दोषेभ्य शङ्कमानाः आहार ग्रहणे प्रवर्त्तन्ते आहारं

सूत्र

दंसमसग वेयणा । अक्कोसा दुक्खसेज्जाय तणफासा जल्लमेवय ३२ ॥ तालणा तज्जणा चेववहबंध परीसहा । दुक्खं भिक्खायरिया जायणाय अलाभया ३३ । कावोया जाइमावित्ती केसलोउ अदारुणो । दुक्खं वंभव्वयं घोरं धारेउं

भाषा

तृषा तीस सीत ताड उष्ण गोरमो दंशमशकादि वेदना डांसमच्छर आवोलागे तेहनो वेदना आक्रोशः कोइ गालिदिइं दुक्खशिय्या उपासरा दुक्खदाइ भूंडा तृणस्पर्श शरीरमलः एवं दुक्खं सोढव्यं तृणनोस्पर्शः मलनु राखवु एदुक्खसहवु ३२ ताडना कराभ्यां हाथस्यु मारेश्रंगुल्यादिनातर्ज्जनश्रंगुलीइकरी तर्जे वचस्ताडनं वधमारवु वधोरज्वादिना वांध वुंगाडूया साथे दुक्खं भिक्षाचर्या भीक्षामांगवी तेहो जदुर्लभ साधुने याचनां अलाभता इत्यादि सदुष्कारं अलाभपरिसहदोहिलो ३३ कपोतानां पक्षिणां इयवृत्तिः कपोतपक्खीनो परिसूक्ष्मतु आहारलोइं वृत्तिआजीविका करे केशलोचो दारुणो रौद्रः साथे लोचकरवो महादोहिलो दुष्कार ब्रह्मव्रतं घोरंदोहिलो पालवो रौद्र ब्रह्मचर्यं धारयतः पुनः महात्माने साधुने दोहिलो३४ सुखोचितः सुखयोग्यःत्वं

क्त्वा च किनपि सार्थं सञ्चय न कुर्व्वन्ति पुन साधूनां केश लोचोपि दारुणो भयदोस्ति पुनमहात्मना साधुना वह्मव्रत धर्त्तु, दु'ख इति दुष्कार यस्त्र व्रत महात्मना महापुरुषेण धियते तद्दम्ह व्रत धर्त्तुं दुष्करमिति भाव कोदृश व्रम्हव्रत घोर अन्येपा अल्प सत्वानां भयदायक २४ सहोइओ तुम.पुत्ता सुकुमालो सुमज्जिओ नहुसोपभू तुम पुत्ता सामन्नमणुपालिया २५ छे पुत्रत्व सुखो चितोसि हे पुत्र पुनस्त्व सुकुमालोसि अथ चारित्र पहणाय समुद्यतोसि पर त्व श्रामण्य साधु धम अनुपालयितु प्रभु समर्थो न भवति २५ जावज्जीव मविस्सामो गुणाण तुमहब्भरो गुरुओ लोह भारव्व जोपुत्ताहोद दुव्वहो २६ हे पुत्रयो गुणाना चारित्रस्य मूलोत्तर गुणाना महाभार सलोहभार इव गुरुर्गरिष्टोदुर्वहो भवति कोदृशो गुणानां महाभार यावज्जोव अविश्रामोविश्रामरहित अन्योपि गुरुभारो यदा वोढु नयत्यते तदा क्वचित्प्रदेशेविसुच्यविश्रामो श्लयते एव चारित्र गुणभार कदापि नमो

सूत्र

अमहप्पणा २४ ॥ सुहोइओ तुमपुत्ता सुकुमालोय सुमज्जिओ । नहुसी पहूतुमपुत्ता सामन्न मणुपालिया २५ ॥ जाव ज्जीव मविस्सामो गुणाण तु महब्भरो । गुरुओ लोहभारव्व जोपुत्ताहोइ दुव्वहो २६ ॥ आगासे ग गसोउव्व पडिसो

भाषा

हे पुत्र तु सुखने योग्यछे सुखोचितछे सुकुमालच सुमार्ज्जित सुकुमालछे स्नाने करीने समार्योछे न भविष्यसित्व समर्थ रे पुत्र रे वेटा तु समर्थ नहीं हुने यावज्ज चारित्र पालयितु न समर्थ इत्यर्थ चारित्र तुझथकी नहीं पले २५ जावज्जीव अविश्राम जावज्जीवताइ वीसामोलेवो नही गुणानां पुन समूहो महाभार चारित्रनो जेगुणतेहनो महाभार चलावणो गुरुक महाभारीलोहभारेवकेहनी परे लोहभारनीपरे जिम लोहनोभार उपाडतां दोहिलो तिम चारित्र दोहिलु हे पत भवति दुर्वह पालता दोहिलोछे २६ आकाशे गगाप्रवाहेव आकाशनी गगा तेहनो प्रभाव प्रतिश्रोतेवदुस्तर

चनीय: यावज्जीव धारणीय: ३६ आगासे गङ्गसोउव्व पडिसो उव्वदुत्तरो बाहाहिंसागरोचेव तरियव्वो गुणो दही ३७ हे पुत्र आकाशे गङ्गाया यौतो वत् दुस्तरं इति योज्यम् यथा हि माचलात् पतद्गङ्गा प्रवाहस्तरि तुमशक्यस्तथा संयमोधारितु मशक्य: प्रतीपजल प्रवाह इव दुस्तरो बाहुभ्यां सागर स्तरितव्यस्तथा गुणोदधिर्गुणानां ज्ञानादीनां उदधिर्गुणोदधि: अथवा गुणाज्ञानादय एव उदधि: गुणोदधिश्चारित्र समुद्रस्तरणीय ३७ वालुया कवले चेव निरस्साए उसञ्जमे असिधारागमणं चेव दुक्करं चरिउं तवो ३८ हे पुत्र वालुकाकवलो यथा निस्वादस्तथा संयम: असिधारा गमनं असिधारायां गमनं खड्गधारायां चलनं यथा दुष्करं तथा तपश्चरितुं दुष्करं वर्त्तते २८ अहोवेगन्तदिट्ठीए चरित्ते पुत्तदुच्चरे जवालोहमया

सूत्र

उव्वदुत्तरो। बाहाहिंसागरोचेवतरियव्वो गुणोदही ३७॥ वालुया कवलेचेव निरस्साए उसंजमे। असिधारागमणं चेव दुक्करं चरिउंतवो ३८॥ अहीवेगं तदिट्ठीए चरित्ते पुत्तदुच्चरे। जवालोहमयाचेव चावेयव्वा सुदुक्करं ३९॥ जहा

भाषा

साहसु तरवु दोहिलु भुजाभ्या सागर जिम बाहिं करी समुद्रतरवो मुसकिल तरितव्यो गुणोदधि: दुस्तरो वर्त्तते तिमए गुण समुद्र चारित्र हे पुत्र तरता दोहिलोछे ३७ यथा वालुकाया: कवला· जोम वेलूनाको लीया निरास्वाद एवं संजमो निरास्वाद निस्वाद हुवे तिमएचारित्र निस्वादछे खड्गधाराया गमणमिव: खड्गनोधारा उपरिचालवु दु:कर चरितंतु तव दुष्करवर्त्ततेति चारित्र अनेतपकरवो दुष्कर छे ३८ अहीरिव सर्पवत् एकाद्दष्ट्या एकाग्रचित सर्पनीं परि एकाग्रचित्त थको चारित्र हे पुत्र दु:कारं चारित्रने विखे चालवु दु:कार यवा लोहमया: जिम लोहमइयव चर्वितव्या अति दुष्करं चावता दोहिलातिमएचारीत दोहिलाछे पालतो ३९ यथा दिप्ताऽग्नि

चेव चावेयव्वासु दुक्कर ३८ हे पुत्र साधु अहिरिव एकान्त दृष्टि एकोन्तोनिश्चयो यस्या सा एकान्ता एकान्ता चासौ दृष्टिश्च एकान्त दृष्टि यथा सर्प एकाग्रदृष्ट्याचलते इतस्ततो नविलोकयसि तथा साधमार्ग साधुश्चरेत मोक्षमार्ग दृष्टि विधाय चरेत् कीदृशे चारित्रे दुश्चारे चरितु मशक्ये यथा लोह मया यवार्श्चवितव्या दुष्करास्तथा चारित्र मपि चरितु दुष्कर ३८ जहा अग्गिसिहादित्ता पाउ होइसु दुक्कर तहदुक्कर करेउ जे तारुण्णे समणत्तण ४० हे पुत्र यथा अग्नि शिखादीप्तासती ज्वलन्ती पातुपान कर्त्तु सतरा दु करा तथा तारुण्ये योवने श्रमणत्व चारित्र कर्त्तु दु कर योवनावस्थाया हि इन्द्रियाणि दुर्दमानि इत्यर्थ ४० जहा दुक्ख भरेउ जे होइ वायस्सकुत्थलो तहा दुक्ख करेउ जेकीवेण समणत्तण ४१ हे पुत्र यथा वायोरिति वायनाभरितु पूरितु कुत्थलो वस्त्रमय भाजन दु कर तथा क्लीवेन हीन सत्वेन श्रामण्य कर्त्त दुष्कर ४१ जहा तुलाएतोलेओ

अग्गिसिहादित्ता पाउ होइ सुदुक्कर । तहदुक्कर करेउ जेतारुणे समणत्तण ४० ॥ जहादुक्खभरेउ जेहोइवायस्स कुत्थलो तहादुक्ख करेउ जेकीवेण समणत्तण ४१ ॥ जहा तुलाएतोलिउ दुक्कर मंदिरोगिरी । तहानिहुय निस्संक

शिखा जिम अग्निनो शिखा जाज्वल्यमानहोइ पान भवति सुदुष्कर ते जाज्वल्यमान अग्निपीता दुष्कर तथा दुष्कर कर्त्तु जे यादपूरणेतिमसयम पालवो दोहिलु तारुण्ये श्रमणत्व योवनावस्थाने विषे साधूपण ४० यथा दुक्खे न पूरयितु शक्यते जीम दुक्खे करीने भरीइ भवति शक्यते वातेन वस्त्रमय कुत्थलज जिम वायरे करीने वस्त्रनोकोथलोभराइ नहो तथा दुष्कर कर्त्तु क्लीवेननि सत्वेन श्रमणत्व तिमकायरनेचारित्र पालता दोहिलुछे कायर क्लीव परुपने चारित दोहिलुछे ४१ यथा तुलायतोलयितु जोमताकडोइ करितोलवु दुष्कर मेरुपर्वत मेरुपर्वतदोहिलो तथा निभृत निश्चल नि शंक

दुक्करं मन्दिरोगिरी.तहानि हुयं निस्सङ्कं दुक्करं समणत्तणं ४२ हे पुत यथा मन्दरीगिरिर्मेरुपर्व्वतस्तु लयातोलितुं दुःकरः तथानि भृतं नियतं निःशङ्कं शङ्कारहितं यथा स्यात्तथा शरीरापेचारहितं श्रमणत्वं साधुत्वं शरीरेण धर्तुं दुःकरं ४२ जहा भुयाहिं तरिउं दुक्करं रयणायरो तहा अणु वसन्तेणं दुक्करं दमसागरो ४२ हे पुत यथा रत्नाकरः समुद्रो भुजाभ्यांतरितुं दुष्करस्तथा अनुपशान्तेन मनुष्येणदमसागरस्तरितुं दुष्करः उपशान्तोजितकषायं नउपशान्तो अनुपशान्तस्तेन सकषायेण पुरुषेणदमः इन्द्रियदमोऽर्थात् चारितं दमएव दुस्तरत्वात् सागर इव दमसागरस्तरितुं दुःशक्यः इत्यर्थः ४२ भुञ्जमाणुस्सएभोए पञ्चलक्खणए तुमं भुत्तभोगीतओजाया पच्छा धम्मं चरिस्ससि ४४ हे पुत्र मानुष्यकान् मनुष्यस्य इमे मानुष्यकास्तान् मानुष्यिकान् मनुष्य सम्बन्धिनः पञ्च लक्षणान् पञ्चविधान् भोगान् त्वं भुङ्क्ष्व त्वं अनुभव हे जात हे पुत्र ततः पश्चात् भुक्तभोगी

सूत्र

दुक्करं समणत्तणं ४२ ॥ जहाभुयाहि तरिउं दुक्करं रयणायरो। तहा अणुवसंतेणं दुक्करं दमसायरो ४३ ॥ भुंजमाणुस्सएभोए पंचलक्खणएतुमं। भुत्तभोगी तओजायापच्छाधम्मं चरिस्ससि४४॥ सोवितम्मापियरोएवमेयंजहाफुडं। इह

भाषा

शरीरादि निरपेचं नीरापेखो दुःकर श्रमणत्वं तिमनिरीह पणो निश्चलपणो निःशंकपणो चारित्रपालता दोहिलोछे ४२ यथा भुजाभ्यातरीतुं जीम वांहि करीने तरतां दोहीलो दुःकारं रत्नाकरः समुद्र. रत्नाकरस्वयंभु रमणनामे समुद्र तथाऽनुप शांतचित्ते न जेहनुं चित्तविषय थकी रहीत नथी थयुं चित्तठामिनथी दुःकारं श्रामण्यं तेहने चारित्र दोहिलोछे ४३ भुंक्ष्वमानुष्यकान् भोगान् भोगवि मनुष्यना भोग पंचलक्षणान् शब्दादीन् पंचलक्षण शब्द रूप रसगंधस्पर्श भुक्तभोगी सन् हे पुत्रः भोग भोगवीने हे पुत्रः पश्चाद्धर्मं चरिष्यसि भोग भोगवीने पछे धर्म आदर जे ४४ अव पुत्र कहेतुतः सत्यं हे

भूय धम्म यति धम्म चरिर्ष्यसि अङ्गीकरिष्यसि इदानीं तव भोगानुभवन समयो स्तीति न पुनर्भोगत्यागावसरइति भाव ४४ सोवितम्मापि यरो एव मेय जहाफड इह लोयनिप्पिवासस्स नत्थि किञ्चिविदुक्कर ४५ अथ मृगापुत्रो ब्रूते हे पितरो एव मिति यथा भवद्भ्या प्रोक्त तत्तथैव यथा प्रव्रज्याया' दु करत्व स्फट प्रकट वर्त्तते तदसत्य नास्ति तथापि इह लोकेनि पिपासस्यपिपासायास्तृष्णाया निर्गतोनि पिपासस्तस्य नि पिपासस्यनि स्पृहस्य पुरुषस्य कि चिदपि दु कर नास्ति नि स्पृहस्य तृण जगत् इत्युक्ते य स्पृहावान् भवति तस्य परिग्रहत्यागो दु कर एव पर निरीहस्य साधुधर्म सुकर एव तेनाह नि स्पृहोस्मि मया सुखेन साधुधर्म कर्त्तव्य ४५ शारोरमाण साचेव वेयणाओ अणन्तसो मएसोढाओ भीमाओ असइन्दुक्ख भयाणिय ४६ हे पितरो मया शरीरमानस्यो वेदना अनन्तशो अनन्तवारान सोढा अनुभूता चैव पादपूरणे च पुन रस कृत् वार २ दु खानि भयानि सोढानि कोदृश्यो वेदना भीमा भयानका दु खाना भयाना च भीम शब्दो विशेषणेन प्रतिपाद्य कोदृशानि दु खानि भयानि च भीमानि भयोत्पादकानि दु खानि च भयानि च दुक्ख भयानि अथवा दु ख हेतू निभयानि दु ख भयानि राजविड्रात्नि चोरधाटी प्रमुखानि तानि वार २ अनुभूतानीत्यर्थ ४६ जरामरणकन्तारे चाउरन्ते भयागरे मये सोढाणि भीमानि जम्माणि मरणाणिय ४७ पुनर्मृगा पुत्रोवक्ति हे पितरो चाउरन्ते ससारे भीमानि भयदानि

लोए निप्पिवासस्सनत्थि किचिविदुक्कर ४५॥ सारीर माणसाचेव वेयणाओ अणतसो। मएसोढाणि असइ दुक्ख

भवा पितरी कुमारकहे हे मातापीताओ एव मेतत् यथास्फुट तुमाभ्यामुक्त हे मातापीताओ तुम्हे काह्यु तेसाच परतु इहलोके नि पिपासितस्य निस्पृह स्पपरजेहमाणसने इहलोकनो वाछा नथी नास्तो किमपि दु कर तेह पुरुषने काई दोहिलु नहो ४५ शरीरसबधिन्य मानस सबधिन्य शरीरस बधिनी तथा मनसबधोनी वेदना अनत प्रकारा वेदना अनतप्रकारे मइ मया सोढाभोमा मह भीम रौद्रवेदना सही असकृत् वार वार दुक्खभयानि च मह्रा

टीका अ १९ ५८७

सूत्र

भाषा

उ०टीका
प०१८
५८८

जन्मानि च पुनर्मरणानि सोढानि अनुभूतानि चत्वारो देवमनुष्यस्तिर्यक् नरकरूपाः भवा अन्ताअवयवा यस्य स चतुरन्तः चतुरन्तएव चातुरन्त इति व्युत्पति अर्थात्संसारस्तस्मिन् चातुरन्ते संसारे कीदृशे चातुरन्ते जरामरणकान्तारे जरामरणाभ्यां इति गहन तथा कान्तारं वनं जरामरण कान्तार वनं जरामरणकान्तारं तस्मिन् जरामरणकान्तारे ४७ जहा इह अगणी उण्हो इत्तो अणन्त गुणो तहिं नरएसुवेयणाउण्हा असायावेइयाराए ४८ हे पितरौ येषु नरकेष्वहं उत्पन्नस्तेषु नरकेषु मया उष्णास्पर्शनेन्द्रिय दुःखदा असाता वेदनाविदिताभुक्ता कीदृशा उष्णा यथा इह मनुष्य लोके अग्निः उष्णोवर्त्तते इतोऽग्नेः स्पर्शात् तत्र नरकेषु अनन्तगुणोग्नि स्पर्शः तत्र च बादराऽग्नेरभावात् पृथिव्या एव तथा विधः स्पर्शइति गम्यते ४८ जहा इह इम सीयं इत्तोणन्त गुणो तहिं नरएसु वेयणासीया असायावे इयामए ४८ यथा इह मनुष्य लोके इदं प्रत्यक्षं सीतं वर्त्तते इतः सीतात् तत्र नरकेषु

सूत्र

भयाणिय ४६ ॥ जरामरणकंतारे चाउरंते भयागरे। मएसोढाणि भीमाणि जम्माणि मरणाणिय ४७ ॥ जहाइहं अगणीउण्हो इत्तोणंत गुणोतहिं। नरएसुवेयणाउण्हा अस्साया वेइयामए४८॥ जहाइहं इमंसीयं इत्तोणंतगुणोतहिं

भाषा

बीहामणा महारौद्र दुक्खना भयसह्याछे ४६ जरामरण कांतारे जरामरणरूप अटवीने विषे चतुर्गतिरूपे भयाकारे च्यारगतिरूप संसारने विषे मया सोढाणि भीमाणिमेंसह्यां रौद्रबीहामणां जम्मानि मरणाणि च जन्ममरणनामे दुक्खसह्यां ४७ यथा इह मनुष्यलोके अग्निः उष्णो दृश्यते जीमममुष्य लोकाने विषे अग्निउष्णछे अस्मात् अनंतगुणस्तत्रएअग्नियको अनंतगुणों तीहां नरकेषु वेदना उष्णा नरकानेविषे वेदना उष्णाछे अशातारूपा वेदिता मया अशातारूपमेंवेदी ४८ यथा इदं अत्र शीतं जिम मनुष्यलोकाने विषे अस्मात् अनंतगुणस्तत्रएयको अनंतगुणछे तीहां नरकेषु वेदना सीतला नरकाने

मया मिता असातावेदना अनन्त गुणाधिकाभन्ना अनुभूता ४९ कन्दतीक दुकुभीसु उड्ढपाओ अहोसिरो हुयासणे जलन्तमि पक्कपुव्वो अणन्तसो ५० हे पितरो अहं कन्दकुभीषु पातभाजन विशेषासुलोह मयीषु हुताशने देवमाया छतेवक्रो अनन्तशोवहन् वारान् पक्कपूर्वं पूर्वं पक्क इति पक्क पूर्वं कोहगोहु जर्द्धपाद जर्द्धचरण च पुनरध शिराअधोमस्तक अहं किं कुर्वन् क्रन्दन् पूत् क्षति कुर्वन् कोहशे हुताशने ज्वलति देदीप्यमाने ५९ महादवग्गि सङ्कासे मरु मिवइरवालए कलम्ब वालुया एय दड्ढ पुव्वो अणन्तसो ५० हे पितरो कलबवालुकायानद्या मरु मिवालुकानिव देशेकते अनन्तशोवार २ अहं दग्ध पूर्वं कलबवालका नरकनदीतस्या पुलिन भूत्या भ्रष्ट पूर्वं ययात्र चणकादिधान्यानि भ्राष्ट्रे भज्यन्ते तथाहं मपि बहुशो दग्ध कथ भूतेमरौ महादवाग्नि सङ्काशेयामहादवानल सदृशे दाहक मग्नि युक्ते पुन कोहशे मरौ वज्रवालुके वज्रवालुकायस्य स वज्र वालुकस्तस्मिन्

सूत्र

नरएसुवेयणासीया अस्साया वेइयामए ४९ ॥ कन्दतोकदुकु भीसु उड्ढपाओ अहोसिरो। हुयासणे जलतमि पक्क पुव्वोअणतसो ५० ॥ महादवग्गिसकासे मरुम्मिवइ रवालुए। कलब वालुयाएय दड्ढपुव्वो अणतसो ५१ ॥ रसतोक

भाषा

विषे शीतलवेदना अशातारूप वेदनामया अशातारूप वेदनामैसहि ४८ आक्रंद कुर्व्वन् कटाहेषु आक्रंदकरतुथको कुंभीभाजननेविषे ऊर्द्ध पादो अधो शिरे पगउ चायिर नीचाकोधाछे हुताशने अग्नौ प्रज्वलितेसति अग्नि नीचेबलेछे सहतोथको पक्क पूर्वं पच्यो अनतवार अनतीवारे कडाहमाहि पचागोछे ५० महादवाग्निसदृशे महादवनी आगिसरीषो मरुदेशवत् वज्रवालुका नदीतीरे मरुदेशने विषे रेतहोइतिम वज्रवालुका नदीरेत माहि कदब वालुकाया च तिम कदब वालूनदीनातीरमाहि दग्ध पूर्वो अनतस अनतीवारबाल्यो ५१ पूत्कुर्वन् लोहकटाहेषु पुकारकरतु आरडतुलोहना

उ०टीका अ०१९ ५९०

वज्रवालुके ५० रसतोकदुकुंभोसु उड्ढ बद्धो अबन्धवो करवत्तकरवयाईहिं छिन्न पुव्वो अणन्तसो ५१ हे पितरौ पुनरहं कान्दुकं भीषु लोहमयपाचन भाण्डविशेषेषु ऊर्द्धं वृक्षशाखादौ बद्ध· सन् परमाधार्मिकदेवैरिति बुद्धा मायं अबद्धः कुतश्चित् नष्ट्वायास्यति तस्मादधो देशेकुंभीवर्त्तते उपरि वृक्ष शाखायां अहं बद्ध· करपत्रैः क्रकचैश्च अनन्तशो बहुवारं छिन्नपूर्वोद्विधाकृत· यथा काष्टं बध्वाकरपत्रैः क्रकचैः छिद्यते तथाहं छिन्नः लघूनिकाष्टविदारणो पकरणानिक्रकचानि बृहन्ति च तानिकरपत्रकान्युच्यन्ते कीदृशोहं रसन् विलपन् पूत्कृतिं कुर्वन् पुनः कीदृशोहं अबान्धवः न विद्यते बान्धवो हितकारी यस्य स अबान्धव· ५१ अइतिक्खकंटकाइन्ने तुङ्गेसिं बलिपायवे खेवियं पासबद्धेण कड्ढो कड्ढाइ दुक्करं ५२ हे पितरौ अतितीक्ष्णकंटकाकीर्णे तुङ्गे उच्चे शम्बल पादपे कट्टाकट्टी कर्षापकर्षणै· परमाधार्मिक कृतैः चेपितं पूर्वोपार्जितं कर्म अनुभूतं मयायानि कर्माण्युपार्जितानि तानि भुक्तानीति

सूत्र

दुकुंभीसु उड्ढवद्धो अबंधवो। करवत्तकरवयाईहिं छिन्नपुव्वो अणंतसो ५२॥ अइतिक्ख कंटकाइन्ने तुंगेसिं बल पायये। खेवियं पासबद्धेणं कट्ठोकट्ठाहिं दुक्करं ५३॥ महाजंतेसु उच्छुवा आरसंती सुभेरवं। पीलिओमि सकम्मेहिं

भाषा

कटाहमांहिं ऊर्द्धं बध· अबांधवो उंचोबांध्योथको अबधवभाई रहितकर पत्र लघुकर पत्रादिभि· वली वडीलह्वडीकरवते करीने छिन्नपूर्वं अनंतशः अनतोवारछेद्योछे ५२ अतितीक्ष्ण कंटकाकीर्णे अतितीखा कांटातिणेकरी सहित उच्चे शाल्मलीवृक्षे घणो उंचो साल्मलीइं सहनामे वृक्षचेपितं पाशबद्धोहं पासबांधीने शुभने टेख्यो इतस्तत आकर्षेण दुष्करं उरहुं परहुं पंचाणदोहिलोथयो ५३ महायंत्रेषु इक्षुवत् महायत्रविषे सेलडीनीपरे पूत्कारं कुर्वन् भैरवं महावीहामणो आरडतुथको पीडितोस्मि स्वकर्मभि· आपणे कर्म्मे करीपोड्यांछे पापकर्म्म अनंतश पापकर्म्माइं अनंतीवार ५४ पूत्

ग्रेय कोट्टगेन मया पापवद्दे रज्वा सज्जितेन इदमपि दु कर कटभुक्तमितिशेष ५३ महाजन्तेसु उच्छूव आरसन्तोसुभेरव पीलिओमिसकम्मे हि पावकम्मो अणन्तसो ५३ हे पितरौ पुनरह पापकर्मा पाप कर्म यस्य स पापकर्मा पाप अणन्तशो बहुवार स्वकर्मभिर्महायन्त्रे षु पीडितोक्षिक इव इक्षुरिव यथा इक्षुर्महायन्त्रे षु पीड्यते अह कि कुर्वन सुभेरव सुतरा अत्यन्त भैरव भयानक शब्द आरसन् आक्रन्द कुर्वन् ५३ कुवन्तो कोलसुणएहि सामेहि सवलेहि यपाडिओ फालियो छिन्नो विप्फुरन्तो अणेगसो ५५ हे पितरौ अनेकशोऽनेकवार स्यामे श्यामाभिधाने च पुन शवले शवलाभिधाने परमाधार्मिकदेवे भूमौ पृथिव्या अह पातित परमाधार्मिकाहि पञ्चदशविधा अबे १ग्र तिवध्न ति च अम्बरिसीचैव १ कारीयेमप्वति २ सामेय ३ यातना पातना च कुर्यन्ति ३ सवलत्तिय ४ अन्त्रादिनि काय्ययन्ति ४ रुद्दो ५ कु तादौ प्रोतयति ५ अवरुद्द ६ अगोपागानि मोटयन्ति ६ कालेय ७ तैलादौतलयन्ति महाकाले तज्ञावरे ८ खण्डा सानिखादयन्ति ८।१ असि पत्ते ९ असि पत्रवनवि कुर्वन्ति ९ धणू १० धनुर्बाणैघ्नन्ति १० कुम्भे ११ कुम्भोपाके पचन्ति ११ वालुया १२ भ्राष्ट्रे पचन्ति १२ वेयणत्तिय १३ वैतरण्या अवतारयन्ति १३ खरस्सरे १४ शाल्मल्यामारोप्य खरस्वरान् प्रकुर्वन्ति १४ महाघोसे १५ नश्यतो नारकान् मीलयन्ति महाशब्देन भापयन्ति १५ इति परमाधार्मिका कौदृशे श्यामे शवलेय कोलशुनकैर्वराह शुनकरूपधारिभिर्देवै पुनरह स्फाटित पुरातन वस्त्रवत् विदारित पुनरह तैर्वराह कुकरै स्फाटितोदन्तै द्रुमिय द्रुमवत् छिन्नय पुन कौदृशोह

सूत्र पावकम्मो अणतसो ५४ ॥ कुवतोकोलसुणएहिसामेहि सवलेहिय। पाडिओ फालिओछिन्नो विप्फुरतो अणे

भाषा कुर्वन् शब्दायमान पुकारकरतोयको शूकरे श्वानेयसूहरे कूतरे श्यामे सवले परमाधार्मिके श्याम अने स वलइसेनामे परमाधामीक देवताछे ते भुंविपा तित जोर्ण वस्त्रवत् छिन्न पाटित ते देवताइ सुभने धरतीइ नाख्योपछे फाड्योछेद्यो शूकराकृतरापासेखवाड्यो विस्फ रन् इतस्ततयलन् उरहो परहो

उ०टीका अ०१९ ५८२

कूजन् अव्यक्तं शब्दं कुर्वन् पुनः कोट्टगोह विस्फुरन् इतस्ततस्तउ फडन् ५५ असोहिं अयसिमयाहिं भगोहिं पिट्टिसे त्तिय छिन्नोभिन्नोविभिन्नोयउववन्नो पावकम्मुणा ५६ हे पितरौ पुनरहं पापकर्मणाउदोर्णं प्रेरितः सन् नरकेषु असिभिः खड्गैः पुनर्भल्लोभिः कुन्तै स्त्रिशूलैर्वाच पुनः पिट्टिसैः प्रहरण विशेषैः छिन्नोद्विधाकृत भिन्नोविदारितः च पुनर्विभिन्नो विशेषेण सूक्ष्मखण्डो कृत ऊर्ध्वं भल्लरसिभि प्रतमो कुसुमवर्णं त्यालतरं रितर्थ. ५६ अवसो लोहरहे जुत्ते जलन्ते समिलाजुए चोइ ओतोत्तजुत्तेहिं रोज्झोवाजहपाडिओ ५७ हे पितरो पुनरहं नरकेलोहरथे अवशः परवशः सन् परलाधालिका देवैर्ज्वलति अग्निनाजाज्वल्यमाने समिलायुगे युक्तोयोजितः समिलायुगर अवेपणोयकोलिकायुगस्य जुसरः उभयोरपि पक्षिना मदोसरं जायितं तलाग्निनाज्वलमानेरथेहं योजितस्तोवयो अनोदित प्रेरित तोवाणि प्राजनकानि पुराणितादोनि तोत्राणि नासाप्रेतनजरज्जुबन्धनानि ते प्रेरित

सूत्र

गसो ५५ ॥ असीहिं अयसिवन्नाहिं भल्लीहिं पट्टिसेहिय । छिन्नोभिन्नो विभिन्नोय उववन्नो पावकम्मुणा ५६ ॥ अवसो लोहरहेजुत्तो जलंते समिलाजुए । चोइओतोत्तजुत्तेहिं रोज्झोवा जहपाडिओ ५७ ॥ हुयासणे जलंतंमि चियासु

भाषा

चालतुंथको ५५ खड्गैः अलसो पुष्पवर्णैः खड्गे अलसोने वर्णे नीला श्यामजे भले पट्टिशैः प्रहरण विशेषैः भालो पटोएवीदारविचार विशेषछे छिन्नः भिन्नः विशेषेण छिन्नः छेद्यो भेद्यो विशेषेछेदोनविचार कर्यों उत्पन्नोजतारितो नरके पापकर्मणा नरकमांहि पाणीवाल्यो पापने कर्मे ५६ अवशः परवशः लोहरथे योजितः परवशथको लोहने रथे जोतण्यो ज्वलिते समिलायुते समोलावलतो उत्तरोछे प्रेरितः तोवयुतैः पराणे करोनूंजन्योछे प्रेर्योछे रोझ जीववत् अहं पोडितः रोझजीवनो परिपुं पोडोयो५८ हुताशने ज्वलति सती बलतो आगमांहिं चितामा महिषवत् चेहैमांहिभिसानोपरिं दग्धपक्व प्रवशः

उ टीका
अ १९
५८२

पुनरह रौन्द्रोवादति गवयव इवपातित यष्टिमुष्ट्यादिनाहत्यापातित वा शब्द पादपूरणे यथा शब्द इवार्थे ५७ ह्रुयासणि जल त मिचियासुमहि सीविवदट्टीपक्कोय अवसो पावकम्मो हि पावियो ५८ हे पितरो पापकर्मभिरह प्राहतो वेष्टित सन ज्वलति हुताशने जाज्वल्यमानेऽग्नौदग्ध भस्मसात्कृत पुनरह पक्क हस्तादिवत् भटितोकृत कोदृशोह अवश परवश अह कद्दव अग्नौदग्ध पक्कायचितासु अग्निसुमहिष इव यथात्र पापा पट्टकवधार्थ अग्नौ प्रज्वालयन्ति भटित्रो कुर्व्वन्ति तथा तत्राह परमाधार्मिकदेवैर्विक्रियारचिताग्नौदग्ध पक्काय ५८ बलासण्डा स तुण्डै हि लोह तुण्डै हि पक्की हि विलुत्तो विलवन्तोह ढङ्कगिद्धे हि णन्तसो ५९ हे पितरो अह अणन्तसो बहुवार ढङ्कस्तै ढङ्कपक्षिभिर्गृध्रपक्षिभिर्बलात् विलुप्त स्थित विशेषेण लप्तोविलप्त नासाने त्रात्मकाले यादिप चुण्टित इत्यर्थ काय भूतैर्दं शोर्ण्टैश्रे सन्दशतुण्डै सन्दशाकार तुण्ड येषा ते सन्दशतुण्डास्तै सन्दशाकारमुखै पुन कोदृशै लोह तुण्डै लोहवत्कठोर मुखै कि कुर्वन विलपन् विलाप कुर्वन् ५८ तण्हाकिलन्तो धावन्तो पत्तोवेयरणि नद्द जन्न

सूत्र

महिसोविव दड्ढोपक्कोयअवसोपावकम्मो हि पाविओ ५८॥ बलासंडास तुंडेहि लोहतुंडेहि पक्खिहि विलुत्तो विलवतोहढकगिद्धेहिणंतसो ५९॥ तण्हा किलंतो धावंतो पत्तोवेयरणिनद्द । जलपाहिति चिंततो खुरधाराहि निवा

भाषा

परवस दभायोपचायो परवसथको पापकर्मभो नरकगति प्रापित पापकर्मेनरकि माहि घाल्यो ५८ बलात्कारेण स डासक समान चञ्चुपुटे करडासी समान जेहनी चाचके लोहतुंडे पक्षिभि लोहसरीखो जेहनी चांचके इसे पक्षोए विलुप्तो विदारित विलपत विदास्यो विलापकरतु ढक गृद्धे पक्षिभि अनंतग ढकगृद्धपक्षोए अनतोवार ५९ तृषाक्लिनत थावत तृषाई पोड्योथको दोडतुथको प्राप्तोवेतरणी नदी वैतर्णी नदीइ गयो

उ०टीका प०१९ ५८४

पाह तिचिन्त तो खुरधाराहिं विवाइओ ५८ हे पितरौ पुनरहं तृषाक्रान्तस्तृषाभिः व्याप्तो धावन् वैतरणीं प्राप्तः सन् जलं पिवामीतिचिन्तयन् चुरधाराभिर्व्यापादित कोर्थ यावदहं तृषा क्रान्तोमनसिपानीयपिबामीति चिन्तयामि तावद्वैतरणी नद्याः ऊर्म्मिभिः कल्लोलैर्हतो दु खीकृतोवैतरणी नद्याः जलं हि चुरधारा प्राय गलच्छेदकमस्तोति भाव. ५८ उण्हाभि तत्तो सम्पत्तो असि पत्तं महावणं असिपत्तेहिं पण्डतेहिं छिन्न पुव्वो अण तसो ६० हे पितरौ पुनरह उष्णाभितप्त: आतपपीडित: छायार्थी असि पत्र महावनं प्राप्तः असिवत् खड्गवत् पत्त येषां ते असि पत्रा खड्गपत्र वृक्षास्तेषां महावनं असि पत्र महावनं गत: सन् असिपत्रैः पतद्भिरनन्तशोऽनेकवारं छिन्न पूर्वोद्विधाकृत: ६० मुग्गरेहिं मुसंढीहि सूलेहिं मुसलेहियगयासभग्गगत्तेहिं पत्त दुक्खमणन्तसो ६१ हे पितरौ अहं मुद्गरै लोहमयैर्गुरुजै: च पुनर्मुसंढीभि शस्त्र विशेषैर्लेपेटाभिधानैश्शस्त्रैर्वा तथा शूलै स्तिशूलैश्च पुनर्मुशलैः

सूत्र

दुओ ६० ॥ उन्हाभितत्तो संपत्तो असिपत्तं महावणं। असिपत्तेहिं पडंतेहिं छिन्नपुव्वो अणंतसो ६१ ॥ मुग्गरेहिं मुसंढीहिं सूलेहिं मुसलेहिय। गया संभग्गगत्तेहिं पत्त दुक्खं अणंतसो ६२ ॥ खुरेहिं तिक्खधारेहिं छुरियाहिं

भाषा

जलपास्यामि इति चितयन् पाणीपोसुं इस्युं चिंतवतु गयोचुरधाराभिः जलोर्मिभिः विपादितः छुरी सरीखोइ पांणीरीधारे पाड्यो ६० उष्णाभितप्तः संप्राप्तः तावडे करीने पीडाणोथको आव्यो असिसमान शस्त्रैः पत्रैः खड्गसरिखां जेहना पांनछे इस्ये बनखंडे आव्यो खड्गसदृशैः पत्रैः पतद्भिः ऊपरि खड्ग सरिखा पांनपडवालागा छिन्न पूर्वं अनंतशःछेद्यो भेद्यो अनंतीवार ६१ मुद्गरप्रहारे तथा मुंसुंढेः शस्त्रविशेषैः मोगरना प्रहार तथा मुंसंढीहथीयार विशेष तेहना प्रहार त्रिशूलैः मुशलैः त्रिशूल मूशलः गदाभिः भग्नगात्रै · गदाइं करीने अंगोपांग भागाछे प्राप्तः दुक्खं अहं अनंतशः अनंतीवारसि दुक्ख

पुनर्गदाभि लाहमयी यष्टिभिरनन्तशोदु ख प्राप्त कथ भूतैरते मुद्गरादिभि शस्त्रै सभग्नगात्रै चूर्णित शरीरै ६१ खुरेहिं तिक्खधारेहिं छुरीयाहिकप्प णीहिय कप्पिश्रो फालिश्रो छिन्नो उक्कत्तोय अणेगसो ६१ हे पितरौक्षुरै रोममुण्डन साधनै पुनस्तीक्ष्णधाराभि चुरिकाभि कल्पिनीभि कर्त्तरीभि रहं कल्पितो वस्त्रवत् खण्डित पुन स्फाटितो वस्त्रवत् जर्ध्व विदारित पुन छिन्न चुरिकाभि कक्कटीवखण्डित पुनरुत्कृत शरीरात् दूरीकृतचर्मा इत्यर्थ एव अनन्तशोवार२ कदर्थित ६१ पासेहि कूडजालेहि मिश्रोवा अवसो अह वाहिश्रो बद्धरुद्धोय बहुसोचेव विवाइश्रो६२ हेपितरौ पुनरह वहुशो वार२पाशैर्बन्धनैस्तथा कूटजालै कुडिवागुरादिभिर्मृगइव वाहिश्रो इति भोलवितस्तथा बद्धो रुद्धयवाह्य प्रचारान्निषिद्ध.. यथा मृग वञ्चयित्वापाशेनिक्षि पन्ति कूटजाले पातयन्ति तथाह वञ्चितो बद्धोरुद्धश्च पुनरेव निश्चयेन अवश परवश सन् व्यापादितोमारित ६१ गलेहि मगरजालेहि मच्छो वा

कप्पणीहिय । कप्पिश्रो फालिश्रोछिन्नो उक्कत्तोय अणेगसो ६२ ॥ पासेहि कूडजालेहि मिश्रोवा अवसो अह ।
वाहिश्रो बद्धरुद्धोय बहुसोचेव विवाईश्रो ६४ ॥ गलेहि मगरजालेहि मच्छोवा अवसोअह । उल्लिश्रो फालिश्रो

पाम्यु ६२ खुरे तीक्ष्णधारे तोखोचे जेहनो धारएहवे पाछणीकरीने तथा चुरिकाभि छुरीइ करीनेकर्त्तरीभि कातरणीइकरीने क तित खण्डीकृत इणी करीने काप्यो खण्ड २ किधो विदार्यो उत्कीरित चररनेकाम पाछणी करीने अनेवार कोखो ६३ पाशे पाशे करीने कूटजाले कूडेजाले करीने मृगवत् अवस सन् अह मृगलानो परि परवशथकोहु व्याधित बद्ध रुद्ध वहि पीड्यो बाध्यो रुध्योचउगरदाइ बहुश वारान् व्यापादित घणीवारपरमाधामीए मार्यो ६४ गले कंटकायमासे मकरजाले मच्छनाजालमांहि घालीने मच्छ व परवश अहमच्छनी परि परवशथकोहु उल्लेपित चामडी उतारी पाटित

अपसी गहं उल्लिओफालिओगहिओ मारिओय अणन्तसो ६४ हे पितरौ पुनरहञ्च मत्स्यानांपायैः मकरजालैर्मत्स्यजालैर्मत्स्य इव विजगलोऽभूवं पुन गृहीतोमकररूपधारिभि परमाधार्मिकैर्बलात् उपादत्तः पुनर्हल्लिओ इति उल्लिखितश्चौरितः पुनस्फाटित काष्टवद्विदारितः पुनरनन्तशोमारित गर्दभ इव कुट्टित ६४ वीदंस एहिंजालेहिं लेप्पा हिंस उणोविव गहिओलग्गोय बद्धोय मारिओय अणन्तसो ६५ हे पितरौ पुनरहं शकुनिरिव पक्षी विदंशकै पक्षिबन्धन विशेषैर्बलाद्गृहीतः वीतंशोमृग पक्षिणां इति हैमः पुनरहं जालैर्गृहीत पुनर्लेप्याभिश्लेषोपलेपन क्रियाभिर्लग्न श्लिष्ट पुनरहं बद्धोद वरकादिनाचरणग्रीवादीनियन्त्रितः पुनर्मारितः प्राणैर्विहोतः क्षत ६५कुहाडपरसुमाईहिं वड्ढईहिं दुमोइवकुट्टिओफालिओछिन्नो तच्छिओय अणन्तसो ६६

गहिओमारिओयअणंतसो६५॥ वीदंसएहिंजालेहिंलेप्पाहिंसउणोविव । गहिओलग्गोअबद्धोयमारिओयअणंतसो ६६॥
कुहाड़ परसुमाईहिं वड्ढईहिं दुमोविव । कुट्टिओ फालिओ छिन्नो तच्छिओय अणंतसो ६७॥ चवेड मुट्ठिमाईहिं

फाल्यो गृहीत गृध्रपक्षिभि मारितश्च अनंतशः माखो अनतीवार ६५ वीदंसकैः शिचानकै वीदंसकसींचाणो कहीइ तथाजालैः पक्षिबंधन दुग्धादिश्लेष द्रव्यैः लेप्यो लेपद्रव्यैः वटनदूधलाकडीइ लगाडीने पंखीने जालेकैसीं चाणा प्रमुखनीपरें शकुनिइवगृहीतः वज्रलेपलगाडी पंखी यांनीं परिसुंने झाल्यो मारितो अनंतशः चेपलगाडी बांध्यो माखो अनंतोवार ६६ कुठारपरशु आयुधाद्यैः कुहाडो फरसी आदेदेइ हथियार सूत्रधारेण अहं द्रुमैव सूक्ष्मखंडीक्षत सूत्रधारेञ्च रंखनीं परें कुहाडास्युं नान्होछेद्योकुट्टितः द्विधाक्षत छेदितः कूट्योदोधाकीधो छेद्योलगुरहितः अनंतवारं क्षत चामडी उतारी अनंतीवारत्वचा ६७ चपेट मुष्ट्यादिभिः क्षत्वा चपेटा मूंठी आदि देईने यथा कुमारे क्षत्रियपुत्रे अज छगलस्ताडाते जिमराजानावेटा छालीनें

हे पितरी पुनरहं कुठारे पत्थाके काष्ट सस्करणसाधन प्रहरणे वांद्दिकिभि काष्टतडभिद्रुम इव कुट्टित स्फाटित छिन्नश यथा काष्टवच्छिद्यं च कुठारे पर्श्वाभि प्रहरणे कुट्यते स्फाट्यते छेद्यते तथाहं परमाधार्मिकैर्वार २ पीडित ६६ च वेड मुट्ठिमाइ हिं कुमारे हिं अयपिव ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो चुण्णिओय अणन्तसो ६७ हे पितरी पुनरहं परमाधार्मिकैर्देवैश्च चपेटाभिर्हस्ततलै पुनर्मुष्ट्यादिभिर्वज्रहस्तै आदि शब्दाल्लत्ताजानुकूर्परा प्रहारैस्ताडित कुट्टित भिन्न भेद प्रापित चूर्णित कै कमिव कुमारै लोहकारै अय इव लोह इव यथा लोहकारेण लोह कुट्यते भेद्यते चूर्ण्यते अनन्तशोक्रियते ६७ तत्ताइत बलोहाइ तओयाइ सोसगाणिय पाईओ कलकलन्ताइं आरसन्तो सुभेरव ६८ हे पितरी पुनरहं परमाधार्मिकै स्तप्तानिगालितानि ताम्रलोहादीनि वैक्रियाणित्रपुकानिकस्तोरकानि च भ्रष्ट पायित कीदृशानि ताम्रादीनि कलकलन्तानि कलकलशब्द कुर्वन्ति अत्यन्त उत्कलितानि अव्यक्त शब्द कुर्वन्ति कीदृशोहं सुभेरव अतिभीषण शब्द रसन् विलपन् ६८ तुहं पियाइ मसाइ खण्डाइ सोल्लगाणिय खाविओमिसम

कुमारेहिं अयपिव। ताडिओ कुट्टिओभिन्नोचुण्णिओयअणतसो ६८॥ तत्ताइत बलोहाइ तउयाइ सीसगाणिय।
पाविओ कलकलताइ आरसतोसुभेरव ६६॥ तुह पियाइ मसाइ खडाइ सोल्लगाणिय। खाविओमि समसाइ

मारे तथा ताडित कुट्टितोभिन्नतिम ताडयो कूट्योभेद्यो चर्णितय अनतम चूर्णकोयो अनतीवार ६८ तप्तानि अग्निवर्णीकृतानि ताम्रलोहादि अग्नि सरोपांकोधाके ताम्र अनेलोटात्रपुकानोकथोरसीसकानि सीसो पान कारित कलकलितानि कलकलात करता पायो आक्रदन् शब्द भैरव आक्र द करताने महावीहांमणो ६९ तथापि प्रियानि मासानि तुम्हने मांसप्रियहतु खडीकृतानि शूलाकृतानि नान्हा नान्हानुकरतु शूलाकरीखातु भष

उ०टीका
अ० १९
५९८

साउ अग्गिवणाइं गणसो ६९ हे पितरौ पुन· परमाधार्मिकैरिति स्मारयित्वा स्वमांसानि अहं खावित· स्वमांसानि भोजितः कीदृशानि भोजित· कीदृशानि स्वमां सानि खण्डानि खण्ड रूपाणि पुनः कीदृशानि सोल्लकानि भरित्री क्रतानि स्वमां सान्येव भटित्री क्रत्य शूलाक्रत्य च खादितानि पुन· कीदृशानि अग्नि वर्णानि जाज्वल्यमानानि तान्यपि एकवारं नखादितानि किं तु अनेकवारं खादितानि इति किं स्मारयित्वारेनारकतवप्राग्भवे मांसानि प्रियाख्यासन् जीवानां हित्वं मांसानिखण्डानि सोल्लकानि अघस· इदानीं त्वं स्वमां समेव अज्जिइत्युक्त्वा पूर्वकर्मस्मारयित्वा परमाधार्मिकैः स्वमांसानिखादितस्वमासैरेव भोजित इत्यर्थः ७० तुहं पिया सुरासीहूमेरओयमहूणिय पाइओमिजलन्तीओ वसाओ रुहिराणिय ७१ हे पितरौ पुनरहं परमाधार्मिकैर्वसाः अस्थिगतरसान् च पुनः रुधिराणि पायितोस्मि किं कृत्वा इति स्मारयित्वा इत्यध्याहारः इतीति किं रेनारकतवप्राग्भवे सुराचन्द्र हासाभिधं मद्यं सीधुस्तालवृक्ष दुग्धोद्भवा मेरेइंपिष्टोद्भवा धातिकीत्पन्नानरसा पुनर्मधूनि पुष्पोद्भवानि मद्यानि प्रियाख्यासन् इति निर्भर्त्सना पर्वक पायित इत्यर्थः ७१ निच्चभीएणतत्थेण दुहिएण वहिएणय परमादुहसम्बद्धा वेयणावेइयामए ७१ हे पितरौ मया परमा उत्कृष्टावत्तु मशक्या

सूत्र अग्गिवन्नाइं गणसो ७० ॥ तुहंपिया सुरासीहू मेरओय महूणिय । पाइओमिजलंतीओ वसाओ रुहिराणिय ७१ ॥

भाषा यितोस्मि स्वमांसानि इमवाहीइने माहरीज मांस सुभने तोडीनेखवाड्यो अग्निवर्णानिकृत्वा अनेकशः अग्निवर्णकरीने अनेकवार ७० तव प्रीया सुरा सीध तुम्हने सुरासीध वाल्हाहता मेरकाः मद्यभेदाः मद्युच मद्यभेदवगनीं मदिराप्रमुख पीयितोस्मि ज्वलिताग्नि वर्ण क्रतानि पायनुबलठलतु वसा रुधिराणि वा तुम्हने मद्यवाल्हो हतूं इमकहीने लोहीं मुजेपाइ ७१ नित्यं भीतेन त्रस्तेन सदा बीहतु त्रस्तथको दुःखितेन दुखीओथको व्याधि तेन

दुःख सम्बद्धा एतादृशी वेदना वेदिताभुक्ता इत्यर्थ कथ भूते न मया नित्य भीतेन पुन कीदृशेनत्रस्तेन उद्विग्नेन पुन कीदृशेन त्रासवशात् एव दुःखितेन पुन कीदृशेन व्यथितेन कम्पमान सर्वाङ्गोपाङ्गेन ७२ तिव्व चण्डप्पगाढाओ घोराओ अइदुस्सहा महाभयाओ भीमाओ नरएसुवेइयामए ७३ हे पितरौ मया नरकेषु वेदनावेदिता असाता अनुभूता कथंभूतावेदनातीव्रचण्ड प्रगाढा तीव्रा चासौ चण्डा चतीव्र चण्डा तीव्रचण्डा चासौ प्रगाढाचतीव्र चण्डप्रगाढातीव्ररसानुभवाधिक्यात् चण्डाउत्कटा वक्तुमशक्या गाढावहुलस्थितिका पुन कीदृशावेदना घोरा भयदा यस्या श्रुतायामपि शरीर कम्पते पुन कीदृशा अतिदुस्सहा अत्यन्त दुरध्यासा अतएव महाभया पुन कीदृशावेदनाभीमायाश्च प्रमाणापि भय प्रदा एकार्थिकाचैते शब्दा वेदनाधिक्य सूचका ७३ जारिसामाणुसेलोए तायाद्दीसन्ति वेयणा इत्तोणन्त गुणिया नरएसु दुक्खवेयणा ७४ हे तात मनुष्यलोके यादृश्य शीतोष्णादिकावेदना दृश्यन्ते इतो शीतोष्णवेदनाभ्योनरकेषु दुःखवेदना अनन्त गुणावर्त्तन्ते ७४ सव्व भवेसु असाया वेयणावे इयामए निमिसन्तरमित्त पिजसायानत्थि

निच्च भीएण तत्थेण दुहिएण वहिएणय । परमादुहसवद्धा वेयणावेइयामए ७२ ॥ तिव्वचण्डप्पगाढाओ घोराओ अइ दुस्सहा । महब्भयाओ भीमाओ नरएसुवेइयामए ७३ ॥ जारिसा माणुसेलोए तायाद्दीसन्ति वेयणा । इत्तोणत

रोगे पोडीयको सर्वांगोपाग परमाधार्मिकेन दुक्खसवद्धा परमोत्कृष्टा वेदना वेदितामया सर्वअंगोपांगने विषे परमाधर्म्मीदेवोथी वेदना मे भोगवी७२ तीव्र उत्कटा गुरुस्थितिकाघणा तीव्रघणी जेहनी स्थितिछे रौद्रा अतिदुखावद्धा रौद्र अतीदुखदाई महद्भयोत्पादका अत्यन्त रौद्रा महाभयनी उप जावणहार रौद्र महाभ डी नरकेषु वेदना वेदितामया नरकने विषे दुक्खनी वेदनामे भोगवी ७३ यादृशी मनुष्यलोके जिसी मनुष्यलोकनेविषे हे तात

वेयणा ७५ हे पित: मया वेदना सर्व भवेषु स्थावरत्रसभवेषु असातावेदिता सीतोष्णक्षुत्पिपासादिका अनुभूता हे पित: निमेषां तरमात्र अपियत् सातावेदनासुखानुभवनं नास्ति तदादीचायां किं दुःखं कथं अहं भवन्नि सुखोचित इत्युक्ता मयातु सर्वत्र भवे दुःख एव अनुभूतं ७५ तं विं तम्मापि यरोछन्देण पुत्तपव्वया नवरं पुणसामण्णे दुक्ख निप्पडि कम्मणा ७६ अथ पितरौ मृगा पुत्रं ब्रूत: हे पुत्र छन्दसी स्वकीयेच्छया प्रव्रजदीचां गृहाण कस्त्वां निषेधयति नवरं शब्देन अयं विशेषोस्ति पुन श्रामण्ये चारित्रे एतत् दुःखं वर्त्तते यन्निःप्रतिकर्मतास्ति रोगोत्पत्तौ प्रतीकारो न विधेय: निर्गताप्रतिकर्मतानि: प्रतिकर्मताचिकित्सानकर्त्तव्या न चिन्तनीयापि सावद्यवैद्यकं नकारयितव्यं ७६ सोविन्तम्मापि यरं एव मेयं जहाफुडं पडि

सूत्र

गुणियाणरएसु दुक्खवेयणा ७४॥ सव्वभवेसु असायावेयणा वेइयामए। नमिसंतरमित्तंपि जंसाया नत्थिवेयणा ७५॥ तंबितम्मापियरोछंदेणं पुत्तपव्वया। नवरं पुणसामन्ने दुक्खं निप्पडिकम्मया ७६॥ सोवितम्मापियरो एवमेयं जहा

भाषा

द्दष्टतेवेदना: हे तात वेदनादीसेछेइत अनंतगुणिता: सतिएतछुंती अनंतगुणी नरकेषु दुःखवेदना: नरकनेविखे दुक्खनीवेदनाछे ७४ सर्वभवेसु अशाता सर्वभवनेविखे अशाता दुक्खरूपा वेदना मयामि वेईमेषोन्मेषं यावत्मेषोन्मेषतांइ शातादुःखं नास्ति साता दुःखनही देदनाइ अ.दे. देदनाने अनु भावे करीने ७५ तं मृगापुत्रं प्रतिब्रूत· मातापितरौहवे मातापिता मृगापुत्रने कहेछे छंदेन स्वाभिप्रायेण हे पुत्र दीचांगृहाण हे पुत्र आपणीइच्छाइ दीचालिओ केवलं पुन: चारित्रेपु दुःख छेवेटादिचामांहिं चिकित्साकरावणोनथी एवातदोहिलोछे नि:प्रतिकर्मताचिकित्साकरणंनास्ति हेपुत्र थारे दुःख उपजसेजदेकुणसहायकरसे ७६ कुमारं ब्रूते मातापितरौ कुमारमातापीतानेकहेछे एवं एतत् यथास्फुटं सत्यं एवाततुम्हे कहोतेसांची चिकित्सां क कारि

टीका
अ० १९
६०१

कम्म को कुणइ अरन्नेमियपक्खिण ७७) ततोऽनन्तर मातापितरौ प्रति सन्नगापुत्र कुमारो ब्रूते हे पितरौ एतत् भवद्भ्या उक्त एव यथा स्फुट अवितथ भवदुक्त सत्यमित्यर्थं हे पितरौ अरण्ये मृगाणा पक्षिणाञ्च क प्रति कर्मवा कुरुते यदा हि मृगाव्याधि पीडितावने भवन्ति पक्षिणो वा वनेरोगपीडिता भवन्ति तदा को वैद्य आगत्यरोगचिकित्सा कुरुते न कोपि कुरुते इत्यर्थं ७७ (एगभूओ अरण्णे वाजहाउचरइमिओ एव धम्म चरिस्सामि सञ्जमेण तवे णय ७८) हे पितरौ यथा मृगो अरण्ये अटव्या वा इति पद पूरणे एकाकीभूत एकाकीसन् चरति स्वेच्छया भ्रमति एव अनेन प्रकारेण मृगस्य दृष्टा न्तेन अह सयमेन सप्तदश विधेन तपसा द्वादशविधेन धम्म श्रीवीतरागोक्त चरिष्यामि अङ्गीकरिष्यामि ७८ (जयामि यस्स आयङ्के महारस्स मिजायइ अच्छत रुक्ख मूल मि कोणताहेतिगिच्छइ ७९) यदा महारण्ये महाटव्या मृगस्य आत्मकोरोगोजायते तदात मृग वृक्षमूले सस्थित त को वैद्यचिकि

मूल

त्सइ। परिकम्म कोकुणई अरन्ने मियपक्खिण ७७॥ एगभूओ अरण्णेवा जहाओ चरईमिगो। एवधम्म चरिस्सामि सजमेण तवेणय ७८॥ जयामिगस्स आयकोमहारन्न मिजायई। अच्छत रुक्खमूलमिकोणताहे तिगिच्छई ७९॥

भाषा

यति चिकित्सा कोण करस्ये अरण्ये मृगपक्षिणा कजाडि माहि मृगलापखो यानी चिकित्सा ७७ एकभूत एकाव मासा अरण्ये एकलो छोइ अर ण्यने विषे पडोरहे यथा चरति मृग पछे मृगरुडाछोइ रोगथकी मू काइ पछे चरपाणी पोइ एव धम्म चरिष्यामि इमह धर्म करोसी सयमेन तपसा सतमपालोस तपकरोस ७८ यथा मृगस्य आतकरोग आयाति जिम मृगलाने रोगआवे महारण्ये उत्पद्यते महा अटवीने विषे रोग उपजे मृग तिष्ट त वृक्षमूले पेछे वृक्षने पासे जाइ उभारहे वेसे क ततदा चिकित्सति तीहा मृगलानेकोण चिकित्सा करे ७९ तवक मृगस्य औषध ददातिकोण

त्तते परिचर्यां कुरुते सेवा कुरुतेण इति वाक्यालकारे ७९ (कोवासेओसहन्देइ कोवासे पुच्छईसुहं कोवासे भत्तपाणञ्च आहारित्तापणामए ८०) हे पितरौ तस्य रोगग्रस्तस्य मृगस्यक औषधन्ददाति वा अथवा तस्य मृगस्य कथागत्य सुखं पृच्छति भो मृगतव समाधिर्वर्त्तते इति कः पृच्छति वाऽथवा तस्य मृगस्य भक्तपान आहारपानीयं आहृत्य आनायददाति ८० (जयायसेसुही होइ तया गच्छइगोयरं भत्तपाणस्स अट्ठाए वल्लराणि सराणिय ८१) हे पितरौ यदा च समृगः सुखी भवति स्वभावेनरोगमुक्तो भवति तदा गोचरं गच्छति भक्ष्य स्थाने व्रजति तत्र च भक्तपानस्यार्थं वल्लराणि हरित स्थलानि च पुन सरांसि जलस्थानानिविलोकयतीत्यध्याहारः ८१ (खाइत्ता पाणियं पाउ वल्लरेहिं सरेहिं वा मिगचारियं चरित्ताणं गच्छईमि गचारियं ८२) हे पितरौ सनोरोगो मृगो मृग चर्यया मृग भोजन पानविधिना चरित्वा वल्लरेभ्योहरित प्रदेशेभ्यः खादित्वानि जभक्ष्यं भुक्त्वा तथा सरेभ्य

सूत्र

कोवासे ओसहंदेइकोवासेपुच्छइ सुहं । कोसिभत्तंचपाणंवाआहारित्तु पणामए ८० ॥ जयायसे सुहीहोइ तयागच्छइ गोयरं । भत्तपाणस्स अट्ठाए वल्लराणि सराणिय ८१ ॥ खाइत्तापाणियंपाउ वल्लरेहिं सरेहिंवा । मिगचारियं चरि

भाषा

तोहां मृगलाने ओषधदोइ कः मृगस्य पृच्छति सुखं कोणते मृगलाने साता पूछे कं वातस्य मृगस्य भक्तपानंवाकोणते मृगलानें खावानें भातपांणी दोइं आहृत्य आनीय प्रणामयेत् अर्प्पयेत् कोणते मृगलाने तृणपाणी आणीदेइ छे ८० यदा च स मृग सुखी भवति जीवारे मृगनोरोगजाइ सुखीहोइ तदा गच्छति गोचरणं भ्रमणं तिवारेते मृगजाइ चरवा भणी भक्तपानस्य अर्थाय भातपाणोने अर्थे वल्लरांणि चारिभुवः नीलां तृणां खाइ सरोवरे पाणीपीवे ८१ भक्षयित्वा पानीयं पीत्वा तृणखाइ पाणीपीने वल्लरेः सरोजलैर्वावेलि खाई पांणीपीने अथ मृगचर्यासेव्यः मृगचर्या चरीने गच्छति

स्नटाकेभ्य पानीय पोत्वा मृगो मृगचया गच्छति इतस्तत उत् प्लवनात्मिका गति प्राप्नोतीत्यर्थं ८२ (एव समुट्ठिओ भिक्खू एवमेव अणेगओ मिगचारियं चरित्ताणं उड्ढं पक्कमइदिस ८३) एव अमुना प्रकारेण मृगवत् समुत्थित सयमक्रियानुष्टान प्रति उद्यतो भिक्षुर्मृगचर्या चरित्वागोह्यत्य उर्द्धादिश प्रति प्रक्रमते प्रव्रजति तथा विधरोगोत्पत्तो अपि चिकित्सायाभि मुखो न भवति पुन कोदृश साधु एव एक अनेनैव प्रकारेणैव मृगवत् अनेकग अनेकस्थानेस्थित अनियतस्थान विहारो यथा मृगोवनखण्डे नवीने २ स्थाने विहरति तथा नाना स्थान विहारीत्यर्थं तथाहं मृग चर्यया आतकस्य अभावे भक्त पानादिगवेषण तथा इतस्ततो भ्रमणेन भक्त पान गृहीत्वा सयमात्मान हत्वा पश्चात् उर्द्धा दिश मुक्ति रूपां दिश प्रतिप्रक्रमि ष्यामि सर्वो परिस्थोभविष्यामीति भाव ८३ (जहामिए एगअणेगचारी अणेगवासेधुवगोयरेय एव मुणोगोयरियप्पविट्ठेनोहीलएनोवियखिस एज्जा ८४)

एव

त्ताण गच्छई मिगचारियं ८२ ॥ एव समुट्ठिओ भिक्खू एयमेव अणेगगो । मिगचारियं चरित्ताणउड्ढपक्कमईदिस ८३॥
जहामिए एगअणेगचारी अणेगवासे धुवगोयरेय । एव मुणीगोयरियपविट्ठोणोहीलए नोविय खिसएज्जा ८४ ॥

भाषा

मृगाश्रय पछे वनमाहिइच्छाइ फिरे ८२ एव मृगवत् समुत्थितो भिक्षु इम मृगनी परि साधु एवमेव मृगवत् एकलोथको सुख दुक्खसहतु थको अनित्य वास मृगचर्या चरित्वा अनियतवास मृगचारी चरीने कोहाइ स्थिति वास नही उड्ढदिस मुक्ति गच्छति उर्द्धदिशेइमथको इमकरतु मुक्ति जाई ८३ यथा मृग एको अपि अनेकस्थानवासी जोम मृगएकथको घणेठामि रहे अनेकस्थानवासी निश्चितभोजन सामग्रीक घणो स्थानके वास करे घणे ठामे आहार लिइ एव मुनि गोचरे प्रविष्ट सन् इम साधगोचरी गवेषको नहीलयति नखिसयति कोन्नेहोलनानकरे निंदा न करे ८४ मृगचर्या चरिष्यामिइ

यथामृगः एकोऽसहायीसन् अनेकचारी भवति अनेकान भक्त पानाचरणशीलो नानाविधभक्तपानग्रहणतत्पर स्यात् पुनर्यथा मृगोऽनेकवासःस्यात् पुनर्यथा मृगोध्रुवगोचरी भवेत् ध्रुवः सदा गोचरोयस्य स ध्रुवगोचरः निश्चयेन भ्रमणादेव लब्धाहारः स्यात् एवं अमुना प्रकारेण मृग दृष्टान्तेन मुनिः साधुगोचर्याभिक्षाटनं प्रविष्टः सन् नोहीलयेत् अनिष्टनीरसं लब्धा इदं कुत्सितं विरस इत्यादि वाक्यैर्नेनिन्दयेत् तथा अपि निश्चयेन पुनर्नोखि सयेत् आहारेपानीयेवा अलब्धे सति कमपि गृहस्थं ग्रामं नगरं आत्मानं वाननिंदेत् ८४ (मिगचारियं चरिस्सामि एव पुत्तो जहासुहं अम्मापि ऊहिं अणु न्नाओ जहाति उवहिंतओ ८५) यदा मृगा पुत्रेण पितरौ प्रति इत्युक्तं हे पितरौ अहं मृगचर्यां चरिष्यामि यथा भवद्भ्यां मृगचर्या उक्तातां अङ्गीकारि ष्यामि साधुमार्गं गृहीष्यामि यदा मृगामृतेण एवं उक्तं तदामातापितरौ ब्रूतः हे पुत्रयदैवं तदा यथा सुखं यथा तव सुखं स्यात् यथा भवते अभि रुचितं सुखं इति यथा सुखं तथा कर्त्तव्यं अस्माकं आज्ञास्ति ततो मातापितृभ्यां अनुज्ञातो मृगा पुत्रः कुमारः उपधि परिग्रहं सचित्ताचित्त रूपं परित्यजति ८५ (मिगचारियं चरिस्सामि सव्वदुखविमोक्खणिं तुभेहिं समणुन्नाओ गच्छपुत्तजहासुहं ८६) सर्वपरिग्रहन्त्यक्त्वा पुनर्मृगा पुत्रो वदति हे पितरौ अहं भवद्भ्यां अनुज्ञातः सन् मृगचर्यां अङ्गीकारिष्यामि कीदृशीं मृगचर्यां सर्वदुःख विमोचणीं सर्व विपत्ति विमोचितां तदा मृगा पुत्रं प्रतिपितरौवदतः हे पुत्र यथा सुखं गच्छदीक्षां गृहाण ८६ (एवंसो अम्मापियरो अणमाणित्ताणबहुविहं ममत्तं छिन्दएताहे महानागोव्व

सूत्र मिगचारियं चरिस्सामि एवंपुत्ता जहासुहं। अम्मापिईहिं अणुन्नाओ जहाइ उवहिंतओ ८५॥ मिगचारियं चरि

भाषा मृगचर्याइ चरोसिविचरोस मातापितरौ जल्पित· हे पुत्र यथासुख तथाकुरु मातापीता बोल्या पुत्र जीम सुखहोवे तीमकरी मातृपितृभ्या अनुज्ञात· मातापिताइं आज्ञादीधांथकां त्यजति उपधिं परिग्रहं परिग्रहछोडे ८५ तत अनंतरं मृगचर्यां चरिष्यामि तिवारपछो मृगचारो चरोसो सर्व्वदुःख

उ०टीका
अ०१९
६०५

कपुच ८०) एव अमुना प्रकारेण समृगापुत्र मातापित्रोरनुज्ञां लात्वाताहे इति तदा तस्मिन् काले बहुविध ममत्व छिनत्ति इद धन मम इद गृह मम इद कुटम्ब मम इति बुद्धिंत्यजतीत्यर्थं ■ किमिव महानागो महासर्प कंचुक इव यथा महासर्पो निर्मोकंत्यजति तथा मृगापुत्र सव मम त्वंत्यजतीतिभाव ८७ (इड्ढी वित्त च मित्तेय पुत्तदार चनायओ रेणुयव्वपडेलग्गानिद्धणित्ताणनिग्गओ ८८) मृगापुत्र एतत्सर्वं निर्धूयत्यक्त्वा निगत संसारात् गृहाद्वनि सत किंकियत्कमित्याह ऋद्धिईस्यश्च धनधान्यादि च पुनर्मित्राणि सहजसहवर्द्धित सहपांशुक्रीडितानि सुहृद पुन पुत्राणि अङ्गजापुनर्दारा स्त्रिय पुनर्ज्ञातय स्वजना चपिया एतत्सर्वं परित्यज्य प्रव्रजित किमिव पटेलग्न रेणुमिव नूतनवस्त्रेलग्न रजइव यथा कश्चित्पुरुषोमनुष्योवस्त्रे लग्न रजोनिर्धूनोति तथा मृगा पुत्रोपीत्यर्थं ८८ (पञ्चमहव्वयजुत्तो पञ्चसमिओति गुत्तिगुत्तोय सभ्भिन्तरबाहिरिए तवो कम्म

सूत्र

आमिसव्वदुक्ख विमोक्खण तुब्भे हिमणुन्नाओ गच्छपुत्त जहासुह ८६॥ एवंसो अम्मापियरो अणुमाणित्ताण बहुविह ममत्त छिंदईताहे महानागोव्वकंचुय ८७॥ इड्ढीवित्त चमित्ते य पुत्तदारचनायओ। रेणुयवपडेलग्ग निद्धुणित्ताण

भाषा

विमोक्षण सवदु ष्वथी मू कावनाभणी युवाभ्या अनुज्ञात तुम्हारी आज्ञालेईने मातापितरौ जल्पितौ गच्छ पुत्र यथा सुख जा पुत्र जीम सुखहोय तिम ८६ एव ■ मृगापुत्र मातापितरौ ते मृगापुत्र मातापीताह अनुज्ञात बहुविध आज्ञादीधायकां घणा प्रकारे ममत्व छिनत्ति तदा ममता छोडेतियारे यथा महानागसर्प कंचुक त्यजति साप जिम कांचली छोडीनिनाखे ८७ ऋद्धि वित्त धन मित्राणि षट्विवित्तधनमित्र पुत्र दाराणि पुन ज्ञातय वेटा स्त्री ज्ञातीगोत्री सवारनमिव पटेवस्त्रे लग्न जीम वस्त्रने विषे रजलागी हुवे झाटकी दूरिकीजे निर्धूय प्रव्रज्या गृहीतवान् तिम

उ०टीका अ०१९ ६०६

मिउज्जुश्रो ८९) तदा मृगा पुत्रः कीदृग्गोजातः पञ्चमहा व्रतयुक्तोजातः पुनः पञ्चसमिति सहितः ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपणोच्चार प्रस्रवणखेलजल्ल सङ्घाण पारिष्टापनिकासमिति युक्तः पुनस्त्रि गुप्तिगुप्तः मनोवाकाय गुप्ति सहितः पुनः साभ्यन्तर बाह्यतपकर्म्मणि उद्यतः पायछित्त' विणश्रो वेया वच्चं तहेवसि ज्झाश्रो ज्झाण' उस्सग्गोविय श्रभिन्तरश्रोतवोहोइ १ श्रणसणमूणोयरिया वित्तीसङ्खेवण' रसचाश्रो कायकिलेसोसंलीणयाय बज्झोतवोहोइ २ द्वादश विधतप कर्म्मणि सावधानोजातः ८८ (निमम्मोनिरहंकारो निस्सङ्गो चत्तगारवो समोय सव्वभूएसु तसेसुथा वरेसुय ९०) पुनः कीदृशो मृगा पुत्रः निर्म्ममः वस्त्र पात्रादिषु ममत्वभावरहितः पुन कीदृशो निरहङ्कारः श्रहङ्काररहितः पुन कीदृशोनिस्सङ्गोबाह्याभ्यन्तर संयोगरहितः पुनः कीदृशस्त्य क्तगारवः गारवत्रय रहितः ऋद्धिगारवरसगारवसा तागारव इत्यादि गर्वत्रयरहित पुनः कीदृशः सर्वभूतेषु समः रागद्वेष परिहारात् समस्तप्राणिषुत्र

सूत्र

निग्गश्रो ८८। पंचमहव्वयजुत्तो पंचसमिश्रो तिगुत्तिगुत्तोय। सब्भिंतर बाहिरएतवोकम्मंमि उज्जुश्रो ८९। निम्ममो निरहंकारो निस्संगो चत्तगारवो। समोय सव्वभूएसु तसेसु थावरेसुय ९०। लाभालाभे सुहेदुक्खे जीविए मरणेतहा

भाषा

मृगापुत्रे राज्यऋद्धि छोडोने दीक्षालीधो ८८ मृगापुत्रो पंचमहाव्रतयुक्तः मृगापुत्र पंचमहाव्रत सहित पंचसमिति समितः त्रिगुप्त गुप्तः पांचे समोते समतोत्रिह्नं गुप्ते गुप्तो श्रभ्यंतरे प्रायश्चित्ता दो श्रभिंतरए प्रायश्चित्त लोजे तपः कर्म्मणि उद्यमपरो जात· श्रभ्यंतर तप वाह्य तप तेहने विषे रतह्वश्रो ८९ स मृगापुत्रः ममतारहितः नीरहंकार रहोत गृहस्थ संग रहतः त्यक्तः गारव गृहस्थने सगे रहित गौरवछोडोछे रिद्धी गारवरसगारव सातागारव समोजातः सर्वभूतेषु सर्वजीवनेविषे समताभाव ह्नश्रो त्रसेषु स्थावरेषुचत्रसजीवने विषे थावरजीवने विषे ९०. लाभालाभे

उ०टीका
अ १८
६०७

सेप स्थावरेषु च समस्तजीवेषु सदृश ९० (लाभालाभेसु हे दुक्खे जीविएमरणे तहासमोनिन्दापससासु तहामाणावमाणओ ९१) तथा पुनर्मृगापुत्र लाभे आहारपानीय वस्त्र पात्रादीना प्राप्ती तथा अलाभे अप्राप्ती तथा सुखेतथा दु खे तथा पुनर्जीविते मरणे सम समानवृत्ति तथा पुनर्निन्दासु तथा प्रससासुस्तुतिषु तथा माने आदरे अपमाने अनादरे मानश्च अपमानश्च मानापमानौ तयोमानापमानयो सम सदृश केनापि आदरे प्रदत्ते सति मनसि प्रहृष्टो न भवति केनापि अपमाने प्रदत्ते सति मनसिदूनो न भवति ९१ (गारवेसुकसाएसु दण्डसल्लभएसुयनियत्तोहाससोगाओ अनियाणो अबन्धणो ९१) पुन समृगा पुत्र कोदृशोजात गार वेभ्योनिवृत्त पुन कषायेभ्य क्रोधादिभ्यो निवृत्त च पुन दण्डशल्यभयेभ्यो निवृत्त दण्डत्रय मनोवाक् कायाना असद्व्यापारोदण्ड उच्यते तस्मान्निवृत्त पुन शल्यत्रयात् निवृत्त मायाशल्य निदानशल्य मिथ्यादर्शनशल्य एतत् शल्यत्रय ततो निवृत्त तथा पुन सप्तभयेभ्योनिवृत्त सप्तभयानि इमानि इह लोक भय १ परलोक भय २ आदान भय ३ अकस्माद्भय ४ मरणभय ५ अयशोभय ६ आजोविकाभय ७ एव सप्तभयानि अत्र सर्वत्र प्राकृतत्वात् पञ्चम्या सप्तमी पुन कोदृशो मृगापुत्र हास्य शोकाभ्यां निवृत्त पुन कीदृश अनिदानो

सूत्र

समोनिंदा पससासु तहामाणावमाणओ ९१। गारवेसु कसाएसु दंडसल्लभएसुय। नियत्तो हाससोगाओ अनियाणो

भाषा

सुखे दुखे लाभनेविषे अलाभनेविषे सुखदु खनेविषे जीवितिमरणे तथा जिवितव्यनेविषे मरणनेविषे तिम जरहे समोजात निंदा प्रशसायां सरिषो निंदा प्रसशाने विषे तथा मानापमानयो मान अने अपमान तेहने विषे सरिषा प्रणामछे ९१ ते मुनि गारव त्रय चतु कषाया तीन गारव च्यार कषाय त्रय दंडा त्रय शल्यानि सप्तभयानि त्रिणि दंड त्रिणि सालसात भय ते रहितछे निवृत्त हास्य शोकात हासी शोकएह थकी रहितछे अनिदानो बंधन रहितो जात नियाणरहित बंधनरहित हुओ ९२ अनीप्सित इहलोकार्थं इहलोकनीं पणि वाछानथी परलोकार्थं अनीप्सित परलोकनी पणि

उ०टीका
अ०१९
६०८

निदानरहितः पुनः कथम्भूतः अबन्धन रागद्वेष बन्धनरहित ९१ (अणिस्सिओ इह लोए परलोए अणिस्सिओ वासीचन्दणकप्पोय असणेअणसणे तहा ९३) पुनः कीदृशः अनाश्रित निश्रारहितः कस्यापि साहाय्यं नवाञ्छति तथा पुनरिह लोके राज्यादि भोगे तथा परलोके देवलोकादि सुखे अनाश्रित निश्रान्नवाञ्छते पुन समृगा पुत्रोवासो चन्दनकल्प यदा कश्चित् वास्यापर्शुनाशरीरं छिनत्ति कश्चिच्चन्दनेन शरीरं अर्चयति तदा तयोरुपरि समानकल्पः सदृशाचार तथा पुनः अशने आहारकरणे तथा अनशने आहार अकरणे सदृशः ९३ (अप्प सत्थेहिं दारेहिं सव्वओपिहियासवे अज्झप्प ज्झाणजोगेहिं पसत्थदमसासणे ९४) पुनर्मृगा पुत्रोऽप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्यः कर्मोपार्जते पापेभ्योहिंसादिभ्यो निवृत्त इति शेषः पुनः कीदृशो अप्रशस्त द्वारेभ्योनिवर्त्तनादेवसर्वतः पिहिताश्रवः पिहितनिरुद्धा आश्रवा पापागमनद्वाराणि येन स पिहिताश्रवः पुन कीदृशः} अध्यात्मध्यानयोगैः प्रशस्तदम

सूत्र

अबंधणो ९२ । अणिस्सिओ इहलोए परलोए अणिस्सिओ । वासीचंदण कप्पोय असणे अणसणे तहा ९३ । अप्पस त्थेहिं दारेहिं सव्वओ पिहियासवो । अज्झप्पज्झाणजोगेहिं पसत्थ दमसासणे ९४ । एवं नाणेणचरणेण दंसणेण

भाषा

वांछानथी वासोचदनो वसोलकछेदने चंदनलेपो सदृशः कोइ वसोलास्युं छेदे अथवा कोई चदनस्युं विलेपन करेतेवे सरिषा अशने भोजने अनशने उपवासे तथा सदृशः जिमेतोसरिषु उपवासकरतुं सरिषूं ९३ अप्रशस्तैः हिंसादिभिर्द्वारैः अप्रशस्तेजेमाठां द्वारतेणे करीरहितछे सर्वत· पिहिता श्रवः निरुद्धाकर्मागमः सर्वआश्रवरुंध्यांछे अध्यात्मध्यानयोगेन अध्यात्ममनठामिराखवुं शुभध्यानराखवुं प्रशस्तदमयुक्तः सर्वज्ञ जिनशासने निश्चलप्रशस्त भलो उपशमचमातिणेकरीने सहित जिनशासनने विषे निश्चलछे ९४ एवं अनेन प्रकारेण ज्ञाने चारित्रे दर्शनेन तपसा च इणिजप्रकारे ज्ञानने विषे

उ०टीका
अ १९
६०८

शासन अधिशासनि ध्यानयोगा अध्यात्मध्यानयोगास्तै अध्यात्मध्यानयोगैर्मनसि शुभव्यापारै प्रशस्तैदमशासनै यस्य स प्रशस्तदमशासन दम उपशम शासन सर्वत्र सिडान्त यस्य शुभध्यानयोगे उपसम श्रुतज्ञाने शुभे वर्त्तते इत्यर्थ ८४ (एव नाणेण चरणेणद सणेणतवेणय भावणाहिय सुडा हिसम्म भावित्तु अप्पय ८५) (बहुयाणियवासाणि सामनमणुपालिया मासिएण उभत्तेण सिद्धिपत्तो अणुत्तर ८५) युग्म उभाभ्यां गाथाभ्यां वदति तु पुनर्मृगापुत्रोमुनिमासि केन भक्तेन सिद्धि प्राप्तो मोक्षगत मासेभव मासिकतेन मासिकेन भक्तेन मासोपवासेनेत्यर्थ कथभूतासिद्धि अनुत्तरा प्रधाना सर्वस्थानकेभ्य उत्कृष्ट स्थानमित्यर्थ जन्मजरा मृत्यु उपद्रवेभ्यो रहितत्वात् कि कृत्वा एव अमुनाप्रकारेण ज्ञानेन मतिश्रुतादिकेन पुनश्चरणेन यथा ख्यातेन पुनर्दर्शनेन शुडसम्यक्त्व शुडयडारूपेण पुनस्तपसा द्वादशविधेन च पुनर्भावनाभिर्महाव्रत सबधिनोभि पचविंशतिसख्याभिर्भावनाभि अथवा अनित्यादिभिर्द्वादशप्रकाराभि आत्मान सम्यक्प्रकारेण भावयित्वा निर्मलकृत्वा कथभूताभिर्भावनाभि शुडाभिर्निदानादिदोषमलरहिताभि पुन कि कृत्वा बहुनि वर्षाणि श्रामण्य यति धर्म अनुपाल्य आराध्य ८५ (एव करतिसबुडा पडिया पवियक्खणा विणियट्ट ति भोगेसु मियापुत्ते जहामिसी ८६) सबुडा सम्यग्ज्ञाततत्वा पडिता हेयोपादेय बुद्धियुक्ता अतएव प्रकर्षण विचक्षणा अवसरज्ञा एव कुर्वन्ति भोगेभ्यो विशेषेण निवर्त्तन्ते काइव यथा मृगापुत्र ऋषिरेव यथा मृगापुत्रर्षि भोगेभ्यो विनिवृत्त तथान्यैरपि चतुरैर्भोगेभ्यो विनिवर्त्तितव्यमितिभाव अलमिसीतिप्रकार प्राकृतत्वा

सूत्र

तवेणय। भावणाहिय सुडाहि सम्म भावित्तु अप्पय ८५॥ बहुयाणिउवासाणि सामन्नमणुपालिया। मासिएणउभ

भाषा

चारित्रने विषे दर्शनने विषे तपनेविषे भावनाभिर्निर्मलाभि सुड भावनाभावोने सम्यगभावयति आत्मान सम्यगप्रकारे आपणा आत्माने भावीने ८५ स मृगापुत्र बहुनि वर्षाणि ते मृगापुत्र घणावरसताइ चारित्र अनुपाल्य चारित्र अनुक्रमे पालीने मासिकेन भक्तेन एकमासनु अणसणकरीने सिद्धि

उ०टीका
अ०१९
६१०

दलावणिक ९६ (महप्पभावस्स महाजसस्स मियाएपुत्तस्स निसम्मभासियं तवप्पहाणचरियंच उत्तम गइप्पहाणञ्च तिलोयविसुयं ९७) (वियाणिया दुक्ख विवड्ढणं धणं ममत्तबन्धञ्च महाभया वहं सुहा वहं धम्म धुरं अणुत्तरं धारेहनिव्वाण गुणावहं तिबेमि ९८) पुनर्गाथा युग्मेन संबधः भोभव्याः अनुत्तरां सर्वोत्कृष्टां धर्मधुरं धर्मरथस्य भार धारयध्वं कथं भूतां धर्मधुर सुखावहां सुखप्राप्ति हेतु भूतां पुनः कीदृशं धर्मधुरं निर्वाण गुणावहां निर्वाणस्य गुणाः निर्वाणगुणाः मोक्षगुणा अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तसुख अनन्त मायुरनन्तवीर्य्य रूपास्तेषां अवहार पूरका निर्वाण गुणा वहातां निर्वाण गुणावहा किं कृत्वा धर्मधुरन्धारयध्वं धनं दुःखं विवर्द्धनं विज्ञाय च पुनर्ममत्वं बन्ध एव संसारस्य बन्धन विज्ञाय कीदृश धनं मम त्वं च महाभयावह महाभयदायकं चौराग्नि नृपादिभ्यः कष्टप्रदं पुनः किं कृत्वा च पुनर्मृगायाराज्ञाः पुत्रस्य मृगापुत्रस्य उत्तमं प्रधानं चरितं चरित्रं चारित्रं वृत्तान्त

सूत्र

त्तेणं सिद्धिपत्तो अणुत्तरं ९६ ॥ एवंकरेतिस बुद्धा पंडियापवियक्खणा। विणायट्ठंतिभोगेसुमियापुत्तेजहामिसी ९७ ॥
महापभावस्स महाजसस्स मियाएपुत्तस्सानिसम्मभासिअं। तवप्पहाणं चरियंच उत्तमं गइप्पहाणंचतिलोयविस्सुयं ९८॥

भाषा

प्राप्तः अनुत्तरां सर्वोत्तमां सिद्धिं गतिमुक्ति पहुता ९६ एव कुर्वन्ति ज्ञाततत्वाः तत्वनाजाणपंडितइमकरे पंडिताः प्रविचक्षणा पंडित विचक्षणाहुइते विनिवर्त्तते भोगेभ्यः निवर्त्ते भोगथको संसारभोगथको निवर्त्यो मृगापुत्रो यथा ऋषिः जिम मृगापुत्र ऋषिभोगथको निवर्त्योति मनिवर्त्तवुं ९७ महाप्रभावस्य महाप्रभावछे जेहनो महायश सः महायशछे जेहनो मृगापुत्रस्य निशम्यभाषितं मृगापुत्रनुं भाष्युं सांभलीने तप प्रधानं तप उत्तमचरित्र करीने पुन उत्तमं प्रधान तप करीने गतिप्रधानं मुक्तिप्रधानं उत्तममुक्ति गति त्रिलोकेविख्यातं मुक्तितेहवोछे त्रिलोकनेविषे प्रसिद्धछे ९८ विशेषेण

टीका: तथा तस्य मृगापुत्रस्य भाषित मातापितृभ्यां संसारस्य अनित्यो पदेशदान निशम्य श्रुत्वा कीदृश मृगापुत्रस्य चारित्र तवप्रधान तप प्रधान पुन कीदृश मृगा पुत्रस्य चरित्र गइप्पहाण गत्वा प्रधान गतिर्मोक्षलक्षणा तया प्रधान श्रेष्ट मोक्षगमनार्हं पुन कीदृश मृगा पुत्रस्य चरित्र त्रिलोकविश्रुत त्रिलोक प्रसिद्ध कीदृशस्य मृगापुत्रस्य महाप्रभावस्य रोगादीना अभावेन दु कर प्रतिज्ञा प्रतिमारूपाभि ग्रहाणां पालने न महामहिमान्वितस्य पुन कीदृशस्य मृगा पुत्रस्य महायशस महत् यशोयस्य समहायशास्तस्य महायशस सर्वदिग व्यापिकीर्त्ते इति अह मृगापुत्रस्य चरित तवाग्रे ब्रवीमि इति सुधर्मा स्वामीजम्बूस्वामिन प्रयाह ९८ इति मृगापुत्रीय एकोनविंशति तम अध्ययन १९ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचिताया एकोनविंशतितम मृगापुत्रीय अध्ययन अर्थत सपूर्ण ॥ अथ विंशतितम प्रारभ्यते ॥

सूत्र: विधाणिया दुक्ख विवड्ढण धणममत्त वधच महाभयावह । सुहावह धम्मधुर अणुत्तर धारेह निव्वाणगुणावह महत्ति वे मि ९९॥ मियापुत्तज्झयण सम्मत्त ॥१९॥ सिद्धाण नमोकिच्चास जयाणच भावओ । अत्थधम्मगइतच्च अणुसट्ठि सुणे

भाषा: ज्ञावा दुखविवडन विशेषकरीजाणीने धनछे ते दुखनु वधारणहारछे ममत्वत्र ध ममतानोब धछे पुन महाभयावह वली महाभयनु देणहारछे सुखावहा धम्मधुरा सर्वोत्तमा धर्मनोधूरा सवमाहि सुखनोदेणारी उत्तमछे धारयत अनतज्ञानदर्शनवीर्याकात्रवीमि इस्योधर्म अहो भव्यजीव तुम्हे अगीकारकरो किस्योछे धर्म मुक्तिनासुख तेहनोदेणहारछे ॥ ९९ ॥ इति श्रीउगणीशमु अध्ययनटबो सपूर्ण समस्त ॥ १९ ॥ सिद्धेभ्य नमस्कार कृत्वा सिद्धानेकाने नमस्कार करीने मयतेभ्य आचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्य आचार्य उपाध्याय सर्व साध तेहने नमस्कार करीने अथधम्मगत तत्व अर्थधर्मगत

पूर्वस्मिन् अध्ययने साधूनां निःप्रति कर्मता उक्ता रोगादौ उत्पन्नेसति चिकित्सान कर्त्तव्या न कारयितव्या नानु मन्तव्या इत्युक्तं अथ विंशति अध्ययने सा नि प्रतिकर्मता महानिग्रन्थस्य हिता अतोऽनाथत्वपरिभावनया इत्युच्यते (सिद्धाणं नमो किचा सञ्जयाणं च भावओ अत्थ धम्म गइं तच्चं अणु सट्ठिं सुणेहमे १) भो शिष्याः मे मम अनुशिष्टिं शिक्षां यूयं शृणुत किं कृत्वासिद्धान् पञ्चदश प्रकारान् नमस्कृत्य च पुनर्भावतो भक्तितः संयतान् साधून् आचार्योपाध्यायादि सर्वसाधून् नमस्कृत्य कीदृशीमेऽनुशिष्टं अर्थं धर्म्मगतां अर्थ्यते प्राप्यते धर्मात्मभिः पुरुषैरिति अर्थः स चासौ धर्म्मश्च अर्थधर्मस्तस्यगति र्ज्ञानं यस्यांसा अर्थधर्म्मगतिस्तां द्रव्यवत् यो दुःप्राप्यो धर्म्मस्तस्य धर्म्मस्य प्राप्तिकारिकां यया मम शिक्षया दुर्लभ धर्म्मस्य प्राप्तिः स्यादिति भावः पुनः कीदृशीमेऽनुशिष्टिं तथ्यां सत्यां अथ वा तत्वं तत्व रूपां वा १ (पभूयरयणोराया सेणिओमगहाहिवो विहारजत्तं णिज्जाओ मण्डि कुच्छिसिचे इए २) श्रेणिकोनाम राजा एकदामण्डित कुक्षिनाम्नि चैत्ये उद्याने विहारयात्रया उद्यान क्रीडयानिर्यातः नगरात् क्रीडार्थमण्डित कुक्षिवने गत इत्यर्थः कीदृशः श्रेणिकोराजामगधाधिपः मगधानां देशानां अधिपोमगधाधिपः पुनः कीदृशः प्रभूतरत्न प्रचुरप्रधानगजाश्वमणि प्रमुखपदार्थधारी २ (नाणादुमलया

सूत्र

इमे १ ॥ पभूय रयणोराया सेणिओ मगहाहिवो । विहारजत्त निज्जाओ मंडिकुच्छि सिचे इए २ ॥ नाणादुमलया

भाषा

तवरूपछे जेतव अनुशष्टि शृणुनशिष्य कथयतः मनशिष्य तुम्हे सांभलोइं कहुछुं १ प्रभूतरत्न राजा घणाइं रत्नछे जेहने इस्यो राजा श्रेणिको मगधाधिपः श्रेणिक मगधदेशनो धणीछे यात्राया क्रीडार्थं नीर्गतः ते श्रेणिक राजा क्रीडाने अर्थे नीकल्यो मंडि कुच्छिनाम्नि चैत्यवने मंडि कुच्छि इसेनामे वनखंडनेविषे २ नानाद्रुमलताकीर्णं वनखंडकिस्युंछे भांति २ नाव्रंच अनेवेलितिणिं करीसहितछे नाना प्रकारेण पक्षि निवेशितं भांति भांतिना जे पंखो तिणे करी वनखंड सेव्योछे भांत भांतनां जे फूल तिणे करीने वनखंड छायांछे उद्यानं नंदनोपमं वलोते वनखंड

द्रुम नाणापक्खि.निसेविय नाणाकुसुमसछन्न उज्जाण नन्दणोवम ३) अथ मण्डितकुचिनाम उद्यान कीदृश वर्त्तते तदाह कीदृश तद्दन नानाद्रुमलता कीर्ण विविध वृचवल्लीभिर्व्याप्त पुन कीदृश नाना पचिनिषेवित विविधविहङ्गरतिशयेन आश्रित पुन कीदृश नाना कुसुमसञ्छन्न बहुवर्ण पुष्पैर्व्याप्त पुन कीदृश तत् उद्यान नागरिकजनाना क्रीडास्थान नगर समीपस्थ वन उद्यान उच्यते पुन कीदृश नन्दनोपम नन्दन देववन तदुपम ३ (तत्थसोपासईसाहु सञ्जय सुसमाहिय निसन्नरुक्खमूलम्मि सुकुमाल सुहो इय ४) तत्र वनेस श्रेणिको राजासाधु पश्यति कीदृश साधु सयत सम्यक् प्रकारेण यत यत्न कुर्वन्त पुन कीदृश सुसमाधित सुतरां अतिशयेन समाधि युक्त पुन कीदृश वृचमूले निषिण्ण स्थित पुन कीदृश सुकुमाल पुन कीदृश सुखोचित सुखयोग्य ४ (तस्स रूव तुपासित्ता राइणोत मिसञ्जए अच्चन्तपरमो आसी अउलोरूवविम्हिओ ५) राज श्रेणिकस्य तस्मिन् सयते

सूत्र

द्रुम नाणापक्खि निसेविय। नाणाकुसुम सछन्न उज्जाण नन्दणोवम ३॥ तत्थसो पासईसाहु सजय सुसमाहिय।
निसन्न रुक्खमूलम्मिसुकुमाल सुहोइय ४॥ तस्सरूवतुपासित्ता राइणोत मिसजए। अच्चत परमोआसी अउलो रूव

भाषा

किस्युछे नदन वन सरीषोछे ३ तस्मिन् वने श्रेणिक साधु पश्यति ते वनखडने विषे श्रेणिक राजाइयतीदेख्यो सयत मन समाधान वत किम्योछे तेयतो सयतोछे मन समाधिमाहि वर्त्तेछे निषिण्ण स्थित वृचमूले सयती वृचने नीचे बैठाछे सुकुमाल सुखो चितायतो सुकुमाल सुखने योगछे ४ तस्य साधो रूप दृष्ट्वा श्रेणिक राजाद्रय तोनो रूप देखीने अयत अतिशय सजती राजा प्रधान आसीत् अत्यत विस्मय जपनो सजतो राजाने विस्मय जपनो अन्यन सदृशरूप विषये आश्चर्य इस्योरूपकोईाड दीठो नही ५ अहो इति आश्चर्ये वर्णे गोर

साधो अत्यन्तपरमोऽधिकोत्कृष्टोऽतुलो निरूपमोरूपविस्मयो रूपाश्चर्यमासीत् किं कृत्वा तस्य साधोरूपं दृष्ट्वा तु गम्हीलइारे ५ (अहो वन्नो अहोरुवं अहो अज्जस्ससोमया अहोखन्ती अहोमुत्ती अहोभोग असङ्गया ६) तदाराजा मनसि चिंतयति अहो इत्याश्चर्ये आश्चर्यकारी अस्य शरीरस्य वर्णोगौर त्वादि अहो आश्चर्यकृत् अस्यासाधो रूपं लावण्य सहितं अहो आश्चर्यकारिणी अस्य आर्यस्य सौम्यताचन्द्रवत् नेत्र प्रियता आश्चर्यकारिणी अस्यचान्ति चमा अहो आश्चर्यकारिणी चास्य मुक्तिनिर्लोभता अहो आश्चर्यकारिणी अस्य भोगे असङ्गताभोग असङ्गताविषये निस्पृहता ६ (तस्सपाए उवन्दित्ता काऊणयपयाहिणं नाइ दूरमणा सन्ने पञ्जली पडिपुच्छई ७) तस्य साधोः पादौ वन्दित्वापुनः प्रदक्षिणां कृत्वा राजानाति दूरं नात्यासन्नः न गतिदूर वर्ती न अतिनिकटवर्त्तीसन् प्राञ्जलि पुटो बद्धाञ्जलिः पृच्छति प्रश्न करोति ७ (तरुणोसि अज्जोपव्वईओ भोग कालमिसञ्चया उवट्ठिओसि सामन्ने

सूत्र

विम्हओ ५ ॥ अहोवन्नो अहोरूवं अहोअज्जस्स सोमया । अहोखंती अहोमुत्ती अहोभोगे असंगया ६ ॥ तस्सपाए उवंदित्ता काऊणय पयाहिणं नाइदूरमणासन्ने पंजली परिपुच्छई ७ ॥ तरुणोसि अज्जोपव्वइओ भोगकालंमिसंजया

भाषा

वादिरूपं कोणदेहोनो वर्ण छे गौरकोणरूपछे अहो आश्चर्य आर्यस्य साधोः सोमता एहनी प्रधानसौम्यछे सरलपणो अहो आश्चर्य क्षांति क्षमामुक्ति निर्लोभता एहनी क्षमादेखी एहनोनिर्लोभतादेखो अहो भोगेषु निस्संगता संगमुक्ततादेखो भोगनोसंगरहितकिमछेओ ६ तस्य पादौ वंदित्वा राजाइते वयतो नापगवांद्या कृत्वा च प्रदक्षिणां त्रिप्रदक्षणादेईने नाति दूरेनाति आसन्ने घणो अलगोनघणोढूकडोवसीने अंजलीजत्वा पृच्छति हाथजोडीने पूछेछे ७ हे आर्य त्वं तरुण प्रव्रजितोसि हे साधु ते तरुणपणे दीक्षालीधीछे भोगकाले अहो संयत एभोग संयोगनोकाल दीक्षानोकालनथी उपस्थितो

एगमह सुणामिते ८) तदा श्रेणिक किं पृच्छति हे आर्य हे साधोत्व तरुणोसि युवासि हे सयत हे साधो तस्माद्भोगकाले भोगसमयें प्रव्रजितो ऽहोतदिद तारुण्य हि भोगस्य समयोस्ति न तु दीक्षाया समय हे सयततारुण्ये भोगयोग्यकालेत्व श्रामण्ये दीक्षाया उपस्थितोसि आदरसहितोसि एतदर्थं एतन्निमित्त त्वत्त शृणोमि किं तवदीक्षाया कारण कस्मान्निमित्तात् दीक्षात्वया गृहीता तत्कारण त्वन्मुखात् श्रोतु मिच्छामीत्यर्थं ८ (अणाहोमि महाराया नाहो मज्झ नविज्जई अणु कम्पय सुहि वा विकिञ्चीणाभि समेमह ९) इदानी स साधुर्वदति हे महाराज अह अनाथोस्मि नविद्यते नाथोयोगक्षेमविधाता यस्य स अनाथो नि स्वामि कोस्मि मम नाथो न विद्यते इत्यर्थं पुन अह कश्चित्किमपि अनुकम्पन कृपाचिन्तक सुहृद मित्र वान अभिसमे मन सम्यग्योमि केनापि दयालुनामित्रेण वासहतोह न अनेन अर्थेन तारुण्येपि प्रव्रजित इति भाव ९ (तओपहसिओराया

उवट्ठियोसि सामन्ने एगमट्ठ सुणामिता ८॥ अणाहोमिमहारायनाहोमज्झ नविज्जई। अणुकपग सुहि वाविकिंची नाभिसमेमह ९। तओप हसिओराया सेणिओ मगहाहिवो। एवतेइड्ढिमतस्स कहनाहो नविज्जई १०। होमि

असिसजोसि चारित्रे एसोवये तु दीक्षानेविषे उद्यतह्योछे एतमर्थ शृणोमि तवपार्श्वे एअर्थ तुम्हारेपासेथी सांभलवावाछु छु ८ मुनिराह अनाथोस्मि महाराजन् अहो महाराजाहु अनाथछु नाथो मम न विद्यते माहरे माथेनाथकोइनथी अनुकपा कारक सुहृद मित्र नापि दयानोकरणहार मित्रपणिमाहरे कोइनथी यस्य पार्श्वे तिष्ठामि जेपासेबेसु ९ तत स प्रहसितो राजातिवारे राजाहस्यो श्रेणिको मगधाधिप श्रेणीक मगधदेसनो धणी एव तव ऋद्धियुक्तस्य एहवो ऋद्धिनोधणी कथ नाथो न विद्यते नाथ किमनही तुमारे १० भवामी नाथो भदताना पूज्याना अहो पूज्यहु

उ०टीका
अ०२०
६१६

सेणिओ मगहाहिवो एवत्ते इड्ढिमन्तस्स कहं नाहो न विज्जई १०) ततस्तदनतरश्रेणिकोमगधाधिपो राजा प्रहसित: हे महाभाग्यवत तव ऋद्धिमत. ऋद्धियुक्तस्य कथं नाथो नविद्यते १० (होमिनाहो भयं ताण भोगेभुञ्जाहि सञ्जयामित्तनाई हिं परिवुडो माणुस्सं खलु दुल्लहं ११) हे पूज्या अहं भयं ताणं इति भदन्तानां पूज्यानां युष्माकं नाथोभवामि यदा भवतां कोपि स्वामी नास्ति तदा अहं,भवतां स्वामी भवामि यदा अनाथत्वात् युष्माभिर्दीक्षा गृहीता तदाहं नाथोस्मि इति भाव: हे संयत हे साधो भोगान् भुंक्ष्व कीदृश: सन् मित्रज्ञातिभि: परिवृत: सन् हे साधो खलु इति निश्चयेन मानुष्यं दुर्लभं वर्त्तते तस्मान्मनुष्यत्वं दुर्लभं प्राप्यभोगान् भुक्त्वा सफलीकुरु ११ अथ मुनिर्वदति (अप्पणाहि अणाहोसि सेणियामगहाहिवा अप्पणा अणाहोसन्तो कहं नाहो भविस्ससि १२) हे राजन् श्रेणिकमगधदेशाधिपत्वं आत्मनापि अनाथोसि आत्मना अनाथस्य सतस्त्वापि अनाथ तदात्वं अपरस्य कथ नाथो भविष्यसि १२ (एवं वुत्तोनरिन्दोसो सुसम्भन्तो सुविम्हिओ वयण अस्सुय पुव्वं साहुणाविम्हयं नीओ १३) स नरेंद्र: साधुना

सूत्र

नाहो भयंताणं भोगेभुंजा हिसंजया। मित्तनाई परिवुडो माणुस्संखलुदुल्लहं ११। अप्पणा विअणाहोसि सेणिया मगहाहिवा अप्पणाहोसंतोकस्सनाहो भविस्ससि। १२। एलंवुत्तो नरिंदोसो सुसंभंतो सुविम्हओ वयणं अस्सुयपुव्वं

भाषा

तुम्हारोनाथहुं भोगान् भुंक्ष्व हे सयत हे साधु तुं भोगभोगवि मित्रज्ञातो परिवृत: सन् मित्रज्ञाति तेहस परिवर्खोयको मानुष्यं भवं दुर्लभं वर्त्तते मनुष्यनुभव दोहिलुंछे ११ हे राजन त्वं आत्मनापि अनाथो असि हे श्रेणिक तुं आपेज अनाथछे हे श्रेणिक मगधाधिप हे मगधदेशना स्वामी आत्मना अनाथ: सन् आपि तूं अनाथथको कथं नाथोभविष्यसि कोमनाथहोईस १२ एवं मुनिनोक्ते श्रेणिक नरेंद्र: इम मुनिइं कह्यायका

एव उक्त सन् विस्मयनीत आयय प्रापित कोदृशो नरेद्र सुसभ्रान्त अत्यन्त व्याकुलता प्राप्त पुन कीदृश सुविस्मित पूर्वमेव तद्दर्शनात् सञ्जाता थय पुनरपि तद्वचन श्रवणात् भयवान् जात यतोहि तद्वचन अश्रुत पूर्वं श्रेणिकाय अनाथोसिल्लमिति वचन पूर्वं केनापिनो श्रावित १३ (अस्साहत्थीमणुस्सामे पुर अन्ते उरञ्च मेभुञ्जामि माणुसे भोए आणा इस्सरियचमे१४) (एरिसे सम्पयग्गमि सव्वकामसमप्पिए कह अणाहोहवइ माहुभन्ते मुसम्पए १५) ताभ्या गायाभ्या श्रेणिकोराजावदति हे भदन्त पूज्यइइति नियमेन मृषामाब्रूहि असत्य मावद एतादृशे सम्पदग्रे सति सम्पत् प्रकर्षे सति अह कथ अनाथोभवामि कोदृशोऽह सवकाम समर्पित सर्वे च ते कामाय सर्वकामा तेभ्य सर्वकामेभ्य समर्पित शुभकर्मणाढौकित

सूत्र

साहुणा विम्हयनिओ १३ ॥ अस्साहत्थी मणुस्सामे पुरअतेउरचमे । भु जामि माणुसेभोए आणाइस्सरियचमे ॥१४ एरि सैसपयग्ग मि सव्वकाम समप्पिए । कह अणाहो भवइमाहुभते मुसवए १५ ॥ नतुम जाणे अणाहस्सअत्थ पोत्थच

भाषा

श्रेणिक राजा अत्याकुल सन् विस्मयो जात आकुलहुओ विस्मय जपनो वचन अश्रुत पूर्वं आजताइ एवचननही साभल्यछे साधुना विस्मय प्राप्त यतोह विस्मय उपजाव्योछे १३ राजाह अश्वा हस्तिन मनुष्य मम हाथो घोडा मनुष्य सर्वमाहरेछे नगर अत पुर मम नगर अतेउरमाहरेछे भू जामि मनुष्यान् भोगान् मनुष्य सबधि या भोगभोगव छु आज्ञैश्वर्य मम आज्ञा ऐश्वर्यपण माहरेछे १४ राजावदती इहयै सपत्कर्षेसति एहवी माहरे सपदाछे सर्वकामे सर्वाभिलाषे समर्पिता सर्वकाम सुखतेहनो देणहारछे कथ अनाथोभवामि किम अनाथहु केम हे भदत भगवन् मामृषा यादीभव हे पुज्य मृषावाद बोलोमतो १५ मुनिराइ नलवेलि अनाथस्यार्थं यतीकहेछे अहो राजा तू अनाथशब्दनो अर्थ नथी जाणतो अर्थ कारण

अथ राजा स्वसंमत् प्रकर्षं वर्णयति अश्वाघोटकाः वहवो मम सन्ति पुनर्हस्तिनोपि प्रचुराः सन्ति तथा पुनः मनुष्याः सुभटाः सेवका वहवो वियन्ते तथा मम पुरं नगरमप्यस्ति च पुनर्मे मम अन्तःपुरं राज्ञीवृन्दं वर्त्तते पुनरह मानुष्यान् भोगान् मनुष्यसम्बन्धिनो विषयान् भुनज्मि च पुन आज्ञैश्वर्यं वर्त्तते आज्ञा अप्रतिहत शासन स्वरूपं प्रभुत्वं वर्त्तन्ते यतो मम राज्ये कोपि मदीयां आज्ञां कोपि न खण्डयति इत्यर्थः १५ तदा मुनिराह (नतुमञ्जाणे अणाहस्स अत्थं पोत्थंचवपत्थिवाजहा अणाहो हवई सणाहोवानराहिव वा १६) हे पार्थिव हे राजन् त्वं अणाहस्स अनाथस्य अर्थं अभिधेयं च शब्दः पुनरर्थे च पुनः अनाथस्य प्रोत्थां न प्रजानासि प्रकर्षेण उत्थानं मूलोत्पत्ति प्रोत्थातांप्रोत्थांकेनाभिप्राये णायं अनाथ शब्दः प्रोक्तः इत्येवं रूपां न जानासि हे राजन् यथा अनाथो अथ वासनाथो भवसि तथा न जानासि कथं अनाथो भवति कथं स नाथो भवति १६ (सुणेहमे महाराय अव्वखित्तेण चेयसा जहा अणाहो हवई जहा मेय पवत्तियं १७) हे महाराजमे मम कथयतः सत· त्वं अव्या

सूत्र

पत्थिवा । जहा अणाहो हवई सणाहोवानराहिवा १६ ॥ सुणेहमे महारायं अव्वक्खित्तेण चे यसा । जहा अणाहो भवई जहामेय पवत्तियं १७ ॥ कोसंबीनामनयरी पुराण पुरभेयणी तत्थ आसीपियामज्झ पभूयधणसंचओ १८ ॥

भाषा

भो पार्थिव प्रोत्थं प्रकष्टोत्थानरूपं राजा अनाथ शब्दनोउत्थानरूप नहीं जाणेछे यथा अनाथोभवति जिम अनाथहुवे स नाथो वाहे नराधिपः जिम सनाथहुवे हे राजन् १६ मम कथयतो शृणु हे महाराजन् हे महाराजा मुझने कहताने तुम्हे सांभलो अव्याक्षिप्तेन चेतसा एकाग्रचित्त करीने यथा अनाथोभवति जिम अनाथहुवे यथा मे मया तवाग्रे कथितं जिम तुम्ह आगे कहुंछुं १९ कोशंबीनामपुरीएहभरतक्षेत्रे कोशंबीनांमे नगरीछे

टीका: चित्तं न स्थिरेण चेतसा शृणु यथा अनाथो नाथ रहितो भवति यथा मे मम अनाथत्व प्रवर्त्तित अथवामेय इति एतत् अनाथत्व प्रवर्त्तित तथा त्व शृणु इत्यनेन स्व कथाया उट्टक क्षत १७ (को सम्बीनाम नगरी पुराणपुरभेयणी तत्थ आसीमियामज्म पभूयधण सञ्चम्रो १८) हे राजन् कौशांवी नगरी आसीत् कोदृशी कौशाम्बो पुराण पुरभेदनी जीर्णनगरभेदनी याद्दशानिजीर्णनगराणि भवन्ति तेभ्योऽधिकशोभावती कौशाबीहिजीर्णपुरीवर्त्तते जोर्णपुरस्याहिलोका प्रायस्य तु राधनवन्तस्य बहुश्मा विवेकवतश्च भवन्तीतिभावः तत्र तस्यां कौशांव्या मम पिता आसीत् कोदृशो मम पिता प्रभूत धन सञ्चय नाम्नापि धन सञ्चय गुणेनापि बहुलधन सञ्चय इति वृद्धसम्प्रदाय १८ (पढमेवएमहाराय अउला अच्छिवेयणा अहोत्थाविउलोदाहो सव्व गत्तेसु पत्थिवा १९) हे महाराज प्रथमे वयसि यौवने एकदाअतुला उत्कृष्टा अक्षि वेदना अक्षिपीडा अहोत्था इति अभूत् अथ या अच्छिये यणा इति पाठे अचिवेदनानित पीडा अभूत् ततश्च हे पार्थिव हे राजन् सर्वगात्रेषु विपुलोदाघो भूत् १९ (सत्थं जहापरमतिक्खं सरीर विवरन्तरे पवीलिज्जइ अरी कुद्धे एव मे अत्थिवेयणा २०) हे राजन् यथा कश्चित् अरि क्रुद्ध सन् शरीरविवरान्तरेनासा कर्णचक्षु प्रमुखर आणा मध्ये परमतीक्ष्ण शस्त्र प्रपीडयेत्

सूत्र: पढमेवए महाराय अउनामे अत्थिवेयणा। अहोत्था विउलोदाहो सव्वगत्तेसु पत्थिवा १९॥ सत्थंजहा परमतिक्खं

भाषा: चोण नगर जिवरी प्रधाना सर्वनगरने जीतिछे प्रधाननगरीछे तत्र आसीत्पिता मम तेह नगरीनेविषे माहरोपिताहुओ प्रभूत धनसचय ते हमारो पिताने घरे घणु धनहुओ १८ प्रथमेवयसी यौवने हे महाराजन् प्रथमवय यौवनावस्थाने विषे अतुलाधना चक्षुपीडा मम वेदना अभूत् अतु लाघणी आखिनो पीडा वेदना उपनो विस्तीर्णदाघो भवती वलो शरीरने विषे दाघ ज्वर घणो उपनो सर्वगात्रेषु पार्थिव सर्वशरीर सर्वअंगने विषे उपनो १९ शस्त्र यथा परमतीक्ष्ण सम्ममहातीक्ष्ण अणी आलु कर्णादि विवरमध्ये आपीडयेत् गाढमवगाहयेत् अत्र क्रुद्ध शरीर विवरमाहिका नमाहि

गाढं अवगाहयेत् एवं मे ममाऽस्थि वेदनाऽभूत् २० (तियमे अन्तरिच्छं च उत्तमङ्ग च पीडई इन्द्रासणि समाघोरा वेयणा परमदारुणा २१) हे राजन् सा परमदारुणा वेदनामे मम मत्रिकं कटिपृष्टविभागञ्च पुन अन्तरिच्छां अन्तर्मध्ये इच्छां अन्तरिच्छातां अन्तरिच्छां भोजनपा नदमणाभिलाषरूपां च पुनरुत्तमाङ्गं मस्तकं पीडयति कोदृशो वेदना इन्द्रासनि समाघोरा इन्द्रस्य अशनिवज्जं तत्समा अतिदाहोत्पादकत्वात् तुच्चाघोरा भयदा २१ (उवट्ठियामे आयरिया विज्जामन्ततिगिच्छगा अधोया सत्थ कुसलामन्त मूलविसारया २२) हे राजन्तदेत्यध्याहारः पाचार्या वैद्यानां ग्रन्थाध्यापकाः मे उपस्थिताश्चिकित्सां कर्त्तुं लग्ना कोदृशा आचार्याविद्यामन्त्र चिकिच्छकाः विद्यया मन्त्रेण च चिकित्सन्ति चिकित्सां कुर्वन्तोति विद्यामन्त्र चिकित्सका प्रतिक्रियाकर्त्तारः पुनः कोदृशा आचार्याः अधीता सम्यक् पठिताः अबोया इति पाठे न विद्यते अन्योद्वितीयो येभ्यस्ते अद्वितोयाः असाधारणाः पुनः कोदृशास्ते शास्त्र कुशला शास्त्रेषु विचक्षणाः पुन कोदृशास्ते मन्त्र मूल विशारदाः मन्त्राणि देवाधिष्ठितानि मूलानिजटिकारूपाणि तत्र

सूत्र

सरीर विवरंतरे आवीलिज्ज अरीकुद्धो एवंमे अत्थिवेयणा २० ॥ तियंमे अंतरिच्छंचउत्तमंगंचपीडई । इंदासणिसमा घोरा वेयणा परमदारुणा २१ ॥ उवट्ठियामे आयरिया विज्जामंत तिगिच्छगा । अधीया सत्थकुसला मंतमूल विसा

भाषा

गाढा जोरसुं वेरीकोप्यो थको मारे एवं मम चचुवेदना अभूत् इसी वेदना माहरी आंखिमांहि हुई २० तिकंकटिभागं मम अंतरिच्छं हृदयंच अपरं उत्तमंगं पोडाते कटि हियो माथो गाबड दुखो णी इंद्राशनि वज्रवत् इंद्रना वज्रनो परिघोर दुःखकारिणी इंद्रना वज्रसरोखी महाघोर वेदना परम दारुण जाता मुझने वेदना उपनोतीव्र २१ उपस्थिताः मम आचार्या माहरे निमत्ते वैद्यतेआ विद्या मंत्राभ्यां व्याधि चिकित्सां विदा मन्त्र तेहनाजांण

विचक्षणा मन्त्र मूलिकानां गुणज्ञा २२ (तेमेतिगिच्छं कुव्वन्ति चाउप्पाय जहाहियं नय दुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया २३) ते वैद्याचार्या मम चिकित्स्य रोगप्रति क्रियां यथा हितं भवेत्तथा कुर्वन्ति कीदृश चैकित्स्य चातु पाद चत्वार पदा प्रकारायस्य तत् चतु पद तस्य भाव चातुपाद चातुर्विध्यमित्यर्थ वैद्य१ औषध२ रोगि३ प्रतिचारक ४ रूप अथवा वमन१ विरेचन२ मर्दन३ स्वेदन ४ रूप अथ वा अञ्जन१ बन्धन२ लेपन३ मर्दन४ रूपं गाम्भीत गुरुपारं पर्यागत च प्र रितिस्थाने प्राकृतत्वात् कुर्व्वतीत्यत्र ते वैद्यामां दुःखात् न विमोचय तिस्म प्राकृतत्वात् भूतार्थे वर्त्तमानार्थं प्रत्यय एषा मम अनाथतावर्त्तते २३ (पियामे सव्व सारंपि दिज्जाहि मम कारणा नय दुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया २४) हे राजन् मम पिता मम कारणे सर्वमपि सारगृहे यत् सारसारवस्तु तत्सर्वमपि वैद्येभ्योऽदात् तथापि वैद्यामादु खात् नविमो चयन्तिस्म एषा मम अनाथ

रया २२। तेमेतिगिच्छं कुव्वति चाउप्पाय जहाहियं। नयदुक्खा विमोयति एसामज्झ अणाहया २३॥ पियामे सव्वसारंपि देज्जाहि ममकारणा। नयदुक्खा विमोयति एसामज्झ अणाहया २४॥ मायामे महाराय पुत्त

अधीता शास्त्रकुशला नानाशास्त्रेषु पण्डिता नानाप्रकारनां शास्त्रतेहना जाण मन्त्रमूलविशारदा मन्त्रमूल जडीबूटी तेहने विषेडाह्याछे २२ तेवैद्या ममभेषज प्रतिचारिका चिकित्सां कुर्यति तेवैद्य मुझने चिकित्सा करे औषध दिइ पेटमाहि चतु प्रकार आतुर १ वैद्य २ भेषज३ प्रतिकार४ ध्यारैवैद्य चिकित्सा करे भांति २ नां औषधदिइनते वैद्या दु खाद्विमोचयति ते वैद्य मुझने दु खथकी मूकावी सके नही एषा मम अनाथता एमुझने अनाथ पणु २३ पिता मम सवसारवस्त्वपि अपोराजा पितामाहरो सवसारवस्तु दद्यात् मम कार्यायम्हारे निमित्ते देइ वैद्य भणी मन्त्रवादीयांने नच दुखाद्विमो

उ०टीका
अ०२०
६२२

तात्रे याइति शेष.२४ (मायाविमेमहाराय पुत्तसो यदुहद्दिया नयदुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया २५) हे महाराजमे मम मातापि दुखान्मां न विमोचयतिस्म कथं भूतामाता पुत्रशोक दुक्खस्थिता पुत्रस्य यः शोकः पोडाप्रादुर्भावः साता अभावः स एव दु ख तत्र स्थिता पुत्रशोकादुक्ख स्थिता एषा मम अनाथतात्रे या २५ (भायरामे महाराय सगाजिठ्ठ कणिठ्ठगानयदुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया २६) हे महाराज मे मम भ्रातरोपि स्वका आत्मोयाज्ये ष्ठकनिष्टवा वृजा लघवश्चमां न च दुखाद्विमोचयन्तिस्म एषा मम अनायतात्रे या २६ (भयणीओ मे महाराय सगाजिठ्ठ कणिठ्ठगा नयदुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया २७) हे महाराजमे मम भगिन्योपि स्वकाएकमातजाज्येष्टाकनिष्ठाय मां दुखान्नविमोचयं तिस्म एषा मम

सूत्र

सोग दुहद्दिया। नयदुक्खा विमोयंति एसामज्झ अणाहया २५॥ भायरामे महारायं सग्गाजिठ्ठ कणिट्ठगा। नय दुक्खा विमोयंति एसामज्झ अणाहया २६। भइणीओमे महारायं सग्गाजिठ्ठ कणिट्ठगा। नयदुक्खाविमोयंति एस •

भाषा

चयंति परंदुःखहुंती मूंकाइ सके नही एषा मम अनाथताएमुझने अनाथपणु २४ माता मे मम महाराजा पुत्रशोक दुःखस्थिता पुत्रना जे शोक पीडा प्रादुर्भाव शाताभाव तेहिदुःखमे रहीथकीअर्थातमुझे दुखीयोदेखीवीलापकरे तथापी दु ख नउमीलंतिः तोपीण दूखजाइ नहीएषा मम अनायताएहमा हरी अनायपणु छे २५ भ्रातरः मे मम महाराजा भाई माहारा हे महाराजा स्वकाः ज्येष्ठा· वृडा कनिष्ठा लघुः सगावडा लहुडाछे न च दुखाद्विमो चयति परंते दुखथको मूंकावी सके नहीं एषा मम अनाथताएमाहरे अनायपणु छे २६ भगनी मम महाराजन् वहिं निम्हारी हे महाराज स्वका ज्येष्ठा वृडा कलिष्ठालघव सगीवडीलो हुडीछे न च दुखाद्विमोचयति परते दु खथकी मूंकावी सके नही एषा मम अनायताएमुझने अनाथ

अनायता २७ (भारियामे महाराय अणुरत्ता अणुव्वया अंसु पुत्रेहि नयणे हि उर मे परिसिंचई २८) (अन्नपाण चन्हाणञ्च गन्धमल्ल विलेवण मएनाय मनाय वा सा बालानोवभुञ्जई २८) (खण पिमे महाराय पासाओ नविफिट्टइ नयदुक्खाविमोयन्ति एसामज्झ अणाहया ३०) तिहभिर्गाथाभि कुलक हे महाराजमे मम भार्या कामन्यपि दुखात् मां नमी च यतिस्म कथ भूताभार्या अनुरक्ता अनुरागवती पुन कथ भूता अनुव्रता पतिव्रता पति अनुलनो छच व्रत यस्या सा अनुव्रता एताद्दशी भार्या मे मम उरोहृदय अश्रुपूर्णाभ्या लोचनाभ्या सिंचतिस्म २७ पुन साबालामल्लामिनी अन्न भगन मोदकादिक भक्ष पान शर्करोदकादिक पुन स्नान कुमकुमादिपानीयैरभि तैल चोवकमेदअवाधि प्रमुखैर्गात्रार्चन मया ज्ञात वा अज्ञात स्वभावे

मज्झ अणाहया २७। भारियामे महाराय अणुरत्त मणुव्वया। असुपुन्नेहि नयणेहि उरमे परिसिंचई २८। अन्न पाणचण्हाणच ग धमल्ल विलेवण। मएनाय मनायवा सावालानो वभु जई २९॥ खणपिमे महाराय पासाओ विन फिट्टई। नयदुक्खाविमोयति एसामज्झ अणाहया ३०। तओह एवमाहसु दुक्खमाहुपुणो २। वेयणा अणुभविउ जे

पण छे २७ भायामम हे महाराजन स्त्रीमाहरी हे महाराज अनुरक्तामयि स्नेहाश्रिता पतिव्रता महासती मुझ उपरिस्नेह घणोसती अश्रुपूर्णाभ्या नय नाभ्या आसूएकरो पूर्ण नेत्रे करीने उदर वक्षस्थल ममशिंचति हिउ माहरु सिंचे २८ अन्न अन्नपानीय पाणी स्नान च अघोलवु गधमाल्य विलेपन कर्पूर चूआचदन अवीर फूलमाला मया ज्ञात अज्ञातवा मुझने जांणतां अजाणतां इतरा वानानहीकरेछे साबालानोपभु क्ते न सेवते खाद नहीछे छाने जइने २९ "क्षणमपि मम हे महाराज क्षणमात्रपणि हे महाराज सा बालापार्श्वात् न गच्छति माहरापासाथी ते बालिका उठेनही न च

उ०टीका अ०२० ६२४

नैव एतत्सर्वं भोगाङ्गन उपभुंक्तं न अनु भवति मम दुखात्सर्वाणि अपि भोगङ्गानिलक्तानि २८ पुन हेमराज साबाला मम पार्श्वात् नैकथ्यात् नचिफिटति न अपयाति इत्यर्थ परं दुःखात् मांनमोचयति एषा मम अनाथताज्ञेया ३० (तओहं एवनाहिं सु दुक्खमाहु पुणो पुणो वेयणा अणु भवे उ जे संसारंमि अणन्तए ३१) ततोऽनन्तरं प्रतीकारेषु विफलेषु जातेषु अहं एवं अवादिषं एव मिति किं एद्रति निश्चयेनया वेदना अनुभवितुं दु चमाः भोक्तु मसमर्थास्तावेदना संसारे पुन पुनः भुक्तितिशेष वेद्यते दुःखं अनयेतिवेदना दु खेनचम्यते सह्यते इति दुःक्खमादुं सहा कीदृशे संसारे अनन्तके अपारे ३१ (स इं चजइ मुच्चिज्जा वेयणा विउलाउमे खन्तोदन्तो निरारम्भो पव्वइए पणगारियं ३१) नहं किं अवादिषं तदाह यदि सकृदपि एकवारं अपि अहं वेदनाया विमुच्यते तदाहं चंता भूत्वा पुनर्दांतो जितेन्द्रियो भूत्वा निरारम्भ सन् अनगारत्वं साधुत्वं प्रव्रजामि दीक्षां गृह्णामीतिभाव कथंभूताया वेदनाया. विपुलायाः विस्तीर्णाया ३२ (एवञ्च चिन्तइत्ताणं पसुत्तोमि नराहिवा परियत्तंति राइए वेयणामे खयं गया३३) एवं पूर्वोक्तं चिन्तनं चिन्तयित्वा हे नराधिप यावदहं सुप्तोस्मि तावत्तस्यां एवरात्रौ प्रवर्त्तमानाया अतिक्रामन्त्यांमे मम वेदनाक्षयंगता वेदना

सूत्र

संसारंमि अणंतए ३१ ॥ सइं च जइमुच्चेज्जा वेयणा विउलाइओ । खंतोदंतो निरारंभो पव्वइए अणगारियं ३२ ।

भाषा

दुखात् विमोचयति परं दुखथी मुंकावी सकेनहीं एषा मम अनाथता एहवो अनाथपणुं जाणवुं ३० ततो अहं अनंतरं वक्ष्यमाण उक्तवान् तिवार पछीहुं एहवुं बोलवालागो दुक्खं पुनः कथयत् एदुःखनो वेटावणहार संसारमांहिं कोईदीसतुं नथी वेदना अनुभूता वेदितामया एकलोहुं वेदनाभोगवुं संसारे अंतरहिते संसारमांहिं फिरते मे वेदनाभोगवी ३१ सकृदपि यदिमुच्यते एकवार जो मूकावो वेदनात् विपुलात् इत एवेदनाहुंतीतोहुं क्षमावान् दमितेंद्रिय आरंभरहितः क्षमाकरी सहित इंद्रीदमीने आरंभरहीतथको प्रपद्ये अनगारता तोपडिवजूं आदरुं अणगार ते साधुपणो ३२

उ०टीका अ २ ४२५

उपशान्ता इत्यर्थ ३३ (तओकल्ले पभायमि आपुच्छित्ताण बधवे खन्तोदन्तो निरारम्भो पव्वइओ अणगारिय ३४) ततो वेदना उपशान्ते रनतर यापे इतिनोरोगे जाते सति प्रभातसमये बाधवान् खज्ञातीन् आपृच्छ्य अह अनगारत्व साधुत्व प्रव्रजित साधुधर्म अगीकृतवान् तदयोह चान्त पुनर्दान्त पुनरह निरारम्भ ३४ (तओहणाहोजाओ अप्पणोय परस्सय सव्वेसिचेवभूयाण तसाण थावराणय ३५) हे राजन् ततोदीक्षा ग्रहणानन्तर आत्मनश्च पुन परस्यनाथो योगक्षेमकरत्वेन स्वामोजात आत्मनोऽहिनाय शुद्धप्ररूपणत्वात् अपरस्यच हितचिन्तनात् एव नियमेन सर्वेषा भूतानाञ्च पुन स्थावराणां नाथोजात ३५ अथयथात्मनो नाथत्त्व सर्वेषा नाथस्तदेव द्रढयति (अप्पानईवेयरणी अप्पामे कूडसामली अप्पाकाम दुघाधेणू अप्पासे नन्दण

सूत्र

एवच चितइत्ताण पसुत्तोमि नराहिवा । परियत्ततोइ राइए वेयणा मेखयगया ३३ ॥ तओकल्ले पभायम्मि आपुच्छि त्ताण बधवे । खतोदतो निरारभो पव्वइओ अणगारिय ३४ ॥ तओह नाहोजाओ अप्पणोय परस्सय । सव्वेसिचेव

भाषा

एव च चितविता अह इम चितवीनेइ प्रसुप्तोस्मि हे नराधिप प्रकर्षेकरोसूतोछु हे राजा परिव्रजत्या रजया परिणामत्या जातीयको रात्रि विषे तदा रात्रौ वेदनामे क्षयगता ते रात्रिनेविषे वेदनाम्हारी क्षयगइ निरोगहुओ३३ तत कल्ये द्वितीयदिने प्रभाते तिवारे बीजे दिन प्रभातसमे आपृच्छ बाधवान् मे भाइबधवपूछोने आज्ञालेइनेक्षमावान् दात निरारभ क्षातदातनिरारभथकोप्रवजित अनगारतापडिवज्योआदर्यो अणगारपणोते साधपणादोषत्३४ ततोह नाथोजात योगकरण क्षेमतयामन तिवारपछेह योग क्षेम ना करवापणाथको नाथथयो शुद्धप्ररूपकत्वात् परस्य सर्वेषा शुद्धप्ररूपणथको पराणो पणि नाथहुओ पुन सर्वषा भूतानाद्वोन्द्रियादोना सबलाबेइन्द्रीनो त्रसाना स्थावरणाच त्रसजोवनो थावरजोवनो नाथहुओ ३५ आत्मैवनदो वैतरणीनदी

उ॰टीका
भ॰२०
६२६

वण) ३६ हे राजन् दीक्षाया गृहीतायां अहंनाथो भूव पूर्वं धनाथश्रासं तत्कथ उच्यते अय आत्माजीवो वेतरणीनदी प्रवर्त्तते पुनर्मम आत्माएव कूट शाल्मलीवृक्षो नरकस्थो वर्त्तते पुनरयमात्मैव काम दुघाधेनुवर्त्तते कामं दोग्धिपूरयतीति कामदुघाजीव. शुभक्रियां करोति सा शुभक्रिया सुखदेत्यर्थः मे मम आत्मानं दनवनं देवानां सुखदायकं वनमस्ति ३६ (अप्पाकित्ता विकित्ताय सुहाणय दुहाणय अप्पामित्त ममित्तञ्च दुपट्ठिय सुपट्ठिश्रो ३७) हे राजन् आत्माजीवःसएवकर्त्ता च पुनः आत्माएव विकिरता विक्षेपकः केषांतदाह सुखानाञ्च पुनर्दुःखानां अर्थात् सुखा सुखयोः कर्त्ताविकिरभाविनायकश्च आत्मैवच पुनः आत्मामित्रं उपकारकृत् सुहृद्वर्त्तते तथा आत्माएव श्रमित्रं शत्रु रहितकारी वर्त्तते हे राजन् अयं आत्मा दुष्टाचारे प्रस्थितः प्रवर्त्तितो वैतरण्यादि नरकभूमिदर्शको वर्त्तते अयमेवात्मा सत् आचारे प्रस्थितः प्रवर्त्तितः कामधेन्वादि नन्दनवनादिवत् हर्षदो वर्त्तते ३७(इमाहुअन्नोवि अणाह

सूत्र

भूयाणं तसाण थावराणय ३५। अप्पानई वेयरणी अप्पामे कूडसामली । अप्पाकाम दुघाधेणू अप्पामेन दणंवणं ३६ -
अप्पाकत्ता विकत्ताय दुहाणय सुहाणय । अप्पामित्त ममित्तंच दुपट्ठिय सुपट्ठिश्रो ३७ ॥ इमाहु अन्नोविअणाहया

भाषा

ए आत्माज वैतरणीनदी समानछे आत्मैवा कूट शाल्मलीतरुः एआत्माजकूट साल्मलीवृक्षछे आत्मैयकामतार्यकृते काम दुग्धाधेनु एआत्माज कामधेनु सरिखोछे आत्मा मे मन नंदनवनं मेरुवनं ए आत्मामाहरो नंदनवन सरिखोछे ३६ आत्मैव कर्त्ताऽपि रकर्त्ता एआत्माकर्त्ता अने अकर्त्तापिण भुक्ता दुःखानां सुखानां च दुःख अने सुखना आत्मैवमित्रं अमित्रंच एज आत्मा मित्रएज आत्मावैरी दुप्रस्थितोस प्रस्थितस्य भूंडे मारगचलायो आत्मा वैयरीहोइ भले मारगे चलायो मित्रहोइ ३७ इग यन्नमाण अनाथता भो नृपएयच्चमाण अनाथता अहोराजाः तां अनाथतां एकचित्तो सावधान तया

यानि वा तमेगचित्तोनिहु श्रोसुणे हि नियन्त धम्म लहियाणवी जहा सीयन्ति एगेवहुकायरानरा ३८) हे नृप हे राजन् हुइति निश्चये इय अनाथता अन्यापि अनाथता वर्त्तते ता अनायतां एकचित्त पुनर्निभृत अन्यकार्येभ्यो निर्वृत्त सन् अर्थात् निश्चल सन शृणु यथा नियम्य धर्म लब्धापि एके केचित् जनाबहुकातरा बहु यथा स्यात्तथाहीनसत्वा पुरुषा सीदन्ति साध्वाचारेशिथिला भवन्ति ३८ [जोपव्व इत्ताण महव्वयाइ सम्मचनोफासयइ पमाया अणिग्गहप्पायरसे सुगिद्धे न मूलओ छिन्दइ बन्धण से ३९] हे राजन् योमनुष्य प्रव्रज्यदीक्षा गृहीत्वा महाव्रतानि प्रमादात् सम्यक् विधिना न स्पर्शति न सेवते से इति स प्रमादवशवर्त्ती बन्धन कर्म बन्धन रागद्वेषलक्षण ससारकारण मूलतोमूलात् न छिनत्ति मूलतोनोत्पाटयति सर्वथा रागद्वेषौ न निवारयतीत्यर्थः ३९ [आउत्तया जस्सयनत्थिकाई इरिया एभासा एतहे सणाए आयाणनिक्खेव दुगंछणाए नधीरजाय अणुजाइमग्ग ४०]

निवा तमेक चित्तोनिहुओ सुणेहि । नियइधम्म लभियाण वीजहा सीदतिएगे वहुकायरानरा ३८ । जोपव्वइत्ताण महव्वयाइ सम्म नोफासईपमाया । अणिग्गहप्पाय रसेसुगिद्धे नमूलओ छिंदइ बधणसे ३९ । आउत्तयाजस्सयनत्थि

शृणु मे मम कथयत तू एकाग्रचित्त करीने सावधान हुइ सांभलिइ कहु यतिधर्म लब्धापि यथा यथा जतीनो धर्मपालीनें दीक्षालेइने सीदति प्रमादवत एके बहुकातरा नरा पाछे सीदावे सर्ववस्तुने वाछे कातरकायरमनुष्य ३८ य प्रव्र या गृहीत्वा पचमहाव्रतानि पालयति जे कोई दीक्षालेइने पचमहाव्रत फरसे सम्यग न स्पृशति प्रमादात् रुडोपरिफरसे नही प्रमादने जिणे नियह्यो सवर्यो आत्मानयो एहवो मधुरादिरसने विषे गृध्रलालची एहयो मूलथो यदीण छेदेनहीते अनाथ पण ३९ आयुक्तता सावधानतायस्य साधो नास्ति कश्चित् सावधानपणो पणिते साधुमांहिकोइनथी इर्यायाइ

हे राजन् स साधुधोरया त मार्ग न अनुयाति धोरैर्महा पुरुषैस्तीर्थकरैर्गणधरैश्च यातं प्राप्तं अर्थान्मोचं मार्गं न प्राप्नोति सक. यस्य साधो: ईर्यायां गमनागमनसमितौ तथा भाषायां तथा एषणायां आहार ग्रहण समितौ पुनरादाननिक्षेपण समितौ वस्तूनां गहणमोचनविधौ तथा दुगञ्छणाए इति उच्चारप्रश्रवण श्लेष्म जल्लसिङ्घाणादीनां परिष्टापनसमितौ आयुक्तताकाचिन्नास्ति ४० [चिरंपि सेमुण्डरुई भवित्ता अथिरव्व एतवनियमेहिं भट्ठे चिरपि अप्पाण किलेसइत्ता नपारपहोइहु सम्पराए ४१] स पूर्वोक्त पञ्चसमिति रहितोमुन्याभासश्चिरं मुण्डरुचिर्भूत्वा आत्मानं अपि चिरंक्लेशेपातयित्वा इइति निश्चयेन सम्पराए ससारेपारगो न भवति कोदृश स अस्थिरव्रतः अस्थिराणि व्रतानि यस्य स अस्थिरव्रत पुन कीदृश सतपोनियम भ्रष्ट

सूत्र

काई इरियाए भासाए तहेसणाए। आयाण निक्खेव दुगंछणाए नवीरजायं अणुजाइमग्गं ४०। चिरंपिसेमुंडरुई भवित्ता अथिरव्वए तव नियमेहिं भट्ठे। चिरंपि अप्पाणकिलेसइत्ता नपारए होइ हुसंपराए ४१॥ पोल्लेवमुट्ठी जहसे

भाषा

र्यासमितिने विखे भाषायां भाषा समतिने विखे तथाएषणायां एषणा समतिने विखेः आदान निक्षेपयोः जुगुप्सायाय प्यादानवस्तुनुं लेवुं निक्षेपवस्तुनुं मुंकवुं एहने पारिष्टापना सुमितौ पारिठावनीया सुमतिने विखे सावधान नही स साधुं वीरजाति धीर पुरुषैः सेवित मार्गेनअनुगच्छति न प्राप्नोति एहवोयतोधीर पुरुषनोसेव्यो जे मार्गतेहने पांमी सके नही मुक्ति नजाइ ४० चिरकालमपि स साधु मुंडरुचिर्भूत्वा चिरकालताइं मुंडपणानो रुचि थई दीक्षापालो अस्थिरव्रत तपोनियमाभ्यांभ्रष्टः अस्थिरव्रत तपनियमथी भ्रष्टहुओ चिरकालं यावत् आत्मान किले सयित्वा घणाकालताइं आपणा आत्माने क्लेश उपजावोने पारगामो न भवति निश्चतं ससारस्य संसारनो पारगामो नहोइ मुक्ति नजाइ ४१ मुन्यामुष्टि यथा असारापोलीनंठि

य कदापि तपोनकरोति तथा पुनर्नियम अभिग्रहादिकन्नाकरोति केवल द्रव्यमुण्डोभवति स ससारस्यपारं तेनप्राप्नोतीत्यर्थः ४१ [पोल्लेवमुट्ठीजहसे असारो अयन्तिए कूडकहावणे वा राढामणी वेरुलियप्पगासे अमहग्घे एहोइहु जाणएसु ४२] स पूर्वोक्त मुण्डरुचि असारो भवति अन्त करणे धर्माभावात् रिक्तोऽकिञ्चित्करी भवति सक इव पोल्लोमुष्टिरिव यथा रिक्तोमुष्टिरसारो मध्ये सुपिर एवतथा समुण्डरुचि कूटकार्षापण इव असत्यनाणकमिव अयन्त्रित भवति नयन्त्रित अयन्त्रित अनादरणीय निर्गुणत्वात् उपेक्षणीय स्यादित्यर्थः उत्तमर्यं मर्यातरव्यासेन द्रढयति हुयम्मात्कारणात् राढामणि काचमणि जाणएसु इति ज्ञायकेषु मणिपरीक्षकनरेषु वैडूर्यप्रकाशी अमघको भवति बहुमूल्यो न भवति वैडूर्यमणिवत् प्रकाशोयस्य स वैडूर्यमणि प्रकाश वैडूर्यमणि सदृश तेजा महतो अर्घोयस्य समहर्घं महार्घं एव महार्घक नमहार्घकोऽमहार्घक अबहु मूल्य इत्यर्थः यथा मणि ज्ञेषु वैडूर्यमणि वैडूर्मौल्य स्यात्तथा काचमणिर्वैडुर्मौल्येन स्यात् एव धर्महीनोमुनि साधुगुणज्ञेषु यथा सद्धर्माचारयुक्त साधुर्वन्दनीय स्यात्तथा समुण्ड रुचिर्वन्दनीयो नस्यादिति भाव ४२ [कुसीललिङ्ग इह धारइत्ता इसिज्झय जीविय वूहइत्ता असञ्जए सञ्जयलप्पमाणे विणिघायमागच्छइसे चिरपि ४३] से इति स साध्वाचाररहित इह ससारेचिर चिरकाल यावत् विनिघात आगच्छति पीडा प्राप्नोति कि कृत्वा कुशीललिङ्ग पार्श्वस्थादीना चिह्न धारयित्वा पुन र्जीविकार्थ आजीविकार्थं ऋषिध्वज रजोहरणमुखपोतिकादिक वृंहयित्वा वृद्धि प्रापयित्वा विशेषेण निघात विनिघात विविधपीडा स कि कुर्वाण

असारे अयतिए कूडकहावणेवाराढामणी वेरुलियप्पगासे। अमहग्घए होइ हुजाणएसु ४२ ॥ कुसीललिंग इह

जिम असारद्रव्ये अयन्त्रित केनापिअ सग्रहीत कूटकार्षापण कूड नाणु जिम असारद्रव्ये कोइलेनही काचमणि वैडूर्य सदृश काचनीमणि करि कहे एम्हारे वैडूर्यरत्न छे अमहर्घ असारो भवतिहि निश्चित वा पतिपु जाणजवहरीने लेईं देखाडीतेवारेतेकाच कह्या पणि मणिनकह्यो ४२ कुशील

उ०टीका अ०२० ६३०

असयतः सन् अह सयतइति लालप्यमान असाधुरपि साधुरहमिति ब्रुवाणः ४२ (विसन्तुपीय जहकालकूटं हणाइसत्यं जहकुग्गहीय एसेव धम्मोविसओ विवन्नीहणाइवेयाल इवाविवन्नो ४४) हे राजन् यथा कालकूटो महाविषः पीतः सन् हणाइ इति हन्ति पुनर्यथा कुग्रहीत विपरीत हस्ताग्रहीतं शस्त्रं हन्ति एव एव अनेनैव दृष्टान्तेन विषयैरिन्द्रिय सुखैरुपपन्नोविषयोप पन्नो विषयसुखाभिलाष युक्तो धर्मोपिहन्ति पुन. सविषयो धर्मोऽविपन्नवेताल इवहन्ति मन्त्रादिभिरकीलितः स्फुरद्दलो मन्त्रयन्त्रै रनिवारितबलोवेतालोमन्त्रपिशाचो मारयति तथा विषय सहितो धर्मोपि मारयतीत्यर्थः ४४ (जेलक्खणं सुविणं पउंजमाणे निमित्तकोऊहलसम्पगाढे कुहेडविज्जासवदारजीवीनगच्छई सरणंतम्मिकाले ४५) य साधुर्लक्षणं प्रयुञ्जानः सामुद्रोक्त

सूत्र

धारइत्ता इसिज्झयं जीवियवूहइत्ता असंजए सजयलप्पमाणे विणिघायमागच्छइसे चिरंपि४२॥ विसंतुपीयं जहकाल कूडं हणाइ सत्थं जहकुग्गहीयं। एसोवधम्मो विसओवसन्नो हणाइ वेयालइवा विवन्नो ४४। जे लक्खणं सुविणं

भाषा

पार्श्वस्थादि विखे इह जगति स्तोला जसना पासत्यादिकनो वेषआदरीने ध्वजि रजोहरणादिक रजोहरणमात्र वेषधारी होईने जतो भिक्षुधा रीनेआजीव काकरे असयतः सन् आत्मानं संयतं कथयत् असयतोछे लोकनेकहेछेकं संयती साधूछुं विनिर्घातं विविधनरकं आगच्छति प्राप्नोति ससाधुः चिरकालमपि घणा नरकने विखे जाय चिरकालसीमरहे ४२ विषंपीत यथा कालकूटं मारयति जिम कालकूट विषपीधुं थकुं मारेः मारयति शस्त्रं यथा कुग्रहीतं भूंडोजगरयेझाल्युं थकुं जिम शस्त्रमारेः तथा एवएव धर्मः विषयोपपन्नः सन् विषययुक्त सन्मारयति यतीशोय शब्दादिविषयसेवे तोमारे मारयतिवेतालइवकोइएगो वेतालः अविपन्नोमंत्रादिभिः अकीलित वेतालनो परिमारे जिम मंत्रादिके अणकील्यो ४४ यः साधुः लक्षणं सामुद्र

उ टीका
अ २
६२१

स्त्रीपुरुष शरीरचिह्न शुभाशुभसूचक प्रयु क्ते गृहस्थानां पुरतोवक्ति पुनश्च साधु सुविश्व स्वप्नविद्या प्रयुञ्जानो भवति स्वप्नानां फलाफल वक्ति पुनर्यं साधुनिमित्तकौतूहल सम्प्रगाढो भवति निमित्त च कौतूहल च निमित्तकौतूहले तयो सम्प्रगाढ अत्यन्तासक्त स्यात् तत्र निमित्त भूकम्पोल्का पातकेतूदयादिकौतूहल कौतुक पुत्रादि प्राप्त्यर्थं स्नाना भैषजौषधादि प्रकाशन उभयलसक्तो भवति पुनर्यं साधु कुहेटविद्याश्रवद्वारजीवी भवति कुहेटकाविद्या कुहेटकविद्या अलोकाश्चर्यविधाय मन्त्र तन्त्र यन्त्र ज्ञानात्मिका स्ताएव आश्रवद्वाराणि तैर्जीवितु आजीविकाकर्तुं शील यस्य स कुहेटकविद्या श्रवद्वारजीवी एतादृशो यो भवति हे राजन पर तस्मिन काले लक्षण स्वप्ननिमित्तकौतूहलकुहेटकविद्या श्रवद्वारोपार्जित पातकफलोप भोगकाले स साधु शरण नगच्छति न प्राप्नोति त साधु कोपि दु स्वात् नरकतिर्यक योन्यादीनवायते इत्यर्थं ४५ (त मन्तमेणेवउसे असीले सया

सूत्र

पउ जमाणे निमित्तको ऊहल सपगाढे । कुहेडविज्जा सवदारजीवी नगच्छई सरण तम्मिकाले ४५ ॥ तमतमेणेवउसे असीले सयादुही विप्परिया समुवेइ । सधावई नरयतिरिक्खजोणी मोणविराहित्त, असाहुरूवे ४६ ॥ उद्देसिय

भाषा

कादि स्वप्नशास्त्र प्रयुज्यमान जे साधू शरीरना लक्षणकहे स्वप्नु विचार कहेछे निमित्त कौतूहने सप्रगाढ भूकपादि निमित्त कुतूहल लोकनेदेखाडे पुत्रप्राप्तमणोरनादिकहे आगन्होइ कुहेतक विद्याइटिव धादिरूपा एव विधाश्रत जीवति इटिव धादि आश्रवद्वारसेवीने जीवे न प्राप्नोति शरण तस्मिन् कर्मागमेकथित् शरण न भवतीत्यर्थं जिवारे उदयकर्मश्रावेतिवारे शरणराखवावालो कोइ नही ४५ अतिमिथ्यात्व युक्तो न स द्रव्ययति मिथ्या त्वेने द्रव्यराखे भू डे आचारे चारित्रने छोडिनेचाले सदादु खी सन विपर्यास प्राप्नोति सदा दु खीहुवे विपर्यासपामे विपरीतिपणु हुवे सतत गच्छति

उ०टीका अ०२० ६३४

पुरुषस्य तु किञ्चित् फलं स्यादेव परं तु मिथ्यात्विनोनग्नत्वरुचेरर्थाद्द्रव्य लिङ्गिनः अयं लोकोनास्ति लोचादिनसत्वादिकष्टसेवनात् इह लोके सुखमपि नास्ति पुनस्तस्य द्रव्यलिङ्गिनः संयमविराधनात परलोकः परलोके सुखमपि नास्ति कुगति गमनात् दुःखं स्यात् तत्र उभय लोकाभावेसति स धर्मभ्रष्टोद्विधापिऐहिकपारलौकिक सुखाभावेन उभय लोके सुखयुतान् नरान् अवलोक्य उभयलोके सुखान् भ्रष्ट मांधिक् इति चिन्तयाभिक्षुः इति चीयते जीर्णीभवति मनसि दूयते इत्यर्थः ४९ (एमेव हा छन्द कुसील रूवे मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं कुररी इव भोगरसाणु गिद्धा निरट्ठसोयापरितावमेइ ५०) एवं एव अमुना प्रकारेण महाव्रतविराधनादि प्रकारेणैव यथाच्छन्दः कुशील रूप स्वकीय रुचिताचारः कुत्सितशीलस्य भावः साधुर्जिनोत्तमानां तीर्थं कराणां मार्गं विराध्यपरिताप पश्चात्तापं एति प्राप्नोति का इव भोगरसानुगृद्धाकुररी इव पक्षिणीव भोगानां जिह्वास्वाददायकानां मांसानांरसेऽनुगृद्धालोलुपाभोगरसानु गृद्धा पुनः कीदृशा कुररीनिरट्ठ सोयानिरर्थ शोकायस्याः सानिरर्थशोका यथा हिंस्रा सरस गृद्धापक्षिणीपक्षिभ्यो महाबलेभ्यः पक्षिभ्यो विपत्तिं प्राप्यपक्षिणी शोचते तद्विपत्तेः प्रतीकारं मनवलोकयन्ती पश्चात्तापं प्राप्नोति तथा संयमविराधको विषयाभिलाषी इन्द्रिय सुखार्थी साधुर्लोकद्वयानर्थं प्राप्तो ततोस्य स्वपरित्राणा समर्थत्वेन अनाथत्वं इति भावः ५० अथयत् फलं तदाह (सुच्चाणमेहाविसुभासियं इमं अणु सासणं नाणगुणोववेयं मग्गं कुसीलाणजहाय सव्वं महानियं ठाणवएपएणं ५१) हे मेधाविन् हे पण्डित हे राजन् इदं सुभाषितं सुष्ठु भाषितं

सूत्र

छंदकुसीलरूवे मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं कुररी विवाभोग रसाणुगिद्धा निरट्ठसोयापरि तावमेइ ५० ॥ सोच्चाण

भाषा

वर्त्ती इमजगन्हाछंद कुशीलियो होणाचारवन्त मार्ग विरोधजिनोत्तमानां तीर्थंकरता मार्गतीर्थं करनो भाष्यो तेहने विराधीने भांजीने टोटोडी कुररीजपक्षीणीइव भोगरसानुगृद्धः सन् पक्षिणीनो परिभोग रसने विषे गृद्ध थयो निरर्थक शोकं पश्चात्तापं प्राप्नोतिते निरर्थक शोकसंताप पामे ५० सुत्वा

मभाषित अनुशासन उपदेश वचन श्रुत्वा सव कुशीनाना माग जहाय इति त्यक्त्वा महानिग्रन्थाना महा साधूना पथिमार्गेषरेत् व्रजेत् कीदृश अनु
शासन नानागुणोपपेत ज्ञानस्य गुणा ज्ञानगुणा तैरूपपेत ज्ञान गुणोपपेत ५१ (चरित्तमायारगुणन्नि एतओ अणुत्तर सञ्जमपालियाण निरासवे
सङ्खवियाणकम्म उवेइठाण विउलुत्तम धुव ५१) ततस्तस्मात्कारणात् महानिग्रन्थमार्गगमात् निराश्रवो मुनिर्महाव्रतपालक साधुर्विपुल अनन्तसिद्धानां
अवस्थानात् असङ्कीर्ण उत्तम सर्वोत्कृष्ट पुन ध्रुव नियत शाश्वत एतादृश मोक्षस्थान उपैति प्राप्नोति कीदृश साधु चारित्राचारगुणान्वित चरित्रस्य
आचारश्चारित्राचारश्चारित्र सेवन गुणा ज्ञानशीलादय चरित्राचारश्चगुणाश्च चारित्राचार गुणास्तैरन्वितश्चारित्राचारगुणान्वित अत मकार प्राकृतत्वात्

मूल

मेहाविसुभासिय इम अणुसासण नाणगुणो ववेय। मग्ग कुसीलाण जहायसव्व महानिय ठाण वएपहेण ५१॥
चरित्तमायार गुणन्निएतओ अणुत्तर सजमपालियाण। निरासवेसख्वियाणकम्म उवेइठाण विउलुत्तम धुव ५२॥

भाषा

हे मेधाविन् मदुक्त सुइभाषित इम हे पडितएम्हारो सुभाषित कह्यो साभलिनें अनुशासन शिक्षण ज्ञानगुणोपेतएसीख किसीछे ज्ञानदर्शनचारित्र तेहना
जेगुण तेण सम्वितछे मार्ग कुशीलानातिहा सर्वं मार्गं कुशीलनो हीनाचारीयारो छोडीने माहा नियथाना वृजेत् मार्गे मोटा साधुने मार्गेजिइ
साधूनी मार्गसेरे ५१ चारित्राचारगुणान्वितो महानिय थ चारित्रनो आचार तेहना गुण तिणे करी सहितछे अणुत्तर सर्वोत्तम स यम पालयित्वा
तिवारपछे सनाकृष्ट चारित्रपालीने निराश्रवे हिसादिरहित क्षपयित्वाष्टकर्मप्रकार हि गारहित आठकर्म खपावे प्राप्नोति स्थान मुक्तिरूप विपुलोत्तम
शाश्वता पामे मुक्तिरूप शाश्वतुयानकमक्ति किसोछे ध्रुवनियतछे ५२ एव उक्तप्रकारेण उग्र इतीन्द्रियतेन्द्रिय इम उक्तप्रकारे उग्रतपकरे इन्द्रीजिणे

कि कृत्वा साधुर्मोचं प्राप्नोति अनुत्तर प्रधानं भगवदाज्ञाशुद्ध संयमसप्तदशविध पालयित्वा पुन: कि कृत्वा कर्माणि अष्टावपि सन्चिपव्यचय नीत्वा एतावता चारित्राचारज्ञानादि गुणयुक्त: अतएव निरुद्ध अव: प्रधानसयम प्रपाल्य सर्वकर्माणि संचय नीत्वामोच प्राप्नोतीत्यर्थ: ५१ अथोप संहारमाह(एवुग्गदन्ते विमहातवोहणे महामुणी महापद्दन्ने महायसे महानियं ठिज्जमिणं महासुयंसेकहए महयाविल्थरेण ५३] एव अमुना प्रकारेण श्रेणि केनराज्ञा पृष्ट: सन् समहा सुनिर्महासाधु महताविस्तरेण वृहताव्याख्याने न महानियन्योयं मघा श्रुतं अकथयत् महान्तयते नियन्थाय महानिग्रन्थास्तेभ्योहितं महानियन्थोयं महामुनोनांहितं इत्यर्थ: कोदृश: स उग्र: कर्मशत्रुहनने बलिष्ट· पुन: कोदृश: सदान्तोजितेन्द्रिय: पुन: कोदृशो महातपोधन: महत् तत् तपश्च महातप: महातपोधनं यस्य समहातपोधन: पुन कोदृशो महाप्रतिज्ञ: व्रते दृढ प्रतिज्ञाधारक: पुन: कोदृशो महायशा: महाकीर्त्ति:५३ [तुट्ठोयसेणिओराया इणमुदाहुकयंजलो अणाहत्तं जहाभूयं सुठुमे उवदंसियं५४) श्रेणिको राजा तुटो इइति निश्चयेन इदं उदाह इदं अवादीत्

सूत्र

एवुग्गदंतेविमहातवोहणेमहामुणी महापइन्ने महायसे। महानियंठिज्जमिणं महासुयंसेकहि एमहयाविल्थरेणं ५३॥
तुट्ठोयसेणिओ रायाइणमुदाहु कयंजली। अणाहत्तं जहाभूयं सुट्ठमेउवदंसियं ५४॥ तुज्झंसुलद्धंखुमणुस्सजम्मं

भाषा

दम्याछे तपज जेहने धनछे महामुनि मोटोजतो महाप्राज्ञ माहापंडित· महायशा· मोटा यशनो धणो महानिग्रंथोयमिद माहाश्रुत माहानिग्रंथो एछे महाश्रुतछे स साधु कथयति महतो विस्तरेण ते अनाथो साधुश्रेणिक राजा आगेद्र सविस्तरपणे कहे ५३ एवं श्रुत्वा तुष्टश्रेणिको राजाएधर्मनो मार्ग सांभलीनें राजा खुसीथयो इदं कथयामास अंजलिंकृत्वा हाथजोडीने इम कहवालागा अनाथत्व यथाभूत सुष्टुमम उपदर्शितं त्वया कथितं इत्यर्थ

कोहग श्रेणिक कृताञ्जलि बद्धाञ्जलि इद इति कि हे मुने यथा भत यथा वस्थित अनाथत्व मे मम सुष्ट उपदर्शित त्वया मे मम अनाथत्व सम्यक दर्शितमिति भाव ५४ [तम्हासुलद्ध खुमणुस्सजम्म लाभासुलद्धाय तुमे महेसी तुब्भे सणाहायसबन्धवाय जंभे ठियामग्गे जिणुत्तमाण ५५] कि श्रेणिकआह हेमहर्षे मानुष्य जन्मखुइति निश्चयेन सुलब्ध स फल त्वदीय मानुष्य जन्म हे महर्षे तवै वलाभा रूपवर्ण विद्यादीना लाभा सुलाभा रूपलावण्यादि प्राप्तय सुप्राप्तय हे महर्षे यूय एव सनाथा आत्मनोनाथत्वात् नाथ सहिता च पुनर्यूयमेव सबान्धवा ज्ञाति कुटम्बसहिता यत् यस्मात्कारणात् भेइति भवन्तोजिनोत्तमाना तीर्थंकराणा मार्गेस्थिता ५५ [त सिणाहो अणाहाण सव्वभूयाण सञ्जयाखामेमिते महाभाग इच्छामि अणुसासिय ५६) हे सयतत्व अनाथाना सर्वभूतानां त्रसानाथावराणा जीवाना नाथोसि हे महाभाग हे महाभाग युतत इति त्वा अह

सूत्र

लाभासुलद्धाय तुमेमहेसी । तुम्हेसणाहाय सबधवाय जभे ठिया मग्गजिणुत्तमाण ५५ ॥ तसिणाहो अणाहाण सव्व भूयाण सजया खामेमिते महाभागा इच्छामि अणुसासिउ ५६ ॥ पुच्छिऊणमणतुब्भ ज्झाणविग्घो उजोकओ । निम

भाषा

हे स्वामी अनाथपणो यथाभूत तुम्हे मुझ आगिलि कह्य भल देखाड्यो ५४ हे साधो युष्माक सुलब्ध जन्म हे साधु तुम्हो मनुष्यजन्म भले पाम्यो लाभा धर्मप्राप्तिरूपा सुलब्धा त्वया भो महर्ष एजोनभाषित धर्मनो लाभ भलोहुओ यूय सनाथाय सबांधवाय तुम्हे सनाथछो तुम्हे बाधवसहितछो यूय स्थितामार्गे जिनोत्तमाना तीर्थंकराणां तुम्हे तीर्थंकरनो भाख्यो धर्म तेहने विखे रह्याछो ५५ तमसिनाथो अनाथानातुअनाथनोछे सर्वभूताना प्राणीना भोसयत सर्वभूत प्राणी तेहनोनाथ क्षमयामि ते भो माहाभाग हे माहाभाग तुम्हने खमाव कु ए माहरो अपराध खमज्यो वांछा मिछिय्यतु मुझने

क्षमामि मया पूर्वं यस्तवापराधः कृत सच तव्य इत्यर्थः अथ भवतोऽनुशासयितुं त्वत्तः शिक्षयितुं आत्मानं इच्छामि मदीय आत्मातवाज्ञावर्त्ती भवतु इति इच्छामीत्यर्थः ५६ (पुच्छि ऊणमएतुज्झं ज्झाणविग्घोयजोकओ निमन्ति योय भोगे हि तं सव्वं मरिसेहमे ५७) हे महर्षे मया तुज्झं पृच्छा प्रश्नं कृत्वा यस्तवध्यान विघ्न कृतः च पुन भोगैः कृत्वा निमन्त्रितो भो स्वामिन् भोगान् भुंक्ष्व इत्यादि तव प्रार्थनाकृता तं सर्वं मे ममाऽपराधं चंतु अर्हसि सर्वं ममापराधं क्षमस्वेत्यर्थः ५७ (एवन्थुणित्ताणसरायसीहो अणगारसीहं परमाइ भत्तीए स ओरोहो स परियणो सबन्धवो धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ५८) स राजसुसिंहोराजसिंहः श्रेणिकोराजा एवं अमुनाप्रकारेण त अनगारसिंहं मुनिसिंहं परमया उत्कृष्टया भक्त्यास्तुत्वाविमलेन निर्म्मलेन चेतसा धर्म्माऽनुरक्तोऽभूत् इति शेष. कोदृशः श्रेणिक सावरोधः अन्त पुरेणसहित पुनः कोदृशः स परिजन सहपरिजनैर्वर्त्तते इति स परिजनोभृत्यादिवर्गसहितः पुनः कोदृशः सबान्धवः सहबान्धवैर्भ्रातृ प्रमुखैवर्त्तते इति सबान्धवः पुरापिवनवाटिकायां सर्वान्त. पुरपरिजनबान्धव कुटुम्ब सहित एव क्रीडां कर्त्तु आगात् ततो मुनेर्वाक्य श्रवणात् सर्वपरिकरयुक्तो धर्मानुरक्तो भूदित्यर्थः ५८ (उस्ससियरोमकूवो काऊणय पयाहिणं अभिवन्दि

सूत्र तियाय भोएहिं तंसव्वं मरिसेहिमे ५७ ॥ एवं थुणित्ताण सरायसीहो अणगारसीहं परमाइभत्तिए । सउरोहो सप

भाषा सोसयो धर्म भेलोकरी ५६ पृच्छांच कृत्वा मया तवमद्र'तु मने पूछीने ध्यानस्य विघ्नोयोकृत ध्याननोजे विघ्नकोधो निमंत्रिताच भोगैः कृत्वा अने भोगनो निमंत्रणा कोधो तत्सर्वं मे ममक्षमस्वते सघलो माहरो अपराधखमो ५७ एवं स्तुत्वा सः राजसिंघः श्रेणिकः इमहं स्तुतिकरीने श्रेणिक राजवोमांहिसोहः अनगार सिंघ मुनीश्रेष्ठं परमया भक्ता माधूमांहिसिंघसमान मुनिवरने परमभक्तिकरी वादी स्तुतिकरीने सांतःपुर सपरिजनः सवा

जणसिरसा अइया उनराहिवा ५८) नराधिप श्रेणिकोऽतियातो गृहङ्गत किं कृत्वा सिरसामस्तकेन अभिवन्द्य मुनि नमस्कृत्य पुन किं कृत्वा प्रदक्षिणा कृत्वा प्रदक्षिणा दत्वा कथम्भूतोनराधिप उस्ससियरोमकूप उतश्वसितरोमकूप साधोर्दर्शनाद्वाक्य श्रवणादुल्लसितरोमकूप ५८ (इयरो विगुणसमिद्धोति गुत्तगुत्तोतिदण्ड विरओय विहङ्ग इव विप्पमुक्को विहरइवसुह विगयमोहोत्तिवेमि ६०] अथ इतरोपि श्रेणिकापेक्षया अपरोपि मुनि रपि वसुधा पृथिवो विहरति विहार करोति कोदृश सन् विमोह सन मोहरहित सन अथात् केवलोसन कोदृशो मुनिर्गुणै समृद्ध सप्तविंशति साधुगुणसहित पुन कोदृश त्रिगुप्ति गुप्त गुप्तित्रय सहित पुन कोदृश त्रिदण्डविरत त्रिदण्डेभ्यो मनो वाक्कायाना अशुभव्यापारेभ्यो विरत पुन कोदृशो विहङ्ग इव विप्रमुक्त पञ्चीवक्कचिदपि प्रतिबन्धरहितोनि परिग्रह इत्यर्थ इति सुधर्मास्वामो जम्बूस्वामिन प्रति वदति अह इति ब्रवीमि ६० इति महा

सूत्र

रियणो सव धवो धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ५८॥ उस्ससिय रोमकूवो काऊणय पयाहिणं । अभिवंदि ऊणसिरसा अइयाओ नराहिओ ५९ ॥ इयरोवि गुणसमिद्धोतिगुत्तिगुत्तोतिदंडविरओय विहगइव विप्पमुक्को विहरइव सुर

भाषा

धव अत पुरसहित परिवारसहित भाइसहित धर्मानुरक्त विमलेन शुद्धेन चेतसा धर्मने विषे रक्तहुओ निर्मल शुद्धचित्त हुओ ५८ उस्थित रोमकूप उत्थितहुआछे रोमकूप जेहना रोमराय उठ्यां थयाछे कृत्वाच प्रदक्षणात्रय वलोतोन प्रदक्षणादेइने अभिवन्दनमस्कृत्य सिरसा मस्तक नमावोनें नमस्कार करोने गृहगतो नराधिप श्रेणिक राजा आपणे घरेगयो ५९ इतरो मुनि अनाथी ऋषिपिण गुण समृद्ध साधुना गुण तिणे सहित त्रिगुप्त गुप्त मनोवाक्काय पापनिवृत्त त्रिहुगुप्ते गुप्तोछे मनवचनकाया भलो राख्याछे विहगइव विप्रमुक्त ममत्वभावरहित पखोनीपरि ममताभाव रहित

निग्रंथीय अध्ययन विंशतितम संपूर्णं। इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां महानिग्रंथीयाख्यं विंशतितमं अध्ययनं समाप्तम् २० अथैक विंशं कथ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अनाथत्वं उक्तं तत् अनाथत्वं विविक्त चर्यया विचार्यते अतोस्मिन् अध्ययने विविक्तचर्या उच्यते सूत्रं (चंपाए पालिए नामंसावए आसिवाणिए महावीरस्स भगवओ सीसोसो उमहप्पणो१) चंपाए इति चंपायां नगर्यां पालित इति इति नाम्नाश्रावको देशविरतिधारी वणिक् आसीत् कीदृशः स वणिक् भगवतो महावीरस्य महात्मनो महापुरुषस्य तीर्थंकरस्य शिष्य शिष्याधारक सोउ इति स पुनः पालितोनाम श्राडः कीदृशो वर्त्तते तदाह नि(ग्गन्थे पावयणे सावए सेविकोविए पोएण ववहरन्ते पिहुंडं नगर मागए २) सपालितनामा श्रावको महात्माने ग्रन्थे प्रावचने श्रीवितरागस्य सिद्धान्ते कोविदीभूत् सपालितः एकदा पोतेनव्यहरत् प्रवहणेन वाणिज्यं

सूत्र

विगयमोहोत्तिवेमि६०॥ महानियंठिज्जंसम्मत्तं ॥२०॥ चंपाए पालिए नामंसावए आसिवाणिए। महावीरस्स भगवओ सीसोसोओ महप्पणो १ ॥ निग्गंथे पावयणेसावए सेविकोविदे। पोएण ववहरंते पिहुंडंनगरमागए २ ॥ पिहुंडे

भाषा

विचरित वसुधाकेवलंप्राप्तः विगतमोह इति ब्रवीमी पृथ्वीने विषे विचरे मोह रहितथकी ६० इति श्रीवीसमुं अनाथी ऋषिनु अध्ययनपुरुथयुं चंपायां नगर्यां पालकोनाम चपानगरीने विषे पालकनामे श्रावक आसीत् वणिक् श्रावकछे वांणीओ श्रीमहावीरस्य भगवतः श्रीमहावीर भगवंतनो शिष्यो महात्मा शिष्यछे मोटा आत्माछे जेहनो १ निग्रंथे प्रावचने जैनशास्त्रे जैनधर्मने विषे जैनशास्त्रनेविषे सः श्रावकः ते श्रावकविशेषेणको विदः चतुरः ते श्रावक पंडितछे प्रवहणेन व्यवहारं कुर्वन् प्रवहणनो व्यापारकरतूंथको वाहणपूरे पिहुंडनगरमागतः पिहुडनामे नगरने आव्योछे २ पिहुंडे

उ टीका
अ २१
६४१

कुर्वन् पिहुंडनाम नगर आगत चंपानगरोत प्रवहणमारुह्य व्यापारार्थं पिहुंडनगरं समायात इतिभाव २ (पिहुंडे ववहरन्तस्स वाणिओदेइ धूयरं तम सत्त पइ गिज्झ सयदेसमत्थिए ३] अथ तत्र पिहुंडनगरे कश्चिद्वणिकपालित गुणरंजित सन् तस्य पालितस्यगुणे सन्तुष्ट सन् पालिताय धूयरं इति पुत्रीं ददाति स च पालितस्तां परिणीयकतिचिद्दिनानि तत्रस्थित्वा तां वणिकपुत्री स सत्वां स गर्भां प्रतिगृह्य स्वदेशं प्रति प्रस्थित पिहुंडात् चम्पां प्रतिचलित ३ [अह पालियस्स घरणी समुद्दंमियपसवई अहदारए तहिंजाए समुद्दपालोत्तिनामए ४] अथ अनन्तरं पालितस्य गृहिणी समुद्रे दारकं प्रसूतेस्म अथ तस्मिन्दारके पुत्रे जाते सति समुद्रपाल इति नामतः सबाल आसोदितिशेष ४ [खेमेण आगएचम्पं सावए वाणिए घरं संवड्ढइ घरेतस्स दारएसेसुहोइए ५] तस्मिन् पालितनाम्नि वणिजि चम्पायां नगर्यां क्षेमेण सुखेन गृहं आगते सति समुद्रपालो बालक सवर्द्धते कीदृश

सूत्र

ववहरतस्स वाणिओ देइधूयरं। त ससत्त पइगिज्झसदेस अहपत्थिए ३। अहपालियस्स घरणी समुद्दंमिपसवई। अहदारए तहिंजाए समुद्दपालोत्तिनामए ४। खेमेण आगए चंपं सावए वाणिए घरं। संवड्ढई घरेतस्स दारएसे सुहो

भाषा

नगरे व्यवहारं कुर्वत स्तस्य पिहुंडनगरने विषे व्यापारकरेछे कश्चित् वणिक पुत्री ददाति ते पालितने नगरनोवासी कोइ वाणीयो बेटीपरणावे तां समत्वां सगर्भां प्रतिगृह्यतेपालित श्रावक गर्भसहित आपणी स्त्री लेइने स्वदेशप्रति अथ चलित आपणादेशभणीचाल्यो ३ अथ पालितस्य गृहिणीहिवे पालितनी स्त्री समुद्रे प्रसूता समुद्रनेविषे प्रसवहुओ अथ तत्र समये दारकोजातहवे ते समयने विषे पुत्रहुओ तस्य समुद्रपालेति नामसता समुद्रपालते पालकतु नाम कीधं ४ खेमेण आगत चंपा कुशलखेमे चंपानगरीआव्यो सा पालिक श्रावको आगतो गृह ते श्रावकघरेआव्यो सवर्द्धते तस्य गृहे

सबालक सुखोचित सुखयोग्य: ५ [बावत्तरी कलाओय सिक्खिए नीइकोविए जोव्वणेणय संपत्ते सुरूवे पियदसणे ६] च पुन: स समुद्रपालो द्वास प्ततिकला शिक्षित: सन् नीतिकोविदोभूत् लोकनीति चतुरोभूत् च पुनर्यौवनेन सम्पन्न: सञ्जात इति गम्यं कथम्भूत: स प्रियदर्शन: पुन: कथम्भूत: समुद्रपाल: सुरूप सुन्दररूप: ६ [तस्स रूववईभज्जं पिया आणेइरूविणीं पासाए कीलए रम्मे देवोदोगुंदुगो जहा ७] अथ तस्य समुद्रपालस्य पिता पालको रूपवतीं भार्यां रूपिणीतिनाम्नी आनयति परिणाययतिस्म ततो रम्ये रमणीके प्रासादे क्रीडां करोति को यथा दोगुंदुकोदेवो यथा इन्द्राणां पूज्यस्थानीयोदेव: सुखानिभुंक्ते तथा सुखंभुंक्ते इत्यर्थ ७ [अह अन्नया कयाई पासाया लोयणेट्ठिओ वज्झमंडणसोभागं वज्झंपसइ वज्झगं ८] अथान तरं समुद्रपालोऽन्यदा कदाचित् प्रसादस्य धवल गृहस्य आलोकने प्रासादावलोकने मन्दिरगवाक्षेस्थितो वध्यं चौरं पश्यति वधाय अर्हो वध्यस्तं

सूत्र

इए ५॥ बावत्तरी कलाओय सिक्खिए नीइकोविए। जोव्वणेणयसंपन्नो सुरूवे पियदंसणे ६। तस्सरूववइं भज्जंपिया आणेइ रूविणीं। पासाए कीलए रम्मोदेवो दुगुंदगो जहा ७॥ अह अन्नया कयाई पासाया लोयणेट्ठिओ। वज्झ

भाषा

तेहसेठनेघरे ते दारकस्य: सुखोचित ते बालक सुखोचितछे ५ द्वासप्ततोकलाशिक्षत: बालकने बहुत्तरिकलासोखो शिखित: नौतिशास्त्रकोविद: निपुण नीतिशास्त्रे नीतिशास्त्रनोजांण चतुर यौवनेन संप्राप्त: अनुक्रमे यौवनपांम्यो सुरूप प्रियदर्शन: माहारूपवंत प्रियकारो दर्शनछे जेहनुं ६ तस्य पुत्रस्य निमित्त रूपवती भार्यां ते पुत्रने निमित्ते रूपवती स्त्री पिता आनयति रूपिणी इति नाम्ना पिता आणे रूपणी इसे नामे प्रसादे क्रीडति रम्ये मनो हरे रमणींक घरने विषे क्रीडाकरेछे यथा दोगुंदको देव: जिम दोगंदक देवता रमेतिमरमेछे ७ अथ अन्यदा कदाचित् एकदा प्रस्तावने विषे

कीदृग वध्य वध्य मण्डनशोभाक वध्यस्य चौरस्य यानि मण्डनानिरक्त चन्दन निम्बपत्र कणवीर पुष्प स्रगादीनिबध्य मण्डनानिते शोभायस्यासौ वध्य मण्डनशोभाकस्त पुन कीदृश वाह्यग अहिभव बाह्य वहिर्भूमण्डल तद्गच्छति प्राप्नोतीति वाह्यगस्त राजपुरुषैर्बहिनि सारगन्त अथवा बध्यग इह वध्य श दन उपचारात् वध्य भूमि वच्यते तत्र वध्य भूमौ गच्छन्त ८ [त पासि जणसवेग समुद्दपालो इणमव्ववी अहो असुहाण कम्माण निज्जाण पावग इम ९] समुद्रपाल सवेग प्राप्त सन् इद अब्रवीत् कि कृत्वा त चौर वध्य दृष्ट्वा इद इति कि अहो इत्याश्चर्ये अशुभाना कर्मणा इद पापक निर्याण अशुभ प्राप्त इष्यते ९ [सबुद्धो सोतहि भयव परमस वेगमागओ आपुच्छम्मापियर पव्व इए अणगारिय १०] स समुद्रपालो भगवान् महाभाग

सूत्र

मण्डणसोभाग वज्झग पासइ वज्झग ८। त पासिऊण सवेग समुद्दपालोइण मव्ववी। अहो असुहाणकम्माणनिज्जाण पावग इम ९। सबुद्धोसो तहि भगव परमसवेगमागओ आपुच्छम्मापियरे पव्वइए अणगारिय १० ॥ जहित्तु सग थ

भाषा

प्रासादस्य आलोके गवाक्षेस्थिता प्रासादने झरोखे बैठा नगरनी सोभादेखेछे बध्यमडन निबपत्रादि तत्सूचित शोभायुक्त कोइक पुरुष जीवना यत्ननी माताप्रहरा चोछे मारवाने सवसोभाकोधोछे वध्यवध्य योग्य पश्यति मध्यभूमीने विखे वध्ययोग्य पुरुषने देखे ८ त दृष्टा सवेगजात ते देखो समुद्रपालने सवेग उपनो समुद्रपाल इद अब्रवीत् समुद्रपालइम कहवालागो अहो इति आश्चर्ये अशुभकर्मनो विपाकफल परिणामपाप कर्मोणा अय एपाप कर्मनो परिपाक ९ स भगवान् तत्रसबुद्ध ते भगवत तिहा प्रतिबूद्धो परम सवेगे आगत परमसवेग उपनो आपृच्छ्य मातापितरौ मातापिताने पूछीने प्रव्रजित अनगारता साधूभाव दिक्ष्यालीधी साधूथयो १० त्यक्त्वा स्वजन प्रतिसबधि च महाक्लेश कारक स्वजनसबधीनो प्रतिबधछोडो के यनो कारण

वान् सबुद्धः प्रतिबुद्ध. सन् परम सवेगं आगत परमवैराग्यं प्राप्त· मातापितरं आपृच्छ्य अनगारत्वं प्रव्रजित· प्रकर्षेण गृहीतव्रतवान् १० [जहित्त सङ्गन्थ महाकिलेसं महन्तमोहं कसिणं भयावहं परियाय धम्मं च भिरोय इज्जा वयाणि सोलाणि परीसहेइ ११] समुद्रपालो भगवान् आत्मनि परियाय धम्मं प्रव्रज्याधर्मं अभिरोचयेत् च पुनः व्रतानि अहिंसा सूनृतास्तेय ब्रह्म अकिंचनत्वलक्षणानिपञ्च तथा सोलानि उत्तरगुणरूपाणि श्रुताचार गोचरोकरणसप्ततिरूपाणि तान्यपि आत्मनि अभिरोचयेत् अर्थात् प्रव्रज्यां जग्राहइत्यर्थः किं कृत्वा सङ्गं स्वजनादि सम्बन्धं त्यक्त्वा य पद पूरणे कथम्भूतं संगं महाकिलेसं महान् क्लेशो यस्मात्समहाक्लेशस्त पुन कथम्भूत सङ्गं महान्मोहो यस्मिन् समहामोहस्तं महामोहं प्रचुराज्ञानरहितं पुन· कथम्भूतं कसिणं कृष्णलेश्योयाहेतुं तस्मात् कृष्णं पुन· कथम्भूतं भयानकं भयदायकं इत्यर्थ·११ [अहिंस सच्चं अतेण गञ्च तत्तोयबम्भं अपरिग्गहञ्च पडि

महाकिलेसं महं तमोहं कसिणं भयावहं। परियाय धम्मंच भिरोयइज्जा वयाइंसीलाइं परीसहेय ११॥

अहिंस सच्चंच अतेणगंच तत्तो अबभं अपरिग्गहंच। पडिवज्जिय पंचमहव्वयाइंचरिज्ज धम्मंजिणदेसियंविज्ञ १२॥

जाणीने छोडवालेई आत्माने समभावे महामोहं कृष्णलेश्या हेतूलेन विवेकिनी भयानक एकुटंबनोसंग कृष्णलेश्यानोहेतुछे विवेकी जीवने भयनु हेतुछे प्रव्रज्याधर्मं अभिरोचयेत् चारित्ररूपं धर्मजीनदेसितं इम जाणीने चारित्र उपरि रुचिकरे व्रतानि शीलानि पालिनोयानी परीषहानि सहानि पांचव्रतशील आचार पालवा बावीसपरिसह सहें ११ अहिंसा दया सत्यं आचौर्यं व्रतश जीव दयापालवो साचु बोलवुं अदत्तादान नलेवुं ततश ब्रह्मचर्यं शीलव्रतं पाले अपरिग्गहंच परिग्रहनराखे एव प्रतिपद्य अंगीकृत्य पचमहाव्रतानि इम पंचमहाव्रत अगीकारकरीने चरेत् सेवेत् जिनभाषित

वण्णियापञ्च मह्व्वयाइ चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विज १२] तानि पञ्च व्रतानां नामान्याह अहिंसाहिंसनो जीवानां वधोहिंसा न हिंसाऽहिंसा सर्वजीवेषु दया प्रथम १ च पुन सत्य २ च पुन अस्तैन्यक स्तेनस्य चौरस्येद कर्मस्तैन्य नस्तैन्य अस्तैन अस्तैन्यमेव अस्तैन्यक ३ ततोऽनन्तर' ब्रह्मचर्य ४ च पुन अपरिग्रह सर्वथालोभत्याग स समुद्रपाल पञ्चमहाव्रतानि इमानि प्रतिपद्यजिनदेशित धर्म्म चरेत् सेवेत महाव्रतानिग्रहीला एकान्तनिष्ठेत् इति भाव कथभूत स विज्ञइति विद्वान् वेत्ति हेयोपादेय विधीन् इति विद्वान् १२ [सव्वेहि भूएहिदयाणुकम्पीखन्तिखमे सञ्जय बम्भयारी सावज्जजोग परिवज्जयन्तो चरिज्जभिक्खू सुसमाहि इन्दिए १३] भिक्खू इति भिक्षु समुद्रपालितसाधु सुसमाहित इन्द्रिय सन् चरेत्इति विचरतेस्म कथभूत स स सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी सर्वेषु प्राणिषु दययाहितोपदेश कृपया अनुकम्पनशील दयापालनपर सदयानुकम्पी पुन कथभूत क्षान्तिक्षम क्षान्त्यातत्त्वालोचनयाक्षमते दुष्टाना दुर्वचनाताडनादिक्म इति क्षान्तिक्षम पुन कथभूत स यत साध्वाचारपालक पुन कथभूत ब्रह्मचारी ब्रह्मणि परमात्म स्वरूपेचरतीति ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यधारको वा पुन स कि कुर्वन् विचरतेस्म सावद्ययोग वर्ज्जयन स पापयोग परित्यजन्१३

सूत्र

सव्वेहि भूएहिदयाणुकपी खन्तिखमे सञ्जयबम्भयारी सावज्जजोग परिवज्जयतो। चरिज्ज भिक्खूसु समाहिइन्दिए १३

भाषा

धर्म विद्वान पडित सेवे पालि तीर्थ करनीभाखी धर्मपडितसाधू १२ सर्वभूतेषु दया चितक सर्वजीव ऊपरे दया चितवेछे क्षमावान क्षमाकरे सयत सयमसहित ब्रह्मचर्यधारी शीलव्रतधारी सा वद्ययोगान् परिवर्जयेत् सावद्ययोग जेहथी पापलागे ते सर्ववर्जे चरेत् भिक्षु सुसमाधितेंद्रीय विहरेत् राष्ट्रदेशे साधुभलीपरि आपणा इंद्रीदमाळे एहवोथको देशनेविषे विचरे १३ काले प्रस्तावे काल अध्ययनादिक्रिया कुर्वन् प्रस्तावनेविषे क्रियापडीलेहण

[कालेणकालं विहरेज्जरट्ठे बलाबलं जाणिय अप्पणोज सी होव्व सद्देण न सन्तसिज्जावय योगसुग्मान असभ्भमाह्न १४] पुनः सः साधु० कालेन प्रस्तावेन प्रथमपौरुष्यादि समयेन कालं अवसर योग्यं कार्यं ध्यानानुष्टानतपस्यादिकं कुर्वन् विचरेत् किं कृत्वा आत्मनः बलाबलं ज्ञात्वा परीषहादि सह न सामर्थ्यं विचार्य यथा २ संयमयोगहानिर्नस्यात्तथेति भाव० पुनः स साधुर्वाग्योगं श्रुत्वा दुःखोत्पादकं वचनं श्रुत्वा खलानां असत्यं वचनं कर्णे विधाय असभ्यवचनं न आह न ब्रूयात् आर्षत्वात् आहुरिति १४ [उवेहमाणो उपरिव्व इज्जापि इमप्पिय सव्वतितिक्खइज्जाग सव्वसव्वत्थभिरो यइज्जा नयाविपूयं गरहञ्च सज्जए१५] तु पुन स साधु उपेक्ष्यमाण असभ्य वचनं अवगणयन् परिव्रजेत् मनसिवचसि दुर्वचनं अधारयन् ग्रामानुग्रामेषु अतिशयेन विचरेत् प्रियं च पुनः अप्रियं सर्वन्तितिचेत् लोकानां सम्यग् वचनं दुष्टं वचनं सहेत् पुनः स समुद्र पालित साधुः सर्वं वस्तु सर्वत्र नरो

सूत्र

कालेण कालं विहरिज्जरट्ठे बलाबलं जाणिय अप्पणोय। सीहोव्व सद्देण नसंतसिज्जा वइजोग सोच्चाण असभ्भ • माहु १४ ॥ उवेहमाणोउपरिव्वएज्जा पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा। न सव्व सव्वत्थभिरोयइज्जा नयाविपूयंग

भाषा

प्रमुखकरे राष्ट्रदेशे बलाबलं ज्ञात्वा आत्मनः आपणोबल अबलपणोजांणीने सिंह इव शब्देन भयकारकेन न संत्रसेत् जिम सीहनाशब्द भुंडाशब्द सांभलीने चमकेनही तिमसाहसीक पुरुषभयकारीशब्द सांभलीने बीहेनही वाग्योगं कठिनवचनादिश्रुत्वा न असत्यंकठोरवचनं जल्पतियती कठोरवचन सांभलीने गालिप्रमुख कोईने निंदेनही १४ दुर्वचनादि अगणयन् कोई दुर्वचनबोले तो मनमांहिं आणेनहीखमे प्रियमप्रियंच सर्वं चमेत् भलुं भुंडुं सर्वखमेनैव सर्ववस्तु सर्वत्र अभिरोचयेत् सर्वत्र सघलीवस्तु उपरि रुचिनकरे जेह तेह वस्तु उपरि मन नघाले नचापि पूजांगर्हं विगणयेत् सयतः यतीनीं

धरेत् घाप्तनेन भभिमपयेत् च पुन स स यत स साधु पूजां भपि नियमेनगर्हां निन्दां भपि नरोचयेत् यतो हि स समुद्रपालित साधु स दृष्टा दृष्ट पदार्थेष भभिलाष कोमाभूत् पूजास्तुति रूपा याणी कि भिचोरप्यन्यथा भाव स्याज्जेनित्यमित्य घात्मनोऽनुशासनमसौ चक्रे इत्याह १५ [भणेगच्छन्दा इह माणवेहि जेभावभो सपगरेइभिक्खू भयभेरवातत्थउवितिभीमादिव्वामणुस्सा भदुवातिरिच्छा १६] इहास्मिन् जगति मानवेषु मनुष्येषु भनेकानि छन्दांसि यहव भभिप्रायावत्तते यान् भनेकान् भभिप्रायान् भावतस्तत्र हस्यापिचरपि सम्पकरोति भतो तत्र दीक्षायां भयभैरवा प्रचर भयोत्पादका भीमारौद्रा दिव्या देवसम्बन्धिनोऽथवा मनुष्या मनुष्य सम्बन्धिनस्तिर्यं चातिर्यग योनि सम्बन्धिन उत्पद्यन्ते [परीसहा दुव्विसहा भणेगेसीयन्ति जत्थाबहुकायरानरा सेतत्थपत्तेन वहिज्जभिक्खू सङ्गामसीसे इव नागराया १७] दुर्विषहा दु खेनसोढु शक्या परीषहा भनेकेऽत्रयस्मे

रहच सजए १५॥ भणेगच्छन्दा इहमाणवेहि जेभावउसपकरेइ भिक्खू। भयभेरवा तत्थउवेति भीमा दिव्वा मणुस्सा भदुवातिरिच्छा १६ ॥ परीसहा दुव्विसहा भणेगेसीयतिजत्था बहुकायरानरा। सेतत्थपत्तेन वहिज्ज भिक्खू सगाम

भाषा कोइ पूजा करे निंदा करे एवे उपरि सरिखो भावराखे १५ भनेकच्छन्दा भभिप्रायाइहजगति सभवति इहससारमांहि मनुष्यनानवा २ भभिप्रायछे नविरवडिछे यान् कदा भावतो भगीकरोति स भिक्षु साधु यतो भगवतनो धर्म भगीकार करे भावसपजें भलेभावे वर्त्ते भयभैरवा भयकारका तत्र घागच्छति भीमा रौद्रा तोहांयतोने भयनाकरणहार महारौद्र भायप्राभइवे उपसर्ग देवसबधिन मानुष्या तिर्यग सबधिन देवता सबधी तियच सबधि १६ परिषहा दुसहा भनेक भवत परिसहसहतां दोहिलादुस्था भनेक प्राप्तहुभा घावीलागा सीदसीभस्यतियेभ्य बहुकातरा मनुष्या जेपरिस

इति सम्बन्धः यत्र्येषु उपसर्गेषु उत्पन्नेषु बहुकातरानरा अनेकेकातराः सीदन्ति संयमात् श्लथो भवन्ति स साधुस्तत्र परीषहे प्राप्ते उदय आगतेभिक्षुर्न व्यथेतनसवाचलेत् वा इव नागराज इव गजराज इव यथा गजराजः संग्रामसीर्षेन विपरीतमुखो भवति १७ [सीओसिणादंसमसायफासा आतंका विविहा फुसंति देहं अकुक्कुओ तत्थहियासएज्जा रयाइंखेविज्ज पुरेकडाइं १८] शीतोष्णदंशमसकतृण स्पर्शा एतेपरीषहा साधोर्देहविविधा नानाकारो गपरोषहाः स्पृशन्ति तदा स साधुः अकुकूजइति कुत्सितं कूजतिः सन् आक्रन्दतीति कुकूजो न कुकूजो अकुकूजः आक्रन्दं अकुर्वन् तन्तान् परीषहान् अधिसहेतसाधुः पुराकृतानिरजांसिपापानिक्षपयेत् चयं नयेत् १८ [पहायरागच तहेवदोसंमोहच भिक्खू सततं वियक्खणोमेरुव्ववाएण अकम्पमाणो

सूत्र

सीसेइव नागराया १७। सीओसिणा दंसमसाय फासा आतंका विविहा फुसंति देहं। अकुक्कुओ तत्थहिया सए ज्जारयाइं खेविज्जपुरे कडाइं १८॥ पहाय रागं चतहेव दोसं मोहंच भिक्खु सततंवियक्खणो। मेरुव्ववाएण अकंप

भाषा

इषो घणाकायर मनुष्यानासे कडाभाजे सः यतितेषु उत्पन्नेषु न चलेत् भिक्षुः पंडितः परिसहमासहप्राप्तथका जिकोचलें नहिते साधु कहीये यथा संग्राम मस्तके नाग राजहस्तो जिम संग्रामनेविषे हाथोने तीरलागे तरवारिलागे बरछोगोलीलागे पिणनासे नही तिम साधुपणिशीदाविनासे नहीं१९ शीतोष्ण दंशमशकाद्य स्पर्शा सीत उष्ण डांसमसाना स्पर्शइवे आतका रोगाः नानाप्रकारास्पृशंति देहं रोगभांति २ना आवी देहने फरसे अकुक्कुतकूजितेन तत्रहा दैव इत्यादि शब्दरहिता अध्यासीतरोग आव्यांथकाहा देवहामाय इस्या वचन कहे नही मन दृढकरे रजांसि कर्ममलानि क्षपयेत् पुराकृतानि रजकर्ममल पुराकृत तेहने खपावे १८ तिवाराग तथाद्वेषं रागद्वेषछोडोने मोहंच भिक्षुः सततं निरंतरं विद्वान् पंडित साधु सदा मोहने छाडे मेरु

परोमहे आयगुत्ते महेज्जा १८] साधु परोषहान् सहेत किं कृत्वा राग तथाद्वेष च पुनर्माह प्रहायत्यक्त्वा कोदृश साध सतत विचक्षणो निरन्तर तत्वविचाररत कद्दवमेरुरिव वा तैरकम्प्यमान पुन कोदृश साधु आत्मगुप्त कूर्मइव गुप्त शरोर १८ [अणव्व एनावण एमहेसो नयाविपूय गरह च मज्जए मे उज्ज भाव पडिवज्ज सज्जया निव्वाणमग्ग विरए उवेइ २०] महर्षि पूजास्तुति च पुनर्गर्हानिन्दा अपिन सङ्गयेत् सङ्ग न कुर्य्यात् स्तुति निन्दयो प्रसङ्ग न कुर्यात् स्तुति श्रुत्वाहर्ष न कुर्य्यात् निन्दा श्रुत्वा दुख न कुर्य्यादिति भाव कोदृशो महर्षि अनुन्नत न उन्नत अनुन्नत अभिमान रहित पुन कोदृशो नावनत न अवनतोदीनभावेन रहित स एतादृश समुद्रपालित स यत ऋजुभाव सरलत्व प्रतिपद्य विरत पापात् निष्कस सन् निर्वाणमार्ग मोक्षमार्ग उपैति प्राप्नोति २ [अरइरइ सहेपहोणसन्थवे विरए आयहिएपहाणव परमट्ठपएहिचिट्ठइ छिन्नसोए अममे अकिञ्चणे२१] पुन स साधुरति सह अरतिय सहते इति अरतिरति सह पुन कोदृश प्रहीण स स्तव प्रकर्षेण होनोगत स स्तवो गृहस्थै सहपरिचयो यस्य स

मागोपरीसहे आय गुत्तेसहेज्जा । १८ ॥ अणुन्नए नावणए महेसीनयाविपूयगरहच सजए । सेउज्जुभाव पडिवज्ज सजए निव्वाणमग्ग विरएउवेइ ॥ २० ॥ अरइरइ सहे पहीणसथवे विरए आयहिए पहाणव

रिखवायुना अकम्पन जिम मेरुपवत वायरे करोचाले नहोतिम साधुपणि कोई उपसग चलेनहो परिषहान सवानुगुप्त सन् सहेत सघलापरिसह आपणो आत्मागुप्तकरोने सहे१८अत्युन्न नातिनोंच महर्षि न अतिउ चोनअतिनोचो साधुनचापि पूजावाछतिपूजावाछेनहोगरहाच दुष्टवचनानिनिदागर्हाछमेस ऋजूभावस्य प्रतिपन्न स यत सरलभाव अगीकार करोनेसाधु सिद्धानामारगविरत सन् गच्छति मोक्ष लभते विरक्तथको मोक्षजाइ कर्मथो रहितहुवे२०

सूत्र

भाषा

प्रहीनसंस्तव त्यक्तसङ्ग पुनः कीदृशः विरतः पाप क्रियातो निवृत्तः पुन कीदृशः आत्महितः आत्मानां सर्वजीवानां हिताहितवाञ्छकः पुनः कीदृशः प्रधानवान् प्रधानः संयमः सविद्यते यस्य स प्रधानवान् संयमयुक्तः पुनः स साधुः किं करोति परमार्थ पदेषु तिष्ठति परमार्थस्य मोक्षस्य पदानिस्थानानि मोक्षदायकत्वात् कारणानि परमार्थपदानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तेषु तिष्ठति प्राकृतत्वात् सप्तमीस्थाने तृतीया पुनः कीदृशः स छिन्नशोकः दृढ संयम पदानां आनन्त्यात् तदभिधायि पदानां पुनः पुनर्वचनेपि न पौनरुक्त्यं पुनः कीदृशः सः अममोममत्वरहितः पुनः कीदृशः अकिञ्चनो द्रव्यादि परिग्रहरहित २१ (विवित्तलयणाइ भएज्जताइं निरोवलेवाइ असंथडाइ इसीहिचिन्नाइं महायसेहिं काएण फासिज्जपरीसहाइं २२)पुनः समुद्रपालितः साधुः कीदृशस्तायीत्रायतेरक्षतिकाय षट्कं इति तायी षट्काय रक्षाकारकोमुनिरित्यर्थः सविविक्तलयनानि स्त्री पशु पण्डकादिरहितानि धर्मस्थाना

सूत्र

परमट्ठप एहिं चिट्ठई छिन्नसोए अममे अकिंचणे २१॥ विवित्त लयणाइं भएज्जताइं निरोवलेवाइं असं थडाइं इसीहि चिन्नाइं महायसेहिंकाएण फासिज्ज परीसहाइं २२॥ सन्नाण नाणोवगए महेसी अणु

भाषा

अरति रतिसहतेमुक्त परिचय अरति रतिसहे कोईस् परिचय न करे विरतः आत्महित प्रधानसयम मुक्त सर्ववस्तुथी विरतछे आपणा आत्माने हितकरेछे धान सयमसहितः परमार्थपदे मोक्षमार्गे तिठति मोक्षमार्गनेविषेरहे छिन्नशोक दूरिकृत्य शोकः अममः अकिंचनः शोकदूरिकीधुं निर्ममत्व अकचिनछे ममत्व २१विविक्त एकांते लयने उपाश्रयेभजते सेवतेविविक्तनिर्जन एकांतउपाश्रय सेवेतिक्षांनिर्लेप अलिप्तथकोरहेछे कीदृशानीस्थानानि निरुपलेपानि लेप रहितानि असंवृत्तानि जीवादिभिः त्यक्तानि उपाश्रय जीवजंतु करी रहितछेऋषिभिः सेवितानि महायशोभिः महायश.नाधणीं जे साधु तिणे

निभनेत् कोदृशानि विविक्तलयनानि निरुपलेपानि द्रव्य भावतयलेपरहितानि द्रव्यतोहिसाधुनिमित्तेन नलिप्तानिगृहस्थेन स्वार्थं लिप्तानीत्यर्थं भावतमुरागादिलेपरहितानि मदोयानि इमानिस्थानानि इति रागबुद्धारहितानि पुन कोदृशानि असन्यप्तादृ असस्तृतानि शाल्यादिबोजैरव्याप्तानि स चित्तबोजसङ्घट रहितानि पुन कोदृशानि महायशोभि ऋषिभिर्चोर्णानि अङ्गोकृता निषेवितानोत्यर्थं पुन समुद्रपालित साधु कायेन परोषहान् फासिज्जइति स्पृशेत् हाविसहेति परोषहान सहेत २२ (सनाणनाणोवगए महेसो अणुत्तर चरिउ धम्म सचय अणुत्तरेनाणधरेजसंसी उभासइ सूरिएव तलिक्खे २३) स स मुद्रपालिनो महर्षिरनुत्तर प्रधान धर्मं सञ्चय दशविध धर्मं चरित्वा आराध्य अवभासते शोभते कोदृश सज्ञान ज्ञानोपगत ज्ञानेन युत ज्ञानेनयतज्ञान सम्यक क्रियाकलाप वेदन ज्ञानज्ञान तेन उपगत सम्यग ज्ञान क्रिया सहित सन इवअन्तरिक्षे आकाशे सूर्यं इव यथाआकाशे सूर्यो विराजते तथा तपस्तेजसाविराजते इत्यर्थं २३ (दुविह खविज्जय पुण्णपाव निरङ्गणे सव्वयो विप्पमुक्को तरित्तासमुद्द च महाभवोहसमुद्द पाले अपुणागम

सनचरिउ धम्मसचय अणुत्तरेनाणधरेजससी। उभासेईसूरिएवतलिक्खे २३ ॥ दुविहक्खवेजयपुण्णपाव निरगणे

वेश्याछे चूराजाय तत्र कायेन लवा परिषहान् सहेत् कायाद करी परिसहने सहेछे २२ स समुद्रपाल मुनि युत ज्ञानस्य ज्ञानेबोधनेन ते समुद्रपालयतो श्रुतज्ञाननोधरणहार महर्षि सर्वोत्तम ज्ञानज्ञा निरतोचार चारित्र चरित्वा चात्वादियति धर्मसमूह प्रधानज्ञान तेहनोधरणहारयतो केवल ज्ञानसहित सन् यशस्वो केवलज्ञानउपनु समुद्रपाल साधुने यशस्वो यशनो धणो उद्भासते प्रकाशते सूय यथा अतलिक्खे आकाशे साधुने इम शोभे जिम आकाशे सूर्यप्रकाशनो कारण २३ द्विविध खपयित्वा पुण्य पाव पुण्य पापवेखपावीने निरगण शुभ प्रज्ञतित्वात् सयम निग्रसन्

उ०टीका
प०२१
६५२

गइं ग इत्तिबेमि २४) समुद्रपालः साधुः अपुनरागम गतिं गतः न विद्यते पुनरागमो यस्याः सा अपुनरागमा अपुनरागमाचासौ गतिश्च अपुनरागमग तिस्तां गतिं यत्र गतीगतानां जीवानां पुनः संसारे आगमो न भवति मोच गतइत्यर्थः किं कृत्वामोच गतइत्यर्थ द्विविधं घातिकं भवोपग्राहिकं पुण्य पाप शुभाशुभ प्रकृति रूपं चपयित्वा सपूर्णं भुक्त्वा पुनः किं कृत्वा महाभवौघ समुद्र तरित्वा उल्लंघ्य महान्तश्च ते भवाश्च महाभवास्तेषां ओघ समूहो यत्र समहाभवौ यस्तं एतादृशं समुद्रं अर्थात् संसारसमुद्रं विलंघ्य सिद्धो बभूव इत्यर्थः परं कीदृशः स समुद्रपालितः साधुः सर्वतो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहात् विप्रमुक्तः अथवा सरीर सङ्गात् अपि विप्रमुक्तः पुनः कीदृशः सनिरञ्जनः निर्गत अञ्जन चलनं यस्मात्स निरञ्जनः सयमे निश्चलः अगेर्गत्यर्थत्वात् साधुमार्गे निश्चलचित्तइत्यर्थः इत्यहं ब्रवीमि हे जम्बू श्रीवीरवाक्यात् तवाग्रे इति अमुनाप्रकारेण अडसमुद्रपालित साधु सम्बन्धं ब्रवीमि २४ इति श्रीमदुत्तराध्यन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मी कीर्त्तिगणि शिष्यलक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायांएकविंशाध्ययनार्थः संपूर्णः २१ ॥ अथ द्वाविंशतितमं अध्ययनं प्रारभ्यते॥ पूर्वस्मिन् अध्ययने विविक्तचर्या धृतिमताकार्या तत च कदाचित् मनः परिणामाधर्माद्भ्रष्टा भवन्ति तदा रथनेमिवच्चरणे धृति राधेया तत् दृष्टांतमाह तत्र श्रीनेमिनाथेन कस्मिन् भवेतीर्थं करनामकर्मनिबद्धमिति तस्य कौतुकोपनो दाय श्रीनेमि चरितं लेसतोलिख्यते एकस्मिन् सन्निवेसेग्रामाधिपति सुतो धननामा कुल पुत्र दुहिताधनवतोनाम भार्या प्रमदा भार्गासक्ति

सूत्र

सव्वश्रो विप्पमुक्के । तरित्तासमुद्दंच महाभवोहंसमुद्दपाले अपुणागमंगइगएत्तिबेमि ॥२४॥समुद्दपालियंज्झयणंसमत्तं ॥ २१

भाषा

सर्वतः विप्रमुक्त रागरहित संयमनेविखे गयाछे पापपुण्यना अंकुरा निश्चल सर्वबन्धथि विप्र मुक्तः लघयित्वा समुद्ररूपं महाभवौघं संसारसमुद्र सरिखो संसारसमुद्र तरीने समुद्रपाल मुक्तिं गतं प्राप्तः इति ब्रवीमो समुद्रपाल मुक्तिगया जिहांथी फोरी संसारमांहिं अवतरवुं नथी ॥ २४ ॥

कुलपुत्रोयोमकालेमध्याह्न समये प्रयोजनवशेनगतोऽरण्ये तत्रैक पथपरिभ्रष्ट क्षुट्तृषापरिश्रमातिरेक निमीलित लोचन भूमितलगति गत
अजगरोर एक मुनिवर ददर्श च दृष्ट्वा स कुल पुत्र एव चिंतितवान् अहो एष महातपस्वीदृष्टयोविषमावस्थामापन्न ततस्त जलेन सिक्तवान्
चेलाचलेन वीजितवान्मुनि स्वास्थ्यमापन्न नीत स्वग्राम प्रतिजागरितश्च औषधपथ्याहारादिभि मुनि नापि दत्त उपदेश यथा इह दु ख प्रचुरे
ससारे परलोकहित अवश्य जनेन कर्त्तव्य ततो भवद्भिरपि परमासमद्याखेटकादिनियम कुरुत यदि पालयितु शक्तास्तदा बहुदोषान्येतानि यदुक्त
पञ्चन्द्रियवहु भूय ममन्दमन्धमस्स इवीभच्छ रक्तपरितुलियभक्खणमामेजयय कुणइ मूल १ तथा गुरुमोहकलहनिद्दा परिहर उवहासरोग भय हेतु
मज्ज दोगइ मूल हिरिसिरिमइ धम्मनासकर २ अपि च मज्जे सुहमिम सम्मि उप्पज्जति असखा तव्वणातत्थजन्तुणो २ तथा सत्तोवघायजयणा इहेवत
इनयरति रियगइ मूल दुहमारणम्मय हेतु पारद्धा वेरवुड्ढिकरा ४ इद च श्रुत्वा सविग्नाभ्या ताभ्या भणित भगवन् देहि अस्माक गृहस्थावस्थोचित
धर्म्म यति नात्तु मस्यक्त्व मूलद्वादश व्रतरूपो धर्मस्तयोर्दत्त उक्त च सोधर्म्मोजत्थदया दसट्ठ दोसानजस्ससोदेवो सोहुगुरूजोणाणी आरम्भ परिग्गहा
विरमो १ यावकधर्म प्रपद्यतो दम्पती तुष्टौ यतिनातयो पुन रेव शिक्षा प्रदत्ता यथा तत्थववेज्जासह्रोजइ हिसइजत्थहोइ सयोगो तत्थयविइय भवण
अन्नेविजत्थसाहम्मी १ देव गुरूणतिसज्झ करेज्जतइपरमवन्दण विहिणा तह पुप्फ वत्थमाइ हि पूयण सव्वकालम्पि २ अन्यच्च अपुव्वनाण गहण
पच्चक्खाण सुधम्म सवणच्च कुज्जासइजहसत्ति तव सज्झाया इजोगवा १ अन्यच्च भोअणसमए सवणे विवोहणेपसवणेपएसवणे पञ्चनमोक्कार खलु समरेज्जा
सव्वकम्मेसु १ एव च तयो शिष्या दत्वा साधरन्यत्र विजहार तौदम्पती स्वगृहे गतौ साधूपदिष्ट धर्मानुष्टान कुरुत कालक्रमेणताभ्या यतिधर्म्म
प्रतिपन्न काल कृत्वाधन सोधर्मे देवलोके देवत्वे नोत्पन्न सास्तो तुतस्यैव मित्रत्वे नोत्पन्ना तत्र सुरसुख मनुभूयधनदेवजीवो वैताढ्ये सूरतेजराज्ञ पुत्रत्वेन

गतविद्याधरराजा जात. धनवल्यपिकस्य चिद्राज्ञ कन्याजाता परिणीताचित गतिनैव तत्र मुनि धर्मं कृत्वामाहिन्द्रे धणो सामाणिउ इयरायनम्मित्ती जाओ तत्तोचुउणधणो अवराजिओ नामरायाजाओ साविपिईमई तस्सपत्नीकाउ समणधम्मं गयाइं हावपीती आरण्य कल्पे मित्र देवौजातौ ततश्च्युतौ धनदेवजोवः शंखराजाजातः धनवती जीवस्तस्यैवकान्ताजाता तत्र शंखराजा प्रतिपन्न मुनिधर्मोविंशति स्थानकैर्निबद्धतीर्थं करनाम गोत्रः कालं कृत्वाऽपराजितविमाने समुत्पन्नः तत्कान्तापि धर्म प्रभावेण तत्रैवोत्पन्ना धनजीवस्ततश्च्युता सौर्यपुरेनगरे दशदशाराणां मध्येज्येष्ट समुद्रविजयस्य राज्ञोभार्यायाः शिवादेव्याः कुक्षौचतुर्दशमहास्वप्न. सूचित कार्त्तिक कृष्णद्वादश्यां पुत्रत्वेनोत्पन्नः उचितसमये श्रावण शुद्धपञ्चम्यां प्रसूताशिवादेवी जातो दारकः दिग्कुमारिकाविहित जातकर्मानन्तरं सुरासुरैर्मेरुमस्तके जन्माभिषेके कृते सति राज्ञापि वर्द्धापनं कारितं अस्मिंश्चगर्भगतेकदाचित् स्वप्ने शिवादेव्या अरिष्टरत्न मयोनेमिर्दृष्ट अतोरिष्टनेमिरिति अस्य नाम कृतं अथ कुमारोष्टवार्षिकोजात. अत्रान्तरे कृष्णेनकंसेनिपातिते जीवयशावचनेनयादवानामुपरि क्रुद्धोजरासिन्धुराजा तत्र कथा सर्वेपि यादवाः पश्चिम समुद्रं गताः तत्र केशवाराधित वैश्रमणे न कृता सर्वकाञ्चनमयी द्वादश योजनायामानवयोजनविस्ताराद्वारिकानाम्नी नगरी तत्र सुखेनयादवास्तिष्टन्ति क्रमेण निहितजरासन्धौ रामकेसवौ भरतार्द्धस्वामिनौ जातौ अरिष्टनेमिर्भगवान् योवन मनुप्राप्त विषयसुख पराङ्मुखोपि मित्रैः प्रेर्यमाणोनानाविधक्रीडां करोति अन्यदा समान वयस्कैरनेकराज कुमारैः सहक्रीडन् गतो नारायणस्यायुधशाला तत्र दृष्टान्यनेकानि देवाधिष्टितानि आयुधानि तत्र द्रव्य कालावर्त्त धनुः कौतुकेन गृह्णन् नेमिरायुधपालेन भणितः कुमार किमनेनायासानुष्टानेन न हि नारायण मन्तरेणान्य कोपिनर इदं धनुरारोपयितुं शक्तः ततईषद्विहसित्वानेमिना तदनुलोतयैवारोपितं आस्फालिताजीवास्तस्या शब्देन मेदिनीकम्पिता विशिताःसर्वेप्यायुधशालिकानरास्ततस्तदनुपाञ्चजन्यशङ्खोनेमिनाथेन गृहीतः पूरितस्तच्छब्देन सर्वं जगद्बधिरित

कल्पिताभूमि गिरिगिशिराशि तव ट सानगरो तु विशेषावकम्मे तत कृष्णचिन्तयति किमेष प्रलयकालकलसामापश्नीय यद्ध शब्द श्रूयते तावता
युद्धयालेन कृष्णस्य यथार्थो व्यतिकर कथित ततोनेमि कुमारपराक्रमेण विस्मितो हरिर्बलदेव प्रत्येव बभाण यस्य नेमि कुमारस्यैतादृश सामर्थ्यं
अस्ति स वर्द्धमानोमद्राज्य सुखेनलास्यति ततोस्य बल परीक्ष्य राज्यरक्षणोपाय चिन्तयाम बलदेवेन भणित अलमनयाशंकया येनाय
पूर्व श्रीनमिजिन निर्दिष्टो द्वाविंशतितमोजिन त्व पुनर्भरतार्द्धस्वामी नवम वासुदेव अयञ्च भगवान् अकृत राज्यएव परित्यक्त सकल सावद्ययोग
प्रव्रज्या ग्रहीष्यते एव निरन्तर बलदेवेन राज्यहरण शङ्कया वार्यमाणोपि कृष्ण कदाचिदुद्याने गत्वा नेमिन प्रत्येवमाह कुमार निज २ बल परीक्ष
णार्थं आवां बाहुयुद्धेन युध्याव नेमिना भणित किमनेन बुधजन निन्दनीयेन बाहुयुद्धेन वाक्युद्धेनैव आवां युध्याव बाहुयुद्धेन हारितस्य तव
महान् अयश प्राग्भारो भविष्यति कृष्णेनोक्त क्रीडया युद्धतोरावयो कीदृशो यमयश समूह स्तती भगवता नेमिना स्व बाहुप्रसारित कथितश्च
यद्य मदीयो बाहुर्यदि भवतानामि तस्तदा त्वयाजित मया हारितमिति तत कृष्णेन सर्व्वशक्त्या दोलितोपि भगवान् बाहुर्नमनाक चलित
यथास्य भगवतो मनोनिश्चल तथा बाहुरपि निश्चल एवेति जने प्रशसाजाता तत परम चमत्कार गतस्य स्वराज्यहरण शङ्काकुलित चेतसो नारा
यणस्य कियान् कालोतिक्रान्त अन्यदा नेमिर्यौवन प्राप्त विषय सुखनि पिपासोपि समुद्रविजयादिना विवाहार्थं अभ्यर्थितोपि न विवाह मङ्गी
कुरुते तत समुद्रविजयादिभि केशवस्यैव मुक्त केशव तथा कुरु यथा नेमिर्विवाह मङ्गीकुरुते कृष्णेनापि रुकमिणी प्रमुखा स्वभार्या प्रेरिता
स्ताभिर्जलकेलिकरण पूर्वक एव श्रीनेमिनाथस्योक्त स्वामिन् लोकोत्तर तवरूप निरुपमा सौभाग्यादयोनन्तास्त्वयिगुणा निरामय स्तवदेह सुरसुन्द
रीणा मप्यभ्यर्द्दनक तव तारुण्य ततोनुरूप दारसंग्रहेण सफल कुरु दुर्लभ मनुष्यत्व ततो हसित्वा नेमिनाथेन भणित मुग्धाना अशुचि स्वरूपाणा

बहुदीपालयानां तुच्छ सुखनिबन्धनानां अस्थिर सङ्गमाना रमणीनां सङ्गमेन न भवति नरत्वं सफलं अपिच एकान्त शुभाया निष्कलङ्काया: निरुपम सुखाया: शाश्वत सङ्गमाया: सिद्धिवध्वाएव सङ्गमेन नरत्वं सफलं भवति यत: माणुसत्ताइ सामग्गी तुच्छभोगाणकारणे रयणं कोडिप्पाइच्छहारि तिप्प वुह्राजणा १ अह सिद्धि वधू निमित्तमेवयतिष्ये नेमेरय मभिप्रायस्ताभि: कृष्णाय निवेदित: कृष्णेनचनेमि: स्वयं भणित: ऋषभादय स्तीर्थं करा दारसग्रहं कृत्वा सन्तान परम्परा वर्द्धयित्वा खेष्टलोक मनोरथान् पूरयित्वा पश्चिमवयसि निष्क्रान्ता: शिवं प्राप्ताश्च त्वमपि तत्तु न्य स्तथैव मोक्षेयास्य सीति दशारचक्र सन्तोषाय किं न पाणिग्रहणं करोषीति कृष्ण: प्रकामं विवाहायचद्यतवानिति नेमिस्तु मौनमालम्ब्यास्थित. कृष्णे न चिन्तितं यनि षिद्ध मनुमतमिति न्यायादङ्गीकृतएव नेमिना विवाह इति दशारचक्राय उक्तवान् सञ्जातहर्षेण दशारचक्रेण भणित: कृष्ण: त्वमेव नेम्यनुरूपां कन्यां गवेषय तत: कृष्णेन गवेषयता उग्रसेन पुत्री राजीमती कन्या नेमितुल्यरूपा सा पुनर्धनवती जीवोपराजित विमानात् च्युत्वात्रत्योत्पन्नास्तीति इयमेव नेम्यनुरूपेति तदर्थं कृष्णेन उग्रसेन. प्रार्थित: तेनापि मनोरथातीतो जीव मनुग्रह इति भणित्वा कन्यादत्ता तत: कारितं कुलद्वयेपि वर्द्धापनं गृहीत विवाह लग्नं कारितं समस्त जातिवर्गस्य भोजनाच्छादनादिसत्कार: प्राप्ते च लग्नदिवसे दिव्य रमणीभि: स्नापितोऽलङ्कृतो विभूषितो मत्त वारण मारूढ: समन्तान्मिलित: दशारचक्र बलदेव वासुदेवादि यादव परिकरित: पृष्टौ वादितानेक कोटिप्रमाण वादित्र गिरोद्धतात पत्रयामरैर्वीज्यमान: पृष्टौ गीयमान मङ्गल: सर्वतो मागधै: कृत जय जयारव: सुर नर सङ्घेन सर्वतो वीक्ष्यमाण: सुरीभिर्नारीभिश्च प्रार्थ्यमानो नेमिकुमार: प्राप्तो महता विस्तरेण उग्रसेन नृप द्वारपुरीरचित विवाहमण्डपासन्नदेशं राजीमत्यपि सर्वालङ्कार विभूता गवाक्षस्थानेमिं दृष्ट्वा आनन्दपरावशा जाता एतदपि तदानीं नवेत्ति काह्न किमत्रास्ति कोयं काल: कीदृशो चेष्टेति अत्रान्तरे करुणारवं श्रुत्वा जानता नेमिना पृष्ट: सारथि: कोयं मरभीरूणां प्राणिनां एष:

ववसारर नेन कथित स्वामिन तव विवाह गौरवाय मीलकपन भोजनाय मेलिता भमी हिरणादयो जीवा व्यापादयिष्यन्ति साम्प्रतमाक्रन्द कुर्वन्तीति
नेमिनाह मारे रशमिरो निरस्य वनाह विवाह करिष्ये यत्र एतावतां प्राणिनां वधस्तेन विवाहेन मे सरतां ससार परिभ्रमणहेतुरेवाय विवाह नेमि
नमनारते सर्वेपि प्राणिनो मुक्ता गता स्वस्थान सुखेन विरक्तचित्त पराङ्मुखमान नेमिनाथमालोक्य अकाण्ड वज्रप्रहार ताडितेव विह्वला राजीमती
धरणीतले निपतिता मूर्छिता ससम्भ्रमेण सखीजनेन शीतलजलसिक्ता तालवृन्तेन वीजितामत्य चेतनामाप्य विलाप चक्रे मया ज्ञातं दुर्लभे भुवननाथे
अनुराग कुर्वन्त्या आत्मा वञ्चिता धिग मम सुकुमालोत्पत्तिं धिग मम रूपयौवनञ्च धिग् मम कलाकुशलतां येनाहं नेमिना प्रतिपन्नापि मुक्ता हे नाथ
मे जीवित निर्गच्छति अङ्गानि मे त्रुटन्ति हृदय मे स्फुटति विरहाग्नि ज्वाला कुलितोय ममात्माधारो मेघारव सद्शो जलचन्दन चन्द्रिकादय पदार्था
विरहाग्नि सदृशा स्वामिन् तव विरहे मम जायन्ते स्वामिन्नाथ त्वं किं जानासि किं मम विरुद्ध त्वया श्रुत दृष्ट वा जन्मान्तरकृत नमाशुभकर्मैवोदितं
स्वामिवेक्षणात् ममाभिमुख दृष्टि देया प्रेमपराया नाथ त्वं सर्वथा निरपेक्षोभाभू अथवा सिद्धिवधूत्कण्ठितस्य तवादृशं पुरस्कृत्यैपि न स्मरसि
मम च सोगा तदश्चैतागच्छता एवं महाशोकभराक्रान्ता विलपन्ती राजीमती सखीजनेन भणिता चलचित्तोयो भवितव्यता परिणाम ततो धीरत्वावल
[redacted] कुरु अन्यस्य विलपितेन मत्त प्रधानराजपुत्रो भवतीति भणित्वा संस्थापिता द्वितीयदिने तया सखीनां पुरत एव मुक्त स्वप्नमध्ये द्वष्ट यथोद्दिष्ट
[redacted] महादेवी एकोदिव्य पुरुषो देवदानव परिवृत सिंहासनमारूढ तस्याभ्यन्तरीक जनसमायाता अहमपि तत्रैव गता स चतुर शरीरमानम
दुःपञ्चराजानि पादपद्मानि तेभ्यो ददामि याचित भगवन्नानि यतानि फलानि देहितेनतानि दत्तानि तदनन्तर प्रतिबुधाहं सखीभिर्भणित
हे स्वामिनि गुणशतोपि यथोक्त शीघ्रपरिणाम सुन्दरोभविष्यति इतश्च नेमिनाथ समुद्रविजय शिवादेव्यादि निविधैरुपायैः पाणिग्रहणाय प्रार्थ

मानोपि नैवत मद्वंमङ्गीचकार अस्मिन्नवसरे लोकान्तिका स्तत्रागत्यएव मूचिरे भगवान् सर्व जगज्जीवहितं तत्तीर्थं प्रवर्तयेति भणित्वा जननो जनका दीनामन्तिके गत्वा एव मूचतुः भवत् कुलोत्पन्नः श्रीनेमिः प्रव्रजि ग्रस्तीतिक्षोभवतां विषाद नेमिरपि मात पित्रोपुरः कृताञ्जलिरिव मुवाच इच्छामि युष्मदनुज्ञातो प्रव्रजितुं इदञ्च श्रुत्वा शोकसघट्ट निरुद्धहृदया धरणीतले निपतिता घुर्णितभुजबलयागिवादेवो मिलितं दशारचक्रं जलाभिषेकादिना लब्ध संज्ञा भणितुमारब्धा पुत्रकथमस्माकं मनोरथं मूलादुच्छिंदसि कथंबालं सत्पुरुषोपि प्रार्थना भंगं करोषि दशारचक्रस्यापि मन· सन्ताप किं करोषि कथञ्चिवयमुग्रसेन राज्ञो मुखं दर्शयिष्यामः कथञ्च त्वदेकचित्ता सावराकीराजीमती भविष्यति ततोस्मदुपरोधेन तस्याः पाणिग्रहणं कुरु ततः पश्चात् प्रव्रज्यां गृह्णीया भणित भगवतामातर्मनः सन्तापं माकुरु सर्वभावानामनित्यत्वं भावयविषयाणां विपाकदारुणत्वं पश्यसि जनकत्वं च पश्यसियौवन धनादीनां चञ्चलत्वं सन्ध्यासमयाभ्र तुल्यतां विलासानामवेहि भकण्ड प्रहारत्वं मुलोजंगमजरामरण रोगादि दुःख प्रचुरत्वं संसारस्या लोचय ततो मातर्मामनुजानोहि भव प्रदीपान्निर्गच्छन्तं अत्रांतरे दशारचक्रेणनेमिर्भणितः कुमार सांप्रतित्वया परित्यक्तस्य यादवलोकस्य न कश्चित् त्राणमिति ततः किंचित्काल प्रतोक्षस्व तदुपरोधशीतलया वाण्या भगवता संवत्सरमेकं यावत् स्थितिरङ्गीकृता दत्तश्च तस्मिन्नेव साम्वत्सरिकं दानं प्रतिपूर्णे च सम्वत्सरे माद्य पोताद्दीनामा पुच्छश्रावण शुक्लषष्ठ्या स देव मनुष्यपर्षदा परिवृतो नगर्यानिर्गत्यसहस्राम्रवणे उद्याने ऽशोकपि तपंगतानि गृहस्थावासे स्थित्वा षष्ठभक्तेन पुरुष सहस्रेण समं निष्क्रान्तः तपस्संयमरतोविहरति इतश्च भगवतो भ्रातारथनेमिः प्रीति पर एकान्ते राजीमति मेवमाह सुभ्रु मा कुरुविषादं सौभाग्यनिधिं कः कोन प्रार्थयति भगवान् पुनर्नेमिनाथो वीतरागत्वान्नकरोति विषयानुबन्धं ततः प्रतिपद्यस्व मां सर्वकाल मह त्वदाज्ञाकारी भविष्यामि तया भणितं यद्यहं नेमिनाथेन परित्यक्ता तथापि अहं तं न परित्यजामि यतोहं भगवत एव शिष्यणी भविष्यामि ततस्त्वमेनं प्रार्थनानुबन्धन्त्यज ततः सकृतिविद्दिना

नियावत् मौनेनस्थित अन्यस्मिन् दिने पुनरपि तेन प्रार्थिता ततस्तया तत् प्रतिबोधार्थं तत् प्रत्यक्षमेव क्षीर पीत्वा मदन फलपातेनवां त्वा तत् सौवर्णिक कच्चोलके थिया समुपनीत रथनेमेर्भणित इद पिवतेनोक्त कथ वा त पिबामि तया भणित त्व किमेतज्जानासि स आह बालोऽप्येतज्जानासि सा प्राख्यत् तर्हि नेमिनाथ वा ता मां कथ त्व पातुमिच्छसि इद राजीमत्या वच श्रुत्वा स उपरतो राजीमत्यपि दौष्माभि मुखी तपोभिधाने शरीर शोषयन्ती तिष्ठति अत्रांतरे च तु पञ्चायद्दिन पर्यन्ते भगवत श्रीनेमि नाथस्य रैवतगिरि सहस्राम्रवने केवल ज्ञान मुत्पन्न देवै कृत समवसरण तत्र समायातास्तु द्वादशपर्षत्सु देशना कृता तां च श्रुत्वा बहव प्राणिन प्रव्रजिता केचिच्च धराजाता स्थापित भगवतातीर्थं राजीमत्यपि विविधकन्याभि सह प्रव्रजिता रथनेमिरपि सविम्नस्तदानी मेव प्रव्रजित राजी मती तदानी मेव अचिन्तयत् योमया तदानी दिव्य पुरुषस्वप्नो दृष्ट सोद्यसफलो जात अन्यदाराजी मती साध्वीभि सम भगवतो वन्दनार्थं रैवतगिरिगच्छन्ती अकस्मान्मेघ वृष्ट्याऽभ्याहता सर्वापि साध्व्योऽन्यगुहासु निलीना राजीमत्यपि एकस्या गुहाया प्रविष्टा तत्र च पूर्व रथनेमिसाधो प्रविष्टोऽस्ति पर अन्धकार प्रदेशेस्थितोय न दृष्ट तया चीवराणि विस्तार यितु लग्ना तानि रायरणा च जाता तस्या शरीरशोभा दृष्ट्वा इन्द्रियाणा दुर्दान्ततयाऽनादि भवाभ्यस्ततया च विषयाभि प्रायेण परवशोजात तादृशो रथनेमिस्तया दृष्ट ततो भय भ्राता सा स्वय आत्मान प्रावृत्य बाहुभ्यां सङ्गोप्य च स्थिता तेन भणिता सुतनुतवानुरागवशेनाह मिद शरीर अरति परिगत धर्तु न शक्नोमि तत कृतानुग्रह प्रतिपद्य स्वमया सम विषयसेवन पश्चात्स्वात्मन समाधौ आवा निर्मल तप सयम चरिष्याव तयापि साहसमवलम्ब्यप्रगल्भवचनैर्भणित महाकुल प्रसूतस्य तव किमिद युक्त स्वय प्रतिपन्नस्य व्रतस्य भञ्जन जीवित मपि सत्पुरुषास्त्यजन्ति न पुन व्रतलोप कुर्वन्ति ततो भक्षाभागमन समाधि कृत्वा चिन्तयविषय विपाकदारुणत्व शीलखण्डनस्य नरकादिकश्च फल न च विषय सेवनेन मन

समाधिः किं तु भूरितराऽरतिर्भविष्यति विषयसेवन लब्ध प्रसरस्य मनसः प्रकाममिच्छावर्द्धते उक्तं च पुत्रादिव्याभोगा सुरेसन्तत्तनमण एसं नय नज्जा यातित्ती अतितत्तरं कासविजि अम्स १ इत्यादि वाक्यैस्तयानुगासितः स सम्बु उः सम्यगहं प्रतिबोधितस्त्वयेति भणन् आत्मानं निन्दयित्वा राजीमतीं च भृशं स्तुत्वागतः साधु सभामध्ये सा च साध्वी सभामध्ये गतेति अरिष्टनेमिर्भगवान् मरकत समवर्ण दशधनुरुच्छितदेहः गतजन्मनः चतुः पञ्चाग दिनसप्तशतवर्षाणि केवल पर्यायेण विहृत्य अनेकभव्यान् प्रतिबोध्य च वर्ष सहस्रायुः परिपाल्य रेवतगिरौ आषाढ शुक्लाष्टम्यां सिद्धिं गतः क्रमेण रथनेमि राजीमत्यावपि सिद्धिं जग्मतु इत्यरिष्टनेमिचरित्रं सूत्रं अथैलिख्यते [सोरिय पुरं मि नयरे आसिराया महड्डिए वसु देवत्तिनामेणं रायलक्खण संजु ए१] सौर्यपुरेनाम्नि नगरेवसु देव इति नाम्ना राजा आसीत् यद्यपि सौर्यपुरे समुद्र विजय प्रमुखादशदशार्हाः दशभातरोविद्यन्ते तेषु दशसुलघुभ्रातावसु देवोस्ति तथापि वासुदेव पुत्रो विष्णु रभूत् तेन वसुदेवस्यैववर्णनं सातं कीदृशो वसुदेवो महर्द्धिकः छत्र चामरादिविभूतियुक्तः पुनः कीदृशो राजलक्षण संयुतः हस्तपादयोस्तलेषु राज्ञो लक्षणानि चक्र स्वस्तिकां कुशवज्रध्वज छत्र चामरादिभि सहितः अथ वा औदार्यधैर्यगाम्भीर्यादि सहितः १ [तस्सभज्जा दुवे आसिरोहिणी देवई तहा तासिं दोण्हंपि दोपुत्ता इट्ठारामकेसवा] २ तस्य वसुदेवस्य द्वे भार्ये आस्तां रोहिणी तथा देवकी यद्यपि वसुदेवस्य

सूत्र

सोरियपुरंमि नयरे आसिराया महिड्डिए। वसुदेवेत्तिनामेणं रायलक्खण संजुए १ ॥ तस्सभज्जा दुवेआसि रोहिणी

भाषा

सोरीपुर नामा नगरे सोरीपुर नगरनेविषे आसीत् राजा महर्द्धिकः महा ऋद्धिनोधणी राजा हतो वसुदेवेति नाम्ना वसुदेवइसेनांमे राजा हतो राजा लक्षणसयुतः राजाराजलक्षणतिणेकरीसहितछे १ तस्यराज्ञे द्वे भार्ये अभूतां तेराजाने बेभार्याहुई रोहणी देवकीतिनाम्नाः एक रोहिणीबीजी देवकी तयो

दा समति सद्य दारा आसन् तथाप्यव उभयोरेव कार्यात् रोहिणी देवक्योरेव ग्रहण क्रत तयो रोहिणी देवक्योर्द्वयो र्द्वौ पुत्रौ अभूता तौ पुत्रौ को रामकेशवौ कोदृशौ तौ अतोष्टौ मातापित्रोरधि कवल्लभौ २ (सोरिय पुरम्मिनयरे आसिरायामहड्डिए समुद्दविजए नाम रायलक्खण सञ्जए ३] सोर्यपुरे नगरे समुद्रविजयो राजा महर्द्धिक आसीत् कोदृश समुद्रविजयो राजा राज लक्षण सयुत अत्र पुन सोर्यपुराभिधान समुद्र विजयवसु देवयो रैकत्रावस्थिति दर्शनार्थं ३ [तस्स भज्जासिवानाम तीसे पुत्ते महायसे भयव अरिट्ठनेमित्ति लोगनाहेदमीसरे ४] तस्य समुद्रविजयस्य राज्ञ शिवानाम्ना भाया आसीत् तस्या शिवा देव्या पुत्रो भगवान् ऐश्वर्यधारी अरिष्टनेमिरासीत् चतुर्दश स्वप्नदर्शनानन्तर एक अरिष्टरत्न मय रथ चक्र ददर्श तेन अरिष्टनेमिरिति नाम प्रदत्त कथभूतोऽरिष्टनेमिर्महायशा महाकीर्त्ति पुन कीदृशोऽरिष्टनेमि लोकनाथ चतुर्दश रज्जु प्रमाणलोका प्रभ पुन

देवईतहा । तासिदुण्हपिदोपुत्ता इट्ठाराम केसवा २ ॥ सोरियपुरम्मिनयरे आसिराया महिड्डिए । समुद्दविजएनाम रायलक्खणसंजुए ३ ॥ तस्सभज्जा सिवानामतीसे पुत्ते महायसे । भगव अरिट्ठनेमित्ति लोगनाहे दमीसरे ४ ॥ सोरि

तयोपि दो पुत्रो तेहनाबे हने वेटाहूआ इष्टौ वल्लभौ राम केशवौ वल्लभ कृष्णो रोहिणीनो वेटा वलभद्र देवकीनो कृष्ण हुयो २ सोरीपुरनामा नगरे सोरीपुरनामा नगरने विषे आसीत् राजा महर्द्धिक समुद्र विजयनामा राजा समुद्रविजय राजलक्षणसयुत ३ तस्य भाया शिवानाम्ना तेहनी भाया शिवादेवी एहवेनामे तस्या पुत्रो महायश तेहनो पुत्र माहायशनोधणी भगवान् अरिष्टनेमि भगवत अरिष्टनेमि लोक नाथ दमिनामध्ये इश्वर श्रेष्टलोकनोनाथछेदमोमाहि श्रेष्टछे ४ स च अरिष्टनेमिनामे ते अरिष्टनेमिनामे लक्षणेन स्वरेण च सयुत बत्तीस

कोदृशोऽरिष्टनेमिर्दमोश्वर· कुमारलेपिपेन कन्दर्पोजित: तस्मात् दमिनां जितेन्द्रियाणां ईश्वरो दमीश्वर: ४ (सोरिट्ठ नेमिनामोऊ लक्खणस्स रसंजुओ अट्ठसहस्सलक्खणधरो गोयमो कालगच्छवी ५) अथारिष्टनेमेर्वर्णनमाह। स अरिष्टनेमिनामा भगवान् अष्टसहस्र लचण धरो वर्त्तते अष्टभिरधिकं सहस्रं अष्टसहस्रं लचणानां अष्टसहस्रं लचणाष्टसहस्रं तद्दरतीति लचणाष्टसहस्रधर: अष्टसहस्रं लचणानिधरतीति वा अष्ट सहस्र लचणधर: पुन· कीदृश: लचणस्वरसंयुत लचणै सहित: स्वरोलचणस्वर: तेन संयुत: स्वरस्यलचणानि माधुर्यलावण्याऽव्याहत गांभीर्यादीनितै: संयुत तीर्थंकरस्यहि अष्टाधिकसहस्रलचणानि शरीरे भवन्ति स्वस्तिक वृषभसिंह श्रीवत्स शंखचक्र गजाश्व छत्रादि प्रमुखाणि लचणानि हस्तपादादौ भवन्ति पुन: कीदृशो रिष्टनेमि: गौतमो गौतमगोत्रीय· पुन: कीदृश: कालकच्छवि: श्यामकान्ति ५ [वज्जरि सह संघयणो समचोरं सोज्झसोयरो तस्स रायमई कन्नं भज्जज्झायइ केसवो ६] पुन कीदृशो वज्रं कीलिका ऋषभ: पट्टोनाराच: उभय पार्श्वयोर्मर्कटबन्ध: एभि: संहननं शरीररचना यस्य स वज्रर्षभनाराच संहनन पुन: कीदृशो सम चतुरस्र: प्रथम संस्थानवान् य: पद्मासनेस्थित: सन् चतुर्षु पार्श्वेषु सदृश शरीर प्रमाणोभवति स सम चतुरस्र स स्थानवान् उच्यते तीर्थं करोहि समचतुरस्र संस्थानधारीस्यात् पुन: कीदृशो झषोदर: झषस्य मत्स्यस्य उदरमिव उदरं यस्य स झषोदर: अथ तस्या

सूत्र

ट्ठनेमिनामोउ लक्खणस्सरसंजुओ अट्ठसहस्सलक्खणधरो गोयमो कालगच्छवी ५ ॥ वज्जरिसहसंघयणो समचतुरसो

भाषा

लचण अनेश्वर तिणे सयुक्त: अष्टोत्तरसहस्र लचणधर: एकहजार आठलचणनो धरणहार: गौतमगोत्र: श्यामकांति: गोतमगोत्रनोधणी श्याम शरीर कांति: ५ वज्रऋषभ संवयन वज्रऋषभनाराच संघयणनोधणी सम चतुरं स संस्थान: सम चोरं स संस्थान झषोदर मत्स्योदर मच्छसरीषु पेटके

रिष्ठ नेमिकुमारस्य केसव कृष्णा राजीमती कन्या भार्यायै याचते [illegible] देवीराजमत्या जनकपार्श्वे राजीमती कन्यां नेमिनाथस्य भार्यार्थं याचते इति भाव ६ [अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी सव्वलक्खणसम्पन्ना विज्जसो यामणिप्पभा ७] अथानन्तर सा राज वरकन्या राजमती कीदृशी वर्त्तते तद्वर्णनमाह राजसुवरो राजवर षोडशसहस्र मुकुटबद्ध भूपेषु श्रेष्ट उग्रसेनो राजा तस्य कन्या पुत्री राज वरकन्या सा कीदृशी सुशीला शोभना चारी पुन कीदृशो चारुप्रेक्षणी चारुप्रेक्षण अवलोकन यस्या सा चारुप्रेक्षणी सुन्दरावलोकना सुन्दरनयनावा पुन कीदृशा सर्वलक्षण सम्पूर्णा चतु षष्टि कामिनी कलाकोविदा पुन कीदृशा विद्युत्सौदामिनीप्रभा विशेषेण द्योतते इति विद्युत् सा चासौ सौदामिनी च विद्युत्सौदामिनी तद्वत्प्रभा यस्या सा विद्युत्सौदामिनी प्रभास्फुरविद्युत्कान्ति ७ [अहाहजणओतीसे वासुदेव महड्ढिय इहागच्छउ कुमारो जासे कन्नन्ददामहम् ८] अथ कृष्णेन नेमि

सूत्र

ज्झसोदरी। तस्सरायमईकन्न भज्जजायइ केसवो ६ ॥ अहसाराय वरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी। सव्वलक्खण सपन्ना विज्जसोया मणिप्पभा ७ ॥ अहाहजणओ तीसे वासुदेव महिड्ढिय। इहा गच्छउ कुमारो जासेकन्न दला

भाषा

तस्य राजिमतीनाम्ना कन्या तेनेमि नाथने राजिमती कन्या भार्यानिमित्ते याचते केशव कृष्णनेमी कुमारनी भार्या करिवानेका जे मागे ६ अथ सा राज वरकन्या राजीमतीहवे राजानीबेटी राजिमति सुसोला शोभनाचारा चारुप्रेक्षणा मनोहरलोचना भलो आचार भला नेत्रछे सर्वलक्षणे सपूर्णा सवलक्षणेसहितछे दीप्यमान सौदामिनी विद्युत्प्रभा कांतिर्यस्या सा देदीप्यमान जे वीजली ते सरीषीकांतिछे जेहनी ७ अथ आह जनक पिता तस्या राजिमत्या उग्रसेन नामा राजिमतिनो पिता उग्रसेन कहेछे वासुदेव महर्द्धिक वासुदेवप्रति इहा गच्छति अरिष्ट नेमिकुमार नेमिकुमारम्हारे

कुमारार्थं कन्याया याचनानन्तरं तस्या राजमत्याः जनकोमहर्द्धिकं वासुदेव क्रष्णं आह हे वासुदेवकुमारोऽरिष्ट नेमिरिहास्मद्गृहे आगच्छतु जाइति येन कारणेन से इति तस्मै अरिष्ट नेमिकुमारायतां राजमतीं कन्यां अहं ददामि आसन्नकौतुक नैमित्तिकादिष्टलग्ने विवाहविधिना उपढौकयामि ८ [सव्वोसहीहिं न्हविओ कयकोउ अमङ्गलो दिव्वजुयलं परिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ९] अथारिष्ट नेमिकुमारः कोटिकार्पित लग्ने सर्वाभिरौष धोभिर्जया विजया शल्यविशल्या ऋद्धिवृद्ध्यादिभिः स्नपित. पुन कृत कौतुक मङ्गलः पुनः कीदृशः परिधृतदिव्ययुगलः परिहितं दिव्य विवाह प्रस्ता वात् देवदूष्य युगलं येन स परिहित दिव्ययुगलः प्राकृतत्वात् शब्दविपर्यय. पुनः कीदृशः आभरणैः कुण्डलमुकटहारादिभिर्विभूषितोलङ्कृतः ९ [मत्तञ्च गन्धहत्थिञ्च वासुदेवस्स जेट्ठगं आरूढोसोहई अहियं सिरे चूडामणी जहा १०] च पुनररिष्ट नेमिकुमारो वासुदेवस्य ज्येष्टकं मत्तं गन्धहस्तिनं

मह ८ ॥ सव्वोसहीहिंण्हविओ कयकोउय मंगलो । दिव्वजुयल परिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ९॥ मत्तंच गंध हत्थिंच वासुदेवस्स जेट्ठगं । आरूढो सोहई अहियंसिरे चूडामणीजहा १०॥ अह ऊसिएण छत्तेण चामराहि यसो

घरेआवे यथा से तस्याहं कन्यां ददामि जिम तेहने कन्याद्यं ८ एवमुक्तेसति सर्वौषधीभिः भगवान् स्नापित भगवंतने सर्वौषधीइं स्नानकरावीउ कृतकौतुक मंगलः मंगलीकना कारणकीधांछे दिव्यमुत्तम वस्त्र युगलं परिहितं दिव्य भला वस्त्र पहराव्या आभरणैर्विभूषित आभरणे करी विभूषित अलंकर्योछे ९ मत्तंच गंधहस्तिनं मातो गंधहस्तीः वासुदेवस्य ज्येष्टं उत्कृष्टं वासुदेवनो पडोपट्टहस्तीः आरूढ अधिकं शोभतेते हाथी उपरि चढ्यो अधिकशोभवालागा मस्तके चूडामणिर्यथा शोभते मस्तकनेविषे जिम मुकुटशोभे तिमशोभे १० अथ उच्छ्रितेन छत्रेण माथे छत्रधर्योछे चामरैश्च

उ०टीका अ०२२ ६६५

आकद्वोधिक शोभते कइव सिरसि मस्तके चूडामणिरिव यथा मस्तके मुकुट शोभते तथा नेमि सर्वेषा यादवाना मध्ये चूडामणि सदृशो विराजत १० [अह ऋसिएण छत्तेण चामराहिय सोहिओ दसारचक्केण यसो सव्वओ परिवारिओ ११] [चाउरंगिणीए सेणाए रइयाए जहक्कम तुडियाण सन्निनाएण दिव्वेण गयण फसा १२] [एयारिसीए इड्ढीए जुइए उत्तिमाइ नियगाओ भवणाओ णिज्जाओ विण्हिपु गवो १३] तिसृभि कुलक अथानन्तर वृष्णिपु गवो नेमिकुमारो निजकात् भवनात् स्वकीय गृहात् एतादृश्या समीपतरवर्त्तिन्यावृद्धा पुनरुत्तमया प्रधानयाद्युत्यादोप्तयापाणि ग्रहणाय निगत उग्रसेन गृह प्रतिस्वमन्दिरात निसृत इत्यथ कीदृश्या ऋड्या ता ऋद्धिपदतिमाह स नेमिकुमार उच्छितेन उच्चै स्तेन छत्रे ण मेघाडम्बर छत्रे ण च पुनश्चामराभ्या उभयपार्श्वयो वीज्यमान शोभित पुन स नेमिकुमारो दशार्ह चक्रेण यादव समूहेन सर्वत परिवृत ११ पुन कीदृश चतुरङ्गिण्यासेनया परिवृत पुन कीदृश त्रुटिताना तूर्याणा भेरि मृदङ्ग पटह करनालतालादीना दिव्येन देवयोग्येन सत निनादेन सम्यक्शब्देन सहित सोद्दयेन तूराणा निनादेन गगनस्पृशा गगन स्पृशन्तीति गगनस्पृक तेन आकाशव्यापिता १२ [अह सोतत्थनिज्जन्तो दिस्सपाणे भरइए वाडेहि पिञ्जरहि

सूत्र

हिओ । दसारचक्केण यसीसव्वओ परिवारिओ ११ । चउरंगिणीए सेणाए रइयाए जहक्कम । तुरियाण सन्निनाएण

भाषा

शोभित बेपासे चामर वीजाइछे दसारचक्रेण समुद्रविजयादि नृपसमूहेन समुद्रविजय प्रमुख राजाइ सहित सर्वतो परिवारत वेष्टित च्यारेपासे वींटयोछे ११ चतुरंगिनयासेनया चतुरंगीणी सेना साथेछे रचितया यथाक्रम हाथी घोडा रथ पायक यथा अनुक्रमे रच्याछे तूर्याणा वाजित्राणा निनादे वाजित्रनां शब्द तिणे करीसहित प्रधानेन गगनस्पृशेन प्रधानशब्द उछलेछे जाइ आकाशलागेछे १२ एतादृश्या ऋड्या इसी ऋद्धि वारी

च स निरुद्धे सुदुक्खिए १३] [जीवियन्तन्तु स पत्ते मसट्ठा भक्खियव्वए पासित्तासे महापन्ने सारहिं इणमव्ववी १४] युग्मं अथ अनन्तर स नेमिकुमार सारथि इद अब्रवीत् किं कृत्वा तत्र विवाह मण्डपासन्नेनिर्यन् अधिगच्छन् भयद्रुतान् भयव्याकुलान् प्राणान् जीवान् स्थलचरान् मृगशश.शूकरतित्तिर लावकादीन् मांसार्थं भवितव्यान् पासित्तादृति विचार्य दृष्ट्वा कथंभूतान् प्राणान् वाटकैर्भित्तिभि कण्टकवाटिकाभिर्वानिरुद्धान् अतिशयेन यन्त्रितान् पुनः पञ्जरैर्लोह वंशशलाकादिविनिर्मितै पचिनियन्त्रण स्थाने सन्निरुद्धान् अतएवसु दुःखितान् पुन कीदृशान् जीवितां तं संप्राप्तान् ते प्राणिन

स्त

दिव्वेणं गगणंफुसे १२॥ एयारिसीए इड्ढीए जुत्तीए उत्तिमाइय। नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुंगवो १३॥ अहसीतत्थ निज्जंतो दिस्सपाणे भयद्दुए। वाडेहिं पंजरेहिंच संनिरुद्धे सुदुक्खिए १४॥ जीवियं तंतुसंपत्ते मंमट्ठा भक्खियव्वए। पासित्तासे महापन्ने सारहिं इणमव्ववी १५॥ कस्सअट्ठाइमेपाणाएएसव्वे सुहेसिणो। वाडेहिंपंज

भाषा

थु त्याकांत्या उत्तमया कांति आभरणनोति सहित निजकात् भवनात् आपणा घरथको निर्गतो वृष्णिपुंगवः प्रधानो नेमि नेमिनाथ वाहिरिनीसर्यो यादवनै पूज्यनीक जादवकुल १३ अथ स स्वामी तत्र निर्गच्छन् अथ स्वामी जाइके नेमिनाथचाल्या दृष्ट्वाः प्राणान् जीवान् भयभीतान् आगे जाता जीवदीठा एकठा बांध्याछे भयभ्रांतछे वाटकेषु पंजरेषु चवाडानेविषे पंजराने विषे संनिरुद्धान् वद्धान् दुःखितान् रुंध्यांबाध्या दुःखी १४ च पुनः जीवितांतं संप्राप्तान् जीव अंत प्राप्त हुआछे आपणाजीव अंत्यप्रांतहुस्ये इमकहेछे पसु मांसार्थं विनाश्यभक्षितव्यान् मांसने अर्थे मारीखासे दृष्ट्वासः महाप्राज्ञः नेमनाथ स्वामीएप्रकार देखीने सारथिं प्रतिइति अब्रवीत् सारथीप्रते इमकहेछे १५ कस्यार्थइमे प्राणिन केहने अर्थेएजीवडा एते जीवा सुखेच्छिनः

एव जानति अस्माक मरण आगत कुतोऽस्माक जीवित इति मरणदशाम प्राप्तान् कीदृशो नेमि कुमारो महाप्राज्ञो महाबुद्धि मन्ति अथात् ज्ञानत्रयेण निर्मोणबुद्धिरित्यर्थ १५ [कस्स अट्ठाइमेपाणा एते सव्वेसु हेसिणो वाडे हि पञ्जरे हि च सन्निरुद्धाय अत्थि हि १६] सारथि कि अब्रवीदित्याह हे सारथे इमे प्रत्यक्ष दृश्यमाणा सर्वे प्राणा वाटकेष पुन पञ्जरैसमिरुद्धा अत्यन्त नियन्त्रिता कस्यार्थे कस्यहेतो अत्र हि इति तिष्टन्ति कीदृशाइमे प्राणा सुखार्थिन सर्वे समारिणो जीवा सुखार्थिन सन्तिकिमर्थं दु खिन क्रियन्ते भगवान् जानन अपि जीवदया प्रकटीकरणार्थं सारथि पप्रच्छेति भाव १६ [अहसार होतआभणइ एएभहाउपाणिणो तुज्झ विवाह कज्जमि भोयावेउ बहु जण १७] अथनेमि कुमारवाक्य श्रवणानन्तर तत सारथिभणति हे स्वामिन एतेभद्रा प्राणिन युष्माक विवाह कार्ये बहुजनान् यादवलोकान् भोजयितु एकत्रमीलिता सन्ति १७ [सोऊणतस्सवयण बहुपाणि विणासण चिन्ते इमे महापन्ने साणुक्कोसेजिए हिउ १८] से इति सनेमि कुमारस्तस्य सारथेर्वचन श्रुत्वाचिन्तयति

भाषा

पेहि च सन्निरुद्धाय अत्थिहि १६ ॥ अह सारहीतओ भणइएएभद्दाओ पाणिणो। तुज्झ विवाहकज्ज मि भोयावेउ बहु जणं १७ ॥ सोऊण तस्स वयण बहुपाणि विणासण। चिंतेइसे महापन्ने साणुक्कोसे जिएहिओ १८ ॥ जइ

सूत्र

सुखाभिलाषिण एमवनोय मुक्तनावाळणहारके वाडेषु पिंजरेषु वाडानेविषे पिंजरानेविषे सनिरुद्धा स्थिरति एकिमरोकीराख्याछे १६ अथ सारथी ततो भण्ति हवे सारथी पूछ्यानू उत्तरदिइछे हे भद्र एते प्राणीन हे भद्र एतलाजीव तव विवाहकाये तुम्हारा विवाहने अर्थे भोजयतु बहुजन एजीव मारीने घणालाकोने जोमाडवसे १७ म नेमिनाथ तस्य वचन सुला ते नेमनाथ सारथीनु वचन साभलीने बहुप्राणि विनाशन घणा जीवाना

कीदृश: स: महाप्राज्ञ महाबुद्धिमान् पुन: कीदृश: सजीवेहित जीवविषयेहितप्सु: पुन: कीदृश: सानुक्रोश: सह अनुक्रोशेन वर्त्तते इति सानुक्रोश' सदय अथवा जीवेहि निश्चयेन सानुक्रोश' सकरुण तु शब्द: पदपूरणे कीदृशं सारथेर्वचनं बहु प्राणि विनाशनं बहु जीवानां विघातकारकं १८ [जइमज्झकारणाए हम्मन्ति सुबहू जियानमेएयं तु निस्सेयं परिलोए भविस्सइ १९] तदानेमि कुमार किंचिंतयतीत्याह यदि मम विवाहादिकारणेन एतेसु बहव प्रचरा: जीवा: हनिष्यन्ते मारयिष्यन्ति तदा एतत् हिंसाख्यं कर्म्मपरलोके पर भवेनि श्रेय मङ्गलकारि न भविष्यन्ते परलोकभीरुत्वस्य अत्यन्त' अभ्यस्ततया एवं अभिधान अन्यथा भगवतश्चरमदेहत्वात् अतिशयज्ञत्वाच्च कुत एव विधाचिन्ता इति भाव' १९ [सो कुण्डलाणजुयलं सुत्तगञ्च महायसो आभरणाणिय सव्वाणि सारहि स्सपणामए २०] सनेमि कुमारो महायशा नेमिनाथस्याभिप्रायान् सर्वेषु जीवेषु बन्धनेभ्योमुक्तेषु सत्सु

सूत्र

मज्झ कारणाएए हम्मिन्तिसु बहुजीयानमेए यंतु निस्सेमं परलोगे भविस्सइ १९। सोकुंडलाणा जुयलं सुत्तयंच महायसी। आभरणाणिय सव्वाणि सारहिस्सपणामए २०॥ मण परिणामेय कएदेवाय जहोइयं ससोइणा। सव्वि

भाषा

विणाशतु' चिंतयति स महाप्राज्ञ: नेमकुमार माहापंडित चिंतववालाणा स्वकलकणी जीतेंद्रिय: जीवेषु हित: करुणासहित सर्वजीवनेंहितचितवेछे १८ यदि मम कारणात् एतलाजीवम्हारेकाजे हनिष्यंतेसु बहुजीवमारस्येए घणाजीव नच मम एतत् निश्रेयसं कल्याण एसुभने विवाह कल्याणकारी नहीं परलोके हितायन भविष्यति परलोकने विषे हितकारी नहीहोई १९ स नेमि कुंडलानां युगलतं नेमकुमार कानना कुंडलयुगल कटि सूत्रंच महायशा कडनोकणदोरो आभरणानि सर्वाणि समस्तानि सर्व आभरण' सारथे प्रणामयेत् ददाति उतारीने सारथीने दिइ २० दीनार्थ सर्वो परि

मयापि आभरणानि सारथे प्रणामवति ददाति कानि तान्याभरणानि कुण्डलाना युगल पुन सूत्रक कटोदवरक चकारात आभरण शब्दे न हारादीनि सर्व्वागोपाङ्ग भूषणानिसारथेर्ददौ २० [मण परिणामेयकए देवायजह्नो इय समोइना मब्विड्डीएसपरिमानिक्खमण तक्काउ जे २१] तस्मिन नेमिकुमारेनन परिणामेचित्ताभि प्रायेदोचा प्रतिज्ञतेसति लोकान्तिक देव वचनात् साम्वत्सरिकदाने दत्ते सति देवाश्चतुर्विधा यथोचित यथा योग्य सर्वदासमतोणा तवागता कि कर्त्तु तस्य भगवतोनेमि कुमारस्यनि क्रमण महोत्सव दीक्षामहिमान कर्त्तु जे शब्द पद पूरणे कोदृशा देवा स परिषद सहतिस्तभि परिषद्भिर्वर्त्तन्ते इति स परिषद परिषत्सहिताइत्यर्थ २१ [देवमनुस्सपरिवुडो सिविगारयणत्तओ समारूढो निक्खमिय वारगाओ रेवयमिठिओ भयव २२] ततोऽनतरनेमि कुमारो भगवान ज्ञानवान् दीक्षावसरज्ञो देवैर्मनुष्यै परिवृतो देवमनुष्य परिवृत सिविकारत्न उत्तरकुरुनामकमनारूढ द्वारिका पुरोतोनि क्रम्य नि सृत्यरवत रैवताचलेस्थित २२ [उज्जाणे सपत्तो उइन्नो उत्तमाउसीयाओ साहस्सीए परिवुडो अह निक्खमईओ

सूत्र — इीए सपरिमा निक्खमण तक्काउ जे २१ ॥ देव मणुस्स परिवुडो सियारयणतओ समारूढो । निक्खमिय वारगाओ रेवय यम्मिठिओ भयव २२ । उज्जाण सपत्तो उइन्नो उत्तमाओसीयाओ । साहस्सीय परिवुडो अभिनिक्खमइउ

भाषा — णाम छत ढिवालेवाभणो मनकोधू देवा यथोचित समये समवतोर्णा आगता देवता समवजाणोआव्या सर्वडासपरिषद ऋद्धि सहित परिवार सहित चारित्रोत्सव कर्त्तु जे पादपूर्ण दीक्षानो महोच्छव करवाभणी आव्याछे २१ देव मनुष्य परिव्रत वेष्टित देवमनुष्यने परिवार परवस्थायका शिवकारत्नमिति उत्तमशिविका तत समारूढ भलो शिवका उपरि बैठाथका निर्गत्य द्वारिकापुरीत द्वारिकानगरोथोनोसरीने रवतके पर्वतेस्थितो भगवान् गीरनार पर्वतने विषे पहुंता भगवत २२ उद्यानं सम्प्राप्त सन् उद्याननै विषे पहुं ताथका अवतोर्य उत्तमाया शिविकाया उत्तमजे शिविका

चित्ताहिं २३] तत्र रेवतावले उद्याने सहस्राम्रनान्मिवने सप्राप्त. पुनरुत्तमायाः प्रधानायाः शिविकाया उत्तीर्णः सहस्रेण परिवृतः प्रधान पुरुष सहस्रेण सयुत सन् अथ चितायां चित्रानक्षत्रे निःक्रामति दीक्षां गृह्णाति पञ्च महाव्रतोच्चारणं करोति २३ [अह सोसुगन्धगन्धिए तुरियं मउय कुंचिए सयमेव लुंचई केसे पञ्चमुट्ठीहिं समाहिए २४] अथ पञ्चमहाव्रतोच्चारणानन्तर सनेमिनाथ स्वय एव आत्मना एवत्वरित केशान् पञ्च मुष्ट्या कृत्वालुञ्चते कोदृशः सन् समाहित ज्ञानदर्शन चारित्र रूपसमाधि युक्तः सन् कोदृशान् केशान् सुगन्धगन्धिकान् स्वभावत. सुरभिगन्धान् पुन कोदृशान् मृदुक कुञ्चितान् मृदवश्चते कुञ्चिताश्च मृदुक कुञ्चितास्तान् सुकुमालान् कुटिलान् २४ [वासुदेवोयण भणइ लुत्तकेसं जिइन्दियं इच्छियमणोरहे तुरियं

चित्ताहिं २३॥ अहसो सुगंधगंधिए तुरियं मउय कुंचिए। सयमेव लुंचई केसे पंचमुट्ठिहिं समाहिओ २४॥ वासुदेवोयण भणइ लुत्तकेसंजिइंदियं इच्छिय मणोरहेतुरियं। पावेसूतं दमिस्सरा २५॥ नाणेणं दंसणेणंच चरित्तेण०

ते हवी नीचा जतस्राष्टपसहस्रेणःपरिवृतनेमिः हजार राजवोसंघातेप्रधानतर चारित्र प्रपद्यते चित्रानक्षत्रे चारित्रलीधोहजारजणसाथे २३ अथानंतरं स भगवान् केशान् लुंचति कोदृशान् केशान् सुगधिगधान् मायानावालनोलोचकोधू शोघ्रं मृदु सुकुमालान् वक्रान् उतावला सुकुमाला वक्र घोटलोया वालकेसः स्वयमेवलुंचति केशान् आपणे हाथे लोचकरे पञ्चमट्ठिभि समाहित पञ्चमुष्टीं करी समाधीमांहि २४ वासुदेवः समुद्रविजयः नेमि प्रति भणति वासुदेव समुद्रविजय नेमनाथने कहेछे लुंचिति केशं जितेंद्रिय लोचकीधोछे जितेंद्रीवछे इच्छित मनोरथ मुक्तिरूप शोघ्र तुमे जिको मनोरथ कोधोछे मुक्तिनोतावलो प्राप्नुहि दांमसरपामि हे दमीसर जितेंद्रिय २५ त्वं ज्ञानेन दर्शनेनच त्व ज्ञान करीदर्शन करी चारित्रेण चारित्रे

टीका
प०२२
६७१

पासेहत दमोसग २५] तदा वासुदेव कृष्णप्रकारात् समुद्रविजयादि नृपगर्णोपित नेमिनाथ जितेन्द्रिय पुनर्नृसकेश क्षतलोच इति वचन भणति इयाशाशाइशाप वन्ति थाइमोवरइमिना जिनेन्द्रियाणा इश्वरोदमोश्वरम्तत्त्वबोधन हे दमोश्वरयतो वरईपिसत वाञ्छित मनोरथ त्वरित प्राप्नुहि२५ [नाणेण दसणण चरित्तेण तवेणयखन्ती एमुत्तीए वड्ढमाणो भवाहिय २६] पुनराशीर्वचन माह पुनर्हेस्वामिन त्व ज्ञानेन दर्शनेन तथैव चारित्रेण च पुन क्षात्याचनया च पनर्मुक्तानि लाभत्वेन वर्द्धमानो भव २६ [एव ते रामकेसवा दसाराय बहुजणा अरिट्ठनेमि वन्दित्ता अइगया बारगाउरि २७] एव अमुना प्रकारेण रामकेशवो च पनर्दशापि दशाहा च पुनवहवो अन्ये जनायत्वारोवणा अरिष्टनेमि स्वामिन वन्दित्वागत्वा नलाच नारिका पुरी प्रतिगता प्रविष्टा २७ [सोऊण रायकन्ना पव्वज्ज माजिणस्सउ नीहासायनिराणन्दा सोगेणय समुलया २८] साराजवरकन्या उग्रसेन नृपपुत्री

सूत्र

तहेनय । खन्तीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहिय २६ । एवते रामकेसवा दसाराय बहुजणा । अरिट्ठनेमि वदित्ता अइ
गया बारगापुरि २७ ॥ सोऊण रायकन्ना पव्वज्जसा जिणस्सओ । निहासाय निराणन्दा सोगेणउ समुत्थया २८ ॥

भाषा

करो तथैव तपसातिमतपकरी क्षमया क्षमाकरीने निलाभ निर्लोभतापणु वडमानोभवद्दतरैवानिकरीनेतु वडमानश्चोहिवधि २६ एवती उक्तवती रामकेसवो बलभद्र कृष्णो दशाहदिये दशार्ह बहुजना वोजा घणालोक अरिठ नेमि वदीत्वा नेमिनाथने इमकहे वांदीने प्रति गता द्वारिकापुरी द्वारिकानगरी पाछाआवा २७ श्रुत्वा राजवरकन्या राजिमती राजेमती कनगाइ साभली प्रवर्ज्या नेमजनस्य नेमिनाथे दीक्षालीधो निहासा आनदरहिता हर्षभागो इ हासमननोरहि आनदरहितहृद शोकेन पुन समुच्छिंता शकाकरी मुच्छाआवो २८ राजमती चित्तेएव चितयति राज

उ०टीका
अ०२२
६७२

राजमतीप्रोकेन समुत्थाय समवस्तृता अवष्टब्धाव्यासा भूत् इत्यर्थं किं कत्वा जिनस्य नेमिनाथस्य प्रवज्यां दीचां शुत्वा कथभूतासा नोहासानिर्गतो हास्या: सानिर्हासा हास्यरहिता पुन: कीदृशासानिरानन्दा आनन्दरहिता २८ (राईमई विचिन्तेई धिरत्थु मम जीविअ जाहन्तेणं परिचत्ता सेयं पव्वइउ मम २९) साराजीमती मनसि विचिन्तयति मम जीवितं धिगस्तु या अहं तेन नेमिनाथेन परित्यक्ता अतो मम प्रव्रजितुं दीक्षां गृहीतुं श्रेय न तु गृहेस्थातुं श्रेय इतिभाव २९ (अहसा भमरसन्निभे कुंचफणग पसाहिए सयमेव लुंचईकेसे धिइमंता ववस्सिया ३०) अथ अनन्तरं साराजीमतीस्वयमेव केशान् लुञ्चति कथम्भूता साधृतिमतीधैर्ययुक्ता पुन कथम्भूताध्यवसितानिश्चला धर्मं कर्तुं स्थिरा कीदृशान् केशान् कुञ्चफणगपसाहिए कूर्चफनक प्रसाधितान् कूर्चोगूढ केशोन्मोचको वंशशिलाकारचित: केशसंस्कार कारणोपकारणविशेष: फनको गजदन्तकाष्ठमय' काकतक: कूर्चश्च फनकाश्च कूर्चफनकौ ताभ्यां प्रसाधितां संस्कृता: कूर्चफनकप्रसाधितास्तान् पुन: कीदृशान् भ्रमरसनिभान् भ्रंगवत्श्यामान् ३० (वासुदेवोयणं भणइ लुत्तकेसंजि

सूत्र

रायमई विचिंतेई धिरत्थु ममजीवियं। जाहंतेणं परिचत्ता सेयंपव्वइउंमम २९॥ अहसा भमरसन्निभेकुंच फणग पसाहिए। सयमेव लुंचईकेसि धिइमंता ववस्सिया ३०॥ वासुदेवोयणं भणइ लुत्तकेसंजि इंदियं। संसार सागरं

भाषा

मति चित्तमाहिं इम चितवे धिक् मम जीवितं धिक्कार पडुम्हारी जीवतव्यने या अहं नेमनाथेन परित्यक्ता तिणे नेमिनाथे मुभनेछाडो श्रेय. प्रव्रजितुं मम श्रेय हुओ दीक्षाने २९ राजमती केशान् भ्रमरसदृशान् सुष्णान् कुर्चेविंशमय तेन प्रसाधितान् उपाडितान् स्वयमेव लुंचति केशान् आफरतो माथे लोचकरे धृतिमती व्यवस्थिता धृतिवंतउद्यमवंतहुइ ३० वासुदेव: इदं भणित: वासुदेव इमकहे लुप्तकेशां जितेंद्रियां केशलोचाकरे इंद्रोयसि

उ टीका अ २२ ४७२

इन्द्रिय ससारसागरघोरतरकमे लहु लहु २१) च पुनस्तदा वासुदेव श्रीकृष्णस्तां राजीमतीकन्या भणति आशीर्वाद पठति रे कन्ये हे राजीमति घोर रौद्र ससारसमुद्र लघु २ त्वरित २ तरससारसमुद्रस्य पारकुरु लघु लघु इति सभ्रमे आदरे द्विर्वचन कीदृशीं राजीमती लुप्तकेशा कृतलोचा पुन कीदृशो जितेन्द्रिय साध्वो इत्यर्थ २१ (सापव्वइयासन्तो पव्वावेसोतहिवहु सयण परियणचेव सोलवन्ता बहुस्सुया ३२) सा राजीमती प्रव्रजिता सती गृहीतदीक्षासती तत्र द्वारिकाया बहून् स्वजनान् स्वज्ञातीय स्त्रीजनान् च पुन परिजनान् अन्याम् स्त्रीजनान प्राव्राजयत् स्वसार्थे अपरान् अपिदारा प्रव्राजयामासेत्यर्थ कीदृशी सा शीलवती पुन कीदृशी बहु श्रुता प्रचुरश्रुत ज्ञानाभ्यासा ३२ (गिरि रेव इय जन्तो वासेणोल्लाश्रो अन्तरावासन्ते अन्धया रम्मि अन्तोलयणस्ससाठिया ३३)साराजीमती एकदास्वामिवन्दनार्थं रेवतिक गिरिगिरनारपर्व्वत यान्ती लयनस्य गिरि गुहारूपस्य अन्तर्मध्ये स्थिता

सूत्र

घोरतरकमे लहु २ ।३१। सापव्वइयासतो पव्वावेसी तहियन्नु । सयण परियणचेव सीलवता बहुस्सुया ३२ ॥ गिरिरेवययजतो वासेणोल्लाश्रो अतरा । वासते अधकारमि अतो लयणस्स साठिया ३३ ॥ चीवराइ विसारेती जहा

भाषा

कोधाछे ससारसागर घोर ससारसमुद्र घोररुद्र प्रति ससारसमुद्रप्रति तरछे कनेत्र उलघय शीघ्र २ हे कनया उतरि उलघि उतावलो ३१ यथा राजीमती प्रव्रजतासती राजेमती दीक्ष्यालेतीथको अदीक्ष्यत् द्वारकाइ बहुजन घणाजणाने दीक्ष्यादेइने स्वजन परिजन चेव स्वजने परीजनने शील वत बहुश्रुता राजेमती किसीछे सीलवतछे बहुश्रुतछे ३२ पर्वतरेवतका चलयाती अनग्रदा प्रस्तावि गिरनारि जाइछे अतरा वस्त्राइ अर्धपथे जाता विचे वरसीना वर्षति मेघे अधकारे मेहवरसति अधारोहवोछे गुहामध्ये सा स्थिता राजेमती गुहामाहि जाइ उभीरही ३३ वस्त्राणी विस्तारयती

उ०टीका
अ०२२
६७४

क्षसति वर्षति वर्ष्णति मेघे अन्धकारेसति मेघान्धकारेण दृग् प्रचारेनिरुद्धे सति कीदृशी सा अन्तरा अर्द्धमार्गे वासेणेति वर्षाभिरुक्ता आर्द्रीक्लिन्न सर्व चीवरा ३३ (चीवराइं विसारित्तो जहाजाइत्ति पासिया रहनेमीभग्गचित्तो पच्छादिट्ठोयतीइवि ३४) रथनेमिर्भग्न चित्तोभूत् संयमात् चलितमनाः अभूत् किं कृत्वा चीवराणि सार्द्राणि सरीरादुत्तार्यविस्तारयन्ती यथा जाता इत्येवं रूपां निर्वस्त्रां तां राजीमतीं दृष्ट्वा तया राजीमत्या अपि सरथनेमिश्च लचित्तः पश्चात्दृष्टः पूर्वं अन्धकारेसति न दृष्ट अन्यथा यदि पूर्वं दृष्टो भविष्यत् तदा एकाकिनी तत्र न प्राविष्यत् इति भावः ३४ [भीयायसा तहिं दट्ठं एगन्ते सञ्जयं तयं बाहाहिं काउ सङ्गोफं चेवमाणीनिसीयइ ३५] साराजीमती तदा एकान्ते गुफायां रथनेमिं सयतं साधुं दृष्ट्वा भीताकदाचि दय मम शीलभङ्गं कुर्यादिति विचार्य शीलभङ्गभयात् वेपमानाकम्पमाना सतीनिषीदति तदाश्लेष परिहारार्थं भूमौ उपविशति किं कृत्वा बाहुभ्यां

सूत्र

जायत्ति पासिया । रहनेमीभग्गचित्तोपच्छादिट्ठोयती इवि ३४ । भीयाय सातहिंदट्ठुं एगंतेसं जयंतयं । बाहाहिं काउ संगोफंचे वमाणी निसीयइ ३५। अहसोविरायपुत्तो समुद्दविजयंगओ। भी यंपवेइयं दट्ठुं इमंवक्क मुदाहरे ३६ ।

भाषा

वस्त्रभीनांसूकववावाल्याछे यथा जाता अनाच्छादितोपांगा दृष्ट्वा यथा जाता उघाडीदीठी रथ नेमीभग्नचित्तोभूत् देखीने रथनेमि भग्नचित्त हुओ पश्चात्दृष्टस्तया राजमत्यापि पछेतिण राजमतीइंपणिरथ नेमिनेदीठो ३४ भीता सा राजिमती तत्र गुफायां दृष्ट्वा राजिमती विहि गुफामांहि एकांत जन रहित रथनेमीं एकांत गुफामांहि रहनेमीदीठो बाहुस्यां सा गोपनं कृत्वा बाहुसुं अंगढांकीने सीलस्यां तेहने भयकरीने वेपमाना कंपमाना निषीदती बोहती धूजतीवेसे ३५ अथ सरथनेमिः राजपुत्रः रथनेमि राजानोवेटो समुद्रविजयागजः समुद्रविजयनो अंगजः भीता कंपमानां दृष्ट्वा

द्वाभ्यां भुजाभ्यां सङ्गोफ परस्परबाहु सङ्गुम्फन स्तनोपरिमर्कटबन्ध क्वत्वा ३५ [अहसो]विराय पुत्तो समुद्दविजय गओ भीय पवेइय दट्ठु इम वक्क मुदाहरे ३६] अथानन्तर सोपि राजपुत्रो समुद्रविजयाङ्गजो रथनेमिर्भीतां प्रवेपिता कम्पमानां राजीमती साध्वी दृष्टा इद वाक्य मुदाहरेत् ३६ (रहनेमी अह भद्दे सुरूवेचारुभासिणि मम भया हि सुतणू न तेपीलाभविस्सइ ३७) कि वाक्य उवाचेत्याह हे भद्रे हे काथाणि अह रथनेमिरस्मि मां मन्य अनपि माजानीहि हे सुरूपे सुन्दराकारे चारुभाषिणि हे मधुरवचने हे सुतनुशोभन शरीरे कोमलगात्रित्व मां भजस्वभर्तृत्वेन अङ्गीकुरुते तव पीडादुःख न भविष्यति मया सह विषय सुख भुंक्ष्व ३७ (एहिता भुञ्जिमो भोए माणुस्सं सुदुल्लह भुत्तभोएतओ पच्छा जिणमग्गचरिस्सामो ३८) हे राजीमति एहि मम समीपे आगच्छ तावत् आवां विषय भञ्जोवहि हे प्रिये खु इति निश्चयेन मानुष्य मनुष्य जन्मदुर्लभ वर्त्तते ततोऽनन्तर आवां

सूत्र

रहनेमी अहभद्दे सुरूवे चारुभासिणी। मम भयाहि सुतणूनतेपीला भविस्सइ ३७। एहिता भुंजिमोभोए माणुस्सं सुदुल्लह। भुत्तभोगी तओपच्छा जिणमग्ग चरिस्सामो ३८॥ दट्ठूण रहनेमित भग्गजोय पराइय। राइमई असभता

भाषा

राजिमतीने धूजती कांपती देखीने इद वाक्य उक्तवान् इस्यु वचन कहवालागु २६ रथनेमि अह भद्रे त्वा माजानाहि हे भद्रे हु रथनेमिछु हे सरूपे हे चारुभाषिणी हे सरूपे हे मीठाबोलीहेमम भजस्व सुष्टुतनु सुभने भजि सेविम्हारु पणि शरीरभलूछे सुभयको भयमतमाने न तव पीडा भविष्यति तुभनेकाइ पीडा नही होइ ३७ आगच्छ पूर्व आवां भुं जावहे भोगान आवितू पेहेला आपणभोग भोगवीने मानुष्य निश्चयेन दुर्लभ वर्त्तते निश्चयस्य मनुष्यनो भवदोहिलोछे भुक्तभोग्य पुन पश्चात् भोगभोगवीनेपछे वार्द्धिकेजनमार्ग चरिष्यामि इद्धावस्थाइ जिनमार्ग आदरस्यु ३८ दृष्ट्वा च रथ

भुक्तभोगीभूत्वापश्चाज्जिनमार्गं जिनोक्त धर्मं चारित्र धर्मं मोक्षमार्गं चरिष्याव: पूर्वं हि यदा भोग सुख भुज्यते ततोदीक्षा गृह्यते तदा भुक्त भोगत्वेन पुन भोगसुखेषु मनोनस्यात् तस्मात् पूर्वं अधुनायथेच्छ भोगसुख भोक्तव्य इति भाव: ३८ (दट्ठूणरहनेमिं तं भग्गजोय पराइयं राइ मई असम्भन्ता अप्पाण सम्वरेतहिं ३९) तदा राजीमती असंभ्रांतासतीनिर्भयासती तया ज्ञात अहं बलात्कारेणापि शीलं भक्ष्यामि इति निश्चित्य अत्रस्तासती आत्मानं शरीर वस्त्रै संवृणोति आच्छादयति गुफामध्य एवस्थितासती इति शेष: किं कृत्वारथनेमिं भग्नयोग दृष्ट्वा भग्नो नष्टो योग: संयमोत्साहो यस्य स भग्नयोगस्तं स्त्री परीषहेण पराभूत रथनेमिं ज्ञात्वा ३९ (अह सारायवरकन्ना सुट्ठियानियमव्वए जाइं कुलञ्चसीलञ्च रक्खमाणीउ तयंवए ४०) अथानंतरं भग्नयोगस्य रथनेमिर्दर्शनादनन्तरं साराजवरकन्या राजीमती साध्वी तदा वदति कीदृशीसानियमव्रते सुस्थितानियमे शौच सन्तोषस्वाध्यायतपो लक्षणेस्थिरा तथा व्रते पञ्चमहा व्रतलक्षणेस्थिरा पुन: सा किं कुर्व्वाणाजाति कुले प्रतिसंरक्षमाणा च पुन: शीलं प्रति सरक्षमाणा तत्र मातुर्वंशोजाति पितुर्वंश: कुलमुच्यते तयोरुभयोरपि नैर्मल्य विदधती इत्यर्थ: ४० (जइसि रूवेणवेसमणो ललिएणं नलकूवरो तहावितेन इच्छामि जइसि सक्खं पुर

सूत्र

अप्पाणं संवरे तहिं २९। अहसाराय वरकन्ना सुट्ठिया नियमव्वए। जाईकुलंच सीलंच रक्खमाणी तयवए ४०॥

भाषा

नेमि राजेमतो रथनेमिने भग्नयोग: सयमे उत्साहरहित स्त्रीपरिषहेजित सयमनेविखे उत्साहरहित राजेमती असम्भ्रांता राजेमती असंभ्रातायको आत्मानंचीवरे आच्छादयति आपणु सर्वशरीर लूगडासुढाकीने ३९ अथ स राजीमती प्रधान राजकन्याहिवे राजमती प्रधान कन्या: सुस्थिता सति नियमे व्रते आपणाव्रतने विखे दृढछे जातिकुलं च शीलं च जाति कुल शील रक्षमाणात जलूतिराखीतीथकी तेहने कहेछे ४० यदसि त्वं रूपेण

न्दरो ४१) भोरथनेमेयदिल रूपेण वै यमणो धनदोसि यदि पुनर्ललितेन मनोहरलावण्य विलासेन नलकूवरदेवविशेषोसि पुनयदि हे रथनेमेल साचात् प्रयच पुरन्दरोसि इन्द्रावतारोसि तथापि अहं त्वा न इच्छामि भोगार्थं नाभिलयामि ४१ (पक्खदेजलिय जोइं धूमकेउदुरासय नेइच्छन्ति वन्तयभोत्त कुलेजाया अगन्धणे ४२) हे रथनेमे अगन्धने कुलेजाता उत्पन्ना अर्थात् अगन्धन कुलोत्पन्ना सर्पावान्त विष भोक्तु पुन पश्चाद्धोतु न इच्छन्ति न वाञ्छन्ति ज्वलत् धूमकेतोरग्नेर्ज्योतिर्ज्वालां प्रस्कन्देत् इति प्रस्कन्देयु प्राकृतित्वात् बहुवचने एकवचन अगन्धनजातीया सर्पाअग्नि ज्वालां प्रविशेयु नतु उद्गीर्णं विष पश्चाद्ग्रहन्ति कीदृश धूमकेतोर्ज्योति दुरासद दुःसह इत्यर्थं ४२ (धिरत्थुतेजसोकामीजोतजीवियकारणा वन्त इच्छसि आवेउ सेयन्तेमरण भवे ४३) हे अयश कामिन् हे अकीर्त्ति वाञ्छक अथवा हे अयश हे अकीर्त्ते हे कामिन् त्वाधिग अस्तुतानीति

जइसिरूवेण वेसमणो ललिएण नलकुवरो। तहावि तेनइच्छामि जइसिसक्ख पुरंदरो ४१॥ पखदे जलियजोइं धूमकेउ दुरासय। नेच्छतिवतयभुत्त कुलेजाया अगधणे ४२। धिरत्थुते जसोकामीजोतजीविय कारणा। वत

धनदोसि यद्यपि तु रूपे करी धनदसरिखोछे ललीत विलासेन नल कूवेरो देवविशेषोसिजो तु विलासे करी नल कूबेर सरिखोछे तथापि त्वा न वांछामितोपिणहु तुझने वांछु नही यदि त्व साचात् पुरंदर जो तु साचात् इंद्रतो पिण तुझने न वांछु ४१ प्रस्कंदति ज्वलत योति अग्नि बलतो आगमाहिप इसे धूमकेतु दुरासद धूम्राडोपिडछे दुस्सहछे एहवो अग्निसहे पर वान्त भोक्तु न इच्छति पणिवस्यु फिरीलेवानहीडे अगधन कुले समुत्पन्ना सपा अगधन कुले उपनासर्प ४२ धिगस्तु पुरुषत्व तवहे अयश कामिधिक्कारताहरा पुरुषाकारने यदि त्व जीवित कारणात् जो तु जीवित

उ०टीका
अ०२२
६७८

तव्यं धिग् इत्यर्थ यस्त्वं असंयमजीवितव्य कारणात् वां तं वद्नान्निस्तमाहारं पुनरापातु भोक्तु इच्छसि दीर्घां गृहीत्वा भोगान्त्यक्त्वा पुनर्भोगान् भोक्तु इच्छसि अतः कारणात् ते तव अस्मात् असंयम जीवितव्यात् पण्डितमरणेन मरणं श्रेयः कल्याणकारणं भवेत् न पुनस्तवभोगाभिलाष श्रेय स्करइति भावः ४३ [अह च भोगरायस्स तं च सिअन्धगवण्हिणो मा कुले गन्धणा होमो सञ्जमेनिहुओचर ४४] राजीमती वदति हे रथनेमे अहं भोगराजस्य उग्रसेन भूपस्य पुत्री अस्मि च पुनस्त्वं अन्धक वृष्णेः समुद्रविजयस्य पुत्रोसि तस्मात् आवां गन्धनी गन्धन कुलोत्पन्नौ सर्पौमाभूव न भवाव यतो हि गन्धनं कुलोत्पन्नः सर्पोवां तं विषं पयात् छाति तद्वत् आवाभ्यां वां ताः भोगाः पुनर्नवाञ्छनीयाः यतो हि सर्पाः द्विविधाः अगन्धन कुलोद्भवाः गन्धनकुलोद्भवाय यदाहि कस्य चित्पुरुषस्य सर्पोलगति तदा मन्त्र वादिनोऽग्नि ज्वालयित्वा मन्त्रेण सर्पान् आकर्षन्ति तत्र च गन्धन कुलोद्भवाः स्वविषं पश्चात् छन्ति अगन्धन कुलोद्भवास्तु अग्नौ ज्वलन्ति न पुनर्वांत विषं पश्चात् छन्ति तस्मात् आवां अगन्धन कुलोत्पन्न सर्पतुल्यौ भवाव इति भावः तस्मात्त्वं इदानीं संयमेचारिन्निःस्वतोनिश्चल सन् वरसाधुमार्गे विचरइत्यर्थः ४४ [जइतं काहिसि भावं जाजादिच्छसि नारीओ वाया

सूत्र

इच्छसि आवेउं सेयंते मरणंभवे ४३। अहंच भोगरायस्स तंचसि अंधगवण्हिणो। माकुलेगंधणाहोमा संजमं निहुउ

भाषा

व्यजे अर्थे पापसेवु वांछेछे त्वं वांतं इच्छसि भोक्तुं तुं वम्यो आहार खावो वांछेछे तव मरणं श्रेयः भवेत् तुझने मरण भलोछे ४३ अहं पुन भोग राज्यस्य उग्रसेनस्य सुतास्मि हुं उग्रसेननी बेटीछु त्वमसि पुनः अंध विष्णोसुतः तुं छे अंध विष्णुनी बेटोमां आवां गधनकुले भवाम आपणगधन कुलना सर्प सरिखामतहुवा सयम निभृतः स्थिरः सन् चरतिणि कारणिं तूं निश्चलहोय संयमपालवारें विचार ४४ जदि त्वं करिष्यसि भावं जो तुं भावकरी

विडोव्वहडो अ‌ट्ठि अप्पाभविस्ससि ४५] हे मुने यदित्वं भव भोगाभिलाषं करिष्यसि यां यां नारोद्रक्ष्यसि अथात् या यां सुरूपां नारीदृष्ट्वा भोगाभिलाष करियसि तदा त्वं अस्थिरात्मा अस्थिरचित्तो भविष्यसि कइव वाविडोहठ इव हठोवनस्पति विशेष शेवाल यथा पानीयो परिशेवालो वातेन प्रेरितो ऽस्थिरोभवति तथात्वमपि अतिरूपवती कामिनी दृष्ट्वा कामाभिलाषीसन् अस्थिरचित्तो भविष्यसि ४५ (गोवालो भण्डवालो वा जहातद्दव्वनिस्सरो एव अणिस्सरोत पिसामन्नस्सभविस्ससि ४६) हे मुने तथात्वं अपि यामण्यस्य साधुधर्मस्य अनीश्वरो भविष्यसि भोगाभिलाष करणे न स यमफलस्य अभोक्ता भविष्यसि क इव गोपाल इव वा अथवा भण्डपाल इव गा पालयतीतिगोपालोगोरक्षक उदर पूरणार्थं परकीयगोचारक पुनर्भाण्डानि परकीय क्रयाणकवस्तू निभाटकादिना पालयतीति भाण्डपालक गोपालोगवां स्वामीन भवति तद्रक्षणात् उदर पूर्त्ति मात्र फल भाक स्यात् नतुगवां स्वामित्व

घर ४४ ॥ जइतंकाहिसिभावं जाजादिच्छसि नारीओ। वायाविद्धोव्वहडो अट्ठिअप्पा भविस्ससि ४५। गोवालो भंड वालोवा जहा तद्दव्वणिस्सरो। एवं अणिस्सरोतंपि सामन्नस्स भविस्ससि ४६। कोहमाणं निगिण्हित्ता मायं लोभंच

समनसाधरोस यायाद्रक्षसि नारी जे जे रूपवंत स्त्रीने देखीने तदावात विडोहठेव हवेव जिम वायरे करीने सेवालपरतु परज फीरे जोडवीना अस्थि रात्मा भविष्यसि ते हवनोपरितु पिण अस्थिरात्मा होयिस ४५ यथा गोपाल भांडपाल जिम गोवालिया अने क्रियाणानो पालकर खवालो यथा द्रव्यस्य अनीश्वरोभवति जिम ते द्रव्यनो धणी न होइ केवल रखवालोहोइ वीलसवानो रखवालीनहोथाइ एव अनिश्वरस्त्वमपि इम अनीश्वर अठाकुरतु पणि यामवस्य चारित्रस्य भविष्यसि तिम चारित्र अठाकुर चारित्र रहितथासी ४६ क्रोध मान च जित्वा क्रोधमान वसिकरी जीता माया मृषावाद

फलभाक् तथा पुनर्भाण्डपाल: क्रयाणकाधिपेन क्रयाणकरचार्थं रचित: पुरुष: क्रयाणकानां ईश्वरत्वफलभाक् न भवति उदरपूर्त्तिमात्र फल भागेव भवति ईश्वर फलभाक् तु अपर एव तथात्व मपि श्रामण्यवेषधारकत्वेन द्रव्य धर्मपालकत्वात् उदर पूर्त्ति फलभाग् वर्त्तते नतु भाव धर्मफलस्य मोक्षस्य ईश्वरीभविष्यसि इति भाव: ४६ [कोहं माणं निगिण्हित्ता मायं लोभं च सव्वसो इन्दियाइं वसेकाउ अप्पाणं उवसंहरे ४७] [तीसेसीवयणं सुच्चा सञ्जयाएसु भासियं अ॒ुसेण जहानागो धम्मे सम्पडिवाईओ ४८] युग्मं सरथनेमि: इन्द्रियाणि वशीकृत्य आत्मानं उपसंहरति स्थिर करोति विषयेभ्योनिवारयति किं कृत्वा क्रोधं मानं मायां च पुन सर्वथालोभं निगृह्य अत्यन्तं जित्वा एवं रथनेमि: आत्मानं धर्मे दृढ्वकार एतदेवोक्तं दृष्टांतेन दृढयति तस्या: राजीमत्या: सञ्जत्या: साध्वा' सुभाषितेन सरथनेमि: पूर्वं धर्माद्भ्रष्टो धर्मे सम्पृति पातित: धर्ममार्गेस्थापित: केनकइव अङ्कुशेन नागइव यथा अङ्कुशेन नागोहस्तीमार्गाद्भ्रष्टो मार्गेस्थाप्यते तथारथनेमि रपि ४८ (मणगुत्तो वय गुत्तो काय गुत्तोजिइंदिओ सामन्नं

सूत्र

सव्वसो। इंदियाइं वसिकाउ अप्पाणं उवसंहरे ॥ ४७ ॥ तीसेसो वयणं सोच्चा सजयाए सुभासियं। अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ ४८ ॥ मणगुत्तो वइगुत्तो कायगुत्तो जियंदिओ। सामन्नं निच्चलं फासी जावज्जीवं

भाषा

सर्वथा: माया लोभं च सर्वत: इंद्रीयाणी वशीकृत्वा पांचइंद्री वसिकरीने आत्मानं उपसंहरेत् संचरेत् आपणो आत्माने भोगथी संवरी ४७ तस्या राज्यमत्या वचनं रथनेमि श्रुत्वा ते राजमति नुं वचन सांभलीने संयत्या सुभाषितं संयती साध्वीनां वचन सांभलीने अंकुशेन यथा नागोहस्ति जिम अंकुशे करी हाथी पाछोफेरे धर्मेश्च प्रतिपादित: तिम राजेमतीइं रथनेमिने पाछो धर्मने विषे आण्यो ४८ अथ रथनेमि मनोगुप्त' वचनगुप्त: मन

निश्चलभासे जावज्जीवं दढव्वए ४८] यदा साधुमार्गे स्थिरोभूत्तदा कीदृशोभूदित्याह मनसागुप्तो मनगुप्त गुप्तमना तथावच सागुप्तो वचोगुप्त गुप्तवाक तथापुन कायेनगुप्त कायगुप्तो गुप्तकाय इति गुप्तित्रयसहित पुन कीदृशो जितेन्द्रिय वशीकृतेन्द्रिय एतादृशो रथनेमियावज्जीव दृढव्रत सन् श्रामण्य चारित्र धर्म निश्चल यथा स्यात्तथाप्रभृति सम्यक क्रियानुष्टानेन पालयति ४८[उग्ग तवचरित्ताण जायादुन्निविकेवली सव्व कम्म खवित्ताण सिद्धिंपत्ता अणुत्तर ५०] अनुक्रमेण तौ द्वौ अपि राजीमती रथनेमी केवलिनौ जातौ किं कृत्वा उग्र अन्यै कर्तुमशक्य तपश्चरित्वा तप' कृत्वा अनुक्रमेणच सर्वाणि कर्माणि क्षपयित्वा पुनस्तौ अनुत्तरां सर्वोत्कृष्टा सिद्धि मोक्षगति प्राप्तौ ५० [एव करंति सवुद्धा पडियापवियक्खणा विणियट्टति भोगेसु जहासे पुरि

सूत्र

दढव्वयो ४८ ॥ उग्ग तव चरित्ताण जाया दोन्निवि केवली । सव्व कम्म खवित्ताण सिद्धि पत्ता अणुत्तरं ५० ॥ एव करतिसवुद्धापडियापडियक्खणा । विणियट्ट ति भोगेसु जहासेपुरिसोत्तमोत्तिबेमि५१॥रहनेमिज्जज्झयणसम्मत्त ॥२२ ॥

भाषा

वचन काया गुप्त काया गुप्तवान् जितेंद्रिय कायागुप्त जीत्याछे इंद्रिय चारित्र निश्चल सेवितथका चारित्र सूधपालवालागी जावज्जीव दृढव्रत मन् जावज्जीव दृढव्रत पालोनीश्चल मनकरी ४८ उग्रतपो अनशनादि कृत्वा उग्रतप करीने जातौद्वावपि केवलिनौ दोइ राजिमती रहनेमी केवलीथया सर्व कर्म क्षपयित्वा सर्व यावधको दोम मुक्त कर्म खपावीने सिद्ध प्राप्तौ सर्व उत्तमां मुक्तिपोहता सिद्ध क्षमा प्रधान ५० एव कुर्वंति ज्ञात तत्वा तत्वना जाण साधु इम करेछे पडिता प्रविचक्षणा पडित शास्त्रना जाण विचक्षण विनिवर्त्त ति भोगेषु भोग थकी निवर्त्तं उसरे यथा सरह नेमि पुरुषोत्तम इति ब्रवीमि जिम रहनेमी भोगथी निवर्त्यो तीमनीवर्त्तीइ ५१ इति द्वाविंशतीतम रहनेमीवक्तव्यता अध्ययन सपूर्ण ॥ २२ ॥

सोत्तमोत्ति बेमि ५१] पंडितास्तत्वमतियुक्ता प्रकर्षेण विचक्षणा विवेकिन: पुरुषा: भोगेभ्यो विशेषेण निवर्त्तते कथंचित् चेतसि विकारे समुत्पन्नेपि पुन: कस्य चिज्ज्ञानवान· पुरुषस्य धर्मोपदेशधारणेन चित्तं निरुध्यभोगेभ्यो निवर्त्तन्ते कइव यथा रथनेमि: पुरुषोत्तम: पूर्वं चञ्चलचित्तो भूत्वा पुनर्धर्मोपदेशात् धर्मे स्थिरचित्तो बभूव तथाऽन्यैरपि निश्चलचित्तैर्भवितव्यं इति न तु चञ्चलचित्तैर्भाव्यं इत्यहं ब्रवीमि श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्रति आह हे जम्बू अहं भगवद्वचसा इति ब्रवीमि ५१ इति रथनेमीय द्वाविंशतितमं अध्ययनं संपूर्णं २२ ॥ अथ त्रयोविंशतितमं अध्ययनं प्रारभ्यते ॥ द्वाविंशतितमे अध्ययने उत्पन्न विश्रोतसि केनापि रतिचरणे विधेयाइति कथित अथ त्रयोविंशतितमेज्ञानिना परेषामपि चित्ते संशयं ज्ञात्वासंशयो दूरीकर्त्तव्य· केशि गोतम वदित्याह । जिणे पासित्तिनामेणं इत्यस्यां गाथायां कतिथोयं पार्श्वनामातीर्थंकर: कस्मिन् भवेचानेन तीर्थङ्करनाम कर्मनिबद्धमिति सकौतुक श्रोतृ वैराग्योत्पादनार्थं पार्श्वनाथचरित्र मुच्यते इहैव जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे पोतनपुर नगरेऽरविंदो नाम राजा तस्य विश्वभूतिर्नामा पुरोहित स श्रावकोस्ति तस्य द्वौपुत्रौ कमठोमरुभूतिश्च तयो· क्रमेण भार्या वरुणावसुन्धरा च तयो कमठमरुभूत्यो: शिरसि गृहकार्यभारं विन्यस्य स्वयंधर्मं कुर्वाण· क्रमेण कालं कृत्वा विश्वभूतिर्देवलोकगत: तद्भार्याऽनुद्धरी विशेष तप:करणेन शोषित शरीरामृता कमठोपिकृत मातृपितृ प्रेतकर्म: पुरोहितोजात· मरुभूतिरपि प्रायो ब्रह्मचारीकृतोद्यत: सम्यक्: तस्यभार्या मनोहरोङ्गेदं दृष्ट्वा कमठस्य चित्तस्खलितं तां सविकार लोचनाभ्यां पश्यति सापि कामविरहमसहंतो तंसविकार पश्यति उभयोर्भृश रङ्गोल्लासे अनाचार प्रवृत्तिर्जाता मरुभूतिना सामान्यतो ज्ञाता विशेषज्ञानायतस्या: कमठस्य च पुरोहं ग्रामान्तरं यास्यामीत्युक्त्वा निजमन्दिराद्बहिर्गत्वा संध्यासमये कार्पटिकरूपं कृत्वा स्वरभेदेन कमठं प्रत्येयंबभाणहोमहानुभाव निराहारस्य मम शीतत्राणाय किञ्चिन्निवातस्थानं देहि अविज्ञात परमार्थेन कमठेन भणितं अहो कार्पटिक अत्र चतुर्हस्तमध्ये स्वच्छन्दं निवस ततस्तत्र रात्रौ स्थितो मरुभूतिस्तयो·

सवमनाचार स्वरूपमालोक्य द्यापरवशोजात परलोकापवाद भीरुत्वान्न तयो प्रतीकार चकार प्रभाते च राजान्तिके गत्वा सर्व तयो स्वरूप यथा स्थित माख्यातवान् राज्ञा च कुपितेन समादिष्टा स्व पुरुषा तेडडमास्फालन पूर्वं गर्दभारोपित शरावमाल खरारूढ कमठ सर्वतोनगरे भ्रामित भ्रातृजाया भोगकार्योयमिति जनानां पुरोनिर्घोष कृत्वा स नगरान्निष्कासित तत सञ्जातामर्षो कमठोपि समुत्पन्न गुरुवैराग्यो गृहीत परिव्राजक लिङ्गो दुस्तरतप करोति तद्वृत्तान्त ज्ञात्वा मरुभूति स जातपश्चात्ताप स्वापराधक्षामणाय तस्यान्तिके गत्वा पादयो पपात कमठोपि तदानीं समुत्पन्न पूर्ववैरोल्लासेन मरुभूतमूर्द्धोपरि महाशिला पातितवान् ततो मरुभूतिस्तस्या पाणिप्रहारेण अरटन् काल कृत्वा विंध्याचले यहुयूथाधिपति करी समुत्पन्न इतश्च अरविन्दराजा कदाचित् शरत्काले स्वान्त पुरप्रासादोपरिस्थित क्रीडन् शरदभ्रस्य स्निग्ध प्रच्छादित नभस्तल मनोहर ददर्श पुन स्तत्क्षणा देववायुना विलीन तदभ्र पश्यन् दृष्टा तावत्क्षणे सर्वेषा भावाना क्षणभंगुरता भावयन समुत्पन्नावधिज्ञान परिजनेन भ्रियमाणोपिदत्त निज पुत्र राज्य प्रतपित अन्यदा स राजर्षि विहरन् सागरदत्त सार्थवाहेन सम समेत शिखरचैत्य वन्दनार्थ प्रस्थित सागरदत्त सार्थवाहेन पृष्ट भगवान क्व गमिष्यसि यतिना उक्त तीर्थयात्राया सार्थवाहेनोक्त कीदृशो भवता धर्म मुनिना कथितो दयादान विनयमूल स विस्तरस्तस्य धर्म त श्रुत्वा स सार्थ नाह श्रावकोजात क्रमेण महाटवी प्राप्त यत्र सोमरभूतिजीव करीजातोस्ति तत्र महासरोवर दृष्टा तत्तीरेसार्थं उत्तीर्णं अत्रान्तरे तस्मिन्नेवसरसि बहु हस्तिनी परिवृत स करीन्द्रजलपानार्थमागत जल स विलास पीत्वा पालमारूढ सर्वेन चतुर्विक्षिपन सार्थं दृष्टा तद्विनाशनार्थं त्वरित धावित त च तथा गच्छन्त दृष्टा सार्थजनाइतस्तत प्रणष्टा मुनिस्तु अवधिना ज्ञात्वा स्वस्थानेस्थित कायोत्सर्गेण तेन करिणा सर्व सार्थप्रदेश भ्रमता दृष्ट स महामुनि तदभि मुख स धावित आसन्न प्रदेशेगत्वा त पश्यन उपशान्त कोपोनिश्चल स्थित तथा रूप त दृष्टा तत् प्रतिबोधनार्थं पारितकायो

त्सर्गी मुनिरिव मूर्छेभोसष्णूनिकि नल स्मरसि मां मारविन्दनरपतिं आत्मनः पूर्वभवं वा एतत्ता नि वच श्रुत्वा स करीसञ्जातजाति स्मरश्च. पतितो मुनि चलनेषु मुनि नापि स विशेष देशनाकरण पूर्वं स श्रावका जातः ततः प्रणम्य स करी स्वस्थानं गतः मध्यांतरे उपशान्तं तं करिणं दृष्ट्वा साश्चर्यः सार्थजन पुनस्तत्र मिलितः प्रणम्य मुनि चरण युगलं प्रतिपन्नवान् दयामूलं श्रावकधर्मं ततः जात हार्द्यः सर्वोपि सार्थोमुनिश्च स्वस्वाचारनिरतो विजहारः इतश्च स कमठ परिव्राजकोमरुभूतविनाशने नापि प्रनिवृत्तवैरानुबन्धोनिजायुःक्षये मृत्वा समुत्पन्नः कुर्कुटसर्पः वन्यापने परिभ्रमता तेन दृष्टः स हस्ती पङ्कनिमग्नः पूर्ववैरोल्लासेन कुम्भस्थलेनदृष्टः तद्विषवेदनामनुभवन्नपि श्रावकत्वात् चनावान् मृत्वा समुत्पन्न सहस्रारकल्पे देव कुर्कुटसर्पोपि तस्मिन् समये मृत्वा सप्तदश सागरोपमायु. पञ्चमनरकपृथिव्यां नारक सञ्जातः इतश्च सहस्ति देवश्च्युतः इहैवजम्बूद्वीपे पूर्वविदेहेकच्छ विजये वैताढ्य पर्वते तिलकनगर्यां विद्युद्गति विद्याधरस्य भार्यायां कनकतिलकायाः किरण वेगोनाम पुत्रोजातः सच तत्र क्रमागतः राज्यमनु पाल्यसुगुरुसमीपे प्रव्रजित एकलविहारी चारण श्रमणोजातः अन्यदा आकाशविहारिणः सगतः पुष्करद्वीपे तत्र कनकगिरि सन्निवेशेकायोत्सर्गेण स्थित किञ्चित्तप कर्तुमारब्धः इतश्च स कुर्कुटसर्पजीवो नारका दुद्वृत्यः तस्यैवकनकगिरे समीपं सञ्जातोमहोरगः तेन स मुनिः दृष्टोदष्टश्च विधिना काल कृत्वाच्युतकल्पे जम्बुमावर्त्तविमाने देवोजातः सोपि महोरगः क्रमेण कालं कृत्वा पुनरपि सप्तदशसागरायुः पञ्चम पृथिवी नारकोजातः किरण वेगदेवोपि ततश्च्युत्वा इहैवजंबूद्वीपेऽपरविदेहे सुगन्धविजये शुभङ्करानगर्यां वज्रवीर्यराजोजिसतायाभार्यायावज्रनाभनामापुत्रः समुत्पन्नः सोपि तत्र क्रमागत राज्यमनुपाल्यदत्तचक्रायुधनामस्व पुत्र राज्यः क्षेमं करजिन समीपे प्रव्रजित तत्र विविधतपो विधानेन वहुलब्धि सम्पन्नोगतः सुकच्छविजयं तत्राप्रतिवद्ध विहारेण विहरन् सम्प्राप्तोज्वलनगिरि समीपं दिनेस्तमिते तत्रैव कायोत्सर्गेणस्थितः प्रभाते ततश्चलितोटव्यां प्रविष्टः

इतय समहोरगनायक पञ्चम पृथिवीत उद्वृत्यकिय त ससारभ्रान्त्वातस्तैवज्वलनगिरि समीपे भीमाटव्यां जातोवनेचरयण्डाल तेनाखेटकनिमित्त निर्गच्छताहृष्ट प्रथम स साध तत पूर्वभव वैरवशतोऽपशकुनेयमिति कृत्वा वाणेन विद्व तेन विधुरीकृतवेदनो विधिनामत्वावज्वनाभोमनिर्मध्यम ग्रैवेयके ललिताङ्गोनाम देवोजात सोपि चाण्डालवनेचरस्त विपन्न महामुनि दृष्टाऽद्योह मया धनुर्धरइति मन्यमानोनिकाचित क्रूरकर्माकालेन मृत्वा सप्तमी नरकेनारकत्वेन समुत्पन्न वज्रनाभदेवस्ततश्यत इहैवजम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे पुराणपुरेकुलिशबाहुराज्ञ सुदर्शनादेव्या कनक प्रभोनाम पुत्रोजात स चक्रमेण चक्रवर्त्तीजात अन्यदा प्रासादो परिसंस्थितेन आकाशे निर्गच्छन देवसङ्घातो दृष्ट तद्दर्शनादेव विज्ञात जगन्नाथतीर्थकरागम स्वय निर्गतस्तद्वन्दनार्थं वन्दित्वा च तत्रोपविष्टस्य तस्य पुरतो भगवतादेशनाकृता ता च श्रुत्वाहृष्टचक्रवर्त्तीवन्दित्वा स्व नगर्या प्रविष्ट अन्यदाकनक प्रभनामा चक्रवर्त्तीता तीर्थं करदेशनो भावयन् जातजातिस्मरण पूर्वभवान् दृष्ट्वा भव विरक्तचित्त प्रव्रजित इतश्च स क्रमेण विहरन् सौचीरवनाटव्यां क्षीरपर्वते सूर्याभिमुखकायोत्सर्गेणस्थित इतश्च स चाण्डालवन चरस्ततो नरका दुद्वृत्यस्तस्यामेवाटव्या क्षीरपर्वतगुहायां सिंहोजात स च भ्रमन् कथमपि सप्राप्त मुनिसमीपे तत समुच्छलित पूर्व वैरण तेन विनाशित समुनि समाधिनाकाल कृत्वा निबद्धतीर्थं करनाम यामी प्राणतकल्पे महाप्रभोविमाने उत्पन्नोविंशति सागरोपमायुर्देव सोपि सिंहो बहुल ससार भ्रान्त्वाकमवशाद्ब्राह्मणोजात तत्रापि पापोदयवशेनजातमात्रस्य पितृ मातृ भ्रातृ प्रमुख सकलोपि स्वजनवर्ग क्षय गत स च दयापरेण लोकेन जीवित सप्राप्त यौवनोपि कुरूपो दुर्भगोदु खेन वृत्ति कुर्वन् वैराग्य मुपगतोवने कन्दमूल फलाहारस्तापसोजात करोति बहु प्रकार अज्ञान तपोविशेष इतश्च स कनक प्रभ चक्रवर्त्ति देव प्राणतकल्पात् चैत्र कृष्ण चतुर्थ्यां च्युत्वा इहैवजम्बूद्वीपे भारते क्षेत्रे काशीदेशेवाराणस्या नगर्या अश्वसेनस्य राज्ञो वामादेव्या कुक्षौमध्यरात्रि समयेविशाखानक्षत्रे त्रयोविंशति

तमतीर्थं करत्वेन समुत्पन्न तस्यामेव रात्री सावामादेवी चतुर्दंश स्वप्नान् ददर्शनिवेदयामास च राज्ञः तेनापि राज्ञा अतीवानन्दमुद्वहताभणितं प्रिये सर्वलक्षण सम्पूर्णं सूरः सर्वकलाकुशलस्तव पुत्री भविष्यति तद्वच श्रुत्वा सुष्टुतरं परितुष्टामा प्रभाते च राज्ञा स्वप्नपाठकाना ह्ययतान् ययार्था नाचख्यौ तेपि पूर्णं स्वप्नाध्याय सविस्तरमाख्याय चतुर्दंश स्वप्नानां फलमेवाहुः तीर्थंकरमाता चक्रवर्त्तिमाता वा एतांश्चतुर्दंशस्वप्नान् पश्यति ततोस्याः कुक्षौतीर्थं करश्चक्री वासमुत्पन्नोस्तीति स्वप्नानुसारेण पूर्णेषु मासेषु गर्भवेलायां भगवान् जातः षट् पञ्चाशद्दिक् कुमारीभिर्जन्ममहोत्सवः पूर्वं कृतः ततः स्वासनकम्पाद्विज्ञात भगवज्जन्माभिषेक शक्रैर्मेरुशिरसि जन्माभिषेक कृत प्रभाते चाश्वसेनोपि नगरान्तर्द्गाढ़िकोत्सवं कृतवान् अस्मिन् गर्भस्थिते भगवति जनन्या पार्श्वेगच्छन् सर्पोरात्री दृष्ट स्ततोस्य पार्श्व इति नाम कृतं तत. कल्पतरुवज्जनानन्दक स भगवान् वृद्धिं प्राप अष्टवार्षिकश्च भगवान् सर्वकलाकुशलो बभूव अथ भगवान् सर्वगनोहर यौवनं प्रापपित्रा च तदानीं प्रभावतीं कन्या परिणायितः भगवान् तया सम विषयसुखं बभुजे अन्यदा भगवता प्रासादो परिगवाक्षजालस्थेन दिगावलोकनं कुर्वता दृष्टोनगर लोक. प्रवर कुसुमहस्तो बहिर्गच्छन् पृष्टं च भगवता कैश्चित्पार्श्ववर्त्तिन भो किमद्यकश्चित्पर्वोत्सवोस्तियेनेपजनः पुष्पहस्तो बहिर्गच्छन्नस्ति तेन पुरुषेणोक्तं प्रद्यकोपि पर्वोत्सवोनास्ति किं तु कमठोनाम महातपस्वी पुरीवहिः समागतोस्ति तद्वन्दनार्थं प्रस्थितोयंजनः ततस्तद्वचनमाकर्ण्य जातकौतुक विशेषो भगवान् तत्र गतः पञ्चाग्नितपः कुर्व्वाणः कमठ दृष्टवान् त्रिज्ञानवताभगवताज्ञात एकस्मिन्नग्नि कुण्डे प्रक्षिप्तातीवमहत् काष्टमध्ये प्रज्वलन् सर्पः उत्पन्न परमकरुणेन भगवताभणितं अहो अकष्टमज्ञान यतो दृशेपि तपसि क्रियमाणेदया न ज्ञायते तत कमठेन भणितं राजपुत्राः कुञ्जर तुरतान्मेव जानन्ति धर्मन्तु मुनयएव विदन्तीति ततो भगवता एकस्य स्वपुरुषस्य एवमादिष्टम् अरे अदमग्निमध्ये प्रक्षिप्त काष्टं कुठारेण द्विधाकुर्वतेन पुरुषेण

तत्काष्ट द्विधाकृत तत्र दृष्टो दह्यमान सर्प तस्य भगवता स्व वदनेन पञ्चपरमेष्टि नमस्कारा प्रदापिता नागोपि तत्प्रभावान्मृत्वा समुत्पन्नो नागलोके धरणेन्द्रोनाम नागराजा लोकैश्च अहो भगवतो ज्ञानशक्तिरिति भणद्भिर्महान सत्कार कृत ततोविलक्षो भूत कमठ परिव्राजको गाढमज्ञान तप कृत्वा मेघकुमार निकायमध्ये समुत्पन्नो मेघमाली नाम भुवनवासी देव अन्यदा सुखेन तिष्टन्तो भगवतो वसन्तसमय समागत तद्ज्ञापनार्थम उद्यानपालेन सहकार मञ्जरी भगवत समर्पिता भगवता भणित भोकिमेतत् स आह भगवन् बहुविध क्रीडा निवासो वसन्तसमय प्राप्त ततो विज्ञप्ते इति श्रीपार्श्वकुमारो वसन्तक्रीडा निमित्त बहुजन परिवार समन्वितो यानारूढो गतो नन्दन वन तत्र याना त्समुत्तीर्यनिषसो नन्दनवन प्रासाद मध्यस्थित कनकमयसिंहासने अतिरमणीय नन्दनवन सर्वत पश्यन भित्तिस्थ परम रम्य चित्र दृष्ट्वा अहो किमत्र लिखित ज्ञानमिति सम्यग निरूपयता भगवता दृष्टम् अरिष्ट नेमि चरित्र ततश्चिन्तितु प्रहस्त धन्य सोऽरिष्ट नेमिर्यो विरसावसान विषयसुखस्तोक त्यक्त्वा निर्भरानुरागा निरुपमरूपलावण्या जनकवितीर्णा राजकन्याञ्च त्यक्ता भग्नमदनमण्डल प्रचार कुमारएव निष्क्रांत ततोऽहमपि करोमि सर्व सङ्ग परित्यागम् अत्रान्तरे लोकान्तिकादेवा स्तत्रागत्य भगवन्त प्रतिबोधयन्तिस्म ततो मार्गणगणस्य यथेप्सित साम्वत्सरिक दान दत्वा भगवान मातृपिता वनुमया महामह पूर्वम आश्रम पद्योद्यानेऽशोकपादपस्याध पौषकृष्णैकादशीदिने पूर्वाह्नसमये पञ्चमौष्टिक लोच कृत्वा अपानकेन अष्टम भक्तेन एक देव दूष्यमादाय त्रिभि पुरुषशतै सम निष्क्रांत अथ श्रीपार्श्वो भगवान् विहरन्नेकदावटपादपाध कायोत्सर्गेणस्थित इतश्च सकमठजीवो मेघमाली असुरोवधिना ज्ञात्वा आत्मनो व्यतिकर स्मृत्वा च पूर्वभव वैरकारण समुत्पन्न तीव्रामर्ष समागत स्तत्र प्रारब्धा स्तेनानेक सिंहादिरूपैरनेके उपसर्गा तथापि भगवान् श्रीपार्श्वोऽक्षुब्धो धर्मध्यानान्नचलित तादृश त ज्ञात्वा कमठए वर्षितयामास अह मेन जलेन प्लावयित्वा मारयामीति ध्यात्वा भगवद्

परिष्टान्महामेघ वृष्टिकार जलेन भगवदङ्ग' नासिकां यावद्यागम् पतान्तरे कम्पितासनेन धरणेन्द्रेण अवधिनाज्ञात भगवदातिकरणसमागत्य स्वामि शीर्षोपरि फणि फणाटोपं कृत्वा फणि शरीरेण भगवच्छरीर माकुल जलोपसर्गा निवार्य भगवत्पुरो वेणु वीणा गीत निनादैः प्रवर प्रेक्षणं कर्तुमारब्ध वान् कमठा सुरस्तादृशम् सक्षोभ्यं भगवन्तं धरणेन्द्रकृत महिमानं दृष्ट्वा समुपगाक्त दर्पो भगवदरणौ प्रत्यगतो निजस्थाने धरणेन्द्रोपि भगवन्तं निरुपसर्गं ज्ञात्वा स्तुत्वा च स्वस्थानं गतवान् पार्श्वनामिनो निजनगरीमागत्याश्रमपदोद्याने धातकीतरु तले दीक्षा दिनादारभ्य चतुरशीतिदिनानि छद्मस्थपर्यायं पालयित्वा चैत्र कृष्ण चतुर्थी दिने विशाखा नक्षत्रे दिवसस्य पूर्वार्द्धे अष्टमभक्तेन पूर्वाभिमुखेऽशोक तरोरधः शिलापट्टे सुख निषण्णस्य शुभध्यानेन घातिकर्म चतुष्टयस्य क्षयात् केवल ज्ञानं समुत्पन्नं चलितासनैः शक्रैः समागत्य केवल ज्ञानोत्सवो महान् कृतः पार्श्वार्हन् सप्तफणा लाञ्छनो वामदक्षिणपार्श्वयोर्धरणेन्द्र पद्मावतीभ्यां समन्वितः प्रियङ्गु वर्णः नवहस्त शरीरो भव्यजनान् प्रतिबोधयन् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेत पृथिवीमण्डले विहरति पार्श्व भगवतो दशगणा गणधरा अभवन् आर्यदिन्न प्रमुखा षोडशसहस्र साधवोऽभवन् पुष्पचूला प्रमुखा अष्टत्रिंशत्सहस्रार्यिकाऽभवन् सुनन्द प्रमुखाः श्रमणोपासकाः एकलक्षं चतुःषष्टिसहस्राणि अभवन् सुनन्दाप्रमुखाः श्रमणोपासिका लक्षत्रयं सप्तविंशतिसहस्राश्चाऽभवन् सार्द्धत्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्वीणाम् अभवन् अवधिज्ञानिनां चतुर्दशशतानि केवलि ज्ञानिनां दशशतानि वैक्रियलब्धिमतां एकादशशतानि विपुलमतीनां सार्द्धं त्रीणिशतानि वादिनां षट्शतानि अन्तेवासिनां दशशतानि सिद्धानि शतानि आर्यिकाणां विंशतिशतानि सिद्धानि अनुत्तरोपपातिकानां द्वादशशतानि अभवन् श्रीपार्श्वनाथस्य एतावान् परिवार सम्पदा अभवत् ततः पार्श्वो भगवान् देशोनानि सप्ततिवर्षाणि केवल पर्यायेण विहृत्य एकं वर्षशतं सर्वायुः परिपाल्य संमेत शिखरे ऊर्द्ध्वस्थितध्यानः कृतपाणि निर्वाणमगमत् तदनन्तरं संस्कारोत्सवः शक्रादिभि कृतैव विहित इति पार्श्वनाथ चरित्रम् ॥ अथ सूत्रं [जिणे पासित्तिनामेण अरहा लोगपूइए संबुद्धप्पा सव्वन्नू धम्मतित्थयरेजिणे १] पार्श्व इति नाम्नाऽर्हन् अभवत् तीर्थ

करोभूत् कोदृश स जिन परोषहोपसर्गजेता रागद्वेषजेतावा पुन कोदृश स पार्श्व जिनोलोक पूजित लोकेन त्रिजगता अर्चित पुन कथभूत स सम्बुद्ध्या सबुद्धात्मा तत्वाव बोधयुक्तात्मा पुन कोदृश स पार्श्व सर्वज्ञ पुन कोदृश पार्श्व धम्मतीर्थंकर धम्मएव भवां बुधितरणहेतुत्वात्तीर्थं धर्म्म तीर्थं करोतीति धर्म्मतीर्थ कर पुन कोदृश जयतिस्म सर्वकर्म्माणीति जिन द्वितीय जिन विशेषणं श्रीपार्श्वस्य मुक्ति गमन सूचित तदाहि श्रीमहावीर प्रयच तोर्थंकरो विहरति श्रीपार्श्वनाथस्तु मुक्ति जगामेतिभाव १ [तस्सलोगपईवस्स आसिसीसे महायसे केसीकुमार समणे विज्जाचरण पारगे २] तस्य लोक प्रदीपस्य श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरस्य केशीकुमार शिष्य आसीत् कुमारोहि अपरिणीत तथा कुमारत्वेन एव श्रमण सगृहीत चारित्र कुमार श्रमण केसिकुमार श्रमण कथभूत स महायशा महाकीर्त्तिं पुन कीदृशो विद्याचरणपारग ज्ञानचारित्रयो पारगामी २ [ओहि

जिणे पासित्ति नामेण अरहालोग पूइए। सबुद्धप्पाय सव्वणू धम्मतित्थयरेजिणे १॥ तस्स लोगपईवस्स आसिसीसे महायसे। केसीकुमार समणेविज्जाचरणपारगे २॥ ओहिणाण सुएवुद्धे सिस्ससघ समाउले। गामाणुगाम रीयते।

जिन परोसह उपसर्गानो जीपणहार पार्श्व एहवे नामे अरिहत कर्म्मरूप वयरीयानो हरणहार भव्यलोके पूजणहार अलोपरि तत्वनोजाणणहारछे आत्मानेवलीसर्वज्ञ धम्मतीर्थनो करणहार जिण वीतराग केवली १ तस्य लोकप्रदीपस्य तेह पार्श्वनाथ लोकप्रदीपनेश्राश्रीत् शिष्यो महायशा एकशिष्यछे महायशनोधरणहार केशीकुमारश्रमण केशीकुमार श्रमणछे ज्ञान चारित्र पारगामी ज्ञानदर्शनचारित्र तेहनो पारगामी २ अवधिज्ञानश्रुताभ्यां ज्ञात हेयोपादेय अवधि ज्ञानश्रुत ज्ञान करी सर्वजाणेछे सोथस्स सभाकुल घणाशिष्यछे जेहने ग्रामानुग्राम विहरन ग्रामानुग्रामि विहार करता यावस्था

नाणसुए वुडे सोसमहसमाजले गामाणुगामं रीयते सावत्थिं नगरिमागए ३] स केशीकुमार श्रमण श्रावस्त्यां नगर्य्याम् आगतः किं कुर्वन् ग्रामानुग्रामं रीयन्ते इति ग्रामानुग्रामं विचरन् कीदृशः श्रोहिनाणसुए वुडे इति अवधिज्ञान श्रुताभ्यां बुद्धोऽवगत तत्वः मति श्रुतावधिज्ञानसहित पुन कीदृशः शिष्य सघसमाकुलः शिष्यवर्गसहित. ३ (तिंदुयंनाम उज्जाण तम्मीनयरमण्डले फासुए सिज्जसंथारे तत्थवास मुवागए ४) स केशीकुमार श्रमणस्तत्र श्रावस्त्यां नगर्यांतस्याः श्रावस्त्या नगरमण्डलेपुर परिसरेतिंदुकं नाम उद्यानं वर्त्तते तत्रोद्याने प्रासुके प्रदेशे जीवरहिते शय्यासंस्तारे वास उपागतः शय्यावसति स्तस्यां संस्तार सय्यासंस्तारस्तस्मिन् समवस्तृत इत्यर्थः ४ [अहतेणेव कालेण धम्मतित्थयरेजिणे भगवं वद्धमाणेत्ति सव्वलोगम्मिविस्सुए ५] अथ शब्दो वक्तव्यांतरोपन्यासे तस्मिन्एवकाले धर्म तीर्थंकरोजिनो भगवान् श्रीवर्द्धमान इति सर्वलोके विश्रुतोभूत् ५ (तस्स लोगपईवस्स आसिसीसे महायसे भयवं

सूत्र

सावत्थिं नगरिमागए ३ ॥ तिंदुयं नामउज्जाणं तम्मीनयर मंडले। फासुएसिज्जसंथारे तत्थवास मुवागए ४ ॥
अह तेणेवकालेणं धम्मतित्थयरेजिणे। भगवं वद्धमाणेत्ति सव्वलोगम्मि विस्सुए ५ ॥ तस्स लोगप्पईवस्स आसिसिस्से

भाषा

नगर्यां समागताः सावत्थीनगरीनेविषे आव्या ३ तिंदुक नाम उद्यान ते नगरीने विषे तिंदुकनामे वनछे तत्र श्रावस्त्यां नगर परिसरे सावत्थीनगरीने पासे प्रासुकेशिज्यासंस्तारे फासूसय्या संथारोलेईने तत्र वास उपागते वनमांहिरह्या धर्मध्यानमाहिं वर्त्तेछे ४ अथ तस्मिन् काले हवे एहवा अवसरने विषे धर्म तीर्थं करो जिनो वर्त्तते धर्मतीर्थं कर जिनछे भगवान् वर्द्धमानेतिनामा श्रीवर्द्धमान स्वामी सर्वलोके विख्यातः सर्वलोकने विषे विख्यात वंत ५ तस्य लोक प्रदीपस्य ते लोक प्रदीपनो महावीरनो आशीत् शिष्यो महायशाः श्रूश्री महायशनो धणी शिष्य भगवान् गौतमनाम्ना भगवंत गौतम

गोयमेनाम विज्जाचरणपारगे ६) तस्य श्रीवर्द्धमानस्वामिनो लोक प्रदीपस्य तीर्थंकरस्य गौतमनामा शिष्योभूत् कथभूतो गौतमोमहायशा महाकीर्त्ते पुन कोदृशो गौतम विद्याचरणपारग ज्ञानचारित्रधारी पुन कीदृशो गौतमो भगवान चतुर्ज्ञानीमति श्रुत्यवधि मन पर्याय ज्ञानयुक्त ६ (बारसग विजवुद्दे सोसस घ समाजले गामाणुगाम रीयनेसीविसावत्थिमागए ७) स गौतमोपि ग्रामानुग्राम विहरन् श्रावस्त्यां नगर्यां आगत कोदृशो गौतमो द्वादशागवित् एकादशांगानि दृष्टिवादसहितानि येन गौतमेन सपूर्णानि ज्ञातानीत्यर्थं पुन कोदृशो गौतमो बुद्धो ज्ञाततत्व पुन कीदृश शिष्यसघ समाकुल ७ [कोट्ठगनाम उज्जाण तम्मोनगरमडले फासुए सिज्जसथारे तत्थवास मुवागए ८] तस्या श्रावस्त्या नगर्या मण्डले परिसरे क्रोष्टुक नाम उद्यान वर्त्तते तत्र प्रासुकेशिय्यासन्यारे वास अवस्थान उपागत प्राप्त ८ [केसोकुमारसमणे गोयमेय महायसे उभओवितत्थविहरिंसु अल्लीयास

सूत्र

महायसे भगवगोयमेनाम विज्जाचरण पारगे ६॥ बारसगविजवुद्दे सिस्ससघस माउले। गामाणुगाम रीयतेसीविसावत्थिमागए ७॥ कोट्ठग नामउज्जाण तम्मीनगर मडले। फासुएसिज्जसथारे तत्थवास मुवागए ८॥ केसीकुमार

भाषा

इसेनामि विद्या चारित्रे पु पारगामी विद्याअने चारित्र तेहनो पारगामी ६ द्वादशांगवेत् चतुर्ज्ञानोव्यार अगनोजाण चोनाणी शिष्यसघ समाकुला घणा शिष्यने परिवारे परोवर्यो ग्रामानुग्राम विहरन ग्रामानुग्रामने विषे विहार करता सोपि गौतम श्रावस्त्यां समागत ते गौतम स्वामीपणिसावत्थीनगरी आव्या ७ कोष्टक नाम उद्यान कोष्टकइसेनामे उद्यानछे तस्य नगरस्य परिसरे ते नगरने समीपे प्राशुकेशय्यासस्तारक फासूसिज्जा सथारोलेइने तत्र तीहा वास उपगत ते उद्यानमाहि जसथ्या ८ केशीकुमार श्रमण केशीकुमार साधू गौतमोपि महायशा गौतम महायशनोधणी उभावपि तत्र

समाहिया ८) केशीकुमार श्रमणश्च पुनर्गौतम एतौ उभौ अपि व्यवहार्थौं आगातां कीदृशौ तौ उभौ महायशसौ पुन. कीदृशौ अलीनौमनोवाकाय गुप्तिष्वाश्रितौ पुनः कीदृशौ सुसमाहितौ सम्यक् समाधि युक्तौ ८ (उभओ सीससङ्घाण' सञ्जयाण' तवस्सिण' तत्थचिन्तासमुप्पना गुणवन्ताणताइण' १०) तत्र तस्यां श्रावस्त्यां उभयो· केशिगौतमयो. शिष्य सङ्घानां संयतानां तपस्विनां साधूनां गुणवतां ज्ञानदर्शन चारित्र यतांत्रायिणां षडजीवरक्षाकारिणां परस्परावलोकनात् चिन्तासमुत्पन्ना विचारः समुत्पन्नः१० (केरिसोवाइमो धम्मो इमो धम्मोवकेरिसो आयारधम्मपणिही इमावासावकेरिसो ११) अथ अस्मत्सम्बन्धीधर्म्मः कीदृशः वा इति विकल्पेव शब्दोपिवार्थे वा अथवा अयं धर्मो दृश्यमाणगणभृत् शिष्य सम्बन्धी कीदृश' पुनरय आचारधर्म्म प्रणधिः अस्माक' कीदृशः पुनरेतेषां वा आचारधर्म्म प्रणिधि कीदृशः प्राकृतत्वात् लिङ्गव्यत्यय' आचारो वेषधारणादिको बाह्य क्रियाकलाप स एव धर्मस्तस्य

सूत्र

समणे गोयमेय महायसे। उभओवितत्थविहरिंसु अल्लीणासुसमाहिया ८॥ उभओ सिस्ससंघाणं संजयाण तव स्सिणं। तत्थचिता समुप्पन्ना गुणवंताणताइणं १०॥ केरिसोवाइमो धम्मो इमोधम्मो वकेरिसो। आयार धम्म

भाषा

श्रावस्त्यां विहरंतो केशी गौतमबे जणां विचरेछे मनोवाकाय गुप्ताः सुष्ट् समाधिवंता मनवचन काया गुप्तछे समाधीवतछे ८ द्वयोः शिष्यद्दानां सयं तानां वेजणाना शिष्यने संयतानां सजतोछे तपस्विनां तपस्वीछे तत्र श्रावस्त्यां चितासमुत्पन्नाते सावत्थीनेविषे यतीने चिंता ऊपनी गुणवंता चारित्रने गुणे सहित त्रायिणां सर्वजीवना राखणहारने १० कीदृक् स्वरूपः अय धर्म्म केशी, शिष्यसबंधीएकेहवो धर्म्मछे एषः कीदृक् स्वरूपो धर्म्म गौतमगण भृच्छिष्याणां अने गौतमस्वामीना शिष्यनो एसोउ धर्म्म आचार धर्म्मवेषधारणादि तस्य आचार वेषनो धरवो मांहोमांहि'आंतरोछेसेके इमा पवस्था का

प्रणिधिर्व्यवस्थापन आचारधर्म्म प्रणिधि पृथक २ काय सर्वज्ञोत्तस्य धर्म्मस्तत्साधनानां च भेदेतु जातु इच्छाम इति भाव ११ (चाउज्जामोयजोधम्मो जोइमोपञ्च सिक्खिओ देसिओवडमाणेण पासेणय महामुणो १२) (अचेलगोयजो धम्मो जोइमो सन्तरुत्तरो एककज्जपवन्नाण विसेसो किन्तु कारण १३) पुरुष यथाय चातुर्यामोधर्म्म पार्श्वेन महामुनिनातीर्थंकरेणदर्शित चत्वारय यमाय चतुर्यामास्तत्रयथातुर्याम चातुर्यामिको अहिंसा १ सत्य २ चौर्य त्याग ३ परिग्रहत्याग ४ लक्षणोधर्म्म प्रकाशित यश पुनरय धर्म्मो वर्द्धमानेन पञ्चशिक्षिक पञ्चभिशिक्षितो वा पञ्चभिर्महाव्रतै शिक्षित पञ्चशिक्षित प्रकाशित पञ्चसु शिक्षासुभव पञ्चशिक्षिक पञ्चमहाव्रतात्म अहिंसा १ सत्य २ चौर्यत्याग ३ मैथुनपरिहार ४ परिग्रहत्यागलक्षणोधर्म्म प्रकाशित १३

सूत्र

पणिही इमावासावकीरिसो ११ ॥ चाउज्जामोयजो धम्मो जोइमो पचसक्खिओ । देसिओ वद्धमाणेण पासेणय महा ० मुणी १२ ॥ अचेलगोय जो धम्मो जो इमो सतरुत्तरो । एग कज्ज पवन्नाण विसेसे कितु कारण १३ ॥ अहते तत्थ

भाषा

य अवस्था कोइगो किसवादिनो एमांहोमाहिकेरदोयेछे ११ चातुर्जामो चतुर्महाव्रत धर्मीय देशित च्यारि महाव्रतरूप धर्म्म य पञ्चमहाव्रतरूप देशित शिक्षित अने पञ्चमहाव्रत रूप धर्म्म कह्यो देशित शिक्षित श्रीवर्द्धमानेन श्रीवर्द्धमानस्वामी पञ्चमहाव्रतरूप धर्मदेखाड्यो श्रीपार्श्वनाथेन श्रीपार्श्वनाथे च्यारि महाव्रतरूपधर्म्म देखाड्यो १२ आचेलको मानोपेत वस्त्रयो धर्म्मवीरेण उक्त मानोपेत वस्त्र श्रीमहावीरे कह्या ॥ अंसतरो बहुमूल्य प्रधान वस्त्र श्रीपार्श्वेणोक्त बहुमूल्यप्रमाणोना वस्त्रलेवा श्रीपार्श्वनाथे कह्या एककार्यं प्रपन्नाना एककार्यंनेविषे प्रवर्त्त्याछे विशेष उक्तरूप तत्र किं कारण एकपञ्च महाव्रतवीजे च्यार महाव्रत एवे वचनफेरतेस्यु कारण १३ अथ तत्र शिष्यानांहवे गोतम केशीकुमार आपणा शिष्यनो अभिप्रायजाणीने आला

पुनर्वर्द्धमानेन अचेलकोधर्मः प्रकासित. अचेल मानोपेत धवल जीर्णप्राय अल्पमूल्यं वस्त्रं धारणीयं इति वर्द्धमानस्वामिना प्रोक्तं असत इव चेलं यत्न स अचेलः अचेल एव अचेलक यत् वस्त्रं सदपि असत् इय तत्धार्यमित्यर्थः पुनर्योधर्म्म. पार्श्वेन स्वामिनासान्तरोत्तरः सह अन्तरेण उत्तरेण प्रधान बहुमूल्येन नानावर्णेन प्रलम्बेन वस्त्रेण च वर्त्ततेयः स सान्तरोत्तर. स चेलको धर्म्मः प्रकाशित एककार्ये मुक्ति रूपेकार्ये प्रवृत्तयो. श्रीवीरपार्श्वयो विंशेषे किन्तु कारणं कोहेतुः कारणभेदेहि कार्यभेदसम्भवः कार्यं तु उभयोरेकमेवकारणञ्च पृथक् २ कथमिति भावः कि मिति प्रश्ने तु इति वितर्के १३ (अहते तत्थसीसाणं विन्नाय पवियक्किय समागमे कयमई उभओकेसि गोयमा १४) अथानंतर तयोरुभयोस्तत्र श्रावस्त्या आगमनानन्तरं केशिगौतमौ तौ उभौ समागमे कृतमतो अभूतां किं कृत्वा शिष्याणा चतुर्त्नकानां प्रवितर्कितं विन्नाय विकल्पं ज्ञात्वा १४ (गोयमो पडिरुवन्नूसिस्स सङ्घसमाजले जिट्ठं कुलमविक्खन्तो तिदुय वणमागओ १५) गौतमस्तिन्दुकं वनं आगतः केशिकुमाराधिष्टितं वने आगतः कोद्दशो गौतम प्रतिरूपज्ञ. प्रतिरूपोयथोचित विनयस्तं जानातोति प्रतिरूपज्ञ पुनः कोद्दश शिष्य सङ्घसमाकुलं शिष्य वृन्दसहितः गौतम. किं कुर्वाणः ज्येष्टं कुलं अपेक्षमाण.

सूत्र

सिस्साणं विन्नाय पविय क्कियं । समागमे कय मई उभओ केसि गोयमा १४ ॥ गोयमो पडिरूवसू सिस्स संघ समा

भाषा

प्रथम प्रकृष्ट विकल्पीत जाएसमनु चिंतव्य जे एहने विकल्प जपनोभेद उपनो समागमे मिलने कृत मती मिलवानीं मतिकीधी उभयोः केशि गौतमयोः बेजणे केशीद्र अने गौतमे १४ गौतमः प्रतिरूपज्ञः प्रतिरूपवेत्ता गौतमछे अवसरनो जाणछे शिष्यसंघ समाकुलः सर्वशिष्य पोतानासाथे लेईने ज्येष्ट कुलं पार्श्वसंतानां अपेक्षमाणोगणयन् वडकुल शीपार्श्वनाथनुं जाणीछे तिंदुकवने आगत. श्रीगौतम केशीकुमार पासे तिंदुकवनने विषे

ज्येष्ट इद प्रथम भवनात्पार्श्वनाथस्य कुल सन्तान विचारयत इत्यर्थं १५ [केसीकुमारसमणे गोयमन्दिस्समागय पडि रूव पडिवत्ति सम्मस्स पडि वज्जई १६] केशीकुमार श्रमणो गोतम आगम आगत दृष्ट्वा सम्यक प्रतिरूपा आगताना योग्या प्रतिपत्ति सेवा सम्प्रतिपद्यते सम्यक करोतीत्यर्थं १६ [पलालम्फासुय तत्थ पञ्चम कुसतणाणिय गोयमस्सनिसिज्जाए खिप्प सम्पणामए १७] तत्र तिन्दुकोद्याने एव केशीकुमार श्रमणो गौतमस्य निपद्यायै गौतमस्य उपवेशनाय प्रासुक निर्बीज चतुर्विध पलाल पञ्चमानि कुशतृणानि चकारात् अन्यान्यपि साधुयोग्यानि तृणानि सम्पणामए समर्प्पयति पञ्चमत्व हि कुशतृणाना पलालभेदेन चतुर्विध पलाल यथा तणपणग पन्नत्त जिणेहि कम्मट्ठगण्ठ महणेहि साली १ वीही २ कोद्दव ३ रालग ४ रन्नेतणा ५ पञ्चइति वचनात् चत्वारिपलालानि साधु प्रस्तरणयोग्यानि पञ्चम हि दर्भादि प्रासुक तृण वर्त्तते तत् केशिकुमारश्रमणेन गौतमस्य प्रस्तारणार्थं प्रदत्तमितिभाव १७ [केसीकुमारसमणो गोयमेय महायसे उभओ निसन्नासोहन्ति चन्दसूरसमप्पभा १८] तदा केशीकुमार श्रमणश्च

सूत्र

उरी। जेट्ठ कुलमविक्खतो तिदुय वण मागओ १५॥ केसीकुमार समणे गोयम दिस्स मागय। पडिरूव पडिवत्ति सम्म सपडिवज्जई १६॥ पलाल फासुय तत्थ पचम कुस तणाणिय। गोयमस्स निसिज्जाए खिप्पं स पणामए १७॥

भाषा

अर्थः १५ केशीकुमारश्रमण केशीकुमार साधु गौतम दृष्ट्वा आगत समीपे गौतमस्वामी दृष्टिगोचरहुआ आयतादिठा प्रतिरूपा उचित भक्तिइ तीते कीधी करवायोग्य सम्यक प्रतिपद्यते सम्यक प्रकारेण सम्यक प्रकारेकरी १६ पलाल प्राशुक निर्ज्जीव तत्र फासूपराल सूझतुतीहा पचमानि पलाल भेदेन कुशतृणानि पांचपलालसालि १ वरटी २ कोद्रव ३ कांगणी ४ डाभ ५ एपांचपलाल गौतमस्य निपद्यायै गौतमने वेसवानीमसे शीघ्र उपवेशनार्थं

टीका

पुनर्गौतमो महायशाः एतौ उभौ तत्र तिन्दुकोद्यानेनिषण्णौ उपविष्टौ शोभते विराजते कथम्भूतौ तौ चन्द्रादित्य सम प्रभौ १८ [समागया वद्ग तत्थ पासण्डाकोउगामिया गिहित्थाणं अणेगाओ साहस्सीओसमागया१६] तत्र तस्मिन् तिन्दुकोद्यानेबहवः पापण्डा अन्यदर्शिनः परिव्राजकादयः समागता कौतुकात् मृगाः आश्चर्यात् मृगा इव अज्ञानिनः तु पुनः अनेकलोकाना सहस्रं समागतं अनेका प्रचुरालोकानां सहस्रीति आर्षत्वात् कोटशास्तेपाषण्डा समागता तत्र संप्राप्ता १६ [देवदाणव गन्धव्वाजक्खरक्ख स किन्नरा अदिस्साणञ्च भूयाणं आसीतत्थ समागमो २०] ते तत्र तस्मिन् प्रदेशे देवदानव

सूत्र

केसीकुमार समणे गोयमेय महायसे। उभओ निसन्ना सोहंति चंद सूर समप्पभा ॥ १८ ॥ समागया बहू तत्थ पासंडा कोउगा मिया। गिहत्थाण अणेगाओ साहस्सीओ समागया ॥ १६ ॥ देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किंनरा। अदिस्साणच भूयाणं आसी तत्थ समागमो २० ॥ पुच्छामि ते महाभाग केसी गोयम मव्ववी। तओ केसिं

भाषा

अर्थयतो शीघ्रं शीघ्रपणे देई केशीकुमार १७ केशीकुमारश्रमणः केशीकुमार साधु गौतमः महायशाः गौतमस्वामी महायशनो धणी उभावपि तत्र आवस्त्यांनिषण्णौस्थितौ शोभतः तेवेगणधरतीहां बेठासोभेछे चन्द्रसूर्य समप्रभौ चंद्रमा अने सूर्यसरिषीकांतिछे जेहिनी १८ समागताः मिलिता बहवः बणातीहां मीलाछे पाषंडा कौतुकाश्रिता पाषंडी घणाए तीहां कौतुकदेखवा मीलाछे गृहस्थानां अनेकानि अनेक गृहस्थाना हजारआवी मीलाछे सहस्राणि मिलिताः आगता सहस्रबद्ध आव्याछे १६ देवदानवगंधर्वाः देवता दांणव गंधर्वा जक्ष राक्षसा किन्नराः यक्ष राक्षस किन्नर अदृश्यरूपाणां भूतानं अदृश्यरूपधरता भूतव्यंतर आगत् तत्र समागताः मिलिताः आकाशने विषे अदृश्यपणे कौतुक देखवाभणीआवी ऊभाराह्याछे २० पृच्छामिलां

गन्धर्वा यक्षराक्षस किन्नरा समागता इति शेष च पुनस्तत्र अदृश्यानाभूतानां केलीकिलव्यन्तराणां समागम सङ्गम आसीत् २० (पुच्छामि ते महाभाग केसीगोयममब्बवो तश्रो केसि बुवन्तन्तु गोयमो इणमब्बवी २१) तयोर्जल्पमाह तदा केशोगौतम अब्रवीत् किं अब्रवीदित्याह हे महाभागते त्वां अहं पृच्छामि यदा केशिकुमारेण इत्युक्ते तदा केशिकुमार श्रमण ब्रुवन्त गौतम इद अब्रवीत् २१ [पुच्छभन्ते जहिच्छन्ते केसि गोयममब्बवोतश्रो केसी अणुन्नाए गोयमइणमब्बवो २२] गौतमो वदति हे भदन्त हे पूज्यते तव यथेच्छ यत् तव चेतसि अवभासते तत् त्व पृच्छ मम प्रश्न कुरुइति केशिकुमार प्रति गौतमोऽब्रवोत् गौतम इति प्राकृतत्वात् प्रथमास्थाने द्वितोया ततो गौतमवाक्यादनन्तर केशिकुमारो गौतमेन अनुज्ञात सन् गौतमेन दत्ताज्ञ सन् गौतम प्रति इद वक्ष्यमाण वचन अब्रवीत् १ [चाउज्जामोयजो धम्मो जोइमो पञ्चसिक्खिश्रो देसिश्रो वद्धमाणेण, पासेण महामुणी २३] [एककज्ज

बुवततु गोयमो इण मब्बवी २१ ॥ पुच्छ भंते जहिच्छते केसी गोयम मब्बवी । तश्रो केसी अणुन्नाए गोयमो इण मब्बवी २२ ॥ चाउ ज्जामोय जो धम्मो जो इमो पचसिक्खिश्रो । देसिश्रो वद्धमाणेण पासेणय महामुणी ॥ २३ ॥

महाभाग तुम्हने अहो महाभाग पूछू कू केशी गौतम अब्रवीत् केशीकुमार गौतमने कहेछे तत केशोब्रूवत पुन केशी इम वाह्याथी गौतमोऽब्रवीदिद वक्ष्यमाण वचन हवे गौतमने पूछेछे वक्ष्यमाण वचन कहेछे २१ पृच्छ हे भगवन् यथा रुचिपणे केशीकुमार गौतम इति ब्रवोत् केशीप्रति गौतम कहे तत केश्यानुज्ञात सन् केशीकमारने गौतमे आज्ञादोधाथका गौतम अब्रवीदिद वक्ष्यमाण वचन हिवे केशीकुमार गौतमने पूछेछे २२ चतुर्याम अहिंसादियोऽय धर्म्म चार व्रतरूप एधर्म्म य एष पचशिक्षितो मैथनवे रमणादि पच महाव्रतरूप दर्शित वर्द्धमानेन वर्द्धमानस्वामीइ पचमहाव्रत

उ०टीका
अ०२३
६८८

पवन्नाणं विसेसेकिं तु कारण धम्मेदुविहेमेहावीकह विप्पच्चयोनतेी २४] हे गौतमपार्श्वेन मुनिना तीर्थंकरेण यथातुर्यामस्यातुर्व्रति कोय अस्माकं धर्मो उद्दिष्ट पुनर्योय धर्मो वर्द्धमानेन पञ्चशिचिका: पञ्चव्रतात्मकोदिष्ट: कथित १३ एककार्यमोचसाधन रूपेकार्ये प्रपन्नयो: श्रीपार्श्व महावीरयोर्विशेषेभेदे किं कारणं हे मेधाविन् द्विविधे धर्मे तव कथ विप्रत्ययो न भवति यतो द्वौ अपितीर्थंकरोद्वावपि मोचकार्य साधने प्रवृत्तौ कथमनयोर्भेदइति हेतोस्त्वमनसि कथं विप्रत्ययो न भवति सन्देहो न भवति २४ (तओकेसिं वुवन्तन्तु गोयमोइणमब्बवी पण्णासमिक्खए धम्मं तत्तं तत्तविणिच्छय २५) ततोऽनन्तर केशिकुमार श्रमणं ब्रुवन्तं कथय तं गौतम इदं अब्रवीत् हे केशिकुमार श्रमण प्रज्ञाबुद्धिर्मे तत्वं धर्मस्य परमार्थं पश्यति धर्मं तत्वं बुद्धा एव विलोक्यते सूक्ष्मं धर्मं सुधोवेत्ति इति वचनात् कीदृशं धर्मतत्वं तत्व विनिश्चयं तत्वानां जीवादीनां विशेषेण निश्चयो यस्मिन् तत् तत्वविनि

सूत्र

एगकज्ज पवन्नाणं विसेसे किंतुकारणं। धम्मे दुविहेमेहावीकहंविप्पच्चओणते २४ ॥ तओकेसिं बुवंतंतु गोयमोइण -
मब्बवी। पन्नासमिक्खए धम्मं तत्ततत्त विणिच्छयं २५। पुरिमा उज्जुजडाओ वक्कजडाय पच्छिमा। मज्झिमा उज्जु

भाषा

उपदेश्या पार्श्वेन पार्श्वनाथेन महामुनिना श्रीपार्श्वनाथे च्यार महाव्रतरूपधर्मकह्यो २२ एक कार्य प्रपन्नानं एकाज कार्य करयाभणी उद्यत छआछे पृथक् विशेषे किं पुन: कारणं जूजूआविध जूजूआ आचार किम कीधा साधो धर्माद्विभेद हे मेधाविन् साधुनो धर्मद्वेहोसे ते किम कथं नस्यात् विभय संदेह स्तव अहो गौतमस्वामी ताहरा मनमाहो किम संदेह आवतुं नथी २४ तत: केशि ब्रुवत केशी इम कह्याथका पुन: गौतम: इदं वचनं अब्रवीत् गौतम इम कहेछे प्रज्ञाबुद्धि: समीक्ष्यते धर्मं बुद्धिधर्मने देखे पिछाणे तत्त्वं परमार्थ जीवतत्त्वं निश्चितं जीवादि तत्त्वनो निश्चय बुद्धिं करीजाणे २५

यय केवल धर्मतत्वस्य श्रवण मात्रेण निश्चयो न भवति कि तु प्रज्ञावशात् एव धर्मतत्वस्य निश्चय स्यादिति भाव २५ (पुरिमाउज्जुजड्डाओ वक्कजड्डाय पच्छिमा मज्झिमाउज्जुपन्नाओ तेण धम्मोदुहाकओ २६) हे केशिकुमार श्रमण पुरिमा पूर्वे प्रथमतीर्थ क्षत्साधव आदीश्वरस्य मुनयऋजुजडा ऋजवय तेजडाय ऋजुजडा बभूव इति शेष शिचाग्रहणतत्परा ऋजव दु प्रति पाद्यतया जडामूर्खा तु शब्दो यस्मादर्थे पश्चिमा पश्चिमतीर्थ क्षत्साधवो महावीरस्य मुनयो वक्रजडा वक्राय तेजडायवक्रजडा वक्रा प्रतिबोध समये वक्रप्राना जडा कदाग्रहपरा तादृशा बभूवु तु पुनर्मध्यमा मध्यम तीर्थ कराणा मुनया द्वाविंशति तीर्थक्षत्साधव ऋजुप्राज्ञा. बभूवु ऋजुवय प्राज्ञाय ऋजु प्राज्ञा ऋजव शिचाग्रहण तत्परा पुन प्राज्ञा प्रकृष्ट बुद्धय तेन कारणेन हे मुने धर्मा द्विधाक्षत २६ [पुरिमाण दुव्विसोज्झोचरिमाण दुरणु पालओचिव कप्पोमज्झिमगाण तु सुविसोज्झो सुपालओ २७] पुरिमाण इति प्रथमतीर्थ क्षत्साधूना कल्प साध्वाचारोदुर्विशोध्य दु खेन निर्मलोकरणीय ऋजुजडा कल्पनीया कल्पनीयज्ञानविकला पुनश्चरमाणा चरमतीर्थक्षत्साधूना दुरनुपालक दु खेन अनुपाल्यते इति दुरनुपालक महावीरस्य साधवो वक्र जडा वक्रत्वाद्विकल्प बहुलत्वात् साध्वाचार जानन्तोपि

पन्नाओ तेण धम्मे दुहा कए २६ ॥ पुरिमाण दुव्विसुज्झोउ चरिमाण दुरणु पालओ । कप्पो मज्झिमगाणतु सुवि

प्रथम तीर्थे ऋजुजडा जीवा प्रथमतीर्थकरनेवारे सरलमूर्ख वक्रजडा चरमतीर्थकर समये महावीर नावारानावक्रजड मध्यतीर्थ मुनय ऋजुप्राज्ञा सरला बावीशतीर्थ करनावा रानाजीव सरलने पडीत तेन हेतुना धर्मोद्विधाक्षता तिणे कारणे धर्मविभेदेकोधो २६ प्रथम तीर्थ क्षत साधुना मार्गा दुर्विसोध्योपिहेलातीर्थ करना साधुने धर्म समझता दोहिलो आचार मध्यवर्त्ति यतिनातु बावीसतीर्थ करना वीरयतीनातु दुरनुपालक दु पाल्य महावीरनावा राना साधुने धर्म समझता सोहिलो परिपालता दोहिलो आचार मध्यवर्त्ति यतिनातु बावीसतीर्थ करनावा राना साधुने सुविशुद्ध

उ०टीका
अ०२३
७००

कर्त्तुमशक्ताः तु पुनर्मध्यमगानां द्वाविंशति तीर्थंकरसाधूनां अजितनाथादारभ्य पार्श्वनाथपर्यन्त तीर्थं करमुनीनां कल्प साध्वाचार· सुविशोध्यः सुपाल कश्च साध्वाचारसुखेन निर्मलीकर्त्तव्यः पुन· सुखेनपाल्य द्वाविंशति तीर्थंकरसाधवो हि ऋजु प्राज्ञास्तेकेनोक्तेन बहुज्ञा तस्माच्चातुर्व्रतिकोधर्मउद्दिष्टः मैथुनं हि परिग्रहे एवगण्यते आदीश्वरस्य साधूनां यदि पञ्चमहाव्रतानि प्राणाति पातविरति मृषावादविरति मैथुनविरति परिग्रहविरति रूपाणि पृथक् २ कथ्यते तदा ते ऋजुजडा पञ्च महाव्रतानि पालयन्ति नोचेत्ते व्रतभङ्गं कुर्वन्ति ते तुयावन्मात्रं आचार शृण्वन्ति तावन्मात्रं एव कुर्वन्ति अधिकं स्व बुद्ध्या किं मपि नविदन्ति महावीरस्य साधवोपि चेत्पंच महाव्रतानि शृण्वन्ति तदैव पालयन्ति तेपि वक्राजडाश्चेत् चत्वारिव्रतानि शृण्वन्ति तदा च त्वार्येवपालयन्ति नतु पञ्चम पालयन्ति वक्र जडादिवादाग्रहग्रस्ताः अतीवहठधारिण द्वाविंशति तीर्थंकरसाधवः ऋजव· प्राज्ञाश्चत्वारि श्रुत्वासु बुद्धित्वात् पञ्चापि व्रतानि पालयन्ति तस्माच्चत्वारि व्रतानि प्रोक्तानि तस्मादमीभिर्द्विविधाख्यातः चातुर्व्रतिक पञ्चव्रतात्मकश्च स्व स्वारक पुरुषाणां अभिप्रायं विज्ञायतीर्थंकरैर्धर्म्म उपदिष्टइति भावः २७ (साहु गोयमपन्नाते छिन्नोमेसं सओ इमो अन्नोविस सओ मज्झं तं मेकहसुगोयमा २८) इति श्रुत्वा केशिकुमारः श्रमणोवदति हे गौतम ते तव साधुप्रज्ञास्ति सम्यक् बुद्धिरस्तिमे मम अयं संशयस्त्वयाछिन्नोदूरीकृतः अन्योपि मम संशयोस्तित मिति तस्योत्तरं हे गौतमत्वं कथय स्व इदं वचनं हि शिष्यापेक्षं ननु तस्य केशिमुनेर्ज्ञानत्रयवतः एवं विधः संशय सम्भवः २८ (अचेलगोयजोधम्मो

सूत्र

सुज्झो सुपालओ २७ ॥ साहुगोयमपन्नाते छिन्नो मे संसओ इमो । अन्नोविसंसओ मज्झं तं मे कहसु गोयमा २८ ॥

भाषा

सुखेनपाल्य· सोहिला समझै सोहिलापाले २७ शोभना हे गौतम तव प्रज्ञाबुद्धिः भली गौतम भलीताहरी बुद्धि छि०· मम संशयः अयं एम्हारो संशय छेदाणो अन्यो अपि संसयो ममास्ति अने रोपणि संशय मुझनेछे तद्विषय ममार्थः हे गौतम कथयते पणि संशयम्हारो भांजिकहे २८ वर्द्धमानेन

जोइमो सन्तरुत्तरो देसिओ वद्धमाणेण पासेणय महायसा २९) (एककज्जपवन्नाण विसेसे किन्तु कारणं लिङ्गे दुविहेमेहावीकह विप्पच्चओनते ३०) वर्द्धमानेन चतुर्विंशतितमतीर्थंकरेणयो धर्मोऽचेलक प्रमाणोपेतजीर्णं प्रायो धवलवस्त्र धारणात्मक साध्वाचारोदिष्ट च पुन पार्श्वेन महायश सायोविंशतितमतीर्थंकरेण योय धर्म्म सान्तरुत्तर पञ्चवर्ण बहुमूल्य प्रमाणरहित वस्त्र धरणात्मक साध्वाचार प्रदर्शित हे मेधाविन एककार्य्य प्रतिपन्नयो श्रीवीरपार्श्वयो विशेषभेदे किं कारणं को हेतु हे गौतमद्विविधे लिङ्गे द्विप्रकारके साधुवेषेभेद तव कथ विप्रत्ययो न उत्पद्यते कथ सन्देहो न जायते उभौ अपि तीर्थंकरौ मोक्षकार्य्य साधको कथ ताभ्यां वेषभेद प्रकाशित इति कथ तव कथ सशयो न भवति ३० [केसि एव बुवन्ताण तु गोयमोइणमव्ववी विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिय ३१) तु पुनर्गौतम एव ब्रुवाण केशिकुमार मुनि इद अब्रवीत् हे केशिमुने

अचेलगोय जो धम्मो जो इमो सतरुत्तरो। देसिओ वद्धमाणेण पासेणय महायसा २९ ॥ एगकज्ज पवन्नाण विसेसे कितु कारणं। लिंगे दुविहे मेहावी कह विप्पच्चओ न ते ३० ॥ केसि एव बुवताणतु गोयमो इणं मव्ववी। विन्ना

अथ धर्म्म अचेलकोदेशित वर्द्धमानस्वामीइ मानोपेतधोला वस्त्रलेवा कह्या य एय धर्म्म श्रीपार्श्वनाथेन विविध वस्त्रधारको देशित भांति भांतिनां वस्त्रलेवाकह्या वर्द्धमानेन अचेलको धर्म्म देशित कथित पार्श्वनाथेन महायशा विविध वस्त्रधारको धर्म्म देशित २९ एक कार्योपन्नयो बयो एक कार्य्य भणी उद्यत हुआवेजणा पृथक पृथक विशेष किं पुन कारण ए जूदा २ भेदकोधातेकिम लिगे द्विविधे मेधाविन् एलिगवे भेदकीधू ते किम कथ विप्रत्ययोनास्ति तंव तुम्हारा मनमाहि संदेह किमनथो आवतु ३० केशि एव वचन ब्रुवत बलो केशी इम कह्यायका गोतम इद वचन अब्रवीत्

उ०टीका अ०२३ ७०२

तीर्थंकरैर्विज्ञानेन विशिष्टज्ञानेन केवलज्ञानेन समागम्य यत् यत् यस्य उचितं तत्तथैव ज्ञाला धर्मोपसाधन धर्मोपकरण वर्षाकल्पादि इद ऋजु प्राज्ञ योग्य इद वक्र जडयोग्य इति ईप्सितं अनुमत इष्ट कथितमिति यावत् यतोहि शिष्याणां रक्तावर्णादि वस्त्रानुज्ञाने वक्रजडत्वेन रञ्जनादिषु प्रवृत्ति दुर्निवारा एव स्यात् पार्श्वनाथ शिष्यास्तु ऋजुप्राज्ञत्वेन शरीराच्छादन मात्रेण प्रयोजनं जानन्ति न च ते किञ्चित्कदाग्रहं कुर्वन्ति २१ [पच्चयत्थञ्च लोगस्स नाणाविहविगप्पणं जत्तत्थं गहणत्थं च लोगेलिङ्गप्पओयणं २१] हे केशिमुने नानाविधिं विकल्पनं नाना प्रकारोपकरण परिकल्पनं अनेकप्रकारोपकरण चतुर्दशोपकरणधारणं वर्षा कल्पादिकञ्च यत् पुनर्लोके लिङ्गस्य प्रयोजनं साधुवेषस्य प्रवर्त्तनं यत्तीर्थंकरैरुक्तं तत् लोकस्य प्रत्ययार्थं लोकस्य गृहस्थस्य प्रत्ययाय यतोहि साधुवेषं लुञ्चनाद्याचारं च दृष्ट्वा श्मीव्रतिन इति प्रतीतिरुत्पद्यते अन्यथा विडम्बकाः पाषण्डिनोपि पूजाद्यर्थं वय व्रतिन इति ब्रवीरन् ततश्च वृतिषु अप्रतीतिः स्यात् अतो नानाविधविकल्पन लिङ्गप्रयोजन च पुनर्यात्रार्थं संयमनिर्वाहार्थं यतोहि वर्षाकल्पादिकं विनावृष्ट्यादिना संयमनिर्वाहोनस्यात् तेन वर्षा कल्पादिकं वर्षर्तुयोग्य आचारोपकरण धारणञ्च दर्शितं पुनर्ग्रहणं ग्रहणं ज्ञानं तदर्थं इति ग्रहणार्थं ज्ञानायइत्यर्थः यदि कदाचित् चित्तविप्लवोत्पत्ति स्यात् परीषहोत्पत्तौ सयमे अरतिरुत्पद्यते तदा साधुवेषधारी मनसि एतादृशं ज्ञानं कुर्यात्

सूत्र

घेत्त समागम्म धम्म साहण मिच्छियं २१ ॥ पच्चयत्थंच लोयस्स नाणाविह विगप्पणं । जत्तत्थं गहणत्थंच लोगे लिंग

भाषा

हवे गौतम इम कहेछे विज्ञानेन केवलेन समागम्य यथयसोचितति केवलज्ञानकरी जाणीने धर्मोपगरण इष्ट लोकान अनुमित धर्मोपगरण साधुने योग्य हितकारी तेहनो आज्ञादोधोलेवारो २१ प्रत्ययार्थं लोकस्य लोकने प्रतीतिभणी नानाप्रकारेणोपकरणं परिकल्पितं कथित नानाप्रकारे घणाभेदउपगरणनाकह्यां संयम निर्वाहार्थं ज्ञानग्रहणार्थं संयमनीर्वाहनेअर्थे ज्ञानग्रहणने अर्थे लोके वेषधारण प्रवर्त्तन लोकनेविखे वेषप्रवर्त्यो २२ पार्श्व

यतोऽत्रसाधोवयधारो अस्ति यतो धम्म रक्खदवेसा इयुक्तत्वात् इत्यादि हेतोर्लिङ्गधारण श्रेय २२] अह भवेपइन्नाओ मोक्खसभूयसाहणे नाण च दसण चेव चरित्त चेव निच्छए २३] पुन र्गौतमोवदति हे केशिकुमार अमणनिश्चयेनयेनयेमोक्षस्तूतसाधनानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि सत्यानि साधनानि निश्चयनयेवर्त्तन्ते श्रय प्रतिज्ञाभवेत् श्रीपार्श्वनाथ महावीरयो द्वय एकाएव प्रतिज्ञाभवेत् श्रीपार्श्वनाथस्यापि मोक्षस्य साधनानि ज्ञानदर्शनचारित्रा ण्येव श्रीवीरस्यापि मोक्षस्य साधनानि ज्ञानदर्शनचारित्राण्येव श्रीपार्श्ववीरयोरेषा प्रतिज्ञाभिन्नानास्ति इत्यर्थ वेषस्य अन्तर ऋजुजडवक्रजडाद्यर्थं मोक्षस्य साधनेवेषोव्यवहारनयेन्नेय न तु निश्चयेन ये वेष निश्चये तु ज्ञानदर्शनचारित्राण्येव तत्र ज्ञान मति ज्ञानादिक दर्शन तत्वरुचि चारित्र सर्वसावद्यविरति रूप तस्मात् निश्चय व्यवहारनयो ज्ञातव्योइत्यर्थ २३ [साहुगोयमपन्नातेछिन्नोमेस सओइमो अन्नोविससओमज्झ त मेकह

सूत्र

प्पओयणा ३२ ॥ अह भवे पइन्नाओ मोक्खस भूय साहणो। नाणच दसण चेव चरित्त चेव निच्छए ३३ ॥ साहु गोयम पन्नाते छिन्नो मे ससओ इमो। अन्नोवि ससओ मज्झ त मे कहसु गोयमा ३४ ॥ अणेगाण सहस्साण

भाषा

वीरयो प्रतिज्ञामोक्षस्य कारणे साधने श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीरे एप्रतिज्ञा मोक्षना साधक कह्या जिनाज्ञा अवबोधन तत्वरुचि तीर्थं करनी आज्ञा पालवी तत्व जपरिरुचि ज्ञान व दर्शनवेव चारित्र सर्वसावद्यत्यागरूप चारित्र सावद्यत्यागरूपछे जीवनीरक्षा लिंगमात्र एव्यवहार मारगी २४ ते प्रज्ञाशोभना हे गोतम तुम्हारो बुद्धो भलो छिन्न मम सशय अय एम्हारो सदेह दूरिकीओ अन्योपिसशयो ममस्ति वोजोपणि सुझने सदेहछे तद्विषय समर्थं हे गोतम कथयते पणिकहे सुझने सदेहभाजि ३४ अनेकाना वहूना सहस्राणा अनेकवैरीना हजार वदमाहि मध्ये त्व तिष्टसि

सुगोयमा ३४] अस्याः अर्थस्तु पूर्ववत् न वरं प्रसङ्गतः शिष्याणां व्युत्पत्त्यर्थं जानन्नपि अपरमपि वस्तु तत्र गौतमस्य स्तुति द्वारेण पृच्छन्नन्योपि प्रश्नयो त्याग्राह ३४ [अणेगाणं सहस्साणं मज्झे चिट्ठसि गोयमातेयते अभिगच्छन्ति कहन्तेनिज्जियातुमे ३५] केशीवदति हे गौतम अनेकेषां शत्रुसम्बन्धिनां सहस्राणां मध्ये त्वं तिष्टसि तेच अनेक सहस्र सख्याः शत्रवस्तेइति त्वां अभिलचीकृत्य गच्छन्ति सन्मुखं धावति तेशत्रवस्त्वया कथं निर्जिता' ३५ अथ गौतमउत्तरं वदति [एगेजिए जियापञ्च पञ्चेजियेजियादस दसहाउजिणित्ताणं सव्वसत्तू जिणामिहं ३६] हे केशिमुने एकस्मिन् शत्रौजिते पञ्चशत वोजिताः पञ्चसु जितेषु दशशत्रवोजिताः शेववैरिणोवशीकृताः दशप्रकारान् शत्रून् जित्वा सर्वंशत्रून् जयात यद्यपि चतुर्णां कषायाणां अवान्तरभेदेन षोडशसख्याभवति नोकषायानां नवानां मीलनात् पञ्चविंशति भेदाभवन्ति तथापि सहस्र संख्यानभवन्ति परन्तु तेषां दुर्जयत्वात् सहस्र सख्या प्रोक्ता३६

सूत्र

मज्झे चिट्ठसि गोयमा। तेय ते अभि गच्छंति कहंते निज्जिया तुमे ३५॥ एगे जिए जिया पंच पंचे जिए जिया दस। दसहाओ जिणित्ताणं सव्व सत्तू जिणामिहं ३६॥ सत्तूय इइ के वुत्ते केसी गोयम मव्ववी। तओ केसिं

भाषा

हे गौतमः माहिं तुं रह्योछे हे गौतम त्वां शत्रवः अभिगच्छति धावति वैरी हे गौतम तुझने जीवताने सांहमोआवेछे कथं निर्ज्जिताः त्वया ते शत्रवः किमते वैरी तुम्हे जीत्या ३५ एकस्मीन् सर्वोजितेजिताः पंच एक वैरी जीत्या पंचसु जितेषु दशप्रकारा' शत्रवजिताः पांचजीत्यां दसजीत्या दशधा दशप्रकारान् शत्रून् जित्वा दशवैरी जीतीने तदा सर्वानपि शत्रून् जयास्यहं सर्व वैरीने जीतुंछे ३६ शत्रव इति केउक्ताः अहो गौतम वैरीकोण कह्या केशी गौतमं अब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे तत केशि ब्रुवत केशीकुमारनुं वचन सांभलीने गौतमः इदं वक्ष्यमाणं वचनं अब्रवीत् गौतमस्वामी

उ०टीका
अ०२३
७०५

अथ केशीगौतमं पृच्छति [मत्तूय इइ केवुत्तं केसीगोयममव्ववो तच्चोकेसि वुवन्तं तु गोयमोइणमव्ववी ३७] हे गौतम अनन्तरं केशिकुमारोमुनि गौतम इदं अब्रवीत् ततोनन्तरं केशिमुनिं एवं ब्रुवन्तं गौतमइदं अब्रवीत् ३७ [एगप्पा अजिएसत्तू कसायाइन्दियाणियतेजिणित्तु,जहानाय विहरामि अहं मुणी ३८]हे मुने एकआत्माचित्तं तस्य अभेदोपचारात् आत्ममनसोरैकीभावे मनसः प्रवृत्तिः स्यात् तस्मात् एकआत्मा अजितः शत्रुः दुर्जयोरिपुः अनेकदुःख हेतुत्वात् एवं सर्वथैते उत्तरोत्तरभेदात् एकस्मिन् आत्मनिजिते चत्वारः कषायास्ते पामीलनात् पञ्चपञ्चसु आत्मकषायेषु जितेषु इन्द्रियाणि पञ्चजितानि तदादशशत्रवोजिताः आत्मा१ कषायाश्चत्वारः एवं पञ्च पुनः पञ्चेन्द्रियाणि एवं दशैव आत्मकषायानोकषायाः इन्द्रियाणि एते सर्वेशत्रवो अजिताः सन्तितान् सर्वान् शत्रून् यथान्यायं वीतरागोक्त वचसाजित्वा अहं विहरामि तेषां मध्ये तिष्ठन्नपि अप्रतिबद्धविहारेण विचरामि अत्र पूर्वं हि अग्रकाले अनेकेषां सहस्राणां अरीणां मध्ये तिष्ठसि इत्युक्तं उत्तरसमये तु कषायाणां अवान्तरभेदेन षोडशसंख्याभवन्ति नोकषायाणां नवानां मीलनाय पञ्चविंशतिः भेदा भवन्ति तथा आत्मेन्द्रियाणामपि सहस्रं संख्या न भवति परं तु एतेषां दुर्जयत्वात् सहस्रं संख्या उक्तेति भावः ३८ [साहुगोयमपन्नाते छिन्नोमेस संसओ इमो अन्नोविसंसओमज्झं तं मेकहसु गोयमा ३९] अस्यार्थस्तु पूर्ववत् ३९ (दीसन्ति बहवेलोए पासबद्धा सरीरिणो

मूल

वुवंतंतु गोयमोइणमव्ववी ३७ ॥ एगप्पा अजिए सत्तु कसाया इंदियाणिय। तेजिणित्तुजहानाय विहरामि अहं

भाषा

कहेछे ३७ एक आत्माजीत शत्रु अहो केशी एआत्माआपणो वैरी जीणे जीत्यो तस्मिन् जिता क्रोधाद्या कषाया इंद्रियाणि एआत्माजीत्ये च्यार कषाय पांचेइंद्रीजीत्या तान् शत्रून विनिर्जीत्य यथोक्त नीत्याते वैरीने जीतीने तिष्ठन् विहरामी सुखेविचरूं सुखेरहुं छु ३८ हे गौतमतवप्रज्ञा शोभना

मुक्तपासोलहुभूओ कह तं विहरसोमुणी ४०]पुनः केशोत्रइति हे गौतममुने लोके संसारेबहवः शरोरिणः पाशबधाः दृश्यन्ते त्वं मुक्तपाशः सन् लघू भूतः सन् कथविचरसिहेमुनी४०)(तेपासे० ४१)तान् पाशान्सर्वान्छित्वापुनः उपायेनबुद्धानिहत्यमुक्तपाशोलघूभूतोहंविहरामि४१[पासाइइ० ४२]इति गौत मनाशयादनन्तरं केशिश्रमणो गौतमं अब्रुवीत् हेगौतमपाशाः केउक्ताबन्धनानिकानि उक्तानि तत इतिपृच्छन्तं केसीकुमारमुनिं गौतमइदं उत्तर अब्रवीत्४२ [रागद्दोसादओतिव्वानेहपासाभयङ्करातेछिन्दित्तुजहानायं विहरामि जहक्कमं ४३] हे केशिमुने जीवानां रागद्वेषादयस्तीव्राः कठोराः छेत्तुं अशक्याः

सूत्र

मुणी ३८॥ साहुगोयमपन्नाते छिन्नोमे संसओ इमो । अन्नोवि संसओ मज्झं तंमेकहसुगोयमा ३९ ॥ दीसंति बहवेलोए पास बद्धा सरीरिणो । मुक्कपासो लहुब्भुओ कहंतं विहरसी मुणी ४० ॥ तेपासे सव्वसो छित्ता निहंतूण उवायओ । मुक्कपासो लहुब्भूओ विहरामि अहंमुणी ४१॥ पासाय इइकेवुत्ते केसोगोयम मव्ववी । तओकेसिं बुवं

भाषा

हे गौतमताहरी प्रज्ञा बुद्धि भली छिन्नः मम संशयः अयं म्हारो संदेहभांज्यो अन्योपि संशयो ममास्ति बीजोपणि संदेहमाहरेछे तद्विषयं ममार्थः हे गौतम कथयतेम्हारो संदेहभांजितेअर्थकहो ३९ दृश्यन्ते बहवोलोके लोकने विखे घणादीसेछे पाशबद्धाः शरीरिण पासबधणीकरी बांध्याछे प्राणीया मुक्तपाशो लघुभूत सन् ते पास तोडोकरीहलूओ हुओथको कथ त्वं विहरसि मुनी किम तूं विचरेछे अहो मूनीश्वर४० तान् पाशान् सर्वान् छित्वा ते सघला पाशनेछेदीने पुनः उपायेन बुद्धानिहत्य उपायेकरो छेदीने मुक्तपाशो लघुभूतः पासाथो मूंकाणोहलूओहुओ विचरामि हे सुनेहु विचरुंछुं अहो मुनीश्वरसाधू ४१ पाशाः इति केउक्ता. पाशबंधनके हांकह्या केशी गौतमं अब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे ततः केशिं एवं ब्रुवतं केशीये इम कह्या

स्रे हपाशा माहशाया उक्ता कोदृशास्ते स्रे हपाशा भयङ्करा भय कुर्व्वन्तीति भयङ्करा रागद्वेषो आदी येषां ते रागद्वेषादय रागद्वेष मोहएव जीवाना भयङ्करा तान् स्रे हपाशान् यथा न्याय वीतरागोक्तोपदेशेनछित्वा यथा क्रम साध्वाचारानुक्रमेण अह विहरामिसाधुमार्गे विचरामि ४३ [साहुगोयमपन्नाते छिन्नामेसंसओ इमो अन्नोविससओमज्झ तमेक हसुगोयमा ४४] अस्यार्थस्तु पूर्ववत् ४४ [अन्तोहि यय सभूया लया चिट्ठइगोयमा फलेइ विसभक्खीण साउ उद्धरियाकह ४४] हे गोतमसालतासावल्ली त्वया कथ केन प्रकारेण उद्धृता उत्पाटिता साकायालता अन्तर्हृदयमभूतासतीतिष्ठति अन्तर्हृदय

सूत्र

तनु गोयमो वुणमव्ववी ४२। रागद्दोसादओ तिव्वानेहपासा भयंकरा। तेछिंदित्तु जहानाय विहरामि जहक्कम४३। साहु गोयमपन्नाते छिन्नोमे संसओइमो। अन्नोवि संसओ मज्झ तमेकहसुगोयमा ४४। अतोहियय संभूया लया चिट्ठइ गोयमा। फलेइ विसभक्खीण साओ उद्धरिया कह ४५। तलय सव्वसोछित्ताउद्धरित्ता समूलिय। विहरामि

भाषा

यतो गोतम इद वक्ष्यमाण अब्रवीत् गौतम कहेछे ४२ रागद्वेषा दय तीव्रा रागद्वेषएवे महातीव्र पुत्र कलत्रादि [redacted] हपाशा भयकरा पुत्र स्त्री भाई बधुरूप स्रे हपासतान्छित्वा यथा न्यात ते पासने छेदीने विचरामि यति मार्ग यथाक्रम विहरु छु विहारकरु छु यतीने मार्गे ४३ शोभन हे गौतम तव प्रज्ञाबुद्धि हे गौतम ताहरी बुद्धि भलो छित्र मम ससय अय एमाहरो स देह तूम्हे टाल्यो अन्योपि म मय ममास्ति बोजोपणि स सयम्हारेछे तद्विषय ममार्थं हे गौतम कथय तेहनो पणि अर्थ मुझने कहो ४४ अत हृदयमध्ये समूताहियामाहि उपनी लतातिष्ठति हे गौतम एव वेलडी रहेछे अहो गौतम फलति फलानि कोदृशानि विष सदृशानि ते वेलिने विख सरीखाफल लागेछे सा त्वयाउद्धृता कथ तेवेलि तुम्हे किम उपाडो ताखो ४५

मन उच्यते एतावद्दामनसि उद्गता पुनर्याबल्लो विषभच्याणि फलानिफलति विषवद्भच्याणि विषभच्याणि विपफलानि उत्पादयति पर्यन्तदारुणतयाविषो पमानि फलानि यस्यालतायाभवन्ति ४५ [तं लयं सव्वसोछित्ता उजरित्तासमूलियं विहरामि जहानायं मुक्कोमिविसभक्खणा ४६] गौतमोवदति हे मुने तां लतां सर्वतः सर्वप्रारेणछित्वा खण्डीकृत्य पुन समूलिकां मूलसहितां उद्धृत्य उत्पाट्ययथान्यायं साधुमार्गेविहरामि ततोहं विषभच्चणात् विषोपमफलाहारात् मुक्तोस्मि ४६ [लयाय इइ कावुत्ता केसीगोयममव्ववी तस्रोकेसिं बुवन्तंतु गोयमोइण मव्ववी ४७] हे गौतमलताइति काउक्ता इति पृष्टे सति इति ब्रुवन्त केशिमुनि गौतमइदं अब्रवीत् ४७ [भवतण्हालया वुत्ता भीमाभीमफलोदया तमुद्धित्तु जहानायं विहरामि महासुणी४८]

जहानायं मुक्कामि विसभक्खणं ४६। लयाय इइकावुत्ता केसीगोयम मव्ववी। तओकेसिं बुवंतंतु गोयमोइण मव्ववी ४७। भवतण्हालया वुत्ता भीमाभीम फलोदया। तमुद्धित्तु जहानायं विहरामि महासुणी ४८। साहुगोय -

तां लतां सर्वत छित्वा गौतम कहेछे तेवेलिने मूलथी छेदीनांखी उधृत्वा उत्पाट्य समूलिकांखणीने मूलथी काटी विचरामि यथा ज्ञातं जाणीने विचरुं छुं मुक्तोस्मि विषभच्चणात् विरूप जे फल ते फलवाथी रही मूकाणों ४६ लता इति का उक्ता अहो गौतम तेवेलि किसी कही केशी गौतम मब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे ततः केशिं एवं ब्रुवंत केसीइं इम कह्यायका गौतमः इदं वच्यमाणं अब्रवीत् गौतम इम कहेछे ४७ हे मुनि भवतृष्णा कर्म्माणां विपाको लता उक्ता एतृष्णा वेलिकही रौद्रा रौद्र फलयुक्ता ते भवतृष्णा रौद्रछे फलपणि तेहना रौद्रछे तां उच्छित्वा यथा ज्ञातं यथोक्त विधि करीने तेवेलि छेदीने विहरामि महासुने हे महासुने हवेहुं सुखे समाधि विचरु छुं ४८ शोभन हे गौतम तव प्रज्ञाबुद्धिः अहो गौतम भलीताहरी

हे केशिमुनि भवेस सारे तृष्णालोभ प्रकृतिर्लतावल्ली उक्ता कीदृशी साभीमाभयदायिनी पुन कीदृशी भीम फलोदयाभीमोदुक्खकारणानां फलानां दुष्टकर्मणां उदयोविपाकोयस्या साभीमफलोदया दुक्खदायककर्मफलहेतु भूता लोभ मूलानि पापानीत्यु‌क्तत्वात् ता तृष्णावल्लीयथा न्याय उद्धृत्य अह विहार करोमि ४८ [साहुगोय ४९] अर्थस्तु पूर्ववत् ४९ [स पज्जलियाघोरा अग्गीचिट्ठइ गोयमा जेडहन्ति सरीरत्था कह विज्झावियातु मे ५०] हे गौतम सम्पृज्वलिताजाज्वल्यमानाघोराभीषणा अग्नय स सारेतिष्टन्ति ये अग्नय शरीरस्थान् अर्थात् प्राणिनो जीवान् दहन्ति ज्वालयन्ति ताऽग्नय त्वया कथ विध्यापिता कथ शमिताइत्यर्थ ५० [महामेहप्प सूयाओ गिज्झवारिजलुत्तम सिंचामि सययन्ते उ सित्तानेवडहन्तिमे ५१] हे केशिमुनि महामेघ प्रसूतान महामेघ समुत्पन्नात् अर्थान्महानदी प्रवाहात् वारिपानीय गृहीत्वातान् अग्नीन् सतत निरन्तर सिंचामि ते अग्नयोजलेनसिक्ता

मपन्नाते छिन्नोमे ससओ इमो। अन्नोवि ससओ मज्झ तमेकहसुगोयमा ४९॥ सपज्जलियाघोरा अग्गिचिट्ठइगो यमा। जेडहति सरीरत्था कहविज्झा वियातुमे ५०। महामेहप्पसूयाओगिज्झ वारिजलुत्तम। सिंचामि सययतेउ

बुद्धि छिन्न मम स सय अय छेद्योएम्हारो स देह अन्योपि स शय ममास्ति वलीवोजोम्हारे स देहछे तद्विषय ममार्थ हे गौतम कथयत तिहनोपणि मुझने अर्थ कहो ४९ स प्रज्वलिता रोद्रा वलीरद्रोछे महारोद्रछे अग्नय स्तिष्टति हे गौतम अग्नि अहो गौतमरहेछे ये अग्नय दहति शरीर जे अग्नि सरीरने दहेछे कथ विध्यापितात्वया ते अग्नि ते किम बूझावो ५० महामेघ प्रसूता मेघोत्पन्ना मोटा मेघथो जपनी जे नदी गृहित्वा थोतस उनोत्तम ते नदीथको पाणीलेईने सिंचामि सतत तेया ते अग्निने सीचु छु निरतर सिक्ता न दहतिमे ते अग्निने सीचू छु मुझने नहोवाले ५१ अग्नय

उ०टीका
अ०२३
७१०

सन्तोमां नैव दहन्ति कथभूतं तत् वारिजलुत्तमं जलेषु उत्तम सर्वेषु जलेषु मेघोदकस्यैव उत्तमलात् ५१ (अग्गीइ इकेवुत्ते केसीगोयम मव्ववो तओ केसिंवुवन्तं तु गोयमो इण मव्ववो ५२) तदा केशि श्रमणो गौतमं इदं अब्रवीत् हे गौतमते अग्नयइति केउक्ता: इति उक्तवन्तं केशिकुमारमुनिं गौतम इदं अब्रवीत् ५२ (कसाया अग्गिणोवुत्ता सुयसीलतवोजलं सुयधाराभिहयासन्ताभिन्नाहुनडहन्तिमे ५३) हे केशिमुने कषाया अग्नय उक्ता: श्रुतं शील तपश्चजलं वर्त्तते तत्र श्रुतञ्च श्रुतमध्योपदेश महामेघस्तीर्थं करः महाश्रोतश्चागमः ते कषायाग्नयः श्रुतधाराभिहता: श्रुतस्य आगमवाक्यस्य उपलक्षणत्वात् शीलतपसोपि धाराइव धारास्ताभिरभिहिताविध्यापिता श्रुतधाराभिहता सन्तोभिन्ना: विध्यापिताहु निश्चयेनमे इति मां न दहन्ति मां न ज्वलयन्ति ५३ (साहुगोयमपन्नाते छिन्नोमेस सओ इमो अन्नोविसं सओमज्झं तं मेकहसि गोयमा ५४) अर्थस्तु पूर्ववत् ५४ (अइसाहसिओभीमो

सूत्र

सित्तानोवडहंतिमे ५१॥ अग्गीय इइकेवुत्ते केसीगोयम मव्ववो। तओकेसिं बुवंतंतु गोयमो इणमव्ववी ५२॥

कसाया अग्गिणोवुत्तासुयसील तवोजलं। सुयधाराभिहयासंताभिन्नाहु नडहंतिमे ५३। साहुगोयमन्नाते छिन्नोमे

भाषा

इति के उक्ता ते अग्नि कोणकह्यो केसी गौतमं अब्रवीत् केशी मुनि गौतमने कहेछे केशिं एवं ब्रुवंतं केशी इमपूछ्यांथका गौतम इदं वक्ष्यमाणं अब्रवीत् गौतम इम कहेछे ५२ कषाया अग्नय उक्ता: चार कषाय अग्नि कह्यो श्रुतशील तपोजलं श्रुत अने शीलरूपिआ पाणी श्रुतधाराभिहता: साडिता संत: श्रुतधाराइ सींचोथकी तदभिघातेन न दहंति मम तेहपांणीस्युं सोंचीथकी अग्निनथी बालतुं ५३ सोभना हे गौतम तव प्रज्ञावुद्धि हे गौतम भलोताहरो बुद्धिछे छिन्न: मम ससय: अय एम्हारो सदेह तुम्हे छेद्यो अन्योपि संशयो ममास्ति वीजोपणिम्हारे संदेहछे तद्विषयं समार्थं हे

टीका: दुट्ठोपरिधावइ जंसिगोयममारूढो काह तेणनहीरसो ५५) हे गोतम अतिसाहसिकोदुष्टाश्व परिधावति यस्मिन दुष्टाश्वे हे गौतमत्व आरूढोसि तेन दुष्टाश्वेन कथ न ह्रियसे कथ उन्मार्ग न नीयसे सहसा अविचार्य प्रवर्त्तत इति साहसिक अविचारिताध्वगामी पुन कोदृशो दुष्टाश्वोभीमोभयानक ५५ (पहावन्त निगिण्हामि सुयरस्सी समाहियानसे गच्छइ उमग्ग मग्गञ्च पडिवज्जइ ५६) अथ गौतमो वदति हे केशिमुने तन्दुष्टाश्व प्रधावन्त उन्मार्गं व्रजन्त अह निगृण्हामि वशीकरोमि कोदृश तदुष्टाश्व श्रुतरश्मि समाहित सिद्धान्तवलायाबद्ध तत ममभम दुष्टाश्व उन्मार्गं न गच्छति

सूत्र: समञ्चो इमो। अन्नोवि ससञ्चो मज्झ तंमेकहसुगोयमा ५४ ॥ अय साहसिओभीमो दुट्ठस्सो परिधावई। जंसिगोयम आरूढो कह तेण नहीरसी ५५ ॥ पहावत निगिण्हामि सुयरस्सी समाहिय। नमे गच्छइ उम्मग्ग मग्ग च पडिवज्जई ५६ ॥ अस्से य इइकेवुत्ते केसीगोयम मब्बवी। तओकेसि बुवततु गोयमोइणा मब्बवी ५७ ॥ मणोसाहसिओ

भाषा: गोतम अयय तेहनो पणि अर्थ मुझने कहो५४ अय साहसोकोरोद्र एमहा साहसीक रोद्र दमता दोहिलो दुष्टाश्वपरिधावति दुष्ट घोडो उन्मार्गने विखे दोडेछे यस्मिन् हे गोतम समारूढ ते घोडा ऊपरि चढ्याथका कथतेनोन्मार्ग न नीयसे ते घोडा उपरे ते घोडो तुम्हने उन्मार्गे किमनथो लेइजातु ५५ प्रधावतउन्मागाभिमुखयात ते घोडोजिवारे उन्मागने दोडेछे अखनि गृह्णामिश्रुत रश्मिना समाधिवान् तिवारे ज्ञानरूपिणी रासतिथिबु भाल्यु छे अह न गच्छेत् उन्मार्ग तेह भणी मुझने उन्मार्गे नही लेइजाइछे मार्ग च प्रतिपद्यते भला मार्गने विखे प्रवर्त्तेछे ५६ अश्व इति क उक्त अश्वो गौतम ते घोडोकोणकह्यौं केशी गौतम अब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे तत केशि ब्रुवतस्तु पुन केशीइ पूछ्याथका गौतम इद वक्ष्यमाण अब्रवीत् गौतमस्वामी

स दुष्टाश्वोमार्गंस्व प्रतिपद्यते अङ्गीकरोति ५६ (अस्सेय इइकेबुत्ते केसीगोयममब्ववी तओकेसि बुवन्तं तु गोयमोइणमब्ववी ५७) केशीपृच्छति हे गौतम अश्वइति क उक्तः ततइति ब्रुवन्तं केशिमुनिं गौतम इदं अब्रवीत् ५७ (मणोसाहसिओ भीमो दुट्ठस्सोपरिधावई तं सम्मं निगिण्हामि धम्मसिक्खाय कंथगं ५८) हे केशिमुने मनोदुष्टाश्वः साहसिकः परिधावतिः इतस्ततः परिभ्रमति तं मनोदुष्टाश्वं धर्म्मशिचायैधर्माभ्यासनिमित्तं काथकमिवजात्याश्व मिव निगृह्णामि वशीकरोमि यथा जात्याश्वोवशीक्रियते तंमनोदुष्टाश्वंवशीकरोमि ५८ (साहुगो०५९) अर्थस्तु पूर्ववत् (कुप्पहाबहवोलोएजहिंनासन्ति जन्तवो अद्धाणेकहवट्टन्तो तं न नासिसिगोयमा ६०) हे गौतमलोकेबहवः कुपथाः कुमार्गाः सन्ति ये कुमार्गैर्जन्तवो नश्यति दुर्गतिवने ब्रजन्तोविलो

सूत्र

भीमो दुट्ठस्सो परिधावई। तं सम्मं निगिण्हामि धम्मसिक्खाए कंथगं ५८॥ साहुगोयमपन्नातेछिन्नोमे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं तंमे कहसुगोयमा ५९॥ कुप्पहा बहवेलोए जहिनासंति जंतवो। अद्धाणे कहवट्टंतो तं न ना

भाषा

इम कहेछे ५७ मन साहसिको रौद्रः एमनसाहसीक रौद्रछे आपणी वस निओछे दुष्टाश्वपरिधावति एदुष्टघोडो उरहोपरहो दोडेछे तं अश्वं सम्यक् गृह्णामि ते घोडो भलेप्रकारे झाल्योछे वसिकर्योछे धर्म्मशिचायै धर्माभ्यासभि निमित्तं धर्मनि शिख्यादेईने धर्मनो अभ्यासकराव्यो भलो घोडोछे कथं घोडानीपरे ५८ शोभना हे गौतम तव प्रज्ञाताहरी भलीबुद्धिछे छिन्नो मम संशय अयं एमाहरो संदेहभांज्यो अन्योपि संसयः ममास्ति बीजो पणि एकम्हारे संदेहछे तद्विषयं ममार्थं हे गौतम कथय हे गौतम ते पणि अर्थ मुझने कहो ५९ असन्मार्गाःसंति बहवोलोके कुपथ भूंडामारगलोक माहिं घणाछे ये कुपथे सन्मार्गं नश्यंतिजंतव तेह कूपथे करीने जीवडा भलामारगसाह मुंनजोवे घणा जतुनो नासकरे सन्मार्गे कथं वर्तमानवर्त्तसे

उ०टीका
अ०२३
७१२

यन्तो म उम्मागात् च्यवन्ते इयय हे गौतमत्व अवनिवर्तमान सन्कय ग्ग्शसिनाश ग्प्राप्नोपि सत्पथात् त्व च्यवसे ६० (जेयमग्गेणगच्छन्ति जेय उम्मग्ग पट्ठिया ते सव्वेइयामज्झत्तोग्ग्प्ग्नानिह मुणी ६१) हे केशिमुने ये भव्य जनामार्गेण वीतरागोपदेशेन गच्छन्ति च पुनर्येभव्या उम्मार्गप्रस्थिता भगवदुपदेशाद्विपरीत प्रचलितास्ते सर्वे मया विदिता भव्याभव्यो सन्मार्गोऽसन्मार्गयोर्ज्ञान मम जात इति भाव तोदति तस्मात्कारणात् अह न नश्यामि मपथपरिज्ञानात् नाश न प्राप्नोमि ६१ (मग्गेयइ इकेवुत्ते केसीगोयममव्ववी तस्रो केसि वुयन्त तु गोयमोइणमव्ववी ६२] अस्यार्थ पूर्ववत् [कुप्पवयण पासण्डी सव्वेउम्मग्गपट्ठिया सम्मग्ग तु जिणक्खाय एसमग्गे हि उत्तमे६२] हे केशिमुने कुत्सितानि प्रवचनानि कुप्रवचनानि कुदर्शनानि तेष पाषण्डिन कुमयचा पाषण्डिन एकान्तवादिनस्ते सर्वे उम्मार्गप्रस्थिता उम्मार्गगामिन सन्ति सन्मार्ग तु पुनर्जिनाख्यात विद्यते एष जिनोक्त

मूल

मसिगोयमा ६० ॥ जे यमग्गे ण गच्छ ति जे यउम्मग्ग पट्ठिया। तेसव्वे वेइयामज्झ तो न नस्सा मिहमुणी ६१ ॥ मग्गे य
इइकेवुत्ते केसीगोयम मव्ववी। तओ केसि वुयतनु गोयमो इणमव्ववी ६२ ॥ कुप्पवयण पासंडी सव्वे उम्मग्ग पट्ठिया।

भाषा

तू भलामार्गनेविषे किम वर्त्ते छे तस्मिन्नध्वनि नश्यसि हे गौतम ते मार्गने विषे हे गौतम किम तू नथी पडतु ६० ये च मार्गेण गच्छन्ति जे मार्गने विषे चाले छे ये च उनमार्गेण प्रस्थिता जे वली उनमार्गने विषे जाइछे ते सर्वे विदितास ति मम ते सर्वने जाणुछु ततोहननश्यामि महामुने तेह भणीहु उनमार्गे नथीजाउ छु मारगिचालु छु ६१ मार्ग इति का उक्त मार्ग कोणकह्यो केशी गौतम अब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे तत केशि वुवत त केशी पूछ्याथका गौतम इद वक्ष्यमाण अब्रवीत् गौतम इम कहेछे ६२ कपिलादिमतानुवर्त्तिन पाषण्डिन कपिलादि मार्गना सेवणहार सर्वे उन

सर्वमार्गेषु उत्तमः सर्वमार्गेभ्यः प्रधानोदयाविनयमूलत्वात् इत्यर्थः ६३ (साहुगोयमप०६४) अर्थस्तु पूर्ववत् ६४ (महाउदगवेगेणं वुड्डमाणाणपाणिणं सरण गईपयट्ठाय दीवं क मन्नसीमुणी ६५) केशीगौतमं प्रतिपृच्छति हे गौतममुने महाउदकवेगेन महाजलप्रवाहेण वह्यमानानां प्लवतां प्राणिनां सरण गईपयट्ठाय दीवं क मन्नसी ६५ कीदृशं दीपं शरणं रक्षणक्षमं पुन कीदृशं गतिं आधारभूमि पुनः कीदृशं प्रतिष्ठास्थिरावस्थान हेतुं दीपं निवासस्थान त्व दीपङ्गं मन्यसेइति प्रश्न ६५ [अत्थि एगो महादीवो वारिमज्झे महालओ महाउदगवेगस्स गई तत्थ न विज्झई ६६] हे केशिमुने वारिमध्येपानीयान्तरालयो जलमध्यवर्त्ति ६५

सूत्र

सम्मग्गं तु जिणक्खायं एसमग्गोहि उत्तमे ६३ ॥ साहु गोयम पन्नाते छिन्नोमे संसओइमो । अन्नोवि संसओ मज्झं तंमेकहसु गोयमा ६४ ॥ महाउदगवेगेणं वुड्डमाणाण पाणिणं । सरणंगई पइट्ठाय दीवंकन्मन्नसी मुणी ६५ ॥ अत्थि एगो महादीवो वारिमज्झे महालओ । महाउदग वेगस्स गईतत्थ नविज्झई ६६ ॥ दीवेय इइवुत्ते केसीगोयम

भाषा

मार्गप्रस्थिता. ते सघलाए उनमार्गपथ्याछे सनमार्ग तु पुनः ख्यातं जिनोक्तं भलो मार्ग उत्तममार्ग तीर्थं करनो भाष्यो एष मार्गः यस्मात् उत्तमः एमार्ग उत्तममार्ग उत्तम मुक्तिनोदाता ६३ भलीपना हे गौतम तव प्रज्ञाबुद्धि. हे गौतम ताहरि बुद्धि भलीछे छिन्न मम संशय अथ एम्हारोसंदेहछेद्यो अन्योपि संशयो ममास्ति वीजोपणि संदेहछे गुझने तद्विषयं ममार्थं हे गौतम कथय तेहनो अर्थ गुझनेकहो ६४ महोदक वेगेन महापाणीने वेगे करीने बुडन् मानानां प्राणिनां बूडताजीवडाने तन्निवारणं प्रस्थित्य अवस्थान हेतु आधारं तेहने कोणसरण कोणगति द्वीपक मन्यसे हे मुने दृढथानकएहवो द्वीपतुं कुणमानेछे हे गौतम ६५ अस्ति एकोमहाद्वीपछे एकमोटोद्वीप समुद्रमध्ये प्रोढोदकस्य पाणीमाहि महाविस्तीर्णछे वाते क्षुभितस्य गतिः

विस्तोए एकोद्दोपास्तिद्दिगता आपो यस्मिन स द्दोप तत्र तस्मिन द्दोपे महाउदकवेगस्य गतिर्विद्यते पातालकलशवातै क्षुभितस्य जलवेगस्य गमन नास्ति अपरत्व द्दोपेप्रलयकाले समुद्रजलस्य गतिरस्ति परं द्दोपेसति तत्र नास्ति ६६ [दीवेयइ इवेवुत्ते केसीगोयममब्बवी तयोकेसि बुवन्त तु गोयमोइणमब्बवी ६७] केशीगौतमंपृच्छति हे गौतमद्दोप इति कि मुक्त इत्यु क्तवन्त केशि श्रमण प्रतिगौतम इदं अब्रवीत् ६८ [जरामरणवेगेण बड्डमाणाणपाणिण धम्मोदीवोपइट्ठाय गई सरण मुत्तमं ६८]हे केशिमुने जरामरण जलप्रवाहेण बडता च वहता प्राणिना ससारसमुद्रे श्रुत धर्मचारित्र धर्मरूप द्दोप वर्त्तते तुम मुक्त हेतुत्वात्तोति नाम कोदृश सधर्म प्रतिष्ठानिश्चल स्थान पुन कोदृशो धर्म गतिविवेकिना आश्रयणीय स धर्म

मब्वी । तयोकेसि बुवतंतु गोयमोइण मब्बवी ६७ ॥ जरामरण वेगेण बुड्डमाणाण पाणिण । धम्मोदीवो पइट्ठाय • गईसरण मुत्तम ६८ ॥ साहुगोयमपण्णातेछिन्नोमे ससओ इमो । अन्नोवि ससओ मज्झ तमेकहसु गोयमा ६९॥ अन्न

पाणोनो वेगपाणोनो जायवो तव द्दोपेन विद्यते तेह द्दोपने विषे पाणी जातानो ६६ द्दोप इति क उक्त द्दोप कुणकह्यो केशी गौतम अब्रवीत् केशी गौतमने कहेछे तत केशि मुवत तु केसोइ पूछायका गौतम इद वक्ष्यमाण अब्रवीत गौतमकहेछे ६७ जरामरणएव वेग प्रवाह उदक जरामरण रूपोयापाणीनेविषे मुडन मानाना प्राणिना बूडता जीवाने प्राणोने श्रुत धर्मोद्दोपो मुक्तिहेतुत्वात् गति धर्मरूपीओ द्दोप आधारछे अवस्थान च शरण एउत्तम शरणछे ६८ शोभना हे गौतम तवप्रज्ञावुडो अहो गौतम ताहरी बुडी भली छिन्न मम ससय अय एम्हारो सदेहहवे दूरिकोधो अन्योपि ससयो ममास्ति बीजो एकम्हारे स देहछे तद्विषय ममार्थ हे गौतम कथय तेहनो अर्थपणितु कहो ६९ समुद्रे महौघे बहुजलप्रवाहे मोटा समुद्रने विषे

उत्तमं प्रधानं स्थान शरणमस्ति इति भाव: ६८ [साहुगो० ६९] अर्थस्तु पूर्ववत् [अन्नवंसिमहोहंसिनावावि परिधावई जंसिगोयममारूढो कहं पार गमिस्ससि ७०] हे गौतम महौघे अर्णवे महाप्रवाहे समुद्रे नावाइति नौपरिधावति इतस्तत: परिभ्रमति यस्यां नौकायां त्वं आरूढ: सन् कथं पारं गमिष्यसि कथं पारं प्राप्स्यसि ७० [जाओ अस्साविणीनावा० ७१]हे केशिमुने यानौ आस्राविणीछिद्र सहितास्ति आस्रवति आगच्छति पानीयं यस्यां सास्राविणी सानौपारस्य गामिनीनास्ति यानिस्राविणीनिश्छिद्रानौ सा तु पारस्यगामिनी ७१ अथ केशीपृच्छति [नावाइइ कावुत्ता केसीगोयम मब्बवी तओ केसि बुवन्तं तु गोयमो इणमब्बवी ७२] [सरीरमाहुनावित्ति जीवोवुच्चइ नाविओ संसारो अन्नवोवुत्तो जन्तरन्ति महेसिणो ७३] नौ इतिका उक्ता केशी गौतमं अब्रवीत् तत केशिं बुवन्त गौतम: इद मब्रवीत् ७२ हे केशिमुने शरीरं नौपत्तते जीवोना

सूत्र

वंसि महोहंसि नावावि परिधावई। जंसिगोयममारूढो कहंपारं गमिस्ससि ७० ॥ जाओ अस्साविणीनावा नसा पारस्सगामिणी। जानिस्साविणीनावा साउपारस्सगामिणी ७१ ॥ नावाय इइ कावुत्ता केसीगोयम मब्बवी। तओ

भाषा

घणापाणीनो प्रवाहछे प्रवहणाविशेष: समंता गच्छति ते माहिं एकानावछेछे ते नावा गौतम समारूढ नेत नाव उपरि चढ्योरह्यो छे हे गौतम त्वं कथं महार्णवस्य पारं गमिष्यसी तूं किम हे गौतम समुद्रनो पारपामिछे ७० यानौ स्राविणी जलागमेशच्छिद्रतार्थाविभि जे नावा स्राविणी छेद सहित पाणीआविनावमांहि न साक्षात् पारस्यगामिनी ते नावपारपोहोंचेनहीं बूडे या निस्राविणी जलागाव रहिता जे नावा मांहिंपाणीनावे सानौ पार गामीनी वर्तते ते नावापार पोहचे तीर पांमे ७१ नौ: इति काउक्ता: ते नावा कोणकही केशी गौतमं अब्रवीत् केशी गौतमप्रति कहेछे तत केशिं

विक नौखेटक उच्यते ससारोऽर्णव समुद्र उक्त य ससार समुद्र महर्षयस्तरन्ति एतावता महर्षय सज्जीवन्तपोनुष्टान क्रियावन्त नौवाहक नाविक क्षत्वा चतुर्गति भ्रमणरूपे भवार्णवे सशरीर धर्माधारकत्वेन नाव क्षत्वापार प्राप्नवन्ति मोच वजन्तीति भाव ७३ [साहुगीयम० ७४] अर्थस्तु प्राग्वत् ७४ [अन्धकारेतमेघोरे चिट्ठन्तिपाणिणोवहु कोकरिस्सइउज्जोय सव्वलोग मिपाणिण ७६] अथ पुन केशिश्रमणो गौतम पृच्छति हे गौतम अन्धकारेतमसि प्रकाशाभावेबहव प्राणिनस्तिष्टन्ति अन्धकारतम शब्दयोरैकार्थ्ये क एव अर्थस्तथाथन अन्धकार शब्दस्तमसोविशेषणत्वेन प्रतिपादित

सत्र

केसि वुवततु गोयमो इणमव्ववी ७२ ॥ सरीरमाहुनावित्ति जीवो वुच्चइ नाविओ । ससारो अन्नवोवुत्तो जतरति महे
सिणो ७३ । साहुगोयमपन्नाते छिन्नोमे ससओ इमो । अन्नोवि ससओ मज्झ तमेकरसुगोयमा ७४॥ अधयारे तमे
घोरे चिट्ठ ति पाणिणो वहू । को करिस्सइ उज्जोय सव्वलोग मि पाणिण ७५ ॥ उग्गओ विमलोभाणू सव्वलोग पभ

भाषा

प्रभुवत केशीइ पूछ्यावका गौतम इद वक्ष्यमाण अवृवीत् हवे गौतम पूछ्यानो उत्तरदीइछे ७२ शरीरमाहु नौ वूवति एशरीर नाव कह्यो जोव उच्यते नाविक एजीवनावुवो कह्योइ ससार अर्णव समुद्र उक्त ससारसमुद्र कह्यो य ससाराब्धितरन्ति महर्षय ते ससारसमुद्र मोटा ऋषीश्वरतरे ७३ शोभना हे गौतम तव प्रज्ञावडि हे गौतम ताहरी वडि भलोछे छिन्न मम सशय अय एम्हारो सशयछेद्यो अन्योपि सशय ममास्ति बीजोपणिम्हारे सदेहछे तद्विषय मगाथ हे गौतम कथय तेहनो अर्थ गौतमकहो ७४ अधकार कारणभीले तमोरौद्र अधकार कालो महारौद्र तत्र तिष्ट ति प्राणिनो बहव तीहा प्राणो जीव घणा रहेछे क करिष्यति उद्योत तेहने उद्योत अजवालु कोणकरस्ये सर्वलोके प्राणिना सर्वलोकने विखे जीवने ७५ उद्गत

कोटशीतमसि अन्धकारे अन्धंकरोति लोकमित्यन्धकार तस्मिन् अन्धकारे पुन कोटशीतमसि घोरे रौद्रे भयोत्पादके हे गौतम एतादृशे सर्वस्मिन् लोके सर्वेषा प्राणिना सर्वजीवानां कः पदार्थः उद्योत करिष्यते प्रकाश करिष्यति ७५ [उग्गओविमलोभाणू सव्वलोगप्पभंकरो सोकरिस्सइ उज्जोयं सव्व लोगंमिपाणिणं ७६] गौतम प्राह हे केशिमुने सर्वलोक प्रभाकरोविमलोभानुरुद्गत. सभानु सर्वस्मिन् लोके सर्वेषां प्राणिनां उद्योत करिष्यति सर्वस्मिन् लोके प्रभां करोतीति सर्वलोक प्रभाकरः सर्वलोकालोकप्रकाशको निर्मलोवार्दलादिना अनाच्छादितभानुरेव सर्वेषां प्राणिना सर्वतोद्योत करोति नान्यः कोपि तेजस्वी पदार्थ इति भाव ७६ [भाणूयइइकेवुत्ते केसीगोयममब्बवी तओ केसीबुवन्तं तु गोयमोइणमब्बवी ७७] तदा केशिमुनि गौतमं पृच्छति हे गौतम भानुरिति कः उक्तः केशिमुनि गौतमं इत्यब्रवीत् तत केशिमुनि इति ब्रुवत गौतम इद अब्रवीत् ७७ [उग्गओखीण संसारो सव्वन्नूजिण

करो । सोकरिस्सइ उज्जोयं सव्वलोगंमिपाणिणं ७६ ॥ भाणूय इइकेवुत्ते केसीगोयम मब्बवी । तओकेसिं बुवंतंतु •
गोयमो इणमब्बवी ७७ ॥ उग्गओ खीणसंसारो सव्वन्नू जिणभक्खरो । सोकरिस्सइउज्जोयं सव्वलोगंमि पाणिणं ७८।

निर्मलः सूर्यः निर्मलप्रभे ज्योतिर्मान सर्वलोकप्रभाकरः सर्वलोक प्रभाकरतार स करिष्यति उद्योत ते करस्ये उद्योत सर्वलोके प्राणिनां लोकने विषे सर्वप्राणीने ७६ भानु इति सर्वत. उक्तः कथ कोणक गौतमो गौतम अब्रवीत् केशी गौतमने कहे हे तत. केशीन् ब्रुवंतु केशी इम कहेताथका गौतम' इद वच्यमाणं अब्रवीत् हवे गौतम कहे छे ७७ उद्गत क्षीण संसारः उदयवंत क्षीण संसार छे जिने एहवो सर्वज्ञः जिन भास्करः सर्वज्ञ रूपो सूर्य सः करिष्यति उद्योत तेउद्योतकरे छे सर्वलोके प्राणिनां सर्वलोकने विषे प्राणीने ७८ शोभना हे गौतम तव प्रज्ञा इति भलो ताहरो बुद्धि

जनात् परिपालनात् जनन्यस्तीर्थङ्करैः कथिताः ता अष्टप्रवचनमातरः काः समितयः कतिगुप्तयश्च कतितयो. समिति गुप्त्यो संख्या वदति पञ्चैव एवनिश्चयेन पदपूरणे पञ्चसमितयस्तिस्रो गुप्तयः उभयोर्मीलने अष्टप्रवचनमातर उक्ताः १ (इरियाभासे सणादाणे उच्चारेसमिई इय मण गुत्तीवयगुत्ती काय गुत्तीय अट्ठमा २) एताः पंचसमितयः प्रथमं ईर्यासमितिः ईरणं ईर्या स मिति शब्दस्य प्रत्येकं ... सम्बन्ध ईर्यायां गमनागमने संसम्यक् प्रकारेण इति. आत्मचेष्टा ईर्या समितिः सार्द्धहस्तत्रयावलोकनं चतुर्हस्तावलोकनं वा चक्षुषा ज्ञात्वा यतीनचंक्रमणं ईर्यासमितिः द्वितीया भाषा समितिः विचार्यभाषणं भाषासमितिः तृतीया एषणासमिति शुद्धस्य आहारस्य ग्रहणं एषणासमिति चतुर्थी आदान समितिः वस्त्र पात्र प्रमुखोप करणानां आदानं ग्रहणं मुञ्चनं आदाननिक्षेपसमितिः पञ्चमी उच्चार प्रश्रवणपरिष्ठापनसमिति एता एव समितय तिस्रोगुप्तयोगोपन गुप्तिर्मनसो ऽशुभव्यापारान्निवर्त्तनं मनोगुप्तिः प्रथमा अथद्वितीया वचनस्य अशुभव्यापारात् गोपनं वचन गुप्तिः तृतीया काय गुप्ति का यस्य अशुभकर्मणोगोपनं निवर्त्तनं कायगुप्तिः एवं पञ्चसमितीनां तिसृणां गुप्तीनां च मीलनात् अष्टौ प्रवचनमातरो ज्ञेयाः २ [एयाओ महराजिईओ समासेण वियाहिया दुवालसङ्गंजिणक्खायं मायं जत्थ पवयणं ३] एतास्तु समासेन संक्षेपेण अष्टौ समितयो व्याख्याताः विस्तरत्वेनचे इच्छंति तर्हि पञ्च समितय उच्यन्ते

सूत्र दाणे उच्चारे समिईइअ। मण गुत्ती वय गुत्ती कायगुत्तीय अट्ठमा २॥ एयाओ अट्ठ समिईओ समासेण विया

भाषा अख्याता तीन गुप्ती कही १ ईर्यासुमति १ भाषासुमति २ एषणासुमति ३ आदान निक्षेपणा समितो ४ उच्चारसमिति ५ तत्रसमिति शब्दः प्रत्येकं योज्यः मनोगुप्ति १ बचनगुप्ति २ कायगुप्ति ३ एता. अष्टौ प्रवचनमातरः ए आठ प्रवचनमाता२ एताः अष्टौसमितयः एआठसमिति संक्षेप व्याख्याता

तिस्रोगुप्तयय उच्यन्ते समासेन संक्षेपेण चेदुच्यते तर्हि अष्टौ अपि समितय उच्यन्ते तस्मात् एतासां अष्टानां अपि समिति प्राउच्यन्ते यत्तु पूर्वं पञ्चानां समिति संज्ञाति सथा गुप्तिस्त्रा तत्सर्वघिहि ख्यापनार्थं यत्नयासु अष्टासु मातृषु द्वादशाङ्ग जिनाख्यात प्रवचन श्रुत चारित्र सामाय इति मात सम्पूर्णलेन संस्थित यतोहि सर्वा एता अष्टौ अपि चारित्र रूपा चारित्र हि ज्ञान दर्शन विनान भवति ज्ञानदर्शन चारित्रेभ्योऽति रिक्त द्वादशाङ्ग न भवन्ति तस्मात् द्वादशाङ्गी अष्टासुमातृषु स्थिता तेन एतासाम्प्रवचन जननो संज्ञा १ प्रथम ईर्या समिति सरूप माह (आलम्बणेण१ कालेण२ मग्गेण३ जयणा४ चउकारणपरिसुद्ध संजए इरियं रिए ४] स यत साधुश्चिभिश्चतुर्भि कारणे परिशुद्धयानिर्दोषया ईर्या निर्दोषयागत्यारोयेतगच्छेत् प्राकृतत्वात् तृतीयास्थाने प्रथमा तानि चत्वारिकारणानिकानि आलम्ब्यते निश्चल क्रियते मनोयेन इत्यालम्बन तेन आलम्बनेन १ पुनर्द्वितीय कारण काल ईर्याया समय स्तेन कालेन पुनस्तृतीय कारण मार्ग पन्यास्तेनविहारयोग्य मार्गेण पुनश्चतुर्थं कारणे

हिया। दुवालसंग जिणक्खायं मायं जत्थओ पवयण ३ ॥ आलंबणेण कालेण मग्गेण जयणाइय। चउ कारण परिसुद्ध संजए इरियं रिए ४ ॥ तत्थ आलंबणं नाणं दंसणं चरणं तहा। कालेय दिवसे वुत्ते मग्गे उप्पह वज्जिए ५ ॥

स क्षेपे करोने कहो द्वादशांग जिनख्यात वार भगतोथकरनाभ्याथा यत्नाष्टप्रवचमातृषु एव प्रवचन अतर्भूत सर्वसोहात एअष्टप्रवचन माता माहि अतर्भूतसमो ३ आलम्बनेन आलवने करोने कालेन कालकरोने मार्गेण मार्गे करोने यतनयाजयणाइ करोने चतु कारण परिशुद्ध एथार कारणे करोने शुद्ध सयंत इर्यागति गच्छेत् यतोईर्या सुमतिने सोधे ४ तत्र आलम्बन ज्ञान तोहां आलम्बन ज्ञानतु करे दर्शन दर्शनचारित्र तथा तिम

यत्ना यतन यत्ना जीवदया यतनया एवञ्चतुर्भिःकारणैः शुद्धयागत्यासाधुनागन्तव्यमिति भावः ४ पूर्वं चतुर्णां कारणाना नामान्युक्काविस्तरेण वर्णयति [तत्थ आलम्बणं नाणं दसणचरणं तहा कालेयदिवसेवुत्ते मग्गे उप्पहवज्जिए ५] तत्र चतुर्षु कारणेषु आलम्बन यत् आलंव्यगमनं अनुज्ञायते तत् आलम्बनं यतोहि आलम्बनं विनानिरर्थकं गुरुभिर्गमनं अनुज्ञातं नास्ति तत् आलम्बनं सूत्रं अर्थं तदुभयं सूत्रार्थज्ञानं सिद्धान्त पठन पाठनं ततोदर्शन सम्यक्तं तत्वरुचिरूपं तस्य ग्रहणं शाहणं वा तदपि कारणं यथाचरणं चारित्रं अत्र चारित्र शब्देन सामाइकादिकं सामाइयं सम इयं सम्भावाओ समासमखेवो अणवर्ज्ज च परिणापच्चक्खाणेय ते अट्ठ इत्याद्यपि कारणं यतोहि ज्ञानार्थं दर्शनार्थं चारित्रार्थं एवं इयोरर्थं एव पृथक् २ एवं त्रयाणामप्यर्थं एवं अष्टादशभेदाभवन्ति च पुन कालः ईर्यायाः, समयोदिवस एव उक्तो न तु रात्रिः ईर्यायाः समयोस्ति रात्री हि विहारं कुर्वतः साधोरीर्याशुद्धिर्न स्यादित्यर्थः मार्गस्तु उत्पथवर्जनं उन्मार्गस्यत्यागः उन्मार्गे चलमानस्य आत्मनः संयमस्य विराधनास्यात् ५ [दव्वओखित्तओ चेव कालओ भावओ तहा जयणा च उव्विहावुत्ता तं मेकित्तयओसुण ६] तीर्थंकरैरित्यध्याहारः तीर्थं करैर्गणधरैश्चतुर्विधायत्ना उक्तातां चतुर्विधां यत्नां मे मम कथयतस्त्वं शृणु भोशिष्य तदेव चातुर्विध्यमाह द्रव्यतो यत्ना च पुनः क्षेत्रतोयत्ना कालतोयत्ना तथा भावतोयत्ना ६ अथ द्रव्यतः कथं

सूत्र

दव्वओ खित्तओ चेव कालओ भावओ तहा। जयणा चउव्विहा वुत्ता तं मे कित्तयओ सुण ६ ॥ दव्वओ चक्खुसा

भाषा

चारित्र कालदिवसःउक्त कालदिवस कहीइं मार्गे उत्पथवर्जितः मार्ग अवट वर्ज्जीखाडप्रमुख५ द्रव्यतः द्रव्यथकिवस्तु पूंजीलेवो क्षेत्रतःक्षेत्रथकी कालतः कालथकी भावतस्तथा भावथको तिम यतना चतुर्विधा उक्ता जयणाचिहुंप्रकारे कही तां ममकीर्तयतः शृणुतेमुझने काहतां थकांतुमे सांभलो६

यत्नातामाह [द्रव्यओ चक्खसापेहे जगमित्त च खित्तओ कालओजावरीएज्जा उवउत्तेय भावओ ७] द्रव्यतोद्रव्यमाश्रित्य एव यतना यदा चक्षुषा जीवादि द्रव्य विलोकयेत् चेवत खेत्रमाश्रित्य युगमात्र चतुर्हस्तप्रमाण चेत्र मार्ग प्रेचितविलोकयेत इय चेत्रतोयत्ना कालत कालमाश्रित्य इय यत्ना यावत्काल यावताकाल प्रमाणेनरीयते गमन विधीयते सा च कालतोयत्नाय साध उपयुक्तस्तत ईर्याया सावधानत्वात् स्यात् साभावतो यत्ना ज्ञेया ७ अथ उपयुक्तमेव विस्तरत्वेनवर्णयति [इन्दियत्थे विवज्जित्ता सज्झाय चेव पचहा तम्मुत्तीतप्पुरक्कारे उवउत्तेरिय रिये ८] साधुरूप युक्त सन ईर्याया साधगोव्यगतौरीयेत् व्रजेत् किं कृत्वा पचेन्द्रियार्थान् पचाना इन्द्रियाणा अर्थान् विषयान् विवर्ज्य च पुन स्वाध्याय कुर्यात् पुन साधु कीदृश सन् ईर्यायारीयेत् तन्मूर्त्ति सन् तस्या ईर्या समितोमूर्त्ति शरीर यस्य सतन्मूर्त्ति न तु यतस्तत शरीर धूनयन गच्छेत् कायचापल्य रहित इति

पेहे जुगमित्तच खित्तओ। कालओ जाव रीएज्जा उवउत्तेय भावओ ७॥ इन्दियत्थे विवज्जित्ता सज्झाय चेव पचहा। तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे उवउत्ते रिय रिए ८॥ कोहे माणेय मायाय लोभेय उवउत्तया। हासे भय मोहरिए विगहासु

द्रव्यतो जीवादिक चक्षुषा प्रेचेत द्रव्ये तु जीवना थोमार्गमेधे आखिकरीने युगप्रमाण खेत्रत धूसरा प्रमाण खेत्र दृष्टिदिइ कालत यावत कालरीयेत् गच्छेत् कालिजेतले कालि विचरे तत्र उपयुक्त सावधान भावेकरी सावधानपणेचाले ७ इन्द्रियाथान शब्दादीन् विवर्जयेत् इन्द्रियनाविषय शब्दादिक वर्जी स्वाध्याय पचप्रकार सज्झाय पाचप्रकारे तिणेज चेष्टाइ ते प्रधान अग जाणी अगीकारकरतो उपयुक्त इर्यारीयेत् सावधानपणे ईर्यासमितिसोधे ८ क्रोधे क्रोधमाने च मानवली मायाया माया लोभे उपयुक्ततया सावधानतया लोभने विषे सावधानथको हास्ये भय मुखरिते हास्यने विषे भयनेविषे

भाव पुन: कोदृश साधु: तत्पुरस्कार तां एव पुरस्करोति इति तत्पुरस्कार: ताईर्यां समति प्राधान्येन अङ्गीकुरुतेइत्यर्थ: अनेनकायमनसोस्तत्परता उक्ता एव उपयुक्त: सावधानो विचरेत् इत्यर्थ: ८ [कोहेमाणेयमायाय लोभेय उवउत्तयाहासे भयमोहरिए विगहासुतहेवय ९] [एयाइं अठ्ठठाणाइं परिवज्जित्तु सञ्जए असावज्जंमियंकाले भासभासिज्जपन्नवं १०] अथ द्वाभ्यां गाथाभ्या भाषासमितिं आह पन्न इति प्रज्ञावान् सयत: काले प्रस्तावे भाषाया: समये असावद्यांनि'पापां तथामितां स्वल्पां भाषां भाषेत किं कृत्वा एतानि अष्टौ स्थानानि उपयुक्त तया एकाग्रत्वेन परित्यज्यत्यक्ता एतानि अष्टस्थानानिकानि क्रोधोमानो मायालोभश्च४ हास्यं भय मौखरिकाविट् चेष्टा असम्बद्धवदनभाषण वा विकथा च एतान्यष्टौ असत्यवाक्य स्थानानि तस्मात् प्रत्येकं क्रोधेमानेमायायां लोभे च हास्ये भयेमौखरिकायां तथैव विकथा सुच उपाश्रित्य गमवान् योग परिहृत्य असावद्या निर्दोषां परिमितां प्रस्तावेभाषां वदेत् इत्यर्थ: १० अथैषणासमिति माह [गवेसणाए गहणेय परिभोगे सणायजा आहारोवहि सिज्जाए एएतिन्निविसोहिए ११] गवेषणायां एषणागवेषणैषणागौरिव एषणागवेषणाविशुद्धाहारदर्शनविचारणा प्रथमा एषणा १ द्वितीया ग्रहणैषणा विशुद्धाहारस्य ग्रहणं ग्रहणैषणा२ तृतोयापरिभोगैषणापरिसमन्तात् भुज्यन्ते आहारादिकं अस्मिन् इति परिभोगो मण्डली भोजनसमयस्तत्रैषाविचारणा परिभोगैषणा एतास्तिस्रोपि

सूत्र तहेवय ९ । एयाइं अठ्ठ ठाणाइं परिवज्जित्तु संजए । असावज्जं मियं काले भास भासिज्ज पन्नवं १० । गवेसणाए १

भाषा वाचालपणानि विखे विकथासु तथैवच वली विकथावर्जे चालतीयकी ९ एतानि अष्टस्थानानि एआठस्थानक परिवर्जदेत् सयत: भलेप्रकारे वर्जे सयती पापरहितभासा असावद्यं मितं कार्याय प्रस्तावे असावद्यनि: पाप थोडी वोली भाषां भाषते प्रज्ञावान् भाषाइं वोले बुद्धिवंत साधु १० गवेषणा स्वीकरणे

एपणा आहारोपधि शय्यासुविशोधयेत् केवल आहारे एव एता एपणानभवेयु किं तु आहारे उपधौवस्त्र पात्रादौ शय्या उपाश्रय सस्तारकादिस्तत्र सर्वत्र यथाविधेयाइत्यर्थ ११ [उग्गमउप्पायण पढमे विइएसोहिज्ज एसण परिभोग च उत्थ च विसोहिज्जजय जयी१२] जय इति यत्नवान् जयीति यतीसाधु प्रथम इति प्रथमायागवेपणाया उद्गमोत्पादनात् दोपान् विशोधयेत् विशेषेण विचारयेत् पुन साधुर्द्वितीयायां ग्रहणैपणाया शङ्कितादि दोपान् विचारयेत् पुनस्तृतीयायां परिभोगैपणायां चतुष्कदोष चतुष्टय विशोधयेत् १२ इति गाथार्थ अत्र प्रथमायां गवेषणै पणायां द्वात्रिंशत् दोपाभवन्ति तद्यथा प्रथम पोडशउद्गमदोषा उद्गमशब्देन आधाकर्मादि पोडशदोपा तथा प्रथमैपणायां एव उत्पादनादि दोपा भवन्ति उत्पाद्यतेसाधुनाये ते उत्पादना साधो सकाशादेयपोडश दोपा उत्पद्यन्ते ते च धात्री प्रमुखा एव द्वात्रिंशद्दोपाद्वितीयायां एपणायां ग्रहणै पणाया शङ्कितादि दशदोपा

गवेसणाय २ परिभोगे सणाय ३ जा। आहारो वहि सिज्जाए एए तिन्नि विसोहिए ११। उग्गमु प्पायण पढमे बिइए सोहिज्ज एसणं परिभोग मि चउक्क विसोहिज्ज जय जई १२। उहो वहो वगाहिय भडग दुविह मुणी। गिण्हतो

आसेवनतद्विषया एपणा भणीकारकोजे सेवोइ ते गवेषणा परि गवेषणाया परिभोग एपणा आहारोपधिशय्या आहार उपधिशय्याएपणा एतैसोभि दोषे विशोधयेत् एतीन एपणा सावधाने सोधे ११ उद्गमोत्पादना दोषान् प्रथमा गवेषणा सोलह उद्गमदोष सोलह उत्पादनादोपटाले एषित्तलीएपणा द्वितीयां ग्रहणैपणां विशोधयेत् बीजी ग्रहणैपणा १० दोपटाले परिभोग पिड १ शय्या २ वस्त्र ३ पात्रादिक ४ चोथीपरिभोग एपणा पिड १ शिय्या २ वस्त्र ३ पात्र४ विशोधयेत् यतनयायति जयणाकरे यतलेईने परिभोगकरे १२ ओघोपधि चतुर्दशविध दृढ उपग्रहिक उपधि उपगरण द्विधा मुनि ए०

उभयतोदायकात्,ग्राहकात् च भवन्ति एवं द्विचत्वारिंश दोषाभवन्ति तत्र प्रथमः आर्द्रकर्म्मिकः अर्द्रकर्म्माणि भव आर्द्रकर्म्मिकः ~ ~ ार ~ १स्येन सर्व्वान् दर्शनिन· सर्वान् लिङ्गिन उद्दिश्यकृतं आर्द्रकर्मिकं उच्यते १ साधुयोगिसतियत् उद्दिश्य सत्वादीयते तत् उद्देशिकं उच्यते २ अथ द्वितीयो दोषः बहुतरेविशुद्धे आहारे आर्द्रकर्मिकाहारकणे युक्तं भवति तदा पूतिकर्मदोषः यथा शुचिः पयोघटोपि एकेनमद्यबिन्दुना अशुचिः स्यात् तथा पूति कर्म्मणा विशुद्धाहारमपि आर्द्रकर्मिकयोगात् पूतिकं स्यात् अयं तृतीयो दोष· ३ अथ चतुर्थोमिश्र कर्मदोषः किञ्चित्साधुनिमित्तं किञ्चिदात्मार्थं गृहस्थ· यदाहार कारयति तदामिश्रित दोष उत्पद्यते ४ अथ पंचम स्थापनाकर्मस्थाप्यते साधुनिमित्तं इति स्थापना यदा साधुरायास्यति तदा साधवे दास्यामीति विचार्य यदाहार रचित तदाहारं स्थापना कर्मदोष युक्तं स्यात् ५ अथ षष्टोदोषः प्राभृतकः गृहस्थ· स्वगृहे उत्सवं ज्ञात्वा सखडिकस्य परावृत्तिं करोति स प्राभृतिकोदोष ६ अन्धकारे उद्योत कृत्वा मुनये आहार यदादीयते तदा प्रादुष्करणदोष सप्तम· ७ यदा गृहस्थो मौल्ये न आनीय साधवे ददाति तदा क्रीताख्योदोषश्चाष्टमोज्ञेयः ८ यदा गृहस्थ साधुनिमित्तं उद्धारकं आनीय आहारादिकं ददाति तदा नवम प्रामित्यदोषः ९ यदाहारादिक परावृत्य सरस नीरसयोः परावर्त्तन कृत्वा साधवे ददाति तदा दशमः परावृत्तदोषो भवति १० यदा स्वगृहा द्विग्रामाद्वा आहारादिक मुनिसन्मुख आनीय मुनये दीयते तदा अभ्याहृतदोष एकादशः स्यात् ११ यदा कोष्टकादौ गर्भगृहादौ मुद्रितं उद्घाट्य आहारादिक निष्कास्य दीयते तदा उद्भिन्नदोषो द्वादशः स्यात् १२ यदा उच्चस्थानादुत्तार्य आनीय आहारादि ददाति तदा मालाहृत त्रयोदशोदोषः स्यात् एव नीचैरपि दुःखीभूय ददाति तदापि सएव मालापहृतोदोष· स्यात् १३ यदा कस्माच्चिन्निर्बला दुद्दाल्य आहारादिक ददाति तदा आच्छिद्य चतुर्दशोदोषः १४ यदाद्विताणां पुरुषाणां साधारणे आहारएक अन्यान् अनापृच्छ्य साधवे ददाति तदा पञ्चदशोऽनिसृष्टोदोषः १५ यदा स्वनिमित्तं

आहारे राध्यमाने साधुनिमित्तमपि तस्मिन्नाहारे अधिक हंडिकाया पूर्यते तदा अध्यवपूरोदोष षोडश १६ एते षोडश उद्गमदोषा दायकात दोषा उत्पद्यन्ते अथ अनगारात् षोडशदोषा उत्पद्यन्ते ते उत्पादनदोषा अमी प्रथमो धात्रीदोष यदा साधुर्गृहस्थस्य बालकान्चि पिटिकादिभि क्रीडयित्वा धात्रीवत् प्रमोद उत्पाद्य आहार गृह्णाति तदा प्रथमो धात्रीदोष १ यदा गृहस्थगृहेगुप्त प्रकट समाचारान् स्वजनादीनां कथयित्वा आहार गृह्णाति तदा दूतकर्माख्या द्वितीयोदोष २ यदा लाभालाभजीवित मृत्यु सुखदु खादि निमित्त त्रिकालस्य गृहस्थाग्रे उक्त्वा आहार गृह्णाति तदा निमित्तदोष तृतीय ३ यदा गृहस्थस्य जाति कुलज्ञात्वा आत्मीयमपि साधुस्तमेव ज्ञाति तदेवकुल स्वकीय प्रकाश्य आहार गृह्णाति तदा आजीविकादोषचतुर्थ ४ यदा स्वकीय दीनत्व दयालुत्व गृहस्थाग्रे प्रकटीकृत्य आहारादिक गृह्णाति तदा वनीपकोदोष पञ्चम ५ यदा वैद्यवत् नाडिकां दृष्ट्वा वमनविरेचना जीर्णज्वरादीना भैषज्य सुपदिश्य वैद्यक कृत्वा आहारादिक गृह्णाति तदा चिकित्सोदोष ६ यदा गृहस्थ भापयित्वा शापदत्वा आहार गृह्णाति तदा क्रोधपिंड सप्तमोदोष ७ यदा साधुना समघपण कृत्वा तदाहलब्धिमान् यदा भवतां सरस आहार अमुकगृहादानीय ददामि इत्युक्त्वा गृहस्थ पिंड व्य गृह्णाति तदा अष्टमोमान पिंडदोष ८ यदा माया कृत्वा लोभात् वेष परावृत्य आहार गृह्णाति तदा माया पिंडो नवमदोष ९ यदा लोभेन सरसाहारलौल्ये न भ्रांत्वा २ आहार गृह्णाति तदा लोभपिंडो दशमोदोष १० यदा पूर्व पश्चाद्गृहस्थस्य स्तुति विधत्ते आहारच गृह्णाति तदा संस्तव दोष एकादश ११ यदा विद्यासुर साधयित्वा भोजन साधयति तदा विद्यापिंडो द्वादशोदोष अथवा विद्या पाठयित्वा अ अ अध्याप्य भोजनादिक गृहस्थात् गृह्णाति तदा विद्यापिंडो द्वादशोदोष १२ यदा कार्मण मोहन यत्र मत साधयित्वा कृत्वा दत्वा आहारादिक गृह्णाति तदा मन्त्रदोष त्रयोदश १३ यदा अदृश्यीकरणाद्य जनमोहन चूर्णयोगेन आहार गृह्णाति तदा चतुर्दशचूर्णयोगोदोष १४ यदा मुग्धलोकान् सौभाग्यादिविलेपन राज

वशोकरणादि तिलकेन जलस्थलमार्गोल्लङ्घन सुभगदुर्भगविधि उपदिश्य आहार गृह्णाति तदा योगपिण्डदोषः पञ्चदशः १५ यदा पुत्रादिजन्म दूषण निवारणार्थं मघा ज्येष्टा श्लेषा मूलादिनक्षत्र शांत्यर्थं मूले· स्नानं उपदिश्य आहारादिकं गृह्णाति तदा षोडशो मूलकर्मदोषः १६ एवं उद्गमोत्पादनादि दोषा· सर्वेपि गवेषणायां द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति ३१ अथ द्वितीयायां ग्रहणैषणायां दशदोषा कथ्यन्ते यदा दायकः शंकां कुर्वन् ददाति साधुरपि जानाति असौदायक शंकां करोति एवसति आहारं गृह्णाति तदा प्रथमः शंकितोदोष· १ द्वितीयोम्रक्षितोदोषः सद्विविधः सचित्तेन खरंटितः आहारः अचित्तेन खरंटिताहारो भवति तदा म्रक्षितदोष उक्त उच्यते २ यदा पृथिव्यां जले अग्नौ वनस्पतिमध्ये त्रसजीवानां मध्ये निक्षिप्तं आहारं ददाति तदा निक्षिप्तस्तृतीयोदोषः ३ यदा अचित्तं आहारं अपि सचित्तेन आच्छादितं स्यात्तदा पिहितदोषश्चतुर्थः ४ पिहितदोषस्य चतुर्भंगी सचित्त आहार सचित्तेन पिहितं अचित्तं सचित्तेन पिहितं सचित्तं आहारं अचित्तेन पिहितं एवं चतुर्भंग्यां अचित्ताहारं अचित्तेन पिहितं अत्रको पिनदोष· यदा बृहद्भाजनेस्थितम् आहारं तत्तस्य भाजनेन दातुम् अशक्यत्वेन तद्भाजने परत्रोत्तार्य अथवा तस्माद्भाजनात् अपरस्मिन् भाजने उत्तार्य आहारं ददाति स संहृतदोषः पञ्चमः ५ यदा असमर्थः पण्डक शिशुः स्थविरः अन्ध उन्मत्तो मत्तो ज्वरपीडित कम्पमानशरीरो निगड बद्धो हडे क्षिप्तो गलितहस्त छिन्नपादः एतादृशोवादाता ददाति तदा दायक दोष· पुनर्यदा कश्चिद्दायिका दायिको वा ऽग्नि प्रज्वालयन् अरट्टकं भ्रामयन् घरट्टके चान्नपेषणं कुर्वन् मुसलेन खण्डन् सिलायां लोष्टकं वर्त्तयन् चरखां कार्पासादिकं लोढयन् रूतं वापि जयन् सूर्पकेण धान्यमाच्छोटयन् फलादिकं विदारयन् प्रमार्जनेन रज प्रमार्जयन् इत्याद्यारम्भं कुर्वन् तथा भोजनं कुर्वन् स्त्रीचयासम्पूर्ण गर्भस्थित भवति पुनर्याच स्त्रीबालं प्रतिस्तन्यं पाययन्ती पुनस्तं बाल रुदन्तं मुक्ता आहार दानाय उत्तिष्ठति पुनर्यः षट्काय समर्दनं सघट्टनं वा कुर्वन् साधुं दृष्ट्वा कण्डिकोपरिस्थम् अग्रपिण्डम् उत्तारयति

इत्यादयो बहवो दायकदोषा इति षष्ठो दायकदोष यदा अनाभोगेन अविचार्यैव शुद्धाशुद्ध आहार सम्मील्य ददाति तदा सप्तम उन्मिश्रितदोष ७ यदा द्रव्येण अपरिणतम् आहार भावेन उभयो पुरुषयोराहार वर्त्तते तन्मध्ये एकस्य साधवेदात्त मनोस्ति एकस्य च नास्ति तदा हारम् अपरिदोष युक्त स्यात् अपरित दोषष्टम ८ यदा दधि दुग्ध खैरैय्यादि द्रव्य येन द्रव्येण दर्वीकरोवालिप्त स्यात् तदा पश्चात्कर्मत्वेन लिप्तपिण्डो नवमोदोष स्यात् ९ यदा भिक्षानि घृत दधि दुग्धादि बिन्दून् पातयन् आहार ददाति तदा छर्दितो दशमो दोष स्यात् १० इति ग्रहणैषणाया दायक ग्राहकयो रन्योन्य दोष सम्भव एवं सर्वमीलने द्विचत्वारिंशद्दोषाभवन्ति अथ परिभोगैषणाया ग्रासैषणा पञ्चदोषा सम्भवन्ति तद्यथा यदा चीरखण्ड घृतादि द्रव्य सम्मील्य रसलोल्येन भुङ्क्ते तदा संयोजनादोष प्रथम १ यदा सिद्धान्ते पुरुषस्याहार उक्तोस्ति तस्मादाहार प्रमाणात् स्वादुलोभेन अधिकम् आहार करोति तदा अप्रमाणो द्वितीयोदोष २ यदा सरसाहार कुर्वन् धनवन्त दातार वर्णयति तदाङ्गारदोष स्तृतीय ३ विरसम् आहार कुर्वन् दरिद्र कृपण वा निन्दति तदा चतुर्थो धूमदोष ४ यदा तप स्वाध्याय वैया वृत्त्यादिकारण षट्क विना बलवीर्याद्यर्थं सरसाहार करोति तदा पञ्चमोऽकारण दोष ५ एते पञ्चदोषा परिभोगैषणाया ज्ञेया एव सर्वे सप्तचत्वारिंश द्दोषाभवन्ति ४७ परिभोगैषणाख्या चतुष्क दोष चतुष्टय सूत्रे उक्त तत्र इङ्गाल धूमयो मोहनीयकर्मोदया देवदायकस्य प्रशंसावतो निन्दानय प्रादुर्भावात् एकत्व एव अङ्गीकृत तस्मात् चत्वारि एव दोषाग्रहीता एव षट् चत्वारिंशत् दोषाभवन्ति ४६ अथवा परिभोगैषणाया परिभोगसमये आसेवनासमये पिण्ड १ शय्या २ वस्त्र ३ पात्र ४ एतत् चतुष्क विशोधयेत् अयम् अपि अर्थोविद्यते इत्यनेन उग्गमुप्पायण पढमे इति गाथाया अर्थ १२ इत्येषणा समिति ॥ अथ चतुर्थी समिति माह [ओहो वही उवग्गहिय भण्डग दुविह मुणी गिण्हन्तो निक्खिवन्तो य पउ जिज्ज इम विहि १३]ओघोपधिक सामुदायिकम् उपग्रहिकोपधिकम् उपग्रहार्थं वार२ यत्नार्थम् इति औपग्राहिक

रजोहरण पोतिकादिकम् अत्र उपधिशब्दस्य प्रत्येक प्रयोग एव भाण्डम् उपकरणं द्विविधं भवति रजोहरण दण्डकादिक द्विप्रकारकं वर्त्तते मुनिस्तं द्विविधम् अपि भाण्डं गृह्णन् च पुनर्निक्षिपन् मुञ्चन् इमं विधि प्रयुञ्जीत १३ त विधि प्राह ॥ [चक्खुसा पडिलेहित्ता पमज्जिज्ज जय जयी आइए निक्खि विज्जावा दुहओवी समिओ सया १४] यत्नवान् यतीयत्नया चक्षुषा प्रतिलेख्य प्रमार्जयित्वा समितः सन् आदान निक्षेपणा समिति युक्तः सन् अथवा द्रव्य भावभेदेन समित समितियुक्तः सन् द्विविधम् अपि उपधिम् औपधिम् अथ औपग्राहिकं गृह्णीत आददीतवा अथवा मुंचेत् निक्षिपेत् १४ (उच्चारं पास वणं खेलं सिंघाण जल्लिय आहारं उवहिं देहिं अन्नंवावि तहाविहं १५) (अणावाय मसलोए अणावाए चेव होइ संलोए आवाय मसंलोए आवाए

सूत्र

निक्खिवंतोयपउंजिज्ज इमंविहिं १३ । चक्खुसापडिलेहित्तापमज्जिज्ज जयंजई। आइएनिक्खिवेज्जावादुहओवीसमिए सया १४ ॥ उच्चारं पासवणं खेलं सिंघाण जल्लियं । आहारं उवहिंदेहं अन्नंवावि तहाविहं १५ ॥ अणावाय मसंलोए

भाषा

उपधिवोजो उपग्रहिक उपधि दांडा प्रमुख जपग्रहिकमाहिछे गृह्णन मुंचन् लेताथकां मूंकतांथका उपगरणलेतोथको मूकतोथको कुर्वीत प्रयुंजीत इण विधे प्रजूंजे १३ चक्षुषा प्रतिलेख दृष्टिकरी पडिलेहे रजोहरणादिना प्रमार्ज्य यतनयाओघासुंयतनयापूंजे आदत्ते निक्षिपयेत् वा साधु वस्तुने लिइं मूंके अथवा द्विधा द्रव्यतो भावतः समितः सदा इम बिहुंप्रकारे समिति सदाहोइ १४ पुरीष प्रश्रवन मूत्रवडीनीतिलघुनीत स्लेष्माणंनासामल देहमलं स्लेष्मा नासिकानोमल देहनोमल आहारं उपधिं देहिं भातपाणी उपधि पूंजीलेवा अन्यदपि तथाविधं अनेराइं तथाविधउपगरण १५ स्वपर आगमन

चेय स लाए १६) (अणावाय मस लोए परस्सणु वघाइए समे अज्झुसिरेयावि अचिरकाल कयमिय १७) [विच्छिन्ने दूरमोगाढे नासन्ने बिल वज्जिए तस पाण बीय रहिए उच्चारादीणि वोसिरे १८] चतस्रभि कुलकम अथ पञ्चमो समिति प्राह साधु उच्चारादीनि एतादृशे स्थण्डिले व्युत्सृजेत् परिष्ठापयेत् इति चतुर्थीगाथया सम्बन्ध तानि कानि उच्चारादीनि उच्चार पुरीष प्रश्रवण मूत्र खेल कफ सिंघाण श्लेष जल्लक शरीरमलम आहारम

सूत्र

अणावाए चेवहोइ सलोए। आवाय मसलोए आवाए चेवसलोए १६॥ अणावाय मसलोए परस्सणु वघाइए। समे अज्झुसिरेयावि अचिर कालकयम्मिय १७॥ विच्छिन्ने दुरमोगाढ नासन्ने बिलवज्जिए। तसपाणबीयरहिए

भाषा

रहित असलोको अदर्शन आयभग १ स्वपच परपच्चनु आवबु नथी अने वेगलाथी कोइने देखव नथी एपेहलोभांगो१ आगमन नास्ति परलोको दर्शन स्यात् भावे कोइनही पणिदेखवु होइछे एबीजो भांगो २ आपातमसलोक जिहां स्वपच परपचनु आवबु छे परदेखवु नथी एत्रीजोभागो आगमनमयस्ति यत्र सलोकोप्यस्ति जिहा स्वपच परपचनु आवबु छ तथा देखवु छे भागो४ १६ अनाप्यते स्वपच परपक्षाणा गमनरहिते असलोको तद्दर्शनवर्जिते जीहा कोइनु आवबु देखवु नथी १ परस्य आत्मानि सयमस्य उपघातो नास्तिपरथकी वा आत्मानो स यमनो उपघात नथी थातो २ उचनोच भूमिर्नास्ति ज चीनीची भूमिका नहीछे समो धरतीछे भागा ३ अशुषिर तृणपत्रादि अनाकोर्णभेद ४ अचिरप्रमुखे थोडाकालनो अचित्त कीधो थंडिलछे अचित्तभू मोछेभेद ५ १७ विस्तीर्ण दूरमवगाढे विस्तीर्णछे लाबो चोडो दूरमवगाढे पोहलोछाय ६ प्रमाण थोडोतो आगल हेठिल अचित्त ७ दुरयत्तिने ८ मूषकादिरन्ध्रे रहितो ढ कड नथी दूरछे ७ ग्रामप्रमुखनाविल नथी ९ त्रसप्राण बीजरहितो त्रसजीव कोई नथी बीजहरी पण

अन्नादिक उपधिं जीर्णवस्त्रादिकं अन्यत् तथाविधपरिष्टापनायोग्यं भेषजाद्यर्थं आनीतं गोमुत्रादिकं एतत्प्रासुकेस्थण्डले परिष्टाप्येत पूर्व्वं स्थण्डिलस्य
चतुर्भङ्गीमाह अनापाते असंलोके न विद्यते आपातः स्वपक्षीय परपक्षीयाणां आपातो गमनागमनं यत्र तत् अनापातं पुनर्यत् असंलोकं भवति न
विद्यते लोकानां संलोको दूरात् दृष्टिप्रचारो यत्र तत् असंलोकं कोर्थः यत्रस्थण्डिले प्रायो गृहस्थः कोपिनायाति तत्रचस्थण्डिले प्रायो दूरात् गृहस्थानां
दृष्टिप्रचारोनस्यात् तत्रस्थण्डिले इत्यर्थः इति प्रथमोभङ्ग. पुनर्यत् स्थंडलं अनापातं भवति परं संलोकंभवति लोकाना उपागमनरहितं भवति परं
लोकानां दूरात् संलोकसहितं दृष्टप्रचारसहितं भवति इति द्वितीयोभङ्गः पुनर्यत् स्थंडिलं लोकानां आपातसहितं उपागमनसहितं भवति अथच दूरात्
लोकानां सलोकरहितं दृग्प्रचाररहित भवति अयं तृतीयोभङ्गः पुनर्यत्स्थण्डिलं आपात लोकानां उपागमनसहितं अथ संलोक दूरात् लोकानां
सलोकं दृष्टिप्रचारसहितं भवति अयं चतुर्थोभङ्गः १६ अणावायेति तत्र चतुर्षुभेदेषु अनापाते, असंलोके स्थण्डिले उच्चारादीनिव्युत्सृजेत् कथं भूते
स्थण्डिले दशविध विशेषणविशिष्टेतानि दश विशेषणान्याह कथंभूते स्थण्डिले परस्य अनुपघातके यत्र अन्यस्य उपघातोनस्यात् संयमस्य आत्मनः
प्रवचनस्य बाधारहिते हीलारहिते १ पुनः कीदृशे अज्झूसिरे अपि अज्झूसिरे इति घासतृणपत्र काष्ठादिभि. अव्याप्ते तत्रहि परिष्टापिते जन्तूनाउत्पत्तिः
स्यात् पुनः कीदृशे अचिर कालकृते अग्न्यादिनाल्पेन कालेन अचित्तीकृते १७ पुन. कीदृशे विच्छिन्ने विस्तीर्णे पुनः कीदृशे दूरं उगाढे अधस्तात्
दूरंसचित्ते उपरिष्टात् अङ्गुलपंचक यावत् अचित्ते पुनः कीदृशेन आसन्ने अनासन्ने ग्रामाद्दूरवर्त्तिनि पुनः कीदृशे विलवर्ज्जिते मूसक सर्प कीटिकादि
रध्रवर्जिते पुनः कीदृशेत्रसपाणैर्द्वीन्द्रियादिभी रहिते पुनः कथ भूते बीजैः शालि गोधूमादि सचित्त धान्यै रहिते एतादृशे दशविध विशेषणैर्विशिष्टे
स्थण्डिले पूर्व्वोक्तान् उच्चारादीन् व्युत्सृजेत्त्यजेदितिभावः (एयाओ पंचसमिईओ समासेणवियाहिया इत्तोयतओगुत्तीओ वुच्छामि) अणुपुव्वसो १८)

एता पचसमितय समासेन सचेपेण व्याख्याता इत अनन्तर तिस्रोगुप्तिमनो गुप्तिवाग्गुप्तिकायगुप्ति आनुपूर्वीतोऽनुक्रमतोवच्यामि १८ [सच्चातहेव मोसाय सच्चामोसातहेवय चउत्थो असच्चमोसाओमणगुत्तोचउव्विहा २] मनोगुप्तिश्चतुर्विधा प्रथमासत्या मनोगुप्ति तथा द्वितीया असत्यामनोगुप्ति तथैव तृतीया सत्यामृषा मनोगुप्ति तथा चतुर्थी असत्या मृषामनोगुप्ति यत्सत्य वस्तु मनसि चिन्त्यते यथाति जीवतत्व विद्यते इत्यादि चिन्तनस्य योग स्तद्रूपागुप्ति सत्यामनोगुप्ति प्रथमा १ यत् असत्य वस्तुमनसि चिन्त्यते जीवोनास्ति इत्यादि चिन्तनस्य योगस्तद्रूपागुप्ति असत्या मनोगुप्ति द्वितीया २ बहूनां नानाजातियानां आम्रादि वृक्षाणां वन दृष्ट्वा आम्राणां एव वन एतत् वर्त्तते स तत्सत्य पुनर्मृषायुक्त एव इत्यादि चिन्तन योगस्तद्रूपागुप्ति सत्या मृषामनोगुप्ति स्तृतीया यतोत्र काचित् सत्या चिन्तनाकाचित् मृषाचिन्तना केचित् तत्र वने आम्रा सन्तितेन सत्या केचित् तत्र वने धव खदिर

उच्चाराईणिवोसिरे १८। एयाओ पचसमिईओ समासेणवियाहिया। इत्तोउ तओगुत्तीओ वोच्छामि अणुपुव्वसो १९

सच्चातहेवमोसाय सच्चामोसा तहेवय। चउत्थीअसच्चमोसामणगुत्ती चउव्विहा २०। सरभ समारभे आरभेय तहे

वधो १ इमगुणयुक्त स्थंडिले उच्चारादिन् परिष्ठापयेत् दमगुणे सहितस्थानस्थंडिलने विषे उच्चारादि वोसिरावे १८ एता पच समितय एपाचसमिति सक्षेपेन व्याख्याता सक्षेपे करीने कही इत्योनतरातिस्रि गुप्तय एतलानतरतीनगुप्ति वच्यें अनुक्रमेण अनुक्रमे कहु छु १८ सत्या मनोगुप्ति तथैव मृषा एकसत्या मनोगुप्ति असत्या मनोगुप्ति सत्या मृषा मनोगुप्ति स्त्रथैवच त्रीजी सत्यमृषा मनोगुप्ति चतुर्थि असत्या मृषा तथाचउथी असत्या मृषा मनोगुप्ति मनोगुप्ति चतुर्विधा मनोगुप्ति चिहु प्रकारे कही २ सकल्प अह ध्यास्यामि एकाग्रह करीस असो भविष्यति एवविध सकल्प आरभने विषे मन

पलाशादयो वृक्षा अपिसन्ति तेन मृषाप्यस्ति चतुर्थी असत्या मृषाया चिन्तना सत्यापि नास्ति यत् आदेश निर्देशादिवचनं मनसि चिन्त्यते हे देवदत्त घटम् आनय अमुकं वस्तुमह्यम् आनीयदीयताम् इत्यादि चिन्तना व्यवहाररूपा तद्रूपागुप्ति· असत्या मृषा मनोगुप्ति श्चतुर्थी यत एषा चिन्तना सत्यापि नास्ति मृषापि नास्ति व्यवहार चिन्तना इत्यर्थः ४ । २० [सरंभं समारंभे आरभेय तहेवय मणं पवत्तमाणन्तु नियत्तिज्ज जयं जई २१] यती साधु यैतवान् सन् संरम्भ समारम्भे तथैवच आरम्भे प्रवर्त्तमानं मनोनिवर्त्तयेत् सरम्भश्च समारम्भश्च अनयोः समाहारः संरम्भ समारम्भं तस्मिन् संरम्भ समारम्भे संरम्भः सङ्कल्प अहं तथा ध्यानं करिष्यामि करोमि वा यथा असौ म्रियते मरिष्यति इत्यादि सङ्कल्पः संरम्भः तत्र सङ्कल्पे प्रवर्त्तमानं मनो निवर्त्तयेत् तथा समारम्भः परपोडाकरोच्चाटन कोलनादिनिबन्धनं ध्यानं तत्रापि प्रवर्त्तमानं मनो निवारयेत् तथैव च पुनः आरम्भः परप्राणापहारक्षमोऽशुभ परिणामस्तस्मिन् परिणामे प्रवर्त्तमानं मनो निवर्त्तयेत् २१ अथ वचन योगं वदति सङ्कल्पोसंरम्भो परितापकरो भवे समारम्भोय आरम्भो सुद्धवयाईण सव्वेसिं २२ सर्वेषां अशुद्ध वचसां एते भेदा भवन्ति कोदृशास्तेभेदाः परितापकराः केते भेदाः संरम्भः सङ्कल्पः इत्याद्यर्थः पूर्ववदेव [सच्चातहेवमोसाय सच्चामोसातहेवय च उत्थी असच्चमोसाउ वयगुत्ती च उव्विहा २२] वचन गुप्तिश्चतुर्विधा भवति सत्या सत्यवाक् तस्यायोगः सत्यवाग् तद्रूपागुप्तिः सत्यावागुप्तिः १ एवं असत्यासत्यवाक् तस्यायोगः असत्यवाक् योगस्तद्रूपागुप्तिः असत्यवाग् गुप्तिः २

मूल — तहेवय । मणं पवत्तमाणंतु नियत्तिज्ज जयंजई २१। सच्चातहेव मोसाय सच्चामोसा तहेवय । चउत्थी असच्चमोसा वइ

भाषा — प्रवर्त्तावे मनः प्रवर्त्तमानं मनजातुंयक्तुं निवर्तयेत् यतनयायतिः यतनाइं करीने पाछीवाले २१ सत्यावाग् गुप्तिः तथैव तद्विपरीता असत्यावाक् साचो वचन असत्यवचन सत्या मृषा तृतीया तथैवसत्या अने मृषा मिश्र एत्रीजो गुप्तिचतुर्थिअसत्यामृषाचोथी असत्यामृषा वचनगुप्ति एवं वाग्गुप्तिः चतु

तथा या सत्यायाग सतोऽसत्ययावाचा सह मिलति सा सत्यामृपा वाग्गुप्ति खृतोया ३ तु पुनश्चतुर्थी असत्यामृपा वा गुप्ति या सत्यापि नास्ति तथा या सत्यायाग सताश्रसत्ययावाचा सह मिलति सा सत्यामृषा ... मृषापिनास्ति अर्थात व्यवहारयाग साचतुर्थीत्यर्थं ४ २२ (स रम्भ समारम्भे आरंभेय तहेवय वय पवहमाणन्तु नियत्तिज्जजय जई २३) यति साधुर्जय इति यत्नवान् सन् वचन स रम्भे समारम्भे तथैव च आरम्भे प्रवर्त्तमान वचोवचन निवर्त्तयेत् स रम्भ परजीवस्य विनाशनसमर्थ दुष्टविद्याना गुणन समारम्भ परेषा परितापकारकमन्त्रादीना मुहुर्मुहु परावर्त्तन तथैव च आरम्भ परेषा क्लेशोच्चाटनमारणादि मन्त्र जापकरण तत्रापि प्रवर्त्तमान निवारयेत् २३ [इत्यनेन वाग्गुप्ति रेवोक्ता अथ काय गुप्ति माह [ठाणेनिसीयणे चेव तहेवयतुयट्टणे उल्लङ्घण पल्लङ्घण इन्दियाणयजुञ्जणा २४] [सरम्भसमारम्भे आरम्भ मितहेवय काय पवत्तमाण तु नियत्तिज्जजय जई २५] युक्त स्थाने ऊर्द्ध स्थिती च पुनरेव निश्चयेन निषीदने उपविशने तथैव तु यहणेलग वर्त्तने अथात् शयने तथा उल्लङ्घन प्रलङ्घने उल्लङ्घन तथा विधनिमित्तात् गर्त्तादिकल्लमण तत्र पुन प्रलङ्घन सामान्येन गमन तत्र

गुत्ती चउव्विहा २२। सरभ समारभे आरभेय तहेवय। वय पवत्तमाणतु नियत्तेज्ज जयजई २३॥ ठाणे निसीयणे चेवतहेवय तुयट्टणे। उल्ल घण पल्ल घण इ दियाणयजु जणे २४। सरभ समारभेआरभेय तहेवय। काय पवत्तमाणतु

विधा उक्ता एवाग्गुप्ति चिहु प्रकारे कही २२ सकल्प यह ध्यास्यामि असोमरिष्यति तथैवचवचन आरभवच प्रवर्त्तमान वचननेराखेयतीनिवर्त्त येत् यतनयायति वचननेनिवर्त्तावे यती २३ यति स्थाने निषीदने उपविशनेयतो स्थानकनेविखेवेसे तथैवचलग् वर्त्त नेशयने तिम वलोसूवे गत्या दति क्रमेण पल्लघणे ■ वेनोचेंजाईकरोनें कू दणो इ द्रियाणिशब्दादिविषये योजनेप्रवर्त्ते इ द्रियनाप्रयु जयु प्रवर्त्तावे २४ साधु स रभ मुष्ट्यादिताडनसे तथा समारभ

च पुनरिन्द्रियाणां प्रयुञ्जने श्रोत्रनेत्ररसनानासात्वगादीनां इन्द्रियाणां शब्दरूपरसगन्ध स्पर्शादिविषयेषु व्यापारणे तथा संरम्भे मुष्ट्यादिना ताडने तथा समारम्भे परितापकारिणि लत्ताद्यभिघाते तथैव पुनः प्राणवधाकारियष्ट्यादि प्रयोगे कार्यं प्रवर्त्तमानं यतिसाधुर्यत्नवान् सन् कार्यं निवर्त्तयेत् सर्वत्र शरीरगुप्तिर्विधेयाइत्यर्थः २५ [एयाओ पञ्चसमिईओ चरणस्सय पवत्तणे गुत्तीनिअत्तणेवुत्ता असुभत्थेसु सव्वसो २६] एता पञ्चसमितय चरणस्य चारित्रस्य प्रवर्त्तने उक्ता सर्वशः सर्वप्रकारेण असुभार्थेभ्यो व्यापारेभ्योनिवर्त्तनेतिस्रो गुप्तयः उक्ता २६ [एयापवयणमायाजे सम्मं आयरेमुणी सोखिप्पं सव्वसंसाराविप्पमुच्चइ पण्डिएत्तिबेमि २७] यो मुनि एताः प्रवचनमातृः सम्यक् जिनाज्ञया आचरेत् समुनिः चिप्रं शीघ्रं सर्वसंसारात् चतुर्गति भ्रमणात् विशेषेण प्रमुच्यते प्रकर्षेण मुक्तोभवति कीदृशोमुनिः पण्डितः तत्वज्ञः यस्तत्वज्ञः स एवाष्ट प्रवचनमातृप्रपालकः स्यादितिभावः इति सुधर्मा

सूत्र

नियत्तेज्ज जयजई २५ । एयाओ पंचसमिईओ चरणस्सय पवत्तणे । गुत्तीनियत्तणेवुत्ता असु भत्थेसु सव्वसो २६। एया पवयणमायाजेसम्मं आयरे मुणी सेखिप्पं सव्वसंसारा विप्पमुच्चइ पंडिएत्तिबेमि २७। समिईज्झयणं सम्मत्तं । २४ ॥

भाषा

परकुं पीडाकारी लत्ताद्यभिघातमे तथा आरंभ परकुं प्राण वधकारी यष्ट्यादि प्रयोगमे इनतीनोमेप्रवर्तमानकायकुं निवर्तावे २५ एताः प्रवचन मातरः एप्रवनमाता चारित्रस्य प्रवर्त्तने चारित्रस्य सहित प्रवर्त्तेछे गुप्तिनिवर्त्तने उक्ताः गुप्तिपणि निवर्त्तनकही मार्गने विषे जिवडुवे ते मार्गने निवर्त्ते अशुभादिभ्यो मनोयोगादिभ्य सर्वतः २६ एताः प्रवचन मातरः एआठप्रवचननीमाता यःसम्यक् कुर्यात् मुनीः साधूभले प्रकारे आचरे सशीघ्रं सर्व संसारात् ते साधू जतावला संसारथी विप्रमुच्यते पंडित इतिबवीमि सूं कादं पंडीत इमकहेछे२७ इति श्रीसमितयः अध्ययनं संपूर्णम् ॥२४॥

स्वामी जम्बूस्वामिन प्राह हे जम्बू अह तीर्थं करवचसा तवाग्रे ब्रवीमि इति प्रवचनमातृक समित्यध्ययन चतुर्विंशतितम सपूर्ण ॥ २४ ॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभ गणि विरचिताया समित्यध्यन चतुर्विंशतितम सम्पूर्ण ॥ अथ पञ्चविंशतितम प्रारभ्यते ॥ पूर्वस्मिन् अध्ययने प्रवचनमातर उक्तास्तासु ब्रह्मण गुणयुक्तस्य स्यात् तस्मात् ब्रह्म गुणख्यानाय यज्ञीयाध्ययन कथ्यते [माहण कुलसम्भूओ आसिविप्पो महाजसो जयाइ जम्मजणमि जयघोसेत्तिनामओ १] वाराणस्या द्विजौयमलौभ्रातरो जयघोषविजयघोषौ अभूता तयोरेको जयघोषनामागङ्गाया स्नातुङ्गत कुररसर्पमण्डूकधास दृष्ट्वा प्रव्रजित तदात्तौमाह माहण कुलमिति ब्राह्मणकुलेसभूत विप्रकुले समुत्पन्नोजयघोष इति नामतोविप्र आसोत् अत्रहि यत् ब्राह्मण कुलसभूत विप्रआसीत् इत्युक्त तत् ब्रह्मचजनकादुत्पन्नोपि जननीजातिहीनत्वे ब्राह्मण स्यात् अतो विप्रइत्युक्त कोदृशो जयघोष यमजत्र नियम यज्ञेयायाजीयायजीत्येवशीलोयायाजीयमा अहिंसासत्याऽस्तेय ब्रह्मनिर्लोभा पञ्चते एव यज्ञोयमयज्ञस्त स्मिन् यमयज्ञे अतिशयेनयज्ञकरणशील अर्थात्पञ्च महाव्रतरूपे यज्ञे याज्ञिकोजात यतिर्जातइत्यर्थ १[इन्दियग्गामनिग्गाहीमग्गगामीमहामुणी गामाणु गामरीयन्तो पत्तोवाणारसिपुरि २] स महामुनिरेकाकीसाधुर्ग्रामानुग्राम रीयन्तीइति विचरन् वाराणसी पुरी प्राप्त कोदृश समहामुनि इन्द्रिय

माहण कुल सभूओ आसि विप्पो महायसो। जायाई जम्म जन्नमि जयघोसेत्ति नामओ॥ १॥ इ दियग्गाम

ब्राह्मणकुलसभूत ब्राह्मणनेकुले ऊपनो आसीत् विप्र महायशा हूओ ब्राह्मण महायशनो धणी याजीयज्ञकारीयमयज्ञे ब्राह्मण किस्योछे यज्ञकर्ं पच महाव्रतपालेछे यमनोम करेछे जयघोष इति नाम्ना जयघोष इसे नामे ब्राह्मणछे १ इद्रियजयी मुक्तिपथगामी इद्रियनोजीपणहारछे मुक्तिमार्गे

ग्रामनिग्राहीइन्द्रियाणा ग्राम समूहं इन्द्रियपञ्चकं निगृह्णाति मनोजयेनवशीकरोतीति इन्द्रियग्रामनिग्राही पुनः कीदृश· समार्गगामीमार्गं मोक्षं गच्छति स्वयं अन्यान् गमयतीति मार्गगामी २ [वाणारसीए बहिया उज्जाणंमि मणोरमे फासुएसिज्जसंथारे तत्थवा समुवागए ३] स साधुर्वाणारस्यां बाह्ये मणोरमे मनोहरे उद्याने प्रासुकेजीवरहिते शिय्यासंस्तारकेदर्भतृणादि रचिते शयनोपविशनस्थितौ तत्रवासं इति वसन्ति वास्तु उपागता·३ (अहतेणेव कालेणं पुरीएतत्थमाहणे विजयघोसेत्तिनामेणं जणञ्जयइवेयवी ४] अथ अनंतरं तस्मिन्नेवकालेयस्मिन् काले साधुर्वने समागतस्तस्मिन्नेव काले तस्यां वाराणस्यां पुर्यां विजयघोषइति नामा ब्राह्मणोयज्ञं यजतियज्ञं करोति कीदृशो विजय घोषः वेदवित् वेदज्ञ. ४ [अहसे तत्थ अणगारे

सूत्र

निग्गाही मग्गगामी महामुणी । गामाणुगामं रीयंतो पत्तो वाणारसिं पुरिं २ ॥ वाणारसीए बहिया उज्जाणंमि मणोरमे । फासुए सिज्ज संथारे तत्थ वास मुवागए ३ ॥ अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे । विजयघोसेत्ति नामेणं जन्नं जयइ वेयवी ४ ॥ अह से तत्थ अणगारे मासखमण पारणे । विजयघोसस्स जन्नंमि भिक्खमट्ठा उव

भाषा

चालेछे मार्गे चलति महामुनि· भलेमार्गे चालेछे महान्तपोश्वर ग्रामानुग्रामं विहरन् ग्रामानुग्रामे विहारकरतुं थको प्राप्त· वाणारस्यां पुर्यां वाणारसी नगरी पोहोतु २ वाणारस्यां बहिर्भागे वाणारसीने बाहिरले पासे उद्याने मनोरमे मनोरमइस्येनामे उद्यानके निर्जीवशय्या संस्तारके प्राशुकशिय्या संथारक लेईने तत्र वासं उपागत· ते वनमांहि रह्या वासकीधो ३ अथ तेनैव तस्मिन् काले हवे तिणेज कालिं पूर्यां तत्र ब्राह्मणः तेहज वणारसी नगरीनेविखे ब्राह्मण विजयघोषइति नाम्ना विजयघोषइसिनामे ब्राह्मणके यागं यजति करोति वेदवित् यज्ञकरेछे वेदनोजाणछे४ अथ स तत्र अनगारः

मासखमणपारणे विजयघोसस्सजन्न मि भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ५] अथ अनन्तर तत्र विजयघोषस्य यज्ञे स पूर्वोक्तोजयघोषोऽनगारोमास क्षमणस्य पारणे भिक्षायाअर्थं भिक्षार्थंउपस्थित ५ [समुवट्ठिय तहि सन्त जायगोपडिसेहइ नहुदाहामितेभिक्ख भिक्खूजायाहि अन्नओ ६] तदा याजकोयजमानोविजय घोषो ब्राह्मणस्तत्रभिक्षार्थं समुपस्थित सन्त त साधु प्रतिषिध्यति निवारयति कथ निवारयतीत्याह हे भिक्षोत्व अन्यतोऽन्यत्रयाहि तेतुभ्यभिक्षा न ददामि ६ (जेयवेयविऊविप्पाजन्नट्ठायजिइन्दिया जोइ सङ्ग विऊजेय जेयधम्माणपारगा ७] (जेसमत्था समुद्धत्तु पर अप्पाणमेव यतसि अन्नमिए देय भोभिक्खूसव्वकामिय ८] [युग्म विजयघोषोवदति हे भिक्षोऽस्मिन यज्ञे इद प्रत्यक्ष दृश्यमाण अन्न सर्वकामिक षटरस सिद्ध तेषा पात्राणा देय वर्त्तते तेभ्योदेयमस्ति तत् तुभ्य देय वर्त्तते तेषा केषा ये आत्मानां स्वकीयमात्मान च पुन पर परस्य आत्मान समुद्धर्त्तु समर्था ये ससारसमुद्रात्

ठ्ठिए ५ ॥ समुवट्ठिय तहिसत जायगो पडिसेहए। नहु दाहामि ते भिक्ख भिक्खू जायाहि अन्नओ ६ ॥ जे वेय विऊ विप्पा जन्नट्ठाय जे दिया। जोइसग विऊ जेय जेय धम्माण पारगा ७ ॥ जे समत्था समुद्धतु परं अप्पाण

इवेतयतो साधु मासखमणपारणकेमासखमणने पारणे विजयघोषस्य यज्ञे विजयघोष ब्राह्मणना यज्ञने वाडे आव्यो [भिक्षार्थं उपस्थित भिक्षाने अर्थे आवी उभोरह्यो ५ भिक्षार्थं समागत स्तदासात भिक्षाने अर्थे तीहा साधू आव्यादेखीने यज्ञकारो विजयघोष निवारयति यज्ञनोकरणहार विजयघोष निवारे नैवदास्यामि तुभ्य भिक्षा तुझने भिक्षा नहीआ हे भिक्षोयाचस्वन्य अन्यो भिक्षुयीजेठामिजा मागीया ६ ये वेदविदोविप्रा जे वेदनाजाण ब्राह्मण यज्ञ प्रयोजना जितेंद्रिया जे यज्ञनो क्रियाकर जितेंद्रिय ज्योतिषांगविद् ज्योतिषनाजाण ये धर्मशास्त्राणा पारगा जेवली धर्मशास्त्रना पारगामीछे ७

आत्मानं तारयितुं समर्थाः परं अपितारयितुं समर्थास्तेषां प्रदेयमस्ति इति भाव ७ पुनः केषां प्रदेयं अन्नं वर्त्तते ये विप्राः वेदविदोवेदज्ञास्तेषां पुनर्येयज्ञार्थीः यज्ञ एव अर्थः प्रयोजनं येषां ते यज्ञार्थास्तेषां पुनर्येजितेन्द्रिया. इन्द्रियाणां जेतारस्तेषां पुनर्येज्योतिषांङ्गविदः ज्योति शास्त्रस्याङ्गवेत्तारः यद्यपि ज्योतिशास्त्रं वेदस्याङ्गमेवास्ति वेदविद इत्युक्ते आगतं तथापि अत ज्योतिः शास्त्रस्य पृथगुपादानं प्राधानत्र्यख्यापनार्थं तस्मात् एतद् गुविशिष्टायेब्राह्मणास्तेपादेयमस्ति पुनर्ये धर्मशास्त्राणां पारगास्तेषां देयं आद्यं वर्त्तते इत्यर्थः ८ (सोतत्थ एवं पडिसिद्धो जायगेण महामुणी नविरुट्ठो नवितुट्ठो उत्तमट्ठगवेसओ ८] समहामुनिर्जयघोषः तत यज्ञे एवं अमुनाप्रकारेण विजयघोषेण याजकेन यज्ञकारकेण प्रतिषिद्धः सन् निवारितः

मेवय। तेसिं अन्न मिणं देयं भो भिक्खू सव्वकामियं ८॥ सो तत्थ एव पडिसिद्धो जायगेण महामुणी। नवि रुट्ठो नवि तुट्ठो उत्तमट्ठ गवेसओ ८॥ न न्नट्ठं पाण हेउंवा नवि निव्वाहणायवा। तेसिं वि मोक्खण ट्ठाए इमं वयण

ये समर्था. समुपत्तुं जे समर्थछे संसारथी आपणा आत्माने उद्धर वाभणी तारवाभणी परं आत्मानमपि परनेपणि आत्मानेपणि संसारसमुद्रथी तारवाभणी समर्थछे तेषां अन्नं इदं देयं तेहने अर्थे एअन्ननीपजेछे भो भिक्षु सर्वकामिकं षट्रसोपेतं अहो भिक्षु एसर्वकामित षट्रससहित भोजनछे ते विप्र जिमस्ये ८ सः जयघोष. यज्ञे अमुनाप्रकारेण निवारित. ते साधु इणे प्रकारे निवाख्योथको यज्ञकर्त्ता विजयघोपेन महामुनिः यज्ञनो करणहार विजयघोष ब्राह्मणने न विरुष्टः नापि तुष्टः इम कह्यांथका साधु न रूठो न तूठो मोक्षार्थं गवेषय. वांछकः मोक्षना सुखने वांछे मोक्षने मार्गेचालेछे ८ स मुनिः न अन्नार्थं न पानार्थं ते मुनि अन्नपानिने अर्थेनही भोजन वस्त्रादि निर्वाहणायनापि भोजन वस्त्रादिक तेहने निर्वाह भणी पणिनही तेषां

सन् नापिरष्टोनापि तुष्ट समभावयुक्तोभूत् कीदृश समहामुनिरुत्तमार्थगवेषकोमोक्षाभिलाषी ८ [न नइ पाण हेउ वा नविनिव्वाहणाय वा तेसि विमोक्खणट्ठाए इम वयणमव्ववी १०] समहामुनि तेषा विजयघोषादि ब्राह्मणाना विमोचनार्थं कर्मबन्धनात् मुक्तिकरणार्थं इद वचन अब्रवीत् पर अन्नपानलाभार्थं न अब्रवीत् एव ज्ञात्वा न अब्रवीत् येन अह एभ्य उपदेश ददामि एतेप्रसन्नामह्य सम्यग अन्नपान ददति इति बुद्धान अब्रवीत् किं तु तेषा ससारनिस्तारार्थं अवदत् वा अथवा निर्वाहणाय अपिनयस्त पार्श्वादिकाना निर्वाहएभ्यो मम भविष्यतितेन हेतुनान अब्रवीदिति भाव १० [णवि जाणसि वेयमुह नविजन्नाणजमुह नक्खत्ताणमुहजच जचधम्माणवामुह ११] किं अब्रवीदित्याह भो ब्राह्मणविजयघोषत्व वेदमुख नविजानासि पुनर्यत् यज्ञाना मुख वर्त्तते तदपित्व नजानासि पुनर्यत् नक्षत्राणा मुख तदपित्व न जानासि च पुनर्यद्धर्माणा मुख वर्त्तते तदपि त्व न

मव्ववी १० ॥ नवि जाणासि वेय मुह नवि जन्नाण ज मुह। नक्खत्ताण मुह ज च ज च धम्माण वा मुह ११ ॥ जे समत्था समुद्धत्तु पर अप्पाण मेवय। न ते तुम वियाणासि अह जाणासि तो भण १२ ॥ तस्सक्खेव पमोक्खच अच

विमोचार्थ तेहने ससारथी मूकाववानेकाजे इद वक्ष्यमाण अब्रवीत् इसो वचन साधु ब्राह्मणने कहेछे १० नैव त्वजानासि वेदमुख अहो ब्राह्मणतु वेदनु मुख नही जाणेछे नामो यज्ञाना यत् मुख यज्ञनो मुखपणि तु नही जाणेछे नक्षत्राण यन्मुख नक्षत्रनु पणि मुख तू नथी जाणतु यत् पुन धर्माणा वा मुख धर्मनु मुख पणि तु नथी जाणतु ११ ये समथा समुद्धर्त्तु जिकेसमर्थ उद्धरवा भणी पर आत्मान अपिच परने पणितारे आत्माने पणितारे न त्व जानासि विजयघोष हे विजयघोष तु नथी जाणतो अथ जानासि तत कथय जो तु जाणेछे तो कहो १२ तस्य मुने आक्षेप प्रमुख

जानासि ११ पुनः स साधुर्विजयघोषं ब्राह्मणंप्रति पृच्छति [जे समत्थासमुद्धत्तुं परं अप्पाणमेवय णते तुमं वियाणासि अहजाणासितोभण १२] हे विजयघोष ये परं च पुनः आत्मानं एवं समुद्धर्त्तुं संसारात् निस्तारयितुं समर्थास्तान् स्वपरनिस्तारकान् त्वं न जानासि अथ चेत्त्वं जानासि तदाभण कथय १२ (तस्सक्खेवपमोक्खञ्च अचयन्तो तहिंदिओ स परिसो पंजलिउडो पुच्छई तंमहामुणिं १३) तहिं इति तत्रयज्ञे दिजो विजयघोष. प्राञ्जलिपुटो बद्धाञ्जलिः सन् तं महामुनिं पृच्छति कीदृशो द्विजः सपरिषत्बहुभिर्मनुष्यैः सहितः पुनः स द्विजः कीदृशः सन् तस्य साधोराक्षेप प्रश्नस्य प्रमोचं प्रतिवचनं उत्तरं अचयन्तो इति दातुं असक्नुवन् प्रश्नस्योत्तरं दातुं असमर्थः सन् दातुं प्रत्याहार १२ (वेयाणञ्च मुहंबूहि बूहिजन्नाण जंमुहं नक्खत्ताण मुहंबूहि बूहिधम्माण वा मुहं १४) हे महामुने त्वमेववेदानां मुखंब्रूहि पुनर्यत् यज्ञानां मुखंतत्त्वं ब्रूहि पुनर्नक्षत्राणां मुखंब्रूहि

यंतो तहिं दिओ। स परिसो पंजलीउडो पुच्छई तं महामुणिं १३॥ वेयाणंच मुहं बूहि बूहि जन्नाण जं मुहं। नक्खत्ताण मुहंबूहि बूहिधम्माणवामुहं १४॥ जे समत्था समद्धत्तुं परंअप्पाण मेवय। एयंमे संसयंसव्वं साहूकहय

प्रश्नोत्तरो तेह यतीनेपूछ्यानो उत्तरदेवाभणी असमर्थ ब्राह्मण हुवो दातुं महा असक्नुवंत तस्मिन् यज्ञे द्विजः उत्तरदेवाभणी असमर्थ सपर्षत् समान्वितः प्रांजलिपुटः सर्व ब्राह्मण सहित हाथ जोडीने पृच्छति तं महामुनिं ते महामुनिने पूछेछे १३ वेदानां पुनः मुखं ब्रूहि वेदनो मुंहडोकहो ब्रूहियज्ञानां यन्मुखं यज्ञनो मुंहडो कहो नक्षत्राणां मुखं ब्रूही नक्षत्रनो मुंहडो कहो ब्रूहि धर्माणां वा मुखं धर्मनुं मुख कहो १४ ये समर्थाः समु द्धर्त्तुं जे समर्थ तारवाभणी परं आत्मानं एव परने आपणा आत्माने एतत् मम संशयं सर्वं एसर्वसाहरो संदेह हे साधो त्वं कथय मया पृच्छते अहो

पुनर्यद्भाषणं यन्मुख तद्ब्रूहि १४ [जैसमथा समवत्तु पर अप्पाणमेवय एथमे ससयसव्व साहकहय पुच्छिओ १५] पुनर्ये पुरुषा परस्य पुनरात्मान अपि ससारात् उद्धर्तुं समर्था सन्ति एतमे मम सशयविषय वेदमुखादिक अस्ति हे साधोत्व मया पृष्ट सन् सर्वं कथयस्व इत्युक्ते पुनराह १५ [अग्गिहोत्तमुहावेया जन्नट्ठी वेयसामुह नक्खत्ताण मुह चन्दो धम्माण कासवोमुह १६] हे विजयघोषवेदा अग्नि होत्र मुखा अग्निहोत्र मुख येषा ते अग्निहोत्र मुखा वेदानां मुख अग्निहोत्र अग्निहोत्र हि अग्निकारिका सा च द्रव्य कर्मेंधन समाश्रित्य ह्वासद्भावनाहुति धर्मध्यानाग्निनाकार्य्योदीपितेनाग्निकारिका १ इत्यादि यत्र विधि विधायिकाकारिकाग्रह्यते वेदानां यज्ञाना एषा एवकारिकामुख प्रधान अस्या कारिकाया अर्थं कर्माणि इन्धनानि कृत्वा उत्तमाभावना आहुतिर्विधेयाधर्मध्यानाग्नौ दीपितेन इय अग्निकारिकाविधेया पुनर्हे ब्राह्मणविजयघोष यज्ञार्थीपुरुषोवेदसां यज्ञानां मुख वर्त्तते यज्ञोदशप्रकारधर्मं सत्य १ तपस् २ सन्तोष ३ क्षमा ४ चारित्र ५ आर्जव ६ श्रद्धा ७ धृति ८ इहिंसाच ९ सम्वरश्च तथा पर १० इति दशप्रकार सयात्मप्रत्याख्यानयज्ञस्त यज्ञ अर्थयति अभिलषतीति यज्ञार्थी स एव यज्ञानां मुख वर्त्तते नक्षत्राणां मध्ये चन्द्रो वर्त्तते धर्माणां श्रुतधर्माणां चारित्रधर्माणां काश्यप आदीश्वरोमुख वर्त्तते धर्मा सर्वेपि तेनैव प्रकाशिताइत्यर्थः १६

पुच्छिओ १५ ॥ अग्गिहोत्त मुहावेया जन्नट्ठीवेयसामुह नक्खत्ताण मुहचंदो धम्माण कासवोमुह १६ ॥ जहाचंद गहा

साधु तु कहोइ पूछ्यु १५ मुनिरुवाच अग्निहोत्र मुखा वेदा अग्निहोत्र अभ्यतर साधुकहे धर्मध्यानरूप अग्निकरी कर्मरूपइ धण होमीइ ते अग्निहोत्र वेदनामुख यज्ञार्थभाव यज्ञ वेदसां यागानां मुख भाव सहित यज्ञनो अर्थी साधु ते यज्ञनु मुख नक्षत्राण मुखचद्र नक्षत्रनु मुखचद्रमा धर्माणां मुख

[जहाचन्द गहाईयाचिट्ठन्ते पञ्जलीउडावन्दमाणा नमसन्ति उत्तम मणहारिणो १७] यथा ग्रहादिका अष्टासीति ग्रहा नक्षत्राणि अष्टाविंशति प्रमितानि एव सर्वज्योतिष्कादेवाश्चन्द्रः प्राञ्जलिपुटाः बद्धांजलयस्तिष्टन्ति सेवन्ते एवं श्रीरिषभदेवं उत्तमं प्रधानं यथा स्यात्तथामनोहारिणस्त्रिभुवनवर्त्तिनो भव्या वन्दमाना स्तवनां कुर्वन्तो नमस्कुर्व्वन्ति विनयेप्रवर्त्तन्तेइति भाव (अजाणगाजन्नवाई विज्जामाहणसम्पयामूढासज्झायतवसा भासछन्नाइव गिणो १८] हे विजयघोषविद्याब्राह्मणसम्पदां अजानाना: पुनर्यज्ञवादिन स्तेषयापातलेन मन्यन्ते विद्याआरण्यक ब्रह्माण्डपुराणात्मिकास्ता एव ब्राह्मणसम्पदोविद्याब्राह्मणसम्पदस्तासां अज्ञाः सन्तोयज्ञवादिनोवर्त्तन्ते चेत् बृहदारण्यकाद्युक्तं यज्ञं एतेजानन्ते तदा कथ एतादृश यज्ञं कुर्युः तस्मात्

दूया चिठ्ठंती पंजलीउडा। वंदमाणा नमंसंता उत्तमं मणहारिणो १७॥ अजाणगा जन्नवाई विज्जामाहण संपया। मूढा सज्झाय तवसा भास छन्नाईवग्गिणो १८॥ जोलोए वंभणो वुत्तो अग्गीवा महिओ जहा। सयाकुसल संदिठ्ठं

काश्यप ऋषभदेव धर्मनु मुखश्रीआदिनाथ १६ यथा चद्रग्रहादिका जिम चद्र आगे ग्रह नक्षत्र तारा सन्मुख तिष्टति प्राजलिपुटाः हाथजोडीने साहमा जभारहे वदमानाः स्तवतः नमस्यतः वांदताथका स्तवतांथका नमस्कार करताथका चंद्रमाने सेवेछे उत्तमं प्रधानं मनोहारिणः उत्तम प्रधान मनननो हरणहार तिम श्रीआदिनाथने इंद्रादिक इम हाथ जोडोने सेवेछे १७ अतत्वज्ञा यज्ञवादिनः एते ब्राह्मणाः एब्राह्मण जाणेनही अने कहे अम्हे जज्ञकरु छु विद्यानां ब्राह्मणसपदांच अग्निविद्या अने ब्राह्मणनीं संपदा जाणेनही मूर्खाः स्वाध्याय तपसाः सज्झाय तपने विखे मूर्ख वेदाध्ययनोपवासादिना भस्मच्छन्नो अग्निरिव राखसुं ढाको अग्नि जीम दहे तिम ते ब्राम्हणछे १८ ये लोके ब्राम्हणः उक्ताः जे लोकाने विखे ब्राम्हणकह्या पंडिते यथा अग्निर्मथीतो निर्म्मल जिम अग्नि पूज्योथको घीघाल्याथका उज्वलनिर्मलहोइ तिम ते ब्राम्हण होइ सदा कुशले

एवंवयं याज्ञिकाइत्यभिमानं कुर्वन्ति पुनः कथंभूता स्वाध्यायतपसावेदाध्ययनोपवासादिना मूढा बहिः संहतिमन्तः आच्छादित तत्वज्ञाना एते केइय भस्मच्छन्ना अग्नय इव रक्षाच्छादितावह्नयइव इत्यनेन बाह्येोतत्वे प्रामा परं कषायाग्निनामध्ये सन्तप्ता एवेतिभाव १८ पुनः साधुर्वदति [जोलोएबम्भणोवुत्तो, अग्गीवामहीओजहा सया कुसलसन्दिट्ठं त वयं बूमभाहण १८] हे विजयघोषवयं तं ब्राह्मणं ब्रूमः तं कं येमुनिभिर्ब्राह्मण उक्त यदा कोचित् अग्रे अब्राह्मणोपि ब्राह्मणोवमित्युक्तस्त ब्राह्मणं न ब्रूमइति भाव कथंभूत स लोकेमहित पूजित सन् दीप्यते कइव अग्निरिव यथाग्नि पूजितोघृतादि सिक्तोदीप्यते कीदृशं तं ब्राह्मणं सदा कुशलसन्दिष्ट कुशलैस्तत्वाभिज्ञै सन्दिष्ट कथित १९ अथ कुशलसंदिष्टस्वरूपमाह [जोनसज्जइ आगन्तु पव्वयन्तो नसोयइ रमइ अज्जवयणमि तवय बूमभाहण २०] हे विजयघोष तं वयं ब्राह्मणं ब्रूमः तं इतिकं यः आगन्तु इति बहुभ्योदिनेभ्य प्राप्त स्वजनादिकं वस्त्रभक्षनवत्सजतिनालिङ्गति अथवा आगन्तुइति स्वजनादिस्थानं आगत्यस्वजनादिकं न स्वजति न अभिष्वङ्ग करोति पुनर्यः प्रव्रजन् स्थानात् अन्यत्स्थानं स्थानान्तरं गच्छन् अर्थात् विहरन् नशोचते नशोकं कुरुते पुनर्यः आर्यवचनेतीर्थंकरवाक्ये रमते तं वयं ब्राह्मणं वदाम २०

तवय बूमभाहण १९ ॥ जोन सज्जइ आग तु पव्वयंतो न सोयई । रमई अज्जवयणमितवय बूमभाहण २० ॥ जाय

सदिष्ट त ब्राह्मणकुशले चतुरे तीर्थंकरे कह्या ग्रत वय ब्राह्मण ब्रूम तेहनेंहू ब्राह्मणकहूं छु १९ य नसज्यते आगत्य पुन स्वह संग न करोति दीक्षा लेइने वली आवोने स सारीनो स ग न करे प्रव्रजन् स्थानांतर गच्छन् न शोचते दीक्षालेइने दसदिशाने विषे जाइतोयको शोचिनही रति कुरुते तीर्थ कहइचने सु तोयकरे तीर्थ करना वचन ऊपरि त वय ब्राह्मण ब्रूम तेहनेंहू ब्राह्मणकहूं छु २० यथा ध्मातरूप सुवर्ण प्रमृष्ट जिम जात्य सुवर्ण भो

[जायरूवं जहामट्ठं निद्धंत्तं मलपावगं रागदोसभयातीतं तं वयं बूममाहणं २१] हे विजयघोष वयंत ब्राम्हणं ब्रूमः कीदृशं जातरूपं स्वर्णइव आमृष्ट तेजोद्वव्येमनः शिलादिनापरामृष्टं व्रतवर्णिकावर्द्धनं अनेन बाह्यगुणउक्ता यथा शब्द इवार्थे पुनः कीदृशं तं निद्धंत्तमलपावगं नितरां अतिशयेनध्मातं मलं किट्टन्तद्रूपं पातकं यस्य तत् निर्ध्मातमलपापकं अनेन च अन्तरोगुणउक्ताः पुनः कथंभूतो रागदोष भयातीतं रागः प्रेमरूपः द्वेषोऽप्रीति रूपस्ताभ्यां अतीतोदूरीभूतस्तं विप्रवदामः २१ [तवस्सियं किसन्दन्तं अवचियमससोणियं सुव्वयं पत्तनिव्वाणं तं वयं बूममाहणं २२] हे विजयघोस वयन्तं ब्राम्हणं ब्रूमः तं कं तपस्विनं अतएव कृशं दुर्बलं पुनः कीदृशं दान्तं जितेन्द्रियं पुनः कीदृशं अपचितमांसशोणियं शोषितमांसरुधिरं पुन कीदृशं सुव्रतं सम्यक् व्रतानां धर्त्तारं पुनः कीदृशं प्राप्तनिर्वाणं प्राप्तं कषायाग्नि शमनेन निर्वाणं शीतीभावं येन स प्राप्तनिर्वाणस्तं २२ (तसपाणे वियाणित्ता

रूवं जहामट्ठं निद्धंत मलपावगं। रागदोसभयाईयं तंवयं बूममाहणं २१। तवस्सियं किसंदंतं अवचिय मंस - सोणियं। सुव्वयं पत्तनिव्वाणं तंवयं बूममाहणं २२॥ तसेपाणे वियाणित्ता संगहेणयथावरे। जोन हिंसइतिविहेणं

प्य थकुं निध्मात मलरूप मलरहितं धम्योथको मेलदुरिहोइ तिम साधु पापमलथी रहित रागद्वेष भयातीतं रहितं रागद्वेषभय तिणे करीरहितछे जे साधू त वयं ब्राम्हणं बदामः तेहनेहूं ब्राम्हणकहूंछुं २१ तपस्विनं कृशं दांतं तपस्वी कृशदांतछे अपचिंत शोषितं मांस शोणितं मांसलोहिसोष्यांछे सुव्रतं कषायाग्निशमनेन प्राप्त स तल व्यारे कषायउपशमायाछे तलप्राप्तिहूईछे तंवयंब्राम्हणं बदाम तेहनेअम्हे ब्राम्हणकहूं २२य. त्रसान्प्राणान्विज्ञायत्रस प्राणीनेजांणीने संग्रहेणं थावरान् थावर जीवने जाणि यो न विनाशयति त्रिविधेन मनोवाक्कायैः त्रसादिजीवने मनवचन कायाइं करीनेमारे नही तं वयं

सङ्घेणय थावरे जोन हिसइ तिविहेण त वय बूममाहण २३] हे वाम्हण त वय वाम्हण ब्रूम त इति क यस्त्रसान् प्राणान् पुन स्थावरान् सङ्क्षेपेण समासेन सचेपेण विज्ञायत्रिविधेन मनो वाक्कायेन करणकारणानुमतिभेदेन नवविधेन नहन्ति त वाम्हण बचूमइति भाव २३ (कोहा वाज दृवाहासालोहावाजइवाभया मुस नवयईजोउ त वय बूममाहण २४] हे विजयघोष य क्रोधात् यदिवा अथवा हासात् वा अथ वा लोभात् अथ भयात् मृषा असत्यवाणीं नवदति त वय बाम्हण ब्रूम २४ [चित्त मतमचित्त वा अप्प वा यदि वा बहु नगिण्हइ अदत्त जं त वय बूममाहण २५] हे वाम्हणयचित्तम त सचित्त अथवा अचित्त प्रासुक अल्प स्तोक यदि वा बहु प्रचर अदत्त दायकेन अनर्पित स्वयमेव न गृह्णाति त वय वाम्हण वदाम २५ [दिव्वमाणुसतेरिच्छ जोनसेवइमेहुण मणसाकायवक्केण त वय बूममाहण २६] पुनर्योदिव्यमानुष्यतिर

तवय बूममाहण २३॥ कोहावा जइवाहासा लोभावा जइवा भया। मुस नवयईजोउ तवयं बूममाहण २४ ॥ चित्त मत मचित्तवा अप्पवा जइवा वहु । न गिण्हइ अदत्त जे तवय बूममाहण २५॥ दिव्वमाणुसतेरिच्छ जोनसेवइ

वाम्हण वदाम तेहने अम्हे वाम्हणकहु छु २३ क्रोधाद्वायदिवा हासाद्वा क्रोधेकरी हासेकरी लोभाद्वा लोभेकरी अथवा भयाद्वाभयकरीने मृषानवदति य मृषावाद बोलेनही त वय वाम्हण वदाम तेहने अम्हे वाम्हणकहु छु २४ य चित्तमत द्विपदादि अचित्त स्वर्णादि सचित्त द्विपदादिक अचित्त सुव र्णादि अल्प वायदिवावहु थोडु अथवा घणु न गृह्णाति अदत्तय जे कोइनुअणदीधु नलिइ वयत वाम्हण वदाम अम्हे तेहने वाम्हणकहु २५ देव मनुष्य तिर्यंग सबधिन देव मनुष्य सवधितीर्यं च सबधी य न सेवेते मैथन मैथुन सेवनही मनसा वचसा कायेन मनेकरीकायाइ करी वचनेकरी त वय

यौन मैथुन मनसा कायेन वचसा कृत्वा न सेवते वयं तं ब्राह्मणं वदामः २६ [जहापोमं जले जायं नोव लिप्पइ वारिणा एवं अलित्तं कामेहिं तं वयं बूम माहणं २७] हे ब्राह्मण पुनस्त वयं ब्राह्मणं वदामः तं कीदृशं एवं अमुनाप्रकारेण अनेन दृष्टान्तेन कामैः अलिप्तं भोगैः असंलग्नं येन दृष्टान्तेन यथा पद्मं जलेजातं पर तत् पद्मं वारिणा न उपलिप्यते जलन्यस्तोपरितिष्ठति तथा भोगैरुत्पन्नोपि भोगैरलिप्तोयस्तिष्ठति स ब्राह्मणोज्ञेयः २७ [अलोलुयं मुहाजीवि अणगारं अकिंचणं असंसत्तं गिहत्थेसु तं वयं बूममाहणं २८] मूलगुणमुक्त्वा उत्तरगुणमाह पुनर्वयं तं ब्राह्मणं ब्रूमः कीदृशं तं ब्राह्मणं अलोलुपं आहारादिषु लाम्पट्यरहितं पुनः कीदृशं मुधाजीविनं अज्ञातगृहेषु आहारादि गृहीत्वा आजीविकां कुर्वाणं संयमजीवितव्यधारकं इत्यर्थः पुनः कीदृशं गृहस्थेषु असंसक्तं गृहस्थे प्रतिबन्धरहितं २८ [जहित्ता पुव्वसंजोगं नायसङ्गे य बन्धवे जो न सज्जइ एएसु तं वयं बूममाहणं २९]

मेहुणं । मणसा कायवक्केणं तंवयं बूममाहणं २६ ॥ जहापोमं जलेजायं नोवलिप्पइ वारिणा । एवं अलित्तं कामेहिं तंवयं बूममाहणं २७ ॥ अलोलुयं मुहाजीवी अणगारं अकिंचणं । असंसत्तं गिहत्थेसु तंवयं बूममाहणं २८ ॥

वदामः ब्राह्मणं तेहने अम्हे ब्राह्मण कहुं छु २६ यथा पद्मं जलेजातं जिम कमलपांणीमाहिं जगी नोविलिप्यते जलेन परं पांणीसुं लेपाइ नहीं एवं अलीप्तः पद्मवत् कामे इम जे कमलनीपरे कामभोगथी लेपाइ नहीं तं वयं वदामः ब्राह्मणं तेहने अम्हे ब्राह्मण कहुं छुं २७ यः आहारेषु अल पदं मुधा अज्ञाता जीविन जे आहारने विखे लंपट न हुवे मुधा जीव धर्मनिमित्त जाणीने दीइ तेहनुं लिइ ते मुधाजीवक कहीइ अनगारं अकिंचन परिग्रहरहितं घररहित परिग्रहरहित असंबद्ध गृहस्थे. सहसंसर्गरहितं असंबध गृहस्थसुं परिचय न करे त वयं ब्राह्मणं वदाम. तेहने अम्हे ब्राह्मण कहुं; २८ त्यक्त्वा

पुनस्त वय ब्राम्हण बदाम तमिति कि यो ज्ञाती स्वकीयगोचे च पुन सस्रेसुरादि सम्बन्धेपुनर्बान्धवे पूर्वसञ्जोग मातापित्रादिक्षे छन्यज्ञा पुनरेतेषु पूर्वोक्तेषु नस्वजति रागासक्तोनभवति त ब्राम्हण वय बदाम २९ [पसुवधासव्वेवेयाजड्ढपावकम्मुणानतन्तायति दुस्सील कम्माणि बलवन्तिह ३०] भोविजयघोप सर्ववेदा पशुबन्धा वर्त्तन्ते पशूना बन्धोविनाशायनियन्त्रण येस्तेपशुबन्धा. केवल वेदा पशुहननहेतवोयस्मात्ते नतुमोक्षहेतव हिंसाया प्ररूपकत्वात् यतोहि वेदवाक्यमिद श्रूयतां भूतिकामोवायव्यांदिसि श्वेत छागमालभेतइत्यादि पशुवन्धे हेतु भूत वेदवाक्य च पुनजड्ढ इति इष्ट यजन यज्ञ पापकर्मणा उत्पद्यते तत् इष्ट पापकर्मणा पापकारणपशुबन्धाद्यनुष्टानेन त वेदानां अध्येतार यज्ञकर्त्तार वानत्रायन्ते यज्ञकर्त्तार वा दु शील दुराचार पापशास्त्राणां पठनेन पापकर्मकरणेन दुष्टाचार इह कर्माणि बलवन्ति यस्मात्ते दुष्टकर्माणि बलेन पापकर्मकर्त्तार नरक नयन्ति

जहित्ता पुव्वसजोग नाति सगेय बधवे । जोनसज्जइ एएसु तवय बूममाहणं २९ ॥ पसुबधा सव्वेवेया जट्ठ च पाव कम्मुणा । न त तायति दुस्सील कम्माणि बलवतिह ३० ॥ नवि मुंडिएण समणो नओकारेण बंभणो । न मुणी

पूर्व सजोग पाछिलो सयोगछाडोने ज्ञात सगा वांधवान् जाति भाइ बधनोस गमूर्छ थ न स वते भोगेषु जे कामभोगने विखे सज्जनथीये त वय ब्राम्हण बदाम ते अम्हे ब्राम्हणकह कु २९ पशुवधा सववेदा सर्ववेदनेविखे छालानोवधकह्यो पशुआगोमि यज्ञकर्मचपापकमणा पुरुष जिको एपापकमकरेछे यज्ञ करछे अथवा करावेछे त दु शीलनत्रायति न रक्षति ते दु शील हीनाचारो पुरुषने नरकपड्ता राखेनहीं कर्माणो बलवतराणि अमणा कोधा कर्म ते बलवतछे कर्मथी छुटणवाला कोई नहोछे ३ नस्यात् मु डीतेन श्रमण माथे मूडयो जतोनहीं नथी भुर्भव स्वस्ति स्वाहेत्यादिना ब्राम्हण ओंकारभण्यो

अत:कारणात् एतस्मात् यागात् ब्राम्हणः पात्रभूतोस्ति किं तु अनन्तरोक्त गुणवान् एव ब्राम्हणः इति भाव २० [नविमुण्डिएण समणो नओंकारेण बम्भणो न मुणोरन्नवासेणं कुसचीरेणनतावसो २१] हे विजयघोष मुण्डितेन श्रमणोनिग्रन्थो न स्यात् ओंकारेण ओंभूर्भुवः स्वस्तीत्यादिना ब्राम्हणोनस्यात् तथा अरण्यवासेन मुनिर्नोच्यते कुशोदर्भस्तन्मयं चीरं उपलक्षणत्वात् वल्कल कुशचीरं तेन कुशचीरेण कुशोपलक्षितवल्कल वस्त्रेणतापसो न भवेत् २१ [समयाए समणोहोइ बम्भचेरेणबम्भणो नाणेणयमुणीहोइतवेण होइ तावसो २२] समयासमयत्वेन शत्रुमित्रयोरुपरिसमानभावेन श्रमणो भवति ब्रम्हचर्येण ब्राम्हणोभवति ब्रम्हपूर्वोक्तं अहिंसा सत्यचौर्याभावामैथुननिर्लोभरूप तस्य ब्राम्हणपरत्वं अङ्गीकरणं ब्रम्हचर्यंतेन ब्राम्हण उच्यते ब्रम्हत्व युक्तो ब्राम्हणइत्यर्थः ज्ञानेन मुनिर्भवति मन्यते जानाति हेयोपादेयविधोइति मुनिः स च ज्ञानेनैव स्यात् तथा तपसाद्वादशविधेनतापसोभवति २२

सूत्र

रन्नवासेणं कुस चीरेण न तावसो २१ ॥ समयाए समणो होइ बंभचेरेण बंभणो । नाणेणय मुणी होइ तवेणं होइ तावसो २२ ॥ कम्मुणा बंभणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ । वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा २३ ॥

भाषा

ब्राम्हण न हुई न मुनिः अरण्यवासेन रण्यमाहि वसतां मुनीनकहोजे दर्भमय वल्कलरूप वस्त्रे नतापस दर्भनोचे पाथरीछालिपेहरीतो तापस नहोइ २१ रागद्वेषादि समभावेन श्रमणोभवति समताभावराखे रागद्वेषनकरे ते श्रमण कहोजे ब्रम्हचर्येण इन्द्रिय गुप्तरूपेण ब्राम्हणः स्यात् शीलव्रत पाल्यां ब्राम्हण कहोइ ज्ञानेन मुनिर्भवति ज्ञानभण्यां मुनीकहोइं तपसाभवति तापसः तपकरे ते तापस कहीजे २२ कर्मणा ब्राम्हणोभवति कर्म करीने ब्राम्हण होइ कर्मणाभवति क्षत्रियः कर्म करीने क्षत्रीहोइ वैश्यजातिः कर्मणाभवति किसाड वैश्यजाति कर्म करीहोइ २३ एतान् प्रागुक्तान् प्रकट

[कम्मुणावम्भणो होइ कम्मुणा होइखत्तिश्रो वयसोकम्मुणाहोइ सुद्दोहवइकम्मुणा २२] कम्मणाक्रिययाव्राम्हणाभवति क्षमादानदमोध्यान सत्य शौच धृतिदृणाज्ञानविज्ञानमास्तिक्यमेतत् व्राम्हणलक्षण अनयाक्रियया लक्षणभूतयाव्राम्हण स्यात् क्षत्रिय शरणागतत्राणलक्षणक्रियया क्षत्रिय उच्यते नतु क्षयत क्षत्रियकुलेजातिसमुत्पन्नेसति यस्य यन्धनत्वे नैवक्षत्रिय उच्यते एव वैश्योपि कर्षणाक्रियया एव स्यात् क्रमिपसुपाल्यादि क्रियया वैश्य उच्यते कर्म्मणा एव श॰भवति शोचनादि हेतु प्रेषणभारोदहनजलाद्याहरणचरणमर्दनादिक्रियया शूद्र उच्यते अत्र व्राम्हणलक्षणावसरे अन्येषां वर्णत्रयाणां लक्षणायधान प्रतीति दर्शनार्थं २३ [एएपाउकरबुद्धे जेहि होइसिणाइओ सव्वकम्मविणिमुक्क त वय बूममाहण २४] बुद्धोज्ञाततत्व श्रीमहावीर एतान् अहिंसाधर्मान् प्रादुरकार्षीत् प्रकटीचकार यैर्गुणै कृत्वा सर्वकर्म्मविनिर्मुक्तोभूत्वास्नातको भवति केवली भवति प्राकृतत्वात् प्रथमास्थाने द्वितीया त एताहशगुणयुक्त स्नातक वा वय व्राह्मण वदाम २४[एव गुणसमाउत्ताजेभवन्तिदिउत्तमातेसमत्थाओ उद्धत्तु पर अप्पाणमेवय २५)

एए पाउ करे वुद्धे जेहि होइ सिणाइओ। सव्व कम्म विणिम्मुक्क त वय बूम माहण २४ ॥ एव गुण समाउत्ता जे भवति दिउत्तमा। ते समत्थाओउद्धत्तु पर अप्पाण मेवय २५ ॥ एव तु ससए छिन्ने विजयघोसेय माहणे। समा

मकारात् एअर्थपूठे कह्या वुद्ध तोथ करे ये अर्थं सेविते स्नातक केवलीभवति एअर्थंने सेवे ते केवली होइ सर्वकर्मरहित सर्वकर्मविनिर्मुक्त त वय व्राम्हण बूम तेहने अम्हे व्राम्हणकहा २४ एव गुण समायुक्ता इणिप्रकारे सर्वगुणसहित ये भवन्ति दिजोउत्तमा ते उत्तम व्राम्हणहुवे ते समर्था समुद्धत्तु ते समर्थहुवे उधरवाभणी परस्पर अथवा आत्मानय परने तार आपना आत्माने पीणतार २५ एव असुना प्रकारण स थयेच्छिन्ने इण प्रकारे सन्देहछेद्या

एवं गुणसमायुक्ताः ये द्विजोत्तमाब्राम्हणाश्रेष्टाभवन्ति ते ब्राम्हणोत्तमा परं आत्मानं अपि उद्धर्तुं समर्थाभवन्ति ३५ (एवं तु संसए छिन्ने विजयघोसीय माहणो समादयतश्रोतं तु जयघोसं महामुनिं ३६) ततस्तदनंतरं विजयघोषोब्राम्हणः जयघोषं महामुनिं उवाच इदं वचनं उदाहकथयति इति सम्बन्धः किं कृत्वा तं मुनिं जयघोषं समादाय सम्यक् उपलक्ष्यज्ञात्वा क्वसति एवं पूर्वोक्त प्रकारेण विजयघोषस्य संशयेछिन्ने सति ३६ (तुट्टीयविजय घोसे इण मुदाहुकयञ्जलीमाहणत्तं जहाभूय सुट्ठुमेउवदंसियं ३७) विजयघोषस्तुष्ट इदं वचनं जयघोषमुनये आह कीदृशो विजयघोष कृताञ्जलिः हे मुनेमे मम ब्राम्हणत्वं यथा भूतं यथा स्वरूपं सुष्टुसम्यक् उपदर्शितं ३७ (तुब्भे जइयाजन्नाणं तुब्भे वेयविऊविऊ जोयसङ्गविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ३८) किं वचनं आह हे महामुने तुब्भे इति यूय यज्ञानां यष्टारोयूयं वेदवित्विद वेदविशुविदोज्ञातारोवेदविदांवराः यूयं एव पुनर्यूयं

दाय तश्रोतंतु जयघोसं महामुणिं ३६ ॥ तुट्ठोय विजयघोसे इण मुदाहु कयंजली। माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु मे उव दंसियं ३७ ॥ तुब्भे जइया जन्नाणं तुब्भे वेय विऊविऊ। जोइसंग विऊतुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ३८ ॥ तुब्भे

थकां विजयघोषस्य ब्राम्हण विजयघोष ब्राम्हणने समुदाय सम्यग्वधार्य तदा साधूनां वचन हियामांहि धारीने जयघोष महामुनि ते जयघोष महा मुनिने ३६ तुष्टो विजयघोष ब्राम्हण विजयघोष ब्राम्हण सतुष्टइओ इदं उदाहृतवान् कृतांजलिः सन् हाथजोडीने इमकहेछे ब्राम्हणत्वं यथाभूतं ब्राम्हणपणुं जिमहतूं तिम तुम्हे भलुं काह्यो शोभनं मम उपदर्शितं भलुं काह्युतें ३७ यूयं यज्ञानंकर्त्तारः तुम्हे यज्ञनाकरणहारछो यूयं वेदविदो विद्वांसः तुम्हे वेदना जाणणहारछो ज्योतिषांगविदोयूयं तुम्हे ज्योतिषसास्त्रनोजाणछो यूयंधर्म्माणांपारगाः तुम्हे धर्म्मनापारगामीछो३८ यूयं समर्थाः भवात् उद्धर्तुं

एवज्योतिषाङ्गविद यूय एव धर्माणा पारगा धर्माचारपारगा ३८ (तुम्भे समत्था समुद्दत्तु परमप्पाणमेवय तमणुग्गहकरेहम्ह भिक्खेण भिक्खु उत्तमा २८) पुन हेमहामने यूय पर पुन आत्मान समुद्धर्त्तु ससारात् निस्तारयितु समर्था त इति तस्मात्कारणात् भोभिक्षूत्तमा साधुश्रेष्टा भिक्षयाभिक्षाप्रदानेन अस्माक अनुग्रह यूय कुरुत ३९ (णकज्ज मज्झभिक्खेण खिप्प निक्खमसूदियामाभमिहसि भयावत्ते घोरेससारसागरे ४०) तदा जयघोषमुनिराह हे द्विज मम भिक्षयाकार्य नास्ति त्व क्षिप्र शीघ्र अमत्वदीक्षा गृहाण हे द्विजघोरेभीषणेससारसागरे भ्रमसिमिथ्यात्वेनत्व ससारसमुद्रे भ्रमिष्यसि तस्मान्मिथ्यात्वत्यजजैनी दीक्षा गृहाणेति भाव कथभूते ससारसमुद्रे भयावर्त्ते सप्तभयजलभ्रमयुक्ते ४० (उवलेवोहोइ भोगेस अभोगीनोवलिप्पइ भोगीभमइ ससारे अभोगीविप्पमुच्चइ ४१) हे विजयघोष भोगेष भुज्यमानेष सत्सु उपलेप कर्मोपचय रूपोबन्ध स्यात् अभोगी

समत्था समुद्दत्तु पर अप्पाण मेवय। त मणुग्गह करेअम्ह भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ३९॥ न कज्ज मज्झ भिक्खेण खिप्प निक्खमसूदिया। मार्भामिहिसि भया वत्ते घोरे ससार सागरे ४०॥ उवलेवो होइ भोगेसु अभोगी नोव

तुम्हे ससारसमुद्र तारिवाभणी समर्थछो पर आत्माननेवअपरनेतारोछो अथवा आत्माने पणि तारोछो तस्मात् त्व अस्माक अनुग्रह उपकार कुरु तिणे कारणि अहो स्वामो कृपाकरी भिक्षाप्रदानेन हे भिक्षूत्तम भीक्षानेनेवे करीने भिक्षालेवो अम्हनेतारो ३९ न कार्य मम भिक्षाया यतीबोल्यो माहरे भिक्षास्यु, कोइकामनथीक्षे शोघ्र प्रव्रज हे द्विज अहो ब्राह्मण जतावलो तु दीक्षालिइ माभ्रमण कुर्या भयावर्त्त भयोत्पादके परिभ्रमणतु मकरि रौद्रे ससारसमुद्रे परौद्रवीहामणो ससारसमुद्रतेहमाहि ४ उपलेप कर्मप्रभूतिरूपो भवति भोगेषु सेवलागे आत्मामेलाहोये भोगीकरीने अभुज्यमानेषु

भोगानां अभोक्ताकर्मणान उपलिप्यते पुनर्भोगीभोगाना भोक्तासंसारेभ्रमति अभोगीभोगाना अभोक्ताकर्म्मलेपाद्विमुच्यते ४१ (उल्लोसुक्कोयदोछूढागोलया मट्टियामयादोविआवडियाकुड्डेजो उल्लोसोतत्थलग्गई ४१) कर्म्मलेपेदृष्टांतमाह उल्लआर्द्रश्च पुन शुष्कः एतौ द्वौ मृत्तिकामयौगोलको कुड्ये भित्तौ उच्छुटौ आक्षिप्तौ तत आपतितौभित्तौ आस्फालितौसन्तौ अनयोर्मृत्तिकामयगोलकयोर्मध्ये यउल्लः आर्द्रो मृद्गोलकः स कुड्येलगति ४२ (एवं लग्गन्तिदुम्मेहा जेनराकामलालसाविरत्ताउनलग्गंति जहासुक्केउगोलए ४३) एवं अमुनाप्रकारेण आर्द्रमृत्तिकागोलकदृष्टान्तेनदुर्मेधसोदुष्टबुद्धयोयेनरा कामलालसाः भोगेषुलंपटा लगन्ति संसारेआसक्ताः भवन्ति तु पुनर्विरक्ताः कामभोगेभ्योविमुखनराः नलगन्ति संसारासक्तानभवन्ति यथा शुष्कौ मृद्गोलकोभित्तौ

सूत्र

लिप्पई भोगी भमइ संसारे अभोगी विप्पमुच्चई ४१। उल्लो सुक्कोय दो छूढा गोलया मट्टियामया। दोवि आव डिया कुड्डे जोउल्लो सोतत्थ लग्गई ४२। एवं लग्गंति दुम्मेहा जे नरा कामलालसा। विरत्ताओ नलग्गंति

भाषा

भोगेषु कर्मणानोविलिप्यते जे को भोग भोगवे भोगी भ्रमति ससारे भोगीहुवे ते संसारमांहि फिरे अभोगी संसारात्मुच्यते अभोगीहुवे ते संसारथी मूकाइ ४१ शुष्कः आर्द्रः द्वौ चिप्तौ एकसूको एकनोलो लेइनैनाख्यो गोलको मृत्तिकामयौ गोलामाटीना द्वावपि आपतितौ भित्तौदोइगोलाभींतिजाइ लागानांख्याथका यः आर्द्र स अत्र भित्तौ लगति जे आलोहतु ते भोति लागीरह्यो सूकोखिरीपड्यो ४२ एवकर्म्मणार्द्रालगति दुर्मेधसः भूंडी मतिना धणी पापेकरीने इम संसारमांहि लागीरहे जे नराः काम लपटाः जे मनुष्य कामभोगने विषे लपटाई रह्याछे विरक्ता कामभोग रहिताः न लगति जेकामभोगथी रहितहुआछे ते लागेनही यथा सः शुष्कः गोलकः सूकागोलानीपरे न लागे ४२ एव स विजयघोष इणि परि विजयघोष ब्राम्हण जय

नसगति ४३ (एव सो विजयघोषाजयघोषस्य अन्तिए अणगारस्सनिक्खन्तो धम्म सुचा अणुत्तर ४४)एव अमुनाप्रकारेण स विजयघोषो ब्राह्मणोजयघोषस्य अणगारस्य अन्तिके समीपेनिष्क्रान्तो दीक्षांप्रास किं कृत्वा अनुत्तर धर्म श्रुत्वा ४४ [खवित्तापुव्वकम्माइ सञ्जमेणतवेणय जयघोस विजयघोसासिद्धि पत्ताअणुत्तरंतिबेमि ४५) जयघोष विजयघोषौ उभावपि अनुत्तरां प्रधाना गतिं सिद्धिं प्राप्तौ किं कृत्वा संयमेन च पुनस्तपसापूर्वकर्माणिक्षपयित्वा इति अहं ब्रवीमिसुधर्मा स्वामीजम्बूस्वामिनं प्राह ४५ इति यज्ञीयाख्य पञ्चविंशतितम अध्ययन सपूर्ण इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्यायश्रीलक्ष्मीकीर्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचितायां पञ्चविंशतितम अध्ययन सम्पूर्णं ॥ २५ ॥ अथ षटविंशतितम अध्ययन प्रारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने ब्रह्मगुणा० । ब्रह्मगुणयुक्तसाधुर्भवत्यात् साधुनाच अवश्य सामाचारीविधेयाइति हेतो सामाचारी साधुजनकर्त्तव्यतारूपा अत्राध्ययने कथयामि (सामायारियवक्खामि सव्वदुक्खविमुक्खणि जंचरित्ताणनिग्गयातिन्नासंसारसागर १) अह तां समाचारीं साधुकरणीयां क्रियां

जहा सुकेय गोलए ४३ ॥ एव सो विजयघोसो जयघोसस्स अन्तिए । अणगारस्स निक्खन्तो धम्म सोच्चा अणुत्तर ४४॥
खवित्ता पुव्वकम्माइ सञ्जमेणतवेणय । जयघोस विजयघोसा सिद्धि पत्ता अणुत्तर ४५ । जन्नइज्ज ज्झयणसम्मत्त ॥ २५ ॥

घोषस्य समीपे जयघोष साधुने समीपे अनगारस्य निष्क्रान्त दीक्षालीधी धर्म श्रुत्वा सर्वोत्तम सर्वोत्तम प्रधानधर्म्म सांभलीने ४४ खपयित्वा पूर्वं कर्म्मायो पाछिला सर्वकर्मउपायोने संयमेन तपसा च सत्तरभेदे संयमवारभेदे तप तिणे करी जयघोष विजयघोषनाम साधूउन्यथत पुरुष सिद्धि प्राप्तो सर्व उत्तमां इति ब्रवीमि मुक्ति पोहता सिद्ध पुरुष हुआ अनंता सुखने विषे प्राप्तहुआ ४५ इति श्रीपञ्चविंशतितम अध्ययन सपूर्ण ॥ २५ ॥

प्रवचामि तां इति कां यां समाचारी चरित्वा अग्रीक्षत्यनिग्रन्था संसारसागरं तीर्णा· ससारसमुद्रस्य पार प्राप्ता: कीदृशी सामाचारी सर्व्वदुक्ख विमोचणीं सर्वदुःखेभ्यो विशेषेणमोचिकां १ (पढमाआवस्सियानामं विइयायनिसीहिया आपुच्छणायतइया चउत्थी पडिपुच्छणा २) प्रथमासामाचारी आवश्यकी नाम्नीयत: उपाश्रयात् निर्गच्छन् साधु रावश्यकीति वदति उपाश्रयात् बहिर्निः सरणं आवश्यकीं विनानस्यात् तेन आवश्यकीति प्रथमा सामाचारी नैषेधिकीतिद्वितीया उपाश्रयात् बहिर्निः सरणानन्तरं यस्मिन् स्थाने प्रवेशनेन स्थिति करणीयास्यात् तत्र अपरेषां निषेधात् नैषेधिकीकरणीयानिषेधेभवानैषेधिकी तृतीयासमाचारी आपृच्छना यतोहि सासोखासादिकन्यक्ता अपरं सर्वं कार्यं गुरोः पृच्छां विना कार्यं न करणीय तस्मादेषा आपृच्छना चतुर्थीसामाचारी प्रतिपृच्छनानाम्नी भवति करणीयकार्यस्य गुरो पृच्छाया अनन्तरं पुनरपि तस्य

सूत्र

सामायारिं पवक्खामि सव्व दुक्ख विमोक्खणिं । जं चरित्ताण निग्गंथा तिन्नासंसारसागरं ॥१॥ पढमा आवस्सि - या नामं विइयाय निसीहिया आपुच्छणाय तइया चउत्थी पडिपुच्छणा ।२॥ पंचमा छंदणानामं इच्छाकारोय

भाषा

सामाचारी अहं कथयिष्यामि सामाचारीहुं कहुंछुं सुधर्मासामी जंबूस्वामीने कहेछे सर्वदुक्ख विमोचणिं सर्वदुक्खनामूं कायणहारछे या आसेव्यसाधव: जे समाचारीने अंगीकार करीने रहे ते साधूमार्गी कहीइ तीर्णा संसारसागरं तथा संसारसमुद्रथको मुक्तिपुंहता १ आवश्यकी नामा प्रथमा उपाश्रयथी नीकलता आवस्सहीकहीए एपहलीसमाचारी जाणवि१ द्वीतीयाच नैषधिकीसामाचारीउपाश्रयनांहिपेसतानिस्सिहीकीजे बीजीसमाचारी कहीइ२ आपृच्छा तृतीया पुछवानीतीजी समाचारी३ चतुर्थी प्रतिपृच्छना चौथी समाचारी प्रतिपृच्छना४ २ पंचमीच्छंदना इति नाम्ना पंचमी छंदा इसे

कायस्य करण प्रस्तावेगुरौ पृच्छनाप्रतिपृच्छनाश्रेया २ (पञ्चमीछन्दणाणामा इच्छाकारोयछट्ठमो सत्तमोमिच्छाकारोउ तहक्कारोयअट्ठमो ३) पञ्चमी छन्दनानाम्नीसामाचारी अन्नादिक आनीय उदर एव भरणीय नास्ति किं तु यतीना सर्वेषां निमन्त्रणारूपाछन्दना उच्यते तस्या एवच्छन्दनायां इच्छाकारशब्द कर्त्तव्य इच्छाकारशब्दस्यकोर्थ इच्छयास्वाभिप्रायेण करण इच्छाकार इति व्युत्पत्ति यदि भवता इच्छाभवेत् तदा मम निमन्त्रणा सफलाकर्त्तव्याइति षष्ठम इय षष्ठी समाचारी मिथ्याकारइति सप्तमोमिथ्याकारशब्दस्यार्थ वदति यदा कुर्वाचित्स्खलनास्यात् तदा तत्र साधुनामिथ्या दुःकृत मे इति वक्तव्य मिथ्याकरण मिथ्याकार मिथ्यादुःकृतदानमित्यर्थं इय सप्तमी अष्टमीसामाचारी तथाकार तथाकरण तथाकार गुरूपदेश प्राप्यतथास्ति तथास्तु इति कथन इय अष्टमीइत्यर्थं ३ [अब्भुट्ठाण नवमं दसमाउवसम्पया एसादसङ्गासाहूण सामायारीपवेइया ४] अभ्युत्थान अभि इति आभिमुख्येन उत्थान उद्यमन उद्यमकरण अभ्युत्थान अभ्युत्थानेनियुक्ति कृता निमन्त्रणाया एव उक्तत्वात् गृहीते अशनादौछन्दना अगृहीते तु निमन्त्रणाइत्यनयोर्भेद तत् अभ्युत्थान हि गुरुपूजाया गुरुपूजा च गौरवार्हाणा आचार्यग्लानादीनां यथोचित आहारपानीयादि सम्पादन अत्र अभ्युत्थान निमन्त्रणारूपमेव ग्राह्य गुर्वादेशस्य तथास्तु इति अङ्गीकरणादनन्तर सर्वकार्ये उद्यमस्य करण अभ्युत्थान उद्यमन इय नवमीश्रेया उपसम्पद

छट्ठया। सत्तमा मिच्छकारोय तहकारोयअट्ठमा ३॥ अब्भुट्ठाणनवम दसमाउवसपया। एसादसगासाहूण सामायारी

नामि ५ इच्छाकार षष्ठी सामाचारी इच्छाकारछट्ठी६ नामे समाचारी ६ सप्तमी मिथ्याकारय सातमी मिच्छामिदुक्कड एसामाचारी७ तथाकार अष्टम तहत्तिगुरुनां वचनैतहत्तकरू८ ३ अभ्युत्थान च नवम गुरु आव्या कर्या ऊठो उभाथाइ एनवमी९ दशमी उपसपत् उद्यमकरी अन्यगच्छथकी ज्ञान आदि

दशमी सामाचारी अस्यावोर्थः साधुरुद्यमवान् भूत्वा आचार्यान्तरात् अधिकज्ञानादि गुणादि सम्पत्तिनिमित्त आचार्यादीनां पार्श्वे अवस्थानं उपसम्पत् इति दशमोज्ञेया एषा सामाचारी श्रीतीर्थंकरैः प्रकर्षेण वेदिताप्रवेदिता अधिक ज्ञाताप्रकाशिताइत्यर्थः कथंभूतासामाचारी दशाङ्गादश अङ्गानि यस्यासादशाङ्गादशप्रकाराइति भाव अथकाकासमाचारीकुत्रकुतकर्त्तव्यातदाह [गमणे आवस्सिअं कुज्जा ठाणेकुज्जानिसीहियं आपुच्छणा सयंकरणे परकरणेपडिपुच्छणा ५] गमनेस्वस्थानादन्यत्रगमने अप्रमत्तत्वेन अवश्यकर्त्तव्यव्यापारभवा आवश्यिकीतां आवश्यिकीं कुर्य्यात् यतोहि साधोर्गमन निःप्रयोजनं नास्ति यदि अवश्यं किञ्चित्कार्य्यं समुत्पन्नं वर्त्तते तदेव साधुः स्वस्थानादुत्थितोस्ति इति भाव॰ तथा स्थानेस्वाश्रये प्रवेशसमये प्रमादात् आत्मनोनिषेधस्तत भवानैषेधिको उपाश्रये प्रविशता साधुनानैषेधिको कर्त्तव्या यतोहि स्वाश्रये आगमनादनन्तरतत्समययोग्य कार्य्याणां एव करणं तद्विपकार्येषु प्रमादनिषेधः कर्त्तव्यइति भावः स्वयं आत्मनाकार्य्याणां करणेगुरोः आपृच्छनाकर्त्तव्या न च गुरो सतिस्व बुध्यैव गुरुं अनापृच्छ्यकार्यं कर्त्तव्यमिति भावः परस्यकार्य्यकरणेगुरोः आदेशं प्राप्ययदाकार्यं कर्तुं उद्यतोभवति तदा पुन॰ पृच्छनाप्रतिपृच्छनाउच्यते ५ [छन्दनादव्वजाएणं

पवेइया ४॥ गमणे आवस्सियं कुज्जा ठाणेकुज्जानिसीहियं। आपुच्छणा सयंकरणे परकरणे पडिपुच्छणा ५ ॥ छंदणा

सूत

ए उपसंप दशमी १० एआदशांगः दशप्रकार साधूनां साधूनें दशप्रकारे ए सामाचारी जिनैः प्रवेदिता सामाचारी भगवतें कही ४ गमने उपाश्रयानिर्गमे आवस्यकीं कुर्यात् उपाश्रय थकी नीकलता आवस्सही कहीइ स्थाने उपाश्रये प्रविशन् नैषेधीकीं कुर्यात् उपाश्रयेन स्वकार्य करणे आपृच्छना गुरो पार्श्वे करणात् आपणे अर्थे गुरुने पूछे परकार्य करणे गुरो॰ नियुक्ता : पुनः पृच्छना प्रतिपृच्छना परने पूछे तं पडीत पृछणा ५ योद्रव्या तेनच्छंद

भाषा

इच्छाकारयसारणेमिच्छाकारोयनिन्दाए तहकारोपडिसुणए] अथवा गेयरूपद्रव्यैर्यदा अन्योयातिनिमन्त्रते सदाछन्दना उच्यते साधूना आहार पानीय दर्शयित्वा यदि भवता मनसि विचार आवाति तदा एतत् आहारादिक भवद्भिर्गृह्यतां यथाहं निस्तरामि इति वाक्य कथन छन्दनाउच्यते सारणे इच्छाकार उच्यते सारणे स्वस्यपरस्य वा कार्यं प्रतियोग्यलेन प्रवर्त्तत इच्छायास्वाभिप्रायेण तत्कार्यंकरण इच्छाकार तत्र आत्मनोयथेच्छाकारेण युष्माक वाञ्छित कार्यं अहं करोमि तथासारेण मम पात्रलेपनादि इच्छाकारेणयूय कुरुत इति वक्तव्यमिति भाव मिथ्याकार आत्मनिन्दाया मया अभव्य कृत एतादृश आत्मनोनिन्दावाक्य मिथ्यादुःकृतदान मिथ्याकारकथन उच्यते गुरो पार्श्वे वाक्य श्रुत्वागुरु प्रतिइद कथन यद्भवद्भिरुक्त तत्तथैव तथामुद्दतिकरण तथाकार प्रतिश्रुते गुरुवाक्याङ्गीकारे तथाकारस्तथास्तु करण इति भाव ६ [अभ्युत्थाय गुरुपूया अत्यणे उवसम्पया एव दुपञ्चसञ्जुत्ता सामायारीपवइया ७] गुरुणा आचार्यादीना पूजाया भय विनैव अतिशयेनआहारपानीयाद्यानीयवैयावृत्त्यविनयसम्पादनस्तदभ्युत्थान उच्यते अत्यणेइति इति अर्जनेज्ञानाद्यर्थ परस्य आचार्यस्य पार्श्वे अवस्थापनानादि गुणार्जन उपसम्पदुच्यते तस्याचार्यस्य समीपे अवस्थानायस्वामिन् इय ट काल भवता

मूल — इच्छ जाएथ इच्छाकारोय सारणे । मिच्छाकारोय निंदाए तहक्कारो पडिसुए ६ ॥ अभ्भुट्ठाणं गुरुपूया अत्यणे उवस

भाषा — यति निमन्त्रतिकाइ वस्तविहरीभायो यतीने निमन्त्रण करीतेछन्दणा कहीइ सारणा आत्मना परणवा कार्यकरण प्रतिपृच्छा इच्छाकारकोइ कार्य कराव तिवारे इम कहे इच्छकार एकाम करो जो निंदाया मिथ्याकार पाप लागे मीच्छामी दुक्कडदीइ इद मया कर्त्तव्यमेव इति प्रतिश्रवणे तथा अंगीकारकरणे तहत्ति करणगुरु जे कार्य कहेतेतहत्ति करीने सांभली हा स्वामीतहत्त ६ अभ्युत्थान गुरुणा पूजा गुरुने आव्यां कठी ऊभारहे अत्यणे

समीपेमयाख्यातव्यं गच्छान्तरे आचार्यान्तरेज्ञानाद्यर्थं इति विज्ञप्ति पूर्वका ज्ञानाद्यभ्यसनरूपा उपसम्पत्सामाचारीति भावः एव अमुनाप्रकारेणद्विगुणा पञ्च अर्थाद्दशसंख्याभेदसहितास्सामाचार्यं प्रकर्षेण वेदिताः प्रवेदिताः तीर्थं करगणधरैः कथिता. ७ [पुव्विंमिमिचउभ्भागे आइच्चं मिसमुट्ठिए भण्डयं पडिलेहित्तावंदित्तायतओगुरु ८] [पुच्छिज्जापञ्जलिउडो किं कायव्वंमएइह इच्छं निओइउं भंते वेयावच्चेवसिज्झाए ९] युग्म अथ पूर्वं औधिक सामाचारीमाह पूर्वस्मिन् चतुर्थभागे यदा दिनस्य चत्वारोभागाः भवन्ति प्रहरप्रमिताभवन्ति तदा प्रथमोभागः प्रथमप्रहरात्मकस्तद प्रथम प्रहरस्य चतुर्थे भागे घटिकाद्वयरूपे अष्टघटिकात्मकः प्रहरस्तस्य चतुर्थोभागोघटिकाद्वयात्मकस्तस्मिन् आदित्येसमुत्थिते सति घटिकाद्वयस्यसूर्येसति अथवा पूर्वस्मिन्निति

पया। एवं दुपंचसजुत्ता सामायारी पवेइया ७॥ पुव्विल्लंमि चउब्भागे आइच्चंमि समुट्ठिए। भंडयं पडिलेहित्ता वंदित्ताय तओगुरुं ८॥ पुच्छिज्जा पंजलीउडो किंकायव्वं मएइह। इच्छं निओइउं भंते वेयावच्चे व सिज्झाए ९॥

तिज्ञाने आचार्यांतरादि पासे ग्रहतकाल स्यातव्यमिति भणवाने काजे जितरा दिन सेवायतेने पासे जाइने भणे तेउपसंपदा कहीजे एवं द्विपदश्यसंख्या युक्तः इन दशभेदसु युक्त सामाचारी प्रदर्शिताजिनैः एदशसामाचारी तीर्थंकरे कही ७ पूर्वस्मिन् किंचिदूनचतुर्भागे सर्वना उदेयो पहने पोहोर चार भागकीजे आदित्ये समुत्थिते प्रामे पाहो न पोरसी निवारे पउणपडी लेहण कीजे भाण्डकपतत् वस्त्रादि उपकरणं प्रति लेख्य पात्रा पडिलेहीने वंदित्वा ततो गुरुन् तिवारकेडे गुरुने वांदीने ८ पूछित् प्राञ्जलिपुटः पूछे हाथजोडीने किं कर्त्तव्यं मया अस्मिन् समये ए सम यने विषेहुं कामकरवु अह इच्छामी हे भदन्त उदयप्राप्तः हु तुम्हारी आज्ञावांछुं हुं हे भगवन वेयावच्चे न स्वाध्यायेन वायुआभियोजयितुं वेयावच्चे

प्रथमिसूवुड़ाविभागोक्त पूर्वदिक सम्बन्धिनि आकाशस्य चतुर्थभागे यदा आकाशस्य दिनमध्ये चवारोभागा बद्याकल्पन्ते तन्मध्ये प्रथम आकाशस्य भागेसूय्य आगतसति अथात् प्रथम प्रहरे यदा आकाशेप्रहरप्रमितसूय समारूढ स्यात्तदेति भाव अत्र कि चिदून चतुभागे किञ्चिदूने प्रहरेपि पादो न पौरुषा प्रमर्यो गृह्यते यहादशारहितोपि पट पटएवोच्यते तथावपादो न पौरुषो अपि पौरुषो एव गृह्यते तस्मात्पादो न पोरुषी भाण्डक पात्राद्यपकरण प्रतिलेख्य चक्षुशानिरीक्ष्य प्रमार्ज्य ततोनन्तर गुरु वन्दित्वाशिष्य प्राञ्जलिपुट पृच्छेत् हे गुरोदृशास्मिन् समये मया कि कर्त्तव्य हे भन्ते हे पूज्य अह वैया वृत्ये वा अथवा स्वाध्यायेनियोजित युष्माभि प्रेरयितु स्वात्मान इच्छामि वाञ्छामि ८ [वेयावच्चेनिउत्तेण कायव्वमगिला यऍ सिज्झाएवा निउत्तेण सव्वदुक्खविमोक्खणे १] गुरुणा वैया वृत्ये नियुक्तेन प्रेरितेन शिष्येण अग्लान्या एव श्रम विना एव वैयावृत्य कर्त्तव्य वा अथवा स्वाध्यायेशास्त्र पठने नियुक्तेन शिष्येण सर्वदुःखनिमोचणे स्वाध्यायोऽग्लान्या एव कर्त्तव्यइति भाव १० अथौत्सर्गिकदिवसस्य कर्त्तव्यमाह [दिवसस्स चउरोभागे कुज्जाभिक्खूवियक्खणेतम्रोउत्तरगुणेकुज्जादिणभागेसुचउसुवि ११] विचक्षण क्रियासु कुशलोभिक्षुर्दिवसस्य चतुरोभागान्

वेयावच्चे निउत्तेण कायव्व मगिलायओ। सज्झाएवा निउत्तेण सव्वदुक्ख विमोक्खणे १०॥ दिवसस्स चउरोभाए

शिष्यसज्झायनेविषे मुझने लगावो ८ वैयावृत्ते नियुक्तेन जो गुरुकहे वच्छ तु वैयावच करो इम जो वैया वचनो आदेशदिइ गुरु कर्त्तव्य ग्लानवैया [illegible] गुरुद सज्झायना १भेदनेविषे आदेशदीधेथकेसज्झायकरेसर्वदुक्खविमोचणसर्वदुक्खमु कायवानेकाजे सि ज्झाय करे १० [दिवसस्य] चतुरोभागान् दिवसना च्यारभाग करीने कुर्याद्विचक्षण करे साधु विचक्षण चतुर ततोवुद्धि चतुर्भाग करणाथा नुसार

कुर्यात् ततश्चतुर्भाग्करणानन्तर चतुर्ष्वपि दिनभागेषु उत्तरगुणान् स्वाध्यायादीन् कुर्यात् ११ [पढमं पोरिसिसिज्झायं बीयं झाणं झियायई तइयाए भिक्खायरियं पुणो चउत्थीय सज्झायं १२] प्रथमां पौरुषी चाधित्यस्वाध्याय वाचनादिकं कुर्यात् द्वितीया पौरुषी चाधित्यध्यान मनसि अर्थचिन्तना रूप ध्यानं ध्यायेत् कुर्यात् इह च प्रतिलेखनाकालोऽल्पत्वात् न विवक्षितः उभयत्र कालाध्वनोरत्यन्त संयोगेद्वित्वेन द्वितीया तृतीयायां पौरुष्यां भिक्षाचर्यां आहाराद्यर्थं गृहस्थगृहेगमनं कुर्यात् चतुर्थीं पौरुषी पुन स्वाध्याय प्रतिलेखनाखण्डिल प्रत्युपेक्षादिकं कुर्यात् यस्मिन् काले यत्साधो कर्तुं योग्य कार्यं तत् तदैवकर्त्तव्यमिति भाव अवसरे हि सर्वं कार्यं कृतं फलदस्यादित्यर्थ १२ अथ प्रथम पौरुषीपरिज्ञानार्थं गाथा माह [आसाढमासेदुपया पोसेचउप्पया चित्तासुएसी मासेसुतिपयाहवइपोरिसी १२] [अष्टल सत्तरतेण पखेणयदुअङ्गुल वड्डएहायएवावि मासेणयच

सूत्र

कुर्ज्जाभिक्खू विउवक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुज्जा दिणभागेसु चउसुवि ११। पढम पोरिसि सज्झाय बीइयंझाणं झियायई। तईयाए भिक्खायरिअ पुणो चउत्थीए सज्झाय १२॥ आसाढमासे दुपयापोसेमासे चउप्पया। चित्ता

भाषा

गुणा कुर्यात् पछे अनुत्तर प्रधानगुण करे स्वाध्यायादीनि दिवसना भागेषु चतुर्ष्वपि दिवसना च्यारभागने विषे ११ प्रथमपोरिसी स्वाध्यायं वाचनां कुर्यात् पहली पोरिसोइ सज्झाय करे द्वितीयां ध्यानमर्थ विषय मनसा आधारणा ध्यायेत् बीओपोरिसि ध्यानकरे तृतीया पौरुषी भिक्षाचर्यां करोति त्रीजे पहुरे विहरवाजाइ पुन चतुर्थी स्वाध्याय स्थण्डिल प्रतिलेखनादि कुर्यात् चउथी पोरिसिनी सज्झाय परोपि घडिलादि करे १२ आषाढमासे द्विपादा पौरुषी द्विपादाख्या भवति आसाढमासने विषे बेपग पोरसि होइ पोषमासे पौरुषी चतु पादाख्या भवति पोसमहीने चिरपगं पोरसिजवे चेत्र

टीका

अङ्गुल १४] युग्म अय आम्नाय सूनोऽनुक्तापि गुरुकुलवासात्ज्ञेय दक्षिण कथ सूर्य सम्मुख विधायजानुमध्ये तजन्यङ्गुलीच्छायां जर्द्धी भूयपादे गणयेत् आषाढे आयाश्चां पूर्णिमाया द्विपद्याच्छायपौरुषीस्यात् यदा जानुच्छायाद्वाभ्यां पादाभ्यां प्रमितास्यात्तदा प्रहर प्रमाण दिन ज्ञेयमिति भाव एव पौषपूर्णिमाया चतु पद्यापौरुषीस्यात् चतुर्भिः पदै प्रहर दिन स्यात् चैत्रपूर्णिमायां आश्वन्या पूर्णिमाया त्रिपद्यापौरुषीस्यात् त्रिभि पादै प्रहरदिन ज्ञेयमिति भाव शेषमासादिनेषु पौरुषी नयनविधि माह सप्तरात्रेण समाहोरात्रेण सार्द्धेन अङ्गुल एव पक्षेणद्वाङ्गुल दक्षिणायनेकर्कसिंह कन्यातुलवृश्चिकधने सक्रान्ति षटकेवर्द्धते एव मकरादिषटकेउत्तरायणे सार्द्ध समाहोरात्रेण अङ्गुल पक्षेणद्वाङ्गुलहीयते मासेन चतुरङ्गुल एव दक्षिणायनेवर्द्धते उत्तरायणेहीयते श्रावणादिमास षटकेवर्द्धते माघादिमासषटकेहीयते पुनयदाकेषुचिन्मासेषु चतुर्दशदिने पक्ष स्यात् तदा सप्तरात्रेणापि अङ्गुलवृद्धहान्यानकश्चिदपि दोष १४ अथ चतुर्दशदिने पक्षसम्भवमाह (आसाढ बहुलपक्खेभद्दवयकत्तिएयपोसेसु फग्गणवइसाहेसुय नायव्वाओमरत्तो

सूत्र

सोएसु मासेसु तिपया हवइ पोरिसी १३। अगुल सत्तरत्तेण पक्खेणय दुरगुल। वड्ढए हायए वावि मासेणय चउ

भाषा

मासे आश्विनमासे चैत्रमहिने आसोज महीने तीनि पग पोरसी होइनिश्चि पादैर्भवति पौरुषी १३ अगुल सप्तरात्रेण सातदिन गया एकआगुल पक्षेणदरगुल पनरैदिवसे पादद्वया श्रावणमासे चतुरङ्गुलाधिका पौरुषी भाद्रवेमासेऽष्टागुलाधिका पौरुषी कार्त्तिकमासे चतुरङ्गुलाधिका पादत्रयमाना पौरुषी मागशीर्षऽष्टागुलाधिका पादत्रयमाना पौरुषि २ आगुल वधत हीयते वापि सातदिने वधे सातेदिने घटे मासेन चतुरङ्गुल वर्द्धते हीयते एकमासमाहि च्यार अङ्ग लवधे च्यारअङ्ग लघटे १४ आषाढ कृष्णपखे आसाढने अधारे पखे भाद्रपदे कार्त्तिक भाद्रवे कातीद पौषे पोसमहीने फागुण वैशाखयोय

टी०१५] एतेषु मासेषु आमरात्रयोः ज्ञेया. आषाढे बहुलपक्षेऽत्रपक्षे बहुलपक्षशब्दस्य भाद्र पदादिषु सम्बन्ध कर्त्तव्यः भाद्रपदे कार्त्तिके पौषे फाल्गुने वैशाखे
टापपक्षे अवमरात्रयो भवन्ति अवमाः ज्ञानाएकेन अहोरात्रे णहीनाइति अवमरात्रय. रात्रि पदेन अहोरात्रि ग्रहणं कर्त्तव्यं एवं एतेषु मासेषु
दिन चतुर्दशकाः आपपक्षः स्यादिति भावः १५ अथ पादोन पौरुषीपरिज्ञानोपायमाह (जेठामूले आसाढे सावणे छहिं अङ्गुलेहिं पडिलेहा अट्ठहिं
जियन्तियकोतईएदसं अउहिं च उत्थे १६] ज्येष्टामूलेइति ज्येष्टानक्षत्रं अथ च मूलनक्षत्रं ज्येष्टमासस्य पूर्णिमायांस्यात्तेन ज्येष्टामूलोज्येष्टमासे

रंगुलं १४ ॥ आसाढ बहुलपक्खे भद्दवए कत्तिए य पोसे य । फग्गुण वइसाहेसु य नायव्वाओमरत्ताओ १५ ॥ जेट्ठा
मूले आसाढे सावणेच्छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा । अट्ठहिं विइयतीयंसि तइए दसअट्ठहिं चउत्थे १६ । रत्तिंपि चउरो

फागुण वेशाखया ६ मास नोवदिने विषे ज्ञातव्या अवमा एकेन न्यूना रात्रिः जाणवोओगणती सदिन नोमास १५ ज्येष्ठमूले आषाढ श्रावण जेठ
आसाढ अथपादोन पौरुषी विधिमाह जेठ आपाढ श्रावणेच एषु मासेषु यत् पौरुषी प्रमाणं तघषड्भिः अगुलैः प्रक्षिप्तैः पादोन पौरुषीस्यात् द्वितीयत्रिके
भाद्राश्विनकार्त्तिके अष्टाभिः अंगुलैः प्रक्षिप्ते पादोनपौरुषी तृतीय त्रके मार्गे पौषमाघरूपे दशांगुलप्रक्षेपैः पादोनपौरुषी चतुर्थतीके फाल्गुण चैत्र
वैशाखे अष्टांगुल प्रक्षेपे पादोन पौरुषी भवति षड्भिः अङ्गुल प्रक्षेपैः पादोन पौरुषी ज्येष्ट आसाढ श्रावणमाहिं पोरसिनुमान कहांके
ति मांहि ६ अङ्गुल घालीइ पुणपोरसियाइ भाद्रवो आसोज कातीइये बीजे त्रिके आठ अङ्गुल घालीए पोण पोरसि थाइ त्रीजे त्रिके मागसिर पोस
माह गांगुल १० घातीइ चोथे त्रिके फा० वै० आंगुल ८ घातीइ पोण पोरसिथाइ १६ रात्रि विधिमाह रात्रे रपि चतुरोभागान् कुर्यात् रात्रि मापषि

तथा आषाढे श्रावण च मासे प्रत्यह प्रागुक्तपौरुषोमाने ऽष्टभिरङ्गुलैरधिके प्रतिलेखापादो न पौरुषोप्रतिलेखनाकाल स्यात् ज्येष्टादारभ्य प्रथममासत्रिके एवमेव द्वितीयेत्रिके भाद्रपद आश्वनकार्त्तिकलक्षणेमासत्रिके पूर्वोक्तपौरुषोमाने अष्टभिरङ्गुलैरधिके प्रक्षिप्ते पादो न पौरुषोकालोज्ञेय तथाऽतृतीयत्रिके दशभिरङ्गुलै मार्गशीर्षपौषमासत्रिके तथा चतुर्थत्रिके फाल्गुनचैत्र वैशाखलक्षणे प्रागुक्तपौरुषोमाने अष्टभिरङ्गुलैरधिके प्रक्षिप्ते पादो न पौरुषीकालो भवेत् दिनकृत्यमुक्त्वा रात्रिकृत्यमाह (रत्त पिचउरोभाएभिक्खू कुज्जावियक्खणोतओउत्तरगुणेकुज्जाराईभागेसुचउवि १७] (पढमंपोरिसिसिज्झाय बिएज्झाणज्झियायई तईयाए निद्दमोक्ख तु चउत्थीभुज्जोविसिज्झाय १८] युग्म रात्रेरपि चतुरोभागान् विचक्षणो भिक्षु क्रियावान्मुनि कुर्यात् ततश्चतुर्भागकरणादनन्तर चतुर्ष्वपि रात्रिभागेषु उत्तरगुणान् कुर्या १७ प्रथमपौरुष्या स्वाध्याय कुर्यात् द्वितीयाया अधीतस्य सूत्रार्थस्यस्य मनसा चिन्तन कुर्यात् तृतीयाया पौरुष्या निद्रायामोक्षो विधेय प्रथमपौरुष्यां द्वितीयपौरुष्या च निद्रायामोक्षोनिद्रामोक्षस्त निद्रामोक्ष स्वाप कुर्यात्

भाए भिक्खूकुज्जा वियक्खणो । तत्तो उत्तरगुणे कुज्जा राइ भागेसु चउसुवि १७ ॥ पढम पोरिसि सज्झाय विइय ज्झाणज्झियायई । तइयाए निद्दमोक्खतु चउत्थी भुज्जोविसज्झाय १८। जनेइ जयारत्ति नक्खत्त तमिनह चउभाए।

च्यारभाग करे भिक्षु क्रियादिचक्षण चतुर साधूकर ततो अनतर उत्तरगुणान् कुर्यात् पछे उत्तर गुणसोधे रात्रिभागेषु चतुर्ष्वपि रात्रिनाचौह्न मुहर माहि १७ प्रथम पोरिया स्वाध्याय करोति पेहेल पोरसि सज्झायकरे द्वितीयाया ध्यान ध्यायति बोजोपोरसि ध्यानध्यायइ तृतीयप्रहरे निद्रां करोति त्रोजेप्रहरे निद्राकरे चतुर्थ पुनरपि सज्झाय चउथो पोरसोइ सज्झायकरे १८ य नक्षत्र यदा यस्मिन् रात्रि पूर्णां करोति जे नक्षत्र रात्र पूर्ण थाइ

यद्यपि मुने. सर्वदा प्रमादत्यागएवउक्तोस्ति स्तथाप्ययं निद्रायाः समयउक्तः अतकेचित् निद्रायामोच जागरणं निद्रानिषेधं कुर्य्यादित्यपि वदन्ति तत् चिन्त्यं निषेधस्य प्राप्ति पूर्व्वकालात् पूर्वं निद्राया करणसमयस्तु नोक्तः प्रथमप्रहरे स्वाध्यायः द्वितीयप्रहरेध्यान पूर्व्वमपि निद्रायानिषेध एव उक्तः तृतीयप्रहरे अन्यस्य कस्यापि कार्यस्य अकथनत्वात् तस्मात् तृतीयपौरुष्यांशयनसमय एवलभ्यते चतुर्थ्यां पौरुष्यां भूयः स्वाध्याय कुर्य्यात् १८ अथ रात्रेः चतुर्भागज्ञानस्योपायमाह [जंनेइजयारत्तिं नक्खत्तंतंमिनह चउब्भाए सम्पत्तेविरमिज्जा सज्झायपओसकालंमि १९] [तम्मेवयनक्खत्ते गयण च उब्भागसावसेसमियेरत्तियपि कालं पडिलेहित्तामुणीकुज्जा २०] यन्नक्षत्रं रात्रिं समाप्तिं नयति यदा अस्तसमये यन्नक्षत्रं उदेति तस्मिन्नेवनक्षत्रे रात्रि समाप्तीभवति तस्मिन्नेवनक्षत्रे आकाशस्य चतुर्भागेसंप्राप्ते विरमेत् स्वाध्यायाद्विरमेत् प्रदोषकाले रजनीमुखे तदा प्रदोषकालग्रहणं कृत्वा पश्चात्पौ

सपत्ते विरमेज्जा। सज्झायं पओस कालंमि १९॥ तम्मेवय नक्खत्ते गयण चउब्भाय सावसेसंमि। वेरत्तियंपि कालं पडिलेहित्ता मुणीकुज्जा २०॥ पुव्विल्लंमि चउब्भागे पडिलेहित्ताण भंडगं। गुरुं वंदित्तु सज्झायं कुज्जा

यस्मिन् नक्षत्रे नभः आकाशः चतुर्भागे ते नक्षत्र आकाशने चतुर्थेभागे जिवारे आवेतिवारे संप्राप्ते विरमेत् स्वाध्यायात् तिवारे सज्झायथीविरमे तत्र प्रदोपकाले प्रारब्धे प्रदोषसमे पडिक्कमणोन करे १९ तस्मिन्नेव नक्षत्रे तेहज नक्षत्रने विषे गगन चतुर्भागेन प्राप्ते सावशेषे आकाशने चोथे भागे साव शेषथका वैरात्रिकं प्रदोषिक कालं चोथेभागे वैरतीकालकहीइं प्रतिलेखयित्वा मुनिः कुर्यात् पडिलेहीने मुनि सज्झायकरे २० पूर्वस्मिन् चतुर्थभागे प्रथम पौरुषी समये दिवसने चोथेभागे पहली पोरसि प्रतिलेख्य पडिलेहीने भांडान् उपधि वस्त्रादीन् गुरुवंदित्वा स्वाध्यायं गुरुने वांदीने सज्झाय कुर्यात्

रुष्यां प्रथमायां सूत्रस्वाध्यायं कुर्यात् तस्मिंश्च वनघने गगने आकाशस्य चतुर्थभागे सावशेषेसति वैरात्रिक नाम कालं गृहीत्वास्वाध्याय कर्त्तव्य एवमन्येष्वपिज्ञेय २ सामान्येनदिनरात्रि कृत्यमुक्त्वाविशेषतोदिनकृत्यमाह [पुव्विल्ल मिच उब्भागे पडिलेहित्ताणभण्डग गुरु वन्दित्तुसज्झायं कुज्जादुक्ख विमोक्खण २१] सूर्योदयात् दिवसस्य चतुर्थभागे सूर्योदयात् प्रथमेप्रहरचतुर्थभागे एतावताप्रथमपौरुष्यां प्रथमघटिकाद्वयमध्ये भाण्डक कल्पादुपधि वस्त्र मयोपकरणादिकं प्रतिलेख्य गुरु वन्दित्वास्वाध्यायं कुर्यात् कथंभूतं स्वाध्यायं दुःखविमोक्षणं पापनिर्मूलकं २१ [पोरिसीए चउब्भागे वन्दित्ताण तओगुरु अपडिक्कमित्ताकालस्स भायण पडिलेहए २२] पौरुष्याश्चतुर्थेभागे अवशेषेसति पादोन पौरुष्यां जातायां सत्यां ततो गुरून् वन्दित्वाभाजन पात्र प्रतिलेखयेत् किं कृत्वाकालस्य इति काल अप्रतिक्रम्य प्राभातिककालप्रतिक्रमणार्थं कायोत्सर्गमकृत्वा चतुर्थ्यां पौरुष्यां पुन स्वाध्यायं करिष्यते कालप्रतिक्रमणानन्तरं स्वाध्यायकरणं अयुक्तं तस्मात्कालं अप्रतिक्रम्येत्युक्तं २२ अथ प्रतिलेखनाविधिमाह [मुहपत्ति पडिलेहित्तापडिलेहिज्जगोच्छगं गोच्छगलाइयंगुलिए वत्थाइंपडिलेहए २३] मुखपोतिकां प्रतिगोच्छकझोलिकोपरि समुक्त उर्णमयवस्त्र तत् प्रतिलेखयेत् ततो अङ्गुलिलातगोच्छक सन् अङ्गुल्यालात गृहीत गोच्छकयेनस अङ्गुलिलातगोच्छकस्तादृश सन् वस्त्राणि प्रतिलेखयेत् झोलकोपरिरक्षणीय पटलकरूपाणि वस्त्राणि प्रतिलेख

मूल

दुक्ख विमोक्खणं २१ ॥ पोरिसीए चउब्भागे वंदित्ताण तओगुरु । अप्पडिक्कमित्ता कालस्स भायण पडिलेहए २२॥

भाषा

दुःखविमोक्षण पछे सज्झायकर दुःखनो मू कावणहार २१ पौरुष्या चतुर्भागे विशिष्यमाणे पादोनपौरुष्यां पोहरने चोथेभागे पोणपोरसी आवेथके वंदिला तत्ता गुरुनगुरुने वांदीने कालान् प्रभातकालात् अप्रतिक्रम्य प्रभातकाल पडिक्कमीने भंडक प्रतिलेखयेत् पात्रा पडिलेहे अथ विधि माह २२मुखवस्त्रिका

येत् दृष्ट्यादिनापञ्च विंशति प्रतिलेखना कार्याः २३ अथ पटलकगोच्छकौ प्रमृज्य पुनर्यत् कुर्यात्तदाह [उड्ढंथिर अतुरिय पुव्वं तावत्थमेव पडिलेहे तोबि इयंपप्फोडेतईयं च पुणोपमज्जिज्जा २४] पूर्वं तावत् प्रथमत ऊर्द्धं यथास्यात्तथास्थिरं यथास्यात्तथा अत्वरितं यथास्यात्तथावस्त्रं एव प्रतिलेखयेत् ऊर्द्धमिति कायत उत्कटिकासनोभूत्वा ऊर्द्धन्तिर्यग् प्रसारयेत् भूमौ अलगयन् वस्त्र प्रतिलेखयेत् पुन. स्थिरं दृढ ग्रहणेन पुनरत्वरितं अनुत्तालतया प्रतिलेखनीयमित्यर्थः वस्त्रमिति जातित्वादेकवचनं पूर्वं दृष्ट्याआरतः परतश्चनिरीक्षित एव ततो विइयं इति द्वितीयवारं हस्तोपरिप्रस्फोटयेत् हस्त गतान् प्राणिनः प्रमार्जयेत् पुन स्तृतीयवारं तत् वस्त्रं प्रमार्जयेत् हस्तोपरिप्रस्फोटयेत् २४ अथ प्रस्फोटनविधिमाह [अणञ्चाविय आवलियं अणाणुबन्धिं अमोसलिं चेव छप्पुरिमानवखोडापाणीपाणिविसोहण २५] एवं वस्त्रं प्रतिलेखन कुर्यात् कीदृश वस्त्रं अनर्त्तित पुनरस्खलित मोटनारहितं वलनारहितं पुनरनानुबन्धिनैरन्तर्येण युक्तं अनुबन्धि प्रोच्यते तस्य अभावोऽननुबन्ध आन्तर्यसहित वाँधः यथा पूर्वापर प्रस्फोटनज्ञानं स्यात् तथा

सूत्र मुहपत्तियं पडिलेहित्ता पडिलेहिज्ज गुच्छयं। गुच्छगलायंगुलिउवत्थाइं पडिलेहए २३ ॥ उड्ढंथिर अतुरियं पुव्वं तावत्थमेव पडिलेहे। तोबिइयं पप्फोडे तइयंच पुणो पमज्जेज्जा२४ ॥ अणञ्चावियं आवलियं अणाणुबंधिं अमोसलिं

भाषा प्रतिलेखयंति मुहपत्ती पडोलेहीने प्रतिलेखयेत् गोच्छक पडिलेहे गोछगो अंगुलैः गुच्छकलाला गृहीत्वा आंगुलीइं करी भालीने वस्त्राणि पटलकानि प्रतिलेखयेत् वस्त्रपडलांभालो प्रमुख पडिलेहे २३ ऊर्ध्वं स्थिर दृढग्रहणेन ऊंचो स्थिरदृढभाले पूर्वं तावत् पडलकं प्रतिलेखयति पहिलां पहलां पडिलेहे ततोनंतरं द्वितीयवेलायां वक्खोडे तिवारपछेमनेर झाटयंति तृतीय वेलाया पुनः प्रमार्ज्यात् जीजीवेलाइं वली प्रमार्ज्जीइं २४ अनृतं कायेन वस्त्रेण

प्रस्फोटन विदध्यादिति भाव पनरमोसलिमिति नविद्यते मोसलीयत्र तत् अमोसलिऊर्द्धाधस्तियक कुड्यादि परामर्शरहित यथा नस्यात्तथावस्त्र प्रस्फोटयेत् प्रतिलेखयेत् इत्यथ पुनरिमा पूर्वं एव क्रियमाणा षट् प्रस्फोटनात्मका प्रतिलेखनाक्रियाभेदा कर्त्तव्या प्रथम मारभ्य वस्त्रस्य परावर्त्तनात् प्रस्फोटनात्रयेण २ च षट भवन्ति यथावक्खोडाहस्तोपरिप्रस्फोटनात्मका खोटानांत्रिककरणात् नवसम्भवन्ति पुन पाणीपाणि विशोधन हस्तेहस्तविशोधन प्रस्फोटन विदध्यात् हस्त नावाकार विधाय आच्छोटनत्रिकत्रिकान्तरात्स एव नव पूर्वोक्ता नवपुनस्त्र प्रस्फोटनविशेषा एव अष्टादश भेदा सप्त पूर्वोक्ता एव २५ पञ्चविंशति विधा प्रतिलेखनाभवन्ति २५ [आरभडासम्मद्दावज्जेयव्वायमोसलीतइयापप्फोडणा च उत्थीविक्खित्तावेइया

सूत्र

चेव । छप्पुरिमानवखोडा पाणीपाणि विसोहण २५ ॥ आरभडा सम्मद्दा वज्जेयव्वाय मोसली । तइयापप्फोडणा •
चउत्थी विक्खित्ता वेइयाछट्ठा २६ ॥ पसिढिल पल ब लोला एगा मोसा अणे गरूव धुणा । कुणइ पमाणि पमाय

भाषा

च यायाने वस्त्रे नवानेनही वस्त्रमोटनादिरहित वस्त्रमाहे नहो अम सनोत्यादि असर्श अन्योन्य असलग्न भोतिनलगाडे सलनयोकरे दृष्टिप्रतिलेखनानतर पटदेल पर्व वस्त्रप्रतिरेखणा हादरडिरेहथ थीभापछि तीनवार पढोलिई नवपपोडावहो जे पाणी हस्ते प्राणी प्रमार्जन हाथने विषे जे जोवहइ ते सोधे दूरिकरे २५ दोष मध्यविपरीतकरणोपधि उपरिनिषीदनरूपा विपरीतकरे उपधि उपरिबेसे वस्त्रमर्दे तिर्यगादिषु वस्त्रसघट्टनामो सलीप्रोच्यातिरक्षा वस्त्रमाहोमाहि भाडे ते मोसली कहो जे एवोजो पढोलेहण जाणवी प्रस्फोटना चतुर्थी ज्ञातव्या भाटके वस्त्र एचोथो पढोलेहण प्रतिलेखित वस्त्रस्य अप्रतिलेखी पढोलेह्या वस्त्रमा पढोलेहो धरतीइ मूके २६ शिथिल जे नथदसग्रहण विषमग्रहण भूमी वस्त्रलोलन शिथिलपणे

छट्ठा २६] [पसिढिलपलम्बलोला एगामोसाअणेगरूवधुणा कुणइपमाणपमायं संकिएगणणोवयं कुज्जा २७] अथ प्रतिलेखनादोषत्यागमाह आरभटा विधेर्विपरीतकरणं १ त्वरित २ पृथक् ३ नवीन वस्त्र ग्रहणं एषा प्रथमाप्रमादप्रतिलेखना १ संमर्दो वस्त्रांतकोणानां परस्परमेलनं अथ वा उपधेरुपरि निषोदनं एषाद्वितीयाप्रमादप्रतिलेखना २ च पुनस्तृतीयामोसली अपिवर्ज्जयितव्या उपर्यधोभागतिर्यग् प्रदेशसङ्घट्टनात्तृतीया प्रतिलेखना सप्रमाद दोषात्याज्या चतुर्थीप्रस्फोटनारजसाखरण्टितस्य वस्त्रस्याछोटनासापि वर्जनीया पञ्चमीविक्षिप्ता प्रतिलेखितस्य वस्त्रस्य अप्रतिलेखितवस्त्रोपरिमोचनं अथवाचतुर्दिक्षु च विलोकनं इयमपि सप्रमादाप्रतिलेखनात्याज्यापष्ठी प्रतिलेखनावेदिकानाम्नी सापि स प्रमादात्याज्यावेदिकायाः पञ्चभेदाः ऊर्द्ध वेदिका१ अधोवेदिका २ तिर्यग् वेदिका ३ उभयवेदिका ४ एकवेदिका ५ ऊर्द्ध वेदिकासायस्यां उभयोर्जान्वोरुपरिहस्तयोरचणं १ अधोवेदिका साजान्वोरधः प्रचुरं हस्तयोरचणं २ तिर्यक्वेदिकासायस्यातिर्यग् हस्तौ कृत्वा प्रतिलेखनं ३ उभयवेदिकासायस्यां उभाभ्यां जानुभ्यां बाह्ये उभयोर्हस्तयोरचणं ४ एकवेदिका सा यस्यां एकं जानुहस्तमध्ये अपरं जानुवाह्येरक्ष्यते ५ एतेपञ्चापि वेदिका दोषाः प्रतिलेखनावसरेत्याज्याः स्त्रीलिङ्गत्वं अत्र रूढिवशात् ज्ञेयं अथ वस्त्र ग्रहणे दोष माह पसिढिलेति प्रसिथिलं दृढं अगृहीतं वस्त्रं १ प्रलम्बं यद्विषमत्वग्रहणेन वस्त्रकोणकस्य ग्रहणेन अपरकोणानां लम्बनं २ लोलायत्र भूमौ वस्त्रस्यरुलन स्यात् ३ एतेत्रयोपि दोषास्त्याज्याः इति योज्यं एकामर्शाएकस्मिन् काले उभयोः पार्श्वयोर्वस्त्रस्याकर्षणं ४ स्त्रीत्वं रूढिवशात् अनेकरूपधुना अनेकरूपासंख्यावयात् अधिकाधुनाकम्पनायस्यां सा अनेकरूपधुना तथा यत् प्रमाणे प्रस्फोटादि संख्यायां प्रमादं कुरुते तथा सङ्किते सङ्कोत्पन्नेमुखेन तथा अङ्गुलिरेखास्पर्शनादिगणनस्योपयोगं गणनोपयोगं कुर्यात् तदपि दूषणं त्याज्यं एतत् प्रतिलेखनादूषणं ज्ञेयं २७ पुनरेनां एवभङ्गद्वारेण स दोषां निर्दोषं चाह [अणूणाइरित्तपडिलेहा अविवच्चासातहेवय पढमं पयं पसत्थं

सेसाणियअप्पसत्याणि २८] अन्यूनाअनानकर्त्तव्या १ अतिरिक्ताअधिकानकर्त्तव्या २ अविव्यत्यासा ३ विविधोव्यत्यासोयस्यां साविव्यत्यासा नविव्यत्यासा अविव्यत्यासाविपर्यासरहिताविपरीतत्वेन रहितादृत्यर्थं ३ एतेषां चयाणां भेदाना अष्टौ भङ्गाउत्पद्यन्ते तेषु भङ्गेषु प्रथमं पद प्रशस्तं प्रथमोभंग समोचोन अन्यूना १ अनतिरिक्ता २ अविपर्यासा ३ इत्येव रूप प्रथमभङ्गरूप पद प्रशस्त निर्दोषत्वात् शुद्धमित्यर्थं शेषाणि सप्तभङ्गानि अप्रशस्तानि २८ पुनर्दूषोत्पत्तिकारणमाह [पडिलेहणकुणन्तो मिहो कहंकुणइ जणवय कहवा देइ पच्चक्खाणं वाएइसयं पडिच्छइवा २८.] प्रतिलेखना कुर्वन्

सुत्र

संकिए गणणोवय कुज्जा २७ ॥ अणूणाइ रित्त पडिलेहा अविवच्चासा तहेवय । पढम पय पसत्थं सेसाणिउ अप्प सत्थाणि २८ ॥ पडिलेहण कुणंतो मिहो कहं कुणइ जणवय कहवा । देइ पच्चक्खाण वाएइ सय पडिच्छइवा २९ ॥

भाषा

यत्नभाले प्रियमपणेभाले धरती मसलोले एकाङ्गुलो अङ्गथ अधिक प्रलेखना करण एक आंगुलोसु भाले पडिलेहण अधिकोकरे प्रमाणे प्रमाद करोति प्रमाणने विखे प्रमादकर पूरी पडिलेहणकरेनही शंकित प्रतिलेखना पूर्णाकृतावान इतावा शंका उपजे पडिलेहण पूरोकीधे नही तिवारे आंगुलोइ गणवानो जोग करे २७ न्यून रहिता अधिक रहिता अन्यूनाधिकाभोछोपणि न करे अधिको पणि न करे पडोलेहणाना च्यार भेदछे अविताता अविपर्यास चतुर्णामपि भगानांचिङ्क भागामांहि तत्र प्रथम पद अन्यूनातिरक्ता प्रशस्त चोखो भांगोसखरोओछोनकरे अधिको न करे पूरोकरे एभागो भलो शेषाणि पदानि अप्रशस्तानि बोजातोने भांगाभुडा २८ प्रतिलेखनां कुर्वन् पडिलेहण करतुथको परस्पर कथा कथयति करोति मांहोमांहि कथाकहोइ जनपददेश कथा करोति देसनी कथाकहे ददाति प्रत्याख्यान पच्चक्खाण करावे वाचयति स्वय आलापादिक प्रतीच्छति

साधुर्मिथ परस्परं कथां वार्त्तां चेत्करोति अथवा जनपदकथा देशकथा करोति पुन. प्रतिलेखना कुर्वन् कस्मैचित्प्रत्याख्यानं चेद्ददाति पुन' प्रतिलेखनां कुर्वन् अपरं साधुं वाचयति वाचनां ददाति वा अथवा प्रतिलेखना कुर्वन् चेत् स्वयं आलापादि प्रतीच्छति गृह्णाति २९ [पुढवी आउक्काएतेउवाउवणस्सइतसाणं पडिलेहणापमत्तोछण्हंपि विराहओहोइ ३०] एतानि पूर्वोक्तानि कार्याणि कुर्वन् प्रतिलेखनायां प्रमत्त: प्रमादकर्त्तासाधु: षणामपिकायानां विराधको भवति ते षट्कायानां नामान्याह पृथ्वीकाय १ अप्काय २ स्तेजस्काय: वायुकाय: वनस्पतिकायस्त्रसकायश्च तेषां सम्मर्दक: स्यात्तत् कथं विराधको भवति कुम्भकारादिशालायांस्थितस्तत्र प्रमादवशात् प्रतिलेखनायां जलकुम्भादि पातनात् तेन पानीयेन मृत्तिकाग्नि, वायुकन्थु कादिकास्त्रसा स्थावराश्चप्लाव्यन्ते तदा षण्णामपि विराधनास्यात् यदाहार्हन् जत्थ जल तत्थवणं जत्थवणं तत्थ सासओ अग्गीतेउवाऊसहिया एयछण्हपि सहजओ १ इति वचनात् ३० [पुढवी आउक्काएतेउवाऊ वणस्सइतसाणं पडिलेहण आउत्तो छण्हंपि आराहओ होइ ३१] प्रतिलेखनायां

सूत्र

पुढवी आउ क्काए तेउ वाउ वणस्सइ तसाणं । पडिलेहणा पमत्तो छण्हंपि विराहओ होइ ३० ॥ पुढवी आउ क्काए तेउ वाउ वणस्सइ तसाणं । पडिलेहणा आउत्तो छण्हंपि आराहओ होइ ३१ ॥ तइयाए पोरिसिए भत्तपाणं गवे

भाषा

आपवाचे अथवा आगल्यापासे सांभले २९ पृथ्वीकाय १ अप्पकाय २ तेउकाय ३ वायुकाय ४ त्रसकाय ५ वनस्पतिकाय ६ प्रतिलेखनामे प्रमादवत साधुछे जिवनीकायनो विराधकहोय ३० पृथ्वीकाय १ अप्पकाय २ तेउकाय ३ वायुकाय ४ त्रसकाय ५ वनस्पतिकाय ६ प्रतिलेखनायां आयुक्त: सावधान थको पडीलेहण करे षणामपिजीवनि कायाना रक्षको भवति छएजीवनिकायनो रक्षकहुवे ३१ तृतीयायां पौरुष्यांयति: त्रीजीपोरसिने विखे

आयुक्त सावधानोऽप्रमादोसाधु पृथिव्यादीनां षण्णां अपिकायानां आराधको भवति ३१ इत्यनेन प्रथमपौरुष्या कर्त्तव्यमुक्तं द्वितीयपौरुष्या कर्त्तव्य स्वाध्यायादिकं पूर्व उक्तमेवाभूत् अथ तृतीयपौरुष्या कृत्यमाह (तइयाए पोरसीए भत्त पाण गवेसए छन्हमन्नय रागम्मि कारण मि समुट्ठिए ३२)तृतीया पौरुष्यां भक्तपान गवेषयेत् अथ उत्सर्गकोनय स्थविरकल्पिकानामपि यथाकाल भक्तपान गवेषण उक्त ॥ सतिषण्णां कारणानां मध्ये अन्यतरस्मिन् एकस्मिन्कारणे समुत्थित सति आहारग्रहणस्य षटकारणानि सन्ति तैं कारणैराहार कर्त्तव्य ३२ तानि षटकारणान्याह ॥ (वेयणवेयावच्चे इरिय ट्ठाए य सजमट्ठाए तहपाणवत्तियाए छट्ठ पुणधम्मचिन्ताए ३३) वेदनायै क्षुत्पिपासादि रोगादि वेदनाया उपशमनाय वेदनाघ्नत न भवती प्राकृतत्वात् विभक्तिलोप प्रथम कारण १ तथा वेयावच्चाय वैयावृत्यर्थं यतोहि क्षुत्पिपासया पीडितो वैयावृत्य कर्त्तुं आचार्यादीनां वैयावृत्य कर्त्तुं न शक्नोति एतद्वितीय कारण २ तथा इरियट्ठाए ईर्यायाय ईर्या समित्यर्थ क्षुधाद्यर्दितस्य निर्जरार्थिनोपि साधोश्चक्षुरिन्द्रिय बलहीनस्य लघु जीवादिक अपि श्रम ईर्याया पालन नस्यात् तदर्थ आहारकरण तृतीय कारण ३ तथा पुन सयमार्थाय चारित्रस्य क्रियानुष्ठाना तापनायक्षकाद्याराधनार्थं यथा शकटांग एतान्निना सरूत एव चलति अन्यथा न चलति एतच्चतुर्थकारण ४ तथा पुन प्राणप्रत्ययाय प्राणानां प्रत्ययो जीवितावधि धारण प्राण

सए । छण्हं मन्नयरागम्मि कारणम्मि समुट्ठिए ३२ ॥ वेयण वेयावच्चे इरियट्ठाए य सजमट्ठाए । तह पाण वत्तियाए

यतो ध्यान सुधा भक्तपान गवेषयेत् विलोकयेत् भातपाणीनो गवेषणा करे षण्णामपि कारणना मध्ये अन्यस्मिन् कारणे उपस्थित छकारणछे गोचरीना छ माहियो कोइकारण ऊपनो ३२ वेदनाक्षुधा वेदनायां वैयावृत्त आचार्यादीनां अ॰खलागी गुरुनेकाजि आहारपाणी लावेजइ एइर्यासमिति पालनार्थं ३ सजम निर्वाहार्थ ४ ईर्यासमिति पालवाभणी संयम निर्वाह निमित्त तथा प्राणहत्यर्थं अर्थविना प्राणनाश अन्नविना प्राण रहे नही

प्रत्ययस्तस्मै प्राणप्रत्यया प्राणधारणार्थं जीवितावधी संपूर्णे जाते सत्येव पापमोदन कर्त्तव्यं अन्यथा आत्महत्यादोषः स्यात् तस्मात् जीवितव्य धारणार्थं इदं पञ्चमंकारणं ५ षष्ठं पुनरिदं यदुतधर्मचिन्तायै धर्म्मध्यान श्रुताभ्यासरूपायै भक्तपान गवेषयेत् क्षुत्तृषा पीडितस्य आर्त्तध्यानयुक्त धर्म्मध्यान श्रुताभ्यासो नस्यात् आगतमपि श्रुत विस्मरइति षष्ठ कारणं ६ (निग्गंथो धिइमन्तो निग्गन्थी विनकरिज्जछहिंचेव ठाणेहिंतुइमेहिं अणइक्कमणाय सेहोइ ३४) निग्रन्थः साधुः धृतिमान् धैर्यवान् तथा निग्रन्थी विइति साध्वी अपि षड्भिर्वक्ष्यमाणैः कारणैर्भक्तपान गवेशणा न कुर्यात् यत• एभिः स्थानैः से इति तस्य साधोः सा ग्रासा आहार अकुर्वत• अनतिक्रमणं भवति सयमयोगानां उल्लङ्घनं न भवति अन्यथा आहारन्त्यजतः साधोः संयमयोगस्य अतिक्रमणं उल्लङ्घन स्यात् इति भावः ३४ तानि षट्कारणानिदर्शयति [आयंके उवसग्गे तितिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु पाणिदया तवहेऊ सरीरवुच्छेयणट्ठाए ३५]

सूत्र

छट्ठं पुण धम्म चिंताए ३३॥ निग्गंथो धिइमंतो निग्गंथीवि नकरेज्ज छहिंचेव । ठाणेहिंतु इमेहिं अणइक्कमणाया से होइ ३४ ॥ आयंके उवसग्गे तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु । पाणिदया तवहेउं सरीर वोच्छेयण ट्ठाए ३५ ॥ अवसेसं

भाषा

तेह पांणी आहारलेई षष्ट पुनः धर्म्मं चितायै ६ छठो कारण धर्मनी चिंता भणी आहार लेइं ३२ निग्रंथो धृतिमान् निग्रंथ संतोष नो धणी साधुकाहोई निगंथी अपि साध्वीरपि भक्तपानं विलोकयेत् षड्भिरतः एछए कारण साध्वीपणि आहारपाणीनो गवेषणाकरै स्थानेषु पुन• एभि षड्भिः षड्भियारणि तदा आज्ञाति करीनभवति एछए कारणि वोधाधको आज्ञानो लोपनहोइ २४ आतंके ज्वरादिरोगे उपसर्गे उत्पन्नरोग ज्वरादि उपसर्ग तितिक्षा क्षुत्सहन समर्थत्वेन भूपातिपाने निमित्त ब्रह्मचर्य्य गुप्तिषु ४ जीवरक्षा तपोनिमित्तं शरीर विच्छेदनार्थं ६ एषु भक्तपान

यातकज्वरादिरोगे १ उपसर्गदेवादि क्रतेोपसर्गस्यागमने २ तथा ब्रह्मचर्य गुप्तिगुप्तितितिक्षया हेतु भूतया यदि आहार क्रियेत तदा इन्द्रियाणि बलवन्ति स्युस्तदा ब्रह्मगुप्ति रक्षापि दुष्करा तस्मात् ब्रह्मगुप्तितितिक्षया आहारनिषेध ३ एतत् तृतीय कारण तथा प्राणिदया हेतोर्वर्षादौनिपतत् अपकायादि जोवदयाय दर्दुरिकादिरक्षाये ४ तपसोहेतोश्चतुर्थषष्टादिवर्गतपोधनतपसो करणहेतोर्वापञ्चम कारण ५ पुन शरीरव्ययच्छेदार्थाय उचितकाले संलेखना अनशन क्रत्वाशरोरत्यागाय आहार साधुर्नगवेषयेत् इति सम्बन्ध इति षष्ट कारण ३५ अथ तद्गवेषणायां विधिमेवावधिं च आह [अवसेस भण्डगमिज्झ चक्खुसापडिलेहए परमद्धजोयणाओ विहार विहरएमुणो ३६] साधुरवशेष समस्त भाण्डक उपकरण गृहीत्वा चक्षुषा प्रतिलेखयेत् तत साध पर उत्कृष्ट अर्द्ध योजनात् अर्ध योजन आश्रित्यमुनिविहार विहरेत् अधिक गच्छतोहि साधो क्षेत्रातीत आहारदोष स्यात् तस्मात् योजनार्द्ध विहार विधाय आहारमानोय उपाश्रये गुरोरग्रे आलोचनविधि पूर्वक आहार क्रत्वा यत्कर्तव्य तदाह ३६ [चउत्थीए पोरसीए निक्खिविताणभायण

मूल

अडग गिज्झा चक्खुसा पडिलेहए। परमद्ध जोयणाओ विहार विहरए मुणी ३६ ॥ चउत्थीए पोरिसीए निक्खिवि त्ताण भायण। सज्झाय तओ कुज्जा सव्वभावविभावण ३७॥ पोरिसीए चउब्भाए वंदित्ताण तओ गुरु। पडिक्क

भाषा

गवेषण कुर्यात् एतकारण अथ भातपाणीनो गवेषण न करे ३५ अवसेस समस्त भडग सर्वमिघोपगरण ग्रहीत्वा सघलाइ उपगरणलेइने नेत्रे ण प्रतिलेख येत् सम्यग रीते करी पडिलेह पर उत्कृष्ट अर्धयोजन क्रोशद्वय यावत् वेकोसताइ भिक्षा विचरयेत् मुनि भिक्षाने जाइ मुनी १६ चतुर्थी पोरुषी आहारपाणानतर चौथो पोरिसिने विखेआहारपाणिकोधापछे भाजननिक्षिप्य प्रतिलेख्यपात्रा पडिलेहीने पछेमेलेस्वाध्याय तत कुर्यात् पछे सज्झायकरे

सज्झायन्तश्रोकुज्जा सव्वभावविभावण २७] ततश्चतुर्थ्यां पौरुष्यां भाजन निक्षिप्यझोलिकादौबध्वा तत स्वाध्याय कुर्य्यात् कीदृशं स्वाध्याय सर्वभावविभावनं सर्वपदार्थ प्रकाशकं २७ [पोरिसोए चउब्भाए वन्दित्ताणतओगुरु' पडिक्कमित्ताकालस्स सिज्जंतुपडिलेहए २८] मुनि· पौरुष्या: अर्थाच्चतुर्थ्या: पौरुष्याश्चतुर्भागेशेषे गुरुं वन्दित्वा तत स्वाध्यायादनन्तरं कालस्य कालं प्रतिक्रम्य तु पुन शय्यां वसतिं प्रतिलेखयेत् २८ [पासवणुच्चारभूमिं च पडिलेहिज्ज जयंजयो काउसग्ग तओकुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणं २९] ततः पश्चात् यतिः साधुर्यत्नवान् सन् यतया प्रश्रवणोच्चारभूमि प्रत्येकं द्वादश स्थण्डिलात्मकां च शब्दाकालभूमिं च स्थण्डिलात्मिकां प्रतिलेखयेत् लघुनीतिस्थाने द्वादशमण्डलानिवृहन्नीतिस्थाने च द्वादशमण्डलानि कालग्रहण मण्डलानित्रीणि एव सप्तविंशति मण्डलानि कुर्यात् दिनकृत्यमुक्त्वा उत्तरार्द्धेन रात्रि कृत्यमारभ्यते ततो भूमि प्रतिलेखनानन्तरं कायोत्सर्गं कुर्य्यात् कीदृशं कायोत्सर्गं सर्वदुःखविमोचणं कायोत्सर्गेण महतीकर्मनिर्ज्जरा यदुक्तं काउसग्गेजहसुट्ठियस्स भज्जन्ति अङ्गुव गाइ' इहभज्जन्तिस् विहिया अट्ठविहं कम्मसङ्घायं कायोत्सर्गस्य ऐहिक आमुष्मिक फलं स्यात् ऐहिकं यशोदेवाकर्षणादिक आमुष्मिकं स्वर्गापवर्गादिकसुख प्राप्ति रूपं अत्र सुदर्शन

सूत्र

मित्ता कालस्स सेज्जंतु पडिलेहए २८ ॥ पासवणु च्चार भूमिंच पडिलेहिज्ज जयं जई । काउस्सग्गं तओ कुज्जा सव्व

भाषा

सर्वभावानां विभावन प्रकटन समर्थ सज्झायथकी सर्वभावनी सर्वपदार्थनी खबरपडे २७ पौरुष्यां चतुर्भागे पोरसीने चौथेभागि' वंदित्वा ततो गुरु गुरुनेवंदना करीने कालात् प्रतिक्रम्य सिज्जातु प्रतिलेखयेत् उपाश्रय, पाटि प्रमुख पडिलेहे २८ प्रश्रवणमूत्र उच्चारं वृड स्थंडिल मात्रानी भूमिथंडिलनी भूमि सांझे प्रतिलेखयेत् यत्नं नयति· यत्नं करीइ देखीनें देखे पडिलेहे ततो देवानभिवंद्य कायोत्सर्गं कुर्यात् देव वांदेकाउस्सग करे

गाथा ३८ [देवसिय च अइयार चिन्तिज्जअणुपुव्वसो नाणेयदसणे चेव चरित्त मितहे वय ४०] कायोत्सर्गं कृत्वा च पुनर्दैवसिक अतीचार अणुपुव्वसो अनुक्रमेण ज्ञानदर्शने चारित्रे तथैव अनुक्रमेणैव चिन्तयेत् ४० [पारियकाउस्सग्गोवन्दित्ताणतओगुरु देवसिय अइयार आलोइज्जजहक्कम ४१] तत पारितकायोत्सर्ग सन् साधु गुरु द्वादशावर्त्त वन्दनेनवन्दित्वा तु पुनर्यथाक्रम दैवसिक अतीचार आलोचयेत् ४१ (पडिक्कमित्तानिस्सल्लो वन्दित्ताणतओ गुरु काउसग्ग तओकुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खण ४२) तत प्रतिक्रम्य अपराधस्थानेभ्य प्रतिकूल निहत्यप्रतिक्रमणसूत्र उच्चानि शल्य सन् अशल्यरहितो भूत्वा तत पश्चात् गुरु द्वादशावर्त्तवन्दनेन वन्दित्वा श्रीगुरु क्षमयित्वा आयरिय उवज्झायइति गाथात्रय पठित्वा तत पश्चात्कायोत्सर्गं चारित्रदर्शन श्रुतज्ञानशुद्धार्थं कुर्यात् जातित्वादेकवचन कीदृश कायोत्सर्गं सर्वदुःखविमोक्षण ४२ (पारियकाउस्सग्गोवन्दित्ताणतओगुरुन्थुइमङ्गलचकाउ काल

दुक्ख विमोक्खण ३९ ॥ देसियच अईयार चिंतेज्ज अणुपुव्वसो । नाणमि दसणमि चरित्तमि तहेवय ४० ॥ पारिय काउस्सग्गो वंदित्ताण तओ गुरु । देसियंतु अईयार आलोइज्जजहक्कम ४१ ॥ पडिक्कमित्ता निस्सल्लो वंदित्ताण तओ

सर्व दु ख विमोक्षण सर्व दु ख मू काववाने काजि ३८ देवसिकमतो चार चितयेत् दिवसकृत अतीचार चितवे अनुपूर्वसो अनुक्रमेण अनु क्रमे ज्ञानि दर्शने चेव ज्ञाननो दर्शनो चारित्रे तथैवच चारित्रनो काउस्सग्ग करे ४० पारितकायोत्सर्गी यति काउस्सग्गपारीनेयती द्वादशावर्त्त वदनेन वदित्वा तत गुरु द्वादशावर्त्त वांदणादेइ प्रतिक्रम्य देवसिक अतीचार दिवस सबधो अतिचारपडो कमीने अतीचार प्रकाशयेत यथाक्रम अनुक्रमे आलोचे प्रकाश करे ४१ प्रतिक्रमणसूत्रेण प्रतिक्रम्य निशल्य प्रतिक्रमण सूत्रकहे नि शल्यथको वंदित्वा ततो गुरु तिवारे गुरुने वांदे कायोत्सर्गंचय क्रमेण द्विएकेक

समाडिलेहए ४३) पश्चात्पारितकायोत्सर्गेनमस्कारपूर्वं लोगस्सुज्जोयगरे इत्यनेन पारयित्वा ततोऽनन्तरं द्वादशावर्त्तवन्दनेन गुरुं वन्दित्वा इच्छामोऽणु सट्ठिय इत्यस्थित्वापश्चात् स्तुतिमङ्गलञ्च स्तुतित्रयात्मकं वर्द्धमानाचरस्तुतित्रयपाठ रूप मङ्गलं कृत्वाकालं प्रत्युपेक्षिते प्रतिजागर्त्ति तदवसरसत्काङ्क्षालं कालग्रहण साधुर्ज्ञातोयर्थ· ततोनन्तर यत्करणीयं तदाह ४३ (पढम पोरसि सज्झाय बिइएज्झाणं झियायई तईयाए निद्दमोक्खं तु सज्झायं तु चउत्थीए ४४) प्रथमायां पौरुष्या स्वाध्याय कुर्यादितिशेष द्वितीयायां ध्यानपिण्डस्थादिकं धर्मध्यानादिकं अधीतसूत्रार्थं ध्यायेचिंतयेत् तृतीयाया निद्रायामोक्षोनिद्रासुत्कालताविधेया चतुर्थ्यां पुनरपि स्वाध्याय कुर्यात् द्वितीयवारकथनात् शिष्याय गुरुभिरुपदेशोदातव्यः नतु पाठने प्रयासश्चिन्तनीयं इति भेयं ४४ (पोरिसीए चउत्थीए कालं तु पडिलेहएसज्झाय तु तओकुज्जा अवोहतो असंजए ४५) चतुर्थ्यां पौरुष्या पुनः कालं प्रतिलेख्य प्रत्युपेक्ष्य

गुरुं । काउस्सग्गं तओ कुज्जा सव्व दुक्ख विमोक्खणं ४२ ॥ पारिय काउस्सग्गो वंदित्ताण तओ गुरुं । थुइ मंगलंच काउं कालं संपडिलेहए ४३ ॥ पढमं पोरिसि सज्झायं बिइयंज्झाणंझियायई । तईयाए निद्दमोक्खंतु सज्झा

लोगस्स चितनरूप कुर्यात् पहिला २ पछे एक एक लोगस्सनोका उस्सग करे सर्वदुःख विमोचणं सर्वदु·खनुं मूंकावणहार ४२पारितकायोत्सर्गः काउस्सग्गप.रीने वंदित्वा तती गुरुं गुरुवांदोने सिद्ध स्तवरूपं कृत्वा स्तुति स्तवनकरे मगलरूप कालं समतिलेख्य रक्षाति पछेकालिं पडिलेहण करे मुहपति चोलपटो पडलेहजे ४३ प्रथम पौरुष्यां स्वाध्यायं पहलो पोरसि सज्झायकरे द्वितीयायां ध्यानं ध्यायति वीजी पोरसिं ध्यानकरे तृतीयायां निद्रा सेवयेत् त्रीजी पोरसिं निद्राकरे स्वाध्यायं पुन कुर्यात् चतुर्थ्यां चोथी पोरसिं सज्झायकरे ४४ पौरुष्या चतुर्थ्यां चोथी पोरसिने विषे कालं प्रति जाग

प्रतिजागर्यप्रागर्हीत्वा तत स्वाध्याय कुर्यात पर कि कुर्वन् स्वाध्याय कुर्यात असयतीन् गृहस्थान् अबाधयन् अजागरयन् शनै २ पठन् इत्यर्थ उच्चै पठन यद्यपात गृहस्था सावद्यव्यापार कुर्वन्ति तदा साधुरपि आरम्भक्रियाभाक्स्यादिति भाव ४५ (पोरिसीए चउभाए वन्दिऊणतओगुरु पडिक्कमित्ताकालस्स काल तु पडिलेहए ४६) चतुर्थ्या पौरुष्याचतुर्थभागे अवशेषेसति घटिकाद्वयेरजन्या अवशिष्टे सति तदापि कालसभ्यायामकालस्य ग्रहण तस्मात ततोगुरु वन्दित्वाद्वादशावर्तवन्दन दत्वा कालस्य इति तत्समययोग्य काल प्रतिक्रम्यतत्सम्बन्धिनी क्रियां कृत्वा तु पुन काल प्राभातिक काल प्रतिलेखयेत् प्राभातिककालग्रहण गृह्णीयात इत्यनेन आवश्यकवेलां ज्ञात्वा आवश्यकानि कुर्यात ४६ (आगए कायवुस्सग्गे सव्वदुक्खविमोक्खणे काउसग्गसमोकज्जा सव्वदुक्खविमोक्खण ४७) रात्रि प्रतिक्रमणस्थापनानन्तर कायव्युतसर्गे आगतेसति कायोत्सर्गवेलायां प्राप्तायां कायोत्सर्गसमये प्रमादो न विधेय यत्कृत सर्वे सव्वदुःखविमोचणे तत कायोत्सर्ग कुर्यात कीदृश कायोत्सर्ग सर्वदुःखविमोचण अत्र पुन सर्वदुःख विमोचणमिति

यतु चउत्थीए ४४ ॥ पोरिसीए चउत्थीए काल तु पडिलेहिया । सज्झायतु तओकुज्जा अबोहंतो असजए ४५ ॥ पोरिसीए चउब्भाए वंदिऊण तओगुरु । पडिक्कमित्ता कालस्स काल तु पडिलेहए ४६ ॥ आगए कायवुस्सग्गे सव्व

रतिमाने पडिलेहे स्वाध्याय तत कुर्यात् पछे सज्झायकरे अबोधयत् अजागरयत् असयतान् चोर क्षपी बलादीन् न जागृति असयतीने जागावे नहो ४५ पोरुष्य चतुर्भागे शेषेसति पोरसिने चोथेभागे वदित्वा ततो गुरु वदना करे गुरुने कालात् प्रतिक्रम्यनिवृत्य पडिक्कमणोकरे कालतु प्रति लेखयेत् काले पडिलेहणकरे वेला ४६ आगत चारित्रादि विशुद्धाय कायव्युत्सर्ग काउसग्गकरे सर्वदुःखविमोचण सर्वदुःखथी रहितहुवे कायोत्सर्ग

विशेषणेन कायोत्सर्गस्य अत्यन्तकर्मनिर्जराहेतुत्व प्रतिपादित तथा इह कार्यात्सर्गग्रहणेन चारित्रदर्शनज्ञानशुद्धार्थं कायोत्सर्गत्रय ग्राह्यं तत्र तृतीयेकायोत्सर्गेरात्रिकोऽतीचारश्चिन्तनीय ४७ एतदेवाग्रेतनगाथाया आह [राईय अईयारं चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो नाणम्मिदंसणम्मीचरित्तंमितव मिय ४८] रात्रो भव रात्रिकं च पदपूरणे अतीचार चिन्तयेत् आनुपूर्व्या आनुक्रमेण ज्ञाने दर्शनेचारित्रे तपसि च शब्दाद्वीर्ये शेषकायोत्सर्गे चतु र्विंशतिस्तवचिन्त्यतयायतीत: साधारणेति नोक्त: ततश्च ४८ [पारियकाउस्सग्गो वन्दित्ताणतओ गुरु राईय तु अईयार आलोएज्जजहक्कम ४९) (पडिक्कमित्तु निसल्लोवन्दित्ताणतओगुरु काउस्सग्गंतओकुज्जासव्वदुक्खविमोक्खण ५०) युग्म तत: पारितकायोत्सर्ग: सन् साधगुरु वन्दित्वा द्वादशा

सूत्र

दुक्ख विमोक्खणे । काउस्सग्गं तओकुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणं ४७ ॥ राईयंच अईयारं चिंतेज्ज अणुपुव्वसो । नाणं मि दंसणंमी चरित्तंमि तवंसिय ४८ ॥ पारिय काउस्सग्गो वंदित्ताण तओगुरुं । राइयंतु अईयारं आलोएज्ज जह क्कमं ४९ । पडिक्कमित्तुनिसल्लो वंदित्ताण तओगुरुं । काउस्सग्गं तओकुज्जा सव्वदुक्ख विमोक्खणं ५० ॥ किंतवं

भाषा

तत कुर्यात् पछे काउसगकरे सर्वदुःख विमोचणं[सर्वदुःखथी रहितहुवे ४७ रात्रिकं अतीचारयतिभि: रात्रिसंबंधिया अतीचार चिंत्वते अनुक्रमेण अनुक्रमे चिंतवे ज्ञानेन दर्शनेन पुन: ज्ञाननोदर्शननो चारित्रे तपसाच चारित्रनो तपनो ४८ पारित कायोत्सर्ग काउस्समपारे वंदित्वा ततो गुरु वांदणां देइने गुरुने रात्रकं रात्रिसंबधी अतीचार अतीचार आलोचयेत् यथाक्रमं यथा अनुक्रमे ४९ प्रतिक्रम्यनि:शल्योयति: नि:शल्यथको पडिकमे वंदित्वा ततो गुरुं गुरुने वांदणादेइने कायोत्सर्गं तत: कुर्यात् तियारेंऽउ काउस्सगकरे सर्वदुःख विमोचण सर्वदुःखनुं मुंकावणहार ५० कि तप:

वर्त्तवन्दन दशारा।त्रिक अतीचार आलोचयेत् यथा क्रम यथा यथा अनुक्रमेण अतीचाराणि लग्नानि तथा २ आलोचयेत् इत्यर्थ आलोचनापाठ पठेत् ४८ तत पश्चात्सद सम्पदासहित प्रतिक्रम्य प्रतिक्रमण सूत्र उक्तानिशल्योभूत्वा तत पुनर्गुरुद्वादशावर्त्त वन्दने नव दित्वा आयरिओ उवज्झाए इति गाथात्रय पठित्वा तत कायोत्सर्गं कुर्यात कथभूत कायोत्सग सर्व दुःखविमोचन ५० कायोत्सर्गेस्थित कि चिन्तयेदित्याह (कि तव पडिवज्जामि एव तत्थयचिन्तिए काउसग तु पारित्तावन्दईयतओ गुरु ५१) अत्र अह कि तप नमस्कारसहितादि यावत षाण्मासोपवासादिक प्रतिपद्ये एव तत्र कायोत्सग चिन्तयेत भगवान् श्रीमहावीर षण्मासयावन्निरसनो विहृतवान् तत्क्रमह अपिशक्तात् समर्थोभवामिनवेति एव पञ्चमासाद्यपि यावन्नमस्कारसहित तावत्परिभावयेत तत कायोत्सर्गं पारयित्वागुरु द्वादशावर्त्त वन्दनेनवन्दयेत ५१ (पारियकाउस्सग्गोवन्दित्ताणतओगुरु तव सम्पडिवज्जित्ताकारिज्जसिद्धाणसथव ५२) तत पारितकायोत्सग सन गुरु वन्दित्वाद्वादशावर्त्तवन्दनेनवन्दित्वातप सम्प्रतिपद्य यथा शक्ति उपवासा

पडिवज्जामि एवतत्थ चिंचि तए। काउस्सग्ग तु पारित्ता वदईय तओगुरु ५१। पारिय काउस्सग्गो वदित्ताण तओगुरु। तव सपडिवज्जित्ता करिज्जसिद्धाण सथव ५२। एसा सामायारी समासेण वियाहिया। जचरित्ता

प्रतिपद्यते किसी तपकरु एव तत्र चिचितयेत् जे तपकरे ते चीतवीने कायोत्सर्गं पारयित्वाकाउस्सग्गपारीने द्वादशावर्त्त वदना वदते ततो गुरु मुहपत्ती पडीलेहीने वादणादिइ ५१ पारयित्वा कायोत्सर्गं काउस्सग्गपारीने वदित्वा ततो गुरु वादीगुरुने यथाशक्त्या चिंतित सुपवासादि प्रतिपत्ति कुर्यात् चितव्योहोइ ते तपकरे सिद्धानास्तव स्तुति नवकप सिद्धस्तव देववदनादिक देववादे ५२ एषा समाचारि एसी समाचारी कही सक्षेपेण व्याख्याता

दिक अङ्गीकृत्य सिद्धानां संस्तव दैवसिक प्रतिक्रमणवत् प्रांत्ये वर्धमानस्तु तिन्नरूप पाठ कुर्यात् तदनुचैत्य सर्वांव तद्वंदनं कार्यं ब्रह्मस्तवपाठेन पश्चात् सर्वाक्रिया यथायोग्यं कर्त्तव्या ५२ अथ अध्ययनोपसंहारमाह [एसा सामायारी समासेण वियाहिया जंचरित्ता बहूजीवातिणा संसारसागर त्तिवेमि५३] एषा भगवदुक्ता दशविधसाधु सामाचारी समासेन सङ्क्षेपेण विद्याहिया व्याख्यातायाः सामाचारीयरित्वा अङ्गीकृत्य बहवोजीवाः संसारसागरं तीर्णाः इत्यहं ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह ५३ इति श्रीमदुत्तराध्ययनसूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मी वल्लभगणिविरचितायांसामाचार्याख्यं षड्विंशमध्ययन संपूर्णं ॥ २६ ॥ अथ सप्तविंशं अध्ययनं प्रारभ्यते ॥ सामाचारी अशठेन पाल्यते तेन शठस्य विपक्ष भूताया अशठताया कथनेन अशठत्व ज्ञापनार्थं खलुकाख्यं अध्ययन कथ्यते [थेरेगणहरे गग्गेमुणी आसि विसारए आइन्ने गणिभावंमि समाहिंपडि संधए१] गार्ग्योनाम गणधरोमुनिः स्थविरः आसीत् गणस्य गच्छस्य धारकत्वात् गणधरः धर्मे स्थिरीकरणत्वात् स्थविरः गर्गगोत्रत्पन्नत्वात् गार्ग्यो मनुते सर्वसावद्यवि रमणस्य गतिज्ञां कुरुते इति मुनि. कीदृशो गार्ग्योविशारदः सर्वशास्त्रनिपुणः पुनः कीदृश स आकीर्णः आचार्यगुणैर्व्याप्तः पुनः कीदृशः

सूत्र बहूजीवा तिन्नासंसारसागरंत्तिवेमि ५३ ॥ सामायारीज्झयणं समत्तं २६ ॥ थेरे गणहरे गग्गे मुणी आसि विसारए ।

भाषा सविधे करोने वाङ्गो याँ आचरित्वाबहवोजीवाः जे समाचारी अङ्गीकार करोने घणा जीव तिर्या संसारसागर इति समाप्ती ब्रवीमि ससारसागर तया पारपाम्यां ५२ इति श्रीसामाचारी नाम उत्तराध्यायनस्य षड्वींशतितमाध्ययनं संपूर्णं ॥ २६ ॥ स्थविरः गणधरः गर्गनामा स्थवीर गणधर गर्ग नामाः मुनिरासोत् मुनिहस्था पण्डितविशारद आपन्नः प्राप्त आचार्यादि भावगुणि आचार्यने छत्रीसगुणि करी सहितछे समाधिं सयमरूपं करोति

ण टीका
म २७
७८०

स गणिभाव आचार्य वेस्थित पुन स गार्ग्या गणधर समाधिधत्ते कुशिष्यै स्फोटित ज्ञान दर्शनचारित्राणां समाधि प्रतिस धयतीत्यर्थ १ [वहणे वहमाण स कतार अइवत्तइ जोएय वहमाणस्स स सारे अइवत्तइ २] यथा यथा वहने शकटादौ विनीत तुरग वृषभादीन् वहमाणस्स इति उपमा यस्स सारथ्यादे कतार अरख अतिवर्त्तते स पूर्ण भवति तथा योगे स यमव्यापारस्य शिष्यान् वाहयत आचार्यस्स स सार अतिवर्त्तते शिष्याणा विनीतत्वहृष्टा स्वय समाधिमान जायते शिष्यास्तु विनीतत्वे न स्वय स सारमुत्तरयन्ते एव एव ८भयोर्विनीत शिष्य सदाचार्ययोर्योग स्कन्ध स सार च्छे करइति भाव २ (खल केजोउजोएइ विहम्माणो किलस्सइ असमाहि च वेएइतोत्तओयसेभज्जइ ३) यस्तु सारथिखलु कान गलिवृषभान् योजयति रथेस्थापयति स सारथिर्विहम्माणोइति विभिषेपतान् खल कान घ्नन प्राजनेन ताडयन् सक्लिश्यते सक्लेश प्राप्नोति अतएव असमाधि असाता वेदयती

आइणोगणिभावमि समाहि पडिसधए १॥ वहणेवहमाणस्स कतार अइवत्तई। जोएय वहमाणस्स ससार अइवत्तई२॥

सूत्र

खलु को जोउ जोएइ विहम्माणो किलिस्सई। असमाहिच वेईए तोत्तउय सेभज्जई ३॥ एग डसइ पुच्छमि एग

भाषा

समाधिरूपस यम धारक्षे १ सम्यक शकटादीवाहमानस्य भला बलद गाडे जोडाथको अटवी अतिवर्त्तते अटवोन लाघे पार पामे यथायोग्य सयमव्या पारप सिष्यान् वाहयेत् इम गुरुशिष्यने स जमजोगने विषे चलावताथका स सारो अतिवर्त्तते स सार समुद्र पारपामे २ खलु कान् गलितवृषभान् या वाहयति गलिया बलदने जे गाडे जोडे सवहमान ताडयन क्लेश प्राप्नोति ते बलदने चलावतु थको ताडतुथको क्लेशपामे असमाधिच वेदयति असमाधि पण पामे पुराणिकासे तस्य भज्जने वलो तेहने उपराणोपणि भांजे ३ एकडसति पुच्छे कठो सारथी वृषभनी दाते करो पृच्छकरडे एवा

प्राप्नोति च पुनिस्तस्य खलु अत्रपभयाजयतुः पुरुषस्यतोत्रक प्राजनकोभज्यते खलु काना अतिकुट्टनात् प्राजनकोभज्यतेइति भावः ३ [एगडसइ पुच्छंमि एगं विधइअभिक्खणं एगभञ्जइसमिल एगो उप्पहपट्ठिओ ४] पुनः खलु कश्चपभस्वामीरथारोहकोरुष्टः सन् त खलुकं पुच्छे दन्तैर्दशति एकः स एव एक गलिवृषभं अभोक्ष्णवार २ विध्यति प्राजनस्य आरयाव्यथति एकोगलि वृषभः समिलां युगकीलिकां भनक्ति एकः पुनर्गलिवृषभ उत्पथमार्गं प्रस्थितो भवति ४ [एगोपडइपासेणं निवेसइनिवज्जई उक्कुद्दइउप्फिडइ सढेवालगवीवए ५] एकोगलिस्ताडित सन् पार्श्वेन वामदक्षिणभागेन पतति अन्यः कश्चिद्भूमौनिवसनेनोपविश्य तिष्ठति एकः कश्चिन्निपद्यते स्वपिति प्रलम्बोभूत्वाशेते एकउत्कूर्दति उच्छलतिदर्दुरवत् चतुःफालोभवति अन्यः शठोभवति धूर्त्तत्वं आचरति अन्य कश्चित् गलिर्बलीवर्दोवालगवी लघिष्टां धेनुं दृष्ट्वाता अनुव्रजन्ति ५ [माईमुद्धेणपडइ कुद्धे गच्छइपडिपहं मयलक्खेणचिट्ठइवेगेणय

विधइ अभिक्खणं । एगो भजई समिलं एगो उप्पह पट्ठिओ ४ ॥ एगो पडइ पासेणं निवेसइ निवज्जई । उक्कद्दइ आप्फिडइ सढे वालगवीवए ५ ॥ माई मुद्धेण पडइ कुद्धे गच्छइ पडिपहं । मयलक्खेण चिट्ठइ वेगेणय पहावई ६ ।

अभिक्ष्ण निरतर विध्यते एक वृषभने वारवार आरइ वींधे एको वृषभः समिलं भनक्ति एक बलद समिलाने भाजे एक उन्मार्गे प्रस्थितः एक बलद उन्मार्गने दोडे एक पतति पार्श्वेन एकापसवाडे पडे ४ उपविशतिवइसीजाइ स्वपतिसुईजाइ चाले नही उत्कूर्दति कूदे कदुकवत् उत्पति दडोनीपरि ज चे जडे शठो दुष्टात्मावलीवर्दः धेनु प्रति धावति दुष्टवलदगायने देखीने धावइ दोडे ५ मायावान् मूर्द्धपतति एक वृषभमायावीमाथाइं करि भोइंपडे क्रुद्धः सन् विपरीत गच्छति कोपपाम्योथको पाछोवले मृतकमिषेण तिष्ठति मृतपानुमिस करीने पडे वेगेन प्रधावतिवेगे करीने दोडे ६

पलायते ६) एकोभाद्रमायायान् भत्वामस्तक भूमौ निचिप्यपतति एव कश्चित् क्रुद्ध सन् प्रतिपथ प्रतिकूल पन्था प्रतिपथस्त प्रतिपथ अग्रेतनमार्गं व्यत्ययाप्ययामार्गं गच्छति एक कश्चित् मृतलक्षेणतिष्टति मृतस्य लक्षण कृत्वातिष्टतिनिश्चेष्टोभूत्वापततीत्यर्थं यदा च पुन कथञ्चित् सज्जीकृत्य उत्थापि तस्तदावेगेन प्रधावति अनयारोयाधावति यथा ययात्स्वामीग्रहीतु न शक्नोति ६ (छिन्नालेछिन्दईसत्किदुद्दन्तेभञ्जईजुग सेवियसुसुयाइत्ता उज्जहित्ता पलायइ ७) एक।न्वयालोदुष्टजातीय कश्चित्स इति रश्मि बन्धन रज्जु छिनत्ति दलाच्छोटयति अन्योदुर्दान्तोदमितुमशक्योयुग जूसर भनक्ति सेवि इति स च दुष्टोबलोवर्दं सुतरां अतिशयेन पूत्कृत्य अत्यन्त पूत्कार कृत्वा उत् प्राबल्ये नजूहित्वाइति स्वा स्वामिन शकट उन्मार्गेसात्वाकुत्रचिद्विषमप्रदेशेभङ्क्त्वा स्वय पलायत ७ [खल काजारिसाजोआदुस्सोसाविहुतारिसा जोइयाधम्मजाणम्मि भज्जन्तीधिइदुब्बला ८] गार्ग्यनामा आचार्य एव यदस्ति भीमुनयो यथालोकेखल का अत्र खलु लक्षण गलितप्रभा योग्या रथस्याग्रे धुरियोमृता सन्तोयाद्दशाभवन्ति रथारोहकस्य असमाधि लेशकराभवन्ति दुर्दांत

छिन्नालेछिन्दई मिल्लि दुद्दते भञ्जएजुग । सेविय सुसुयाइत्ता उज्जहित्ता पलायई ७॥ खलु का जारिसाजोञ्जा

दुस्सीसाविहुतारिसा । जोइया धम्मजाणम्मि भज्जति धिइ दुब्बला ८॥ इ्‌ढीगारविए एगे एगेत्थ रसगारवे । साया

दुष्टजातिचिन्तति एक यिञ्जिरिस दुम्बलदरासिने तोडे एको दुर्दांत युग भनक्ति एक दुर्दांतबलद युग भांजे अमिल शकट लइया अमिलाने गाडाने छोडोने उन्निश्वयोन पलायतिनासीजाइ ७ उक्तरुपा गावोवाद्दशा युज्यमानास्य जिया एवलद कह्या भूडा एम दु शिष्यापि ताद्दशा भूडा शिष्यपि रूपो रोति जांणवा योजिता धर्मयाने भज्यते भग्ना भवति धर्मरूपगाडोने विखे जोड्याथका भाजे सतोषरहिताईति दुर्बला सतोषे करीने रहित ८

निरयेन आचार्यस्यापि दु शिष्या दुष्टाःशिष्याः विनयरहिताः कुशिष्यास्तादृशाभवन्ति धर्म्मयानेयुक्ति नगरगापकत्वेनसयमरथे योजिताः व्यापारिताः भज्यते सयमक्रियानुष्टानात् स्खलन्ते सम्यग् न प्रवर्त्तन्ते इत्यर्थः कीदृशास्ते धृतिदुर्बला. निर्बलचित्ताः धर्मेदुस्थिराइत्यर्थः ८ [इड्ढि गारवएएगे एगेत्थर रागारवे सायागारविएएगे एगेसुचिरकोहणे ९] [भिक्खालसिएएगे एगेओमाणभीरुएथद्धे एगच्च अणुसासम्मी हेऊहिं कारणेहिय १०] युग्मं एकः कश्चित् ऋद्धिगौरविकः ऋद्धगौरवं अस्यास्तीति ऋद्धिगौरविको मम श्राद्धाः आढ्याः मम श्राद्धा. वस्त्रा मम उपकरणं वस्त्र पात्रादिसमीचीन इत्यादि आत्मान बहुमानरूप मनुते स ऋद्धिगौरविका उच्यते एतादृशोगुर्वादेशेनप्रवर्त्तते एकःकश्चित् पुनरत्र स गौरविकः आहारादिषु रसोलोलुपः एतादृशोहि ग्लानाद्याहारदानतपसोनप्रवर्त्तते एकःकश्चित् कुशिष्यः सातागौरविकोभवति सातायागौरवेभव सातागौरविकः एतादृशोहि विहार कर्त्तु नशक्नोति एकः कश्चित् कुशिष्य सुचिरक्रोधनः चिर क्रोधकरणशीलः एतादृशोहितपः क्रियानुष्टानकरणे योग्यो न भवति ९ (भिक्खा० १०) एकः कश्चित् भिक्षालसिकः भिक्षायां आलस्ययुक्त. तादृशाहि गोचरीपरीषहसहनयोग्यो न भवति एकःकश्चिदपमानभीरुर्भवति अपमानात्भीरुः अपमानभीरु एतादृशोहि तस्य गृहेन

सूत्र

गारविए एगे एगेसुचिर कोहणे ९ ॥ भिक्खालसिए एगे एगे उमाणभीरुएथद्धे । एगंच अणुसासंमी हेऊहिं कारणे

भाषा

ऋद्धागारवितो मानरूपः एकतुमानरूप ऋद्धि तिणे करी गर्वितछे एकोस्ति रसगर्वितः स्वादलंपटः एकशिष्य रसगर्वितछे शातागर्वितः एकशिष्यः एकशातामाहिं पड्यो शिष्य एक सुचिर क्रोधो दीर्घरोषो एक दीर्घरोसी ९ भिक्षालसः एकः एकभिक्षा मागवे आलसी एकोमानभीरुः यस्य तस्य गृहे न याति एकमानी जेतिने घरे न जाइ एकस्तब्धः अनुशासने एकशिष्यादीधायका स्तब्धहोई रहे हेतुभिः कारणैः पचावयव अनुमानवाक्यैः अनन्यथासी६

प्रविशति एक कश्चित् स्तब्धोऽहङ्कारीभवति एताहशोनिजकुग्रहात् विनय कर्तुं न शक्नोति च पुन एक कुशिष्य प्रतिश्रियादानि आचार्य एव विचारयति हेतुभि कारणै अह एन कुशिष्य अनुशासि कथ इति अध्याहार कथंशिक्षयिष्यामि आचायइति चिन्तापरोभवति इति भाव १० [सोवि अन्तरभासि ल्लो दोसमेवपकुव्वइ आयरियाण तवयण पडिकूलेइ अभिक्खण ११] सोपि कुशिष्य आचार्येणशिक्षित सन् अन्तरभाषावान पुनर्दोष मेव अपराधमेव प्रकटाति आचार्यस्य शिक्षाया दोष मेव प्रकाशयति अपगुणग्राहीभवतीत्यर्थ पुन स कुशिष्य आचार्याणा यद्वचन तद्वचन वार वार प्रतिकूलयति सम्मुख जल्पति यदा आचार्या किञ्चित् शिक्षावचन वदन्ति तदा अभीक्ष्ण मुहुरेव वदति कि मा यूय वदत यूयमेव कि न कुरुत इत्यर्थ ११ [न सामम पियाणाद नविसाभज्जदाहिइनिग्गयाहोहितीमन्ने साहू अन्नोत्थवच्चो १२] तदा आचार्यं किञ्चित् कुशिष्य प्रतिवदति भो शिष्य अमुकस्य गृहस्थस्य

मूल हिय १० ॥ सोविअन्तर भासिल्लो दोसमेव पकुव्वइ । आयरियाणं तवयण पडिकूलइ अभिक्खण ११ ॥ नसामम पियाणाइ नविसा मज्झदाहिई । निग्गयाहोहिईमन्ने साहू अन्नोत्थ वच्चो १२ । पेसियापलिउंचति ते पलियंति

भाषा नियत पूवर्वत्तिंभि १० सापितुशिष्यमान अन्तरभाषा शिक्षादेताथका विचे बोले दोषप्रकरीति दोसवहे आचार्योना यद्वचन तत्तौहाज गुरुनु वचन प्रतिकूल अभीक्ष्ण वार २ गुरुना वचन भू डा मानै कुशिष्य भू डाशिष्य ११ गुरुणाकार्य प्रेरितोवृते मानविजानातिते मुझने जाने नहीके श्राविका नच सामझ दास्यति ते मुझने नही दिइ निर्गता भविष्यती मन्ये इ ते श्राविका घरथीनी सरीहस्येइ इस जाणु छु अन्य साधु अत्र कार्ये गच्छतु एकायतेवास्ते बोजी कोइ साधु मेलो १२ कश्चित्काय प्रे षिता कश्चिन्न ता उखाहरदिता ते कुशिष्यकाय मोकल्याकार्य करेनहीं आहारादिकथी

गृहात् मह्यं आहारादयानीयदेहि तदा स कुशिष्योवदति सा श्राद्धीमम इति इति मांनविजानासि मा न उपलक्षयति सा श्राद्धीमह्यं आहारादिकं न दास्यति अथवास गुरुं प्रत्येवं वदति हे गुरो अहं एव मन्ये साश्राद्धीनिर्गताभविष्यति स्वगृहादपरत्र इदानीं गता भविष्यति अथवा अन्य साधुः अस्मिन् कार्ये व्रजतु अहं न व्रजामि इत्यर्थ १२ [पेसियापलि उंचति तेपलिन्ति समंतओ रायवेट्ठिंचमन्नं ताकरितिभिउडिं मुहे १३] पुनस्ते कुशिष्याः आचार्येण कुत्रचित् गृहस्थगृहे आहारार्थं गृहस्थस्य आकारणायवाप्रेषित. सन्तः पलिउंचति अपह्नुवन्ति अपलपन्ति यत् भवद्भिः कुत्रमुक्ता अस्माकं न स्मरसि अथवामिष्टाहारादिकं गोपयन्ति अथवा उक्तं कार्यं न निष्पादयन्ति अनुत्पादितमपि उत्पादितमिति वदन्ति उत्पादितं च अनुत्पादितं वदन्ति अथवा यत्र भवद्भिर्वयं प्रेषिता स गृहीनकश्चित् दृष्ट इति पृष्टासन्त अपलपन्ति पुनस्ते कुशिष्याः समं तत. सर्वासुदिक्षुपरियन्ति पर्यटन्ति गुरुपार्श्वेकदाचिन्न आयान्ति न उपविशन्ति कदाचिदय गुरवो पार्श्वेस्थास्यामस्तदास्माकं किंचित्कार्यं कथयिष्यन्ति इति मत्वा अन्यत्र भ्रमन्ति इति भाव: कदाचित्कस्मिन्कार्ये गुरुभि' प्रेषितास्तदाराजवेष्टिं इव मन्यमानास्तत्कार्यं कुर्वन्ति दृष्टवेष्ठिः परितापइति जानतीमुखे भ्रकुटीं भ्रूभङ्गरचनां कुर्वन्ति अन्यामपि ईर्ष्यासूचिकां चेष्टां कुर्वन्तीति भाव १३ [वाइयासङ्गहिया चेव भत्तपाणेणपोसिया जायपक्खाजहाहंसा पक्कमन्तिदिसोदिसिं १४]

सूत्र

समंतओ । रायवेट्ठिंच मन्नता करेति भिउडिंमुहे १३ । वाइया संगहियाचेव भत्तपाणेण पोसिया । जाय पक्खा

भाषा

लवे कहे मिल्यो नहीं इम कहि ते कुशिष्य समंततः कुशिष्याः पलायनेचिह्न पासे कुशिष्य नासी जाइ राजवेष्टिमिव मन्यमाना राजानी वेठनीपरे मानी कुर्वंति भ्रकुटीमुखे मोहोडे भमह उंचीचढावे १३ सूत्रं वा चिता: तदर्थं च याहिता: संगृहीता शिक्षादानेन सत्र अध्याप्या अर्थदीधो सिख्या

पुनस्तेकुशिष्या गुरुभिर्याचिता सूत्र ग्राहिता शास्त्राभ्यास कारयित्वापण्डिताकृता पुन सङ्गृहीता सम्यक स्वनिश्रायां रक्षिता पुनर्भक्तपानै पोषिता पुष्टि नीता चकारात् दीक्षिता स्वयमेव उपस्थापिता पश्चात्तेकार्यैस्तैर्दिसोदिसि प्रक्रमन्ति यथेच्छ विहरन्ति ते कुशिष्या के यथाजातपक्षा हंसा यथाजाता पक्षास्तनूरुहाणि येषां तेजातपक्षा हंसाइव यथा उत्पन्नपक्षाहंसा स्वजननी जनक च त्यक्त्वा दशसुदिक्षु व्रजन्ति तथा ते कुशिष्या अपि इति भाव [अहसारहीविचिन्तेइ खल केहि समागओ किमज्झदुट्ठसीसेहि अप्पामे अवसीयइ १५] अथानन्तर सारथिर्गर्गाचार्यो धर्मयानस्य प्रेरकश्चेत सिचिन्तयति खल केर्गलिप्रभसदृशै कुशिष्यै समङ्गत सहित किञ्चिन्तयति एभिर्दुष्टशिष्यै प्रेरितै सद्भि किमभूदिति किं ऐहिकामुष्मिकफल वा मम प्रयोजन सिद्ध्यति दुष्टशिष्यै प्रेरितै केवल मे मम आत्मा एव अवसीदति तेषां प्रेरणात् स्वसत्वहानिरेव भविष्यति नान्यत्किमपि फल तत एतेषां कुशिष्याणांत्यागेन मया उद्यतविहारिणा एवभाव्यमिति चिन्तयति १५ [जारिसा मम सीसाओ तारिसागलिगद्दहागलिगद्दहे च इत्ताण दढ पगिण्हई तव १६] पुन स आचार्यश्चिन्तयति यादृशा मम शिष्या सन्ति तादृशागलिगर्दभाभवन्ति अत्रगलिगर्दभ दृष्टान्तेन शिष्याणां अत्यन्तनिन्दासूचिता

जहाहंसा पक्कमति दिसोदिस १४ ॥ अह सारही विचिन्तेइ खलु केहि समागओ । किमज्झ दुट्ठसीसेहि अप्पामे

दीधी भक्तपानाभ्यांच पोषिता भातपाणीकरी पोसाछे जातपक्षा यथा हंसा जिम हंसना बालकने हंसपोषिधारे मोटाकरे पाखआवे जीवारे उडी जाये हंसेव स्वेच्छाचारीथो व्रजति दिशोदिशे ते शिष्य पणि भणागणाथका पछे जठीजाइ १४ अथ सारथि विचितयतिहवे सारथीचितवे खलु के दुष्टशिष्यै समागत गुरुचितवे दुष्टशिष्य आवीमीला कि मम दुष्टशिष्यै एदुष्टशिष्ये मुझनेस्य मम आत्मा अवसीदति क्लिश्यतिम्हारो आत्मा दुःख

टीका

ततः गर्गाचार्यो गलिगर्दभ सदृशान् कुशिष्यान् त्यक्त्वा दृढं यथा स्यात्तथा तपोबाह्य आभ्यन्तरञ्च प्रगृह्णाति प्रकर्षेणांगी करोति तु शब्दः पदपूरणे
यदा एतान् कुशिष्यान् अह नत्यक्ष्यामि तदामदीयः कालः क्लेश एव प्रयास्यतीति आचार्यो विचारयति १७ [मिउमद्दवसपन्ने गम्भीरेसु समाहिए
विहरइ महिं महप्पासील भूएण अप्पणोत्तिवेमि १७ स गार्ग्य, आचार्यस्तदा ईदृशः सन् मही पृथिवीं ग्रामानुग्राम विहरति कीदृशः स मृदुर्वहिर्न्ने त्या
विनयवान् पुन कीदृशो मार्दवसंपन्नः अन्त करणेपि कोमलतायुक्तः पुनः कीदृशः गम्भीरः अलब्धमध्यः कीदृशः सुसमाहितः सुतरां अतिशयेन
समाधिसहित पुनः कीदृशः शीलभूतेन आत्मना उपलक्षितः शील चारित्र भूतः प्राप्तोय स शीलभूत तेन शीलभूतेन शीलयुक्तेन आत्मना सहितः
यतोहि खलुंकात्व कुशिष्यत्वं तत्तु अविनीतत्वं तच्च स्वस्य गुरोश्चदोष हेतुरस्ति अतो अविनीतत्वं त्यक्त्वा विनीत त्वमङ्गी कर्त्तव्यमितिभाव १७ इतिअहं
ब्रवीमि इति श्रीसुधर्मास्वामिजम्बूस्वामिन प्राह ॥ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचि

सूत्र

अविसीयई १५। जारिसा ममसीसाओ तारिसा गलिगद्दहा। गलिगद्दहे चइत्ताणं दढंपगिण्हए तवं १६। मिउ
मद्दवसंपन्ने गंभीरेसुसमाहिए। विहरइ महिं महप्पा सीलभूएण अप्पणोत्तिवेमि १७॥ खलुंकिज्जंज्झयणं सम्मत्तं २७

भाषा

पामेछे १५ जादृशा· ममः शिष्याः जीसामाहरे शिष्यछे तादृशाः गलिगर्दभाः दुष्टवृषभा जेहवागलीया वृषभः गलिगर्दभान् त्यक्त्वा गलित वृषभसरिषा
शिष्यछोडीने दृढं तपः परिगृह्णाति दृढतपकरे १६ मृदुस्तथा मार्दवः सन् मृदुमार्दवगुणे करीसहित कोमलचित्तगंभीर· तथा सुसमाधितः कोमलचित्त
थको समाधिसंयुक्त विचरति पृथिव्यां महात्मा पृथिवीने विषे विचरे आत्मा शीतभूत· शीतः सन् आत्मना इति ब्रवीमि सीतलहुओथको विचरे १७

तायां खलु कीयाव्य सप्तविंशतितम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ २७ ॥ अथाष्टाविंशतितम प्रारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अशठस्य मोक्षमार्गप्राप्ति स्यात् अतो मोक्षप्राप्ति विधायक अध्ययन अष्टाविंश प्रारभ्यते [मोक्खमग्गगइं तच्च सुणेह जिणभासियं च उकारणसञ्जुत्त नाणदंसणलक्खण १] श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वाम्यादीन् शिष्यान् वदति भोमुनयो मोक्षमार्गगत यूय शृणु तमोचोष्टकर्मणा नाशस्तस्य मार्गोज्ञानादि मोक्षमार्गस्तेनगति सिद्धिगमनरूपामोक्ष मार्गगति यूय शृणुत कीदृशी मोक्षमार्गगति जिनभाषिता जिनोक्ता पुन कीदृशी तच्च इति तथ्या अवितथा सत्या तत्वरूपा पुन कीदृशी चतुर्भि कारणै सयुक्ता चतु कारणसयुक्ता पुन कीदृशी ज्ञानदर्शनलक्षण ज्ञान च दर्शन च लक्षण स्वरूप यस्या साज्ञानदर्शनलक्षणाता १ अथतानि चतु कारणानि आह [नाण च दसण चेव चरित्तच तवोतहा एसमग्गोत्तिपन्नत्तो जिणेहिंवरदंसिहि २] एष चतु कारणरूपोमोक्षमार्गोजिनै केवलिभिस्तीर्थ करैय प्रज्ञप्त कथित कीदृशैर्जिनैर्वरदर्शिभि वर अव्यभिचारित्वेनवस्तु स्वरूप द्रष्ट शील येषा ते वरदर्शिनस्तैर्वरदर्शिभि सम्यग ज्ञानदर्शनवद्भिरि त्यर्थं अथ चतुर्णांकारणानां नामानि प्रथम कारण ज्ञान यथा स्वरूपस्थाना वस्तूनां विशेषेण अवबोधोज्ञान ज्ञायते अनेनेतिज्ञान तदिह सम्यक ज्ञानमुच्यते च पुनर्द्वितीय कारण दर्शन वस्तूना यथा स्वरूपस्थाना सामान्यप्रकारेण अवबोधोदर्शन दृश्यते अनेनेति दर्शन तदप्यत्र सम्यग दर्शनमुच्यते

मोक्खमग्गगइं तच्च सुणेह जिणभासियं चउकारणसञ्जुत्त नाण दसण लक्खण १ ॥ नाणंच दसणंचेव चरित्त च

इति श्रीखलुकि अध्ययन सप्तविंशतमोटवार्थं सपूर्ण ॥ २७ ॥ मोक्षमार्ग गत सत्य हवे मोक्षमार्गनीगति सत्यरूप शृणुत जिनभाषित अहो भव्यजीव तुम्हे साभलोयोत.रागनुभाषित चतु कारण सयुक्त चिह्नकारणे करीसहित ज्ञानदर्शन लक्षणस्वरूप ज्ञानदर्शनलक्षण करीने सहीत १ ज्ञानस्य स्वरूप

चैव शब्दः पदपूरणे विशेषावबोधात्मकं ज्ञानं सामान्यावबोधात्मकं दर्शनं इति ज्ञानदर्शनयोर्भेदः च पुनस्तृतीयं कारणं चारित्रं चर्यते प्राप्यते मोक्षोऽनेनेति चरित्रं सयमरूपं तदिह सम्यग् चारित्रं एवज्ञेयं तथा चतुर्थं तपः कारणं तप्यते कर्मवर्गोऽनेनेति तपः येनकर्मवर्गः प्रज्वलति तत्तपोद्वादशविध अत्रतपसश्चारित्रात् पृथगुपादानं कर्मक्षयेतपसोऽसाधारणत्वख्यापनार्थं २ एतदनुवादद्वारेण फलमाह [नाणं चदं सणं चेव चरित्तं च तवोतहा एयमग्गमणुप्पत्ताजीवागच्छन्ति सग्गइं ३] जीवाः भव्यजीवाः इमं मार्गं अनुप्राप्ताः सन्तः सद्गतिं मोक्षगतिं गच्छन्ति इमं मार्गंक ज्ञानं च पुनदर्शनं च पुनश्चारित्रं तथातपोजिनाज्ञाशुद्धं द्वादशविध इत्यनेन ज्ञानदर्शन चारित्रतपांसि मोक्षमार्गः ये पुरुषाअत्रसावधानास्ते मोक्षगामिनोज्ञेयाः इति भावः ३ [तत्थ पञ्च विहंनाणं सुय आभिणिबोहिय ओहिनाणञ्चतइयं मणनाणञ्च केवलं ४] तत्र ज्ञानादिषु मध्ये पञ्च विधं पञ्चप्रकारं ज्ञानं कथितं तान् पञ्च

तवोतहा । एस मग्गोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं २ ॥ नाणंच दंसणंचेव चरित्तंच तवोतहा । एयमग्ग मणुपत्ता जीवा गच्छंति सग्गइं ३ ॥ तत्थ पंचविहंनाणं सुयं आभिणिवोहियं । ओहिनाणं तइयं मणनाणंच केवलं ४ ॥ एयं पञ्चविहंनाणं

दर्शन स्वरूपं पुन ज्ञानदर्शन चारित्रं वाह्याभ्यंतरभेदस्तपः चारित्रवारिभेदे तप एषः मुक्तिमार्गः प्रज्ञप्तः उक्तः जिनैः एमुक्तिनो मार्गतीर्थंकरे कह्यो प्रशस्य सम्यक्तधरैः विशिष्ट सम्यक्तना धरणहार २ ज्ञानस्वरूपं दर्शनस्वरूपं ज्ञानदर्शन पुनः चारित्रं वाह्याभ्यंतरभेद स्तपस्तथा चारीत्र तप एवं मुक्ति मार्गं मनुप्राप्ताः एमार्गने विखे प्राप्त हुआथका जीवाः गच्छंति सद्गतिं जीव भलीगतिं जाइ निसंदेह ३ तत्र पंचविधं ज्ञानं तीहां ज्ञानना पांचभेद श्रुतज्ञान १ मतिज्ञान २ तृतीयं अवधिज्ञानं ३ मनःपर्यवज्ञानं पनपर्यायज्ञान ४ केवलज्ञानं केवलवज्ञान५ एतत् पञ्चविधं ज्ञानं एपांचे प्रकारे ज्ञान

प्रकारान् आह प्रथम श्रुत श्रुतज्ञान अक्षरशब्दात्मक द्वादशाङ्गीरूप श्रूयते यत् तत् श्रुतज्ञान भावश्रुत इत्यर्थ द्वितीय आभिनिबोधिक अभिमुखोनियम
स्तस्य विषयस्य बोधोयस्मात्स अभिनिबोध अभिनिबोध एव आभिनिबोधिक आभिनिबोधिक शब्देन मतिज्ञान उच्यते पञ्चेन्द्रियै समनस्कैरित्यर्थ
तृतीय अवधिज्ञान अवदृति अधोधोविस्तारभावेन आवतीति अवधिर्मर्यादा अवधिनाउपलक्षित ज्ञान अवधिज्ञान उच्यते कोर्थ यद्ज्ञान मर्यादा
सहित स्यात् तत् तृतीय ज्ञान अथ चतुर्थ मनोज्ञान मन शब्देनमनोद्रव्यपर्यायास्तेषु मनोद्रव्यपर्यायाणा नाम भेदकारणज्ञान मनोज्ञान यस्य
कस्य चिन्मन पुद्गला यादृगस्वभावेन वर्त्तन्ते तेषा तादृग प्रकारेण ज्ञान मन पर्या यज्ञान इत्यर्थ पञ्चम केवल एक सकल अनन्तश्च ज्ञान केवल ज्ञान
केवल च तत् ज्ञान च केवलज्ञान यस्योदयेसति अन्ये षां ज्ञानाना अकिञ्चित्करत्व भवतीति भाव यद्यपि नन्दीसूत्रादौ पूर्वं मतिज्ञान उक्त अत्रादौ
श्रुतग्रहण कृत तत् शेषज्ञानानां स्वरूप श्रुतज्ञानेनैवज्ञेयत्वात् सर्वाण्यपि ज्ञानानि श्रुतज्ञानानीत्यर्थ ४ [एय पञ्च विहनाण दव्वाणयगुणाणय पज्जवा
णसव्वेसि नाणनाणीहि देसिय ५] एतत्पञ्च विध ज्ञान सर्वेषा द्रव्याणा गुणानां पर्यायाणां च यत् ज्ञान तत् ज्ञानिभि केवलिभिर्देशित कथित
ज्ञायते यत् तत् ज्ञान इति भाव व्युत्पत्ति अथ द्रव्यलक्षणमाह [गुणाणमासयोदव्व एगदव्वस्सियागुणा लक्खण पज्जवाणन्तु उभओ अस्सियाभवे६]

दव्वाणय गुणाणय पज्जवाणच सव्वेसि नाण नाणीहि देसिय ५ ॥ गुणाण मासओ दव्व एगदव्वस्सिया गुणा ।

द्रव्याणां धर्मास्तिकायादीनां गुणानाच द्रव्य धर्मास्तिका यादिक रूपादीनां पर्यायाणा सर्वेषा रूपादिक पर्याय तत् भेदानां सर्वेषां तेहना सघला
भेदज्ञान बोधिरूप ज्ञानभि देसित कथित ज्ञान बोधिरूपज्ञानीई कह्यो ५ गुणानामाश्रयो द्रव्य गुणनो आश्रयते द्रव्य भाजन गुणा रूपादय एक

गुणाना रूपरसस्पर्शादीनां आश्रय: स्थान द्रव्यं यत्र गुणा उत्पद्यन्तेऽवतिष्टन्ते विलीयन्ते तत् द्रव्यं इत्यनेन रूपादिवस्तु द्रव्यात् सर्वथा अतिरिक्तं अपि नास्ति द्रव्ये एव रूपादिगुणालभ्यन्तेइत्यर्थः गुणाहि एकद्रव्याश्रिता: एकस्मिन् द्रव्ये आधारभूते आधेयत्वेनाश्रिता एकद्रव्याश्रितास्ते गुणा उच्यन्ते इत्यनेन ये केचित् द्रव्य एव इच्छति तद्यतिरिक्तान् रूपादीन् इच्छन्ति तेषा मत निराक्तत तस्माद्रूपादीना गुणाना द्रव्येस्याभेदोप्यस्ति तु पुन· पर्यायाणां नव पुरातनादि रूपाणां भावानां एतल्लक्षणं ज्ञेयं एतत् लक्षणं किं पर्यायाहि उभयाश्रिताभवेयु: उभयोर्द्रव्य गुणयोराश्रिता उभयाश्रिता: द्रव्येषु नवीन पर्याया: नाम्ना आकृत्या च भवन्ति गुणेष्वपि नवपुराणादिपर्याया: प्रत्यक्ष दृश्यन्ते एव ६ पूर्वं द्रव्यभेदानाह [धम्मो १ अधम्मो २ आगासं ३ कालो ४ पुग्गल ५ जन्तवो ६ एसलोगुत्तिपन्नत्तोजिणेहिं वरदंसिहिं ७] धर्मइति धर्मास्तिकाय १ अधर्मइति अधर्मास्तिकाय २ आकासमिति आकाशास्तिकाय: ३ काल: समयादिरूप: ४ पुग्गलत्ति पुद्गलास्तिकाय: ५ जन्तवइति जीवा: ६ एतानि षट् द्रव्याणि ज्ञेयानीति अन्वय: एष इति सामान्यप्रकारेण इत्येवं रूप उक्त: षट् द्रव्यात्मकोलोकोजिनै: प्रज्ञप्त: कथित: कीदृशैर्जिनैर्वरदर्शिभि: सम्यक् यथास्थित वस्तुरूपज्ञै: ७ [धम्मो १

लक्खणं पज्जवाणंतु उभओ अस्सियाभवे ६॥ धम्मो अहम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो। एसलोगोत्ति पन्नत्तो जिणे

द्रव्याश्रिता भवति रूपादिक गुण एक द्रव्यने आश्रये होइ पर्यायानातु इदं लक्षण पर्यायनुं लक्षणछे सहभाविनो गुणाक्रम भावित: पर्याया: लक्षणपर्याययो: उभयो: द्रव्याश्रिता गुणाश्रिताय भवति द्रव्यने गुणने आश्रित हुवे ६ धर्मास्तिकाय१ अधर्मास्तिकाय२ आकाशास्तिकाय३ काल· समयादि४पुद्गल५ जंतवो जीवो६ एष: लोक इति प्रज्ञप्त: कथित एहलोक कह्यो जिनै: वर केवलज्ञानीइं कह्यो ७ धर्मास्तिकायअधर्मास्तिकाय एतानि

अहम्मा आगासन्दव्व इक्किक्कमाहिय अणन्ताणिय दव्वाणिकालोपुग्गलजन्तवो ८] धर्मादिभेदानाह धर्म १ अधर्म २ आकास ३ द्रव्य इति प्रत्येक योन्य धर्म द्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य इत्यथ एतत् द्रव्य त्रय एकेक इति एकत्व युक्त एवतीर्थकरे आख्यात अर्थ तनानित्रीणि द्रव्याणि अनन्तानि स्वकीयस्वकीयानन्तभेदयुक्तानिभवन्ति तानित्रीणिद्रव्याणिकानिकाल समयादिरनन्त अतीतानागतापेचयापुद्गलाअपिअनन्ता जन्तवोजीया अप्यनन्ता एव ८ अथ षट द्रव्याणा लक्षणमाह [गइलक्खणो उधम्मो अहम्मोठाणलक्खणोभायण सव्वदव्वाण नह ओगाहलक्खणो ९] धर्माधर्मास्तिकायोगति लक्षणोज्ञेय लक्ष्यते ज्ञायतेऽनेनेतिलक्षण एकस्माद्देशात् जीवपुद्गलयोर्देशान्तर प्रतिगमन गतिर्गतिरेवलक्षण यस्य सगतिलक्षण अधर्मो अधर्मास्ति काय स्थितिलक्षणोज्ञेय स्थिति स्थान गति निवृत्ति सैवलक्षण अस्येति स्थानलक्षणोऽधर्मास्तिका योज्ञेय स्थिति परिणताना जीवपुद्गलानां स्थिति लक्षणकार्यंज्ञायते स अधर्मास्तिकाय यत्पुन सर्वद्रव्याणा जीवादीना भाजन आधाररूप नभ आकाश उच्यते तत् च नभ अवगाहलक्षण

मूल

छिवर दंसिहि ७ ॥ धम्मो अहम्मो आगास दव्व इक्किक्कमाहिय । अणताणिय दव्वाणि कालो पुग्गल जतवो ८ ॥ गइ लक्खणोउ धम्मो अहम्मो ठाण लक्खणो । भायण सव्वदव्वाण नह ओगाह लक्खण ९ ॥ वत्तणा लक्खणो

भाषा

एकेक द्रव्यरूपाणि तीने एक द्रव्यरूपछे अनतानत भेदथकी आगला तीन द्रव्यजाणवातेके हा कालपुद्गलजोवा एतानिअनतद्रव्याणि कालपुद्गल जीवए अनतपुद्गलोक कह्या ८ अथ लक्षणमाह गतिलक्षणो धम्मचलणसभाव धर्मास्तिकायने बले चाले अधर्म सस्थानलक्षण स्थिररूप अधर्मास्तिकाय थिररूप भाजन सर्वद्रव्याणां जोवादिनां षटद्रव्यनु भाजनथानक ते नभ आकाशनु लक्षण जीवादिकने अवकाशदेवे ते लक्षण ९ वर्त्तनालक्षण काल अतीत अना

अवगाद' प्रवृत्तानां जीवानां पुद्गलानां आलम्बोभवति इति अवगाहः अवकाशः स एव लचण' यस्य तत् अवगाहलचण' नभ उच्यते ९ [वत्तणालक्खणो कालोजीवोउवओगलक्खणो नाणेण' दंसणेणच्च सुहेणयदुहेणय १०] वर्त्तते अनवच्छिन्नत्वेन निरन्तर' भवति इति वर्त्तना सावर्त्तना एव लचण' लिङ्ग यस्येति वर्त्तनालचणः कालउच्यते तथा उपयोगोमति ज्ञानादिका स एव लचणं यस्य स उपयोगलचणोजीवउच्यते यतोहि ज्ञानादिभिरेव जीवो लच्यते उक्तलचणत्वात् पुनर्विशेषलचणमाह ज्ञानेन विशेषाववोधेन च पुनर्दर्शनेन सामान्याववोधरूपेण च पुनः सुखेन च पुनर्दुःखेन च ज्ञायते सजीवउच्यते १० पुनर्लचणान्तरमाह [नाणच्च दंसणचेव चरित्तच तवोतहावीरियं उवओगोय एवं जीवस्सलक्खण'] ज्ञान' ज्ञायतेऽनेनेतिज्ञान' च पुन र्दृश्यतेऽनेनेतिदर्शन' च पुनश्चरित्र' क्रियाचेष्टादिकं तथा तपोद्वादशविध' तथा वीर्य' वीर्यान्तरायचयोपशमात् उत्पन्नं सामर्थ्यं पुनरुपयोगोज्ञानादिषु एकाग्रत्व' एतत् सर्व' जीवस्य लचण' ११ अथ पुद्गलानां लचणमाह ॥ (सद्दन्धयारउज्जोओपहाछायातवोवियवन्नगन्धरसाफासा पुग्गलाणन्तु लक्खण'१२)

सूत्र

कालो जीवो उवओग लक्खणो। नाणेण' दंसणेणच्च सुहेणय दुहेणय १० ॥ नाणंच दंसणंचेव चरित्तंच तवो तहा।
वीरियं उवओगोय एय जीवस्स लक्खण' ११॥ सद्दंधयार उज्जोओ पहा छाया तवेइवा। वन्न गंध रसा फासा पोग्ग

भाषा

गत वर्त्तमानसमय आवलीति काल कहोजे जीव उपयोगलचणः जेहमांहिं उपयोग हुवेते जीवकहीइं सोपिज्ञानेन च दर्शनेन च तेपणि ज्ञानदर्शन सुख दुखवेवे सुखेन च दुःखेन च जीवस्य लचणमाह १० ज्ञानं च दर्शनंचैव ज्ञानदर्शन चारित्रच चारित्र तपश्च तथा तपस्या वीर्यंच उपयोगश्च वीर्य अने उपयोग एतत् जीवस्य लचण एजीवनु' लचण ११ शब्दोध्वनि. अंधकार' उद्योतः शब्दकरे अंधकार करे उद्योत करे प्रभाकांतिः छाया आतप'

शब्दोध्वनि रूपपौद्गलिकस्तथान्धकार तदपि पुद्गलरूप तथा उद्योतोरत्नादीनां प्रकाशस्तथा प्रभाचन्द्रादीनां प्रकाश तथा छायावृक्षादीनां छायाप्रैत्य गुणा तथा आतपोरवेरुष्ण प्रकाश इति पुद्गलस्वरूप या शब्द समुच्चये वर्णगन्धरसस्पर्शा पुद्गलानां लक्षण ज्ञेय वर्णा शुक्लपीतहरितरक्त कृष्णादयो गन्धोदुर्गन्धसुगन्धात्मकोगुण रसा कटतीक्ष्णकटककषायाम्लमधुरलवणाद्या स्पर्शा शीतोष्णखरमृदुस्निग्धरूक्षलघुगुर्वादय एते सर्वेपि पुद्गलास्तिकायस्कन्ध लक्षणमाद्याश्रेया द्दयर्थं एभिलक्षणैरेव पुद्गलालक्ष्यन्ते इति भाव १२ अथ पर्याय लक्षणमाह [एगत्तच पुहुत्तच सङ्खासण्ठाण मेवय सञ्जोगाय विभागाय पज्जवाण तु लक्खण १३] एतत्पर्यायाणां लक्षण एतत्कि एकत्व भिन्नेष्वपि परमाण्वादिषु यत् एकोयं इति बुद्ध्याघटोय इति प्रतीति हेतु च पुन पृथक्त्व अय अस्मात् पृथक घट पटात् भिन्न पटोघटाद्भिन्न इति प्रतीति हेतु सख्या एको द्वौ बहव इत्यादि प्रतीति हेतु च पुन सस्थान एव वस्तूना सस्थान आकारश्चतुरस्र वर्त्तुलति स्रादि प्रतीति हेतु च पुन सयोगा अय अङ्गुल्या सयोग इत्यादि व्यपदेश हेतवो विभागा अय अतो विभक्त इति बुद्धि हेतव एतत्पर्यायाणां लक्षण ज्ञेयं सयोगा विभागा बहुवचनात् नव पुराण लाघवस्याश्रेया लक्षण त्व साधारण रूप गुणानां लक्षण रूपादिप्रतीतत्वाचोक्त अथ दर्शन लक्षणमाह नवतत्व द्वारेण ११ [जीवाजीवाय बन्धोय

लाणतु लक्खणं १२ ॥ एगत्तच पुहुत्तच सङ्खा सण्ठाण मेवय । सञ्जोगाय विभागाय । पज्जवाणतु लक्खणं १३ ॥

तावडा करे कांति कर छाया कर वर्ण गन्धरसस्पर्श पुद्गलाना ए पुद्गल तु लक्षण कह्यो १२ अथ पर्याय लक्षण पृथक्त्व एकत्व अय अस्मात् एक घटादिक एएक थको जूदो सख्या एक इयादि रूपा सस्थान च सस्थान आकार सख्या एकवे परि मडलादि सस्थान आकार आंगली हाथ प्रमुख सजोग विभाग सयोग वियोग एतत्पर्याय लक्षण एपर्यायनु लक्षण १३ अथ तत्वान्याह जीवाजीव यथय जीव तत्व१ अजीव तत्व २ वधतत्व ३ पुण्य

पुन्न पावासवोतहा सम्बरी निज्जरामुक्खो सन्तिए तहिया नव १४] जीवाधेतना लक्षणा. अजीवा धर्मा धर्माकाशकाल पुद्गलरूपा: बन्धो जीवकर्मणो सश्लेष: पुण्य शुभप्रकृतिरूप पाप अशुभ मिथ्यात्वादि आश्रव: कर्मबन्धहेतु हिंसानृताऽदत्तमैथुन परिग्रहरूप तथा सवरा: स मिति गुप्तयादिभिरा श्रवद्वारनिरोध: निर्जरा तपसा पूर्वार्जितानां कर्मणां परिशाटन मोक्ष· सकाल कर्म क्षयात् आत्म स्वरूपेण आत्मनोऽवस्थानं एतेनवसंख्याका स्तथ्या: अवितथा भावा सन्ति इति सम्बन्ध: नवसंख्यात्व हि एतेषां भावाना मध्यमापेक्ष जघन्यतोहि जीवाजीवयोरेव बन्धादीनां अन्तर्भावात् द्वयोरेव संख्यास्ति उत्कृष्टतस्तु तेषा उत्तरोत्तरभेदविवक्षया अनन्तत्वं स्यात् १४ [तहियाणं तु भावाण सभावेउवएसण भावेण सद्दह तस्ससम्मत्तं त वियाहियं १५] अर्हद्भिस्तस्य पुरुषस्य सम्यक्त्वं सम्यग् भावोऽर्थादर्शनं व्याख्यातं कथितमित्यर्थ कीदृशस्य पुरुषस्य तथ्याना सत्यानां भावानां जीवाजीवादितत्वानां सद्भावविषये उपदेशेन गुरूणां शिक्षावाक्येण भावेन शुद्धमनसाश्रद्दधानस्य तदेति अभ्युपुर्व्वाणस्य योहि जीवादिनवपदार्थानां सम्यक् जानाति

जीवा जीवाय वंधोय पुन्नंपावा सवोतहा। संवरो निज्जरामोक्खो सतेए तहिया नव १४॥ तहियाणंतु भावाणं सम्भावे उवएसणं। भावेणा सद्दहंतस्स संमत्तं तं वियाहियं १५॥ निसग्ग,वएसरुई आणारुई सुत्तवीयरुइमेव।

पापाश्रव तथा पुण्यतत्व४ पापतत्व५ आश्रवरूपतत्व६ तिम सम्बरसंवरतत्व७निर्ज्जरा निर्जरातत्व८मोक्ष मोक्षतत्व ९सति एतानि नवतत्वानि एनवतत्व जाणवा १४ तथा ता सत्याना भावाना जीवाना एजे कह्या साचाभाव जीव पुद्गलना सद्भाव विषयमवि तथ सत्यादि उपदेशेन शाखा करीने गुरुए कह्या जे तत्वभावे करी भावेन श्रद्धत: जोवस्य भावेकरी सद्दहता जीवने श्रोलखे सम्यक्तजिनै: व्याख्यात कथितं तेहने तीर्थ कर सम्यक्तकहे १५

भावेन श्रद्धाति ■ पुमान् सम्यक्त्ववान् इत्यर्थ १५ अथ सम्यक्त्वभेदानाह [निसग्ग१उवएसरुइ२ आणारुइ ३ सुत्त४ बीयरुइमेव ५ अभिगम ६ वित्थाररुई७ किरिया ■ संखेव ८ धम्मरुइ १ १६] एतेदशभेदा सम्यक्त्वस्य ज्ञेया तत्र प्रथमोनिसर्गरुचि निसर्गं स्वभावस्तेनरुचिस्तत्वाना अभिलाषो यस्य स निसर्गरुचिर्विज्ञेय १ द्वितीय उपदेशेन गुरूक्तेनरुचिर्यस्य स उपदेशरुचि यदा गुरुर्धर्मधर्ममुपदिशति तदैकाग्रचित्तोय शृणोति स उपदेशरुचिर्द्वितीयो ज्ञेय २ तृतीय आज्ञयासर्वज्ञवचनेन रुचिर्यस्य स आज्ञारुचिर्ज्ञेय ३ सूत्रेण आगमेन एवरुचिर्यस्य स सूत्ररुचिस्तुर्योज्ञेय ४ पंचमो बीजरुचि बीजेन रुचिर्यस्य स बीजरुचि बीज हि एक अपि अनेकार्थप्रबोधक वचन तेन रुचिर्यस्येति बीजरुचि ५ अभिगमरुचि षष्ट अभिगमेन ज्ञानेनरुचिर्यस्य स अभिगमरुचि ६ सप्तमोविस्ताररुचि विस्तारेणरुचिर्यस्य स विस्तारुचि ७ तथा क्रियारुचि क्रिययाधर्मानुष्ठानेनरुचिर्यस्य स क्रियारुचिरष्टमोज्ञेय०८ तथा संक्षेपरुचि संक्षेपेण समासेण रुचिर्यस्य स संक्षेपरुचिर्नवम ९ तथा धर्मेण श्रुतधर्मेणरुचिर्यस्य स धर्मरुचि श्रुतधर्माभ्यास रुचिर्दशम १० यद्यपि सम्यक्त्वस्य जीवात् भेदोनास्ति जीवस्य स्वरूप सम्यक्त्व तथापि लक्षणलक्षयोर्गुणगुणिनो कथनमात्रेण कथ चिद्भेदोप्यस्ति अथ सम्यक्त्वभेदानामर्थमाह उक्तविस्तारेणाह [भूयत्थेणाहिगया जीवाजीवायपुन्नपावच सहसमुइया सव संवरोय रोयइउनिसग्गो१७] अनिसर्गरुचि कथ्यते यस्तदोर्मिक्स्याः

अभिगम वित्थार रुई किरिया संखेव धम्मरुई१६॥ भयत्थेणाहिगया जिवा जीवाय पुन्नपावच । सहसमइया सव सव

सम्यक्त्व दशमाइ, निसर्गरुचो १ उपदेशरुचि २ आज्ञारुची ३ सूत्ररुची ४ बीजरुचि ५ अभिगमरुचि ६ विस्ताररुचि ७ क्रीयारुची ८ संक्षेप रुचो ९ धर्मरुची १० एदसे प्रकारे सम्यक्त्व जाणिया १६ एदश विभूत्यार्थेन १ सत्यार्थेन २ अधिगता सम्यक प्रकारे जाणी निश्चित कीया

सम्बन्धात् स इति क. येनजीवाजीवान पुण्यं पापं च एते पूर्वोक्ताभावा भूतार्थेन सत्यार्थेन अधिगताः भूत· सद्भूतः अर्थोविषयो यस्य स तत् भूतार्थं ज्ञानं उच्यते तेन अमीजीवादयोभावा सद्भूताः सन्तीति कृत्वा गृहीताः च पुन· पूर्वोक्ता जीवाजीवाः पुण्यपापश्च पुनराश्रवसंवरौ च बन्धःमोक्षौ इत्यादि नवापि भावान् सहसम्मत्या सह आत्मनासङ्गतामति· सहसम्मतिस्तया सहसम्मत्या स्वबुद्धापरोपदेश विनाजाति स्मृत्यादिविशदबुद्धादर्शं रोचन्ते स निसर्गरुचिः सम्यक्त्वानुच्यते १७ अमुमेवार्थं पुनराह [जोजिणदिट्ठे भावे च उव्विहे सद्दहाइ सय मेव एमेयनन्नहत्तियसनिसग्गरुइत्तिनायव्वो १८] सनिसर्गरुचिर्ज्ञातव्यः स इति कः यश्चतुर्विधान् द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपान् जिनोदिष्टान् भावान् जिनोक्तान् पदार्थान् स्वयमेव परोपदेशविनैव श्रद्दधाति मनसिधारयति पुनर्योजिनोक्तेषु तत्वेषु एवमेवै तत् यथा जिनैर्दृष्टं जीवादितत्त्वमेवेति नान्यथेति बुद्धिं कुरुते सनिसर्गरुचिरुच्यते १८ अथोपदेशरुचेः स्वरूपमाह (एएचेव उभावे उवइट्ठे जोपरेण सद्दहइ छउमत्थेणजिणेणव उवएसरुइत्तिनायव्वो १८) स उपदेशरुचिरितिज्ञातव्यः यः एतान् यैदभावान्

रोय रोएइस्था निसग्गो १७ ॥ जोजिणदिट्ठे भावे चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव । एमेव नन्नहत्तिय सनिसग्ग रुइत्ति

जांणा जीवाजीवा पुण्यपाप च जीव तत्त्व अजीवतत्त्व पुन्यतत्व पापतत्व समन्याप्तामवंति आपणी मति करीने जाणे आश्रवसंवरादिकतत्व रोचवे सानिसर्गरुचिः आश्रव तत्त्वसंवर तत्वरूपे ते निसर्गरुचि कहीए १७ यः जिन कथितान् भावान् जे मनुष्य तीर्थ करना कह्या भावआश्रया चतु· प्रकारान् द्रव्य क्षेत्रकालभाव प्रवर्ते स्वयमेव आपणीमेले द्रव्यक्षेत्र कालभाव आपरुतांसर्दहे एवमेव नान्यथा इति भगवतना कह्या कथाया नहीं ते निसर्गरुचि ज्ञातव्याः ते निसर्गरुचो जाणवो १८ एतान्चैव नवभावान् एनवबोलजे कह्या उपदिष्टान् या परना श्रद्धाति जे बीजे मनुष्यामुक्तो उपासदहे उद्यमेन

जीवाजीवादीन् परेण अन्येन छद्मस्थेन वा अथवाजिनेन केवलिनातीर्थंकरेण उपदिष्टान् यद्दधाति श्रद्धत्ते तथेति शब्द पद पूर्वे १८ अथा आज्ञारुचे स्वरूपमाह [रागोदोसोमोहो अन्नाण जस्स अवगय होइ आणाएरोय तु सोखलुआणारुईनाम २०) सखलनियमेन आज्ञारुचिर्नामइति प्रसिद्धोभवति स इति कोयस्यराग खेहो द्वेषोऽप्रीति मोह शेषमोहनीयप्रकृतयोऽज्ञान मिथ्यात्वरूप एतत्सर्वं नष्ट भवति अस्यदेशतोऽपगत गम्यते न सर्वतोऽपगत शब्दस्य प्रत्येक सम्बन्ध यस्य रागोदेशोऽपगत यस्य द्वेषोपि देशतोऽपगत यस्य मोहोपि देशतोऽपगत यस्य अज्ञान देशतोऽपगत एतेषां अपगमात् आज्ञया आचार्यायुपदेशेनरोचमान जीवादितत्व तथेति प्रतिपद्यमानो यो भवति स आज्ञारुचिरित्यर्थं अत्र माषतु महष्टान्तो माऊसमातूसइति स्थानेमायतुमइति दृष्टान्तोस्ति२० (जोसुत्तमहिज्जन्तो सुएणश्रोगाहई उसम्मत्त अङ्गेणबाहिरेणय सोसुत्तरुइत्तिनायव्वो २१) य सूत्ररुचिर्ज्ञातव्य य सूत्रेण आगमेनसम्यक्त्व अवगाहते प्राप्नोति कोदृशेन सूत्रेण अङ्गेन आचाराङ्गादिना या अथ वा बाहिरेण बाह्येन अनङ्गप्रविष्टेन उत्तराध्ययनादिना

नायव्वो १८॥ एएचेवउ भावे उवइट्ठे जोपरेण सद्दहइ । छउमत्थेण जिणेणय उवएस रुइत्ति नायव्वो १९ ॥ रागो दोसो मोहो अन्नाण जस्स अवगय होइ । आणाए रोयतो सो खलु आणारुईनाम २० ॥ जो सुत्त महिज्जतो सुएण

जिनेनवा छद्मस्थ श्रुत केवलीना कह्या अथवा तीर्थ करना कह्या सधासद्दहे उपदेशरुचि ज्ञातव्य ते उपदेशरुची जाणवो १८ रागोद्देषोमोह रागद्वेष मोह अज्ञानञ्च यस्य अपगत भवति अने अज्ञान एतलांवाना जेहनां गयाछेइ आज्ञाया रोचयन् जिम भगवतनी आज्ञाहुये जीम भगवते कह्याछे तिम रुचे स खलु आज्ञारुचिनाम ते आज्ञारुचि कहीइ २० य सूत्रमधीयान् पठन जे सूत्रने भणेछे सूत्रेण अवगाहते प्राप्नोति सम्यक्त्व सूत्रभणी भणतां

समता गोविन्दवाचकवत्भवति स सूत्ररुचिर्ज्ञेय: १ अथ बीजरुचे: स्वरूपमाह [एगेण अणेगाइं पयाइंजोपसरइउसम्मत्तं उदएवतिल्लबिन्दूसोबीयरुइत्तिना यव्वो२१] सबीजरुचिर्ज्ञातव्य: स इति क: य: सम्यक्त्वं इति सम्यक्त्ववान् गुणगुणिनोरभेदोपचारात् सम्यक्त्वधारी आत्मा एव गृह्यते तस्मात् य: सम्यक्त्वी एकेनपदेन जीवादिना अनेकेषु बहुषुपदेषु जीवादिषु तु निश्चयेन प्रसरति व्यापकबुद्धिमत्वेनजानाति इत्यर्थ: कस्मिन् कइव उदकेतैलबिन्दुरिव यथा उदकस्यैकदेशगतोपि तैलबिन्दु:सर्वमुदकमाक्रामति तथा तथैकदेशोत्पन्नरुचिरपि आत्मातथाविधक्षयोपशमाद्शेषतत्वेषुरुचिमान् भवति स एव विधोबीजरुचिर्ज्ञातव्यइत्यर्थ: यथा बीज क्रमेण एकमपि अनेकबीजानां जनकं स्यात् तथा स्यापि रुचिर्विषयभेदतोरुच्यन्तराणां जनयित्रीस्यादिति भाव: २२ अथाभिगमरुचे: स्वरूपमाह (सोहोइ अभिगमरुई सुअनाणजेण अत्थओदिट्ठं एक्कारसअंगाइं पइन्नगन्दिट्ठियाओय २३) सो अभिगमरुचिर्भ

सूत्र

ओगाहइंथा सम्मत्त अंगेण वाहिरेणव सो सुत्तरुइत्ति नायव्वो २१॥ एगेण अणेगाइं जो पसरईउ सम्मत्तं । उदएव्व तिल्लबिंदूसोबीयरु इत्तिनायव्वो २२॥ सोहोइ अभिगमरुई सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं । एक्कारस अंगाइं

भाषा

जाण सांचो सम्यक्त्व अंगेण आचारांगादिना अंग आचारांगतिण भणता थकें बाह्यादिना अंगप्रविष्टे नो त्तराध्ययनादिना सूत्ररुचिर्ज्ञातव्या: अनंगप्रविष्ट उत्तराध्ययनसूत्र भणते सूत्ररुचि कहीजे २१ एकजीवादि पदार्थेन गर्भित ज्ञातव्या पदानियानि प्रसरति सा सम्यक्त्व सत्यारुचि उदके यथा तैलबिंदु: प्र।रति सा बीजरुचि: ते बीजरुचि नाम जाणवुं जीम एकबीजथी अनेकबीज उपजे २२ सम्यास् अभिगमरुचि: ते अभिगमनाम रुचिकहीइं श्रुत ज्ञान येन अर्थत: दृष्टानि जिणे श्रुतज्ञान अर्थे दीठोछे एकादशानि अंगानिए अग्यारह अंग प्रकीर्णकानि उत्तराध्ययन इत्यादि: प्रकीर्णक उत्तरा

यति स इति क येन श्रुतज्ञान श्रयत अथ श्राश्रित्य द्दष्ट येन श्रु तज्ञानस्यार्थोऽधिगतो भवति कि तत् श्रु तज्ञानमित्याह एकादशाङ्गान्या आचाराङ्गा दोनि तथा प्रकोण क इति जातिवादेकवचन प्रकोणकान्यु त्तराध्ययनादोनि द्दष्टिवाद परिकर्मसूत्रादि च शब्दात् उपाङ्गानि उपपातिकादीनि तानि येनाधिगतानि भवति सोऽभिगमरुचिभवति इत्यथ २३ अथ विस्तारुचे स्वरूपमाह (दव्वाण सव्वाभावा सव्वपमाणे हि जस्स उवलद्धा सव्वाहि नयविहोहिय वित्थाररुइत्तिनायव्वो २४) सविस्तारुचिरिति ज्ञातव्य यस्य पुरुषस्य द्रव्याणा धर्मास्तिकायादीनां सर्वेभावा एकत्व पृथक् सयोग विभागादि समस्तपर्याया सर्वप्रमाणै प्रत्यक्षानुमानोपमानागमैश्च पुन सर्वैर्नयविधिभिर्नैगमसङ्ग्रह व्यवहार ऋजु सूत्र शब्द समभिरूढै वभूते उपलब्धा यथारूपेण जाता सन्ति सविस्तार रुचिर्विज्ञेय इत्यर्थ २४ अथ क्रियारुचि स्वरूपमाह [दसण नाणचरित्ते तव विणए सच्च समिइ गुत्तीसु जो किरियाभावरुइ सो खलु किरियारुइ नाम २५] स खलु निश्चयेन क्रियारुचिर्नाम प्रसिद्धोज्ञेय य पुरुषो दर्शनज्ञान चारित्रे तथा तपो विनये

पइन्नग दिट्ठिवाओय २३ ॥ दव्वाण सव्वभावा सव्व पमाणे हि जस्स उवलद्धा। सव्वाहि नयविहीय वित्थार रुइत्ति नायव्वो २४ ॥ दसण नाण चरित्ते तव विणय सव्वसमिइ गुत्तीसु। जो किरियाभावरुई सो खलु किरिया रुई

ध्ययनादिक दृष्टिवाद बारश्मग २३ धर्मास्तिकायादीनां सर्वभावा द्रव्यधर्मास्तिकायादिक सर्वपदार्थ सर्व प्रमाणे यस्य उपलब्धा सर्वप्रत्यक्षादि प्रमाणे करीने जाण्यालाधा सर्वे नयविधिभि नैगमसग्रह व्यवहारादिक नयनोविधिजाणे विस्तारुचि ज्ञातव्या ते विस्तारुचि कहीइ २४दर्शन ज्ञानचारित्रे दर्शन ज्ञान चारित्र तपो विनयसत्यसमिति गुप्तिषु तप विनय सत्य समिति गुप्तीने विषे य क्रियायां भाव रुचि पडिक्कमण क्रिया उपरि रुचिकरे ते

क्रियाभाव रुचिर्भवति तथा सत्य समिति गुप्तिषु क्रियाभाव रुचिर्भवति दर्शनञ्च ज्ञानञ्च चरित्रञ्च दर्शन ज्ञानचारित्रं तस्मिन् तपांसि च विनयाश्च तेषां समाहार स्तपोविनयं तस्मिन् तपोविनये तपस्सु द्वादशविधेषु तथा विनयेषु आचार्यादीनां भक्तिषु तथा सत्यायाः समितयः सत्यसमितयः तासु सत्य समितिषु क्रियायां दर्शन ज्ञानचारित्र तपोविनय समितोनां आराधनानुष्ठानविधौ भाविन रुचिर्यस्य स क्रियाभाव रुचि· २५ अथ संक्षेपस्वरूपमाह [अणभिग्गहिय कुदिट्ठी संखेवरुइत्तिहोइनायव्वो अविसारओपवयणे अणभिग्गहिओयसेसेसु२६] स संक्षेप रुचिर्भवति इति ज्ञातव्यः स इति कः योऽनभि गृहीत कुदृष्टिः अनभिगृहीता अनङ्गीकृता कुदृष्टिर्बौद्धमतादिरूपायेन स अनभिगृहीत कुदृष्टिः येन मिथ्यात्विनां कुमतंनाङ्गीकृतो नास्तीत्यर्थः पुनर्य प्रवचने जिनोक्त सिद्धान्ते अविसारदोऽचतुरः पुनर्यश्च शेषेषु मतेष्वपि कपिलादिमतेष्वपि कुशलोनास्ति सचै तादृशः पुरुषः संक्षेपरुचिः स्यात् २६ अथ धर्मरुचे स्वरूपमाह [जो अत्थिकाय धम्मंसुयधम्मं खलु चरित्त धम्मंच सद्दहइ जिणाभिहियं सोधम्मरुइत्तिनायव्वो २७] सधर्म रुचिर्भवति इति ज्ञातव्यं यः पुरुषोऽस्तिकायानां धर्मादीनां अर्थात् धर्मास्तिकायादीनां धर्मं असाधारण लक्षणं स्वभावं चलनस्वभाव स्थिर सस्थानावकाश दानादिकं

नाम २५। अणभिग्गहिय कुदिट्ठी संखेव रुइत्ति होइ नायव्वो। अविसारओपवयणे अणभिग्गहिओय सेसेसु २६।

भावरुचि स· खलु क्रियारुचिर्नाम ते क्रियारुचि कहीइ २५ यः अनभि गृहीत कुदृष्टिबोधितो मतादिरागः जिणे बौद्धादिकनोमत नथी आस्योछे नथी कोधोछे अविग्रहमिथ्यात्वनो नहो सम्यक्त्वनो संक्षेपरुचिरिति भवतिर्ज्ञातव्या ते सक्षेपरुचि कहीजे अविशारदो अकुशलःप्रवचनेसिद्धांतनीवातनथी जाणीछे अनादर· शेषेषु अन्यदर्शनेषु बीजां दर्शनने विषे अनादरछे २६ यः प्राणी अस्तिकाय धर्मं जीवो प्राणी धर्मास्तिकायने श्रुतधर्मं निश्चिते नियमेन

उ टीका
८ ८
८ ८

जिनाभिहित तोथकरोक्त यद्दधाति पुनर्योजिनोक्त एव श्रुतधर्म अङ्गप्रविष्टादिरूपश्च पुनश्चारित्रधर्मं सामायिकच्छेदोपस्थापनीय परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसम्पराय यथाख्यातादिक जिनोक्त श्रद्दधाति नतु यो धर्मादीनां लक्षण पापविडम्बितस्त्र यद्वत्ते भव हि पृथक उपाधिभेदेन समाक्षभेदकथन शिष्य स्य वा,नाथ अन्यथा तु निसगरुचिरुपदेश रुचिश्च एतौ उभौ भेदौ अधिगम रुचौ एव अन्तर्भावत २७ अथ समाक्त लिङ्गान्याह [परमत्थ संथवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणावावि वावन्नकु दंसणवज्जणाय सम्मत्त सद्दहणा २८] एतत्समाक्त श्रद्धान समाक्तस्य लक्षण समाक्तवत पुरुषस्य चिह्न श्रीयं कि तल्लक्षण परमार्थसस्तव परमार्थतथाय परमाथाजीवादितत्त्वानि तेषां परमार्थानां जीवादिभावाना सस्तव स्वरूपज्ञाना दुत्पन्न परिचय परमार्थ सस्तव एतत्प्रथम सम्यक्त्ववतो लक्षण वा शब्द पदपूरणे वा अथवा अन्यत् लक्षणमिद सुदृष्ट परमार्थ सेवन सुदृष्ट यथा स्वरूप दृष्टा दर्शिता वा पर माथा जीवादयो येस्ते सुदृष्ट परमार्था गीतार्था स्तेषा सेवन सुदृष्ट परमार्थ सेवन बहुश्रुताना आचार्यादीनां यथाशक्ति वैयावृत्यस्यकरण एतदपि

जोषत्थिकाय धम्म सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च । सद्दहइ जिणाभिहिय सोधम्म रुइत्तिनायव्वो २७ ॥ परमत्थ संथवो वासुदिट्ठपरमत्थसेवणावावि । वावन्न कुदंसण वज्जणाय सम्मत्त सद्दहणा २८ ॥ नत्थि चरित्त सम्मत्त विहूणं दंस

सूत्र

चारित्रधर्म श्रुतधर्म चारित्रधर्म श्रद्दधाति जिनोक्त सरदहै तीर्थ करनु भाष्यो सधर्म रुचिरिति ज्ञातव्य ते धर्मरुचिकहीये २७ परमार्थ सस्तवकरण जीवादिरुचिनु करिवा सुदिट्ठि परमार्थ गीतार्था श्रावका साधवस्तेषां सेवनागीतार्थ साधु अथवा श्रावक तहनो सेवाकरे व्यापन्ना चरणभ्रष्टानां कुदर्शनानांच कापालिकादीनां वर्जना सगत्यागकरे कुदर्शनी भ्रष्टाचारी तेहनो सग न करे सम्यक्त्व श्रद्धान सम्यक्त्वनो सद्दहणाकर २८ नास्ति चारित्र

भाषा

सम्यक्तलचणश्च पुनर्व्यापन्न कुदर्शन वर्जन व्यापन्न विनष्टं दर्शनं येषान्ते व्यापन्नदर्शनाः यैः पूर्वंसम्यक्तं लब्धा समग्रक्तघातकंकर्मोदयात् पुनः समग्रक्तं वान्तं ते व्यापन्नदर्शना निह्नवादयः तथा कुत्सितं दर्शनं येषांते कुदर्शना शाक्यादय व्यापन्नदर्शनाश्च कुदर्शनाश्च व्यापन्नदर्शन कुदर्शना स्तेषां वर्जनं व्यापन्नदर्शन कुदर्शन वर्जनं:एतदपि समग्रक्तलचणं ज्ञेय यः समग्रक्तवान् भवति सनिन्हवैः कुलिङ्गिभिश्च परिचयं न करोति २८ [नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं दसणउभइव्वं सम्मत्त चरित्ताइं जुगवं पुव्वंच सम्मत्तं २९] समग्रक्त माहात्म्य माह हे शिष्य समग्रक्तविहीनं चारित्रं नास्ति समग्रक्तेन विनाचारित्रं नासीत् न भविष्यति नास्ति च कोर्थः यावत्समग्रक्तं नोत्पद्यते तावत् चारित्रं नस्यात् तु पुनर्दर्शनेतु समग्रक्तेतु चारित्रेण भवितव्यं अथवा समग्रक्तं चारित्रं भक्तव्यं भजनीयं समग्रक्तश्च चारित्रश्च समग्रक्त चारित्रे युगपत् एककालं उत्पद्येते इति शेषः तथापि तत्रानुक्रमोस्ति पूर्वं समग्रक्तं पश्चाच्चारित्रं उत्पद्यते समग्रक्तचारित्रयोर्युगपदुत्पादेपि अयं नियमोस्ति इति भावः २९ पुनरपि तदेवाह (नादंसणस्सनाणं नाणेण विणानहोंति चरणगुणा अगुणस्सनत्थिमुक्खो नत्थि अमोक्खस्सनिव्वाणं ३०) अदर्शनिनः समग्रक्तरहितस्य ज्ञानं नास्ति इत्यनेन समग्रक्तं विनासमग्रक् ज्ञानं नस्यादित्यर्थः ज्ञानं विनाचारित्र गुणाचारित्रं पञ्चमहाव्रतरूपं तस्य गुणाः पिण्डविशुद्धयादयः करण चरणसप्तति रूपाः न भवन्ति अगुणिनः चारित्र

सूत्र

णउभइव्वं । सम्मत्त चरित्ताइं जुगवं पुव्वंच सम्मत्तं २९ ॥ नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा नहोंति चरणगुणा ।

भाषा

सम्यक्तहीनं सम्यक्तविना चारित्रकांइ नही दर्शनेन सम्यक्तसति भवितव्यं सम्यक्तसहित चारित्रहुवे समग्रक्तचारित्रे सम्यक्तमे चारित्रे चारित्रोत्पदात्पूर्वं उत्पद्यते समकालहोवे पणि पेहेलो समकित पाछे चारीत्र हुवे २९ न दर्शन रहितस्य ज्ञानदर्शनविना ज्ञान नहोय समग्रक्तरहीत ज्ञानेनविना न भवंति

गुणे रहितस्य मोक्ष कर्मक्षयोनास्ति अमोक्षस्य कर्मक्षयरहितस्य निर्वाण मुक्तिसुखप्राप्तिर्नास्ति ३० अथ समग्रस्य अष्टौ आचारान् आह (निस्सङ्कियनि कंखियनिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठीय उववूहथिरीकरणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ ३१) नि शङ्कित देशत सर्वतश्च शङ्कारहितत्व पुनर्निं कांक्षितत्व शाक्याद्यन्य दर्शनग्रहणवाञ्छारहितत्व निर्विंतिकित्स्य फल प्रतिसन्देहकरणविति क्लिस्सानिर्गताविंतिकित्सानिर्विंतिकित्सा तस्य भावोनिर्विचिकित्स्य किमेतस्यतप प्रभृतिक्लेशस्य फल वर्त्तत नवेति लक्षण अथवा विदन्तीतिविद साधवस्तेषा विजुगुप्सा किमेते मलमलिनदेहा अचित्तपानीयेनदेह प्रक्षालयता कोदोष स्यादित्यादिनिन्दातदभावोनिर्विजुगुप्स प्राकृतार्षत्वात्सूत्रे निर्विचिकित्स्य इति पाठ अमूढदृष्टि अमूढदृष्टि ऋद्धिमत् कुतीर्थिकाना परिव्राजकादीना ऋद्धि दृष्ट्वा अमूढाकिमस्माक दर्शन यत्सर्वथादरिद्राभिभूत इत्यादि मोहरहितादृष्टिबुद्धिरमूढदृष्टि यत्परतीर्थिना भूयसी ऋद्धि दृष्टापि स्वकीये अकिञ्चने धर्ममते स्थिरीभाव अय चतुर्विधोप्याचार अन्तरङ्ग उक्त अथवाह्याचारमाह पह हणा दर्शनादि गुणवता प्रशंसा पुन

सूत्र

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमुक्कस्स निव्वाण ३० ॥ निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठीय । उववूह थिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ३१ । सामाइयत्थ पढमंछेउवट्ठावण भवेबीय । परिहारविसुद्धीय सुहुमतह

भाषा

चारित्रगुणा ज्ञानपाये चारित्रनागुण न होइ चारित्ररहितस्य मोक्ष कर्मक्षयोनास्ति चारित्रे होन ते कर्मथी छुटेनही नास्ति अमुक्तस्य निवाण कर्मथी रहित जे नथो थया तेहने मोक्षसिद्धनही ३ तत्वनो श्रद्धानाणि अनेरोधर्मनवाछे फलप्रति सदेहन आणे मिथ्यात्वीना धर्मनो महिमा देखीने वांछा न कर धर्मवतना गुणकहे धर्मथकीसीदाताने निश्चलकरे साहमीनो हितकारी होय प्रभावनाकरे ३१ सामायिक प्रथम चारित्रनाभेदकहेछे सामायक

थिरोकरणं धर्मानुगमनं प्रतिसोदतां धर्मवतां पुरुषाणां साहाय्यकरणेन धर्मेस्थिरीकरण पुनर्वात्सल्यं साधर्मिकाणां भक्तपानीयैर्भक्तिकरणं पुनः प्रभावनाचस्वतीर्थोन्नति कारणं एते अष्टौ आचारा समाकृत्स्य इत्यर्थः २१ अथ चारित्रभेदानाह (सामाइयत्थ पढमं छेओवट्ठावणं भवेबीयं परिहारविसुद्धीय सुहमन्तहसं परायच २२) [अकसायमहक्खाय छउमत्थस्सजिणस्सवा एय चय रित्तकरं चारित्तं होइ आहियं २३] युग्मं अत्र प्रथमं सामायिकं चारित्रं ज्ञेय समोरागद्वेषरहितचित्तपरिणामस्तस्मिन् समे आयोगमनं समायः समाय एव सामायिकं अथवा समानां ज्ञानदर्शनचारित्राणां आयोलाभः समाय समाय एव सामायिकं सर्वसावद्यपरिहाररूपं यद्यपि सर्वमपि चारित्रं सामायिकं एवोच्यते तथापि च्छेदोपस्थापनादि भेदेषु प्रथमत्वात् प्रथमं नाम्नां भेदात् ज्ञेय यतोहि शब्दाधिक्यादर्थाधिक्यं प्रथमं कथनमात्रत्वेन तदपि सामायिकं नामचारित्रं द्विविधं इत्वरं १ यावत्कथितं च २ भरतैरावतमहाविदेहेषु मध्यमजिनतीर्थेषु च उपस्थापनयाः सद्भावे यावत्कथितं सम्भवति उपस्थापनाया अभावे जावज्जीवं अपि भवति इत्वरं

संपरायंच २२ ॥ अकसायं अहक्खायं छउमत्थस्स जिणस्सवा। एअंचयरित्तकरं चारित्तं होइ आहियं २३ ॥ तवोय

चारित्र १ छेदोपस्थापनीय भवेत् द्वितीय बीजूं छेदोपस्थापनीय चारित्र २ परिहार विशुद्धं तृतीयं३ त्रीजूं परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसंपराय तथा चतुर्थं ४ तिम सूक्ष्म संपराय चोथूं २२ अकषाय चपितोपशमित कषायावस्थानं रूपं कषाय चपाव्योके उपशमित कीधोके तेहने यथाख्यात चारित्र होइ एपांच मुं चारित्र जाणवुं यथाख्यात छद्मस्थस्य उपशांत मोहगुण स्थानिकस्य जिनस्य वा भवति छद्मस्थने उपशांत मोहने उपशांत कषायने चारित्रहोइ एतत् कर्मचय कर पचविध चारित्रं स्यात् एपांचे प्रकारे चारित्र कर्मचयनुं कारण भगवंते कह्यं २३ तपो बाह्याभ्यंतरमिति द्विविधमुक्तं तपवे भेदे बाह्यतप

च्छेदोपस्थापनोयानां साधूना भवति तथा द्वितीय च्छेदोपस्थापनोय अस्य शब्दस्य कोर्थ सातिचारस्य निरति चारस्यवा साधोस्तीर्थान्तर प्रतिपद्य मानस्य पूर्वपर्यायस्य च्छेदस्तञ्च च्छेदाययोग्या उपस्थापनामहाव्रतारोपणा यस्मिन् तच्छेदोपस्थापन चारित्र द्वितीय ज्ञेय तदपि द्विविध सातिचार निरतिचारश्च अथ परिहारविशुद्ध ततीय परिहारस्तपो विशेषस्तेन विशुद्धिर्यस्मिन् तत्परिहारविशुद्धिक भवति तद्विधिश्चाय नवयतयोगणात् पृथकभूय अष्टादशमासान् यावत्साधयन्ति तत्र नव साधूनां मध्येचत्वार परिहारिका भवन्ति चत्वारोऽन्ये तेषां वैयावृत्यकरास्ते अनुपरिहारिकाभवन्ति एकस्तु नवम कल्पस्थितोवाचनाचार्योभवति एव षण्मास यावत् तप कृत्वा पश्चात्षण्मास यावत् ये परिहारिकास्ते अनुपरिहारिकाभवन्ति अनुपरि हारिका परिहारिकाभवन्ति षण्मासयावदेव तप कुर्वन्ति ततश्च कल्पस्थित सोपि तैनेवविधिनाषण्मासस्तप करोति शेषेष षटसुमासेष एक कश्चित्कल्पस्थितोभूत्वा ते अन्ये सर्वेपि अनुपरिहारिकाय भवन्ति एव विधिना अष्टादशमास प्रमाण कल्पोज्ञातव्य कल्पसमाप्तो तु पुन परिहार विशुद्धिमन्तो न यापि यत्नयोजिनकल्प वा गच्छ वा आश्रयन्ति एतदाचारवन्त साधयोहि जिनस्य जिनपार्श्वस्थितस्य स्थविरस्य गणधरस्य वा समीप प्रतिपद्यन्ते नान्यस्य पार्श्वे तिष्ठन्ति तयो चारित्र परिहारविशुद्धिक ततीय ज्ञेय तथा सूक्ष्मसम्पराय चतुर्थ भवति सूक्ष्म किट्टीकरणात् सम्प्रोक्षत सम्परायोलोभाख्य कषायोयत्र तत् सूक्ष्मसम्पराय एतच्चारित्र हि उपशमश्रेणि क्षपकश्रेण्यारूढस्य साधोर्लोभाणु वेदनसमये भवति सूक्ष्म सम्पराय इति अनुस्वार प्राकृतत्वात् ३२ अकषाय कषायरहित क्षपितकषायावस्थायां एतद्भवति यथाख्यातनामक तीर्थंकरोक्त पञ्चम ज्ञेय इद हि यथा ख्यात चारित्र छद्मस्थ उपशान्तमोहाख्ये गुणस्थाने तथा अयोगाख्ये चतुर्दशे गुणस्थाने वर्त्तमानस्य भवति एतत्पञ्च विध चारित्र भवति कीदृश चारित्र रिक्तकर कर्मराशोनारिक्त अभाव करोत्ये वशोलरिक्तकर तीर्थं करै आख्यात कर्मराशोनां अभावकर सामायिकादिपञ्च विध चारित्र कर्म

क्षयकारकमित्यर्थः ३३ अथ तपोभेदमाह [तवोयदुविहोवुत्तो बाहिरोब्भिन्तरोतहा बाहिरोछव्विहोवुत्तो एवमब्भिन्तरोतवो ३४] तपोद्विविधं प्रोक्तं बाह्यं तथाभ्यन्तरं बाह्यं षड् विधं प्रोक्तं एवं इति षड् विधं एव अभ्यन्तरं अपितपः प्रोक्तं ३४ अथ ज्ञानदर्शनचारित्राणां मध्येमोक्षमार्गेकस्य कीदृशो व्यापारोवर्त्ततेतमाह [नाणेणजाणईभाव दंसणेणयसद्दहइ चरित्तेणनिगिण्हाइ तवेणपरिसुज्झई ३५] ज्ञानेनमति ज्ञानादिनाभावान् जीवाजीवादीन् जानाति च पुनर्दर्शनेन भगवद्वचन श्रद्धयाश्रद्धत्ते सत्यत्वेनाङ्गीकुरुते चारित्रेण विरति प्रत्याख्यानेन निगृह्णाति विषयेभ्योनिवर्त्तते तपसापरिसमन्तात् शुध्यति कर्ममलापगमात् निर्मलोभवतीत्यर्थः ३५ अथ मोक्षफलभूताङ्गतिमाह [खवित्तापुव्वकम्माइं संजमेणतवेणय सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा पक्कमन्ति महेसिणोत्तिवेमि ३६ महर्षयोमहामुनय संयमेन सप्तदशविधेन पुनस्तपसा द्वादशविधेन च शब्दात् ज्ञानदर्शनाभ्यां च पूर्वकर्माणि पूर्वोपार्जितकर्माणि क्षपयित्वाप्रहीण सर्वदुःखार्थाः सन्तोमोक्षाभिलाषिणः सन्तः प्रक्रमन्ति पराक्रमं कुर्व्वन्ति सिद्धिं गच्छन्ति प्रहीणानि प्रकर्षेणहानिं प्राप्तानि सर्वदुःखानि

सूत्र

दुविहो वुत्तो बाहिरब्भिंतरो तहा। बाहिरो चउब्विहोवुत्तो एवमब्भिंतरो तवो ३४॥ नाणेण जाणई भावे दंसणेणय सद्दहे। चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसुज्झई ३५॥ खवित्ता पुब्वकम्माइं संजमेण तवेणय। सव्वदुक्खप्पही

भाषा

अंतरंग तप बाह्याभ्यतर स्तथा बाह्य अने अतरग बाह्यं तपः षड्विध उक्तं बाह्यतप छप्रकारे काह्यो एवं अभ्यंतरतप छभेदे अंतरंग तप काह्यो ३४ ज्ञानेन जानाति भावान् ज्ञाने करीने सर्वभाव जाणेछे जीवादिन् दर्शनेन च श्रद्धाति दर्शने करी सद्दहे चारित्रेण च भावान् गृह्णाति चारित्रे करी कर्मखपावे तपसा परिशुद्धति तपकरतां आत्मा सुद्धहुवे ३५ क्षपित्वा पूर्वकर्माणी खपावीने पाछिलांकर्म संयमेन तपसाच सतरेभेदे संजमकरीने बारे

यत्र तत् प्रक्षीणसर्वदुःखं मोक्षस्थानं तदर्थयस्मै अभिलषन्तीति प्रक्षीणसर्वदुःखार्थाः मोक्षाभिलाषिण इत्यर्थः प्रहीणसर्वदुःखार्थाइति स्थाने सर्वदुःख
प्रहीणार्था इति पाठस्तु आर्षत्वात् इत्यहं ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामीजम्बूस्वामिनं प्राह ३६ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय
श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्यलक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां मोक्षमार्गीयाख्यं अष्टाविंशमध्ययनं सम्पूर्णं ॥ २८ ॥ अथैकोनत्रिंशत्तमं प्रारभ्यते पूर्वस्मिन्
अध्ययनेमोक्षमार्गगतिरुक्तासाचवीतरागत्वपूर्व्विकाइति अथ यथा वीतरागत्वं स्यात्तथाभिधायकं एकोनत्रिंशत्तमं कथ्यते (सुयं मे आउसंतेण भगवया
एवमक्खायं इहखलु सम्मत्तपरिक्कमेनामज्झयणे समणेण भगवयामहावीरेणकासवेण पवेइयाजं सम्मं सद्दहित्ता पत्तिय इत्ता रोयइत्ता फासित्तापालइत्ता
तीरइत्ता किट्टइत्तासोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवेजीवासिज्झन्ति बुज्झन्ति मुचन्ति परिनिव्वाइन्ति सव्वदुक्खाणमंतं करन्ति]
इत्यालापकः १ हे आयुष्मन् इति सम्बोधनं हे जम्बू मयाश्रुतं तेन भगवताज्ञानवता आयुष्मताजीवताविद्यमानेन श्रीमहावीरेण एवं आख्यातं एवं
कथितं एवमिति किंतत् तदाह इहास्मिन् जगति आगमेवाखलु निश्चयेन सम्यक्त्व पराक्रमं नामाध्ययनं सम्यक्त्वे सति वर्द्धमानगुणैः कर्मशत्रुजयलक्षण
पराक्रमोबलं यस्मिन् तत् सम्यक्त्व पराक्रमं नामाध्ययनं श्रमणेन तपस्विनाभगवता ऐश्वर्ययुक्तेन श्रीमहावीरेण काश्यपगोत्रीयेण प्रवेदितं यत्सम्यक्त्वपरा

मूल

खट्ठा पक्कमंति महेसियोत्तिबेमि ३६ । मुक्खमग्गज्झयणं सम्मत्तं २८ ॥ सुयमे आउसंतेणं भगवया एवं मक्खायं ।

भाषा

मेंदे तपकरीने सबदुःख प्रक्षोणार्थं सर्वदुःखने क्षयकरीने प्रक्रमंति सिद्धि गच्छति महर्षिणः इति ब्रवीमि मोटा ऋषीश्वर मुक्ति पोहचे ३६ इति मोक्ष
मार्गगतिनामा अध्ययननो अर्थ पूरो थयो ॥ २८ ॥ श्रुतं मया हे आयुष्मन् हे चिरजीव सौम्यमिदम् साम्भ्यं भगवता श्रीमहावीरेण एवं आख्यातं भगवत

टीका

क्रम अध्ययनं श्रद्धासूत्रार्थाभ्यां सामान्येन प्रतिपद्यप्रतीत्यविशेषेण प्रतीतिं आनीयरोचयित्वा तस्य अध्ययनस्य अर्थाभिलाषं अनुष्ठानाभिलाषं आत्मन उत्पाद्य पुन स्पृष्ट्वा मनोवाक्कायैस्तदुक्तानुष्टानं संसर्गपालयित्वातस्याध्ययनस्य गुणेन अतीचारवर्ज्जनेनरक्षयित्वातीरयित्वाअनुष्ठानं पारं नीत्वाकीर्त्तयित्वागुरुं प्रतिविनयपूर्वक मया भवद्भ्यः सकाशात्समाक् प्रकारेण संपूर्णमधीतमिति कथनेन शोधयित्वागुरोर्वचनात् पश्चाच्छुद्धं कृत्वा आराध्ययथोक्त उत्सर्गापवादनयविज्ञानेन सेवनं कृत्वा आज्ञयागुर्वादेशेन अनुपाल्यनित्यं आश्रेव्यबहवोजीवाः सिध्यन्ति सिद्धिगुणयुक्ता भवन्ति बुद्ध्यन्ति घातिकर्म्मनिवारणेन तत्वज्ञाताभवन्ति मुच्यन्ते भवोपग्राहिकर्म चतुष्टयबन्धात् मुक्ता भवन्ति परिनिर्वान्ति कर्मदावानलोपशमनेन शीतलत्वं प्राप्नुवन्ति सर्वदुःखानां

सूत्र

इह खलुसम्मत्तं परक्कमे नामज्झयणे । समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेईया जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तियइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालिइत्ता तीरइत्ता किट्टइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा

भाषा

श्रीमहावीरे इम कह्यो इह अस्मिन् प्रवचने निश्चयेन सम्यक्त परात्क्रमनामाध्ययनं एनिश्चय सम्यक्त पराक्रमनामाध्ययन श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमण भगवत महावीरे काश्यपगोत्रेण प्रवेदितं काश्यपगोत्रने धणीइं एअध्ययन कह्यु यत् सम्यक् श्रद्धधानं कृत्वा जे अध्ययने भला श्रद्दहे प्रतितयित्वा प्रतीत उपजावि रोचयित्वा चित्तमांहि रुचावे स्पृष्टाक्रियायां क्रियाइ करीने फरसे पालयित्वा भलेप्रकारे पाले पारंनीत्वा पारपांमीने कीर्त्तयित्वा स्वाध्याय विधानत परने उपदेसे शोधयित्वा गुरुवचन केडेसोधीने आराध्यो उत्सर्गापवादाभ्यां उत्सर्ग अपवादे आराधीने गुर्वाज्ञासेवनेन गुरुनी आज्ञाइ करीने अनुपाल्य गुरुनी आज्ञाइ मार्गपालिने बहवः जीवा सिद्धान्ति घणा जीवसीझे तत्वज्ञानेन बुद्धन्ते मुच्यंते कर्मबंधनात् परिनिर्वापयंति कर्म

गरारमानसानां अन्त कुर्वन्ति इत्यालापकार्थ (तस्याण अयमट्ठे एवमाहिज्जइ) तस्य सम्यक्‌पराक्रमाध्ययनस्य अय वक्ष्यमाणोऽर्थ एव अमुनाप्रकारेण शोमहावीरेण आख्यायते कथ्यते (तजहा संवेगे १ निव्वेए २ धम्मसद्धा३ गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया ४ आलोयणा ५ निन्दणया ६ गरहणया ७ सामाइए८ च उवीसत्थए ९ वन्दणे १० पडिक्कमणे ११ काउसग्गे १२ पच्चक्खाणे १३ थयथुइ मङ्गले १४ कालपडिलेहणया १५ पायच्छित्तकरणे १६ खमावणया १७ सज्झाए १८ वायणा १९ पडिपुच्छणया २० परियट्टणया २१ अणुप्पेहा २२ धम्मकहा २३ सुयस्सआराहणया २४ एगग्गमणसंनिवेसणया २५ संजमे २६ तवे २७ वोदाणे २८ सुहसाए २९ अप्पडिबद्धया ३० विवित्तसयणासणसेवणया ३१ विणि वट्टणया ३२ संभोगपच्चक्खाणे ३३ उवहि पच्चक्खाणे ३४ आहारपच्चक्खाणे ३५ कसायपच्चक्खाणे ३६ जोगपच्चक्खाणे ३७ सरीरपच्चक्खाणे ३८ सहायपच्चक्खाणे ३९ भत्तपच्चक्खाणे ४० सब्भावपच्च क्खाणे ४१ पडिरूवणया ४२ वेयावच्चे ४३ सव्वगुणसम्पन्नया ४४ वीयरागया ४५ खन्ती ४६ मुत्ती ४७ मद्दवे ४८ अज्जवे ४९ भाव सच्चे ५० करणसच्चे ५१ जोगसच्चे ५२ मणगुत्तया ५३ वयगुत्तया ५४ कायगुत्तया ५५ मणसमाहारणया५६ वयसमाहारणया ५७ कायसमाहारणया ५८ नाणसम्प न्नया ५९ दंसणसम्पन्नया ६० चरित्तसम्पन्नया ६१ सोइन्दियनिग्गहे ६२ चक्खिदियनिग्गहे ६३ घाणिंदियनिग्गहे ६४ जिब्भिन्दियनिग्गहे ६५ फासि

सिज्झतिबुज्झतिमुच्चति परिनिव्वाइ तिसव्वदुक्खाण मतकरंति तस्याण अयमट्ठे एवमाहिज्जइ तजहा संवेए१ निव्वेए२

भाषा

अग्नि उपशमावी सर्वदुःखाना अंत कुवतो सर्वदुःखना अतकरे ते अध्ययननो अय अर्थ आख्यायते वक्ष्यमाण प्रकारे ते अध्ययननो अर्थहवे कहेछे तद्यथा दर्शयति कथयतो कहेछे संवेग संसारथी संवेग १ निर्वेद संसारथी निर्वेद २ धर्मश्रद्धा धर्मनीवासना ३ गुरुसाधर्मिक शुश्रूषणा गुरु साधर्मी

दियनिग्गहे ६६ कोहविजये ६७ माणविजये ६८ मायाविजए ६९ लोहविजये ७० पेज्जदोसमिच्छादंसणविजये ७१ सेलेसी ७२ अकम्मया ७३) इति सूत्रं एतस्य सम्यक्तपराक्रमाध्ययनस्य श्रीमहावीरेण यथानुक्रमं अर्थोव्याख्यायते तद्यथा सम्वेगोमोक्षाभिलाषः १ निर्वेदः संसारात् विरक्तता २ धर्म्म श्रद्धाधर्म्मेरुचि २ गुरोस्तत्वोपदेष्टातस्य साधर्मिणः समानधर्म्मकर्त्तुश्च शुश्रूषणासेवा ४ आलोचनागुरोरग्रेपापानां प्रकाशनं ५ निन्दनाआत्मसाक्षिकं आत्मनोनिन्दा ६ गर्हणा अपरलोकानां पुरतः स्वदोषप्रकाशनं ७ सामायिकं शत्रौमित्रे साम्यं ८ चतुर्विंशतिस्तवोलोगस्सुज्जोयगरेइत्यादि चतुर्विंशति जिननाम पठनं ९ वन्दनं द्वादशावर्त्त वन्दनेन गुरोर्वन्दना १० प्रतिक्रमणं पापान्निवर्त्तनं ११ कायोत्सर्गोऽतीचार शुद्धर्थं कायस्य व्युत्सर्जनं काय ममत्व वर्जनं १२ प्रत्याख्यानं मूलगुणोत्तरधारणं १३ स्तवस्तुति मङ्गलं स्तवः शक्रस्तवपाठः स्तुतिरूर्द्धीभूयजघन्ये न चतुष्टयस्तुति कथनं मध्यमेन अष्टस्तुति कथनं उत्कृष्टेन १०८ कथनम्स्तवश्चस्तुतयश्च स्तवस्तुतयः स्तवस्तुतय एव मङ्गलं स्तवस्तुति मङ्गलं १४ कालप्रतिलेखना कालस्य व्याघातिकप्रभृतिकाल चतुष्टयस्य

सूत्र

धम्मसद्धा ३ गुरुसाहम्मिय सुस्सूसणाया ४ आलोयणाया ५ निंदणाया ६ गरहणाया ७ सामाइए ८ चउवीसत्थए ९ वंदणे १० पडिक्कमणे ११ काउस्सग्गे १२ पच्चक्खाणे १३ थयथुईमंगले १४ कालपडिलेहणाया १५ पायच्छित्त

भाषा

समान धर्म्मपाले तेह भणी भक्ति ४ आलोचना आपणपे आलोचे पापनु आलोइवु ५ निंदाना ६आत्मा साखिनिंद्याकरे ६ गर्हा ७ गुरुसाखिं गर्हा करे ७ सामायिक८ वे घडी समायक ८ चतुर्विंशति तीर्थंकार स्तव९ लोगस्स ९ वंदनकं द्वादशावर्त्त वंदना १० प्रतिक्रमण११ पडिक्कमणुं ११ कायोत्सर्गः १२ काउस्सगकरे१२ प्रत्याख्यान पच्चक्खांण प्रत्याख्याने करीने १३ स्तव स्तुति मंगलं स्तुतिस्तवन मंगलरूप भणवुं १४ काल प्रतिलेखना

प्रतिलेखना प्ररूपणाकालग्रहणरूपाकालप्रतिलेखना १५ प्रायश्चित्तकरण लग्नस्य पापस्य निहरणार्थं तपस करण १६ क्षमापना अपराध क्षामण १७ स्वाध्यायचतुर्विधोवाचनादिक १८ वाचनागुरुसमीपे सूत्राचराणां ग्रहण १९ प्रतिपृच्छनागुरो पुरत सन्देहस्य प्रच्छन २० परिवर्त्तना सूत्र पाठस्य सुधर्म गुणन २१ अनुप्रेक्षासूत्रस्य चिन्तन २२ धर्मकथाधर्म सम्बन्धाया वार्त्ताया कथन २३ श्रुताराधनासिद्धान्तस्याराधना २४ एकाग्रमन सन्निवेशनाचित्तस्य एकस्मिन् प्रधानेध्येयवस्तुनिस्थिरीकरण २५ संयम आश्रवादिरति रूप २६ तपोद्वादशविध २७ व्यवदान विशेषेण अवदान कर्म शुद्धिर्व्यवदान कर्मणा निर्जरा २८ सुखशात सुखस्य विषयसुखस्य शात शातन स्पृहानिवारण २९ अप्रतिबद्धतानीरागत्व ३० विविक्तशयनासनसेवना स्त्रीपशुपण्डकादिरहितशयनासनानां आसेवना ३१ विनिवर्त्तनापश्चेन्द्रियाणां विषयेभ्योविशेषेण निवर्त्तन ३२ सम्भोग प्रत्याख्यान सम्भोग एकमण्डली

यारणे १६ खमावणाया १७ सज्झाए १८ वायणया १९ पडिपुच्छणाया २० परियट्टणाया २१ अणुप्पेहा २२ धम्म कहा २३ सुयस्स आराहणाया २४ ॥ एगग्गमणस निवेसणया २५ संजमे २६ तवे २७ वोदाणे २८ सुहसाए २९ अप

कालवेलाइ पडोलेहणकर १५ प्रायश्चित्त करण पायच्छित्तलेइ आलोयण करे १६ क्षमावचन १७ जीवने खमावे १७ स्वाध्याय १८ सज्झायकरे १८ वाचना १९ वायणा दियें लोइ १९ परावर्त्तना सूत्रे गणे अर्थ पूछे २० प्रतिपृच्छना सूत्र अर्थभूलो पूछे २१ अनुप्रेक्षा अर्थ संभारे २२ धर्मकथा धर्मकथा करे २३ श्रुतस्य आराधना २४ सिद्धांतनो आराधना करे २४ एकाग्रमन सन्निवेसना एकाग्रमन ठामिराखे २५ संजम संजमपाले २६ तप तपस्याकरे २७ व्यवदान दानसोसनराखे २८ सुखशय्या सुखशाता उपजावे २९ अप्रतिबधता प्रतिबंध रहितहोइ ३० विविक्तशयनासन सेवना

ष्योकल्व तस्य प्रत्याख्यान गीतार्थावस्थायां जिनकल्पाचारग्रहणेन परिहार: सम्भोगप्रत्याख्यानं ३३ उपधिप्रत्याख्यान रजोहरणमुखवस्त्रिकां विहायअन्यो पधि परिहार: ३४ आहारप्रत्याख्यानं स दोषाहारपरिहार: ३५ कषायप्रत्याख्यानं ३६ योगप्रत्याख्यानं मनोवाक्कायानां व्यापारोयोगस्तस्य प्रत्याख्यानं परिहार ३७ शरीरप्रत्याख्यानं प्रस्तावेसमागते शरीरस्यापि व्युत्सर्जनं ३८ साहाय्य प्रत्याख्यानं साहाय्यकारिणां परिहार: ३९ भक्तपानप्रत्याख्यानं सद्भावेन परमार्थवृत्त्याप्रत्याख्यान सद्भावप्रत्याख्यानं ४१ प्रतिरूपताप्रति: स्थविरकल्पिमुनि सदृशो रूपं वेषोयस्य स प्रतिरूप: प्रतिरूपस्य भाव: प्रति रूपतास्थविरकल्पिसाधयोग्य ।षधारित्वं ४२ वैयावृत्य साधूनां आहाराद्यानयनसाहाय्यं ४३ सर्वगुणसम्पन्नताज्ञानादि गुणसहितत्वं ४४ वीतरागता

डिवज्जया ३० विवित्तसयणासणसेवणाया ३१ विणियट्टणाया ३२ संभोगपच्चक्खाणे ३३ उवहिपच्चक्खाणे ३४ आहार पच्चक्खाणे ३५ कसाय पच्चक्खाणे ३६ जोगपच्चक्खाणे ३७ सरीर पच्चक्खाणे ३८ सहाय पच्चक्खाणे ३९ भत्तपच्च क्खाणे ४० सब्भावपच्चक्खाणे ४१ पडिरूवणाया ४२ वेयावच्चे ४३ सव्वगुणसंपन्नया ४४ वीयरागया ४५ खंती ४६

स्त्रीपसुपंडक रहित उपाश्रय सेवे ३१ विनिवर्त्तना पापथी निवर्त्ते ३२ सभोग प्रत्याख्यान सभोगनुं पच्चक्खाण करे ३३ उपधि प्रत्याख्यानं उपधिनुं पच्चक्खाणकरे ३४ आहार प्रत्याख्यान आहारनुं पच्चक्खाणकरे ३५ कषाय प्रत्याख्यानं कषायनुं पच्चक्खाणकरे ३६ योग प्रत्याख्यानं योगनुं पच्चक्खाण करे ३७ शरीर प्रत्याख्यान शरीरनुं पच्चखाणकरे ३८ सहाय प्रत्याख्यानं साथीनो पच्चक्खाणकरे ३९ भक्तप्रत्याख्यानं भातनु पच्चक्खाणकरे ४० सद्भाव प्रत्याख्यानं सर्वसंवररूप पच्चक्खाणकरे ४१ प्रतिरूपना साधुने रूपे रहवो ४२ वैयावृत्य वेयावच्चकरे ४३ सर्वगुण संपूर्णता सघले गुणे करीसहित ४४

रागद्वेषनिवारण ४५ क्षान्ति क्षमा ४६ मुक्तिनिर्लोभता ४७ मार्दव मानपरिहार ४८ आर्जवसरलत्व ४९ भावसत्य अन्तरात्मन शुद्धत्व ५० करण
सत्य प्रतिलेखनादिक्रियाविषये निरालस्य ५१ योगसत्य मनोवाक्काय योगेषु सत्य योगसत्य ५२ मनोगुप्तित्व मनसोऽशुभपदार्थात् गोपन ५३
वचोगुप्तित्व वचसोऽशुभपदार्थात् गोपन ५४ कायगुप्तित्व कायस्य अशुभव्यापाराद्गोपन ५५ मन समाधारणामनस शुभस्थानेस्थिरत्वेनस्थापन ५६
वच समाधारणावचनस्य शुभकार्येस्थापन ५७ कायसमाधारणा कायस्य शुभकार्येस्थापन ५८ ज्ञानसम्पन्नताश्रुत ज्ञानसहितत्व ५९ दर्शनसम्पन्नत्व
सम्यक्त्व सहितत्व ६० चारित्रसम्पन्नत्व यथाख्यातचारित्र युक्तत्व ६१ श्रोत्रेन्द्रियनिग्रह ६२ चक्षुरिन्द्रियनिग्रह, ६३ घ्राणेन्द्रियनिग्रह ६४

मूल

मुत्ती ४७ मद्दवे ४८ अज्जवे ४९ भावसच्चे ५० करणसच्चे ५१ जोगसच्चे ५२ मणगुत्तया ५३ वइगुत्तया ५४ काय
गुत्तया ५५ मणसमाहारणया ५६ वइसमाहारणया ५७ कायसमाहारणया ५८ नाणसपन्नया ५९ दसणसपन्नया ६०

भाषा

वीतरागता४५ वीत रागभाव ४५ क्षांति ४६ क्षमाकरे ४६ मुक्ति निर्लोभपणु कर ४७ आर्जव ४८ सरलपणु करे ४८ मार्दव४९ सु कोमलपणु ४९
भावसत्य भावसाचो ५० करणसत्य पडिलेहणादिक्रिया सत्य ५१ योगसत्य मनप्रमुखयोग विषे सत्य ५२ मनोगुप्ति अशुभथी मननु गोपवनु ५३
वचनगुप्ति अशुभथी वचननु गोपवनु ५४ कायगुप्ति अशुभथी कायानु गोपवनु ५५ मन समधारणा मनने शुभध्यानकने विषे थापे ५६ वाक समधा
रणावचनने शुभध्यान कने विषे थापे ५७ काय समधारणा काया शुभध्यानकने विषे थापे ५८ ज्ञानसमापन्नता श्रुतज्ञान सहितपणु ५९ सम्यक्
स युक्तता समकित सहितपणु ६ चारित्र स पन्नता यथाख्यात चारित्रसहित पणु ६१ श्रोत्रेंद्रिय निग्रह कानना विषयनोजीपवो ६२ चक्षुरिंद्रिय

जि न्द्रियनिग्रह: ६५ स्पर्शेन्द्रियनिग्रह: ६६ क्रोधविजय ६७ मानविजय: ६८ मायाविजय: ६९ लोभविजय. ७० प्रेमद्वेषमिथ्यादर्शनविजय: ७१ सैलेशीचतुर्दशगुणस्थानस्थायित्वं ७२ अकर्मताकर्मणां अभाव: ७३ इत्येषां त्रिसप्ततिवचनानां अर्थयुक्ता अथ तेषां एव प्रत्येकं फलमाह सूत्रं [संवेगेणं भन्ते जीवे किं जणयइ संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ अणन्ताणुबन्धिकोहमाणमायालोभेखवेइ नवं च कम्मं नबन्धइ तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊणदंसणाराहए भवइ दंसणविसोहीएणं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइसोहिएणं विसुद्धाए तच्चं पुणभवग्गहणं नाइक्कमइ १] व्या० शिष्य: पृच्छति हेभदन्त हे पूज्य संवेगेनमोक्षाभिलाषेण कृत्वाजीव: किं जनयति किमुत्पादयति तदा

सूत्र

चरित्तसंपन्नया ६१ सोइंदियनिग्गहे ६२ चक्खिंदियनिग्गहे ६३ घाणिंदियनिग्गहे ६४ जिब्भिंदियनिग्गहे ६५ फासिंदियनिग्गहे ६६ कोहविजए ६७ माणविजए ६८ मायाविजए ६९ लोभविजए ७० पिज्जदोसमिच्छा दंसणविजए ७१ सेलसी ७२ अकंमया ७३ संवेगेणं भंते जीवे किं जणयइ। संवेगेणं अणुत्तरं धम्म सद्धं जणयइ। अणुत्तराए धम्म

भाषा

निग्रह: नेत्रना विषयनुं जीपवुं ६३ घ्राणेंद्रिय निग्रह: नाशिकाना विषयनुं जीपवुं ६४ जिह्वेंद्रिय निग्रह: जीभना विषयनुं जीपवुं ६५ स्पर्शेंद्रिय निग्रह शरीरफरसनुं जीपवुं ६६ क्रोधविजय क्रोधनूं जीपवुं ६७ मानविजय: माननुं जीपवुं ६८ मायाविजय: मायानुं जीपवुं ६९ लोभविजय: लोभनुं जीपवुं ७० प्रेमद्वेष मिथ्यादर्शनविजय: प्रीत अनेद्वेष अने मिथ्यात्वनो जीपवुं ७१ शैलेसीभाव चउदमे गुणठाणे रहिवो ७२ अकर्मता कर्म रहितपणे ७३ वैराग्येन हे भदंत हे भगवान् जीव किं जनयति हे पूज्य वैराग्यें करीने जीवस्युं उपार्जे संवेगेन अनुत्तरा प्रकृष्टां धर्मश्रद्धां जनयति

टीका

गुरराह हे शिष्य स वेगेन कत्वा जीवोअनुत्तरा प्रधानधर्म यद्धां धर्मेयद्धां धर्मरुचिमानयति तया प्रधानयाधर्मस्य श्रद्धया स वेगमोक्षाभिलाषहव्यइति शीघ्रमागच्छति प्राप्नोति ततोनरकानुबन्धिनोनरकगतिदायिनोऽनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान् चतुरोपि कषायान् क्षपयति नवश्च कर्मनबध्नाति तत् प्रत्ययां अनन्तानुबन्धिकषायक्षयादुत्पन्ना मिथ्यात्वविशुद्धि सर्वथामिथ्यात्वक्षति कत्वा दर्शनाराधकोभवति क्षायकशुद्धसम्यक्त्वस्य आराधकोनिरति चारपालकाभवति तत सम्यक्त्वविशुद्धया अतिनिर्मलया अस्त्येक कश्चित् भव्योय स ते नैव भवग्रहणेन तेनैव जन्मोपादानेन सिद्धगतिसिद्धि प्राप्नोति एक पुन सम्यक्त्वस्य निर्मलयाविशुद्धयाततोय पुनर्भवग्रहण नाति क्रामति इत्यनेन शुद्धक्षायकसम्यक्त्वात् भवत्रयमध्ये मोक्ष व्रजत्येव १ [निव्वेएण भन्ते जीवे कि जणइ निव्वेएण दिव्वमाणु ससेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेय हव्वमागच्छइ सव्वविसएसुविरज्जमाणे आरम्भपरिग्गहपरिच्चायं करेइ

सूत्र

सद्धाए । सवेग हव्व मागच्छइ । अणन्ताणु बन्धि कोहमाण मायालोभे खवेइ नवच कम्म न बधइ । तप्पच्चइय चणं मिच्छत्त विसोहि काऊण । दसणाराहए भवइ । दसण विसोहीएयणं विसुद्धाए । अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेण

भाषा

वैराग्यकरोने धर्मनोश्रद्धा उपाजे अनुत्तरया धर्मश्रद्धया अणुत्तर प्रधान धर्मनो श्रद्धाइ करोने विशिष्ट वैराग्य शीघ्र आगच्छति उत्तम स वेग वैराग्य शीघ्र पणे आवे तत अनन्तानु बधी पछे अनु तानु बधीओ क्रोधमान माया लोभक्षपति क्रोधमान माया लोभ खपावे नवीन अशुभ कर्मन बध्नाति नवु कर्मबाधे नहो तत्प्रय निमित्त च मिथ्यात्व विशुद्धि कत्वा अनेरो कषाये क्रोधमानमाया लोभक्षयाथोने पछे मिथ्यात्वनी शुद्धता करे करीनेक्षायिक सम्यक्त्व साधका भवतिक्षायिक सम्यक्त्व उपार्जे दर्शनविशुद्ध करे आणासुद्ध करे एकक कश्चित् भवदेयो यद्भव्य तेनैय भवग्रहणेन सिद्ध ति केतला एक

आरम्भपरिग्रहपरित्यागं कुर्व्वाणो स सारमग्गवोच्छिन्दइसिद्धिमग्गपडिवन्नेय भवइ १] हे भगवन् पूर्व्वनिर्वेदेन सामान्येन संसारात् विरागभावेनजीव- कि जनयति गुरुराहनिर्वेदेनदेवमनुष्यतिर्यक् सम्बन्धिषु कामभोगेषु निर्वेद विराग एतेकामभोगा विरसा एतेषुकोनुरागः इति बुद्धिः शीघ्रमायाति तदा सर्वविषयेषु सर्वविषयेभ्योविरक्तः स्यात् सर्वविषयेभ्योविरज्यमानः पुमान् आरभः कर्षणादिः परिग्रहोधनधान्यादिषु मूर्छारूपः तयोः परित्याग करोति आरम्भपरिग्रहपरित्यागं कुर्व्वाणः संसारमार्गं मिथ्यात्वाविरत्यादिकं व्युच्छिनत्ति सिद्धिमार्गं प्रतिपन्नोभवति शुद्धक्षायकसम्यक्त्व रूप मुक्ति

सूत्र

सिज्झइ। सोहीएणं विसुद्धाए। तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ १। निव्वेएणं भंते जीवे किं जणयइ। निव्वेएणं दिव्व माणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु। निव्वेय हव्वमागच्छइ। सव्व विसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे। आरभ परिग्गह परिच्चाय करेइ। आरंभपरिग्गहपरिच्चायंकरेमाणे। संसारमग्गं वोच्छिंदइ। सिद्धिमग्गं पडिवन्नेय

भाषा

जीव मरुदेवीनी परिते जे भवमोक्ष सदर्शने विशुद्धा आत्मानिर्मलहोइ तत्तीयं भवग्रहणं त्रीजो भवलंघे नही मुक्तिजाइ लांघे नही त्रीजो भव १ संवेगात् निर्वेदः स्यात् निर्वेदेन भगवान् जीव कि जनयति संवेग हूंतो निर्वेद हुवे हे भगवन् निर्वेद हुंतो जीवस्युं उपार्जे निर्वेदेन देव मनुष्य तिर्यंच कामभोगेषु निर्वेदं कामत्याग बुद्धि शीघ्र आगच्छति देवता संबंधिया मनुष्य संबंधिया तिर्यंच संबंधिया कामभोगने विषे त्यागनी बुद्धि उपजे एभूंडा कामभोग सर्वविषयेषु विरक्तो भवति सर्वविषय हुंतो विरक्त होइ ततः सर्वविषयेषु विरज्यमानेषु सर्वविषयने विषे विरक्तहुवे थको आरभ परिग्रहत्यागं करोति आरभ अने परिग्रहनो त्याग करे आरभ परिग्रहत्याग कुर्वन् आरभ परिग्रह त्यागकरतुं जीव संसारमार्ग मिथ्या

माग प्रतिलम्भोभवति २ [धम्मसद्धाएण भंते जीवेकिंजणयइ धम्मसद्धाएण सायासोक्खेसुरज्जमाणे विरज्जइ आगारधम्मं चण चयइ अणगारेण जीवेसारीरमाणसाण दुक्खाण छेयणभेयणसंजोगादीण वोच्छेयं करइ अव्वाबाहंचण सुहं निव्वत्तेइ ३] हेस्वामिन् हे पूज्य धर्मश्रद्धयाधर्म विषयेच्छया जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य धर्मं श्रद्धयासातासुखेषु सातावेदनीयकर्मजनितसुखेषु विषयसुखेषु रज्यमानः पूर्वं रागं कुर्वाणोविरज्यते विरक्तो भवति तदा आगारधर्मं गृहस्थ धर्मं त्यजति ततश्च अनगारः साधुः सन् जीवः शारीरमानसानां दुःखानां व्याधीनां च्छेदनभेदनसंयोगवियोगादीनां कष्टानां व्युच्छेदं करोतितन्निमित्तकर्मणांच्छेदंकरोति ततोऽव्याबाधसुखंमोक्षसुखं निर्वर्त्तयति मोक्षसुखं निष्पादयतीत्यर्थः ३ धम्मश्रद्धानन्तरं गुर्वादीनां शुश्रूषकोभवति अतस्तत्फलं प्रष्टुकाम शिष्य आह गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाएणं विणयपडिवत्ति

भवइ ॥ २ ॥ धम्म सद्धाएणं भंते जीवे किं जणयइ । धम्म सद्धाएणं साया सोक्खेसुरज्जमाणे विरज्जइ । आगारधम्मं चणं चयइ । अणगारेणं जीवे सारीर माणसाणं दुक्खाणं छेयणं भेयणं संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ । अव्वाबाहंच सुहं

त्वादिक व्यवच्छिनत्ति संसारनो माग मिथ्यात्वादिक तेहने छेदे सम्यक दर्शनरूप सिद्धि मार्ग प्रयचो भवति समकितरूप मोक्षमार्गनो पडिवजणहार हुइ २ धम्मश्रद्धया हे भदंतजीव किं जनयति धर्मनी सद्दहणाइ करी हे पुण्यजीवस्तु उपार्जे धम्मश्रद्धया सातासुखेषु पूर्वराग कुर्वन् विरक्ततायाति जीव महला सुख ऊपरि रागकरतुहतु जिवारे धम्मनोरागआवे तिवारे विरक्तहोइ गृहस्थ धम्ममाग त्यजति तिवारे गृहस्थमार्गनो धम्मछांडे ततोनगार सन् जीव शरीर मानसकाना अनगारपणो अंगीकार करे जीव सरीरना मननां दुखना छेदन छेदनारा भेदन भेदनारा संयोगादीना व्यवच्छेद

जणयइ विणयपडिवत्तएणं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइयतिरिक्खजोणिय मणुस्सदेवकुगइ उनिरुम्भइ वन्नसञ्जलणभत्ति बहुमाणयाए मणुस्सदेवसुगइओ निबन्धइ सिद्धिसुगइं च विसोहेइ पसत्थाइञ्चविणयमूलाइं सव्वकज्जाइं सोहेइ अन्नेयबहवे जीवे विणयत्ताभवइ ४] हे भगवन् गुरूणां आचार्याणां साधर्मिकाणां एकधर्मवतां शुश्रूषयासेवनयाजीवः किंजनयति तदागुरुराह गुरुसाधर्मिकशुश्रूषयाविनयप्रतिपत्तिं विनय धर्मस्याराधनां विनयाङ्गीकारत्वं जनयति विनयं प्रतिपन्नः प्रतिपन्नविनयोङ्गीकृतविनयोजीव अनत्याशातनशील सन् आचार्यादीना अभक्ति निन्दाहीलाऽवर्णवादाद्याशातनानिवारक सन् नरकतिर्यक् योनिं तथा मनुष्यदेवयोः कुगतिं च रुणद्धिनिषेधयति आचार्याणा अत्याशातनानिवारकोनरोनरकयोनौ नोत्पद्यते तिर्यक्योनौ च नोत्पद्यते मनुष्येषु कुयोनौम्लेच्छादौदेवेषु कुयोनौकिल्बिषादौ नोत्पद्यते तथा पुनर्वर्ण संज्वलनभक्ति बहुमानतयामानवेषु उच्चैः

सूत्र

निवत्तेइ ॥ ३ ॥ गुरु साहम्मिय सुस्सूसणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ। गुरु साहम्मिय सुस्सूसणयाएणं विणय पडिवत्तिं जणयइ। विणय पडिवत्तएणं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइय तिरिक्खजोणिय मणुस्सदेव कुग्गईओ निरुंभइ।

भाषा

करोति संयोग वियोगना दुक्खनो व्यवच्छेद करे अव्या बाधच मोक्षसुखं उत्पादयति प्रबाधारहित मोक्षनां सुखउपजावे २ गुरु साधर्म्मिक शुश्रूषया गुरुनी साधर्म्मीनी सुश्रूषाकरि हे भगवन् जीव. किंजनयति हे भगवन् जीवसुं उपार्ज्जे गुरु साधर्म्मिक शुश्रूषया गुरुनी साहमीनी सेवाथकी विनय प्रतिपत्तिं उचित प्रतिपत्तिं जनयति विनय प्रतिपत्ति उपार्जे विनय प्रतिपन्नो जीवः विनय अंगीकार कीयाथका जीव अनाशातनाशील आशातना रहित हुवे देवगुरुनी आशातना न करे नेरयिक स्तीर्यक् योनि मनुष्यदुर्गती चंडालादि देवदुर्गती किल्बिषादि निरुणद्धि नरक तिर्यंच नीयोनिने रुंधे मनुष्य

टीका

गुरु० समत्पा भावसमुख स्यात् बल्म ध्याया तत बन्त स प्रमम गुणप्रकटीकरण वर्णसञ्ज्वलन भक्तिरभ्युत्थानादिका बहुमानाऽभ्यन्तरप्रीति विशेष
स्तत्क्रमेण वर्णसंज्वलन बहुमानात् वर्णसंज्वलन बहुमानामोपां भावोवर्णसंज्वलन बहुमानातया वर्णसंज्वलन बहुमानतया पुमान् भवेत् यस्य
गुरु प्रायो मति प्रायः सेंवे क्रियते तादृगुणसमूह प्रशमनः स्यात्तिर्यं दर्शयति च भक्तिक स्यात् च पुन सिद्धि गतिश शोधयति
प्रमाणान गति विशेषत साधयति प्रशस्तानि च विनयमूलानि श्रुतज्ञानादीनि यथापि धर्मकार्याणि शोधयति स च स्वयं विनयमूल सर्वकार्य
साधक सन् अन्यान् अपि बहून् जीवान् विनेतविनय ग्राहयिताभवति ४ गुरु शुश्रूषा प्रायश्च आलोचना सत्यपि आलोचनायोग्यताम्
प्राप्त भवति तत् सूत्र प्रमाह (आलोयणयाए भंतेजीवे किं जणयइ आलोयणयाएणं मायानियाण मिच्छा दंसिणसल्लाण मोक्ख

मूल

यंच संजलण भति बहुमाणयाए मणुस्सदेव सुग्गइओ निबंधइ। सिद्धि सुग्गइं च विसोहेइ। पसत्थाइं चणं विणय
मूलाइं सव्व कज्जाइं साहेइ। अन्नेय बहवे जीवे विणयइत्ता भवइ॥ ४॥ आलोयणयाए णं भंते जीवे किं जणयइ।

भाषा

रति वन्दना अभ्युत्थानादिको जिनविधौ भक्ति के य प्रसन्नता कर यश आचार्य सज्जन गुणोद्भासन भक्तिरभ्युत्थानादिका वर्णकरणो प्रसंसा गुणनो
कर बहुमानकरणो गुरुनाश्रुत भाव आगमकर इसो गुरुबहुमानता गुरुको विनयप्रतिपत्ति देव मनुष्यगति बन्धाति गुरु नो भक्तिकर तु जीव भद्रो
देव मनुष्य गतिवांधे सिद्धि सुगति च विशोधयति साधयति इति निशसोकर प्रशस्तानि च विनयमूलानि सर्वकार्याणि साधयति प्रशस्त विनय
मूल सबकार्य साध अपर बहु जीवोंना विनयवन्तो भवति अर्थ रागोषमोषणायोग्य सिद्धि आप ४ आलोचनात च भगवन् आलोयण करतो

मग्गविग्घाणं अणन्त ससार वद्दणाणं उद्दरणं करेइ उज्जुभावं च जणयइ उज्जुभाव पडिवन्नेयणं जीवे अमाई इत्थिवेयं नपुंसग वेयंच नबन्धइ पुव्वबद्दं च निज्जरेइ५) हे भगवन् हे भदन्त पूज्य आलोचनयागुर्वाग्रे आत्मनोदोष प्रकाशनेन जीवः किं जनयति तदा गुरुराह आलोचनया कत्वा जीवोमायानिदानमिथ्यादर्शनशल्यानां उद्दरणं करोति तत्र मायाकापट्यं निदानं तपसोविक्रयः ममास्य तपसः फलं स्यात्तर्हिराज्येन्द्रादिपदभाक् अहं स्यां इति रूपं निदानं मिथ्यादर्शनं सांसयिकादिविपरीतिमतिरूपं माया च निदानंच मिथ्यादर्शनं च मायानिदान मिथ्यादर्शनानि तान्येवशल्यानि मायानिदान मिथ्यादर्शन शल्यानि तेषां उद्दरणं दूरीकरणं करोति इत्यर्थः कीदृशानां मायानिदानमिथ्यादर्शनशल्यानां मोक्षमार्गविघ्नानां विघ्नकारकाणां पुनः कीदृशानां अनन्तससारवर्द्दनानां पुनः ऋजुभावं सरलत्वं जनयति ऋजुभावं प्रतिपन्नोपि निश्चयेण वाक्यालङ्कारेजीवः अमायीमायारहित सन्

सूत्र

आलोयणयाएणं माया नियाणं मिच्छा दरिसण सल्लाणं मोक्खमग्ग विग्घाणं। अणंत संसार वद्दणाणं। उद्दरणं करेइ उज्जुभावंच जणयइ। उज्जुभाव पडिवन्नेयणं जीवे अमाई इत्थीवेयं नपुंसग वेयंच नबंधइ पुव्वबद्दंचणं

भाषा

जीवः किं जनयति हे भगवन् स्युं उपार्ज्जे आलोचनायाः पापनीं आलोयण करतुं थकी गुरो पुरोदोष प्रकाशन रूपया गुरुने आगे आपणुं पाप प्रकासे मिथ्यादर्शनशल्यानां मायानियाणं मीथ्यात्वसालछे जीवने मोक्षमार्ग विघ्नानां वली मुक्तिमार्गने विघ्नना करणहारछे अनंत संसार वर्द्दनानां एअनंत संसार वधारेछे उद्दरणं करोति तेहने उद्दरे दूरकरे ऋजुभाव जनयति सरलपणुं उपार्ज्जे ऋजुभावं प्रतिपन्नो जीवः सरलपणुं अंगीकार कीयाथका जीव जीव आमायी सन् स्त्रीवेद नपुंसकवेदंच नबध्नाति मायारहितथको जीव स्त्रीवेद नपुंसकवेदन बाधे पूर्ववद्दंच निर्ज्जरति पूर्वेबांध्यां जे कर्म्म ते

स्त्रीवेद नपुंसकवेद न बध्नाति स्त्रीवेद नपुंसक वेद चेत् पूर्वं बद्ध स्यात्तर्हि निर्जरयति ५ आलोचनाहि दुष्कृत निन्दाकारकस्यैव स फलास्यात् अत स्तत्फल प्रश्न पूर्वमाह (निन्दणयाएणभंते जीवे किं जणयइ निन्दणयाएण पच्छाणु ताव जणयइ पच्छाणुतावेण विरज्जमाणे करणगुण सेढी पडि वज्जइ करणगुण सेढि पडिवन्नेय अणगारे मोहणिज्ज कम्म उग्घाएइ ६) हे भदन्त निन्दनया जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य आत्मन पापस्य निन्दनेन पश्चात्ताप जनयति हा मया दुष्कृतकृत मित्यादि बुद्धि उत्पादयति पश्चात्तापेन विरज्यमानो वैराग्य प्राप्नुवन् सन् करण गुण श्रेणि अपूर्व करणेन पूर्वं कदापि अप्राप्तेन विशुद्धमन परिणाम विशेष गुणश्रेणि क्षपक श्रेणि प्रतिपद्यते अङ्गीकुरुते करण गुणश्रेणि प्रति पन्न अपूर्व गुणश्रेणि सन् अनगार साधुर्मोहनीय कर्म दर्शन मोहनीयादिक कर्म उद्घातयते अतिशयेन क्षपयति ६ कश्चित् स्वदोषान्

सूत्र

निज्जरेइ ५ ॥ निंदणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ। निंदणयाएणं पच्छाणु,ताव जणयइ। पच्छाणु,तावेणं विरज्ज माणे करणगुण सेढिं पडिवज्जइ। करणगुणसेढी पडिवन्नेयणं अणगारे मोहणिज्ज कम्म उग्घाएइ ६ ॥ गरहणा

भाषा

दूरिकरे ५ निंदनया आत्मनादोष परित्याग हे भगवन् जीव किं जनयति आपणा कीधा पापनिंदतोथको जीव हे भगवन् किस्यु उपाजें निंदनया पश्चात्ताप जनयति पापनिंदतु पश्चात्तापकरे पश्चादनुतापेन पश्चातापथी वैराग्य गच्छन् वैराग्यपामतो अपूर्वकरणेन गुण श्रेणिहेतुकरूपा प्रतिपद्यते अपूर्वकरण गुणश्रेणिने अङ्गीकारकरे करण गुणश्रेणि प्रतिपन्ना अनगार करण गुणश्रेणिने विषे प्राप्तहूओ साधु मोहनीय कर्म उद्घातयति क्षपयति तत् क्षयेन मुक्ति मोहनो क्षयने खपावे मोहखपाव्या मुक्तिहवे ६ गर्हणेनपरसमक्षमात्मनो दोषोद्भावनेन हे भगवन् जीव किं जनयति आपणादोष

निन्दन्नपि पापभीरु तया गर्हां अपि कुर्यात् अत स्तत्फल प्रश्न पूर्वमाह [गरहणयाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ गरहणयाएणं अपुरक्कारं जणयइ अपुरक्कारगएणं जीवेऽप्पसत्थेहिंतो जोगेहितो नियत्तेइ पसत्थेय पवत्तेइ पसत्थ जोगपडिवन्नेयणं अणगारे अणन्तघाइ पज्जवेखवेइ ७] शिष्यः पृच्छति हे स्वामिन् गर्हणेनपरसमक्षं आत्मनो दोषोद्भावनेन जीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्यजीवोगर्हणेन अपुरस्कारं जनयति आत्मनिगुरुत्वारोपणं पुरस्कार अपुरस्कारस्तं अपुरस्कारं आत्मनोऽवहीला जनयति यदाहि स्वस्य गर्हणाकारोतिस्वस्यधिक्क्रियां करोति तदा अवहीलावान् भवति अपुरस्कारगतोजीवोऽप्रशस्तेभ्य कर्मबन्ध हेतुभ्यो योगेभ्योनिवर्त्तते अप्रशस्तकर्म बन्ध हेतुयोगान् न अङ्गीकुरुते प्रशस्तयोग प्रतिपन्नश्च प्राज्ञत्वात् प्रतिपन्न प्रशस्तयोगोऽङ्गीकृत सम्यग्योगोऽनगारोऽनन्तघातिनः पर्यायान् क्षपयति अनन्तविषयतया अनन्तेज्ञानदर्शनेह तु विनाशयि तु

सूत्र

याएणं भंते जीवे किंजणयइ। गरहणयाएणं अपुरक्कारं जणयइ। अपुरक्कार गएणं जीवे अपसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ पसत्थेहिय पवत्तइ पसत्थ जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणं तघाई पज्जवेखवेइ ७॥ सामाइएणं

भाषा

लोक आगे प्रकाशतोथको जीव हे पूज्यस्युं उपार्जे अपुरस्कारो गौरवाध्यारोपीनतथा अपुरस्कारो अवज्ञास्पदत्वं जनयति अपुरस्कार वाहतां अवज्ञा पासे हलू आपणुं पामे स पुरस्कारगतो जीव आपणीं गरहाकरतु जीव अप्रशस्तेभ्यो कर्म्मबंध हेतुभ्यो योगेभ्यो निवर्त्तते जिके अप्रशस्त भुंडा कर्म्मबंधना हेतु इस्या जे योग तेहथोनिवर्त्ते प्रशस्त योगास्तु प्रतिपद्यंते भलायोगने अगीकारकरे प्रसस्तयोग प्रतिपन्नो अनगारो प्रशस्त भला योगमाम इस्यो अणगारयती ज्ञानावरणादि परिणामान् क्षपयति ज्ञानावरणीना परिणामखपावे ७ सामायिकेन हे भगवन् जीवः किं जनयति हे पूज्यसामायक करतु

उत्तराध्य० अ० २९ ८२१

म न यना न धनधारिनधात् पदान् वा ायरवादिकमना पयवान् परिणति विशयान् पपयति ७ भावाघनादोनि सामायिकमत एव मवभोति ऽनयान् प्रतात दूर पममाद (सामाइएण भंते जीव कि जणयइ सामाइएण सावज्जजोगविरइ जणइ ८) ६ मदमासामायिकन ममतादपेण जोव कि जनयति गुरराइ ४ शिष्य सामायिकेन सावद्ययोग विरति जनयति कमबन्धकारणेभ्य स पापमना सावद्ययोगेभ्योविरति पचाविवर्त न नमदान ८ एव सामायिकवान् चतुवि शति जिननाति विपर्य तत् कारकम्य फल मत्र पूमाह (चउवोसत्थएणभंते जीवेकि जणयइ चउवो सत्थएण दमणविसोहिं जणयइ ८) ६ भन्त ४ स्वामिन् चतुवि शतिस्तवनमोगस्स उज्जोयगरे इत्यादि पठनेन जोव कि जनयति गुरराह ४ शिष्य चतुवि शति स्तवनेन दर्शनविशुद्धि जनयति सम्यक्त्वनैर्मल्य करोति [वन्दणएण भंते जीव कि जणइ वन्दणएण नीयागोयं कम्म खवइ उच्चागोयं कम्म निबन्धइ सोहग्ग च अप्पडिहय आणाफल निवत्तेइ दाहिणभाव च जणयइ १०] ४ भदन्त पूज्यवन्दनकगुरुणो द्वादशावर्त्तविधिवन्दनेन जीव कि जनयति

मूल

भंते जीवे किं जणयइ सामाइएणं सावज्जजोग विरइ जणयइ ८॥ चउवीसत्थएणं भंते जीवे किं जणयइ। चउवी सत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ९॥ वंदणएणं भंते जीवे किं जणयइ। वंदणएणं नीया गोयं कम्मं खवेइ उच्चा

भाषा

भा० किं० उत्तर सामायिकथी सावद्य विरति जनयति सामायक जीव सावद्य पापयोगथी निवर्ते ८ चतुर्वि शति स्तवेन ४ भ० दन् जीव कि जनयति ४ पू० ४ जीव सम्यक्त्व जाव किं० उत्तर चतुर्विशतिस्तवन दर्शन विशुद्धि जनयति चोवीसस्तो लोगस्स कहतो सम्यक्त्व निर्मल करे ८ वंदन ४ भदन्त जीव कि जन ति ४ भगवन् वन्दनाकरणे जीव किं० उत्तर वंदन नीचे गोत्र कर्म खपयति वंदना करतां जीव साधुने भाव

हे शिष्य श्रीगुरूणां वन्दनकेननीचैर्गोत्रं कर्मचपयति गुरूणा वन्दनकारीनीचैर्गोत्रेन अवतरतीत्यर्थ पूर्वबद्धं च चपयति उच्चैर्गोत्र कर्मबध्नाति उच्चैर्गोत्र अवतरतीत्यर्थः पुनरुच्चैर्गोत्रे ऽवतीर्ण सन् सौभाग्यं सर्वलोकेषु वल्लभत्व पुनरप्रतिहतं केनापि निबारयितुं अशक्यं आज्ञाफल आज्ञासारं प्रभुत्वं निर्वर्त्त यति उत्पादयति च पुनर्दाचिण्य भावं सर्वलोकानां अनुकूलत्वं जनयति १० एतद्गुणोपयुक्तेन साधुनाआदीश्वर महावीरयोस्तीर्थे प्रवर्त्तमानेनऽवश्यं प्रतिक्रमणं कार्यं अतस्तत्फलं प्रश्नपूर्वमाह (पडिक्कमणेणं भंते जीवे किं जणयइ पडिक्कमणेणं वयच्छिद्दाइंपिहेइ पिहियवयछिद्दे पुणजीवेनिरुद्धासवे अस बलचरित्ते अट्ठसुपवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणि हि एविहरइ ११) हे भदन्त प्रतिक्रमणेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य प्रतिक्रमणेन अपराधेभ्य पश्चान्निवर्त्तनेन व्रतछिद्राणिपिदधाति व्रतानां प्राणाति पातविरमणादीनां छिद्राणि अतीचारान् स्थगयतिरुणद्धिपिहित व्रतछिद्रः सन् पुनर्जीवोनिरुद्धाश्रवो भवति निरुद्धा श्रवः पुनरशबलचारित्रोष्टसु प्रवचनमातृषु उपयुक्तः सन् स मिति गुप्तिषु सावधानः सन् अपृथक्त्वः संयमयोगेभ्यो

गोयंनिबंधइ सोहग्गंचणं अपडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ दाहिणभावंचणं जणयइ १०॥ पडिक्कमणेणं भंते जीवे किंजणयइ पडिक्कमणेणं वयच्छिद्दाइं पिहेइ पिहिय वय छिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबल चरित्ते अट्ठसु पव

गोत्र खपावे उच्चैर्गोत्रं कर्मबध्नाति सौभाग्यं सोभागीपणं अपर अप्रतिहतं हणाइ नही आज्ञाफलं निवर्त्तयति एहवो आज्ञानुफल उपार्जे लोकस्य दाचिण्यं अनुकूलं जनयति लोकने अनुकूलभाव दाचिण्यपणूं उपार्जे १० प्रतिक्रमणेन हे भगवन् जीवः किं जनयति पडिक्कमणं करतु जीव हे भगवन् स्युं उपार्जे प्रतिक्रमणेन व्रतानां अतीचारान् आच्छादयति पडिक्कमणं करतुथको व्रतना अतीचारने आच्छादेपिहित व्रत छिद्र पुन वली व्रतना छिद्र

इभिव सन् सुप्रणिहितो विहरति सुप्रणिहितानि असन्मार्गात् निषेध्य सन्मार्गेव्यवस्थापितानोन्द्रियाणि येन स सुप्रणिहितेन्द्रिय सन्मार्गप्रस्थापितेन्द्रिय साधु असन्मार्गेविहरतीत्यर्थ ११ अथातीचारविशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्ग करोति अतस्तत्फल प्रश्न पूर्वकमाह (काउस्सग्गे णभंते जीवे किं जणयइ काउस्सग्गेणम्नी ययतपन्न पायच्छित्त विसोहेइ विसुद्धपायच्छित्ते य जीवेनिव्वुय हियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगएसुहसुहेण विहरइ १२)हे भदन्तकायोत्सर्गे अतीचारविशुद्धार्थं कायस्य व्युत्सर्जनेन जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्यकायोत्सर्गेण अतीत चिरकालसम्भूत प्रत्युत्पन्न आसन्नकालेपन्नं मान प्रायश्चित्त उपचारात् प्रायश्चित्तार्ह अतीचार विशोधयत्यपनयति विशुद्धप्रायश्चित्तयजीवोनिर्वृत्त स्वस्थोकृत हृदय यस्य स निर्वृतहृदय प्रशस्तसद्भाव

मूल

यणमायासु उवउत्ते अप्पमत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ११ ॥ काउस्सग्गे णं भंते जीवे किं जणयइ । काउस्सग्गे णं तीय पडुप्पन्न पायच्छित्त विसोहेइ । विसुद्ध पायच्छित्ते य जीवे निव्वुय हियए । ओहरिय भरुव्व भारवहे । पसत्थज्झाणो

भाषा

ठांकायाथका जीव निश्चय अष्ट प्रवचनमाताथका निर्मलचारित्र निर्मलकर अष्टप्रवचनमातुं अष्टप्रवचन माताने विषे उपयुक्त सावधानथको अप्रमत्त् संयमवियोग रहित सु० संयमे प्रणिधानवान् विहरत्यास्ति संयमपालतु विचरे ११ कायोत्सर्गेन हे भगवन् जीव किं जनयति काउस्सग्गकरतां हे भगवन् जीवस्युं उपार्जे कायोत्सर्गेण अतीत चिरकाल भावितया प्रत्युत्पन्नच आसन्नकाल भवितेन प्रायश्चित्त अतीचार विशोधयति अपनयति अतीत घणाकालना अतीचार प्रतिपन्न थोडाकालना अतीचार तेहने साथे दूरकरे विशुद्ध प्रायश्चित्तय जीवो निवृत्ति हृदय स्वस्थीभवति विशुद्ध प्रायश्चित्त कीधा थका जीव सुविस्थिर हिवो जेहनो स्वस्थरूपी अपहृत्य भारेव भारवाह जिम भारवाहक माथानोभार उतार्यो सुखीहुवे स्वस्थहोइ प्रशस्त ध्यानोपगत

नया उपगतः सुख सुखेन विहरति सुखानां पर परशाविच रतिकाङ्म अपहृत भारोभारवाह इव यथा उत्तरारितभारभरोभारवाहक सुखं सुखेन विह रति तथा कायोत्सर्गेण प्रायश्चित्त विशुद्धि विधाय स्वस्रोक्षत हृदयोजीवः सुखेन विचरतीति भावः १२ एव मपि शुद्धमानेनप्रत्याख्यानं कार्यं अतस्तत्फलं प्रश्न पूर्वकमाह [पच्चक्खाणेणभन्ते जीवे किं जणयइ पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुभइ पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ इच्छानिरोहगएणं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीयलभूए विहरइ १२) हे भदन्त प्रत्याख्यानेन मूलगुणोत्तर प्रत्याख्याने रूपेण जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य प्रत्याख्यानेन आश्रवद्वाराणि निरुणद्धि अतिशयेन आवृणोति अत्र प्रत्यन्तरे क्वचित् अय प्रश्नोस्ति हे स्वामिन् प्रत्याख्यानेन जीवः किं जनयति अत्रोत्तर हे शिष्य प्रत्याख्यानेन इच्छानिरोध आहारादिवाञ्छायानिरोध जनयति इच्छानिरोधं प्राप्तो जीवः सर्वद्रव्येषु सुविनीत तृष्णोभवति सुतरा

वगए सुहं सुहेणं विहरइ १२॥ पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किंजणयइ। पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ इच्छानिरोहंगएयणं जीवे सव्वदव्वे सुविणीयतण्हे सीलभूए विहरइ १३। थय

सन् भलेध्यानरे विश्रामइ श्रोपक्रोसुख यथास्यादेवंसुखेनविहरतिसुखेसमाधि वोचरेऊँ१२प्रत्याख्यानेन हेभगवन्जीव· किं जनयतिपच्चक्खाणकरतु जीव हे भगवन् स्युं उपार्जे पच्चक्खाणप्रत्याख्यानेनपच्चक्खाण करतु जीव आश्रवद्वाराणि निरुद्धतिः आश्रवद्वारक्धे प्रत्याख्यानेन पच्चक्खाणे इच्छावाञ्छानिरोधजनय तिइच्छानोनिरोधकरेइच्छानोरोधप्र गतो जीयः जीवारेमन०ाम प्राप्युएजीवे तदासर्वद्रव्ये सुविगततृ षाःशोतोभूतोविहरति सर्वद्रव्यने विषेतृष्णारहित हुओथको विचरे १२ देवेंद्र स्तवनादिस्तुति मगलेन हे भगवन् जीव' किं जनयतिः ममुत्थ.ण स्तवमादिक मगलकरतु जीवस्यु उपार्जे स्तुतिस्तवन मम

चतिशयेन विनीतास्फेटिता ख्यापेन स सुविनीत ख्य चयन्तदूरोक्त ख्य सन् सोतलीभूतो विहरति बाह्याभ्यनार सन्तापरहितोविहरति १३ प्रत्याख्यानानन्तर चैत्यवन्दनाकाया चतस्तत्फल प्रश्न पूर्वमाह [थयथइ मङ्गलेणभते जीवे कि जणयइ थयथइ मङ्गलेण नाणदसणचरित्तबोहि लाभ जणयइ नाणदसण चरित्तबोहि लाभ स पन्ने यजीवे अन्तकिरिय कप्पविमाणोववत्तिय आराहण आराहेइ १४] हे भदन्तस्तव प्रसस्तवरूप सुा तर्या वर्हीभूय कथन रूपा चयवा एकादि सप्तश्लोकान्ता यावदष्टोत्तरशतश्लोका माथा सुतिषस्तवय सुतिस्तवो तौ एव मङ्गल भावमङ्गल रूप स्तुति स्तव मङ्गलं तेन स्तुति स्तवमङ्गलेन जीव कि जनयति स्तवस्तुति मङ्गलेनेति पाठस्तु आर्षत्वात् गुरु प्रश्नोत्तरमाह हे शिष्यस्तवस्तुति मङ्गलेन जीवोज्ञान दर्शन चारित्र बोधिलाभ जनयति तत्र ज्ञान मति श्रुतादि दर्शन क्षायिक सम्यक्त्व चारित्र विरति रूप तद्रूप एव बोधिलाभोजैन धर्म प्राप्ति ज्ञान दर्शनचारित्र बोधिलाभस्त जनयति ज्ञानदर्शनचारित्र बोधिलाभ सम्पन्नश्च जीव आराधनां ज्ञानादीनां आसेवनां आराधयति साधयति कोदृशी

थुइ मंगलेण भंते जीवे किं जणयइ । थयथुई मंगलेण नाणदंसण चरित्त बोहिलाभ जणयइ । नाणदंसण चरित्त बोहिलाभ संपन्नेण जीवे अंतकिरीयं कप्पविमाणी ववत्तिय आराहणा आराहेइ १४ । कालपडिलेहणयाएणं भंते

हेन ज्ञान दर्शनचारित्र रूप बोधिलाभ जनयति न मुख्य स्तवनमंगलोक्त करतु ज्ञानदर्शन चारित्ररूपबोधि लाभ उपजावे ज्ञानदर्शनचारित्र बोधि लाभ प्राप्त जीव ज्ञानदर्शन चारित्र बोधि लाभ प्राप्त हुआ थका जीव अन्तक्रिया मुक्त कल्पविमानोपपत्तिकां आराधनां आराधयति जीव अन्तक्रिया करतु मुक्ति विमान नवग्रैवेयकनो आराधना आराधे छेदे छेहलोवार १४ काल प्रत्युपेक्षणया हे भगवन् जीव कि जनयति कालमें विषे जीव

आराधनां कल्पविमानोत्पत्तिकां कल्पाश्च विमानानिचतेषु उत्पत्तिर्यस्या· साकल्पविमानोत्पत्तिकातां पुन कीदृशीं आराधना अन्तक्रियां अन्तस्य संसारस्य कर्म्मणां वा अवसानस्य क्रिया अन्तक्रियातां एव भूतां ज्ञानाद्याराधनां साधयति कल्पाः सौधर्मादयोदेवलोकाः विमानानि ८ नवग्रैवेयिक पञ्चानुत्तर विमानानि ज्ञानाद्याराधनया कश्चिद्भरतादिवत् दीर्घकालेन मुक्तिं प्राप्नोति कश्चिद्गजसु कुमालवत् स्वल्पकालेनैव मुक्तिं प्राप्नोतीति भावः १४ अर्हच्चैत्य वन्दनानन्तरं स्वाध्यायोविधेयः स च काल दृष्टा एव विधीयते अतस्तत्फलं प्रश्नपूर्वमाह (कालपडिलेहणयाएणभन्ते जीवे किं जणयइकालपडिलेहणयाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ १५) हे भदन्तकालप्रतिलेखनयाकालस्य प्रादोषिक प्राभातिकादिकस्य प्रतिलेखना प्रत्युपेक्षणा सिद्धांतोक्तविधिनासत्य प्ररूपणाग्रहण प्रतिजागरणासावधानत्वं कालप्रतिलेखनातया जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्यकाल प्रतिलेखनयाजीवो ज्ञानावरणोयं कर्म्मक्षपयति कदाचिदल्पपाठे प्रायश्चित्त कर्त्तव्यं तदा प्रायश्चित्तकरणे यत्फलं तदपि प्रश्न पूर्वमाह१५ (पायच्छित्तकरणेणंभंतेजीवे किं जणयइ पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ निरइयारेआविभविस्सइ सम्मं चणं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणेमग्गच मग्गफलंच विसोहेइ आयारंच आयार फलं च आराहेइ १६) हे भदन्त प्रायश्चित्तकरणेन पापशुद्धि करणेन आलोचनादिकेन जीव· किं जनयति गुरुर्वदति हे शिष्य प्रायश्चित्तकरणेन पाप

सूत्र

जीवे किंजणयइ। कालपडिलेहणयाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ १५॥ पायच्छित्तकरणेणं भंते जीवे किंजण

भाषा

पडिलेहण करतुस्युं उपार्जे काल प्रत्युपेक्षणया कालग्रहणरूपयाः कालवेलाइं पडिलेहण करतो ज्ञानावरणीय कर्म्म क्षपयति ज्ञानावरणी कर्म खपावें १५ प्रायश्चित्त करणेन हे भगवन् जीवः किं जनयति शुद्धमने प्रायश्चित्त करतु जीव हे भगवन्स्युं उपार्जे प्रायश्चित्तकरणेन पापकर्म्म विशुद्धि

क्रमवियाधि जनयति ततयनिरतोचारोऽतोचाररहितोभवति सम्यक प्रायश्चित्त प्रतिपद्यमान सन् मार्ग सम्यक्त्व च पुनर्मार्गफल मार्गस्य सम्यक्त्वस्य फल ज्ञान तत् विशोधयति च पुनराचार आराधयति आचार शब्देन चारित्र आराधयति पुनराचारस्य फल मोक्ष आराधयति साधयति १६ प्रायश्चित्त यदा करोति तदाक्षामणां अपि करोत्येव अतस्तत् फल प्रश्न पूर्वमाह (खमावणयाएणमन्ते जीवे कि जणयइ खमावणयाएण पल्हायण भाव जणयइ पल्हायणभावमुवगए सव्वपाणभूय जीव सत्तेसु मित्तीभाव उप्पाएइ मित्तीभाव मुवगएयावि जीवे भाव विसोहि काऊण निभए भवइ १७) हे भदन्तक्षामणया दु क्षतानन्तर क्षतव्यमिद मम अपराध पुनर्नकरिष्यामि एतादृश इत्यादि रूपया जीव कि जनयति गुरुराह हे शिष्यक्षामणया गरोरपि यद् क्षतनिन्दनया प्रह्लादनभाव चित्तप्रसत्ति रूप जनयति प्रह्लादनभाव उपगतोजीव सर्वप्राण भूतजीवसत्वेषु प्राणाय भूताय जीवाय सत्वाय

सूत्र

यइ। पायच्छित्तकरणेणं पावकम्म विसोहिजणयइ निरईयारेयावि भवइ। सम्म चणं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्ग च मग्गफलंच विसोहेइ आयारंच आयारफलंच आराहेइ १६ ॥ खमावणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ खमा

भाषा

जनयति पाप छिनत्ति प्रायश्चित्तने करवे करीने पापछेदे निरतीचारयापि अतीचार रहितोपि भवति अतोचार रहित होइ सम्यक प्रायश्चित्त प्रतिपद्य मान भलेप्रकार प्रायश्चित्त लेतोथको ज्ञानार्थहेतु ज्ञानोत्पत्तिरूप विशोधयति मार्गफल मार्ग कहतां ज्ञाननी प्राप्ति सम्यक्त्व कहीजे तेहनो सोधि निर्मलकरेछे आचारचारित्र च तत् फलच मुक्तिलक्षण आराधयति आचार चारित्र तेहनु फल मुक्ति तेहने आराधे १६ क्षमापनया दु क्षतानतर क्षमितव्य शुद्धमने खमावते जीवस्य उपाजें क्षमापनया चित्त प्रसत्तिभाव जनयति शुद्धपरिणामे खमावता थका जीव उल्लासभाव करे उल्लासभाव

प्राणभूतजोवसत्वा: सर्वे च ते प्राणभूतजीवसत्वाश्च सर्वप्राणभूतजीवसत्वास्तेषु मैत्रीभाव उत्पादयति मैत्रीभावं गतस्तु जीवोभावविशोधिं कृत्वा रागद्वेष निवारणं विधाय इहलोकादि सप्तभयानि निवार्यनिर्भयोभवति १७ क्षामणाकारिणासाधुनास्वाध्याय: कर्त्तव्यः अतस्तत्फलं प्रश्न पूर्वकमाह [सज्झाएणं भंते जीवे किं जणयइसिज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ १८] हे भदन्तस्वाध्यायेन पञ्चप्रकारेण जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य स्वाध्यायेन ज्ञानावरणीयं कर्मक्षपयति १८ तत्र पञ्चविधस्य स्वाध्यायस्य पृथक् फल प्रश्न पूर्वकमाह (वायणयाएणभन्ते जीवे किं जणयइ सुयस्स अणासायणाए वट्टइ सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणेतित्थ धम्मं अवलम्बइतित्थ धम्मं अवलम्बमाणो महानिज्जरे महापज्जवसाणेभवइ १८) हे पूज्यवाच

सूत्र

वणयाएणं पल्हायणभावं जणयइ। पल्हायणभाव मुवगएय सव्वपाणभूय जीवसत्तेसु मित्तीभावं उप्पाएइ मित्ती भाव मुवगएयावि जीवेभाव विसोहिं काऊण निब्भए भवइ १७॥ सज्झाएणं भंते जीवे किंजणयइ। सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ १८॥ वायणाएणं भंतेजीवे किंजणयइ। वायणाएणं निज्जरं जणयइ। सुयस्सय अणा

भाषा

उपगत: उल्लासभावं पुं हतोथको सर्वप्राणभूत जीव सत्वे षु सर्वप्राणभूत जीव सत्व मैत्रीभाव उत्पादयति एतला जीवने मित्रीभाव उपार्जे मैत्रीभाव उपगत: सन् मित्रीभाव पुहुतुथको जीव रागद्वेष वर्जनं कृत्वा निर्भय: सप्तभय रहितो भवति जिवारे जीव रागद्वेष वर्जे तिवारे भय रहित होइ १७ स्वाध्यायेन हे भगवन् जोव: किं जनयति: सज्झाय करतुथको जीव हे भगवन् किस्युं उपार्जे स्वाध्यायेन ज्ञाना वरणीयं शेषंच कर्म क्षपयति सज्झाय करतुं जीव ज्ञानावरणी कर्म खपावे १८ वाचनया हे भगवन् जीव किं जनयति वाचना देतोथको जीव हे भगवन् किस्यं उपार्जे वाचनया कर्म

मया वाचयतीति वाचनापाठना तया जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य वाचनया सिद्धान्तवाचनेन निर्जराकर्मशाटनं जनयति तथा पुनः श्रुतस्य अनाशातनायां प्रवर्त्तते तत्र च प्रवर्त्तमानोजीवस्तीर्थोगणधरस्तस्य धर्मं आचारं श्रुतप्रदायकस्तीर्थं धर्मस्तं आलम्बते ततस्तीर्थं धर्मं अवलम्ब्यमानस्तीर्थधर्मं आश्रयन् महानिर्जरोभवति महतोनिर्जरायस्य समहानिर्ज्जरो महाकर्मविध्वंसकोभवति पुनर्महापर्यवसानः महत् प्रशस्य मुक्तत्वात्पर्यवसानं अन्तः कर्मणोभवस्य वायस्य समहापर्यवसानश्च भवति मुक्तिं भवतीतिहार्दं १९) अथ गृहीतवाचनेन पुनः संशयादौ पुनः पृच्छनं प्रतिपृच्छति अतस्तत्फलं प्रश्नपूर्वकमाह (पडिपुच्छणयाएणभन्ते जीवे किं जणयइ पडिपुच्छणयाएणसुत्तत्थ तदुभयाइं विसोहेइ कंखामोहणिज्जं कम्मं वुच्छिन्दइ२०) हे स्वामिन् प्रतिपृच्छनया पूर्वाधीतस्य सूत्रादेः पुनः पृच्छनेन जीव किं जनयति प्रतिप्रच्छनया सूत्रार्थं तदुभयानिविशोधयति। सूत्रार्थयो उभय

सायणयाए वट्टइ सुयस्स अणासायणयाए वट्टमाणेतित्थ धम्मं अवलंबइ। तित्थधम्मं अवलंब माणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ १९ ॥ पडिपुच्छणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ पडिपुच्छणयाएणं सुत्तत्थ तदुभयाइं विसोहेइ।

निर्ज्जरा जनयति वाचना देतायको जीवकर्मनोजराव तथा श्रुतस्य आगमस्य अनाशातनया वर्त्तते सिद्धांतनी आशातना न करे अनाशातनावर्त्ते श्रुतस्य अनाशातनाया वर्त्तमान सिद्धांतनी अनाशातनाने विषे वर्त्ततुथको तीर्थं करो गणधरो वातस्य धर्म अवलंबते तीर्थ करनो गणधरनो धर्म अवलंबेछे तीर्थ धर्म॰ अवलंबमान तीर्थ करनु धर्म अवलंबतुथको जीव महानिर्ज्जरा कर्मोनो अंत करीति महा निर्जरा कर्मनो अंत करे १९ पूर्वं पठितस्य सूत्रादे पुनः २ पृच्छनं प्रतिपृच्छनं पहिला सूत्र भण्योछे वली फिरी पूछीजे ते प्रतिपृच्छनाकरतो जीवसुं उपार्जे प्रतिपृच्छनया पूछतोथको

निवार्यनिर्मलत्व विधत्ते तथाकांचामोहनीयं कर्म व्युच्छिनत्ति कांचाशब्देन सन्देहः कांचयासन्देहः कांचयासन्देहेनमोहनं कांचामोहनं तत्र भवं कांचामोहनीय एतत्कर्मविशेषेण अपनयति इदं इत्थं तत्वं अथवा इदं इत्थं नास्तिवा इद मम अध्ययनाय योग्यं वा इत्यादि घटनाकांचावाञ्छातद्रूप मेव मोहनीय कर्मअनभिग्रहिकमिथ्यात्वरूपं तत् विनाशयति २० अधीत्यपुनः सन्देहमपि पुनः प्रतिपृच्छनेतिनिराकृत्यपरावर्त्तनं गुणनं न क्रियते तदा सुष्टु अधीतमपि शास्त्र विस्मरति अतः परावर्त्तनेन यत् फलं स्यात्तदपि प्रश्न पूर्वमाह [परि यट्टणयाएण भंते जीवे किं जणयइ परियट्टणयाएण' वञ्जणाइ जणयइ वञ्जणलद्धि च उप्पाएइ २१) हे पूज्य हे स्वामिन् परिवर्त्तनयाशास्त्रस्य गुणनेन जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य परिवर्त्तनया जीवोव्यञ्जनानि अचराणि जनयति विस्मृतान्यचराण्यानयति तथा विषकर्मचयोपशमात् व्यञ्जनलब्धि व्यञ्जनसमुदाय रूपां पदलब्धिं पदानुसारिणी लब्धिं जनयति २१ सूत्रवत् अर्थस्यापि विस्मरण सम्भवात् सूत्रार्थयोश्चिन्तनं विधेय अतस्तत्फलमपि प्रश्नपूर्वमाह (अणुप्पेहाएण भंते जीवे किं जणयइ

सूत्र

कंखा मोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ २० ॥ परियट्टणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ। परियट्टणयाएणं वंजणाइं जणयइ। वंजण लद्धिं च उप्पाएइ ॥ २१ ॥ अणुप्पेहाएणं भंते जीवे किं जणयइ। अणुप्पेहाएणं आउयवज्जाओ सत्त

भाषा

जीव सूत्रार्थ तदुभयानि विशोधयति निर्मलत्वं करोति सूत्र अर्थ शुद्ध करे कांचा मोहनीय कर्म मीथ्यात्वरूपं व्यवच्छिनत्ति कंखा मोहनीएकर्म छेदे संदेहटाले २० परिवर्त्तनया गुणनरूपया भगवन् जीव किं जनयति सूत्र सिद्धांत गुणतुथको जीवसु उपार्जे पविवर्त्तनेनया गुणवेकरीने व्यंजनान्य चराणि जनयति व्यंजन अचर उपार्जे अचरलब्धिं च उत्पादयतीत्यर्थः अचरनी लब्धि उपार्जिई ऊतावलो गुणे २१ अनुप्रेचया चिंतनिकाया प्रकृष्ट

अणुप्पेहाएण आउयवज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ धणियबन्धण बद्धाओ सिढिलबन्धण बद्धाओपकरेइ दीहकालट्ठियाओरहस्स कालट्ठिय इया ओपकरेइ तिव्वाणुभावाओम दाणुभावाओपकरेइ बहुव एसग्गाओ अप्पपएसग्गाओपकरेइ आउय चण कम्म सियबन्धइ सियनोबन्धइ असायावेयणिज्ज चण कम्म नोभुज्जो २ उवचिणइ अणाइयचण अणवयग्ग दोहमद्ध चाउरन्त संसार कन्तार खिप्पामेववोइवयइ २२) हे भदन्तस्वामिन् अनुप्रेक्षया सूत्रार्थ चिन्तनिकया जीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य अनुप्रेक्षया कृत्वा जीव सप्तकर्म प्रकृतीर्ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय नाम गोत्रान्तराय रूपाणां सप्तानां कर्मणां प्रकृतय एकवत् चतु पञ्चाशत् प्रमाणा सप्तकर्म प्रकृतयस्ता सप्तकर्म प्रकृतीर्धणिय बधनबद्धा गाढबन्धनबद्धानिकाचितावद्धा शिथिल बन्धबद्धा प्रकरोतियतीहि अनुप्रेक्षा स्वाध्यायविशेष स तु मनस स्तवे य नियोजनाद्भवति सचानुप्रेक्षा स्वाध्यायोहि अभ्यन्तरतप तपसु निकाचित

सूत्र

कम्म प्पयडीओ धणिय बधण बद्धाओ सिढिल बधण बद्धाओ पकरेइ। दीहकालट्ठियाओरहस्स कालट्ठियाओ पकरेइ। तिव्वाणुभावाओ मंदाणु भावाओ पकरेइ। बहु पएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ। आउय चण कम्म

भाषा

शुभ भावहेतु तथा जीव किं जनयति अर्थं विचारतुथका जीवस्य उपाज अनुप्रेक्षया अर्थविचारतो थको आयुवर्ज्जा आयु कर्मवर्ज्जीने सप्त कर्म प्रकृतय सातकर्मनी प्रकृतिगाढ धनियत्ति गाढबधनेबद्धा गाढेबधने करी बांधेछे ते सिथिल बधन बद्धा प्रकरोति ते गाढि ढीलीकरे अपर दीर्घ काल स्थितिका ह्रस्वकालस्थितिका करोति घणाकालनीस्थिति बांधी राखे घणोकालकरे अपर तीव्रानुबद्धभावायत्तु स्थानिक रसरूपा प्रकृतो मदानु भाषा प्रकरोति जे कर्म तीव्रभावे बांधाछे ते मदभावे करे बहुकर्म प्रदेशान् अल्पकर्म प्रदेशाग्रान् करोति घणा प्रदेशछेइ कर्मना ते थोडा प्रदेशकरे

कर्मापि शिथिली कर्तुं समर्थं भवन्त्येव कथंभूता: ससकर्म प्रकृती आयुर्वर्ज्जा प्रकष्टभाव हेतुत्वेन आयुर्वर्ज्जयन्तीत्यायुर्वर्ज्जा: पुनर्हे शिष्य अनुप्रेक्षया कृत्वाजीव: स्ताएव कर्मप्रकृतो दीर्घकालस्थितिका शुभाध्यवसाय योगात् स्थितिखण्डानां अपहारेण ह्रस्वकालस्थितिका: प्रकरोति प्रचुरकालभो ग्यानि कर्माणि स्वल्पकालभोग्यानि करोति इत्यर्थ: पुनस्तीव्रानुभावा: कर्मप्रकृतीर्मन्दानुभावा: प्रकरोति तीव्र: उत्कटोनुभावो रसोयासान्ता स्तीव्रानु भावा इदृश्य: कर्मप्रकृतीर्मन्दो निर्बलोऽनुभावोया सान्ता मन्दानुभावा: प्रकरोति स्तादृश: प्रकर्षेण विदधाति पुनर्बहु प्रदेशाग्रा: अल्पप्रदेशाग्रा: प्रकरोति बहुप्रदेशाग्रं कर्म पुद्गलिक प्रमाणं या सान्ता बहुप्रदेशाग्रा एतादृशी: कर्मप्रकृतीरल्प प्रदेशाग्रा प्रकरोति इत्यनेन अनुप्रेक्षयाऽशुभसतु र्विधोपिबन्ध: प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्धोऽनुभागबन्ध: प्रदेशबन्ध शुभत्वेन परिणमतीत्यर्थ: अत्र च आयुर्वर्ज्जमित्युक्तं तत्तु एकस्मिन्भवे स कृदेव आंतर्मु हूर्त्तकाले एव आयुर्जीवो बध्नाति च पुन आयु: कर्मापि स्यात् बध्नातिस्यान्नबध्नाति संसारमध्ये तिष्ठति चेत्तर्हि अशुभमायुर्नबध्नाति जीवेन तृतीय भागादिशेषायुष्कैन आयु: कर्मबध्यते अन्यथा न बध्यते तेन आयु: कर्मबन्धे नियमोनोक्त इत्यनेन मुक्तिं व्रजति तदा आयुर्नबध्नातीत्युक्तं पुनरनुप्रेक्षया कृत्वा जीवोऽसाता वेदनीय कर्म शारीरादि दु:खहेतु च कर्म च शब्दादन्याशाऽशुभ प्रकृतीर्नोभूयोभूय उपचिनोति अत्र भूयो २ ग्रहणेन एवं ज्ञेयं कश्चिद्यति: प्रमादस्थानके प्रमादं भजेत तदा बध्नात्यपि इति हार्दं पुनरनुप्रेक्षया कृत्वा जीवश्चातुरन्तसंसारकत्तार क्षिप्रमेववीतीवयइ इति व्यति

सिय बंधइ सियनो बंधइ। असायावेयणिज्जं चणं कम्मं नो भुज्जो २ उवचिणाइ। अणाइयं चणं अणवदग्गं

अपर स्यात् कदाचित् आयुर्बध्नाति कदाचित् न बध्नाति किवारेकि आयु' कर्मबांधे किवारेकि नबांधे असाता वेदनीयच कर्मन भूयो२ बध्नाति वेदनीं कर्म

टीका

प्रभृति चत्वारश्चतुर्गति लक्षणाश्चत्वारोवयवायस्य तत् चातुरन्तं तदेव संसारकं तारं संसारारण्यं तत् शीघ्रं मुक्तं यति कीदृशं संसारारण्यं अनादिकं आदेरभावात् आदिरहितं पुनः कीदृशं संसारकान्तारं अनवदग्रं अनवत् अनागच्छन् अग्रं परिमाणं यस्य तत् अनवदग्रं अनन्तमित्यर्थं प्रवाहापेक्षया अनागतं पुनः कीदृशं दीर्घाध्वं दीर्घकालं दीर्घमध्वं इत्यत्र मकारोलाक्षणिक प्राकृतत्वात् २२ एवं अभ्यस्तशास्त्रेण धर्मकथाकर्तव्या ततो धर्मं कथाकर्त्ते किं फलं स्यात्तस्तत्फलमपि प्रश्न पूर्वमाह (धम्मकहाएणभन्ते जीवे किं जणयइ धम्मकहाएणं पवयणं पभावेइ पवयणपभावएण जीवे आगामिसस्सभद्दत्ताएकम्मं निबन्धइ २३) हे स्वामिन् धर्मकथया जीव किं जनयति गुरुराहहे शिष्य धर्मं कथयाधर्म व्याख्यानेन जीव प्रवचनं योसिद्धान्तं भगवद्वचनं प्रभावयति प्रकाशयति प्रवचनप्रभावक सिद्धान्तोद्दीपको जीव आगमिष्यद्भद्रतया उपलक्षितं कर्मनियधाति

सूत्र

दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं खिप्पामेव वीईवयइ २२॥ धम्म कहाएणं भंते जीवे किं जणयइ। धम्म कहाएणं पवयणं पभावेइ। पवयणं पभावेएणं। जीवे आगामिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ २३॥ सुयस्स आराहणयाएणं

भाषा

पारपार न आवे अनादिक अनवदग्र अनंत दीर्घत्व जेहनो आदिनथी आवेलो जेहनो अंत नथी चतुर्गतिक संसारका तार शिघ्रमेव व्युत्क्रमते चार गति रूप संसारकांतार अटवी ते शिघ्र उतावलो अतिक्रमे २२ धर्म कथनरूप व्याख्याता भगवन् जीव किं जनयति धर्मकथा कहतुथको जीववस्तु उपार्जे धर्म कथाया निर्जरा जनयति धर्मनी कथा करी कर्मनी निर्जरा ऊपजावे प्रवचन प्रभावयति सिद्धांतनी प्रभावनाकरे प्रवचन प्रभावनया जिन शासननी प्रभावनाइ करीने आगामिकाले भद्रतपाकर्म नियधाति आगलाभवने विषे भलां कर्मबांधे २३ श्रुतस्याराधनया हे भगवन् जीव कि

आगामिनिकालेभद्रत्वेन उपलक्षितं अर्थात् शुभं कर्मसमुपार्जयतीति भावः पञ्चविधस्वाध्यायरतेन श्रुतमाराधितं स्यादतस्तस्य फलं प्रश्नपूर्वकमाह २३ [सुयस्स आराहणयाएणभन्ते जीवे किं जणयइस्स यस्स आराहणया एणं अन्नाणखवेइ नयसं किलिस्सइ २४) हे भदन्त श्रुतस्य आराधनयाजीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य श्रुतस्य आराधनया सम्यग् आसेव नया अज्ञान क्षपयति विशिष्टतत्वावबोधस्य अवाप्तेः च पुनर्नसंक्लिश्यते रागद्वेषजनितं क्लेशं न भजतीति भावः २४ श्रुताराधना च एकाग्रमनः सन्निवेशनावत एवस्यादतस्तत्फलं प्रश्नपूर्वमाह (एगग्गमणसंनिवेसणयाएणंभंते जीवे किं जणयइ एगग्गमणसन्निवेसणयाएणं चित्तनिरोहंजणयइ २५) हे भदन्त हे स्वामिन् एक अग्रंप्रस्तावात् शुभं आलम्बन यस्येत्येकाग्रं एकाग्रं च तन्मनश्च एकाग्रमनस्तस्य सन्निवेसनास्थापनातया एकाग्रमन सन्निवेशनतया एकाग्रमनः सन्निवेशनयाशुभावलम्बनेचित्तस्य स्थिरीकरणेन जीवः किं फलं जनयति गुरुराह हे शिष्य एकाग्रमन सन्निवेसनयाचित्तनिरोधं जनयति चित्तस्य इतस्तत उन्मार्गप्रस्थितस्य निरोधोनियन्त्रणं चित्तनिरोधस्तं करोति

सूत्र भंते जीवे कि जणयइ। सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ नय संकिलिस्सइ २४ ॥ एगग्गमणा संनिवेसणयाएणं भंते जीवे किं जणयइ। एगग्गमणा संनिवेसणयाएणं चित्त निरोहं करेइ ॥ २५ ॥ संजमेणं भंते जीवे किं जणयइ।

भाषा जनयति हे भगवन् श्रुतनो आराधना करतु जीवस्यं उपार्जे श्रुतस्य आराधनया श्रुत सिद्धांतनी आराधनाइ करीने अज्ञानं क्षपयति अज्ञानने खपावे अपरं रागादिभिर्नक्लिश्यते वली रागादिके करी क्लेश न पामे २४ एकाग्रमन संनिवेशनया एकाग्रमन राखने करीने हे भगवन् जीवः किं जनयति हे भगवन् जीवस्यं कर्म उपार्जे एकाग्रमनः सन्निवेशनया एकाग्रमन ठामि राखवे करीने चित्तनिरोधं करोति उन्मार्गे जातो चित्तने रूंधे २५

इति भाव एव विधस्य साधो सयमादेरिष्टफलस्य प्राप्तिरिति नियमात् तत् फल प्रश्नपूर्वमाह [सञ्जमेणभंतेजीवे कि जणयइ सञ्जमेण अणण्हयन जणयइ २६) हे भगवन् सयमेन जीव कि जनयति गुरुराह सयमेन अन हस्क न विद्यते अघपाप यस्मिन् तत् अनहस्क तस्य भावोऽन हस्क त्व तज्जनयति सयमेन आश्रवनिरोध जनयति इत्यर्थ २६ सयमवान् साधुस्तपोनिरत स्यात् अतस्तत्फल प्रश्न पूर्वकमाह [तवेणभंतेजीवे कि जणयइ तवेणमोदाण जणयइ २७] हे भगवन् तपसाकत्वाजीव कि फल जनयति गुरुराह हे शिष्यतपसाजीवो व्यवदान जनयति पूर्वबद्धकर्मापगमनेन विशेषेण शुद्धि जनयति २७ व्यवदानेन कि फल स्यादतस्तत् फल प्रश्नपूर्वमाह [वोदाणेण भत जोवे कि जणयइ वोदाणेण अकिरिय जणयइ अकिरिया एभविता तओपच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुचइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमन्त करेइ २८] हे भदन्तव्य वदानेन जीव कि जनयति गुरुराह हे शिष्य

मूल

सजमेण अणण्हयत्त जणयइ २६ ॥ तवेण भंते जीवे कि जणयइ । तवेण वोदाण जणयइ २७ ॥ वोदाणेण भंते जीवे कि जणयइ वोदाणेण अकिरिय जणयइ । अकिरियाए भवित्ता तओपच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्व

भाषा

सयमन चारित्रे प हे भगवन् जीव कि जनयति हे भगवन् चारित्रथको जीवस्यु कर्म उपार्जे सयमन पचाश्रव विरत्या वर्तमान कर्म रहित त्व जनयति सयमपालतु जोव पांच आश्रवरुधे अनहस्कत्व अविद्यमानकर्मत्व बाधादायक कर्मनवाधे २६ तपसा हे भगवन् जीव कि जनयति तपकरतु जीवस्यु कर्मउपाजे तपसा,तपकरीने व्यवदान पूर्वबद्ध कर्म खपावति तपकरीने पाछिला बाध्या कर्म खपाव २७ व्यवदानेन व्यु परतक्रियाख्य शुक्लध्यान चतुर्थ भेद जनयति व्यवदाने करीने शुक्लध्यान उपार्जे व्यवदानेन अक्रियां जनयति व्यवदाने करीने अकिरया जे शुक्लध्यान ते चोथोपायो उपजावे अक्रियको

व्यपदानेन जीवोऽक्रिय जनयति न विद्यते क्रिया यस्मिन् स अक्रियस्तं अक्रियं व्यपरतक्रियाख्य शुक्लध्यानस्य चतुर्थं भेदं जनयति अक्रियकोभूत्वा व्युपरतक्रियाख्य शुक्लध्यानावर्त्तीभूत्वा ततः पश्चात् सिद्धिं व्रजति बुध्यति ज्ञानदर्शनाभ्यां सम्यक् वस्तु वेत्ताभवति मुच्यते संसारात् मुक्तो भवति परिनिर्वाति परिसमन्तात् निर्वाति कर्माग्निं विध्याप्यशीतलोभवति सर्वदुःखाना अन्तं करोति २८ संयमादिषु सत्स्वपि सुखशातेन एव प्रवर्त्तनीयं अतस्तत्फलमाह (सुहसाएणं भंते जीवेकिं जणयइ सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ अणुस्सुएण जीवेअणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ २९] हे भदन्त हे स्वामिन् सुखस्याविषयिकस्य शात स्पृहानिवारणेन अपनयनं सुखशातस्तेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य सुखशातेन अनुत्सुकत्वं जनयति विषयसुखेऽनुत्तालत्वं जनयति अनुत्सुकश्चजीवोऽनुकम्पते अग्रेतनं जीवं दृष्ट्वा अनुकम्पकोदयावान् भवतीत्यर्थः पुनरनु

सूत्र

दुक्खाणमंतं करेइ २८॥ सुहसाएणं भंते जीवे किं जणयइ सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ। अणुस्सुएणं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्त मोहणिज्जं कम्मं खवेइ २९॥ अप्पडिबद्धयाएणं भंते जीवे किंजणयइ।

भाषा

भूत्वा ततः पश्चात् अक्रियापणो पामिने तत पश्चात् सिझइ सीझति बूझइ बुझति बूझे मुच्यते मूकाइ परिनिर्वापयति सघला दुक्खनो अंतकरे सर्वदुक्खानां अंत करोति सर्वदुक्खनो नाश करे २८ सुखशातया हे भदंतः जीव किंजनयति विषय सुखनी इच्छा निवारतुं जीव हे पूज्यस्यो कर्म उपार्जे अनुत्सुकत्वं विषयसुख प्रतिनिस्पृहत्वं जनयति विषयसुखने विषे निस्पृहपणुं उपार्जे अनुत्सुकत्वेन जीवः अनुत्सुक पणे करी जीवः अनुकंप कपरहित अनुद्भट अनुद्भणो सन् विगतशोकाः विषयने विषे अनुत्सुक पणु जीव दयापाले शोकरहित हुवे चारित्रमोहनीय कर्म क्षपयति

ष्टाभिमानरहित शृङ्गारादिभावरहित स्यात् पुनस्तादृश सन् विगतशोक इह लौकिककार्यभ्रंशादावपि शोचन न कुरुते पुनस्तादृशोमोक्षार्थी शुभाध्यवसायवर्त्ती कषाय नोकषाय रूपचारित्रमोहनीय रूप कर्म क्षपयति २९ अथ सुख शातस्थितस्य चा प्रतिबद्धताभवति अतस्तत्फल प्रश्नपूर्वमाह [अप्पडिबद्धयाएणभन्तेजीवेकिं जणयइ अप्पडिबद्धयाएण निस्संगत्तं जणयइनिस्संगत्तेण जीवेएगेएगग्गचित्ते दियायराओय असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावियिहरइ ३०] हेभदन्त अप्रति बद्धतयामनसिनिरभिष्वङ्गतयाजीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्य अप्रति बद्धतयानि सङ्गत्व बाह्यासङ्गाभाव जनयति निःसङ्गत्व गतोजीव एकोरागादिरहित स्यात् तादृशश्च एकाग्रचित्तोधर्म्मे एव दृढ मनस्कः स्यात् पुनर्दिवादिवसेरात्रौ वा असज्जन् सदा बाह्यसङ्ग त्यजन् अप्रति बद्धोविहरति मासकल्पेन उद्यतविहारेणपर्यटतीति भाव ३० अप्रतिबद्धतायविविक्तशयनासनसेवकस्स्यादतस्तत्फलमाह [विवित्तसयणासणसेवणयाएणभंते जीवेकिं जणयइ विवित्तसयणासणसेवणयाएण जीवे चरित्तगुत्तिं जणयइ चरित्तगुत्तेण जीवेविवित्ताहारेदढचरित्ते एगन्तरएमोक्खभावपडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिनिज्जरेइ ३१) हे भदन्तविविक्तानि स्त्रीपशु पण्डकवर्जितानि शयनासनानि उपाश्रयस्थानानि यस्य स

अप्पडिबद्धयाएण निस्संगत्तं जणयइ। निस्संगत्तेण जीवे एगे एगग्गचित्ते दियाय राओय असज्जमाणे अप्पडिब

चारित्र मोहनी कर्मने खपावे २९ अप्रतिबद्धता हे भगवन् जीव किं जनयति अप्रतिबद्ध विहारकरतु थको जीव हे पूज्यसु कर्मउपार्जे अप्रतिबद्धता चा प्रतिबंधरहीत जीव निःसंगत्व जनयति निःसंगपणु उपाजे संगरहित होइ निश्चयपणो उपजावे निःसंगत्वेन जीव संगपणे रहित जीव एक रागद्वेष रहित एकाग्रचित्त एकलो रागद्वेष रहित दिवा वा रात्री वा दिवसे अथवा रात्री असजन् संगत्याग करतुथको अप्रतिबद्ध तथा विह

विविक्तशयनाशनस्तस्य भावो विवक्तशयनासनतातया स्त्रीपशु पण्डकादिरहितस्थिति निवासत्वेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य विविक्तशयना सनतयाजीवश्चरित्रे गुप्ति चारित्रस्य रचांजनयति गुप्तचरित्रश्जीवोविविक्तोविकृत्यादि शरीर पुष्टि कारकावीर्यवृद्धयादि कदस्तुरहित आहारोयस्य सविविक्ताहारस्तादृशः स्यात् तथा दृढं निश्चलं चरित्रं यस्य सदृढ चरित्रः पुनरत एव एकान्तेन निश्चयेनरक्त आसक्तः एकान्तरत संयमेन सावधानः स्यात् तथामोचभावेन मनसा प्रतिपन्नः आश्रितोमोचोमयासाध्यइति बुद्धिमान् चपकश्रेणिं प्रतिपद्याष्टविधकर्म्म ग्रन्थिं निर्जरयति चपयति ३१ विविक्तशयनाशनश्च विनिवर्त्तनावान् स्यात् अतोविनिवर्त्तनाया फलमाह (विणिवट्टणयाएणंभन्ते जीवे किं जणयइ विणिवट्टणयाएणं पावाणं

बद्धियावि विहरइ ३० ॥ विवित्त सयणासण सेवणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ। विवित्त सयणासण सेवणया एणं चरित्त गुत्तिं जणयइ चरित्त गुत्तेणं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए मोक्ख भावपडिवन्ने अट्ठ विहंकम्म गंठिं निज्जरेइ ३१ ॥ विणिवट्टणयाएणं भंते जीवे किंजणयइ विणिवट्टणयाएणं पावाणं कम्माणं अकरणयाए

रति अप्रतिबद्धपणे विहार करे संगरहितहोइ विविक्त सयनासन सेवनया हे भगवन् जीव किं जनयति निर्व्यंजन एकात उपाश्रयसेवतु जीव किस्युं कर्मउपार्जे विविक्त शयनासन तथा निरव्यंजण आसण सेवतु जीव चारित्रगुप्ति जनयति चारित्रगुप्ति करे चारित्रगुप्तकरतु जीव विधक्त स्त्री जनादि संगरहितो विहारो प्रतिबद्ध विहारो विविक्तप्रकारे अहारकरे चारित्रने विखे दृढ एकांतरतः मोचभावं आश्रितः सन् एकांते मोचने विखे मतिकीधीछे अष्टविध कर्मग्रंथि निर्जरयति आठ कर्मनी गांठिलांडे ३१ विनिवर्त्तनया विषयपराङ्मुखी हे भदतजीव किजनयति बिषयने

कम्माण अकरणयाए अभ्भुट्ठेइ पुव्वबद्धाणयनिज्जरणयाएत नियत्तेइ तओपच्छाचाउरन्तससारकन्तार विईवयइ २२) हे स्वामिन् विनिवर्त्तनयाविषयेभ्य आत्मन पराङ्मुखीभावेन जीव कि जनयति गुरुराह हे शिष्य विनिवर्त्तनया पापकर्मणा अकरणत्वेन सावद्यकर्मत्यागेन अभ्युत्तिष्टते धर्माय सावधानो भवति पूर्वबद्धानां पापकर्मणां निर्जरयानूतनपापकर्मणा अकरणत्वेन सावद्यकर्मत्यागेन अभ्युत्तिष्टते धर्माय सावधानो भवति पूर्वबद्धाना पापकर्मणां अनुपादनेन तत् पापकर्मनिवर्त्तयति निवारयति तत पश्चात् चातुरन्त ससारकान्तार वीइवयइ व्यति व्रजति व्युत्क्रामति इत्यर्थ २२ विषयविनि वृत्तश्च यतिसाधु सभोगप्रत्याख्यानवान् भवति अतस्तत्फलमाह [सभोगपञ्चक्खाण भते जीवे कि जणयइ सभोगपञ्चक्खाणेण आलम्बणाइखवेइ निरालम्ब णस्सय आयतट्ठियाजोगाभवन्ति सएण लाभेण सन्तुस्सइ परलाभनो आसाएइ नोतक्केइ नोपीहेइ नोपत्थेइ नोअभिलसइ परस्सलाभ अणासाएमाणे अतक्के माणे अपत्थेमाणे अणभिलसमाणे दोच सुहसिज्ज उवसम्पज्जित्ताण विहरेइ ३३] हे भदन्त सभोग प्रत्याख्यानेन एकमण्डल्या स्थित्वा आहारस्य करण

अभ्भुट्ठेइ पुव्वबद्धाणय निज्जरणयाए तनियत्तेइ तओ पच्छा चाउरत ससार कतारवीईवयइ २२॥ सभोग पञ्चक्खा णेण भंते जीवे कि जणयइ। सभोग पञ्चक्खाणेणं आलवणाइ खवेइ निरालवणस्सय आयतट्ठिया जोगा भवति

विषे पराङ्मुख थकांभ्यु मन उपाव्युं विनिवर्त्तनया विषय सेवारहित पापकर्मणां पापकर्मने अकरणतया कर्मरहितोभ्यु तिष्टेत् करे नवो पापकर्म रहित होइ पूर्व बद्धानां निर्जरणया जे पाछिल्यां कर्मबाध्याछेते खपावे तत पश्चात् चतुरत ससार कातार व्यतिव्रजति तिवार पछी चातुरत ससार कतार मेहना पारपामे २२ एक महलो भोजनकरण प्रत्याख्यानेन हे भगवन् जीव कि जनयति आपणो आण्यो आहार करे माडल माहि

सभोगस्तस्य प्रत्याख्यानेन उत्कृष्टत्वेन पृथक् आहारकरणेनजीवः किं फलं जनयति तदागुरुराह हे शिष्य सभोगप्रत्याख्यानेन आलम्बना चपयति यतोह
सभोगस्तस्य प्रत्याख्यानेन उत्कृष्टत्वेन पृथक् आहारकरणेनजीवः किं फलं जनयति ... ग्लानोऽस्मिरोग्यस्मि इत्यादिकथनानि चपयति धीरोभवति इत्यर्थः निरालम्बनस्य च आयतार्थाः योगाभवन्ति आयतो मोक्षः सएव अर्थः प्रयोजनं येषां ते आयतार्थाः एतादृशायेयोगाः मनोवाक्काययोगा भवन्ति स्वेनलाभेन सन्तुष्यति परस्य लाभं न आस्वादयति नवाञ्छयति ततश्च परस्य लाभन्नो तर्कयति मह्यं दास्यति मनसानविकल्पयति नोस्पृहयति परलाभे श्रद्धालुतया स्वस्य स्पृहान्न प्रकटीकरोति पुनः परस्य लाभं न प्रार्थयति मह्यन्देहीति नयाचते यत् इदं पुनर्नअभिलषति परस्य लालसापूर्वकं नवाञ्छति अथ परस्यलाभं अणासाएमाणे अनास्वादयन् अतर्कयन् अनीहमान अप्रार्थमान अनभिलषन् द्वितीयां सुखशय्यां उपसम्पद्यविहरति अपरेभ्यः साधुभ्यः पृथक् उपाश्रय अङ्गीकृत्य प्रवर्त्तते यादृशीस्थानाङ्गे उक्तास्ति ता प्रतिपद्यविहरति अतहि एतेशब्दाः एकार्थाः प्रतिपादिताः तत् अनेकदेशीयशिष्याणां प्रतिबोधनार्थं पर्यायत्वेन प्रतिपादिताः ३३ सभोग प्रत्याख्यानवतः साधोरुपधि प्रत्याख्यानं

सएणं लाभेणं संतुस्सइ । परलाभंनो आसाएइनोतक्केइ नोपीहेइनोपत्थेइनोअभिलसइ । परस्सलाभंअणासाएमाणे

जिमे नही जूदो जीमे जीवस्युं कर्मउपार्जे सभोग प्रत्याख्यानेन एकामण्डली पच्चखाणकरीने जीवते आलंबनानि चपयति एकलो विहार करतुग्लानादिक आलंबन खपावे निरालंबनस्य आयतार्थकाः व्यापाराभवंति निरालंबन आलंबनरहित आत्माना अर्थ तेहना व्यापार हुवे मनरहि स्वकेन लाभेन संतुष्यति आपणेज लाभे सतोषकरे परस्य लाभं न आसादयति परनो लाभनवांछे न तर्कयति न स्पृहयति स्पृहा न करे न प्रार्थतति न मांगेनो अभिलिखतिवांछे नही परस्यलाभं अनाशयन् आशाविषयमकुर्वन् पारकुं आण्युं अनलेतुथको अणवांछतुं थको अतर्कयन् अस्पृहयन् स्पृहा अण

सम्भवति भतस्तत् फल प्रश्नपूर्वमाह (उवहि पच्चक्खाणेणभंते जीवे कि जणयइ उवहि पच्चक्खाणेण अपलिमन्थ जणइ निरुवहिएण जीवेनिक्कखे मयहि मन्तरेणनसंकिलिस्सइ ३४) हे भदन्त उपधि प्रत्याख्यानेनरजोहरणमुखवस्त्रिकापात्रादिर्व्यतिरिक्तस्य उपधे प्रत्याख्यानेन उपधित्यागेन जीव कि उपार्जयति गुरुराह हे शिष्य उपधि प्रत्याख्यानेन अपरिमन्थ जनयति परिमन्थ स्वाध्यायव्याघात नपरिमन्थोऽपरिमन्थ स्वाध्यायादौ निरालस्य जनयति पुनर्निरुपधिकोनि परिग्रहोजीवो नि काङ्क्षोभवति वस्त्रादौ अभिलापरहित स्यादित्यर्थं तादृशोहि उपधिमन्तरेण उपधिविनानसंक्लिश्यते क्लेशं न प्राप्नोति स परिग्रहो क्लेशं प्राप्नोतीति भाव ३४ अथोपधि प्रत्याख्यानवान् साधुर्जिनकल्पादि एषणीयाहारस्य अलाभेन उपवास करोति आहारप्रत्याख्यान करोति तदा तत्फल मपि प्रश्नपूर्वमाह [आहारपच्चक्खाणेणभंते जीवे कि जणयइ आहारपक्खाणेण जीवियाससप्पओग वोच्छिन्दइ

अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसेमाणे दोच्च सुहसेज्जं उवसपज्जित्ताण विहरइ ३३॥ उवहिपच्चक्खाणेणं भंते जीवे किंजणयइ उवहि पच्चक्खाणेणं अपरिमंथं जणयइ निरुवहिएणं जीवे निक्कंखे उवहिं मंतरेणय नसंकिलिस्सइ

करतु थको अप्रार्थयन् अणमागतु थको अनभि लिखयन् अभिलाष अणकरतु थको द्वितीया सुखशय्या उपसंपद्य विरहति विचरे सुखशीला पडि वर्जीने विचरे ३३ उपधि प्रत्याख्याने नरजोहरणादिधारण तथा हे भदंतजीव कि जनयति उपधिनो पच्चक्खाण करे ओघामात्र राखे हे भगवन जीवस्यु कमउपार्जे उपधि प्रत्याख्यानो । उपधिने पच्चक्खाणे धरमो पगरणमेथी पचखाणमेथी वस्तुन्यूनराखे अपरिमथ स्वाध्यायादिनानि विघ्नरहित जनयति स्वाध्यायादिकनु निर्विघ्नपणु उपार्जे निरुपधिको जीव निरकांक्ष उपधिरहितो जीव वांछारहित होइ वस्त्रादि इच्छारहित सन् न च

जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दित्ताजीवे आहारमन्तरेणनसङ्किलिस्सइ ३५) हे भदन्त आहारस्य प्रत्याख्यानेन स दोषाहारत्यागेन उपवासादिनाजीवः किं फलं जनयति गुरुराह हे शिष्य आहार प्रत्याख्यानेन जीवोजीविताशासंस प्रयोगं व्यवच्छिनत्ति जीविते प्राणधारणे आशंसाअभिलाषस्तस्या प्रयोगोव्यापारोजीविताशासस प्रयोगस्त व्यवच्छिनत्तिनिवारयति जीविताशसारहितो मुनिर्नक्लेशभाक् स्यात् इति भावः ३५ एतत् प्रत्याख्यानत्रयं अपि कषायाभावे एव फलवत्वात् अत स्तत्फल प्रश्नपूर्वका माह [कसाय पच्चक्खाणेणं भन्ते जीवे किं जणयइ कसाय पच्चक्खाणेणं वीयराय भावं जणयइ वीयराय भाव पडिवन्नेयणं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ३६] हे स्वामिन् कषाय प्रत्याख्यानेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य कषाय प्रत्याख्यानेन क्रोधमानमायालोभत्यागेन जीवोवीतरागभावं जनयति प्रतिपन्नवीतरागभावोजीवः समसुखदुक्खो भवति ३६ निःकषायोपि योगप्रत्याख्यान

सूत्र

सइ ३४ ॥ आहारपच्चक्खाणेणं भंते जीवे किंजणयइ आहारपच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ जीविया संसप्पओगं वोच्छिंदित्ताजीवे आहारमंतरेणय नसं किलिस्सइ ३५॥ कसाय पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किं जणयइ।

भाषा

संक्लिस्यति वस्त्रादिकनी इच्छारहित जीव क्लेश नपामे ३४ आहार प्रत्याख्यानेन हे भदंतजीवः किंजनयति आहारने पच्चक्खाणे हे भगवन् जीवस्यु कर्मउपार्जे आहार प्रत्याख्यानेन आहारने पच्चक्खाणे जीविता ससप्रयोगव्यच्छिनत्ति जिवितव्यनी आस्या छांडिजीवीता शंसप्रयोगं व्युच्छेद्य जीवितव्यनी आस्या छोडीने जीवः आहारमंतरेण न संक्लिस्यति जीव संसारमांहि फिरतु आहार विनाश क्लेश न पामे आहार घणोनपामे ३५ कषाय प्रत्याख्यानेन हे भदंत जीव किं जनयति कषायनोपच्चक्खाणकरतु जीवस्यु कर्मउपार्जे कषाय प्रत्याख्यानेन कषायने प्रत्याख्याने जीव वीतरागभावं जनयति वितराग

याम् भवति यतस्तत् फल प्रश्नपूर्वकमाह [जोगपच्चक्खाणेणंभंते जीवे किं जणयइ जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तंजणयइ अजोगीणं जीवेनव कंम्मं नं बंधइ पुव्वबद्ध निज्जरेइ ३७] हे भगवन् योग प्रत्याख्यानेन जीव किं जनयति योगप्रत्याख्यानेन अयोगित्व जनयति शैलेशीभाव भजति अयोगोहि जीव चतुर्दशगुणस्थाने प्रवर्त्तमानोजीवोनव कर्म्मनबध्नाति पूर्वबद्ध कर्मनिर्जरयति क्षपयति इति भाव ३७ योग प्रत्याख्यानत शरीर प्रत्याख्यान करोति यतस्तत्फल प्रश्नपूर्वकमाह (सरीरपच्चक्खाणेणंभंतेजीवे किं जणयइ सरीरपच्चक्खाणेणं सिद्धाइ सयगुणत्तं निव्वत्तेइ सिद्धाइसय गुणसम्पन्नेयणं जीवेलोगग्गमुवगए परमसुहीभवइ ३८) हे भगवन् शरीरप्रत्याख्यानेन शरीरव्युत्सर्जनेन जीव किं लाभ जनयति गुरुराह शरीर

यसाय पच्चक्खाणेणं वीयराग भाव जणयइ। वीयराग भाव पडिवन्नेवियणं जीवे समसुह दुक्खे भवइ ३६॥ जोगपच्च क्खाणेणं भंतेजीवे किंजणयइ जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ अजोगीणं जीवे नवकम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं निज्ज रेइ ३७॥ सरीर पच्चक्खाणेणंभंते जीवे किं जणइ सरीर पच्चक्खाणेणं सिद्धाइ सय गुणत्तं निव्वत्तेइ। सिद्धाइसय

भाव उपार्जे वीतरागभाव प्रतिपन्नो जीव वीतरागभाव पडवज्योथको सम सुखदुःखेन भवति सुखे दुःखे सरिखो होये ३६ योगप्रत्याख्यानेन हे भगवन् जीव किं जनयति योगनु पच्चखाणकरतु हे पूज्यजीवस्य कर्मउपार्जे योग प्रत्याख्यानेन मनोवाकाय निरोधेनयोगनिरोध मनवचनकायाने रुंधवे करीने अयोगित्व जनयति अजोगीपणु पावे अयोगीन नवकर्मन बध्नाति अजोगीजीव नवु कर्म्म न बांधे पूर्वबद्ध कर्म्मनिर्जरयति पूर्वे बांध्या कर्मनीर्जरावे ३७ शरीर प्रत्याख्यानेन हे भदन्त जीव किं जनयति शरीरनो पच्चखाणकरतु जीवस्य कर्मउपार्जे शरीर प्रत्याख्यानेन शरीरनो पच्चखाणकरतु सिद्धातिशय

प्रत्याख्यानेन सिद्धातिशयगुणत्त्वं निर्वर्त्तयति कोर्थः सिद्धानां ये अतिशयगुणा सर्वोत् कृष्ट गुणास्तेषां भाव सिद्धातिशयगुणत्वं यतोहि सिद्धाननीला नलोहिता: नहारिद्रा॰ न शुक्लाइत्यादय एकत्रिंशद्गुणास्तत्त्वं प्राप्नोतीत्यर्थः प्राप्तसिद्धातिशय गुणोजीवो लोकाग्रं मोक्षं उपगतः सन् सुखीभवति: यद्यपि योगप्रत्याख्यानेन शरीरप्रत्याख्यान: समागत: तथापि मनोवाक्‌योग शरीरस्य प्राधान्यख्यापनार्थं पृथक् उपादान ३८ सम्भोगादिप्रत्याख्यानानि प्राय: साहाय्य प्रत्याख्यान युक्तस्य भवति अतस्तत्फलं प्रश्नपूर्वमाह (साहायपच्चक्खाणेणं भंते जीवे किं जणयइ सहायपच्चक्खाणेणं एगीभाव जणयइ एगी भावभूएयणं जीवेएगग्गभावेमाणे अप्पसद्दे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पकसाए अप्पतु मतुमे संयमबहुले सम्बरबहुले समाहिए आवि भवइ ३९) साहाया साहाय्यकारिण: सङ्घाटकस्य साधवस्तेषां प्रत्याख्यान साहाय्यप्रत्याख्यान तेन साहाय्य प्रत्याख्यानेन हे भगवन् जीव: किं फलं जनयति गुरुराह

सूत्र

गुणसंपन्नेयणं जीवे लोगग्ग मुवगए परम सुहीभवइ ३८ ॥ सहाय पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किंजणयइ। सहाय पच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ। एगीभाव भूएयणंजीवे एगग्गं भावे माणे अप्पसद्दे अप्पझंझे अप्पकलहे अप्पक

भाषा

गुणभावं तत्क्षणेन निवर्त्तयति सिद्धनागुण अतिशय भाव उपार्जे सिद्धातिशय गुणसपन्नो जीव॰ सिद्धनागुणपाम्याथका लोकाग्र मुक्तिपद मुपगत: जीव मुक्तिजाइ परमसुखी भवति परमसुखीहोवे ३८ सहाय कार्यत्यागेन हे भदत: सहायनुपच्चक्खाण करतुं जीव: किं जनयति जीवसुं कर्मउपार्जे सहाय प्रत्याख्यानेन एकीभावं जनयति सहायनुं पच्चक्खाण करतु एकीभावपणुं उपार्जे एकीभाव भूत: एकत्वं प्राप्तो जीव: एकीभाव छत्रोथको जीव एको आलवनाभावो पपत्तो अल्पशब्दो एकाकी साधु यल्पशब्दहुवे थोडो बोले विकल्परहित: वचन कलह अल्पहुवे अल्पकलह॰ थोडुं कलह अल्प कषाय:

हे शिष्य साहाय्य प्रत्याख्यानेन एकीभाव जनयति एकीभाव भूतश्चैकत्व प्राप्तोजीव एकाग्र भावयन् एकावल बनल चाभ्यसन् अल्प शब्द अल्पजल्पको भवति अल्पझझो भवति अविद्यमानझझोऽविद्यमानवाक कलहोभवतिपु नरल्पकषायीभवति अल्पकलहोऽविद्यमानरोष सूचकवचनोभवति तथाल्प तुम तुमोभवति अविद्यमानत्तु मन्तुम इति त्व त्व इति वाच्य यस्य स अल्प तुम तुम त्व एव एतत्कार्यं क्रतवान् त्व एवए सदा अकृत्यकारो वर्त्त सेइत्यादि प्रलपन न करोति पुन साहाय्य प्रत्याख्यानेन स यमबहुलोभवति स यर सप्तदशविध स बहुल प्रचुरोयस्य स सम्वरबहुलस्ताद्दृशो भवति स च पुन समाधि बहुलोभवति समाधिचित्तस्वास्थ्यन्तेन बहुल समाधि बहुल समाधि प्रधानभवति पुन समाहितश्चापि भवति ज्ञान दर्शनवाय भवतीत्यर्थ ३९ एव विध साधुरन्तेभक्त प्रत्याख्यानवान स्यात् अतस्तत्फल पृच्छपूर्वमाह [भत्तपच्चक्खाणेण भन्ते जीवे कि जणयइ भत्तपच्चक्खा णेण जीवे अणेगाइ भवसहस्साइ निरु भइ ४०] हे भदन्त भक्तप्रत्याख्यानेन आहारत्यागेनभक्त परिज्ञादिनाजीव कि फल जनयति गुरुराह हे शिष्य भक्त

साए अप्प तुमतुमे सजमबहुले सवरबहुले समाहिएयावि भवइ ३९ ॥ भत्तपाणपच्चक्खाणेण भ ते जीवे कि जण यइ भत्तपच्चक्खाणेण अणेगाइ भवसहस्साइ निरु भइ ४० ॥ सब्भाव पच्चक्खाणेण भ तेजीवे कि जणयइ । सब्भाव

कषाय अल्प हुवे अल्पतुमतुम तु कार रहित सजम बहुल सजमवधे सवरबहुल सवरबधे समाधि बहुल समाधिवधे समाधिना बहुलथापि बहुल समाधिना भवति समाधि घणो होवे ३९ भक्त प्रत्याख्यानेन हे भदत जीव कि जनयति भातनो पचक्खाण करतु जीव हे पूज्य स्यु कर्म उपार्जे भक्त प्रत्याख्यानेन् भातने पचक्खाणे अनेकानिभव सहस्राणि निरुणद्धि रु धे ४० सद्भाव प्रत्याख्यानेन हे भदत जीव कि जनयति सद्भावनोध्यानने विषे एक

प्रत्याख्यानेन जीवोऽनेकानि भवसहस्राणि निरुणद्धि ४० अथ सर्वप्रत्याख्यान प्रधानं सद्भावप्रत्याख्यानं अतस्तस्य फलं प्रश्नपूर्वकमाह [सभ्भाव पच्चक्खाणेणं भंते जीवे किं जणयइ सब्भायपच्चक्खाणेणं अणियट्टिं जणयइ अणियट्टिं पडिवन्ने य अणगारेचत्तारिकम्मंसेखवेइ तं जहा वेयणिज्जं १ आउयं २ नामं ३ गोयं ४ तओपच्छासिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमंतकरेइ ४१ हे भगवन् सद्भावेन प्रत्याख्यानं सद्भावप्रत्याख्यानं तेन सद्भावप्रत्याख्यानेन सर्वथा पुनः करणस्यासम्भवात् ईदृशेन विधिनाप्रत्याख्यानं करोति यथापुनःकरणीयं नस्यात्प्रत्यनेन सर्वप्रकारेणशैलेसीकारणं चतुर्दशगुणस्थाने वर्त्तनेन जीवः किं जनयतिगुरुराह हेशिष्यसद्भावप्रत्याख्यानेन अनिवृत्तिं जनयति शुक्लध्यानस्यचतुर्थं भेदं जनयतिअनिवृत्ति प्रतिपन्नःप्रतिपन्नानिवृत्तिरनगारश्चत्वारिकेवलिनःकर्मांशानिसन्तिकर्माणि भवोपग्राहीणिचपयतिअंशशब्दः सत्पर्यायोविद्यमानकर्माणि चपयति तानिकानि चत्वारिकर्माणि तद्यथा वेदनीय कर्म्म १

पच्चक्खाणेणं अणियट्टिंजणयइ अणियट्टिं पडिवन्नेय अणगारे चत्तारि केवलि कम्मंसे खवेइ तंजहा वेयणिज्जं आउयं नामं गोयं तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ। सव्व दुक्खाणं अंतं करेइ ॥४१॥ पडिरूवया

चित्त राखे सद्भाव प्रत्याख्यानेन खोटा स्वभावनो प्रचक्खाण करतुं अनिवृत्ति जनयति अनिवृत्ति पण पामे शुक्लध्याननो चोथोपायो उपजावे शुक्लध्यानस्य तुर्यभेदं अनिवृत्ति प्रपन्नोनगार चतुरः केवलकर्मान् स्वकर्माणि चपयति शुक्लध्याननो चोथोभेद प्राप्तथको केवली च्यार कर्म्म खपावे तद्यथा ते कहेछे वेदनीयं वेदनीकर्म्म १ आयुकर्म्म २ नामकर्म्म ३ गोत्रकर्म्म ४ एतानि चपयित्वा ततः पश्चात् सिध्यति बुध्यति मुच्ये परिनिर्वृतः सर्वदुःखाना मंतं करोति एच्यारेकर्म्म खपावीने पछे सीझे सुंकाये सर्वदुक्खनो अंत करे एच्यारे कर्म्म ४१ स्थविर कल्पिकादिसदृशवेष प्ररूपति रूप तया अधिकोप

आयु कर्म २ नामकर्म ३ गोत्रकर्म ४ एतेषां चतुर्णां अपि कर्मणां क्षय कृत्वा तत पश्चात् सिध्यति सकलार्थं साधयित्वासिद्धोभवति ततो बुध्यति तत्वज्ञोभवति मुच्यते कर्मभ्योमुक्तोभवति परिनिर्वाति परिसमन्तात् कर्मतापाभावात् शीतलीभवति पुन सर्वदुःखानां अन्त करोति ४१ एतत् प्रत्याख्यान प्रायसो प्रतिरूपताया एवस्यात् अत प्रतिरूपतायाः फलमाह [पडिरूवयाए ण भंते जीवे किंजणयइ पडिरूवयाएण लाघवं जणयइ लहु भूएण जीवे अप्पमत्ते पागडलिङ्गे पसत्थलिङ्गे विसुद्धसमत्ते सत्तसमिति समत्ते सव्वपाणभूय जीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे अप्पपडिलेहे जिइन्दिए विपुल तव समिति समन्नागए आविविहरइ ४२] हे भगवन् प्रतिरूप तया जीव किंफल जनयति प्रतिरूपताया कोर्थः प्रति इति स्थविरकल्पि सदृश रूप यस्य स प्रतिरूप तस्यभाव प्रतिरूपता तया स्थविरकल्पि साधुवेषधारित्वेन जीव किंजनयति गुरुराह हे शिष्य प्रतिरूप तया जीवो लघुत्व जनयति अधिकोपधित्यागेन लघुत्व उपार्जयतीत्यर्थः द्रव्यत उपध्यादिपरिग्रहत्यागेन भावतस्तु अप्रतिबद्ध विहारत्वेन लघुर्भवति लघुभूतश्च

एण भं ते जीवे किं जणयइ। पडिरूवयाएण लाघवियं जणयइ। लहुभूएजीवेअप्पमत्ते पागडलिंगेपसत्थलिंगेविसुद्ध सम्मत्ते सत्त समिइ सम्मत्ते सव्वपाण भूयजीवसत्तेसु वीसमणिज्ज रूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउल तव समिइ

गरणत्यागेन जीव किं जनयति स्थविरकल्पी चौदोपगरण राखतुथको जीव स्यु कर्मउपार्जे प्रतिरूप तया लाघवी भाव जनयति साधुनेआचारे रहतुथको लघूभूतो जीव हलूओ हूओ जीव अप्रमत्त स्थविरकल्पादि वेशेन प्रगट लिंग रजोहरणादिवान् अप्रमत्तथको स्थविरनो लिंग रजोहरणादि मा लिंग प्रगट राखे प्रशस्तलिंग ६ द्वादिकने पूजवाजोग्य विशुद्ध सम्यक्त्व परिपूर्ण समिति शुद्ध परिपूर्ण सम्यक्त्वसहित सत्वचलो साहस अने सुमति परि

जीवो अप्रमत्तोभवति ताद्दशः प्रकटलिङ्गः प्रकटंस्थविरकल्पादिवेषेण स्फुटं लिङ्गं चिह्नं यस्य स प्रकटलिङ्गः पुनः प्रशस्तलिङ्गः प्रशस्त समीचीनं रजोहरण मुखपोतिकादिकं यस्य स प्रशस्तलिङ्गः पुनर्विशुद्धसम्यक्त्वोनिर्मलसम्यक्तः पुनः सत्वसमिति समासः सत्वं च समितयश्च सत्वसमितयस्ताभिः समाप्तः सपूर्णोधैर्यसमिति युक्तइत्यर्थः ततः पुनः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेषु विश्वसनीयः विश्वासयोग्यो भवति पुनस्ताद्दशोऽल्प प्रतिलेखः प्रतिलेखनं प्रतिलेख. अल्प प्रतिलेखो यस्य सोऽल्प प्रतिलेखः अल्पोपकरणत्वात् अल्पप्रतिलेखनावान् भवतीत्यर्थ पुनः स जितेन्द्रियोभवति पुनर्विपुलतपः स मिति समन्वागत श्चापि विहरति विपुलानिविस्तीर्णानि तपांसि समितयश्च विपुलतपः समितयस्ताभिरन्वागतः सहित सन् विहरति द्वादशविधेन तपसासमिति गुप्ति सहितोभूलाग्रामनगरादौ विचरति ४२ प्रतिरूपतायां अपि वैया वृत्त्यं वात्तव्यं अतस्तत्फलं आह (वेया वच्चे णभंतेजीवे किं जणयइ वेयावच्चे णन्तित्थयरनामगोय कम्म निबन्धे इ ४३) हे भगवन् वैया वृत्त्येन आहारादि साहाय्येनजीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य वैयावृत्त्येनतीर्थकर् नामगोत्र कर्म निबध्नाति वैयावृत्त्यं कुर्व्वन् तीर्थकरनामगोत्रं कर्मबध्नाति इत्यर्थ. ४३ अथ वैयावृत्यवान् सर्वगुणभाक् स्यात् अतः सर्वगुणसम्पन्नतायाः

सूत्र

समन्नागएयावि भवइ ४२ ॥ वेयावच्चे णं भंते जीवे किंजणयइ वेयावच्चे णं तित्थयरनामगोयं कम्मं निबंधइ ४३ ॥

भाषा

पूर्ण धरे सर्वप्राणभूतजीवसत्वेषु सर्वप्राणभूत जीवने विश्वसनीयरूपः विश्वासनो स्थान कहीइ अल्पोपधित्वात् उपगरण थोडाराखे तेणे पडिलेहण थोडोकरे जितेंद्रिय इंद्रीजीत्योछे विपुलतपः समिति सत्वागतो युक्तः स्यात् विहरति विस्तीर्ण तपकरे पांच सुमिति सहितथको विचरे ४२ वैया वृत्त्येन हे भदंतः जीव. किं जनयति वेयावच्चनो करणहार जीवस्युं कर्मउपार्जे वैयावृत्त्ये न वेयावच्च करीने तीर्थ करनाम गोत्रं कर्मने बध्नाति वेयावच्च

फल प्रश्नपूर्व्वकमाह (सव्वगुणसम्पन्नयाएणभंतेजीवे किं जणयइ सव्वगुणसम्पन्नयाएण अपुणरावत्ति जणयइ अपुणरावत्ति पत्तएयण जीये सारीरमाणसाण दुक्खाण नोभागीभवइ ४४) हे भदन्तस्वामिन् सर्वगुणसम्पन्नतयाजीव किं जनयति सर्वे च ते गुणाय सर्वगुणा ज्ञानदर्शनचारित्रादयस्ते सम्पन्नता सहितत्व सर्व्व गुणसम्पन्नतातया सवगुणसम्पन्नतातया सर्वगुणसम्पन्नतया किं फल उत्पादयति गुरुराह हे शिष्य सर्वगुणसम्पन्नतयाजीवोऽपुनरावृत्ति जनयति मुक्तिं उपार्ज्जयति अपुनरावृत्ति प्राप्तोजीव प्राप्ता अपुनरावृत्ति प्राप्तमोक्षोजीव शरीरमानसाना दुक्खाना विभागीनोभवति४४ सर्वगुण सम्पन्न तयावीतरागोभवति अतस्तत्फल प्रश्नपूर्वकमाह (वीयरागयाएण भंते जीवे किंजणयइ वीयरागयाएणनेहाणुबन्धणाणिय तण्हाणुबन्धणाणिय वोच्छिन्दइ मणुन्नामणुन्नेसुसद्दफरिसरसरूवगन्धेसु चेव विरज्जइ ४५) हे भगवन् वीतरागतयाजीव किं जनयति वीतोगतोरागोयस्मात्सवीतरागस्तस्य भावोवीत

सव्वगुण सपन्नयाएण भंते जीवे किंजणयइ सव्वगुण सपन्नयाएण अपुणरावत्ति यजणयइ। अपुणरावत्ति पत्तएयण जीवे सारीरमाणसाण दुक्खाण नो भागीभवइ ४४ ॥ वीयरागयाएण भंते जीवे किंजणयइ वीयरागयाएण

करतु तीर्थ कर नाम गोत्र कर्म बांधे ४३ सर्वगुणसपन्न तया हे भदंत हे पूज्यजिको जीव सर्वगुणेकरी सपूर्णहोइ ते जीव भगयन् स्यु कर्मउपार्जे सर्वगुण सपन्नतया सवगुणेकरी सपूर्णताइ अपुनरावृत्ति मुक्ति जनयति अपुणरावृत्ति मुक्तिप्राप्तिहोइ अपुनरावृत्ति प्राप्तो जीव शारीर मानसाना रोगादिनां मानसाना दुक्खाना न भोक्ता भवति शरीरनारोग मननादु ख तेहनो भोगवणहार न हुये ४४ वीतरागया रागद्वेष रहित रूपया हे भदंत जीव किं जनयति रागद्वेष रहित हे पूज्य जीवस्यु कर्मउपार्जे वीतरागतया वीतरागपणे स्नेहानुबधनानि स्नेहनावधण तृष्णानुबधनादीनि निराकरोति मननी

रागतातयावीतरागतयारागद्वेषाभावेन किं फलं जनयति गुरुराह हे शिष्य वीतरागतयाश्नेहाऽनुबन्धनानि स्नेहस्यअनुकूलानिबन्धनानि पुत्रमित्रकलत्रादिषु प्रेमपाशान् तथातृष्णानुबन्धनानिद्रव्यादिषुआशापाशान्व्यवच्छिनत्ति विशेषेणत्रोटयति पुनर्मनोज्ञेषु मनोहरेषुचपुनःअमनोज्ञेषुअमनोहरेषु शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेभ्योविरज्यनेविषयेभ्योविरक्तोभवतीति भावः४५ वीतरागतायुक्तस्तु श्रामण्य सयुक्तोभवति श्रामण्यधर्मेचक्षान्तिरेव आद्याअतस्तत्फल प्रश्नपूर्वकमाह (खन्तिएणंभंते जीवे किं जणयइ खन्तिएणं परीसहेजिणयइ ४६) हे भगवन् क्षान्त्याक्षमयाक्षत्वाजीवः किं फलं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्यक्षमया परीषहान् जयति ४६ अथ पुनः क्षमावान् मुक्तिं युक्तोभवतीति निर्लोभीभवति अतस्तत्फल प्रश्न पूर्वकमाह (मुत्तीएणंभंतेजीवे किं जणयइ मुत्तीएणं अकिञ्चणंजणयइ अकिञ्चणेणंजीवे अत्थलोभाण पुरिसाण अपत्थणिज्जे भवइ ४७) हे भगवन् मुक्त्यानिर्लोभत्वेनजीवः किं जनयतिगुरुराह हे शिष्य मुक्त्या अकिञ्चनत्वं निःपरिग्रहत्वं उत्पादयति अकिञ्चनत्वेनजीवोऽर्थलोभानां अप्रार्थनीयोभवति कोर्थः योऽकिञ्चनोनिः परिग्रहो भवति स पुरुषोऽर्थलोभो

सूत्र

नेहाणुबंधणाणिय तन्हाणु बंधणाणिय वोच्छिंदइ मणुन्ना मणुन्नेसु सद्दफरिस रसरूव गंधेसु चेव विरज्जइ ४५ ॥
खंतीएणंभंते जीवे किंजणयइ खंतीएणं परीसहे जणयइ ४६ ॥ मुत्तीएणं भंतेजीवे किंजणयइ । मुत्तीएणं अकिं

भाषा

तृष्णानिराकरे दूरिकरे मनोज्ञामनोज्ञेषु भला भूंडा शब्द १ भलासब्द स्पर्शफरस २ रस ३ रूप ४ गंधेपु गंधने विषे ५ विरक्तो भवति रोगरहित होइ ४५ क्षांत्या हे भदंतजीव किं जनयति क्षमाकरतु जीव हे भगवन् स्युं कर्म उपार्जे क्षांत्यापरिषहादिन् जयति क्षमाइं करीने परिसहजीते ४६ निर्लोभतया हे भदंतजीव• किं जनयति निर्लोभपणे जीव किस्युं कर्म उपार्जे मुक्तोनिर्लोभपणे अकिंचनतां जनयति अकिंचन पणुं पामे अकिंचनो जीवः

येषां तेऽर्थलोभा द्रव्यार्थिनश्चौरादय पुरुषास्तेषां अप्रार्थनीयस्तैरवाञ्छनीयश्चौरादयोहि निपरिग्रह किं कुर्वन्ति परिग्रहवता चौरेभ्योभीति स्यात्४७ लोभेसतिमायास्यात् लोभाऽभावेमायाऽभाव मायाया अभावे आर्जव सरलत्व स्यात् अतस्तत्फल प्रश्न पूर्वकमाह (अज्जवयाएण भंतेजीवे किं जणयइ अज्जवयाएण काउज्ज य भाउज्जुययभासुज्जु,यय अविसम्वादय जणयइ अविसम्वादणसम्पन्नेण जीवेधम्मस्साराहएभवइ ४८] हे भदन्त आर्जवेनमाया परिहारेणजीव किं फल जणयति ऋजोर्भाव आर्जवन्तेन किं फलमुत्पादयति तदा गुरुराह हे शिष्य आर्जवेन कायर्जुकताभावर्जुकताभाषर्जुकता अविसम्वादना जनयति ऋजुरेवऋजुक कायेन ऋजुक कायर्जुकस्तस्य भाव कायर्जुकतावक्रशरीरभ्रूविकारादिरहितत्वेन सरलतामुत्पादयति एव भावविचाभिप्रायस्तस्य ऋजुकताभावर्जुकताता भावर्जुकता चित्तसरलतां उत्पादयति पुनर्भाषाया वचनस्य ऋजुकताभाषर्जुकता वचनसरलत्वं उत्पादयति पुनरपि सम्वादन परजोवानां अवचनत्व जनयति प्रामाऽविसम्वाद कायेनवाचा मनसाप्रामाऽविसम्वाद परवञ्चकतारहितोजीवो धर्मस्य

चण जणयइ। अकिंचणेय जीवे अत्थ लोलाणपुरिसाण अपत्थणिज्जे भवइ ४७॥ अज्जवयाएण भंते जीवे किंजणयइ अज्जवयाएण काउज्जुयय भावुज्जुयय भासुज्जुयय। अविसंवायणजणयइ अविसं वायण सपन्नएयणं जीवे धम्मस्स

अकिंचन अर्थरहित जीव अर्थलोभादीनां चौरादीनां अर्थनालोभी चौरादिक पुरुषाना अप्रार्थनीयो अनभिलिखनीयो भवति पुरुषाने अप्रार्थनीक अभिलिखणीकहोइ ४७ आजवेन हे भदंतजीव किं जनयति सरलपणेजीव हे पूज्य किसु कर्मउपार्जे आर्जवेन सरलपणेकरीने काय प्रांजलिपुट कायानो सरलपणो भाषा सरलतां भाषानु सरलपण भावाजकतां अनेभावनु सरलपण अविसंवादन पर विप्रतारण वर्जन जनयति आगल्याने विप्रतारे

वीतरागधर्मस्याराधकोभवति ४८ एव आर्जवगुणयुक्तेनमार्दव विधेय अतोमार्दवफल प्रश्नपूर्वकमाह मार्दवं हि मानत्यागरूपं तत्तु विनयस्य कारणं धर्मेहि विनयस्य प्राधान्यं [मद्दवयाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ मद्दवयाएणं जीवे अणुस्सियत्तं जणयइ अणुस्सियत्तेणं जीवेमिउमद्दवसम्पन्ने अट्ठमय ट्ठाणाइंनिट्ठवेइ ४९] हे स्वामिन् मार्दवेनकोमलपरिणामेनजीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य मार्दवेनमानपरिहारेणजीवः अनुत्सृतत्वं अनहंकारित्वं अहङ्काराभावं जनयति अनुत्सृतत्वेन अहङ्काराभावेन जीवोमृदुकोमलः सकलभव्यजनमनसन्तोषहेतुत्वात् द्रव्यतोभावतश्च सरलोऽवनमनशीलः मृदोर्भावोमार्दवं मृदुगुणमार्दवगुणयोरयभेदं अवसरे अवनमन मृदुगुण· यत्सर्वदाकोमलत्वभवनं तत् मार्दव यद्वाकायेन मानत्यागोमृदुगुणः मनसामानपरिहारोमार्दव ताभ्यां सम्पन्नोभवति संयुक्तोभवति तादृशः सन् अष्टौमदस्थानानि निष्टापयतिक्षपयति ४९ एतत् प्राय. सत्यसंस्थितस्य

सूत्र

आराहए भवइ ४८ ॥ मद्दवयाएणं भंते जीवे किंजणयइ मद्दवयाएणं जीवे अणुस्सियत्तं जणयइ अणुस्सियत्तेणं जीवे मिउमद्दव संपन्ने अट्ठमयट्ठाणाइं निट्ठवेइ ४९ ॥ भावसच्चेणं भंते जीवे किंजणयइ भाव सच्चेणं भावविसोहिंजणयइ

भाषा

नहो पर जोवने ठगेनहो परस्युं हे पराये नहो अविसंवादन संपन्नो जीवः धर्मस्य आराधको भवति धर्मनो आराधकहुवे ४८ मार्दवत्वेन हे भदंत जीवः किं जनयति अहंकार रहित जीव हे पूज्यस्युं फल उपार्जे मार्दवत्वेन सुकोमल त्वं मृदुजीवः कषायरहित जीव· अनुत्सुकत्वं जनयति अनुत्सुकपणुं उपार्जे अनुत्सुकत्वेन जीव· उत्सुकपणे रहित जीवः मृदुमार्दव संपन्नः मृदुपणुं प्रासहूओधको अष्टमदस्थानानि निष्टापयति क्षपयति आठमद स्थानक खपावे ४९ भावसत्येन हे भदंत जीवः किं जनयति साचेभावे वर्त्ततं जीवस्युं फल उपार्जे सत्यभावे साचेभावे विशुद्धिभावे शुद्धभावे करोने

उ टीका
अ २८
८६१

साधोभवति सत्येषु भावसत्यमेव प्राधान्य अतस्तत्फल प्रश्नपूर्वकमाह [भाव सच्चे ण भन्ते जीवे कि जणयइ भावसच्चे ण भावविसोहि जणयइ भावविसो हीएवट्टमाणे जीवे अरह तपन्नत्तस्सधम्मस्स आराहणयाए अभुट्ठेइ अरह तपन्नत्तस्सधम्मस्स आराहणयाएण अभुट्ठित्तापरलोगस्स धम्मस्स आराहए भवइ ५] हे भदन्तभावसत्येनभावेअभ्यन्तरात्मनिसत्य भावसत्य तेन भावसत्येनजीव कि फल जनयति गुरुराह हे शिष्य भाव सत्येन जीवो भाव विशुद्धि जनयतिनिर्मलाध्यवसाय जनयति भावविशुद्धो वर्त्तमानोऽर्हत् प्रज्ञप्तस्य श्रीजिनप्रणीतस्य धर्मस्य आराधनायैअभ्युत्तिष्टति सावधानो भवति अर्हत् प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य आराधनायै अभ्युत्थायसावधानोभूत्वापरलोके धर्मस्याराधकोभवति परलोके सम्यगति प्राप्यधर्म आराधयतीत्यर्थ ५० भावसत्य च करणसत्ययुक्त सम्भवति अत करणसत्यस्य फल प्रश्नपूर्वकमाह [करणसच्चे ण भंते जीवे कि जणयइ करणसच्चे ण करणसत्ति जणयइ करणसच्चेवट्टमाणेजहावाईतहाकारो यावि भवइ ५१] हे भदन्तकरणसत्येनजीव कि जनयति करणप्रतिलेखनादि क्रियाया सत्य यथोक्तविधिना आराधन

सूत्र

भावविसोहिए वट्टमाणे जीवे अरिहत पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाएण अभुट्ठेइ अरहत पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाएण अभुट्ठित्ता परलोगस्स धम्मस्स आराहए भवइ ५० ॥ करणसच्चे ण भते जीवे किजणयइ करणसच्चे ण करण

भाषा

जनयति भाव विशुद्धतायवर्त्तमानो जीव भाव विशुद्धि वर्त्ततो जीव अर्हत् प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य केवलीना भाष्याधर्मनी आराधनया अभ्युत्तिष्टति तेहने आराध नाभणि उठे उठीने अर्हत्प्रज्ञप्तस्य अरिहतना कह्या धर्मने आराधन तया अभ्युत्थाय आराधवा भणी ऊठीने साधू परलोकस्य आराधको भवति परभवनो आराधकएवे ५० क्रियासत्ये वर्त्तमान भदतजीव किजनयति साचो क्रीयाकरतु जीव हे पूज्य किस्यु कर्म उपार्जे प्रतिलेखनयादि

करणसत्यं तेन करणसत्येन जीवः किं फलमुपार्ज्जयति तदा गुरुराह हे शिष्यकरणसत्येनकरणशक्तिं क्रियासामर्थ्यं जनयति पुन. करणसत्ये वर्त्तमानो जीवोयथावादीतथाकारीभवति क्रियासत्यः पुमान् यादृशं सूत्रार्थं पठति तादृशं क्रियाकलाप वदति तथैवकरोति इति भाव. ५१ एवं विधस्य योग सत्यमपि स्यात् अतो योगसत्यस्य फलं प्रश्नपूर्वमाह (जोग सच्चे णं भंते जीवे किं जणयइ जोगसच्चे णं जोगविसोहइ ५२) हे भदन्तयोगसत्येनमनो वाक्काययोगानां सत्यं योगसत्यं तेन योगसत्येन मनोवाक्कायसाफल्येन जीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य योगसत्येन योगान् विशोधयति मनोवाक् काययोगान् विशदीकरोति कर्मबन्धाभावान्निर्दोषान् करोतीति भावः ५२ इद सत्यं हि गुप्ति सहितस्य भवति गुप्तीनां आदौमनोगुप्ति रस्ति तस्मात् पूर्वं तस्याः फलं प्रश्नपूर्वकमाह (मणगुत्तयाएणं भंते जीवे किं जणयइ मणगुत्तयाएणं जीवेएगग्ग जणयइ एगग्गचित्ते णं जीवेमणगुत्ते सञ्जमाराहए भवइ ५३] हे भदन्त मनोगुप्त तया जीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य मनोगुप्ततया जीव एकाग्रं धर्मे एकाग्रत्वं उपार्ज्ज

सच्चं जणयइ करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारीयावि भवइ ५१ ॥ जोगसच्चे णं भंते जीवे किंजणयइ जोगसच्चे णं जोगे विसोहेइ ५२ ॥ मणगुत्तयाएणं भंते जीवे किं जणयइ मणगुत्तयाएणं एगग्गं जणयइ एगग्ग

यथोक्तं जनयति साची क्रीयावारतु करण सत्तरी पामे करणसत्ये वर्त्तमानो जीवः साची क्रियाने विषे वर्त्ततो जीव यथोक्त क्रियाकथनशीलः तथा वादीतथैव करणशीली भवति जेहवो कहे तेहवो पालतो करणसत्तरी आराधे ५१ योगसत्येन हे भदंतजीवः किजनयति मनवचनकाया सूधां प्रव र्त्तावतु जीवस्य, फल उपार्जे योगान् मनोवाक्कायरूपान् निर्दोषान् करोति योग मनवचनकायाइं करीने निर्दोष करे ५२ मनः संवरेण मनोगुप्ति तया

स टीका अ ८ ८,५

यति एकाग्रचित्तोजोयोगुप्तमन सन् संयमस्य आराधक पालकोभवति ५३ अथवचोगुप्ति फलमाह [वयगुत्तयाएणभंते जीवे किं जणयइ वइ गुत्तयाएण निव्विकारत्त जणयइ निव्विकारेण जीवेवइगुत्ते अज्झप्पजोगसाहणजुत्ते आविभवइ ५४] हे भदन्तवचो गुप्ततयाजीव किं फल जनयति गुरुराह हे शिष्य वचो गुप्तनयानिर्विकारित्व विरागभाव उत्पादयतिनिर्विकारीजीव वाग्गुप्त शुभवचनस्य सर्वविकथात्यागात् वाग्निरोधोवाग्गुप्तिमान् सन् अध्यात्मयोगसाधनयुक्तश्चापि भवति आत्मनि अधिष्ठितोति अध्यात्म मनस्तस्य योगा शुभव्यापाराधर्मध्यानादय तेषा साधन एकाग्र अध्यात्मयोग मनः तेन युक्त प्रशमभाव युक्तश्चाप्यगापि स्यात् इत्यर्थं ५४ अथ तृतीयगुप्ते फल प्रश्नपूर्वमाह (काय गुत्तयाएणभंते जीवे किं जणयइ कायगुत्तयाएण संवरं जणयइ संवरेण कायगुत्ते पुणोपावासवनिरोहकरेइ ५५) हे भदन्तकायगुप्ततयाजीव किं जनयति गुरुराह हे शिष्यकाय

मूल

चित्तेणंजीवे मणगुत्तिसंजमाराहए भवइ ५३ ॥ वइगुत्तयाएणंभंते जीवे किंजणयइ । वइगुत्तयाएण निव्विकारत्त जणयइ । निव्विकारेणंजीवे वइगुत्ते अज्झप्प जोग साहणजुत्ते यावि भवइ ५४॥ कायगुत्तयाएणंभंते जीवेकिंजणयइ । कायगुत्तयाएण

भाषा

हे भगवन् जीव किं जनयति मन आपणो सुधो प्रवर्त्तावतु किस्युं कर्म उपार्जे मन गुप्ति तयाजीव मनवसिकीयांथका एकाग्रभाव जनयति एकाग्रभाव उपजाये एकाग्रचित्तोजीव शुभाध्यवसायचित्त सन् संयमाराधको भवति एकाग्रचित्त थको जीव सत्तरे भेदे संयमनो आराधकहोइ ५३ वाग्गुप्त तया भगवन्जीव किं जनयति वचनगुप्तपणे भगवन् जीव किस्युं फल उपार्जे वाग्गुप्ति तयानिर्विकार जनयति वचनगुप्तपणे करिने विकारपणे रहित होइ निर्विकारेण निर्विकारपणे जीव वाग्गुप्त वचनगुप्ति अध्यात्मयोगसाधनाय युक्तश्चापि भवति भला अध्यवसायने रूंधे ५४ कायगुप्ति हे भदन्त

गुप्ततयाजीवः सम्वर जनयति सम्वरेणगुप्तकाय पुनः पापाश्रवनिरोधं करोति ५५ अथ गुप्तित्रय धारकस्य साधोर्मनोवाक्कायाना समाधारणाभवति अतस्तत्फल प्रश्नपूर्वकमाह [मणसमाहारणयाएणंभंते जीवे किं जणयइ मणसमाहारणयाएणं एगग्गं जणयइ एगग्गं जणइत्तानाणपज्जवेजणयइनाणपज्ज वेजणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइमिच्छत्तं च निज्जरेइ ५६) हे भदन्तमनः समाधारणयाजीवः किं जनयति मनसः सम्यक् प्रकारेण आमर्यादयासिद्धान्तोक्त मार्गअभिव्याप्यवाधारणास्थापनं मनः समाधारणातयाजीव किं फलमुत्पादयति तदा गुरुराह हे शिष्यमन समाधारणयामनसोमर्यादायारचणेन एकाग्रं धर्मस्थैर्यं जनयति धर्मे एकाग्र्यं उत्पाद्यज्ञानपर्यवान् जनयति विशिष्टान् मतिज्ञानश्रुतज्ञानादीनां पर्य्यायान् तत्वा वा बोधरूपान् विशेषान्

सूत्र

संवर जणयइ। संवरेणंकायगुत्ते पुणोपावासावनिरोहंकरेइ ५५॥ मणसमाहारणयाएणं भंतेजीवे किंजणयइ। मणसमाहारणयाएणं एगग्गं जणयइएगग्गं जणयइत्तानाणपज्जवे जणयइनाणपज्जवे जणयइत्तासम्मत्तंविसोहेइमिच्छत्तं चणिज्जरेइ ५६॥

भाषा

कायगुप्तपणे राखतुं जोव· किंजनयति जीवस्यु फलउपार्जे कायगुप्ता कायानी गुप्ति अशुभयोग निरुंधयति संवरजोगउपजावे सवरेणजीवः कायगुप्तःसन् पापाश्रवनिरोधं करोति कायगुप्तथको जीव पापाश्रवने रुंधे ५५ मनः समाधान तया मनने समाधान पणे हे भदंतजीवः किंजनयति हे पूज्यजीवस्यु फलउपार्जे मनःसमाधांन तया विशिष्टतर मनसावधान पणे राखतु एकाग्रं जनयति एकाग्र पणुं पामे एकाग्रं जनयित्वा एकाग्रपणुं उपजावी ज्ञानपर्यायान् जनयति ज्ञानना पर्यायने उपार्जे ज्ञानपर्यायान् उत्पाद्य ज्ञानना पर्यायने उपजावीने सम्यक्त्वं विशोधयति सम्यक्त्वने निर्मल करे मिथ्यात्वं च चपयति मिथ्यात्वने खपावे ५६ वाक्समाधारण तया स्वाध्याये स्थापनरूपया हे भगवन् वचनसमाधान राखतां जीवः किं जनयति जीवस्यु

जनयति पुन सम्यक्त विशुद्धि जनयति मिथ्यात्व च निर्जरयति निवारयति ५६ वच समाधारणाया अपि फलमाह (वय समाहरणयाएण भंते जीवे किं जणयइ वयसमाहारणयाएण वयसमाहरणदंसण पज्जवे विसोहेइ वयसमाहरणदंसणपज्जवेविसोहित्ता सुलभबो हि यत्त निव्वत्तेय दुल्लहबोहियत्त निज्जरेइ ५७] हे भगवन् सिद्धान्तोक्तमार्गे वचन समाधारणयास्वाध्याये एव वाग निवेसनेन जीव किं फल जनयति तदा गुरुराह हे शिष्यच समाधारणया वाक साधारणयादर्शनपर्यवान् विशोधयति वाचा साधारणया वाक्साधारणया वाचाकथयितु योग्या ये पर्यया शब्द विशेषा तथा दर्शनस्य सम्यक्तस्य ये पर्यायभेदास्तान विशोधयतिनिर्मलीकरोति यतोहि वाक समाधारणा कुर्वन् स्वाध्याय करोति स्वाध्याय कुर्वन् द्रव्यानुयोगाद्यभ्यास विदधत् अनेकयुक्तिभूत्वाशङ्कादि दोषान निवारयति यत सम्यक्त निर्मल करोति यतो वाक साधारणदर्शनपर्यवान् विशोध्य सुलभबोधित्व निवर्त्तयति सुलभबोधि परभवेजैनधर्मप्राप्तिर्यस्य स सुलभबोधिस्तस्य भाव सुलभबोधित्व तत् उत्पादयति दुलभबोधित्व निर्जरयति५७

मूल

वइसमाहारणयाएणभंते जीवे किंजणयइ । वइसमाहारणयाएण वयसमाहारण दंसणपज्जवेविसोहेइवयसमाहारण दंसण पज्जवेविसाहित्ता सुलहबोरियत्तनिव्वत्तेइ दुल्लह बोहियत्त निज्जरेइ ५७ ॥ कायसमाहारणयाएण भंते जीवे किंजणयइ ।

भाषा

फलउपार्जे वाकसमाधारणतयाजीव वचनरूपेजीववचसो विषयान्सम्यक्तभेदानविशोधयति वचननाभेदविषयसम्यक्तनाभेदतेहनेशोधेवचस साधारणान् वचनेकहवाजोग्य दर्शनपर्यायानविशोध्य समकितनापर्याय निर्मलकरीनेसुलभबोधित्व निवर्त्तयति सुलभबोधिपणु उपार्जे दुर्लभबोधित्व निर्जरयति खप यतिदुलभबोधिपणु निर्जरावे५७ कायसमाधारणतया हे भदंतकाय समाधारणे हे पूज्यजीव किंजनयतिजीवस्य फलउपार्जे कायसमाधारणतयाकाया

[कायसमाहारणयाएणंभंते जीवे किं जणयइ कायसमाहारणयाएणं जीवे चरित्तपज्जवे विसोहेइ चरित्तपज्जवेविसोहित्ता अहक्खाय चरित्तं विसोहेइ अहक्खाय चरित्तं विसोहित्ता चत्तारि केवल कम्मंसेखवेइ तओपच्छासिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणं मंतकरेइ ५८] हे भगवन् कायसमाधारणयाजीवः किं जनयति कायस्य समाधारणा संयमयोगेषु देहस्य सम्यग् व्यवस्थापनाकायसमाधारणातयाजीवः किं फलमुत्पादयति तदा गुरुराह हे शिष्य कायसमाधारणयाचारित्र पर्यवान् चारित्र भेदान् क्षायोपशमिकान् विशोधयति चारित्र पर्यवान् विशोध्य यथाख्यातचारित्रं विशोधयति यथाख्यातचारित्रं निर्मलं कुरुते ननु यथा ख्यातचारित्रं अविद्यमानं कथं निर्मल भवति अत्रोत्तरं यथाख्यात चारित्रं सर्वथा अविद्यमानं नास्ति अविद्यमानस्य निर्मलत्वासम्भवात् तस्मात् यथाख्यातचारित्रं पूर्वं अस्ति परं चारित्रमोहनीयेन मलिनमस्ति तदेव यथा ख्यातचारित्रं चारित्र मोहोदय निर्जरेण निर्मलो कुरुते यथा ख्यात चारित्रं विशोध्य च केवल सत्कर्मांशान् चचारिविद्यमानकर्माणि घनघातीयां निवेदनीयां

मूल

कायसमाहारणयाएणंचरित्तपज्जवेविसोहेइ । चरित्तपज्जवेविसोहित्ताअहक्खायचरित्तं विसोहेइअहक्खायचरित्तं विसोहित्ता । चत्तारिकेवलिकम्मंसेखवेइतओ पच्छासिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइसव्वदुक्खाणं मंतंकरेइ ५८ ॥

भाषा

सयकयोगने स्थिराखताजीव.चारित्र पर्यायान्विशोधयतिचारित्रनाभेदने सोधिचारित्रपर्यायान् विशोधयित्वाचारित्रनापर्यायने विशुद्धकरीने यथाख्यातं चारित्रं ख्यात चारित्रनेशोधि यथाख्यात चारित्र विशोध्ययथाख्यात चारित्रनाअतीचारनेशोधीनेचतुरःकेवलि कर्मांशान् क्षपयतिच्यार केवलीतणा विशोधयतियथाकर्मांशखपावितत:पश्चात्सिद्ध्यतितिव।रेपछीसीझेबुध्यतिमुच्यते परिनिर्व्यातिसंसारसागरथीमुंकाइसर्वदुःखानांअंतंकरोतिसघलादुक्खनोअंतकरे५८

शुनामगोत्र लक्षणानिच्चपयति तत सिध्यति बुध्यति मुच्यति परिनिर्वापयति सर्वदुःखनामत करोति ५८ एव समाधारणात्रय मुक्ता यथा क्रम ज्ञानादित्रयस्य सम्पन्नताया फल प्रश्न पूर्वकमाह (नाणसम्पन्नयाएणभते जीवे कि जणयइ नाणसम्पन्नयाएण जीवे सव्वभावाभिगम जणयइ नाण सम्पन्नेयण जीवे चाउरन्त ससारकन्तारेन विणस्सइ जहासूईससुत्तापडियाविनविणस्सईतहाजीवोससुत्तो ससारेन विणस्सइ णाणविणयतवचरित्त जोग सम्पाउणइ स समयपरसमयविसारए असघायणिज्जेभवइ ५८) हे भदन्तज्ञानसम्पन्नतयाज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य सम्पन्नता श्रुत ज्ञानसम्पन्नितयाजीव कि फल जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य श्रुतज्ञानसम्पन्नतयाजीव सर्वभावाभिगम सर्वे च ते भावाश्च सर्वभावा जीवाजीवादयस्तेषा अभिगम सर्वभावा भिगमस्त सवभावाभिगम जीवाजीवादितत्वज्ञान जनयति तथा ज्ञानसम्पन्नो जीवश्चतुरन्त ससारकान्तारे चतुर्गतिलक्षणे ससारवनेन विनश्यति मोक्षात् विशेषेणदूरम्भवति यतस्तथा हि ससूत्रासूचीकचवरादिषु पतितासतीन नश्यतिअदृश्यानभवति नाशन प्राप्नोति तथा जीवोपि ससूत्र श्रुतज्ञानसहित

नाण सपन्नयाएण भ ते जीवे किजणइ नाण सपन्नयाएण जीवेसव्वभावाभिगम जणयइ नाणसपन्नेयणजीवे चाउरत
ससार कतारे नविणस्सइ जहासूई ससुत्ता पडियाविनविणस्सइ। तहा जीवो ससुत्तो ससारे नविणस्सइ नाणं विणय

ज्ञानसम्पन्न तया हे भदन्त श्रुतज्ञानसम्पूर्णपणे हे पूज्यजीव किजनयति जीवस्य धर्मउपार्जे श्रुतज्ञानसपूर्णतयाज्ञानवतजीवसर्वजीवादि तत्वज्ञानजन यतिसर्वजीवतु सकलजाणे ज्ञानसपूर्ण जीव ज्ञानकरो सपूर्णजीव चातुरत ससारकातारे भवारण्ये विनाशन प्रासोति चतुर्गतिससारक्ष्प अटवीमांहि विनसे नही यथा सूची स सूत्रा दवरकसहिता जिम सूइदोरासहित कचवरे पतिता न विनश्यति कचरामांहि पडीथकी योणसेनही तथा जीवोपि

संसारेविनष्टो न भवतीतिभावः ततश्च श्रुतज्ञानविनय तपश्चारित्रयोगान् सम्प्राप्नोति ज्ञानंच विनयश्च तपश्चारित्रयोगाश्च ज्ञानविनयतपश्चारित्रयोगास्तान् सम्यक् प्रकारेणप्राप्नोति तत्रज्ञानं अवध्यादिविनयः प्रसिद्ध तपोद्वादशविधचारित्रव्यापारास्तान् सर्वान्लभते पुन. श्रुतज्ञानीस्वसमय परसमयसघातनीयो भवति स्वमतपरमतयोः सघातनीयोमीलनीय स्यात् एतावतास्वमतपरमताभिज्ञत्वेन प्रधानपुरुषत्वात् पण्डितेषु गणनीयोभवतीति भावः ५८ दसणस म्पन्नया एणभंतेजीवे किंजणयइ दंसणसम्पन्नयाएणं भवमिच्छत्तच्छेयणकरेइ परं नोविज्झाइ परं अणुज्झायमाणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोए माणे सम्मं भावेमाणेविहरइ ६०] हे भगवन् दर्शन सम्पन्नतादर्शनस्य क्षायोपशमिकस्य सम्पन्नतादर्शन सम्पन्नतातयाक्षायोपशमसम्यक्त्व सहितत्वेन जीवः किं फलं जनयति तत गुरुरुत्तरमाह हे शिष्यदर्शन सम्पन्नतया जीवो भवमिथ्यात्वच्छेदनं करोति भवस्य हेतुर्यत् मिथ्यात्वं तस्य च्छेदनं करोति अर्थात्

मूल

तवचरित्तजोगे संपाउणइ ससमयपरसमय विसारएसंघायणिज्जे भवइ ५८॥ दंसण संपन्नयाएणं भंतेजीवे किंजणयइ दसणसपन्नयाएणं भवमिच्छत्तच्छेयणंकरेइ। परं नोविज्झाइ परं अणुज्झायमाणेअणुत्तरेणंनाणदंसणेणं अप्पाणं संजो

भाषा

स सूत्र तथका: जिन जीव सिद्धांतसहित संसारेन विनश्यति सर्वथा ... निश्चेनही ज्ञानविनय तपः चारित्रयोगान् प्राप्नोति ज्ञान विनय तप चारित्रनायोग ते प्रते पामे स्वसमयपर समय निपुण सन् पोताना शास्त्रनेविषे परना शास्त्रनेविषे चतुर हुवे पण्डितेषु संघातनीयः गुणनयोग्यो भवति प्रधान पुरुष होइ सहोलणीकनरहोइ आप पूज्यनीयोग्य हुवे गुणिकारो योग्यहवे ५८ दर्शनसंपन्नतया भगवन् जीवः किं जनयति क्षायोपशम वितनेमसमाणे करी भगवन् जीवस्य कर्मउपार्जे दर्शनसपनतया दर्शन सपन्नताइ भवहेतु मिथ्यात्वोच्छेद करोति भवनुं हेतु मिथ्यात्व तेहनोच्छेदथाय परं उत्तरकाले आगामि

क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्नोति परन्तत पश्चात् न विध्यापयति ज्ञानदर्शनचारित्राणां प्रकाश नोनिवारयति तत पर च ज्ञानदर्शनचारित्राणा प्रकाश अविध्यापयन् ज्ञानदर्शनचारित्राणा तेजोऽविनाशयन् अनुत्तरेणसर्वोत्कृष्टेन क्षायिकत्वात् प्रधानेन ज्ञानदर्शनेन आत्मान संयोजयन् सम्यक्‌ प्रकारेण आत्मान आत्मना एव यथोजुव्वनविहरति भवस्थकेवलतयासुखतयाविचरतीतिभाव ६० चरित्तसम्पन्नयाएण भंते जीवे किं जणयइ चरित्तसम्पन्नयाएण सेलेसीभाव जणयइ सेलेसिम्पडिवन्ने य अणगारेचत्तारिकेवलकम्मे खवेइ तओपच्छासिज्झइबुज्झइमुच्चइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमन्त करेइ ६१] हे स्वामिन् चरित्रसम्पन्नतया चरित्रेण यथाख्यातचारित्रेण सम्पन्नता तया यथा ख्यातचारित्रसहितत्वेन जीव किंजनयति तदा गुरुराह हेशिष्यचारित्रसम्पन्न यथाख्यात चारित्र सहित त्वेन सैले शीभाव जनयतिशैलाना पर्वतानाइस शैलेशोमेरुस्तस्येव अवस्थाशैले सीतस्याभवन शैलेशीभाव त उत्पादयति मेरुपर्वतस्य स्थैय प्राप्नोति शैलेशीअवस्थाप्रतिपन्नोऽनगारश्चतुर कर्मांशान क्षपयति अयमर्थ सत्तार्थवाचक चतुर्दशगुणस्थान भजते तत पश्चात्सिध्यति सकलकर्मोषि

एमाणेसम्म भाविमाणे विहरइ ६०॥ चरित्त सपन्नयाएण भ तेजीवेकिंजणयइ । चरित्त सपन्नयाएण सेलेसीभावजणयइ । सेलेसीभाव पडिवन्नेय अणगारे चत्तारि केवल कम्म से खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ वुज्झइ मुच्चइपरिनिव्वा

भये ज्ञानदर्शन प्रकाशोभवति आवते भयि ज्ञानदर्शननो प्रकाशहवे क्षायकत्वात् प्रधानेन ज्ञानदर्शनेन ज्ञानदर्शने करीने आत्मान संयोजनात् आपणा आत्माने जोडतुथको सम्यक्‌भाव्यमान निहरति सम्यक् पालतुथको विचरे ६० चारित्र सपन्नतया चारित्र करीसहित हे भगवन् जीव किं जनयति स्य कमउपार्जे चारित्र स पन्नतया शैलेशीभाव मेरुशैलोपमस्थैय जनयति चारित्रसहित जीव शैले सीकरणभाव उपार्जे मेरु पर्वतनीपरे दृढ हुवे शैलेशीभाव प्रतिपन्न अनगार शैले शीभाव पडिवर्ज्यो अणगार चत्वारि केवलीकर्मांशान् क्षपयति च्यार केवलीकर्मना अंश खपावे तत पश्चात् सिद्धान्ति तिथा

घपयित्वासिद्धिं प्राप्नोति बुध्यति तत्वज्ञोभवति मुच्यते कर्मभ्योमुक्तोभवति परिनिर्वाति कषायाग्नेरुपशमात्शीतलीभवति सर्वदुःखानामन्तं करोति ६१ अथ चारित्रे सतिपंचेन्द्रियनिग्रहोयुज्यतेऽतस्तत्फलंप्रश्नपूर्वकमाह [सोइन्दियनिग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ सोइन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसुसद्देसु राग दोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६२) हे भदन्त हे स्वामिन् श्रोत्रेन्द्रियनिग्रहेणकर्णेन्द्रियविजयेनजीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य श्रोत्रेन्द्रियनिग्रहेणमनोज्ञामनोज्ञेषु शब्देषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति पुनः रागद्वेषाभावे सति तत् प्रत्ययनैमित्तकं कर्मनबध्नाति पूर्वबद्धं रागद्वेषोपार्जितं कर्मनिर्जरयति घपयति ६२] चक्खिंदियनिग्गहेणंभंते जीवे किं जणयइ चक्खिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसुरागदो सनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६३] हे भदन्त हे स्वामिन् चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेणजीवः किं जनयति तदा गुरुराह

सूत्र

एइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ६१ ॥ सोइंदिय निग्गहेणं भंते जीवेकिं जणयइ सोइंदिय निग्गहेणं मणुन्ना मणुन्नेसु सद्देसु रागदोस निग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६२ ॥ चक्खिंदिय निग्गहेणं भंते

भाषा

रहै मोक्षे बुझाति इह्रां परिनिर्व्वाति सर्वदुःखानां अंतं करोति सर्वदुःखनो अंत करै ६१ श्रोत्रेंद्रिय निग्रहेन हे भगवन् जीवः किं जनयति कान आपणे वशिकरतुं जीव स्युं कर्मउपार्जे श्रोत्रेंद्रिय निग्रहेणजियारेश्रोत्रेंद्रियनो निग्रहकरेतदा मनोज्ञा मनोज्ञेषु तियारे भलाभुंडाने विषे शब्देषु रागद्वेष निग्रह जनयति भला भुंडा शब्द उपरि रागद्वेषन आणि तणायं कर्मनबध्नाति तेह रागद्वेष संबंधीउ कर्मबांधे नही पूर्वबद्धं च निर्जरयति पहिलां जे कर्म बांध्याछै ते निर्जरै ६२ चक्षुरिंद्रिय निग्रहेण भगवन् जीवः किं जनयति आंखिवसि कीधायका जीवस्युं कर्म उपार्जे चक्षुरिंद्रिय निग्रहेण आंखि

हे शिष्य चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु रागद्वेषजयं जनयति ततश्च तत् प्रत्ययिकं रागद्वेषोत्पन्नं कर्मं न बध्नाति पूर्वबद्धं रागद्वेषोपार्जितं कर्मं निर्जरयति क्षपयति ६३ (घ्राणिन्द्रियनिग्रहेण भंते जीवे किं जणयइ घाणिन्द्रियनिग्गहेण मणुन्नामणुन्नेसु गन्धेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६४) हे भदन्त हे स्वामिन् घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण जीवः किं जनयति गुरुर्वदति हे शिष्य घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु गन्धेषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति ततो रागद्वेषजयात् रागद्वेषोत्पन्नं कर्मं न बध्नाति पूर्वोपार्जितं कर्मं निर्जरयति ६४ [जिब्भिंदियनिग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ जिब्भिन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च कम्मं निज्जरेइ ६५] हे भदन्त

जीवे किं जणयइ। चक्खिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६३॥ घाणिंदियनिग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ। घाणिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ६४। जिब्भिंदियनिग्गहेणं भंते जीवे

यसि ओधांयका मनोज्ञा मनोज्ञेषु रूपेषु भला भूंडा रूपने विखे रागद्वेष निग्रह जनयति रागद्वेष जीते तत् प्रत्यय नवीन कर्मं न बंधाति ते इहांनवा कर्मं न बांधे पूर्ववद्ध च निर्जरयति पेहलावांध्याकर्म निर्जरे ६३ एम घ्राणेंद्रिय निग्रहेण जीव किं जनयति नासिकावसि कीधे जीवस्य कर्मं उपार्जे घ्राणेंद्रिय निग्रहेण नासिकावसिकरिवे मनोज्ञा मनोज्ञेषु गंधेषु भला भूंडा गंधने विखे रागद्वेष निग्रह जनयति रागद्वेष नो निग्रह करे तत्प्रत्ययनवीनकर्म न बंधाति तेह स बधो कर्मं न बांधे पूर्ववद्ध च निर्जरयति ६४ जिह्वेंद्रिय निग्रहेण भगवन् जीव किं जनयति रसनेंद्रीयवसिकरतु जीवस्य कर्मं उपार्जे जिह्वेंद्रिय

सूत्र

भाषा

जिह्वेन्द्रियनिग्रहेण जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्यजिह्वेन्द्रियनिग्रहेणजीवोमनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति तत् प्रत्ययिकं रागद्वेषनिमित्तिकं कर्मनबध्नाति पूर्वबद्धं रागद्वेषोपार्जितं कर्मनिजरयतिचपयति ६५ [फासिन्दियनिग्गहेणं भंतेजीवे किं जणयइ फासिन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसुफासेसुरागद्दोसनिग्गहं जणयइ तप्पच्चइय कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६६] हे भगवन् स्पर्शेन्द्रियनिग्रहेणजीवः किं जनयति तदा गुरुराह हे शिष्य स्पर्शेन्द्रियनिग्रहेण जीवोमनोज्ञामनोज्ञेषु स्पर्शेषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति तत् प्रत्ययिकं कर्मनबध्नाति पूर्वबद्धं च कर्मनिजरयति ६६ इन्द्रियनिग्रहकर्त्ता कषाय विजयीस्यात् अत कषायफलं प्रश्नपूर्वकमाह [कोह विजएणं भंते जीवे किं जणइ कोहविजएणं खन्तिं जणयइ कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ६७) हे भगवन् क्रोधविजयेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य क्रोधविजयेन जीवः चान्तिं

सूत्र

किं जणयइ जिब्भिंदिय निग्गहेणं मणुन्ना मणुन्नेसु रसेसु रागद्दोस निग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं नबंधइ पुव्व बद्धंचनिज्जरेइ ६५॥ फासिंदिय निग्गहेणं भंते जीवे किं जणयइ। फासिंदिय निग्गहेणं मणुन्ना मणुन्नेसु कामेसु रागद्दोस निग्गहं जणयइ तप्पच्चईयं कम्मं णबंधइ पुव्वबद्धंच निज्जरेइ ६६॥ कोह विजएणं भंते जीवे किं

भाषा

निग्रहेण जीभवशि कीधां थका मनोज्ञा मनोज्ञेषु रसेषु रागद्वेष निग्रहं जनयति भला भुंडारसने विखे रागद्वेषनोनिग्रहकरे तत्प्रत्यय नवीनं कर्मन बध्नाति पूर्ववद्धंच निर्ज्जरयति ६५ स्पर्शनेंद्रिय नीग्रहेण भगवन् जीव· किं जनयति स्पर्शनेंद्री वशिकरतु जीवस्युं कर्मउपार्ज्जे स्पर्शेंद्रिय निग्रहेण मनोज्ञा मनोज्ञेषु स्पर्शेषु रागद्वेष निग्रह जनयति तत्प्रत्ययं नवीनं कर्मनबध्नाति पूर्वबद्धंच निर्जरयति ६६ क्रोधविजयेन हे भगवन्

जनयति क्रोधविजयोक्षान्तिमान् भवति इत्यर्थ पुन क्रोधवेदनीय कर्मनबध्नाति क्रोधोदयेनवेद्यते इति क्रोधवेदनीय क्रोध हेतु भूत पुद्गलरूप मोह नोकषायभेद न बध्नाति पूर्वबद्ध च कर्मनिर्जरयति ६७ (माणविजएणभंते जीवे किं जणयइ माणविजएण मद्दवजणयइ माणवेयणिज्जं कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ६८] हे भगवन् मानविजयेनजीव किं फल जनयति गुरुराह हे शिष्यमानविजयेनजीवोमार्दव सुकुमालत्व जनयति मान विजयात् नमनयोलोभवतीति भाव पुनर्मानिनमानोदयेनवेद्यते इति मानवेदनीय कर्मनबध्नाति पूर्वबद्धच कर्मनिर्जरयति ६८ [मायाविजएणभंते जीवे किं जणयइ मायाविजएण उज्जुभावजणयइ मायावेयणिज्जं कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ६९] हे भगवन् मायाविजयेनजीव किं

सूत्र

जणयइ कोह विजएण खंति जणयइ । कोह वेयणिज्जं कम्म नव धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ६७॥ माण विजएण भंते जीवे किंजणयइ माण विजएण मद्दव जणयइ माणवेयणिज्जं कम्म नवधइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ६८॥ माया विजएण भंते जीवे किंजणयइ मायाविजएण उज्जुभाव जणयइ माया वेयणिज्जं कम्म नव धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ६९॥

भाषा

जीव किं जनयति क्रोधजीपतु भगवन् स्य कमउपार्जं क्रोधविजयेन क्षमा जनयतिक्रोधजीतये क्षमा उपार्जे क्रोधविजये न वेदनीय कर्मनबध्नाति क्रोध जीतये वेदनो कर्मन बांधे पूर्वबद्ध च निर्जरयति पूर्व बांध्या कर्म निर्जरे ६७ मानविजयेन हे भगवन् जीव किं जनयति मानविजयेन मानने जीतवकरीने मार्दव जनयति मार्दवपणु उपजावे मान वेदनीय कर्म न बध्नाति न बांधे पूर्वबद्ध च निर्जरयति ६८ माया विजयेन हे भदंत जीव किं जनयति मायाजोत्वाथका जीवस् कर्मउपार्जे मायाविजयेन ऋजूभाव जनयति सरलपणु पामे मायावेदनीय कर्म न बध्नाति माया वेदनी कर्म न

जनयति गुरुराह हे शिष्य मायाविजयेन जीवः ऋजुभावं सरलत्वं उत्पादयति ततश्च मायावेदनीयं कर्म न बध्नाति पूर्वनिबद्धं च कर्म निर्जरयति क्षप यति ६९ [लोभविजएणं भंते जीवे किं जणयइ लोभविजएणं सन्तोसिभावं जणयइ लोभवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च कम्मं निज्जरेइ ७०। हे भगवन् लोभविजयेन जीवः किं जनयति गुरुराह हे शिष्य लोभविजयेन जीवः सन्तोषि भावं सन्तोषिणो भावः सन्तोषभावस्तं उत्पादयति लोभवेदनीयं कर्म नबध्नाति पूर्वनिबद्धं च कर्म निर्जरयति ७० कषायविजयिना साधुना रागद्वेषमिथ्यादर्शनविजयः कर्त्तव्यः अतस्तेषां विजयफलप्रश्नपूर्वकमाह [पिज्जदोसमिच्छा दंसणविजएणं भंते जीवे किं जणयइ पिज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं नाणदंसणचरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेति अट्ठविहस्स कम्मगंठि विमोयणट्ठाए तप्पढमयाएणं जहाणुपुव्विए अट्ठावीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ पंचविहं नाणावरणिज्जं नवविहं दंसणावरणिज्जं पंचविहमन्तरायं एएतिन्निवि कम्मंसे जुगवं खवेइ तओपच्छा अणुत्तरं अणन्तं कसिणं पडिपुन्नं निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगालोगप्पभावयं केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेइ जाव सजोगीभवइ ताव इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहफरिसं दुसमयट्ठिइयं तं पढमसमए बद्धं बीयसमए वेइयं तइय समये निज्जिण्णं सेयाकाले अकम्मं वा भवइ ७१। हे भदन्त स्वामिन् प्रेमद्वेषमिथ्यादर्शन

सूत्र

लोभ विजएणं भंते जीवे किं जणयइ लोभ विजएणं संतोसीभावं जणयइ लोभ वेयणिज्जं कम्मं नबंधइ। पुव्व बद्धंच निज्जरेइ ७० ॥ पिज्जदोस मिच्छादंसणा विजएणं भंते जीवे किंजणायइ पिज्जदोससिच्छादंसणा विजएणं नाणा

भाषा

बधाइ पुर्वबद्ध निर्जरयति पूर्वे बांध्या कर्म ते निर्जरे ६९ लोभविजयेन हे भदन्त जीवः किं जनयति लोभजीते जीवस्य कर्म उपार्जे लोभविजयेन संतोष भावं जनयति लोभवेदनीय कर्म न बधाति पूर्वबद्ध निर्जरे पाछला कर्म निर्जरावे ७० प्रेम द्वेष मिथ्या दर्शन विजयेन राग द्वेष मिथ्यादर्शन

विजयेनजीव कि फलजनयतितत्र प्रेयशब्देन प्रेमराग द्वेष प्रसिद्धोमिथ्यादर्शनसम्यगादिभिर्विपरीतमतित्व प्रेम्ण च द्वेषचमिथ्यादर्शन च प्रेयद्वेषमि थ्यादर्श नानितेषां विजय प्रेयद्वेषमिथ्यादर्शनविजयस्तेन जीव कि फल मुत्पादयति तदा गुरुराह प्रेमद्वेषमिथ्यादर्शनविजयेन जीवोज्ञानदर्शन चारित्राणा आराधनायै अभ्युत्तिष्ठते सावधानोभवति अभ्युत्थाय च अष्टविधकर्मणा ग्रन्थि घातिकर्मणा कठिनजाल विमोचनार्थं क्षपयितु मभ्युत्ति ष्ठते सावधानोभवति अथ कर्मग्रन्थि विमोचने अनुक्रममाह तत् प्रथमतया यथानुक्रम अष्टाविंशति विधि मोहनीय कर्म उद्घातयति षोडशकषाया नव नोकषाया मोहनीयस्य एव अष्टाविंशतिविध मोहनीयकर्मविनाशयेति ततश्चरमसमये यत् क्षपयति तदाह मतिश्रुतावधिमन पर्यायावरणरूप कर्मपंचविध दर्शनावरणीय कर्म चक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनावधि दर्शनाकेवलदर्शनावरण निद्रापंचक एव नवविध

दसण चरित्ता राहणयाए अब्भुट्ठेइ अट्ठविरस्स कम्मग ठि विमोयणयाए तप्पढमट्ठाए जहाणुपुव्वीए अट्ठावीसइ विह मोहणिज्ज कम्म उग्घाएइ । पचविह नाणावरणिज्ज नवविह दसणावरणिज्ज पचविह अतराय एए तिन्निवि कम्म से

जोपरा जीवस्य कर्म उपार्जे प्रेमद्वेष मिथ्यादर्शन विजयेन ज्ञानदर्शन चारित्राराधनया अभ्युत्तिष्ठति ज्ञानदर्शन चारित्र आराधवाउजमाल थाइ अष्टविध बधकर्मग्रन्थि क्षपणार्थं अष्टप्रकारे जे कर्म तेह भणी निविडरूप जे कर्मग्रन्थि छूटे ते जीव ओडावणभणी सावधान हुवे तत्प्रथमतयाऽऽद्य पहलो अनुक्रमेण अष्टाविंशति विध मोहनीय अनुक्रमे पहलो २८ अठावीस भेदे सहित मोहनीकर्म खपावे पछेथी ज्ञानावरणीय पचप्रकार ज्ञाना वरणी कर्म खपावे नवविध दर्शनावरणीय नवप्रकार दर्शनावरणी कर्म एव पचविध अतराय पाचप्रकारे अतराय कर्म एतानि त्रीण्यपिकर्माणि

दर्शनावरणीय कर्म ततः पश्चात्पञ्चविधं अन्तरायं एतानित्रीणि कर्म्मसेंद्रति सत्कर्माणि विद्यमानानित्रीणि कर्माणि युगपत् क्षपयति क्षपकश्रेण्यारूढः सन् समकालं क्षयं नयतीत्यर्थः ततः पश्चादनन्तर तेषां कर्मणां क्षयीकरणादनन्तरं अनुत्तरं सर्वेभ्यः प्रधानं अनन्तं अनन्तार्थग्राहकं कृत्स्नं समस्तवस्तु पर्यायग्राहकं प्रतिपूर्णं सकलैः स्वपरपर्यायैः सहितं निरावरणं समस्तआवरणरहितं वितिमरं अज्ञानां मरहितं विशुद्धं सर्वदोषरहितं लोकालोक प्रभावकं लोकालोकयो. प्रकाशकारकं एतादृशं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पादयति यावत् स योगीभवति मनोवाक्कायानां योगीव्यापारस्तेन सह वर्त्ततेइति स योगीभवति त्रयोदशगुणस्थानेयावत्तिष्टति तावत् ईर्यापथिकं कर्मबध्नाति ईरणं ईर्यागतिस्तस्याः पन्था ईर्यापथः ईर्यापथेभवं ईर्यापथिकं पथोग्रहणं हि उपलक्षणं तस्य तिष्टतोपि सयोगस्य ईर्यायाः सम्भवात् सयोगतायां केवलिनोपि सूक्ष्मसञ्चारा सन्ति तत् ईर्यापथिकं कर्मकीदृशं भवति तदुच्यते सुखयतीति सुखःसुखकारोस्पर्श आत्मप्रदेशैःसहस्न षोयस्य तत् सुखस्पर्शं द्विसमयस्थितिकं द्वौ समयौयस्या. साद्विसमया द्विसमयास्थिति

सूत्र

जुगवं खवेइ तओ पच्छा अणंतं अणुत्तरं कसिणं पडिपुन्न निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगा लोग पभावगं केवल वरनाणं दंसणं समुप्पाडेइ जाव सजोगी भवइताव इरियावहियं कम्मं निबंधइ सुह फरिसं दुसमयट्ठिइयं तंपढम

भाषा

युगपत् क्षपयति एत्रिणिकर्म्मना अंश एकाठाज खपावे तत. पश्चादनुत्तरं तिवारपछे अनंतार्थविषयं अनंतार्थ विषयछे जेहने कृत्स्नं समस्तं सपूर्ण निरावरणं आवरणेरहित तोमररहित अंधकार रहित लोकालोक प्रकाशं लोकअने अलोक तेहने प्रकासकरे सहाय रहितं प्रशस्त ज्ञानदर्शन आत्म नासमुत्पादयति केवलज्ञान उपजावे यावत् सयोगी जितमनोवाकाय. पछेली संयोगी हुवे मनवचन कायाजीने तावत् इर्या पथिकीयं कर्म गति मार्ग

रथेति द्विसमयस्थितिक तत् द्विसमयस्थितिकस्वरूपमाह प्रथम समये बद्ध स्वस्वरूपेनाय अधोन ज्ञात अधोनकरणात् स्पृष्टमपि द्वितीये समये तदेव स्पृष्ट वेदित कायेन अनुभूत तृतीय समये निर्जीर्ण परिशाटित निष्कषायस्य उत्तरकालस्थितेरभावोवर्त्तते उत्तरकालेसकषायस्य बन्धोभवति पर केवलिनो न भवति तदेव पुन सूत्रकार भ्रान्ति निवारणार्थमाह तत् ईर्यापथिक कर्म केवलिनोबद्ध आत्मप्रदेशै सहश्लिष्ट स्पृष्ट व्योम्ना घटवत् तथा स्पृष्ट मसृणमपि कुड्यापतित शुष्कचूर्णवत् इति विशेषणद्वयेन केवलिनोहि निधत्तनिकाचितावस्थयोरभाव पुनरुदीरित उदय प्राप्त सत् वेदित अनुभूत केवलिनोहि उदीरणानभवति ततो निर्जीर्ण क्षय उपगत तत सेयालेइति एष्यत्काले आगामिनिकाले अकर्मांचापि भवति कर्मरहितो भवति इत्यर्थ ॥७१॥ अथ शैलेश्यकर्मताद्वारद्वय अर्थतोव्याचिख्यासुराह (अहाउय पालइत्ता अन्तोमुहुत्तावसेसाउए जोगनिरोहकरेमाणे

समए बद्ध बिइए समए वेइय तइए समए निज्जिन्न त बद्ध पुट्ठ उदिरियं वेइय निज्जिन्न सेयाकालेय अकम्मयावि भवइ ॥७१॥ अहाउय पालइत्ता अन्तोमुहुत्तावसेसाउए जोग निरोह करेमाणे सुहुमकिरिय अप्पडिवाइय सुक्ष

सातरूप सुखस्पर्श आत्मप्रदेशै सहयत्न द्विसमय यावत्तिष्ठति ईर्यापथिकी कर्मचालताहालतालागे सातावेदनीदो इसमें रहे प्रथम समये यह पहले समये बांधे द्वितीयसमये वेदयति अनुभवति बीजे समे अनुभवे तृतीये समये जीर्ण परिसाटित बीजे समे ते कर्म परिसाडे ते जीव प्रदेश स्पृ बाधवो स्पृष्ट उदीरित फरस्यो आकाश घटनोपरि उदय आव्ये वेदित निर्जीर्ण सुखरूपफल अनुभव्यो खमाव्यो आगामि कालि चोथा समयने विषे कर्म रहित जोवथाइ ७१ ततो यावदायु पालयित्वा तीर्हा ताइ आउखु पालीने अंतर्मुहूर्त्त अवशेषायुष मन वेघडी मरणथको पेहला जोगनिरोध

सुहुमकिरियं अप्पडिवाइं सुक्कज्झाणं ज्झायमाणे तप्पढमयाए मणजोगं निरुंभइ मणोजोगं निरुंभित्ता वयजोगं निरुंभइ वयजोगं निरुंभित्ता कायजोगं निरुंभइ कायजोगं निरुंभित्ता आणपाणनिरोहं करेइ आणपाणनिरोहं करित्ता ईसिपंचरहस्सक्खरुच्चारद्धाए णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टिसुक्कज्झाणं ज्झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं नामं गोयं च एए चत्तारि विकम्मंसे जुगवं खवेइ ७२) अथ केवलप्राप्तेरनन्तरं आयुष्का देशोनं पूर्वकोटि प्रमितं आयुः प्रपाल्य अथवा अन्यदपि आयुः पालयित्वा यदा अन्तर्मुहूर्तावशेषायुष्को यदा केवलिनोऽन्तर्मुहूर्त प्रमाणमायुरस्ति तदा केवली योगं मनोवाक्काय व्यापारं तस्य निरोधं कुर्वाणः सन् शुक्लक्रियां सूक्ष्माक्रिया यत्र तत् सूक्ष्मक्रियं अप्रतिपाति शुक्लध्यानं शुक्लध्यानस्य तृतीयभेदलक्षणं तत् ध्यायन् तत् प्रथमतया प्रथमतो मनो योगो मनोव्यापारो मनोद्रव्यजनितो जीवव्यापारस्तं निरुणद्धि तं निरुध्य च वचोयोगं भाषाद्रव्यसाचिव्यजनितजीवव्यापारं निरुणद्धि तं निरुध्य च काय

ज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोगं निरुंभइ मणजोगं निरुंभइत्ता वइजोगं निरुंभइ वइजोगं निरुंभइत्ता। कायजोगं निरुंभइ कायजोगं निरुंभइत्ता आणापाणा निरोहं करेइ आणपाणा निरोहं करेइत्ता। इसि पञ्च रहस्स

कुर्वन् योगनिरोध करतुथको सूक्ष्मक्रियारूप अप्रतिपाति श्री आउखोतिधान कयो पटवु नयो शुक्लध्यानं ध्यायमानः शुक्लध्यान मनमांहि ध्यातुथको तत् प्रथमतया पहिलो मनोयोग व्यापारं निरुणद्धि पहलां मनोयोग रुंधे मनोयोगं निरुंध्य मनोयोग रुधीने वचोयोगं निरुणद्धि वचनयोग रुंधे वचोयोगं निरुद्ध्य वचनयोगने रुंधीने काययोगं निरुणद्धि काययोग रुंधे काययोग निरुध्य काय योगरुंधीने उत्श्वासनिः श्वासनिरोधं करोति सासो स्वासरुंधे थोडोसीवारपं चह्रस्वाक्षर उच्चारण प्रमाण अइ उऋऌ एपांच अक्षरजेतले उचारी जेनेतरे काले सीस ततः ईषत् स्वल्पं पंचह्रस्वाक्षरोच्चारणार्धं अनगारः

योग कायव्यापार निरुणद्धि त निरुध्यच आनप्राणनिरोध श्वासप्रश्वासयोर्निरोध करोति तन्निरोध कृत्वा एव योगत्रयनिरोध कृत्वा ईषत् स्वल्प प्रयासेन यथा स्यात्तथा उच्चार्यंते तथा पञ्चानां ह्रस्वाक्षराणां उच्चारणकालेनयावताकालेनईषत् प्रयासेन पञ्चह्रस्वाक्षराणि अइउऋलृ इत्येतानि कथ्यन्ते तावता कालेन अनगार समुच्छिन्न क्रिय सम्यग उच्छिन्नाक्रोटिता क्रियायत्र तत् समुच्छिन्न क्रिय पुनरनिवृत्ति शुक्लध्यानस्य चतुर्थभेदरूप ध्यायन् शैलेशदशा अनुभवन् सन् वेदनीय १ आयु २ नाम ३ गोत्रञ्च एतान् चत्वार कर्माशान् एतानि चत्वारि सत्कर्माणि विद्यमानानि कर्माणि युगपत् समकाल क्षपयति ७२ [तओओरालियकम्माइं च सव्वाहि विप्पजहणाहि विप्पजहित्ताउज्जुसेढीपत्ते अफुसमाणगई उड्ढ एगसमएण अविग्गहेण गन्तासागारोव उत्ते सिज्झइ बुज्झइमुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमन्त करेइ ७३] तत पश्चाद् वेदनीयादि चतुःकर्मक्षयीकरणादनन्तर औदारिककार्मणे च शब्दात् तैज समपि एतत् शरीरत्रयमपि सर्वाभिविप्रहाणिभिर्विप्रहायविशेषेण प्रहाणयो विप्रहाणयस्ताभिर्विशेषेणप्रहायपरित्याज्य ऋजुश्रेणी प्राप्त ऋजु सरलाचासौ

अक्कड़अक्खरुच्चारणद्धाए य अणगारे समुच्छिन्न किरिय अनियट्टि सुक्कज्झाण झियायमाणे वेयणिज्ज आउय नाम गोय च एए चत्तारिविकम्मंसे जुगव खवेइ ॥ ७२ ॥ तओ ओरालिय कम्माइं च सव्वाहि विप्पजहणाहि विप्पजहित्ता

साधु समुच्छिन्न क्रिया समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यानस्य तुर्यभेदध्यायन् अनिवृत्तिइस्येनामि शुक्लध्याननो चोथोपायोध्याय तांथको वेदनीय वेदनी कर्म आयुर्नाम गोत्र आउखु नामगोत्र एतानि चत्वारि ए च्यारकर्मतणा कर्मांस निक्षिपयति अथवेळे ते समकाले खपावे ७१ तत औदारिक कर्माणि तैजस शरीर सर्वाणि तिवारे पछे औदारिक तैजसकार्मणइत्यादिक शरीर सर्वपरिहरे विप्पजहणाहिवजनि विशेषेण त्यक्त्वा ऋजुश्रेणि प्राप्त विशेषयो

श्रेणीच ऋजु श्रेणीता ऋजु श्रेणीं सरलाकाशप्रदेशपंक्तिं गतः पुनरस्पृशद्गति. सन् यावन्तः श्रमोऽश्रेष्ठा आकाशप्रदेशाश्रवगाह्यमानास्तान् एवस्व प्रदेशैः स्पृशन् अधिकान् न स्पृशन् जीवीयया गत्याव्रजति तादृग्गतिधरः सन् ऊर्द्ध्वगः एकेन समयेन अविग्रहेण विग्रहगत्यभावेन तत्र मोक्षस्थाने गत्वासाकारोपयुक्तोज्ञानोपयोगयुक्तः सन् सिध्यति बुध्यति परिनिर्वाति सर्वदुःखानां अन्तं करोति ७२ (एसखलु सम्मत्तपरिक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठेसमणे ण भगवया महावीरेणं आघविए पन्नविए परूविए दंसिए णिदंसिए उवदंसिए त्तिबेमि १) अथ प्रश्नोत्तरोपसंहारमाह हे जम्बूस्वामिन् एषः इदानीं उक्तः खलुनिश्चयेन सम्यक्त्व पराक्रमस्य अध्ययनस्य अर्थ श्रमणेन भगवताज्ञानवता श्रीमहावीरेण आघविएत्ति आर्षत्वात् आख्यातः पुन. प्रज्ञापित सामान्य विशेषपर्यायैर्व्यक्तीकारणेन प्रकटीकृत. पुनः प्ररूपितो हेतु फलादि प्रकर्ष ज्ञापनेन प्ररूपितः उपदर्शितः स्वरूप कथनेन ज्ञापितः

सूत्र

उज्जुसेढी पत्ते अफुसमाण गई उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ ७२ ॥ एस खलु सम्मत्त परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं

भाषा

छांडीने समीश्रेणि पुहुतोथको अस्पृशद्गति आकाशप्रदेशने अणफरसतु थको उर्द्ध एकसमयेन ऊर्द्धगति जातु एकसमयमांहिं विग्रह गतिरहितेन विग्रह गति करी रहित मुक्तिपदे गत्वा ज्ञानोपयोगवान् सिद्धाति मुक्तिजाइ ज्ञानसहित सीझे बुद्धते बूझे मुच्यते मुकावे प्रतिबोध पामे मुके परिनिर्व्वाति संसारथकी नोवर्त्तनहवे सर्वदुःखानां अंतकरोति सर्वदुःखनो अतकरे ७२ एष. निश्चेन सम्यक्त्व पराक्रमस्य एनिश्चयथेती सम्यक्त्व पराक्रम नाम अध्ययनस्य अर्थः श्रमणेन साधुइं भगवता ज्ञानवंते महावीरेण महावीर देवे आख्यातः कह्यो प्रज्ञाप्तः फलदेखाड्या प्ररूपितः दृष्टांत कहीने दर्शितः एकवारदे खाड्या

पुनर्दर्शितोनानाभेददर्शनेन प्रकाशित पुनरुपदर्शितो दृष्टान्तोपन्यासेन दृढीकृत इत्यहं ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामीजम्बूस्वामिनं प्राह ७४ इति श्रीमदुत्तरा
ध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां सम्यक्त्वपराक्रमाख्य अध्ययन एकोनत्रिंशत्तमं संपूर्णं ॥२९॥
अथ त्रिंशत्तममध्ययनं प्रारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अप्रमत्त वीतरागत्वसम्यक्त्व पराक्रमत्व चोक्त तेनऽप्रमत्तेनसम्यक्त्वपराक्रमवतामोक्षमार्गायतपसि उद्यमो
विधेय अतस्तपोमार्गाध्ययनं त्रिंशत्तमं कथ्यते [जहा श्रोपावयं कम्मं रागदोस समज्जियखवेइतवसाभिक्खूतमेगग्गमणोसुण १] यथा येन प्रकारेणभिक्षु साधु
रागद्वेषसमर्जितरागद्वेषाभ्यां उपार्जित कर्मक्षपयति तु शब्द पद पूरणे त तपोमार्गं एकाग्रमना सावधानचित्तसन् त्वं शृणु हेजम्बूस्वामिन् अह वदा
मीति सम्बन्ध अनाश्रवेण किलकर्मक्षय क्रियते १ [पाणि वहमसावाए अदत्तमेहुणपरिग्गहाविरओ राईभोयणविरओ जीवोहवइ निरासवो २] हे शिष्य
ईदृशो जीवोनिराश्रवो भवति कोदृश प्राणिवध मृषावादादत्त मैथुन परिग्रहाद्विरतो रहित पुनरात्रि भोजनविरत एतादृशोनाश्रवोभवति २ पुनरनाश्रवो

आघविए पन्नविए परूविए दंसिए निदंसिए उवदंसिए त्तिबेमि सम्मत्त परकमज्झयणंसमत्तं २९॥ जहाओ पावयं कम्मं
रागदोस समज्जिय। खवेइ तवसाभिक्खू तमेगग्गमणोसुण १॥ पाणिवह मुसावाए अदत्त मेहुण परिग्गहा विरओ

निदर्शित वारवार कह्या तत् कथनेन परीक्षमान इति ब्रवीमि ज्ञाननाभेद कह्या प्रकाश्या एवात स्वामी कहे ७४ इति श्रीसम्यक्त्वपराक्रमाध्ययनस्य
टब्बार्थ संपूर्णम् ॥ २९ ॥ यथेव पापकर्म जिम पापकर्म रागद्वेष समर्जित रागद्वेषे करीने उपार्जित्यो क्षपयति तपसाभिक्षु ते कर्म साधुतपे करीने
खपावे तत्तप एकाग्रमना शृणुत तं तप एकाग्रमन करीने सांभलो १ प्राणिवधात मृषावादात प्राणिवध मृषावाद अदत्त मैथुन परिग्रहात् विरत

यथाभवति आश्रवरहितोभवतितमाह[पंचसमिओ०३]कीदृशोजोव: पञ्चभि: समितिभि· समित.सहित:पञ्चसमित· पुनस्त्रिस्त्रिभिगुं प्तिभिगु प्त:पुनरकषाय: काषायरहित· पुनर्जितेन्द्रिय. वशीकृतेन्द्रिय: पुनरगारवस्त्रदिरससातादिगर्वत्रयरहित: पुनर्निःशल्य: मायानिदानमिथ्यादर्शनशल्यै स्त्रिभीरहित: एतादृशो ऽनाश्रवीभवति ३ एव विधोऽनाश्रवश यथाक्षपयति तथा वदति [एएसिन्तु विवच्चासेरागदोस समज्जियं खवेइउजंजहाभिक्खूतमेगग्गमणोसुण ४] हे शिष्य यथा येन प्रकारेणभिक्षु: साधुरेतेषां पूर्वोक्तानां प्राणातिपात मृषावादादत्त मैथुनपरिग्रहरात्रि भोजन विरतिलक्षणानां व्रतानां तथा समिति गुप्त्यादि लक्षणानां अनाश्रवकारणानां विपर्यासे वैपरीत्ये प्राणि बध मृषावादादत्तमैथुनपरिग्रहरात्रि भोजन समित्यऽभाव गुप्त्याऽभावसेवने सतिरागद्वेषाभ्यां समर्जित सञ्चितं पापकर्म्म क्षपयति तं प्रकार एकाग्रमना: एकचित्त: सन् त्वं शृणु ४ अत दृष्टान्तमाह (जहा महातलागस्स सन्निरुद्धे जलागमे

सूत्र

राइभोयणविरओ जीवोभवइअणासवो २॥ पंचसमिओतिगुत्तो अकसाओजिइंदिओ। अगारवोयनिस्सल्लोजीवो भवइ अणासवो ३ ॥ एएसितु विवच्चासे रागदोस समज्जियं खवेइ जंजहा भिक्खू तमेगग्गमणो सुण ४ ॥ जहा महा

भाषा

अदत्तादान मैथुन परिग्रहथी विरतहुओ रात्रिभोजनात् विरत: रात्रिभोजनथी विरतहुओ जीवो भवति अनाश्रव: पापहेतुरहित: जीव पापरहित होइ २ पचसमिति: पांचेसमते सहित: त्रिगुप्त: त्रिहुं गुप्ति सहित अकषाय: कषायरहित जितेंद्रिय इंद्री जिते अगर्व: गर्वरहित निःशल्य: सालरहित पापरहित जीव: भवति अनाश्रव: जीव आश्रवरहित होइ ३ एतेषां पूर्वोक्तानां विपर्यासे सति एहने अणफलवे रागद्वेषे करी उपार्जी जेकर्म क्षप यति यथा भिक्षु: जिणे प्रकारे साधु खपावे तत् मत् सकाशात् एकाग्रमना: शृणुत ते एकाग्रमनथका सांभलो ४ यथा महातटाकस्य जिम मोटा

उस्मिचणाएतवणाएकमेण सोसणाभवे ५) यथा महातटाकस्य महाजलाशयस्य जलागमेपानीयागमनमार्गे सन्निरुद्धे सम्यक प्रकारेण सङ्घतेसति उस्सिचणयाउत्सिचनया ऊर्ध्वं अरघट्टादिनाऊर्द्धाकर्षणया तपनेनरविकिरणादिनासन्तापेन क्रमेण शोषणाजलस्य शोषण भवेत् नवीनजलागमनमार्गोनिरुध्यते पूर्वस्थजल च निकास्यतेजलकृदोरिक्त स्यात् इति भाव ५ अथदार्ष्टान्तिकमाह [एव तु सञ्जयस्यावि पावकम्मनिरासवे भवकोडीसञ्चय कम्म तय सानिज्जरिज्जई ६) एव अमुना प्रकारेण पापकर्मं निराश्रवेसति पापकर्मणां प्राणिवधाद्यानां निरोधेसति सयतस्यापि साधोरपि तपसा द्वादशविधेन भवकोटो सञ्चित कर्मनिर्जीयते भाधिक्येन चयक्षीयते अत्र कोटीग्रहण बहुत्वोपलक्षण कोटीनियमस्य असम्भवात् ६ अथ तपोभेदमाह [सोतवो दुविहोवुत्तोवाहिरभिन्तरोतहा बाहिरोछव्विहोवुत्तो एव मभिन्तरोतवो ७] तत्तपोद्विविध प्रोक्त बाह्य तथाभ्यन्तर बाह्य षडविध प्रोक्त एव अमुना॰

तलागस्स सनिरुद्धे जलागमे । उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ५ ॥ एवतु सञ्जयस्सावि पावकम्म निरासवे भवकोडि संचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जई ६ ॥ सो तवो दुविहो वुत्तो बाहिरभि तरो तहा । बाहिरो छव्विहो

तलावहोइ तेहनो सनिरुद्धो जलागम ते पाणी आववानुनाल रुन्धो उस्मि चने नारघट्टादिभि तापादिभि उसोषणे करीतापे करीने क्रमेण जलस्य शोषणाभवेत् अनुक्रमे पाणीनो शोषणा होइ ५ एव सयतस्यापि पापकर्मं निराश्रवस्य इम साधु भगवतपाप आववाना ठामरुंधे पापकर्म निराश्रवस्य पापकर्म आववातरुंधे पापरहित हावे भवकोटिभि सचितकर्म कोडि भवना सच्या कर्म तपसा निर्ज्जरयति तपे करी दूरिकरे ६ स तप द्विविध उक्त ते तपबे॰ प्रकारे कह्या बाह्याभ्यतरभेदात् एक बाह्यतप बीजो अतरगतप बाह्यतप षडविध उक्त बाह्यतपछ्हे भेदे कह्या एवमभ्यतर तप षट्

प्रकारेण अभ्यन्तर अपि षड्विध प्रोक्तं ७ प्रथम बाह्य षडविधमाह (अणसणमूणोयरियाभिक्खायरियायरसपरिच्चाओकायकिलेसोसंलीणयाय वज्झो तवोहोइ ८) अनशन उपवास: एकस्मादुपवासादारभ्यषण्मासिकपर्यन्तं अनशनं तप उच्यते १ द्वात्रिंशत्कवलप्रमाण आहार: प्रत्यहं एकैकेन कवलेनन्युनी कुर्वन् यावताएकस्मिन् कवलेस्थाप्यते साऊनोदरिकाऊन उदरेभवं ऊनोदरिक तप: प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्यय· भिचाचर्यायाभिचया आहारग्रहणार्थं उच्चावच गृहेषु भ्रमणं रसत्यागोविकृतीनां परित्याग: कायक्लेशस्तापशीतादीनां सहनं सलीनता अङ्गोपाङ्गादिकं सङ्कल्पप्रवर्त्तनं एतत् षड्विधं बाह्यं तपोभवति ८ अथ एतेषामेव स्वरूपमाह [इत्तरियमरणकाला अणसणादुविहाभवे इत्तरियसावकखानिरवकखाओविइज्जि या ८] अनशन द्विविधं भवति एकं इत्वरिकं इत्वरैस्तोककालेन भवं इत्वरिक नियतकालावधिकं मरणं कालोयस्या सामरणकालाइति द्वितीय यावज्जीवमित्यर्थ: स्त्रीलिङ्गत्वं

बुसो एव मभिंतरो तवो ७॥ अणसणा मूणो यरिया भिक्खायरियाय रसपरिच्चाओ। कायकिलेसो संलीणयाय वज्झो तवोहोइ ८॥ इत्तरिय मरणकालाय अणसणा दुविहा भवे। इत्तरिया सावकंखा निरवकंखाओ विइज्जिया ९।

विध अभ्यतर तपना पणिछे भेद ७ अनशन १ उपवासादिक ऊनोदरिका: २ ओछुजिमे भिचाचर्या च भिचाचर्यतप ३ भिचायें करीआहार लेवो परआव्यो नहीलेवे रसत्यागषरस परीत्याग काया क्लेश: ५ कायाक्लेश तप संलीनता तप ६ सलीनता तपअंगोपंग संकोचे मासनी संलेखण करेवाह्य तपो भवति एछहे भेदे वाह्यतप कह्यो ८ इत्तरि काकालोवधि प्रमाणा:अणसननावे भेद कह्या एक एतलोएककाल बीजो मरणपर्यंतकाल अनशनं द्विविधाभवेत् अणशणवे प्रकारे होइ इतरिकसाव काचाकाले भोजनेच्छा सहितन इतरीक अणसण चउथ पांचमे एकांतरे आहार करे भोजनेच्छा

प्राप्तत्वात् इत्वरिक तप सावकाश भवति सह अवकाशेनयायत्त तदृति सावकाश घटिकाद्वयायनन्तर अह भोजन विधास्यामीति वाञ्छासहितमित्यर्थ द्वितीय यावज्जीव निरवकाश आहारप्रत्याख्यानादारभ्य तज्जन्मनिभोजनाद्यसम्भवात् वाञ्छारहितमित्यर्थ ९ [जोसोइत्तरियतवो सो समासेणछव्विहो सेढितवाययरतवो घणोयतह होइवग्गोय १०) यत्त इत्वरिक तपस्तत् समासेन सचेपेण षड विध भवति विस्तरस्तुहा सप्ततिविध ७२ भेद अथ षड्विध्य माह श्रेणितप १ प्रतरतप २ घनतप ३ स्तथावर्गतप ४ श्रेणि पङ्क्तिस्तदुपलक्षित तप श्रेणितप तच्चतुर्थादि क्रमेण क्रियमाण षण्मासा त गृह्यते तत् प्रथमतपोभवति तथा श्रेणिरेव श्रेण्यागुणिता प्रथतरस्तदुपलक्षित तप प्रतरतप इहसुबोधार्थ चतुर्थ षष्टाष्टमदशमाख्यपद चतुष्टयात्मिका श्रेणिर्विवक्षते साच चतुर्भिर्गुणितापोडशपदात्मक प्रतराख्य तपोभवति तत् प्रतरतप षोडशपदात्मक एव यदा पद चतुष्टया श्रेण्यागुण्यते तदाघनाख्य तपोभवति सा तत्र चकाश उसद्विदति भाव अथ पुनयदाघन चतु षष्टिपदात्मकोधनेनेव चतु षष्टि पदात्मकेनेवगुण्यते तदा वर्गो भवति तदुपलक्षित तपावर्गतपउच्यते चतु षष्टियतु षष्ट्यागुणितानिजातान्य कानिपञ्चत्वधिकानि चत्वारिसहस्राणि ४ ।८६ १ अथ पञ्चमषष्टभे ो माह [तत्तोयवग्ग वग्गोपञ्चमोछट्ठओपइण्णतवोमणइच्छियचित्तत्थोनायव्वोहोइ इत्तरिओ ११] तत इति ततोवर्गतपोनन्तर वर्गवर्गइति पञ्चमोतमाश्रित्य[वर्गे] एवयगं

मूल जो सो इत्तरिय तवो सो समासेण छव्विहो सेढि तवो पयर तहा घणोय तहहोइ वग्गेय १० ॥ तत्तोय वग्गवग्गो

भाषा रहित द्वितीय योजे तपनाभेद जेतलासाद्र जोये तेतलातांइआहारनसोइ ८ यदित्तरि कइत्तारि कानयनइत्तरिक अणशण तेहनो तत्समासेन स चेपण षड्विध सक्षेपे छेभेद कह्या श्रेणितप १ पहिलो प्रतरतप २ वोजो घनतप ३ वर्गतप ४ १ तत वर्ग वर्गतप तिवारपछोवर्ग वर्ग तप ५

गुणितोवर्गवर्गोभवति यथाचैककोटि सप्तषष्टिलचा· सप्तसप्तति सहस्राणि द्विशतीषोडशाधिका अङ्कतोभवति १६७७७२१६ एतदुपलक्षितं तपोवर्ग तपइत्युच्यते इत्यर्थ· एवं पश्चादि पदेष्वपि भावनाकर्त्तव्या तथा षष्टकं तपो यत् श्रेण्यादिनियतरचनारहितं निजशक्त्यानमस्कारसहितादि पूर्वपुरुषा चरितं यवमध्यवज्रमध्यचन्द्र प्रतिमादिचेति तत् प्रकीर्णतप· मनसिईप्सितइष्टचित्तोऽनेक प्रकारोऽर्थः स्वर्गापवर्गादिस्तेजोलेश्यादिर्वायस्मात्मनईप्सित चित्तार्थं इत्वरिक प्रक्रमादनशनाख्यं तपोज्ञातव्यं ११ अथ द्वितीयं मरणकालं अनशनमाह [जासा अणसणामरणे दुविहा सावियाहिया सवियार मवियाराकायचेट्ठं पईभवे १२] प्राक्तत्वादतस्त्रीत्वं यत् अनशन मरणेमरणसमये भवति तत् तीर्थंकरैर्द्विविधं व्याख्यातं सविचारं सहविचारेणमनो वाक्कायभेदचेष्टारूपेणवर्त्तते यत्तत्सविचारं अङ्गादिचेष्टयासहितं स्थित्युपविशनत्वग्वर्त्तनविश्रामणादिकयायुक्तमित्यर्थः द्वितीयं अविचारं चेष्टारहितं पादपोपगमं इत्यर्थः तत्सविचारहि काय चेष्टां प्रतीत्यश्राश्रित्यभवतीत्यर्थः येयां हस्य हस्ताद्युनाउत्थापनं प्रतिस्थापनं उभयपार्श्वाभ्यां स्थापनं इत्यादि

पंचमोछठ्ठओ पइन्नतवो मण इच्छिय चित्तत्थो नायव्वोहोइ इत्तरिओ ११॥ जा सा अणसणा मरणे दुविहा साविया हिया। सवियारमवियारा कायचिट्ठं पईभवे १२॥ अहवा स पड़िकम्मा अपरिकम्माय आहिया। नीहारि मनीहारी

पंचमः पांचमो षष्टः प्रकीर्णतपः छठ्ठो प्रकीर्ण तप ६ मनेप्सित चित्तार्थंतपः मनमांहिं जे चिंतवेते करे ते यं भवति इत्तरिकानशनं तपः एइत्तरिक तप जाणवो ११ यत् अनशनं मरणावसरे तप· अणसण मरणकालिं अंतसमयकाले द्विविधं आख्यातं बिहुं प्रकारे कह्युं सविकारं चेष्टासहितं हाथ पगछ लावे अविकारं काय चेष्टारहितः कायचेष्टा प्रतीत्यभवेत् काया चेष्टासहित जाणवुं १२ अथवा विश्रामणादि तप परिकर्मणा सहितं वीसामण

वयावृत्यकारापण अथवा स्वयमेव शरीरस्योद्वर्त्तन परवर्त्त[ना]दि चेष्टा सहित अन्येन कारापण ईदृश यद्भवति तत् सविचारमेव इत्यर्थः त्रिविध चतुर्विधाहार त्यागेन प्रत्याख्यान उद्वर्त्तनादि करोति कारयति वा तद्भक्त परिज्ञाख्य प्रथम १ तथा प्रकृति नियत चतुर्विधाहार त्याग इङ्गितदेशे उद्वर्त्तनादि इङ्गित चेष्टित आत्मनाएव करोति अन्येन कारयति एतद्द्वितीय इङ्गिनी मरण २ एतद्द्वयमपि स विचारमनशन ज्ञेय १२ एतदेव सूत्र कारो वदति [अहवासपडिकम्मा अपडिकम्माय आहियाभीहार अनीहारी आहारच्छेओदोसुवि १३] अथवा तत् पूर्वमरण स प्रतिकर्म आहितकथित मित्यर्थः सह परिकर्मणा वर्त्तते इति स प्रतिकर्म वैयावृत्य सहित भक्तपरिज्ञाख्य इङ्गिनी मरणच स परिकर्मथी एतेहै अपि मरणे परन्तु मूलत्वेन एक एव भेद च पुन अप्रतिकर्म मरण वैयावृत्यरहित पादपोपगम इत्यर्थः तथा पुनर्निर्हारि अनशन ग्रामात् नगरात् बहिर्निर्याणं इति निर्हारि पुनर् नीहारि एतत्पादपोपगम अपि द्विविध भवति द्वयोरपि निर्हाराऽनीहारयोर्मरणयोराहारच्छेद द्वयु भवत्येव १३ अथो नोदरिकामाह (उमोयरिय पचहा समासेण विवाहिय दव्वओ खित्तयालेण भावेण पज्जवेहिय १४) अवम जन उदर यस्मिन् तत् अवमोदर तद्भव अवमोदरिक तदाप समाधेन

आहारच्छेओ दोसुवि १३॥ उमोयरिय पचहा समासेण वियाहिया । दव्वउ खित्त कालेण भावेण पज्जवेहिय १४॥

कराये द्वितीय विश्रामणा रहित आख्यात योगो तपवे यावद्रहित नीहार अनीहार नीहार सहित नीहाररहीत आहारच्छेद दयोरपि विध्न प्रकारे आहारत्याग करे १३ ऊनोदरिता पचधातप अणोदरी तपना पचभेद कह्या संक्षेपेण आख्याता संक्षेपे कह्या द्रव्यत द्रव्यथी क्षेत्रत क्षेत्रथी कालत ३ कालथी भावना भावयेत् ४ पर्यायैच ५ भावथकी ४ हुवे १४ जो जस आहारो भोजन जेहने जितरो आहार होइ तत आहार अयमन्यन

संक्षेपेण पञ्चधाव्याख्यातं द्रव्यतो द्रव्येणचैव क्षेत्रेण कालेन भावेन च पुनः पर्यायैः १४ तत्र द्रव्यत अवमोदरिकामाह [जोजस्सउ आहारो तत्तोऊणं तु जोकरे जहन्नेणेगसित्थाई एवं दव्वेणओभवे १५] यस्य जीवस्य यावान् आहारः स्यात् ततः आहारात् यत् ऊनं कुर्यात् जघन्येन एकसिक्थकं यच्चैक मेवसिक्थं भुज्यते आदिशब्दात् सिक्थद्वयादारभ्य यावदेककवलभोजनं एतच्च अल्पाहाराख्य अवमोदर्यमाश्रित्योक्तं इदं चाष्टकवलान्तं अथच नवकादारभ्य द्वादशभिः कवलैरपार्धं वा १ त्रयोदशकादारभ्य षोडशान्तं द्विभागाख्यं २ सप्तदशकादारभ्य चतुर्विंशति तत्पर्यन्तं प्राप्ताख्यं पञ्चविंशतेरारभ्य यावदेकत्रिंशत्कवलभोजनं किञ्चिदूनमेव ऊदार्यं द्रव्येण पञ्चविधमवमोदर्यं प्रति उक्तञ्च अप्पाहार१ अवड्ढा२ दुभाग३ पत्ता४ तहेव किं चूणा५ अट्ठ१ दुवालस २ सोलस३ चउवीस४ तहिक्कतीसाय५ एव द्रव्येण उपाधिभूतेन अवमोदर्यमित्यर्थः१५ अथ क्षेत्रावमोदर्यमाह (गामेनगरेतहरायहाणि निगमेय आगारपल्लीखेडेकव्वडदोणमुह पट्टणमडंबसंबाहे १६) [आसमपएविहारे सन्निवेसेसमाय घोसेयथलसेणाखन्धारे सत्थे संवट्टकोट्टेय १७] वाडे सुयरत्थासुय घरेसुवाएवमित्तियं खित्तं कप्पइ उएवमाइ एव खित्तेणओभवे १८ (तिसृभिर्गाथाभिः कुलक एव इति असुनाप्रकारेण हृदयस्य प्रकारेण एतावन्नियतमानं चेत्रं पर्यटितुं मम वर्त्तते इति एव आदिशब्दात् इत्यादिपरिग्रहः अथ एतावत् प्रमाणं भिक्षार्थं अटितव्यमिति निर्धारणं क्षेत्रेण

सूत्र

जो जस्सउ आहारो तत्तो उणंतु जोकरे। जहन्नेणेगसित्थाई एवं दव्वेणउ भवे १५॥ गामे नगरे तह रायहाणि

भाषा

यः कुर्यात् तेहथी जे ओछो आहार करे जघन्येन एक सित्थादिका जघन्य ऊणोदरी एक कणमात्र एवं द्रव्येण ऊणोदरी भवेत् ए द्रव्यऊणोदरीतप कह्यो १५ गामे गाम नगरे नगर तथा राज्याधान्यां राजधानीने विषे निगमे वणिग्वासे हिरण्याद्युत्पत्ति स्थाने आगरमे विषे पल्लीधूलि प्रकार

टीका

पथमोदय भवेत् तदेवभिधात्प्रमपचेत्रमाह कुन २ भिवाय साधर्म्मति यामिगुणान् यसतोतियामस्तस्मिन ग्रामे अथवा यसति सहरा अष्टादशविध कर इति ग्रामस्तस्मिन् अथवा कण्टकवाटकाहतोजनाना निवासोग्रामस्तस्मिन् ग्रामे पुननगर नास्तकरा सन्ति इति नगर तस्मिन् तथाराजधान्या राजाधोयते यस्या साराजधानो तस्यां राजधान्यां राजपोठस्थानेनिगमे प्रभूतवणिकनिवासे आकर स्वर्णाद्युत्पत्तिस्थान तस्मिन् आकरपल्लीवृक्षगह्वरादि गहनाश्रिता प्रान्तजनस्थान तस्यां पल्ल्यां खेट धूलि प्राकारपरिक्षिप्त तस्मिन् खेटे पुन कर्बट कुनगरन्द्रोण मुख जलस्थलनिर्गमप्रवेश तत् ऋतुकच्छा दिक पत्तन तु यत्र सर्वदिग्भ्योजना पतन्ति आगच्छन्ति इति पत्तन यथवा पत्तन रत्नखानिरितिलक्षण तदपि द्विविध जलमध्य वर्त्ति स्थलमध्यवर्त्ति च मटंब यस्य सर्वदिक्षु सार्द्धतीय योजनान्तर्ग्रामोनस्यात् तत्र तथा सम्बाध प्रभूतचातुर्वर्ण्यनिवास कर्बट शब्दादारभ्य सम्बाध शब्द यावत् द्वन्द्व समास कर्त्तव्य कर्पटश्च द्रोणमुख च पत्तन च मट च सम्बाधश्च कर्वटद्रोणमुखपत्तनमटम्बसम्बाधास्तेषां समाहार कर्वटद्रोणमुखपत्तनमटम्बसम्बाध तस्मिन् कर्वटद्रोणमुखपत्तनमटम्बसम्बाधे एतेषु स्थानेषु इत्यर्थ १६ पुन कुत्र इत्याह आश्रमपदे तापसाश्रमोपलक्षितस्थाने विहारे देवगृहे पुन सन्निवेशेयात्रार्थसमागतजनावासे समाज पथिक् घोष आभोरपल्लीसमाजश्च घोषश्च समाजघोष तस्मिन् समाजघोषे स्थल च सेनाया स्कन्धावारश्च

मूल

निगमेय आगार पल्ली । खेड कव्वड दोणमुह पट्टण मडंब संबाहे १६ ॥ आसमपए विहारे सन्निवेसे समाय घोसेय ।

भाषा

फले पासो सन्नयदुर्ग सामान्यनगर समुद्रनोवेलि आवते द्रोण जलथल पथते पट्टण रथकी पछोगामवेगलावसेमडव १६ आश्रमस्थाने पारवर्णलो कपणोवसे तापसादिक घणारहे विहारे देहरायथा छोड यात्रादिक पय आव्यां तेहनां १ पथोलोक घणामिल्या काढ घ राजरगोवालना ठाम तथ

टीका: स्थलसेनास्कन्धावारतस्मिन् स्थलसेनास्कन्धावारे तत्र स्थलं उच्च भूमि भागः सेनाचतुरङ्गकटकसमूहः स्कन्धावारः कटकोत्तरणनिवास सार्थक्रयाणक भृतां समूहप्रतीत एव तत्र सम्वर्त्तोभयत्रस्तजन समवायः कोट्टोदुर्गः सम्वर्त्तश्च कोट्टश्च सम्वर्त्त कोट्टं तस्मिन् सम्वर्त्त कोट्टे १७ पुनर्वाटेषु वृत्त्यादिपरिक्षिप्त गृहसमूहेषु रथ्यासुसेरिकासु च गृहेषु प्रसिद्धेषु च एतेषु स्थानेषु अवमोदर्यं क्षेत्र चेत्ततोभवति १८ अथ पुनः प्रकारान्तरेणक्षेत्रावमोदर्यमाह [पिंडाय०१९] षड्विधाक्षेत्रोवमोदरिकावर्त्तते पेटापेटाकाराचतु कोणापेटाकारेणगोचर्यां कृत्वा अवमोदरीकरणं एवं अर्द्धपेटाकारेणगोचरीकरणं गोमूत्रिकाकारेण पटङ्गवीथिका पतङ्गः शलभस्तस्यवीथिका उड्डयनं पतङ्गवीथिका अनियतानिश्चयरहिताशलभोड्डयनसदृशीत्यर्थं पुनः शम्बूकावर्त्ताशम्बूकः शङ्खस्तद्वत्

सूत्र: थल सेणाखंधारे सत्थे संवट्टकोट्टेय १७ ॥ वाडेसुव रत्थासुव घरेसुवा एव मित्तियं खेत्तं । कप्पइओ एवमाई एव खित्तेणऊ भवे १८ ॥ पेडाय अद्धपेडा गोमुत्ति पयंगवीहियाचेव । संबुक्कावट्टाय गंतु पच्चागया छट्ठा १९ ॥ दिवसस्स

भाषा: प्रदेश० चतुरंग सैन्यसहित स्कंधावार कटक उत्तरवानाठाम क्रयाणादि भरया साथभद्र एकठा लोक मिले गढ सहित गामते कोट १७ वाटकेषु सेरि कासु गृहेषु वाडी सेरी घरने विखे एतावत् प्रमाणं खेत्रं इत्यादिक खेत्रने विखे विचरवा भणी जाघो कल्पे गंतुकल्पते एवमादि खेते एतले खेत्रे विच रवा जाईस एवं खेत्रविषयं उनोदर्यं भवेत् ए खेत्रथकी ऊणोदरीनो भेद १८ पेटा चतु कोणा अर्द्धपेटा पेटीने आकारि अर्द्ध पेटीने आकारे गोमु त्रिका कारो गोमुत्राकारे गोचरी पतंगोत्पतन सदृशः पतंगने उडवानी परे गोचरीकरे संखावर्त्ता दीर्घप्रांजलि शंखना आवर्त्तनीपरिमाहियकी वाहिर वाहिर थकी माहि गोचरी करे भिक्षाचर्यागत्वा पुनरा गच्छति सरलधूर थकी ऊ इहालगे जाइं पाछोवले गोचरो करे ऐतउणोदरी कहीजे १९ दिव

भावत्ताभ्रमय यस्यां सायम्बूकावर्त्तासापि द्विविधा अभ्यन्तरशम्बूका बहि शम्बूकाश्च नाभिरूपक्षेत्रे मध्याद्विमयति सा अभ्यन्तरशम्बूकावर्त्ता विपरीता बाह्यात् मध्ये भागमनरूपा बहि शम्बूकावर्त्ता पञ्चमो पुन षष्ठी आयतम तु गत्वागमार्धेना आदित एव आयत सरल गत्वायस्यां गत्वागमोभयति सा षष्ठी ज्ञेयाइत्यर्थं एतासांभिक्षाचर्याणां अपि अवमोदर्यत्व ज्ञेयं यतो हि अवमोदर्यार्थं एवंईदृग प्रकारेणैव साधुराहारार्थं भ्रमति तस्मादात् दोष १८ अथकालावमोदर्यमाह (दिवसस्सपोरिसोण च उण्ह पि जत्तिओभवेकालो एव चरमाणोखलुकालोमाण मुणेयव्वो२०] दिवसस्य चतसृणा पौरुषीणा प्रहराणा यावत् घटिका चतुष्टयादिकोऽभिग्रहविषय कालोभवति एव अमुनाप्रकारेण कालेन परन्नायद्गति गोचयाचरत साधो खलुनिश्चयेन कालेन इति कालेन अवम कालादममन्तव्य २० पुन कालावमोदर्यं एव प्रकारान्तरेणाह (अहवातईयापोरिसोए ऊणाएघासमेसन्तो च उभागूणा एवा एव कालेणभोभवे २१) अथवा तृतीयाया पौरुषा ऊनायां किञ्चिद्धीनाया ग्रास आहार एषयन् गवेषणा कुर्वन् वा अथवा चतुर्भागेन ऊनायां तृतीयपौरुष्यां भिक्षां चर्यां साधोरस्ति कालेन अवमोदर्यं भवेत् २१ अथ भावावमोदर्यमाह (इत्थीवा पुरिसो वा अलङ्किओवाण लङ्किओयावि अन्नयर

पोरिसीण चउन्ह पिउ जत्तिओ भवे कालो । एव चरमाणो खलु कालोमाण मुणेयव्व २० ॥ अहवा तइया पोरिसीए

सच पौरुषीणां दिवसनो प्रमाण करे ▪ तसृणां यावत् अभिग्रह विषयकाल भवेत्चिन पोरसिनो जेतलो काल तेहनो प्रमाण करे एह कालेन चरन् निश्चयेन इम० विचरतु साधु निश्चयपणे कालमनोदय ज्ञातव्य एकालमान अनोदरी तपजाणवो २ अथवा तृतीयाया पौरुष्या अथवा त्रीजी पोरसिमाहि ऊणाया आहार एषयेत् ऊणी होइ तिवारे आहारभोगवेषणा करे चतुभागो नाया एव चउथोभाग ऊणोहोइ एवकाल मोदय भवेत्

अ० टीका
अ० १०
उ०-४

वयत्योवा अन्नयरेण वत्थेण'२२] |अन्नेण विसेसेण अन्नेण भावमणुमुयन्ते च एव चरमाणेखलु भावोमाण मुणेयव्य २२] पुमां एवं असुनामकारेण भावेन चरमाण: प्रतिमाक्षितत्वात् चरमाणस्वभिधाया अवमाणस्यसाधो: सत्त्निचयेन भावोवमाणं प्रतिभावोवमत्वं भावोवमोदर्यं मुणितव्य' चेय प्रत्यर्थ' भाविन अवमोदर्यं भावोगमोदर्य कीर्थ· यदा कश्चित् साधुरिति चिन्तयति 'प्रथमकपितताभाव एताइशं सरूपं धरणमुयन्ते प्रति अनुनमुयन् अत्यजन् एतादृश सरूपं भजन् मम' आहारंदास्यति तदाहं ग्रहीष्यामि नान्यथेति भाव: कीदाता कीटशं च माथं भ्रत्यजन् तदाह प्रत्यो स्त्रीवा पुरुषो वा अलकृत आभरणादि सहितोऽथवा अनलङ्कृतो' अलकारैर्रहित: अन्यतरवयस्यो अन्यतरवयस्यो बालतरुणस्थविरादिकानां तयाणा वयसामध्ये अन्यतरस्मिन् एकस्मिन् वयसिस्थित: अन्यतरेण पट्ट कूलादिवस्त्रेण उपलक्षित: २२ अन्येन विशेषेण कुपित प्रहसितादिनाऽवस्थाभेदेन उपलक्षित: वर्णेनश्वेतरक्ता दिनाउपलक्षित: भाव पर्वोत्र उक्तरूप अलङ्कारादिकं अमुञ्चन्ते अननुमुंचन् एतादृश: सन् मह्यं आहारंदास्यति तदालास्यामि इत्यभिग्रहधारणेन

उगाए घासमेसंतो । चउभागूणाएवाएवंकालेणोज अव २१ ॥ इत्थीवा पुरिसोवा अलंकिओवा णालंकिओवावि ।

अन्नयर वयत्योवा अन्नयरेणाच वत्थेणं २२ ॥ अन्नेणं विसेसेणं वन्नेणं भावमणुमुयंतेउ । एव चरमाणो खलु भावोमाणं

एकालयो अणोदरो तपजाणयो २१ स्त्रीवा पुरुष वा स्त्री अथवा पुरुष अलकृतो वा आभरण सहितो थको अनलकृतो वा अथवा आभरण नहीं पहि राक्षि अन्यतरो वयस्यो या|अनेरेवयइद अथवा बालक अन्यतरवस्त्रेण वा अनेरे वस्त्रे पो ले कालें २२ अन्येन विशेषेण अनेरे विशेषे हर्षे अथवा सिध वादे क्रुधादिना भाव सुभादिवेश अनुमुञ्चन् तथा वर्ण गोरा वर्णकाला वर्णभाव अणमुकातु थको एवं चरमाण: सत्कृतिचितपणी चालता भावनोदर्य

भावा यमादय अथ २३ अथ पर्याया यमादयमाह (दव्वेखित्ते काले भावम्मि आहिया भावा एए हिया मयरमो पज्जवचरमो भवेभिक्खू २४) द्रव्ये अशनपानादौ क्षेत्रे ग्रामनगरादौ काले पौरुष्यादौ भावे स्त्रीत्वादौ आख्याता कथितायेभावा पर्यायास्तैसर्वैरपि द्रव्यादिपर्यायै अवम अवमौदर्यं चरति ये तैव चरकोभवेत् पर्यायावमौदर्यंचरकोभवतीत्यर्थं एकसिक्थ कायाल्पाहारेण द्रव्यतोयमौदर्यं स्यादेव पर ग्रामार्द्धक्षेत्र पौरुष्यादौकालत स्त्रीपुरुषादिपु भावत कथ अवमौदर्य स्यात् उत्तर क्षेत्रकालभावादिष्वपि विशिष्टाभिग्रहग्रहणात् अवमौदर्यं स्यादेव इह पुन पर्यायग्रहणमप्यवमौदर्य क्षेत्रपर्यायावमौदर्य अथ २४ भिक्षाचर्यामाह [अट्ठविहगोयरग्ग तु तहासत्तेवएसणा अभिग्गहायजे अन्नेभिक्खा यरियमाहिया २५] भिक्षाचर्या वृत्तिसंक्षेपापरनामिका बाह्यातपस्या आख्याता अष्टविधोगोचराग्र प्राकृतत्वादष्टविधोग्रगोचरइति पाठ अग्रप्रधानो

सुणेयव्व २३ ॥ दव्वे खित्ते काले भावम्मि आहिया उ जेभावा। एएहि ओम चरओ पज्जवचरओ भवे भिक्खू २४॥
अट्ठविह गोयरग्गतु तहा सत्तेव एसणा। अभिग्गहाय जेअन्ने भिक्खायरियमाहिया २५॥ खीर दहि सप्पिमाईपणीय

जाणव्य एभाव ऊनोदरीतपदार्थी २३ द्रव्य द्रव्य क्षेत्र क्षेत्र काल काल भावादी आख्याता जे भावा भावने विषे भाव कह्या एते अवमौदर्य भवेत् ए भावे करीने जे साधु विहरे पर्याय चरको भवेत् ति ते पर्यायचरक साधु कहीए २४ अष्टविधा गोचराग्री चरी भेदा आठप्रकारे गोचरी कही तथा सातेपण सात्प्रकारा एषणा। सातप्रकार एषणा कह्या ये चाभिग्रहा अन्येपि ससट्ठा असंसट्ठा इत्यादिक अभिग्रह अन्येपि भिक्षाचर्या आख्याता अनेरा पणि अभिग्रह गोचरीना कह्या २५ दुग्ध दूध दधि दही सर्पि घृतादिक गलेह पान भोजन सरस पान भोजन परिवर्जन रसानांतुरसतु वर्जवु

गोचर· अष्टविधश्चासौ अग्रगोचरश्च अष्टविधाग्रगोचर अष्टौ अग्रगोचरगाभेदाइत्यर्थ पेटा १ अर्द्धपेटा २ गोमूत्रिका ३ पतङ्गवीथिका ४ अभ्यन्तर शम्बूकावर्त्तावाह्यशंबूकावर्त्ता च ५ आयतगन्तु प्रत्यागमा६ ऋजुगति ७ एव अष्टौभेदा ऋजुगति वक्रगतिक्षेपणात् ज्ञेया सप्त एषणा संसृष्टाद्य: संसट्ठा १ असंसट्ठा २ उद्धड ३ अल्पलेपिका ४ उद्गृहीता ५ प्रगृहीता ६ उज्झितधर्म्मा ८ एषा सप्तविधा एषणाज्ञेया च पुनरन्येऽभिग्रहा सन्ति अभिग्रहा यथा द्रव्यक्षेत्रकालभावादिचिन्तनेन भिक्षाग्रहणरूपा: द्रव्यतोमण्डकादिकं क्षेत्रतो गृहादौ देहलिकातोमध्येवहिर्वाकालतोभिक्षाचरेषु निवर्त्तितेषु भावती रुदन् हसन् वादास्यति तदाहारो ग्राह्य इति चिन्तनेन भिक्षाग्रहणं एवं भिक्षाचर्यया भेदास्तीर्थंकरै राख्याता कथिता इत्यर्थ:२५ अथ रसत्यागाख्यंतप आह [खीर दहि सप्पिमाई पणीयं पाणभोयण परिवज्जणं रसाणन्तु भणियं रसविवज्जणं २६] एतत् रसविवर्ज्जनं रसत्यागाख्यंतप आह एतत् रसविवर्ज्जन रसत्यागाख्यंतप स्तीर्थंकरैर्भणितं रसानां परिवर्ज्जनं रसपरिवर्ज्जनं क्षीरं दुग्धं दधि तथा सर्पिर्घृतं क्षीरं च दधि च सर्पिश्च क्षीर दधि सर्पिंषि एतानि आदिर्यस्य स तत् क्षीर दधि सर्पिरादि प्रणीत पुष्टिकारक पानं पानयोग्याहारं भोजनं भक्तं यस्मिन्पीते भुक्ते सति बहु कामोद्दीपनं स्यात् तस्य परिवर्जनं रसत्यागाख्यतप उच्यते प्राकृतत्वात् षष्ठीस्थाने द्वितीया पाणीय पाणभोयणं परिवज्जणं इत्यत्रज्ञेया २६ अथ काय क्लेश तप आह [ठाणा वीरासणाईया जीवस्सउसुहावहा उग्गाजहा परिज्जंति कायकिलेस विहायियं] तत्कायक्लेश तपोव्याख्यातं तदिति किं यत्र

पाणभोयणं। परिवज्जणं रसाणंतु भणियं रस विवज्जणं २६॥ ठाणा वीरासणाईया जीवस्सओ सुहावहा। उग्गा

भणितं रस विवर्जनं रसपरित्याग तप कह्यो २६ स्थानानि वीरासनादीनिका उस गवीरा सणपणी जीवस्य सुखावहानि जीवने सुखना कारणहार

वीरासनादीना स्थानानि कायस्थिति विशेषाणि यथा धायन्ते क्रियन्ते वीरासन गुरुडासनलगुडासनादीनि यथा क्रियन्ते तथा कायक्लेश स्यात् कथ भूतानि स्थानानि जीवस्य सुखावहानि कर्मनिर्मूलनत्वमाणि पुन कीदृशानि उग्राणि भीषणानि यैस्ते पुरुषै कर्त्त मशक्यानि प्राकृतत्वाच्छिङ्गव्यत्यय २७ अथ सलीनतामाह [एगन्तमणावाए इत्थीपसु विवज्जिए सयणासणसेवणया विवित्तसयणासण २८] एकान्ते जनैरनाकुले पुनरनापाते न विद्यते आपात स्त्री पुरुषादीना आगमन यत्र तत् अनापात तस्मिन् पुन पसुपण्डकादि विवर्जिते आरामोद्यान शून्य गृहादिस्थाने सयनासनसेवनया कृत्वा सलीनता ख्य तपो ज्ञेय इत्यर्थ २८ [एसो बहिरङ्गतवो समासेण वियाहिओ अभिन्तरोतवोएत्तो वुच्छामि अणुपुव्वसो २९] एतत् पूर्वोक्त समासेन सक्षेपेणबाह्य तपोव्याख्यात एत्तोइति इतोऽनन्तर आभ्यन्तरतपोवक्षे अनुक्रमेण१९ (प्रायश्चित्त १) पापस्यालोचनपसोङ्गीकरण प्रायश्चित्त तथा विनयो

जहा धरिज्जति कायकिलेसतमाहिय २७॥ एगत मणावाए इत्थी पसु विवज्जिए। सयणासण सेवणया विवित्त सयणासण २८॥ एसो बाहिरग तवो समासेण वियाहिओ। अभि तरो तवो एत्तो वोच्छामि अणुपुव्वसो २९॥

उग्र दुकरतरा यथा धार्य ते उग्र दु कर जिम अभिग्रह करे काय क्लेशतप आख्यात एकाय क्लेश तप कह्यो २७ एकात अनापाते स्त्री पशुविवर्जित एकात शून्यतोने अव्याप स्त्रीयादिकनो व्यापनथी तहाकोइतु आवतु नथी स्त्रीपशुइ रहित शयनासनसेवनया शयनउपाश्रय आसनपाटि प्रमुख विवित्त शयनासन एकात शसनासन सलीनता तप २८ एष बाह्यतप एपूठे कह्या ते बाह्य तप सक्षेपेण व्याख्यात सखेपे करोने कह्यो अभ्यतरतप इत पयात् वर्द कहुछ अभ्यतरतप६ भेद एतलानतर अनुक्रमेण अनक्रमे २९ पाप आलोइ तपन लेवु वडानो विनय करोवु वैयावृत्य आचार्यादिकनु

वृद्धानांअभ्युत्थानादिकरण वेयावृत्यंवृद्धाना आहारोपधायानीयदान तथैव स्वाध्याय:स्वाध्यायस्य चतुर्विधस्य करणतथा ध्यानं धर्म्म शुक्लादिचिन्तन उत्सर्ग: कायोत्सर्गस्य करणं अपि च पदपूरणे ३०] अथ विस्तरेण षड् विधस्यभेदानाह (आलोयणारिहादीय पायच्छित्तं तु दसविह जेभिक्खूवहइसम्मं पायच्छित्तं तमाहियं ३१] तत् पायश्चित्तं आख्यातं तत् किं यत् भिक्षु: साधुर्दशविध आलोचनार्हादिक सम्यक् वहति कायया सेवते तत् प्रायश्चित्ताख्यं आभ्यन्तरं तपआख्यातं तीर्थकरैरुपदिष्ट आलोचनार्हादिकं किमुच्यते आलोचन गुरोरग्रे पाप प्रकाशनं तस्मै अर्हतियोग्यो भवतीति आलोचनार्हं तप: क्रियानुष्ठानादिका यतोहि पाप आलोचनात शुध्यति आलोचनार्हं आदिर्यस्य तत् आलोचनार्हादिकं दशविधं यथा आलोयण १ पडिकमणे २ मीस ३ विवेगे ४ तहावि उस्सग्गे ५ तव ६ वेय ७ सूल ८ अणट्ठियाय ९ पारंचिए१० चेव ३१ अथविनय भेदा नाह (अब्भुट्ठाणं पञ्जलिकरण तहेवासण दायण गुरुभत्तिभावसुस्सूसाविणओ एसवियाहिओ२ ३] अभ्युत्थान गुरून् आगतान् दृष्ट्वा स्वकीयस्थानात् ऊर्द्ध्वी भवनं अञ्जलिकरणं करद्वययोजनं तथैव

पायच्छित्तं वि[illegible]ओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ। झाणं उस्सग्गोविय अब्भिंतरओ तवोहोइ ३०॥ आलोयणा रिहादीय पायच्छित्तंतु दसविह जेभिक्खू वहई सम्मं पायच्छित्तं त माहियं ३१॥ अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवा सणादायणं।

[illegible]रावत्र तथैव स्वाध्याय. तिमज सज्झाय ५भेद ध्यानं ध्यानधरवु कायोत्सर्ग काउस्सगनु करवु एष: अभ्यंतरतप: ए अभ्यंतरतप ६ प्रकारे जाणवो ३० [illegible]रुसमीपे आलोचनाग्रहणं गुरुसमीपे आलोवे पापने प्रायश्चित्तं दशविध प्रायश्चित्त दशे प्रकारे य: भिक्षुर्वहति सम्यक् जे साधु भली परिकायाइसेवे प्रायश्चित्तं आख्याततें प्रायश्चित्तनामा अभ्यंतर तप कह्यो ३१ गुरुणा अभ्युत्थानं गुरुप्रमुख वडाने उभाथावुं तेमामये अंजलिकरण हाथजोडवुं तथैवा

आसनदापन गुरोरुपरिभक्तिभाव सुश्रूषागुरोरादेशकरण एष विनयोव्याख्यात इति विनयनामक पञ्चविध तपउक्तमित्यर्थ ३२ अथ वैयावृत्य कथ्यते [आयरियमाइयमि वेयावच्च मिदसविहं आसेवण जहाथाम वेया वच्चतमाहिय ३३) तद् वैयावृत्य आख्यात तत् इति किं यत् यथाथाम इति यथा बल आचाया दौविषयेदशविधे वैया वृत्य उचिताहारादिदान तथा आसेवन तत् वैया वृत्ताख्य तप कथितमित्यर्थ आचार्यादयोदश वैया वृत्ययोग्या तेच अमीआचार्य१ उपाध्याय२ स्थविर३ तपस्वी ४ ग्लान ५ साहण ६ साधर्मिक ७ कुल ८ गण ९ सङ्घ १ एतेदशवैयावृत्यार्हा ३३ अथ स्वाध्यायमाह [वायणा पुच्छणा चेव तहेवपरियट्टणा अणुप्पेहाधम्मकहा सज्झाओपञ्चहाभवे ३४] वाचनापृच्छनापरिवर्त्तनाअनुप्रेक्षाधर्मकथा इति

गुरुभत्ति भाव सुस्सूसा विणओ एस वियाहिओ ३२ ॥ आयरिय माईए वेयावच्च मि दसविहे । आसेवण जहा थाम

वेयावच्च तमाहिय ३३ ॥ वायणा पुच्छणा चेव तहेवय परियट्टणा । अणुप्पेहा धम्म कहासज्झाय पचहा भवे ३४॥

सनदान तिम वली तेहने आसण पु छणादिवे सवादेवो गुरुनी भक्तिभाव शुश्रूषा गुरु उपरि भक्तिभाव गुरुनो आदेश प्रमाण कर एष विनयरूप तप भगवता व्याख्यात विनयरूप भगवते कह्यो ३२ आचायादिषु आचार्यादिकने विषे दशविध वैयावृत्ते अशनादिक आणी देवासेवे यावच दसप्रकारने विषे आसेवा यथा बलेन आसेवा वैयावच सबधी अनुष्ठान करवु आपणा बलसारू तद्वैयावृत्य आख्यात ते वैयावच्च कह्यो भगवते ३३ वाचना पृच्छनाचैव गुरुसमीपे वाचना लेवो १ सदेहनु वली पृछवू २ तथैव परिवर्त्तना तिमवली शास्त्रभणवानु वार २ गुणवु ३ अनुप्रेक्षा सूत्रादिका र्थोचिन्तवना ४ धर्मोपदेश धर्मोपदेशदेवो ५ अथ स्वाध्याय पञ्चधाभवेत् सज्झाय पाचप्रकार रूप अभ्यतर तपकह्यो ३४ आर्त्त रौद्रध्याने वर्जयित्वा

टीका

स्वाध्यायः पञ्चधाभवति एतेषा अर्थस्तु पूर्वं कृतएवास्ति ३४ अथ ध्यानमाह [अट्टरुद्दाणि वज्जित्ताझाएज्जासुसमाहिए धम्मसुक्काइं झाणाइ झाण त तु बुहावए ३५] बुधाः पण्डितास्तदातद्ध्यान वदन्ति तदाइति कदा यदा सुसमाहितः सम्यक् समाधि युक्तः साधुरार्त्तरौद्रे दुर्ध्यानेत्यक्ता धर्म्म शुक्लध्याने ध्यायति तदाध्यान ध्यानाख्यन्तपोज्ञेयमित्यर्थः ३५ अथ कायोत्सर्गतप उच्यते (सयणासणठाणेवाजेउभिक्खू णवावरे कायस्सविउस्सग्गो छट्ठोसोपरि कित्तिओ ३६) तत् षष्टं कायोत्सर्गाख्यं तपः परिकीर्त्तितं तत् किं यत्र सयनासनस्थानेभिक्षु साधुर्नव्याप्रियतेनव्यापार कुर्यात् शयनेस्वापे आसने उपवेशने स्थानऊर्द्धस्थितौ यथा शक्तिकायस्य व्युत्सर्गे मम त्वस्यत्यागः स्यात् तदाकायोत्सर्गाख्यं तपोभवति ३६ (एवं तवं तु दुविहं जे सम्म आयरेमुणी सेखिप्पं सव्वसंसाराविप्पमुच्चइ पण्डिएत्तिबेमि ३७] योमुनिर्यः साधु एवं अमुनाप्रकारेण बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विविधं तपः सम्यग् आचरति स पण्डित

सूत्र

अट्ट रुद्दाणि वज्जित्ता झाएज्जा सुसमाहिए। धम्म सुक्काइं झाणाइं झाणंतंतु बुहावए ३५। सयणासण ठाणेवा जेउभिक्खू नवावरे। कायस्स विउस्सग्गो छट्ठोसोपरिकित्तिओ ३६॥ एवंतवतु दुविहजे सम्मं आयरे मुणी। सेखिप्पं

भाषा

आर्त्तध्यान दु खथी उपनुं रौद्रध्यानतेवे वर्जीने ध्यायेत् सुसमाधित ध्यावे दृढचित्तथको धर्मध्यान शुक्लध्यान च ध्यायेत् धर्मध्यान ध्यावे अने कर्मनो छणणहारते शुक्ल ध्यानध्यावे ध्यानतप कहोजे ते एवे ध्यानरूप अभ्यतर तप काह्यो बुद्ध तीर्थं करे ३५ शयने आसने अभ्युत्थाने वा स्थाने विखे वेस वाने विखे उभारहवाने विखे य भिक्षूकायादि व्यापारा न करोति जे साधू हालवुं चालवुं न करे कायायाः व्युत्सर्गः कायानु वोसिराववुं चेष्टादिक थको निवर्त्तवुं षट्स अभ्यंतर तप छठो ते अभ्यंतर तप वखाण्यो ३६ एव बाह्याभ्यंतरं तपः द्विविधं इम बाह्य तप अभ्यंतर तप बिहुं भेदे य

स्तावन्नोमुनि क्षिप्र शीघ्र ससारात् चतुर्गति भ्रमणात् विशेषेण प्रमुच्यते अत्र स्कन्दककथादृति अह ब्रवीमि श्रीसुधर्मास्वामीजम्बूस्वामिन प्राह ३७ इति तपोमार्गाध्ययन इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणि शिष्यलक्ष्मीवल्लभगणि विरचिताया तपोमार्गाध्ययन त्रिशत्तम सपूर्ण ३० अथैकत्रिशत्तम प्रारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने तपोमोक्षस्य मार्गत्वेन प्रकाशित अथ च तपसुचारित्रवत साधोरेवपार्श्वे सम्यक् प्राप्यते इत्यनेनाध्ययनेन सम्बन्ध (चरणविहमपवक्खामिजीवस्स उसुहावह जचरित्तावहूजीवातिन्नाससारसागर१) सुधर्मास्वामीवदति हे जम्बूस्वामिन् अयाह चरणविधि चारित्र विधि चारित्रस्य विधान प्रवक्ष्यामि कीदृश चरणविधि जीवस्य भव्यजीवस्यसुखावह सुखपूरक य चारित्रविधि चरित्वा अङ्गीकृत्यबहवोजीवा समारसागर तीर्णा १ (एगओ विरइ कुज्जा एगओय पवत्तण असञ्जमे नियत्तच सञ्जमेय पवत्तण २) साधु एकत एकस्मात्स्था

सव्वससारा विप्पमुच्चइ पडिएत्तिबेमि ३७ ॥ तवमग्गज्झयण सम्मत्त ३० ॥ चरणविह पवक्खामि जीवस्सउ सुहा वह ज चरित्ता बहुजीवा तिन्ना ससारसागर १ । एगओ विरइ कुज्जा एगओय पवत्तण असजमे नियत्तच सजमेय

सम्यक आचरेत् मुनि जे भलो परि आचर साधु स क्षिप्र सर्वससारात् ते शीघ्र जतावलो सर्व च्यार गति थकी विप्रमुच्यते पडित इति ब्रवीमिथि गेपे मु काद ते साधु सुधर्मा स्वामी जबूप्रति कहे ३७ इति तपोमार्गाध्ययननो अर्थ सपूर्ण थयो ॥ ३० ॥ चरणविधि प्रवक्ष्यामि चारित्रनोविधि मार्ग कहीसि जीवस्य सुखावह जीवने सुखनो आपणहार य अगीकृत्य बहव जीवा जे आदरीने घणा जीव तीर्ण ससार सागर तथा च्यार गति रूप ससारसमुद्र०१ एक विरति कुर्यात् एक वोलथको विरति निवर्त्तवो करे ते केहा एक स्थल प्रवर्त्तते एक वोलने विषे प्रवर्त्तिवू करे ते केहा असयमा

नात् विरतिं कुर्य्यात् निवर्त्तनं कुर्य्यात् एकातएकस्मिन् स्थाने प्रवर्त्तनं कुर्य्यात् सार्वविभक्तिकास्तस् इत्येके इत्युक्तत्वात् एकतोविरतिं कुर्य्यात् इत्यत्र पञ्चम्यर्थेतस् नार्थेकात: एकस्मिन् स्थाने प्रवर्त्तनं कुर्य्यात् इत्यत्र सप्तम्यर्थे तस् प्रत्यय: निवर्त्तनप्रवर्त्तनयो: स्थानमाह असंयमे इति असंयमात् हिंसादि आश्रवात् निवृत्तिं कुर्य्यात च पुन संयमे सप्तदशविधे च प्रवर्त्तनं उद्यमं कुर्य्यात् २ [रागद्दोसेयदोपावे पावकम्मपवत्तणे जेभिक्खूरुंभई निच्चंसेन अच्छइमण्डले ३) योभिक्षु: साधुरागद्वेषौनिरुणद्धि कथंचित् उदय प्राप्तौसतौज्ञानेनत्वरितं अत्यन्तंनिरस् करोति स साधुभिक्षुर्मण्डले चातुर्गतिकसंसारेन अच्छइ इति न तिष्ठति संसारान्मुक्तोभवति ३ (दण्डाणं गारवाण च सल्लाणच्चतियन्तियं जे भिक्खू चयईनिच्चं सेन अच्छइमण्डले ४) योभिक्षुर्दण्डानां च पुनर्गारवाणां च पुन: शल्यानां प्रत्येकं त्रिकं १ त्यजति स्वस्य आत्मनिनधारयति स भिक्षु: संसारेनतिष्ठति पूर्ववत् दण्डयते चारित्रधनापहारेणदरिद्र:

पवत्तणं २। रागद्दोसेय दो पावे पावकम्म पवत्तणे जे भिक्खू रुंभई निच्चंसेन अच्छइ मंडले ३॥ दंडाणं गारवाणंच सल्लाणंच तियं २ जे भिक्खू चयई निच्चंसेन अच्छइमंडले ४॥ दिव्वेयजे उवसग्गे तहातेरिच्छ माणुसे जे भिक्खू

निवर्त्तै असंयमथिं सारिका थकी निवर्त्तवुं संयमेच प्रवर्त्तनं संयम भेदने विषे प्रवर्त्तवुं २ राग द्वेषौ द्वावपि पापरूपौ रागद्वेष विहुं पाप पाडुय पापकर्म प्रवर्त्तकौ पापकर्म मिथ्यात्वादिकना प्रवर्त्तावणहार य: भिक्षुरुध्यति नित्य जे साधु रूंधे अलगाकरे सन तिष्ठति मंडल ते नर हे मंडल संसार माहि भमे नहो ३ दंडानां मन वचन कायाना दंडनोगारवाणांच रिद्धिरस शाता गारवानो शल्यानां त्रिक त्रिक मायानियाण मिथ्यात्व शल्यनो त्रिकय भिक्षू त्यजति नित्यं जे साधुत्यजे सदा सनतिष्ठति संसारमंडले तेनरहे मंडल संसार माहि ४ देवकृतोपसर्गान् देवताना कीधा हास्यादि

क्रियते आत्मा एभिरिति दण्डा दुरध्यवसायरूपात्रिक मनोवाक कायेर्दुष्टाध्यवसायचिन्तनत्वेनत्रि प्रकारक एतद्दण्डत्रिक तथा गुरोर्लोभादि सहितस्य चित्तस्य भावा अध्यवसायानिगौरयाणि तथा त्रिक ऋद्धिगौरवरसगौरवसातागौरवरूप तथा शल्यते बाध्यते जन्तुभिरिति शल्यानि तेषा त्रिक मायानिदानमिथ्यादर्शनशल्यत्रिक ज्ञेय एतेषा योनिषेधक समुनिर्मुक्तिगामोत्यर्थ (द्वितीयजेउवसग्गे तहातेरिच्छमाणुसेजेभिक्खूसहई निच्च सेन अच्छइमण्डले ५] योभिक्षुर्दिव्यान् देवै कृतान् तथातैरश्चान् तिर्यग्भि कृतान तथामानुषकान् मनुष्यै कृतान् उपसर्गान् सम्यक कषायाभावेनसहते समण्डले ससारनतिष्ठति ५) विगहाकसायसन्नाण झाणाणं च दुयं तहाजेभिक्खूवज्जई निच्च सेन अच्छइमण्डले ६) योभिक्षुर्विकथा चतुष्क राज्यदेश भोजन स्त्रीणा वर्णनारूप क्रोधमानमायालोभरूप कषाय चतुष्क सज्ञाचतुष्क आहारभयपरिग्रहमैथुनरूपविकारचिन्तन रूप ज्ञेय च पुन ध्यानयो र्द्विक आर्त्त रौद्ररूप त्यजति स साधुससारनतिष्ठति प्राकृतत्वात् ध्यानानां इति बहुवचन ध्यानानां चतुष्टयेवर्जनीय ध्यानद्विकय ज्ञेय तस्मात द्वयोरेवग्रहण ६ (वएसुइन्दियत्थेसु समिइसुकिरियासुय जेभिक्खूजयइनिच्च सेनअच्छइमण्डले ७) योभिक्षुर्व्रतेषु प्राणातिपातविरत्यादिषु तथा

सहई सम्म सेन अच्छइ मडले ५। विगहा कसाय सन्नाणं झाणाणंच दुयं तहा जे भिक्खू वज्जई निच्च सेन अच्छइ

उपसर्ग तथा तिर्यग मनुष्याना तिर्यचना क्रोधा अने मनुष्यना कीधा उपसर्ग य भिक्षु सम्यक सहते जे साधु भली परिसहे सन तिष्टति ससार मडले तेन रहे स सारमाहि५ विकथा कषाय स ज्ञाना विरुद्धकथा तेविकथा४ क्रोधादिकषाय४ ध्यानानाचद्वितय तथा ध्यान२ आर्त्तध्यान रौद्रध्यानवली य भिक्षुवर्जति नित्य जे साधु वर्ज्जे सदाइ सन तिष्टति मडले ते रहे नही स सारमाहि ६ व्रतेषु इन्द्रियार्थेषु पचसमिति य पाचसमितिनेविषे क्रियायु पचाइय

इन्द्रियार्थेषु-शब्दादिषु तथा समितिषु पञ्चसु तथा क्रियासुकायिक्यधिकरणिकी प्राद्वेषिकी पारितापनिकीप्राणाति पातिकीषु पञ्चसुयतते यत्नं कुरुते हे यो पाईय वृद्धिं कुरुते समण्डलेनतिष्टति ७ [लेसासुछसुकायेसु छक्के आहारकारणे जेभिक्खू जयईनिच्चंसेन अच्छइमण्डले ८] यः साधु षट् लेश्यासुपुनः षट् सुकायेषु तथा आहारकरण षट्कैयतते यथा योग विपरीतलेश्यानां निरोधेन सम्यलेश्याना धारणेन षट् कायानां रक्षणेन षड्भिः पूर्वोक्तैः कारणैः आहारकरणेन यत्नं कुरुते स साधुमण्डलेनतिष्टति ८ [पिण्डोग्गह पडिमासु भयठाणेसु सत्तसु जेभिक्खू जयं निच्चं सेन अच्छइमण्डले९] योभिक्षुः संसृष्टादिषु सप्तसुपिण्डावग्रह प्रतिमासु सप्तसुपालने यत्नं कुरुते इहलोकादिसप्तसु भयस्थाने भयस्याऽकरणे स्थैर्यं कुरुते ससाधुर्मण्डलेनतिष्टति९

सूत्र

मंडले ६। वएसु इंदियत्थेसु समिईसु किरियासुय। जे भिक्खू जयई निच्चंसेन अच्छइ मंडले ७। लेसासु छसु काएसु छक्के आहार कारणे जे भिक्खू जयई निच्चंसेन अच्छइ मंडले ८। पिंडोग्गह पडिमासु भयठाणेसु सत्तसु जे भिक्खू जयई निच्चंसेन अच्छइ मडले ९॥ मएसु बंभगुत्तीसु भिक्खूधम्मंमि दसविहे जे भिक्खू जयई निच्चं

भाषा

क्रियाआदिदेइक्रियाने विखे य भिक्षू यतते नित्य जे साधुयतन करे सदा सनतिष्टतिमडलैतं रहेनहीं स सारमाहि७ लेस्यासुषट्सु कायेषुछलेस्यानेविखे छकायनेविखे षड्धाआहारकारणे छ आहारना कारण तेहने विखे य भिक्षू यतते नित्य जे साधुयत्नकरे सदासनतिष्टति मंडले तेन भमे स सारमाहि८ पिंडो उग्रहप्रतिमासु स सठादिक आहार लेवाना अभिग्रहनेविखे भयस्थानेषु सप्तसु इहलोकादि७भयस्थानकनेविखे यःभिक्षू यततेनित्य जेसाधू जतन करे सदासन तिष्टति मडले तेनभमे स सारमाहि९ मदेषु जातिम दादिक८मदनेविखे ब्रह्मचर्य गुप्तिषु ब्रह्मचर्यनववाडिने विखे भिक्षूधर्मेदसविधे साधुनो

[सयेसुबभगुत्तोसुभिक्खु धम्म मिदसविहे जेभिक्खू जयई निच्च सेन अच्छइमण्डले १०] योभिधर्मदेषु जात्यादिषु अष्टसुतथा ब्रह्मगुप्तिषु नवसु ब्रह्मचर्यहन्ध रक्षणयाटिकासु तथा दशविधेधाल्यादिषु साधुधर्मषु यतत सदाना परिहारे ब्रह्मगुप्तीना रक्षणे उद्यम कुरुते स ससारेनतिष्ठति १० [उवासगाण पडिमासु भिक्खुय पडिमासुय जेभिक्खूजयई निच्च सेन अच्छइ मण्डले ११] य साधु उपासकाना श्रावकाना एकादशसु प्रतिमासु तथाभि चूणां द्वादशस प्रतिमासुयत्न कुरुते याहप्रतिमाणा सम्यक ज्ञानेन उपदानेभिषु प्रतिमाणा सम्यक प्रालापालनेयत्न कुरुते स ससारेनतिष्टति प्रतिमाभिग्रहविशेषा उच्यन्ते ११ [किरियासुभूयगामेसु परमाहम्मिए सुय जेभिक्खू जयई निच्च सेन अच्छइ मण्डले १२] योभिषु क्रियासु कर्मबन्धन भूतासु चेष्टासु साधा नर्थादिभेदेन त्रयोदशसु तथा भूतग्रामेषु भूताना प्राणिना ग्रामा सघाता स्थानानीतियावत् तेषु भूतग्रामेषु तथा चतुर्दशसु एगिन्दियसहमियद्वा

सेन अच्छइ मडले १० ॥ उवासगाणपडिमासु भिक्खूण पडिमासुय । जे भिक्खू जयई निच्च सेन अच्छइ मंडले ११
किरियासु भूयगामेसु परमाहम्मिएसुय । जे भिक्खू जयई निच्च सेन अच्छइ मडले १२ । गाहासोलसएहि तहाअस्स

धर्मधमादि दशप्रकारे य भिषू यततनित्य ज साध जतनकरे सदासन तिष्टति मडले ते स सारमाहि भमे नही १० उपासकाना प्रतिमासु श्रावकानी दसश्रवयादि प्रतिमा ११ भेदने विखे भिषूना प्रतिमासुथ साधनी १२ प्रतिमाने विखे य भिक्खू यततेनित्य जे साधू यतन करे सदासन तिष्टति मडने ते स सारमाहि भमे नही ११ क्रियासु भूतग्रामेषु अनर्थ दडादि१३ क्रियाने विखे भूतग्राम१४ भेद जीवने विखे परमाधार्मिक प अम्बादिक१५ भेद परमाहम्मीने विखे ■ भिषू यततेनित्य जेसाधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले ते स सारमाहि भमे नही १२ गाथाध्ययन सुयकृते गाथाध्य

मूल

भाषा

परमाधार्मिकाणा रत्यादिषु तथा परमाधार्मिकेषु पञ्चदशसु अम्बेअम्बरिसोचेवेत्यादिषु यत्नं कुरुते त्रयोदशक्रियाणां परिहारे चतुर्दशभूतग्रामाणा रचणे परिज्ञानात्प्रत्याख्यानाभ्यां निवर्त्तने उद्यतो भवति स ससारेनतिष्टति १२ (गाहासोलसएहिं तहा असंजमंमिय जेभिक्खूजयईनिच्चंसेन अच्छइमण्डले १३) योभिक्षुर्गाथापोडशकेषु तथा असयमे सप्तदशविधेपिनित्य यतते यत्नं कुरुते समण्डले न तिष्टति गीयते कथ्यते स समयपरसमय रूपोर्थोयाभिस्तागाथा स्तासां पोडशकानि सूत्रकृताङ्गे अध्ययनपोडशकानि तेषु गाथापोडशकेषु सप्तमी बहुवचने तृतीया बहुवचनं प्राकृतत्वात् सूत्रकृतां गाध्ययनानिपोडश सन्ति सप्तसप्तियालीयमित्यादि असंयमस्य सप्तदशभेदा सन्ति पञ्चाश्रवाद्विरमण पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायजयः दण्डत्रय विरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेद एतस्माद्विपरीतोसंयमोपि सप्तदशविधः तस्मात्सप्तदशविधे असयमे योन प्रवर्त्तते स ससारेनतिष्टति १३ [बम्भंमिनायज्झयणेसु ठाणेसु असमाहिए जेभिक्खूजयईनिच्चंसेन अच्छइ मण्डले १४] योभिक्षुर्ब्रह्मणि ब्रह्मचर्येऽष्टादशविधेदिव्योदारिककामैद्भुनानां कारणकारणानुमति भेदात् तथा मनो वाक्काये नाष्टादशप्रकारे तथा ज्ञाताध्ययनेषु एकोनविंशतिसंख्येषु उत् क्षिप्तादिषु तथा असमाधिस्थानेषुविंशति संख्येषु यत्नं कुरुते स ससारेनतिष्टति विंशत्य

जमभिय । जे भिक्खू जयई निच्चं सेन अच्छइ मंडले १३ । बभंमि नायज्झयणेसु ठाणेसु असमाहिए । जे भिक्खू

नसुगडांगना प्रथम श्रुत स्कंधने विखे तथा असंजमादिषु तिम वली पृथिवी असंयमादि १७ भेद असंयमने विखे य साधुः जे साधु यततेनित्य यतन करे सदासन तिष्टति मंडले ते संसारमाहि भमे नही १३ ब्रह्मचर्येज्ञाताध्ययने उदारिकादि ब्रह्मचर्यनेविखे ज्ञाताना अध्ययननेविखे अठारेविध कन्दर्प विंशत्य समाधिस्थानकेषु असमाधिस्थानक विसने विखे ग भिक्षू यततेनित्यं जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले तेन भमे संसारमाहि १४

समाधिस्थानानि समवायाग सूत्रे उक्तानि १४ [एगवीसाए सबलेसु बावीसाएपरीसहे जेभिक्खूजयइनिच सेन अच्छइमण्डले १५] योभिक्षूरेकविंशति सबलेष च पुनर्द्वाविंशति परीषहेषु यत ते स साधु ससारे न तिष्ठति शबलयन्ति कर्बुरयन्ति चारित्र ये ते शबला अशुभ क्रियारूपास्तेषु शबलेषु हस्तकर्मादिषु य परिहार बुद्धि धत्ते द्वाविंशति परीषहास्त द्वितीयाध्यने पूर्वमेव कथिता स्तेषा सहनेस्थैर्यं कुरुते समण्डलेन तिष्ठति १५ [तेवीसे सूयगडेसु रुवाहिएसु सुरेसु यजे भिक्खू जयइ निच्चसेन अच्छइ मण्डले १६] यो भिक्षु सूत्र कृतेषु सूत्र कृताध्ययनेषु त्रयोविंशति सख्येषु तथा रूपाधिकेष सरेष रूप एकादश तंन अधिका रूपाधिकास्तेषु रूपाधिकेषु त्रयोविंशति अध्ययनानि सूत्र कृताङ्गस्य वर्त्तन्ते तानि यदा एकेन अधिकानि भवन्ति तदा चतुर्विंशति सख्याकानि भवन्ति तेषु चतुर्विंशति सुरेषु भुवनपत्यादिषु अथवादेव ऋषभादि चतुर्विंशति सख्येषु यत्न कुरुते एतेषु

जयई निच्च सेन अच्छइ मडले १४। एगविसाए सबलेसु बावीसाए परीसहे। जे भिक्खूजयई निच्च सेन अच्छइ

मडले १५। तेवीसइ सुयगडे रुवाहिएसु सुरेसुय। जे भिक्खू जयई निच्चसेन अच्छइ मडले १६॥ पणवीस

एकविंशति शबलेष चारित्रिका यत करते२१ सबलने विषे द्वाविंशति परीषहे क्षुधादि बावीस परिसहने विषे य भिक्षू यततेनित्य जे साधु यतन करे सदासन तिष्ठति मडले ते स सारमाहि भमे नही १५ त्रयोविंशति सूत्रकृतंगेषु गडांगना अधययनते वीसने विषे१० भवनपति८ व्यं तर रूपाधिक सुरव यातिषी १ वेमानीक २४ने विषे अथवा २४ तीर्थंकरने विषे य भिक्षू यततेनित्य जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले ते स सारमाहि भमे नही १६ पंचविंशतिभावनासु महाव्रतनीर५ भावनाने विषे दशाश्रुतस्कध कल्प व्यवहारना २६ उद्देशकासने विषे य भिक्षू यततेनित्य

ज्ञानोपयोगं कुरुते समण्डलेन तिष्टति १६ [पणवोसंभावणाहि उद्देसेसुदसाइण जेभिक्खूजयईनिचंसेन अच्छइमण्डले १७] योभिक्षुः पञ्चविंशति भावनासु पञ्चमहाव्रतविषयेईर्यासमित्यादिसाधनारूपासु तथादशाईण इति दशाश्रुतस्कन्धकल्प व्यवहाराणां उद्देशेषु षड्विंशति संख्येषु यत्नं कुरुते समण्डलेनतिष्टति १७ [अणगारगुणेहिं च पकप्पियतहेवय जेभिक्खूजयईनिचंसेन अच्छइमण्डले १८] योभिक्षुः सप्तविंशति सख्येषु अनगारगुणेषु तथैव प्रकल्पे आचाराङ्ग सूत्रेशस्त्रपरिज्ञानाद्यष्टाविंशध्ययनात्मके साधोः प्रकृष्टाचारे आचाराङ्गे यत ते सम्यगभ्यासं कुरुते स संसारेनतिष्टति १८ (पावसुयप्पसङ्गेसु मोहठाणेसु चेवय जेभिक्खूजयईनिचं सेन अच्छइमण्डले १९) यो भिक्षुरेकोनत्रिंशत् पापश्रुत प्रसङ्गेषु तथात्रिंशन्मोहस्थानेष यततेस संसारेन तिष्टति पापो पादानानि श्रुतानि पापश्रुतानि तेषु प्रसङ्गा स्तथाविधा शक्ति रूपाः पापश्रुत प्रसङ्गास्तेषु अष्टाङ्ग निमित्तादि शास्त्राभ्यासेषु मोहो मोहनीय कर्म तत्तिष्टति येषु तानि मोहस्थानानि तेषु त्रिंशत् सख्येषु निवृत्तिं कुरुते १९ [सिज्झायगुणजोगेसु तित्तीसासायणासु यजेभिक्खूजयई

भावणाहि उद्देसेसु दसाइणं । जे भिक्खूजयई निच्चं सेन अच्छइ मंडले १७। अणगार गुणेहिंच पकप्पंमि तहेवय जे भिक्खू जयईनिच्चं सेन अच्छइ मंडले १८॥ पावसुयप्पसंगेसु मोहट्ठाणेसु चेवय जे भिक्खू जयईनिच्चं

जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले ते संसारमाहिं भमे नही १७ अणगारगुणेषु च वयछकादि साधुना सत्तावीस २७ गुणने बिखे साधुनो उत्कृष्ट आचारांगना२८ अधययनने बिखे यः भिक्षु यततेनित्यं जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मंडले ते संसारमाहि भमेनही १८ पापश्रुत प्रसंगेषु पाप आववानां श्रुत शास्त्रनिमित्तादिना २९ भेदने बिखे मोहस्थानकेषु चैव मोहनी जिहां रहे निमीत्तपणे बर्त्तते ३० मोहयानने बिखे यः भिक्षु यतते

निच सेनअच्छइमण्डले २]य साधु सिद्धातिशयगुणेषु एकत्रिंशत् प्रमाणेषु तथा द्वात्रिंशत् प्रमाणेषु योगेषु चयस्त्रिंशत्प्रमाणास आशातनासु नित्य यतते य एकत्रिंशत् सिद्धगुणान ज्ञात्वा प्ररूपयति तथा योगेषु योगसङ्ग्रहेषु आलोचनादिषु यत्न कुरुते आशातनासु समवायाङ्ग सूत्रोक्तासु ज्ञात्वा स्वय ताभ्योनिवर्त्तते अन्यान् निवर्त्तयति स स सारेनतिष्ठति २० अथाध्ययनोपस हारमाह [इइ एएसु ठाणेसु जेभिक्खू जयइसया सेखिप्प सव्वस सारा विप्पमुच्चइ पण्डिएत्तिबेमि २१] इति अमुनाप्रकारेणएतेषु अत्राध्ययन मोक्तेषु अस यमादिस्थानेषु योभिक्षुर्यत त सदायत्न कुरुते स भिक्षु क्षिप्र शीघ्र सर्वे स सारात् सवचतुर्गति भ्रमणात् विशेषेण प्रमुक्तोभवति इति ब्रवीमि अह इति सुधर्मास्वामीज बूस्वामिन प्राह इति चरणविधिनामाध्ययन सम्पूर्ण

सेन अच्छइ मडले १९ ॥ सिद्धाइगुण जोगेसु तित्तीसा सायणासुय । जे भिक्खू जयईनिच्च सेन अच्छइ मडले २० इइ एएसु ठाणेसु जे भिक्खू जयई सया । खिप्प से सव्वससारा विप्पमुच्चइ पडिएत्तिबेमि २१ ॥ चरणविहज्झ

नित्य जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले ते स सारमाहि भमे नही १९ सिद्धादि गुण योगेषु सिद्ध पद पाम्ये आदि समेइ गुण ३१ ने विखे मनोयोगादि व्यापार उत्तम आयणादि ३२ भेद तेहने विखे त्रयस्त्रि शदाशातनासु आचार्यनोते त्रीस आशातनाने विखे य भिक्षू यततेनित्य जे साधु यतन करे सदासन तिष्टति मडले स सारमाहि ते फिरे नही २० एषु एय पूर्वोक्त स्थानेषु एणे २ प्रकारे पूठे कह्या ते थानकने विखे य भिक्षू यत ते सदा जे यतन करे सदाकाल क्षिप्र स सर्वस सारात् क्षिप्रज तावलो च्यारगति रूप स सारथी विप्र मुच्यते पडित इति ब्रवीमि मू कार्द अलगोथाई सर्वस सारथे पडित तत्वनो जाणइति सुधर्मास्वामी जबूप्रति कहे ११ इति श्रीचरणविधि अधायन स पूर्ण थयो ३१ अत्यतकालस्य समूलस्य अनादि

इति श्रीमदुत्तराध्ययनसूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणिविरचिताया चरणविध्याख्य एकत्रिंशत्तम अध्ययन सम्पूर्ण अथ द्वात्रिंशत्तम प्रोच्यते पूर्वाध्ययने- चारित्रविधिरुक्त स च अप्रमादिन साधोर्भवति तेन साधुनाप्रमाद- परिहर्त्तव्य ततः प्रमादस्थानार्थं प्रमाद स्थानाख्य अध्ययन अथोच्यते [अच्चन्तकालस्स समूलयस्स सव्वस्सदुक्खस्सउजोपमोक्खोतभासओमेपडिपुन्नचित्तासुणेहएग तहिय हियत्थ १] भव्यान् प्रति भगवान् वदति सुधर्मा स्वाम्यपि जम्बूस्वाम्यादिशिष्यान् प्रतिवक्ति भोप्रतिपूर्णचित्ताः प्रतिपूर्ण विषयादिभ्योविरक्तत्वेन अखण्ड चित्त येषा ते प्रतिपूर्ण चित्ताः तेषा सम्बोधनं भोप्रतिपूर्णचित्ताः अखण्डमनस्कास्त एकान्तेनहित सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रात्मक मोक्ष हेतु तया वक्ष्यमाण मे मम भाषमाणस्य वचन यूय शृणुतकिमर्थं हितार्थत्वमिति कि यो हेतुः सर्वस्य दुःखस्य प्रमोक्षोस्ति अत्र दुःख शब्देन संसारस्य ग्रहणं कीदृशस्य दुःखस्य अच्चन्तकालस्स इति अत्यन्तइति अन्त अतिक्रान्त अत्यन्त अत्यन्त कालीयतस अत्यन्तकालस्तस्य पुन कीदृशस्य समूलकस्य मूलेनकषायाविरति- रूपेण सहवर्त्तते

अथ सम्यक्त्व ३१ ॥ अच्च'तकालस्स समूलयस्स सव्वस्स दुक्खस्सउ जो पमोक्खो। तं भासओ मे पडिपुन्न चित्ता सुणेहए ग'त हियं हियत्थ' १ ॥ नाणस्स सव्वस्स पगासणाए अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए रागस्स दोसस्सय संखएणं एग'त;

कालनो ते अविरतिरूप मूल सहित सर्वस्य दु खस्य प्रमोक्षः सर्वदुःखमयः संसारनो जे मूंकाइवु ते सुभने हे प्रतिपुर्णचित्त;-तं मे ममभाषय हे प्रति पूर्ण चित्तवत विषयथो चित्तखडाणी नथी जेहनो एहवा हे गुरु सुभने कहे शृणुत एकाग्रचित्तेन हितार्थं सांभलो एकांतहित मोक्षनो अर्थ जिहां १ ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया मति ज्ञानादिक सर्वज्ञाननो प्रकाशना प्रगट करीवे करोने अज्ञान मोहस्य विवर्जनात् मति अज्ञान अने दर्शन मोहनीने

टीका

इति समूलकमस्य यदुक्त मूल स सारस्य ऽन्ति कसाया अविरद चेव १ अथ यत् पूर्वं एव स सारस्य प्रमोच हेतुक वक्त प्रारब्ध तदेवाह [नाणस्स सव्वस्सपगासणाए अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए रागस्सदोसस्सय खएण एगन्तसोक्ख समुवेइमोक्ख २] जीवोज्ञानदर्शने च चारित्रेण एकान्तसौख्य माच समुपैति प्राप्नातोऽन्वय एतावताज्ञानस्य दर्शनस्य चारित्रमोच प्रतिकारणतान्तकाइत्यर्थं ज्ञानस्य सर्वप्रकाशमया सर्वस्य वस्तुन प्रकाशना प्रकटीकरण प्रकाश्यतेऽनयेति प्रकाशनातया प्रकाशनया इत्यनेन ज्ञानात्मकोमोच हेतु वक्त पुनरज्ञानमोहनस्य विवर्ज्जनयाजीवोमोच समुपैति अज्ञान मत्यज्ञानादिमोहोमोहनीय अज्ञान च मोहय अनयो समाहारो ज्ञानमोह तस्य अज्ञानमोहनस्य विवर्ज्जनयाविशेषतस्यागेनमिथ्या‸तत्र्यवण कुदृष्टि सङ्गत्यागेन मोच स्यात् इत्यनेन सम्यक दर्शनात्मकोमोच हेतु वक्तस्तयापुनरागस्य द्वेषस्य च सचयेण विनाशेन जीवोमोच समुपैति रागद्वेषा भावेन चारित्रस्याभिधान इत्यनेन चारित्रात्मकोमोच हेतु वक्तस्ततसम्यग ज्ञानदर्शनचारित्रै रेकान्तसौख्य दुक्खलेशैरकलंकित मोच समुपैति मोचयदुक्खप्रमोचं च य स सारस्य निष्ठत्य वस्यात् २ अतोज्ञानादीनां दुक्खप्रमोचत्वमोचं हेतु त्व उक्ता इदानी ज्ञानादीना प्राप्ति हेतून आह [तस्स समग्गोगुरुविद्धसेवाविवज्जणाबालजणस्सदूरासज्झाय एगन्तनिसेवणायम‸सत्य सचिन्तणयाधिईय ३] हे शिष्य तस्य मोचोपायभूतस्य ज्ञानस्य एष

सूत्र

सोक्ख समुवेइमोक्ख २ ॥ तस्स समग्गो गुरु विद्धसेवा विवज्जणा बालजणस्सदूरा । सज्झाय एग त निसेवणाए

भाषा

वजवेल्य जिरे रागद्वेषस्य स चयात् चारित्रजे घातकरो रागने द्वेषने चयकीधे एकांत सौख्य समोचउपैति ते एकांतनिराबाध सुखपामे मोचपामे २ तस्य मोचस्य समाग जा गुरुर्णा सेवानेमोचमागनो पथ श्रीगुरुयास्त नाजाणवडा तेहनो सेवा मूर्खजनस्य दूरत विवर्जन विशेषे बालजन पास

प्रथम गुरुवृद्धसेवाज्ञानप्राप्ति हेतु गुरवश्च समीपतरवर्त्ती मम हृदयस्य स्ववार्थे वक्ष्यमाणोमार्गः प्राप्ति हेतु रुक्तद्रति शेषः एषः कस्तं मार्गं दर्शयति दूरात् वाल वृद्धाश्चगुरुवृद्धास्तेषां सेवा गुरुवृद्धसेवा तत्र गुरुवोधर्मा चार्याः वृद्धाः श्रु तपर्यायाभ्यां ये महान्तस्तेषां सेवा ज्ञानदर्शन हेतु भूताद्रत्यर्थः पुनर्दूरात् वाल जनस्य मूर्खस्य विशेषेण वर्जना परिहरणाज्ञानस्य हेतुभूता पुनः पंचप्रकारस्य स्वाध्यायस्य एकान्तेन एकाग्रचित्तेन निषेवना अभ्यसनं स्वाध्यायैकान्त निषेवना ज्ञानप्राप्ति हेतुभूता पुनः सूत्रार्थयोः सम्यक्प्रकारेण चिन्तना सूत्रार्थ सचिन्तना सापि ज्ञानप्राप्तिभूता पुनर्धृति धैर्य चित्तस्यैकाग्र्यं उद्वेगा भावत्वं एतदपि ज्ञानप्राप्ति हेतुभूतं एतैरन्तरेण ज्ञानप्राप्तिर्नस्यादित्यर्थः ३ एतान् इच्छता पुरुषेण प्राक् किं कार्यं तदाह (आहार मिच्छेमियमे सणिज्जं सहाय मिच्छेनिउणट्ठ बुद्धिं निकेय मिच्छेज्ज विवेगजोगं समाहिकामे समणे तवस्सी ४) समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी एतत् इच्छेत् समाधि ज्ञानदर्शनचारित्र लाभं कामयति अभिलषतीति समाधिकामः ज्ञानदर्शनचारित्राभिलाषुकः श्रमणः क्रियानुष्ठानादौ श्रमकर्त्ता तपस्वी षष्टाष्टमादि तपः कर्त्ता एतत् इच्छेत् एतत् किं तदाह पूर्वं एषणीय दोषरहित आहारं इच्छेत् अभिलषेत् यादृश आहारस्तादृगुद्गार इति वचनात् तमपिमितं

सुत्तत्थ संचितणया धिईय ३ ॥ आहार मिच्छे मियमेसणिज्जं सहाय मिच्छे निउणट्ठ बुद्धिं निकेय मिच्छेज्ज विवेग

त्यादिकनो सेवा दूरे स्वाध्यायस्य एकांते करण सज्झाय पांचप्रकारे दूर्ष्टचिताटाली एकांते करवो सुत्रार्थ संचितनधिया सूत्रने अर्थ चिंतवाने विखे ध्रति एकांत पणे वांछे २ आहारइच्छेत् मित एषणीय ते साधु एहवोआहारवांछे मानोपेत अने एषणीय दोषरहित सखायंइच्छेत् निपुणार्थ बुद्धि शिष्यने वांछे जोवादितत्वने विखे जेहनी निकेतन इच्छेत् विविक्तयोगे उपाश्रय ठांमवांछे स्त्रीपशुपंड करहित समाधि कामः श्रमणः तपस्वी ज्ञानादिकनो

प्रमाणोपेत नत्र परमित स्वल्लोयात् पुन साधुर्निपुणार्थं बुद्धि सहाय इच्छेत निपुणार्थेषु जीवादितत्वेषु बुद्धिर्यस्य स निपुणार्थ बुद्धिस्त जीवादितत्वज्ञ सहाय शिष्य इच्छेत् यतोहि सम्यक निर्दोषाद्याहारधर्माचार वेदिकान् शिष्यान् गुरुरपि सहायान् शैलकमुनिवत् धर्मस्थैर्यं लभते पुनर्य साधुर्विवेक योग्य निकेत इच्छेत् विवेक स्त्रीपशुपण्डकादीना मभावेन एकान्तस्तेनयोग्य विवेकयोग्य निकेत साधुनिवासस्थान अभिलषेत् ४ अथ कालादि दोषवशात् चेत् पूर्वोक्तगुण सहाय शिष्योनलभेत् तदा किं कर्त्तव्यमित्याह (नवालभेज्जा निउण सहाय गुणाहिय वा गुणओ सम वा इक्कोविपावाइ विवज्जयन्तो विहरिज्जकामेसु असज्जमाणो ५) वा शब्दो यद्यर्थे वा यदि निपुण बुद्धिम त सहाय शिष्य न लभेत् न प्राप्नुयात् त सहाय गुणाधिक गुणै स्वस्मिन् स्थितेर्विनयज्ञानादिभिरधिक उत्कृष्ट अथवा त शिष्य गुणतइति स्वस्मिन् स्थितैर्ज्ञानादिभि सम सदृश न प्राप्नुयात् तदा स साधुरेकोपि एकाक्यपि शिष्यैरहितो विचरेत् विहार कुर्यात् न तु हीनाना कुशिष्याणा मुण्डमेलाप कुर्यात् सम्यक शिष्याऽभावे साधुना एकाकिनापि विहर्त्तव्य न कश्चिद्दोष साधु किं कुर्वन् विहरत् पापानिपापकारकाणि क्रियानुष्ठानानिविवर्जयेत् पुन साधु किं कुर्वन् विचरेत् कामेषु असज्जमानइति इन्द्रियसुखेषु अनोद्यतो भवन् प्रतिबन्ध अकुर्वाणइत्यर्थं ५ अथ दु खप्रमोक्ष हेतु ज्ञापनार्थं दृष्टान्तमाह (जहाय अण्डप्पभवावलागा अण्ड बलागप्प

जोग समाहि कामे समणे तवस्सी ४ ॥ न वालभेज्जा निउण सहायं गुणाहियं वा गुणओ समंवा । एकोवि पावाइ

समाधिनो वांछक छट्ठादिक तपनो करणहार ४ नवालभेत् निपुण सखाय शिष्य कदाचित् नलहे न पामे उत्तम बुद्धियत शिष्य गुणाधिक वा गुणत सम वाले ज्ञानादि गुणे अधिको अथवा सरिखो एकोपि पापानि अनाचरन् शिष्य विना एकलोपणि पाप कर्म अण करतो विचरेत् कामेष असज्य

भवं जहार्यं एमेवमोहाययण खुतण्हा मोह च तण्हाययणं वयन्ति ६) यथा बलाकपच्चिणी अण्डप्रभवा अण्ड प्रभव उत्पत्तिकारण यस्या सा अण्ड प्रभवा अण्डादुत्पन्नाइत्यर्थः यथा च पुनरण्ड बलाकाप्रभवं बलाकापच्चिणीप्रभवो यस्य तत् बलाकाप्रभवं अण्ड बलाकातउत्पन्न इत्यर्थ .एवं अमुनादृष्टान्ते नेवखु निश्चयेन तृष्णावाञ्छामोहायतनं वदन्ति मोहस्य अज्ञानस्य आयतनं उत्पत्ति हेतु पण्डितास्तृष्णां वदन्ति इति भावः च पुनर्मोहं तृष्णायतनं तृष्णायावाञ्छायाउत्पत्ति स्थानं पण्डितावदन्ति तृष्णाहि वस्तु निमूर्च्छासाचरागप्रधाना अतस्तयारागउपलक्ष्यते रागेसतिद्वेषोपि स्यात् अतस्तृष्णाग्रहणेन रागद्वेषौ उक्तौ ६ अतोरागद्वेषयोराधिक्यमाह (रागोयदोसोवियकम्मवीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति कम्मं च जाईमरणस्समूलं दुक्खं च जाई मरणं वयन्ति ७) रागोमायालोभात्मकः च पुनर्द्वेष क्रोधमानात्मक एतौ द्वावपि कर्मबीज कर्मणां ज्ञानावरणादीनां अष्टानां बीजं कारणं कर्मबीजं कर्म

सूत्र विवज्जयंतो विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ५ ॥ जहाय अंडप्पभवा बलागा अंडं बलागप्पभवं जहाय एमेव मोहाय यणंखु तन्हा मोहंच तन्हाययणं वयंति ६ ॥ रागोय दोसोविय कम्मवीयं कम्मंच मोहप्पभवं वयंति । कम्मंच जाई

भाषा मान विचरे पांचेइंद्रोना कामभोगनेविखे प्रतिबंध अणकरतो५ यथा अडप्रभवाः बलाकाः हिवे मोहनीयनी उत्पत्तिकहेछे जिम दृष्टांथकी उपमावालाग पंखियादिक अंड बलाक प्रभवं यथा अनेरुते पखीयाथकी जपनुं जीव जीम एवं मोहायतन तृष्णा इम मोह अज्ञानतुं आयतन जपजवानुं ठांम तृष्णा वांछाछे मोह तृष्णा यतन वदति अतिमोहने तृष्णा वांछानुं स्थानककहे तीर्थंकर६ तथा रागद्वेषो कर्म बीजं रागअने द्वेषतेसर्वकर्म आठप्रकारनोबीज उत्पतिथानकहेछे कर्मं च मोहप्रभवंवदति तीर्थंकराः अनेकर्मते मोहनीयको जपनोकहे तीर्थंकरकर्मं चजातिमरणस्यमूलंऽनेकर्मतेजातिजन्म अनेमरणनुं

कारणमित्यर्थ च पुन कर्म अष्टप्रकारक मोहप्रभव मोहामूढाज्ञान तदेव प्रभवो यस्य तत् मोह प्रभव ताथं करावदन्ति कर्मइति जातित्वादेकवचन क्रमणा मोहकारण इत्यर्थ तथा पुन कर्म अष्टप्रकारक जातिमरणस्य मूल जातिश्चमरण च अनयो समाहारोजातिमरण तस्य जातिमरणस्य जन्ममरणस्य मूल वदन्ति च पुनर्दुःख तु जातिमरण एव वदन्ति जन्ममृत्युएव दुःख तीर्थंकरा गणधराय वदन्ति जन्ममरणाभ्यां व्यतिरिक्त अन्यदु ख नास्ति इत्यर्थ ७ [दुःख हय जस्सनहोइमोहो माहोहओ जस्सनहोइतण्हा तण्हाहया जस्सन होइ लोहो लोहोहओ जस्सन किंचणाई ८] यस्य मोहानभवति तस्य पुरुषस्य दुःख हत येन पुरुषेणमोहोहतस्तस्य स्वयमेव दु ख हत मृतमित्यर्थ यतोदुःखस्यमूल मोहएव मोहेगते दुःख गतमिति हाद यस्य पुरुषस्य तृष्णानभवति स तृष्णानभवति तस्य पुरुषस्य मोहोहत मोहनोयकर्महत मृतमित्यर्थ तृष्णायाऽभावेमोहस्याप्यभाव यस्य तृष्णा वाञ्छाहतातस्य लोभो न भवति नि स्पृहस्य तृण जगत् इत्युक्तत्वात् यस्य लोभोहतोनिहतस्तस्य न किंचन अपि नकिमपोत्यर्थ स सर्वथाप्यकर्मका

मरणस्स मूल दुक्ख च जाई मरण वयति ७ ॥ दुक्ख हय जस्स न होइ मोहो मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा । तण्हा हया जस्स न होइ लोहो लोहोहओ जस्सनकिंचणाइ ८ ॥ राग च दोसच तहेव मोह उद्धत्तु कामेण समूलजाल ।

मूलछे कम व जमरणपामोछ दु ख च जातिमरण वदति अने जन्मजरामरण ते दुःखनु कारणछे भगवत ७ दु ख हत यस्य नभवति मोह दुःख हणाणो जेहने तेहने नहोइ कषायादिक मोहनोय मोहोहत यस्यनभवति तृष्णा अनेमोहनी हणाणो जेहने तेहने नहोइ तृष्णा वांछा तृष्णा हता यस्य न भवति लोभ अने तृष्णा वांछा हणो जेहने तेहनेन होये लोभ लोभोहत यस्य न किंचन भवेत् अने लोभ हणाणो जेहने छते पासे किंचन द्रव्यनहोये ८ राग

भवन्ति ८ अथ मोहादीनां उन्मूलनोपायमाह (रागञ्च दोसञ्च तहेवमोह उद्धत्तुकामेण समूलजालं जेजे उपाया पडिवज्जियव्वाते कित्तइस्सामि अहाणु पुव्वि ९)हे शिष्य अह आनुपूर्व्याअनुक्रमेणतान् उपायान् ते तव अग्रे कीर्त्तयिष्यामि तान् कान् ये उपायारागञ्च पुनर्द्वेष तथैवमोहं समूलजालं मूलसहितं उद्धर्त्तुं कामेन पुरुषेण प्रतिपत्तव्याः अङ्गीकर्त्तव्याः उपायशब्दे नहेतव ९ [रसापकामं न निसेवियव्वा पायंरसादित्तिकरानराणं दित्तं च कामासमतिदु यन्ति दुमं जहासादुफलवपक्खी १०] राग द्वेषमोहोन्मूलनं इच्छतानरेणरसाशृङ्गारादयोदधि दुग्धघृतादयोवा प्रकामं अत्यन्तं रसलोलुपत्वेन न निषेवि तव्या. मुहुमुहुर्नसेवनोयादृत्यर्थः प्रायेणरसासेवितास्सन्तोनराणांदीप्तिकराभवन्ति धातु वीर्यादि दीप्त्युत्पादकाभवन्ति च पुनर्दीप्तं धातुबलवीर्यादियुक्तं मनुष्यं कामायमभि द्रवन्तिविषया समभि आयान्ति तथा वितंवनिता अभिलषन्तीति भाव केकमिव पक्षिणः स्वादुफलं द्रुमं इव स्वादूनिस्वादुयुक्तानि

जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ९ ॥ रसापगामं न निसेवियव्वा पायं रसा दित्ति करा नराणं । दित्तं च कामा समतिद्दवंति दुमं जहा सादु फलंव पक्खी १० ॥ जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे समारुओ

द्वेष तथैव मोहं रागद्वेष अने मोहनीयकर्मने उद्धर्त्तुं कामेन समूलजालं उद्धरिवानीं कामनावांछानो धणीने मूलसहितं येथे उपाया प्रतिपत्तव्याः जेजे रागादि कटालिवाना उपाय कारण आदरवा तत्कीर्त्तयिष्यामि यथानुपूर्व्या तेह कहीसवा अनुक्रमे ९ रसाः प्रकामं न सेवितव्याः रसघृतादि घणा सेववा नहीं प्रायः रसाः दीप्तिकराः नराणां प्राइं ते रससेव्या थका दीप्ति वीर्यादिकना करणहार मनुष्यने दिप्तं पुनः कामाः अतिगच्छति दीप्ति वीर्यादीक मनुष्यने कामकदर्प साहसुं बलवंतथाइ काम आवोव्यापे स्वादुफल द्रुममिव पक्षी जेम द्रुमवृक्ष स्वादुवतने फलने पंखीया साहमाजाइ १०

फलानि यस्य स स्वादुफलस्तं मधुरफल द्रुम प्रतिपक्षिणस्तदभिलाषिणोऽभि मुखमायान्ति तथा बलिष्ट दीप्त पुरुष कामार्थनताद्योऽभि मुख मायान्ति इति भाव इत्यनेन रसप्रसेवने दोष उक्त १० अथ सामान्येन प्रकामभोजने दोषमाह (जहादवग्गीव उरिन्धणेवणे समारुओनोवसम उवेइ एविन्दियग्गोवियगामभोइणो नय भयारिस्सहि यायकस्सई ११) यथादवाग्निर्दावानल प्रचुरेन्धने बहुलकाष्टवनेलग्नो उपशम उपैति न उपशाम्यति कोष्टगोदावानल समारुत पवनसहित एव सकाष्टवनेलग्न स पवनदवाग्नि दृष्टान्तेन प्रकामभोजिनो मात्राधिकाहारकारिणो ब्रह्मचारिण इन्द्रियाग्नि र्हितायनभवति ब्रह्मचर्यचयायभवति चपेन्द्रियग्रन्थेन इन्द्रियजनितरागोऽप्युक्त इन्द्रियजनितरागस्य अनर्थहेतु त्वात् इयाग्ने रुपमा धर्मवनदाहकत्वात् मात्राधिकाहारकरणात् इन्द्रिय ग्रामो बलवान् भवति ११ पुनरागाद्युक्तं कामेम कि कर्त्तव्यमित्याह [विवत्त सयणासणजन्तियाण ओमासणाण दमिइन्दियाण नरागसत्तू धरिसेइचित्त पराइओवाहिरिवोसहेहि १२] रागशत्रू राग एव शत्रुर्वैरोरागशत्रु रेताहशाना साधूनां चित्त न धर्षयति न पराभवति एताहशानां कोहशानां विविक्तशयनासनयन्त्रितानां विविक्ता स्त्रीपशुपण्डकादि रहितायाशयना उपाश्रय विविक्तशयना तत्र यत्

नोवसम उवेइ। एविन्दियग्गीवि पगाम भोइणो न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ११ ॥ विवित्त सेज्जासण जंतियाण

यथा दवाग्नि प्रचुरेन्धन वनं विषे दावानलो अग्नि यथा काष्ट सहित अटवीने विषे समारुत न उपशम उपैति तेयसो थायर सहीतपणो उपशम बूझाइ नही एवु पचेंद्रियाग्निरपि प्रकामभोगिन पुरुष एम पांचेंद्रिय रुप अग्नि पणि अति सरस आहारलेणहार ब्रह्मचारिने हित भणी नहुवे केहने पिण इतरेमनोवांछित आहारकरता ब्रह्मचर्यने असमर्थकह्यो अथात् अधिक आहारकरनेसे इंद्रियोंका समूह बलवान् होताहै ११

आसनं निवासोविविक्त शयनासन तेन यन्त्रिताः सहिताः विविक्तशयनासनयन्त्रितास्तेषा विवक्तशयनासन यन्त्रिताना एकान्तस्थाननिवाससहिताना पुनः कीदृशाना अवमासनाना जनाहारकारिणां पुनः कीदृशानां दमितेन्द्रियाणा वशीकृतेन्द्रियाणा अर्थात् योगिनां चित्त'रागवैरीम पराभवन्ति कइव औषधैः पराजितोभेषजैस्तिरस्कृतोव्याधिरिव यथा भेषजैर्निवारितोव्याधि देहं पराभवितु' न शक्नोति तथा रागशत्रुरपि एकान्तवसनतपश्चरणेन्द्रियदमनाद्युपायै· पराभूतः साधूनां चित्त' नक्षोभयति १२ स्लो प्रमुखसहितस्थानस्य दूषणमाह (जहाविरालावसहस्समूले नमूसगाण'वसहीपसत्था एमेवइत्थोनिलयस्समज्झे नबम्भयारिस्सखमोनिवासो १३] यथा विडालावसथस्य मूले विडालस्य अवसथ गृहं विडालाव सथ तस्य मूले समीपे मूषकाणां उन्दराणां वसति स्थितिः प्रशस्तानसमोचीनाभवति विडाल गृहसमीपेमूषकस्थितिर्मरणायैव एवं अमुनादृष्टान्तेन स्त्री निलयस्य स्त्रीया

सूत्र

श्रोमासणाणं दमिद्द'दियाणं। न राग सत्तू धरिसेइ चित्तं पराइओ वाहिरिवो सहेहिं १२ ॥ जहा विराला वसहस्स मूले न मूसगाणं वसही पसत्था। एमेव इत्थी निलयस्स मज्झे न बंभयारिस्स खमो निवासो १३ ॥ न रूव लावन्न

भाषा

विविक्त शयनासन प्राप्ताना विविक्त स्त्री पशुपडक रहित शयन उपाश्रय अने आसन निर्दूषण सेवणहारने जनाशनाना दमितेंद्रियाणां जणी दमीने इंद्रिय पांचनादमणहारने नरागशत्रु; चित्त' पराभवति रागरूपीओ शत्रु धर्मे पराभव नथी साधुना चित्तने यथा व्याधिः औषधैः पराभूत बाधां न करोति जिम व्याधि रोग औषधे पराभव्यो देहने पीडा करे नथी १२ यथा विडालवसति मूले जिम बिलाडानो वसतिने ठामे न मूषकानां वसति प्रशस्ता मूषगठ दरनो जातिने रहवुं भलुं नहीं एवमेव स्त्रोनोलयमध्ये इम स्त्री तथा नपुंसकना घरमाहि न ब्रह्मचारिणः निवासः क्षमः समर्थः ब्रह्म

सहितानिलयात्तद्य स्त्री निलयस्तस्य स्त्री निलयस्य मध्ये ब्रह्मचारिणोनिवास अमायुक्तोनास्ति तत्र वसमानस्य ब्रह्मचारिणोब्रह्मचर्यस्यनाशएवस्यादिति भाव १२ स्यादि रहितस्थाने वसमानेनापि स्त्रीसम्पाते किं कर्त्तव्यं तदाह [नरूवलावण्णविलासहाय नज पिय इङ्गियपेहिय वा इत्थीणचित्त सिनवेस इत्ताद‍ट्ठु ववस्से समणेतवस्सी १४] तपस्वीश्रमण स्त्रीणां एतत्स्व एतत् चेष्टितं चित्ते स्वकीये मनसि सन्निवेश्य सम्यगवधार्यद्रष्टुं न व्यवसेत दर्शनाय सोद्यमानभवेत् यतोर्थं साधु स्त्रीणां एतत् चेष्टितं सद्बुद्धि धृत्वा एतत् चेष्टितं द्रष्टु व्यवसायं न कुर्यात् यतोहि पूर्वं मनस इच्छाया प्रवृत्ति स्ततश्चक्षुरा दीनां इन्द्रियाणां प्रवृत्तिरिति तत् स्त्रीणां किं किंचेष्टितं तदाह रूपं स्त्रीणां गौरादिवर्णोलावण्यं नयनाह्लादकं कश्चिद्गुणविशेषः विलासोविशिष्टनयन चेष्टाविशेषः अथवा मन्थरगतिकरणादिकोहास्यं स्मितं ईषद्धसनं दशन जल्पितं मन्मनोल्लापादिकं इङ्गितं भ्रूभङ्गाङ्गादिमोटनं स्वचित्तविकारसूचकं योषितः वक्रावलोकनं रूपञ्च लावण्यं च विलासश्च हास्यं च रूपलावण्यविलासहास्यानि तेषां समाहारो रूपलावण्यविलासहास्यं एततसर्वं स्त्रीणां साधुनारागेण न द्रष्टव्यमिति भाव १४ (अदसणं चेव अपत्थणञ्च अचितणं चेव अकित्तणञ्च इत्थीजणस्सारियभाणजुग्गं हियं सयाबम्भचेररयाण १५)

मूल

विरास हास न जपिय इ गियपेहियवा। इत्थीण चित्तसि निवेसइत्ता दट्ठु ववस्से समणे तवस्सी १४ ॥ अदसणचेव

भाषा

थारो। रहवु धमयुक्त नही स्त्री पशुपडकमाहि रहता ब्रह्मचर्य रहे १३ न रूपलावण्य विलासहास्य स्त्रीनु रूप बोलवानो चतुराई वस्त्रादिकनी शोभा हास्य न इर न जल्पित इ गित प्रेक्षित वा सामणा वचन अगादि मोडवो वा कोदृष्टे जोइवु स्त्रीणा चित्ते निधाय स्त्रीजातिनु एमनु एवम चित्तने विषे धारीने दृष्ट अधावसाय न कर्यात् श्रमण तपस्वी देख वाभणी मनकरे नकार पाछिल्योलोजि १४ अदर्शणचेव अथ अप्रार्थनच दर्शन

ब्रह्मचर्यं ब्रह्मव्रतेरताना सावधाना साधूनां एतत् आर्यध्यानयोग्यं हितं वर्त्तते आर्यं तद्ध्यानच आर्यध्यान सम्यग्ध्यान धर्मशुक्लादिकं तस्य योग्यं हितं पथ्यं धर्मध्यानस्य स्थैर्यकारकोभवति कोर्थः यदाहि ब्रह्मचर्यधारिणः एतत् कुर्वन्ति तदा तेषां धर्मध्यानं स्थिर स्यादित्यर्थः तत् किं किं आर्य ध्यानयोग्यं तदाह स्त्रीणां अदर्शनं रागेण अनवलोकनं च पदपूरणे एवनिश्चये पुनः किं स्त्रीणा अप्रार्थनं अभिलाषस्य अकरणं पुनः स्त्रीणा अचिन्तनं यत् कदाचित् रूपादिकं दृष्टं तस्य चेतसिनस्मरणं अपरिभावनमित्यर्थः पुनः स्त्रीणा अप्रार्थनं अभिलाषस्य अकरणं पुनः स्त्रीणा अचिन्तनं यत्कदाचित् रूपानाम्नागुणेनवानकीर्त्तनं अकीर्त्तनं नाम गुणोच्चारणस्य अकरण यदि ब्रह्मचारी स्त्रीणां दर्शनं प्रार्थनं चिन्तनं कीर्त्तन करोति तदा तस्य आर्यध्यानस्य उत्तमध्यानस्यस्थैर्यं न स्यात् एतत्तु धर्मध्यानस्य योग्यं हितं नास्ति १५ ननु कश्चिद्वक्ष्यति विकार हेतौ सति विक्रियन्ते तेषां न चेतांसित एवधीराः तत् किं विविक्तशयनासनसेवनेन इति चेत्ताह (कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं नचाइयाखोभइउन्तिगुत्ता तहावियएगन्तहियं तिनच्चा विवित्तभावो मुणिणं पसत्थो १६ हे शिष्य तथापि मुनीनां विविक्तभावे एकांत स्याननिवास· प्रशस्तः किं कृत्वा विविक्तभाव एकांतहितं

सूत्र

अपत्थणं च अचिंतणंचेव अकित्तणंच । इत्थीजणस्सा रियझाणजुग्गं हियं सया बंभचेरे रयाणं १५ ॥ कामं तु देवीहिं

भाषा

नजोइवं निश्चे वांछा न करवो अचितनचैव अकीर्त्तनच शृंगारादिकनु चिंतन न करे निश्चे नानगुण कीर्त्तन न करे स्त्री जनस्य स्त्रीजातिनो आर्य ध्यानयोगं आर्य उत्तमधर्मने योग्यधर्मनु भरियो हितं सदा सर्वदा ब्रह्मचर्ये रताना हितकारी सदासर्वदा ब्रह्मचर्यने विषे रागीने १५ अत्यर्थं पुनः विभूषिताभिर्देवीभी· अतिशयरूपो मनुष्यनीनो परिहारवं देवांगनाद तेवली अलकारे सहितणीइ न समर्थाः क्षोभयितुं त्रिगुप्ता संयमथी खोभा

मला तथा इति कथ यथा॰प विशुषाम्लिस्भिगुसा मुनय आन अचथ देवोभि खोभयितु ध्यानाचालयितु न चाइया इति नशकिता कोदृशो भिर्देवोभि आभूषण युक्ताभि यदि देवाङ्गनाभिराभरणालङ्कृताभिरपि साधवो धानात् न चालिता तदा मानुषोभिस्तु क्षोभ प्रापयितु अशक्या एव तथापि स्त्रोप्रसङ्गत्याग मुनीना एकांतहित आलासयादि रहितोपाश्रये स्थिति श्रेयसोति भाव १६ स्त्री प्रसङ्गत्याग पुनरपि दृढयति [मोक्षाभिक क्षिस्तविमाणवस्स स सारभीरुस्स ठियस्सधम्मे नतारिसन्दुत्तरमत्थिलाए जहित्थिओ बालमणोहराओ १७] मोक्षाभिकाचस्य मोक्षाभिलाषकस्यमानवस्य स सारभीरोरपि तथा धर्मे स्थितस्य श्रुतधर्मेस्थितस्य अत्र स मारताद्दश दुस्तर अन्यत् किमपि नास्ति तथा लोके स सारस्त्रीदुस्तरास्ति कोदृशी स्त्री बालमणोहरा बालाना अविवे किनां मनासिहरतोति बालमनोहरा तु शब्द पदपूरणेविशेषार्थे च १७ स्त्रीस गाति क्रमेगुणमाह [एएसङ्ग समइक्क

विभूसियाहि न चाइया खोभइउ तिगुत्ता। तहावि एग त हियति नच्चा विवित्त वासो मुणिण पसत्थो १६ ॥
मोक्खा भिकखिस्सवि माणवस्स ससार भीरुस्स ठियस्स धम्मे । न तारिस दुत्तरमत्थि लोए जहित्थिओ बाल मणो

विन अलंकृत गुप्ते गुप्ता तथापि एकांत हित जाला तापणि एकांत हितनो कारण जाणीने विविक्त वास मुनिना प्रशस्त। स्त्रीयादिके रहित तथा वास साधुने प्रशस्तीक तीर्थ करे एकांतभाव साधने प्रसस्यो १६ मोक्षाभिलाषिण पु स मोक्षना अभिलाखो मनुष्यने ससारभीरो धर्मस्थितस्य चारित्र्यति रूपससारथो बीहताने श्रुतधर्मादिकने विषे सहितने नताद्दश दुस्तर अस्ति लोके नथी तेहयु कोइ दुस्तर दोहिलु नहो पार पामता लोकनेविषे यथा स्त्री अज्ञान मनोहारिणी जेहवो स्त्रीजाति बाल अज्ञानी नामननोहरणहार दुस्तरके छांडता १७ एतान् स्त्रीसगात् अतिक्रम्य

मित्ता सुहुत्तराचेव भवन्तिसेसा जहा महासागरमुत्तरित्तानई भवे अविगङ्गासमाणा १८) मनुष्याणा एतान् स्त्री सम्बन्धि सङ्गात् समति क्रम्य शेषाः धनधान्यादिसम्बन्धीः सुखोत्तराश्चैव भवन्ति सुखेनोत्तीर्यन्ते इति सुखोत्तरा यथा महासागरं स्वय भूरमण सदृशं समुद्रं उल्लङ्घ गङ्गानदी अपि सुखो त्तरास् खोल्लङ्घ्या एव तथा येन स्त्री सङ्गस्त्यक्तस्तस्य अन्यसङ्गोधनधान्यादि संयोगः सुत्यज एव १८ अथ रागस्य दुक्खहेतुत्वमाह (कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं सव्वस्सलोयस्ससदेवगस्स जङ्काइय माणसिय च किञ्चितस्सन्तगच्छइवीयरागो १८) वीतरागः पुमान् रागद्वेषरहितो मनुष्यस्तस्य द्विविधस्यापि दुःखस्य अन्तकं पर्यन्तं गच्छति प्राप्नोति तत् द्विविधं दुःखं कीदृशं कायिकं कायेभवं कायिक रोगादि तथामानसिकं मनसि भव मानसिकं इष्ट वियोगानिष्टसंयोगादि पुनर्यत्दुखं सर्वस्य लोक सर्वस्य प्राणिगणस्य खुइति निश्चयेन कामानुगृद्धि प्रभव विषयसतसेवनोद्भूत वर्त्तते काम्यन्ते अभि

सूत्र

हराओ १७ ॥ एएय सगे समइक्कमित्ता सुहुत्तराचेव भवति सेसा । जहा महामागर मुत्तरित्ता नई भवे अवि गंगा समाणा १८ ॥ कामाणु गिद्धिप्पभव खु दुक्ख सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स । जं काइयं माणसियंच किंचि तस्संतगं

भाषा

ए पूठे कह्यां सग स्त्रीजातीनोते अतीक्रमीने सुखे नोत्तरितुं योग्याः शेषसगाः सुखे उतरीवुं कोइ दुस्तर दोहिलुं लोकने विखे नथी यथा महा सागरं उत्तीर्य जिम मोटो समुद्र सयभू रमण उतरीने गगासमानापिनदी सुखोत्तीर्णा भवेत् गंगासमान जे मोटी नदीते सुखे उतरीइ एहवीछइं १८ कामानुगृद्धि प्रभव निश्चयेन दुक्खं कामनी अनुगृद्धि, वाछा तेहथी उपनो निश्चय दुःख आशाता वेदनीय जाणवो सर्वस्य लोकस्य देवसहितस्य सघला लोकना समूहने देवता सहितने यत्कायिक मानसिक च किंचित् जे कायाने दुक्खरोगादि मननी वाल्हो वस्तुना वियोगथी उपनो थोडोइकारे

सप्यन्ते जनैरितिकामा विषयास्तेषु अनुगृद्धि कामानुगृद्धि सतताभिकाङ्क्षाकामानुगृद्धि प्रभवो यस्य तत् कामानुगृद्धि प्रभव कीदृशस्य लोकस्य सदेव कस्यदेवै सहितस्यवीतरागोविगतकामानुगृद्धिरिहोच्यते १९ अथ कामा एव दुःखहेतवइति वदति [जहाय कि पागफला मणोरमारसेण वणे णयभुज्ज माणातेखुद्दएजीवियपच्चमाणो एयोवमाकामगुणाविवागे २०] यथा च कि पाकफलानिकिंपाकवृक्षविशेषस्य फलानिरसेनमधुरत्वेन वर्णेनरक्तादिनाद्रक्ता रात् गन्धेन भज्यमानानिजनस्य मनोहराणि भवन्ति तानि कि पाकफलानिक्षुद्रके जीविते तुच्छेसोपक्रमेमनुष्यायुषिपच्यमानानि उदरान्तरेगत्वाविपाका वस्थां प्राप्तानिमरणान्त दुःखानि भवन्तीत्यध्याहार तथा विपाकेपरिपाककालेकामगुणाविषया एतदुपमा एतेषा कि पाकफलानां उपमायेषां ते एत दुपमा कि पाकफलसदृशाविषयाइत्यर्थं विषयाहि भोगसमयेमनोरमाविपाके परलोकेनरकादि दुःखदायिन २ रागस्यैव हेमसहितस्योद्धरणोपायं

गच्छइ वीयरागो १९ ॥ जहाय कि पागफला मणोरमा रसेण वन्नेणय भुज्जमाणा। ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा एओव मा कामगुणा विवागे २० ॥ जे इंदियाण विसया मणुन्ना नतेसु भाव निसिरे कयाई। नया मणुन्नेसु मणंपि कुज्जा

सूत्र

दुःख तस्यातक प्राप्नोति वितराग ते दुःखनो अतपारपामे श्रीवीतराग मुनीश्वर १९ यथा कि पाकफलानि मनोरमाणि जिम कि पाकवृक्षना फल महारमणीक भला रसेन वर्णेन भुज्यमान रसे करीवर्णाद करी चकार थी गंधे करी भक्षण करता स क्षुद्र जीवित प्रत्ययमान ते क्षुद्र तुच्छ असार सोपक्रम जीवितने मरणातने दुःखदाइ एवा उपमा कामगुण विपाकामा ए उपमा कामभोग भोगव्याना फलने विषे जाणवो २० ये इंद्रियाणा विषया मनोज्ञा जे इंद्रिय ५ ना शब्दादीक विषे मनोहरनतेषु भाव कदाचित् करोति ते इंद्रियना विषयने विषे चित्तनो भाव न करे न च अमनो

भाषा

माह [जिइन्द्रियार्थविसयानणुरत्ता न तेसु भाव निसिरिकयाइ नयामणुन्ने सुमणपि कुज्जा समाहिकामे समणेतवस्सी ः १] समाधिकामः समाधि रागद्वेषा भावेन चित्तस्य स्वास्थ्यं कामयते इति समाधिकामः चित्तस्थैर्याभिलाषी तपस्वी श्रमणः साधुः तेषु विषयेषु कदाचिद्भावं चित्ताभिप्राय न सृजेत् न कुर्यात् तेषु केषु ये विषया इन्द्रियाणां कर्णादीनां मनोज्ञाः वक्ष्यमाणवर्त्तन्ते तथा च पुनर्ये मनोज्ञा अप्रियास्तेषु अमनोज्ञेषु इन्द्रियाणां विषयेषु मनोन कुर्यात् इत्यनेन सुन्दरेषु विषयेषु सराग मनोनकुर्यात्तथा असुन्दरेषु विषयेषु स द्वेषं मनोनकुर्यात् ः १] चक्खूस्सरूवंगहणं वयन्ति तं रागहेउं तुमणुन्नमाहु त दोसहेउं अमणुन्नमाहु समोयजोतेसुवीयरागी २२] अथ मनोज्ञा मनोज्ञयो. स्वरूपमाह चक्षुर्लक्षण रूपग्रहणतीर्थकरावदन्ति रूपं वर्णः संस्थान वातद्गृह्यमानेऽनेनेति रूपग्रहणं चक्षुरिन्द्रियस्य तत् लक्षण त इति तद्रूप रागहेतुकं मनोज्ञं आहुः यस्मिन् रूपे दृष्टे रागउत्पद्यते तद्रूप मनोज्ञमाहुः तदेवरूपं द्वेषहेतुकं अमनोज्ञमाहुः यस्मिन् रूपे दृष्टे रागद्वेष उत्पद्यते तद्रूप अमनोज्ञमित्यर्थ. यः साधुस्तेषु मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु समः सदावृत्तिः स्यात् स साधुर्वीतरागउच्यते २२ [सवस्सचक्खु गहणं वयन्ति चक्खुस्स रूव गहण वयन्ति रागस्सहेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं

समाहि कामे समणे तवस्सी २१ ॥ चक्खुस्स रूवं गहणं वयति त राग हेउं तु मणुन्न माहु। त दोस हेउं अमणुन्नमाहु

ज्ञेषु मनः कुर्यात् अमनोज्ञ इंद्रियने विषयने विषे मननकरे समाधिकामः श्रमण तपस्वी रागद्वेषादि परिहार समाधिनो अभिलाषी साधु छठादि तपनो करणहार २१ चक्षुषः रूप ग्राह्यं वदति बुधाः नेत्रने वर्णसंस्थानादिरूपनो ग्रहण करे रूपते श्रावीनो ग्राह्य कहे तद्रूप रूपमनोज्ञ राग हेतु आहु. ते रूप मनोहर ते रागनु कारण कहे भगवत तद्रूप अमनोज्ञ दोषहेतु आहुः ते रूप अमनोज्ञ पाड्यो द्वेषरूप कहे भगवत एवुयः सम

अमणुन्नमाहु २३] तीर्थं करायक्षुरिन्द्रिय रूपस्य विषयस्य ग्रहण वदन्ति गृह्यातीति ग्रहण कर्त्तरियुप्रत्यय ग्राहक रूपस्य ग्राहक चक्षुरित्यर्थं पुनस्तीर्थं करायक्षुरिन्द्रियस्य रूप विषय ग्रहण वदन्ति गृह्यते इति ग्रहण ग्राह्य चक्षुग्राह्य रूप यत् चक्षुरिन्द्रियेण ग्राह्य तदेवरूपमिति भाव अनेन रूप चक्षुषोर्ग्राह्य ग्राहकभावेन परस्पर उपकार्योपकारकभावेन च सम्बन्ध उक्त इत्यनेन रूप रागद्वेषकारण तथा चक्षुरपि रागद्वेषकारण उक्त तत्समनोज्ञ चक्षुरिन्द्रिय रागहेतु आहु सहमनोज्ञेन ग्राह्येण रूपेण वर्त्तते इति समनोज्ञ मनोज्ञरूपग्राहक तेन रागहेतुर्थामित्यर्थं अमनोज्ञरूप ग्राहक द्वेषस्य हेतुक आहु कथयन्ति २३ [रूवेसुजोगिद्धिमुवेइ तिव्व अकालिय पावइसेविणास रागाउरेसेजहवापयङ्गे आलोयलोलेसमुवेइमच्चु २४] रागस्य दूषणमाह य प्राणीरूपेषु तीव्रां उत्कटांगृद्धि राग उपैति प्राप्नोतिकरोति धातूना अनेकार्थत्वात् स प्राणीरागातुर सन रागपीडित सन्

समोय जो तेसु स वीयरागो २२ ॥ रूवस्स चक्खु गहणं वयंति चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति । रागस्स हेउं समणुन्न माहु दोसस्स हेउं अमणुन्न माहु २३ ॥ रूवेसु जोगिद्धि मुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं । रागाउरे से जह

सयो‿राग समजी भला भूडाने विषे रागद्वेष रहित ते वीतराग कहीइ २२ रूप चक्षूग्रह्याति रूपने चक्षूग्रहे इम कहे तीर्थंकर चक्षुप रूपग्राह्य ल वदति चक्षुने रूपग्राह्य पण एतली दृष्टिने रूप ग्राह्यपण सुमनोज्ञ रागहेतु रागनु कारण ते भणु कहताहवा अमनोज्ञ दोषहेतु आहु द्वेषनो हेतु कारण पाहू उकहता हवा भगवत २३ रूपेषु य तीव्र गृद्धि उपैति रूपने विषे जे कोइ मूर्च्छापण धरे स आकालिक विनाश प्राप्नोति अका लिते विनाश मरणपामे रागातुर स यथा पतग राग लोभनो वाह्यो जिम पतगो यो स आलोक लोल पतग मृत्य उपैति आलोकदीवानो शिखाने

आकालिकं एवं विनाशं प्राप्नोति अकालेभव आकालिकं आयुषः स्थितेर्वागेव म्रियते यतोमनुष्याद्दि सोपक्रमायुष' स्यु' काद्रव यथा शब्द,इवार्थे यथैव आलोके प्रदीपेप्रदीपशिखादर्शनेलोकालं पटः आलोकलोलः पतङ्ग तुरिन्द्रियोजीवोमृत्यु' समुपैति तथा रागातुरोजीव अकालमृत्यु' समुपैतो त्यर्थः २४ (जे आविदोसंसमुवेइ तिव्व' तंसिखणिसे उवेइदुक्ख' दुद्दन्त दोसेण स एणजन्तू न किंचिरूवं अवरज्झईसे २५) अथ द्वेषदूषणमाह यथापि जीवोरूपेषु इत्यध्याहारः यस्मिन् क्षणेतीव्रन्दोषं समुपैति स जीवस्तस्मिन्नेवक्षणे स्वकीयेनदुर्दान्तदोषेण दुर्दान्त' चक्षुस्तदेवदोषोदुर्दान्तदोषस्तेन दुर्दान्त दोषेणदुक्ख चित्तसन्तापं उपैति परस्पेइति तस्य पुरुषस्य रूपं किं मपि न अपराध्यति नविरूपं करोति रूपस्य न कोपि दोषइत्यर्थ तस्य जीवस्यैवदुर्दान्ते न्द्रियस्यैव दोषइत्यर्थः २५ [एगन्तरत्तोरुइरंसि रूवे आतालिसे से कुणईपओसं दुक्खस्ससम्पीलमुवेइबाले न लिप्पईतेणमुणीविरागी २६] योमनुष्योरुचिरे

वापयंगे अलोय लोले समुवेइ मच्चूं २४ ॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तंसिक्खणे सेउ उवेइ दुक्खं । दुद्दंत दोसेण सएण जंतूनकिंचिरूवंअवरज्झईसे २५ ॥ एगंत रत्तो रुइरंसि रूवे अतालिसे से कुणई पओसं । दुक्खस्स संपील

भाषा

विषे लंपट थको मरणपामे २४ य थापि कुरूपं दृष्ट्वा तीव्रं द्वेष समुपैति जे कोइ पाडू आरूप देखीने द्वेषघणुं आणी ते जीव तस्मीन्नेव क्षणे स दुःखं उपैति तेह जक्षण अवसरने विषे दुःखसंताप पामे दुर्दांतदोषेन स्वकीयेनजंतु दुर्दांत मोटे नेत्रने दोषेते वली मोलाने न किंचिद्रूपं तस्यापराधं करोति पाडूउ' रूपकाइ' अपराध तेहने करतु' नथी २५ एकांत रक्त' रुचिरेषु रूपेषु एकांत घणो रागीमनोहर रूपने विषे अत्यंत स अताहृशे कुरूपे प्रद्वेषं करोति अति घणु' भुंडा पाडू आने विषे ते प्रद्वेपरोस करे दुक्खस्य सपीडां स उपैति मूर्ख दुक्ख सर्वंधिनी पीडानो समूह पामेते मूर्ख न

मनाज्ञेरूपे एकान्तरक्तोभवति अत्यन्त रागीभवति स च पुरुषोऽताद्दशेऽसुन्दरेरूपे प्रद्वेष करोति ततो बालोऽज्ञानीरागीपुमान् दुःखस्य सपीड सघात उपैति विरागोमुनिस्तोनरागद्वेषजनितदुःखे न नलिप्यते न क्षिप्यते २६ [रूवाणुगासाणुगएयजीवे चराचरेहिंसइणेगरूवेचित्ते हिते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठगुरुकिलिट्ठा २७) इदानी रागस्यैव सकलाश्रवहेतुत्वमाह क्लिष्टोरागबाधितोरागवर्त्तीबालोऽज्ञानी जीवश्चित्रै रनेकप्रकारै शस्त्राद्युपाये कृत्वाचराचरान् त्रसस्थावरान् अनेकरूपान् पीडयति एकदेशदु खोत्पादनेन पीडा उत्पादयति पुन परितापयति परिसमन्तात् दुःखयति पुनर्हिनस्ति प्राणेभ्य पृथक करोति परसरागीजीव कीदृश सन् रूपानुगत सन् रूप प्रस्तावात् मनोज्ञ अनुगच्छति इच्छतीति रूपाणुगा रूपानुगाचासौ आशाच रूपानुगाशारूपविषयोभिलाषस्त अनुगतो अनुप्राप्तोरूपानुगाशानुगतस्ताद्दश सन् सुन्दररूपविलोकन मनोरथसहित सन् इत्यर्थ पुन कीदृशोबाल्लो ऽत्तट्ठगुरुरिति आत्मार्थगुरु आत्मन स्वस्य अर्थ प्रयोजन गुरुयस्य स आत्मार्थ गुरु स्वप्रयोजननिरत स्वार्थीपुमान् किं २ न कुर्यात् इतिभाव २८]

मुवेइ बाले न लिप्पई तेण मुणी विरागे २६ ॥ रूवाणुगासाणु गएय जीवे चराचरे हिंसइ णेग रूवे । चित्तेहि ते परितावेइ बाले पोलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे २७ ॥ रूवाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण सन्निओगे । वए विउ

लिप्यते तम मुनो विराग न लीपाइ तेथि द्वेष रूप दु खे करी साधुराग रहित २६ सुरूपास्वानुगतो जीव मनोहररूपने विखे प्रवर्त्त तु प्राणी रूपना भोगनो इच्छाइ व्याप्यो जीव चराचरान् अनेकरूपान् जीवान् हिंसति चरत्रस अचर थावरने हणे अनेकजातिना जीवने विचित्रशस्त्रे परितापयति मूर्ख विच्छिन्न नानाविधशस्त्रथी यारे करी दुःख उपजावे अज्ञानो प्राप्नोति आत्माथ गुरुक्लेश आत्माने अर्थे गुरु मोटो किलेशपामे २७ रूपासु

(रूवाणुवाएणपरिग्गहेण उप्पायणेरक्खण सन्निओगे वएविओगेयकहि सुह से संभोगकालेय अतित्तिलाभे २८) तस्य रूपलोभाभिभूतस्य प्राणिनः कुतः सुख तदेव दर्शयति रूपानुरागे सतिरूपानुरागेण वा रूपानुपाते सति परिग्रहेणमूर्छारूपेण हेतुनाउप्पायणे इति उत्पादने तथारक्षण सन्नियोगे तथा व्ययेविनाशे तथा विरहे च पुनः सम्भोगकाले अतृप्तिलाभेसति तृप्ते सन्तुष्टेर्लाभस्तृप्तिलाभः न तृप्तिलाभोऽतृप्तिलाभ तस्मिन् अतृप्तिलाभेसति लोभयुक्तस्य जीवस्यकदापि न सुखं पूर्वं हि लोभीजीवोरूपानुरागोसन् मूर्छयारूपवन्तजतुरगकलत्रादीना उत्पादने दुक्ख प्राप्नोति ततस्तेषा उत्पन्नानां वाष्टेभ्योरक्षणेदुक्खं प्राप्नोति ततश्च स नियोगे स्वपरप्रयोजने सम्यग् व्यापारणे दुक्खं प्राप्नोति तेषां रूपवन्तजादीना सम्भोगकालेपि प्राप्ते अतृप्तिलाभेपि सन्तोषस्याभावेसति दुक्ख प्राप्नोति यदुक्त न जातकामः कामानामुपभोगेनशाम्यति हविषाकृष्णवर्त्मेव भूय एवाभि वर्धते १ तस्मात्परिग्रहेणजीवस्य कुत· सुखं कदापि सुख नास्तीतिभाव २८ [एवे अतित्ते य परिग्गहे मि सत्तोवसत्तो नउवेइ तुट्ठिं अतुट्ठि दोसेण दुहीपरस्स लोभाविले आययइ अदत्त २८) एवे अतृप्तश्च पुरुषः परिग्रहे मूर्छायासक्तोभवति सामान्येनासक्तिजान् उपसक्तरस्यात् ततश्च मूर्छाया सक्तोपसक्तः पूर्वं सक्त· पश्चादुपसक्तः

गेय कहि सुहंसे संभोग कालेय अतित्त लाभे २८॥ एवे अतित्तेय परिग्गहंमि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं । अतुट्ठि

पावेन परिग्रहेण मनोहररूपने रागि करी परीग्रहनी मूर्च्छाइ'कारी उपार्जते द्रव्य उपार्जवाने विषे रक्षण चौरादिक थी राखवाने सन्नियोगे आपणा प्रयोजन प्रवर्त्तावाने विषे विनाशने विषे विरहने विषे कोहाथी सुखहोइ तेहने तेहना भोगविना कालने विषे अतृप्तिः लाभ' तृप्ति सतोष प्रणाम ते कोहाथी सुखहोइ'२८ रूपेप अतृप्तः परिग्रहे अतृप्तः रूपनेविषे असतोषी थको तथा परिग्रहनेविषे सक्त उपसक्तः न उपैति तुष्टिं सामान्य पणे आसक्त

सक्तोपसक्त एतादृश सन् मनुष्यस्तुष्टि सन्तोष न उपैति ततश्च अतुष्टिदोषेण असन्तोषदोषेण दु खीसन् परस्यान्यस्य सुरूप वस्तु इति शेष आदत्ते गृह्णाति कीदृशसोरूपेऽदत्तं लोभाविललोभेन आविल कलुषोलोभाविल २९ (तन्हाभि भूयस्स अदत्तहारिणोरूवे अतित्तस्सपरिग्गहेय मायामुस वड्ढइलोभदोसातत्थाविदुक्खान विमुच्चईसे ३०] पुनर्दोषान्तरमाह तृष्णाभि भूतस्य लोभपराजितस्य जीवस्य अदत्तहारिणोऽदत्तग्राहकस्य तथा रूपे रूपविषयेपरिग्रहेऽतृप्तस्य असन्तुष्टस्य लोभदोषाल्लोभापराधात् माया मृषामायावर्द्धते तृष्णया अदत्त गृह्णाति ततो लोभात् परस्य गृहीतवस्तु रक्षण परोमायामृषा वक्ति तत्रापि मृषा भाषमाणेपि दु खान्नविमुच्यते सलोभीदुःखस्य भागीस्यादित्यर्थ ३० दुक्खमुक्तमेव प्रकटयति [मोसस्सपच्छायपुरत्थओय पओगकालेयदुहोदुरन्ते एव अदत्ताणि स मायमाणो रूवे अतित्तोदुहिओ अणिस्सो३१] मोसस्स मृषावाक्यस्य पश्चात्पुर तश्च प्रयोगकाले च कालत्रयेपि

देसिण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्त २९॥ तन्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रूवे अतित्तस्स परिग्गहेय । माया मुस वड्ढइ लोभ दासा तत्थावि दुक्खानवि मुच्चई से ३० ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय पओगकालेय दुही दुरंते ।

लालचो थको आसक्त लालचो स तोषनपामे परस्य अतुष्टिदोषेन दु खो माहरू आरूप राखवे असंतोषोने दोषे दुःखीयको पारकी रूपवत वस्तुदेखी लोभात् गृह्णाति अदत्त लोभ करीकलख चित्तथको लेपारको अणदीधो वस्तु २९ तृष्णाभिभूतस्य लोभे करो पराभव्याने अदत्तनालेण हारने रूपे परिग्रहे च असंतोषवान् रूपने विखे परिग्रहनेविखे असंतोषोने माया मृषावर्द्धति लोभ दोषात् माया सहित मृषा भूठ बोलवो वाधे लोभना दोषथकी चोरीकरो भूठबोले तथापि दुःखात्र मुच्यते स तोषपिण भूठबोल्याथको दुःखथको नमूकाइ ते विषयजीव ३० रूपनो लोभी भूठबोली पछे पश्चात्ताप धरे

सूत्र

भाषा

टीका: सुरूपवस्तुलोभाद्दत्तग्राहकपुमान् दु खीभवतीति शेष: सुरूपवस्तुलोभाददत्तग्राहक: पुमान् इत्यपि काल्पदं प्रस्तावात् गृह्यते कोर्थ: पूर्वं हि लोभान्मृषा भाषणं कुरुते मृषा भाषणस्य पश्चात् मृषा वचनं उक्त्वा पश्चात् पश्चात्तापं कुरुते मनसि जानाति मया मृषा उक्तं मात्रास्यत्यसौवस्तु स्वामीति तथा पुरुतस्य मृषा भाषणात्पूर्वं अपि दु:खीभवति मायासौसुरूपवस्तु स्वामीकेन प्रकारेण एवं वचनीय इति पुन: प्रयोगकालेमृषाजल्प न कालेपि दु:खी भवति मनस्येव जानातिमाकदाचिन्ममममृषावचनमसौजानात्यपि कीदृश: स पुरुषोदुरन्तो दुष्टोन्त: पर्यवसानं यस्य स दुरन्त: इह लोकेविटम्बनात. परभवे दुर्गति दु:खात् दुष्टावसानइत्यर्थ: एवममुनाप्रकारेण रूपेऽतृप्तोऽदत्तानि समाचरन् अनिश्र सन् दु खितीभवति न विद्यते निश्रायस्य स अनिश्र: अवष्टं भरहित· यतोहि चौरस्य मृषा भाषिणश्चनकोपि रक्षकइति भाव: ३१ (रूवाणु रत्तस्सनरस्स एवं कत्तोसुहं हुज्जकयाइकिंचि तत्थोवभोगेविकिलेसदुक्खं निव्वत्तई जस्सकएणदुक्ख ३२) एवं अमुनाप्रकारेण प्रागुक्तसूत्र प्रकारेण रूपानुरक्तस्य रूपानुरागिण पुरुषस्य कदापि रात्रौदिवसेवाकिञ्चित्स्तोकमात्र मपि कुत:

सूत्र

एवं अदत्ताणि समाययंतो रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ३१ ॥ रूवाणुरत्तस्स णरस्स एवं कत्तो सुहं होज्ज कयाइ

भाषा

एकिम वचस्युं इम करतु मलोवारी हुवे पहल्या दुखलहे झुठा बोलवाना प्रयोग प्रस्तावने विखे एमजाणे इम दु:खनो पामहणहार दुष्ट पाछ्यो अति बिडंबना सहे एव अदत्तानि गृह्णन् जिम झूठलागे तिम अदत्त अणदीधोते पणलागि ग्रहण करतोछतो रूपे अतृप्तो दुखितो अनिष्ट· नेष्टा रहित मनोहररूपने विखे असतोषी थको दुखीओ निष्टारहीत तेहनुं कोइ पासुं न करे ३१ रूपानुरक्तस्य नरस्य एवं मनोहर रूपनो अनुरक्त रागी नर मनुष्यने इणी प्रकारे कुत सुखं कदाचित् किंचित् भवति किं हाथको सुखहोइ अपीतु न होइ कहोइं तथापि भोगे क्लेस दुक्खं तोहां

कस्मात्सुख भवेत् अपि तु कदापि किमपि सुख न भवेत् यतस्तत्र रूपानुरागेपि क्लेशदुःख अत्यभिलाषलक्षणपीडाजनित असात निर्वर्त्तयति उत्पादयति पुनर्जस्सकारणमर्दति यस्य मनोज्ञरूपादापभोगस्य क्लतेमनोज्ञरूपाद्युपभोगार्थं दुःख आत्मन कष्ट भवति ३२ इति रागस्य दु [redacted] हेतुत्वमाह [एमेव रूवमिगश्रो पश्रोस उवेइ दुक्खोहपरं पराश्रो पदुट्ठचित्तोयचिणाइ कम्म ज से पुणोहोइ दुह विवागे ३३] एव अमुनाप्रकारेणैव यथा मनोज्ञ रूपोपरिरागाद्दुःख लाभ प्रकारेणैव तथा जीवोऽमनोज्ञे रूपे प्रद्वेषङ्गत सन् प्रद्वेषपर परात प्रदुष्टचित्त सन् तत् कष्ट कर्म्मचिनोति उपार्जयति जइवि यत् कर्म्मसे इति तस्य दुष्टचित्तस्य विपाकेकर्मानुभव कालेइह परत्र च दुःख दुःखदायि भवति ३३ रागद्वेषोद्धरणगुणमाह [रूवेविरत्तोमणश्रोविसोगो एएणदुक्खोहपरं परेण नलिप्पई भवमज्झेवसन्तोजलेणवा पुक्खरणीपलास ३४] रूपेविरक्तोमनुष्योमनोज्ञे रूपेराग अकुर्वन् एतयादु खोघपर परयापूर्वो

किंचि । तस्सेव भोगेवि किलेस दुक्ख निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ३२ ॥ एमेव रूवमि गश्रो पश्रोस उवेइ दुक्खोह परंपराश्रो । पदुट्ठ चित्तोय चिणाइ कम्म ज से पुणो होइ दुह विवागे ३३ ॥ रूवे विरत्तो मणुश्रो विसोगो एएण

रूप भोग विधाने विषे पणि तृप्त न होइ तालगी क्लेश दुःखपामे नीपजावबे करी जे मनोहर रूप भोगववाने दुःख कष्ट थने आत्मउपाय ३२ एवमे रूपे गत प्रद्वेष रूपोपरि जे उत्तम रूपउपरि रागहुइ तिम कदाचित् द्वेषपाम्योथको उपेति दुःखो घपरपरामेते [redacted]ओवदुःखनी परपरा श्रेणिसमूह प्रकृष्टचित्त चिनोति कर्म्मार्जिइ पे करीसहित जिवारचित्तहुवे तिवार बांधे कर्म्मघणा जेह कर्म्म दुःखना कारणहुइ विपाके भोगविवा कालने विषे इहलोक परलोके पणि ३३ रूपें विरक्तो मनुष्य गतशोक मनोहररूप विषे राग अणकरतु मनुष्य शोकरहित थको ए पूठे कह्यो दुःखनी परपरा तिणे इणे करीने न

कोदृशः स पुमान् विशोकोविगतशोकः केन किं मिव जलेन
क्षयादुःखसमूहं येखाभवमध्ये वसन् अपि न लिप्यते रागजनितदुःखावलिशोनस्यादिलय एवं चक्षुरिन्द्रिय
पुष्करिणीपलाशमिव यथा पद्मिनी पत्र जलेतिष्ठदपि जलेन न अवलिप्यते एवं विरक्तोपि ससारेवसन्नपि संसारदुःखैर्नलिप्यते ३४ एवं चक्षुरिन्द्रिय
साश्रित्वत्रयोदशगाथाव्याख्याताः अथ शेषेन्द्रियाणां मनसश्चत्रयोदश२ गाथाव्याख्येयाः सन्ति अत्र च इन्द्रियाणां दर्शादोष बाहुल्य प्रादुर्भावात्
पूर्वं चक्षुरिन्द्रियद्वारेण रागद्वेषौ दर्शितौ अन्यथा तु दुर्दमन रसनेन्द्रियमुत्क्रमन्ति अथ श्रोत्रमाश्रित्यदूषणान्याह (श्रोत्रस्स सद्दं गहणं वयन्ति तं रागहेउं
तुमणुन्नमाहु त दोसहेउं अमणुन्नमाहु समोयजोतेसु सवीयरागो ३५) तीर्थंकराः श्रोत्रेन्द्रियस्य ग्रहणं विषय शब्दं ग्राहकं श्रोत्रं इति श्रोत्रेन्द्रियस्य
लक्षणं शब्दः श्रोत्रेणैव गृह्यते त शब्दं मनोज्ञं स्त्री गीतादिकं रागहेतुकं आहुः वीतरागादि कथयन्ति तं एव शब्दं अमनोज्ञं खरवायसादि शोक

सूत्र

दुक्खोह परंपरेण। न लिप्पए भवमज्झे व संतो जलेणवा पुक्खरिणी पलासं ३४ ॥ सायस्स सद्द गहणं वयति तं राग
हेउं तु मणुन्न माहु। तं दोस हेउं अमणुन्न माहु समोय जो तेसु सवीयरागो ३५ ॥ सद्दस्स सोयं गहणं वयंति

भाषा

लिप्यते स सारे यसत्रपिलोपाद खरडाये नही भवस सारमाहि वसतुं पणि जलेन यथा पद्मिनीपत्रं तेह उपरि दृष्टांत जिम पाणीइं करी पुष्करिणी
कमलनोनोपलाशपान लिपे लागे नही ३४ श्रोत्र विषय- शब्दो वदति बुधा- श्रोत्रकानना विषयग्रहण शब्द कहे मनुगीतादिमनोज्ञं रागहेतुः ते
मनोहर गीतादिक शब्द रागनो हेतु कारणकहे तद्वेष हेतुं अमनोज्ञ पाडुउं रूप आहु कहिइं पंडित सम एवं सवीतराग- सरीखो जे एहनेविषे
ते वीतरागकहीइ ३५ शब्दग्राहकं श्रवण वदति शब्दनो ग्रहणग्राहक कान कहे श्रोत्रस्य ग्राहकं शब्दः इति वदति कानना ग्राहक शब्द इम तीर्थं

ककस्य द्वेष हेतुक माहु यस्तुमनोज्ञामनोज्ञयो शब्दयोर्विषये समोरागद्वेषरहित सवीतराग उच्यत ३५ [सद्दस्सोय गहण वयन्ति सोयस्ससद्दगहण वयन्ति रागस्सहेऊ समणुन्नमाहुदोसस्सहेऊ अमणुन्नमाहु ३६] तीर्थंकरा सोय इति श्रोत्रेन्द्रिय शब्दस्य ग्रहण ग्राहक वदन्ति गृह्णातीति गृहण पुनस्तीर्थंकराशब्द विषय श्रोत्रस्य श्रोत्रेन्द्रियस्य ग्रहण गृह्यते इति ग्रहण ग्राह्य वदन्ति शब्द श्रोत्रेणग्राह्य तस्मात् शब्द श्रोत्रयोर्ग्राह्यग्राहकभाव सम्बन्धउक्त तत् समनोज्ञ सुन्दरशब्द विषयग्राहक रागस्य हेतुक माहु पुनरमनोज्ञ असुन्दर शब्द विषयग्राहक श्रोत्रेन्द्रिय द्वेषस्य हेतु माहु ३६ [सद्देसुजोगिद्धि सुवेइतिव्व अकालिय पावइसेविणास रागाउरेहरिणमिगेवमुद्धे सद्दे अतित्तेसमुवेइमच्चु ३७] य पुरुष शब्देषुतीव्रा अधिका गृद्धि मूर्छा उपैति स शब्देऽक्षमोमनोज्ञ शब्दे असन्तुष्टोरागातुर सन् मुग्धोमूढ आकालिक आयु स्थितेरर्वागेवसोपक्रमायुष्कत्वात् अत्योरवसर विनैवविनाश मरण प्राप्नोति समूढ कइव मृत्यु समुपैति शब्देऽक्षमो मुग्धोहरिणमृगइव हरिणपशुरिव अत मृग शब्द पशुपर्यायवाचक हरिणश्चासौमृगश्च हरिण

सोयस्स सद्द गहण वयति । रागस्स हेउ समणुन्न माहु दोसस्सहेउ अमणुन्न माहु ३६॥ सद्देसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्व अकालिय पावइ से विणास । रागाउरे हरिणमिएव्व मुद्धे सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चु ३७ ॥ जेयावि दोस समुवेइ

कर कहे तत् सुमनोज्ञ रागहेतु आहु ते रागनु हेतू मनोहर भलो कहे अमनोज्ञ दोषहेतु द्वेषरोसनो कारण पाडूउ कहे ३६ शब्देषु य तीव्रा गृद्धि उपेति शब्दनेविखे जे कोई गृद्धि मूर्छापामे तीव्र अत्यत सपकालिक विनाश प्राप्नोति ते अकालि अवसर विनाश मरणपामे रागातुरहरिणि वक्रुध रागे पोध्यो जिम हैरिण तेहनी परि मुग्धभोलो शब्देषु अक्षम समृत्यु उपैतिशब्दनेविषे असतोषी मरणपामे ३७ जे कोई पाडआ शब्दने विरे द्वेष आणि तद्दि

भग: ३७ [जि भाविदोस समुवेइतिव्व तं सिखणेसेउ उवेइदुक्खं दुद्दन्तदोसेणसएणजन्तू न किंचिसद्दं अवरज्झईसे ३८] यद्यपि जन्तुर्जीवोयस्मिन्क्षणे अमनोज्ञे शब्देतीव्रं द्वेषं समुपैति सजन्तुः तस्मिन्नेवक्षणे स्वकोयेन दुर्दान्तदोषेणदुर्दान्तश्रोत्रेन्द्रिय तदेवदोष अथवातस्य दोषस्तेन दुःखं उपैति प्राप्नोति सजन्तुः स्वकोयश्रोतेन्द्रियदोषेण दुःखी क्रियते परं तु तस्य पुरुषस्य शब्दः किंचिदपि न अपराध्यति शब्दस्य न कोपि दोषः जन्तोः श्रोत्रेन्द्रियस्यैव दोषइत्यर्थः ३८ [एगन्तरत्तोरुइरंसिसद्दे अतालिसेसे कुणईपओसंदुक्खस्ससम्पीलमुवेइ बाले न लिप्पईतेणमुणीविरागे ३९] योमनुष्योरुचिरेमनोज्ञे शब्दे एकान्तरक्तो अत्यन्तमासक्तोभवति रागं कुरुते समनुष्योऽतालिशे अतादृशे अमनोज्ञे शब्दे प्रद्वेष करोति सबालो रागद्वेषासक्तो दुःखस्य सम्पीडां उपैति असातासम्बन्धिनी अत्यन्तपीडां प्राप्नोति तेन रागद्वेषोत्पन्नदुःखेन विरागोमुनिर्न लिप्यते वीतराग पुमान् सदासुखभाक्स्यादिति भावः ३९ [सद्दाणुगासाणुगएयजीवे चराचरेहिंसइणेगरूवे चित्तेहि ते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ४०] अथ शब्दानुरक्तस्य रागद्वेषयोरेवास्रवकारणत्व

तिव्वं तंसिक्खणे सेउ उवेइ दुक्खं। दुद्दंत दोसेण सएण जंतू न किंचि सद्दं अवरज्झई से ३८॥ एगंत रत्तो रुइरंसि सद्दे अतालिसेसे कुणई पओसं। दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले न लिप्पई तेण मुणीविरागे ३९॥ सद्दाणुगासाणु

जक्षण अवसरनेविषे दुःखपामे दुर्दांत मोटेनितने दोषेते यलोपोतानेलोधे जोव आपणा पर पाडुआ शब्दकाइ तेरने अपराधकरतुनथी ३८ एकांतपणे राग धरतो रुचिरमनोहर शब्दने विषे पाडूआ शब्दने विषे घणो पामे द्वेष दुखनी पीडापामे बालअज्ञानी नलिपाइ नलोपाए तेणे साधू शब्दनो राग करतो ३९ रूडा शब्दनी वाछाने विषे प्रवर्त्ततु थको जीव परवस अथर थावरनेकर्म जिविधप्रकारे करी दुख उपजावे अज्ञानी आत्माने अर्थे गुरु मोटो

माइ जोव शब्दानुरागाशानुगत सन मनोज्ञशब्द श्रवणाशायुक्त सन् चराचरान् अनेकरूपान् जीवान् हिनस्ति सबालोऽज्ञानीविविधैरनेक प्रकारैरुपायै शस्त्रादिभि कान् चित् जोवान परितापयति कान्चिज्जोवान् पोडयति कीदृश सबाल अत्तद्गुरु आत्मार्थगुरु स्वार्थपरायण पुन कीदृश किलिष्ट क्लिष्टोरागद्वेषापहतचित्त ४० (सद्दाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणेरक्खण सन्नियोगे वएविओगेयकहि सुहसे सम्भोगकालेय अतित्तलाभे ४१] मनोज्ञ शब्द श्रवणलाभाभिभूतस्य प्राणिन कुत सुख तदेवाह शब्दानुरागेण तथा परिग्रहेण मूर्छारूपेण उत्पादने मनोहर शब्दोपेतचेतनाचेतन द्रव्योत्पादने पश्चात्तेषां सन्नियोगेस्वपरप्रयोजने सम्यक व्यापारणे व्ययेविनाशेवियोगोऽस्यात् शब्द अर्थिन पुरुषस्य कुत सुख पुनस्तस्य शब्दानुरागिणोजन्तो सम्भोग कालेच अतृप्तिलाभादुःख भवति शब्दश्रवणेरागिणा नहतृप्तिरितिभाव ४१ [सद्दे अतित्तेयपरिग्गहमिसत्तोवसत्तोनउवेइतुट्ठि अतुट्ठिदोसेणदुहीपरस्सलोभावि लेआययइ अदत्त ४२] शब्देऽतृप्तोजोव परिग्रहे अवशक्त स्यात् सामान्येनरक्तोभवेत् ततश्च सक्तोपशक्त स्यात् अत्यन्त शक्त उपशक्त शक्तयासौ उपशक्तश्च शक्तापशक्त परिग्रहे गाढानुरक्त तुष्टि सन्तोषन उपैति अतुष्टिदोषेण दुःखीभवति पुनरसन्तोषी परस्यान्यस्य सम्बन्धि शोभन शब्दकारि वस्तु वादित्रादि

सूत्र

गएय जीवे चराचरे हिंसइणे गरुवे चित्ते हिते परितावेइ वाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरु किलिट्ठे ४० ॥ सद्दाणुवाएण परि ग्गहेण उप्पायणे रक्खण सन्नियोगे। वए विओगे य कह सुहसे सभोग कालेय अतित्त लाभे ४१ ॥ सद्दे अतित्तेय

भाषा

रोगादिके पोडा ४ शब्दाशब्दने रागी परिग्रहे करोने उपारि जिवाने राखवाने विखे काज करिवाने विखे विनाश विरह विखे कोहांथी सुखहुये सभोग तेहना भोग विवाने अवसरे तृप्त संतोष अणहु ते किहांथी सुख ४१ शब्दने विखे असंतोषी थको तथा परिग्रहने विखे असंतोषी थको सामान्य पणे

लोभाविलो लीभ कलुषः आदत्ते अदत्तं ग्टह्णाति ४२ [तन्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो सहे अतित्तस्य परिग्गहेय मायामुसवट्टइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खान विमुच्चईसे ४३] अन्दे ऽत्यस्य प्राणिनः परिग्रहे तृष्णाभि भूतस्य अदत्तहारिणस्य लोभदोषात् माया मृषा सम्बर्द्धते पुनस्तस्य प्राणिनस्तत्रापिमा यामृषायां अपि दुःखात् न विमुच्यते मायामृषाजल्पनकालेपि दुक्खभाक् स्यादित्यर्थः ४२ तदेव दुक्ख दर्शयति (मोसस्सपच्छाय पुरत्थओय पओगकालेयदुही दुरन्ते एव अदत्ताणि समाययन्तो सहेअतित्तोदुहिओ अणिस्सो ४४) मृषाभाषीपुमान् मृषावाक्यस्य पश्चात्पुरतश्च प्रयोगकाले च दुरन्तोदुक्खान्तोभवति अन्ते दुक्खभाक् स्यात् माययामृषां लक्षा पश्चात् मृषाभाषणस्य पश्चात्ताप करोति मनसि एव जानाति मायामुसंस्थापितं वाक्यं नोक्तं इति पश्चात्तापं

सूत्र

परिग्गहंमि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं । अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्तं ४२ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्त हारिणो सद्दे अतित्तस्स परिग्गहेय। माया मुस वड्ढइ लोभ दोसा तत्थावि दुक्खा नवि मुच्चइसे ४३ ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय पओग कालेय दुही दुरंते । एवं अदत्ताणि समाययंतो सद्दे अतित्तो दुहिओअणिस्सो ४४॥ सद्दाणु

भाषा

घणूं लालची तृष्णा संतोष न पांमे अर्थात्संतथको पारकी भलो वस्तु देखी लोभीथको पारको अण दीधोले वस्तु ४२ लोभे करो पराभव्यानेचोरी वस्तु लेणहारने शब्दविखे परिग्रहने विखे असंतोषीने माया सहित मृषाइ बोल्यो लोभना दोषथकी चोरो करे तो पणि दुखथी मूकाइ नही ते विखे जीव ४३ कपनी लोभो झूठ बोलो पश्चात्ताप धरे पहली दुक्खलहे झूठा बोलवाना अवसरने विखे दुष्टपाडूयो अंतविडवण सहे, इम अदत्तलेतुथको शब्दने विखे असंतोषी थको दुखीयो रहे तृष्णा वर्जे नही एकारणे दुक्खी हुवे ४४ शब्दने विखे रागी मनुष्यने कोहांयकी सुखथाइ कि वारेपणि

टीका: करोति पुन शब्दलोभोमृषाभाषणस्य पुरस्तात् कथ मया असो शोभन शब्दगुणवान् पदार्थोप्राप्तोवस्तनावाकार्यादिति मृषा भाषणात् पूर्वमपि चिन्ता दुःखोपेत स्यात् पुन स च प्रयोगकालेमृषाभाषण प्रस्तावे च दु खोस्यात् यतोहि मृषा जल्प त मामसौमाजानात्वपि एव अमुनाप्रकारेण शब्देऽतृप्तो जोयोऽदत्तानिशब्दगुण वस्तूनि समाचरन् अहन् दु खितो भवति त्रिकालमपि दुःखभाग भवति कोदृश, सोऽनिश्रो निश्रारहित यतोहि अदत्तग्राहि योऽन्याय युक्तस्य न कोप्यवष्टभ दातास्यात् ४४ [सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एव कत्तोसुह होज्जकयाइ कि चितत्थोवभोगी विकिलेस दुक्ख निव्वत्तई जस्स काएण दुक्ख ४५] शब्दानुरक्तस्य मनुष्यस्य एव अनेनोक्त प्रकारेण कदापि किंचित् स्तोकमपिसुख भवति अपितु सर्वथैव न सुख अवतिलाभ लक्षण यस्य शब्दोप भोगस्य कृते शब्दोपभोगाय दुःख इति आत्मनो निर्वर्त्तयति उत्पादयति तस्य कदापि सुख नास्तीत्यर्थः सुखस्य कारण तत किमपि नास्ति ४५ [एमेव सद्दमि गओपओसमुवेइ दुक्खोह परपराओपदुट्ठचित्तोयचिणाइ कम्म जसे पुणो होइ दुह विवागे ४६] एव अनेन प्रकारेणैव यथा मनोज्ञस्य शब्दोपरि राग उपगतस्तथा शब्देऽमनोज्ञशब्दे प्रद्वेषगतो जीवो दु खौघ परपरा उपैति तत प्रदुष्ट चित्त द्वेषोपहत चित्त, कर्म अष्टविधचिनोति कर्मबध करोति

सूत्र:

सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एव कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि । तत्थोव भोगेवि किलेस दुक्ख निव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ४५ ॥
एमेव सद्दमि गओ पओस उवेइ दुक्खोह परपराओ । पदुट्ठ चित्तोय चिणाइ कम्म जसे पुणो होइ दुह विवागे ४६ ।

भाषा: तोहां व्रति अणपामतु क्लेश दुःखपामे नीपजावे करे शब्दने विखे कष्ट उपाय ४५ इम शब्दने विखे पाम्यो थको पामे ते जीव दुःखनो परपरा द्वेष करी सहित चित्तथकी बांधे कर्म जे कर्म दुःखना कारणहुइ भोगविवाने काले ४६ शब्दथकी विरम्यो मनुष्य शोकरहित एथे दु खनी परपराइ लेपाये

यत्कर्म तस्य प्रदुष्टचित्तस्य पुरुषस्य विपाके दुक्खं दुक्खदायिकं भवति४६ (सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो एएण दुक्खोह परंपरेण नलिप्पइ भवमज्झे वसंतो जलेण वा पुक्खरिणीपलासं४७) यो मनुष्यशब्दे विरक्तोभवति सविशोकः शोकरहितः सन् भवमध्ये वसन् अपि पूर्वोक्तदुक्खौघ परंपरया न लिप्यते किमिव जले वसदपि पुष्करिणीपत्रं इव४७ (घाणस्सगन्धं गहणं वयन्ति तंरागहेउं समणुन्नमाहु त दोसहेउं अमणुन्नमाहु समोयजोतेसुसवीयरागो४८] तीर्थंकराघ्राणस्य नासिकाया ग्रहणं विषयंगन्धं वदन्ति तं मनोज्ञं गन्धं रागहेतुं आहुः पुनस्तंगन्धं अमनोज्ञं द्वेषहेतुं आहुः तेषुमनोज्ञा मनोज्ञेषु गन्धेषु यः समत्वप्रवृत्तिः सवीतरागोज्ञेयः ४८ (गन्धस्सघाणं गहणं वयन्तिघाणस्सगन्धगहणं वयन्तिरागस्स हेउं समणुन्नमाहुदोसस्सहेउं अमणुन्नमाहु ४९) तीर्थंकराः गन्धस्यसुरभ्यसुरभिपुद्गलस्यग्रहणं ग्राहकघ्राणं वदन्ति तथा घ्राणस्य नासिकायागन्धसुरभ्य सुरभिपुद्गलं ग्रहणं ग्राह्यं वदन्ति एवं गन्धघ्राणयोर्ग्राह्य ग्राहकभाव उक्तस्तमनोज्ञं मनोज्ञ गन्धविषयसहितं घ्राणं रागहेतुकमाहुः एवं अमनोज्ञं अमनोज्ञगन्ध विषयसहितं घ्राणं द्वेषस्यहेतु माहुः४९ [गधेसु जोतिव्व

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो एएण दुक्खोह परंपरेण । न लिप्पए भव मज्झे व संतो जलेण वा पुक्खरिणी पलासं४७ ।
घाणस्स गंधं गहणं वयंति तं रागहेउं तु मणुन्न माहु । त दोसहेउं अमणुन्न माहु समोय जो तेसु स वीयरागो ४८ ॥
गंधस्स घाणं गहणं वयंति घाणस्स गंधं गहणं वयंति । रागस्स हेउं समणुन्न माहु दोसस्स हेउं अमणुन्न माहु ४९ ॥

भाषा

नही भवसंसारमांहि वसतुं जिम पाणीइं करी नलिनीनो पान नलिपाइं ४७ घ्राणनासिकाने ग्रहणने विषे गंधपरिमल कहे ते गंध भलो रागनो कारणते द्वेषनुं कारण भुडुयो कहताहुआ जे समताभाव धरे तेवीतराग कहीइं ४८ गंधनो ग्रहण नासिका कहे नासिकानो ग्रहण गंध कहे रागनो

सुबह गिद्ध अकालिय पावह सेविणास रागाउरओ सहि गध गिद्धे सप्पे बिलाओ विर्वानिक्खमंतो ५०] या मनुष्यो गधेषु तीव्र उत्कटा गृद्धि उपैति स मनुष्योरागातुर सन् आकालिक विनाश प्राप्नोति सर्पोहि नागदमिन्यादिकां सुरभिगन्धोपेताकाश्चिदोषधीमाघ्राय यथात् तद्गन्धाकृष्टोविलाग्निर्गच्छन् म्रियते जनैर्मार्यते चन्दनगन्धाकर्षितश्च चन्दनामाश्रित्य तिष्टन् म्रियते मार्यते गन्धलुब्धो नरोहि सर्पोपमोज्ञेय ५० [जे आविदोस समुवेइ तिव्व तसिक्ख णेविउउवेइदुक्ख दुद्दन्तदोसेण सएणजन्तू न किंचिगन्ध अवरज्झईसे ५१] यद्यपि जन्तुर्यस्मिन क्षणेऽमनोज्ञगन्ध आघ्रायतीव्र द्वेष समुपैति स जीवस्तस्मि न्नेवक्षणेस्वकीयेन दुर्दान्तघ्राणेन्द्रिय दोषेण दुःख उपैति पर तु तस्य गन्धग्राहकस्य पुरुषस्य गन्ध किमपि न अपराध्यति गन्धस्य न कश्चिद्दोषस्तस्य घ्राणेन्द्रियस्यैव दोषोस्ति५१ [एगन्तरत्तोरुइरमिगन्धे अतालिसेसेकुणईपओसदुक्खस्ससंपीलमुवेइबालेनलिप्पईतेणमुणीविरागो५२] योमनुष्यो रुचिरोमनोज्ञे गन्धे एकान्तरक्तो अत्यन्त रागवान् भवति सतादृशे अमनोज्ञे गन्धे प्रद्वेष करोति सदासबाल दुःखसंपीडा,दुःखसम्बन्धिनीपीडा असाता उपैति तेन

गंधेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्व अकालिय पावइ से विणास। रागाउरे ओसहि गंधगिद्धे सप्पे बिलाओविव निक्खमंते ५०॥ जेयावि दोस समुवेइ तिव्व त सिक्खणे सेउ उवेइ दुक्ख। दुद्दंत दोसेण सएण जतू न किंचि गंध

हेतु भलो हुवे दोषनोहेतु ते पाडूओ कहे ४८ गधने विषे जे कोई गृद्धि, मूर्च्छापामे अत्यंत ते अकाले अवसर विना मरणपामे जिम रागनो वाह्यो औषधी कालीवेलि प्रमुखना गधने विषे गृद्ध लोभीओ अर्प्य गधने अर्थे बिलथको नीकलतो ५० जे कोई पाडआ गधपामी द्वेष आणे तीव्रपणो तेहज अवसरूने विषे ते दुःख पामे दुर्दांत मोटा दोषनासई कहे जीव गध तेहने अपराध नथी करतो पर रागद्वेष करेके तेहने अपराध ५१

कारणेन विरागीमुनिस्तेन दुःखेनरागद्वेषोद्भवेन कष्टेनलिप्यते ५२ [गन्धाणु गासाणुगएय जीवे चराचरे हिंसइणे गरूवे चित्तेहि ते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरूकिलिट्ठे ५२] बालो अज्ञानीजीवो गन्धानुगाशानुगतो मनोज्ञगन्धोपेत पुष्प कर्पूर कस्तूरिकादि द्रव्यसुरभियहणाशा सहितचित्तै विविध शस्त्राद्युपायै· ज्ञात्वा चराचरान् अनेकरूपान् जीवान् हि नश्चि परितापयति पीडयति कीदृशः स आत्मार्थगुरु: स्वार्थपरायण: पुन: कीदृश: सक्लिष्टोरागा द्य पहितचित्त: ५३ [गंधाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणेरक्खण सन्निओगे वएविओगेयकहिंसुहिंसे सभोगकालेय अतित्तलाभे ५४] गंधानुरक्तस्य जीवस्य कुत: सुख भवति कुतोपि सुखं नस्यादित्यर्थ: तथैव दर्शयति पूर्वं तु गधानुवादेन सुरभिगंधद्रव्यानुरागेणसुरभिगंध द्रव्यानुरागेसति वा परिग्रहेण मूर्छारूपेण दुक्ख स्यात् ततस्तस्योत्पादने दुक्खं स्यात् ततोरक्षणे दुःखं तत: संनियोगे स्वपर प्रयोजने सम्यग् व्यापारेण दुक्खं ततोव्ययेतस्यन्यु नतायां

सूत्र

अवरज्झईसे ५१ ॥ एगंत रत्तो रुइरंसि गंधे अयालिसेसे कुणाई पओसं। दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले न लिप्पइ तेण मुणी विरागे ५२ ॥ गंधाणुगासाणु गएय जीवे चराचरे हिंसइणे गरूवे। चित्तेहिं ते परितावेइ बाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरु किलिट्ठे ५३ ॥ गंधाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण संनिओगे। वए विओगेय कहिं सुहंसे संभोग कालेय

भाषा

मनोहरं गंधने कीडे प्रवर्त्ततु प्राणो चरित्र स थावर अनेक जीवने मारे हत प्रहत करे विचित्र सस्त्र करी दुःख उपजाये अज्ञानी आत्माने अर्थे गुरु मोटो किलेश दुःखपामे ५२ एकांते रातु भलागंधने विखे घण पाडूआ गंधने विखे करे द्वेष दुःखसंबंधिनो पीडानो समूह पामे अज्ञानी नलीपाइ तेणे द्वेष रूप दुखे करी साधू रागरहित ५३ भला गंधने रागे करी परीग्रहनो मूर्च्छाइ करी द्रव्य उपार्जवे रागद्वेषवा रागद्वेष राखे आपणा प्रयो

दुक्ख ततो वियोगेविनाशेदुःख भवति एव कष्टेन सम्प्राप्ते सुगध वस्तुनिसम्भोगकालेपि अतृप्तिलाभ स च दुक्ख एव असन्तोषी महादुखोत्पन्नत्वात् तस्मादे
तादृशस्य गधानुरक्तस्य कुत सुख स्यात् अपि तु नस्यादेव ५४ [गधे अतित्तोयपरिग्गहम्मि सत्तावसत्तोनउवेइ तुट्ठि अतुट्ठिदोसेण दुहोपरस्स लोभाविले
आयईअदत्त ५५] गधेऽतृप्तोऽसन्तुष्ट पुमान् परिग्रहे प्राप्तो भवति सामान्येनरतिमान् भवति तत पश्चात् सक्त सन् उपशक्तोऽत्यन्त रतिमान् भवति
सदासक्तोपसक्त उच्यते तादृश प्राणोपश्चत्य तुष्टि सन्तोष न उपैति स च अतुष्टदोषेण दुक्खीसन् अन्यस्य अदत्त द्रव्य आदत्ते कोदृश स लोभाविलो
लोभेन कलुष ५५ [तण्हाभिभूयस्सअदत्तहारिणो गधेअतित्तस्सपरिग्गहेय मायामुस वड्ढइलोभदोसा तत्थावदुक्खाणविमुच्चईसे ५६] तृष्णाभि भूतस्य
सुगधद्रव्यलोभेन पराभूतस्य ततो अदत्तहारिणोगधे अतृप्तस्य पुरुषस्य परिग्रहे लोभदोषात् मायामृषा वर्द्धते तथापि मायामृषाया अपि सद्भावादौ
जीवो दु खात् न विमुच्यते ५६ [मोसस्सपच्छायपुरत्थओय पओगकालेयदुहोदुरन्ते एव अदत्ताणि समाययन्तो गधेअतित्तोदुहिओ अणिस्सो ५७] मृषा

अतित्त लाभे ५४ ॥ गधे अतित्तेय परिग्गह म्मि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि । अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स लोभाविले

आययइ अदत्त ५५ ॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्त हारिणो गधे अतित्तस्स परिग्गहेय । माया मुस वड्ढइ लोभ दोसा तत्था

जननें विषे विनाश विरहनें विषे किहांथकी सुखहुवे तेहना भोग विषानें काल विषे तृप्ति सतोष पामइते कि हांथकी सुखथाइ ५४ गधनें अस
तोषी थको तथा परिग्रहनें विषे सामान्य पणाथी लालचो अथवा घणु लालचो सतोष न पामे असतोषी थको पारका गधदेखी लोभे कलुषित
चित्त थको पारकी वस्तुग्रहे अणदीधी पणिइ ५५ लोभे करी पराभव्यानें अदत्तनालेण हारनें गधनें विषे परिग्रहनें विषे असतोषीनें माया सहित

भाषोपुरुषः मृषावाक्यस्य पश्चात् च पुनःपुरस्तात् पूर्वं च पुनः प्रयोगकालेदुरन्तोदुक्खोभवति मृषाभाषणस्य पश्चादेव जानाति मया किमर्थं मृषावाक्य मुक्तं मृषाभाषणस्य पूर्वं एवं जानाति असौ मम मृषावाक्यं भाखति मृषाभाषणकाले च एवं जानाति अस्यार्थे हं मृषां वदामि परमसौजानाति इति चिन्ताकुलत्वेन सर्वदादुरन्तो दुक्खीअत्यन्तदुःखीस्यात् एव अदत्तानि समाचरन् गंधे अतृप्तोजीवो दुःखितोभवति कीदृशः सोऽनि श्रीनि आरहितः ५७ (गधाणुरत्तस्स नरस्स एवं कत्तोसुहं होज्जकयाइं किंचितत्थोवभोगेविकिलेसदुक्खं निव्वत्तई जस्सकएणदुक्खं ५८) एवं अमुनाप्रकारेणगंधानुरक्तस्य नरस्य कदापि किञ्चित् कुतः सुखं भवेत् तत्रापि गंधोपभोगेपि क्लेश एव दुक्खं निर्वर्त्तयति क्लेशदुक्खं उत्पादयति यस्य कृतेगंधस्योपभोगार्थं दुक्खं आत्मनः

सूत्र विदुक्खा नवि मुच्चई सेप्ट६ ॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय पओग कालेय दुही दुरंते। एव अदत्ताणि समाययंतो गंधे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ५७॥ गंधाणुरत्तस्स नरस्स एवं कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि। तत्थोव भोगेवि किलेस दुक्खं। निव्वत्तए जस्स कएण दुक्खं ५८॥ एमेव गंधमि गओ पओसं उवेइ दक्खोह परंपराओ। पदुट्ठ चित्तोय चि

भाषा भूठूं बोले दोषथकी चोरीकरे तोपणि मृषावादबोल्यै थके दुक्खथकी न मूंकाइ ५६ गधनो लोभी भूठूबोली पछे पश्चात्ताप भरे एकर्मि बंधस्यै इम करतो पहिला दुःखलहै भूठा बोलवाना प्रस्तावने बिखे अंतबिहवम तेहने जिम भूठू लागे तिम अणदीधो लेतो गंधने बिखे अतृप्त असंतोषी दुखीओ थाइ निष्टारहित ५७ गधने बिखे रागी मनुष्यने कोहाथी सुखहोइ किवारे पणि तीहां गंधने बिखे तृप्त न हुइतालगे क्लेस दुख पामे नीप जावे करे दुक्खकष्ट अने उपाय ५८ एणीपरि जिम उत्तमगध ऊपरि राग हुइ तिम कदाचित द्वेष पाम्यो थको पामे ते जीव दुःखना समूहनी परंपरा

कष्ट भवति ५८ (एमेवग ध मिगओपओस उवेइदुक्खोहपर पराओ पदुट्ठचित्तोयचिणाइकम्म जसेपुणोहोइ दुहविवागे ५८) एव एव यथागधामुरक्तोनरो दुक्खोघपर परा प्राप्नोति तथैवगधेदुष्टग धेप्रद्वेषतोदु खौघपर परां उपैति प्रदुष्टचित्त सन् दुष्ट कर्मचिनोति यत् कर्मतस्य पुरुषस्य विपाकेविपाक कालेदु ख दु खकारि भवति ५९ (गधेविरत्तोमणु ओविसोगोए एण दुक्खोहपर परेण न लिप्पई भव मज्झेवसन्तो जलेणवा पुक्खरिणीपलास ६०) गधेविरक्तोगधात् विरागोमनुज एतेन पूर्वोक्तदु खौघ पर परयानलिप्यते न स्पृश्यत किं कुर्वन् अपि भव मध्येवसन् अपि किं मिव पुष्करिणी पत्र पद्मिनी पत्र जले इव ६० ११ रसनेन्द्रियमाश्रित्याहूयणमाह [जीहाएरसगहण वय तित रागहेउ समणुन्नमाहु दोसस्सहेउ अमणुन्नमाहु समोयजोतेसु सवीयरागो ६१] रस्यते आस्वाद्यते इति रस मधुरादिस्त रस तीर्थं कराजिह्वायारस मधुरादिक विषय ग्रहण वदन्ति त रसमनोज्ञ मनोहरशुभ०

याइ कम्म जसि पुणो होइ दुह विवागे ५९॥ ग धे विरत्तो मणुओ विसोगो एएण दुक्खोह परपरेण। न लिप्पए भव मज्झेव सतो जलेण वा पुक्खरिणीपलास ६०। जीहाए रस गहण वयति त राग हेउतु मणुन्न माहु। त दोस हेउ अमणुन्न माहु समोय जो तेसु सवीयरागो ६१। रसस्स जीह गहण वयति जिह्वाए रस गहण वयति। रागस्स

गंधो प्रद्वेष करो सहित जिवारे चित्त हुइ तिवारेइ बाधे कर्मघणा जेहकर्मना भोग विपाकासने विषे दु खपामि५८ मनोहरगधर्नविषे राग अणधरतु मनुष्य शोकरहित थको ए दु खनी परपरा तेणे करीने लींपाइ खरडाइ नहीं भवससारमाहि जिम पाणिइ करी कमलनीनूपाननली पाई ६० जोभनो ग्रहण रसकहे तोय करते रागनु हेतु मनोहर भलोकहे तेहैयनो कारण अमनोज्ञ पाडूओ कहे समो जे रागद्वेषने विषे त वीतराग ६१

सहित रागहेतुं आहुः तमेवरसंकटुकादिकं अमनोज्ञं अमनोहरं द्वेषहेतुं आहु यश्चतेषु मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु समस्तुल्य वृत्तिः सवीतराग उच्यते इति शेषः ६१ (रसस्सजीहंगयणं वयन्ति जीहाएरसङ्गहणं वयन्ति रागस्सहेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमुन्नमाहु ६२) रसस्य मधुर दिर्जिह्वा जिह्वेन्द्रियं ग्रहण ग्राहकं वदन्ति तथा जिह्वायारसनेन्द्रियस्य रस मधुरादिकं ग्रहणं ग्राह्यं वदन्ति रसरसनयोर्ग्राह्य ग्राहकसम्बंधः उक्तः तद्रसनेन्द्रियं समनोज्ञं रागहेतुकं आहु अमनोज्ञं द्वेषस्य हेतुकं आहुः ६२ [रसेसु जोगिद्धिमुवेइतिव्वं अकालियं पावइसेविणास रागाउरेविडिसविभिन्नकाए मच्छेजहा आमि सलोभगिद्धे ६३] योमनुष्योरसेषुमधुरादिषुतीव्रां गृद्धिं उपैति सरागातुरोऽकालिकं विनाशंप्राप्नोति तथा रसगृद्धोजीवोपि यथा विडिसेविभिन्नः कायो यस्यस एतादृश मच्छः आमिस लोभरसगृद्धः मृत्युं प्राप्नोति६३ (जेयाविदोसं समुवेइतिव्वं तंसिक्खणेसेउउवेइदुक्खं दुद्दन्तदोसेण सएणजन्तु न किंचिरस अवरज्झइसेइ ६४) ययापि जन्तुर्यस्मिन्क्षणेतीव्रं द्वेषं समुपैति स जीवस्तस्मिन्नेव क्षणे स्वकोयेनदुर्दान्त दोषेण दुर्दान्तरसनेन्द्रिय दोषेणदुःखं उपैति प्राप्नोति परन्तु तस्य मनुष्यस्य रस. किं मपि नापराध्यति तस्य रसनेन्द्रियस्यैवदोषो न तुरसस्य कश्चिद्दोषोस्तीति भावः ६४

सूत्र हेउं समणुन्न माहु दोसस्सहेउं अमणुन्न माहु ६२। रसेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं। रागा उरे वडिस विभिन्नकाए मच्छे जहा आमिसलोभ गिद्धे ६३ ॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तं सिक्खणे सेउ उवेइ

भाषा रसनो ग्रहण रस कहे रागनो हेतु मनोहर भलो कहे द्वेषनो हेतु पाडूआ कहे ६२ रसने विखे जे गृद्धिवाला तिव्र प्राणी ते अकालि पामे विनाश मरण रागे पीडो लोहाने कांटे करी भेदाणो वीधाणीकाया शरीर जेहने जिम माछलामांसने लोभे गृद्ध लोभी थको मरण पामे ६३ जे कोई पाडूआ

[एगतरत्ताहउरेरसंति चालिवेवे कुणइपवोस दुक्खसंपोलमुवेइ बालेनलिप्पईतेण मुणीविरागी६५] यो रुचिरे मनोज्ञे मधुरादौरसे एकान्तरक्तोऽत्यन्त मासक्तोभवति सबालोऽज्ञानो जीवोऽताद्दृशे अमनोज्ञे रसे प्रद्वेष करोति ततय दुक्खस्य दुक्खसम्बंधिनी पीडा उपैतिप्राप्नोति तेन कारणेन विरागीनलि प्यतेन आसक्तोभवति ६५ [रसाणुगासाणुगएय जीवेचराचरे हिंसइणेगरूवे चित्तहिते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरुकिलिट्ठे ६६] बालोऽज्ञानी जीवो रसानु गागानुगतो मधुरादि रसास्वादाभिलास सहितश्चिवविधै शस्त्राद्युपायै ज्ञात्वा अनेक रूपान् चराचरान् जीवान् हिनस्ति परितापयति कोदय सबालो अत्तट्ठगुरु आत्मार्थ परायण पुन कीदृशोबाल क्लिष्टो रागाद्युपहतचित्त ६६ (रसाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण सन्निओगे वए

दुक्ख । दुद्दंत दोसेण सएण जंतू न किंचि रस अवरज्झई से ६४। एगं त रत्तो रुइरेरसंमि अतालिसे से कुणई पओस । दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले न लिप्पई तेण मुणी विरागो ६५। रसाणुगासाणु गएय जीवे चराचरे हिंसइ णेगरूवे । चित्ते हिंति परितावेइ बाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरु किलिट्ठे ६६। रसाणुवाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण

रसने विषे पाप द्वेष अत्यंत तहि जघण अवसरने विषे दु खपामि दुदात मोटे रसने दोषे वीधाइ जीव परपाडूओ रसकाइ तेहने अपराध करतु मथो ६४ एकांतराग धरतु मनोहर रसने विषे अति घण पाडूआ रसने विषे अप्रीतोकर दुक्ख स बधिनी पीडानो समूह पामे अज्ञानो न लोपाइ तव द्वेष रुप दु खे करी साधु रागरहित ६५ मनोहर रसने केडे प्रवर्त्यो जीव चराचरत्र स थावरने हणे अनेकजाति विविध शस्त्रे करी दुक्ख उपजावे अज्ञानो आत्माने अर्थे गुरु मोटो क्लिनेश दु खपामे ६६ मनोहर रसने रागे करि रूपार जिया राखवा विषे आपणा प्रयोजनने विषे कोद्दाधको

विप्रोगेयक हिसु हसे सभोगकालेय अतित्तलाभे ६७) रसानुरक्तस्य जीवस्य रसानुरागे सति वा परिगृहेण रसयुक्त द्रव्याणा मूर्च्छया तथा रसयुक्त द्रव्याणां उत्पादने तथा तेषां रचणे तथा तेषां द्रव्याणां सन्नियोगे स्वपरेषां प्रयोजने तथा व्यये सरसद्रव्याणां न्यूनत्वे न तथा वियोगे विरहे तस्य रसानुरक्तस्य कुत: सुखं भवंति कस्मादपि कारणात्सुख न भवति सभोगकाले च रसाखादनकालेपि अल्पलाभोपि दुःखं असंतुष्टिरेव दुक्खमेव ६७ (रसे अतित्तेयपरिग्गहमि सत्तोवसत्तोनउवेइतुट्ठिं अतुट्ठिदोसेण दुहीपरस्स लोभाविले आययई अदत्तं ६८) रसे अल्पसोजीव: परिग्रहे शक्तोभवति ततश्च सक्त: सन् उपशक्तोभवति सक्तोपसक्तस्य तुष्टिं न उपैति अतुष्टि दोषेण दुक्खीपुमान् परस्य अदत्तं सरसवस्तु गृह्णाति कीदृश: स लोभाविलोलोभकलष: ६८ तण्हाभि भूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहेय मायामुस वड्ढइलोभदोसातत्थाविदुक्खानविमुच्चईसे ६९] तृष्णाभि भूतस्य अदत्तहारिणोरसे

सूत्र: सनिउगे। वए विप्रोगेय कह सुहंसे संभोग कालेय अतित्त लाभे ६७॥ रसे अतित्ते य परिग्गहंमि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं। अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्तं ६८॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो रसे अतित्तस्स परिग्गहेय। मायामुसं वड्ढइ लोभ दोसा तत्थावि दुक्खानवि मुच्चई से ६९॥ मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय पओग

भाषा: सुखहोइ तेहना भोग विवाना काल विखे अल्पमयको ६७ रसने विषे असंतोषो तथा परिग्रहने विखे सामान्य पणे लालची घणुं आसक्त लालची संतोष न पामे असंतोषीने दोषे दुखीओ थको लोभे करो कलुषित चित्तथकोथ्ये पारकी वस्तू आणदीधी ६८ लोभे करी पराभव्याने अदत्तनालेण हारने रसने विखे परिग्रहने विखे असंतोषीने माया सहित मृषा शठ बोले तोपणि मृषा बोल्ये थके दुःखथकी न मुंकाइते जीव ६९ रसनो लोभी

अलमस्य पुरुषस्य परिग्रहे लोभदोषात् मायाऽधावर्द्धत तत्रापि मायाम्याया अपि स असन्तोषोसरसवस्तु आहोदुक्खात् न विमुच्यत ६८ मोसस्सपच्छाय पुरत्थमोय पओगकालेयदुहीदुरन्ते एव अदत्ताणि समाययन्तोरसे अतित्तोदुहिओ अणिस्सो ७] मृषा वाक्यस्य पश्चात् पुरतश्च प्रयोगकाले च दुरन्तो दुक्खोभवति दुर्दुष्टोन्तो यस्य सदुरन्त एतादृशो दुक्खोभवति एव असुनाप्रकारेण रसे अदत्ताऽदत्तानि समाचरन् चौर्याणि कुर्वन् दुःखितो भवति पुन रनिश्रो भवति निश्रारहितोभवति ७० [रसाणुरत्तस्सनरस्स एव कत्तोसुह होज्जकयाइकिंचितत्थोयभोगेविकिलेसदुक्ख निव्वत्तइ जस्सकएणदुक्ख ७१] एव असुनाप्रकारेणरसानुरक्तस्य कदापि किञ्चित् कुत सुख भवति कुतोपि सुख न भवति इत्यर्थ तथ रसोदभोगसमयेपि असन्तोषी अप्राप्ति लाभ रूप क्लेशदुक्ख निर्वर्त्तयति उत्पादयति तस्य रसोपभोगस्य कृते आत्मनोदु ख आष्ट जोवस्यादयतीत्यर्थ ७१ [एमे वर समिगओपओस उवेइदुक्खोह परपरामापदुइचित्तोयविणाइकम्म जसेपुणोहोइ दुह विवागे ७२] एव मेव रसे गतोजीव प्रद्वेष गत प्रदुष्टचित्त सन् दुक्खौघपर परयास्त्यर्मीचनोति

मालिय दुही दुरते। एव अदत्ताणि समाययतो रसे अतित्तो दुहियो अणिस्सो ७० ॥ रसाणु रत्तस्स नरस्स एव कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि। तत्थोवभोगेवि किलेस दुक्ख निव्वत्तई जस्सकएण दुक्ख ७१ ॥ एमेव रसंमि गओ पओस

झूठ बोलो पछे पश्चात्ताप धरे किम एवचस्य, दुस्य करतुपहिला दुखपामे झूठा बोलिवाने प्रस्तावने विखे दुखनो अतपामे जिम झूठ लागे तिम अदत्त अणदोधोलेतो रसने विखे अमतोषो थको निश्रा रहित ७० रसने विखे रागी नर मनुष्यने कि हाथी सुख होइ कि वार पणि तिहा भोग विहाने विखे वालेश दुखपामे नोपजावे करीने जे मनोहर रस भोगववानेकाजि दुख कष्ट ७१ इम रसने विखे प्रद्वेष धरत पामे जीव दुखनो

येन कर्मणापुनस्तस्य जीवस्य विपाके दुक्ख भवति ७२ [रसे विरत्तोमणुओविसोगोएएण दुक्खोह पर पेरेण न लिप्पई भवमज्झे वसन्तो जलेण वा पुक्खरिणी पलास ७३] रसे विरक्तो मनुजोविशोका' सन् भवमध्ये वसन् अपि एतेन पूर्वोक्तेन दुःखौघपर परयानलिप्यते केन किमिव जलेन पुष्करिणी पत्रमिव ७३ एव त्रयोदशगाथा १३ अथ स्पर्शनेन्द्रियमाश्रित्याह [कायस्सफासङ्गहणं वन्ति तं राग हेउ समणुन्नमाहु त दोसहेउं अमणुन्नमाहु समोयजोने सुसवीय रागो ७४] तीर्थंकरा: काय स्पर्शनेन्द्रिय स्पर्श शीतोष्णखरमृद्वादिक अष्टविधं विषयं ग्रहण वदन्ति त स्पर्शविषयं मनोज्ञ मनोहरगुणसहित रागहेतु आहु: तमेव अमनोज्ञं असुन्दर द्वेष हेतु आहु: तेषु मनोज्ञामनोज्ञेषु स्पर्शेषु य: समस्तुल्य परिणाम: सवीतराग उच्यते इति शेष: ७४ [फा सस्सकायं गहण वयन्ति कायस्सफासं गहणं वयन्ति त रागहेउ समणुन्नमाहु दोसस्सहेउं अमणुन्नमाहु ७५] तीर्थंकरा: स्पर्शस्यशीतोष्णादे: पुद्गलस्य काय

सूत्र

उवेइ दुक्खोह परपराओ। पदुट्ठ चित्तोय चिणाइ कम्मं जं से पुणो होइ दुहं विवागे ७२ ॥ रसे विरत्तो मणुओ
विसोगो एएण दुक्खोह परंपरेण। न लिप्पइ भवमज्झेऽसंतो जलेण वा पुक्खरिणीपलासं ७३ १३॥ ४ कायस्स फासं
गहणं वयंति तं रागहेउंतु मणुन्न माहु। त दोस हेउ अमणुन्न माहु समोयजो तेसु स वीयरागो ७४॥ फासस्स कायं

भाषा

परपरा द्वेषे करो सहित चित्त थको बांधे कर्म जे कर्मना दु:खना कारण हुवे विपाक भोगविवाना कालने विषे ७२ रसने विषे विरक्त मनुष्य शोकरहित ए पूर्वे कह्योते दु:खनो परपरा लोपाइ नही भवसंसारमाहि वसतु जीम पाणीइ करी कमलिनी पान नलीपाइ ७३ काय शरीरनो ग्रहण विषे फरस करे कह्ये ते रागनो हेतु भलो कह्ये ते द्वेषनु हेतु कारण अमनोज्ञ माठुओ कह्यो मरीषो जे एहने विषे ते वीतराग ७४ फरसनो

स्पर्शनेन्द्रिय ग्रहण ग्राहक वदन्ति तथा कायस्य स्पर्शनेन्द्रियस्य स्पर्शं शीतोष्णादिक ग्रहणं ग्राह्य वदन्ति तत् स्पर्शनेन्द्रिय शरीर मनोज्ञ मनोज्ञस्पर्श ग्राहक रागहेतुक आहु तदेव स्पर्शनेन्द्रिय अमनोज्ञ अमनोज्ञस्पर्शग्राहक द्वेष हेतुक आहु ७५ (फासेसु जोगिद्धिमुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं रागाउरेसीयजलावसन्ने गाहग्गहीए महिसेवरन्ने ७६] योमनुष्य स्पर्शनेन्द्रियविषयेषु तीव्रा उत्कटा गृद्धि उदेति सोऽकालिका विनाश प्राप्नोति सकस्वरागेण आतुरोरागातुर शीतजलेऽयसवसादोपशमनाय शीतलजलेमग्नसन् ग्राहग्रहीतोमहामकरेणोपात्तोऽरण्य महिषइवनाश प्राप्नोति ७६ [जेयावि दोससमुवेइतिव्वं तंसिक्खणेसेउ उवेइदुक्खं दुद्दन्तदोसेण स एणजंतू न किंचिफासं अवरज्झईसे ७७] यथापि जन्तुर्योऽपि कश्चन् स्पर्शतोऽपि द्वेष समुपैति स च जन्तु स्वकीयेन दुर्दान्त दोषेण स्पर्शनेन्द्रियदोषेण तस्मिन्नेवक्षणे दुःख उपैति परं स्पर्श शुभाशुभ स्पर्शनेन्द्रियविषयस्तस्य जीवस्य किमपि नं

गहणं वयति कायस्स फासं गहणं वयंति। रागस्स हेउं समणुन्नमाहु दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ७५॥ फासस्स जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से विणासं। रागाउरे सीय जलावसन्ने गाह ग्गहीए महिसेवरन्ने ७६॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं। दुद्दंत दोसेण सएण जंतू न किंचि फासं अवरज्झई से ७७॥

ग्रहणकाया कहीइ कायानो समग्रहण कह्या ते रागनोहेतु भलो कहे ॥ द्वेषनोहेतु माठूश्री कहतो हुयो ७५ स्पर्शने विषे जे गृद्धि वांछा अत्यंत करे अकाले ते पामे विनाशमरण जिम रागे पीड्यो टाढापाणी माहि बेसे जिम ग्राहक जलचर जीव ग्रह्यो महिषपाड्यो अटवीमाहि मरणपामे ७६ जे कोइ पाडेपा फरसने विषे द्वेष पामे तेहि जक्षण अवसरने विषे दु खपामे दन्तात मोटे फरसने दापे परपाडूउ परिस तेहने अपराध करतु

अपराध्यति तस्य सर्शनेन्द्रियस्यैव दोषः ७७ (एगन्तरत्तोरु इरसिफासे अयालिसे सेकुणईपओसं दुक्खस्स सम्पीलमुवेइबाले नलिप्पई तेणमुणीविरागी७८) योमनुष्योरुचिरे सर्शेएकान्तरक्तो भवति स अतालिसे अमुन्दरे स्पर्शे प्रद्वेष करोति स च बालोऽज्ञानीदुक्खस्य सम्पीडां उपैति तेन कारणेन विरागीमुनि र्नलिप्यते ७८ [फासाणुगासाणुगएयजीवे चराचरेहिंसइणेगरूवे चित्तेहिं ते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठगुरूकिलिट्ठे ७९] स्पर्शानुगासानुगतोजीवः स्पर्शाभिलाषसहितो जीवो बालोनिर्विवेकीचित्रैरनेक रूपैरुपायैः शस्त्रैः कृत्वा अनेकरूपान् त्रसान् स्थावरान् जीवान् हिनस्तिपीडयति कीदृश' स अत्तट्ठगुरुः स्वार्थपरायणः पुन कीदृश' क्लिष्टोरागाद्युपहतचित्तः ७९ (फासाणु वाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण सन्निओगेवएविओगेय कहंसुहंसे

सूत्र

एगंत रत्तो रुइरसि फासे अतालिसेसे कुणई पओसं । दुक्खस्स संपीलमुवेइबाले न लिप्पई तेण मुणीविरागो ७८॥
फासाणु गासाणु गएयजीवे चराचरे हिंसइ णेगरूवे । चित्तेहिं ते परितावेइ बाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरु किलिट्ठे ७९ ॥
फासाणु वाएण परिग्गहे ण उप्पायणे रक्खण सनिओगे । वए विओगेय कहं सुहंसे संभोग कालेय अतित्त •

भाषा

नहीं ७७ एकात घणु रागी फरस भलाने विखे अति घणु माठूआ फरसने विखे द्वेष दुःख सबधिनो पीडानो समूह पामे अज्ञानी न लीपाइ तिणे दुःख रूपजे द्वेष ते वारी साधुनिरागी ७८ मनोहर फरसने कोडे प्रवर्त्ततो प्राणी जीव चराचर त्रसअने थावरने हणे अनेकजाति विचित्र शस्त्रे करीने दुःख उपजावे अज्ञानी आत्माने अर्थे गुरुमोटो किलेश पामे ७९ मनोहर फरसने विखे रागे करी परिग्रहनी मूर्च्छाइ करी द्रव्य उपजाववे करी चोरादिकथी राखिवे कामने करीवे करी विनाश विखे विरहने विखे कीहाथी सुखहोवे तेहने भोग विलाने कालने

सम्भागकालेय चतित्तिलाभे ८०) सम्रानुरागेय सम्रानुरागेजाते सति या सम्यपरिग्रपेण सर्शानुरक्तस्य जीवस्य स्पर्शानां उत्पादने तथा स्पर्शानां संरक्षणे स्वपरयोग्य प्रयोजन व्यापारे तथा पुन सम्रानां व्ययेन्यूनत्वे तथा सम्रानां वियोगे विनाशे तस्य सर्शानुरक्तस्य कुत सुख स्यात् सर्वकाले असुख एव स्यात् प पुन सम्रानां सम्भागकालेपि चतृप्ति लाभ एव दुःख मेव भवति ८० (फासे चतित्त य परिग्गह मिसत्तोवसत्तीय अपैइ तुट्ठि चतुट्ठिदासेय दुहोपरस लोभाविले चायइ चदत्त ८१) सम्र चदत्त पुमान् परिग्रहे मूर्छाया सक्तो भवति सामान्ये नरक्तोभवति ततश्च उदयश्लेषोऽत्यन्तासक्तोभवति ततश्च असंतोषदोषेण दु खीसन् परस्यान्यस्य स्पर्श चादत्ते गृह्णाति कीदृश सत्ताभाविलोलोभमलिनचित्त ८१ [तण्हाभि भूयस्स चदत्तहारिणो फासे चतित्तस्स परिग्गहेय मायामुस वड्ढइलोभदोसा तत्थावि दुक्खान विमुच्चई से ८२] तृष्णाभि भूतस्य मनुष्यस्य पुनरदत्तहारिणश्च पुंसः स्पर्श चतृप्तस्य परिग्रहे मूर्छायां लोभदोषात् मायामृषावर्द्धते तत्रापि मायामृषायामपि दु खात् असन्तोषेन मुच्यते ८२ [मोसस्सपच्छायपुरत्थचोय पयोग

फासे ८० ॥ फासे चतित्तेय परिग्गहे नि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठि । चतुट्ठिदोसेण दुही परस्स लोभाविले चाययइ चदत्तं ८१ ॥ तण्हाभिभूयस्स चदत्तहारिणो फासे चतित्तस्स परिग्गहे य। मायामुसं वड्ढइ लोभ दोसा तत्थावि

विषे रति सताप चणहतु कोहायको सत ८० फरसने विषे चसतोषी थको तथा परिग्रहने विषे सामान्यपण लालची संतोष न पामे चस तोषीने दु खे दु खोयोयका नाभे चतुपितचित्त थको पारको चणदीधो वस्तु ग्रहे ८१ लोभे करी पराभव्याने चदत्त मालिक हारने फरसने विषे चसंतोषीने परिग्रही विषे चसंतोषीने माया मृषावाद वाधे लोभना दोषना दोषथको क्या झूठो बोले तिहां पीण दु ख थका मूकाइ

कालेयदुहीदुरन्ते एव अदत्ताणि समायवन्तो फासेअतित्तोदुहिओ अणिस्सो ८३] माया न्पाभाषी पुमान् न्पा वाक्यस्य पश्चात्पुरतश्च पुनः प्रयोग कालेभाषण प्रस्तावेदुरन्तोऽत्यन्त दु खीभवति एवं अमुनाप्रकारेण अदत्तानि समाचरन् स्पर्शेऽतृप्त सन् दुःखीभवति पर कीदृशः अनिश्रोनिश्रारहितः८३ (फासाणुरत्तस्सनरस्सएव कत्तोसुहहोज्जकयाइकिंचितत्थोवभोगेविकिलेसदुक्ख निव्वत्तईजस्सकएणदुक्ख ८४) एव अमुनाप्रकारेण स्पर्शानुरक्तस्य कदापि कि ञ्चिदपि कुतः सुख भवेत् अपितु नभवेत् तत्र स्पर्श उपभोगेपि क्लेश दुःख यस्य स्पर्शस्यऽर्जने उपभोगार्थं आत्मनोदुःख निर्वर्त्तयति८४ (एमेव फासमिगओ पओस उवेइदुक्खोहपरंपराओ पदुट्ठचित्तोयचिणाइकम्मं जसेपुणो होइ दुहविवागे ८५) एवं एव यथा स्पर्शेरागवान् दुःखौघपरं परयाप्रदुष्टचित्तः सन्

दुक्खानवि मच्चई से ८२। मोसस्स पच्छाय पुरत्थओय पओग काले य दुही दुरंते। एव अदत्ताणि समाययंतो फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ८३। फासाणुरत्तस्सनरस्सएवं कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि। तत्थोव भोगे वि किलेस दुक्खं निव्वत्तई जस्सकएण दुक्ख ८४। एमेव फासमि गओ पओसं उवेइ दुक्खोह परंपराओ। पदुट्ठ चित्तोय चिणाइ

नथी ८२ फरसने लोभी भूठो बोले पहिलो दुःख लहे प्रयोग काले भूठा बोलवाने अवसरने विषे दुःखी थको अत विडबना जिम भूठो लागे तिम अदत्त अणदीधे एतले फरसने विषे असतोषी दुःखि थाय निश्चारहित ८३ फरने पोरि रागीने नरमनुष्यने इमको हायी सुखथाइ किवारे पणि तीहा फरसने विषे त्यां न होइ तालगी क्लेश दुःख पामे नीप जावे करे ते फरस भोग विवाने विषे कष्ट अनेक उपाय ८४ इम फरसने विषे द्वेष पाम्यो थको पामे ते जीव दुःखनी परपरा प्रदेषे चित्तसहित थको बाधे कर्मघणा ऊंच कर्म दुःखना कारणरूप विपाक भोग

कम षट्प्रकारचिनोति तथा स्वग मर्डे यद्दतीद्रक्षोवपर परयाप्रद्रगचित्त सन् तद् कमचिनोति तत्कर्म उपार्जयति यस्य सं तस्य पुरुषस्य पुनर्विपाके दुःखदायि भवति ८५ (कामेजिरत्तोमणुओ विसोगोएएण दुक्खोहपर परेण नलिप्पइ भव मज्झेवसतोजलेण वा पुक्खरिणीपलास ८) स्पर्शविरक्तो मनुष्योविशोक सन् एतयाद्रक्षोघपर परयाभवमध्येवसन् अपि न लिप्यते वैन किं सिवजलेन पुष्करिणी पत्र मिव ८६ १३ एताभिस्त्रयोदशगाथाभि स्पर्शेन्द्रियदोषउक्त मनसोधिकार (मणस्सभाव गहण वयन्ति त रागहेउ समणुन्नमाहु त दोसहेउ अमणुन्नमाहु समोयजोतेसुसवीयरागो ८७) तीर्थकरामनसश्चित्तस्य भाव अभिप्राय चिन्तनरूप ग्रहण ग्राह्य वदन्ति त अभिप्राय समनोज्ञ मनोज्ञरूपादि विषयचिन्तनसहित रागहेतुक आहु अथवा स्वप्नकामादिष भानोमथ्यापितोरूपादिस्तोपि भाव उच्यते त भाव मनसोग्राह्य तीर्थ करावदन्ति स्वप्नादिषु हि दृष्टत्त मनस एवव्यापारोस्ति

कामे जसे पुणो होइ दुह विवागं ८५॥ कामे विरत्तो मणुओ विसोगो एएण दुक्खोह परंपरेण। न लिप्पई भवमज्झे वसंतो जलेण वा पुक्खरिणी पलास ८६ १३॥ ५ मणस्स भाव गहण वयति त राग हेउ तु मणुन्न माहु। त दोस हेउ अमणुन्न माहु समोय जो तेसु स वीयरागो ८७॥ भावस्स मण गहण वयति मणस्स भाव गहण वयति।

विपाकें अवसरे ८५ मनोहर फरसने बिखे राग अणधरतु मनुष्य शोकरहित एपुठें कहीतें दुःखनी परंपरा तीणें नही भवसंसार माहि वसतु जिन पाणीइ कमलनोपाद नही ८६ मननोंद्रियानो भाव परिणाम ग्रहण ग्राह्य कहे तीथकर ते रागनो हेतु भलो कहताइष्टा ते द्वेषनो हेतु पाडूओ कहता इष्टा ते न राखे मनराग द्वेषने बिखे ते वीतराग ८७ भावद्रियानो शुभादि चिंतन रूपनो ग्रहण मन चक्षुनो करनो

तमेव भाव अमनोज्ञं द्वेषहेतुं आहुः यो मनुष्यो मनोज्ञामनोज्ञेषु भावेषु समस्तुल्य वृत्तिः सवीतराग उच्यते ८७ [भावस्समणं गहणं वर्यन्ति मणस्सभाव गहणं वयन्ति रागस्स हेउं समणुन्नमाहु दोसस्सहेउं अमणुन्नमाहु ८८] तीर्थंकराभावस्य शुभाशुभाशयस्य मनोग्रहणं ग्राहकं वदन्ति मन सचित्तस्य भावशुभाशुभाभि प्राय ग्राह्यं वदन्ति इत्यनेन भावमनसोर्ग्राह्य ग्राहक भावस्संबन्ध उक्तः तत्र तत् मनस्समनोज्ञं प्रमादयुक्तं रागस्य हेतुकं आहुः अमनोज्ञं कुत्सितभावसहित द्वेषस्य हेतुकं आहुः ८८ [भावेसु जोगिद्धिमुवेइतिव्वं अकालियं पावइसेविणासंरागाउरे कामगुणेसु गिद्धे करेणुमग्गावहिए एव नागे ८९] योमनुजोभावेषु विषयाभिलाषेतीव्रां गृद्धिं उपैति समनुजस्त्वाकालिकं विनाशं प्राप्नोति स पुनरागातुरः कामगुणेषु गृद्धः सन् करेणुमार्गाप हृतो नाग इव हस्तिन्या स्वमार्गे आनीतोगजइव परवशोभूत्वा आकालिकं विनाशं प्राप्नोति यथाहि मदोन्मत्तोहस्तीदूरात् करेणुकाहस्तिनी दृष्ट्वा तद्रूपमोहितस्तस्यामार्गे पतितोजनैर्गृहीत्वा सग्रामादौ प्रावेश्यविनाश्यते तथा भावातुरोपि अकाले म्रियते इत्यर्थः ८९ [जेयाविदोससमुवेइतिव्वं तं सिक्खणेसेउ उवेइदुक्खं दुद्दन्त दोसेणसएणजन्तू न किंचिभाव अवरज्झईसे ९०] यथापि मनुष्यो यस्मिन् क्षणे शुभाशुभभावेतीव्रं द्वेषं समुपैति समनुष्यः

सूत्र

रागस्स हेउं समणुन्न माहु दोसस्स हेउं अमणुन्न माहु ८८॥ भावेसु जो गिद्धि मुवेइ तिव्वं अकालियं पावइ से वि णासं। रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे करेणु मग्गा वहिएव नागे ८९॥ जेयावि दोसं समुवेइ तिव्वं तं सिक्खणे सेउ

भाषा

ग्रहण भाव कह्यो ते रागनो हेतु कारण भलो कह्यु द्वेषनोहेतु कारण पाड्यो कह्यो ८८ मने करी गृधिवाळो अत्यंत धरे अवसर विना ते विनाश मरण पामे रागे पीड्यो कामगुण रूपादि विषे करेणु हाथणीइ पोताना मार्गे अपहर्यो नाग हस्तीनी परिग्रहे अकाले विनाश पामे ८९

सकोयेन दुर्दान्तदोषेण दुष्टमनोलक्षणदोषेण तस्मिन्नेवक्षणे दुक्ख उपैति पर तु तस्य मनुष्यस्य भाव शुभाशुभव्यापार किमपिन अपराध्यति भावस्य न कोपि दोष किं तु तस्य पुरुषस्य स एव दोष इत्यर्थ ८० [एगन्तरत्तोरुइरंसि भावे अतालिसे सेकुणइपओसं दुक्खस्स सम्पीलमुवेइ बालेनलिप्पई तेण मुणीविरागी ८१] योमनुष्योरुचिरे मनोज्ञे भावे स्त्रिरससातागौरवादौ एकान्तरक्तो भवति सम‌नुष्योऽतालिशे एताहृशे अमनोज्ञे भावे प्रद्वेष करोति स च बालोऽज्ञानीदुक्खस्य सम्पीड उपैति तेन कारणेन विरागोमुनीरागद्वेषाभ्यां न लिप्यते ८१ [भावाणुगासाणुगए य जीवे चराचरेहिंसइणेगरुवे चित्ते हिं ते परितावेइबाले पीलेइ अत्तट्ठगुरुकिलिट्ठे ८१ [जीवो भावानुगाशानुगत शुभविषयाभिलाषसहितश्चिचेरनेक प्रकारै सङ्कल्पैरनेनौषधेनाइ वशो

उवेइ दुक्खं। दुद्दन्तदोसेण सएण जतून किंचि भाव अवरज्झइ से ८० ॥ एग तरत्तो रुइरंसि भावे अतालिसेसेकुणइ‌पओस । दुक्खस्स संपील मुवेइ बाले नलिप्पई तेण मुणी विरागी ८१॥ भावाणुगासाणु गएय जीवे चराचरे हिंसइ णेगरूवे। चित्तेहिं ते परितावेइ बाले पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ८२ ॥ भावाणु वाएण परिग्गहेण उप्पायणे रक्खण

भाषा जे कोइ मनुष्य द्वेष अत्यन्त धरे भावने विषे तेहज अवसरे विषे ते पामे दुक्ख दुर्दान्त मोटे दोषे जीव चितव्या पदार्थरूप भावत बलात्कारे करो तेहने अपराध करतू नथी ८० एकांत घणो रागी मनोहर भावने विषे एताहृशे विरूपने विषे अति घणु प्रद्वेष अप्रीतिकरे दुक्ख सम्बन्धिनी पीडानो समूह पामे अज्ञानो न लोपाइ तेणे द्वेष रूप दु:खे करी साधू रागरहित ८१ मनोहर भावने केडें प्रवर्त्तता प्राणो भोगनी इच्छाइ घणाघर त्रस अपर थावरने हणे अनेकजाति विचित्रशस्त्रे करीने दुक्ख उपजाव अज्ञानो आत्माने अर्थे गुरुमोटो क्लिनेस दुक्ख पामे रागादिके पीड्यो ८२

करणं करोमि अनेनौषधेन स्वर्णसिद्धिं करोमि अनेनौषधेन पुत्रं भवति इत्यादि चिन्तनैर्बालोऽविवेकीचराचरान् अनेकरूपान् जीवान् हिनस्ति तथा पीडयति परं कीदृशः स अत्तगुरुः स्वार्थपरायणः पुनः कीदृशः क्लिष्टोरागाद्युपहतचित्तः ८२] भावाणु वा एणपरिग्गहेण उप्पायणेरक्खणसंनिओगे वएविओगेय कह सुहंसे सम्भोगकालेअ अतित्तिलाभे ८३] भावानुपातेन विषयादि चिन्तनेन तथा परिग्रहेण विषयादिमीलनेन तथा उत्पादने एतेविषयादिपदार्थाः कथ मे मिलिष्यन्ति इति चिन्तनेन तथारक्षणे आरोग्य बुद्धि प्रमुखभावरक्षणे तथा सन्नियोगे परस्य कुबुद्धिसुबुद्ध्यादिदाने तथा व्ययेनिद्रास्मृति प्रमुखाणां हीनत्वे वियोगे परस्योत्तरदानादौ गमर्थाया बुद्धेः स्फुरणस्याभावेभावानुरक्तस्य कुतः कस्मात्सुख भवेत् अपि तु कुतोपि सुखं न स्यादेव पुनः सम्भोगकाले च अतृप्ति लाभोदुक्खं भावानां चिन्तनकालेपितृप्तेर्लाभोनस्यात् सत् कुम्भभञ्जक पुरुषवत् सुख न लभते ८३ (भावे अतित्तेय परिग्गहंभि सत्तोवसत्तोनउवेइ तुट्ठिं अतुट्ठिदोसेणदुहीपरस्स लोभाविले आययई अदत्तं ८४] भावेषु शुभाशुभाध्यवसाये अतृप्तोऽसन्तुष्टो

संनिओगे। वए विओगेय कहं सुहंसे संभोगकालेय अतित्तलाभे ८३॥ भावे अतित्तेय परिग्गहंमि सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं। अतुट्ठि दोसेण दुही परस्स लोभाविले आययई अदत्तं ८४॥ तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो भावे अति

भला भावने रागे करी परिग्रहनी मूर्छाइ द्रव्य उपजावि वा चोरादिकथी राखिवा काजि आपणा करिवे विनाश विखे विरह विखे कीहांथी सुखथाइ तेहना भोग विवाना कालने विखे अतृप्त संतोषना लाभ अणहुंते किहांथी सुखथाय ८३ भावने विखे असंतोषी थको परिग्रहने विखे असंतोषो थको सामान्यपणे घणु कालनो संतोष न पामे असंतोषीने दुःखे दुःखोयोथको पारको वस्तु देखो लोभीकरी कलुषित चित्तथकोल्ये अणदीधी

जन परिग्रहे ग्रस्तो भवति सामान्येनरक्तोभवति ततश्च सामान्येन ग्रस्त सन् उपसक्तोऽत्यन्तासक्तो भवति एतादृशश्चसन् तुष्टिं न उपैति अतुष्टि दोषेण दु खोसन् परस्य अन्यस्य द्रव्यादी लोभाविलोलोभकलुषोऽदत्त आदत्ते ८४ (तण्हाभि भूयस अदत्तहारिणोभावे अतित्तस्सपरिग्गहेयमायामुस वड्डइलोभ दोसा तत्थाविदुक्खानविमुच्चइसे ८५) तृष्णाभि भूतस्य अदत्तहारिण पुरुषस्य लोभदोषात् मायामृषावर्धते तथापि मृषा भाषणेपि स मृषा भाषीदुक्खात् न विमुच्यते ८५ [मोसस्सपच्छाय पुरत्थओय पओगकालेय दुहोदुरन्ते एव अदत्ताणि समाययन्तो भावे अतित्तोदुहिओ अणिस्सो ८६] मृषा वाक्यस्य पश्चात्परतश्च प्रयोगकाले च पुरुषोदुरन्तदुःखो एव अमुनाप्रकारिभावेऽप्तृप्त सद्रूपे असन्तुष्टो अदत्तानि च समाचरन् दु खितो भवति कथभूत स अनिश्रोनिश्रारहित धर्मशुक्लाभ्यां रहित आर्त्तरौद्राभ्यां सहितइत्यर्थ ८६ [भावाणुरत्तस्सनरस्स एव कत्तोसुह होज्जकयाइकिंचितत्थोवभोगेविकिलेस दुक्ख निव्वत्तईजस्सकएणदुक्ख ८७] एव अमुनाप्रकारेण भावानुरक्तस्य भावेसाभि प्राये अनुरक्तोभावानुरक्तस्तस्य कदापि कुत सुख भवेत् कुतोपि

तत्थ परिग्गहेय। मायामुस वड्डइ लोभ दोसा तत्थावि दुक्खा नवि मुच्चई से ८५॥ मोसस्सपच्छाय पुरत्थओय पओ
गकालेय दुहो दुरंते। एव अदत्ताणि समाययंतो भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ८६॥ भावाणुरत्तस्स नरस्स एव

वस्ता ८४ धोंकारो पराभ्यानें अदत्तनेपहारने भावने विखे अवसने परिग्रहने विषय असतोपीने मायासहित मृषाबोले लोभनादोष थको तो पिण दु ख थको मुकावड़ नही ते विषय जो० ८५ भावनो लाभो झूठ बोलो पश्चात्तापथरे पहला दु खलहे झूठाबोलवाना प्रस्तावने विखे दु खमोपामण हार भवे विडंबना लहने जिम झूठ वाणि जिम चणदोषु लेतो मनोहर भावने विखे असतोषी थको दु खोहुइ निश्रारहित ८६ भावने विखे रागी

टीका

कदापि किमपि सुखं नस्यात् इत्यर्थः तत्र च भावोपभोगेपि सङ्कल्प विकल्पानुरागेपि चिरकालचिन्तनेपि क्लेशदुःख श्रटति लाभजनित क्लेशरूपं दुःखं निवर्त्तयति उत्पादयति पुनर्यस्य क्लेशस्य भावोपभोगविषय चिन्तनाद्यर्थं नरस्य दुःखं स्यात् ९७ [एमेव भावंमि गओपओस उवेइ दुक्खोहपरं पराओ पदुट्ठचित्तोयचिणाइकम्म जसे पुणोहोइदुह विवागे ९८] एवं एव यथा भावे रागं प्राप्तो दुःखौघपर परया प्रदुष्टचित्त सन् अष्टकर्म प्रकारकं चिनोति तथा भावे चित्ताभिप्राये प्रद्वेषं गतोजन्तुर्दुःखौघपर परया प्रदुष्टचित्तः सन् तत्कर्मचिनोति बध्नाति यत्कर्मतस्य जीवस्य विपाके कर्मवेदन कालेदुःखं दुःखविधायि भवति ९८ [भावेविरत्तोमणुओ विसोगोएएण दुक्खोहपर परेण न लिप्पइ भवमज्झे वसन्तो जलेन वा पुक्खरिणीपलास ९९] भावेविरक्तः सङ्कल्पादिमुक्तोमनुष्यः एतयापूर्वोक्तयादुःखौघपरं परयाभवमध्येवसन् अपि न लिप्यते कीदृशः स विशोकोविगतशोक केन किं मिव

सूत्र

कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि। तत्थोव भोगेवि किलेस दुक्खं निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ९७॥ एमेव भावंमि गओ पओसं उवेइ दुक्खोह परंपराओ। पदुट्ठ चित्तोय चिणाइ कम्मं जं से पुणो होइ दुहं विवागे ९८॥ भावे विरत्तो मणुओ विसोगो एएण दुक्खोह परंपरेण। न लिप्पइ भवमज्झेवसंतो जलेण वा पुक्खरिणीपलासं ९९॥१३।६

भाषा

तरमनुष्यने कोहांथो सुखहुवे पण तीहा भाव भोगविवाने अप्रसहुइ लागि क्लेश दुःख पामे नोपजावे करे जे मनोहर भावभोगववाने काजि दुःख कष्ट अनेक उपाय ९७ इम भावने विखे द्वेष पाम्योथको पामे जीव दुःखनी परंपरारीसवंत चित्तथको बाधे कर्म घणा जेहने वली हुइ दुःखरूप विपाक कर्मनोफल ९८ भावथी विरम्यो मनुष्य शोकरहित एपुंठे कह्यो दुःखनी परपराइ लेपाये नही भवसंसारमाहि वसतु जोम पाणीये करी कमलनीनो

जलेन पद्मिनीपत्र इव ९९ १३ एताभि स्त्रयोदशगाथाभिर्भावाधिकार सपूर्ण अथ पूर्वोक्तमर्थमेवोपसहरन्नाह (एव इन्द्रियार्थाश्च मनसश्च अर्था दुखस्य हेतव मनुष्यस्य रागिणो ते चैव स्तोकमपि कदाचित् दुख न वीतरागस्य कुर्वन्ति किंचित् १००) एव पूर्वोक्त प्रकारेण रागिणो रागद्वेष सहितस्य मनुष्यस्य इन्द्रियार्था इन्द्रियाणां चक्षुरादीना अर्था विषयारूपादयस्य पुनर्मनसोऽर्था सङ्कल्पविकल्पा दु खहेतवो भवतीत्यध्याहार तएव इन्द्रियार्थामनसोऽर्थाश्च कदापि किंचित् स्तोकमपि दुख वीतरागस्य किंचिन्न कुर्वन्ति योहि जितेन्द्रियो भवति स एव वीतराग उच्यते स एव इन्द्रियार्थानां मन सङ्कल्पानां च जेतास्यात् यस्य इष्टयो न भवेत् स च सुख भाक न स्यात् यथाजिन पालक अत्र जिनपालककथा१०० [न काम भोगासमय उवेन्ति नयाविभोगाविगइ उवेन्ति जेतप्पओसीयपरिग्गहेय सोतेसुमोहाविगइ उवेइ १०१] कामभोगा समता न उपयान्ति च पुनर्भोगाविकृति अपि क्रोधादिरूपां विकृतिं बुद्धि अपि न उपयान्ति शमस्य क्रोधादेश्च भोगा कारण न भवन्तीति भाव तर्हिको हेतुरित्याह यस्तत् प्रद्वेषी तेषु कामभोगे प्रद्वेषी यस्य सतत्

एविंदियत्थाय मणस्स अत्था दुक्खस्स हेउ मणुयस्स रागिणो। ते चेव थोवंपि कयाइ दुक्ख न वीयरागस्स करेंति किंचि १००॥ न कामभोगा समयं उवेंति नयावि भोगा विगइ उवेंति। जे तप्पओसीय परिग्गहीय सो तेसु मो

पाम नलीपाइ १९९ इम ५ इंद्रोना अर्थ शब्दादिक मनना अर्थ सकल्पादिक ते दु खना हेतु कारणछे मनुष्य रागवतने ते इंद्रिय मनना अर्थ थोडो पणि किवारे पणि दुखशरीरना मनना कष्ट रागद्वेष रहित जिने काइ करे नही १०० इंद्रिय ५ ना काम भोगते समतानो कारण नहइ रागद्वेष पणाने हेतु न हुवे शब्दादिक काम भोग विकार उपजावता नथी क्रोधादि विकारतानथी जेते विषयने रागद्वेष आणेछे अने परिग्रह

प्रद्वेषो भोगेषु विरागो च पुनः परिग्राह्यो लघु भोगेषु परित्यक्तबुद्धिमान् भव त सजीवो साक्षात् रागद्वेषात् विहाति त्यजति यदाहि विषयेषु रागबुद्धिं विधत्ते तदाभोगाग्रक्तोभवति यदा च विषयेषु बुद्धिं न विधत्ते तदा विषयेभ्योविरक्तो भवतीति तस्मात्कामभोगाः ग्रस्तायाः क्रोधादिकषायाणां च कारिणो भवितुं नार्हन्ति इत्यर्थः १ अथ विसते स्वरूपमाह (कोह च माणं च तहेवमायं लोभं दुगञ्छं अरइंरइञ्च हासंभय सोग पुमत्थिवेय नपुंस वेय विविहेय भावे२) (आवज्जई एवमणेगरूवे एव विहेकामगुणेसुसत्तो अन्नेय एयप्प भवे विसेसे कारुणदीणेहरिमेव इस्से ३) कामगुणेषु शब्दादि विषयेषु शक्तोरागो जीवः एव अमुनारागवल्लक्षण प्रकारेण अनेकरूपान् नानाविधान् विकारान् एवं विधान् उक्तस्वरूपान् अनन्तानुबन्धि प्रमुखान् प्राप्यते प्राप्नोति च पुनरेतत् प्रभावान् एतेभ्य क्रोधादिभ्यः प्रभवाउत्पन्ना एतत् प्रभावास्तान् एतत् प्रभायान् क्रोधादि जनितान् परिताप दुर्गति पातादीन् प्राप्नोति कीदृशः सन् करुणार्यैर्श्रहः कारुण्य कारुण्यत्वेनदीनः कारुण्यदीनोऽत्यन्तदीनइत्यर्थः पुनः कीदृशो ह्रीमान् लज्जितः प्रीतिविनाशादिकं

सूत्र

हाविगइं उवेइ १०१॥ कोहंच माणं च तहेव मायं लोभं दुगंछं अरइं रइं च। हासं भयं सोग पुमित्थिवेयं नपुंस वेयं विविहेय भावे १०२॥ आवज्जई एव मणेगरूवे एवं विहे कामगुणेसु सत्तो। अन्नेय एयप्पभवे विसेसे कारुन्न

भाषा

बुद्धिधरेछे ते विषयादिकाने विषे रागद्वेष मोहक्रोधादि विकार लहे१०१ क्रोध अभीमान तथा वली माया लोभ दुगंछा अशुचिदेखीअरति अशातारति स्यात् हास्यभय शोक पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद विविध घणाभाव जे हर्ष शातादिक १०२ पामे इणि प्रकारे अनेक प्रकारे अनंतानुबंधीया क्रोधादिक पूर्वे काह्याएशब्दादिक कामगुणने विषे विलगो रह्योछे ते अनेरा क्रोधादिकना कीधा विशेष परिताप दुर्गतीरूप पामे दयामणो ह्वे घणु

इहैव अनुभवन् परत्र च विपाक अतिकटुक परिभावयन पुन कौद्दशोवदसो इति आर्यत्वादेय सर्वत्राप्रीतिकर इत्यर्थ इति द्वितीयगाथयासम्बन्ध उक्ता प्रथमगाथाया अथमाह विषयाशक्तोजीव कान्२ स्वरूपान् प्राप्नोतितमाह विषयाशक्तोजीव कदाचित्क्रोधप्राप्नोतिच पुनर्मान प्राप्नोति तथैवमायांप्राप्नोति तथाभय अपि प्राप्नोति तथा शोक पु स्त्री वेद शोक प्रियवियोगज मनोदुःख रूप पु वेद स्त्रिया सह विषयाभिलाष रूप स्त्रीवेद पुरुषेण सह विषयाभिलाष शोकय पु स्त्रीवेदय शोक पु स्त्रीवेद तदपि विषयाशक्तो जीव प्राप्नोति तथा पुन कदाचिन्न पु सकवेद प्राप्नोति स्त्रीपु सोरुभयोर्विषयाभिलाष रूप नपु सकवेदलभते च पुनर्विविधान् भावान् हर्षविषादादीन् प्राप्नोति इति गाथाद्वयार्थ अथ रागद्वेषोद्धरणे उपाय पुन रागद्वेषयोरनुद्धरणे प्रकारान्तरेण दूषणमाह [कप्प न इच्छे ज्जसहायलिच्छपच्छाणुतावेयतवप्पभाव एव वियारे अमियप्पगारे आवज्जइ इन्दियचोरवस्से १०४] साधु सहायलिप्सु सन् कल्प अपिन इच्छेत् तदा अकल्प कथ इच्छेत् च पुन साधु पश्चात्ताप सन् तप प्रभावमपिन इच्छेत अत्र हेतु माह इन्द्रियचोरवश्य पुमान अमित प्रकारान् बहु विधान् एव पूर्वोक्तान् विकारान् आपद्यते प्राप्नोति कल्पते स्वाध्यायादि क्रियासुसमर्थो भवतीति कल्पोयोग्यस्त कल्प स्वाध्यायादि योग्य सहाय मम विश्रामणा करिष्यतीति बुध्यायिष्य लिपसतीति सहाय लिपसु स्तादृश सन् पश्चात् व्रत तपसोरङ्गीकारादनन्तर अनुताप यस्य स

दीपे इरिमे वद्दसो१०३ ॥ कप्प न इच्छेज्ज सहायलिच्छु पच्छाणुतावेय तव प्पभाव । एव वियारे अमिय प्पयारे आव

दीनदुए सज्जावन इद अप्रीतकारी दुइ सवने १०३ सज्झायादिक क्रियाने सकला योग्यनवांछे शिष्यने सोसामनादि सहाय वाछत मे एकटको कीधो चारित्र लोधा पुठी पश्चात्तापनकरे तपनो प्रभाव लब्धि चक्रवर्त्ती पणो न वाछे एहवा विकारदोष अमित घणा प्रकारना पामे इ द्रियचोरने वसि

पश्चानुतापः तपस प्रभावोभवान्तरेभोगानां भोक्तास्यां इत्यादिचिन्तनतपः प्रभावस्तं अथवा इहैव आमौषध्यादि लब्धिमान् स्यां इत्यादिकं न इच्छेत् १०४ [तओसे जायन्तिपओयणाइनिमज्जिउं मोहमहन्नवंमिसुहेसिणोदुक्खविणोयणट्ठा तप्पच्चयं उज्जमएयरागो १०५] ततः कषायवेदादीनां प्राप्तेरनन्तरं तस्य इन्द्रियचौराणां वशीभूतस्य मोहमहार्णवेमोहमहासमुद्रे निमज्जयितुं तं जीवं ब्रुडयितुं प्रयोजनानिविषयसेवना हिंसादीनि जायन्ते उत्पद्यन्ते किमर्थं एतानिविषयसेवनहिंसादीनि प्रयोजनानि जायन्ते कीदृशस्य तस्य सुखैषिणः इन्द्रियसुखाभिलाषिणः ततश्च तत् प्रत्ययं तेषां पूर्वोक्तानां विषयसेवा हिंसादीना प्रयोजनानां प्रत्यय निमित्तं तत् प्रत्यय तदर्थं तन्निमित्तं रागीद्वेषी च जीव उज्जमए इति उत्पच्छतं उद्यमं कुरुते १०५ (विरज्जमाणस्सय इन्दियत्था सद्दाइयातावइयप्पगारान तस्ससव्वेविमणुन्नयं वानिव्वत्तयन्ती अमणुन्नयं वा १०६) तावत् प्रकारास्तावन्तः प्रकाराभेदायेषां ते तावत् प्रकारा भेदा येषां ते तावत् प्रकाराः खरकर्कशादि भेदाः शब्दरूपरसगन्ध स्पर्शाः सर्वेपि इन्द्रियार्थास्तस्य पूर्वोक्तस्य विरज्यमानस्य विरागिणोरागद्वेषरहितस्य मनोज्ञत्व वा अमनोज्ञत्वं च न निवर्त्तयन्ति नोत्पादयति रागद्वेषाभ्यां विषयेषु मनोज्ञत्वं अमनोज्ञत्वं चोत्पाद्यते योहि रागद्वेषाभ्यां रहितस्तस्य विषयाः

सूत्र

ज्जई इंदिय चोरं वस्से १०४॥ तओसि जायति पओयणाइं निमिज्जिउं मोहमहन्नवंमि। सुहेसिणो दुक्ख विणोयणट्ठा
तप्पच्चयं उज्जमएय रागी १०५॥ विरज्जमाणस्सय इंदियत्था सद्दाइया तावइय प्पगारा। न तस्स सव्वेवि मणुन्नयंवा

भाषा

थकी हुता १०४ वेदादि विकार पछी तेहने हिंसा विखे सेव दिक प्रयोजन ऊपजे आपण आत्माने आपण पे बूडावे मोहसमुद्रने विखे सुखना अर्थी थका दुखपामि वा भणी पूठिल्या प्रयोजनने अर्थे उद्यम करे रागद्वेषी थको १०५ रागद्वेष मण करताने इंद्रिय ५ ना अर्थी शब्दादिक विषय

कि कुर्वन्तीति भाव १०६ (एव ससंकप्पविकप्पणासु सजायइ समयमुवट्ठियस्स अत्थेयसंकप्पयस्रो तश्रोसे पहीयएकामगुणेसुतण्हा १०७) एव अमुना प्रकारेण ससङ्ख्य विकल्पनासु उपस्थितस्य पुरुषस्य तथा अर्थान् सङ्कल्पयत पुरुषस्य च समत्व जायते तस्य आत्मन सद्व्यारागद्वेषमोहास्ते पा विकल्पना स्वरूपदोषहेतु विचारणा सङ्कल्पविकल्पनास्तासु उपस्थितस्य उद्यमयुक्तस्य च पुनरर्थान् इन्द्रियार्थान् शब्दादि विषयान् विचारयन्त यतो रूपादय इन्द्रियादय मम सकाशात् पृथगेवतिष्ठन्ति न एतेपाप छे तथ पाप छे तवस्तुस्वरूपिन् स्थितारागद्वेषादय. इति विचारयत समतारङ्कायते यदुक्त जीयाइ नयपयत्थे जीजाणइ तस्सहोइ सम्मत तश्रोसे इति तत समत्वोत्पत्ति तस्तस्य पुरुषस्य कामगुणेषु विषयेषु तृष्णालोभ प्रकर्षेण हीयते१०७ (सवीयरागीकयसव्वकिच्चो खवेइनाणावरण खणेण तहेवजन्दरिसणमावरेइज्ज अन्तराय पकरेइकम्म १०८) यस्य पुरुषस्य कामगुणेषु शब्दादिषु लोभो निवर्त्तत सनिलोभोवीतराग वीतसर्वकृत्य स्त् कृत सर्व कार्य्य सन क्षणेन ज्ञानावरण पञ्चविधं क्षपेनक्षपयति १०८ (सव्व तश्रोजाणइ पासएय

निव्वत्तयती अमणुन्नयवा १०६॥ एवस सकप्पविकप्पणासु सजायई समय मुवट्ठियस्स। अत्थेय सकप्पओ तओ से पहीयए कामगुणेसु तन्हा १०७॥ स वीयरागीकय सव्व किच्चो खवेइ नाणावरण खणेण। तहेव ज दरिसण मावरेइ अच

मैतलाथर मधुरादिक पणे रागद्वेष अण धरता ते सघला मनोज्ञ पण नीपजावे नही अमनोज्ञ पण नियजावे नही १०६ इणे प्रकार आत्माने सकल्प रागद्वेषादि अध्यवसायना विकल्प समसदायना मूलछे एहवो भावनाने विषे प्रवर्त्तताने हुइ समता मध्यस्थ पणु उद्यमवतने अर्थ जोवा ईन्द्रियायन अभ्यास चितवात ते समतावको तहने थावि याम जोओथाइ कामगुणने विषे तृष्णा लाभ १०७ ते वीतराग थाइ कीधाछे सर्वकार्य जेणे

इ निरन्तराए अणासवेज्झाण समाहि जुत्ते आउक्खएमोक्खमुवेइसुद्धो १०९) ततः कर्मक्षयानन्तर सर्वं जानाति सर्वं पश्यति च तदा असो मोयकर्मरहितः सन् निरन्तरायः अन्तरायकर्मरहितो भवति पुनरनाश्रवो भूत्वाध्यानसमाधिनायुक्तश्च आयुः क्षयेसुद्धः सन् मोक्षमुपैति १०९ सव्वस दुहस्समुक्को जंवाहईसययंजन्तुमेय दीहामयविप्पमुक्कोपसत्थो तोहोइ अच्चन्तसुहीकयत्थो ११०] समोक्षगामी पुरुषस्तस्मात् दुःखात् ...ति तस्मात् कस्मात् यत् दुःख एत जन्तु एतं प्राणिनं सततं निरन्तरं बाधतेपीडयति तस्मात् सर्वस्मात् दुःखात् सुखीभवति कीदृशः समोक्षगामी पुरुषोदीर्घामयविप्रमुक्तः दीर्घाणि प्रलम्बस्थितीनियानि कर्माण्येव आमयारोगा· दीर्घामयास्तेभ्योविशेषेण प्रमुक्तोदीर्घामयविप्रमुक्तोदीर्घकर्मरोगरहित पुनः कीदृशः अतएव प्रशस्तः प्रशंसायोग्यस्ततः कर्मरोगाभावात् अत्यन्त सुखीकृतार्थः कृतकृत्यः सिद्धोभवतीत्यर्थः११० अथ निगमनमाह [अणाइकालप्प

तरायं पकरेइ कम्मं १०८॥ सव्वं तओ जाणइ पासएय अमोहणे होइ निरंतराए। अणासवे झाण समाहि जुत्तेआ उक्खए मोक्ख मुवेइ सुद्धे १०९॥ सोतस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को जंवाहई सययं जंतुमेयं। दीहामय विप्पमुक्को पसत्थो

खपावे ज्ञानावरणी कर्म समय माच माहि तिम जवली दर्शनावरणी खपावे जे अंतराय कर्मकारी करे करी १०८ तिवार पछी सर्वलोकालोक प्राने जाणे देखे मोहनीय रहित थको आश्रव पापरहित शुद्ध शुक्लध्याने समाधि परमसुख पणे सुख आउखादि तथा घातीया कर्मने खपावे मोक्षपामे शुभमल रहित १०९ तो मोक्षनो पामणहारो जन्ममरण तथा सर्वदुःखथी मुकाइ जे दुःख बाधा करे पीडे निरंतर जीव प्रत्यक्ष देखीता सघला संसारी प्राणीने स्थिति करी दीर्घकालताइ भोगवीइ एहवां कर्मरूप रोगनी पीडाथी मूंकाणो प्रसंशायोग तिवार पछी घणुं थाइ सुखी

भवग्रएसो सव्वस्सदुक्खस्सपमोक्खमग्गोवियाहिओजसमुवेच्चसत्ता कमेण अच्चन्तसुहीभवन्तित्तिबेमि १११ तीर्थकरैरेदसर्वस्य संसारदुःखस्य प्रमोक्षमार्गो व्याख्यात य प्रमोक्षमार्ग क्रमेण समुपेति सत्वा प्राणिनोऽत्यन्त सुखिनो भवन्ति कीदृशस्य सर्वस्य दुःखस्य अनादिकालप्रभवस्य इति अहं ब्रवीमि इति सुधर्मास्वामीजम्बूस्वामिन प्राह १११ इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थदीपिकाया उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्यलक्ष्मीवल्लभगणि विरचिताया द्वात्रिंशत्तम प्रमादस्थानाख्य अध्ययन सपूर्ण ॥३२॥ अथ त्रयस्त्रिंशत्तममारभ्यते पूर्वस्मिन अध्ययने प्रमादपरिहार उक्त तथा प्रमादस्थानान्युक्तानि ते प्रमादे सत्वा कर्म प्रकृतीनामबन्ध स्यात् तदथ इहाध्ययने कर्म प्रकृतय उच्यन्ते (अट्ठकम्माइंवुच्छामि आणुपुव्विं जहक्कम जेहिं बद्धो अय जीवो ससारे परिवत्तइ १) हे जम्बूस्वामिन् अह यथा क्रम आनुपूर्व्या अनुक्रमेणतानि अष्टकर्माणि वक्ष्यामि क्रियन्ते मिथ्यात्वाविरति कषाययोगैर्हेतुभिर्जीवै इति कर्माणि अष्टसंख्यानि यद्यप्यानुपूर्वीविविधावर्त्तते तथापि यथाक्रम पूर्वानुपूर्व्या प्राकृतत्वात् द्वितीयार्थानि प्रथमातानि कानिकर्माणियैरष्टभि कर्म बद्धोनियन्त्रितोय जीव ससारे चतुर्गति भ्रमणेपरिवर्त्तते विविधान पर्यायान १ [नाणावरण चेव दसणावरण तहा वेयणिज्ज तहामोह आउकम्म

ताहेइ अच्चत सुही कयत्थो ११०॥ अणाइ काल प्पभवस्स एसो सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो। वियाहिओ ज समुवेच्च सत्ता कमेण अच्चत सुही भवति त्तिबेमि १११॥ पमायठाण समत्त ३२॥ अट्ठ कम्माइ वोच्छामि आणुपुव्वि जहक्कम

कृतार्थ सुखपामे निश्चजाये ११० अनादिकालना उपना रह्या जे कर्म सर्वदु खु रूप तेहने मूकावणहार ए मार्ग कह्यो तीर्थंकर मार्ग सम्यग पडीवर्जी जीव घणा अनुक्रमे घटते २ गुण पडिवजे घण सुखीथाये मोक्षजाइ १११ इति प्रमादस्थानक अध्ययन नो अर्थ पूर्णथयो ३२ ॥ हवे आठ कर्मनु कहे

तहेवय २] नामकम्मं च गोयञ्च अन्तरायन्तहेवय एव मेयाइकम्माइं अट्ठेवओ समासओ ३ युग्म एव अनुनाप्रकारेण एतानि अष्टौकर्माणि समासत: संक्षेपतोऽभ्यानीति शेष एतानिज्ञानि तत्र प्रथमं ज्ञानावरणं कर्म प्रथमचैव पद पूरणे तथा द्वितीयं दर्शनावरणं दर्शनं सम्यक्त माद्वणोतीति दर्शनावरणं प्रतीहारवत् सम्यक्त भूप न दर्शयति २ तथा वेदनीय वेद्यतेसाताऽसातेऽनेनेति वेदनीय मधुलिप्तखड्गधारातुल्यं तृतीय कर्म तथा पुनर्मोहं गच्छति मूढोभवति जीवोऽनेनेति मोहोमद्यवत् चतुर्थं मोहनीय मोहाययोग्यं मोहनीय कर्मज्ञेयं तथैव च आयाति स्वकीयावसरे इत्यायु: गतिर्नि:सरितु मिच्छन् अपि जीवोनिर्गंतु न शक्नोति यस्मिन् सति निगडवद्ध इवतिष्ठतीत्यायुष: स्वभाव: पञ्चमं आयु: कर्म२ तथा नामयति च तत्सु गतिषु नवो

जेहि बद्धो अयं जीवो संसारे परिवत्तई १ ॥ नाणा वरणं चेव दंसणावरणं तहा। वेयणिज्जं तहा मोहं आउ कम्मं तहेवय २ ॥ नामकम्मं च गोयंच अंतरायं तहेवय। एव मेयाइं कम्माइं अट्ठेवउ समासओ ३। नाणावरणं पंच विहं

स्युं अनुक्रमे तेहना प्रकार पूर्वानुपूर्वीइं जिणे कर्मे बांध्यो पीड्यो ए जीव च्यारगति रूप संसारमाहिं परिवर्त्तें अनेक भेद पामे १ ज्ञानमे जे आवरे ढांके ते ज्ञानावरण जीम वस्त्र सूर्यनीकांतिने ढांके१ दर्शनने जे आवरे ते दर्शनावरण जिम पोलीओ राजानो दर्शन करवामदीइं २ वेदूये सुखादिक ते वेदनी मधु खरड्याखडग्नीपरे ३ तथा वली मोहे अज्ञानीने विकल करे मदिरानी परि ते मोहनी कर्म४ आउखुं कर्म५ भावे आपणे कर्म नरकादि गतिथी नीकलवुं वांछे पणि नीकलाइ नही नीगडनीपरे २ च्यारगति माहि घणा भावप्रमाडे ते नाम कर्म चितारानीपरे ६ गोत्रमाहा मोटा ते गोत्र ते कुंभार सरीखो७ दातारलेणहार विचाले विघ्नपणे आवेते अंतरायकर्म भंडारी नीपरे८ इम एकर्म सघलाइं आठे संखेपथी विस्तरमुं जेतला

नाम पर्यायान् प्रापयति जीव प्रति इति नाम चित्रकारवत् नाम कर्मषष्ट मेथ गोत्राख्यं प्राकृम ते सघनादोमष वा शब्देन जीवाऽनेनेति गोत्र कुंभकारवत् घटकनयघरावकुण्डकादिभाण्डजनयति इद गोत्र कर्मसप्तम तथा अन्तर्मध्ये दातृग्राहकयोर्विचाले आयान्तीत्यन्तरायो यथा राजाकर्श्च विनातु उपदिशति तत्र भाण्डागारिकोन्तरालेविघ्न उत्पत्ति ताहक अन्तराय कर्म अष्टम भवति अत्र चाष्टानां कर्मणां आदौ ज्ञानावरण दर्शनावरण च प्रतिपादित तत्तु आत्मन स्वभावस्तु ज्ञानदर्शनरूप एवास्ति अतस्तदावरण आदौ उक्त यावता कर्मणा जीवस्य स्वभाव आच्छाद्यते अतस्तयोर्मध्ये ज्ञानदर्शनयोर समानत्वेपि अन्तरगत्वेन विशेषतो ज्ञानोपयोगी ,एव सर्वलब्धोना प्राप्ति स्यात् तस्मात् ज्ञानस्य प्राधान्यादादौ तदावरण उक्त तदनु सामान्य ज्ञानोपयोगत्वात् दर्शनावरण उक्त एव शेषकर्मणा अपि विशेषस्तु स्वयमेव ज्ञेय १ इत्य कर्मणां मूलप्रकृतीरुक्तोत्तर प्रकृतीराह (नाणावरण पव विह सुय आभिणिबोहिय ओहिनाणयतइय मणनाणच केवल ४) ज्ञानावरण कर्म पञ्चविधं कथित यत श्रुत ज्ञानावरण १ तथा आभिनिबोधक मति ज्ञान तदावरण द्वितीय तृतीय अवधिज्ञानावरण तथा मनोज्ञान मन पर्याय ज्ञानावरण चतुर्थ तथा पञ्चम केवल ज्ञानावरण ४ अथ दर्शनावरणस्य द्वितीय कर्मणोभेदान् आह (निद्दातहेव पयला निद्दा निद्दाय पयल पयलाय तत्तोयथोण गिद्धीयो पचमाहोइ नायव्वा ५) निद्रापञ्च आवरणस्या १

मूल सुय आभि णिबोहिय । ओहिनाणच तइय मणनाणाच केवल ४ । निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दाय पयलपयलाय ।

भाषा जीवनाभेद तेतलु १ कर्मनोमूल प्रकृती कही हवे उत्तर प्रकृति कहेछे ज्ञानावरणीना भेद ५ श्रुतज्ञान श्रुतज्ञानावरणी आभिनिबोधिकमति ज्ञानावरणी२ अवधिज्ञानावरणी ओजो३ मनपर्याय ज्ञान४ चोथोवली केवल ज्ञानावरणी ५ सुखे जागे ते नीद्रा १ तिमालोकभावेठा आवेते प्रचला

टीका

तथैव प्रचला द्वितोयाखितस्योपविष्टस्य समायाति २ तृतीया निद्रा निद्रा दुःख प्रतिबोधा चतुर्थी प्रचला प्रचलाचलमानस्यया आयाति सा प्रचला प्रचला ततः पञ्चमीस्थान ग्टद्विनाम्नोऽत्याख्याना पुष्टा ग्टद्धिर्लोभी यस्यां सास्त्यान ग्टद्धि अथवास्त्याना सहता उपचिता ग्टद्धिर्यस्यां सास्त्यानर्द्धि यस्या उदये हि वासुदेवार्द्ध बलः प्रबल रागद्वेष वांथ जन्तुर्जायते अतएव दिन चिन्तितार्थ साधिनी इयं पञ्चमी भवति ५ (चक्खु मचक्खु ओहिस्स दरिसणे केव लिय आवरणे एव तु नवविगप्पं नायव्वन्दरिसणावरणं ६) एवं तु अमुनाप्रकारेण नवविकल्पं नवविधं दर्शनावरणं कर्मज्ञातव्यं दर्शनं सम्यक्ज्ञा आवृणो तीति दर्शनावरणं पञ्चनिद्रां पूर्वगाथायां उक्ता चत्वारोऽमीभेदास्ते वो उच्यन्ते चक्खु मचक्खुओहिस्सदरिसणे इति तत्र चक्खु मच चक्खुसेत्येका पदं चक्खु य अचक्खुय अवधिश्च चक्षुरचक्षुरवधिस्तस्यचक्षुरचक्षुरवधेरावरण चक्षुरचक्षुरवधेरित्यच प्राकृतत्वात् द्वंद्वे एकत्वं पुंस्त्वं दर्शनेरूपसामान्य गृह्णीयत् आवरणंच पुनः केवलेकेवलज्ञानेयत् आवरण एव नवविधचक्षुषाद्दृश्यतेज्ञायते इतिचक्षुर्दर्शनंतत्आवृणोतिआच्छादयतीतिचक्षुर्दर्शनावरणं १ तथाचक्षुषोऽन्यत् अचक्षुः श्रोत्रघ्राण रसनास्पर्शरूप इन्द्रिय चतुष्कं तेन अचक्षुषा दृश्यते इति अचक्षुर्दर्शनं तत् आवृणोतीति अचक्षुर्दर्शनावरणरूपवद्द्रव्यं सामान्य प्रकारेण मर्यादा सहित दृश्यते इति अवधिदर्शन तत् आवृणोतीति अवधि दर्शनावरण एव त्रयोभेदाश्चतुर्थ पुनः केवले केवल दर्शने ष्वावरण ज्ञेय केवलं सर्वद्रव्य पर्या

सूत्र

तत्ताय थीणगिद्धीउ पंचमा होइ नायव्वा ५। चक्खु मचक्खु ओहिस्स दंसणे केवलेय आवरणे। एवंतु नव विगप्पं

भाषा

गाढे दुःख करी जगाडीयेते निद्रा निद्रा ३ होउता आवेते प्रचला प्रचला तिवारपछी अशुभने योगे हुइते दुष्टग्टद्धि लोभ रागादि रूपथी वासुदेव नायको अर्धबलदिननु चिंतव्युं कार्य करे ते निद्रामांहि ५ चक्षु आंखि देखे अचक्षुका न प्रमुखवीजे इंद्रिये देखे अवधिज्ञाने दर्शने देखे वली केवल

यार्णा सामान्येन स्वरूप दर्शते इति केवल दर्शन तत यदावरण केवलदर्शनावरण एव निद्रा पञ्चानां निद्राणां चतुर्णां आवरणानां च एकत्रीकर णात् नवविध दर्शनावरण ज्ञातव्य इत्यर्थ ६ [वेयणियपि दुविह सायमसायच आहिय सायस्सव बहुभेया एमेवासायस्सवि ७] वेदनीय कर्म अपि द्विविध वेदितु योग्य वेदनीय कर्मद्विभेद आख्यात कथित एक सातञ्च पुनरसात तत्र सातयति शारीर मानसञ्च सुख जनयतीति सात साता वेदनीय ततोन्यत् असाता वेदनीय इत्यर्थ तु पुन सा ता वेदनी यस्यापि बहवो अनुकम्पादयो भेदा भवन्ति एव असा तस्यापि आसाता वेदनी यस्यापि बहव आसिशोक सन्तापादयोभेदा भवन्ति इति ज्ञेय ७ [मोहणिज्जपि दुविह दसणेचरणे तहा दसणेति विह वुत्त चरणेयदुविहभवे८] (सम्मत्त चेव मिच्छत्त सम्मा मिच्छत्तमेवय एयाओ तिन्निपयडीओ मोहणिज्जस्स दसणे ८) (चरित्त मोहण कम्म दुविह तु वियाहिय कसाय मोहणिज्जच नो कसाय तहेयय १०) सोलसविहभेएण कम्म तु कसायज सत्तविहनवविहवा कम्मनो कसायज ११ तिसृणा गाथानां अर्थ मोहयति जीव घूर्णयति

नायव्व दसणावरण ६। वेयणियपिय दुविह साय मसायच आहिय। सायस्साओ बहू भेया एमेव असायस्सवि ७।
मोहणिज्जपि दुविह दसणे चरणे तहा। दसणे तिविह वुत्त चरणे दुविह भवे ८। सम्मत्तचेव मिच्छत्त सम्मामिच्छत्त

केवलज्ञानने देखे ४ ना आवरण इम पसो नवप्रकारे जाणिवो दर्शनावरण ६ वेदनी कर्मपणि बिहु प्रकारे साता सुखभोगवी ए ते दुखपामी इति अथवा ता २ भेद हुइ साता वेदनीना दुख शोकादि घणा भेद एम असाता वेदनीना दु ख शोकादिक घणा भेद ७ मोहनी कर्म पणि बिहु भेदे तत्व रुचि रूपदर्शनने विषे विरति रूपचारित्रने विषे वली दर्शनने विषे तीनभेद चारित्रने विषे वे भेद हुइ८ सत्यभाव ते समक्त मिथ्यामति ते मिथ्यात्वकाइ

मद्यवत् परवश करोतीतिमोहस्तदर्हं मोहनीयं कर्म अपि द्विविध भवति दर्शनेन तथा चरणे दर्शनेन दर्शनविषये मोहनीय तथा चरणे चरण विषये मोहनीयं तत्र दर्शन तत्वरुचि रूपं चरणं विरति रूप तत्रापि दर्शने यत् मोहनीयं तत् त्रिविधं तीर्थ करै रुक्तं चरणे चारित्रे यत् मोहनीयं तत् द्विविधं भवेत् ८ दृश्यते ज्ञायते जीवादय: पदार्था· अनेनेति दर्शन तत्र मोहयति मूढी करोतीति दर्शनमोहनीय त्रिविधं सम्यक्त १ मिथ्यात्वं २ सम्यक् मिथ्यात्व ३ मिश्र मित्यर्थ एव पदपूरणे सम्यक्त मोहनीय मिथ्यात्वमोहनीयं मिश्रमोहनीयं तत्र सम्यक्तं हि मिथ्यात्वस्यैव पुद्गला: अशुद्ध पुद्गला: अत्यंत विशुद्धाभवन्ति तदासम्यक्तं कथ्यतेतत्सम्यक्तं एव दर्शनंकथ्यते दर्शनसम्यक्तयोर्नामान्तरं अत्र गृह्यते यदासम्यक्तं मिथ्यात्वप्रकृतित्वं भजति तदासम्य क्तस्य अतीचारा लगन्ति तदामिथ्यात्वं भवति यदा दर्शनप्रकृतिषु मोहोभवति अथवा औपशमिकादिकं मोहयति तदपि सम्यक्त मोहनीय उच्यते १ अथ मिथ्यात्व मोहनीय स्वरूप उच्यते सम्यक्ताभावे मिथ्यात्वं अशुद्ध दलिकरूप यतस्तत्वे अतत्व रुचिरतत्वे तत्वरुचिरुत्पद्यते तत् मिथ्यात्व तत्र मुह्यते इति मिथ्यात्व मोहनीय यत्तु सम्यग् मिथ्यात्व मोहनीय तत्तु शुद्धाशुद्ध दलिक रूप यस्मात् जिन धर्मोपरि रागोपि न भवति, द्वेषोपि न भवति अन्तर्मुहूर्तं स्थितिरूप यथा नालिकेर द्वीपवासि पुरुषोऽन्नोपरिरागोपि न भवति द्वेषोपि न भवति तादृग् स्वभावं मिश्र मोहनीयं तृतीय उच्यते एता स्तिस्र: प्रकृ तयोर्दर्शने सम्यक्तं अथ दर्शनस्य सम्यक्तस्य च मोहनीय कर्मणो भेदा इति शेष सम्यक्तस्य अज्ञानं सम्यक्तमोहनीय मिथ्यात्वस्य अज्ञानं

सूत्र

मेवय। एयाओ तिन्नि पयडीओ मोहणिज्जस्स दंसणे ८॥ चरित्त मोहणं कम्मं दुविहंतु वियाहियं। कसाय मोहणि

भाषा

सा चोकाइं मिथ्या ते सम्यक्मिथ्या एतीन प्रकृति पूठे कही ते मोहनीय कर्मदर्शन समकितने विषे ८ चारित्र विषे मुझाय ते चारित्र मोहनीय कर्म

मिथ्याल मोहनोय मिश्रस्य मोहो मिश्र मोहनोय इह हि सम्यक्त मिथ्यात्व मिश्ररूपा जीवस्य धर्मा उच्यन्ते ८ दर्शन मोहनोय त्रिविध उक्ता अथ चारित्र मोहनोयभेदान् आह चरित्तेति गाथा पूर्वमेवाक्ता अथान्वय तीर्थकरैश्चरित मोहन कर्म द्विविध व्याख्यात चरित्रे चरित्र यद्दपि माहयति मूढ करोति इति चारित्र मोहन तत्र हि चारित्र मोहन यत्र चारित्र फल जानन् अपितत् न आद्रियते तत्द्वैविध्यमाह कषाय मोहनीय प्रथम कषाया क्रोधादयश्चत्वारस्तैमोहयतीति कषाय मोहनोय १ तथानो कषायैर्नवभिर्हास्यादि षट कवेदत्रिक रूपैमोहयतीतिवो कषाय मोहनीय १० तत्र अप्रथम कषायज मोहनोयकर्म षोडशविधभवति कषायाहि क्रोधमानमायालोभा प्रत्येक अनन्तानुबन्धा प्रत्याख्याना प्रत्याख्यान सज्वलन रूपैश्चतुर्भिभेदे षोडश भेदा भवन्ति अथनोकषायज मोहनीय कर्म सप्तविध नवविध वा भवति हास्य १ रति २ अरति ३ भय ४ शोक ५ जगुप्सा ६ वेदत्रयाणाञ्च सामा न्यायगण नया एकत्वमेव गम्यते हास्यादि षटक वेदत्र एव सप्तविध यदाहि त्रयोवेदा पुस्त्री नपुंसकरूपा गण्यन्ते तदा नवविध नो कषायज मोह नीय भवतीत्यर्थं ११ अथायु कर्म प्रकृतीराह (नेरइ यतिरिक्खाउ मणुस्साउ तहवय देवाउ चउत्थतु आउकम्मश्च उव्विह १२) आयु कर्म चतु

च नोकसायं तहेवय १० ॥ सोलस विह भेएण कम्म तु कसायज । सत्तविह नवविहवा कम्म नोकसायज ११ ॥

सूत्र

भाषा

ते वे भेदकह्या तीर्थं करे कषाय क्रोधादिके करी चारित्र विखे मु भा एते कषाय मोहनीय वीजो कषाय साथे ज प्रवर्त्ते तनो कषाय हास्यादीके १० क्रोधमान माया लोभ अनंतानुबंधी प्रत्याख्यान अप्रत्याख्या न संजलन एसोलभेदे कषायथो उपनाजे कम्म हास्य १ रति २ अरति ३ शोक ४ भय ५ दुगछा ६ वेद ७ एसातभेद पुरुषवेदना स्त्रीवेद २ एसहित ८ भेदकम्म नोकषायथी उपनांते ११ नरकनो आयु १ तिर्यचनो आउखु २ मनुष्यनु

विध भवति तथानैरयिक तिर्यगायु: निरये भवानैरयिका: नैरयिकाश्च तिर्यंचश्चनैरयिक तिर्यंच स्तेषां आयुर्नैरयिक तिर्यगायु: आयुशब्दस्य प्रत्येका सम्बन्ध तथैव तृतीय मनुष्यायु: च पुनश्चतुर्था देवायु: एवं चतुर्विध आयुर्भवति १२ अथ नामकर्म प्रकृतीराह [नामकम्मन्तु दुविहं सुह असुहञ्च आहियं सुहस्सउ बहुभेयाएमेव असुहस्सवी] नाम कर्म द्विविध व्याख्यातं शुभं १ च पुनरशुभ शुभनाम कर्म१ अशुभनाम कर्म २ एवं द्विविधं तत्र शुभाशुभ नाम कर्मणो बहुभेदा: सन्ति एवं एव अशुभस्य अशुभनाम कर्मणोपि बहुभेदा भवन्ति तत्र शुभस्य उत्तरोत्तर भेदतोऽनन्त भेदत्वेपि मध्यमा पेक्षया सप्तत्रिंशद्भेदा भवन्ति ते चामी मनुष्यगति १ देवगति २ पञ्चेन्द्रियजाति ३ औदारिक ४ वैक्रिय ५ आहारिक ६ तैजस ७ कार्मण ८ समचतु रस्र संस्थान ९ वज्रऋषभ नाराच स हनन१० उदारिकांगोपांग १२ आहारकांगोपांग १३ प्रशस्त वर्ण १४ प्रशस्त गन्ध १५ प्रशस्तरस १६ प्रशस्त स्पर्श १७ मनुष्यानुपूर्वी १८ देवानुपूर्वी १९ अगुरुलघु २० पराघात २१ उश्वास २२ आतप २३ उद्योत २४ प्रशस्तविहा योगति २५ त्रस २६ बा- दर २७ पर्याप्त २८ प्रत्येक २९ स्थिर ३० शुभ ३१ शुभग ३२ सुस्वर ३३ आदेय ३४ यश:कीर्त्ति ३५ निर्माण ३६ तीर्थंकरनाम कर्म ३७ एता:

सूत्र

नेरइय तिरिक्खाउ मणुस्साउ तहेवय। देवाउयं चउत्थतु आउ कम्मं चउव्विह १२॥ नाम कम्मंतु दुविहं सुह मसुहं च आहियं। सुहस्सउ बहुभेया एमेव असुहस्सवि १३॥ गोयं कम्मं दुविहं उच्चं नीयंच आहियं। उच्चं अट्ठ

भाषा

आउखुं तथावलीनिर्यं देवतानुं आउखुं चोथुं आयुकर्मच्यारप्रकारि१२ नामकर्मतेविहुं भेदेसर्वपणेशोभेते सुभनामसर्वपणेसो' तेअशु र नाम कर्म्मो घढ ते भेदे नामशुभ नामना घणा अनंतभेद मध्यम पणिभेद३७ इम अशुभ नामने अनंताभेद मध्यमपणे३४भेद१३ गोत्रकर्म्म दि हुं भेद उच्चगोत्र इक्ष्वाकु कुल नीचे

सर्वा अपि शुभानुभावात् शुभनाम कर्मण प्रकृतयो ज्ञेया तथा अशुभनाम कर्मणो मध्यमभेद विवक्षया चतुस्त्रिंशद्भेदा भवन्ति तद्यथा नरकगति १ तिर्यग्गति २ एकेंद्रिय ३ द्वीद्रिय ४ त्रीद्रिय ५ चतुरिंद्रियजाति ६ ऋषभ नाराच ७ नाराच ८ अर्द्ध नाराच ९ कीलिका १० सेवार्त्त का सहननानि ११ न्यग्रोध मण्डल सस्थान १२ सादि १२ वामन १४ कुब्ज १५ हुण्डक १६ अप्रशस्तवर्ण १७ अप्रशस्तगन्ध १८ अप्रशस्तरस १९ अप्रशस्तस्पर्श२० नरकानु पूर्वी २१ तिर्यगानुपूर्वी २२ उपघात २३ अप्रशस्त विहायोगति २४ स्थावर २५ सूक्ष्म२६ साधारण२७ अपर्याप्त२८ अस्थिर २९ अशुभ ३० दुर्भग३१ दुस्वर ३२ अनादेय ३२ अयशो अकीर्त्ति ३४ एताश्च अशुभनामकत्वादि निबन्धनत्वेन अशुभा अत्र च बन्धन सघाते शरोरभ्यो वर्णाद्यवान्तरभेदा यथादिभ्य पृथक न विवक्षन्ते एता प्रकृतयस्तु मध्यम विवक्षया प्रोक्ता उत्कृष्ट विवक्षयात्तु १ ३ प्रोक्ता सन्ति १३ अथ गोत्र कर्म प्रकृतीर्व्य नक्ति (गोत्र कर्म दुविह उच्चनोयच आहिय उच्च अट्ठविह होइ एव नोयपि आहिय १४) गोत्र कर्म द्विविध उच्च च पुनर्नीच तत्र उच्च उच्चैर्गोत्र इक्ष्वाकु जात्यादि उच्चै र्व्यपदेशहेतु जातिकुल रूप बल श्रुत तपो लाभाद्यष्टविध अथ हेतुत्वादष्टविध उच्चैर्गोत्र भवति एव इति अष्टविध एव जातिकुलादि मदाष्ट निबन्ध हेतुत्वान्नीच मपिनोचैर्गोत्र अपि नोचै र्व्यपदेशहेतु आख्यात १४ अथान्तराय प्रकृतीराह [दाणे लाभेय भोगेय उवभोगे वीरिये तहा पञ्चविह मन्तराय समासेण वियाहिय १५) अन्तराय समासेन सक्षेपेण पञ्चविध व्याख्यात तत् पञ्चविध आह दाने लाभे भोगे उपभोगे तथा वीर्ये एतस पञ्चसु अन्तराय

विह होइ एव नीयपि आहिय १४ ॥ दाणे लाभे य भोगेय उवभोग वीरिए तहा । पचविह मतराय समासेण विया

गोत्र चक्रवादि जातिमदादि ८ मदने अणकरिये ८ उंचेगोत्र ८ इये जातिमदादिक ८ मदने करिवे नोचैगोत्र कर्म्म १४ दानने विषे भोगने विषे

टीका: लात् पञ्चविध अन्तराय तत्र दीयते इति दान तस्मिन् दाने लभ्यते इति लाभस्तस्मिन् लाभे सकृद्भुज्यते पुष्पाहारादि पदार्थो भोग: तस्मिन् भोगे उपेति पुन: पुनर्भुज्यते भुवनाङ्गना शुकादीनि इति उपभोगस्तस्मिन् उपभोगे तथा विशेषेण ईर्यते वेद्यते अनेनेति वीर्यं तस्मिन् वीर्ये सर्वत्रान्तराया इति सम्बन्ध: ततो विषयभेदात् पञ्चविध अन्तरायं यत्र यस्मिन् सति चतुरे ग्रहीतरिदेये वस्तुनि तस्य फल जानन् अपिदानेन प्रवर्त्तते तद्दानांतरायं१ यस्मिन् विशिष्टेपि दातरि सति याचना निपुणोपि याचको न लभते तल्लाभांतरायं पुनर्विभावादो सत्यपि भोक्तुं न शक्नोति तद्भोगान्तराय येन उपभोग योग्ये वस्तुनि सति उपभोक्तुं न शक्यते तत् उपभोगान्तराय यद्बलवान् नीरोगस्तरुणोपि तृणमपि भङ्क्तुं न शक्नोति तस्य पुरुषस्य वीर्यांतराय कर्मज्ञेय १५ उक्तार्थस्य निगमनाय उत्तरग्रन्थ योजनायाह (एयाओ मूलपयडीओ उत्तराओ य आहिया पएसग्ग खित्तकालेय भाव वा अदु उत्तर सुण १६) एता मूलप्रकृतयोऽष्टौ आख्याता: तु पुनरुत्तरा अवान्तरा ज्ञानावरण दर्शनावरणादीनां पञ्चनवाद्या: अग्रे कर्मणां प्रकृतय आख्याता: अत: प्रदेशाग्रं क्षेत्र कालौ च वा शब्द: पुनरर्थे पुनर्भाव उत्तरं अग्रेत्वं शृणु वदामीति शेष तत्र प्रदेशाग्रं किमुच्यते प्रदेशानां अग्रं परमाणूनां परिमाण प्रदेशाग्रं क्षेत्रं आकाशं कालश्च बद्धस्य कर्मणो जीवप्रदेशा अविघटनात्मक: स्थितिकाल: भावं अनुभावादिकं कर्मपर्यायलक्षणं चतुर्विधं प्रकृतिस्थिति प्रदेशानु

सूत्र: हियं १५ ॥ एयाओ मूल पयडीओ उत्तराओय आहिया। पएसग्गं खित्त कालेय भावंवा दुत्तरं सुण १६ ॥ सव्वेसिं

भाषा: लाभने विखे एकवार भोगवीइ ते फुलादिक वार२ भोगवीइ ते आभरणादिक उपभोग वीर्यने विखे पांचे प्रकारे अतराय कर्म संखेपे कह्युं तीर्थंकरे१५ पूर्वे कहीए ८ मूल प्रकृति अने श्रुत ज्ञानावरणीयादि १५८ उत्तर प्रकृति कही परमाणुं नो अग्रप्रदेशाग्र क्षेत्र आकाशकर्मने जीव प्रदेश स्यु थिति ते

भागम्वध्य अह बदामिल मूल१६अथ तावत्प्रदेशाग्र वदति(सव्वेसि॰१७)सर्वथाज्ञानावरणीयादि कर्मणां प्रदेशाग्र परमाणु परिमाण अन्यिगसत्वातीत वत त पत्यि रत राग दे परवर्तितव्यवच्छलोतिय विगा अन्यिगायतेसत्वायअन्यिग सत्वास्तेभ्योअतीत तान्वाअतीतअतिक्रान्स अन्यिग सत्वातीत कीर्षा रागद्वेषमरा पत्यियाव्भिद्नायमागता सत्त परभेस यसन्ना यथाद्रव्याघट्टिता एताह्याये सत्वा अथात्रभव्या जोया तेभ्य कमथाप्रदेशाग्र परमाणूनां परिमाण अनन्तगुणाधिकमभव्येभ्यो अधिकमित्यर्थं पुन सर्वेषाकर्मणा प्रदेशाग्र सिद्धजोवानामनन्त भाव्यातसिद्धेभ्योग्र तर्मध्ये एवमाख्याततीर्थंकरै कथित कीर्थ सिद्धजोवेभ्य कर्मपरिमाण अनन्तगुणेन होन मित्यर्थं कर्माणपेक्षया सिद्धा अनन्तगुणा इतिभाव अतएव कर्म परिमाणूनां अनन्तक सिद्धानां अनन्तवर्त्ति प्रकाशित इद सत्वान एक समयग्राह्य कर्मपरिमाण येष मुक्त वर्त्तते १७ प्रदेशाग्र सुक्ता कर्मणा चेव वदन्ति (सव्वजीवाण कम्मत्तु सङ्गहे छद्दिसागय सव्वे सु विपएसेसु सव्व सव्वे ण बद्धग १८) कर्मज्ञानावरणीयादिक सर्वजीवानां एकेन्द्रियादीना सग्रहे सग्रह क्रियाया योग्य तु षटदिग्रागत स्यात् अत्रान्दिशा समाहार षडदिश तत्रगत षडदिग्व्यित मित्यर्थं तत्र च तस्य पूर्वाधादिश ऊर्द्धाधोदिगदय चेद एव दिग षटक अत्र षटदिग्गत

चेव कम्माण पएसग्ग-मणतग । ग ठियमत्ताइय अतो सिद्धाण आहिय १७ ॥ सव्व जीवाण कम्म तु सगहे छद्दिसा

काल भावन भाग पर्याय आगलि कहे छे १६ सघलाइ कर्म आठनो प्रदेशाग्र परमाणु या अनताजिये कर्मवर्गणा अनतके इहराग द्वेषनो परिणाम य विभेदे आघात एह्वा सत्वजीव भव्य अनता तेहथी अनतगुण अने ते सिद्धथकी होन प्रदेशाग्र कर्मनो जांणिवो एकसमय ग्राह्यकर्म पुद्गलआश्रीएसिद्ध थकी अनंतमांहि एतले सिद्धथकी थोडाछे एहथको सिद्ध अनत गुणाछे १७ सर्वजीवने कर्म = सग्रहयानी क्रियाने पूर्वादिछे दिसिना याध्या आश्याद्दर

कर्मदोन्द्रियादि जीवान् एव अधिकृत्य सग्रह क्रियाया योग्यं स्यादिति नियम॰ एकेन्द्रियाणा तु आगमेतरादि दिग्स्थ कर्मग्रहण क्रियायां योग्यमपि उक्तमस्ति अपरतागमेच तदाह एगिन्दियाणं भन्ते तेयाए कम्म पुग्गलाणं गहणं करं माणि किं तिदिसि करइ गोयमा निरायतिदिसिं सिय चउदिसि सिय पञ्चदिसि करेइ बेन्दियाणं भन्ते पुच्छा गोयमा बेन्दिया जाव पञ्चिन्दिया नियमा छद्दिसिं करेइ कथ सग्रह क्रियया योग्यं केन रूप क्रियहास्यादित्याह सर्वैरप्यात्म प्रदेशैः सर्वं ज्ञानावरणादि सर्वेण प्रकृतिस्थित्यादिना प्रकारेण बद्ध वा अन्योन्यं सम्बन्ध तया क्षीरोदकवत् आत्मप्रदेशै॰ श्लिष्टम्त देव ग्रहवा कर्मसग्रहे योग्यं भवति नत्वन्यत् आत्माहि सर्व प्रकृति प्रायोग्य पुद्गलान् सामान्येन आदायतान् पुद्गलान् अध्यवसाय विशेषात् प्रथग् ज्ञानावरणादि रूपत्वेन परिणमयति यत्र हि आकाशे जोवोऽवगाढस्तत्रये आकाशप्रदेशा आत्मन्याश्रिताश्लेषु ये कर्मपुद्गलादि रागादिस्नेह योगत आत्मनि लगन्तिते एव कर्म पुद्गला जोवानां ग्रहणयोग्याः न तु क्षेत्रांतरावगाढाः कर्मपुद्गला जीवाना संग्रहणार्हाः भिन्नदेशस्थाना गहणयोग्या भावात् सव्वेसु पएसेसु इति प्राकृतत्वात् तृतीया बहुवचन स्थाने सप्तमी बहुवचन भिन्नप्रदेशस्थाः कर्मपुद्गलाः कथं ग्रहणयोग्या न भवंति स्वावगाढाकाश प्रदेशस्थाः कर्मपुद्गलाः कथं ग्रहणयोग्या भवन्ति अत्र दृष्टांतो यथाग्निः स्व प्रदेशस्थान् प्रायोग्य पुद्गलान् आत्मसात् करोति एव जीवोपि स्व प्रदेशस्थान् कर्म पुद्गलान् आत्मसात् करोति किञ्चिद्दिदिक् स्थितं अपि कर्म आत्मा गृह्णाति परं अल्पत्वान्न विवक्षित १८ अथ कालमाह [उदहिसिरिनामाण तीसई कोडि कोडीओ

गयं । सव्वेसुवि पएसेसु सव्वं सव्वेण वद्धगं १८ ॥ उदहिसरि नामाणं तीसइं कोडिकोडीओ । उक्कोसिया ठिई

सघला आकाश प्रदेश जीवे आश्रया प्रदेशने विषे कर्म जीवने ग्रहवायोग्यहइ दूधपाणीने न्याये सर्व आज्ञानावध ८ आठ प्रकार तथा सर्व आत्म प्रदेशे बध पाम्यो बोध्यो छवे १८ उदधि समुद्रसरिखुनाम एतले सागरोपम तीरा कोडाकोड उत्कृष्टी थितिहोइ अंतर्मूहूर्त्त वेघडी मांहेरी जघन्य

उक्कासियाठिद्द होइ अन्तमुहुत्त जहन्निया १९] [आवरणिज्जाण दुन्हपि वेयणिज्जे तहेवय अन्तराएयकम्म मिठिईए साथिया हिया २०] [उदहीसरिस नामाण सत्तर कोडिकोडीओ मोहणिज्जस्स उक्कोसाअन्तोमुहुत्त जहन्निया २१] [तित्तीससागरोवम उक्कोसेणवियाहिया ठिईओ आउकम्मस्सअन्तोमुहुत्त जहन्निया २२] [उदही सरिसनामाण वीसई कोडिकोडिओ नामगोयाण उक्कोसा अट्ट मुहुत्ता जहन्निया २३] एतासां गाथानां व्याख्या प्रथम द्वितीय गाथयोरथ पूर्व आवरणयोर्द्वयोरर्थात् ज्ञानावरणदर्शनावरणयोर्द्वयो कर्मणोरुदधिसदृशनामानि सागरोपमानि उदधि समुद्रस्तेन सदृश नाम येषांतानि उदधि सदृग् नामानि तेषां उदधि सदृग नामानि तेषां उदधि सदृग नाम्ना सागरोपमानां त्रि शत्कोटा कोटी उत्कृष्टास्थितिर्भवति तथा जघन्यिका चैवा अन्तर्मुहूर्त्त स्थिति तथैव वेदनोयेइति वेदनोयस्य कर्मेण तथा अन्तराये अन्तराय कर्मणोपि एवैव स्थिति उत्कृष्टात्रि शत्कोटाकोटीस्थिति जघन्यिका अन्तर्मुहुर्त स्थिति अथ वेदनोयस्य जघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त्त मात्रा सूत्रकर्ताक्षाचन्ये तुद्वादशमुहुर्त्त मानाएवतावेदनोयस्य स्थिति इच्छन्ति तदभिप्राय न विद्म २० मोहनोयस्य सप्तति कोटाकोटी सागरोपमाना उत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यिका अन्तर्मुहूर्त्त स्थिति २१ त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि आयु

होइ अंतामुहुत्त जहन्निया १९ ॥ आवरणिज्जाण दुन्हपि वेयणिज्जे तहेवय । अंतराएय कम्म मि ठिई एसा वियाहिया २०॥ उदहीसरिस नामाण सत्तर कोडिकोडीओ । मोहणिज्जस्स उक्कोसा अंतो मुहुत्त जहन्निया २१ ॥ तित्तीस

होवे तुर्यिनि रहुयानो कारण तत्तोहोइ १९ ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय विघ्न जघन्यथिति मुहूर्त्त वेदनीकर्मने विषे छे तिमज जघन्य मुहूर्त्त अतराय कर्मने विषे तिमज सागर ३ जघन्य मुहूर्त्त १२ थिति एचिहु कर्मनो कही भगवते २० सागरोपमनो सत्तर कोडाकोडि मोहनी कर्मनी उत्कृष्टी

कर्मण उत्कृष्टे न स्थितिश्च ख्याता. प्राकृतत्वाद्विभक्तिलोप· जघन्यिका अन्तर्मुहूर्त्तं स्थिति २२ नाम गोत्रयोर्द्वयो कर्मणो ख्ल्वष्टाविंशति: कोटा कोट्य: सागरोपमानां स्थितिर्व्याख्याता: जघन्यिका अन्तर्मुहूर्त्तिका: इयन्तु मूल प्रकृतीनां स्थितिरस्ति उत्तर प्रकृतीनां स्थितिर्विस्तरटीकातोज्ञेया २३ अथ भावमाह [सिद्धाणणंत भागो अणुभागाहवन्तिओ सव्वेसु विपएसग्गं सव्वजीवेसु इच्छियं २४] सिद्धानां अनन्तसंख्याकानां सिद्धजीवानां अनन्तमो भाग: अनुभागा: कर्मरस विशेषा भवन्ति सिद्धानंतभाग: अनन्तसख्य एव इत्यनेन अनुभागानां आनन्त्यमुक्तं सर्वेष्वपि अनुभागेषु प्रदेश बुद्धया विभज्य माना: अनुभागैक देशास्तेषां अग्रं परिमाण प्रदेशाग्रं सव्वजीवे स इच्छियं सर्वजीवेभ्यो अतिक्रान्तं ततोपि तेषां अनन्तगुणत्वं २४ अथाध्ययनार्थोप

सूत्र

सागरोवम उक्कोसेण वियाहिया। ठिई आउकम्मस्स अंतोमुहुत्तं जहन्निया २२॥ उदहिसरिस नामाणं वीसई कोडि कोडीओ। नाम गोयाण उक्कोसा अट्ठ मुहुत्ता जहन्निया २३॥ सिद्धाणणंत भागोय अणुभागा हवंतिओ। सव्वे सुवि पएसग्गं सव्वजीवे सइच्छियं २४। तम्हा एएसि कम्माणं अणुभागे वियाणिया। एएसिं संवरे चेव खवणेय जए बुहे

भाषा

थिति कही अंतर्मूहूर्त्त जघन्य थिति २१ तेत्रीस सागरोपमनी उत्कृष्टी कही तीर्थंकरे थिति आउखा कर्मनि अंतर्मूहूर्त्त जघन्य थिति २२ सागरोपमनी वीस कोडाकोडि नामकर्मनी अने गोत्रकर्मनी उत्कृष्टी थिति आठमूहूर्त्त जघन्य थिति २३ सिद्ध अनंताछे तेहने अंतमे भागें कर्म बंधमा अनुभाग रसनाभेद हुइ पणि अनंताछे हवे प्रदेश परिमाण एकेसमे बांधीता कहेछे सघलाइ अनुभागने विखे विहची ज्ञानना प्रदेशाग्र सर्वजीव थकी ते प्रदेशाग्र अनंतगुणा जाणीवा २४ ते कारणथी एआठकर्मनी अनुभाग रसविशेष संसारना कारणजाणीने एकर्मने संवरवेविखेइवे

सहरसाह (तम्हाएएसि कम्माण अणुभागे वियाणिया एएसि सम्बरे चेव खवणेय जए बुहेत्तिबेमि २५) तस्मात् एतेषां कम्मणा अनुभागान् कर्म्मणां रस विशेषान् विज्ञाय एतेषां कर्म्मणां सम्बरे अनुपागतानां निरोधे च पुन क्षमणे उपागतानां क्षयीकरणे बुध पण्डितो यतते यत्न कुरुते इति सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन प्राह ॥ हे जम्बू अहं ब्रवीमि २५ इति कर्म्म प्रकृत्याख्य अध्ययन सपूर्णं इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्ति गणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां कर्म्म प्रकृत्याख्य त्रयस्त्रिंशत्तम अध्ययन सपूर्णं ३३ अथ चतुस्त्रिंश कथ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अष्टकर्म्म प्रकृतय उक्ता तासां कर्म्मप्रकृतय षड्भिर्लेश्याभिर्भवन्ति ततो लेश्याध्ययन चतुस्त्रिंश कथ्यते [लेसज्झयण पवक्खामि आणुपुव्वि जहक्कम छण्हंपि कम्मलेसाण अणुभावेसुणेहमे १] अथ अहं इत्यध्याहार अथ यथाक्रम आनुपूर्व्या अनुक्रमेण क्लिविधया अतिमालिनतर मलिनतर मलिनादि भेदेन अहं लेश्याध्ययन प्रवक्ष्यामि लेश्या अध्यवसाय विशेषा लेश्या अभिधायक अध्ययन लेश्या अध्ययन अहं कथयिष्यामि भो मम कथयत यथा अपि

त्तिबेमि २५ ॥ कम्मप्पगडीय समत्त ३३ ॥ लेस ज्झयण पवक्खामि आणुपुव्वि जहक्कम। छण्हं पि कम्म लेसाण अणु
भावे सुणे ह मे १ ॥ नामाइं वन्न रस गंध फास परिणाम लक्खण। ठाण ठिइं गइं चाउ लेसाणतु सुणेहमे २ ॥

यत्नये यतन करे निपुण साधु सुधर्मा स्वामी जम्बूने कहे २५॥ इति श्रीकर्म्मप्रकृति अध्ययननो अर्थ सपूर्णथयो ३३ ॥ अध्यवसाय विशेष ते लेश्या सबंधी अध्ययन कहसु आनूपूर्वी अनुक्रमे छहि कर्म्मलेश्याकर्म्मस्थितिभोगजावणहार पुद्गलरूपछे तेहनो अनुभाव रसविशेष साभलो शुभकहता मने १ लेश्यानां नाम १ कालादिवर्ण २ तीक्ष्णादि रस सुगधादि गध खरउरादि फरस जघन्यादिक परिणाम आश्रय शैत्यादिलक्षण उत्कृष्टादिस्थानकरश्यामो

कर्मलेश्यानां कर्मस्थिति विधायक तत्तद्विशिष्ट पुद्गलरूपाणां अनुभावान् रसविशेषान् त्वं शृणु १ [नामाइंवणरसगन्ध फास परिणाम लक्खण ठाणठिई गइंचाउ लेसाणन्तु सुणेहमे २] हे शिष्य लेश्यानां एकादशवचनानि मे मम कथयतस्त्वं शृणुतानिकानि वचनानि तावत्नामानि वक्ष्यामि तथा वर्ण रस गन्ध स्पर्श परिणाम लक्षणं वक्ष्यामि तथास्थानं वक्ष्यामि तथास्थिति गती वक्ष्यामि च पुनरायुर्वक्ष्यामि वर्णश्च रसश्च गन्धश्च स्पर्शश्चपरिणामश्च लक्षणं च तेषां समाहारो वर्ण रस गन्धस्पर्श परिणाम लक्षणं तत्र वर्णाः श्यामादयः रसास्तीक्ष्णादय. गन्धासुरभ्यादयः स्पर्शाः खरादयः परिणामा जघन्यादयः लक्षणं पश्चाश्रवा सेवनादि स्थानं उत्कर्षापकर्ष रूपं स्थिति अवस्थानकालङ्गतिं नरकादिकां यतो या अवाप्यते आयुर्यावति आयुष्य वसतिव शिष्य माणे आगामि भवे लेश्या परिणामस्तदिह गृह्यते २ तदेवानुक्रमेण आह [किण्हानीलाय काउय तेउ पउमा तहेवय सुकले साय छट्टीओ नामाइंतु जहक्कमं ३] एतानि लेश्यानां यथानुक्रमं नामानि ज्ञेयानि प्रथमा कृष्णा १ च पुनर्द्वितीयानीला २ तृतीया कापोतनाम्नी ३ चतुर्थी तेजोलेश्या ५ च पदपूरणे च पुनः षष्ठी शुक्ललेश्या एवंषण्णां अपि नामानि ३ अथ वर्णान् आह [जीमूय० ४] पूर्वं कृष्णलेश्या वर्णतोज्ञेया कीदृशी कृष्णलेश्या स्निग्ध जीमूतसङ्काशा प्राकृतत्वात् स्निग्धशब्दस्य परनिपात. स्निग्धश्चासौ जीमूतश्च स्निग्धजीमूतस्तेनसंकाशा स्निग्ध जीमूत संकाशासजल घनसदृशा पुनः कीदृशी

सूत्र

किन्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा तहेवय । सुक्कलेसाय छट्ठाय नामाइंतु जहक्कमं ३ ॥ जीमूय निद्ध संकासा गवल रिट्ठ

भाषा

काल थिति नरकादिगति आउखुं ते लेस्यानाबोल १२ सांभलि मुझने कहतां प्रते २ नाम कहेछे पहली कृष्णलेश्या बीजी नीललेश्या २ तीजी कापोत ३ चौथी तेजो लेश्या तिमईज पांचमी पद्मलेश्या शुक्ललेश्या छट्ठी एलेश्यानां नाम अनुक्रमे होय ३ जेहवोजीमूत कालोमेघ ते सरिखी पाढानो

गयलारिष्ट सन्निभा गवलश्च अरिष्टकश्च गवलारिष्टकै ताभ्यां सन्निभा गवलारिष्टक सन्निभा गवल माहिष शृङ्ग अरिष्ट अरिष्टफल अरिष्टरत्न वा ताभ्यां सदृशी पुन कीदृशी खञ्जाजन नयन निभा खञ्जश्चञ्जनश्च नयनश्च खञ्जाजननयनानितैर्निभा खञ्जाजन नयन निभाखञ्ज शकट चक्रान्तर्गत तैलदग्धो परि घृतासिक्त यथादि अञ्जनगामी भूत अञ्जन कज्जल नयन नेत्रकनीनिकातैर्निभा सदृशी ४ अथ नील लेश्याया वर्णनमाह [नीला सोकसकासा चासपिच्छ समप्पभावेरुलिय निद्धसकासा नीललेसायोवन्नयो ५] तु पुनर्नील लेश्या वर्ण स दृशो भवति कीदृशी नीलायासौ अशोकश्च नीला शोक स्तेन सकाशा सदृशी नीला शोकसकाशा अशोकदृशो रक्तोपि भवति तद्व्यवच्छेदार्थं नीलपद पुन कीदृशी चासपिच्छः समप्रभा पुन कीदृशी स्निग्ध वैडूर्य सकाशा जात्य नीलमणि सदृशी ५ अथ कापोतवर्ण माह (अयसी पुप्फसकासा कोइलच्छ दसन्निभा पारावयगी वनिभा काउलेसा ओयन्नओ ६) कापोतलेश्या वर्णत ईदृशो भवति ईदृशो कीदृशो अतसी धान्य विशेषस्तस्य पुष्प अतसीपुष्प तेन स काशा अतसीपुष्प स काशा पुन कीदृशी कोकि

ग सन्निभा । खज जण नयण निभा किन्ह लेसाओ वन्नओ ४॥ नीला सोग सकासा चास पिच्छ सम प्पभा । वेरुलिय

८५

निद्ध संकासा नील लेसाओ वन्नओ ५ ॥ अयसीपुप्फ सकासा कोइल छद सन्निभा । पारेवय गीव निभा काउ

भाषा

सींग अरीठाना फल अथवा द्रोणकाक सरिखो ख ज गाडलाउ गधम अजन काजल नेत्रनीकीकी सरिखो कृष्ण लेश्या वर्ण थकी एहवी कहे छुये ४ नीलो अशोक वृक्ष ते सरिखो नील चासना पांख सरिखो वैडूर्य रत्न सरीखी तेज से सरीखो नील लेश्यानोवर्ण एहवो छये ५ अलसीना फूल सरिखो कोयल पखीनी पांख सरिखो पारेवानी कोटि सरीखो कापोतलेश्या काइ काली रातोकों इएहवो वर्ण थको छइ ६ हिंगुल पाषाणधातु सरीखो

लच्छद्दसन्निभा कोकिलपक्षि पिच्छसदृशी पुन कीदृशी पारापत ग्रीवानिभा ६ अथ तेजोलेश्या वर्णमाह [हिंगुलयधाउ सकासा तरुणा इच्चसंनिभासुय तुंडपइवनिभातेउलेसाओवन्नओ७] तेजोलेश्या वर्णं त ईदृशीभवतिइदृशीकीदृशी हिंगुलुकः प्रतीतः सचासौ धातुश्च हिंगुलक धातुस्तेन संकासा हिंगुलुक धातुसंकाशा अथवा हिंगुलुकः प्रसिद्धोधातु गैरिकाताभ्यां सदृशी पुनः कीदृशी तरुणादित्यसन्निभा सदृशी पुनःकीदृशीशुकातुण्डप्रदीपनिभा शुकचञ्चुप्रदी पार्चिस्सदृशी ७ अथ पद्मलेश्या वर्णमाह [हरियालभेय संकासा हलिद्दाभेयसप्पभा सणासण कुसुमनिभा पम्हलेसा ओवण्णओ ८] पद्मलेश्यावर्णं त ईदृशी भवति कीदृशी ईदृशी हरितालभेद संकाशा हरितालस्य नटमण्डनस्य भेदाः खण्डा हरितालभेदास्तै संकाशा तत्सदृशी पुनर्हरिद्राभेद सप्रभा पुनः शनासन कुसुमनिभा शणश्च अशनश्च शणासनौ तयोः कुसुमं तेन सन्निभाः शणाशनि कुसुमसन्निभा शनं धान्यविशेष अशनोबीयकाख्यो वृक्षस्तत्पुष्प सदृशी ८ अथ शुक्ललेश्या वर्णमाह [संखंक कुन्दसंकासा खीरपूर समप्पभा रययहार संकासा सुक्कलेसा ओवन्नओ ९] शुक्ललेश्या वर्णं त ईदृशी भवति ईदृशीकी० शंखश्च अंकश्च कुन्दश्च शंखांक कुन्दानितै संकासा शंखांक कुन्दसंकासा शंखः प्रसिद्धः अङ्कः शुक्लमणि विशेषः कुन्दवृक्ष पुष्पं एतै· सदृशी

सूत्र

लेसाओ वन्नओ ६ ॥ हिंगुलयधाउ संकासा तरुणा इच्च सन्निभा। मुय तुंड पईव निभा तेउ लेसाओ वन्नओ ७ ॥ हरियाल भेय संकासा हलिद्दा भेय सन्निभा। सणासण कुसम निभा पम्ह लेसाओ वन्नओ ८॥ संखंक कुंद संकासा

भाषा

जगता सूर्य सरिखो सूडाना मुख प्रदीप दीवो ते सरिखो तेजो लेश्या वर्ण थकी ७ हरितालनाभेद खंड सरिखो हलद्रनाभेद खंड सरिखो सणनामा धान्य अने सणबीजो वनस्पतिना फूलसरिखो पद्मलेश्या वर्ण थकीपीलो ८ शंख अने अंकनामा मणि अने कुंदवृक्षना फूल सरिखो खीर दूधनी धारा

पुन घोरपूरसम प्रभा दुग्धपूर सदृशवर्णा पुन रजतहाराभ्यां स कासा रजत जातीयकथ हारो मुक्ताहारस्ताभ्यां सदृशी इत्यर्थ ८ अथ पद्मालेश्यानां रसमाह [जहकडुयतु वगरसो निबरसो कडुय रोहिणि रसोवा एत्तोवि अणन्तगुणो रसोउ किन्हा एनायव्वो १०] कृष्णाया कृष्णलेश्याया ईदृशो रसो ज्ञातव्य ईदृग को० यथा यादृग कटुक तुम्बकरसस्तथा निम्बस्य रसस्तथा कटुकरोहिणीरस कटुकाचासौ रोहिणी च कटुकरोहिणी तस्यारस कटुक रोहिणीरस रोहिणीवनस्पति विशेष एतेभ्योपि अनन्तगुण अनन्तस्य राशिना गुणितोरस कृष्णलेश्याया भवतीत्यर्थ १० अथ नीललेश्याया रस माह [जहतिक्कडुयस्सरसो तिक्खो जहहत्थि पिप्पली एवा एत्तोवि अणन्तगुणो रसोउनीलाएनायव्वो ११] नीलाया नीललेश्याया ईदृशो रसो ज्ञातव्य यथा माहयत्रिकस्य भवति त्रयाणां कटनां समाहारस्त्रि कटुकि कटु एवमि कट क स ठी मरिच पिप्पिल्यात्मक तस्य रसो यादृक तीक्ष्णो भवति पुन

मूल

खीर पूर समप्पभा । रयय हार सकासा सुक्क लेसाओ वन्नओ ८ ॥ जह कडुय तु वग रसो निंय रसो कडुय रोहिणि रसोवा । इत्तोउ अणत गुणो । रसोउ किण्हाए नायव्वो १० ॥ जह तिकडुयस्स रसो तिक्खो जह हत्थिपिप्पली एवा । इत्तोवि अणत गुणो रसोउ नीलाए नायव्वो ११ ॥ जह तरुण अवग रसो तु वर कविट्ठस्स वावि जारिसओ ।

भाषा

तेह सरिखो शुक्ल लेश्या वर्ण कह्यो ८ लेश्यानो रस कहेछे जिम कडूआ तुंबडानो रसस्वाद नींबडानो रसकडूए रोहिणी नीछालिनी रस एहथकी पणि अनत गुणों रसस्वाद कृष्णलेश्यानो कडूओ १० जिम त्रिकटुक त्रिगडूनो रसस्वाद तीखो जिम हस्ती गजपीं परनो रस एहथकी अनतगुणो रसनील लेश्याना भतितोषो ११ जिम तरुण काचो आमोकेरीत सरीखोरस तु वरकवायलोकाचोकोठनोरस लेश्यो एहथकी अनतगुणो रसकापोत

यथा हस्ति पिप्पिल्या: गजपिप्पल्या वा रसो यादृशो भवति इत्तोपि एभ्योपि नीलाया अनन्तगुणो रसस्तीक्ष्णो भवति ११ [जहतरुण अम्बयरसो तुम्ब रकविट्ठस्स वा विजारिसओ इत्तोवि अणन्तगुणो रसो उकाउएनायव्वो १२] कापोतलेश्याया रस ईदृशो ज्ञातव्य: ईदृश: कीदृश: यादृशस्तरुणाम्रक रसो भवति तरुण अपरिपक्वं यत् आम्रकं आम्रफल तरुणाम्रकं तस्य रसस्तरुणाम्रकरस स्तथा पुनस्तुम्बरक पित्थस्य रसो यादृशो भवति तुंवरं कच्चं कपित्थं तुम्बरकपित्थं तस्य रसो यादृक् भवति एभ्योपि अणन्तगुणोरस कापोतलेश्याया ज्ञातव्य: १२ [जह परिणयवगरसो पक्ककविट्ठस्स वा विजारि सओ इत्तोवि अणन्तगुणो रसोयती जएनायव्वो १३] तेजोलेश्याया ईदृशो रसो भवति ईदृश. की० यादृश परिणताम्रकर भवति पक्वाम्रफलस्य रसो भवति पुन. यादृश. पक्वक पित्थस्यापि रसो भवति अतएभ्योपि अणन्तगुणो रसम् तेजो लेश्याया ज्ञातव्य: इत्यनेन किञ्चित् आम्ल: किञ्चिन्मधुरश्चेति ज्ञाईं १३ [वरवारुणीए वरसो विविहाणव आसवाणजारिसओ महुमेरगस्स वरसो इत्तोपम्हाए परएणं १४] पद्माया: पद्मलेश्याया रस ईदृशो ज्ञातव्य: ईदृश की० यादृशो रसे सावरवारुण्या: प्रधान मदिराया रसो भवति पुनर्विविधाना आसवानां कुसुमोत्पन्नानां मद्यानां यादृशो रसो भवति तथा

इत्तोवि अणंत गुणो रसोउ काउए नायव्वो १२॥ जह परिणयंवग रसो पक्क कविट्ठस्सवावि जारिसओ। इत्तोवि अणंत गुणो रसोउतेजए नायव्वो १३। वर वारुणीएव रसो विविहाणव आसवाण जारिसओ। महु मेरगस्सव रसो

लेश्यानो जांणवुं १२ जिम पाकाआंबांनो रस कांइं खाटो कांइ मीठो अथवा पाका कोठनो जेहवोरस एहथकी अनंतगुणो रसस्वाद तेजो लेश्यानो जाणिवो १२ वर प्रधान वारुणी मदनो रसस्वाद विविध प्रकार फूलादिकना आसवनो जेहवो रस मधुमद्य अने मेरक सरिखो तेहनो रसएहथकी

गुणोदुर्गन्धो भवति इह लेश्याना अप्रशस्तत्वं गन्धाय शुभत्वादिति भाव: १६ [जहसुरहि कुसुमगन्धो गन्धवासाणपिस्समाणाण एत्तोवि अनन्तगुणोपसत्थ लेसाणतिन्हंपि १७] तिसृणां अपि प्रशस्तलेश्यानां तैजसी पद्मशुक्लानां एतादृशो गन्धोभवति एतादृश: कीदृश: यादृश: सुरभि कुसुमानां जाति चम्पकादीनां पुष्पाणां गन्धवासानां यादृशो गन्धोभवति गन्धाश्चवासाश्च गन्धवासा: गन्धाकुष्टपुटपाकानि: पत्रावासाद्यतरे कर्पूरकर्चरिकाद्यास्तेषां चूर्णी क्रियमाणानां गन्धोभवति अतएभ्योपि गन्धेभ्यो अनन्तगुणोगन्ध: प्रशस्तलेश्यानां ज्ञेय इत्यर्थ: १७ अथ लेश्यानां स्पर्शमाह (जहकरगयस्स फासोगोजिब्भा एव सागपत्ताणं एत्तोविअनन्तगुणोलेसाणं अप्पसत्थाणं १८) अप्रशस्तानां लेश्यानां कृष्णनीलकापोतानां स्पर्शएतादृशो भवति एतादृश कीदृशो यादृश: क्रकचस्य स्पर्श: पुनर्यादृशो गोजिह्वाया: स्पर्शस्तथासागहक्षस्य पत्राणां स्पर्शोभवति एभ्य: स्पर्शेभ्योपि अशुभानां लेश्यानां स्पर्शोज्ञेय: १८ (जहबूरस्सवफासो नवनीयस्सयसिरीस कुसुमाण एत्तोविअनन्तगुणोपसत्थलेसाण तिन्हंपि १९) प्रशस्तलेश्यानां तिसृणां अपि तेजोलेश्यापद्मलेश्या शुक्ल

सूत्र

जह सुरहि कुसुम गंधो गंध वासाण पिस्स माणाणं। इत्तोवि अणंत गुणो पसत्थ लेसाण तिन्हंपि १७ ॥ जह कर गयस्स फासो गोजिब्भा एव सागपत्ताणं। इत्तोवि अणंत गुणो लेसाणं अप्पसत्थाणं १८ ॥ जह बूरस्सव फासो नव

भाषा

मोगरादिकना फूलनो गंध छुवे उपलोटादि पाचनी पना गंध कर्पूरकाचरी गहूंलादि वास पीसीतां वाटीतानो गंध जेहवो हुइ तेहथकी अनंत गुणो अधिक सुगंध प्रशस्त उत्तम तेजो पद्म शुक्ल तिणे लेश्यानो गंध जाणवो १७ लेश्याना फरस कहेछे जिम करवतनो फरस खरखरो तथा वली गायनी जीभनो फरस तथा सागवृक्षना पानडानो फरस एथकी अनंतगुणो कृष्ण १ नील २ कापोतलेश्या ३ अप्रशस्त पाडूओ फरस खरखरो १८

लेश्यानां स्पर्शस्तथाभवति हृदम कोदम याद्दशो गूरस्यवनस्पतीविशेषस्य स्पर्शाभवति एतेभ्य च पुनर्नवनीतस्य म्रक्षणस्य स्पर्शो याद्दशोभवति पुन शिरीषपुष्पस्य कुसुमानां याद्दश स्पर्शोभवति एतेभ्य स्पर्शेभ्योपि अनन्तगुण स्पर्शोभव्यानां लेश्यानां ज्ञेय १९ अथ सर्वलेश्यानां परिणामा उच्यते (तिविहोवनवविहोवासत्तावीसइविहेकसीओवादुसओतयालोवालेसाण होइ परिणामो २०) लेश्यानां परिणामस्तादूपगमनात्मकस्त्रिविधोभवति अपि पुनर्नवविधाभवति तथा सप्तविंशति विधस्तथा एकाशीति विधस्तथा पुनस्त्रि चत्वारिंशदधिकद्विशतविधोवा लेश्यानां परिणामोभवति तत्र त्रिविधो यथा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेनभवति प्रत्येक यदा एतत्रयो अपि जघन्या हीना स्वस्थानतारतम्य चिन्तायांविशेष गुणनात्रिवर्ति तदानवविध एव पुन २, स्त्रिगुणनयासप्तविंशति विधित्व भवति एव पुनर्गुणनायाएकाशीति विधित्व भवति यथात् पुनरेव द्विचत्वारिंशदधिक द्विशतविधत्व च भावनीय

सीयसाय सरीस कुसुमाण । इत्तोवि अणंत गुणो पसत्थ लेसाण तिन्हपि १९ ॥ तिविहोव नवविहोवा सत्तावीसइ विहे कसीओवा । दुसओ तेयालोवा लेसाण होइ परिणामो २० ॥ पचासव प्पयत्तो तीहि अगुत्तोछसुअविरओय ।

बोम बूर वनस्पतिना फुलनो फरस सुकुमाल तथा नवनीतमाखणनो फरस शिरीष हचना फुलनो फरस अत्यंत सुकुमाल फरसछे एहथकी अनंतगुणा अधिक प्रशस्त उत्तम त्रण लेश्या जाण एह तीन लेश्यानो गधजाणवो १९ हिव लेश्यानो परिणाम कहेछे तीन प्रकार जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदेन नवप्रकार एक जघन्य मध्यम उत्कृष्टभेदे सत्तावीस प्रकार त नवप्रकार जघन्य मध्यम उत्कृष्टभेदे जाणवाते २७ एकेक जघन्य मध्यम उत्कृष्टभेद एकासी त एकासी जघन्य मध्यम उत्कृष्टभेदे लेश्या होयना परिणाम तरतम जोग हुय असख्यातप्रकार होवे लेश्याना लक्षण कहेछ २० हिंसा प्रमादि तथा

उपलक्षण चेदं तारतम योग विचारणया संख्या नियमो नास्ति तथाच प्रज्ञापना सूत्रे किण्हलेसाणं भन्ते कइविहं परिणामं परिणमइ गोयमा तिविहं वा नव विहं वा सत्तावीसइ विहं वा एक्कासीइ विहं वा तेयालभहिय दुसय विहं वा बहुं वा परिणामं परिणमइ जाव सुक्कलेसाइत्ति २० अथ तावत् कृष्णलेश्यापरिणाममाह (पञ्चासवप्पवत्तो तीहि अगुत्तोछसु अविरओयतिव्वारंभपरिणओखुद्दोसाहसिओनरो २१) [निद्धंधस परीणामो निस्संसो अजिइन्दिओ एयजोगसमाउत्तोकिण्हले सन्तुपरिणमे २२] युग्मं एतद्योगसमायुक्तो नरः प्राणोकृष्णां लेश्यां प्रतिपरणयेत् कृष्णलेश्यां भजेदित्यर्थः अत्र नरशब्देन केवलं पुरुष एव न स्त्रयादिष्वपि कृष्णलेश्याया सभवात् एते सूत्रे उच्यमानायोगाः एतद्योगास्तैः समायुक्तः सम्यग् प्रवर्त्तितः एतद्योग समायुक्तः ते के योगाः इत्याहपञ्चचतै आश्रवाथपञ्चाश्रवाः प्राणाति पातादयस्तेषु प्रवृत्तःसन् पुन· कीदृशस्तिसृभिरगुप्तः मनोगुप्तिवागुप्ति कायगुप्तिरहित पुनर्यः षट्सु पृथ्वीकायेषु अविरत· षट्कायोपमर्दयुक्त इत्यर्थः पुनस्तीव्रा उत्कटाः आरम्भाः सावद्यव्यापारास्तेषु परिणितस्तद्रूपतां प्राप्तस्तीव्रारम्भपरिणित क्षुद्रोहि सर्वेषपि अहितवाञ्छकः पुनः साहसिक· सहसा अविचार्य प्रवर्त्तते इति साहसिक· चौर्यपरदारसेवाकारी इत्यर्थः २१ पुनः कीदृशः निद्धंस परिणामः निरतांश्च सोनिश्चं सोऽत्यन्तलोकाद्दयविरुद्धचिन्ताविकल्पः परिणामोयस्य सनिद्धंसपरिणामः पुनर्योनृसंसोभवतिनिस्त्रिंशः जीवान्हिंसन्

तिव्वारंभ परिणओ खुद्दो साहस्सिओ नरो २१ ॥ निद्धंधस परिणामो निस्संसो अजिइंदिओ। एय जोग समाउत्तो

मिथ्यात्व अविरति इत्यादि ५ आश्रवे करी प्रमादी मनवचन काय तीनगुप्ति मोकली छ कायनी रक्षाइं रहित कठिन आरंभने परिणामे सहितसर्व जीव विषे अहित वाञ्छा अविचार्य चोरी प्रमुखकार्यनो करणहार मनुष्य २१ इहलोकादि कष्ट दुःखनो शंकारहित जेहना परिणाम जीव हणतु

योमनागपि शङ्का न करोति स नृशंस इत्युच्यते पुन कीदृशोऽजितेन्द्रिय मुत्कलेन्द्रिय एतादृशो यो भवति स कृष्णलेश्या माप्नोतीति भाव २२ (इस्सा अमरिस अतवो अ विज्जमाया अहीरियागिद्धीपओसे सढे पमत्ते रसलोलए २३) [सायगवेसेयार अविरओखुद्दोसाहस्सिओ नरो एयजोगसमाउत्तो नोललेसन्तु परिणमे २४] एतद्योग समायुक्त प्राणी नीललेश्या प्रतिपरिणमेतत् नीललेश्याभजेत् ते के योगा ईर्ष्यापरगुणासहन अमर्षोमहाक्रोधाग्रह अतप स्तपसा अभाव ईर्ष्याच अमर्षश्च अतपश्चाममर्षातप तथा पुनरविद्याकुशास्त्ररूपा पुनर्मायाकापट्य अह्रीकतानिर्लज्जता गृद्धि विषयला पट्य प्रद्वेष मत्सर इति भाव एते सर्वे योगादोषकषायस्मिन् तिष्ठन्ति गुणगुणिनोरभेदात् स प्राणीनीललेश्यापरिणामवान् भवति पुन कीदृश शठो मिथ्याभाषी पुन कीदृश स प्रमत्तोऽष्टमदयुक्त पुनर्योरसलोलुप २३ पुनर्य प्राणीसातगवेषक इन्द्रियसुखाभिलाषी कथ मम सुख स्यादिति बुद्धिमान् पुनर्य आरम्भात् प्राणिसम्मर्दात् अविरत आरम्भाविरत पुनर्य क्षुद्रोनीच साहसिक एतादृश प्राणीनीललेश्यावान् इत्यर्थ १४ अथ कापोतलेश्या

किन्ह लेसतु परिणमे २२॥ ईसा अमरिस अतवो अविज्ज माया अहिरियाय। गिद्धि पओसेयसढे पमत्ते रसलोलुए२३॥
साय गवेसे यारंभ अविरओ खुद्दो साहसिओ नरो। एय जोग समाउत्तो नील लेसतु परिणमे २४॥ वंके

सकाये नही जीवे ६ इंद्री ५ नथी जीर्ता एहवे योग आश्रवादिके सहित कृष्णलेश्यानो परिणाम कृष्णलेश्यावंत हुइ २२ परना गुणनो अणसहवो घणु कदाग्रह हठो तप १२ भेद रहित कुशास्त्रनत परने वचन अनाचारो नीर्लज्ज विषय लपट द्वेषभाव कषाइ सहित मदसहित रसदोठे चपल थाइ २३ आरंभ थको अविरत सातानो गवेषण हार क्षुद्र साहसीक नर जीवनो अहितकारी अणविमासो बोले एपूर्वोक्त जोगे सहित नील लेश्यानो परिणाम

लक्षणमाह (प्रकेवकसमायारेनियडिल्ले अणुज्जुए पलिउंचगएवहिए मिच्छदिट्ठी अणायरिए २५) [उप्फालगदुट्ठवाईयतेणेयावियमच्छरीएयजोगसमाउत्तो काउलेसन्तुपरिणमे २६] एतयोर्व्याख्याएतद्योगसमायुक्तः प्राणीकापोतलेश्यां प्रतिपरिणमेत् प्राप्नुयादित्यर्थः कीदृश यीवं वीवचसावक्र. पुनः कीदृशो वंकसमाचारोवक्रः समाचारोयस्य स वक्र समाचारोवक्र क्रियाकारी पुनर्योनियडिल्लेइति निकृतिमान् निकृतिः शाव्यन्तद्विद्यते इति निकृतिमान् पुनर्यो ऽनृजुकोऽसरल. कथचित्सरलं कर्त्तुमशक्तइत्यर्थः पुनर्यः पलिउंचगइति प्रति कुञ्चकः स्वदोष प्रच्छादनपरः पुनः कीदृश औपधिकः उपधिनाकपटेन चरतीतिऔपधिकः पुनर्योमिथ्यादृष्टिर्विपरीत श्रद्धावान् पुनर्योऽनार्यः सम्यग् लक्षणरहित.२५ पुनर्यत् फालकदुष्टवादी उत्फालयति विदारयतिपरं यत् उत्फालकंदुःखोत्पादकं दुष्टं वदते इत्येवंशीलउत्फालकदुष्टवादी पुनर्यस्तेनश्चापि भवति चोरोपि भवति पुनर्योमच्छरी अन्यस्य सम्पदं दृष्ट्वाऽसहतः एतद्योगसमायुक्तः एतादृश. कापोतलेश्यावान् ज्ञेयः २६ [नीयावत्ती अचवले अमाई अकुतूहले विणीय विणएदन्ते जोगवंउवहाणवं २७] पियधम्मे दढधम्मे

वंकसमायारे नियडिल्ले अणुज्जुए। पलिउंचगओ विहिए मिच्छदिट्ठी अणारिए २५ ॥ उप्फालग दुट्ठवाईयतेणेया विय मच्छरी। एय जोग समाउत्तो काउ लेसंतु परिणमे २६ ॥ नीयावत्ती अचवले अमाई अकुतूहले। विणीय विणए

परिणमे २४ वचन वांकुबोले वांके आचारे चाले मने वांको किमे वांको चालीसके पोतानादोष कपटे प्रवर्त्तवो बक्के विपरीत सद्दहणा छे जेहने आर्यलक्षण रहित २५ परने आक्रोशकरे रागद्वेषे दुष्टवोले चोरी करे अन्यनी संपदा देखीनसके एपूर्वोक्त योगे सहित ते कापोत लेश्यानो परिणाम २६ मनवचनकायाइ उतावलपणे रहीत माया रहितख्यालरामत रहीत गुरु प्रमुखनो विनय अभ्यस्य छे एहवो इंद्रिय ५ दम्याजेणे सज्झायादि व्यापार

वज्जभारूहिएसए एयजोगसमाउत्ते ते उले सन्तु परिणमे २८] एतद्योगसमायुक्त प्राणीतेजोलेश्यापरिणमेत् कोदृश प्राणी नीचैर्वृत्ति कायवाङ्मनोभिर नुत्सिक नम्रतायुक्त इत्यर्थं पुनरप्राणोऽचलोभवति पुनरमायोमायारहित पुनर्यो अकुतूहली कुतूहलरहित पुनर्याविनीतविनय छतगुर्वादियोग्य व्यवहार पुनर्योदान्त इन्द्रियदमनपरायण पुनर्योगवान् सिद्धान्त पाठ व्यापारवान् पुनर्यं उपधानवहनर्निरत २७ पुनर्य प्रियधर्मा पुनर्योदृढधर्मा पुनर्योऽवद्यभीरु पापभीरुकोभवति पुनर्योहितैषक सर्वजीवेषु हितान्वेषी अथवाहित मोक्ष इच्छन्नीतिहितैषिक एतादृश तेजोलेश्यावान् भवति२८ अथ पद्मलेश्या लक्षणमाह (पयणुक्कोहमाणेय माया लोभेय पयणुए पसन्त चित्ते दन्तप्पाजोगव उवहाणव २९) [तहापयणुवाईय० ३०] एतद्योग समायुक्त प्राणी पद्मलेश्यान्तु परिणमेत् कोदृश प्रकर्षेण तनू क्रोधमानौ यस्य स प्रतनु क्रोधमान पुनर्यस्य मायालोभौ च प्रतनुकौ भवत पुनर्यः प्रशान्तचित्तो भवति पुनर्यो दान्तात्मा पुनर्योगवान् तथा उपधानवान् भवति २९ तथा प्रतनुवादी स्वल्पभाषी पुनरुपशान्त कषायाग्न्यभावेन शीतीभूत

मूल

इते जोगव उवहाणव २७। पियधम्मे दढधम्मे वज्जभीरू हिएसए। एय जोग समाउत्तो तेउ लेसतु परिणमे २८।
पयणु कोह माणेय माया लोभेय पयणुए। पसतचित्ते दतप्पा जोगव उवहाणव २९। तहा पयणु वाईय उवसतेजि

भाषा

वत सिद्धांत भण वाभणो तपवत २७ प्रियछे धर्म जेहने व्रतादिनो निर्वाहणहार पाप थकी बिहिछे हितनो वाछक मोक्षाभिलाषी एहवे पूर्वल्ये योगे सहित तेजो लेस्या परिणमे २८ पातला थोडा क्रोधमान जेहने मायाअने लोभ पातला थोडाछे जेहने रागद्वेषको उपशम्यो चित्त दम्योछे आत्मा जिणे मनोयोग ठामिछे जेहना सिद्धांतना तप करछे २९ तथावली थोडा वचननो बोलणहार शात दात इन्द्रि ५ जीत्या जिणे एहवे पूर्वल्ये योगे

पुनर्यो जितेन्द्रिय एतैर्योगैः समायुक्त एतद्योगसमायुक्तः पद्मलेश्यावान् भवतीत्यर्थः३० अथ शुक्ल लेश्या लक्षणमाह [अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता धम्मसुक्काणि झायए पसतचित्ते दंतप्पासमिए गुत्ते य गुत्तिसु ३२] [सरागे वीयरागे वा उवसंते जिइंदिए एयजोग समाउत्ते सुक्कलेसंतु परिणमे ३१] अनयोरर्थः एतद्योग समायुक्तः प्राणी शुक्ललेश्यां परिणमेत् एतादृशः कीदृश· य आर्त्तध्यान रौद्रध्यान वर्जयित्वा धर्म्म शुक्ले धर्म्म ध्यान शुक्लध्याने ध्यायेत् पुनर्यः प्रशान्तचित्तो दान्तात्मा च भवेत् पुनः समित पञ्चसमितियुक्तःतिसृषु गुप्तिषु गुप्तो भवेत्३१ च पुन· सरागोऽक्षीणानुपशान्तकषायो वीतरागस्ततोन्य उपशान्तो जितेन्द्रिय· एतैर्लक्षणैर्लक्षितः शुक्ललेश्यां भजते इत्यर्थः ३२ इहहि प्रशस्तलेश्यानां तेजः पद्म शुक्लानां विशेषणे पुनरुक्ति दूषणं न ज्ञेयं तासां लेश्यानां हि तेजः पद्म शुक्लानां उत्तरोत्तर विशुद्धा शुभाशुभतरा शुभतमा परिणामाः भावनीयाः लेश्यानां लक्षणेषु दृष्टांतः जबूवृक्षं निरीक्ष्य षट् पुरुषाणां परिणाम विचारणेन भावनीय· तथाहि एकस्मिन् मार्गे षट्पुरुषाः क्षुधातुरैर्मार्गैचैकः फलितो जम्बूवृक्षो दृष्ट· तदा एकेन कृष्ण लेश्यावता प्रोक्तं एनं वृक्षं मूलात् छित्वा एनं प्रपात्य अस्य फलानि अद्म· १ तदा द्वितीयेन नीललेश्यावताचोक्तं किमर्थं मूलात् छिद्यते एकामहत्तमाः

इंदिए। एय जोग समाउत्तो पम्हलेसंतु परिणमे ३०। अट्ट रुद्दाणि वज्जित्ता धम्म सुक्काइं झायए। पसंतचित्ते दंतप्पा समिए गुत्तेय गुत्तिसु ३१॥ सरागे वीयरागेवा उवसंते जिइंदिए। एय जोग समाउत्तो सुक्क लेसंतु परिणमे ३२॥

सहित ते पद्मलेश्याने परिणामे परिणमे ३० आर्त्तध्यान रौद्रध्यान वर्जीने धर्म्मध्यान अने शुक्लध्यान चित्ते ध्यावे रागादिकथी उपशम्यो चित्त जेणे दम्योछे आत्माजेणे सुमति पांचे समित गुप्त तीणे गुप्तछे ३१ सराग संयमवंत वा अथवा रागरहित उपशम्यां कर्म एहवो पांचइंद्रीजीत्याजेणे एपूंठिल्या योग

शाखाछेदनीया तस्या फलानि भक्ष्यामि कुम २ तदा तृतीय कापोतलेश्यावान् प्राह किमर्थ भो अस्य वृक्षस्य महाशाखाछिद्यते एकाया प्रतिशाखाया अपि फलै सर्वेषा तृप्ति स्यात् तस्मादेकालघ्वी प्रतिशाखैवच्छेदनीया २ ततश्चतुर्थस्तेजोलेश्यावान् अवादीत् किमर्थ प्रतिशाखाया च्छेद वह्वयोगुच्छा सन्ति तेन गुच्छा एव पात्यास्तैरेव तृप्तिभविष्यति ४ तत पञ्चमेन पद्म लेश्यावताचैवमूचे किमर्थ भोगुच्छा पात्यन्ते गुच्छेषु सुफलान्यपि फलानि भवन्ति तस्मात्पक्वानेवफलानि भक्षोता भद्र ५ तत षष्ट शुक्ललेश्यावान् गुमानाह किमर्थ भो वृक्षात् फलानि पात्यन्ते बहून्येवाध एव पतितानि सन्ति ते रेवक्षुधाया उपशमोभावोति ६एव लेश्योदाहरण ज्ञेय ३२ अथ लेश्याना स्थानानाह [असखिज्जाणोसप्पिणीण उसप्पिणोणजेसमया सखाइयालोगालेसाणहवन्तिठाणाइ ३३) लेश्याना सर्वसामस्त्यन्ति स्थानानि भवन्ति स्थानानि प्रकर्षापकर्षकृतानि अशुभाना लेश्याना सक्लेशरूपाणि शुभाना लेश्याना विशुद्धरूपाणि भाजनानोत्यर्थ लेश्याना कियन्ति स्थानानि भवन्ति यथा असख्येया उत्सर्पिण्योवर्द्धमानभावरूपास्तथा पुनरसख्येया अवसर्पिण्योहीयमान भावरूपा तासा उत्सर्पिणोना यावन्त समयाभवन्ति पुनर्यावन्तोऽसख्येयालोकाकाश प्रदेशा भवन्ति तावन्ति लेश्याना स्थानानि आरुहन्ति आरुहन्ति पतन्ति पतन्ति च शुभानि अशुभानि निर्मलानिकलुषाणि च स्थानानि भवन्तीत्यर्थ ३३ अथ लेश्यानास्थिति माह

मूल असखिज्जाणो सप्पिणीण उसप्पिणीण जेसमया। सखाईया लोगा लेसाण हवति ठाणाइ ३३॥ मुहुत्तर्द्धतु जहन्ना

भाषा सहित तद्भलेश्युने परिणामे परिणमे ३२ असख्याता जे उत्सर्पिणी जिहा २ समे २ चढता २ भाव तथा असख्यातोजे अवसर्पिणी जीहा समे २ पडता २ भाव हुइ तेहना समयने विखे असख्याता लोकाकाशना जे प्रदेश तेतलास्थानक लेश्यानाछे चढता पडता सुभ असुभादि जाणवा ३३

[मुहुत्तद्धं तु जहन्नातित्तीसंसागरामुहुत्तहिया उक्कोसाहोइठिई नायव्वाकिन्हले साए ३४] कृष्णलेश्यायाइति स्थितिर्ज्ञातव्या जघनरामुहूर्त्तार्द्धं कोचिदं मैन्यु नं घटिकार्द्धयं अन्तर्मूहूर्त्तं एव कृष्णलेश्यायास्थितिर्भवति तथा उत्कृष्टास्थिति स्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि मुहूर्त्ताधिकानि अथ सम्प्रदायात् मुहूर्त्तशब्देन अन्तर्मूहूर्त्तं ग्टह्यते त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मूहूर्त्ताधिकानि परमास्थितिः कृष्णलेश्यायाभवन्ति ३४ (मुहुत्तद्धं तु जहन्नादसउदही पलियमसंखभागमब्भहिया उक्कोसाहोइठिई नायव्वानीललेसाए ३५] नीललेश्याया जघनंस्तोककालं चेत् स्थिति र्भवति तदा अन्तर्मूहूर्त्तं एव उत्कृष्टास्थितिश्चदशसागरोपमानि पल्योपमासंख्येयभागाधिकानि नीलायास्थितिर्भवतीति जघनरावुत्कृष्टास्थितिर्ज्ञातव्या इयं स्थितिश्च पञ्चम पृथिव्याः धूमप्रभाया उपरितन प्रस्तटमाश्रित्योक्ता ३५ (मुहुत्तद्धन्तुजहन्नातिन्नुदहीपलियमसंखभागमब्भहिया उक्कोसाहोइठिई नायव्वाकाउलेसाए ३६) कापोत लेश्यायाः इयं स्थिति र्ज्ञातव्या जघनरास्थिति स्तुकापोतलेश्यायाः अन्तर्मुहूर्त्तं भवति तथा पुन· कापोतलेश्यायाः त्रीणिसागरोपमाणि पल्योपमासंख्येय भागाधिकानुत्कृष्टास्थितिर्भवतीति ज्ञातव्याइति तृतीयनरकपृथिव्यावालुकाया अपेक्षयाउक्तास्ति ३६ [मुहुत्तद्धंन्तु जहन्नादोउदही पलियमसंख

सूत्र

तित्तीसं सागरा मुहुत्तहिया। उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा किन्ह लेसाए ३४ ॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्ना दस उदही पलीय मसंखभागमब्भहिया। उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा नीललेसाए ३५॥ मुहुत्तद्धं तु जहन्नातिन्नुदही पलिय मसंखभाग

भाषा

अंतर्मुहूर्त्त वे घडी माठेरी जघन्य थिति तेत्रीस सागरोपम अंत मुहूर्त्त अधिको मुहूर्त्त नोएकदेश लीजे उत्कृष्टी थिति हुई तेजाणवी कृष्ण लेश्यानी ३४ अंतर्मूहूर्त्त जघन्य थिति दस सागरोपम अने पल्योपमने असख्यातमे भाग उत्कृष्टी थिति हुई ते जाणवी नीललेश्यानी ३५ अंतर्मूहूर्त्त

भागगमभहियाउक्कोसाहोइठिइ नायव्वाते उलेसाए ३७ तेजो लेश्यायाश्चइय स्थिति र्ज्ञातव्याजघन्या तु अन्तर्मुहूर्त्तं उत्कृष्टाचतेजो लेश्याया द्वौ उद धोदे सागरोपमेपल्योपमासंख्येयभागाधिके परमास्थितिर्ज्ञातव्या इय तु ईशानदेवलोकापेक्षयाप्रोक्तास्ति ३७ [मुहुत्तद्ध तु जहन्नादसउदहीहोन्ति मुहुत्त मभहिया उक्कोसाहोइठिइ नायव्वापम्हलेसाए ३८] पद्मलेश्यायाश्चइय स्थितिर्ज्ञातव्या जघन्या तु अन्तर्मुहूर्त्तं एव स्थितिर्भवति उत्कृष्टा तु दशसागरोप मानि अन्तर्मुहूर्त्ताधिकानि परमास्थितिरेतावतीपद्मलेश्यायाभवति इय ब्रह्म देवलोकापेक्षयाउक्तास्ति १८ मुहुत्तद्ध तु जहन्नातित्तीससागरामुहुत्तहिया उक्कोसाहोइठिइ नायव्वासुक्कलेसाए ३९] शुक्ललेश्यायाश्चइय स्थितिर्ज्ञातव्या जघन्यास्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं शुक्ललेश्यायास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि मुहूर्त्ताधिकानि

सूत्र

मब्भहिया। उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा काउ लेसाए ३६॥ मुहुत्तद्ध तुजहन्ना दुन्नुदही पलिय मसखभाग मब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा तेउ लेसाए ३७॥ मुहुद्ध तु जहन्ना दस उदही हु ति मुहुत्त मब्भहिया। उक्कोसा होइ
ठिई नायव्वा पम्ह लेसाए ३८॥ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना तित्तीस सागरा मुहुत्तहिया। उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा सुक्क

भाषा

जघन्य थिति तीन सागरोपम पल्योपमने असंख्यातमे भागि अधिक ईशान देवलोकनी अपेक्षाये उत्कृष्टी थिति हुइ तेजाणवो कापोत लेश्यानी ३६
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थिति बे सागरोपमने असंख्यातमे भागि अधिक ईशान देव लोकनी अपेक्षाइ उत्कृष्टी थिति हुइ तेजाणवो तेजो लेश्यानी ३७
अंतर्मुहूर्त्त जघन्यथिति दस सागरोपमहोइ अंतर्मुहूर्त्त अधिक पांचमा देवलोकनी अपेक्षाइ उत्कृष्टी थिति हुइ तेजाणवी पद्मलेश्यानी ३८
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थिति तेत्रीस सागरोपम मुहूर्त्ते अधिका सर्वार्थ सिद्धनि अपेक्षाइ उत्कृष्टी थिति हुइ ते जाणवी शुक्ल लेश्यानी ३९ एह खलु

उत्कृष्टास्थितिर्भवति ३९ [एसाखलुलेसाण ओहेण ठिई उवन्नियाहोइ च उसुविगईस एत्तो लेसाणठिई ओवोच्छामि ४०] एपालेश्यानां यथा अपिओघेन सामान्य प्रकारेण गति विवचां विनास्थितिर्वर्णिताभवति इतयतस्पुगतिपु लेश्यानां सर्वासांस्थिति वक्ष्यामि ४० [दसवास सहस्साइ काउएठिईजहन्नि याहोइतिन्नुदहीपलिओवममसंखभाग च उक्कोसा ४१] कापोतायाः कापोतलेश्यायाः दशवर्षसहस्राणि जघन्यिकास्थितिर्भवति प्रथमायां पृथिव्यांरत्न प्रभायां प्रथमप्रस्तरे अस्ति तत स्थानांहि जघन्यतोदशवर्षसहस्रायुष्कात् उत्कृष्टास्थितिस्तुकापोतलेश्यायाः त्रीणि सागरोपमाणि पल्योपमासंख्येयभाग युक्तानि इय तु स्थिति स्तृतीय पृथिव्या. वालुकप्रभायाउपरितनप्रस्तटनारकाणां एतावतीस्थितिरस्तीति४१ (तिन्नुदहीपलिओवम मसखभाग जहन्ननील ठिईदसउदहीपलिओवम मसखभागच उक्कोसा ४२) नीलायाः जघन्यास्थितिः त्रीणि सागरोवमाइ पल्योपमासंख्येय भागयुक्तानि इयतीजघन्यास्थिति स्तृतीयायां वालुकप्रभायाः पृथिव्याः अपिचयाज्ञेया पुनर्नीललेश्यायाच दससागरोपमाणि पल्योपमासंख्येयभागयुक्तानि उत्कृष्टास्थिति र्ज्ञेया इयमपि

लेसाए ३९॥ एसा खलु लेसाणंओहेणं ठिईओ वन्नियाहोइ। चउसुवि गईसुइत्तो लेसाणं ठिईओ वोच्छामि ४०॥दस वास सहस्साइं काउए ठिईजहन्नियाहोइ। तिन्नु दही पलिओवममसखभागं च उक्कोसा॥४१॥ तिन्न, दही पलिओवम

निये लेश्यानी सामान्य प्रकारे थिति वर्णवोछे च्यार गतने विषे एतला थकी लेश्यानी थोतो थोतकरेसुं ४० दसहज्जार वरसनी कापोत लेश्यानी स्थिति जघन्य रतन प्रभा पृथिवी पहेले पाथडे मध्यम वोजे तीन सागरोपम अने पल्योपमनो असंख्यातमो भाग अधिक उत्कृष्टी थिति कापोत लेश्यानी वोजो पृथिवोना उपरि स्थापाथडानी अपेक्षाइ ४१ तीन सागरोपम अने पल्योपमनो असंख्यातमो भाग अधिक नीललेश्यानी

पञ्चम्याधूमप्रभाया पृथिव्या उपरितनप्रस्तटापेक्षयाज्ञेया४२ (दसउदहीपलिओवमम सखभाग जहन्निया होइ तेत्तीससागराइ उक्कोसाहोइकिण्हाए४३) कृष्णाया कृष्णलेश्याया दशसागरोपमाणि पल्योपमासंख्येय भागयुक्तानि जघन्यिकास्थितिर्भवति इय तु पञ्चम्या धूमप्रभाया नरकपृथिव्या अपेक्षया ज्ञेया कृष्णाया पुनरुत्कृष्टास्थिति त्रय स्त्रिंशत् सागरोपमानि इय मपि उत्कृष्टास्थिति कृष्णलेश्यायास्तु सप्तम्यास्तमतम प्रभाया नरकपृथिव्याऽ पेक्षयाज्ञेया ४३ (एसानेरइयाण लेसाणठिई उवखियाहोइ तेणपर वुच्छामितिरियमणुयाणदेवाण ४४) एषानैरयिकाणा नरकवासिना जीवाना लेश्यानां जघन्योत्कृष्टभेदेनस्थितिर्वर्णिताभवति तेणपरमिति तत पर तिर्यग्मनुष्याणांतिरश्चा तथा मनुष्याणां च देवानां च स्थिति वक्ष्यामि ४४ [अन्तो

मसखभागीय जहन्ननीलठिई। दस उदहीपलिओवममसखभाग उक्कोसा४२॥ दसउदही पलिओवममसखभागजह न्निया होइ। तित्तीस सागराओ उक्कोसा होइ किन्हाए ४३॥ एसा नेरइयाण लेसाण ठिईउ वन्निया होइ। तेण पर वोच्छामी तिरिय मणुयाण देवाण ४४। अतोमुहुत्तमद्धा लेसाण ठिई जहि २ जाओ। तिरियाण नराण च

जघन्य थिति त्रीजी पृथिवीनी अपेक्षाइ दससागरोपम अने पल्योपमनो असख्यातमो भाग अधिक उत्कृष्टी थिति नील लेस्यानी पांचमी पृथिवीनी उपरि आथायडानी अपेक्षा ४२ दस सागरोपम अने पल्योपमनो असख्यातमोभाग जघन्य थितिहुइ कृष्णलेस्यानी पांचमी पृथिवीनी अपेक्षाइ तेत्रीस सागरोपम उत्कृष्टी स्थितिहुइ कृष्णलेस्यानी पृथिवी सातमीनी अपेक्षाइ ४३ एनारकी समस्तने लेस्यानी स्थिति वर्णवीछे तिवार पछीइ कहोस्यु तियचनी १ मनुष्यनो २ देवतानी ३लेस्यानी थिति ४४ अ तर्मुहुर्त काल लेस्यानी स्थित जघन्यादि पृथिव्यादिकने जेहने २ जे कृष्णादि तियचने

जहिं जहिं जाओतिरियाणनराणञ्च वज्जिताकेवलं लेसा ४५] यस्मिन् यस्मिन् पृथ्वीकायादौतिरिश्चां यस्मिन्२ स्थाने समूर्छिमनराणाञ्च यास्तु कृष्णाद्याः लेश्यावर्त्तन्ते तासांलेश्यानां जघन्याउत्कृष्टा च स्थितिरन्तर्मुहूर्त्ताद्धाज्ञेया अन्तर्मुहूर्त्तं अद्धाकालो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्त्ताद्धा जघन्यापि अन्तर्मुहूर्त्तकालं स्थितिः उत्कृष्टापि अन्तर्मुहूर्त्तकालमेव स्थितिं रक्षि किं कृत्वा केवलाशुक्लां लेश्यांवर्जयित्वा तत्र शुक्ललेश्यायाः अभावोवर्त्तते अन्याः कृष्णाद्याः क्वचित् २ काश्चित् २ लेश्यासम्भवन्तीति भावः तत्र पृथिव्यप् वनस्पतीनां कृष्णादि लेश्या चतुष्टयं तेजोवायुविकलसंमूर्छिमतिर्यग्मनुष्य नारकाणां प्रथमलेश्यात्रयं भवतीत्यर्थः ४५ [मुहुत्तद्धं तु जहन्ना उक्कोसाहोइ पुव्वकोडीओ नवहिंवरसेहिंऊणा नायव्वासुक्कलेसाए ४६] शुक्ललेश्याया जघन्यास्थितिर्मुहूर्त्ताद्धाइति अन्तर्मुहूर्त्तकालं स्थितिर्ज्ञातव्या तथा पुनः शुक्ललेश्याया उत्कृष्टास्थितिस्तु पूर्वकोटी नववर्षैन्यूनाज्ञातव्या इह यद्यपि कश्चिदष्ट वार्षिकोपि पूर्वकोट्यायुर्व्रतपरिणाममाप्नोति तथापि नैतावद्वयस्कस्य नववर्षपर्यायादर्वाक् शुक्ललेश्या सम्भवति अतोनववर्षोना पूर्वकोटिरुक्ता४६ [एसातिरिय नराणं लेसाणंठिईउवन्नियाहोइ तेण परं वुच्छामिलेसाणंठिईउदेवाणं ४७] एषास्थिति

वज्जित्ता केवलं लेसं ४५। मुहुत्तद्धं तु जहन्ना उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ। नवहिं वरिसेहिं ऊणा नायव्वा सुक्कलेसाए ४६। एसा तिरिय नराणं लेसाणं ठिईओ वन्निया होइ। तेण परं वोच्छामी लेसाणं ठिईउ देवाणं ४७।

समूर्छिम मनुष्यने वर्जी टाली केवल शुक्ललेस्या ४५ अंतर्मूहूर्त्त जघन्य स्थिति उत्कृष्टी हुइ स्थिति पूर्वकोड १ ते नवेवरसे ९ उणाः नव वरसउणी तेजाणवी शुक्ललेस्यानीथिति ४६ तिर्यंचनी मनुष्यनी लेस्यानी थिति विस्तर पणे वर्णवीछे तिवार पछीहुं कहिस्युं लेस्यानी थिति देवतानी ४७

स्थिरयानराणां च वर्णिताभवति तथेति पञ्चमोस्थाने प्राक्तत्वात् ततोया तत पर देवाना लेश्याना स्थिति वक्ष्यामि ४७ [दसवास सहस्साइ किन्हाए ठिई जहन्निया होइ पलियमसंखिज्जइमो उक्कोसा होइ किन्हाए ४८] कृष्णाया कृष्णलेश्यायादशवर्षसहस्राणि जघन्यकास्थितिर्भवति पुन कृष्णलेश्याया पल्योपमासंख्येयतमोभाग उत्कृष्टास्थितिर्भवति इय च द्विविधास्थितिर्भवति भुवनपतिव्यन्तराणा एतावदायुषा अपेक्षया उक्तास्ति ४८ [जाकिन्हाएठिइखलु उक्कोसासाउसमयमभ्भहिया जहन्नेण नोलाए पलियमसंख च उक्कोसा ४९) या कृष्णाया कृष्णलेश्याया खलु इति निश्चयेन उत्कृष्टास्थिति कथिता एष स्थिति समयाभ्यधिकासमयेन एकेन अभ्यधिकासमयाभ्यधिका जघनेन ज्ञेया च पुनर्नीलाया पल्योपमासंख्येयभाग उत्कृष्टास्थितिभवति पर अयमेव विशेष अय य पल्योपमासंख्येयोभागोवर्त्तते स बृहत्तरोभागोज्ञेय ४९ [जानीलाएठि इखलु उक्कोसासाउ समयमभ्भहिया जहन्नेण काउए पलियमसंखं च उक्कोसा ५] खलु निश्चयेनयानीलायाउत्कृष्टास्थिति कथा सा पुन समयाभ्यधिकाजघनेनकापोताया कापोत

सूत्र

दस वास सहस्साइ किन्हाए ठिई जहन्निया होइ। पलिय मसंखिज्जइमो उक्कोसा होइ किन्हाए ४८। जाकिन्हाए ठिई खलु उक्कोसा साउ समय मभ्भहिया। जहन्नेण नीलाए पलिय मसंख च उक्कोसा ४९। जा नीलाए ठिई खलु

भाषा

दसहजार वरस कृष्णलेस्यानी थिति जघन्य छे व्यन्तर भवन पतिनी अपेक्षाइ पल्योपमनो असंख्यातमो भाग उत्कृष्टो हुवे स्थिति कृष्णलेस्यानी ४८ कृष्णलेस्यानी जे उत्कृष्टी स्थिति तिथी उत्कृष्टी तेहथी एक समे अधिक एतली जघन्य नील लेस्याना थिति पल्योपमनो असंख्यातमो भाग नील लेस्यानी उत्कृष्टी पहेलानी अपेक्षा ४९ जे नीललेस्यानी थिति तिथी उत्कृष्टी ते समय एक अधिक जघन्य कापोत लेस्यानी स्थिति पल्योपमनो

लेश्यायाःस्थिति ज्ञेया च पुनः कापोतलेश्यायाः पल्योपमासंख्येयोभाग उत्कृष्टा स्थितिर्भवति पर अयमपि पल्योपमासंख्येयो भागोहृहत्त भागोज्ञेयः इत्यनेन भवनपतिव्यन्तराणां एवतावदायुषां लेश्यात्रयं दर्शितं ५० [तेण परं वुच्छामि तेजलेसाजहासुरगणाण भुवणवइवाणमन्तर जोइसवेमाणियाणच ५१] ततः परं भुवनपति वाणमन्तरजोइसवेमाणियाण इति भुवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाना सुरगणानां यथा येन प्रकारेण तेजोलेश्याजघनरीत् कृष्टस्थित्याभवति तथाह वच्यामि ५१ [पलिओवमज्जहन्ना उक्कोसासागराउदोन्निहिया पलियमसंखिज्जेण होइ भागेण तेउए ५२] तेजोलेश्याया॰ जघनराःस्थितिः पल्योपम भवति उत्कृष्टास्थितिस्तु द्विसागरोपमे पल्योपमासंख्येय भागयुक्ते इय परमास्थिति स्तेजोलेश्यायाभवति

सूत्र

उक्कोसा साउ समय मब्भहिया। जहन्नेणं काउए पलिय मसंखेच उक्कोसा ५०। तेण परं वोच्छामी तेउ लेसा जहा सुर गणाणं। भवणवइ वाणमंतर जो इस वेमाणिवाणंच ५१॥ पलिओवमं जहन्नं उक्कोसा सागराओ दुन्निहिया पलिय मसंखिज्जेणं होइ भागेण तेउए ५२ ॥ दसवास सहस्साइं तेउए ठिई जहन्निया होइ। दुन्नुदही पलिओवम

भाषा

असंख्यातमो भाग उत्कृष्टी कापोत लेश्यानो पहिली थकी भाग मोटो ५० एतलानंतरं कहे छु तेजो लेश्या जिम देवताना समूहनेछे तिम भवन पतिने जघनत्र वरस सहस्र १० उत्कृष्टी सागर १ अधिक व्यंतरने जघनत्र वरस सहस्र १० उत्कृष्टपल्योपम ज्योतिषीने जघनत्र पल्योपमनो भाग आठमो उत्कृष्टपल्य १ वरस लाख १ वैमानि कनो ५१ जघनत्र पल्योपम उत्कृष्ट सागर २ अधिक तेजो लेश्यानो थिति पहेले बिजे देवलोके साधिक तेकेतलांपल्योपमने असख्यातमे भागे अधिक तेजो लेश्यानो ५२ दसहजार वरस तेजो लेश्यानो थिति जघनत्रतः होइ भवनपति

इय च सामान्योपक्रमेपि वैमानि कनिकायविषय तदा चे या तत्र सौधर्मे ग्रानदेवानां जघन्योत्कृष्टाभ्या एतावदायुर्वर्त्तते उपलक्षणाच्चे यनिकायामपि तेजोलेश्यायास्थितिर्ज्ञे या ५२ [दसवाससहस्साइ तेजएठिई़जो जहन्निया होइ दोसुदहीपलिओवम असंखभागंच उक्कोसा ५३] तेजोलेश्याया स्थिति दशवर्ष सहस्राणि जघन्याभवति तथा पुनर्द्वेसागरोपमे पल्योपमासंख्येय भागयुक्ते उत्कृष्टास्थिति स्तेजोलेश्यायाभवति तत्र व्यन्तरभवनपतिदेवान् आश्रित्यतेजो लेश्याया स्थितिर्दशवर्ष सहस्राण्युक्ता पुनर्द्वे सागरोपमेपल्योपमासंख्येय भागयुक्ते इयत्तु द्वितीय देवलोका पेक्षया तेजो लेश्याया उत्कृष्टा स्थितिरुक्तेति तात्पर्य ५३ [जातेजएठिई़खलुउक्कोसासाउसमयमब्भहियाजहन्नेणपम्हाएदसउमुहुत्ताहियाइउक्कोसा५४] या तेजोलेश्याया खलुनिश्चयेन उत्कृष्टास्थितिर्वर्त्तते सातुसाएवस्थिति समयाभ्यधिका पद्मलेश्याया स्थितिर्ज्ञेयाइयत्तुपद्मलेश्याया जघन्य स्थितिस्तृतीय सनत्कुमार देवलोकापेक्षयाभवति उत्कृष्टातुपद्मलेश्याया दशसागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताधिकानि स्थितिर्भवति इयत्पद्मलेश्याया स्थितिपंचमब्रह्मदेवलोका पेक्षयाज्ञे या५४(जापम्हाएठिई़

असंख भाग च उक्कोसा ५३ ॥ जा तेऊए ठिई़ खलु उक्कोसा साउ समय मब्भहिया। जहन्नेण पम्हाए दसउ मुहुत्ता हियाइ उक्कोसा ५४ ॥ जा पम्हाए ठिई़ खलु उक्कोसा साउ समय मब्भहिया। जहन्नेण सुक्काए तित्तीस मुहुत्त मब्भ

मूल

अ तरमा ग्री सागरोपम २ अने पल्योपमनो असंख्यातमो भाग उत्कृष्टी जे तेजो लेश्यानी थिति बीजा देवलोकनी अपेक्षा ५३ तेजो लेश्यानी थिति निश्चे सु उत्कृष्टी तेह समय एक अधिक जघन्य पद्मलेश्यानी थिति सागरोपम १० अंतर्मुहूर्त्त अधिक उत्कृष्टी स्थिति पद्मलेश्यानी ब्रह्म देवलोकनी अपेक्षाइ ५४ जे पद्मलेश्यानी थिति निश्चे सु उत्कृष्टी तेह समय अधिक जाणवी जघन्य शुक्ललेश्यानी थिति छठा देवलोकनी अपेक्षाइ

भाषा

खलु उक्कोसासाउ समय मब्भहिया जहन्नेण सुक्काए तेत्तीसं मुहुत्त मब्भहिया ५५] या पद्मलेश्यायाः खलु निश्चयेन उत्कृष्टा स्थितिर्वर्त्तते सा एवस्थिति· एक समयाभ्यधिका जघन्येन शुक्लायास्थितिर्भवति इय शुक्ललेश्यायाः स्थितिः षष्टस्यलांतक देवलोकस्यापेक्षया उक्ता अथः पुनः शुक्ललेश्याया उत्कृष्टा त्रय स्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि स्थितिर्भवति इयं स्थिति स्तुपचानुत्तरविमानापेक्षयाज्ञेया ५५ अथ लेश्यानां गतिद्वारमाह [किन्हा नीलाकाऊ तिण्णिविएयाओ अहमले साओएयाहिंतिहिंविजीवो दुग्गइ उववज्जई५६] कृष्णानीलाकापोता एतांतिस्रोपिलेश्याः अधमाज्ञेयाः एताभिस्ति सृभिर्जीवोदुर्गतिं उपपद्यते ५६ [ते उपम्हासुक्का तिण्णिविएयाओधम्मलेसाओ एयाहितिहिंवि जीवोसुग्गइ उववज्जई ५७] तेजस्याद्याः तेजः पद्म शुक्ला एतास्तिस्रोपि लेश्याधर्म्माधर्मनिबन्धिन्यो ज्ञेयाः एताभिस्तिसृभिर्लेश्याभिर्जीवः सद्गतिं उपपद्यते ५७ [लेसाहिंसव्वाहिं पढमे समयमि परिणयाहिं तु नहुकस्सविउववाओ पर भवे अत्थि जीवस्स ५८] (लेसाहिं सव्वाहिं चरमेसमयंमि० ५९) सर्वाभिर्लेश्याभिः कृष्णनीलकापोत तेजः पद्मशुक्लाभिः षड्भिः

सूत्र

हिया ५५ ॥ किण्हा नीला काऊ तिन्निवि एयाओ अहम लेसाओ। एयाहिं तिहिंवि जीवो दुग्गइं उववज्जई ५६ ॥
तेऊ पम्हा सुक्का तिन्निवि एयाओ धम्म लेसाओ। एयाहिं तिहिंवि जीवो सुग्गइं उववज्जई ५७ ॥ लेसाहिं सव्वाहिं

भाषा

तेतीस सागर मुहुर्त्त अंतर्मूहूर्त्त अधिक उत्कृष्टी शुक्ललेश्यानी अनुत्तर विमाननी अपेक्षा ५५ हवे लेश्यानी गत कहेछे कृष्णलेश्या नील कापोत लेश्या त्रिण एअधर्मरूप लेश्या महापाप आवि वा ना कारण भणी एतीन लेश्याइ जीव नरक तिर्यंच गतिरूपदुर्गती ऊपजे ५६ तेज पद्म शुक्ल लेश्या तीनए धर्मलेश्या कहे नीर्मल धर्मना कारण भणी एत्रिहुं लेश्या जीव मनुष्य देवलोक रूप सद्गतिं भलि उपजे ५७ लेश्या कृष्णादिक सर्व पडिवर्जिवा आश्री

प्रथमसमये तत्प्रतिपत्ति कालापेक्षया परिणताभिराभरूपत्व प्राप्ताभि सतीभि परभवेकस्यापि जीवस्य उपपातो नास्ति न भवतीत्यर्थ उपपत्तिर्नभवति इत्यनेन प्रथमसमये लेश्यासु उत्पयासु परभवे जीवोनोत्पद्यते ५८ सर्वाभिर्लेश्याभिश्चरमसमये ऽतसमये परिणताभि आत्मरूपतामापन्नाभि सतीभि परभवेकस्यापि जीवस्य उपपातोनास्तीतिगाथाद्वयार्थं ५९ अथकदाप्तस्यद्यंतदाह(अन्तोमुहुत्तमि०६०)लेश्याभि परिणताभि सतीभि शुभाशुभाभि षड्भि सतीभि अन्तर्मुहूर्ते गतेसतिअन्तर्मुहूर्ते चशेषेचसतिजीवा परलोक परभवगच्छन्तिइत्यनेनजीवस्य मरणकालेआगामिभवेलेश्याअन्तर्मुहूर्ते यावत्पूर्वमप्य भवति तथा पुनर्जीवस्य उत्पत्तिकालेऽतीतभवलेश्या अन्तर्मुहूर्ते यावदप्यभवति अन्यथा नराणांतिर्यांचदेवत्वे नारकत्वे चउत्पद्यमानानां मृत्युकाले अन्तर्मुहूर्ते उत्तरभवलेश्या कथ सम्भवन्ति तथा देवाना नारकाणा च च्यवनादनन्तर नरतिर्यक्षु उत्पन्नाना प्रागभवेलेश्या अन्तर्मुहूर्ते कथ सम्भवन्ति तस्मादन्तर्मुहूर्तावशेष आयुषि परभवलेश्यापरिणामो भवत्येव यदुक्त आगमे तिरिनर आगामिभवेलेसाए अइ गयसुरानिरया पुव्वभवलेसमेये अन्तमुहुत्ते

पढमे समयम्मि परिणयाहितु । नहु कस्सइ उववाओ परभवे अत्थि जीवस्स ५८ ॥ लेसाहि सव्वाहि चरिमे समयम्मि परिणयाहितु । नहु कस्सवि उववाओ परभवे अत्थि जीवस्स ॥ ५९ ॥ अंतोमुहुत्तमि गए अंतोमुहुत्त मि सेसएचेव ।

पहला समय विषे परिणमायेथी अतोइ जीवने प्रथम अर्पणेसमि लेशा आयो तिवे समये कोइ जीवने ऊपजवो नथी इह पर अनेरा भवने विषे मरोवो ■ भवि ऊआइ ५८ ऊपनेश्यादिक सर्व ६ लेश्याइ चरम समयने विषे परिणमी जीव पछेइ तेणी न थोइ काइने ससारी जीवने ऊपजियो पर अनेरा भवने विषे जीवने ५९ लेश्याने च तमूंहर्त्त मधे परिणम्ये थके तथा च तमूंहर्त्त थाकतेथके लेश्या रहो पाहूर परिणमोइ थाप्ये जीव

मरणमिन्ति, १ अतएव देवानां नारकाणां लेश्यायाः प्रागुत्तरभवान्तर्मुहूर्त्तद्वयसहितनिजायुःकालं यावत् स्थिति सत्वमुक्ता ६० तम्हा एयासिं लेसाणं अणुभावे ... सम्झिहीसुराह (तम्हाएयासिंलेसाणं अणुभागे वियाणिया अप्पसत्थाओवज्जित्ता पसत्थाओ अहिट्ठि एत्तिबेमि १ मुनिस्तस्मात् कारणात् अप्रशस्तालेश्या दुर्गतिकारणं प्रशस्ताः लेश्याः सद्गति हेतोः सर्वासांप्रशस्तानां लेश्यानां अनुभागान् रसान् विज्ञाय अप्रशस्तालेश्याः कृष्णानीलकापोताख्यास्ति स्रोवर्जयित्वाप्रशस्ताः तेजः पद्म शुक्लाख्यास्ति स्रोलेश्या प्रशस्ताधितिष्टेत भाव प्रतिपत्त्या आश्रयेत् इति सुधर्मा स्वामीजम्बूस्वामिनं प्राह हे जम्बूस्वामिन् अहं श्रीवीरवाक्यादिति ब्रवीमि ६१ इति श्रीमदुत्तराध्यन सूत्रार्थदीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां चतुस्त्रिंशमध्ययनं संपूर्णं ३४ अथ पञ्चत्रिंशमध्ययनं प्रारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अप्रशस्तालेश्यात्याज्याः प्रशस्तालेश्याग्राह्याः इत्युक्तं अग्रेतनेऽध्ययने च भिक्षूणां गुणा उच्यन्ते प्रशस्तालेश्याहि गुणवतांभिक्षूणां एव सम्भवन्ति इति पूर्वापरयोः सम्बन्धः [सुणेहमेएगग्गमणे मग्गं बुद्धेहि देसियं जमायरन्तोभिक्खू दुक्खाणं

सूत्र

लेसाहिं परिणयाहिं जीवागच्छंति परलोयं ६०॥ तम्हा एयासिं लेसाणं अणुभावे वियाणिया। अप्पसत्थओवज्जित्ता पसत्थाओ अहिट्ठए मुणित्तिबेमि ६१ ॥ लेसज्झयणं सम्मत्तं ३४ ॥ सुणेहमे एगग्ग मणो मग्गं बुद्धेहिं देसियं। जमाय

भाषा

जाइ परलोकने गति नरकतीर्यंच मनुष्य देवगति ६० ते कारण थकी एभली पाडूई सर्वलेश्याना अनुभाग रसरूप जाणीने कृष्णादिक पाडूई वर्जीने प्रशस्त तेजो लेश्यादि भली ३ अधिष्टे भाव सुं आश्रै साधुयतीसु धर्मा स्वामी जंबूने कहे ६१ इति श्री लेश्याध्ययननोटव्बो सपूर्णम् ॥ ३४ ॥ सांभलो मुझ कहतां प्रति हे शिष्य एकाग्रचित्त थकी मोक्षमार्ग प्रते बुद्ध तीर्थंकरे देखाड्यो जे मार्ग आदरतुं साधु दुःखनं सर्वपापरूपने हणी क्षयकरे १

तथारोभवे १] हे शिष्या मम कथयतोपूय एकाग्रमनस सन्तस्त मार्गं शृणुत साधुमार्गं शृणु तत इति कि य मार्ग समाचरन् भिक्षुर्दुःखानां अन्त करोति कोदृश त मार्गं बुधैस्तीर्थकरैर्देशित विस्तरत्वेन प्रकाशित १ [गिहवास परिचज्ज पव्वज्जामस्सिओमुणी इमे सङ्गे वियाणिज्जाजेहिसज्जन्ति माणवा २] गृहवास परित्यज्य प्रव्रज्यां आश्रितोमुनि इमान् वक्ष्यमाणान् तान् सङ्गान् पुत्रकलत्रादीन् ससारहेतून् विजानीयात् तान् कान् सङ्गान् ये नरैर्बन्धने कृत्वा मानवा सज्यन्ते कर्मबन्धने कृत्वा ससारिणो बध्यन्ते इत्यर्थ २ (तहेव हिंस अलियं चोज्ज अबम्भसेवण इच्छाकाम च लोभ च स ञ्जओ परिवज्जए ३) ते के सङ्गा मुनिनात्याज्या इत्याह सयत एतान् सङ्गान् परिवर्जयेत् प्रथम हिंसा तथैव शब्द पदपूरणे पुनरलीक मृषाभाषण चौर तथा अब्रह्म सेवन मैथुनसेवन इच्छाकाम्यकाच्य काम भोग सुख लोभ परिग्रहरूप परिवर्जयेत् समन्तात् त्यजेत् ३ (मणोहर चित्तघर मल्लधूवेण वासि य सकवाडपण्डुरुल्लोय मणसावि नपत्थए ४) पुनर्मनोहर चित्त गृह विचित्र मन्दिर चित्रै सहित गृह वा चित्रगृह पुन कथभूत गृह माल्यधूप आसार मा...नि च धूपनानि माल्यधूपनानि तैर्वासित माल्यधूपवासित तत्र माल्यानि ग्रथित पुष्पाणि धूपनानि कृष्णागुर्वादीनि तै सुगन्धीकृत

रतो भिक्खू दुक्खाणंत कारो भवे १॥ गिहिवास परिच्चज्ज पवज्जा मस्सिए मुणी। इमे सगे वियाणिज्जा जेहि सज्जति

माणवा २॥ तहेवहिंस अलियं चोज्ज अब्बंभसेवण। इच्छा कामचलोभच संजओ परिवज्जए३॥ मणोहरचित्त घर मल्ल

परा। यास छांडीने दिक्षा लिये आश्रयो साधु इस एसग जाणो ते पुत्रपौत्रादि जिणे सग सिरुणात कर्म बधाइ मनुष्य अनेरापिण जीव २ तिमे ज जीवहिंसा मृषा बोलवो अदत्तलेवु विषयनु सेववु इच्छारूप काम लोभ ए सर्व परिग्रह सर्व साधु परिहरे ३ मनने हरे एहवो चित्राम सहित

मित्यर्थः पुन कीदृश चित्रमन्दिर सकपाट कपाटसहित पुन कीदृश पाण्डुरोल्लोच उज्वल चन्द्रोपक साधुरेतादृश गृहं मनसापि न प्रार्थयेत् अपि शब्दात् वचसा न प्रार्थयेत् ४ तादृशे तिष्ठतः साधो कोदोषस्तमाह (इन्द्रियाणिउ भिक्खुस्स तारिसम्मि उवस्सए दुक्कराइं निवारेउं कामरागविवड्ढणे ५) तादृशेमनोहरेचित्र माल्यधूपादि सहिते उपाश्रयेभिक्षो साधोः इन्द्रियाणि तु निवारयि तुं विषयेभ्यो व्यावर्त्तयितुं दुष्कराणि दुःशक्यानि पुनः कीदृशे मन्दिरे काम राग विवर्द्धने कामा इष्टेन्द्रिय विषयास्तेषु राग स्नेहस्त विवर्द्धयतीति काम राग विवर्द्धनं तस्मिन् ५ तदा कुत्र स्थातव्य मित्याह (सुसाणे सुन्नगारे वारुक्खमूलेव एगओ पयरिक्के परकडेवा वासन्तत्था भिरोयए ६) एकक: एकाको द्रव्यतोभावतश्च द्रव्यतः सहायरहितोभावतो रागादिरहितः परिवार युतोपि मनसाएकत्वं चिन्तयन् साधुस्तत्र तेषु स्थानेषु वासन्निवास रोचयेत् आत्मान रोचयेत् तेषु २ स्थानेषु इत्याह श्मशाने पुनः शून्यागारेवा शब्दार्थे तथा पुनर्वृक्षमूले पुनर्वाऽन्यत्र गृहादौपइरिक्केइति देशीभाषया एकान्ते स्त्री पशुपण्डकादिरहिते पुनः कीदृशे स्थाने परकृते

धूवेण वासियं। सकवाडं पंडुरुल्लोयं मणसावि न पत्थए ४॥ इंदियाणिउ भिक्खूस्सतारिसंमि उवस्सए। दुक्कराइं निवारेउ काम राग विवड्ढणे ५॥ सुसाणे सुन्न गारेवा रुक्खमूलेव एगगो। पइरिके पर कडे वा वासं तत्था भिरो

घर फुले सुगंध कोधी अगरे वास्यो कमाड सहित जीहां चंद्रूआ जलजलाट एहवो मने उपाश्रयादिन वांछे ४ जे भणी पांच इंद्री साधुनां वस पूर्वोक्त उपाश्रयने विखे दोहिलांनि वारवा ब्रह्मव्रत राखवा काम रागनोयधारणहारउपाश्रय ५ रहे श्मशाननेविखे अथवा सूना घरने विखे हचना मूलने विखे रागद्वेष रहित स्त्रियादिक रहित अलगो परी गृह आपणि अर्थे कोधी वसिवुं तीहां रोचवे करे एहवे थान कि साधु रहे ६ प्राशुक अचित्त भूमि विखे

परेरामार्थं छते ६ (फासुयमिषणावाहे इत्थो हि अणभिहुए तथा सद्धयएयासभिक्खू परमसञ्जए ७) भिक्षुभिंवाहत्ति परमस यत ससद्यविध स यम वान् साधुस्त्त्र पूर्वोक्तस्थानिश्मशानादोवास सकल्पयेत् कुर्यात् कथभूते स्थाने प्रासुके जोवरहिते अनावाधेस्वाध्यायान्तराय कारणरहिते पुन स्त्रीभिरनभि द्रुत अक्लतोपद्रवेस्यादि समोपवासरहिते इत्यर्थ ॥ [नसय गिहाइ कुव्विज्जानेव अन्ने हिकारए गिहकम्मसमारम्भे भूयाण दिस्सएवहो ८] साधु स्वय गृहाणि न कुर्यात् न च साधरनेररनाजनै कारयेत् साधुर्गृह न कुर्यात् न च कारयेत् तत्र कोहे ॥ स्वमाह यतो गृहकर्मं समारम्भे गृहस्य कार्म इष्टिका मृत्तिका खनन जलाद्यानयन काष्टादि निमित्त वृक्षादिच्छेदनादिकाश्च गृहकर्मं तस्य समारम्भो गृहकर्मं समारम्भ तत्र भूताना प्राणिना वधो दृश्यते ॥ [तसाण थावराण च सुहुमाण बायराणय तम्हागिह समारम्भे सजओ परिवज्जिए ८] केषां प्राणिनां वधो दृश्यते गृहकर्म समारम्भे त्रसानां द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियाणां तथा स्थावराणां पृथिव्यसे जो वायु वनस्पतीनां सूक्ष्माणां लघुतर शरीराणां अथवा सूक्ष्माणां चर्मचक्षुर गोच राणां बादराणां स्थूल शरीराणां वधो दृश्यते तस्मात् आरम्भस्य प्राणिवधहेतुत्वात् स यत साधुरारम्भ परिवर्जयेत् ८ अथाहारविधिमाह (तहेव भत्त

सूत्र

यए ६ ॥ फासुयम्मि अणाबाहे इत्थीहि अणभिद्दुए। तत्थ संकप्पए वास भिक्खू परम संजए ७ ॥ न सय गिहाइ कुव्वेज्जानेव अन्ने हि कारए। गिह कम्म समारम्भे भूयाणं दिस्सए वहो ८॥ तसाण थावराणच सुहुमाण बायराणय।

भाषा

भामापिरे अबाधा पोडा रहित स्त्रीजाति रहित एहवे स्थानके तोहा करे वसिवो तेहिज साधु मोटो मोक्षने अभिलाषी ७ स्वय पोते,नवा,घर न करे अनेरा पासें करावे नहीं ते अनुमोदे नही एणे माटी पाणी आदरे घरना कर्म आरम्भने विखे एकेन्द्रियादिभूत जीवनो वध हिंसा न करे ८ ते जीव-

पाणेसु पयणे पयावणेसुय पाणभूय दयट्ठाए न पए न पयावए १०) तथैव साधुर्भक्तपानेषु अन्नपानीयेषु पचनपाचने च त्रसाणां स्थावराणाञ्च वधत्वेन प्राणभूत दयार्थं त्रस थावराणां दयार्थं स्वयं अन्नपानीयं नप चेत्तथा साधुर्न अन्नपानीयं अन्येन पाचयेत् १० अन्नपानीय पचनपाचने जीव हिंसां दर्शयति [जलधन्ननिस्सिया जीवा पुढवी कट्ठनिस्सिया हम्मंति भत्तपाणेसु तम्हा भिक्खु न पयावए ११] भक्तपानेषु पच्यमानेषु तथा पच्यमानेषु सत्सु जलधान्यनिश्रिता त्रसा जीवा तथा पृथ्वीकाष्टनिश्रिता जीवा हन्यन्ते जलञ्च धान्यञ्च जलधान्यं तत्र निश्रिता स्तदुत्पन्ना स्तदागताः जलरूपा एकेन्द्रिया जीवा स्तथा तत्र भवाः पूतरकादयो जीवा स्ते पचनकाले ततोऽन्यत्र निश्रिता वाहन्यते यतोऽहिये जीवा यत्र तिष्टन्ति यत्रोत्पद्यन्ते तत्र स्थिताएव ते सुखिनोभवन्ति तदाश्रयनाशे अपि नाशो भवति एवं पृथ्वी च काष्टञ्च पृथ्वीकाष्टे तत्र निश्रिता पृथ्वीकाष्टनिश्रिता पृथ्वीकायिका एकेन्द्रिया स्तदाश्रिताः पनकाद्या अनन्तकायिकाः कृम्यादयो द्वीन्द्रियाद्याश्च जीवाहन्यन्ते तथा काष्टनिश्रिताः घुणाद्या हन्यन्ते भक्तपानकेहि पृथ्वीकाय वनस्पतिकाय

सूत्र

तम्हाएगिह समारंभं सजओ परिवज्जए ९ ॥ तहेव भत्त पाणेसु पयणे पयावणेसुय । पाणभूय दयट्ठाए नपए नपयावए १० । जल धन्न निस्सिया जीवा पुढवी कट्ठ निस्सिया । हम्मंति भत्तपाणेसु तम्हा भिक्खू नपयावए ११ । विसप्पे

भाषा

त्रसजीवादि थावर पृथिव्यादिक सूक्ष्मनान्होबादर मोटो जीव तेहनो वध घात ते कारणेघरनोसमारंभसाधु विशेषे परिहरे ९ हवेआहार नोविध कहेछे तिम वली भातपाणीने विखे पोते रांधेनही अनेरापासे रंधावे वधथाइ तेणे प्राणबेंद्रियादिक भूत पृथिवीनी दयाभणी आपरांधे नही बीजापासे रंधावे नही १० पाणिनी निश्राइं पूराधाननी निश्राइ इसी प्रमुख जीव जाणिवा पृथवीने निश्रित वनस्पति आदिकाष्टने निश्रत घुणादि हणाइ भात

योविराधनाख्या देव तप्पात्व स स्थावर विनाशहेतुत्वाद्भिक्षुर्नपचेत् नपाचयेदिति भाव ११ अथाग्ने रारम्भो हिंसाकारण आह [विसप्पे सव्वओधारे बहुपाण विणासणे नत्थि जो इसमे सत्थे तम्हा जोइ नदीवए १२] साधु स्तस्मात् कारणात् ज्योतिर्न दीपयेत् अग्नि न प्रज्वालयेत् किं कारण तदाह ज्योति सम अग्नितुल्य बहु प्राणि विनाशन शस्त्रात् शस्त्र नास्ति अग्नि सर्वान् प्राणिनो विनाशयति कथम्भूत ज्योति शस्त्र विसर्पत् विशेषेण सप तीति स्फुरतीति विसर्पत् प्रसरणशील पुन कीदृश ज्योतिशस्त्र सर्वतोधार सर्वतस्तदिक्षुधारा शक्तिर्यस्य तत् सर्वतोधार सर्वदिशा स्थित जीव विनाश हेतुक मित्यर्थं प्राकृतत्वाद्व्यलिङ्गव्यत्यय पचन पाचनन्तु अग्नि प्रज्वालन विना नस्यात् अग्नि प्रज्वालन निषेधन पाचन पचनयो निषेध पुनरग्नि प्रज्वालन निषेधेन च शीतकालादौ अपि अग्नि समारम्भो निषिद्ध यदा पचनपाचनाग्निना प्रज्वालनादि निषेधो भवति तदा क्रय विक्रयाभ्या निर्वाह क्रियते अत साधूना तन्निषेधोप्युच्यते १२ [हिरण्ण जायरूवच मणसाविनपत्थए समलेट्ठकञ्चणेभिक्खू विरएकय विक्कए १३] [किणतो कइओहोइ विक्कण तोयवाणिओ कयविक्कय मिवट्टतो भिक्खू हवइ न तारिसो १४] अनयोर्व्याख्या भिक्षु साधुर्हिरण्य हेम जातरूप रूप्यच अन्यद्धनधान्यादि मनसापिन प्रार्थयेत् यदि मनसापिन प्रार्थयेत् तदा कथ गृह्णीयात् कीदृशो भिक्षु समलेष्टु काञ्चन लेष्ट च काञ्चनञ्च लेष्टुकाञ्चने

सव्वओ धारे बहुपाणि विणासणे। नत्थि जोइ समे सत्थे तम्हा जोइ नदीवए १२। हिरन्न जायरूवच मणसावि

पाणीने विषे ते कारण थको साधु पचावे नही ११ थोडोसो पण थाइ अन्ननोपरि सर्वदिसे धाराछे जिहा घणा प्राणीनें विनाशनो कारणहार नथी आगि सरिसुं बीजू शस्त्र कोइ ते कारण थको अग्नि दीपावे नही १२ हिरण्य रुपो जात रूप सुवर्ण तथा धन प्रमुख मने करी प्रार्थे वाछे नही

समलेष्टुकाञ्चने यस्य स समलेष्टुकाञ्चनः तुल्यकाञ्चन पाषाणः पुनः कीदृश· क्रयविक्रयात् विरतः क्रयस्य विक्रयस्य क्रयविक्रय तस्माद्विरतो रहितः१३ क्रयविक्रये दूषणमाह (किणंतो० १४) यतोहि साधुः क्रीणन् मूल्येन वस्तु गृह्णन् क्रयको भवति इतरलोक वद्ग्राहको भवति तथा पुनर्विक्रीणानश्च वणिग् भवति क्रयविक्रये वर्त्तमानो भिक्षुस्तादृशो नभवति भिक्षुगुणयुक्तो नभवति सूत्रे हि भिक्षोर्लक्षणं एतादृशं नास्तीत्यर्थः१४ [भिक्खियव्वं न केयव्वं भिक्खुणा भिक्खुवत्तिणाकयविक्कओ महादोसो भिक्खावित्ती सुहावहा१५] भिक्षुणा साधुना भिक्षितव्यं याचितव्यं न तु साधुना क्रेतव्यं मूल्येन हट्टादौ गृहीतव्यं कीदृशेन भिक्षुणा भिक्षवृत्तिना भिक्षयावृत्तिरुदरपूरणं यस्य स भिक्षावृत्तिस्तेन यतोहि भिक्षोः क्रयविक्रययोर्मध्ये महान् दोषोस्ति साधोर्भिक्षावृत्तिः सुखाव हास्ति भिक्षयावृत्तिर्भिक्षावृत्तिः सा सुखं आवहति पूरयतीति सुखावहा सुखपूरका १५ [स सुयाणं उंछमे सिज्जा जहा सुत्तमणिंदिय लाभालाभं मिसं

नपत्थए। समलेट्ठु कंचणे भिक्खू विरए कय विक्कए १३। किणंतो कइओ होइ विक्कणंतोय वाणिओ। कय विक्कयंमि वट्टंतो भिक्खू न हवइ तारिसो १४॥ भिक्खियव्वं नकेयव्वं भिक्खुणा भिक्खुवित्तिणा। कय विक्कओ महादोसो भिक्खावित्ती सुहावहा १५॥ समुयाणं उंछ मेसिज्जा जहा सुत्त मणिंदियं। लाभा लाभंमि संतुट्ठे पिंडवायं चरे

सरिखो पाषाण अने सुवर्ण जेहने एहवो साधु विरम्यो ओसर्योछे क्रयलेवा थकी विक्रयवेचिवा थकी १३ मोले क्रयाणो लेतु लोका सरीखो ग्राहकहुइ क्रयाणादिवे चतुवाणीओ हुइ व्यापारि थाइ क्रय लेवो विक्रय वेचतु साधूने होइ तेहवो सूते बोल्यो१४ तुं सुं करवुं भिक्षाइ मांगिवो परं मोलि लेवुं नहो चारित्रे भिक्षामांगिवे वृत्तिआ जीविका जेहने क्रय विक्रयतो मोटो दोषछे भिक्षाइं वर्त्तिवो ते सुखनो आपणहारछे १५ घणा घरनि समुदाय

लुद्दे पिंडवायचरेमुणी १६] मुनि साधुर्यथासूत्र सूत्रोक्तरीत्या अनिन्दित निन्दारहित समुदान भैक्ष भिक्षासमूह एषयेत् गवेषयेत् कथभूत भैक्ष्य उ छ इव उ छ अन्याम्य पृथक २ कणग्रहणमिव स्वल्प स्वल्प मीलनेन मधुकरवृत्त्या भ्रमन् इच्छेत् इत्यर्थं पुन साधुर्लाभालाभे आहार प्राप्तौ वा सन्तुष्ट सन् सन्तोषो सन् पिण्डपात भिक्षाटनचरेत् आसेवेत पिण्डाय भिक्षाग्रहणाय पतनमात पिण्डपातो भिक्षार्थं भ्रमणस्त आसेवेत् इत्यर्थं १६ अथ भोजनविधिमाह (अलोले नरसे गिद्दे जिभादंते अमुच्छिए नरसट्टाए भुंजिज्जा जवणट्ठाए महामुणी १७) महामुनिर्यापनार्थं यापना सयमनिर्वाह यापनार्थे इति यापनार्थं स यमनिर्वाहार्थं आहार भुञ्जीत रसोधातु विशेषस्तदर्थं इति रसार्थं धातुपुष्टार्थं स रसाहार न भुञ्जीत केवल सयम निर्वाहार्थमेव भुञ्जीतेत्यर्थं कोदृशो महामुनि अलोल सरसाहार प्राप्तौ अचपल पुन कथभूतो रसे न गृद्ध मधुरादौ तीव्राभिलाषवान् नास्ति पुन कोदृशो महामुनि जिह्वा दांत प्राकृतत्वात् दांत जिह्व वशीकृतरसन पुन कीदृश अमूर्च्छित सन्निधिरकरणेन आगामिदिनेषु भक्षणार्थं घृतगुडादि सञ्चय करणरहित १७ (अच्चण रयणंचेव वंदण पूयणतहा इढीसक्कार सम्माणं मणसा विनपत्थए १८) पुन साधुरेतन्मनसापिन प्रार्थयेत् न अभिलषेत्

मुणी १६ ॥ अलोले न रसे गिद्दे जिभा दंते अमुच्छिए। न रसट्टाए भुंजेज्जा जवणट्ठाए महामुणी १७ ॥ अच्चणा

भिक्षा ते पणि तुच्छ थोडो २ गवेखे सर्व बोलो तेहवो आपणो भारको निदाइ रहित आहारादि लहेतु पणि सतोषी पिंडपाव भिक्षायाव यई सेवे १६ भला भम विखे चूप नही घृतादि रस विखे लोभ नही दमोछे जिभ एतादियासोराखोवे मूर्च्छानही शरीरनो रसधातु वृद्धि भणी भोजन न करे सयम निर्वाह भणी आहारल्ये महा साधु १७ फुलादिकै पूजा साथियादिकने विखे मननो करयो यादियो तिम वली वस्त्रादिकै प्रतिलाभयो

यदि मनसापि न प्रार्थयेत् तदा वचन कायाभ्यां दूरतएव अपास्तं तत् किं किं अर्चनं पुष्पादिभिः सत्कारणं यथा सेवन पर्युपासनञ्चैव पदपूरणे पुन वन्दनं स्तुतिकरणं तथा पूजनं वस्त्रादिभिः प्रतिलाभनं न प्रार्थयेत् पुनः साधुः ऋद्धिसत्कार सम्मानं मनसापि न प्रार्थयेत् ऋद्धिश्च सत्कारश्च सम्मानश्च ऋद्धिसत्कार सम्मानं ऋद्धिः श्रावकानां सम्पत् अथवा वस्त्रपात्रादि सम्पत् सत्कारो अर्थप्रदानादिः गुणकथनं वा सम्मानं अभ्युत्थानादि एतत्सर्वं साधुर्न अभिलषेत् १८ [सुक्कज्झाणंज्झियाइज्जा अनियाणे अकिंचणे वोसट्ठिकाए विहरिज्जा जावकालस्स पज्जओ १९] साधुः शुक्लध्यानं मागुक्तं ध्यायेत् पुनः साधुः अनिदानो निदानरहितः अकिञ्चनः धनादिरहितः पुनर्व्युत्सृष्टकाय· सन् शरीर ममत्वरहितः सन् यावत्कालस्य पर्यायः यावन्मृत्योः समय स्तावत् एतादृशः सन् विहरेत् अप्रतिबद्ध विहारत्वेन विचरेदित्यर्थं १९ [निज्जूहि जण आहारं कालधम्मे उवट्ठिए चइऊणमाणसं बोदिं पहूदुक्खे विमु च्चई २०] स साधु रेतादृशे मार्गे सञ्चरन्काले धर्मे उपस्थिते सतिमरणे प्राप्ते सतिप्रभुः समर्थः दुक्खात् शरीरमानसात् दुक्खात् विशेषेण मुच्यते मुक्तो भवतीत्यर्थः किं कृत्वा आहारं निज्जूहिजण इति संलेखनया परित्यज्य पुनः किं कृत्वा मानुषीं बुन्दिन्तनुं त्यक्त्वा औदारिक शरीरंत्यक्त्वा दुःखरहितो

सूत्र

सेवणंचेव वंदणं पूयणं तहा । इड्ढी सक्कार सम्माणं मणसावि न पत्थए १८ ॥ सुक्कज्झाणं ज्झियाएज्जा अनियाणे अकिं चणे । वोसट्ठ काए विहरेज्जा जाव कालस्स पज्जओ १९ ॥ निज्जूहिऊण आहारं कालधम्मे उवट्ठिए चइऊण माणुसं

भाषा

श्रावक उपगरणलब्धि द्रव्यादिक जभायाइवु इतला मने प्रार्थे नहि तो वचनादिके करी कहे १८ शुक्लध्यानध्याये करो नियाणु तपनो वेचवो न करे धनादिके रहित जिणे कायावो सिरावीछे एहवो साधु प्रतिबंध रहित विचरे जांलगे काल मरणनो प्रस्तावतां लगी १९ संलेखणाने करिवे

भवतीत्यर्थ २० [निम्ममो निरहंकारो वीयरागो अणासवो स पत्ते केवलनाण सासए परिनिव्वुडेत्तिबेमि २१] एतादृशोयति शाश्वतो अविनश्वरो मरण धर्मरहित केवल ज्ञान स प्राप्त सन् परिनिव्वुडोत्तिबेमि कर्माभावात् शीतीभूतो भवति सिद्धि गति भाक भवतीत्यर्थं कीदृशोयतिर्निर्ममो लोभरहित पुन कीदृशो अनास्रव प्राणातिपातादिपञ्चास्रव रहित पुन कीदृशो निरहंकारो अहङ्काररहित पुन कीदृशो वीतरागो रागद्वेषरहित सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन प्रतिवक्ति अह इति ब्रवीमि वीतराग वचनात् २१ इत्यनगार मार्गाध्ययन इति श्रीमदुत्तराध्ययन सूत्रार्थ दीपिकायां उपाध्याय श्रीलक्ष्मीकीर्त्तिगणिशिष्य लक्ष्मीवल्लभगणि विरचितायां अनगारमार्गाध्ययन पञ्चत्रिंश अध्ययन सम्पूर्ण ॥ ३५ ॥ अथ षटत्रिंश मारभ्यते पूर्वस्मिन् अध्ययने अनगारमार्ग उक्त स च जीवाजीवादितत्वज्ञान विनानस्यात् अतो जीवाजीव भक्ताख्य षटत्रिंश अध्ययन व्याख्यायते (जीवाजीव विभत्ति सुणेहमेए गमणाइओ जजाणि ऊणभिक्खू सम्मजयइ स जमे १) भो शिष्या एकाग्रमनस सन्त स्थिरचित्ता सन्तो यूयन्ता जीवाजीव विभक्ति जीवाजीवादीना

वोहि पहू दुक्खे विमुच्चई २० ॥ निम्ममो निरहंकारो वीयरागो अणासवो । सपत्तो केवल नाण सासए परि निव्वुडे त्तिबेमि २१ ॥ अणगारमग्ग ज्झयण सम्मत्त ३५॥ जीवाजीव विभत्ति सुणेह मे एगमणाइओ। ज जाणिऊण भिक्खू

छांडीने आहार ४ प्रकारे मरणनीकाल अवसरे आव्योथको छांडीने मनुष्यनो वोदि शरीर समर्थ शरीर मननोदुक्खते थकी मुकाइ २० ममता लोभ रहित अहङ्कार रहित रागद्वेष रहित आश्रव पापरहित पाम्यो केवल ज्ञान सर्वअर्थनो ग्राहक शासतु कर्म खपाविवाथको वोसम्यो शीतली भूत सुधर्मा स्वामि जम्बूने कहेछे २१ इति श्रीअणगारअध्ययनना टब्बा सम्पूर्ण ३५ एकेंद्रियादि जीव काष्टादि अजीवनी विभक्ति विवरो जाणवो सांभलि हे शिष्य

लक्षणं मे मम कथयतः सतः शृणुत जीवाश्च अजीवाश्च जीवा जीवास्तेषां विभक्तिर्लक्षणा ज्ञानेन पृथक् २ करणं जीवाजीव विभक्तिस्ता उपयोगवान् जीवः एकेन्द्रियादिः उपयोगरहितो अजीवः काष्टादिः इत्यादि जैनमतोक्त लक्षणेन लक्ष्यज्ञानं तां इतिकायां जीवाजीव विभक्तिं ज्ञात्वा भिक्षुः संयमे संयममार्गे सम्यक् यतते यत्नं कुरुते१ [जीवाचेव०२] जीवाश्चेतना लक्षणात्मकाः च पुनरजीवा अचेतनात्मकाः चकार एवकारश्च पदपूरणे एष लोकोव्याख्यातस्तीर्थंकरैरुक्तः अजीवदेश आकाशं अलोको व्याख्यातः अजीवस्य धर्मास्तिकायादिकस्य देशोंशो अजीवदेशो धर्मास्तिकायादि वृत्तिरहितस्य आकाशस्यैवदेशः स अलोको व्याख्यात· जीवा जीवानां आधेयभूतानांलोकाकाशं आधारभूतं अतो लोकालोक लक्षणं उक्तं २ जीवाजीव विभक्तिर्यथास्यात्तथाह [दव्वओ खित्तओ चेव कालओ भावओ तहा परूवणातेसिं भवे जीवाणम जीवाणय ३] द्रव्यतो द्रव्यं आश्रित्य इद द्रव्यं इयद्दि दं चेत्रत· इदं द्रव्यं एता

सम्मं जयइ संजमे १ ॥ जीवाचेव अजीवाय एस लोए वियाहिए। अजीवो दसमागासे अलोए से वियाहिए २ ॥ दव्वओ खित्तओ चेव कालओ भावओ तहा। परूवणा तेसिं भवे जीवाण मजीवाणय ३ ॥ रूविणो चेव रूवीय

मुझ कहतां प्रति एकाग्र मनथइ एपातीसमा अध्ययन अनंतर छत्रीसमुं जाणवुं ते अध्ययन सांभली जांणीने साधु तथा श्रावक भली परि यतन करे संयमने विखे १ जीवने वली अजीव कहीये एजच जदराज सर्वने मत्यत्र कह्यो जिने अजीवनो देस आकाश रूप परं धर्मास्तिकायादि तिहां नथी तेहने अलोक कह्यो तीर्थं करे २ द्रव्य थकी जेहना एतलाभेद खेत्र थकी ज एतलो आकाश अवगाहि रहेछे काल थकी एहनो एतली थिति तथा भाव थकी जे एहना एतला स्पर्शादि पर्याय तेहनी विह प्रकारे प्ररूपणा भेद जीवने अजीवनी थिति ३ अजीवनी प्ररूपणा थोडी ते भणी प्रथम

यति चेत्र स्थितकालत इद द्रव्य इयत्कालस्थिति मदर्त्तते भावतोस्य द्रव्यस्य इयन्त पर्याया एव तेषा जीव द्रव्याणां अजीवद्रव्याणां च द्रव्यचेत्र कालभावेन चतुर्धा प्ररूपणा भवेत् ३ अथ तावत् अजीव द्रव्यप्ररूपणाया स्वल्पत्वात् अजीव द्रव्यस्यैव प्ररूपणा कथ्यते (रूविणोय अरूवीय अजीवा दुविहाभवे अरूवो दसहावुत्ता रूविणो विचउव्विहा ४) अजीवा द्विविधाभवेयु एके अजीवारूपिणो रूपवन्त च पुनरन्ये अजीवा अरूपिणो अरूपवन्त तत्ररूप स्पर्शाद्याश्रय भूत मूर्त्त तदस्तियेषु ते रूपिण तद्व्यतिरिक्ता अरूपिण इत्यर्थ तत्र अरूपिणो अजीवा दशधाउक्ता रूपिणो जीवा चतुर्विधा प्रोक्ता ४ पूर्वं दशविधत्व माह (धम्मत्थिकाए० ५) [आगासे तस्सदेसेय तप्पएसेय आहिए अद्धासमए चेव अरूवी दसहाभवे ६] युग्म अरूपी अजीव एव दशधाभवेत् इति द्वितीय गाथयान्वय प्रथम धर्मास्तिकाय अरति जीवपुद्गलो प्रति गम नोपकारेणेति धर्मस्तस्य अस्तय प्रदेश सङ्घातस्तेषां कायं समूहो धर्मास्तिकाय सर्वं देशानुगत समान परिणति मद्रव्य इतिभाव १ पुनस्तद्देशस्तस्य धर्मास्तिकायस्यत्र तमो विभागोदेशस्तृतीय चतुर्थादिभाग लक्षणो धर्मास्तिकायदेश २ तथा पुनस्तत्प्रदेशस्तस्य धर्मास्तिकायविभागस्य अतिसूक्ष्मोनिरंशांश प्रदेशोधर्मास्तिकायप्रदेशस्तीर्थकरै आख्यात कथित ३ एव अधर्मो जीव पुद्गलयो स्थिरकारी धर्मास्तिकायाद्विपरीतो अधर्मास्तिकाय ४ पुनस्तस्य अधर्मास्तिकायस्यापि देशस्तद्देश एक कश्चिद्भागो अधर्मा

सूत्र

अजीवा दुविहा भवे। अरूवी दसहा वुत्ता रूविणोवि चउव्विहा ४ ॥ धम्मत्थिकाए तद्दे से तप्पए सेय आहिए। अह

भाषा

अजीव रूपादिकें ते रूपी रूपादि नथी ते अरूपी अजीवनेह भेदे कह्या ते मांहि अरूपी दशप्रकारे कह्या जीनेश्वरे रूपीते चिह्न भेदे जाणवा ४ धर्मास्तिकाय १ तेहनो विभाग ते देशथरे जीव पुद्गलने गति पणे अनुकूल हुइ धर्मना अस्ति प्रदेसनो काय समूह ते विभागनो अंश जेहनो वस्तु

स्तिकायदेश ५ एवं पुनस्तस्य अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशोंश स्तत् प्रदेश आख्यात: अधर्मास्तिकाय प्रदेश६ इत्यर्थ:इत्यनेन षड्भेदाअरूपिणो अजीवद्रव्यस्य५ अथ शेषार्थवार उच्यन्ते आगास इति सप्तमोभेद: आकाशं आकाशास्तिकाय: जीव पुद्गलयो रवकाशदायि आकाशं ७ तस्य आकाशस्य देश वातनो विभाग: आकाशास्तिकायदेश: ८ तस्य आकाशास्तिकायस्य निरंशोदेश स्तत्प्रदेश: आकाशास्तिकाय प्रदेश: ९ दशमोभेदश्चाद्धा समय: अद्धाकालो वर्त्तमानलक्षणस्तद्रूप समयो अद्धासमयो अस्य एक एव भेदो निर्विभागत्वात् देश प्रदेशी अपिकालस्य न सम्भवत· १० एवं दशभेदा अरूपिणोजिवा: ६ एतान् अरूपिण' चेवत: आह (धम्माधम्मेय दोएए लोगमित्ता वियाहिया लोगालोगेय आगासे समए समयखित्तिए ७) धर्माधर्मौ धर्मास्तिकाया धर्मास्तिकायौ एतौ द्वावपि लोकमात्रौ व्याख्यातौ यावत्परिमाणो लोकस्तावत्परिमाणौ धर्मास्तिकाया धर्मास्तिकायौ चतुर्दश रज्वात्मलोक व्याप्तौ इत्य

म्मे तस्स देसेय तप्पएसेय आहिए ५। आगासे तस्स देसेय तप्पएसेय आहिए। अद्धा समए चेव अरूवी दसहाभवे ६। धम्मा धम्मे य दोएए लोगमित्तावियाहिया। लोगालोगेय आगासेसमए समयखेत्तिए७। धम्मा धम्मागासातिन्निवि

भागन होये तेहस्यु' मिलगो देसते धर्मास्तिकाय थकी विपरीत अधर्मास्तिकाय तेहनो विभाग ते देस ते देसनो विभागनथाइ एहवो विभाग ते प्रदेस कह्यो ५ मर्यादा सहित आपणे सरूपे शोभे पदार्थतीरां रह्याते आकाशास्ति काय तेहनो विभाग ते भेद ते मांहिं जेहनो भाग नथी ते प्रदेश कह्यो अद्धाकालरूप समायादिक ते अद्धासमय तेहनो विभाग नथी एह वाभणी देस नही अरूपी दशप्रकारे हुइ ९ धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय एवे द्रव्य लोकमात्र चौदराजव्यापी परं अलोक माही नथी ते कह्यो तीर्थं कर देवे लोक चौदराज अलोक चौदराज बाहिर तेहने विषे आकास्तिकाय सघले

नेन चलोके धर्माधर्मौ नस्त आकाशं लोकालोके वर्त्तते इत्यनेन आकाशास्तिकाय चतुर्दशरज्ज्वात्मलोक व्याप्यस्थित ततो बहिरलोक अपि व्याप्य आकाशास्तिकाय स्थित इत्यथ समय समयादिक काल समयक्षेत्रिको व्याख्यात समयोपलक्षित क्षेत्र सार्द्धद्वय द्वीप समुद्रात्मक समय क्षेत्र तन्नभव क्षेत्रिक सार्द्धद्वय द्वीपेभ्यो बहिस्तु समय आवलिकादिय समासादि कालभेदा मनुष्यलोका भावात विवक्षित ७ पुनरेतान् एवकालत आह [धम्मा धम्मागासातित्रिविहए अणादया अपज्जवसियाचेव सव्वद्ध तु वियाहिया ८] धर्माधर्माकाशानि एतानित्रीण्यपि सर्वाद्धं इति सर्वकाल सर्वदा स्वस्वरूपा परित्यागेन नित्यानि अनादीनि च पुनरपर्यवसितानि अन्तरहितानि व्याख्यातानि ८ अथ काल स्वरूपमाह (समएविसन्तइं पप्प एव मेव वियाहिया आएस पप्पसाईए सपज्जवसिए वि य ८) समयोपि कालोपि एव एव यथा धर्माधर्माकाशानि अनाद्यनन्तानि तथा कालोपि अनाद्यनन्त इत्यर्थ किं कृत्वा सन्तति प्राप्य अपरापरोत्पत्ति रूपप्रवाहात्मिको आश्रित्यकोय यदाहि कालस्योत्पत्ति विलोक्यते तदा कालस्य आदिरपि नास्ति अन्तोपिनास्तीत्यर्थ पुनरादेश प्राप्य कार्यारम्भ आश्रित्यकाल सादिक आदिसहित तथा सपर्यवसितोऽय सान्तसहितो व्याख्यात

एए अणाइया । अपज्जवसिया चेव सव्वद्धतु वियाहिया ८ । समएवि सन्तइं पप्प एवमेव वियाहिए । आएसपप्प

व्यापी रह्याछै समयादिक काल ते समयक्षेत्र अढी द्वीपमाहि बाहिर नथी ७ धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय ए त्रण अनादि छै अनंत छे इत्यादि नथी ... ... सर्वकाल सर्वदा ... ... स्वरूप छांडे नथी ८ ... काल निरंतर ... ... अनादि अने अनंत ... ...

यदा च यत् किञ्चित् कार्यं यस्मिन् काले आरभ्यते तदा तत्कार्यारम्भवशात्कालस्यापि उपाधिवशात् आदिः एवं कार्यारम्भ समाप्तीकालस्यापि अन्तोव्याख्यातइत्यर्थः ९ अथ रूपिणोऽजीवाश्चतुर्विधाश्चतुर्भेदा उच्यन्ते [खन्धायखन्धदेसाय तप्पएसातहेवयपरमाणुणोय बोधव्वारुविणोवि च उव्विहा १०] रूपिणोप्यजीवाश्चतुर्विधाश्चतुः प्रकारा के ते भेदास्तान् आह स्कन्धाः यत्र पुञ्जे परमाणवोविघटनात् मिलनात् चन्यूनाः अधिकाश्रपि भवति एता दृशा परमाणुपुञ्जा स्कन्धदेशाः १ तथा तत् प्रदेशास्तेषां स्कन्धानां निर्विभागाअंशा. स्कन्धप्रदेशा २ तथैवेति पूर्ववत् च पुन· परमाणवोबोधव्याः पर माणवएव परस्परं असिलिताइत्यर्थः एवं चत्वारो रूपिणश्चतुर्विधाबोधव्याइति भाव अत्र च मुख्यवृत्त्यापरमाणु द्रव्यस्य द्वौ भेदौ परमाणवः स्कधाश्च देश प्रदेशयोः स्कन्धेष्वेवान्तर्भावः १० अथ स्कन्धानां परमाणूनां लक्षणमाह (एगत्तेण पुहत्तेण खन्धायपरमाणुणो लोएगदेसेलोएय भइव्वाते उखित्तश्रो इत्तोकालविभागं तु तेसिं वुच्छं च उव्विहं ११ अर्थः एतेस्कन्धाश्च पुनः परमाणवः एकत्वेन पुनःपृथक्त्वेन लोकैकदेशे च पुनर्लोके क्षेत्रतोभक्तव्याः तत्र केचित्

सूत्र

साइए सपज्जवसिएविय ९ ॥ खंधाय खधदेसाय तप्पएसा तहेवय । परमाणुणोय बोधव्वा रुविणोवि चउव्विहा १०।
एगत्तेण पहुत्तेण खंधाय परमाणुणो । लोएगदेसे लोएय भइव्वातेय खित्तश्रो । इत्तो काल विभागंतु तेसिं वोच्छं

भाषा

पर्यवसान अतछे ९ परमाणुयाविघटे मिले ते स्कंध तेहनो विभाग ते देश तेहना जे निर्यात अंश ते प्रदेश तिम जाणवा जे परमाणु घणु अणु नान्हा ते परमाणु आजांणवा रूपी द्रव्य चिह्नं प्रकारे पुद्गलते रुपी द्रव्य जांणवो १० परमाणु आसु एक परिणामे परिणमे परमाणून् जूजू आपणु रहिवुं परमाणुया एकठा मिल्या कि अनंतालग जूजू आते परमाणुया लोकना एकदेशने विखे परमाणु आ रह्याछे स्कंधते लोकमांहि घका लोकना

स्कन्धा परमाणवश्च एकत्वेन समानपरिणतिरूपेण लभ्यन्ते अथ च स्कन्धापरमाणवश्च पृथक्त्वेन परमाण्वन्तरैः संघातरूपेण लभ्यन्ते इति अध्याहार इति द्रव्यतोनिरूपण उक्तं अथ क्षेत्रत आह ते स्कन्धा परमाणवश्च इति तत्र स्कन्धपरमाणूनां ग्रहणेपि परमाणूनां एव एक प्रदेशावस्थानत्वात् ते परि माणव स्कन्धेषु लोकैकदेशेलोके सर्वत्रभक्तव्या भजनीया दर्शनीइति यावत् न हि विचित्रत्वात्परिणतेर्बहु प्रदेशेतिष्ठन्ति इत क्षेत्रप्ररूपणातोऽनन्तर तेषां स्कन्धानां परमाणूनां चतुर्विध कालभेदं चतुर्विधं वक्ष्ये सादि अनादि सपर्यवसित अपर्यवसित भेदेन कथयिष्यामि इदं च सूत्र पट पाद गाथेयुक्त ११ (संतइं पप्पतेणाइ अपज्जवसियावियठिइ पडुच्चसाइया सपज्जवसियावियि १२] ते स्कन्धा परमाणवश्च सन्तति अपरापरोत्पत्ति प्रवाह रूपां प्राप्य अनादय आदिरहितास्तथा अपर्यवसिता अन्तरहिता स्थिति प्रतीत्यचैवावस्थानरूपांस्थिति अङ्गीकृत्यसादिका सपर्यवसिताश्च यस्तं ते १२ सादिसपर्यवसितत्वे पि कियत्कालमियांस्थितिरित्याह [असङ्खकालमुक्कोस इक समय जहन्नय अजीवाणयरूवीण ठिइएसावियाहिया १३]

चउव्विहं ११॥ संतइं पप्प तेणाई अपज्जवसियावियि। ठिइं पडुच्च साईया सपज्जवसियावियि १२॥ असंख कालं मुक्कोसं एक्कं समयं जहन्नयं। अजीवाणय रूवीण ठिई एसा वियाहिया १३॥ अणंतकालं मुक्कोसं एक्कंसमयो

मूल

भाषा

प्रदेसनें विषे तं स्कंधदेश छेत्र,आकाश भजिवा अनेक प्रकार करी कहवायेंछ प्रदेसी पणे एक ११ प्रदेशे रहें संतति प्रवाहें आश्री तेऽअनादि जिवारें तं अपर्यवसित अनंत पणे नित्य सदाकुस्थे थिति नियत क्षेत्र विषे होत आश्री आदि सहित तसादि अने स पर्यवसित अंत सहित जेहनो नयनवे ठामे उप। १२ असंख्यात काल उत्कृष्टस्थित एक समय जघन्यस्थिति अजीवरूपी द्रव्य पुद्गल पृथव्यादिक थिति एह कही तीर्थंकरे १३ अनंतोकाल उत्